जीवन के सफर में, जीवन दर्शन- जीवन रहस्य

मकान की नींव देखे बिना मंजिलें बना लेना खतरनाक है।

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री सुधीर वासुदेवराज लिंगायत
आर्टटेक ग्राफीक्स, ७८९/९०, गुरुवार पेठ, पुणे- मो. ९४२२३६३३११

* सौजन्य :- पार्टस् कॉटेज, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल

* विचारक :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

* प्रकाशन नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

** सब्र ऐसी सवारी है जो अपने सवार को कभी गिरने नहीं देती,*
न किसी के कदमों में और न किसी की नजरों में।

* मूल्य - आपके खुशहाल जीवन की चाहत

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) डॉ. सुशील भारूका
आर्च डेव्हलपर्स, सिटी प्राईड, मोंढा नाका, जालना रोड,
औरंगाबाद फो. ०२४०-२३४५९५५ मो. ९८२३०२८४१२

५) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

६) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

७) श्री सुशीलकुमारजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपुर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

८) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
५६, नवशील अपार्टमेंट्स, ब्लॉक नं. ५,
फ्लैट नं. २, टैगोर रोड, कैंटोनमेंट्स,
कानपुर- २०८००४ मो. ९३३५८७२९४४

९) श्रीमती गीता जयप्रकाश गोयल
बिल्डिंग ९ए, ११ वां मजला, गंगा सॅटेलाईट,
वानवडी, पुणे- ४११०४० मो. ९८६०००२२२
फोन नं. ऑ. २६१४०२५१ घर- २६८३७४३४

१०) शंकरलाल रिणवाँ
धानुका आश्रम, परिक्रमा मार्ग, रमण रेती,
वृंदावन- २८११२१ (यू.पी.) मोबाईल -०९७५६२५८२४२
फोन नं. ०५६५-३२९०८०४, २५४००७५, २५४०७३१

११) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

१२) श्री बनवारीलाल अग्रवाल
१६-११-७४१/डी/३६, मूसारामबाग,
हैद्राबाद- ५०००३६ मो. ९४२४६३५४९१९

१३) श्री किरण अग्रवाल
कुसुम बंगलो, आकाशगंगा सोसायटी,
कृष्णचरन अपार्टमेंटस् के सामने, काठे गल्ली, द्वारका,
नासिक - ००१ फो. (०२५३) ८०४६३३, मो. ९८५०३०४०६१

१४) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधि रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१५) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१६) अग्रवाल समाज, पुणे
श्री अग्रसेन भवन (वासुदेव जानी)
१०८८, रविवार पेठ, पुणे- ४११००२
फोन- २४४७६१६५, २४४७७७५६

१७) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

१८) श्री बनवारीलाल जाजोदिया
रघुमणि, डी-३४, एचआयजी कॉलनी,
शॉपिंग कॉम्प्लेक्स के पीछे, आग्रा-मुंबई रोड,
इंदौर- ४५२००१ (म.प्र.)
फो. २५५९४५१ मो. ९३००५६९४७१

१९) श्रीकांत रामस्वरूप मोरारका
नानसा गेट, स्टेशन नवलगढ़- ३३३०४२
जिल्हा- झुनझुनु (राजस्थान) मो. ९४१४३१५७३०

२०) श्री अशोककुमार एस. जालान
अवाडे माळा, ए-१३, शुभमकरोति अपार्टमेंटस्,
इचलकरंजी- १५ जिल्हा-कोल्हापूर मो. ९४२२४२६७८०

२१) श्री दिनेशजी अग्रवाल
३/ए, प्रस्तावना अपार्टमेंट, प्रतिष्ठा कॉम्प्लेक्स,
एक्स्पेरिमेंटल स्कूल के सामने, पारले पॉईंट, सूरत
मोबाईल - ९८२४१००९४०

जिन्दगानी के सफर में तू अकेला ही नहीं है, हम भी तेरे हमसफर हैं।

विषयसूची

भागवत के विषय

१)	श्री गणेश	७
२)	विचारक के उद्‌गार	९
३)	माता - पिता	१६
४)	काल, समय, वक्त, क्षण- पल	२१
५)	रीतिरिवाज-परम्परायें, प्रथायें, मान्यतायें	४०
६)	प्रेम-अनुराग-प्यार, क्षमा, स्नेह, वात्सल्य	४१
७)	काम, क्रोध, तैश, चिड-चिडापन, बौखलाहट, मोह, मत्सर, ममता, मद, अभिमान, अहंकार	८३
८)	त्याग, समर्पण, बलिदान	१०५
९)	संतोष-असंतोष, शांति-अशांति, तृप्ति, तुष्टि-पुष्टि	१०९
१०)	दया-कृपा और परोपकार, उपकार- अपकार, करूणा, दयालुता	१२१
११)	इच्छा, कामनाएं, आकांक्षाएं, महत्वाकांक्षाएं, वासनाएं, विषयभोग और तमन्नाएं, अपेक्षाएं व अभिलाषा, लालसा	१३३
१२)	ईर्ष्या - असूया - हसद	१४७
१३)	लोभ-तृष्णा, क्षुद्रता और स्वार्थपरता	१५५
१४)	पवित्रता-अपवित्रता, शौच	१६०
१५)	दुर्गुण-सद्‌गुण, अच्छाई बुराई, गुण-दोष, अवगुण	१६१
१६)	मंत्र-तंत्र	१७५
१७)	भय, कातरता, निर्भयता, हीनता, डर, निडरता	१८४
१८)	विश्वास, श्रद्धा और आस्था, निष्ठा, प्रेरणा, अंध:विश्वास, अंधश्रद्धा, रूढ़िवाद	१८८
१९)	मन, चित्त, चिंतन, चिंता	२०२

२०) विद्या- अविद्या, ज्ञान-अज्ञान, विज्ञान और विद्वान, आत्मज्ञान, पण्डित २४९
२१) बुद्धि-सद्बुद्धि-दुर्बुद्धि-मेधा, विवेक, बुद्धिमान २७२
२२) आनन्द २७९
२३) मान-सम्मान, यश - कीर्ति - प्रशंसा-बडाई, गौरव, प्रतिष्ठा, अपमान-तिरस्कार २९४
२४) आसक्ति-अनासक्ति, विरक्ति, वैराग्य २९९
२५) तकदीर-भाग्य-मुकद्दर-नसीब, प्रारब्ध, पुरुषार्थ और नियति ३०८
२६) ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष ३१८
२७) कर्म-सत्कर्म, कर्मफल, क्रिया, कर्त्तव्य ३३५
२८) आचार- सदाचार, विचार-सद्विचार, आचरण,
व्यवहार, अनुशासन, शिष्टाचार ३५५
२९) योग, अध्यात्म व साधना ३६६
३०) नीति-अनीति, नैतिकता ४००
३१) चरित्र ४०२
३२) भूत-प्रेत, पिशाच ४०६
३३) मनुष्य-मानव, मानवता-महानता, महापुरुष-महान व्यक्ति-सत्पुरुष-सज्जन ४०८
३४) प्राण ४३७
३५) संस्कार और संस्कृति, सभ्यता ४३९
३६) शक्ति-बल, मनोबल, ऊर्जा ४६७
३७) उमंग-उत्साह, श्रम-परिश्रम और साहस-संघर्ष ४७३
३८) स्वाध्याय ४८२
३९) पुनर्जन्म ४८६
४०) धैर्य-धीरज, सहनशीलता-सहिष्णुता व आत्मसंयम-नियम,
संवेदना-संवेदनशीलता, उत्तेजना, उग्रता ४८९
४१) आलोचना, निन्दा, स्तुति, चापलूसी ५००
४२) दम्भ-पाखंड, छल-कपट, धूर्तता, विश्वासघात, धोखा ५०८
४३) विनय, विनम्रता ५०९
४४) सोच-विचार, वाद-विवाद, सम्वाद ५१०
४५) समस्या, समझौता व समाधान, सामंजस्य ५२०
४६) यज्ञ, होम, हवन ५२६

४७) राग-द्वेष ५२८
४८) आत्मविश्वास, आत्मचिंतन ५२९
४९) हिंसा-अहिंसा, क्रूरता-अक्रूरता ५३७
५०) भाव-भावना ५४६
५१) स्वभाव, आदत ५५१
५२) आपत्ति-विपत्ति ५५४
५३) वाणी, शब्द, मौन ५५५
५४) चुगलखोरी-पैशुन, निंदा, गिले-शिकवें-शिकायत ५६८
५५) धन-दौलत, ऐश्वर्य, वैभव, सम्पत्ति ५७१
५६) श्राद्ध-तर्पण ५७८
५७) आस्तिक-नास्तिक ५८४
५८) सेवा-सुश्रुषा ५८६
५९) तप-तपस्या, जप ५९१
६०) लक्ष्य, उद्देश्य, ध्येय ५९३
६१) संग्रह-परिग्रह-निष्परिग्रह ६००
६२) संयोग-वियोग-अवसर ६०१
६३) अन्धेरा, प्रकाश ६०५
६४) शंका-संशय, सन्देह, भ्रम, भ्रांति ६०६
६५) ध्यान, धारणा, समाधि ६११
६६) ॐ प्रणव, ओंकार ६१६
६७) रूप-स्वरूप, कुरुप, सौन्दर्य ६१९
६८) उत्थान-पतन, उत्कर्ष, उन्नति-अवनति और तरक्की ६२३
६९) पूर्णता-अपूर्णता, स्थिरता-अस्थिरता, समता ६२६
७०) दान की महिमा ६२७
७१) परिवर्तन, परिस्थिति ६३१
७२) अमृत-विष ६४९
७३) द्वन्द्व-निर्द्वन्द्व ६५०
७४) चुनौती, प्रतिस्पर्धा ६५१
७५) यादें, स्मृति, याद्दाश्त, विस्मृति ६५५

७६) बेईमानी, ईमानदारी, भ्रष्टाचार ६५८
७७) ग्रहण ६६२
७८) क्षोभ, पश्चात्ताप, प्रायश्चित, आँसू ६६४
७९) संगीत ६६६
८०) सफलता-असफलता, जय-पराजय, जीत-हार ६७१
८१) प्रवृत्ति-निवृत्ति ६८१
८२) भूत, भविष्य, वर्तमान ६८२
८३) सती, पतिव्रता नारी, पत्नी ६८५
८४) विरह ६८६
८५) वेद-वेदान्त, शास्त्र, उपनिषद, पुराण, श्रुति ६९२
८६) सपना ७०२
८७) प्रतिशोध, बैर, बदला ७०६
८८) व्यक्तित्व ७०७
८९) सकारात्मक - नकारात्मक ७१५
९०) आशा निराशा ७२२
९१) दोस्त-दोस्ती, रिश्ते-रिश्तेदारी ७२५
९२) न्याय-अन्याय ७४१
९३) आज के युवक ७४२
९४) ढलती शाम के बुझते दीये- वृद्धावस्था, बुजुर्ग ७४४
९५) बच्चे- बचपन ७७३
९६) शिक्षा शिक्षक ७७६
९७) हंसी-मुस्कान, खुशी-प्रसन्नता ७८५
९८) अनुशासन, शील, मर्यादा, सीमा, कृतज्ञता, आभार, शुक्रिया, धन्यवाद ७९०
९९) सुख- दु:ख ७९२
१००) आलस्य, तमस, प्रमाद ७९४
१०१) स्वाधीनता, पराधीनता और स्वतंत्रता ७९६
१०२) संकल्प-विकल्प ७९७
१०३) उदासीनता ७९९
१०४) सुविधा - दुविधा ८००

श्री गणेश

श्री गणेश जीवन की विघ्न-बाधाएं दूर कर सभी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं। इसलिए उन्हें सभी देवों में सबसे अधिक महत्व दिया गया है। भगवान गणेश की उपासना से जहां कार्यों में सफलता मिलती है, वहीं तमाम अवरोध हटते हैं और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, इसलिए कहा गया है- भक्ति गणपति, शक्ति गणपति, सिद्धि गणपति, लक्ष्मी गणपति महागणपति।

विनायक वरद चतुर्थी भगवान श्रीगणेश के जन्म का महोत्सव है। हिंदू धर्म में गणेशजी को विद्या-बुद्धि का प्रदाता, विघ्न-विनाशक, मंगलकारी, रक्षाकारक, सिद्धिदायक, समृद्धि, शक्ति और सम्मान प्रदायक माना गया है। वैसे तो प्रत्येक मास के कृष्णपक्ष की चतुर्थी को संकष्टी गणेश चतुर्थी मनायी जाती है, लेकिन वार्षिक गणेश चतुर्थी को गणेश जी के प्रकट होने के कारण उनके भक्त इस तिथि के आने पर उनकी विशेष पूजा करके पुण्य अर्जित करते हैं।

आज के युग में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मानव जाति को गणेशजी के मार्गदर्शन की सर्वाधिक आवश्यकता है। आज हर व्यक्ति का सपना है कि उसे रिद्धि-सिद्धि, शुभ-लाभ निरंतर प्राप्त होता रहे।

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को सभी देवताओं में सबसे पहले पूजे जानेवाले देवता भगवान गणेश का जन्म मध्यकाल में हुआ था। वे विघ्नहर्ता और विघ्नकर्ता दोनों हैं। इन्हें बुद्धि का देवता भी माना गया है।

इस दिन वर्जित है चंद्र दर्शन- शास्त्रों में वर्णित है कि इस दिन चंद्र दर्शन से मिथ्या आरोप लगता है। भगवान श्रीकृष्ण पर स्यमंतक मणि चोरी का झूठा कलंक लगा था। नारद जी ने यह दुर्दशा देख बताया कि उन्होंने भाद्रपद शुक्लपक्ष की चतुर्थी को गलती से चंद्र दर्शन किया था, इसलिए वे तिरस्कृत हुए, क्योंकि चंद्रमा को गणेश जी ने श्राप दिया था। नारद की सलाह पर श्रीकृष्ण ने चतुर्थी व्रत किया और दोष मुक्त हुए।

शास्त्रों के मुताबिक श्रीगणेश की दो पत्नियां ऋद्धि-सिद्धि तथा पुत्र लाभ व क्षेम हैं, जिनको लोक परंपराओं में शुभ लाभ भी कहते हैं। जहां ऋद्धि-सिद्ध यशस्वी, वैभवशाली व प्रतिष्ठित बनाती हैं, वहीं शुभ-लाभ सुख-सौभाग्य देने के साथ स्थायी और सुरक्षित रखते हैं। शास्त्रों के अनुसार सुख-सौभाग्य की चाहत पूरी करने के लिए बुधवार व चतुर्थी को गणेश पूजन में श्रीगणेश के साथ ऋद्धि-सिद्धि व लाभ क्षेम का विशेष मंत्रों से स्मरण अति फलदायी माना गया है, कहा गया है- भक्ति गणपति, शक्ति गणपति, सिद्धि गणपति, लक्ष्मी गणपति, महा गणपति... अत: सच्चे मन से उनकी पूजा से आपको सब कुछ की प्राप्ति होती है।

हिन्दू धर्म में किसी भी शुभकार्य को करने से पहले गणेश जी की पूजा करना आवश्यक माना गया है क्योंकि उन्हें विघ्नहर्ता व ऋद्धि-सिद्धि का स्वामी कहा जाता है। इनके स्मरण, ध्यान, जप, आराधना से कामनाओं की पूर्ति होती है व विघ्नों का विनाश होता है।

गणेश का अर्थ है गणों का ईश अर्थात गणों का स्वामी। किसी पूजा आराधना, अनुष्ठान व कार्य में गणेश जी के गण कोई विघ्न बाधा न पहुंचाए, इसलिए सर्वप्रथम गणेश पूजन कर उनकी कृपा प्राप्त होबती है प्रत्येक शुभकार्य के पूर्व श्री गणेशाय नम: का उच्चारण कर यह मंत्र बोल जाता है।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ, निर्विघ्नं कुरु में देव सर्वकार्येषु सर्वदा।

अर्थात विशाल आकार और टेढ़ी सूंडवाले करोड़ों सूर्यों के समान देहवाले हैं देव (गणेश जी), समस्त कार्यों को सदा विघ्नरहित पूर्ण (सम्पन्न) करें।

आज हर व्यक्ति दौलतमंद होना चाहता है। अत: अथाह धन-दौलत पाने के लिए भगवान श्रीगणेश का पूजन अति फलदायी है। हिन्दू धर्म में भगवान श्री गणेश का अद्वितीय महत्व है। यह बुद्धि के अधिदेवता, विघ्ननाशक तथा अपार धन की मनोकामना पूर्ण करनेवाले देवता है। गणेश शब्द का अर्थ है गणों का स्वामी। हमारे शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेंद्रियां तथा चार अंत:करण हैं तथा इनके पीछे जो शक्तियां हैं, उन्हीं को चौदह देवता कहते हैं। देवताओं के मूल प्रेरक भगवान गणेश हैं। गणपति सब देवताओं में अग्रणी हैं। भगवान श्री गणेश के अलग-अलग नाम व अलग-अलग स्वरूप हैं। गणेश की प्रतिमा स्थापित करने से घर में सुख-समृद्धि व शांति का वातावरण कायम रहता है, मनुष्य दौलतमंद बनता है साथ ही सारी परेशानियां भी दूर होकर मनुष्य आनंदमय जीवन जीता है।

अपनी बुद्धि को विवेक के अधीन रखना सिखाते हैं विघ्नहर्ता गणेश

धर्म के दस लक्षणों में बुद्धि का सर्वाधिक महत्व है। धर्मशास्त्रों में कहा गया है- यस्य बुर्द्धिर्बलम् तस्य, निर्बुद्धे: तु कुत: बलम्। यानी जिसके पास बुद्धि है, वही बलशाली है। क्योंकि बुद्धि के बिना शारीरिक बल भी महत्वहीन हो जाता है। सनातन संस्कृति में बुद्धि के प्रतीक एवं अधिष्ठाता गणेश जी को माना गया है। गणेश जी के सिर को गज यानी हाथी के रूप में प्रदर्शित करना मेधा शक्ति का परिचायक है।

हाथी के बड़े आकार का सिर विवेक और प्रज्ञाशक्ति के समन्वय को दर्शाता है। बुद्धि तो हरेक के पास होती है, किंतु विवेक के बिना बुद्धि नाशवान गतिविधियों की ओर उन्मुख हो जाती है। हम जानते हैं कि गणेशजी स्वयं विघ्नहर्ता हैं और किसी भी शुभ कार्य के मार्ग में आनेवाले अवरोधों का उन्मूलन करनेवाले देवता हैं। इसलिए सनातन धर्म की परंपरा में प्रत्येक शुभ कार्य का प्रारंभ गणेश वंदना से किया जाता हे। गणपति बप्पा का विशाल उदर करुणा, उदारता और पूर्ण स्वीकारोक्ति का द्योतक है।

जिस समाज में, जिस परिवेश में करुणा, उदारता और हरेक परिस्थिति के प्रति सहज स्वीकृति की भावना निर्मित होने लगती है, वहां श्रद्धा, आस्था और सत्य का स्वाभाविक प्रकटीकरण होने लगता है। लोकमान्य तिलक ने स्वाधीनता आंदोलन में चेतना जागृत करने के उद्देश्य से १८९३ में गणेशोत्सव का आगाज किया। तिलक ने लोगों की बौद्धिक क्षमता का इस्तेमाल रचनात्मकता की ओर प्रवृत्त कर राष्ट्रीय आंदोलन को एक नई ऊर्जा व ऊंचाई प्रदान की।

गणेश जी को एकदंत भी कहा जाता है। जो निश्चित तौर पर पूर्ण एकाग्रता का प्रतीक है, जबकि उनके हाथों में विराजमान अंकुश पूर्ण सजगता का परिचायक है। गणेश जी के दूसरे हाथ में मौजूद पाश आत्मनियंत्रण का प्रतीक है। दरअसल, जब कोई व्यक्ति आध्यात्मिकता के मार्ग पर अग्रसर होता है तो उसके प्रारब्ध रूपी विकर्म और पुरातन संस्कारों का आवरण बिखरने लगता है, धीरे-धीरे उसकी प्राणदायिनी शक्ति और आत्मचेतना संपूर्ण शरीर में अपना विस्तार करती है। उस स्थिति में आध्यात्मिक ऊर्जा मुक्त होकर एक फैलाव ग्रहण करती है। उस विशेष अवस्था में यदि व्यक्ति विवेक और आत्मसंयम से स्वयं को नियंत्रित न करे तो वह ऊर्जा विध्वंस और पतन का कारण भी बन सकती है।

गणेश जी का वाहन चूहा भी सांकेतिक है। दरअसल, चूहा उन विकारों को आसानी से कुतर देता है जो आध्यात्मिक प्रगति के पथ में बाधा बनकर आते हैं। गणेशसुभाषितानि में गणपति का आवाह्न किया गया है- हे विघ्न-विनाशक, बुद्धिदायक हमारे मार्ग में आनेवाले सभी अवरोधों को दूर कर हमें ज्ञान के आलोक से आलोकित करो, ज्ञान की अग्नि से हमारे समस्त प्रकार के बंधनों, अंधविश्वासों और विकर्मों को तिरोहित कर दो।

विचारक के उद्‌गार

किताबें करती हैं बातें, बीते जमाने की आज की, कल की, एक-एक पल की, खुशियों की, गमों की, फूलों की, बमों की, जीत की, हार की, प्यार की, मार की, किताबें कुछ कहना चाहती हैं, तुम्हारे पास रहना चाहती हैं।

हर व्यक्ति में एक लेखक छिपा रहता है। लेखक की सबसे बड़ी खुशी अज्ञात चीजों की खोज है। किताब लिखना एक बहुत बड़ी जवाबदारी का काम है। आप अपने जीवन के कई वर्ष उसपर खर्च करते हैं फिर भी यकीन नहीं आता कि उसका आंकलन कैसा होगा। हर लेखक का नजरिया व रवैया अलग होता है। मेरे अध्ययन ने मुझे सबसे अधिक प्रेरित किया किताबें लिखने के लिये। अध्ययन हमें आनंद प्रदान करता है, अलंकृत करता है और योग्यता प्रदान करता है।

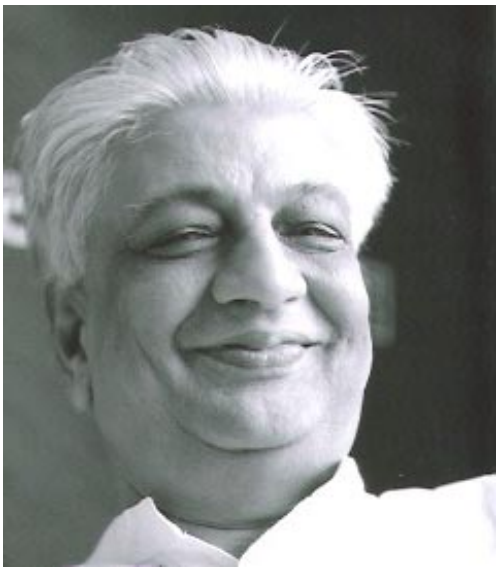

कोई अज्ञात शक्ति आत्मप्रकाश का कोई पथ न पाकर मुझे लेखन के क्षेत्र में खींच लायी। लेखन के लक्ष्य स्थान तक पहुंचने के लिए मेरे पास कोई मानचित्र नहीं था इसलिए जो भी दिमाग में आया, जैसा भी मैंने अध्ययन किया उसीको प्रश्रय दे डाला। परिणामस्वरूप कभी कहानी, कभी अध्यात्म ग्रंथों की रचना, कभी महामानवों की जीवनगाथा लिखने का अवसर मिला। मेरी अव्यवस्थित प्रकृति के कारण मैं अपने सुयोग्य पाठकों व प्रियजनों की प्रत्याशा को पूरी नहीं कर पाया। लेखक के मन के रस में डूबकर पत्थर भी खजूर की तरह नरम हो जाते हैं पर मुझसे जो बना मैंने अध्यात्म पर लिख दिया। मेरे सारे अनुभव कल्पना और साहित्य के जरिए ही हासिल हुए है। स्मृति सरल और विशुद्ध जाल है जो बदलती रहती है। वर्तमान स्थिति में इसे पुर्नव्यवस्थित किया जा सकता है। हर लेखक की अपनी सोच और लिखने का तरीका अलग होता है, पर मकसद यही है कि यह पाठकों तक अपने संदेश सही प्रकार से पहुंचे। लोगों की प्राचीन लेखन प्रणाली बुनियादी तौर पर ऐतिहासिक थी। इस लेखन प्रणाली में शासकों के जीवन तथा घटनाओं का विवरण मिलता था। लेखक का काम कठोरता और वचनबद्धता के साथ उन चीजों के पक्ष में लिखना है जिसपर वे यकीन करते है। यह लेखक के नैतिक दायित्व का हिस्सा निभाना पड़ता है और सामाजिक तर्कों में हिस्सा लेना भी लेखक की जिम्मेदारी बन जाती है।

अच्छी रचनाएं मुझे सदैव उत्साहित करती रही और जीवन को समृद्ध और जीने लायक बनाती रही। एक लेखक का जीवन बेहद कमजोर और संवेदनशील होता है पर लेखकों ने इसे स्वयं अपना रास्ता चुना है और इसपर स्थिर रहे है। लेखक हर तरह की चीज पर अपनी बात रख सकता है। कुछ भी लिख डालना लेखक का काम नहीं है। रचनात्मक विषयों पर ही लिखा जाए तो अच्छा है इसका कोई छोटा रास्ता नहीं होता। अच्छा लिखने के लिए अच्छा इंसान होना बेहतर है। अच्छे विचारों से ही अच्छा लेखन संभव है। हमें और जैसों की नकल करने के बजाए अपनी संस्कृति का

अनुभव कर उसका अनुसरण करना चाहिए। लेखन ध्यान की तरह मस्तिष्क को स्थिरता प्रदान करता है। तनाव कम करता है। मुझे सार्थक लिखने की ही खुशी होती है। लेखकों को सिर्फ लेखन तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। हर लेखक जानता है कि लेखक की क्षमता कुछ-कुछ रेषात्मक होती है। जब भावनाओं का प्रवाह बहने लगता है तो लेखक आसानी से एक से दूसरी वास्तविकता की ओर बढ़ने लगता है। मेरे लेखन में दर्शन के तत्व हैं। मुझे मानवीय जीवन के जिस दृष्टिकोण में रुचि है उनकी जड़े गंभीर, दार्शनिक मामलों में निहित है और मेरा सरोकार वास्तविक दार्शनिक खोजों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के लोगों से होता है। कल्पना से भी पार ले जाती है किताबें।

आज के लेखन पर चिंतन की जरूरत है। साहित्य वो हैं जो गंगा की तरह सबका कल्याण करता है। समाज के निर्माण में, राष्ट्र के निर्माण में और जीवन मूल्यों के जागरण का काम करता है। साहित्य समाज का दर्पण है। लेखन वो जो पाठकों को सोचने पर मजबूर करें। किताबें, माता, पिता, गुरु और मित्र सबसे अधिक सीखानेवाली होती है। यह पाठकों के लिए मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि लोगों को शिक्षित और जागरूक बनाती है। पाठक की मानवीय चेतना का विस्तार लेखन में होना जरूरी है। मानवता तो किताबें ही सिखाती है। किताब पढ़ने की प्रवृत्ति हर एक मनुष्य में जागृत होनी चाहिए।

अच्छा साहित्य विभिन्न लोगों के बीच पुल का काम करता है। साहित्य मनुष्य को बेहतर बनाता है। साहित्य के खारे समुंदर में कभी कभी ऐसा कुछ मीठा, मधुर, मदिर, रोचक और रसीला पढ़ने को मिल जाता है, जिसे एकबार पढ़ना शुरु करे तो बार बार पढ़ने का दिल करता है और हर बार यह लगता है कि दिल अभी भरा नहीं। अच्छा साहित्य पढ़ना खुशी का अनुभव है। वह हमारी मानवीय संपूर्णता और अपूर्णता में हमारे कार्य, हमारे सपने दूसरों के साथ हमारे रिश्ते आदि को समझने का अनुभव है। साहित्य वास्तविकता को बदल सकता है, जो सिर्फ एक परिष्कृत मनोरंजन ही नहीं है, बल्कि कार्य करने का तरीका भी है। साहित्य मानवीय विविधताओं के भीतर भाईचारा बनाता है और अज्ञान विचारधाराओं, धर्मों, भाषाओं और मूर्खता के कारण पुरुषों और महिलाओं के बीच बनी हुई दीवारों को तोड़ देता है। वही साहित्य महत्वपूर्ण है जो समाज की बेहतरी के लिए काम करता है। सौंदर्य के बिना साहित्य उल्लेखनीय नहीं हो सकता। मैं साहित्य को जीवन से अलग करके नहीं देखता।

जिस देश अथवा समाज का साहित्य स्वस्थ एवं जीवित होता है, वही देश या समाज जीवित, उचित प्रगतिशील माना जाता है। हजारों वर्ष बीत जानेपर भी भारत को इस बातका गर्व है कि उसका साहित्य सर्वाङ्गीण पुष्ट होनेके कारण ही उसका समाज स्वस्थतापूर्वक चिरजीवी बना हुआ है। अवश्य ही पराधीनताकी पिछली दो शताब्दियोंमें हमारी अपनी आत्मविस्मृतिने पर-प्रेरणासे पथभ्रान्त बना दिया है; जिस भारतसे प्रकाश पाकर विश्वकी संस्कृति अपने को उज्ज्वल देखनेको विवश बनती थी, उस भारतको स्वत:की आत्म-प्रवञ्चनाने अवश्य ही विपथगामिताका अनुयायी कर दिया है। जिससे प्रेरित हो किसी भी साहित्य अथवा समाज ने प्रगति साधना की है, उसका मूल कितना विशाल, कितना समुन्नत होना चाहिये, जो निरन्तर शताब्दियोंसे नहीं, सहस्राब्दियोंसे समान रूपसे अनेक उत्थान-पतनोंके आते-जाते रहनेपर भी जगको प्रगति और प्रकाश प्रदान करता आ रहा है।

किताब फूलों का ऐसा बाग है जिसे हाथों में रखा जा सकता है। ये ऐसी सैरगाह है जो इन्सान के साथ जहाँ वो चाहे जा सकती है। किताब मुर्दों की जबान और जिन्दों की आवाज है, वो शाम के वक्त आप से मिलनेवाला ऐसा दोस्त है, जो उस

वक्त तक नहीं सोता, जब तक आप खुद न सो जायें। ये दोस्त हमेशा वही बात करता है जिससे आपको खुशी होती है, कभी आप का राज फाश नहीं करता। वो बहुत ही वफादार पड़ोसी है। बात माननेवाला साथी है। वो माहिर चिकित्सक है, जो न कभी किसी मुकाबला में बहस करता है और न उकसाता है।

किताबें ही आदमी की सच्ची दोस्त होती है, लेकिन आजकल दोस्ती के रिश्तों में कमी आयी है। किताबों के प्रति लोगों की दिलचस्पी बनाये रखने के लिये बड़े शहरों में पुस्तक मेले और साहित्य उत्सव भी आयोजित किये जाते हैं, लेकिन ये कोशिशें भी बहुत सफल नहीं हो रही हैं।

एक किताब जितना वफादार दोस्त कोई और नहीं हो सकता। किताबों का साथ किसी भी समय हो सकता है। सदियों से लोग ज्ञान हासिल करते रहे हैं अपने दौर के महान लोगों के द्वारा लिखी गई किताबों से। किताबों का एक्सटर्नल मेकओवर होता रहा है समय-समय पर सॉफ्ट बाइंडिंग से लेकर हार्ड बाइंडिंग। कागज के पन्नों से लेकर ई-बुक तक न जाने किन-किन बदलावों की गवाह बनी ये किताबें, लेकिन अगर कुछ नहीं बदला तो वह है इनका सोल, इनकी इंटरनल वैल्यू।

सोना, चांदी, हीरे, मोती आदि जैसे महंगे से महंगे रत्न भी किताबों के आगे बेमोल है। इनका कोई मोल नहीं किताबों के तुलना में। जो ज्ञान आपको इन्हें पढ़ने से हासिल होता है वो अनमोल है। इनसे आपको जो विचार मिलते हैं वे हमेशा के लिये होते हैं, फिर चाहे आप हजारों, लाखों बार उन्हें इस्तेमाल क्यों न करें।

आपको एक बार ही निवेश करना होता है किताबें खरीदने के लिए और आप ताउम्र इनका फायदा उठाते हैं। ये न ही तो आपकी जीवन और आपके घर में ज्यादा जगह लेती हैं, न ही इन्हें ज्यादा देखभाल की जरूरत होती है और न ही इन्हें आपसे ध्यान की दरकार होती है।

अगर आप नियमित रूप से नहीं पढ़ते हैं तो आपको इसे शौक के तौर पर शुरू करना चाहिए। हर दिन एक किताब के कुछ पन्ने पढ़ने की धीरे-धीरे आदत डालें।

पढ़ने से आप आरामदायक महसूस करते हैं। इससे सही नींद आती है। वास्तव में इलेक्ट्रॉनिक्स की कृत्रिम लाइट आपके दिमाग को संकेत देती है कि अभी जागने का समय है इसलिए जब आपको सोना हो तो उससे एक घंटे पहले दूरदर्शन, सेल फोन या लैपटॉप से परहेज करें और एक किताब उठाकर करीब एक घंटे पढ़ें।

जब आप फिक्शन पढ़ते हैं तो आपका दिमाग कहानी के सभी कैरेक्टर, सारी घटनाओं और कहानी के प्लॉट को याद रखता है। यानी रोजाना पढ़ने का मतलब अपनी याददाश्त का अभ्यास कराना है वह अभ्यास से चीजें मजबूत होती हैं। इसलिए रोजाना पढ़ने से याददाश्त मजबूत होती है।

पढ़ने में दिमाग का अभ्यास होता है। पढ़ने के दौरान आपका दिमाग जितना उत्तेजित होता है, उतना दूरदर्शन देखने या रेडियो सुनते वक्त नहीं होता है और जाहिर सी बात है जब दिमाग का अभ्यास होगा तो दिमाग स्वस्थ भी रहेगा।

पढ़ने से आपके अंदर एक तरह की शांति और सुकून का भाव पैदा होता है। अध्ययन में यह बात सामने आई है कि आध्यात्मिक या धार्मिक पुस्तक पढ़ने से रक्तचाप कम होता है जिससे आप शांत रहते हैं। पढ़ने से आपके अंदर एकाग्रता बढ़ती है क्योंकि जब आप पढ़ रहे होते हैं तो आपका ध्यान एक ही तरफ केंद्रित होता है।

६० फीसदी प्रतिभागियों का मानना था कि पढ़ने से उनके जीवन में कुछ बेहतर करने के लिए प्रभाव पड़ा है। पढ़ने के दौरान आप कैरेक्टर की भावना को महसूस करते हैं। इससे आपके अंदर बड़ा बदलाव आता है।

पढ़ने से ज्ञान के साथ-साथ शब्द भंडार भी बढ़ता है। पढ़ने के दौरान आपके सामने कई शब्द आते हैं जो आपके दिमाग में बैठ जाते हैं और खुद से आपकी बोलचाल का हिस्सा बन जाते हैं। शब्दों का सही भंडार होने से अपनी बात स्पष्ट ढंग से रखने की कला आप में विकसित होती है जो आपके पेशे के लिए फायदेमंद होगी।

हर किसी के पेट में एक किताब होती है या फिर हर कोई एक किताब को जन्म देता है। आइसलैंड की आबादी तीन लाख से थोड़ी ज्यादा हैं लेकिन यहां दुनिया में सबसे ज्यादा लेखक हैं, सबसे ज्यादा किताबें छपती हैं और किताब पढ़ने की प्रति व्यक्ति दर भी सबसे ज्यादा है। राजधानी में आपको हर तरफ लेखक मिलेंगे। हर दस में से एक आइसलैंड निवासी की क्लिक करें किताब छपेगी। यहां तक कि यात्रियों को घुमाने वाले गाइड भी अपनी कविताएं सुनाते हैं और आपके टैक्सी ड्राइवर के पिता और दादा भी जीवनियां लिखते हैं। सार्वजनिक स्थलों पर बेंचों पर बारकोड हैं जिससे वहां बैठने पर आप अपने स्मार्टफोन पर कहानी सुन सकते हैं। आखिर यहां किताबों और लेखकों की इस असाधारण संख्या की वजह बढ़िया लेखक जो अनोखे किरदारों वाली दिलचस्प कहानियां सुनाते हैं। साथ ही आइसलैंड की प्राकृतिक सुंदरता, उसके ज्वालामुखी, परी कथाओं जैसी झीलें ये सब कहानियां के लिए सटीक पृष्ठभूमि हैं। इसलिए संयुक्त राष्ट्र के सांस्कृतिक संगठन यूनेस्को ने रेक्याविक को साहित्य का शहर घोषित किया है।

हर तरफ हर जगह बेशुमार आदमी फिर भी तनहाइयों का है शिकार आदमी, जिन्दगी का मुकद्दर सफर दर सफलर आखिरी सांस तक बेकरार आदमी।

सारी दुनिया में ही किताबों को सबसे अच्छा दस्तावेज माना जाता है। लेकिन किताबें कोई जड़ दस्तावेज नहीं होती। हमेशा ही वे समय के साथ बदलती रही हैं। एक जमाना वो भी था जब किताबें ताड़पत्रों या ताम्रपत्रों की होती थी। तब उनके आकार भी सीमित होते थे। प्राकृतिक कारणों से भी और तकनीक के कारण से भी। इसके बाद कागज का जमाना आ गया तो साइज के बंधन टूट गये। अब तो किसी भी साइज और मोटाई की किताबों छपना आसान हो गया है। पर ऐसा भी नहीं कि हर आकार की किताबें बाजार में आ गई हों। किताबों के आकार के कुछ मानक बन गये हैं। जैसे स्क्वॉयर, डिमाई, डाइजेस्ट वगैरह। अब हर जरूरत के लिए एक अलग आकार है। विश्वकोश के लिए अलग मानक था, शब्दकोश के लिए अलग तो कविता की किताब के लिये अलग। उस रामायण का आकार, जिसे हमारे घरों में बुजुर्ग पढ़ते थे और उस किताब का आकार जिससे आपने कक्षा आठ के गणित के सबक सीखे थे। दोनों के ही आकार अलग थे। हर आकार की किताब बनाना संभव था, लेकिन हर आकार की किताबें बाजार में नहीं आई। एक तो इसलिये कि इनका आकार बहुत कुछ छापने की मशीनों से तय होने लगा और बहुत कुछ इससे कि किस आकार की किताब छापना सस्ता पड़ेगा। यानी यह आकार तकनीक और अर्थशास्त्र से तय हो रहा था। कुछ हद तक यह बाजार की जरूरत से भी तय हुआ। जब काम और जरूरतों के लिहाज से लोगों का आवागमन बढ़ा, तो पॉकेट बुक्स का चलन बढ़ गया। यानी ऐसी किताबें जो आसानी से कोट की जेब में रखी जा सके। अब इक्कसवीं सदी में ये किताबें एक बार फिर अपना आकार बदल रही हैं।

हर तरह की तकनीकी सुविधाओं से लैस आधुनिक समाज में युवा पीढ़ी इंटरनेट के माध्यम से अध्ययन से लेकर अपना मनोरंजन तक करने लगी है। लेकिन इससे समाज का एक बड़ा नुकसान यह हुआ है कि नई पीढ़ी पुस्तकों के आम अध्ययन से विमुख हो रही है। यद्यपि इंटरनेट पर भी तमाम ज्ञानवर्द्धक और प्राचीन व आधुनिक समाज का आईना दिखानेवाली साहित्यिक सामग्रियां मौजूद हैं, लेकिन नई पीढ़ी के ज्यादातर नौजवान इनके प्रति बिल्कुल लापरवाह हैं, क्योंकि इंटरनेट और सोशल मीडिया पर उनके समक्ष ठीक वही चीजें परोसी जा रही हैं, जिनसे इस नवीन समाज का मनोरंजन होता हों। एक अच्छा लेखक अपने बहुमूल्य विचारों को निचोड़कर एक अच्छी किताब लिखता है और वह किताब बाजार या पुस्तकालयों के किसी कोने में उपेक्षित पड़ी रहती है, यानी इस इंटरनेट युग में अध्ययनहीनता की वजह से उत्कृष्ट पुस्तकों को भी हम हारते हुए देख रहे हैं।

दुनिया के सारे अनुभवी लोगों का मत है कि किताबों से अच्छा कोई मित्र या साथी नहीं होता। हर रोज हजारों नई किताबें तैयार होती है और जिस मकसद से किताबें तैयार होती है, लिखी जाती है, उसी कारण किताबों की संख्या भी बढ़ती जाती है। आज सारी दुनिया में जितनी किताबें है अगर उनका वजन किया जाए तो धरती के वजन से अधिक होगा।

मैं इंसान की धर्म संबंधी आस्था को दो तरह से देखता हूं। एक तो वह जो हम अपनी परंपराओं से अर्जित करते हैं और दूसरी वह जो हम विचारों से पाते हैं। इसके अलावा जो लोग दिन-रात इसकी खेती करने में लगे रहते हैं वे अपना समय अपव्यय करने के सिवाय और कुछ नहीं करते। मैं सूफी विचारों को महत्व देता हूं। मेरी आध्यात्मिकता का केंद्र सूफीवाद है। अध्यात्म को लेकर संसार में जो विचार हैं उन सब पर सूफी विचारों की छाया है। कबीर और बुल्लेशाह सूफी विचारों के संत थे। मिर्जा गालिब की शायरी का मिजाज भी सूफियाना है। मीरा और सूरदास ईश्वर के पक्के भक्त थे पर सूफी नहीं थे। यदि कोई मुझसे पूछे कि इतिहास में दो महान आध्यात्मिक व्यक्ति कौन थे तो मेरा जवाब होगा- एक तो गुरुनानक और दूसरे मुनि तरुणसागर। मैं भगवान पर विश्वास करता हूं, जो भगवान बने हुए हैं उन पर नहीं। भगवान के न्याय पर भी मेरी आस्था है, पर मेरे लिए यह व्यावहारिक चीज है। जो जैसा करेगा, वैसा पाएगा। यदि मैं अच्छा हूं तो मेरे लिए दुनिया अच्छी है। यदि ऐसा नहीं है तो मुझे अच्छे की उम्मीद भी नहीं करनी चाहिए। मैं कर्मकांडों पर अधिक विश्वास नहीं करता। दरअसल, धर्म के नाम पर लोग भगवान का शोषण कर रहे हैं। इंसान के ऊपर जब कोई मुसीबत आती है तो वह भगवान को पुकारने लगता है। वैसे तो वह याद आता नहीं। इसलिए मनुष्य को अपने अंदर झांक कर देखना चाहिए। हर आदमी के अंदर भगवान मौजूद है। जब मैं गाता हूं तब उस परमपिता की दिव्यता के दर्शन होते हैं। मगर जैसे ही गाना शुरू करता हूं- अपने आप में खो जाता हूं। मैं अंधविश्वास का विरोधी हूं। प्रेरित आत्मानुशासन ही वास्तविक अनुशासन है।

महाभारत के अश्वमेध पर्व में वर्णन मिलता है कि युद्ध की समाप्ति के बाद एक दिन अर्जुन ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया, हे योगेश्वर युद्ध के आरंभ में आपने गीता का जो उपदेश दिया था, वह मेरी स्मृति से विस्मृत हो गया है। एक बार पुन: उसे बतलाइए। परमपुरुष ने अर्जुन को समझाते हुए कहा, हे अर्जुन, अब मेरे मुख से वैसी दिव्यवाणी प्रकट होना संभव नहीं है।

योगेश्वर कृष्ण सोलह कलाओं से परिपूर्ण थे। उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं था। उनका यह कथन गीता के आध्यात्मिक महत्व को प्रकट करता है। वस्तुत: गीता ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग की तीन आध्यात्मिक धाराओं के

संगम से उद्घाटित जीवन दर्शन है। इसका सारतत्व किसी धर्मविशेष की व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि संयश और विषाद में फंसे हुए व्यक्ति को कर्त्तव्यबोध कराकर स्थितप्रज्ञ होने में मदद करता है। गीता सार व्यक्ति को सकाम से निष्काम भाव में लीन होकर कर्म करने की प्रेरणा देता और समस्त प्रकार के बंधनों से मुक्ति दिलाता है।

गीता के बारंबार पारायण से आत्मज्ञान का मार्ग मिलने लगता है। आत्मज्ञानी मनुष्य की बुद्धिमत्ता सदैव संशयात्मक स्थिति से पृथक रहती है। आत्मज्ञान व श्रद्धा एक दूसरे के पूरक भी हैं। गीता में कहा गया है- श्रद्धावान लभते ज्ञानम्- अर्थात जिसके अंत:करण में श्रद्धा है, उसको आत्मज्ञान सहज संभाव्य है। आत्मज्ञानी मनुष्य दूसरों की अपेक्षा ज्यादा खुश रहता है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा व विश्वास रखनेवाले लोगों में प्रसन्नता का स्तर गैर आध्यात्मिक लोगों से ज्यादा होता है। परमात्मा में आस्था रखनेवाले लोग, भले ही नियमित रूप से पूजा-पाठ न करते हों, अपने दैनिक जीवन में आनेवाली तकलीफों से बेहतर ढंग से निपटने की क्षमता विकसित कर लेते हैं। गीता में कृष्ण ने कहा है- जिसने मेरी प्रकृति को जान लिया और पुरुष को जान लिया उसने मुझे प्राप्त कर लिया। समस्त योनियों का गर्भधारण करनेवाली प्रकृति सबकी माता है और मैं प्रकृति में गर्भाधारण करनेवाला पिता हूं। जिसे प्रकृति का सौंदर्यबोध हो गया और प्रकृति की विभिषिका का ज्ञान हो गया उसी सत्र को अध्यात्म कहते है। यह प्रकृति सूर्य, चंद्रमा, पर्वत, नदी, सागर, नक्षत्र, आकाश इत्यादि से ही मिलकर यह संसार बना है। जिसका स्वरूप अत्यंत शोभनीय व सुंदर है और यही उस परमपुरुष का मूर्त स्वरूप है जो हर समय इस संसार में विद्यमान रहता है। भागवत के दूसरे और तीसरे अध्याय में परमात्मा के विराट स्वरूप की उत्पत्ति इत्यादि का वर्णन है। आप स्वयं एक महज संयोग हैं जो दो के योग से आपका जन्म होता है। आपका अंत होना निश्चित है लेकिन प्रकृति का न कोई आदि है और न कोई अंत है। पुरुष का भी न कोई आदि है और न अंत है लेकिन संसार का आदि और अंत है।

कितना सुंदर है यह विश्व हमारा और कितना महान होगा वह जिसने इस की रचना की है। इतने सुंदर विश्व की कल्पना कर उस कल्पना को साकार करना कितना कठिन कार्य रहा होगा इस बात की कल्पना करना भी मानव की कल्पना शक्तिसे परे है। इतना ही नही इस विश्व को सुंदर बनाने के लिए उसने अपनी ओरसे अपनी कल्पनानुसार कई सुंदर रचनाये भी की है। इनमें सजीव-निर्जीव यह और भी कई और चीजों का निर्माण भी है जिनके द्वारा ईश्वर ने इस वीरान धरती को एक गुलिस्ता में बदल दिया उसके द्वारा निर्मित इस धरा पर धरी हर चीज-हरजीव अपने आपमें एक महान उपलब्धि है। निर्माता की एक बेजोड़ कलाकृति है। फिर भी यह बात शत प्रतिशत सच है कि आज मानव इन सबमें श्रेष्ठ है, सबसे बढकर है और यह भी सच है की उसको बनाकर ईश्वर ने सबसे बडी भूल की है। मानव उसी विश्व-निर्माता की एक कलाकृति है, एक देन है किंतु विश्व और मानव निर्माण के साथ-साथ इस विश्व की लम्बी उम्र हेतु उसने इस धराके साथ व हर एक जीव का नाता दूसरे जीव के साथ कुछ इस तरह से जोडकर बनाया है यह नाते ऋतु चक्र के समान हो गए है। इनका स्वयं का जितना महत्व उतना ही महत्व और जिम्मेदारी दूसरे के अस्तित्व का है और सभी का अस्तित्व एक दूसरे के अस्तित्व पर निर्भर करता है।

इनसे एक भी जीव दूसरे जीव के लिए खतरा बनता है तो खतरा बननेवाले का स्वयं का अस्तित्व भी खतरे में पड जाता है। ईश याने ईश्वर की हर एक कल्पना न सिर्फ सुंदर है। बल्कि एक से बढकर एक है। उसने सोचा होगा की, इतने

बडे विश्व को चलाने में सारा समय व्यतीत करने के बजाय क्यों न यहाँ किसी को प्रमुख बना दिया जाये और ऐसा ही कुछ सोचकर उसने इस काम हेतु मानव जाति का चयन किया होगा। उसने मानव को सबसे अधिक बुद्धि दी। इसी वरदान के बदौलत मानवने सबसे प्रथम संभाषण कला हासिल करी। इस कला के जरिए अपने विचार, अपनी भावनाओंसे दूसरों को सहज अवगत कराने लगा। शिक्षा के माध्यम से नित नये खोज कर उसने अपने आप को प्रगति के परम शिखर पर पहुंचाया। विश्व निर्माता की धरती दिन-प्रतिदिन नया श्रृंगार कर नये रुप में विकसित होने लगी। मानव मन के भीतर धीरे-धीरे अहंकार और स्वार्थ पनपने लगा। विश्व का यह प्रति निर्माता भौतिक सुख की खोज में स्वार्थ और अहंकार रुपी रावण बन गया । वह इस धरा को मात्र अपनी मिल्कियत समझने लगा। यही से मानवता का पतन भी शुरु हो गया। और आज तो समूचे विश्व का अस्तित्व ही खतरे में पडा दिखलाई दे रहा है। कुछ भी, कभी भी और कही भी ऐसा हो सकता है जिससे न मात्र अकेली मानव जाति बल्कि समूचे विश्व का अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है।

हमारे समाज में जगह-जगह पर भागवत कथाएं सुनायी जाती है, भागवत लीलाएं की जाती है पर आज का आदमी उससे कोई शिक्षा न लेकर उन लीलाओं में नृत्य, संगीत का आनन्द लेते हैं और अपने मनोरंजन का साधन बनाते है। मैंने अपने दर्शनज्ञान, तत्वज्ञान, ज्ञानदर्शन, अध्यात्म, तर्कशास्त्र, विज्ञान से अध्ययन कर इन सबका समन्वय कर भागवत का सही अर्थ निकालकर भागवत के उन सब विषयों का गूढ़ अर्थ आप लोगों के सामने सरल भाषा में जानकारी दी है। वेदों से पुराणों से जो कि एक साधारण आदमी के समझ में नहीं आ सकती उनको सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया है। यह सभी भागवत के विषय है जो भागवत के हर अध्याय में से शिक्षाएं मिलती है। रामायण आपको मर्यादाओं में रहना सीखाती है, श्रीमद् भगवदगीता जीवन में कर्म करना सीखाती है जबकि भागवत आपको मृत्यु को महोत्सव मनाना सीखाती है, जीना सीखाती है और मरना सीखाती है। हर व्यक्ति को अपनी श्रद्धा और विश्वास के इस भागवत तत्व को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और दकनीसूनिया विचारों को हृदय से निकालना चाहिए। यही भगवान का परोक्ष-अपरोक्ष स्वरूप है।

कुछ लोगों को पढ़ना अच्छा लगता है, तो कभी-कभी कुछ लोगों को केवल सुनना अच्छा लगता है। कुछ लोगों को मिलना अच्छा लगता है, वह भी कुछ समय के लिए और मनोरंजन के लिए, अपना मतलब साधने के लिए। ऐसा व्यक्ति जो बोलता है तो मुस्कान घुली मीठी बोली हल्की फुहार सी तन को रोमांचित कर जाती है। जिनका मार्गदर्शन मन को हताहत या परास्त नहीं करता है, बल्कि राह पर उत्साहित, सशक्त कदमों से दौड़ता मंजिल तक पहुँचने की खुशी देता है और सफलता की विजयमाला पहनाने सामने उपस्थित रहता है।

यह ग्रंथ मैंने अपनी धर्ममाता सुमित्रादेवी सराफ और हमारे विश्वस्त श्री ओमप्रकाश अग्रवाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमलता अग्रवाल की पुण्यस्मृति में समर्पित किया है।

**** चुनावों की जंग में सिकन्दर जीता नहीं और पौरस हारा नहीं,***
पर जनता तो वो घोड़ी है जिसकी किस्मत हर समय कोई न कोई दुल्हे को ढोती है।

माता-पिता

जिनके मां-बाप से रिश्ते अच्छे होते है, उनका कल और आज दोनों भी अच्छे होते हैं।
माँ बच्चों की जां होती है, वे होते हैं किस्मतवाले जिनके माँ होती हैं।
अगर दुनिया में माँ न होती तो, तुम और हम कहाँ होते? या तो किसी की दया तले या किसी यतीम खाने में।

मां ठंडी छांव-बाप घना पेड़, मां के पैरों तले जन्नत-बाप जन्नत का दरवाजा। मां के बिना घर सूना-सूना बाप के बिना जिंदगी वीरान। मां मुहब्बत का दरिया-बाप करुणा का समंदर। मां औलाद की दोस्त-बाप खुदा की रहमत। मां मेरा फख्र (गर्व)- बाप मेरा गुरुर।

माता-पिता हमें जन्म देते हैं और हमारा पालन-पोषण करते हैं। अत: हमें भी उनका आदर-सम्मान और सेवा करनी चाहिए, लेकिन इस सबसे हम पितृऋण तथा मातृऋण से पूरी तरह से उऋण नहीं हो सकते। पितृऋण तथा मातृऋण से उऋण होने का एक ही उपाय है और वह है अपने माता-पिता के समान ही हम भी अपनी संतानों का सही पालन-पोषण करें और उन्हें हर प्रकार से योग्य बनाएं। ऐसे में वृद्ध माता-पिता की सेवा कैसे होगी? इसके लिए भी बच्चों का संतुलित व सर्वांगीण विकास अनिवार्य है।

माता-पिता एवं बच्चों के मध्य जितने स्वस्थ संबंध होंगे बच्चे का उतना ही अधिक संतुलित व सर्वांगीण विकास संभव हो सकेगा। इसीसे वे समाज के उपयोगी अंग बन सकेंगे। सिर्फ स्वयं का विकास ही नहीं, समाज के विकास में भी पर्याप्त योगदान दे सकेंगे। पारिवारिक मूल्यों की रक्षा कर सकेंगे। बच्चों को जब सही शिक्षा दी जाती है तो वे स्वयं ही अपने दादा-दादी की देखभाल और सेवा करने में रुचि लेते हैं। अपने बच्चों को घर के बड़े-बुजुर्गों का सम्मान व सेवा करने की ऐसी शिक्षा देकर हम सही अर्थों में पितृऋण से उऋण हो सकते हैं।

लिंकन का वह पत्र तो पढ़ा होगा जो उन्होंने अपने बच्चे के शिक्षक को लिखा था। उस पत्र में उन्होंने शिक्षक को बहुत सारे सुझाव या उपदेश दिए थे। यानी उनका बच्चा ऐसा नहीं वैसा बने, ये नहीं वो करे। किसी भी पिता या मां के मन में अपने बच्चे को बेहतर से बेहतर मनुष्य बनाने की इच्छा स्वाभाविक है। बच्चों का अधिकांश समय माता-पिता अपने स्वयं के आदर्श और व्यवहार द्वारा बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित कर सकते हैं। बच्चों को सही रूप में संस्कारित करना है तो पहले स्वयं सुसंस्कृत होना चाहिए और बच्चों के समक्ष वह आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। बच्चे हमारे शाब्दिक उपदेश को नहीं, हमारे व्यवहार को आचरण में ढालता है। हम घर में अथवा घर से बाहर जैसा व्यवहार करेंगे बच्चा उसी की नकल करेगा। बच्चों के समक्ष सही आचरण का प्रदर्शन करके ही हम उन्हें उचित प्रकार से शिक्षित कर सकते हैं। अपने बच्चों में कर्त्तव्य का बोध करवाकर हम सही अर्थों में पितृऋण से उऋण हो सकते हैं।

अणु परमाणुओं को संघटित करके अनगिनत नक्षत्रों लोक-लोकान्तरों, देव-मनुज तथा कोटि-कोटि जीव-प्रजातियों को माँ ने ही जन्म दिया है। माँ के अन्दर प्रेम की पराकाष्ठा है या यूँ कहें कि माँ ही प्रेम की पराकाष्ठा है। प्रेम की यह चरमता केवल मानव माताओं में ही नहीं, वरन् सभी मादा जीवों में देखने को मिलती हैं। अपने बच्चों के लिये भोजन न मिलने पर हवासिल (पेलिकन) नाम की जल-पक्षिणी अपना पेट चीरकर अपने बच्चों को अपना रक्त-मांस खिला पिला देती है। माँ को उसका दैवी सम्मान दिलाना वर्तमान युग की सबसे बड़ी आवश्यकताओं में से एक है।

माँ प्राण है, माँ शक्ति है, माँ ऊर्जा है, माँ प्रेम, करुणा और ममता का पर्याय है। माँ केवल जन्मदात्री ही नहीं जीवन निर्मात्री भी है। माँ धरती पर जीवन के विकास का आधार है। माँ ने ही अपने हाथों से इस दुनिया का ताना-बाना बुना है। सभ्यता के विकास क्रम में आदिमकाल से लेकर आधुनिककाल तक इंसानों के आकार-प्रकार में, रहन-सहन में, सोच-विचार, मस्तिष्क में लगातार बदलाव हुए। लेकिन मातृत्व के भाव में बदलाव नहीं आया। उस आदिमयुग में भी माँ, माँ ही थी। तब भी वह अपने बच्चों को जन्म देकर उनका पालन पोषण करती थीं। उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा करना सिखाती थी। आज के इस आधुनिक युग में भी माँ वैसी ही है। माँ नहीं बदली।

माँ को धरती पर विधाता की प्रतिनिधि कहा जाय तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। सच तो यह है कि माँ विधाता से कहीं कम नहीं है। क्योंकि माँ ने ही इस दुनिया को सिरजा और पाला-पोसा है। कण-कण में व्याप्त परमात्मा किसी को नजर आये न आये माँ हर किसी को हर जगह नजर आती है। कहीं अण्डे सेती, तो कहीं अपने शावक को, छोने को, बछड़े को, बच्चे को दुलारती हुई नजर आती है। माँ एक भाव है मातृत्व का, प्रेम और वात्सल्य का, त्याग का और यही भाव उसे विधाता बनाता है।

माँ विधाता की रची इस दुनिया को फिर से, अपने ढंग से रचनेवाली विधाता है। माँ सपने बुनती है और यह दुनिया उसी के सपनों को जीती है और भोगती है। माँ जीना सिखाती है। पहली किलकारी से लेकर आखिरी सांस तक माँ अपनी संतान का साथ नहीं छोड़ती। माँ पास रहे या न रहे माँ का प्यार दुलार, माँ के दिये संस्कार जीवन भर साथ रहते हैं। माँ ही अपनी संतानों के भविष्य का निर्माण करती हैं। इसीलिये माँ को प्रथम गुरु कहा गया है।

प्रथम गुरु के रूप में अपनी संतानों के भविष्य निर्माण में माँ की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। माँ कभी लोरियों में, कभी झिड़कियों में, कभी प्यार से तो कभी दुलार से बालमन में भावी जीवन के बीज बोती है। इसलिये यह आवश्यक है कि मातृत्व के भाव पर नारी मन के किसी दूसरे भाव का असर न आये।

माँ वह निधि है जो हर एक के पास होती है। यह अद्‌भुत रिश्ता हमारे जन्म से भी पहले जन्म लेता है, हमारे पैदा होने के नौ माह पहले। बच्चे के जन्म पर दाई उसकी नाभि-नाल काट कर उसे माँ से विलग तो करती हैं पर माँ की रक्तमज्जा पर पला बढ़ा शिशु वास्तविक अर्थों में कभी माँ से कटता नहीं। समय और समझदारी के साथ यह रिश्ता और भी सघन होता जाता है। कभी किसी कारण बच्चे का पिता लापता, गुमनाम हो सकता है, माँ लापता नहीं होती। उसका नाम जीवन भर शिशु के अस्तित्व पर अंकित, टंकित रहता है।

प्रेमचन्द ने समय-समय पर अपनी कहानियों में माँ की ममता के विलक्षण चित्र उकेरे हैं। उनकी कहानियों में माँ की महानता, करुणा, दीनता, विवशता और उत्सर्ग भावना का प्रगाढ़ परिचय मिलता है।

हर व्यक्ति के जीवन में माँ की एक नितांत निजी छवि होती है। यह मानस चित्र वह अपनी माँ का जीवन संघर्ष देखकर तय करता है। मूलभूत तथ्य है कि स्त्री का जीवन चाहे जितना दुष्कर व दुर्निवार हो, उसकी सारी कोशिश यह होती है कि उसकी सन्तान सुरक्षित रहे भले ही इसके लिये उसे अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पड़े। माँ जिन्होंने जिन्दगी भर अपने लिए न कभी कुछ चाहा न कभी कुछ माँगा।

प्राचीन-काल से ही भारत वर्ष में स्त्री के मातृत्व भाव का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। स्त्री का यह स्वरूप असीम त्याग, सेवाभाव, अनुकम्पा, अपार श्रद्धा, सहनशीलता से परिपूर्ण है। भारतीय संदर्भ में स्त्री पहले माँ है बाद में पत्नी। भारतवर्ष में स्त्री का ममतामयी रूप ही पूजनीय है जबकि पाश्चात्य देशों में स्त्री पहले प्रेयसी व पत्नी है बाद में माँ। माँ के रूप में वह

पूजित नहीं है। पत्नी और प्रेयसी के रूप में भोग्या। पहले है जिसे पुरुष को आकर्षित करने के लिए अपने शरीर पर अत्याचार कर उसे सजाना-संवारना पड़ता है। प्रेयसी भावना में स्वच्छंद प्रेम की भावना अन्तर्निहित रहती है उसमें एक प्रकार से जीवन की एक अतृप्त वासना की अभिव्यक्ति होती है। इसके विपरीत पत्नी एक संस्कारबद्ध रूप है जिसके पगों में कर्त्तव्य की पुकार का उत्तर है। उसके जीवन की वह वृत्ति है जो मातृत्व का चरम मार्ग है।

मातृत्व की भावना स्त्री में शैशवकाल से ही देखी जाती है। हर छोटी बच्ची में एक ममतामयी माँ का सूक्ष्म रूप रहता है। इसलिये ही बच्चियाँ गुड्डे-गुड्डियों के खेल में माँ-बाप बनकर गुड्डियों का ब्याह रचाती हैं। घर में खाना बनाती हैं, घर का काम संभालती हैं। अर्थात् मातृत्व की भावना बच्चियों में छुटपन में ही विद्यमान होती है। यही भावना उसकी यौवनावस्था में माँ बनकर प्रबल होती है। शास्त्रों में ऐसा माना गया है कि कोई भी स्त्री माँ बने बिना पूरी तरह तृप्त नहीं होती।

आज इस आधुनिक युग में जहाँ सम्बन्ध शिथिल हो रहे हैं, माता-पिता संतानों के लिए भार स्वरूप हो रहे हैं। सभी रिश्तों की मान्यताएँ बदल रही हैं इन सबका कारण पश्चिमी संस्कृति का भयानक हस्तक्षेप है। आज का हर एक भारतीय इंसान पाश्चात्य संस्कृति के गिरफ्त में है। पाश्चात्य संस्कृति में माता-पिता को एक उम्र के बाद वृद्ध सदनों में छोड़ दिया जाता है। यही स्थिति आज भारतवर्ष में भी देखी जा रही है। आज का आम भारतीय पाश्चात्य संस्कार के मक्कड़जाल में बुरी तरह फँस गया है। परिणामस्वरूप हमारे संस्कार, मान्यताएँ दूषित होकर समाप्त हो रही हैं। सम्बन्धों का अस्थायित्व आम भारतीय परिवारों में देखा जा रहा है। समर्पण की भावना कहीं नहीं है। स्त्री जीवन का आधार उसके जननी रूप में है। इसलिये ही कहा गया है कि जननी जन्म भूमिश्चस्वर्गादपि गरियसी अर्थात् माता मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड की सूत्रधारिणी माता ही है, इसलिये ही हम धरणी, भूमि, देवी आदि नामों से पृथ्वी को सम्बोधित करते हैं।

माँ के प्रति स्नेह, समर्पण, गौरव की बातें साहित्य की प्रमुख अन्तर्धारा बन चुकी है। विशेषकर कुछ श्रेष्ठ कहानीकारों की रचनाओं में माँ का स्नेह, वात्सल्य भाव त्याग की भावना विस्तार से चित्रित है इसलिये ही कुरान जैसे ग्रंथों में कहा गया है कि संसार का स्वर्ग माँ के चरणों में है। माँ के इस विराट स्वरूप को मलयालम की श्रेष्ठ लेखिका कमला सुरैया ने रूपायित किया है। उनकी कहानियाँ जीवन की सच्चाइयों से जुड़ी हुई हैं। उनका सौंदर्यबोध सृजन सब यथार्थबोध से निर्मित नियंत्रित है। उनका दृष्टिकोण मध्यवर्गीय नैतिकबोध से स्वतंत्र है।

माँ बनना हर स्त्री के लिए सौभाग्य का क्षण होता है और यह वरदान सिर्फ स्त्री को ही प्राप्त है। माँ बनने की उस प्रक्रिया में स्त्री के जीवन में बहुत सारे बदलाव नजर आते हैं। यह बदलाव ही माँ बनने की उस अवस्था की पहचान है।

माँ बननेवाली उस स्त्री की हर इच्छाओं की पूर्ति करने की कोशिश घर की माँ, दादी, नानी आदि करती हैं। यह एक सार्वकालिक सत्य है। माँ का स्वरूप बहुत ही विराट होता है। सबको यह भाग्य नहीं होता। एक पूर्ण गर्भवती स्त्री को देखने पर एक देवी माँ का रूप उभरता है क्योंकि वह सृष्टिकर्ती है।

अधिकांश प्राणियों के मन में प्रकृति माता ने एक मूलभूत नैसर्गिक वृत्ति अंकित कर दी है जो जीवों के माता-पिता को अपनी संतति की रक्षा के लिए अनगिनत कष्ट सहने और कभी-कभी तो अपने प्राणों की बलि देने को बाध्य करती हैं।

शास्त्र कहते हैं कि व्यक्ति जैसा बोता है वैसा ही काटता है। कुछ अपवाद सरीखी मातृप्रधान सभ्यताओं को छोड़कर मानव जाति सदा पुरुष प्रधान रही है।

माँ हिमालय की तरह ऊँची है, पर हिमालय की तरह कठोर नहीं।

माँ सागर की तरह गहरी है, पर सागर की तरह खारी नहीं।
माँ वायु की तरह गतिशील है, पर वायु की तरह अदृश्य नहीं।
माँ परमेश्वर की तरह महान है, पर परमेश्वर की तरह दुर्लभ नहीं।
माँ की कोई उपमा नहीं हो सकती, क्योंकि माँ कभी उप... माँ नहीं होती।
माँ स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महादेव है। ब्रह्मा जन्म देते हैं, विष्णु पालन करते हैं और महादेव उद्धार करते हैं।
जो तीनों देवों का दायित्व अकेली पूरा करती है, धरती पर वही माँ कहलाती है।
मां का म महादेव, महावीर और मोहम्मत साहब की महानता लिये है और
माँ का अ आदि ब्रह्मा, आदिनाथ और अल्लाह को अपने आँचल में समेटे है।
आप माँ की वंदना कीजिए, सृष्टि के सभी देवों की वंदना अपने आप हो जाएगी।
चाहे कोई अवतार हो या पैगम्बर, सम्राट हो या सिकन्दर,
दुनिया में ऐसा कौन होगा, जो माँ के दूध का कर्जदार न बना होगा।
माँ यानी प्रेम का सागर, ममता की गागर। छाया बरगद की तरह, लुटाया बादल की तरह।
यदि आपने कल्पवृक्ष और कामधेनु को न देखा हो तो एक बार माँ की छाँव तले खड़े होकर देखें,
आप साक्षात कल्पवृक्ष और कामधेनु को अपने सामने पाएँगे।
आपके घर-आँगन की रंगोली है, सूर्य को दिया जानेवाला अर्घ्य है, धैर्य और शान्ति रखनेवाली चन्द्रमा है।
माँ ममता का वह मंगल कलश है, जिससे बहने वाली प्रेम और संस्कारों की
रसधार ने हमारा भरपूर पोषण और पल्लवन किया है।
दुनिया में माँ की कीमत क्या होती है, यह उससे पूछिए जिसकी दुनिया में माँ नहीं है।
माँ तुम हमारी खुदा भी हो और खिदमत भी। तुम हमारी ईश्वर भी हो और इबादत भी।
तुम हो, तो हम हैं। तुम्हारे बिना खुदा भी हमसे रूखसत है।
माँ बच्चों के लिए रोज करती है व्रत, दुआ और पूजा। माँ के आशीर्वाद से बड़ा नहीं है कोई कवच दूजा।।
माँ के कदमों में जन्नत है। उसके आँचल में ईश्वर का आशीर्वाद है।
उसके होठों में गुलाबी सुख है और हाथों में जादुई स्पर्श।
माँ की गोद स्वर्ग की वह सेज है, जिसमें बच्चे को संसार की सबसे अच्छी नींद आती है।
माँ जब हमारे पास रहती है तो अपने प्रेम का खजाना हम पर लुटाती है और
जब दूर होती है तो अपनी दुआओं की दौलत से हमें धन्य करती हैं।

माँ का इससे बड़ा हम पर क्या अहसान हो सकता है कि उसने इस गर्भपात के युग में भी हमें जन्म दिया, पाला-पोसा, बड़ा किया। सचमुच माँ महान हैं।

किसी देश की सरकार को चलाना आसान है, पर अपनी सन्तान को श्रेष्ठ संस्कार और शिक्षा देकर बेहतर इन्सान बनाना कठिन है। माँ ने यह काम बखूबी निभाया है।

दुनिया में जितने खास लोग हुए है उनके बचपन के अध्ययन से मालूम पड़ता है कि उनका व्यक्तित्व और भविष्य बनाने

में माँ ही उसे सूरज की तरह रोशन करती है। माताओं ने ही उस समय अत्यंत संघर्ष कर उस लायक बनाया है। माँ की शिक्षा से बच्चे की शोहरत में आसमान के चांद सितारे और सूरज भी कम पड़ जाते है। माँ बच्चे को ईश्वर से प्रार्थना करना सिखाती है। आज इन्सानी नैतिकता इतनी गिर चुकी है लोग उस माँ की हस्ती को भी भूल गये जो उनके दुनिया में आने का जरिया बनी थी। दुनिया में तरह तरह के दिन मना कर उन सबको याद दिलाने की कोशिश की जाती है। आज की पीढ़ी उस विशेष दिन और उसकी अहमियत को याद रखती है फिर भूल जाती है। माँ वो हस्ती है जो स्वर्ग पाने का और नरक से बचने का जरिया है। दुनिया सिर्फ उसको मातृ दिवस के मौके पर ही याद करती है। माँ बाप को भुलाने की वजह से समाज में वृद्ध व बूढ़े माँ बाप की हालत बड़ी चिंताजनक बन गयी है। माँ का रिश्ता सिर्फ एक दिन का नहीं हो सकता। माँ के कदमों तले तो जन्नत है। अपनी माँ की तरफ रहमत और प्यार की नजर से देखना चाहिए। उसीकी मुहब्बत के कारण व्यक्ति कामयाब और खुश रहते है। अगर उसकी मुहब्बत न मिलती तो पता नहीं व्यक्ति कहां और किस हाल में होता। माँ-बाप की खिदमत, सेवा और अच्छा बर्ताव उन्हें बहुत अच्छा लगता है। माँ हमेशा माँ है हर वक्त भी माँ ही है। सभी दिन वह पूरी जिंदगी के हर पल में उनकी सेवा को अनिवार्य समझो। इस जमाने में माँ-बाप सर्वोपरि है पर औलाद को अपने खुद का रूत्बा ही पता नहीं। बच्चे तो माँ को ईश्वर की गाय समझते है। आजकल के बच्चे अपने घरों में जिस तरह माँ से जिद्द कर पेश आती है माँ के साथ डाँट डपट कर लेती है पर वे जब माँ बनती है तभी उनको मालूम पड़ता है कि माँ का महत्व क्या है। आजकल की बेटियाँ अपनी माँ पर शासक बनकर रखती है और माँ उनकी नौकरानी। सुबह उठकर माँ बेटी को स्कूल जाने के लिए तैयार करती है, पर बेटी को बनने संवरने के सिवाय फुर्सत ही नहीं और सारे दिन आइने के सामने से हठती नहीं। अगर माँ को नाश्ता बनाने में जरा देरी हो जाये तो बेटी मेजपर जोर से हाथ ठोकती है तो माँ को कड़े शब्दों में आलसी कहती है और घर से निकल जाती है। कई बार देखा गया है बहुत सी माँ को दूरदर्शन, मोबाइल, वॉट्स से फुर्सत ही नहीं होती लिहाजा बच्चा आया के साथ पल रहा होता है। इसलिए बच्चे स्वतंत्र रूप से सिखते है। किसी ने कुछ सिखा दिया तो किसी ने कुछ। अगर माँ की दुआएं, माँ की आशीर्वाद लिए जाएं, समय-समय पर उसकी सेवा की जाएं तो आपको ईश्वर कितनी सारी नेमतें अदा करेगा।

माँ-बाप का दर्जा ईश्वर ने बहुत बुलंद रखा है। यह सब रिश्तों से ऊंचा रिश्ता है। मनुष्य के इस दुनिया में आने के बाद सबसे ज्यादा मुहब्बत करनेवाली हस्तियां माँ-बाप ही होती है। जिनके अहसान अनगिनत होते हैं। उनके एहसानों का बदला व्यक्ति कभी नहीं चुका सकता। माँ की मेहरबानियां असीमित है। हमें अपने माता-पिता का शुक्रगुजार होना चाहिए। माँ-बाप का आशीर्वाद मिलना ही बहुत बड़ा प्रसाद है। अपने माता-पिता पर कभी भी किसी प्रकार की तोहमत न लगाएं। **चाहे लाख करो पूजा या तीर्थ करो हजार, अगर माँ-बाप को ठुकराया तो सब कुछ है बेकार।**

माँ-बाप की अवज्ञा ऐसा गुनाह है कि उसे जीवनभर असफलताएं मिलती रहेगी। अवज्ञा का अर्थ है उनकी बातों को न मानना। अपने माता-पिता के साथ अच्छा सुलूक करना ही उनकी सबसे बड़ी सेवा है। बच्चा वाणी और कर्मों से अपने माता-पिता का आदर करें, उनकी आज्ञा माने। अगर माँ बूढ़ी है तो सब कामों को छोड़ छाड़कर अपने माँ की खिदमत को प्राथमिकता दें। अपनी माँ को बिलकुल भी दु:ख न पहुंचाए। अपनी माँ से अगर कुछ ज्यादती भी हो तो उसे बर्दाश्त करे। माँ के सभी रिश्तेदार, सहेलियाँ, मौसियों से अदब से पेश आये। माँ की मृत्यु के पश्चात ईश्वर से उसकी शांति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए क्योंकि माँ ने मनुष्य को मनुष्य बनाया। मां के सिवा कोई वफादार नहीं।

काल, समय, वक्त, क्षण- पल

वक्त के साथ चाहत भी बदल जाती है, इसकी गर्मी इसकी तासीर बदल जाती है वक्त के साथ.....
वो मकां जिसको बनाया था, पीढ़ियों के लिए, उसकी भी इक दिन मियाद निकल जाती है वक्त के साथ.....
वादा-ऐ-अहले-वफा कर तो सभी लेते हैं, पर निभाते नहीं नीयत जो बदल जाती है, वक्त के साथ.....
दोस्ती, प्यार, वफा अब रह गए बस कहने को, यारों इनकी भी तस्वीर बदल जाती है, वक्त के साथ.....
सोम की जिद है कि यूँ ही तड़पते रहना है, ये नहीं उनमें जिनकी नीयत भी बदल जाती है, वक्त के साथ.....

समय- किसी भी कार्य का प्रारंभ करने के लिए समय शुभ समय देखा जाता है। हमारे प्राचीन ग्रंथों, वेद, पुराणों में समय की सूक्ष्मतम तक गणना की गई है। दुनिया को समय का सूक्ष्म ज्ञान भारत ने ही दिया। वर्तमान में सेकंड, मिनट, घंटे, दिन-रात, माह, वर्ष, दशक और शताब्दी तक की ही प्रचलित धारणा है, लेकिन हिंदू धर्म में एक अणु, तृसरेणु, त्रुटि, वेध, लावा, निमेष, क्षण, काष्ठा, लघु, दंड, मुहूर्त, प्रहर या याम, दिवस, पक्ष, माह, अयन, वर्ष (वर्ष के पांच भेद- संवत्सर, परिवत्सर, इद्वत्सर, अनुवत्सर, युगवत्सर हैं)। फिर इसके बाद दिव्य वर्ष, युग, महायुग, मन्वंतर, कल्प, अंत में दो कल्प मिलाकर ब्रह्मा का एक दिन और रात, तक की विस्तृत समय पद्धति वेदों में वर्णित है।

जिस काल की गणना हो सकती है वह समय से जाना जाता है। समय सीमाबद्ध होता है। जो समय परिस्थिति जन्य है वह वक्त है। जो समय असीम है, अनन्त है वो काल के नाम से जाना जाता है और जो काल का भी सुक्ष्मांश है वह क्षण है और जिसकी गणना नहीं हो सकती। क्षणों का योग (जोड़कर) दिया जाये वही काल जाना जाता है। इन शब्दों का कहां पर प्रयुक्त किया जाता है यह आवश्यकता पर निर्भर है।

समय को नाप पाना अथवा उसकी गणना कर पाना नितांत असंभव है। जिस प्रकार मानव समुद्र में उठने वाली लहरों को और रात में चमकते हुए सितारों की गिनती नहीं कर पाता, उसी प्रकार वह समय को भी माप नहीं सकता। समय को मापना इसलिए असंभव है, क्योंकि ईश्वर की ही भांति यह भी अनादि है।

जीवन का प्रत्येक क्षण मूल्यवान है, हर क्षण मनुष्य को ईश्वर से वरदान स्वरूप मिला है। समय चक्र से क्षण अति सूक्ष्म अवश्य है किन्तु इसमे असीमित संभावनाएं छुपी है। इसलिए मनुष्य को जीवन के हर क्षण को उपहार मानकर उसका प्रसन्नतापूर्वक उपयोग करना चाहिए। समय के इस अति लघु रूप का प्रयोग हमे किस प्रकार करना चाहिए इसका उत्तर हमे स्वयं खोजना चाहिए। हमारा प्रयास हो कि हम हर क्षण का सुनियाजित और सार्थक लाभ ले। जीवन में आने वाले सुख के क्षणों की अपेक्षा दु:ख और संघर्ष के क्षण हमे अधिक भारी और कष्टकारी प्रतीत होते है। यदि हमने मन में सुख और दु:ख के अन्तर से हटकर समय का मूल्यांकन करना सीख लिया तो हमारा जीवन सार्थक है। हम जीवन के परम लक्ष्य और सफलता के निकट अपने को खड़े पायेंगे, यदि यह कहा जाये कि मानव इन स्थितियों से अनभिज्ञ है तो उचित नहीं होगा। बल्कि असीमित अपेक्षाएं पालना मनुष्य की प्रवृत्ति होती है जिसके कारण वह सुख के क्षणों को आनंद के साथ व्यतीत करता है तथा दु:ख के क्षणों को वह बड़ी विपत्ति मानकर स्वीकार करता है। ऐसे समय में वह इसे अपने सामर्थ्य की बात न मानकर दुर्दिन की संज्ञा देने लगता है।

ऐसे लोग जिनमे आत्मविश्वास की कमी होती है प्राय: ऐसी स्थिति में अपनी सार्थक निर्णय क्षमता खो देते है। घोर निराशा में फँसे होने के कारण उन्हें ईश्वर की शरण में जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। जिससे अब वह स्वयं को आस्तिक और ईश्वरवादी की संज्ञा देने लगते है। जबकि यथार्थता तो यह होती है कि उन्हे न ईश्वर पर विश्वास होता है और न स्वयं पर। यदि ईश्वर पर विश्वास है तो वह इन क्षणों को यह मानकर स्वीकार क्यों नहीं करते कि यह भी उन्ही का दिया उपहार है, वह ही हमें इन क्षणों से मुक्ति दिलायेंगे। हर क्षण हमें जीवन जीने की कला सिखाता है। इन क्षणों का अपना अलग अनुभव है अलग अंदाज है। भविष्य में जब हम इनके आगे निकल जाते है तो यह हमारे जीवन में धरोहर स्वरूप रह जाते है। हमें अपनी उपस्थिति का अहसास कराते हुये नसीहतों के संकेत दे जाते है। ऐसे में निराश और असहाय न मानकर इसे जीवन की साधना मानव कर्म स्वीकार कर जिंदादिली के साथ जीना चाहिए। वस्तुत: यह क्षण हमें चेतना की ओर उन्मुक्त करते है, हमारे अंदर लाचार हो रहे आत्मबल को ऊर्जा प्रदान करते है, हमारे विचारों में आशावादिता का संचरण करते है। समय-चक्र का प्रत्येक क्षण समान तो नहीं हो सकता इनमे भिन्नता प्रकृति प्रदत्त है। कोई क्षण आनन्द की अनुभूति दे जाता है तो कोई अवसाद लेकर आता है। हर कठिन एवं कष्टकारी क्षण का सामना रात्रि की भांति यह मानकर करना चाहिए कि आने वाले क्षणों में सुप्रभात अवश्य होगा। क्षण दु:ख के हो या सुख के जीवन में संतुष्टि और आत्मकल्याण की कामना के साथ सार्थक मानकर स्वीकार करना चाहिए।

समय जो सबसे बड़ी अमूल्य वस्तु है। इस विराट प्रकृति के अन्दर अगर कोई मूल्यवान है, तो वह है समय। लेकिन आज इस दुनिया में इन्सान-आदमी के पास समय नहीं है। जिन्दगी की दौड़ धाम में आदमी इतना व्यस्त-मशगुल हो गया है, कि उसके लिए यह २४ घंटे का समय भी कम पड़ रहा है। कब सुबह होती है, कब शाम होती है, कब जिन्दगी तमाम होती है, पता ही नहीं चलता। आदमी ने अपने जीवन का नित्य क्रम इस तरह बना लिया है, कि उसे खुद के लिए और परिवार के लिए समय ही नहीं मिल पा रहा है। इस वर्तमान दौर में प्रत्येक व्यक्ति के सिर पर एक ही भूत सवार है, पैसा-धन माल। आज मानव के लिए पैसा धनमाल ही सबकुछ है। वह पैसा और अधिक जमा करने हेतु लालायित है। इसलिए आज मानव ने- आदमी ने अपने हर तरह के उत्तरदायित्व को भुला दिया है। इसी कारण आनेवाला कल हमसे दूर होता चला जा रहा है।

आयु यानी जीवन के साथ विशिष्ट समय का किया गया समझौता। यह समझौता समाप्त होते ही आयु और जीव आपस में अलग-अलग हो जाते है। आयु अपने आरम्भ से ही पल-पल कम होती जाती है। हाथों से छूटा हुआ समय फिर लौट कर नहीं आता है नहीं पकड में आता है। धन यदि न हो तो मेहनत में कमाया जा सकता है। स्वास्थ्य न हो तो आहार-विहार से प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञान भी अध्ययन से पाया जा सकता है। लेकिन भूतकाल में गया एक पल भी कितना ही मूल्य देने पर लौट नही सकता। समय फिसलता रहता है उस फिसलन भरी राह पर ही चलने का नाम जीवन है और उसी राह पर जीवन का संतुलन साधना पडता है।

हम कहते हैं, एक वर्ष हो गया, एक दिन हो गया। न तो वास्तव में वर्ष है न दिन है, हमने अपनी सुविधा के लिये एक कल्पना मात्र कर ली है। समय तो नित्य है, निरवधि है। यह गुण प्रवाह कब से चल रहा है, इसे कोई कह नहीं सकता। कब तक चलेगा, इसे कोई बता नहीं सकता। हम अनादि अनन्त कहकर पिंड छुड़ाते हैं। समुद्र तटपर बैठकर उसकी लहरों को

गिनने लगें और कहें- समुद्र में सहस्त्र लहरें आयीं, तो यह हमारी कल्पना मात्र है, न जाने कब से लहरें आ रही हैं, कब तक आती रहेंगी, यह हमने अपनी बुद्धि और सामर्थ के अनुसार कुछ संख्या कुछ संकेत निश्चय कर लिये हैं। हम जिसे एक घड़ी कहते हैं उसमें ऐसे भी छोटे-छोटे जन्तु, जो सैकड़ों बार मर जाते हैं। उनके कितने जीवन बीत जाते हैं। जिसे हम तीस दिन का एक मास कहते है, वह पितरों का एक दिन रात्रि है। जिसे हम एक अयन कहते हैं, वह देवताओं का एक दिन है, जिसे हम वर्ष कहते हैं, वह देवलोक का एक रात्रि दिन है। जिसे हम एक युग कहते हैं, ब्रह्माजी की एक घड़ी भी नहीं- जिसे मन्वन्तर कहते हैं, ब्रह्माजी के एक दिन में ऐसे चौदह मनु बीत जाते हैं, अत: काल की कोई निश्चित गणना नहीं। जैसे तौल माप को सभी देश में अपनी-अपनी सुविधानुसार बना लिया उसी प्रकार भिन्न-भिन्न श्रेणी के जीवों ने अपनी-अपनी सुविधानुसार काल की गणना कर रखी है।

यह काल विश्व के समस्त बलवानों में बली है। यही अच्युत अविनाशी अपराजित ईश्वर है। काल के सम्मुख किसी की भी नहीं चलती। सभी को, इसने अपने अधीन कर रखा है। मदारी जैसे बन्दरों को, खिलाड़ी जैसे कठपुतलियों को और पशुपाल जैसे पशुओं को नचाता है, वैसे ही यह काल प्राणिमात्र को नचा रहा है। यह काल ही समस्त संसार को खेल-ही-खेल में नियन्त्रण करता है। काल कर्म और स्वभावानुसार सृष्टि का प्रवाह अनादि काल से चल रहा है। संसार में जितने दीखने सुननेवाले भौतिक पदार्थ हैं सब प्राकृत हैं, सब काल के आधीन हैं, काल आने पर अव्यक्त से व्यक्त हो जाते हैं और फिर काल आने पर अव्यक्त में मिल जाते हैं।

समय केवल एक अवधारणा (कंसेप्ट) है, जो पृथ्वी और सूर्य की सापेक्षता के कारण निर्मित होती है। पृथ्वी, सूर्य का चक्कर एक निश्चित गति से लगा रही है, परिणामत: समय की अवधारणा होती है। अगर पृथ्वी की गति स्थिर हो जाए तो समय की अवधारणा समाप्त हो जाएगी। यह अति-महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि समय की अवधारणा केवल प्राणियों को ही होती है। सापेक्षता के परिप्रेक्ष्य में, सूर्य के लिए समय की अवधारणा, सारहीन है। समय का अहसास संभव नहीं है और अनुमान लगाना भी संभव नहीं है। अस्तित्वहीन का अहसास होना असंभव है। जिसका अस्तित्व ही न हो उसका तो अनुमान लगाना भी संभव नहीं हो सकता है। समय में अणु-परमाणु नहीं होते हैं। परमाणु नहीं होने से इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन की संख्या समय में आज तक वैज्ञानिक निर्धारित नहीं कर सकते हैं। मिली-सेकंड, सेकंड, मिनट, घंटे, दिन-रात, सप्ताह, माह, वर्ष, दशाब्दी, शताब्दी, सहस्त्राब्दी जैसे शब्द मानव ने गढ़े हैं। ठीक वैसे ही जैसे: सुख-दु:ख, ईश्वर, पुण्य-पाप शब्द गढ़े गए हैं।

समय भी विचित्र होता है। मनुष्य का मन सुबह प्रसन्न होता है, दोपहर में काम करता है और रात में आलस्य। यह दिन के तीन समय का स्वभाव है। किस काल या समय में, मुहूर्त में स्थान, दान, जप अनुष्ठान करने से सफल होता है इसका शास्त्रों में उल्लेख किया गया है। वर्षा, ठंड, गर्मी इसके भी समयानुसार दिन होते है। अमावस्या या पूर्णिमा को ही समंदर में ज्वार भाटा आता है। शिशिर ऋतु में वृक्षों के पत्ते झडते है, और बसन्त ऋतु में सभी वृक्षों पर बहार छा जाती है। पारिजात रात में ही खिलता है। मानव शिशु का गर्भ नौ महिने का ही होता है। यही है समय की महत्ता व भेद। समय के इस भेद स्वरूप को ही काल विचित्रावाद कहा जाता है।

मानव जीवन में समय का महत्व धन से बढ़कर है। समय का एक क्षण संसार के ऐश्वर्य से भी नहीं खरीदा जा सकता।

समय निरन्तर गतिमान रहता है। समय किसी की भी प्रतीक्षा नही करता है। समय किसी के वश में भी नहीं रहता है। अत: समय का सदुपयोग और अनुशासन पालन करना सीखना आवश्यक है।

गुजरा हुआ समय फिर वापिस कभी लौट कर नहीं आता। मनुष्य की प्रगति बहुत बार समय पर निर्भर होती है। जो समय का नियोजन करता है वही सफल होता है। नियोजन करते समय अपने लिये उपलब्ध समय देखना चाहिये। दिन भर में जो कार्य करना है उन सभी कार्यों की क्रमश: सूची तैयार करनी चाहिये। किस समय कौन सा काम पूरा करना है यह भी तय करना चाहिये अन्यथा बाकी कामों के लिये समय नहीं रहता। किसी कारणवश एकाध काम के लिये समय कम हो तो नहीं करना चाहिये। कुछ काम विशिष्ट समय पर ही शोभा देते है। स्वयम् भी काम कर औरों को भी काम के लिये प्रवृत करना चाहिये।

समय की पाबन्दी एक नैतिक गुण है। जो लोग यह पाबन्दी नहीं कर पाते उनमें नैतिकता का अभाव हो सकता है। एकाध बार कभी देरी हो जाती है तो हो सकता है लेकिन हमेशा ही देर करने का अर्थ खराब आदत है, अनुशासन हीनता है, लापरवाही है। वास्तव में यह बडी भयानक आदत है इसमें दूसरों के प्रति अन्याय होता है। इससे बचने के लिये हमें इसकी तह में जाना चाहिये। पता चलेगा की इसके दो कारण है पहला तो यह कि इसके नियमों को मानना हम अपनी शान के विरूद्ध समझते है। दूसरा यह खयाल है कि हम एक थोडे से समय में बहुत से काम पूरे कर सकते है लेकिन कर पाते नहीं इसलिये देर के बाद देर हो जाती है। समय की पाबन्दी न करना अहंभाव से पैदा होता है। हम समझते है कि समय हमारी गुलामी मे रहेगा और हम जैसा चाहे कर सकते है लेकिन समय आगे निकल जाता है।

भला समय कभी कोई बीज की तरह बोया जा सकता है? किसी के पास भी चौबीस घंटे प्रतिदिन से अधिक नहीं है, चाहे वह कितना ही अमीर हो या फिर गरीब, सभी के हिस्से मे केवल २४ घंटे का ही गणित आता है। जो समय की कीमत जानते है वे एक-एक क्षण का सदुपयोग करते है अर्थात समय भी खर्च करते है तो सावधानी से। समय को सावधानी से खर्च करने की यही आदत बताती है कि समय बोने का आपको बीज मिल गया।

मनुष्य जब धन खर्च करता है तो एक-एक कौडी का हिसाब रखना चाहता है। बही खाता मनुष्य की इसी प्रवृति की देन है पर हमने कभी समय का हिसाब नहीं लगाया। यह सच है कि समय खर्च करने के लिये ही होता है। यह कोई अचल सम्पति तो है नही जिसे बचा कर रखा जाय। सम्पति भले ही सब को बराबर न मिले, पर समय सबको बराबर मिलता है। इसे खर्च करना सबकी मजबूरी है। मनुष्य लक्ष्मी यानी धन को रोकने के सब तरह के उपाय करता है पर समय को रोक रखने में असमर्थ है, इसे तो खर्च करना ही पडता है। आज का बीता हुआ दिन कल बन जाये इसके पहले इसे खर्च करने में सावधानी व कंजुसी करे तो बेहतर होगा। जो बात धन के साथ लागू होती है वही समय के साथ भी। समय को व्यर्थ गंवा देने वाले बाद में पछताते है। समय को कंजूसी के साथ खर्च करने वाले लोग जीवन में जो कुछ भी प्राप्त करना चाहते है, उसे प्राप्त कर लेते है, किन्तु जो समय को बोते है, उन्हे कभी किसी बात का अफसोस नहीं रहता। उनका जीवन अधिक से अधिक उन्नतिशील हो जाता है, ऐसे ही लोगों को सच्चा सन्तोष प्राप्त होता है। धन की अपेक्षा समय का मोल अधिक है क्योकि धन आज खर्च किया, उसे फिर भी प्राप्त किया जा सकता है पर जो समय व्यतीत हो गया तो भी हमे इसका कभी ख्याल नही आया। जीवन का मूल्यवान दिन बीत गया, बेकार की बातों में, गपशप करते हुये, दूसरे की बुराई निन्दा करने

में, षडयंत्र रचने में, तोड फोड में या फिर आलस्य करने में, सोकर बिताने में, यह सबसे क्या हासिल हुआ? शायद कभी थोडी सी शान्ति, थोडी राहत, बैर का जहर, या किसी की हाय, इन सब उपलब्धियों से क्या प्राप्त हो सकता है, एक मूल्यवान दिन की कीमत में यह सब ढ़ेर सारा फिजूल कचरा। इसे खरीद कर तो स्वयं को बोझ ही बढ़ाया है। यही बोझ भविष्य में हमें कुचलते हुये समय आगे की और बढ़ जायेगा। सूर्योदय होता है तो सूर्यास्त तो होगा ही। यदि यही पूरा दिन हम मित्रों का भला करने में, स्नेही जनों के काम काज में, किसी के लिये अच्छे सदुपयोग में, किसी को सांत्वना देने में, किसी को निराशा से बचाने में, अच्छी किताबे पढने में, ज्ञान इकट्ठा करने में, संगीत सुनने में, प्रकृति की लुफ्त का आनन्द उठाने में, या फिर कोई सत्कर्म करने में सदुपयोग करे व्यापार में उपयोग करे तो दिन का उपयोग सुनहरा होगा। किसी को हमने धन दिया जिसे उसने वापस नही किया यह हमें हमेशा याद रहता है पर ढेर सारे काम होते हुये भी कोई हमसे मिलने आया और हमारा समय ले गया वह हमको याद नहीं रहता है। जिस किसी ने भी आपसे समय मांगा उससे यह भी कह सकते हैं कि मेरे पास इतना समय नहीं है जिसे मैं आपको दे सकूं इसलिये क्षमा करे। हमें निर्भय होकर इस तरह कहना चाहिये जिससे जो भी उपलब्धि प्राप्त होगी वह इसी समय को सुनियोजित ढंग से खर्च करने से ही मिलेगी।

संग्रह करना मानव स्वभाव है। कुछ कीट, जानवर भी चीजों का संग्रह करते देखे गये हैं लेकिन मनुष्य के लिये संग्रह आवश्यक हो जाता है। धन वस्तुये, घर, कपडा ऐसी कितनी ही बातों का वह संग्रह कर सकता है, लेकिन एक चीज जिसका संग्रह करना बेहद मुश्किल है वह है समय। समय चल रहा है और उसके प्रवाह में सब बह रहे हैं। समय या काल को हम पकड नहीं सकते, इसलिये उसका संग्रह नहीं किया जा सकता। क्योंकि काल सबके लिये समान है। काल प्रवाह में बहते हुये जो समय का महत्व जान समझ कर, अपने ध्येय की पूर्ति के लिये उसका उपयोग कर सकता है वही मनुष्य बुद्धिमान माना जाना चाहिये।

समय की आहट का हर वक्त ध्यान रखना चाहिये। मनुष्य, पंछियों, पशुओं की विशिष्ट आवाज और चाल ढ़ाल से बारिश, तूफान, भूकम्प की आहट पा सकता है। प्राकृतिक घटनाओं से भविष्य का तर्क कर सकता है। लेकिन एक आहट बडी ही सूक्ष्म होती है। वह है समय की आहट। वह जानना कठिन होता है। बचपन जल्दी समाप्त होता है और यौवन आता है। वह भी काल प्रवाह में लुप्त होकर बुढापा आता है। समय व्यक्ति को अनेक संकेतों में सावधान करता है। लेकिन समझदार लोग ही उसका ईशारा समझते हैं। बुढापे से पहले आदमी के बाल सफेद होते हैं। पहले कान के पास वाले बाल सफेद होते हैं। कान के पास ही क्यों। तो मानो वे चिल्ला कर कह रहे हो अरे मनुष्य सावधान अब तू बूढा हो रहा है। इस तरह समय की आहट समझ लेनी चाहिये।

संसार मे सिर्फ समय व काल एक समान है, जो कभी बूढा नही होता। काल हमेशा चिरतरूण रहता है। काल की गति समझ कर ना समझ बनने वाला व्यक्ति अपने कल्याण का विचार नहीं करता यह उसका दुर्भाग्य है। आदमी के पास सत्संग के लिये समय नहीं है, बोलने वाले के पास मृत्यु तक कभी समय नही मिलता और जिसके पास समय आज नहीं है, कभी भी नहीं है। जो आज का चिन्तन करता है उसका भविष्य बनता है। सुबह को सम्भालोगे तो शाम अपने आप सम्भल जायेगी। जीवन सम्भालोगे तो मृत्यु अपने आप सम्भल जायेगी। साधु सन्तों से व्यर्थ के प्रश्न कर उनका बहुमूल्य समय और अपना जीवन व्यर्थ करते हैं। दुनिया भर मे अनेक तरह की बाधाये हैं, उनसे अपने आप को जोडना व्यर्थ है। हमे तो यह सोचना चाहिये कि

हम कौन हैं, कहां से आये हैं और हमारा कर्त्तव्य क्या है ?

वक्त - वक्त एक कीमती तिजोरी है जिसमें इंसान की तकदीर छुपी होती है। वक्त एक ऐसा परिंदा है जो उड़ जाये तो कभी वापस नहीं आता। वक्त सबसे बड़ा मरहम है जो जज्बात के तूफान को गैर महसूस तरीके से साधारण बना देता है। वक्त में अगर करिश्मा साजी न होती तो दुनिया कयामत बनी होती है और हर दुखी दिल इन्सान नाकामियों को गले लगाकर रोते-रोते उम्र गुजार देता। वक्त जब तक आपको इजाजत नहीं देता, होठों पर लगी हुई चाय की प्याली भी आप नहीं पी सकते। वक्त का ही फेर था कि राम को जिस दिन राजगद्दी मिलनेवाली थी उसी दिन प्रात: उसको वनवास मिला यह था वक्त का फेर। वक्त को दौलत से नहीं खरीदा जा सकता है। वक्त एक ऐसी ट्रेन है जिसे रोकने के लिए कोई सिग्नल नहीं है। वक्त को ठोकर मारनेवाले दूसरों की ठोकर खाते हैं। वक्त सबसे बड़ा मरहम है। यूं भी ये जज्बात के तूफान को गैर महसूस तरीके से साधारण कर देता है। वक्त में ये करिश्मा साजी न होती तो दुनिया कयामत बनी होती और हर दुखी दिल इन्सान नाकामियों को गले लगाकर रोते रोते उम्र गुजार देता। कहते हैं कि समय और तूफान किसी का इंतजार नहीं करता। जो शख्स वक्त के पाबंद नहीं होते, वे जिंदगी की दौड़ में हार जाते है।

वक्त के साथ खिलवाड- किसी भी कार्य के संदर्भ मे दुनिया की लगभग एक चौथाई आबादी वक्त की पाबंद नहीं है। विकसित देशों के मुकाबले हमारे देश में बहुत कम कार्यक्रम निर्धारित समय पर शुरू होते है। आमतौर पर हम यदि किसी से आठ बजे मिलने का कार्यक्रम तय करते हैं, तो साढे आठ बजे पहुंचते हैं और सोचते हैं, यह सब तो चलता है।

मनोवैज्ञानिकों की राय- मनोवैज्ञानिकों की राय में वक्त की पाबंदी की प्रवृत्ति आपके व्यक्तित्व के लक्षणों को ही उजागर नहीं करती बल्कि यह आपके चरित्र के पहलू को भी दर्शाती है। इससे पता चलता है कि आप अपने प्रति और दूसरों के प्रति कितने प्रतिबद्ध हैं। जो लोग निर्धारित समय पर कार्य नहीं करते वे प्राय: चिंतित और तनावग्रस्त ही नजर आते हैं। ऐसे लोग दूसरों के समय और उनकी जरूरतों के प्रति असंवेदनशील होते हैं। वक्त की गैरपाबंदी के संदर्भ में कुछ प्रबुद्ध लोग कटाक्ष करते हुए कहते हैं कि हम भारतीयों ने आई.एस.टी. को इंडियन स्ट्रैचेबल टाइम (यहां आशय वक्त की लेट लतीफी से है) बना रखा है।

दस प्रतिशत निराशा, नब्बे प्रतिशत हौसलों को पराजित कर सकेगी ? देशज समस्यायें देशज समाधान चाहती है। इस हेतु अपनी जड जमीन से जुड कर सामान्य जन जब हर गलत निर्णय का प्रतिकार करता है तभी मानवीय मूल्यों का, देशज स्वाभिमान का सूर्योदय होता है। कहावतों में छिपे निहितार्थ हमारा जगत और जीवन बदल सकते हैं बशर्ते हमारी चेतना की मिट्टी में विवेक का बीज हम स्वयम् बोये। वक्त को अपना मिजाज बदलना आता है। इतिहास साक्षी है कि वक्त का मिजाज भी कुछ कल्पनाशील, प्रज्ञा-मेधा, मनीषा से भरे सिरफिरे, योद्धाओं, शहीदों, दार्शनिकों, बुद्धिजीवियों ने बदला है और जिन्होने हवा के रूख के विपरीत अपनी राह बनाई है उन्ही को हवाओं ने भी सलाम किया है।

अशिष्टता का सूचक- शिष्टाचार के तहत देर से पहुंचना एक तरह से अशिष्टता का ही सूचक है। ऐसे आचरण से यह पता चलता है कि आप किसी घटना या उससे जुड़े लोगों को कम महत्व देते हैं। भले ही कोई इस लेट-लतीफी की आपके समक्ष निंदा न करे, पर वह अपने मन में आपके प्रति एक धारणा जरूर बना लेता है। जिस दिन आप सुबह देर से सोकर उठते हैं, उस दिन आपके दैनिक कामकाज कितने पिछड़ जाते हैं ? दिन की शुरुआत ठीक वैसा ही है, जैसे किसी तालाब

में आपने कोई कंकड़ फेका हो। यह तो आपको मालूम ही है कि तालाब में एक कंकड़ फेकने पर बार-बार गोलाकार तरंगे बनना शुरू हो जाती है। हम वक्त से गिरे लम्हे का किस तरह उपयोग करते है, उसका सबसे पहला प्रभाव आने वाले पल पर ही पड़ता है। वक्त के पाबंद होने के जज्बे को अपनी दिनचर्या व जीवन-शैली का अंग बना ले। इससे आप किसी भी कार्य को निर्धारित समय से पूर्व ही खत्म कर लेंगे, जिसके परिणामस्वरूप आप अंतिम क्षणों में होने वाली हड़बड़ी और तनाव से मुक्त रह सकते हैं।

समय को बर्बाद मत करो, क्योंकि जीवन इसी से बना है, अर्थात समय ही जीवन है। समय सबसे बड़ा मूल्यवान धन है। धन से प्रत्येक वस्तु खरीदी जा सकती है परंतु बीते हुए समय को किसी भी कीमत पर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। संसार में वही व्यक्ति सफल होते हैं जो समय के साथ चलकर इसकी कीमत को पहचानते हैं। सफलता के अवसर सभी के जीवन में आते हैं परंतु समय की अनुकूलता का होना भी आवश्यक है। सही अवसर पर सही कार्य कर लेना ही बुद्धिमत्ता है। समय से ही सभी कार्य अच्छे लगते हैं। जो व्यक्ति समय की कीमत को न जानते हुए इसे बर्बाद करता है, वह जिंदगीभर पछताता रहता है और वक्त के थपेड़े सहन करता है। सफलता की कुंजी वक्त के साथ चलने पर ही है। बीता हुआ कल कभी वापस नहीं आता। रेलयात्रा, विमान यात्रा, पानी का जहाज, गति सब समय से ही चलती है। जरा देरी होने से यह सब आपके लिये इन्तजार नहीं करते और अपने निर्धारित समय से प्रस्थान कर जाते हैं।

एक विद्वान ने कहा है मैंने समय को नष्ट किया था, समय मुझे नष्ट कर रहा है। बीता समय फिर नहीं मिलता। जो समय हमें मिला है उसके प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करें। एक विद्वान जो व्यापारी थे जब उनकी दुकान पर ग्राहक न होते थे तो वे किसी अच्छी पुस्तक का अध्ययन करते थे। बड़े-बड़े महापुरुषों ने समय की कद्र की एवं उसके एक मिनट को भी व्यर्थ न गंवाया। सबकी आयु निश्चित है फिर काल किसी को नहीं छोड़ता ये सभी को खा जाता है। सभी इस काल के मुख में बैठे हैं। अत: जो समय हमें प्राप्त हुआ है उसे किसी शुभ उद्देश्य में लगाकर सार्थक करें। जब समय चला जायेगा, हमारे बुलाने से वह न आयेगा फिर तो पश्चात्ताप ही बस हाथ लगेगा।

समय का अत्यंत महत्व है। समय का अपव्यय जीवन पूंजी के अपव्यय के समान है। समयरुपी पूंजी श्वास की तरह स्वत: समाप्त होती रहती है। इस पर किसी का नियंत्रण नहीं है। हमारा समय पर स्वामित्व केवल इसी सीमा तक है कि हम इसका सदुपयोग कर सकें। जिसने समय का सदुपयोग करना सीख लिया है वह उन्नति के शिखर पर अवश्य पहुंचा है।

किसी भी विचारशील मनुष्य के लिए जीवन की क्षणभंगुरता का अंतिम अर्थ यह नहीं है कि वह उन क्षणों को नष्ट करे।

जैसे नदी बह जाती है और लौटकर नहीं आती, उसी प्रकार रात और दिन मनुष्य की आयु लेकर चले जाते हैं, फिर नहीं आते। जो अपने समय का सबसे ज्यादा दुरुपयोग करते हैं, वे ही समय की कमी की सबसे ज्यादा शिकायत करते हैं। दौड़ना व्यर्थ है। मुख्य बात तो समय पर काम निकालना है। बीता हुआ समय और कहे हुए शब्द कदापि वापस नहीं आ सकते। समय और विचार महान शोक को भी निस्तेज कर देता है। समय का उचित उपयोग करना समय को बचाना है।

समय की पाबन्दी सुशीलता का चिन्ह है। समय कीमती है, पर सत्य समय से भी ज्यादा कीमती है। समय पर थोड़ा-सा प्रयत्न भी आगे की बहुत-सी परेशानियों को बचाता है। समय परिवर्तन का धन है, परन्तु घड़ी उसका उपहास करती है। उसे केवल परिवर्तन के रूप में दिखाती है, धन के रूप में नहीं। समय फिरै रिपु होहिं पिरीते। (समय फिरने पर मित्र भी

शत्रु हो जाते हैं।) समय बदलने पर लोगों की आंखें भी बदल जाती हैं। समय सत्य का पथ-प्रदर्शक है। समय ही धन है। सोने का प्रत्येक धागा मूल्यवान होता है, इसी प्रकार समय का प्रत्येक क्षण भी मूल्यवान होता है।

समय निराकार है। उसके अस्तित्व को केवल घड़ियों, कैलेंडर के जरिए देखा जा सकता है या अहसास के माध्यम से उसका अनुमान लगाया जा सकता है। यह सत्य है कि समय निराकार है। समय पदार्थ नहीं है। पदार्थ नहीं होने से समय का अस्तित्व संभव नहीं है। पदार्थ में भार होता है और पदार्थ स्थान भी घेरता है। समय में न तो भार होता है और न ही स्थान घेरता है, अत: समय का अस्तित्व मानना अवैज्ञानिक है। हमारे नेता कहीं भी समय पर नहीं पहुंचते। सरकारी योजनाओं में भारी विलंब आम बात है। निजी जीवन में भी लेट-लतीफ हमारी पहचान बनती जा रही है।

समय नदी का प्रवाह है। वह कभी रुकता नहीं, बहता रहता है। उसे बांधकर नहीं रखा जा सकता, उसका उपयोग किया जा सकता है। समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। उसका समुचित उपयोग वही कर सकता है जो उसके प्रबंधन के नियमों को जानता है और उसके अनुसार काम करता है। यही काम आज आदमी के लिए सबसे कठिन हो रहा है। उसे प्रतिदिन २४ घंटे का समय मिलता है। दिन छोटे-बड़े हो सकते हैं, रातें भी छोटी-बड़ी होती हैं। पर दोनों को मिला देने पर चौबीस घंटे हो जाते हैं।

प्रत्येक आदमी का दिन चौबीस घंटे का खत लिखाकर लाता है। कुछ लोगों के जीवन में समय बरकत करता है। उतने काम कर लेने के बाद भी उनके पास समय बच जाता है। उन्हें कभी अनुभव नहीं होता कि उनके पास समय नहीं है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनके पास कभी किसी काम के लिए समय नहीं मिलता वे ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास अपने लिए भी समय नहीं रहता जमाने की भागदौड़ में वे आंख मूंदकर हिस्सा ले रहे हैं। उन्हें यह भी पता नहीं है कि किस समय कौन-सा काम उनके लिए आवश्यक है। इस कोटी के व्यक्ति समय का मूल्यांकन नहीं कर सकते। आज हमारे लिए पहली आवश्यकता है कि हम हर क्षेत्र में समय की पाबंदी सीखें जो कि सफलता के लिए अति आवश्यक है।

सफलता की कुंजी है, समय का सदुपयोग- व्यक्ति के जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण समय है। जो व्यक्ति जागरुक रहकर प्राप्त समय का सदुपयोग करते हैं उनका जीवन बन जाता है। एक कहावत है- जो समय का सम्मान करते हैं समय भी उनका सम्मान करता है और जो समय का अपमान करते हैं समय के हाथों वे भी अपमानित होते हैं। समय का सदुपयोग करना सीखिए, निश्चित रूप से आप अपने जीवन में काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेंगे। यह सच है कि बहुत कम लोग समय का सदुपयोग कर पाते हैं। देखा जाता है कि अधिकांश लोग समय को निरर्थक कार्य-कलापों में बर्बाद कर देते हैं। और अंतत: समय की बर्बादी से उन्हें आंसू बहाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। भगवंतो का कहना है कि इस संसार में पंडित वह है जो क्षण-क्षण का महत्व समझता है। एक क्षण में व्यक्ति का जीवन बन जाता है तो एक क्षण में आदमी का बना बनाया जीवन विकृत हो जाता है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति धन को महत्वपूर्ण मानता है पर समय व्यक्ति के जीवन में धन से ज्यादा बहुमूल्य है। धन तो फिर कमाया जा सकता है किंतु जो समय बीत जाता है उसे फिर प्राप्त कर पाना कठिन ही नहीं अपितु असंभव है। इसलिये तो कहा जाता है कि समय पर जो कार्य करना है उसे तुरंत कर डालो। आज, कल और परसों पर जो कार्य को टाल देते हैं वे टलते चले जाते हैं। समय और तूफान किसी की प्रतीक्षा नहीं करते। अत: समय को अपने हाथ से जाने मत दीजिए। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उस व्यक्ति ने कभी भी निराशा की

अनुभूति नहीं की जिसने समय का स्वागत किया। निराश उन्हें होना पड़ता है जिनकी दृष्टि में समय की कद्र नहीं। कभी भी अपने मन मस्तिष्क को खाली मत रखो। अच्छी प्रवृत्तियों में आपकी संलग्नता आपको निश्चित रूप से सफलता देगी। जो जीवन हमें प्राप्त हुआ है यह निश्चित रूप में पुण्योदय की बात है। पुण्योदय से प्राप्त जीवन को प्रमाद और प्रपंचों से बचाने का अभ्यास करो। जितनी जागरुकता रहेगी उतना ही व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन खिलेगा। प्रमाद, सबसे बड़ा विषाद है। यह विषाद सारी प्रसन्नता और समृद्धि को समाप्त कर देता है। क्षण-क्षण जीवन क्षरण की ओर गतिशील है। नश्वर जीवन को एक दिन मिटना ही है। जलती हुई लौ कब बुझ जाए, कोई कुछ भी नहीं कह सकता। बाती बुझने से पूर्व सद्गुणों के मोतियों की माला पिरो लेना विवेक सम्मत दृष्टिकोण है। मानवीय व्यक्तित्व, संसार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है। जो मनन क्षमता मानव के पास विद्यमान है वह संसार के अन्य प्राणियों के पास नहीं है। अपनी मनन क्षमता का उपयोग सतत शुभ को पुष्ट करने के लिए करो। शुभ में प्रयुक्ति समय का सही उपयोग है यह सही उपयोग ही हर सफलता की कुंजी है।

समय किसी का इंतजार नहीं करता, न ही गया वक्त कभी लौट कर आता है। इसलिये समझदार लोग सही समय आते ही फौरन उसका फायदा उठाते हैं। समय के सदुपयोग का मतलब किसी बहुत बड़े मौके का इंतजार करना नहीं है, बल्कि छोटे-छोटे कामों को तरतीब से करना और टालने के बजाय उन्हें निपटाते रहना ही समय का सदुपयोग है।

जो समय का सदुपयोग करते हैं वे सुखी जीवन जीते हैं। ऐसे लोग हर काम को समय पर करते हैं, वे बहाना नहीं ढूंढते। वह समय के अनुसार अपने लिये अवसरों का निर्माण करते हैं। हाथ पर हाथ धरकर बैठने वालों को निराशा ही हाथ लगती है। अगर आप चाहते हैं कि आप सफल इंसान बनें तो सबसे पहले समय का सदुपयोग करना सीखें। यह न भूलें कि इंतजार में बैठे रहना जहां आदमी को निठल्ला बना देता है वहीं कामयाबी के रास्ते भी बंद हो जाते हैं। समय को नष्ट करना अपने आप को नष्ट करना है, क्योंकि जीवन इसी से बना है। जिस प्रकार प्रकृति के नियमों, कार्यकलापों पर किसी का बस नहीं चलता, ठीक उसी प्रकार समय को थाम कर रखना ही असीव है। समय प्रकृति में हो रहे परिवर्तनों का एहसास कराता है। इसी के जरिये हम ऋतु, मौसम का अनुभव करते हैं।

कैसे करें समय निर्धारण ? - समय सतत परिवर्तन की प्रक्रिया का नाम है। ऐसे में हम इसको अपने अनुसार ढालने की सोचें, तो इसके लिये हमें एक समय सारिणी बनानी होगी। सुबह, दोपहर, शाम और रात को हमें कौन-कौन से काम करने चाहिए। इसके लिये समय-सारिणी बनानी होगी। क्योंकि समय को हम रोक नहीं सकते, बल्कि यह स्वत: नियंत्रित है। समय आपके अनुसार नहीं चलता, बल्कि हमें इसके अनुसार चलना पड़ता है, तभी हम अपने उज्ज्वल भविष्य की कामना कर सकते हैं। एक सफल वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर या नेता वही बनता है, जो समय को ध्यान में रखकर अपना लक्ष्य निर्धारित करता है। कार्यसूची के साथ-साथ हमें इसकी प्राथमिकताएं भी तय करनी चाहिए। सुबह के समय वे ही काम करने चाहिए जो ज्यादा मेहनत वाले हों, क्योंकि सुबह के समय व्यक्ति शारीरिक व मानसिक दोनों रूप से काफी तरोताजा होता है। दोपहर तक पहुंचते-पहुंचते उसकी देह कुछ थकी-थकी हो जाती है। इसलिये हमें कोई भी काम करने से पहले यह ध्यान रखना चाहिए कि जो काम जिस समय आसानी से हो, उसे उसी समय कर देना चाहिए।

क्या है परिवर्तन- विज्ञान के कई चमत्कारी प्रयोगों के बावजूद हम परिवर्तन को नहीं बांध सकते, क्योंकि यह काल

द्वारा नियंत्रित क्रिया है, जो आया है, वह जाएगा भी। फिर उसकी जगह नया आ जाएगा। बीज अंकुरित होगा, फिर वह पौधा बनेगा और अंत में सूखकर कर गिर जाएगा। फिर उसकी जगह नया पौधा लेगा। यह सतत क्रिया है। एक से चार बनते जाएंगे, बढ़ते जाएंगे और मिटते जाएंगे। इसे ही कहते हैं परिवर्तन, इसका कोई आकार नहीं होता है। यह तो एहसास कराता है अपने आने का। मनुष्य ने समय और परिवर्तनों को अपने अनुसार ढालने की लाख कोशिशें की, मगर नतीजा असफल रहा। अगर ऐसा संभव होता तो हम सूनामी लहरों के कहर से बच सकते थे, जिसमें जानमाल का भारी नुकसान हुआ है।

समय का सदुपयोग करना चाहिए, यह तो सभी कहते है किन्तु समय बर्बाद कहां होता है, इस बात को लेकर मतभेद होने लगते हैं। कोई भी गृहिणी जानबूझकर समय बर्बाद नहीं करती। वह तो अनजाने में हो जाता है या यूं कह लीजिए कि समय बर्बाद किया नहीं जाता, हो जाता है, इसलिए क्यों न समय बर्बाद करने के तरीकों पर ध्यान दिया जाए ?

अपने घर के जरूरी काम छोड़कर दूसरों के घर के काम निपटाने में जुटी रहती हैं।

सिरदर्द न होने पर भी सिरदर्द का बहाना बनाकर लेटी रहती हैं। बाजार में जरूरत का सामान लेने के अतिरिक्त ढेर सारा समय बाजार में फालतू घूमने में गुजार देती हैं। घर के बाहरी दरवाजे पर खड़ी होकर पड़ोसन से घंटों बतियाती रहती हैं। प्रतिदिन सुबह नाश्ते में क्या बनाऊं, खाने में क्या बनाऊं, तय करने में आधा एक घंटा गुजार देती हैं। कामवाली बाई से घंटों बतियाती रहती हैं। पूरी दोपहर दूरदर्शन देखते हुए व्यतीत कर देती हैं।

कहीं जाने से पहले कौन सी साड़ी पहनूं ? कौन से कपड़े पहनूं ? कैसी मैचिंग मिलाऊं ? में ही घंटा पौना घंटा लगा देती हैं। अगर आप ऊपर दिए तरीकों पर अपनी दिनचर्या बिताती हैं तो यह भी स्वीकार कर लीजिए कि आपने अपना समय बर्बाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

समय बहुत बलवान है। कहते हैं उसकी गति बहुत तेज है। जो क्षण व्यतीत हो चुका, उस क्षण को न तो मानव सुधार सकता है और न ही उससे कुछ लाभ पा सकता है। वह गुजरा हुआ समय केवल एक स्मृति बन कर ही रहेगा।

भूतकाल की तरह मानव का भविष्य पर भी कोई नियंत्रण नहीं। कहा जाता है कि पहले बना प्रारब्ध, पाछे बने शरीर। यानी जन्म लेने से पूर्व ही यह निश्चित हो जाता है कि वह किस घर में, किस परदेश में, कैसी परिस्थितियों में जन्म लेगा, उसे जीवन भर में कितने स्वांस ग्रहण करने तथा छोड़ने हैं और वह कितने समय तक जीवित रहेगा। विडम्बना यह है कि यह सब कुछ निश्चित होने के बावजूद मानव इससे हमेशा अनभिज्ञ होता है। कौन जानता है कि उसे कितना भविष्य देखना प्राप्त होगा। कौन जानता है कि अगली सांस आएगी या नहीं।

इस तरह मानव का भूत और भविष्य दोनों पर ही कोई नियंत्रण नहीं। इसलिए इस जीवन को आनंदपूर्ण बनाने के लिए वर्तमान का महत्व पहचानना होगा, उसे ही संवारना होगा। वर्तमान को सार्थक बनाने के लिए मानव को जीवन लक्ष्य का बोध होना चाहिए। यदि किसी यात्री को मालूम ही नहीं हो कि उसे कहां जाना है, किस मंजिल पर पहुंचना है तो वह अपना कदम किस तरफ बढ़ाएगा। इसलिए वर्तमान ही हमारे लिए उस दिशा में कदम रखने का योग उपस्थित करता है।

कई बार जीवन का यह लक्ष्य बोध संतों के संग प्राप्त होता है। कई बार वह गुरु-पीर-पैगंबर की शरण में जाता है। भूत और भविष्य दोनों ही मानव के नियंत्रण से बाहर हैं। मानव न तो इन्हें सुधार सकता है और न ही इनसे कोई लाभ प्राप्त कर

सकता है। जीवन का लाभ उठाने के लिए वर्तमान को महत्व देना, उसे संवारना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए मानव को सर्वप्रथम अपने लक्ष्य का बोध होना चाहिए। जिस प्रकार यात्री को यात्रा से पूर्व अपने गंतव्य का बोध होना आवश्यक है, उसी प्रकार मानव को भी अपने जीवन लक्ष्य का पता होना चाहिए।

विडंबना यह है कि हम भौतिक वस्तुओं की चकाचौंध में इस तरह खो जाते हैं कि संचय को ही जीवन का ध्येय समझने लगते हैं। वह इन वस्तुओं में इस तरह से लिप्त हो जाता है कि वह न केवल मानव जीवन के परम लक्ष्य को भुला बैठता है, बल्कि इन वस्तुओं को प्राप्त कर दिन का चैन तथा रातों की नींद गंवा बैठता है।

मानव की ऐसी दयनीय दशा को देखकर ही संत-महात्मा याद दिलाते हैं कि हे मानव। जिन कर्मों को तू जीवन का लक्ष्य माने हुए है वे कर्म तो पशु-पक्षी भी कर रहे हैं। जैसे लिखा है-

निद्रा, भोजन, भोग, भय ये सब पशु समान, ज्ञानहिं अधिक नरेन में, ज्ञान बिना पशु जान।

यदि मनुष्य संतों की इन बातों पर गंभीरतापूर्वक अमल करता है, तभी वह ईश्वरीय आनंद की अनुभूति करता है और उसकी मानव योनि सार्थक हो जाती है। यदि वह उन पर तत्काल आचरण न करता हुआ उसे भविष्य में करने के लिए छोड़ देता है, तो उसका जीवन निरर्थक ही बीत जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति से बचना बहुत जरूरी है।

मानव के लिए न तो भूत को स्मरण करना और न ही भविष्य की प्रतीक्षा करना लाभदायक है। उसके लिए आवश्यक है कि वह वर्तमान के महत्व को समझे। जो पल सामने है वही सबसे महत्वपूर्ण है, वही ईश्वर का आशीर्वाद है, वही आनंद योग है। समय गुजरने के बाद उस पर पछताने से वर्तमान का आनंद नष्ट हो जाता है।

ब्रह्माण्ड में कोई भी ऐसा जीव नहीं जो काल को जीत सके। काल के प्रभाव से ही ब्रह्माण्डों में अनेक विनाश-लीलाएँ होती रही हैं और कोई भी उन्हें किसी साधन से रोक नहीं पाया। यहाँ तक कि हमारे नैत्यिक जीवन में ऐसी अनेक बातें घटती रहती हैं, जिनमें हमारा वश नहीं चलता और हमें उन्हें सहन करना पड़ता है। उनका कोई उपचार नहीं होता। यही काल का परिणाम है।

समय गुजरते देर नहीं लगती है फिर भी वक्त की कीमत अधिकतर लोग समझ नहीं पाते हैं। जो भी चराचर वस्तु इस संसार में दिखाई पड़ रही है उसका नष्ट होना तय है। यह मानव शरीर भी क्षणभंगुर है। इसके बावजूद ज्यादातर लोग यह समझते हैं कि अभी काफी समय बाकी है। यह कार्य हम बाद में भी कर लेंगे। जबकि ऐसा संभव नहीं होता है। गुजरा हुआ समय वापस नहीं आता है। इसलिए परिस्थितियां चाहे जो भी हों कार्य समय पर ही करना चाहिए।

समय का नाम लेकर परिस्थितियों के सामने घुटने टेकनेवाले व्यक्ति कभी नया निर्माण नहीं कर सकते। सही समय पर सही दिशा में किया गया पुरुषार्थ निश्चित रूप से फलदायी होगा, इस आस्था के साथ नया प्रस्थान हो।

कैलैंडर के साथ स्वयं को बदलें- विराट भारत वर्ष में नया वर्ष कई बार मनाया जाता है। कभी दीपावली तो कभी रामनवमी के दिन। इसके अतिरिक्त अलग-अलग राज्यों एवं धर्मों के अनुसार, भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय एवं मतानुसार भी नए साल प्रारंभ होते हैं, किन्तु ईसवी सन् ही इन दिनों व्यवहार में नया वर्ष है, क्योंकि हमारे दैनिक जीवन के सारे व्यवहार इसी कैलेंडर से चलते हैं। हर वर्ष नया दिन आता है, पुरानी स्मृतियां रह जाती हैं और नए-नए संकल्पों को हम धारण करते हैं। पल-पल, क्षण-क्षण समय व्यतीत हो रहा है। नए-नए अविष्कार, प्रचार-प्रसार बढ़ रहे हैं। हमारा आयुष्य दिन-

प्रतिदिन घटता जा रहा है, हमारा यह मानव-जीवन कितने हद तक सफलता पाया है ? क्या अर्थोपार्जन ही जीवन का ध्येय है ? क्या यश-कीर्ति-सम्पत्ति ही हमारे जीवन का लक्ष्य है ? क्या कभी आत्म-साधना, आत्म कल्याण की ओर भी ध्यान दिया ? हम टाइम पास कर रहे हैं। हम टाईम पास नहीं कर रहे हैं, बल्कि टाइम हमें पास कर रहा है। नए वर्ष की शुभकामना के बधाई पत्रक भेजे जाते हैं, दूरध्वनी किए जाते हैं, संदेश भेजे जाते हैं, वार्तालाप किया जाता है और मिलने पर आपस में नव वर्ष शुभ हो का आदान-प्रदान भी होता है। नए वर्ष का स्वागत नाचगान, आतिशबाजीयों, नशीले पदार्थों के सेवन से नहीं बल्कि शुभ संकल्पों से करें, शुद्ध आचार और विचारों से करें। दृढ़ संकल्प करें कि नए वर्ष में हर कार्य शुभ हो, आस्था अटल हो, मन पावन हो, आचार श्रेष्ठ हो, व्यवहार मृदु हो और हम दृढ़ मनोबल, आत्मबल से आगे बढ़ने के लिए कृत संकल्प हो। नया वर्ष मनाने और पुराने वर्ष को अलविदा करने के अवसर पर हमें इन बातों पर चिन्तन करना चाहिए कि पिछले वर्ष हमने क्या खोया और क्या पाया ? बीते हुए एक वर्ष में अपने जीवन, अपने स्वभाव, अपनी आदतों और वाणी व्यवहार में कितना बदलाव हम ला पाए हैं ? कालचक्र बदलता रहा और हम अपने आप में बदलाव नहीं ला सके तो समय से पीछे रह जाएंगे। कालचक्र के साथ हमें अपने आप को भी बदलना चाहिए। दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए प्रत्येक क्षण का सदुपयोग हो। समय के साथ-साथ कदम मिलाकर चलने के लिए जरूरी है कि हम पहले स्वयं को बदलें। कालचक्र तो हर साल बदलते रहेंगे पर जब तक हम हमारे जीवन में बदलाव नहीं लाएंगे, विकास की ओर नहीं बढ़ेंगे, सोच को प्रशस्त नहीं बनाएंगे तब तक हम इस भूगोल का चक्कर लगाते हुए फिर वहीं पर आकर खड़े हो जाएंगे।

मनुष्यत्व (मानवपन), आर्यत्व (आर्यपन), पांचों इन्द्रियों की पूर्णता, उत्तम धर्म-श्रवण का अवसर, सुश्रद्धा (सद्धर्म को धारण करने की कला) एवं मन-वचन-काया से धार्मिक अनुष्ठान (आचरण) ये क्रमश: दुर्लभ एवं दुर्लभतम है। इसलिए समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

समय की गति ऐसी दुर्निवार है कि उसे हम जिन उपायों से मिटाना चाहते हैं, यदि उसका समय आ गया हो तो वे ही उपाय उसकी प्रवृत्ति में सहायक हो जाते हैं। काल स्वरूप श्रीकृष्ण को जिस समय जो कराना होता है, संयोग के रूप में वे वैसे ही बनकर आ उपस्थित होते हैं। लोग भ्रमवश ऐसा कह देते हैं- यह कार्य ऐसा होना तो न चाहिये था, अकस्मात् हो गया। कार्य कोई भी कभी अकस्मात नहीं होता। सबका समय बँधा हुआ है। अज्ञानी लोग भूल से पश्चात्ताप करते हैं कि यदि हम ऐसा करते तो ऐसा न होता। तुम कैसा भी करते, होता वैसा ही जैसा हुआ है। फिर तुम कैसा करने को स्वतन्त्र भी तो नहीं, जो होना होगा वही तुम्हारे द्वारा होगा। मंगल तो एकमात्र मंगलायतन श्रीहरि को अपना सर्वस्व सौंपने में हैं। समय कभी किसी के लिए नहीं रुकता। अणु से लेकर ब्रह्माणु तक सब गति से बंधे हैं। इस नियम में बद्ध होने के कारण ही, समय की गति पकड़ना यानी प्रगति है। प्रगति वह गति है जिससे आगे आगे सफलता की ओर बढ़ा जाता है। गति की यह संगति अवकाश में स्थित ग्रहों में भी है। पृथ्वी की गति है, ग्रहों की गति है, वह बिगड़ गई तो इन ग्रहगोलों का अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा। इस तरह काल की आहट लेकर हमें अपना जीवन प्रवाह योग्य दिशा में योग्य गति से प्रवाहित करना चाहिए। समय को जिसने नहीं समझा, उसे मिटना पड़ेगा। जो तलवार से बच गया, उसे फूलों से कटना पड़ेगा।

आज जीने की कला हमें दूरदर्शन सिखा रही है। चलचित्र, धारावाहिक और विज्ञापन हमारे मन पर इतना गहरा असर डाल रहे हैं कि आज जो कुछ कर रहे हैं, दूरदर्शन देखकर ही तो कर रहे हैं। विज्ञापन में जो आते हैं वही कपड़े पहन रहे हैं। भोजन कर रहे हैं। जो कुछ भी हो रहा है, सब दूरदर्शन की ही करामात है। विशेष बात तो यह है कि हमारे बेटे बेटी दूरदर्शन देखकर ही हर वस्तु की फरमाइश करते हैं और हम उसी विज्ञापन के अनुसार कपड़े पहनते हैं। साबुन, तेल, अण्डरवियर बनियान छोटी सी छोटी वस्तु भी वैसी ही लाते हैं। इसी कारण हमारा तौर तरीका जीने का बदल गया है।

हमने हमारी इच्छाओं आकांक्षाओं को इतना बढ़ा लिया है कि उनको पूरा करने में ही हमारा पूरा जीवन व्यतीत हो जाता है। तो जैसे दु:ख अन्यसे प्राप्त होता है वैसे ही सुख भी अन्यसे प्राप्त होता है। कालकी गति बड़ी गम्भीर है। उसकी धारामें अभी अगले क्षण क्या होनेवाला है, इसका पता किसीको नहीं चलता है। कालके गर्भमें क्या छिपा हुआ है, उसका सम्पूर्ण रहस्य इस सृष्टिमें ईश्वरके सिवाय कोई नहीं जानता। जो भगवानका भजन करता है वह औरोंके समान संसारमें नहीं आता। उसको तो भगवान्के चरणारविन्दका उपगूहन, आलिंगन करनेमें इतना आनन्द आता है कि वह उसे छोड़ना नहीं चाहता। उसको उसका चसका लग जाता है- रसग्रहो यत: भगवान ही विश्वके रूपमें प्रकट हो रहे हैं। कर्म, सत्ता व काल के प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता।

हम समय किस प्रकार व्यतीत कर रहे हैं, क्योंकि हम अपने भाग्य के निर्माण में अपनी सहायता करते हैं। ईश्वर एक बार में एक ही क्षण देता है और दूसरा क्षण देने से पूर्व उस क्षण को ले लेता है।

कुछ लोग जो वक्त के हिसाब से चलते हैं वे सफल हो जाते हैं। कुछ किसी कारण से पीछे रह जाते हैं। मगर सच तो ये है कि वक्त न तो चलता है, न बीतता है, न कम होता है, न ज्यादा होता है। वक्त कुछ इस तरह चलता हुआ दिखता है जैसे चलती ट्रेन में बैठे हुए मुसाफिर को जमीन के पेड भागते हुए दिखते हैं। वक्त के साथ सब कुछ बदलता है।

समय ही सृष्टि हैं। कोई भी आदमी इतना अमीर नहीं होता कि वह अपने बीते हुये दिन खरीद सके। हर दिन जितना कीमती होता है उससे अधिक मूल्यवान कुछ भी नहीं है। बीता हुआ समय तो नदी की धारा के साथ आगे निकल जाता है आप इसे किसी कीमत पर वापिस नहीं ला सकते। समय की पाबन्दी में खास बात यह है कि आपको एकान्त के कुछ क्षण मिल जाते है। आप चाहे उठे या ना उठे, दिन तो उगेगा ही। सोचिये आज का दिन फिर नहीं आयेगा। जीवन बर्बाद करने का मुख्य साधन है समय की बर्बादी। सौ किलो सोने की मुद्रा भी एक क्षण का समय नहीं खरीद सकती। इस पृथ्वी पर गुजरे हुये कल जितना लम्बा फासला और कोई नही। यदि आपको अपने जीवन से प्यार है तो समय को व्यर्थ मत गंवाये क्योंकि जीवन इसी से बना है। ईश्वर एक बार में एक ही क्षण देता है और दूसरा क्षण देने से पूर्व उस क्षण को ले लेता है। हम आप और यह संसार की हर वस्तु समय की ही देन है। समय का न तो कोई आदि ही है और न ही कोई अन्त।

समय कभी बूढ़ा नही होता, समय के चेहरे पर न तो कभी झुरियां पडती है और न ही सुस्ती आती है। उल्टे उसके चेहरे पर दिन ब दिन नूर और निखार आता-जाता है। समय अगर बूढा होता तो कब से उसके पांव कब्र मे लटक गये होते। समय कभी नही बुढाता है, वह औरों को जरूर बूढा कर देता है। समय बहुमूल्य है इसे व्यर्थ मत गवाइये। जो समय एक बार हाथ से निकल जाता है, वह दोबारा लौट कर नही आता है। समय की पूजा करो वह तुम्हे पूज्य बना देगा। समय ही

तुम्हारी जिन्दगी को हर पल काट रहा है।

नेपोलियन समय की पाबंदी को बहुत महत्व देते थे। एक दिन उनका एक अफसर दस मिनट देरी से पहुंचा। नेपोलियन ने देर से आने का कारण पूछा तो उसने बताया- मेरी घड़ी दस मिनट लेट है। नेपोलियन ने कहा- तुम अपनी घड़ी बदल लो, नहीं तो मैं तुम्हें बदल दूंगा।

जिस प्रकार धुरी के सहारे पहिया चलता है, वैसे ही समय के सहारे संसार चलता है। वह सदा युवा और नवीन रहता है। उसने सब कामों को एक सीमा में बांध रखा है। परमात्मा, आत्मा और प्रकृति को छोड़कर सभी वस्तुएं काल के बंधन में बंधी हैं। वह समस्त प्राणियों के प्रति समान है, वह केवल अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है। जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, उन्हीं का वह अंत करता है। काल ही समस्त शरीरधारियों का जीवन भी है। कोई भी विद्वान, दुष्ट, आतंकी, भ्रष्टाचारी और साधारण मनुष्य उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। यह ऐसा अक्षय धन है जिसे बांटने में ईश्वर ने कोई पक्षपात नहीं किया है। यह सबके लिए समान है- चाहे इंसान किसी भी स्तर का हो। धनवान हो या निर्धन, विद्वान हो या मूर्ख या फिर किसी भी संप्रदाय का हो। इसकी विशेषता यह है कि न तो इसे घटाया जा सकता है और न ही बढ़ाया जा सकता है। धन तो घट सकता है, पर समय नहीं घट सकता। संसार में सभी वस्तुओं का मूल्य है लेकिन समय अमूल्य है।

जो कालज्ञ होते हैं, वे समय की महत्ता खूब पहचानते हैं। ऐसे लोग समय का सदुपयोग करना जानते हैं। जब सारी दुनिया सो रही होती है, वे जागकर परिश्रम करते हैं। अनेक महापुरुषों ने जेल में रहकर समय का पूरा लाभ उठाया और कई ऐसे ग्रंथ रचे, जो आज भी पथ प्रदर्शन करते हैं। संसार की प्राकृतिक व्यवस्था हमें समय पालन का उपदेश देती है। सूर्य, चंद्र, पृथ्वी की गति, ऋतुओं का परिवर्तन, ये सभी हमें समय पालन और नियमबद्धता के लिए प्रेरित करते हैं। इसीलिए मृत्यु का नियम है कि वह इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि किसी ने अपना काम पूरा कर लिया है या नहीं। हमारे वेद शास्त्र, मनीषी यही शिक्षा देते हैं कि वर्तमान में ही समय का सदुपयोग करते हुए निश्चित कार्य को निश्चित समय में करना लाभकारी है। जिन्हें जीवन के वास्तविक मूल्य का ज्ञान होता है वे समय के महत्व को समझते हैं।

जीवन में समय देने से धन मिल जाता है, किंतु धन देने से समय नहीं मिलता। यदि समय पूरा हो चुका है तो लाखों, करोड़ों रुपये पास रहने पर भी हमें मरना होता है। लेकिन हमारी उम्र बाकी है और हमारे पास कौड़ी भी न हो, तो भी हम जी सकते हैं। हमारे जीवन का आधार विचार समय का सदुपयोग है न कि धन का संग्रह।

समय से ही जीवन बना है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम समय का पूरा-पूरा सदुपयोग करें। हमारा समय धन से भी ज्यादा कीमती है। कहते हैं कि खोया हुआ धन और खोया हुआ स्वास्थ्य पुन: प्राप्त हो सकता है, परंतु खोया हुआ समय पुन: प्राप्त नहीं किया जा सकता। समय सबसे मूल्यवान वस्तु है। उसे बड़ी मितव्ययता से खर्च करना चाहिए। जितना आप अपने समय रूपी धन को बचाकर रखेंगे और उसे आवश्यक एवं उपयोगी कार्यों में लगाएंगे, उतनी ही अपने व्यक्तित्व की महत्ता एवं कीमत बढ़ती जाएगी। यह आप पर निर्भर करता है कि इससे आप कितना लाभ उठा सकते हैं या इसका दुरुपयोग करते हैं। समय व्यर्थ में नष्ट करेंगे तो एक दिन समय भी आपको नष्ट कर देगा।

एक बार हाथ से निकला हुआ समय फिर कभी हाथ नहीं आता। जिस व्यक्ति में समय का सदुपयोग करने की सामर्थ्य नहीं होती, समय उसे खर्च कर देता है। दिन-रात के चौबीस घंटे कम नहीं होते। इस समय को हम किस

प्रकार व्यतीत करते हैं, इसका लेखा-जोखा करते चलें तो हमें ज्ञात हो जाता है कि हम जी रहे हैं या समय को व्यर्थ गंवाकर जीवन नष्ट कर रहे हैं। समय की पाबंदी देती है प्रभावशाली व्यक्तित्व और लंबी उम्र - लगभग दो दशक पूर्व की घटना है। मैं एक व्यक्तित्व विकास कार्यशाला में भाग लेने के लिए गया। जैसे ही स्वागत कक्ष पर पहुंचा, देखा कि सेमिनार रूम का दरवाजा बंद हो रहा था। मैंने भी भाग लेने की इच्छा जाहिर की, लेकिन रिसेप्शन पर बैठे व्यक्ति ने बताया कि कार्यक्रम शुरू होने के बाद हम देर से आनेवाले किसी भी व्यक्ति को कार्यक्रम में भाग लेने की अनुमति नहीं दे सकते। उन्होंने मुझे अगले दिन कार्यक्रम में भाग लेने की सलाह दी। मैंने बस इतना ही कहा कि अब इतनी दूर से दोबारा कौन आएगा और लौट आया।

मैंने अगले दिन किसी भी हालत में न जाने का निर्णय ले लिया था, लेकिन भीतर कशमकश चल रही थी। जो संस्था या व्यक्ति किसी कार्यक्रम के लिए मोटी फीस वसूल करता है और व्यवस्था या समय संबंधी किसी प्रकार की छूट भी नहीं देता, उसमें कुछ विशेषता अवश्य होगी। यह मन में आते ही मैंने अगले दिन जाने का फैसला कर लिया और देर न हो जाए, इसलिए ठीक समय से वहां के लिए चल पड़ा। इसलिए मूल कार्यक्रम के लिए पंजीकरण करवाकर फीस जमा करवा दी। इस घटना से कई बातें साफ होती हैं। लेट हो जाने पर कार्यक्रम में भाग न लेने देने पर संस्था की समय के प्रति प्रतिबद्धता ने उसके प्रति विश्वास ही पैदा किया। इस विश्वास के कारण उन्हें न केवल एक प्रतिभागी या ग्राहक मिला बल्कि भविष्य में भी कई प्रतिभागी/ग्राहक मिले। मेरा अगले दिन समय पर पहुंचना ये सिद्ध करता है कि यदि हम चाहें तो सदैव समय पर पहुंच सकते हैं। लेट होना कोई विवशता नहीं एक आदत होती है। इसी प्रकार से समय की पाबंदी भी एक आदत बनाई जा सकती है। यदि हम अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लें कि हम हमेशा हर जगह समय पर पहुंचेंगे तो कोई कारण नहीं जो हमें लेट कर दे।

हर रोज कुछ मिनट पहले उठकर या तैयार होकर समय पर हर जगह पहुंचने की कोशिश करते हैं तो जीवन में क्रांति आ जाती है। सिर्फ दस मिनट पहले चलने से निश्चित रूप से समय पर पहुंच जाएंगे। समय पर पहुंचने का सबसे बड़ा लाभ ये है कि हम बेकार के तनाव, भागदौड़ और किसी भी प्रकार की दुर्घटना से बच जाते हैं।

यदि हम नौकरी करते हैं तो नियमित रूप से समय पर कार्यालय पहुंचने पर न केवल हमारा काम आधा-अधूरा नहीं रहता बल्कि हमारा सम्मान भी बढ़ता है। सहकर्मियों या मालिक से संबंध अच्छे बने रहते हैं। व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ आपसी संबंधों में सुधार हो जाता है। समय की पाबंदी का सबसे बड़ा लाभ ये है कि हम तनाव से मुक्त रहकर अच्छा स्वास्थ्य और लंबी उम्र पाते हैं।

समय तो सभी को एक जैसा मिला है, कोई उसका मूल्य करके अपनी कीमत बढ़ा लेता है, कोई समय की कीमत ना करके अपनी कीमत गंवा देता है। समय नहीं बीतता, बल्कि हम बीत जाते हैं। समय तो अनादि काल से ज्यों का त्यों खड़ा है, वो नहीं बदलता बल्कि उस काल में जो कुछ भी हो रहा है वो सब बदल जाता है। यह अज्ञानता ही है कि व्यक्ति कहे कि मैं टाइम पास करता हूं। जिसने समय के महत्व को जान लिया वास्तव में उसने जीवन के सार को जान लिया। समय की कीमत जानकर व्यक्ति स्वयं को मिले समय की कीमत करता है और बीतते हुए समय से कुछ ना कुछ सार अवश्य निकालता रहता है। क्योंकि वो जान लेता है कि यदि मैंने समय की कद्र नहीं की तो समय आने पर समय मेरी कद्र

नहीं करेगा। यह नियम है कि जिसकी हम कीमत करते हैं वो हमारी कीमत करता है। ऐसा जानकर व्यक्ति अपना समय बेकार नहीं जाने देता। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि समय को गंवाएं नहीं बल्कि हर पल कुछ न कुछ नया करते रहें, कुछ सीखते रहें या सिखाते रहें या जो सीखा-सिखाया है, उस पर चलते रहें। ऐसा करने से व्यक्ति ऊंचाइयों को पा लेता है।

अध्यात्म में भी वो ही आगे बढ़ सकता है, जो अपने समय की कीमत जानता हो और उस समय का सही प्रयोग करता हो। आलसी लोग कहीं भी आगे नही बढ़ पाते। कुछ लोग कहते हैं कि समय बिताने के लिए करना है कुछ काम, समय काटना मुश्किल हो गया, आज बहुत बोर हो रहा हूं, आज समय कटा ही नहीं आदि-आदि और कुछ लोग कहते हैं कि मरने तक की फुर्सत नहीं है, बिलकुल भी समय नहीं है, मैं तो बहुत व्यस्त हूं आदि-आदि और कुछ लोग ख्यालों में खोये रहते हैं। यदि गौर से देखा जाए तो ये सभी तरह के लोग परेशान से रहते हैं। एक के पास समय ही समय है ओर दूसरा कहता है बिल्कुल भी समय नहीं है। इन्होंने समय का प्रबंधन नहीं सीखा है। अत: समय का प्रबंधन करना आना चाहिए। क्योंकि हमें समय तो मिला है लेकिन हमने उसको प्रबंधन करने का प्रशिक्षण नहीं लिया। यही कारण है कि जीवन बिखर जाता है।

अत: अपनी दिनचर्या को बड़े ध्यान से देखना चाहिये कि ऐसा कौन-कौन सा समय है, जिसको हम इधर-उधर की बातों में या दूरदर्शन देखकर या मोबाइल से चिपककर या आलसी बनकर खराब कर देते हैं। अपने मन को वहां से हटाकर उस खाली समय को अपने बदलाव में लगाना शुरू करे, कुछ नया सीखना शुरू करे, अपने ज्ञान को बढ़ाना शुरू करे, परमार्थ कार्य करना शुरू करे। इससे हमारे अंदर बदलाव आएगा अन्यथा जैसे कल थे, वैसे ही आज हो और आगे भी ऐसे ही रहेंगे।

हमें समय पूरा नहीं पड़ता या मेरा समय ही खराब चल रहा है या किस्मत ने मुझे कैसा समय दिखाया है। किंतु एक महत्वपूर्ण कथन हम भूल जाते हैं, वह यह कि जो समय की कद्र नहीं करते, समय उनकी कद्र नहीं करता। समय को लेकर हमारी मनोस्थिति टेकन फॉर ग्रांटेड वाली ही होती है। या तो हम यह सोचते रहते हैं कि कल क्या हुआ या फिर यह कि कल क्या होगा? क्या हम कभी आज पर प्रेम करते हैं? हम आज में जीना छोड़कर समय व्यर्थ करते हैं। हम आज के दिन के लिए संरक्षित ऊर्जा व काम का समय विचारों के बोझ तले दबा देते हैं। आखिर हम आज से डरते क्यों हैं?

आज कुछ करने की बात हो तो हम घबराते क्यों हैं? हमें आज ही यह प्रश्न स्वयं से पूछना चाहिए। हमें ऐसा क्यों नहीं लगता कि जो हमने तय किया है, वह आज ही और तुरंत किया जाए? घर अस्त-व्यस्त पड़ा है, बाद में ठीक करेंगे। कसरत? कल सुबह से करेंगे। सुबह जल्दी उठना है? कल से कॉलेज समय पर पहुंचना हो तो वह भी कल से। मन लगाकर पढ़ाई करने की शुरुआत? वह भी कल से करेंगे।

यदि हमने किसी का दिल दुखाया है, तो हमें सॉरी बोलना चाहिए। आज बोलें, नहीं, कल परसों बोलेंगे। यह मालूम होने पर भी कि कल कभी नहीं आता, हम कल के भरोसे रहते हैं। हम समय को टेकन फॉर ग्रांटेड लेते हैं और समय हाथ से निकल जाता है। उसकी अपेक्षा आज और अभी शुरुआत करें क्योंकि आज का समय फिर वापस नहीं आएगा। समय बहते पानी की तरह होता है। नदी का पानी जैसे बहकर आगे-आगे चला जाता है, ऐसे ही एक बार गया समय वापस नहीं आता। अत: जो करना है, आज, अभी करें। इसके लिए कल की प्रतीक्षा न करें क्योंकि कल कभी नहीं आता।

समय बड़ा कीमती है। इसे कोई नहीं खरीद सकता। समय धन है। यह बिल्कुल सही है लेकिन क्या हम समय को

उतना सम्मान करते हैं? जितना कि पैसे का करते हैं। कुछ लोग मिनटों को बचाने के लिए घंटे नष्ट कर देते हैं? और कुछ लोग पैसों को बचाने के लिए जिंदगी को खत्म कर देते हैं। कुछ अच्छा करने को कहो तो लोग कहते हैं- क्या करें, समय नहीं मिलता, समय कभी मिलेगा नहीं, समय में से समय निकालना पड़ता है। जैन मुनि जिनके पास सोने की जंजीर वाली घड़ियां नहीं होतीं। वे समय के सबसे ज्यादा पाबन्द होते हैं। सूरज की घड़ी से उनका वक्त तय होता है। वे चलते-फिरते समयसार हैं।

वक्त गतिशील हैं। वक्त बदलता रहता है। घड़ी के कांटे चलते रहते हैं। आदमी जन्मता है, जीता है, मर जाता है। मौत के दफ्तर में छुट्टियाँ कहाँ होती हैं। समय की कटोरी कभी खाली नहीं होती। चाहे जितना निकालो। बस इस अक्षयपात्र की पहिचान होनी चाहिए। वक्त को बदलने में देर नहीं लगती है। बुरा वक्त भी नहीं थमता। आज वक्त उनका है, सब्र रखो कल वक्त आपका भी होगा।

आज के प्रतिस्पर्धात्मकयुग में समय का बड़ा महत्त्व है। समय का सदुपयोग मूर्ख को विद्वान, रंक को राजा और पापी को धर्मात्मा बना देता है। समय के अनुसार ही व्यक्ति को आचरण करना चाहिये। विद्वान व विचारशील मनुष्य अपने समय को सबसे अधिक मूल्यवान समझते हैं। मूर्ख और अविचारशील व्यक्ति का समय सोने, खाने, पीने, लड़ाई-झगड़ा करने अथवा फालतू बकवास करने में व्यतीत होता है। उन्हें संसार में अच्छा काम करने का समय नहीं मिलता। उन्हें न उन्नति की उत्सुकता रहती है और न अवनति के प्रति घृणा।

जो व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र अपने समय का सदुपयोग करते हैं वे ही विश्व में उन्नति को प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र अपना समय पारम्परिक कलह, विलासिता और आलस्य में गंवाते हैं, वे सदा निन्दा के पात्र बनते हैं तथा उनके लिए विश्व में न तो अच्छे गुणों की सृष्टि हुई है और न ही सद्भावनाओं का जन्म। वास्तव में भारतीयों के पास समय की अधिकता है और काम का अभाव। इनके समय का अधिकांश भाग गप-शप करने, आमोद-प्रमोद अथवा इधर-उधर की बातों में बीत जाता है।

वास्तव में समय के सदुपयोग की आवश्यकता मनुष्य को जीवन पर्यंत रहती है और समय का सदुपयोग ही वास्तव में सम्पूर्ण जीवन की सफलता है।

सफलता प्राप्त करने के लिए सिर्फ लक्ष्य साधना ही आवश्यक नहीं बल्कि उसके पीछे कई सुव्यवस्थित कार्य होते हैं जिनको सही तरीके से मुकम्मिल करना आवश्यक है।

आज जिसे भी देखें, यही कहते पाया जाता है कि समय ही नहीं मिलता। आज हमारे पास अपने मित्रों-संबंधियों को पत्र लिखने के लिए समय नहीं है, पड़ोसियों के सुख-दुख में शामिल होने के लिए समय नहीं है, यहां तक कि यह देखने के लिए भी समय नहीं है कि हमारे अपने बच्चे क्या कर रहे हैं, कहां जाते हैं, किसकी संगत में रहते हैं। माना कि आज मशीनी जिंदगी ने भागदौड़ को बहुत व्यस्त कर दिया है और ऊपर से यह दूरदर्शन एक पल भी अपने सामने से हटने की इजाजत नहीं देता, फिर भी अगर हम चाहें तो इसी समय में से न केवल अपने जरूरी कामों के लिए समय निकाल सकते हैं बल्कि कुछ नया करने के लिए भी समय बचा सकते हैं।

क्षण- समय के पैर नहीं पंख होते हैं। समय चलता नहीं उड़ता है। समय रहते तलाश न की तो जीवन लाश बन कर

रह जायेगा। जीवन का हर क्षण सार्थक करो, क्योंकि समय किसी का इंतजार नहीं करता। समय पर समय का सदुपयोग न किया तो पीछे पछताना पडता है। पछताने से कुछ न होगा। क्षणभर भी प्रमाद मत करना। क्षण से मिनिट, मिनिट से घंटे, घंटे से दिन, दिन से माह, माह से वर्ष और वर्ष से सदियाँ बनती है। यदि क्षण का महत्व हमें समझ में आ जावे और हम क्षण को सुधार पायें तो हमारा जीवन सार्थक कर सकते हैं।

काल- जैसे समुद्र अथाह और अपार है, वैसे काल भी वारिधि है। जिसका छोटा घड़ा है, वह समुद्र में से उसी में पानी भर लाता है। उसे एक घड़ा पानी कहता है, जिसका घड़ा बड़ा है वह बड़ा घड़ा भर लेता है। स्वयं जल में कोई नाप नही कोई परिमाण नहीं। ऐसे ही काल का परिमाण है। सूर्योदय से सूर्योदय तक के समय को हम दिन कहते हैं। कोई उसे एक पक्ष कहता है, कोई उसे कल्प कहता है। दिन, रात्रि, वर्ष, कल्प, ये सब प्राणियों की कल्पना है। काल में ये सब कुछ नहीं। वह तो सदा एकरस रहनेवाला अनादि, अविभक्त और नित्य है। उसमें खण्ड नहीं, भाग नहीं। वह तो एकरस रहकर क्रीड़ा कर रहा है। प्राणी उसे लेकर मर रहे हैं, कट रहे हैं। उस पर विजय पाना चाहते हैं, किन्तु भगवत् भक्तों तथा विज्ञानियों को छोड़कर उस पर आज तक किसी ने विजय प्राप्त नहीं की है, वह सबको अपने गाल में डालकर निगल रहा है। सबको निर्दयता के साथ चर्वण कर रहा है। जिन्हें खाता है, वे रोते हैं। दूसरे हँसते हैं, अब इतने बड़े हो गये। वे भूल जाते हैं हमारे सिर पर यह मुँह बाये विकराल काल खड़ा है, एक दिन हमको भी यह निगल जायगा। यह जानते हुए भी लोग अन्धे बने हुए हैं इस ओर ध्यान नहीं देते, काल की गति को नहीं निहारते। यही मायेश की माया है, यही दैव की गुणमयी विचित्र लीला है। काल की तो गणना होती नहीं, काल का विभाग भी नहीं, हम लोग अपनी सुविधा के लिये काल को विभक्त कर लेते हैं। यह एक दिन हुआ, यह पक्ष हुआ, यह महीना हुआ, यह अयन हुआ, यह वर्ष हुआ, यह युग हुआ, यह चौकड़ी, यह मन्वन्तर या कल्प हुआ। स्वयं काल में तो ये भेद हैं नहीं। अन्न की राशि पड़ी हैं। कोई किसी पात्र से कोई किसी नाप से उसे तोलते हैं, नापते हैं। स्वयं कल्पना कर लेते हैं यह सेर भर हुआ, यह मन भर हुआ, किन्तु अन्न में ऐसा कोई विभाग स्वयं नहीं हैं। हम मनुष्य जिसे एक दिन कहते हैं, उसमें बहुत से ऐसे सूक्ष्म जीव हैं जो अनेकों बार मर जाते हैं, अनेकों बार जन्म लेते हैं, हमारा एक दिन उनके लिये अनेक जन्मों के बराबर है। हम जिसे शुक्ल और कृष्ण पक्ष कहते हैं पितरों का वही एक दिन और रात्रि है। हम लोग जिस १२ महीने के समय को एक वर्ष कहते हैं। देवताओं का वह एक दिन है। ७१ बार से कुछ अधिक चारों युग बीत जायँ तो वह मनु की आयु अर्थात् १०० वर्ष के समान हैं। चारों युग सहस्त्र बार बीत जायँ तो वह ब्रह्माजी का एक दिन है। भगवान का वह एक निमेष भी नहीं है। इस प्रकार काल की सबने अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार कल्पना कर ली है। एक पक्षी १० बिन्दु पानी पीता है, उसका भी पेट भर जाता है, हाथी १० घड़ा पी जाता है, अगस्त्यजी पूरे समुद्र को ही सोख गये फिर भी उनका पेट नहीं भरा। जैसा पात्र होता है उसी के अनुसार वह वस्तु न्यून और अधिक की कल्पना करता है। ऋषियों के लिये अंशावतार, मनु और मनु पुत्रों के लिये १०-२० हजार वर्ष का समय कुछ नहीं है, किन्तु साधारण मनुष्य सत्ययुग में ४०० वर्ष जीते हैं, कलि में १०० वर्ष। काल बँधा नहीं हैं। अपनी-अपनी कल्पना से उसे हमने बाँध लिया है, जैसे कुएँ का मेढक कुएँ को ही संसार समझता है उसी प्रकार हम १०० वर्ष की आयु को ही बहुत समझते हैं। यही भगवान की क्रीड़ा है। यही कालस्वरूप श्रीहरि की मोहिनी माया है,

इसी में भूलकर प्राणी मैं मेरा, तू तेरा करता रहता है।

काल की गति अव्याहत है। यह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। प्राणी प्रमत्त होकर नाना कार्यों में लगे रहते हैं। किन्तु काल अप्रमत्त भाव से अपना कार्य करता रहता है।

मन में जब तक अत्यधिक पाप रहते हैं, तब तक शुभ कर्मों में प्रवृत्ति ही नहीं होती। पापात्माओं की पापों में और पुण्यात्माओं की पुण्य कार्यों में स्वभाविक ही प्रवृत्ति होती है। जब भगवत् कृपा से पापों के क्षय का समय सन्निकट आ जाता है तब वैसे ही बानिक बनने लगते हैं, शत्रु मित्र बन जाते हैं और अपकारी उपकार करने की बात सोचने लगते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियाँ अनुकूल होने लगती हैं और दुर्भाग्य हटकर सौभाग्य का पदार्पण होने लगता है। इसी को कहते हैं काल का प्रभाव।

प्राणी न बली है न निर्बल। काल ही उसे कभी बलवान् बना देता है, कभी निर्बल कर देता है। ऐसा न होता तो बलवान पुरुषों की सदा विजय ही हुआ करती। निर्बल सदा हारा ही करते। संसार में अर्जुन से बड़ा बली कौन था, जिसे ग्रामीण भीलों ने लाठियों से परास्त कर दिया। उग्रसेन ने कभी कल्पना भी न की होगी, कि अब मैं फिर राजा बन जाऊँगा। जिसे अपने अत्यन्त बलवान और सगे पुत्र ने ही बन्दी बना लिया है, उसका छुटकारा तभी हो सकता है, जब कंस से भी कोई बली आकर इसे मारे। जो कंस को मार सकेगा, वह स्वयं ही राज्य सिंहासन पर बैठेगा, इसलिये उग्रसेन राज्य की आशा खो चुके थे, किन्तु समय के प्रभाव से वे ही फिर समस्त यादवों के सम्राट बने। इस सब कारणों से यही सिद्ध होता है कि बल पौरुष सदा काम नहीं देता। काल के प्रभाव से कभी-कभी बली भी हार जाते हैं और कभी निर्बल भी जीत जाते हैं।

बल और अबल को बनानेवाला काल ही है। जब तक जिसका विजय का समय होता है, तब तक वह विजयी होता है, समय समाप्त हो जाने से वही पराजित हो जाता है।

काल को जिससे जो कराना होता है, बलपूर्वक उससे वही करा लेता है। जिस समय जैसा होना होता है वैसी ही बुद्धि बन जाती है। विनाशकाल में सभी बातें विपरीत हो जाती हैं। काल अनादि है अनन्त है। आप काल की कितनी भी बड़ी सीमा क्यों न बाँध लें एक-न-एक दिन वह अवधि अवश्य हो जायगी। इसीलिये एक बार काल ने कहा था- तुम मेरी सीमा करो, मैं आ ही रहा हूँ। नियत अवधि का एक-एक दिन बड़ा ही महत्व का होता है, नित्य ही यह स्मृति बनी रहती है, आज इतने दिन बीत गये, इतने दिन शेष हैं। जब अवधि पूरी हो जाती है, तब सिर से एक प्रकार का भार-सा उतर जाता है। मनुष्य अपने को स्वतन्त्र अनुभव करने लगता है।

चाहे कोई प्रमाद भले ही करे, किन्तु काल कभी प्रमाद नहीं करता। वह अप्रमत्त भाव से अपना कार्य करता रहता है। सब संसार काल के अधीन है, काल के विरुद्ध कोई भी कुछ करने में किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकता। काल समस्त बलवानों से श्रेष्ठ बलवान है। सब शासकों से श्रेष्ठ शासक है। उसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। काल भगवान का ही स्वरूप है। भगवान की इच्छा का ही पालन करता है। भगवान के रुख को ही देखकर व्यवहार करता है। भक्त और भगवान को छोड़कर सम्पूर्ण संसार काल के अधीन हैं।

ये क्षण दुख के हों या सुख के, जीवन में संतुष्टि और आत्म कल्याण की कामना के साथ इन्हें सार्थक मानकर स्वीकार करना चाहिए। जिसने इस प्रकार से जीवन जीना सीख लिया, उसे जीवन के आनंद की अनुभूति पाने से कोई रोक नहीं सकता।

रीतिरिवाज-परम्परायें, प्रथायें, मान्यतायें

जीवन अपने तरीके से जीने का हर व्यक्ति का उसका अपना अधिकार है। यह परम्परायें, रीतिरिवाज, मान्यतायें इत्यादि सब उसीका अंग है। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि वह इनको माने या नहीं माने। रीतिरिवाज हर समाज वर्ण, संप्रदाय, पंथ अपनी सुख सुविधाओं के अनुसार होते है। यह कोई शाश्वत या सार्वभौम ईश्वरप्रदत्त नियम नहीं है। यह सिर्फ मनुष्यद्वारा बनाया हुआ काल्पनिक नियम है जो क्रियान्वित किये जाते है। इसका सम्बन्ध कोई धर्म या ईश्वरप्राप्ति से सम्बन्धित नहीं होता है। न ही यह कोई जीवन जीने के तरीकों में से है। अधिक से अधिक यह मनोरंजन में चित्त की प्रशंसा, उद्विग्नता के साधन हो सकते है। न ही यह शास्त्र सम्मत, पुराणों से प्रतिपादित और न ही वेदों ने इनका कहीं निरूपण किया है।

हवा की दिशा बदलते ही जिस प्रकार ध्वजा अपनी फहरने की दिशा बदल देती है, उसी प्रकार निमित्त बदलने पर तथा परिस्थिति पलटने पर मन अपनी मान्यताएं बदलता रहता है और मान्यता बदलने के साथ ही जीवन-शैली बदल जाती है।

परंपरा से चली आती अनेक मर्यादाओं को सामान्य लोग, मन से कहीं असहमत होते हुए भी, ढोते चले जाते हैं। जब कोई क्रांतिकारी मौलिक व्यक्तित्व उन मर्यादाओं पर प्रहार करता है, तभी वे मर्यादाएँ टूटती हैं और जन सामान्य उनका उल्लंघन कर पाता है।

अपने जीने का तरीका हम चुनें औरों का तरीका उन्हें ही चुनने दें। मैंने चाहे किसी भी धर्म में जन्म लिया हो, सभ्य समाज के एक सदस्य के रूप में मुझे यह अधिकार है और होना चाहिए कि मैं उस धर्म पर सवाल उठाऊं, उसे छोड़ दूं, दूसरा धर्म अपना लूं, या सभी धार्मिक मान्यताओं को ठुकरा दूं और इनमें से कुछ भी ठीक न लगे तो अपनी पुरानी धार्मिक मान्यताओं में वापस लौट आऊं। समस्या तब होती है जब मैं किसी और की पसंद पर अपनी पसंद की नैतिक श्रेष्ठता का दावा थोपता हूं।

जीवन प्रवाह है, सब कुछ मान्यता है। मामला चाहे धर्म का हो या विचारधारा का या किसी और चीज का, मैं जिस भी मान्यता को चाहूं, अपना सकता हूं। शर्त बस यह है कि उससे दूसरों का नुकसान न होता हो। उदाहरण के लिए पुरुष और स्त्री का एक-दूसरे की ओर आकर्षित होना एक तरह की सेक्शुअल पसंद है। यह किसी को उन लोगों के मुकाबले नैतिक श्रेष्ठता का हकदार नहीं बनाता, जिन्होंने वयस्क स्थिति में आपसी सहमति के साथ समलैंगिकता को चुना है।

साफ है कि मैं अपराध को अपनी जिंदगी का चयन नहीं बता सकता, क्योंकि यह दूसरों के लिए सीधे तौर पर नुकसानदेह है। लेकिन नास्तिक होना, या स्वतंत्र सोचनेवाला होना या किसी खास तरह की सेक्शुअल पसंद होना भी नैतिक तौर पर गलत बताया जाता है। जीवन का चुनाव के साथ नैतिकता का यह घालमेल ही दुनिया में बढ़ती असहिष्णुता नाम की आध्यात्मिक बीमारी की जड़ है। एकमात्र नैतिक मानदंड, जो हम विभिन्न चयनों पर लागू कर सकते हैं, वह है दूसरों को उससे होनेवाला वास्तविक नुकसान, न कि हमारा काल्पनिक नुकसान। अगर मैं किसी फिल्म या किताब या विचार या भोजन पर इस कारण पाबंदी लगाना चाहता हूं कि उससे मेरी धार्मिक या सामाजिक संवेदना को ठेस पहुंचती है तो मुझे अपने आप से यह सवाल करना चाहिए कि क्या औरों के चयन को अपराध बताकर उन पर नैतिक श्रेष्ठता हासिल करने की मेरी कोशिश उचित है? खासकर तब, जब इसकी परिणति उस खास चयन से जुड़े लोगों के खिलाफ हिंसा में हो सकती हो? सबक हमारे लिए यही है कि अपने जीने का तरीका हम पूरी आजादी से चुनें, पर इसको औरों के लिए नैतिकता का मानक न बनाएं।

प्रेम-अनुराग-प्यार, क्षमा, स्नेह, वात्सल्य

भक्ति और प्रेम कभी सौदा, व्यवहार और शर्त नहीं करते।

प्रेम और करुणा आवश्यकताएं हैं, विलासिता नहीं है। उनके बिना मानवता जीवित नहीं रह सकती।

प्रेम- अनुराग-प्यार- न जाने कौन सा जादू है इन ढाई अक्षरों में कि पढ़ते, सुनते या बोलते ही रग-रग में शहद की मधुरता दौड़ने लगती है। जिसे हुआ नहीं उसकी हार्दिक इच्छा है कि हो जाए, जिसे हो चुका है वह अपनी सारी कोशिश उसे बनाए रखने में लगा रहा है। प्रेम, प्यार, इश्क, मोहब्बत, नेह, प्रीति, अनुराग, चाहत कितने-कितने नाम और अर्थ चरम गहनता के स्तर पर मोहक, मादक और मधुर। वर्तमान परिवेश में प्यार जैसा शब्द उस सुकोमल आत्मीयता की सहज प्रतीति नहीं कराता, जो वह अतीत में कराता रहा है और आज जिसकी उससे अपेक्षा है।

जो इस विलक्षण, सुकुमार, स्निग्ध अनुभूति की नाजुक पगडंडियों से गुजर चुका है, वही जानता है कि प्यार है क्या? कभी नर्म नन्हीं हरी दूब का शीतल अभिस्पर्श है तो कभी शुभ चंद्रमा की सौम्य ज्योत्स्ना। इस विराट आकाश को प्रिय के सानिध्य में थामकर ही जाना जा सकता है कि कितनी मंदाकिनियां इसमें आलोड़ित हो रही हैं। सच्चा प्यार दैहिक आकर्षण कतई नहीं है बल्कि प्रिय की एक झलक मात्र देखने की गुलाबी आकुलता है प्यार। उसकी अनुभूति (अहसास) को स्मृति में लाने की केसरिया ललक है प्यार। उसकी आवाज सुनने को तरसते कानों की रक्तिम गुदगुदी है प्यार। उसके रुमाल की खुशबू में भीगा हुआ जामुनिया मन है प्यार। उसकी मुस्कान के लाल छीटें पर दिल में गुलाल की उद्दाम लहरों का उठना है प्यार। उसके पास से गुजरने पर नीली धड़कनों का रुक जाना है प्यार। उसकी गहरी आंखों से झरती भूरी-भूरी प्रशंसा पर पसीने से सराबोर हो जाना प्यार है। उसकी बादामी फुसफुसाहट पर दिल में चहक उठने वाली चंचल चिड़िया है प्यार। उसके पहले उपहार से चमकीली आंखों की बढ़ जाने वाली लजीली रौनक है प्यार। सूखे हुए फूल की झरी हुई पांखुरी है प्यार। किताब के कवर में छुपी चॉकलेट की पन्नी भी प्यार है और बेरंग, घिसा हुआ लोहे का छल्ला भी। प्यार कुछ भी हो सकता है, कभी भी हो सकता है। बस, जरूरत है गहरे-गहरे और गहरे अहसास की। इतना गहरा कि उसकी पवित्रता का प्रकाश रोम-रोम से फूटकर बह निकले। प्यार पवित्र होता है, जैसे हवन की सुगंधित समिधा जिसमें जौ, तिल, गुगल, कपूर, घी, शकर, चावल और प्राकृतिक बूटियों की शुद्धता निहित होती है। प्यार पवित्र है, जैसे दुल्हन की हथेलियों पर सजी मेहंदी, प्यार जीवंत और झंकृत है मानो दुल्हन की कुंकम से रच-पच एड़ियों में सजी रुनझुन करती चांदी की मोटी पायल। प्यार का अर्थ सिर्फ और सिर्फ देना है, ऐसा कि जिसमें सब कुछ देकर भी लगे कि कुछ नहीं दिया।

प्यार किसी की पूर्णत: पा लेने की स्वार्थी मंशा नहीं है बल्कि सुशांत एकांत में एक-दूजे को निर्निमेष दृष्टि से देखते रहने की भोली इच्छा है प्यार। तंग कपड़ों में मोटरसाइकल पर अपने साथी से लिपट जाना नहीं है प्यार, बस एक-दूसरे की मर्यादा का आदर करते हुए सुरक्षित घर पहुंचने की सुशिष्ट चिंता है प्यार। उधार लेकर उसके पसंदीदा उपहार खरीदना नहीं है प्यार, अपनी कमाई से खरीदा हुआ भावों से भीगा एक सुर्ख गुलाब है प्यार। बेधड़क, बेखौफ आई लव यू का उद्घोष नहीं है प्यार, बल्कि यही तीन शब्द कहने में कंठ का सूख जाना, शरीर का कांपना ही है प्यार। जब इतना ही खूबसूरत है प्यार, तब क्यों टूटता है और टूटकर बिखरता है किरचों-किरचों में, कभी फिर न जुड़ पाने के हालात में। शायद वह प्यार होता ही नहीं है क्योंकि प्यार तो मन में एक बार बसी छवि की ऐसी अनुभूति है, जो शाश्वत होती है। समय

के चिन्ह भी फिर जिस पर दिखाई नहीं देते, यहां तक कि दैहिक परिवर्तन भी नहीं। प्यार यदि सचमुच प्यार ही है तो समय बीतने पर उसका रंग और गहराता ही है, धूमिल नहीं होता है क्योंकि लंबे समय तक साथ रहने के बाद एक-दूसरे को देखा नहीं जाता बल्कि अनुभूत किया जाता है, हृदय की अतल गहराइयों में। सर्वांगीण अंतरंगता के साथ जो लोग एक-दूसरे के साथ रहते हैं, वे एक-दूसरे में अंशत: समाहित हो जाते है।

प्रेम में दोष नहीं दीखते। जहाँ दोष बुद्धि है वहाँ प्रेम नहीं। यदि हमें दोष ही देखने की आदत पड़ जायगी जो संसार में सभी में दोष-ही-दोष दिखायी देंगे। प्रेम का मतलब दो व्यक्तियों, परिवारों के प्रेम से नहीं है बल्कि प्रेम अपने में संपूर्ण मानवता को समेटे हुए है। प्रेम विराने को गुलशन बना देता है। प्रेम इंसान को भगवान बना देता है जहां प्रेम है, वहीं परमात्मा निवास करते हैं, सुख व समृद्धि होती है। प्रेम दुनिया की हर समस्या का समाधान है। प्रेम शाश्वत है, प्रेम ही ईश्वर है। प्रेम ने इस दुनिया की संरचना की है और प्रेम ही संचालन कर रहा है। प्रेम सत्य है, शिवम है सुंदर है अर्थात् अपने आप में संपूर्ण है और सारी सृष्टि में बसा हुआ है। प्रेम में ईर्ष्या, क्रोध, बैर, छल कपट, लोभ, स्वार्थ, हिंसा, भेद-भाव आदि का कोई स्थान नहीं होता तथा प्रेमी इन सारी बातों को भुलाकर प्रेम का रस्वादन कर गद-गद हो जाता है और आनंद से सरोबार हो जाता है। प्रेम लेखनी का विषय नहीं है, न ही तर्क-कुतर्क का बल्कि अनुभूति का विषय है, ईश्वर की अनुभूति का दूसरा नाम प्रेम है। सांसारिक प्रेम- प्रेम नहीं है अपितु मोह है, ममता है जिसके कारण स्वार्थ, लोभ, लालच वगैरहा बुराइयां पनपती हैं। असली प्रेम नि:स्वार्थ भावना से ओत-प्रोत है। सबसे ऊंची प्रेम सगाई। दुर्योधन के मेवा त्यगो साग विदुर घर खाई। प्रेम ही स्वर्ग है, ललित कलाओं से परिपूर्ण एक सुंदर दृश्यावलोकन है। मनुष्यत्व का दूसरा नाम है प्रेम करना, बिना भेदभाव के सभी प्राणियों को समदृष्टि से देखना। प्रेम करना ही सच्ची मनुष्यता है जिससे मानवता की बगिया महक उठती है। संत कबीर जी कह रहे हैं- साधो सो सतसुख मोहि भावे। संत प्रेम का भर-भर प्याला आप पिवै मोहि प्यावे।। अर्थात् मुझे तो वही संत सद्गुरु प्रिय लगते हैं, अच्छा लगते जो प्रेम का प्याला भर-भर कर स्वयं तो पीते ही हैं और अपने शिष्यों को पिलाकर प्रेमी बना देते हैं, प्रभु की दिवानगी का स्वाद मिल जाता है जो कि आनंद से परिपूर्ण है। अतैव प्रेम एक आनंद रस है, प्रेम एक नशा है, दीवानगी है जो जीवन-पर्यंत एकरस, एक समान रहती है, घटती नहीं बल्कि बढ़ती रहती है। जीवन में कई रंग होते हैं। ईर्ष्या-द्वेष, नफरत, बुराई रूपी बदरंग तो अच्छाई, आनंद, प्यार वगैरह सुंदर रंग भी जीवन में होते हैं। काले-पीले रंग हरा-लाल भी रंग है, मतलब इन सभी रंगों से जीवन सजा है, कहीं बद रूप, तो कहीं सुंदर रूप में। पर इन सब रंगों से न्यारा, एक अद्भुत व कल्पना से परे रंग है प्रेम का और जिसने भी इस रंग से अपना जीवन रंगा वह सदैव आनंदमग्न रहा है। प्रेम जीवन का अद्भुत रंग है जो काया को ज्योतिर्मय बना देता है। मन की गहराई में ओज भर देता है जिससे हृदय प्रकाशमय, रंगीन रोशनी से जगमगा उठता है और इसी प्रेम के खंडित होने का तात्पर्य है क्षण मात्र के लिए दूर होना, जिसे विरह कहते हैं। जो प्रभु के प्रेम मे रम जाये वही प्रभु प्रेम विरह को जान सकता है, अन्य नहीं। प्रभु के प्रति भक्त का गहरा तादात्म्य प्रेम को प्रकट कर देता है जो प्रेम ही ईश्वर है। अर्थात् ईश्वर बनाम प्रेम का साक्षात्कार हो जाता है। प्रेम सद्गुरु है, सद्गुरु ही प्रेम हैं। सदगुरु ही प्रेम की सच्ची अनुभूति कराकर जीवन सफल बना देते हैं। कबीर जी ने कहा है- प्रेम-प्रेम सब कोई कहैं, प्रेम न चीन्हें कोय। प्रेम चीन्हें सद्गुरु मिलें, प्रेम कहावै सोय। अर्थात् सद्गुरु ही प्रेम की पहचान कराते हैं जो कि शाश्वत है, अमर है, सच्चिदान्द स्वरूप कहा है। कहा है- प्रेम ही

जीवन का मूल है, प्रेम ही विश्वाधार है। प्रेम ही भगवदाराधना है, प्रेम ही है साध्य एवं साधन।। अर्थात् जीवन का मूल, जीवन का अस्तित्व और यहां तक कि विश्व का आधार प्रेम है और साध्य तथा साधना दोनों ही है। प्रेम की लीला निराली है, सबके अंदर होते हुए भी सबसे अलग है। प्रेम से सच्चा व नि:स्वार्थ प्रेम करनेवाला प्रेमी भी मतवाला है इसलिए प्रेम व प्रेमी का संबंध अक्षुण्ण है, एक रस है, शाश्वत है। ऐसे प्रेम को पाना चाहते हैं तो उनके लिये प्रेम ही प्रेम है।

पृथ्वीके प्रत्येक प्राणीमें प्रेम प्रकृत्यैव परिलक्षित है। प्रेम शब्दका अर्थ है- प्रीति, स्नेह, अनुराग एवं अनुग्रह आदि। वस्तुत: प्रेम हृदयका एक मधुर भाव है, जिसकी अभिव्यक्ति और प्रतीति जीवनमें हम प्राय: पाते रहते हैं। जब कोई प्राणी किसीके विलक्षण लक्षणों, गुणों या विशेषताओंसे आकृष्ट अथवा प्रभावित होता है तो उसके प्रति प्रीति, स्नेह अथवा आदरपूर्ण अनुरागकी स्वाभाविक उत्पत्ति हृदयमें हो जाती है।

प्रेम हरी कौ रूप है, त्यों हरि प्रेम सरूप। एक होइ द्वै यौं लसैं ज्यौं सूरज अरु धूप।।

प्रेम न खेतौं नींपजै, प्रेम न हाट बिकाई। राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ।।

प्रेम गली अति साँकरी, ता मैं दो न समाहिं।।

अपने आपको कभी कभी लगता है कि जीवन में प्रेम बिल्कुल नहीं है। यह सोच कर भी उदासीनता आती होगी कि आपको कोई भी प्रेम नहीं करता। आप अपने आप से पूछे कि क्या आपने कभी स्वयम् से प्रेम किया है ? कभी आपने अपने हाथों को छूकर सहलाया है ? अपने गालों की छुअन को महसूस किया है ? कभी अपनी ऊर्जा को, अपने मन को समझाना चाहा है ? फिर आप दूसरों से प्रेम की अपेक्षा कैसे कर सकते हो कि वे आपसे प्रेम करे ?

स्वयं से प्रेम करना सीखना चाहिये। स्वयम् अपनी और देखिये। स्वयम् से मैत्री करके सम्वाद करिये जो आपने कभी किया नहीं, जिसकी आपको बहुत जरूरत थी। स्वयं के सम्वेगों से, स्वयं की कमियों से मिल कर तो देखिये। एक प्रयोग करके देखिये की प्रेमपूर्ण जीना। प्रकृति से प्रेम कर जीना। आप अपने आस पास की सभी चीजों के प्रति धन्यवाद से भर जाईये। कोई आपको देख कर मुस्कराता है तो मन ही मन उसे कहिये धन्यवाद, कोई यदि आपको देख कर मुँह बनाता है तो भी धन्यवाद। आपका क्या लेकर जायेगा ? फूल के प्रति, हवा के प्रति, सूर्य के प्रति, पेड पौधों के प्रति-बस मन में चलता ही रहे धन्यवाद, यहाँ तक की बेजान चीजों के लिये भी धन्यवाद अर्पण करे।

इससे आप अपने जीवन में एक नया बदलाव पायेंगे। अपने होठों पर एक अलग ही मुस्कराहट पायेगे- सहज मुस्कराहट। अगर आप अपनी आखों में उदासी की बजाय खुशी और चमक लेकर दुनिया के सामने जायेंगे तो आप देखेंगे कि लोग आपकी तरफ आकर्षित हो रहे है, आपसे प्रेम करने लगेंगे। पहले आप अपने स्वयं से प्रेम करना सीखे।

प्रेम किसी खुबसूरत नदी के पानी की तरह झिलमिल करता, बारिश की फुहारों की तरह नाजुक, किरणों की तरह शान्त, प्रेम सितारों की तरह पवित्र, सागर की तरह विशाल, गीली मिट्टी की तरह नरम, औस कण की तरह मुलायम, चान्द की तरह शीतल, हवा के झोके की तरह हल्का होता है। कभी प्रेम को स्वयम् के लिये महसूस तो करो, तुम इसमे वो पाजाओगे जो तुम्हारी सभी समस्याओं को हल कर देगा। प्रकृति से प्रेम करना सीखो। पहले ये तो जानो कि प्रेम क्या है ? प्रेम में गहरे उतरना सीखो। प्रेम में जितना गहरा सम्भव हो छलांग लगावो। यदि आप में प्रेम है और प्रेम में हो तो मुस्कराते हुये मर जावोगे। अपने होठों पर प्रेम चुम्बन करते हुये तुम अलविदा कह सकोगे। तुमने प्रेम किया, तुम जीये इसलिये जीवन में

कोई पछतावा नहीं होगा। तुम्हारा जीवन व्यर्थ में बेकार नहीं गया। तुम खिले, तुम धूप में, हवाओं में, बारिश में नाचे इससे अधिक क्या हो सकता ? यही असीमता जीवन का उपहार है प्रेम !

सम्पूर्ण मानव इतिहास तथा प्रचलित धर्मों का मंथन करने पर हमें प्रेम अमृत ही मिलेगा। कबीर कहते है ढाई अक्षर प्रेम का पढे सो पंडित होय। प्रेम एक भावनात्मक विषय है जिसका सम्बन्ध आत्मा से है, भक्ति तथा श्रद्धा प्रेम के ही प्रौढ़ रूप है। भगवान हमारे भावों में है तथा प्रेम उसे जागृत करता है। जहां प्रेमास्पद सुख के लिये अपने सर्वस्व का परित्याग करने को हम तैयार है वहीं से प्रेम आरम्भ होता है। प्रेम का व्यवहार आध्यात्मिक जीवन की सम्पदा, बुद्धिमत्ता, प्रसन्नता, शान्ति, शालीनता को आपकी झोली मे डाल देगा।

अनुराग यानि अन्तरात्मा में अभिव्यक्त होने वाला प्रेम। जहां दो व्यक्तियों का प्रेम एक साथ आता है और बढ़ता जाता है उसे अनुराग कहते हैं। हल्दी और चूना एकत्र आने पर दोनों अपना रंग छोडकर नया रंग धारण कर लेते है। अनुराग से नया प्रेम ऐसे ही जन्म लेता है। पूरे चांद को देखकर उफनने वाला सागर अनुराग का ही रूप है। बच्चे को देखते ही सीने से लगा लेनी वाली मां अनुराग का ही उदाहरण है। यह जगत मेरा है और मैं इस जगत का हूँ यह विश्वप्रेम भी अनुराग ही है। अनुराग में निष्काम, निस्वार्थ, विशुद्ध प्रेम होता है। वह प्रेम चाहे प्रेमी-प्रेमिका का हो, बालक-माता का हो या भक्त और भगवान का हो।

प्रेम एक बडी शक्ति है, पर पवित्र प्रेम करने के लिये बहुत अधिक शक्ति चाहिये जिसे जागृत करने की आवश्यकता है। प्रेम सार्वभौम है इसकी कोई सीमा नहीं होती। प्रेम एक अनुभूति है जिसके लिये आत्मा में पवित्रता चाहिये। प्रेम करना है तो व्यक्ति के गुणों से, उसकी पवित्रता से प्रेम करो, तुम भी गुणवान और पवित्र बन जाओगे। जब स्वयं से प्रेम करने लगोगे तो अन्य लोग आपसे ईर्ष्या करना छोड देंगे। दूसरों की भावनाओं को ठेस मत पहुंचाओ उनकी भावनाओं का सम्मान करो, आदर करो, लोग आपसे प्रेम करेंगे। प्रेम के बिना जीवन की कल्पना भी असंभव है। प्रेम जीवन के लिये विश्वास रूपी प्राण वायु अनिवार्य है। इसलिये प्रेम करो और आगे बढो।

प्रेम में कोई शर्त नहीं होती है और अपने मन से अपने जीवन लक्ष्य को ओझल न होने पाये। प्रेम में अप्रतिम सौन्दर्य है इसका देह से कोई सम्बन्ध नहीं होता है यह निश्छल है.उज्ज्वल है। जिस प्रेम से किसी को हानि पहुंचे वो प्रेम हो ही नहीं सकता। दु:खों से भरे इस संसार में सच्चे प्रेम की एक बूंद भी मरूस्थल में सागर के समान है। हम जिससे प्रेम करते है हमारा स्वरूप और व्यक्तित्व वैसा ही बन जाता है। सरलता के बिना कोई भी व्यक्ति दूसरों का सच्चा प्रेम नहीं पा सकता। ईश्वर की स्तुति, तीर्थकरों की वंदना और खुदा की इबादत ही सच्चे प्रेम का अर्थ है। हम यह जान लें कि हमारा वास्तविक गुण प्रेम करना है तो मन में द्वेष आ ही नहीं सकता। प्रेम एक संजीवनी शक्ति स्वरूप है। जो आपसे प्रेम करता है उसे दु:ख न पहुंचाये उसको सतत खुशियां देने का प्रयास करें। प्रकृति ने हमें प्रेम की खुशबू प्रदान की है यह हम सब लोगों तक पहुंचाये। प्रेम की कोई धर्म या जाति नहीं होती। प्रेम का धर्म मानवता है और जाति हर प्राणी और प्रकृति है, मानव का स्वभाव भी प्रेम करना ही है इसलिये सबसे प्रेम करो।

प्रेम दो प्रकार का है एक सांसारिक और दूसरा ईश्वरीय। सांसारिक प्रेम परिवर्तनशील है जबकि ईश्वरीय प्रेम अक्षुण्ण है। प्रेम का केन्द्र बिन्दु है आकर्षण और जो प्रेम करता है उसे प्रेमी कहते है तथा प्रेमी में समर्पण जब चरम

बिन्दु का होता है तब प्रेम और प्रेमी का रिश्ता अटूट बनता है। प्रेम के कई प्रकार है जैसे देशीय, देह, यौन, आर्थिक, रिश्तेदारी इत्यादि लेकिन ईश्वरीय प्रेम में कोई प्रकार नही, कोई स्वार्थ की दीवार नहीं बस एक मात्र प्रभु प्रति समर्पण भाव से निहारना और अटूट श्रद्धा व विश्वास की बुनियाद पर अपने इष्ट का हो जाना ही सही प्रेम है। सच्चा प्रेम ईश्वर के प्रति हो तो जीवन सफल हो जाता है।

प्रेम हमारे यहां ईश्वर है। स्वभाविक है कि स्त्री पुरुष में प्रेम होगा ही। यदि कोई स्त्री पुरुष प्रेम न करे तो उसे किसी चिकित्सक के पास ले जाना चाहिये क्योंकि वह मनोरोगी है। वह मनुष्य नहीं बन पा रहा है। लगभग यह सारा समाज, प्रेम, प्रेम विवाह के खिलाफ खडे सब लोग सबके सब मानसिक रूप से बीमार हैं। उन्हे मनोचिकित्सकों से अपना इलाज करवाना चाहिये, नहीं तो ये लोग, यह समाज बिना प्रेम किये ही मर जायेंगे और यह जगत की सबसे बडे विडम्बना होगी। प्रेम और चाहत प्राकृतिक देन है।

जिस क्षण भी यदि आप प्रेम को अस्वीकार करते है, आप मर जाते है फिर तो आप जिन्दा लाश है, चलती फिरती लाश। आप में जीवन की ऊर्जा ही नहीं रही। जो प्रेम नहीं कर सकता भला उसमें जीवन ही कहां है ? जीवन तो प्रेम है। जो एक से प्रेम कर सकता है वही सारे जगत जीवन से प्रेम कर सकता है। यही सत्य है। जो एक से प्रेम नहीं कर सकते वे इस जीवन व जगत से भी प्रेम नहीं कर सकते। इसलिये राम ही केवल प्रेम पियारा। ढाई अक्षर प्रेम का पढे से पंडित होय के भाव जगते है। जिस क्षण भी हमारे या किसी भी समाज में प्रेम का विरोध अलविदा ले लेगा तभी वह प्रेम करना सीख जायेगा तब ही वह जीवित रहेगा नहीं तो वह मरा हुआ ही है।

प्रेम में सौदेबाजी नहीं होनी चाहिये। जहां सौदा होता है वहां प्रेम नहीं होता है। वह तो लेन देन का व्यापार हो गया है। हम प्रेममय नहीं है इसलिये हमें देखना पडता है कौन हमें प्रेम करता है और कौन हमसे नाराज है। प्रेम हमारा स्वभाव ही है तो कोई कैसे भी रहे, हमें क्या लेना देना ? कोई हमसे प्रेम करे तो ही हम उससे प्रेम करते है, अन्यथा उसका तिरस्कार करते है। प्रेम हमारे प्राणों का स्वभाव नहीं बना। हमारा प्रेम केवल प्रत्युत्तर होता है। सच्चा प्रेम तो अन्त:करण से आता है। उसके किसी तरह की शर्त नहीं होती। किसी प्रकार का व्यवहार नहीं होता। प्रेम में कीमत नही मांगी जाती। माँ और शिशु, गुरु और शिष्य, गाय और बछडे की तरह शुद्ध प्रेम होना चाहिये। वही सच्चा प्रेम है।

प्रेम क्या है ? कोई भी दिन या उत्सव मनायें। इस अस्तित्व में सदैव प्रेमोत्सव का संचार पूरी ऊर्जा के साथ होता है। प्रेम ही तो है हर पल प्रकृति के नये फूल खिलते है, धरती मनोयोग से सूर्य की परिक्रमा करती है। सूर्य प्रकाश की वर्षा कर रहा है। मनुष्य प्रतिदिन श्रम में लीन है। बीज से वृक्ष जन्म ले रहे है। बच्चों में निश्छल हंसी विराजमान है। मातायें बच्चों की किलकारियों पर न्यौछावर है, पिता उनके लिये सर्वस्व समर्पित करने को तैयार है। यह सब चक्र प्रेम ही तो है। यह जगत प्रेम से ही चल रहा है। जो शक्ति के पूजक हैं वे प्रेम को शक्ति कहते हैं। प्रेम तो सिर्फ प्रेम है उसे शक्ति कहो या ऊर्जा। काम या यौन बनाओं। इसे मोह कहो। इसे करुणा बनाओ। प्रेम में डूब जाओ। इसके विरोध में खडे हो जाओ। प्रेम शक्ति होता तो आपके विरोध का विरोध करता। प्रेम आपके विरोध में भी समर्पण ही करता है। स्वयम् को मिटा देता है। प्रेम इसलिये सदा विजयी है क्योकि वह कभी विजयी नहीं होना चाहता।

प्रेम पश्चिमी या पूर्वी नहीं होता। प्रेम में जब तक द्वैत है तब तक वह मोह है। जब द्वैत समाप्त हो जाये तो चाहे वह यौन

हो या यौन न हो वहां प्रेम है। यह जिस द्वैत का विरोध है वह सृजनात्मक नहीं है, क्योकि द्वैत के अद्वैत का अनुभव नहीं हो सकता। युवावस्था के साथ ही यौन व प्रेम दोनों को पूरे खुलेपन से समझने की आवश्यकता है। यही समझ का अभाव समाज की समस्या है। गलती हमारी यह है कि यह समझ विकसित होने देने के लिये भी विरोध है। यही कारण है कि हमारे बच्चे युवा अपने प्रेम सम्बन्धों या प्रेम सम्बन्धी विचारों को हमसे छिपाते है। हमारा और उनका संवाद खुलकर नहीं बन पाता। दोनों ओर से संकोच की दीवार खडी है।

बिना प्रेम के एक क्षण यह संसार, यह पूरा अस्तित्व नहीं चल सकता। प्रेम की विशेषता है कि उसे शब्दों, परिभाषाओं, व्याख्यानों में नही समझाया जा सकता। वह सिर्फ अनुभूति व निरीक्षण से ही जाना-समझा जा सकता है।

प्रेम किया जाता नहीं हो जाता है। यह अनुभूति का सत्य है। प्रेम व सौन्दर्य जीवन की दो सर्वोच्च अनुभूतियां है। ये अनुभूतियां ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। यदि प्रेम व सौन्दर्य न हो ! उनकी अनुभूतिया न हो तो मनुष्य होने का कोई अर्थ ही नहीं है। इस समग्र विश्व में हर कोई प्रेम चाहता है। वह किसी से प्रेम करना चाहता है, किसी से प्रेम पाना चाहता है। हम सभी मनुष्य सम्पूर्ण चेतना की मुख्य धारा में है। हम इस मुख्यधारा को यदि नाम देना चाहे तो वह प्रेम ही है। हम सब एक सूत्र में चेतन-अस्तित्व में बन्धे हुये है। यह सूत्र प्रेम ही है। प्रेम सर्वोच्च वैज्ञानिक, सर्वोच्च सत्य है। यह मनुष्य को एक क्षण में बदल देता है। क्रूरतम अपराधी भी प्रेम में एक क्षण में बदल जाता है। प्रेम के सिवा जगत में दूसरा कुछ नहीं है जो मनुष्य को मनुष्य बना सके।

प्रेम को लेकर जो विवाद संवाद होते है वे सब मूर्खतापूर्ण है। उनके कुछ साध्य होता तो अब तक यह जगत प्रेम से इतना भर गया होता कि प्रेम के सिवा कुछ होता ही नहीं। प्रेम को लेकर सिर्फ अनुभूति या निरीक्षण ही सम्भव है। यदि आप इस जगत का, लहलहाते हुये खिले हुये पुष्पों का, मुस्कराते बच्चों का, बहती हुई हवा का, झरते हुये कल कल करने वाले झरनों का, मेहनत करते हुये पसीने से सरोबार मजदूर, गीत गाती स्त्रियां, चहचहाते पक्षियों का, सूर्योदय का क्षण, प्रतिक्षण हो रहे सृष्टि के निर्माण का निरीक्षण करे तो वह प्रेम का ही अनुभव कर सकेंगे। उसे समझ सकेंगे, पा सकेंगे। जैसे मां अपने गर्भ के बच्चे से प्रेम करती है, उसी तरह हम इस समस्त संसार से, समस्त अस्तित्व से प्रेम कर सकेंगे। तब प्रेम स्वयम् व्यक्त होगा। प्रेम को व्यक्त करने के लिये शब्द न तो जरूरी है न ही अनिवार्य या पर्याप्त। प्रेम स्वयम् बहता है आपके अस्तित्व से आपके प्रेम पात्र तक। यही कारण है कि बालक के सामने सैकडो स्त्रियां खडी है फिर भी वह सिर्फ अपनी ही माता से दौड कर लिपट जाता है।

प्रेम को कोई क्या बांध सकता है ? प्रेम क्या बन्धेगा ? प्रेम तो सर्वत्र है, सर्वदा है असीम है, नि:सम हे। प्रेम में डूबना होता है। प्रेम में समग्र संसार, समग्र अस्तित्व को डूबों दे।

मनुष्य का स्वभाव है प्यार और वह किसी न किसी चीज से प्यार करता है और जो चीज उसे सर्वाधिक अतिप्रिय है उससे ही मनुष्य जी जान से प्यार करता है लेकिन सबसे प्यारी चीज क्या है ? वह है अपने आप में जो विधाता ने पहले ही अन्त:करण में रख रक्खी है ताकि बाहर ढुंढना नहीं पडे। हर एक मनुष्य के अन्दर पहले से ही सबसे ज्यादा प्यारी चीज बैठी हुई है तो यदि असली प्रेम ही करना हो तो अपने अन्दर की तरफ मुडो और उस चीज को अपने जीवन में स्वीकार करो तभी तो प्रेम होगा। अपने अन्त:करण से नहीं। अत: जो चीज सचमुच में हमारी है वह अन्दर है बाहर नहीं और अन्दर

सिर्फ, अन्दर मुडना है तथा सच्चा प्रेम करना है जिससे सच्चा सुख व आनन्द प्राप्त होगा।

प्रेममय होने का अर्थ ही यही है कि हम मुक्त हो रहे हैं।

कबीर कहते हैं- जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान। जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिनु प्रान।

अर्थात् जिस हृदय में प्रेम का संचार नहीं, वह हृदय श्मशान के समान है। मृतक के समान है वह व्यक्ति जिसका ऐसा हृदय है। प्रेमरहित व्यक्ति लुहार की भट्टी की आंच तेज करनेवाली उस धौंकनी के समान है जो निर्जीव होने पर भी सांस लेती हुई प्रतीत होती है। सांस लेना जीवित होने का प्रमाण है, लेकिन सांस लेते हुए भी वह व्यक्ति निर्जीव अथवा जड़ पदार्थ के समान ही है जिसके फेफड़ों में ऑक्सीजन व रगों में रक्त के साथ-साथ मन में प्रेम का संचरण नहीं होता। प्रेम जीवन का अनिवार्य तत्व है। प्रेम के अभाव में दुनिया की सारी दौलत बेमानी है। प्रेम संसार की सबसे बड़ी दौलत है, लेकिन यह लेन-देन की वस्तु नहीं।

जब हम प्रकृति से प्रेम करते हैं तो उससे कुछ अपेक्षा नहीं करते, बस आनंदित होते हैं। फूलों को खिलते देखकर, नदियों को बहते देखकर व पर्वतों की हिमाच्छादित चोटियों को देखने मात्र से हम आनंद सागर में डुबकियां लगाने लगते हैं। उनसे किसी प्रतिदान की अपेक्षा नहीं होती। फिर मनुष्य से क्यों हो ऐसी अपेक्षा? प्रकृति से हमें कोई अपेक्षा नहीं होती, लेकिन इसके बावजूद प्रकृति जो देती है वह असीम होता है और अनिवार्य भी। यानी हमें कुछ मिले, इसके लिए अपेक्षा की जरूरत नहीं है। बल्कि बगैर अपेक्षा के जो मिलता है वह कहीं ज्यादा मूल्यवान होता है।

ठीक यही बात प्रेम के साथ भी है। जब हम अपेक्षारहित होकर प्रेम करते हैं तो वह प्रेम हमें मालामाल कर देता है। उस दौलत का अनुभव तो किया जा सकता है, वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रेम एक आनंदानुभूति है। एक रसानुभूति है। प्रेम जीवन का रस है। इस रस के अभाव में जीवन शुष्क है, नीरस है। प्रेम का पोषण ही व्यक्ति को सरस व इस सुंदर संसार को स्वर्गतुल्य अथवा और सुंदर बनाने में सक्षम व समर्थ है।

प्रेम बहुत सरल व सहज है किसी सुंदर फूल को निहारने की तरह। असहजता से ही हम इसे दुर्लभ व अप्राप्य और साथ ही दुखदायी बना देते हैं। किसी सुंदर फूल, प्राकृतिक सौंदर्य अथवा सुहावने मौसम के प्रति लगाव प्रेम ही तो है। प्रकृति के इस प्रेम में हम अनायास ही भोगते हैं, आनंदित होते हैं। वह हमें ऐसा करने से हरगिज नहीं रोकती। रोक भी नहीं सकती। प्रेम में भी किसी से कुछ लेना नहीं होता, बस देना होता है। देना भी कुछ नहीं होता बस करना होगा है। करना भी कुछ नहीं होता बस प्रेममय होना होता है। प्रेममय होने से हमें भी कौन रोक सकता है?

प्रेममय होने का अर्थ है कि हम मुक्त हो रहे हैं। प्रेम बांधता नहीं, मुक्त करता है। प्रेम निरर्थक मानसिक व भौतिक संघर्ष की पीड़ा से मुक्त करता है। उन्मुक्त बना देता है। प्रेम चाहे वह इश्केमजाजी हो या इश्केहकीकी दोनों में ही व्यक्ति आत्मविसर्जन अथवा बेखुदी की हालत में पहुंच जाता है और यही मन की वह अवस्था है जब शरीर में ऐसे रसायनों का उत्सर्जन बढ़ जाता है जो तन की पीड़ा को हरने व उसे प्रफुल्लित करने का कार्य करते हैं। ऐसी अवस्था में ही व्यक्ति परमानंद का अनुभव कर सकता है और संकुचन से मुक्ति पाकर स्वयं का और विस्तार कर सकता है।

प्रेम प्रदर्शन का नहीं अनुभूति और अन्तर्मन में स्मृति का नाम है, त्याग, समर्पण बलिदान, समदर्शिता, संवेदनशीलता, करुण प्रेम के ही स्वरूप है पर दिनों दिन अपने अर्थ और स्वरूप खोता प्रेम शब्द प्यार तक सीमित होते जा रहा है,

जिसकी पहुँच युवक युवती तक रह गयी और ऐसे प्यार के बन्धनों में अन्य पारिवारिक रिश्ते छटपटाने लगे। विकसित हो रही किशोर और युवा पीढी मानसिकता के समक्ष प्रेम का क्षत विक्षत रूप का फिल्मकारों ने ऐसा आभास कराया कि युवापीढ़ी के लिये मानवीय मूल्य अर्थ विहीन हो गये। प्रेम के शब्द कोश में हिंसा जैसे शब्द ही नहीं, वही आज की फिल्मों में प्रेम में असफल नायक आग लगा दूं इस दुनिया को, का दम भरते हुये मारने मरने तक उतारू हो जाता है। प्रेम तो ईश्वर का ही एक रूप है जो भजन शक्ति द्वारा आत्मीयता का अनुभव करता है, वास्तव में प्रेम तो प्रत्येक ईश्वर रचित रचना से करने योग्य है, जब वो घट घट का वासी कण कण मे व्याप्त है तो उसके दर्शन उसके द्वारा निर्मित हर कलाकृति में होंगे ही तभी प्रेम के धर्म में आस्था अटल होगी।

यह प्रेम का देश है प्रेम ही यहां का सन्देश है। प्रेम ऐसा है कि जिसने भारत को दुनिया का हृदय बना दिया है। भारत का यह हृदय प्रेम को आस्था-श्रद्धा, करुणा के रूपों में ढ़ाल कर उनकी ऊर्जा से धडकता रहता है। आम तौर पर मस्तिष्क को दुनिया ने चुना है। पश्चिम के पास निश्चय ही एक जिज्ञासु और बुद्धिमान मस्तिष्क है लेकिन भारत के पास हृदय है इसलिये प्रेम का विरोध इस हृदय का कुछ नहीं बिगाड सकता और यह हृदय ही है जिसके कारण भारत को विश्व में इतनी गरिमा है। दुनिया मस्तिष्क की कठोरता से ऊब रही है। वह हृदय की तलाश में भारत की और दौड रही है। भारत में आकर उसके हृदय को जब प्रेम का स्पर्श मिलता है तो वह शान्ति-सुख महसूस करती है।

भारत में प्रेम आदि काल से सुपूजित है। इस देश में तो काम को विज्ञान और देवत्व तक पहुंचा दिया है। कामदेव व रति के रूप में जो कल्पना भारत में की गई है व अन्यत्र दुर्लभ है। काम विज्ञान के आसनों और प्रयोगों ने महान ग्रन्थों का सृजन किया है। खजुराहो जैसी अमूल्य सम्पदा प्रदान की है।

सम्पूर्ण अस्तित्व या ईश्वरत्व प्रेम में डुबा हुआ है। विवाह का जन्म भी प्रेम से है। प्रेम सदैव सकारात्मक, सृजनात्मक व उन्नायक है और उसे मोह से जोडने की भूल नकारात्मक, विध्वंसक व पतनशील है। यही मोह और प्रेम में सूक्ष्म अन्तर है।

प्रेम करना मनुष्य की सहज प्रवृति है। मनुष्य का जन्म भी दो (स्त्री-पुरुष) के प्रिय मिलन से होता है। वह पहले अपने शरीर से प्रेम करता है। धीरे-धीरे संसार को जान लेता है। वह माता-पिता, सम्बन्धी, अध्यापक, मित्र-परिवार, उच्च ध्येय, समाज, राष्ट्र, ईश्वर, गुरु, आत्मा से प्रेम करते करते विश्व प्रेम पाने की इच्छा करता है। अपने सुख की उसकी इच्छा स्वाभाविक है, इसलिये वह सुख से प्रेम करता है। द्वेष करना उसकी जन्म से प्रवृति नहीं होती। बाहरी जगत के स्वार्थी, विकृत व्यक्ति, विचार और प्रवृत्तियों के कारण वह औरों से घृणा करने लगता है। द्वेष, मत्सर ये प्रवृतियां मनुष्य पर बाहरी कारणों से थोपी जाती है। अन्तरआत्मा की सहज प्रवृति प्रेम ही होती है।

प्रेम जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। आदमी ही नहीं जानवर भी प्रेम के भूखे होते है। प्रेम से थपथपाने पर बिगडैल घोडा भी शान्त हो जाता है। प्रेम से तो खूखार कुत्ता भी दुम हिल हिलाने लगेगा। प्रेम की भाषा जानवर समझते है लेकिन आदमी तो प्रेम का तर्पण ही करने में लगा है। आदमी का हाल मजेदार है। आदमी माल जिसका खाता है, गुण जिसके गाता है उसी की पीठ में कटार भौकता है। प्रेम की भाषा जुबान नहीं आखें होती है क्योकि प्रेम आखों में उमडता है और अपना रंग दिखाता है। प्रेम अल्लाह की सबसे बडी इबादत है और वक्त के अनुसार बदलते रहता है। पहले आदमी-आदमी से प्रेम करता है बाद मे उसको उसके पैसे से प्रेम हो जाता है।

प्रेम होता ही ऐसा है, प्रेम किसी भी तरह के नकार निषेध इन्कार में, अस्वीकार में नहीं होता ! उसे जो नकारे, निषेध करे, इन्कार-अस्वीकार करे वह स्वयं का विनाश कर लेता है। सर्वप्रथम तो वह अपनी निजता या मौलिकता, फिर अपनी स्वतन्त्रता व निर्भयता और फिर अपनी आत्मनिर्भरता को नष्ट करता है। विवेक हीन मूर्ख की भाँति वह अपने व्यक्तित्व या अस्तित्व का बोध का अन्त कर स्वयं संकीर्णता की बलि चढ़ जाता है।

कितना भी कोई प्रेम के खिलाफ हो जाये, प्रचार करे, विरोध करे, रोये गाये, चिल्लाये चीखे लेकिन ये सब प्रयास व्यर्थ है। प्रेम इन सबसे स्वतन्त्र, प्राकृतिक, निर्दोष, उच्च और उदात्त है। उसे इन सब से कोई फर्क नहीं पडता है। यह स्थिति मोह की नहीं होती है। मोह प्रेम में बदल सकता है लेकिन प्रेम मोह में नही। प्रेम मोह में कभी नहीं बदल सकता। प्रेम सदा सर्वदा निर्द्वन्द और निर्दोष है। प्रेम में कभी यह अहंकार नहीं होता है कि, मेरा परिवार और उसके सदस्य, मुझसे जुडे लोग यहां तक कि मेरी सम्पत्ति, ऐसा सोच कर जो व्यवहार करते है उनकी बुद्धि जड है।

प्रेम अन्धा होता है, भावना प्रधान होता है। प्रेम को बहुरंगी कहा जाता है। प्रेम किसी को बर्बाद कर देता है तो किसी भटके हुये इन्सान को सही राह पर चलाने की प्रेरणा भी देता है, उसमे इच्छा शक्ति, सौन्दर्य बोध व आत्म विश्वास की ज्वाला प्रज्ज्वलित करता है।

जगत का भविष्य सदा ही प्रेम है। प्रेम कभी मरता नहीं क्योकि प्रेम स्वयं जीवन है। जीवन स्वयं प्रेम है। फूल खिलता है तो प्रेम में, एक किरण भी जागती है तो प्रेम में। प्रेम ही जीवन का विज्ञान है, सत्व है, कारण है, प्रेम द्रवित है। जीव द्रव्य है।

प्रेम एक ऐसी शाश्वत धारा है जो सृष्टि के आरम्भ से प्रवाहित हो रही है और प्रलय पर्यंत होती ही रहेगी। आरम्भ से ही इसका बहाव दो दिशाओं में उतर तथा दक्षिण में रहा है। हम उत्तर को मानव तक और दक्षिण दिशा को मानवीय और अस्थाई मानते है। दूसरे शब्दों में इसे ईश्वरीय प्रेम और सांसारिक प्रेम भी कह सकते है। वस्तुता प्रेम ईश्वर का स्वरूप है इसलिये वह अखंड माना गया है।

सांसारिक प्रेम के भी दो रूप है, जो प्रेम वासनात्मक है और स्त्री पुरुष के शारीरिक सौन्दर्य से यौवन काल तक ही सीमित है वह क्षणिक है जो सापेक्ष प्रेम कहा गया है। प्रेम का दूसरा रूप निरपेक्ष और वासना रहित है जिसका सम्बन्ध आत्मा से होता है। इसीलिये इसे स्थाई प्रेम की संज्ञा दी गई है। प्रेम का दूसरा रूप है ईश्वरीय प्रेम या भक्ति, इसमें न सांसारिक लगाव है और न स्वार्थ। यह सर्वथा निरपेक्ष है। यहां तक ईश्वर से प्रेम करने वाला भक्त स्वर्गीय सुखों की तो बात ही क्या है उसे मोक्ष प्राप्ति तक की भी इच्छा नहीं रहती। प्रेम चाहे ईश्वरीय हो या सांसारिक दोनों में ही त्याग की आवश्यकता है। चाहे पति-पत्नी का प्रेम हो या मित्र का दोनों में ही परस्पर अपना स्वार्थ और हठीलेपन का त्याग परमावश्यक है।

प्रेम कितना गहरा होता है ? किसी ने जबाब दिया सागर की तरह मगर सागर ने इनकार करते हुये कहा नहीं यह तो धरती की तरह गहरा है क्योंकि धरती मुझसे गहरी है। धरती को यह स्वीकार नहीं हुआ वह बोली नहीं प्रेम गहरा कहीं अधिक है आसमान जैसा। किन्तु आसमान को यह गलती कदापि मान्य नहीं हुई उसने कहा नहीं प्रेम गहरा होता है इन्सान की तरह। लेकिन सवाल तो यह है कि इन्सान की गहराई कौन नापे ?

प्रेम में एक शक्ति है। प्रेम एक बडी शक्ति है पर पवित्र प्रेम करने के लिये बहुत अधिक शक्ति चाहिये। प्रेम सार्वभौम है इसकी कोई सीमा नहीं है। प्रेम एक अनुभूति है जिसके लिये आत्मा में पवित्रता चाहिये। प्रेम करना है तो व्यक्ति के

गुणों से, उसकी पवित्रता मे प्रेम करो, तुम भी गुणवान और पवित्र बन जाओगे। जब आप स्वयं से प्रेम करने लगेंगे तो दूसरे आपसे ईर्ष्या करना छोड देगे। दूसरों की भावनाओं का आदर करें लोग आपसे प्रेम करने लगेगे। प्रेम के बिना जीवन की कल्पना भी असम्भव है। प्रेम के जीवन के लिये विश्वास रूपी प्राण वायु अनिवार्य है। इसलिये प्रेम करते रहो और आगे बढते रहना।

प्रेम में कोई शर्त रख कर प्रेम नहीं किया जाता और अपने ध्येय ध्यान से अपने जीवन लक्ष्य को ओझल मत होने दो। प्रेम में अप्रतिम सौन्दर्य है, पर इसका देह से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जो प्रेम किसी को हानि पहुंचाये, वह प्रेम नहीं है। दु:खों से भरे इस संसार में सच्चे प्रेम की एक बूंद भी मरूस्थल में सागर के समान है। हम जिससे प्रेम करते है हमारा स्वरूप और व्यक्तित्व वैसा ही बन जाता है। सरलता के बिना कोई भी व्यक्ति दूसरों का सच्चा प्रेम नहीं पा सकता। ईश्वर की स्तुति, तीर्थकरों की वंदना और खुदा की इबादत प्रेम से है। यदि हम यह समझ लें कि हमारा असली गुण प्रेम करना है तो मन में द्वेष आ ही नहीं सकता है। प्रेम एक ही संजीवनी शक्ति है। जो आपसे प्रेम करता है उसे दु:ख मत पहुंचाओ। उसको खुशियां देने का प्रयास करो। प्रकृति ने हमें खुशबूदार फूल बनाया है हम यह खुशबू दूसरे लोगों तक पहुंचाये यही प्रेम है। प्रेम का कोई धर्म या जाति नहीं होती है। प्रेम का धर्म तो मानवता है इसलिये मानव का स्वभाव भी प्रेम करना ही है।

प्रेम का इतना विरोध क्यों हो रहा है। प्रेम करना कोई गुनाह तो नहीं है, कोई अपराध भी नहीं है। इसलिये तो नहीं कि प्रेम कोई दुनिया को मिटा देगा। प्रेम इस दुनिया को मिटा सकता है जो अपनी बेवकूफी से बनाई है। प्रेम घृणा को विदा कर देगा। प्रेम असहनशीलता, असंयम, क्रूरता, हिंसा, बदला, युद्धों को मिटा देगा। प्रेम शोषण और लालच को मिटा देगा। यदि कोई इन सब आधारों पर अपनी दुनिया बनाते है तो वे सावधान रहे क्योकि प्रेम ऐसी उनकी दुनिया को मटियामेट कर मिटा देगा। प्रेम पाखण्ड को मिटा देगा। झूठी मान्यताओं, रूढियों को मिटा देगा। प्रेम आपके भीतर के उस मनुष्य को मिटा देगा जो अतीत जीवी है, जो वर्तमान में नहीं है। जो एक तरह से मर चुका है, जिन्दा लाश है। प्रेम आपको नयी ऊर्जा से भरा, उत्साही मनुष्य बना देगा।

प्रेम का विरोध तो सिर्फ इसलिये ही हो सकता है कि क्योकि हमें जो चाहिये वो प्रेम नहीं मिल पाया। हम प्रेम करने योग्य नहीं हो पाये। हम प्रेम को समझ नहीं पाये है। प्रेम में देह शोषण नहीं है, सम्भव भी नहीं है। प्रेम में छल बल से किसी को हासिल करना, किसी पर कब्जा करना या किसी से बलात्कार करना सम्भव ही नहीं है। प्रेम में मांग कुछ भी नहीं होती है। प्रेम में सिर्फ समर्पण घटता है और कुछ नहीं। इसलिये प्रेम के विरोध का तो कोई आधार ही नहीं है। हो सकता है हमें वो प्रेम न मिल पाया हो जिसकी हमें अपेक्षा रही हो, हम हमने प्रेम को सही ढंग से व्यक्त नहीं कर पाये हो, प्रेम से जी न पाये हो। भीतर यह विवशता, असहायता, यह दु:ख कुंठा बन गया हो। यही कुंठा प्रेम के विरोध में खडी हो सकती है। वरना तो प्रेम के विरोध में कोई जगह, स्तर, दायरा ही नहीं है। प्रेम सर्व आवश्यक है।

वह प्रेम नहीं है जो मान्यताओं से हो। जो प्रेम में है उनके लिये तो तत्क्षण स्वर्ग है, उन्हें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रेम में उतरे कि स्वर्ग में उतरे। प्रेम में डूबे कि परमात्मा हो गये। प्रेम में होने पर सम्पूर्ण जगत प्रेम में डूबा हुआ महसूस होगा। जिस तरह मछली समुद्र में होते हुये पानी के भीतर रह कर उसकी विराटता, गहराई को नहीं जान पाती उसी तरह

प्रेम से डुबा हुआ प्रेम की विराटता व गहराई को क्या जान पायेगा। प्रेम अत्यन्त विराट है। प्रेम एक अजब रसायन है।

प्रेम करना एक बात है और प्रेम करके निभाना दूसरी बात। दिल की बात सुनोगे तो सब कुछ सच्चा लगेगा और दिमाग से सोचने पर लगेगा ये इश्क, मुहब्बत, प्रेम, प्यार सब भ्रम नजर आयेंगे। प्रेम से ही मुहब्बत तबदील होती है। इस संसार में मुहब्बत करने वाले कितने ही नाम अमर हुये है। खालिश मुहब्बत की है सोनी महिवाल ने, मुहब्बत के शहनशाह लैला मजनू, इतिहास गवाह है मुहब्बत का शीरी फरहाद की, मुहब्बत के दिवाने हुये मिर्जा और साहिबा। मुहब्बत के सितारे पारो और देवदास, शहजादा सलीम और अनारकली यही नहीं जिनके मुहब्बत की कस्में खाता है सारा जमाना रस्सी और पुन्नू ये सब की मुहब्बत की दास्ताने आगे चल कर इश्क में परिणीत हुई। इसलिये स्वच्छ, निश्चय, अड्रिग प्रेम की आवश्यकता है।

प्रेम स्वयं में आत्यन्तिक क्रान्ति कर देता है। आपके सम्पूर्ण अतीत, सम्पूर्ण व्यवस्था मान्यता, सपनों को ढहा देता है। प्रेम आपको वर्तमान के प्रति जागृत करता है। आपके अहंकार को तोडता है और कर्त्तव्यों-अधिकारों की परिभाषाओं को लांघ कर आत्यन्तिक उत्तरदायित्व को प्रकट करता है। प्रेम ही ज्ञान है। प्रेम ही भक्ति है और प्रेम ही मुक्ति है।

प्रेम का अर्थ क्या है ? इस पर सदियों से विचारकों, लेखकों व अन्य लोगों ने अपने अपने तर्क प्रस्तुत किये है। प्रेम क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर प्रेम करने वाले भी पूर्णता के साथ नहीं जान पाते है। इसका कारण यह नहीं है कि उन लोगों ने सच्चा प्रेम नहीं किया होता है बल्कि प्रेम है ही ऐसा जिसे न तो भावनाओं की सीमा में बांधकर अपने मन के अनुसार किया जा सकता है और न ही रिश्वतों व सम्बन्धों के अनुरूप नाम दिया जा सकता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार प्रेम तो महज शरीर के रसायनों का स्रवण है। उनके अनुसार तो कुछ खास हारमोन्स शरीर मे स्रावित हुये तो बस प्रेम हो जाता है। वही दूसरी और कवियों और शायरों ने फूल सी कोमलता, ओस के बूंद की निर्मलता व भगवान की सच्चे मन से की जानेवाली प्रार्थना के अनुरूप प्रेम को माना है। प्रेम सहज भावनाओं का खेल है तो फिर क्या कारण है कि वर्तमान में इस खेल में विपरीत भावनाओं का ही बोलबाला है तथा इनमें प्रेम तत्व बहुत कम है।

सदियों से प्रेम के अर्थ जरूर बदले है पर स्वरूप तो वही रहा है। एक अलग दृष्टिकोण से देखा जाये तो शायद प्रेम भावनाओं का ऐसा जाल है, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति स्वयं होकर फंसना चाहता है। एवं इस जाल में फंसने की जो भी अच्छी या बुरी कीमत हो उसे वह स्वयं ही चुकाता है। पैसा, आडम्बर, दुनियादारी, इज्जत ये सभी प्रेम के सामने गौण हो जाते है। प्रेम इस शब्द के अन्दर समाहित रहस्यों में कई परते है और इन में सबसे महत्वपूर्ण है निश्च्छलता, निष्कपट।

भावनाओं के साथ निश्च्छलता भी जब घुल मिल जाती है, तब भावनाये शब्दों का सहारा छोड आपस में संवाद करती है एवं शरीर व मन का इन पर नियंत्रण नहीं रहता है। सोते जागते, ये भावनाये आपको जकडे रहती है। त्याग, समर्पण, विश्वास, खुशी, कोमलता व अपनेपन से लेकर कडुवाहट, ईर्ष्या आदि को अपने में समेटे प्रेम ने मनुष्य के इर्द-गिर्द एक झीनी परत बनाई हुई है। इस परत को कोई सहसा तोडना नहीं चाहता है और शायद यह प्रेम ही है, जिसके कारण आज भी इस अति भौतिकवादी युग में भी मनुष्य को यदा कदा मनुष्यता के दर्शन स्वयं के भीतर होते है।

प्रेम सर्वदा उन्नायक होता है। मुक्त करता है, स्वतन्त्रता देता है, निर्भयता पैदा करता है। लुट जाता है लेकिन लूटता नहीं है। जान दे देता है, लेता नहीं है। स्वयं के लिये चाहता भी कुछ नहीं। समर्पण करता है। प्रेम वही है जिसमे कुछ मांग नहीं है।

शब्दों का निशब्द हो जाना, सृजन की टंकार से
नन्हें शिशु के कोमल होठों पर मुस्कान भरी छाप से क्या यही है वो प्रेम... ?
जो मैंने माँ की पनीली आँखों में देखा, सिमटा है, समाया है संसार भर का दर्द
उसकी वेदना में छिपा है रहस्य, पर स्नेहिल स्पर्श का सागर लेता है हिचकोले, मुस्कराते हुए अधर
यही वो ईश्वरीय प्रेम है... !
भविष्य के सुनहरे स्वप्न जो देखे थे माँ ने, पर चिंता की स्याह रात में धूमिल होने लगे थे।
बेटी के जन्म पर ताने और उलाहनें, क्या यही है वो प्रेम... ?
जो सृजन के लिए है पर नियम को है नामंजूर।

अखबार, टेलीविजन, इंटरनेट और न जाने कितने संचार माध्यम चीख-चीखकर कह रहे हों कि यह मूल्यहीनता का दौर है। भावहीनता का दौर है। इंस्टैंट रिलेशनशिप का दौर है। लेकिन इस सबके बावजूद रिश्तों में प्रेम की भूमिका का कोई विकल्प नहीं है, न कभी था और न कभी होगा। प्रेम शाश्वत है, हर समय और संदर्भ से ऊपर। आधुनिकता के नाम पर जो हो हल्ला हो रहा है, व्यवसायीकरण के नाम पर जिस फूहड़ता से तर्क दिया जा रहा है, ये सब प्रेम का महत्व घटा नहीं सकते।

प्रेम सदियों से संबंधों की बुनियाद रहा है। जब आदमी ने पढ़ना-लिखना नहीं सीखा था, तब भी प्रेम था। इस प्रेम के पास रिश्तों की तब भी एक भरी पूरी भाषा थी। जब आदमी ने महल, दुमहले और ताजमहल बनाना नहीं सीखा था, तब भी प्रेम की अजर-अमर निशानियां रची गई थीं।

गुफाओं में, कंदराओं में प्रेम के न जाने कितने ताजमहल आज भी मौजूद हैं और तब तक मौजूद रहेंगे, जब तक इस धरती का अस्तित्व रहेगा।

प्रेम कोई अमूर्त अव्यक्त और अपरिभाषित अहसास नहीं है। बल्कि यह शरीर के एक निश्चित रासायनिक स्त्राव का नतीजा है। प्रेम की गरिमा, प्रेम के अमरत्व, प्रेम की विदेहता को एक दायरे में बांधने का यह एक फूहड़ प्रयास है। प्रेम को चिन्हित करने की यह एक ओछी मंशा का शोध है। किसी के प्रेम में पागल होने को आजकल मूर्खता करार दिया जा रहा है। आधुनिकता के नाम पर, उच्च शैक्षिकता के नाम पर रिश्तों को आजकल शुद्ध कारोबार समझा जाने लगा है। शादी एक बड़ा बाजार बनकर उभरा है।आजकल बड़े शहरों में हर पांचवी औरत अकेली है।

कुछ नारीवादी संगठन इसे औरत की जीत और उसके संबल का प्रतीक करार दे रहे हैं। लेकिन यह एक मूर्खता है। नारी या पुरुष किसी का एक साथ रहना प्राकृतिक है। अलग-अलग रहना अप्राकृतिक है। तलाक की दर पूरी दुनिया में बहुत तेजी से बढ़ रही है। इसका एक ही कारण है, संबंधों की बुनियाद से प्रेम निकलता जा रहा है। आजकल यह एक बड़ा व्यापार बन गया है। क्योंकि आपस में प्रेम खत्म हो गया है। प्रेम के बिना कोई भी संबंध न तो स्थायी हो सकता है और न ही उत्तेजक। आसक्ति से लबरेज, चाहत से उफनते संबंध सिर्फ प्रेम की बुनियाद पर ही खड़े हो सकते हैं। इसके कोई छोटे रास्ते नहीं है। प्रेम का कोई विकल्प नहीं है।

हर तरह के संबंधों के लिये, चाहे वे पति-पत्नी के संबंध हों, प्रेम-प्रेमिका के संबंध हो, मालिक-नौकर के संबंध हों, अध्यापक-विद्यार्थियों के संबंध हों, चाहे व्यापारिक संबंध ही क्यों न हो ? सभी तरह के संबंधों के लिए सबसे जरूरी चीज

है प्रेम। प्रेम के बिना कोई संबंध स्थायी नहीं रक सकता। प्रेम के बिना किसी भी संबंध की कोई उम्र नहीं होती। प्रेम के बिना संबंध राह चलता व्यापार होता है, जिसकी कोई गारंटी नहीं होती।

सेवा का अर्थ है- उदार और ममता रहित होना। निर्मम प्राणी ही उदार हो सकता है। उदार व्यक्ति में दो बातें आ जाती है- करुणा और प्रसन्नता। करुणा सुख-भोग की रुचि को खा लेती है, मिले हुए सुख को दुखियों को भेट करा देती है। जब लेने वाला अपने में दीनता का अनुभव करे और देने वाला अपने में अभिमान का अनुभव करे तो यह सेवा नहीं है। सेवा का फल प्रेम है। विश्व के नाते की हुई सेवा से विश्व-प्रेम मिलता है, आत्मा के नाते की हुई सेवा से आत्मरति मिलती है और प्रभु के नाते की हुई सेवा से प्रभु-प्रेम मिलता है। प्रेम की प्राप्ति के लिए ही सुख-दु:ख का सदुपयोग है।

लोग कहते है कि भगवान कैसे मिलेंगे ? क्या कभी भगवान ने हमारा त्याग किया है ? अब जब हमने ही भगवान का त्याग किया है तो हम क्यो कहते हैं कि वे हमे कैसे मिलेंगे ? प्रेमियों का मन तो सदा प्रेमास्पद के पास रहता है। वियोग सदा प्रेम की वृद्धि के लिए है, ह्रास के लिए नहीं। जो सदैव प्रिय से भिन्न की विस्मृति कराती रहे, उसका नाम है- अखण्ड स्मृति। प्रेमी सदा वर्तमान में रहता है, उसके जीवन में भूतकाल की गंध भी नहीं रहती। मांग रहित प्रेम ही पवित्र प्रेम है। प्रेमी की प्रत्येक प्रवृत्ति अपने प्रिय को रस देने के लिए होती है, अपने भोग के लिए नहीं। प्रेमी के मन में अपने प्रेमास्पद के अतिरिक्त किसी और के लिए ठौर नहीं रहता। सच तो यह है कि प्रेमी के पास अपना मन ही नही रहता। वास्तव में प्रेम क्या है ? इसको केवल प्रेमी ही जान सकते हैं और कोई नहीं।

प्रेम की बड़ी अनूठी विशेषता है- तुम्हारे पास वही होता है जो तुम दे देते हो। जो तुम बचा लेते हो, वह तुम्हारे पास कभी नहीं होता। दिखता है तुम्हारे पास है, लेकिन तुम उसके मालिक नहीं होते। मालिक तुम उसी के हो जो तुम दे देते हो। जो बांट दिया, उसी के मालिक हो। मालकियत कब घटती है। जब तुम्हारे हाथ से कोई चीज किसी दूसरे हाथ में जाती है, उस क्षण। जब तुम्हारे हाथ से हटती है चीज, तुम मालिक होते हो। अगर तुम्हारी मुट्ठी में बंद रहे, तब तुम मालिक नहीं होते।

जिस क्षण तुम देते हो, देने से ही पता चलता है कि तुम्हारे पास था। देने से ही तुम्हें भी पता चलता तुम्हारे कि मैं दे सका- मेरा था। प्रेम बांटते चलो जो तुमने दिया। और उसी को तुमने भोगा, जो तुमने बांटा।

प्रेम बांटते चलो- साझेदारी बढ़ाओ। प्रेम का अर्थ इतना ही होता है। साझेदारी करो। किसी को दो। किसी को बांटो। और धन्यवाद देना उसे, जो तुम्हारे जीवन में इस भांति आए कि तुम उससे कुछ बांट सको।

प्रेम की बड़ी कुशलता यह है कि यहां लेने वाला भी कुछ देता है और देने वाला भी कुछ देता है। जब तुम किसी को कुछ देते हो और वह स्वीकार कर लेता है तो उसने भी तुम्हें कुछ दिया- उसकी स्वीकृति से दिया। उसने तुम्हें मालिक बना दिया। उसने तुम्हें दाता बना दिया।

प्रेम क्या है- प्रेम ऐसा भरोसा है जिसे तुम देने जा रहे हो, वह ले लेगा, इनकार नहीं करेगा। बहुत-से लोग इनकार के कारण ही देने से डरते हैं कि हम देने गए और किसी ने कह दिया, नहीं, द्वार बंद कर लिया, फिर ? बड़ी घबराहट लगती है।

कठिन है राह प्रेम की- प्रेम का पहला कदम ही जोखिम से भरा है। इसलिए स्त्रियां प्राय: प्रेम निवेदन नहीं करतीं। इतनी जोखिम स्त्रियां नहीं उठातीं। वे राह देखती हैं- तुम्हीं प्रेम- निवेदन करो। वे प्रतीक्षा करती हैं कि कितनी जोखिम पुरुष उठाता है। जोखिम बड़ी है, क्योंकि दूसरा कह सकता है, नहीं। दूसरा अपने हृदय द्वार को बंद कर सकता है, तुम इस

योग्य न समझे गए कि स्वीकार किए जाओ।

इसलिए बहुत से लोग अपना प्रेम ऐसी चीजों से लगाते हैं जहां से अस्वीकार हो ही नहीं सकता। एक कार खरीद ली, उसी से प्रेम कर लिया। कार में एक सुविधा है, इनकार नहीं कर सकती, खरीद लाए तो तुम्हारी। प्रेम की जोखिम से बचने के लिए प्रेम करके नहीं क्योंकि प्रेम में खतरा था। इसलिए विवाह पैदा हुआ।

विवाह संस्था- विवाह होशियारी है। जोखिम से बचने की व्यवस्था है। मां-बाप इंतजाम करते हैं, पंडित-पुरोहित कुंडली मिलाते हैं। तुम्हें सीधा निवेदन नहीं करना पड़ता। जैसे तुम किसी के भाई हो, किसी की बहन हो- ऐसे ही एक दिन किसी के पति या पत्नी भी हो जाते हो। उसके लिए तुम्हें खोज नहीं करनी पड़ती। तुम्हें पहली जोखिम नहीं उठानी पड़ती। लेकिन जब पहली जोखिम नहीं उठाई तो सारा जीवन गलत हो जाता है। पति-पत्नी में भी तो प्रेम जरूरी है इसलिए वह दुस्साहस जरूरी है।

दोनों ही दाता- प्रेम की बड़ी अपूर्व महिमा है। वहां दोनों दाता हैं। इससे बड़ा जादू कहीं नहीं घटित होता। यहां गणित के नियम टूट जाते हैं। गणित के नियम से दो दाता नहीं हो सकते एक दाता होगा तो एक लेने वाला होगा। एक का हाथ ऊपर होगा, दूसरे का हाथ नीचे होगा। लेकिन प्रेम दोनों हाथों को समान स्तर पर ला देता है। दोनों दाता बन जाते हैं। देने वाला है ही, लेने वाला भी दाता बन जाता है। लेने वाला जो देता है, वह देने वालों से भी बड़ा होता है। इसलिए प्रेम गणित की सीमा के बाहर पड़ता है। हिसाब के बाहर है। अर्थशास्त्र के भी बाहर। यह रहस्यमय है।

प्रेम साध्य है- ईर्ष्या मत करो प्रेम के माध्यम से और महत्वाकांक्षा भी मत करो। न किसी पर मालकियत करो और न ही इसके माध्यम से गुलामी। प्रेम पर्याप्त है। इससे और कुछ मत चाहो। प्रेम अपने में साध्य है; उसे साधन मत बनाओ। फिर तुम देखोगे कि जीवन बड़ी शांति से विकसित होने लगा है। आनंदित होने लगा है।

दर्पण है सच्चाई का- जब भी तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में उतरते हो, दूसरा व्यक्ति तुम्हारे लिए दर्पण बन जाता है। तुम्हारा चेहरा उसमें दिखाई पड़ने लगता है। दर्पण से लोग डरते है क्योंकि उसमें वे बातें दिखाई पड़ने लगती हैं जो तुम नहीं देखना चाहते। अकेले थे तो क्रोध का पता नहीं चलता था। किसी के प्रेम में पड़े तो पता चला। इस तरह तुम्हारे धोखे जाहिर होने लगेंगे, झूठे आवरण हटकर असली चेहरा सामने आएगा। अकेले में आदमी स्वयं को ढककर रहता है। अत: प्रेम संबंध से उठते-बैठते चलते तुम्हारी सच्चाई प्रकट होगी। अपनी सच्चाई को जानना जरूरी है। तभी आत्मा को रूपांतरित किया जा सकता है।

भले आप अपने को बड़े से बड़ा प्रेमी समझते हो। परंतु आप प्रेम दर्शाने मे यदि जल्दी कर रहे हों, तो आप प्रेमी नहीं हैं। प्रेम का लक्षण है- प्रतीक्षा। जो जितना जल्द है, उतना ही गलत है प्रेम कभी भी हड़बड़ाता नहीं है। अपनी बातों को संवाद के बजाय हमने विवाद का रुप दे दिया है तो हम बड़बड़ा रहे हैं। हमारे भीतर प्रेम तो कतई नहीं है। उल्टा कुछ गड़बड़ है। प्रेम तो धीरज, सब्र, क्षमा और त्याग का ही दूसरा नाम है। तो जब भी आप प्रेम से लबालब भरे हुए होंगे। आप ठिठक कर रुक जाएंगे आप की वाणी इतनी निस्तरंग हो जाएंगी कि आप बोलेंगे कम, डोलेंगे ज्यादा। अब तक सच्चा प्रेमी स्तब्ध होकर ही अपना प्रेम दर्शा पाया है। प्रेम में बहा और रहा जा सकता है, वाणी से कहा नहीं जा सकता। यही है प्रेम के लक्षण।

जिस व्यक्ति की भौहें सदा चढ़ी हुई हों, किसी से भी मीठी बातें नहीं करता, वह अशांत व्यक्ति सभी के द्वेष का पात्र बनकर रह जाता है। लोगों से मिलते वक्त जो स्वयं ही बात का आरंभ करता है और सबके साथ प्रसन्नता से बोलता है उस पर सब प्रसन्न रहते हैं। जैसे रूखा भोजन मनुष्य को तृप्ति प्रदान नहीं कर सकता वैसे ही मधुर वचनों के बिना दिया हुआ दान भी प्रसन्नता नहीं उपजाता। मधुर वचनों से युक्त गृहिता किसी की वस्तु लेकर भी स्वयं की मधुर वाणी द्वारा इस संपूर्ण जगत को वश में कर लेता है। किसी को दण्ड देने की इच्छावाले को भी सांत्वनापूर्ण वचन ही बोलना चाहिए। इस प्रकार वह अपना प्रायोजन सिद्ध कर लेता है।

प्यार इतना प्यारा शब्द है जो सबको प्यारा लगता है, मां-बेटे, मां-बेटी, पति-पत्नी, सास-बहू, ननद-भाभी, सभी रिश्तों में इसका प्रमुख योगदान होता है, पर जब कभी जवानी में किसी को किसे से प्यार होता है तो बहुत प्यारा अनुभव होता है। वो दिन सबसे अच्छे गुजरते हैं। पर कभी-कभी जब दूसरे के प्रति स्नेह होता है तो यह विश्वास नहीं होता कि दूसरा भी आपको किस गहराई तक चाहता है ?

जब कोई आपकी आवाज सुनने के लिए आपको बार-बार फोन करे तो समझिए कि वो आपको चाहता है।

मौका मिलते ही आपसे बात करने की कोशिश करे तो समझिए कि वह आपके प्रति समर्पित है। जब कोई आपके मित्रों, दोस्तों से अच्छा व्यवहार करे ताकि आप खुश रहें तो समझिए कि वो अपने प्यार का इजहार अप्रत्यक्ष रूप में कर रहा है इसलिए वो आपके साथ-साथ आपकी सहेलियों की भी परवाह कर रहा है।

हमेशा वो आपकी बातों को ध्यान से सुनता हो, इधर-उधर न देखता हो और आपकी बात को न काटता हो समझें कि वो आपको चाहता है।

जो सचमुच आपको चाहता है, वो कभी आपको दु:ख नहीं पहुंचाएगा, न ही चटखारे लेकर इधर-उधर की बातें करेगा। वो आपको सचमुच प्यार करता है तो आपकी खरीदारी पर नाक-भौंह नहीं सिकोड़ेगा, न ही अपने असहमति आपको प्रकट होने देगा। आपके वो यदि आपको चाहते हैं तो वे समय के महत्व को समझेंगे, समय पर पहुंचेंगे और सभी काम योजनाबद्ध तरीके से करेंगे। जब उनके दोस्त आपके बारे में कुछ आपको ही बताएं जैसे आपके शौक, पसंदीदा संगीत, जन्मदिन आदि तो इसका स्पष्ट-सा अर्थ है कि वे आपके बारे में अपने मित्रों से भी बात करते हैं, क्योंकि वे आपको चाहते हैं।

संसार में कोई ऐसा परमाणु नहीं है, जिसमें प्रेम न हो जहां प्रेम न हो, वहां परमाणु रह ही नहीं सकता। उसका कारण यह है कि जिसको अपने से प्रेम न होगा, उसको अपनों से घृणा होगी। नतीजा यह होगा कि वह अपना नाश चाहेगा और एक दिन अपने को नष्ट कर डालेगा। क्योंकि संसार में हर परमाणु कायम रहना चाहता है और अपने नाश से भयभीत रहता है। यही संसार की स्थिति का सबसे बड़ा तत्त्व है। मनुष्य के नित्य होने का प्रमाण यह भी है कि हर मनुष्य को अपनी आत्मा से प्रेम है। संसार में तमाम जीवित प्राणी या तो किसी दूसरे से प्रेम करते हैं या अपने आप से ? प्रेम के बगैर सुख असंभव है। यह प्रेम ही एक ऐसी वस्तु है, जिससे सुख का अनुभव हो सकता है, जहां प्रेम नहीं वहां सुख नहीं।

आज के इस आधुनिक युग में प्यार का अर्थ मात्र दैहिक आकर्षण और निजी स्वार्थ ही रह गया है। माना जाता है कि प्रेम एक पवित्र भावना है, लेकिन छेड़छाड़, बलात्कार जैसे घिनौने अपराधों ने प्यार की परिभाषा बदल कर रख दी है। हमारी फिल्में

भी इस दिशा में अहम् भूमिका अदा कर रही हैं। फिल्मों में नायक-नायिका के अस्थायी प्रेम-प्रदर्शन को देखकर नवयुवक भी इसका अनुसरण करते हैं तथा साथ जीने-मरने की कसमें खाते हैं लेकिन जरा-सा मतभेद होने पर हिंसक हो जाते हैं।

प्रेम जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। आदमी ही नहीं जानवर भी प्रेम के भूखे होते हैं। प्रेम से थपथपाने पर बिगड़ैल घोड़ा भी शांत हो जाता है। प्रेम से सीटी बजाइए, खूंखार कुत्ता भी दुम हिलाने लगेगा। मजे की बात है कि प्रेम की भाषा जानवर समझने लगे हैं पर आदमी प्रेम का तर्पण करने में जुटा है। आदमी का हाल मजेदार है। आदमी माल जिसका खाता है, गुण जिसके गाता है, उसी की पीठ पर कटार भौंकता है। कहने वाले कह गए हैं कि प्रेम की भाषा जुबान से नहीं, नयनों से बोली जाती है। नैन लड़ जइ हैं तो जियवा में खटक होयबे करी। यानी आंखें लड़ती हैं और दिल धड़कता है। आंखों और दिल के इस योग ने आदमी को उल्लू बना रखा है।

हम अभी तो प्रेम को पवित्र कह रहे थे। प्रेम को अल्लाह की सबसे बड़ी इबादत मान रहे थे। बेशक। लेकिन प्रेम भी वक्त के अनुसार बदलता रहता है। पहले आदमी आदमी से प्रेम करता था। अब उसका प्रेम पैसे से हो गया।

प्रेमका सर्वोत्तम रूप समरसता ही है। एकांगी प्रेम केवल प्रेम की पूर्वावस्था है। उसमें व्याकुलता है; अभाव है और सामनेका कोई आकर्षण नहीं है। चातक, चकोर, मछली, कुमुद, कमलिनी- ये सब इसी एकांगी प्रेमकी कक्षामें आते हैं। यह पूर्ण प्रेमका प्रकाश नहीं है। सारस, चक्रवाक भी प्रेमके अधूरे उदाहरण हैं। सारसमें वियोग नहीं है। चक्रवाकमें संयोग नहीं है। अभिसारमें भी दूरी और देरी है। छद्ममें भी दूरी और देरी है। देशकालकी उपाधिसे युक्त यह प्रेम पूर्ण नहीं हो सकता। पूर्णताकी प्राप्तिका साधन हो सकता है। अभिसार छद्म-दोनोंमें ही प्रत्यक्ष विरहकी स्थिति है। मिलनकी अवस्थामें भी अनमिलेपनकी प्रतीति चित्तकी विपरीतता है। वह भी प्रेमका लक्षण होनेपर भी प्रेमका स्वरूप नहीं है।

प्रेम में वस्तुत: भगवान् का कभी वियोग नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन को छोड़कर एक पग भी बाहर नहीं जाते। गोपीजनों को छोडकर वे किसी समय भी कहीं नहीं जाते। गोपीजनों ने उद्धव को दिखला दिया था कि श्रीकृष्ण उनके पास ही निरन्तर रहते हैं; क्योंकि वे स्वयं प्रेमी बनकर गोपीजनों को प्रेमास्पद समझते हैं। प्रेमास्पद प्रेमी का ही बन जाता है। श्रीकृष्ण भी गोपिकाओं के ही बन गये। उन्होंने कहा है- गोपिकाओं। देवताओं की जैसी आयु धारण करके भी मैं तुम्हारा यह प्रेम-ऋण चुका नहीं सकता।

कहीं तो श्यामसुन्दर नहीं दीखते और उनके लिए अभिसार होता है तथा कहीं यह भाव होता है- यहाँ भी वही, वहाँ भी वही- जित देखूँ तित स्याममयी है। ये दोनों भाव वस्तुत: दो नहीं वरन् एक ही भगवत्प्रेम की दो अवस्थाएँ हैं। भगवत्प्रेम में एक बात तो निश्चय ही होगी कि प्रेमास्पद भगवान् और प्रेमी के बीच किसी दूसरे के लिए स्थान नहीं रहेगा।

सब प्रकार का सहन (तितिक्ष) प्रेम में होता है। प्रेम करना आरंभ कर दें, फिर तितिक्षा तो अपने-आप आ जाएगी। माँ बीमार है, पर यदि बच्चा परदेश से आ गया तो माँ उठ खड़ी होगी, उस बीमारी की अवस्था में भी बच्चे के लिए भोजन बनाने लगेगी। यह तितिक्षा प्रेम की ही उत्पन्न की हुई है। प्रेम में भी कर्त्तव्य की स्मृति रहती है।

यह सत्य है कि प्रेम का वास्तविक और पूर्ण विकास भगवत्प्रेम में ही होता है; पर जहाँ कहीं भी इसका आंशिक विकास देखा जाता है, वहाँ-वहाँ ही त्याग साथ रहता है। गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों में धर्म का प्रेम था, उन्होंने उसके लिए हँसते-हँसते प्राणों की बलि चढ़ा दी। सतीत्व में प्रेम होने के कारण अनेक आर्य-रमणियों ने प्राणों की आहुति दे दी।

भगवत्प्रेम के लिए साधना करनी चाहिऐ- जैसे भी हो इसकी उपलब्धि करनी चाहिये।

जिस दिन मनुष्य सब भूतों में भगवान् को तथा सब भूतों को भगवान में स्थित देख लेता है, फिर भय-संकोच सब नष्ट हो जाते हैं। उसके लिए केवल आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है।

प्रेम की महिमा अद्भुत है। इतने बड़े भगवान् इतने छोटे हो जाते हैं कि बच्चों में आकर बच्चे बनकर खेलते हैं। एक बार खेल हो रहा था; खेल की यह शर्त थी कि जो हारे, वह घोड़ा बने। भगवान् हारे तथा घोड़ा बने-

भगवान् प्रेम के वश होकर क्या नहीं करते- सब कुछ करते हैं। विश्वम्भर होकर भगवान् माँ से कहते हैं कि हमें भूख लगी है, दूध पिलाओ। यह है प्रेम की महिमा। जिस प्रेम में भगवान् मित्र, पुत्र, पति बनकर खेलने लग जाते हैं, उस प्रेम के सामने मोक्ष क्या वस्तु है ? भगवत्प्रेम बहुत ऊँची वस्तु है, पर कम-से-कम इसकी प्राप्ति की इच्छा तो होनी चाहिये। इच्छा होगी तो इसके लिये प्रयत्न भी होगा।

भगवत्प्रेम की बात सुनकर मनुष्य डरने लगता है कि कहीं सब कुछ चला न जाय। होता भी यही है, अपना प्रेम दान करने के पहले भगवान् और सबसे प्रेम हटा देना चाहते हैं; इसीलिए लोग डर जाते हैं।

अलग-अलग भावों से और अलग-अलग प्रयोजनों से हम बहुतों से प्रेम करते हैं; किंतु अपने प्रति जो प्रेम होता है, उसमें प्रयोजन का अन्तर नहीं, भाव का अन्तर नहीं। श्रीकृष्ण आत्मा के आत्मा हैं। अत: उनमें जो प्रेम होता है, उसमें न तो स्वतन्त्र भाव है, न ही स्वतन्त्र प्रयोजन।

जो श्रीकृष्ण से प्रेम करते हैं, उनका जो जगत् से प्रेम होता है, वह श्रीकृष्ण को लेकर ही। यह नियम है- आत्मसम्बन्ध शून्य प्रेम कहीं नहीं होता। श्रीकृष्ण आत्मा के आत्मा हैं। अतएव जो श्रीकृष्ण के प्रेमी हैं, वे यदि दूसरों से प्रेम करते हैं तो श्रीकृष्ण को लेकर ही।

जगत् में जितना प्रेम है, वह न चिरस्थायी है, न एक समान है और न एक में है। पर भगवान् का प्रेम चिरस्थायी, एक समान तथा एक में है। श्रीकृष्ण में जिसका एकबार प्रेम हो गया, वह एक में हो गया, स्थायी हो गया तथा एक-सा हो गया। फिर वह श्रीकृष्ण को छोड़कर अथवा अलग किसी प्रयोजन से किसी से प्रेम नहीं करता।

भगवान् को प्राप्त करने का सबसे सरल साधन है- तीव्र व्याकुलता। उनके लिये हमारे प्राण जितना ही अधिक करुण-क्रन्दन करेंगे, उतना ही वे हमारे समीप आयेंगे।

हमारा काम है, एकमात्र कर्त्तव्य है- व्याकुल हृदय से नित्य उनका स्मरण करना, उन्हें पुकारना।

सचमुच जिनका मन श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए व्यग्र हो जाता है, जो श्रीकृष्ण को पाने के लिये पागल हो जाते हैं और उनकी ओर दौड़ पड़ते हैं, जिनमें श्रीकृष्ण-प्राप्ति की लालसा आत्यन्तिक रूप से जाग्रत हो जाती है, वे पथ-अपथ नहीं देखते हैं। वे कब हिसाब लगाते हैं कि इस रास्ते में कितना क्लेश है ? उनको कौन रोक सकता है ? उनकी उद्दाम गति में कौन बाधक हो सकता है ? उनको कोई दु:ख रोक नहीं सकता। दु:ख उनके ध्यान में आता ही नहीं; स्त्री-पुत्र, धन-मान, कीर्ति आदि की लालसा उनको मोहित नहीं कर सकतीं। हजारों, लाखों दु:खों को भी वे दु:ख नहीं मानते।

प्रेम होना चाहिये; जिस वस्तु में प्रेम होता है, उसके सेवन में नींद नहीं आती, जी नहीं ऊबता। भगवान् की सेवा का समय उपस्थित होने पर प्रेमी के सामने जितने भी प्रतिबन्ध हों, वे अपने -आप हट जाते हैं।

अन्यान्य साधनों द्वारा भगवान् अन्यान्य रूपों में प्राप्त होते हैं, परंतु प्रेम के द्वारा तो वे प्रियतम के रूप में मिलते हैं। यह प्रेम ही चरम या पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसमें मोक्ष का भी संन्यास हो जाता है। यही जीवन का परम फल है।

माधुर्य-भाव के उपासक को लौकिक विषय-सुख और सुविधाओं से परम विरक्त होकर ही प्रिया-प्रियतम के चरणों में परम अनुरक्त होना चाहिये। उनके विरह में रोना, उन्हीं को आर्तभाव से पुकारना उनकी प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय है। अपना जीवन, अपना सर्वस्व उनपर निछावर करके उन्हीं का होकर रहना और उन्हीं के लिए जीवन धारण करना चाहिये।

आवत ही हरषे नहीं, नैनन नहीं सनेह। तुलसी तहां न जाइए, कंचन बरसे मेह।।

कहा करौं बैकुंठ लै, कल्पवृक्ष की छांह। रहिमन ढांक सुहावनो, जो प्रीतम गल बांह।।

गंधविहीन फूल है जैसे, चन्द्र चन्द्रिकाहीन। यों ही फीका है मनुष्य का, जीवन प्रेमविहीन।।

प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक। ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय-आलोक।।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं। प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाहिं।।

जहां प्रेम और भक्ति नहीं है, वहां परमात्मा नहीं है।

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान। जैसे खाल लोहार की, सांस लेत बिनु प्रान।।

जिससे प्रेम होता है, उससे हम कोई भेद नहीं रखते। धन से चाहे आदमी का जी भर जाये, प्रेम से तृप्ति नहीं होती। ऐसे कान बहुत कम हैं, जो प्रेम के शब्द सुनकर फूल न उठें। प्रेम असीम विश्वास है, असीम धैर्य है, और असीम बल है। प्रेम का एक ही मूल मंत्र है और वह है सेवा। प्रेम का नाता संसार के सभी सम्बन्धों से पवित्र और श्रेष्ठ है। प्रेम की गहराई कविता की वस्तु है और साधारण बोल-चाल में व्यक्त नहीं हो सकती। प्रेम पर ऐश्वर्य, सौन्दर्य और वैभव का कुछ भी अधिकार नहीं है। प्रेम वसन्त समीर है, द्वेष ग्रीष्म की लू। भूले-भटकों को प्रेम ही सन्मार्ग पर लाता है। सच्चा प्रेम संयोग में भी वियोग की मधुर वेदना का अनुभव करता है।

जैसा बन्धन प्रेम, तैसा बन्धन और। काटहिं भेदै कमल को, छेदि न निकरै भौंर।।

जो प्रेम अपने को नित्य नवीन नहीं रखता, वह पहले आदत का रूप धारण कर लेता है और फिर दासता में परिवर्तित हो जाता है। प्रेम और संशय कभी साथ-साथ नहीं चलते। प्रेम दो प्रेमियों के बीच पारदर्शी परदा है। प्रेम मृत्यु से अधिक शक्तिशाली है, मृत्यु जीवन से अधिक शक्तिशाली है। यह जानते हुए भी मानव-मानव के मध्य कितनी संकुचित सीमा खिंची है। जो प्रेम व्यवस्थाहीनता में व्यक्त होता है, वह अंधा प्रेम है। सच्चा प्रेम स्तुति से प्रकट नहीं होता, सेवा से प्रकट होता है। धन और वैभव हृदय की प्यास नहीं बुझा सकते, उसके लिए आवश्यकता है निर्धन प्रेम की। परमात्मा पूजा का नहीं, प्रेम का भूखा है। परस्पर प्रेम के रहस्य को हृदय ही जान सकता है।

पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान। एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान।।

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय। ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।

प्रेम अंधा है और प्रेमी उन सुन्दर मूर्खताओं को, जिन्हें वे करते हैं, नहीं देख सकते। प्रेम आंखों से नहीं हृदय से होता है। अत: प्रेम के देवता को अंधा बताया गया है। प्रेम बिना तर्क का तर्क है। प्रेम भाग्य के वश है। प्रेम आत्मा से होता है, शरीर से नहीं। प्रेम बलिदान है, आत्म-त्याग है, ममत्व का विस्मरण है। प्रेम कितना उन्मादक। प्रेम सुखद भी अवसादक भी

प्रेम। मधुर भी और तिक्त भी प्रेम। पूर्ण भी और रिक्त भी प्रेम। प्रेम की पवित्रता का इतिहास ही मनुष्य की सभ्यता का इतिहास है, उसका जीवन है। प्रेम क्रय नहीं किया जाता, वह अपने आप को अर्पित करता है। प्रेम की शक्ति दण्ड की शक्ति से हजार गुनी प्रभावशाली और स्थायी होती है। प्रेम हमें अपने पड़ोसी अथवा मित्र पर ही नहीं, अपितु जो हमारे शत्रु हैं उन पर भी रखना है।

प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय। राजा परजा जेहिर रुचै, सीस देइ लै जाय।। प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय। लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय।।

प्रेम बिना जन हैं जीवन्मृत, प्रेम बिना अपने में सीमित, मिलता हां प्रणय चरणामृत, मृत्यु न आती पास तहां।

प्रेम नहीं प्राणों का बन्धन, प्रेम नहीं अस्थिर विरह मिलन, प्रेम मुक्ति है प्रेम ही सृजन, सुख-दुख में आनन्द जहां।

प्रेम में नियम नहीं होता। नियम आदमी बनाता है। प्रेम पर उसका बस नहीं। वह ऐसी चीज है जैसे भूकम्प। प्रेम से मर्यादाओं की सृष्टि होती है। प्रेम में स्वर्गिक आनन्द और मृत्यु की सौ यंत्रणा है, किन्तु जो प्रेम करता है, वही सच्चा सुखी और भाग्यवान् है। प्रेम में हमें स्वाद आता है पर प्रेम अपने को दे डालने की आतुरता के सिवाय और क्या है ?

प्रेम व्यथा तन में बसे, सब तन जर्जर होय। राम वियोगी न जिए, जिए तो बौरा होय।।

प्रेम स्वर्गीय शक्ति का जादू है। इसमें पड़कर राक्षस भी देवता बन जाता है।

मनुष्य की समस्त दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने वाली अमोघ वस्तु प्रेम मेरे विचार से परमात्मा की सबसे बड़ी देन है।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं। सीस उतारै, भुंइ धरै, तब पैठे घर माहिं।।

रस अनरस समझे न कछु, पढ़ै प्रेम की गाथ। बीछू मंत्र न जानहीं, सांप पिटारे हाथ।।

सच्चे प्रेम में मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। केवल प्रेम को ही नियम भंग करने का अधिकार है। साथ रहने से चाहे मनुष्य हो या पशु, हृदय में प्रेम उत्पन्न हो ही जाता है।

स्वामी हम तुम एक हैं, कहन-सुनन को दोय। मन से मन को तोलिए, कबहुं न दो मन होय।।

हमारे अन्तर में यदि प्रेम जाग्रत न हो, तो विश्व हमारे लिए कारागार ही है।

प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, दूर भी ढेल देता है।

मादक थी मोहमयी थी मन बहलाने की क्रीड़ा। अब हृदय हिला देती है, वह मधुर प्रेम की पीड़ा।।

स्त्रियों के प्रेम का अन्त नहीं है। भक्ति एक चीज है, प्रेम दूसरी चीज। दैवी सौन्दर्य के लिये मानव की भूख को प्रेम कहते हैं। प्रेम के स्पर्श से हर व्यक्ति कवि बन जाता है। प्रेम प्रभु का सार है। प्रेमविहीन हृदय के लिए संसार काल-कोठरी है, जो नैराश्य और अंधकार से भरी है।

प्रेम का स्वरूप अद्‌भुत हैं। प्रेम की शक्ति सर्वोपरि है। प्रेम मनुष्य को ऐसी रचनात्मक शक्ति प्रदान करता है जिसके द्वारा संसार की श्रेष्ठतम, सुंदरतम कृतियों की रचना संभव है। विश्वविख्यात ताजमहल इसका आदर्श उदाहरण है। प्रेम ईश्वर का ऐसा वरदान है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व को संपूर्णता प्रदान करता है। प्रेम की कल्पना ही किसी के हृदय को सुखमय बना देती है। प्रेम हृदय की ऐसी आश्चर्यजनक अनुभूति है जिसे व्याख्या की सीमा में नहीं बांधा जा सकता प्रेम वह दर्द है जिसका विकल्प संसार का श्रेष्ठतम सुख भी नहीं हो सकता। प्रेम एक शक्तिशाली प्रेरणा है। प्रेम प्रकाश है अंधकार नहीं। सृष्टि के मूल में प्रेम है, इसलिए प्रेम को ईश्वर और ईश्वर को प्रेम माना गया है। प्रेम ही जीवन

है और जीवन ही प्रेम है।

आधुनिकता के इस युग में मानव जैसे-जैसे प्रगति कर रहा है वैसे-वैसे उसके हृदय से प्रेम की भावना नष्ट हो रही है। युवा वर्ग प्रेम का संबंध केवल शारीरिक संबंध व सुख को मानता है, जबकि ऐसा नहीं, यह उसकी मानसिक विकृति है। प्रेम तो परमात्मा का साक्षात रूप है। या कहें कि प्रेम यदि गंगोत्री है तो परमात्मा समुद्र। जैसे गंगोत्री से गंगा समुद्र में विलीन है, वैसी ही प्रेम की परिणति परमात्मा की प्राप्ति होती है। प्रेम ऐसी वस्तु नहीं जिसे खरीदा जाए बल्कि प्रेम जीवन की सर्वाधिक अनमोल संपदा हैं। प्रेम, त्याग, बलिदान की भावना का संपूर्ण समर्पण है। प्रेम का कोई मापदंड नहीं। इसमें भय, घृणा, वैमनस्य, ऊंच-नीच, उम्र बंधन का कोई अस्तित्व नहीं। प्रेम किताबों में खोजने से नहीं मिलेगा। वह तो मन, हृदय, आत्मा का संगम है। प्रेम पवित्र प्रेम के रूप में सर्वत्र है। आज हमें विश्व समाज को, देश में भाईचारे को व अपने जीवन को सार्थक बनाना है तो प्रेम की सरिता बहानी चाहिए।

अपने एहसास, अपना नजरिया और अपनी भावनाए... सब मिलकर हर इंसान को प्रेम की एक नयी ही परिभाषा बताती है। इसलिए इस पर कोई एक मत दे पाना मुश्किल है। ऐसी स्थिति में प्रेम की कोई सर्वसम्मत व्याख्या दे पाना बहुत मुश्किल बात हो जाती है। हालांकि मनुष्य के जीवन में प्रेम की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण है कि इससे मुंह भी नहीं मोड़ा जा सकता।

शारीरिक आकर्षण महत्वपूर्ण- प्रेम दमित कामेच्छा का प्रकटीकरण मात्र है। जबकि रसेल के अनुसार प्रेम जीवन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्यार का अर्थ बहुत विस्तृत है। इसे किसी सीमा में नही बांधा जा सकता। कमला नेहरू कॉलेज में मनोविज्ञान की प्रोफेसर डॉ. जनक सिंह के अनुसार मोटे तौर पर विपरीत लिंग के दो व्यक्तियों के बीच के आकर्षण को प्यार कहा जा सकता है। लेकिन पुरुष का स्त्री तथा स्त्री का पुरुष के प्रति आकर्षण प्राकृतिक है और उसके कई रूप है। यह पिता-पुत्री के बीच भी होता है, मां-बेटे के बीच भी और प्रेमी-प्रेमिका के बीच भी। इन सब को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। जब हम प्रेमी-प्रेमिका के बीच के प्रेम यानी प्रणय की बात करते है तो वहां शारीरिक आकर्षण महत्वपूर्ण होता है। मानसिक आकर्षण बाद में आता है। इसमें जाति, धर्म या उम्र मायने नहीं रखता।

प्रेम के संचरित होते ही जड़ चेतन में, अन्धकार प्रकाश में, मिथ्या सत् में, दु:ख आनन्द में, दुराशा सदाशा में, भेद अभेद में, कोलाहल शान्ति में और मृत्यु अमरत्व में रूपान्तरित होने लगते है। प्रोमोन्मळाता में तुच्छ महान् और अणु विराट अनुभूत होने लगता है। जैसे ही तुम प्रेम की गइराई में डूबते हो तुम्हारे भीतर कुछ नया होने लगता है, कुछ दिव्य बनने लगता है। प्रेम के संस्पर्श से ही हृदय में श्रेष्ठ भावनाएं उमड़ने लगती है और अचानक सद्गुण जगने लगते है। चेहरे पर प्रसन्नता का फूल खिलने लगता है और सारी दिनचर्या ही बदलने लगती है। आवश्यकता है निश्छल भाव से स्वयं अपने से प्रेम करने की। सद्ग्रन्थों में हम पढ़ते-सुनते है कि अपने पड़ोसी से प्रेम करो, सभी प्राणियों से प्रेम करो। परन्तु अपने आप से प्रेम करने की बात आपको अटपटी लग सकती है और उसमें स्वार्थ की गन्ध आ सकती है। अपने बारे में हम यह भ्रान्त धारणा बना लेते है कि हम दूसरों से प्रेम करते है और अपने से भी। सत्य हमारे आचरण में उतरे जिन्होंने सत्य को जीवन में उतारा है, आचरण में ढाला है, उन्ही के कार्य सफल हुए है जिन्होंने स्वयं से प्रेम किया है।

संसार का स्वभाव ही चंचलता है। यहां कोई संबंध स्थायी नहीं और किसी संबंध में स्थायी मिठास नहीं होती। जिस

प्रकार पानी और तेल वर्षों साथ रहने के बाद भी एकरूप नहीं हो सकते, क्योंकि उनके स्वभाव भिन्न है। उसी प्रकार राग को आधार बनाकर खड़े किये गये किसी भी संबंधों को नाम भले ही प्रेम का दिया जाता हो किन्तु उसमें राग के सिवाय और कुछ नहीं होता। व्यवहार में सभी एक-दुसरे से कहते हैं कि मैं तुम्हें चाहता हूं, परंतु स्वयं के सिवाय और किसी को भी कोई चाहता नहीं। बातें सभी स्वतंत्रता के पक्ष में करते हैं मगर एक-दूसरे पर आधिपत्य (अधिकार) जमाने की यहां दौड़ लगी है। जहां संबंधों के पीछे सिर्फ राग ही है, गणित और गिनती है, प्रत्येक कार्य का हिसाब-किताब हो रहा है वहां सर्वत्र क्लेश के ही दर्शन होते रहेंगे और मन में संक्लेशों का कारवां ही चलता रहेगा। तुम्हें सुख और आनंद प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम राग का स्थान प्रेम को देना पड़ेगा। तुम्हें एक केंद्रित राग को विसर्जित करके अपने हृदय में सर्व केंद्रित प्रेम की प्रतिष्ठा करनी पड़ेगी। सामनेवाले व्यक्ति का स्वभाव सुधरना चाहिए, मन की इस झूठी मांग को दफना दो और अंत:करण से आत्मसात कर लो कि सामनेवाले व्यक्ति का स्वभाव मुझे विनम्रता से स्वीकार कर लेना चाहिए। इस संकल्प को स्वीकार किये बिना मन को प्रसन्नता का स्वामी बनाने में किसी को भी सफलता नहीं मिल सकती।

प्रेम केवल उस आदमी में होता है जिसको आनंद उपलब्ध हुआ हो। जो दुखी हो, वह प्रेम देता नहीं, प्रेम मांगता है, ताकि दुख उसका मिट जाये। सारे दुखी लोग प्रेम चाहते हैं। प्रेम इसलिए चाहते हैं कि वह प्रेम मिल जायेगा तो उनका दुख मिट जायेगा, दुख भूल जायेगा। प्रेम की आकांक्षा भीतर दुख के होने का सबूत है, तो फिर प्रेम वह दे सकेगा जिसके भीतर दुख नहीं है। जिसके भीतर कोई दुख नहीं है, जिसके भीतर केवल आनंद रह गया है, वही आपको प्रेम दे सकेगा। प्रेम मुक्ति बननी चाहिए, बंधन नहीं, तभी प्रेम सच्चा है।

जब प्रेम है, सौहार्द्र है, उस समय व्यवस्था करें और प्रेम भी व्यवस्था के साथ ही रह सकता है, अन्यथा रह नहीं सकता। जहां व्यवस्था नहीं है, वहां विसंविभाग-सा लगता है।

प्रेमी प्रेमास्पद को अखण्ड सुखी देखना चाहता, उनको सुखी देखकर ही वह सुखी होता है। प्रेमी के सुख का आधार है-प्रेमास्पद का सुख। इस भाव का जितना विकास इस जगत् में जहाँ कहीं भी होता है, वहाँ उतना ही पवित्र भाव होता है।

जिसे प्रेम प्राप्त हो जाता है, उसके ऊपर और कोई बंधन तो रहता ही नहीं, रहता है केवल एकमात्र प्रेम का बन्धन। भला, प्रेमी प्रेम के बन्धन से कभी छूटना चाह सकता है ? यह बन्धन तो उसके परम सुख का आधार है। जो इस बंधन से मुक्त होना चाहता है, वह तो प्रेमी ही नहीं है। इस प्रेम के बंधन में जो आनन्द है, उसकी तुलना लाख मुक्तियों से भी नहीं हो सकती। प्रेमानन्द बड़ा ही विलक्षण आनन्द है। इसका एक कण प्राप्त करके ही मनुष्य निहाल हो जाता है।

प्रेम दो में नहीं होता। वह एक में ही होता है और एक ही प्रेमास्पद सब जगह से प्रेमी की दृष्टि को छा लेता है। एक ही प्रेमास्पद सर्वत्र फैल जाता है। प्रेम में पवित्रता भी अपने-आप आ जाती है; क्योंकि छल, कपट, बेईमानी आदि स्वार्थ में ही रहते हैं और प्रेम में स्वार्थ रहता नहीं। प्रेमी की दृष्टि में सब कुछ प्रेमास्पद ही हो जाता है; उसकी दृष्टि जहाँ जाती है, उसे प्रेमास्पद ही दीखते हैं। प्रेम का उत्तरोत्तर विकास होना ही मनुष्य की वास्तविक उन्नति है। प्रेम का मार्ग धधकती हुई आग की ज्वाला है, इसे देखकर ही लोग वापस भाग जाते हैं; परंतु जो उसमें कूद पड़ते हैं, वे महान् आनन्द का उपभोग करते हैं। देखनेवाले जलते हैं। वह प्रेम प्रेम नहीं है, जिसका आधार किसी इन्द्रिय का विषय है।

नियमों के सारे बन्धनों का अनायास आप-से-आप टूट जाना ही प्रेम का एकमात्र नियम है। जबतक नियम जान-बूझकर तोडे जाते हैं, तबतक प्रेम नहीं है, कोई-न-कोई आसक्ति हमसे वैसा करवा रही है। प्रेम में नियम तोड़ने नहीं पड़ते,

परंतु उनका बन्धन आप-से-आप टूट जाता है। प्रेम में एक विलक्षण सत्ता होती है, जो नियमों की ओर देखना नहीं जानती। प्रेम में भी सुख की खोज होती है; परंतु उसमें विशेषता यही है कि वहाँ प्रेमास्पद का सुख ही अपना सुख माना जाता है। प्रेमास्पद के सुखी होने में यदि प्रेमी को भयानक नरक-यन्त्रणा भोगनी पड़े तो उसमें भी उसे सुख ही मिलता है; क्योंकि वह अपने अस्तित्व को प्रेमास्पद के अस्तित्व में विलीन कर चुका है। अपना सुख चाहनेवाली तो वेश्या हुआ करती है, जिसके प्रेम का कोई मूल्य नहीं। पतिव्रता तो अपना सर्वस्व देकर भी पति के सुख में ही सुखी रहती है; क्योंकि वह वास्तव में एक पति के सिवा अन्य किसी पदार्थ को अपना नहीं जानती। प्रेमास्पद यदि प्रेमी के सामने ही उसकी सर्वथा अवज्ञा करके किसी नवीन आगन्तुक से प्रेमालाप करे तो इससे प्रेमी को क्षोभ नहीं होता, उसे तो सुख ही होता है, क्योंकि उस समय उसके प्रेमास्पद को सुख हो रहा है। जो वियोग-वेदना, अपमान-अत्याचार और भय-भर्त्सना आदि सबको सहन करने पर भी सुखी रह सकता है, वही प्रेम के पाठ का अधिकारी है। प्रेम वाणी का विषय नहीं; जहाँ लोक-परलोक के अर्पण की तैयारी होती है, वहीं प्रेम का दर्शन हो सकता है।

प्रेम के दर्शन बड़े दुर्लभ हैं; सारा जीवन केवल प्रतीक्षा में बिताना पड़े, तब भी क्षोभ करने का अधिकार नहीं। प्रेम खिलौना नहीं है, अपितु धधकती हुई आग है। जो सब कुछ भुलाकर उसमें कूद पड़ता है, वही उसे पाकर कृतार्थ होता है। प्रेम का आकार असीम है; जहाँ संकोच या सीमा है, वहाँ प्रेम का स्थान नहीं। प्रेम प्रेम के लिए ही किया जाता है और इसकी साधना में बिना विराम के नित्य नया उत्साह बढ़ता है। प्रेम अनिर्वचनीय है, प्रेम का स्वरूप केवल प्रेमियों की हृदय गुफाओं में ही छिपा रहता है। जो बाहर आता है, वह तो उसका कृत्रिम स्वरूप होता है। जिस प्रेम में भोग-सुख की इच्छा है, संयम का अभाव है, कर्त्तव्यविमुख होकर केवल पास रहने या देखते रहने की ही चेष्टा है, थोड़ा भी मानसिक विकार है, स्वार्थ-साधन का प्रयास है और परस्पर पवित्रता बढ़ाने की जगह इन्द्रिय-तृप्ति की सुविधा खोजी जा रही है, वह प्रेम कदापि पवित्र नहीं हो सकता। प्रेम के मार्ग में क्रिया का विरोध नहीं है, अपितु उसमें क्रिया और भी सुन्दर ढंग से होती है। हमारी क्रिया से प्रेमास्पद को सुख पहुँचता है- इस भाव से तो क्रिया में और भी रस, माधुर्य, सौन्दर्य, उत्साह और भाव बढ़ जाता है।

प्रेम ही परम तत्व है। प्रेम की पुकार से ही दुश्मन भी प्रेमी हो जाता है। चंचल प्राणी के साथ कभी भी प्रेम नहीं करना चाहिये। परिणाम से ही प्रेम का पता चलता है। प्रेम में वासना न होती तो प्रेम परमात्मा हो जाता।

जहाँ सांचो प्रेम होय, वहाँ दूजो कछु नहीं सुहाय।।

आदमी से प्रेम करो, प्रकृति से प्रेम करो, चांद-तारों से प्रेम करो और सब प्रेम उसी परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाता है कहीं भी प्रेम की अंजलि चढ़ाओ, कहीं भी प्रेम के फूल चढ़ाओ, वे उसीके चरणों में पहुंच जाते हैं। प्रेम भाषा से व्यक्त नहीं होता, उसकी अभिव्यक्ति भाव से होती है।

सभी धर्मोंका लक्ष्य प्रेमधर्म है। सभी नीतियोंका उद्देश्य प्रेम-नीतिपर पहुँचना है। प्रेम धर्मोंसे परे है, नीतियोंसे परे हैं, परन्तु सब धर्म, सब नीतियाँ प्रेमके अन्तर्भूत हैं। वह धर्म, धर्म नहीं जिसमें प्रेम न हो। वह नीति, नीति नहीं जिसमें प्रेम न हो। प्रेम व्यापक है और धर्म तथा नीति व्याप्य। इनके बिना वह रह सकता है परन्तु उसके बिना ये नहीं रह सकते। सम्पूर्ण नीतियोंका ज्ञान हो परन्तु प्रेमनीतिका ज्ञान न हो तो वह ज्ञान किसी कामका नहीं। प्रेम-नीति भगवान्‌की नीति है, उनके सब अपने हैं, सबके साथ उनका प्रेम है और जो उनके आश्रित हैं, उनके साथ तो विशेष प्रेम हैं। आश्रितवत्सलता भगवान्‌की नीति है और यह प्रेमसे भरी हुई है। भगवान्‌के भक्त इस बातको जानते हैं और सर्वदा उसीके अनुकूल व्यवहार

करते हैं। प्रेम ऐसा राजयोग है कि वह जीवन भर टूटता नहीं, नेह का नाता टूटता नहीं, प्राण निकलते नहीं घुट-घुट कर मरना पड़ता है। तड़प-तड़प कर जीवन बिताना पड़ता है, मान अपमान लोकापवाद सभी कुछ प्रेमास्पद की प्रसन्नता के लिये सहन करने पड़ते हैं। कैसा यह कंटकाकीर्ण पथ है, कैसी इसकी वक्र गति है कैसी प्रेम की अटपटी चाल है। रोने में भी सुख और हँसने में भी उल्लास है।

प्राणी प्रेम के आधार पर ही जीवित है। प्रेम के बिना जीवन नहीं, रस नहीं, स्फूर्त्ति नहीं। प्राणियों का परिष्कृत पुण्यपथ प्रेम ही है। यह सम्भव है, प्राणी जल, वायु के बिना भले ही जीवित रह सके, किन्तु प्रेम के बिना जीवन असम्भव है। जो जितना ही महान तथा उत्तम होगा उसका प्रेम भी उतना ही विशाल और विस्तृत होगा। बहुतों को धन से ही प्रेम होता है। धन के लिये वे तन को कुछ नहीं समझते। बहुतों को प्राणों से प्रेम होता है। प्राण रक्षा के लिये वे बड़ा-से-बड़ा पाप कर सकते हैं। बहुतों को धर्म से प्रेम होता है। धर्म के लिये वे हँसते-हँसते प्रसन्नतापूर्वक प्राणों का परित्याग कर सकते हैं। बहुतों को माता, पिता, गुरु, भाई, पत्नी, इष्टमित्र तथा अन्य किसी सगे-सम्बन्धी से इतना प्रेम हो जाता है कि उनके वियोग में वे प्राणों को रख नहीं सकते। जो इस अनित्य देह को कुछ न समझकर प्रियतम के निमित्त, प्राणों का परित्याग करते हैं, वे संसार में यशस्वी होते हैं। मनुष्य बिना प्रेम किये रह नहीं सकता। मनुष्यों की बात तो पृथक् रही पशु भी प्रेम करते हैं। मनुष्य के हृदय में प्रेम और द्वेष करने की प्रवृत्ति है। उसे किसी से प्यार करने में, मीठी-मीठी बातें करने में भी आनन्द आता है और द्वेष करने में, पर निन्दा करने में भी सुख मिलता है। परनिन्दा करने में सुख न हो तो इतने पढ़े-लिखे लोग अकारण बड़े-बड़ों की निन्दा क्यों करें। उन्हें निन्दा करने में भी सुख का अनुभव होता है, जो लोग दूसरों की निन्दा नहीं करते, किसी एक में ही अपना चित्त लगा लेते हैं, वे संयमी सदाचारी पुरुष श्रेष्ठ होते हैं। ऐसे पुरुषों को भी प्रेम करनेवालों की आवश्यकता रहती है। यह मानव प्राणी अनादि काल से प्रेम का भूखा बना है। यदि प्रेम की भूख प्रबल न हो तो जिन्हें खाने-पीने, पहनने तथा वाहन आदि की सभी सुविधायें प्राप्त हैं, वे दुखी क्यों देखे जाते? दुख वस्तुओं के संग्रह या अभाव में नहीं है। हम जो चाहते हैं, वह न प्राप्त हो तो दु:ख होता है। हम आशा करते हैं हमारा मित्र हमें प्रेम करे, यदि वह प्रेम न करके विश्वासघात करता है तो हमें दु:ख होता है। पत्नी चाहती है पति मुझसे प्रेम करे, किन्तु वह पत्नी से प्रेम न करके दूसरी किसी स्त्री से प्रेम करता है तो उसे मर्मान्तक पीड़ा होती है। प्रेम के बिना पदार्थों में कोई स्वाद नहीं, प्रेम के बिना अमृत पिलावें तो वह निस्सार है और प्रेम सहित विष भी पिया जाय तो वह अमृत है। साधारण पुरुषों को देखें, वे प्रेम के लिए कितने तड़पते रहते हैं। बालक अपने साथी बालक-बालिकाओं से कैसा प्रेम करते हैं। एक दूसरे के साथ खेलते हैं, उन्हें घर ले जाते हैं। मित्र के पिताजी से पिताजी कहते हैं, साथ-साथ बैठकर थाली में खाते हैं। बालकपन में कितना भोलापन रहता हे। बाल्यकाल की मैत्री कैसी निश्छल-निष्कपट होती है। लड़कियाँ अपनी सहेलियों से कैसी घुल-घुलकर बातें करती हैं। गुड्डी गुडियों से खेलती हैं। खेल-खेल में लड़ाई भी हो जाती है। फिर प्रेम हो जाता है। बालक जिसे भी देखता है उसी में प्रेम की खोज करता है। इसीलिए बालक को सब प्रेम करते हैं। युवावस्था में हृदय किसी को अर्पित करने को ब्याकुल हो जाता है। इसीलिए माता-पिता विवाह कर देते हैं। पत्नी अपने अनुकूल पति को पाकर और पति अपने मनोऽनुकूल पत्नी को पाकर अपना हृदय उसे सौंप देते हैं। यदि दोनों का मन नहीं मिला तो रोते-रोते जीवन बिताना पड़ता है। अथवा जिस स्त्री को पति प्यार करता है और वह परलोक प्रयाण कर जाती है तो सत्पति फिर दूसरी पत्नी से

सम्बन्ध नहीं करता। फिर उसे मित्रों से वह प्रेम प्राप्त करना होता है। पिता पुत्र से प्रेम करके अपने भावों को व्यक्त करता है। जिसके न स्त्री है न बच्चे, मित्र हैं न सम्बन्धी, ऐसे साधु सन्त अपने शिष्यों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हैं। जिस हतभाग्य के प्रेम करने को कोई भी नहीं, वह या तो पाषाण हृदय होकर संसार में जड़ता को प्राप्त होता है या प्रेमार्णव में डूबकर अपने आपको उसमें तन्मय कर देता है। प्रेम में स्थान की दूरी व्यवधान नहीं डालती। प्रेमी, प्रेमी को खोज ही लेता है। प्रेम छिपाये नहीं छिपता, प्रेम की गन्ध बिना फैलाये फैल जाती है। प्रेम एक ऐसा अनुपम पेय है कि प्रकृति के स्वाभाविक गुण उसमें बाधा दे ही नहीं सकते। उस पुत्र के माता-पिता धन्य हैं, जिनकी प्रशंसा पुरुष पीठ पीछे भी प्रेमपूर्वक करते हैं। ऐसे प्रेमी पुरुष संसार में बड़े भाग्य से मिलते हैं। ऐसे पुरुषों के दर्शनों से ही परम पुण्य प्राप्त होता।

युवक-युवतियों में प्रेम होने पर परस्पर इस सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध को जोड़ने की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। यदि उन दोनों में से एक भी इस प्रस्ताव को सामाजिक या धार्मिक बन्धन के कारण ठुकरा देता है तो उनमें परस्पर प्राय: द्वेष हो जाता है, क्योंकि लौकिक प्रेम में काम की प्रधानता होती है। नाशवान् देह के सम्बन्ध से किया हुआ प्रेम, प्रेम न होकर मोह होता है। और मोह तो दु:ख का कारण होता ही है। अत: जो प्रेम करने का इच्छुक हो, उसे देह से प्रेम न करके आत्मा से करना चाहिये। इससे उसे कभी भी दु:ख न उठाना पड़ेगा। प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। यह प्रेम अवर्णनीय है तथा अपने अद्भुत आकर्षणमें सबको बाँधे रहता है। जीवन को चमत्कृत किये रहता है। अपनी रहस्यमयतासे सबको मुग्ध करनेवाला यह प्रेमतत्त्व जिसे प्राप्त है समझो, उसे सब कुछ मिल गया है।

प्रेम अत्यन्त व्यापक वस्तु है- मनुष्यमें ही नहीं, अपितु समस्त प्राणियोंमें इसका वास है। अच्छा लगना, आकर्षण महसूस करना, निकटताकी कामना करना तथा वियोगमें और अधिक घनीभूत होना- प्रेमकी पहचान है।

मानव जीवन में प्रेमकी सत्ता शाश्वत है। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यंत मानव प्रेमपाशमें बँधा हुआ है। मनुष्य जब जन्म लेता है तो सर्वप्रथम वह मां के सम्पर्क में आता है, तदुपरान्त शनै:-शनै: अवस्था के साथ-साथ वह संसारके अन्य लोगोंसे भी जुड़ता जाता है। उसका यह जुड़ना (लगाव) या रागात्मक सम्बन्ध एक प्रकारसे इन लोगोंके प्रति प्रेम ही है, किंतु जब उसमें ज्ञान-विवेकके अङ्कुर फूटने लगते हैं, सत्-असत् हित-अहित और सार-नि:सारका नीर-क्षीरवत विवेक उद्भूत होने लगता है तो अन्तत: जगत् उसे नश्वर प्रतीत होने लगता है तथा ईश्वर-प्रेमके प्रति उसकी आस्था जग उठती है। उसका लगाव जगत्के व्यामोहसे हटकर ईश्वरपर केंद्रित हो जाता है।

प्रेमका प्रतिदान शीश-मस्तकदान है। सोना-हीरा उसका मूल्य नहीं है।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं। सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठे घर माहिं।।

परम प्रेम के पाले पड़कर प्रभु का नियम बदलते देखा।

प्रेम मनकी अत्यन्त पवित्र वृत्ति है। जहाँ जितनी ही अधिक समीपता, जितनी ही अधिक अंतरङ्गता और जितनी ही अधिक प्रत्यक्षता होती है; इस प्रेमका वहाँ उतना ही अधिक प्राकट्य होता है। प्रेम बड़ी विलक्षण वस्तु है। जब यह परिपक्व हो जाता है तब प्रेमीको प्रेमास्पदके अतिरिक्त अन्य किसीका स्मरण नहीं रहता। हर क्षण उसे प्रियतमकी याद बनी रहती है। शास्त्रोंके अनुसार हमारी अन्तरात्मा अत्यन्त अभिन्न स्वरूप होनेके कारण निरतिशय प्रेमकी पात्र है।

प्रेम वह तत्त्व है जो प्रिय-प्रेमाश्रयको असाधारण सुख देता है। प्रेम केवल प्रियतमके सुखके लिये ही होता है। प्रेममें

केवल प्रियके ही अनुकूल आचरण होता है। प्रिय सुख-कामनाके अतिरिक्त प्रेममें स्व-काम बिलकुल नहीं होता है। प्रेम वाणीके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है, वह मूकास्वादवत् अनिर्वचनीय होता है। प्रेमको भक्तिका उत्कर्षक माना गया है।

प्रियका सुख-दु:ख प्रेमीका अपना ही सुख-दु:ख बन जाता है। इसीलिये प्रेमी जो कुछ भी करता है, वह केवल प्रियके लिये ही करता है। प्रिय और प्रेमीका भाव-बन्धन जब अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंमें अटूट रहता है, तब उस भाव-बन्धनको प्रेम कहते हैं। प्रेमीका वह असाधारण हार्दिक भाव प्रेम है, जिसमें प्रियतमका सुख ही प्रेमीका अपना सुख है। प्रियतमके लिये अनुकूल परिस्थिति ही प्रेमीकी अनुकूल परिस्थिति है। प्रेमीका निजी-अपना कोई काम है ही नहीं।

ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।

प्रेम संसारका सर्वोपरि आकर्षण है। यही संसारका स्थायी सत्य है। प्रेमका ग्रहण ही परमात्माकी प्राप्ति है। प्रेमका स्वस्थ स्वरूप समर्पणमें है, त्यागमें है। प्रियसे प्रतिदानकी आशा उसे दूषित कर देती है। प्रेम करनेका उद्देश्य अपनी आत्माको प्रेम-रससे सराबोर करना है। उसका और कोई प्रतिफल नहीं। इस मार्गपर तो वे ही चल सकते हैं, जो सर्वथा नि:शंक हैं तथा जिन्होंने अपनेपन तकका परित्याग कर दिया है। इसमें तो सर्वस्वार्पणमें ही कृतार्थता है। प्रेम जब जड़ जगत्तकको प्रभावित करता है, तब फिर चेतनजगत् उसका अपवाद कैसे हो सकता है?

प्रेम अलौकिक एवं अनुभवगम्य है। प्रेम मानव-जीवनकी सर्वोच्च प्रेरणा है, आत्मानन्दका आधार है। मानवको और पुरुषको पुरुषोत्तम बनानेकी शक्ति भगवत्प्रेममें ही है। प्रेममें आत्मसाक्षात्कारकी, हृदयमें निष्काम निष्ठा जाग्रत करनेकी और आत्मासे परमात्माकी अनुभूति करानेकी एक महान् शक्ति होती है। सत्यरूपसे प्रकट हुआ प्रेम ईश्वरीय प्रकाश है। ऐसे पावन प्रेमका रसास्वादन जिसने नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ है। एक बार सम्राट अकबरने तानसेनसे पूछा कि तुमसे अधिक श्रेष्ठ संगीतका आनन्द स्वामी श्रीहरिदासजीके गायनमें क्यों मिलता है? तानसेनने अकबरसे कहा- जहाँपनाह। मैं आपको खुश करनेके लिये गाता हूँ और मेरे गुरुदेव उन परमात्माको रिझानेके लिये गाते हैं।

मनके राग या अनुरागरूप भावका नाम प्रेम है, जिसका व्यापक रूप प्रेमतत्त्व है। प्राणिमात्रका स्वभाव है कि वह किसी-न-किसीसे प्रेम करता है। हिंसक सिंह आदि जन्तु भी अपने बच्चेसे प्रेम करते ही हैं। लौकिक रागकी भावना अपनी अनुकूलतापर निर्भर रहती है। अत: तन-धन-जनमें राग होना स्वाभाविक है, किंतु परमात्मामें अनुरागात्मक प्रेम होता है, जिससे नित्य आनन्दकी अनुभूति होती रहती है। यद्यपि परिवर्तनशील लौकिक विषयोंका प्रेम चिरस्थायी नहीं होता, फिर भी क्षणिक तृप्तिके लिये लोग उनसे प्रेम करते हैं। प्रेम और प्रियका सम्बन्ध सहज है। प्रेमके लिये प्रिय और प्रियके लिये प्रेम अपेक्षित है। एकके बिना दूसरा रह नहीं सकता। बात यह है कि दोनोंकी प्रकृति एक ही है। प्रेमरूप साधनका प्रयोजन प्रियकी प्राप्ति है; क्योंकि प्रिय वस्तुकी प्राप्तिसे प्रेमी तृप्त होता है। अत: तृप्ति प्रदान करनेवाला प्रिय है।

प्रेम अनिर्वचनीय है। प्रेम मूर्तिमान् ईश्वर है एवं प्रेम परमात्माका मूल स्वरूप है। प्रेमसे उत्पन्न हुई प्रत्येक किरण आनन्द-ही-आनन्द बिखेरती है। जिसके जीवनमें प्रेमानन्द नहीं, वह जीव नहीं, वरन् मरुभूमिका मृग ही है जो अतृप्त ही समाप्त हो जाता है। जब प्रेममें अवगाहन होगा तो प्रेम प्रकट होगा। प्रेमके बीच सूईके नोक-जितनी कामना, चाहना और इच्छा न हो तो प्रेम स्वत: ही प्रकट होगा। कामना, चाहना और वासना- ये प्रेममें बाधक हैं। प्रेम स्वच्छन्द है, उन्मुक्त है, इसमें स्वार्थकी झलक भी नहीं होती। जहाँ स्वार्थका सम्बन्ध है, वहाँ यथार्थरूप स्व की अनुभूति नहीं होती। स्वार्थका सम्बन्ध मिटते ही स्वानुभूति स्वत:सिद्ध हो जाती है।

कदाचित् प्रेम भूलसे विपरीत दशाको प्राप्त हो जाय अर्थात् भगवान्‌की ओरसे हट जाय, सांसारिक आसक्तिका रूप धारण कर ले तो परम सुखके बजाय परम दु:खरूप हो जाता है। सच्चे प्रेममें दु:खका लेश भी नहीं और जहाँ दु:ख है, वहाँ प्रेम नहीं। प्रेम कोई व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ, स्थान, गुण, धर्म या क्रिया नहीं, वरन् ये सभी प्रेमसे ही पोषित एवं पल्लवित होते हैं, प्रेमके अभावमें इनका अस्तित्व मिट जाता है। प्रेम ही परमात्मा है और प्रेमासक्ति ही साधककी साधना है। प्रेममें अत्यन्त विलक्षण शक्ति है, सामर्थ्य है। प्रेम सृष्टिका मूल तत्त्व है, इसलिये जगत्‌में प्रेमकी ही सत्ता है। जैसे जलमें तरंग, फेन, बुलबुले आदि जो भी विकार उठते हैं उन सबकी परिणति जलमें ही है। वैसे ही सृष्टिके जो भी क्रिया-कलाप हैं, सबकी परिणति प्रेमतत्त्वमें विलीन होना ही है। अन्य किसीका भी स्थायित्व- सत्ता नहीं है। मात्र केवल एक प्रेम ही स्थिर रहनेवाला है। जीवका मूलस्वरूप प्रेम ही है। बिना प्रेमके जीव मूर्च्छित, उदास, हताश और निराश होने लगता है। उसका जीवपना ठहरता नहीं है। उसे अपने मूलस्वरूप- प्रेममें परिणत होनेपर ही परम सुख, परम शान्ति, परम तत्त्व तथा परम धामकी प्राप्ति होती है। प्रेमतत्त्व ही परमात्मा है या परमात्मा ही प्रेमतत्त्व है।

प्रेममें अपरिमित शक्तियाँ निहित रहती हैं। इसका प्रभाव भी विलक्षण होता है। हम जिसे चाहते हैं, जिससे प्रेम करते हैं, उसमें हमें केवल गुण-ही-गुण दिखायी देते हैं। दूसरी ओर जिसे हम नहीं चाहते, जिसके प्रति मनमें किसी प्रकारकी घृणा अथवा द्वेषका भाव रहता है, उसमें केवल दोष ही दोष दिखायी देते हैं। इतना ही नहीं, हमारी मानसिकता उसके गुणोंको भी दोष मान बैठती है। मनकी रागात्मिका वृत्तिका ही नाम प्रेम है।

अपनेसे छोटेके प्रति प्रेमको स्नेह नाम दिया गया है। बड़ोंके प्रति यही प्रेम श्रद्धा कहलाता है। पति-पत्नीके प्रेमको प्रणय कहा जाता है। मित्रोंके परस्पर प्रेमको सौहार्द्र तो बन्धु-बान्धवोंके प्रति उत्कण्ठाको हार्द नाम दिया गया है।

सृष्टिकी सुरक्षा और सुचारुरूपसे संचालनके लिये प्रेमका बन्धन मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षियोंमें भी समानरूपसे पाया जाता है। चिड़िया स्वयं भूखी रहकर भी अपने शावकके लिये दाना लाती है। कौआ भोजनकी टोह पाते ही काँव-काँव करते हुए अपने सजातियोंको बुलाने लगता है। गाय और सूकर किसी एकको विपत्तिमें पड़ा देखकर एकजुट होकर उसे उस विपत्तिसे छुटकारा दिलानेके लिये प्रयत्न करते हैं। माँ अपनी संतानकी सुरक्षाके लिये प्राणोंकी बाजी लगा देती है। यह सब प्रेमके कारण ही तो है। इसे आप ममता भी कह सकते हैं। वैसे यह प्रेमका संकुचित क्षेत्र है। हमारा अपनेपनका दायरा जितना विस्तृत होता जाता है, प्रेमका व्यापकत्व भी उतना ही बढ़ते हुए वसुधैव कुटुम्बकम् तक हो जाता है।

प्रेम और कस्तूरी की गन्ध छिपाने से नहीं छिपती। प्रेम को जितना ही छिपाया जाय उतना ही वह बढ़ेगा। जीव पूर्ण प्रेमास्पद चाहता है, किन्तु संसार में मिलते हैं अधूरे। जीव नित्य प्रेम की अभिलाषा करता है, किन्तु जगत में मिलता है अनित्य नाशवान्। प्राणी निस्वार्थ प्रेम के लिये छटपटाता है, किन्तु संसार में सर्वत्र स्वार्थ का ही साम्राज्य है। स्वार्थ रहित, केवल शून्य प्रेम संसार में दिखता ही नहीं। इसीलिये संसारी सम्बन्धियों से पूर्ण प्रेम हो नहीं सकता। किसी भाँति जान में अनजान में भगवान् अपनी गोद में आ जायँ, भगवान को गाढ़ालिंगन करने का अवसर प्राप्त हो जाय- तो जीव कृतकृत्य हो जाता है। जीव की तृष्णा तब तक शान्त न होगी, जब तक ब्रह्मसंस्पर्श प्राप्त न होगा। ब्रह्मसंस्पर्श प्राप्त करने में क्या सुख है, वह कहा नहीं जा सकता। गूंगे का गुड़ है। अनुभवगम्य विषय है।

अपने शरीर में दु:ख होने से उतना क्लेश नहीं होता जितना अपने प्रिय के कष्ट को देखकर कष्ट होता है। जिन्हें हम प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं, उनका दु:ख प्राणों का पण लगाकर भी हटाया जा सके, तो प्रेम का मर्म जाननेवाले हँसते-

हँसते अपने प्यारे का प्रिय करने के लिये प्राणों का उत्सर्ग कर देते हैं। यही नहीं अपने प्रिय के प्राणों के बचने की कोई आशा दिखाई न देती हो और स्वयं सब प्रकार से विवश हों, तो उसके मरने के पूर्व स्वयं मर जाना प्रेमीगण श्रेष्ठ समझते हैं।

विश्वके प्राय: सभी धर्मोंमें प्रेमको ही ईश्वरको जाननेका प्रमाणित स्त्रोत माना गया है, अत: जीवनमें प्रेमका अत्यन्त उच्च स्थान स्वत:सिद्ध है। यथार्थमें प्रेम एक पुल है जो दो अजनबियोंको मिलाता और एक शाश्वत एकताको निर्मित करता है। यही प्रेम विश्वासमें बदल जाता है और एक प्रेमी अपने प्रेमास्पदके साथ एक जीव एवं एक तत्त्व हो जाता है। यह इसलिये होता है कि प्रेममें गतिशीलता होती है, उसमें क्षमता होती है; क्योंकि इसके साथ नैतिक मूल्य हैं। प्रेमसे परिपूर्ण प्राणी शाश्वत जीवनकी ओर जाता है जबकि घृणासे परिपूर्ण प्राणी शरीर और आत्मा दोनोंको विनाशकी ओर ले जाता है।

श्रीरामका लव-कुशके प्रति प्रेम, जनकका जानकीके प्रति प्रेम, पृथ्वीका सीताके प्रति स्नेह- ये सभी आदर्श कोटिके प्रेम हैं। दाम्पत्य-प्रेममें दुग्ध-जैसी धवलता, चन्द्रिका-जैसी उज्ज्वलता, मधु-जैसी मधुरता तथा गङ्गा जैसी निर्मलता है। यह प्रेम बाह्य आधारोंपर आश्रित नहीं है, अन्तरकी किसी प्रेरणाका परिणाम है। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही कमल विकसित हो जाता है तथा चन्द्रमाके निकलते ही चन्द्रकान्त मणि द्रवित होने लगती है, उसी प्रकार दो हृदयोंका सम्मिलन प्रेमको स्वत: ही जन्म दे देता है। प्रेम अपना प्रमाण स्वयं है, अन्य किसी स्त्रोतसे वह विज्ञेय नहीं है। वह एक अदृश्य तन्तु है जो प्राणियोंके अन्तर्मर्म एक-दूसरेसे जोड़ता है।

प्रेमका विषय इतना गहन और कल्पनातीत है कि उसकी तहतक विद्वान और ज्ञानी भी नहीं पहुँच सकते। अन्त:करणमें जब प्रेम-रसकी बाढ़ आती है तो मनुष्यके सम्पूर्ण अङ्ग पुलकित हो उठते हैं और हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। सच्चे प्रेममें स्वार्थकी गन्ध नहीं होती। जो भाग्यवान पुरुष भगवान्‌के प्रेममें विह्वल होकर देह से परे हो जाते हैं, उन्हें देहका कोई मोह नहीं रहता। भगवत्प्रेमीके सम्बन्धमें कही गयी यह बात देशप्रेमीपर भी बिलकुल खरी उतरती है। देशप्रेमसे ओत-प्रोत व्यक्तिका अपने देशसे अटूट सम्बन्ध होता है। इस सन्दर्भमें अंग्रेजीशासनसे लोहा लेनेवाले उन अनगिनत देशप्रेमियोंमेंसे एक-दोकी चर्चा करें, जिससे हमें ज्ञात होगा कि आजादीके दीवानोंके लिये अपने वतनसे बढ़कर और कुछ हो ही नहीं सकता। प्रेमका रूप गुणोंसे रहित है, कामनाओंसे रहित है, प्रतिक्षण बढ़नेवाला है, एकरस है, अत्यन्त सूक्ष्म है और केवल अनुभवगम्य है। प्रेमका मार्ग बड़ा ही गहन, दुर्गम और तीक्ष्ण तलवारकी धारके समान है, केवल बातें करनेसे उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। बाहरी वेश या चिन्हका नाम भी प्रेम नहीं है। प्रेमका तत्त्व तो परम रहस्यमय है। जिसने इस तत्त्वको पहचान लिया, वह प्रेमास्पद प्रभुका प्रेमी बन गया। प्रेमके यथार्थ रहस्यको तो पूर्णरूपसे केवल पूर्ण पुरुषोत्तम प्रेमास्पद प्रभु ही जानते हैं अथवा किंचित् ज्ञान उनके प्रेमी भक्तोंको है।

प्रेमपन्थ ज्ञानपन्थसे भी श्रेष्ठ है। इसमें प्रिय और प्रियतमके मध्य द्वैतभाव सर्वथा तिरोहित हो जाता है। प्रेमकी वृत्ति सर्वथा निर्मल है, जिसे धारण करनेसे समस्त वासनाएँ विलुप्त हो जाती हैं और अन्त:करण विशुद्धानन्द-रस-वर्षणसे आप्लावित हो जाता है।

प्रेम की मीठी-मीठी बातें एकान्त में ही होती हैं। जहाँ कोई अपर व्यक्ति आ जाता है वहाँ संकोच होने लगता है। अत: प्रेमी सदा एकान्त खोजते रहते हैं। वास्तव में स्नेह तो निभृत निकुञ्जों में ही होता है, जहाँ ईर्ष्या-द्वेष करनेवाला कोई न हो, जिनसे संकोच होता है, ऐसे गुरुजन न हों। जहाँ केवल एक प्राण एक मन, एक भाव वाले अत्यन्त प्रेमी ही हों। समय, देश

तथा परिस्थिति भी अनुकूल हो। समस्त प्रेम के उद्दीपक भाव हों। सरसता की धारा बहने लगती है, आनन्द की हिलोरें उठने लगती हैं और प्रेम का ज्वार-भाटा आ जाता है। अंग-प्रत्यंग शिथिल हो जाते हैं, शरीर निचेष्ट हो जाता है मानों प्रेम में भाव समाधि लगाई हो। ऐसे दिव्य सुख के समय जो रंग में भंग कर देता है, उससे बढ़कर दुष्ट कौन हो सकता है? वह तो आततायी है, वधार्हरण है। अग्नि को कैसे भी स्पर्श करो वह जला ही देगी।

उत्प्रेक्षा व्यञ्जना के द्वारा किसी के सम्बन्ध की बात किसी पर ढालकर कही जाती है, तो उसे व्यङ्ग कहते हैं। काकु वचनों से भी व्यङ्ग किया जाता है, दूसरों पर ढालकर भी कहा जाता है और प्रत्यक्ष में शब्दों के चातुर्य से भी कहा जाता है। व्यङ्गवचन जितना ही सरस होगा, उसमें जितना ही ममत्व होगा, वह उतना ही मोहक और आनन्ददायक होगा। जितने सरस प्रसङ्ग हैं, उनमें विरहमिश्रित व्यङ्ग वचनों का ही प्राधान्य है। प्रेमी के प्रति व्यङ्ग वचन कहकर अपने हृदय के भावों को व्यक्त करना है। हमारे मन में उनके प्रति कितना अनुराग है, कितना प्यार है, कितना ममत्व है, किन्तु वे कितने कठोर निर्मोही रूखे और निस्पृह हैं यही इन प्रेम के वचनों का तात्पर्य होता है। अपनी विवशता और उनकी अनीति को सिद्ध करना है। यही प्रेम का स्वरूप है, क्योंकि प्रेम सीधा नहीं चलता, उसकी गति सर्प की भाँति कुटिल होती है, इसलिये प्रेम के वचन सीधे और सरल नहीं होते। वे टेढ़े-मेढ़े घुमाव-फिराव के होते हैं। समझने ही वाले उनका कार्य समझते हैं। दूसरे नीरस हृदय वाले मुँह ही ताकते रह जाते हैं।

दुख-सुख अपने आत्मीय से कहने से कुछ हलका हो जाता है। इसी प्रकार जब हृदय प्रेम से भरा हो और उस प्रेम के उफान को अपने प्रेमी के सम्मुख या ऐसे व्यक्ति के आगे जो जाकर प्रेमी से कह दे, इनके सम्मुख व्यक्त करने से चित्त शान्त हो जाता है। भावों का उफान कुछ काल को स्थिर हो जाता है। प्रेमियों के समय काटने का यही तो एकमात्र साधन है। प्यारे की चर्चा करते रहना। अपनी विवशता और उनकी निष्ठुरता का बखान करते रहना। इतनी भी औषधि न मिले तो प्रेम का रोगी कितने दिनों जीवित रह सकता है। उसे तो अखण्ड समाधि लग जायगी इस शरीर का अन्त ही हो जायगा। प्यारे के सम्बन्ध में कुछ कहने रहना यही प्रेमियों का व्यापार है। निरन्तर दर्शनों की चटपटी लगी रहे। मिलन की उत्कण्ठा प्रतिक्षण प्रबल होती रहे और उसमें जो विघ्न डाले उस पर खीज होती रहे इसी में प्रेमियों का समय कट जाता है।

प्रेम का फन्दा अत्यन्त ही सुदृढ़ होता है। मन जिसमें फँस जाता है, फिर उसका निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। जिसमें मन उलझ गया है, उससे जितना ही मन हटाना चाहते हैं उतना ही और अधिक उसमें चिपट जाता है, जितना ही भुलाने का प्रयत्न करते हैं, उतना वह अधिक याद आता है, जितने ही उसके अवगुण देखते हैं, उतने ही वे अवगुण परम मधुर और आकर्षक प्रतीत होते हैं। जितना ही उसे कुरूप सोचते हैं उतना ही वह सुन्दर प्रतीत होता है। उसकी चर्चा से जितने ही विरक्त होना चाहते हैं उतनी ही उनमें अधिकाधिक अनुरक्ति बढ़ती जाती है। इसीलिये कहा है प्रेम की सभी बातें उलटी ही होती हैं।

न तो कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु। व्यवहार से मित्र तथा शत्रु बन जाते हैं। बड़े लोग अपने व्यवहार से ही जान लिए जाते हैं। किसी को समझने के लिए जरूरी है उसका व्यवहार समझना।

प्रेम में मना करना, रूठना, मचल जाना, कोप करना, हठ करना आवश्यक है। इससे प्रेम का सौंदर्य बढ़ता है। उसमें नवजीवन आता है। जितना सुख मधुर मन्द मुसकानमय मुख को देखकर होता है, उससे कहीं अधिक अपनी प्रिया के प्रेम कोप से फूले हुए मुख को देखकर होता है। क्रोध से, प्रेम की लड़ाई से, मन से, रूठने से प्रेम निखर जाता है।

यह जीव सुख चाहता है, सुख की खोज में ही भटक रहा है। यह किसी से प्यार करना चाहता है। प्रेम के लिये व्याकुल होता है, किसी अत्यन्त प्रियतम को हृदय से सटाने के लिये विह्वल हो रहा है, तड़प रहा है, किन्तु संसार में सर्वत्र स्वार्थ का बोलबाला है। जो मिलना चाहता है, स्वार्थ से। जो विषयों का कीड़ा है, जिसके मन में काम की वासना है, वह शुद्ध प्रेम कर ही नहीं सकता। यदि संसार में कोई सच्चा मित्र मिल जाय तो यह नीरस संसार भी सरस बन जाय, किन्तु इस जगत् में सच्चे सुहृद्, निस्वार्थी प्रेमी मिलते नहीं जो प्रेम के ही लिये प्रेम करें। किसी हेतु से स्वार्थवश प्रेम करनेवाले प्रेमी नहीं, वे तो व्यापारी हैं मिथ्या प्रेम प्रदर्शित करके संसारी मिथ्या पदार्थों को वे चाहते हैं। निस्वार्थ सच्चे प्रेमी के तो स्मरणमात्र से रोमाञ्च हो उठते हैं। जिसके चित्त में मित्र की मूर्ति बस गई है, उसका चित्त चञ्चल या दुखी कैसे हो सकता है। प्रेम में नियम नहीं रहता, प्रेम में बड़प्पन नहीं रहता, प्रेम में संकोच नहीं रहता, प्रेम में भेदभाव नहीं रहता। हम ऐसा करेंगे तो लोग क्या कहेंगे, हमारी प्रतिष्ठा में बट्टा लग जायगा, हमारा प्रभाव घट जायगा। ऐसे विचार प्रेम में आते ही नहीं। सच्चे प्रेमी को देखकर हृदय अपने आप विवश हो जाता है। बिना प्रयत्न के हृदय, हृदय से सट जाता है। आँख बहने लगती हैं और शरीर का प्रत्येक रोम खड़ा हो जाता है अंग-अंग में एक प्रकार की विचित्र सिरहन आ जाती है। हृदय में प्रेम का उफान आने पर मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। चित्त चाहता है प्रेमी को अपने में मिलाकर एक कर लें, द्वैधीभाव रहता ही नहीं। कुछ लोग प्रेम की इन चेष्टाओं को दम्भ से भी करते हैं, किन्तु हार्दिक भावों को हृदय तुरन्त ग्रहण कर लेता है। बनावट अधिक दिन तक नहीं रहती। जिनके हृदय में प्रेम की तरंगे उठती हैं नेह की हिलोंरों से जिनका हृदय द्रवीभूत हो गया है। नवनीत की भाँति स्निग्ध और कोमल बन गया है, वे नर नहीं, नरोत्तम हैं, पुरुष नहीं, परमेश्वर हैं। प्रेम ही तो भगवान का रूप है। प्रेम में और प्रभु में कोई अन्तर नहीं, भेद-भाव नहीं, भिन्नता नहीं। हृदय में प्रेम उत्पन्न होते ही हरि दौड़कर उसे हृदय से चिपका लेते हैं और स्वयं भी प्रेमी बनकर नेह का नीर बहाते हैं। प्रेमी को प्रभु अपने में नहीं मिलाते स्वयं उसकी भाँति बनकर उसे अपना लेते हैं। सहायता जितनी ही छिपकर की जायगी, उसका महत्व उतना ही अधिक होगा। अत्यंत प्रेम में दिखावट तनिक भी नहीं रहती। जिसमें जितनी ही अधिक दिखावट होती है, उतनी ही उसमें प्रेम की कमी मानी जाती है। हार्दिक प्रेम में गोपन करने की भावना रहती है। हमारे प्रेम को हमारा प्रेमास्पद जान न सके। हमारी सेवा को समझ न सके।

प्रेम का आदान-प्रदान जितना ही छिपकर परोक्ष में किया जायगा, उतना ही उसका महत्व बढ़ेगा। जहाँ विज्ञापन है, दिखावट है, ढिंढोरा पीटना है, प्रकाशित करना है वहाँ स्वार्थ है, कीर्ति की इच्छा है, ख्याति की भावना है, दम्भ है। प्रेमसे यह दूर की बात है। प्रेम का तो पन्थ ही अटपटा है। यहाँ की तो सभी बातें अटपटी हैं। प्रेम के शब्दों का अर्थ नहीं होता, वे बुद्धि से नहीं समझे जाते उनके लिये हृदय चाहिये। हृदय भी ऐसा हो, जो प्रेम में पगा हो, अनुराग में रंगा हो, रति में भीगा हो, श्रद्धा में सना हो भक्ति में भावित हो, प्रीति में ओत-प्रोत हो और नेह में निचोड़ा गया हो।

प्रेम में पाने का भाव बहुत गहरा होता है। प्रेम में तो देना ही देना होता है। किसी से प्रेम करते हुए हम उस पर अपना अधिकार चाहते हैं। उसे अपने रंग में रंग डालना चाहते हैं। पर होता है इसका विपरीत ही। हम भी अधिकृत होना चाहते हैं और किसी के अनुसार ढल जाना चाहते हैं। पर हम दोनों में संतुलन नहीं रह पाता। आम तौर पर अधिकार जमाने का भाव दृढ़ हो जाता है और दो व्यक्तियों के सामने आपसी सामंजस्य बिठाए रखने की चुनौती अहम हो जाती है। लेकिन प्रेम का सहज और स्वाभाविक रूप तो वह है जहां प्रेम प्रकट ही न हो, स्थापित ही न हो। दो लोग प्रेम या किसी अन्य तरह के

घोषित संबंध की अपेक्षा किए बगैर ही एक-दूसरे को स्नेह देते है। एक-दूसरे का साथ देते है। यही प्रेम का आदान-प्रदान अधिक होता है। अगर उन्हें एक-दूसरे का साथ पसंद हो तो रिश्ते को प्रेम के दायरे में लाए बिना ही कहीं ज्यादा प्रेम एक-दूसरे को देते है। अगर उन्होंने प्रेम प्रकट किया तो संभव है उनमें पहले वाला प्रेम ही न रह जाए।

प्रेम चतुर मनुष्य के लिए नहीं होता वह तो शिशु के समान सरल हृदय रखनेवाले की संपत्ति है। प्रेम से ही सृष्टि का जन्म होता है, प्रेम से ही उसकी व्याख्या होती है और अंत में प्रेम में ही वह विलीन हो जाती है। प्रेम थकान को मिटाता है। दुख को सुख में बदलता है। प्रेम ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान है। जीने की जीवंत प्रक्रिया का नाम ही प्रेम है।

कोई अगर हमें शिद्दत से चाहे तो उसके प्यार का कर्ज चढ़ जाता है मन पर और उम्र पर भी, उसे चुकाने के लिए जिंदगी को महबूब बनना पड़ता है उसी प्यार को निभाने के लिए- प्यार इबादत भी है, प्यार शहादत भी है-

जब दिल महबूब की इस्मत की उन बुलंदियों पर बैठा देता है, जहां पहुंच कर इंसान भी खुदा हो जाता है, तब प्यार इबादत बन जाता है और जब प्यार के नाम महबूब खुदा बनकर फना हो जाये तो प्यार शहादत बन जाता है।

प्यार हया है तो प्यार हयात भी है- जिससे प्यार करता है दिल, उससे नजरें नहीं मिलतीं, क्योंकि उन्हीं नजरों में बसी रहती है हया और शर्म, प्यार जब हो जाता है किसी से तो उसी प्यार में जीना-मरना जिंदगी हयात होता है।

प्यार एक राज है तो प्यार एक आवाज भी है- जब तक प्यार दिल में छुपा रहे, उसका इकरार न हो जाये, तब तक वह खामोशियों का राज बनकर दिल में रहता है और जब प्यार का इजहार होने लगता है, तो वह एक आवाज बनकर आंखों में उतर जाता है। प्यार वासना भी है, प्यार उपासना भी है- जब प्यार की प्यास दिग्भ्रमित हो जाये तो प्यार वासना हो जाता है और जब महबूब खुदा बन जाये तो प्यार उपासना बन जाता है।

प्रेम हमेशा सम्मान करता है, यह एक-दूसरे का समादर करता है। यह पूजा का भाव है। दो समान प्रेमियों में, उनकी अभिव्यक्ति, उनका चलना-फिरना, उनकी बातचीत का ढंग, उनके हावभाव एक जैसे होते है। यह प्रक्रिया सहज ही लगती है। धीरे-धीरे वे एक दूसरे में घुल-मिल जाते हैं। वास्तविक स्थिति में प्रेमियों को एक-दूसरे से कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं होती पर दूसरा व्यक्ति उसे तुरंत समझ जाता है। प्रेम का स्वरूप अवर्णनीय है। गूंगे के स्वाद की तरह है। यह किसी का आधार लेकर ही प्रकट हो सकता है, यह रूप, गुण, कामनाओं से रहित और अनुभवस्वरूप है।

प्यार में नाप-तोल नहीं चलता। जो जितना नाप-तौल करेगा उतना ही वह कम प्यार कर पाता है। प्रेम की भाषा शब्दरहित है। प्रेम में एक स्वर्गीय शक्ति का जादू है, इसमें पड़कर राक्षस भी देवता बन जाते है। प्रेम न तो सांसारिक होता है और न आध्यात्मिक होता है। प्रेम शुरू होता है संसार से और पूर्ण होता है अध्यात्म पर। प्रेम शुरू होता है पड़ोसी से और पूर्ण होता है परमात्मा से। प्रेम तो संसार और परमात्मा के बीच का सेतु है जहाँ से वे दोनों जुड़े है। प्रेम बंधन नहीं है, प्रेम से बढ़कर कोई मुक्ति भी नहीं है। वही लोग जगत में परम मुक्ति का अनुभव करते है जो परम प्रेम को उपलब्ध होते है। सिर्फ प्यार ही में वो ताकत है जो दुश्मन को दोस्त में बदल सकता है। प्यार एक ऐसा शब्द है जो हमें जिन्दगी की तमाम मुश्किलों और दर्द से राहत दिलाता है। प्यार करना कायरों का काम नहीं वीरों का काम है। प्यार वह फल है जो हर मौसम में होता है और हर किसी की पहुँच में होता है। जीवन का हर पल निसार है सिवाय उन लम्हों को जिनमें आप प्रेम में डूबे हुए हो। प्रेम मांगने से कम होता है और देने से बढ़ता है। प्रेम एक अत्यंत सम्मोहक इच्छा है प्रबल रूप से चाहे जाने की।

बिना प्रेम किए मर जाने से ज्यादा दुखद कुछ और नहीं हो सकता। लेकिन इससे भी ज्यादा तकलीफ की बात यह

है कि जिससे आप प्रेम करते हों, उसे बिना यह बताए ही दुनिया से विदा हो जाएं, कि आप उससे प्रेम करते थे। प्रेमी पर सब कुछ न्यौछावर कर दिया जाता है। प्यार के बदले कुछ पाना तो सिर्फ व्यापार है। जीवन हमें ऊपरवाली की एक नियामत मिली है। प्यार में धोखा खाकर जान देने जैसी बचकानी हरकतों से बचना चाहिए। जब किसी के पास दर्दे मुहब्बत न हो तो उसे पता भी नहीं चलता कि वह कौन है, क्या है उसे एहसास भी नहीं होता। यह जानना बहुत ही कठिन है कि किसी क्षण से प्रेम की शुरुआत हुई पर यह जान लेना बहुत आसान है कि प्रेम की शुरुआत हो चुकी है। प्रेम ईश्वर का अत्यंतिक अनुभव है। इसलिये प्रेम करना चाहिए। ईश्वर से प्रेम करो। अपने बच्चे से, अपनी पत्नी, पति, दोस्त, परिवार, अपने प्रियजनोंको, मनुष्य, पशु-पक्षी, पौधों, पहाड़ों, नदियों तक को अपने प्रेम का विस्तार करते जाओ। जैसे-जैसे तुम अपने प्रेम का विस्तार करोगे तो तुम्हारा प्रेम विराट हो जाएगा। तुम प्रेममय हो जाओगे। प्रेम का अर्थ सदा देना है, लेना नहीं। प्रेम आँखों से नहीं मन से देखता है। प्रेम का स्वरूप अवर्णनीय है। वह किसी का आधार लेकर ही प्रकट हो सकता है। यह रूप, गुण कामनाओं से रहित और आनंद स्वरूप है। सच्चे प्रेम का कभी सुखद अंत नहीं हो सकता, क्योंकि सच्चे प्रेम का कभी अंत होता ही नहीं है। प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूंखार शेर है जो अपने शिकार पर किसी की आंख भी नहीं पड़ने देता। प्यार एक ऐसी जमीन है जिसे जितना जोतो, वह उतनी बंजर हो जाती है। जितना हम इसका मजा लेते है, उतना ही यह हमारे भीतर मरने लगता है और अगर इसका आनंद नहीं ले सको, तो ठंडी आहें भरने पर मजबूर करता है। शायद प्रेम में ही मनुष्य वैसा होता है, जैसा सचमुच उसे होना चाहिए। जब प्रेम नाचता हुआ आता है और तुम्हारे भीतर, तुम कहां होते हो? खुदी बेखुदी हो जाती है। आत्मा अनात्मा हो जाती है। एक शून्य रह जाता है। उस शून्य में ही नाचती है किरण प्रेम की।

प्रेम शक्ति भी है और आसक्ति भी। जब व्यक्ति का प्रेम कामनारहित हो जाता है तो वह शक्तिशाली होता है और जब प्रेम में किसी से कुछ चीज पाने का लोभ होता है तो वह आसक्ति बन जाती है। सच्चा प्रेम वह होता है जो प्रेम में किसी प्रकार लोभ और किसी चीज को पाने की ललक नहीं होती है। ऐसा व्यक्ति प्रेम में ऐसे-ऐसे कमाल कर देता है कि बड़े-से-बड़े बलवान और धनवान उसके वशीभूत हो जाते है। मीराबाई का ईश्वर की ओर प्रेम, मीरा को दिया गया जहर असरहिन हो गया। ध्रुव का ईश्वर से अडिग प्रेम, प्रह्लाद का ईश्वरपर अटूट विश्वास पहाड की चोटी से गिरानेपर भी बच जाना। आग के शोलों में भी मुस्कुराते हुए जीवित बचना, तुलसीदास का प्रेम अपने पत्नी के प्रति उफनती नदी को पार कर जाना यह सब प्रेम की शक्ति के उदाहरण है। जिसके हृदय में सच्चा प्रेम होता है वो ही व्यक्ति ईश्वर का सच्चा भक्त हो सकता है। किसीसे प्रेम करना अपनी जीवन गाड़ी को सही दिशा देना। जिसके हृदय में प्रेम का अंकुर होता है उस व्यक्ति को तो भक्ति की ओर अग्रसर किया जा सकता है क्योंकि प्रेम का वृक्ष तभी उग सकता है जब प्रेम का बीज हृदय में हो। बिना प्रेम के अंकुर के तो प्रेम नहीं किया जा सकता। भक्ति मार्ग में प्रेम ही प्रदान है। प्रेम ही यथार्थ है, वह सिर्फ भावना नहीं है। यह अंतिम सत्य है जो इस पूरी सृष्टि के हृदय में बैठा है। प्रेम अंधा है जो वह देख पाता है जो आंख नहीं देख पाती। प्यार का सबसे बड़ा लक्षण है कोमलता, जो कई बार असहनीय हो जाती है। प्रेम उत्तेजित होकर भी दुखी नहीं होता। प्रेम सदा धैर्यवान, क्षमाशील, वफादार व आस्थावान और बिना किसी इच्छा के सदा दानशील रहता है। प्रेम कभी दावा नहीं करता, वह हमेशा देता है। प्रेम करनेवाले ही जिंदा व्यक्ति होते है। प्रेम की भाषा शब्दरहित है। प्रेम हमें वैसे ही तरोताजा करता है, जैसे बारिश के बाद धूप। सच्चा प्रेम वही है, जिसकी तृप्ति

आत्मबल पर हो निर्भर त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण निछावर।

बुद्धि का जवाब बुद्धि से न मिलने पर इन्सान इतना नहीं अकुलाता, जितना कि प्रेम का जवाब प्रेम से न मिलने पर अकुलाता है। प्रेम कोई ऐलोपॅथी दवा जैसी नहीं, जिसका शीघ्र परिणाम दिखाई दे। प्रेम आयुर्वेदिक दवा जैसा है जिसका असर तो जरूरत होता है, परन्तु धीरे-धीरे होता है।

स्नेह उसे कहते हैं- जो दोषों को सह लेता है, वात्सल्य उसे कहते हैं जो दोषों को पी जाता है, जबकि प्रेम उसे कहते हैं जो दोषों को देखता ही नहीं।

वात्सल्य के आदान-प्रदान से व्यक्ति की समाधि ऊंची हो जाती है। असमाधि की दरार पड़ भी गई हो वात्सल्य के आदान-प्रदान से मिट जाती है। प्रेम को किसी बात का भय नहीं।

वर्तमान में अधिकांश युवापीढ़ी के लोग प्रेम जैसे पवित्र शब्द के सटीक अर्थों में अवगत नहीं हैं। वह केवल इस शब्द के पर्दे में अपनी शारीरिक हवस मिटाने को इसका अनुचित उपयोग कर रहे हैं। प्रेम, त्याग, तपस्या तथा सत्य की मूर्ति है। इसको करना तो सहज है परन्तु निभाना उतना ही कठिन है। वर्तमान में युवा पीढ़ी ने इसको एक फैशन का रूप देकर इसको अपमानित किया हैं जोकि अत्यंत खेद की बात है।

जीवन में जो मनुष्य अपने प्रेम का भागाकार करता रहता है, उसी के जीवन में सुख का गुणाकार होता रहता है। तुम तुम्हारे प्रेम को फैलाते जाओ, सुख तुम्हारे चरणों का दास बन जाएगा।

बिगड़े हुए संबंधों में यदि सचमुच मिठास पैदा करनी हो, तो उसकी पहल हमें ही करनी पड़ती है। सामनेवाले व्यक्ति से भी ऐसे ही प्रतिभाव की आशा रखने का कोई अर्थ नहीं। प्रेम तो आग जैसा है। आग जिस प्रकार अपना रास्ता स्वयं ही बना लेती है, उसी प्रकार प्रेम अपना कर्त्तव्य स्वयं ही निभा लेता है। वह राह देखने नहीं बैठता कि सामनेवाला व्यक्ति भी अपना कर्त्तव्य अदा करता है या नहीं ?

प्रेम मालिकी भाव रूप न बन जाय, इसकी खास सावधानी रखना। विचार की अपूर्णता तथा प्रेम की न्यूनता, ये दोनों परिबल घर्षण के ही जनक है। इस वास्तविकता को नजर के समक्ष रखकर इन दोनों परिबलों से स्वयं को हो सके उतना बचाना चाहिये। अंत:करण जब प्रेम से भरा होता है तब अंदर अप्रकट रूप से तमाम गुण बाहर प्रकट होते हैं ऐसा मेरा अनुभव है। अंत:करण में जब प्रेम का महासागर हिलोरे लेता हो, तब अन्दर से सद्‌गुणों के मोती ही बाहर आते हैं और द्वेष का महासागर हिलोरे लेता हो, तब दोष के मुर्दे बाहर आते हैं।

नजदीक के गड्ढों को भरे बिना पानी आगे बहता ही नही। प्रेम भी इस पानी के जैसा ही है। वह नजदीकवालों पर बरसे बिना दूरवालों पर बरसने के लिए तत्पर बना ही नहीं। प्रेम कभी भी अपने द्वारा किये गये उपकारों का हिसाब रखना सिखाता ही नहीं है। और इसीलिए प्रेम पात्र व्यक्ति अपने पर किसके-किसके व कैसे-कैसे उपकार हुए हैं अथवा हो रहे हैं, यह नहीं समझ सकता। चाहे जैसी विकट या विषम परिस्थिति उपस्थित हो जाय, यदि हृदय प्रेम से भरा है तो वह विषम परिस्थिति भी व्यक्ति के लिये तनिक भी कष्टदायक नहीं बनती।

यदि मन में अभिप्राय के सुख का ही आकर्षण है तो निश्चित ही समझ रखना चाहिए कि वहां प्रेम काम आनेवाला नहीं। प्रेम की बुनियाद पर खड़े रहनेवाले कोई भी सद्‌गुण काम आनेवाले नहीं। प्रेम एक ऐसा तार है, जिसे हम अपनी ओर ही खींचा करते हैं तो वह टूट जाता है और सामनेवाले की तरफ रखते हैं तो वह और अधिक मजबूत बनता जाता है।

घर को फर्नीचर की सजावट से भव्य बनाने का काम तो पैसे कर देते हैं, परन्तु घर को प्रसन्नता से हरा-भरा बनाने का का काम प्रेम के बिना संभव नहीं।

जीवन तर्क नहीं है। जीवन प्रेम है। तर्क जटिल घटना है। प्रेम सरल है, निर्दोष संवाद। जीवन संगीत के अधिक करीब है बजाय गणित के। क्योंकि गणित मन का है और जीवन आपके हृदय की धड़कनों में धड़कता है। लोग कहते हैं कि प्रेम अंधा होता है क्योंकि वे नहीं जानते कि प्रेम क्या है। सिर्फ प्रेम की आंखें होती हैं, प्रेम के अलावा हर चीज अंधी है।

प्रेम का कभी कोई कारण नहीं होता। प्रेम नि:स्वार्थ, पवित्र एवम शाश्वत होता हैं। तभी प्रेम अकारण होता है। कारण के समाप्त होने पर भी प्रेम खत्म नहीं होता यदि ऐसा हो तो वो प्रेम है ही नहीं। कोई कहता है प्यार नशा बन जाता है, कोई कहता है प्यार सजा बन जाता है। पर प्यार करो अगर सच्चे दिल से, तो वो प्यार ही जीने की वजह बन जाता है।

कुछ दिन पहले एक ऐसा ताला खोल रहा था, जो काफी समय से बंद पड़ा था। चाबी को कई बार दाएं-बाएं घुमाने पर बड़ी देर के बाद ताला खुल पाया। फिर जब ताला बंद करने की कोशिश की तो उसने बंद होने से मना कर दिया। ताला तो बंद करना ही था, अत: उसकी अकड़ को ढीला करने के लिए उसमें दो बूंद तेल टपका दिया। तेल डालते ही चाबी सरलतापूर्वक घूमने लगी और ताला बंद हो गया। यह कमाल किया तेल की दो बूंदों ने। तेल को स्नेह भी कहा जाता है। घर्षण कम करने के लिए मशीनों के गति करनेवाले कल-पुर्जों में तेल डाला जाता है, जिसे स्नेहन कहते हैं। स्नेहन अर्थात लूब्रिकेशन। इससे मशीनें बिना आवाज किए आसानी से चलती हैं, और कम घिसती हैं।

लौह आदि धातुओं की जंग लगी वस्तुओं अथवा मशीनों पर ही नहीं, मनुष्यों पर भी लूब्रिकेशन बखूबी काम करता है। स्नेह के अभाव में ही हमारे आपसी संबंध जंग लगी मशीनों की तरह हो जाते हैं, जो संवाद स्थापित करने की कोशिश करने पर जंग लगे तालों की तरह अटक जाते हैं। या पुरानी मशीनों की तरह खड़खड़ करने लगते हैं। स्नेह अथवा प्यार से ही उन्हें पटरी पर लाना संभव है। हमारे संबंधों में स्नेहन के कई रूप हो सकते हैं। स्नेहन का एक रूप है- हम सबके लिए अच्छे शब्दों का प्रयोग करें। हमारे शब्दों में दूसरों के लिए आत्मीयता व सम्मान होना चाहिए। दूसरों की अच्छी आदतों व कार्यों के लिए हमेशा प्रशंसा की जानी चाहिए। स्नेहपूर्ण सामान्य शब्दों का भी आपसी संबंधों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे माहौल खुशगवार बना रहता है। यदि हम ऐसा माहौल बना पाते हैं तो इसका सबसे अधिक लाभ हमें ही मिलता है। स्नेह के अभाव में लोग असभ्य व अमानवीय व्यवहार करने लगते हैं।

स्नेहन का एक अन्य रूप है आत्मीय स्पर्श। एक आत्मीय स्पर्श मन में व्याप्त राग-द्वेष रूपी कोहरे को साफ करके संबंधों में ऊष्मा भर देने में पूरी तरह से सक्षम है। स्नेह के वशीभूत ही हम किसी की प्रसन्नता का ध्यान रखते हैं। स्नेह के कारण ही हम में सबसे ज्यादा खुशी मिलती है, हम वही करने का प्रयास करते हैं। स्नेह के कारण ही हम अपने प्रियजनों को समय-समय पर उपहार देते रहते हैं।

समय पर किसी को जरूरी चीजें उपलब्ध कराना भी स्नेह का ही एक रूप है। यदि किसी को अपनी बातें दूसरों को कहने या अपने मनोभावों को व्यक्त करने में आनंद की अनुभूति होती है तो उसके पास बैठकर ध्यानपूर्वक उसकी बातें सुनना भी स्नेह से कम नहीं। संबंधों की गाड़ी को असमय टूटने-बिखरने से बचाने अथवा उसकी कर्कश ध्वनि रोकने के लिए उसमें स्नेह की कुछ बूंदें टपकाते रहना हमारे स्वयं के ही हित में होता है।

महात्मा बुद्ध की कथा है। वह एक बार अपने शिष्यों को एक रुमाल में पांच गांठें लगाकर देते हैं और पूछते हैं कि इन्हें विपरीत दिशा में खींचने पर क्या होगा? क्या ये गांठें खुल सकती हैं? तब शिष्य कहते हैं कि ये तो और ज्यादा कस जाएंगी। बुद्ध उन्हें समझाते हैं कि हमने मन पर इसी तरह की गांठें लगा रखी हैं। हमें उन्हें खोलने का उपाय खोजना चाहिए। ये गांठें खोलकर ही हम अपना मन साफ कर सकेंगे और हर व्यक्ति के लिए मन को करुणा और प्रेम से भर सकेंगे।

स्वयं बुद्ध ने खतरनाक हत्यारे डाकू अंगुलिमाल का दिल ऐसे ही बदल दिया था। अंगुलिमाल बुद्ध से कहता है कि उसके जीवन का उद्देश्य लोगों की हत्या करना है। तब बुद्ध ने अपनी करुणा और प्रेम से उसका हृदय परिवर्तन कर दिया और एक हत्यारा बुद्ध के प्रेम से भिक्षु बन गया। बुद्ध का मानना था कि नफरत का जवाब नफरत नहीं है, उसे प्रेम से ही खत्म किया जा सकता है।

बुद्ध की ही तरह कबीर का संदेश भी प्रेम ही है। कबीर तो यहां तक कहते हैं- जो तोको कांटा बुवै ताहि बोए तू फल। कबीर ने भी वाणी संयम पर बहुत जोर दिया है। वह कहते हैं, कुटिल वचन सब ते बुरा, जारि करै सब छार / साधु वचन जल रूप है, बरसै अमृत धार। कबीर यह भी कहते हैं कि जिसने जबान को बस में कर लिया उसने सारा जहान बस में कर लिया। बुद्ध, कबीर जैसे लोग न सिर्फ प्रेम और करुणा की, बल्कि समाज में धर्म जाति पर आधारित सभी भेद तोड़ने की बात भी करते हैं। दोनों मनुष्य के बीच में कोई भेद नहीं स्वीकार करते हैं। सारे बंदों को एक ही नूर से उपजा मानते हैं। प्रेम और करुणा व्यक्ति का सबसे आवश्यक गुण मानते हैं। कबीरदास कहते हैं मनुष्य में कोई पैदाइशी भेद नहीं होता है। जन्म से सभी एक जैसे होते हैं, बाद में हम श्रेणियों में बांट देते हैं। बुद्ध के यहां भी कोई भेद नहीं है। वह कहते हैं, जैसे सारी नदियां समंदर में मिलती हैं, वैसे हमारे धर्म में सारी जातियां एक हो जाती हैं।

आज फिर से बुद्ध और कबीर को याद करने का समय है। समाज में तमाम तरह के भेद गहराते जा रहे हैं। लोगों में सहिष्णुता, करुणा कम हो रही है। कायिक, वाचिक, मानसिक हर तरह की हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ रही है। लोग तनाव और दबाव में धैर्य खोते जा रहे हैं। ऐसे में जरूरत है हम और ज्यादा बुद्ध और कबीर जैसी विभूतियों को याद करें। उनके संदेश के मर्म को समझें जिससे यह सृष्टि मनुष्य के रहने लायक बची रहे। सिर्फ प्रेम और सहअस्तित्व की भावना ही इस विश्व को बचा सकती है। आज कबीर और बुद्ध के संदेश को याद करके सारे भेद मिटाकर प्रेम की रोशनी से सभी के हृदय को आलोकित करने की जरूरत है।

अशुद्ध प्रेम सदा दूसरे के कारण होता है। कोई हमें देखकर मुस्कराया, किसी ने हमारी प्रशंसा की और हमें प्रेम हो गया। यह प्रेम दूसरे के कारण हुआ, हमारे कारण नहीं। इसमें लेने-देने का भाव है और उसमें भी लेने पर जोर ज्यादा होता है, देने पर कम। जैसे-जैसे प्रेम शुद्ध होता जाता है, देने का भाव बढ़ता जाता है और लेने का भाव कम होता जाता है। विशुद्ध प्रेम हमारी चेतना का स्वभाव है और यह अकारण होता है। जैसे बादल हर छत पर बरसता है बिना किसी भेदभाव के।

अशुद्ध प्रेम में घृणा अवश्य होगी। लेकिन शुद्ध प्रेम तो सदा एक-सा, शाश्वत-रस होता है। प्रेम शब्दों में नहीं समा सकता क्योंकि भाषा अति संकीर्ण है, जबकि प्रेम है विराट।

इसलिए जो विशुद्ध प्रेम में जीता है, वह मुंह से कुछ नहीं कहता क्योंकि कुछ बातें शब्दातीत हैं, उनको किसी भी तरह बयां नहीं किया जा सकता। ऐसे व्यक्ति की मौजूदगी, उसकी आंखें ही सब कुछ बता देती हैं। इसलिए संन्यासी का वेश लिए हुए साधु, जिन्होंने सत्य को वास्तव में जाना नहीं है, दुनियादारों की तरफ ऐसे देखते हैं मानो ये लोग कूड़े-करकट के

ढेर पर खड़े हों। लेकिन वास्तविक संत हमारे भविष्य को देखता है। संत के देखने से हमारी आंखों में पवित्रता का, अपने भीतर कुछ दिव्यता का आभास होता है और तब हम अपने भीतर भी एक भरोसे को देख पाते हैं।

दूसरों से भी प्रेम करना मनुष्य की प्रवृत्ति है। प्रेम के संचार से जड़ चेतन में, अंधकार प्रकाश में, मिथ्या सत्य में, दु:ख आनंद में, दुराशा सदाशा में, भेद अभेद में, कोलाहल शांति में और मृत्यु अमरत्व में रूपांतरित होने लगते हैं। प्रेम के संस्पर्श से ही हृदय में श्रेष्ठ भावनाएं उमड़ने लगती हैं, अचानक सद्गुण जगने लगते हैं, चेहरे पर प्रसन्नता झलकने लगती है और सारी दिनचर्या ही बदल जाती है। इसके लिए आवश्यक है- निच्छल भाव से स्वयं से और दूसरों से प्रेम करें।

शास्त्र भी यही कहते हैं कि स्वयं के साथ-साथ सभी प्राणियों से प्रेम करो।

सबके प्रति सद्भावपूर्ण होना ही प्रेम में होना है - जब आपका दिल आपके दिमाग की चालाकियों से नहीं भरा होता, तब प्रेम से भरा होता है। एकमात्र और अकेला प्रेम ही है, जो इस दुनिया के पागलपन, उसकी भ्रष्टता को खत्म कर सकता है। प्रेम के सिवा, कोई भी संकल्पना, सिद्धांत या वाद दुनिया को नहीं बदल सकते। आप तभी प्रेम कर सकते हैं, जब आप किसी पर अधिकार करने की कोशिश नहीं करते, ईर्ष्यालु या लालची नहीं होते। जब आप में लोगों के प्रति आदर होता है, करुणा होती है, हार्दिक स्नेह उमड़ता है, तब आप प्रेम में होते हैं। जब आप अपने सगे-संबंधियों एवं सेवकों के बारे में सद्भावपूर्ण ख्यालों में होते हैं, तब आप प्रेम में होते हैं। प्रेम ऐसी चीज नहीं जिसके बारे में सोचा-विचारा जाये, कृत्रिम रूप से उसे उगाया जाये, प्रेम ऐसी चीज नहीं जिसका अभ्यास करके सीखा जाये। प्रेम, भाईचारा आदि सीखना दिमागी बातें हैं, लेकिन प्रेम कतई नहीं। जब प्रेम, भाईचारा, आदि सीखना पूर्णत: रुक जाता है, बनावटीपन ठहर जाता है, तब असली प्रेम प्रकट होता है। प्रेम की सुगंध ही उसका परिचय होता है। रेगिस्तान की तरह शुष्क आज के सभ्य विश्व में जहां भौतिक सुख और इच्छाएं ही प्रमुख हो गये हैं, प्रेम नहीं बचा है। लेकिन फिर भी, प्रेम के बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं। आपके पास प्यार होगा ही नहीं, जब तक सुंदरता न हो। सुंदरता वह नहीं, जो आप बाहर देखते हैं, बल्कि सुंदरता आपका वह अंत:करण है, जो आपकी आंख बाहर को प्रक्षेपित करती है। जब आपके दिल-दिमाग जानते हैं कि प्रेम क्या है, केवल तभी सुंदरता का एहसास हो सकता है। बिना प्रेम और सौंदर्यबोध के किसी प्रकार की सच्ची नैतिकता का अस्तित्व ही नहीं हो सकता। आप और हम सभी ये अच्छी तरह जानते हैं कि बिना प्रेम के आप कुछ भी करें, समाज सुधार करें, भूखों को खिलाएं आप और अधिक पाखंड, वैषम्य और उलझनों में पड़ेंगे। प्रेम का अभाव ही हमारी कुरूपता, दिल और दिमाग की कंगाली का कारण है।

जो दे नहीं सकता, वह प्रेमी नहीं। उत्सर्ग प्रेम में स्वभाव से ही रहता है। विषयों का प्रेम प्रेम नहीं है। विषयासक्ति प्रेम में बडी बाधक है। प्रेम हमारी भावनाओं में मिठास की तरह घुला हुआ है। प्रेम कोई काम नहीं, बल्कि एक गुण है। केवल वो ही लोग, जो अपने दिमाग का कचरा किनारे रख सकते हैं, वास्तव में प्रेम और करुणा के काबिल होते हैं। प्रेम कोई सहूलियत का साधन नहीं है। यह खुद को मिटाने की एक प्रक्रिया है। जो शर्तों पर आधारित है, वह प्रेम नहीं है। प्रेम कोई ऐसी चीज नहीं है, जो आप करते हैं, बल्कि जो आप स्वयं हैं। जो लोग एक दूसरे से सचमुच बहुत प्रेम करते हैं, वही लोग प्रियजन को खो देने के बाद भी हालात को शालीनतापूर्वक़ संभाल पायेंगे। प्रेम कोई रिश्ता नहीं है। प्रेम तो संभावनाओं की एक तरह की मिठास है। प्रेम की गहराई को जानने के लिए आपके कम-से-कम कुछ अंश को मिटाना होगा। वरना किसी दूसरे के लिए जगह नहीं होगी। खुशी, शांति और प्रेम-ये कोई आध्यात्मिक लक्ष नहीं हैं।

ये सब तो समजदारीपूर्वक जीने की शुरुआत है। मूल रूप में प्रेम का अर्थ है- पसंदों और नापसंदों से ऊपर उठ जाना। आपके प्यार करने की, लोगों तक पहुंचने की, जीवन को अनुभव करने की क्षमता की कोई सीमा नहीं है। सीमाएं सिर्फ शरीर और मन की होती हैं। तर्क से परे एक आयाम जब तक आप वहां नहीं पहुंच जाते, आप न तो प्रेम की मधुरता पा सकते हैं, न ही ईश्वर को। ईश्वर से कोई भी प्रेम कर सकता है, क्योंकि वह आपसे कुछ नहीं मांगता।

जिस मनुष्य के पास प्रेम है, उसकी प्रेम की मांग मिट जाती है और जिसकी प्रेम की मांग मिट जाती हैं वहीं केवल प्रेम दे सकता है। जो खुद मांग रहा है, वह दे नहीं सकता। इस जगत में केवल वे लोग प्रेम दे सकते हैं, जिन्हें आपके प्रेम की कोई अपेक्षा नहीं है। महावीर और बुद्ध ही इस जगत को प्रेम देते हैं। जिनको हम समझ ही नहीं पाते। हम सोचते हैं, वे तो प्रेम से मुक्त हो गये हैं। वे ही केवल प्रेम दे रहे हैं। क्योंकि उनकी मांग बिल्कुल नहीं है। आपसे कुछ भी नहीं मांग रहे हैं, सिर्फ दे रहे हैं। प्रेम जहां लेन-देन है, वहां बहुत जल्दी घृणा में परिणत हो सकता है, क्योंकि वहां प्रेम है ही नहीं। लेकिन जहां प्रेम केवल देना है, वहां वह शाश्वत है, वहां वह टूटता नहीं। वहां कोई टूटने का प्रश्न नहीं, क्योंकि मांग थी ही नहीं। आपसे कोई अपेक्षा न थी कि आप क्या करेंगे, तब मैं प्रेम करूंगा। कोई शर्त नहीं थी। प्रेम हमेशा बिनाशर्त के होता है। कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व, वे सब बिना शर्त के हैं, वे सब प्रेम के रूपांतरण हैं। जब आपको यह ख्याल ही उठ आया है कि कैसे कर्त्तव्य निभायें, तो आप पक्का समझ लें, आपके भीतर कोई प्रेम नहीं है। प्रेम केवल उस आदमी में होता है, जिसको आनंद उपलब्ध हुआ हो। जो दुखी हो , वह प्रेम देता नहीं, प्रेम मांगता है, ताकि दुख उसका मिट जाये, आखिर प्रेम की मांग क्या है? सारे दुखी लोग प्रेम चाहते हैं। वे प्रेम इसलिए चाहते हैं कि प्रेम मिल जायेगा तो उनका दुख मिट जायेगा, दुख भूल जायेगा।

प्रेम केवल प्रेम करने से ही जाना जा सकता है, अन्य कोई मार्ग नहीं - यह कोई ऐसी चीज नहीं है कि उसके बारे में की गयी बौद्धिक चर्चा से उसे समझा जा सके। प्रेम कोई सिद्धांत नहीं है। यदि आप उससे कोई सिद्धांत बनाने की कोशिश करो, तो वह बेबूझ हो जायेगा। यदि आप तैरना नहीं जानते, तो यह भी नहीं जानते कि वह है क्या और उसके बारे में जानने का फिर कोई उपाय है ही नहीं। आप बाहर जाकर एक हजार एक तैराकों से उसके बारे में चर्चा सुन सकते हो, लेकिन फिर भी वह है क्या, आप इसे कभी जान न सकोगे। यह किसी भी तरह से समझ में न आनेवाली बात है, आपको उसे समझने के लिए तैरना सीखना ही होगा। नीचे नदी में जाना होगा, जोखिम लेना होगा, डूबने का खतरा उठाना होगा। यदि आप बहुत चालाक हो, तो आप कह सकते हो- मैं नदी में तब तक कदम न रखूंगा, जब तक तैरना न सीख लूं। बात है तो तर्कपूर्ण। लेकिन तब भी आप तैरने के बारे में कुछ भी जानने में समर्थ न हो सकोगे, क्योंकि तैरना सीखने के लिए तो आपको नदी में कदम रखना ही होगा। तैरना केवल तैरने के द्वारा ही जाना जा सकता है, प्रेम केवल प्रेम करने से जाना जा सकता है, प्रार्थना केवल प्रार्थना करने के द्वारा ही जानी जाती है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग है भी नहीं। जब आप किसी से प्रेम करते हो, तुम स्वयं को खोना शुरू कर देते हो। किसी को प्रेम करना अपने अहंकार को मिटाना है। किसी को प्रेम करने का अर्थ होता है कि आप उसे अपने ऊपर सत्ता सौंप रहे हो और उसके अधिकार में हो और समर्पित हो। आप वेदों का अध्ययन कर सकते हो, लेकिन इसके लिए समर्पित और विनम्र होने की कोई जरूरत नहीं। आप बहुत प्रवीण, बहुत कुशल और बहुत बड़े विद्वान बन सकते हो, लेकिन उसके लिए समर्पित होने की कोई आवश्यकता नहीं।

भीतर प्रेम का दीपक जलेगा तो धरती स्वर्ग से सुंदर बन जाएगी। प्रेमी सज्जनपुरुष और अहंकारियों के बीच का बैर सदियों पुराना है। इतिहास गवाह है कि अहंकारियों ने प्रेमी जन के जीवन मार्ग में अनेक बाधाएं खड़ी की। पर प्रेमी जन अपनी यात्रा में अडिग रह मानवता को सदा प्रेम और सौहार्द्र का संदेश देकर गए।

प्रेमी जन के लिए कोई दोस्त या दुश्मन नहीं होता। वे तो सभी से प्रेम करते हैं। जैसे फूल से सुगंध और दीपक से प्रकाश फैलता है, वैसे ही प्रेमी जन के चारों ओर सहज-सरल प्रेम की तरंगें प्रवाहित होती हैं। प्रेम उनके भीतर से स्वत: उत्पन्न होता है और उनके व्यक्तित्व के प्राकृतिक अंग के रूप में दृष्टिगत होता है।

प्रेमी हार जीत और सम्मान-अपमान के मायाजाल से मुक्त रह जीवन में जो कुछ मिले उसी में प्रसन्नचित्त रह प्रयत्नशील रहता है। प्रेमी का आभूषण है क्षमा। प्रेमी किसी से प्रतिशोध का भाव नहीं रखता, उसके प्रेमपूर्ण हृदय में गलती करनेवालों के लिए भी स्वाभाविक क्षमा होती है।

प्रेमी जन के लिए बांटना स्वाभाविक क्रिया है। वह फलों से लदे हुए वृक्ष की भांति झुकने को ही अपना धर्म मानता है। वहीं प्रेमी की प्रार्थना में अपने इष्ट के प्रति धन्यवाद व अहोभाव होता है। लाभ-हानि, यश-अपयश, जो भी उसे जीवन यात्रा में मिले, उसे वह ईश्वर का प्रसाद मान समान भाव से स्वीकार करता है।

प्रेमी स्वयं को प्रकृति का अंग मान उसके साथ एक हो जाता है- जैसे बूंद का सागर में मिलना। वह मृत्यु को जीवन के सत्य के रूप में स्वीकार कर उसे नवजीवन का प्रवेश द्वार मानता है। इसी से उसका जीवन पुष्प खिलकर खुशबू फैलाता है। अंधेरा कितना ही सघन क्यों न हो, छोटे से दीये की रोशनी भी उसे मिटा देने के लिए काफी है। यही प्रेम का दीया हम अपने भीतर जला लें तो यह धरती अपने से स्वर्ग बन उठेगी।

प्रेम का कोई भी अवसर मत चूको। यहां तक कि गली से गुजरते हुए भी तुम प्रेमपूर्ण हो सकते हो। तुम एक भिखारी के प्रति भी प्रेमपूर्ण हो सकते हो। इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि उसे कुछ देना ही है; तुम मुस्कुरा तो सकते हो। इसमें कुछ नहीं लगता - लेकिन तुम्हारी मुस्कान तुम्हारा हृदय खोल जाती है, उसे जीवंत कर जाती है। किसी का हाथ थामो। किसी मित्र का अथवा अजनबी का। इसकी प्रतीक्षा न करो कि तुम तभी प्रेम करोगे जब उचित व्यक्ति सामने होगा। फिर उचित व्यक्ति कभी नहीं आएगा। प्रेम करते चलो। जितना प्रेम होगा, उतनी अधिक संभावना हो जाती है तुम्हारे जीवन में सही व्यक्ति के प्रवेश की क्योंकि तुम्हारा हृदय खिलने लगता है और एक खिलता हुआ हृदय बहुत सी मधुमक्खियों को, बहुत से प्रेमियों को आकर्षित करता है।

क्षमा - क्षमा एक अमृत- मनुष्य का जीवन एक सागर है। उसमें अमृत भी है, जहर भी है और भी बहुत कुछ है वहां। जब-जब इस सागर को व्यवहार की मथनी से मथा जाता है, भीतर के तत्व उभरकर बाहर आ जाते हैं। जब उसके भीतर का जहर पूंजीभूत होकर बाहर आता है, तब मनुष्य सांप, बिच्छू आदि जहरीले जंतुओं से भी अधिक मारक हो उठता है। भगवान ने जीवन को अमृतमय बनाने का निर्देश दिया है। क्षमा एक अमृत है। यह जिनके पास होता है, वह कटुता के जहर को धोकर स्वयं अमृत बन जाता है। जैन धर्म में क्षमा का गौरव पूरी गुरुता के साथ उद्‌गीत हुआ है। धर्म के चार दरवाजों में पहला द्वार क्षमा है। इस द्वार में प्रवेश किए बिना कोई भी व्यक्ति उस महापथ पर आगे नहीं बढ़ सकता। दस प्रकार के श्रमण धर्मों में पहला धर्म क्षमा है। क्षमा जीवन का तेज है, ओज है। क्षमा ब्रह्म है, सत्य है। क्षमा ही तपस्वियों का रूप है। इसलिए क्षमा धर्म का विकास अपेक्षित है।

क्षमा केवल आदान-प्रदान की वस्तु नहीं, क्षमा वीरों का आभूषण है, कायरों का नहीं,

सच्चे मन से, हृदयपूर्वक जो क्षमा ले और क्षमा दे, उसके लिए मोक्ष-मंजिल भी दूर नहीं।

यह मनोविज्ञान सम्मत बात है कि क्रोध के बाद पश्चाताप होता है। थकान, ग्लानि जैसे भावों का अनुभव होता है। परन्तु क्षमा के बाद चित्त में शांति, सुख और संतोष मिलते हैं। क्षमा जीवन का सत्य है, मैत्री का मंगल जनम है। आत्मशुद्धि के लिए क्षमा अचूक-औषधि है। क्षमाशील बनिए, निश्चय ही आप अत्याबाध सुख, शांति, आनंद की प्राप्ति करेंगे। क्षमा की अपनी एक शक्ति है, जो चेतना को सीधी प्रभावित करती है। निर्भयता और आस्थापूर्वक उसका प्रयोग किया जाता है तो वह कदापि व्यर्थ नहीं जाएगी। हम हंस की भांति सार धारण करें। क्षमा वह है जो मन व आत्मा से माँगी जाए।

प्रत्येक समस्या का हल उसी समस्या के घर मे किसी कोने मे पडा होता है। झगडों के साथ भी ऐसा ही कुछ है उन्ही की जडों मे उनका हल विद्यमान है क्षमा। आन्तरिक और वास्तविक सुखद प्रेम का प्रतीक है क्षमा। हमारे द्वारा निर्मित अविश्वास फसाद, संवेदनहीनता और संवाद हीनता के घटाटोप भरे अन्धेरे बियावान जंगलों मे आशा की किरण बिखेरता एक दीया है क्षमा। सामंजस्य और जीवन का रस है क्षमा। बहुत कुछ पा लेने का नाम है क्षमा। साधारण व्यक्ति के लिये क्षमा कर देना इतना आसान नही होता है। हमारे विवेक, बुद्धि और तन मन मे लगी आग हमेशा प्रेरित करती है कि उसे अपने किये की सजा मिलनी चाहिये। किसी के द्वारा अन्याय, धोखे, गलत व्यवहार की तीव्र प्रतिक्रिया यही होती है कि उसे जितनी हो सके सजा मिले।

वास्तव में यह सब विचार ऐसे मन के बीज हैं जो बीमारी की तरह फैलते हैं। इन सबके चक्कर में हम अपनी खुशियों का गला तो घोटते ही है, साथ ही आपसी माहौल को भी घुटन भरा बना लेते हैं। इससे तो अच्छा है कि हम सामनेवाले को क्षमा कर दें, नतमस्तक कर दें और खुद भी जीवन का मजा लें। अक्सर विवाद होने पर हममें नफरत, गुब्बारे में हवा की तरह भर जाती है और हमें स्वयम् इसका पता नहीं होता कि हम उसे नीचा दिखाने, हराने की कुसंरचनाओं को रचने में ही अधिकतम समय दे रहे होते है। इस मामले में हम स्वयम् से ही छिपाते है, हम स्वीकार नहीं कर पाते है कि हम नफरत के जाल में फंस चुके है। वास्तव में उस स्थिति में हम स्वयम् से लड भी रहे होते हैं। इस नफरत, विवाद का अन्त सम्भव है, बशर्ते हम अपने आपसे लडना बन्द कर दें, दोषी से सीधे मिलें और कहे कि तुमने मेरे साथ यह गलत व्यवहार किया है। हो सकता है यह सब तत्काल प्रभाव न करे, परन्तु उसके विचारों के तन्तुओं को हल्का सा स्पंदन तो मिल ही जायेगा, उसे इस दिशा में सोचने पर मजबूर किया जा सकेगा। किसी अपराध का बदला ले लेने से जीवन के तराजू का पलडा बराबर नहीं हो जाता है। गांधीजी ने एक जगह ठीक लिखा है अगर हम सभी आंख के बदले आंख वाले सिद्धांत पर चले तो सारी दुनिया ही एक दिन अन्धी हो जायेगी। किसी से नफरत हो और उस नफरत को दूसरे पल ही भूलादे, यह एक कठिन प्रक्रिया है। कई बार हमें भ्रम होता है कि हम किसी से नफरत नहीं करते है, परन्तु ठेस जितनी गहरी होती है उतना ही उसे मन से निकालने में समय लगता है। इसके बाद भी निरन्तर सकारात्मक एवम् क्षमा के विषय में सोचते रहेंगे तो समय के चलते एक दिन हम उस ठेस को क्षमा में बदल सकते है। क्षमा हमारे मन से पीडा की जकड को दूर करके सम्भावनाओं के द्वार खोल देती है। क्षमा वास्तव में दृढ़ता का प्रतीक है, न कि निर्बलता का। निर्बल व्यक्तित्व क्षमा जैसे कार्य कर ही नहीं सकता और अपने प्रति की गई दुष्टता से निबटने के लिये धैर्य, और साहस की आवश्यकता होती है, साथ ही प्रेम की, जो क्षमा की वास्तविक प्रेरक शक्ति है।

जब मनुष्य किसी से बदला लेने की ठान लेता है तो उसका मन अशांत हो उठता है, परन्तु क्षमा कर देने से मन शान्त, तनाव रहित और शत्रुता की गांठ से मुक्त हो जाता है। क्षमा का अनुपम गुण हमारे हृदय को विशाल, सहिष्णु और गम्भीर बनाता है। क्षमाशील स्वभाव से सुखों की प्रतीति होती है। क्षमा विश्वमैत्री का बोध कराती है। क्षमा की परिधि में जीव मात्र के प्रति अहिंसा और करुणा का भाव निहित है। दूसरों को क्षमा कर देना मनोबल और उदारता को दर्शाती है। क्षमा को धारण करते हुये अपने गन्तव्य मार्ग पर दृष्टि केन्द्रित करना सफलता की पायदान पर चरण रखना है।

क्षमा के माध्यम से जगत में सुआचरण और समभाव की स्थापना होती है। क्षमा के द्वारा क्रोध का निस्तार और प्रेम का विस्तार होता है। क्षमा का लक्षण हमारे शुद्ध आंतरिक स्वरूप को उजागर करता है। क्षमा जीवन की अपार सार्थकता का विश्लेषण करती है। मन में पल्लवित क्षमा भाव को सहेज कर सुआचरण से उसका पोषण करें। व्यक्तिगत पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, राजनीतिक और धार्मिक धरातल पर क्षमा की अहमियत को आंके। क्षमा युद्ध की आशंका को निरस्त करती है। क्षमा शत्रु के हृदय में भी प्रेम का बीजारोपण कर सकती है। क्षमा दुर्बल और सबल लिये सम्मान जनक है।

क्षमा मानव को शिष्ट व्यवहार की शिक्षा देती है। जिसके डर मे क्षमा भाव है उसका जीवन सार्थक है। मत्सर और द्वेष के आधार पर क्षमा का मूल्यांकन नहीं हो सकता क्योकि क्षमा भाव सही अर्थों में सबके साथ समान दृष्टि को प्रोत्साहित करनेवाला सात्विक तत्व है। हृदय से विषमता का भाव तिरोहित होते ही क्षमा की पुष्टि होने लगती है। क्षमा भाव मानव स्वभाव में ढ़ल कर आत्मगुणों के रूप में विकसित होने लगता है। खम्मामि सब्ब जीवाणं अर्थात सभी प्राणियों के प्रति क्षमा भाव। इस भांति क्षमा भाव संसार के समस्त प्राणियों को निर्भय और निरापद जीवन यापन के प्रति आश्वासन देता रहा है। क्षमा प्रेम का सर्जन और बैर का विसर्जन है। क्षमा वाणी पर्व के अन्तर्गत यह भाव निहित है कि मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं। सबसे प्रेम भाव रखता हूं। सब मुझे क्षमा करे और मेरे साथ भी प्रेमभाव प्रगाढ़ रखे। क्षमा के जरिये हम क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकते है। अपव्यवहार अन्याय, घृणा और क्रूरता को क्षमा के वरदान से निस्तेज और बेअसर किया जा सकता है। जीवन की सफलता के पथ में उत्तम क्षमा का महान योगदान है। यदि हम सच्चा प्रेम तथा स्नेह चाहते हैं तो हमें उचित दृष्टि से क्षमा करने के अनुपम गुण को सीखना और विकसित करना चाहिये।

एक प्राचीन कहावत है कि क्षमा करें और भूल जाये, आपकी जिन्दगी में शान्ति और आनन्द का रस घोल सकती है। क्षमा करना जहां आपके बडप्पन को प्रकट करता है वही इस गुण के जरिये आप अनेक मानसिक झंझटों या दिमागी फितूरों से निजात पा सकते है। स्पष्ट है क्षमा करने से आप दूसरे व्यक्ति को तो राहत प्रदान करते है, साथ ही स्वयं को भी राहत प्रदान करते है। जो लोग नकारात्मक भावों जैसे विश्वासघात, द्वेष, ईर्ष्या, जलन, प्रतिशोध आदि में प्राय: डूबे रहते है, वे उच्च रक्तचाप और इसके जरिये आगे चल कर पनपने वाली हृदयाघात व गुर्दो आदि से सम्बधित अनेक गम्भीर बीमारियों को बिन बुलाई दावत दिया करते है। पर जो लोग दूसरों को क्षमा कर देते है, उन्हे उच्चरक्त चाप से सम्बधित बीमारियां अपेक्षाकृत कम होती है। यदि क्षमाशील व्यक्ति को ये बीमारियां होती भी है तो उन्हें जल्द ही नियंत्रित किया जा सकता है। क्षमा करने या न करने का उच्च रक्तचाप से सीधा सम्बन्ध है।

आप अपने प्रति ईमानदार बनकर जिस शख्स को आप मन ही मन सहजता से माफ नहीं कर पाते उसे नकारे नहीं

और न ही उससे कतराने का प्रयास करे। इस क्रम में आपके मन में जो भी भाव आये उन्हे सहजतापूर्वक आने दे। धीरे-धीरे आपके मन से बोझ कम होते जायेगा। एक कागज पर कई बार लिखिये कि आपने अमुक शख्स को माफ कर दिया है। ऐसा करने से आपके मन के आक्रोश की दिशा बदलेगी और कुछ समय बाद आप स्वयं को पहले से बेहतर महसूस करेगे।

दूसरों की भी नजर से देखे। खुद को दूसरे की स्थिति में रख कर आप अपना आंकलन करें। हो सकता है कि आपकी सोच भी गलत हो। बहरहाल दूसरे के नजरिये को समझने के माध्यम से आप आत्म विश्लेषण कर सकते है।

यह सच है किसी को भी उसकी गलती के लिये माफ कर देना इतना आसान नहीं होता लेकिन इस सच के साथ एक और सच यह भी है कि अगर आप किसी को माफ करते है तो इसका स्वयं आपके उपर सकारात्मक प्रभाव पडता है। इसके बाद दूसरे की गलती कम से कम आपको तो परेशान नहीं करती। आप उसके बोझ से मुक्त हो जाते है। अगर आप ऐसा नहीं कर पाते है तो दूसरों की गलती गुस्से और तनाव के रूप में आपको परेशान करती रहती है। यह गुस्सा आपके शरीर और मन को बीमार कर देता है, इससे कुछ बीमारियां भी परिणित हो सकती है जैसे पेट मे गडबडी, सिर दर्द, दमा, डायबटीज, उच्च रक्त चाप। इसलिये यह बेहद अनिवार्य है कि आप दूसरों को उनकी गलतियों के लिये माफ करना सीखे। कहते है स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है लेकिन शरीर के स्वस्थ रहने के लिये दिलो दिमाग का स्वस्थ रहना भी जरूरी है। गुस्सा मन, और दिमाग पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। मन में आनेवाले अच्छे भाव आपका तनाव कम करते हैं। इसका आपके स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पडता है। नकारात्मक विचार आपके दिलोदिमाग पर बुरा प्रभाव डालते है। इसलिये जहां तक सम्भव हो सकारात्मक सोच ही रखे। सकारात्मक सोच का ही एक पहलू है, कि दूसरों को उनकी गलतियों के लिये माफ कर देना। माफ करने का मतलब यह नहीं होता है कि आप खुद को खुश देखना चाह रहे है और इसके लिये सक्रिय प्रयास भी कर रहे है।

किसी को क्षमा करके आप शान्ति और सन्तोष हासिल कर लेते है। लेकिन इस सबका यह भी अर्थ नहीं है कि आप सबको माफ करते चले। माफ जरूर करे और छोटी-छोटी गलतियों को दिल से निकाल दे लेकिन किसी ने आदतन ज्यादती की हो, तो उससे किस प्रकार का रिश्ता भी न रखे। अगर आप चाहते है कि आपके अन्दर दूसरों को माफ करने की प्रवृति विकसित हो तो इसके कई तरीके है। पहला तरीका तो यही है कि आप दूसरों से ज्यादा अपेक्षाये न रखे। इतनी बडी दुनिया में हर तरह के लोग, हर किसी को अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप परखना बुद्धिमानी नहीं है। इसी कारण हम अधिक निराश होते है। इसके अलावा दूसरों की छोटी-छोटी गलतियों को माफ करना शुरू करे। धीरे-धीरे आप इसके अभ्यस्त हो जायें।

क्षमा तेजस्वी पुरुषों का तेज है, तपस्वियों का ब्रह्म है, सत्यवादियों का ब्रह्म है। क्षमा ही यज्ञ है और क्षमा ही मनोनिग्रह है। वास्तव में क्षमा एक संजीवनी है। जिसका जीवन क्षमा से परिपूर्ण है उसका यश अनंत काल तक व्याप्त रहता है। क्षमा से ही व्यक्ति शुद्ध, सरल, सादगी पसंद सकारात्मक विचारोंवाला विवेकशील व विनम्र बनता हैं। और बनता है शिष्ट व सुसंस्कृत। क्षमा शांति का मंत्र अहिंसा का आधार स्तंभ है। क्षमा आत्मा का स्वभाव हैं। अन्य धर्म ग्रंथ और उद्भट विद्वान साहित्यकार उनके विचार इस प्रकार है।

क्षमा से आत्मा में प्रसन्नता की अनुभूति होती हैं। क्षमा असमर्थ मनुष्यों का गुण है, और समर्थों का भूषण हैं। विद्वान क्षमा-भाव से ही पवित्र बनते हैं।

जो किसी के साथ वैर-भाव रखता है, उसके मन को कभी शांति नहीं मिल पाती। जो किसी से द्वेष करता है, वह अपनी आत्मा से ही द्वेष कर रहा है। स्वयं ही अपना उद्धार करो, स्वयं को नीचे मत गिराओ, क्योंकि हम स्वयं ही स्वयं के मित्र हैं, और स्वयं ही स्वयं के शत्रु। वैरी से मत हारो, बल्कि क्षमा से वैरी को जीत लो।

अपराध स्वीकार करनेवालों को, जो क्षमा नहीं करता, वह भीतर ही भीतर क्रोध रखनेवाला महाद्वेषी, वैर को और अधिक बांध लेता है। जो वक्त पर धैर्य रखे और क्षमा कर दे, तो निश्चय ही यह बड़े साहस के कामों में से एक हैं।

क्षमा करने की आदत डाल, नेकी का हुक्म देता जा और जाहिलों से दूर रहो।

प्रार्थना में यदि किसी के प्रति तुम्हारे मन में कोई विरोध खड़ा हो, तो तत्काल क्षमापना कर दो, अन्यथा परम पिता तुम्हें क्षमा नहीं करेगा। जो गुस्सा पी जाते हैं, और लोगों को माफ कर देते हैं, अल्लाह ऐसी नेकी करनेवालों को प्यार करता है।

क्षमा का अर्थ है- क्षमा करना, क्षमा देना, भूल जाना। क्षमा व्यवहार में आदर्श है। क्षमा मात्र शब्द नहीं है, वह हृदय का विषय है। मेरी समस्त जीवों से मैत्री है, मेरा कोई शत्रु नहीं है, कोई पराया नहीं है यह बंधुत्व की भावना मनुष्य के हृदय में मैत्री एवं अपनत्व के संस्कार जगाती है। इसी से क्षमा भाव उत्पन्न होता है। क्षमा से बड़ा कोई तप नहीं है। तप में आहार त्याग होता है, क्षमा में बैर-भाव का त्याग होता है। आहार छोड़ देना कोई बड़ी बात नहीं है, बैर का त्याग, द्वेष का त्याग करना बहुत बड़ी बात है। क्रोध एक-दूसरे को दूर फेंकता है। आगे वह द्वेष और बैर में बदल जाता है। क्रोध के आवेश में अपनों से भी दूर होते हैं, अपने आप से भी दूर हो जाते हैं। यदि मानव घृणा को प्रेम से, अशांति को शांति से, बैर को मित्रता से जीते तो यह पूरा विश्व ही पल भर में स्वर्ग बन जायेगा। क्षमा क्षोभ का नाश करती है। क्षमा ज्ञानियों का लक्षण है।

हमारे मन में अक्सर किसी के प्रति कोई शिकायत, क्रोध, विद्वेष, ईर्ष्या या प्रतिकार का भाव पैदा हो जाता है। लेकिन इसका कोई सकारात्मक प्रभाव हम पर नहीं होता बल्कि हमें इन घातक मनोभावों की पीड़ा झेलनी पड़ती है। किसी को क्षमा करके हम इन घातक विकारों की पीड़ा से मुक्त भी हो सकते हैं। क्षमा करने का अर्थ है- अपने मनोभावों में परिवर्तन। इसका स्वयं पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

आज का सबसे घातक रोग है- तनाव। तनाव में रहनेवाले व्यक्ति की प्रतिरोध प्रणाली धीरे-धीरे कमजोर होकर उसे रोगी बना डालती है। लेकिन किसी को क्षमा करने का सीधा अर्थ है स्वयं को स्वस्थ और रोगहीन बनाए रखना। क्रोध, घृणा, वैमनस्य आदि मनोभावों के स्थान पर शांति, प्रेम, मित्रता, सहयोग आदि भावों का उदय होने से व्यक्ति निरर्थक तनाव और दुश्चिंताओं से बच जाता है। अनेक अध्ययन और वैज्ञानिक शोध इस बात की पुष्टि करते हैं कि जो व्यक्ति जितना अधिक क्षमाशील होता है, वह उतना ही स्वस्थ होता है। कभी कोई रोग हो भी जाए तो वह जल्द ही उससे मुक्त हो जाता है।

आज के जीवन में सुधार न होने का प्रमुख कारण है- क्षमा का अभाव। इसीलिए संबंध प्राय: सामान्य नहीं रह पाते। संबंधों में सुधार का अर्थ है- उपचार। यह उपचार क्षमा के माध्यम से किया जा सकता है। यह सामाजिक या

आर्थिक समस्याओं में ही नहीं, मानसिक और भौतिक व्याधियों में भी उपयोगी रहता है। लेकिन इसके लिए हमें स्वयं को क्षमाशील बनाना होगा। जिस व्यक्ति ने क्षमा करना सीख लिया उसने अपनी अनेक व्याधियों पर नियंत्रण करना भी सीख लिया। वास्तव में क्षमा करना और क्षमा मांगना, दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। क्षमा मांगने का अर्थ है अपने मिथ्या अहंकार से मुक्त होना। जो व्यक्ति जितना अधिक अहंकारी होता है, वह क्षमा से उतना ही दूर होता जाता है। ऐसा व्यक्ति न तो खुद क्षमा मांग सकता है और न किसी दूसरे को क्षमा कर सकता है। क्षमा मांगने वाले और क्षमा करनेवाले, दोनों के अहंकार का अंत निश्चित है। अहंकार स्वयं में एक मनुष्य की एक विकट व्याधि है। क्षमा द्वारा इससे मुक्त हो हम अपना जीवन सुखद बना सकते हैं।

यदि क्षमा नहीं कर सकते तो इसका अर्थ है- हम क्रोध, क्षोभ, अशांति, अस्वीकृति, प्रतिकार आदि नकारात्मक भावों का संचय और पोषण करते जा रहे हैं। ऐसे में हमारी सारी ऊर्जा इन्हीं के पोषण में लग जाती है। यह असंतुलन हमारी अनेक व्याधियों के लिए उत्तरदायी है। क्षमा द्वारा हम अपना यह असंतुलन समाप्त कर सकते हैं।

क्षमा करना मनुष्य की एक महान विशेषता है। हमें किसी के प्रति वैर भाव न रखते हुए उस व्यक्ति को भी क्षमा कर देना चाहिए जिसने हमें हानि पहुंचाने की कोशिश की हो। क्षमा करनेवाला व्यक्ति गलती करनेवाले से बड़ा होता है। क्या उसके भीतर यह अहसास पैदा नहीं होता कि वह तो श्रेष्ठ है कि उसने क्षमा किया और गलती करने वाला व्यक्ति तो उसके सामने तुच्छ है। यदि इस सोच से हमारे भीतर क्षमा करने का भाव आता है तो यह सरासर बेईमानी है और घमंड का ही छद्म रूप है। प्राय: वे लोग भी क्षमा करते हैं जो गलती करनेवाले व्यक्ति को सजा देने में असमर्थ होते हैं और विवशता में यह कहते हुए माफ कर देते हैं कि ईश्वर उन्हें उनके दुष्कर्मों का फल देगा। लेकिन एक तरह से देखें तो यह भी सच्ची क्षमा नहीं हुई क्योंकि क्षमा करते हुए भी सजा देने या नुकसान पहुंचाने का भाव अभी भी हमारे अंदर है और यदि हम सजा देने में सक्षम होते तो क्षमा करने का सवाल ही नहीं उठता।

सच्ची क्षमा वह होती है, जो स्वत: और स्वाभाविक हो और सबके लिए हो। एक प्रसंग से इसे समझने का प्रयास करते हैं। एक शिष्य ने अपने गुरु से नाराज होकर उन पर थूक दिया। गुरु ने कपड़े से थूक पोंछा और मुस्कराकर अपने शिष्य की ओर देखते हुए अपने कार्य में व्यस्त हो गए। गुरु से कोई प्रतिक्रिया न पाकर शिष्य वहां से चला गया। रात को अपने व्यवहार के बारे में सोचते हुए शिष्य को ग्लानि हुई और वह अगले दिन गुरु के सामन नतमस्तक होकर क्षमा याचना करने लगा। गुरु ने प्यार से शिष्य का सिर सहलाते हुए कहा, मैं तो केवल प्यार देना जानता हूं और तुम्हें वहीं दे सकता हूं। प्रेम करना मेरा स्वभाव है और मुझसे वही हो सकेगा। ऐसे गुरु का स्नेह और सान्निध्य पाकर शिष्य ने अपने को धन्य महसूस किया। उसे लगा कि उसका जीवन सार्थक हो गया है।

यह सच है कि प्रेम से परिपूर्ण हृदय में क्रोध नहीं उत्पन्न होगा और उसमें बदला लेने का भाव भी नहीं पैदा होगा। गलती करनेवाले व्यक्ति के प्रति भी प्रेम भाव होना ही क्षमा है। क्षमा यदि हमारे स्वभाव से उत्पन्न हो तो वही सच्ची क्षमा है अन्यथा वह हमारे अहंकार का ही रूप होगी। हृदय में प्रेम हो तो ऐसी क्षमा स्वत: आ जाती है। क्षमा करना हमारी अनिवार्यता या विवशता नहीं होनी चाहिए अपितु एक प्रेम से परिपूर्ण हृदय की स्वाभाविक प्रतिक्रिया होनी चाहिए। क्षमा करने से सबसे पहला लाभ, क्षमा करनेवाले को ही होता है क्योंकि उसके हृदय में घृणा के बीज पनपने की आशंका नहीं होती। क्षमा करनेवाला व्यक्ति स्वयं को उतना ही हल्का और आनंदमय महसूस करता है जैसा पिंजरे से छूटा हुआ पक्षी।

काम, क्रोध, तैश, चिड-चिडापन, बौखलाहट, मोह, मत्सर, ममता, मद, अभिमान, अहंकार

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर और मद ये ६ विकार मनुष्य को हर दम सताते हैं। शरीर जीवित रहने तक वे व्यक्ति का साथ नहीं छोडते। इसलिये इनका त्याग किये बिना रूपान्तरण करना चाहिये। १) काम :- खास कर स्त्री के विषय में कामना बलवान होती है इसकी बजाय ईश्वर की आस में उसे बदल देना चाहिये २) क्रोध :- अपने स्वार्थ की आड आनेवाले पर क्रोध आता है। इसकी बजाय ईश्वर भक्ति की आड में आनेवाली बाधाओं पर क्रोध आना चाहिये। ३) लोभ:- आम आदमी को सम्पति का लोभ होता है इसकी बजाय अच्छे गुणों का लोभ होना चाहिये। ४) मद :- अपनी उपलब्धियों का व्यर्थ दिखावा करना ही मद है इसकी बजाय ईश्वर का कार्य निष्ठा से करने का मद (अभिमान) करे। ५) मोह :- व्यक्ति को स्त्री, सम्मान या धन का मोह होता है। इसकी बजाय संतों की संगत का मोह करे। ६) मत्सर :- अपने से ऊंचे लोगों से मत्सर होता है। इसकी बजाय अपने अन्दर पैठ जमाने वाले इन छै विकारो, दोषों से मत्सर करे।

अहंकार - संघ समुदाय व संगठन के जीवन में बाधा डालनेवाला सबसे बडा कारण है अहंकार। आज संसार में जितनी समस्याएं हैं, उसमें अहंकार सबसे बड़ी समस्या हैं। संस्थाओं में काम करने वाले लोग उनमें आपसी तालमेल नहीं बैठता है और टकराव होता है। अहंकार के स्थान पर विनम्रता की चेतना जग जाए तो समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

अहंकार का भद्दा प्रदर्शन भी अनेक जगह पारिवारिक जीवन और संगठन के जीवन में समस्याओं को पैदा करता है। ऐसी समस्या हर जगह व्याप्त है। मंदिरों में छोटे दरवाजे होते हैं, जिसके कारण व्यक्ति झुककर प्रवेश करता है। झुकने का यह अभ्यास अच्छा है पर जब तक चेतना नहीं जागती तो परिवर्तन नहीं हो सकता।

क्रोध का बडा कारण है अहंकार। अहंकारी बात को सहन नहीं करता है तब क्रोध बढता है और पत्नी भी चंद्रमुखी से ज्वालामुखी लगने लगती है। यह सब इसलिए होता है। हम कषाय को उपशांत करना नहीं जानते हैं। धर्म का स्वरूप है- अकषाय। क्रोध, मान, माया, लोभ शांत होना ही अकषाय है।

मानव में इतना अहंकार है कि, वह स्वयं का बहुत बड़ा अस्तित्व समझता है। जब कि उपरोक्त बात से अन्दाज ही लगाना संभव नहीं है कि मानव का ब्रह्मांड में कितना सूक्ष्म अस्तित्व है।

व्यक्तित्व के विकास में अभिमान बाधक - सबके सामने अपनी ही तारीफ करते जाना, अपनी ही हांकना, अपने बारे में बड़े-बड़े किस्से सुनाना अहंकार या अभिमान कहलाता है। अहंकार ऊंचे काम पर होता है और नीचे कामों पर भी। जैसे हमारे दादाजी रोज सात सौ याचकों को अयाचक करके तब मुंह में अन्न का दाना डालते थे। साहब मैं तो आज तक कभी झूठ बोला ही नहीं। अरे भाई ! मेरे बचपन में तो हमारे घर में फाके पड़ा करते थे, हमें दो जून की रोटी तक मोहाल न थी, रात में पानी पीकर ही सो जाया करते थे पर आज देखो। हमने सैकड़ों मजदूरों को काम दे रखा है। हमारी बदौलत उनकी रोजी रोटी चल रही है। यह सारी अपार दौलत मैंने अपने स्वयं के बलबूते पर कमाई है। बचपन में मैं बहुत गरीब था, पर पढ़ाई में इतना तेज था कि मुझे हर साल स्कालरशिप मिलती थी। कारपोरेशन के स्कूल से चौथी पास कर इंग्लिश मीडियम के स्कूल में सेकंडरी में दाखिला लिया था। इस पर भी अपने ही बलबूते पर वहां भी कक्षा

में सबसे आगे रहा करता था। आज तो आप देख ही रहे हैं कि डाक्टरी के पेशे में मेरी कैसी धुआंधार प्रैक्टिस चल रही है। इन सब बातों के सुनाने से लाभ तो कुछ भी नहीं होता है। सुननेवाला भली-भांति समझ जाता है कि हम एक अभिमानी और अहंकारी व्यक्ति हैं। व्यक्तित्व के विकास में अभिमान या अहंकार सदा ही बाधक रहा है। इस अहंकार या अभिमान से छुटकारा कैसे मिले ? इसका एक सबसे बड़ा अच्छा उपाय यह है कि हमें अपने मुंह मिंया मिट्ठू कभी नहीं बनना चाहिये। अपने मुंह से अपना बखान करने से बचना चाहिये। यह काम कठिन अवश्य है, पर मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि अभ्यास से यह संभव हो जाता है। प्रयास तो करें।

रावण जिस वस्तु को छूता है, धिक्कार की पात्र हो जाती है और श्रीराम जिस वस्तु को छू देते हैं वह पूजने योग्य हो जाती है। रावण अहंकार का आखिरी छोर है और श्रीराम विसर्जन का आखिरी छोर हैं। जो अहंकार को पोषकर-सजाकर उसके अनुसार जीते हैं वे समझो रावण के रास्ते पर हैं। वे केवल स्थूल शरीर के भोग भोगने में ही आयुष्य पूर्ण कर देते हैं। परंतु जो अहंकार का विसर्जन करके ऋषियों के उपदेश के अनुसार जीवन जीते हैं, वे भगवान श्रीराम के रास्ते पर हैं। वे परमात्मा को पाने में अवश्य सफल हो जाते हैं।

आदमी को निगल जाता है अहंकार- यह माना जाता है कि हमारे जीवन में दुखद घटनाओं की असल वजह अहंकार है। अहंकार के कारण ही हम अपने को जीवन के हर क्षेत्र में उत्कृष्ट मानने लगते हैं। अहंकार के मद में चूर होकर हम दूसरों के अनुभवों और ज्ञान का उपयोग नहीं कर पाते। संसार के हर व्यक्ति में, चाहे वह कितना ही कमजोर या खराब क्यों न हो, एक अनुकरणीय अच्छाई अवश्य होती है। उस अच्छाई को अहं के कारण न तो हम देख पाते हैं और न ही ग्रहण कर पाते हैं। अहंकारी हमेशा दूसरों को नीचे गिराकर आगे बढ़ने के बारे में सोचता रहता है। पर ऐसे वक्त में भूल जाता है कि एक दिन जब उसका पतन होगा और वह नीचे गिरेगा, तो उसका साथ देनेवाला कोई नहीं होगा। अनगिनत पापों को जन्म देनेवाला कोई नहीं होगा। अनगिनत पापों को जन्म देनेवाला यह अहंकार आत्मप्रशंसा के बीज से उत्पन्न होता है। खुद को सर्वोच्च मान लेने का भाव इसी से पैदा होता है। दूसरों पर हावी रहने की प्रवृत्ति इसी से ही पैदा होती है। न जाने कितने प्रकार के मानसिक रोग अहंकार के कारण ही पैदा होते हैं। अहंकार न जाने कितने रूपों में आकर हमें भ्रमित करता रहता है और हमें अपने लक्ष्य से भटकाता है। अहंकार असल में एक मृगतृष्णा के समान होता है, जिसमें न तो खुद की प्यास बुझती है और न ही दूसरों की। व्यक्ति अपनी कमियों और दोषों को जानते हुए भी अहंकारवश दूसरों के सामने स्वीकार नहीं करता। वह हमेशा पर-निंदा में ही लगा रहता है। ऐसी स्थिति में घृणा, द्वेष, क्रोध, प्रतिशोध जैसे घातक मानस रोग उसे जीवनभर परेशान करते रहते हैं। मानस रोगों का नाश करनेवाली औषधियों जैसे कि क्षमा, दया, करुणा, प्रेम, धैर्य, नम्रता, सादगी से वह हमेशा वंचित ही बना रहता है। अपने पापों और गलतियों को हम हृदय से स्वीकार करते जाएं तो आगे हम इनकी पुनरावृत्ति से बच सकते हैं। गलतियों को दिल से स्वीकार करनेवाला क्षमा मांग कर पापों और अपराधों से बच जाता है। क्षमा मांगनेवाला और क्षमा करनेवाला, दोनों ही तमाम प्रकार के मानसिक असंतोष से बचकर शांति और आनंद का अनुभव करते हैं। इस प्रकार हमारी विनम्रता तभी सुशोभित होती है, जब वह क्षमा का आभूषण पहन लेती है। अहंकार का नाश होने पर ही विनम्रता की भावना पैदा होने लगती है। अंदर की असीम, अक्षय शक्ति को जागृत करनेवाली विनम्रता हृदय में ज्ञान की ज्योति जलाया करती है। ज्ञान की ज्योति

जलने से अंतरतम के अंधकार में रहनेवाले सभी मानसिक रोग भाग जाते हैं। विनम्रता हमारे हृदय में प्रार्थना और भक्ति का द्वार खोलती है। भक्ति के जरिए हम प्रायश्चित कर के हृदय को पवित्र कर सकते हैं। मन से उत्पन्न होनेवाली अतृप्त कामनाओं का नाश करनेवाली भक्ति हमारे अंदर ईश्वर के विराट रूप का दर्शन करवाती है। जब हम विनम्रता की थाली में क्षमा की आरती, प्रेम का घृत, दृढ़ विश्वास का नैवेद्य भगवान को समर्पित करते हैं, तब प्रायश्चित की आरती जलने पर इसकी लौ में मैं रूपी अहंकार का राक्षस जलकर भस्म हो जाता है।

संसार में अशांति का मूल कारण अहंकार और स्वार्थ है। यह दोनों के बढ़ने से व्यक्ति मनुष्यता छोड़ देता है। इनकी मात्रा बढ़ने से व्यक्ति सुझाव, राय या आदेशों की अवहेलना करता है। स्वयं को दूसरों से बड़ा समझने लग जाता है। अपनी पीठ स्वयं थपथपाने लगता है। उसकी बुद्धि पर अहंकार का आवरण आ जाता है। उसके संपर्क के लोग प्रेम से या अन्य व्यवसायिक लाभ हेतु उचित बात करते हैं तो भी ऐसा व्यक्ति अपना दंभ दिखाये बिना नहीं रहता। संसार में कई बार प्रतिष्ठित घरानों में पैदा होने वाले लोग भी इस बीमारी के शिकार हो जाते हैं। दुनिया उनके प्रतिष्ठित परिवार का सम्मान इज्जत करती है। ऐसे व्यक्ति सोचते हैं कि ये लोग मेरी बुद्धि का लोहा मानकर मुझे प्रतिष्ठा दे रहे हैं, ऐसे सोच से व्यक्ति अपने आपको अहंकार में डुबा लेता है, और अपनी भ्रष्ट बुद्धि से ऊल-जुलूल बक जाता है। अहंकारी व्यक्ति की पहचान यही है कि जानकारों की राय-सुझाव आदेशों को बाजू रख कर अपने अहंकार को कायम रखने के लिये गलत निर्णय लेता है, जो उसको जीवन में अशांत बना देता है।

तुलना - प्रासाद का जीवन भिन्न ही प्रकार का जीवन था। ऐसा कभी नहीं होता था कि किसी दूसरे राजा के प्रासाद को देखकर यह तुलना मन में न जागे कि उसका प्रासाद सुन्दर है या मेरा; उसका प्रासाद विस्तृत है या मेरा ? कुटिया में आने के बाद से उन्होंने कभी तुलना नहीं की कि किसी और की कुटिया उनसे छोटी है या बड़ी ? इसका क्या अर्थ है ? क्या सचमुच भौतिक सुख-सुविधाओं का कोई अन्तर नहीं है ? सारा प्रपंच मन का ही है? मन मान जाये कि बड़ा वह है, जो सबसे अधिक अर्जित करता है, तो दूसरों को वंचित करके भी वह तुष्ट होता है। उसे तनिक भी पीड़ा नहीं होती कि उसके ग्रहण के लिए, कितने लोगों को त्याग करना पड़ा। और मन यह मान ले कि जो सबसे अधिक त्याग करे, वही सबसे बड़ा है, तो सब कुछ छोड़-छाड़कर भी वही अपने को श्रेष्ठ, उत्तम और महान मानता है। मुख्य तो अहंकार है। अहं तुष्ट हो जाये, तो व्यक्ति सुखी हो जाता है। चाहे भूखा रह ले, चाहे अफरकर खा ले। अहंकार भी तो अनेक प्रकार का हो सकता है धन का, बल का, बुद्धि का, चरित्र का, त्याग का यहाँ तक कि निर्धनता का भी पर अहंकार तो पतन के मार्ग पर ही ले जायेगा तो अहंकार से ही मुक्ति पानी चाहिए। अहंकार तो तभी गलेगा, जब मन में तुलना न हो। और तुलना का नाश करने के लिए तृष्णा का नाश करना पड़ेगा। लोभ से पीछा छुड़ाना पड़ेगा।

आत्मशुद्धि के लिए अभिमान छोड़ें- आत्मा को शुद्ध किए बिना कोई अध्यात्म के मार्ग पर नहीं चल सकता। आत्मा के शुद्धि के मार्ग में सबसे बडी रुकावट हमारा अभिमान है। इस अभिमान को निंदा, चुगली से बल मिलता है। जितनी हमारी निंदा प्रवृत्ति रहती है, उतना ही हमारा अभिमान प्रभावशाली रहता है। निंदा करना व सुनना जब तक हम छोड़ेंगे नहीं तब तक हमारा अभिमान कमजोर नहीं होगा और हम उसे तोड़ नहीं पाएंगे अभिमान नहीं टूटेगा तो हम साधक नहीं बन सकते। यदि आप साधक बनना चाहते हैं, जीवन में सुख शांति की कामना रखते हैं तो अभिमान को तोड़ो। दूसरों की तरफ देखने

की बजाए अपनी ओर देखो। अपने आपको सुधारो। अपने तरफ देखने, अपने आपको जानने का प्रयास करें। इस मार्ग में हमारा अभिमान सबसे बड़ी बाधा है। दूसरों की निंदा करना, चुगली करना, अभिमान की खुराक है। किसी की निंदा-चुगली होती है तो हम बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। इससे अभिमान को खुराक, रस मिल जाता है। इससे हमारा अभिमान और बलवान हो जाता है। यही कारण है कि सभी, दूसरों को बुरा दिखाकर, अपने आप को अच्छा बताने का प्रयास करते हैं। इस कमजोरी को दूर करने के लिये बड़ा बल, बड़ी शक्ति, बड़ी सहनशीलता व समर्पण चाहिए। जब तक हम निंदा की वृत्ति को बदलेंगे नहीं तब तक अभिमान टूटेगा नहीं। जो अभिमान को तोड़ देता है, वह आत्मा को पा लेता है, उसे कहीं बुराई नजर नहीं आती। आत्मदर्शन में इतनी ताकत है। आत्मदर्शन होते ही आदमी में अपार सद्भावना, सहनशीलता आ जाती है कि वह किसी स्थिति में विचलित नहीं होता। आत्मदर्शन के लिये अहं को तोड़ना जरूरी है। निंदा न सुने, न किसी की प्रशंसा से प्रसन्न हो जाए। जब ऐसी स्थिति आपके अंदर आ जाएगी तब आपकी आत्मा शुद्ध हो जाएगी और आप धर्म के मार्ग पर अग्रसर होंगे।

अभिमान के मुख्य पांच ही कारण है-१) अच्छे श्रेष्ठ सम्मानित कुल में जन्म होना। २) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों के उपभोग से भी अभिमान बढ़ता है कि देखो हम कितने ऐश्वर्यशाली हैं। ३) विद्या का भी अभिमान होता है। ४) धन और अधिकार के अभिमान का तो कुछ कहना ही नहीं। इन्हें पाकर तो मनुष्य अन्धा ही हो जाता है। ५) इन सबसे बढ़कर अभिमान त्याग और तपस्या का होता है। यदि भक्तिहीन तप और त्याग है तो वे अभिमान को अत्यधिक बढ़ानेवाले होते हैं। ६) रूप का अभिमान।

हम मानें या न मानें, पर मैं का अर्थ है परमात्मा की तरफ पीठ करके खड़ा होना। मै का अर्थ है अकड़। हम कहते हैं कि परमात्मा हम से दूर है। वह हमारी सुनता नहीं। पर सच बात तो यह है कि परमात्मा न कभी हमसे दूर न था, न है और न होगा। सिर्फ हमने कभी मुड़कर देखा ही नहीं और फिर, परमात्मा तो हमारे चारों तरफ एक खुशबू की तरह, एक रोशनी की तरह हर वक्त मौजूद है। अगर कोई कमी है, तो यह कि हमारे पास उस सुगंध को सूंघने की क्षमता ही नहीं है। उस रोशनी को देखने वाली आंखें ही नहीं हैं।

कभी सच्चे मन से थोड़ा सा गुनगुनाने की कोशिश करोगे, तो आवाज उस तक पहुंच जाएगी। जरा सा मुड़कर देखोगे, तो उस प्रभु की झलक दिख जाएगी। मगर हमारा अहंकार या हमारा यह मैं कहता है- मुड़कर मत देखना। कहता है कि उस परम पिता को पुकारना मत। अहंकार हमें भ्रम के तमाम जालों में अटकाता है। यह हमारे हाथ-पांव को सांसारिक बातों के सूक्ष्म जालों में बांध देता है। इंसान और परमात्मा के बीच मैं या अहंकार के सिवा और कोई बाधा है ही नहीं। मैं की दीवार हटाते ही हम उस दैवीय नूर के रूबरू होते हैं।

परमात्मा ने हमें सब कुछ दिया। उसने हमें हर तरह का सुख-साधन दिया, लेकिन मैं के वशीभूत होकर हमने सब कुछ खो दिया। मैं ही सारे बंधनों का जाल है। अज्ञानी लोग तो कभी भी मैं और मेरा के व्यूह को तोड़ ही नहीं पाते। मेरा शरीर, मेरा घर, मेरा बेटा, मेरी बेटी, मेरी पत्नी, मेरी दौलत, मेरा पद, मेरी इज्जत, मेरा नाम, आदि-आदि। लेकिन कई बार बड़े-बड़े ज्ञानी-दानी-ध्यानी मैं के बारीक तंतुओं में फंस जाते हैं। बहुत धीमे से कभी उनकी बुद्धि का अहंकार, कभी विद्या का अहंकार, कभी ज्ञान का अहंकार, कभी दान का अहंकार, कभी जप-तप का अहंकार, कभी भक्ति का अहंकार उनके मन

में अपनी जगह बना लेता है। उन्हें इसका पता नहीं चलता, लेकिन ऐन मौके पर यह अहंकार अपना सिर उठाता है और तब अचानक वे पाते हैं कि वे खुद परमात्मा से कितने दूर हो गए हैं। कई बार अत्यधिक सात्विक लगने वाले यह अहंकार भी मनुष्य को काफी नीचा गिरा देता है। आप दानवीरों के द्वंद्व को देखो, ज्ञानियों के आपसी बैर को देखो, भक्तों की आपसी होड़ देखो, तो पता चलेगा कि उनके अंदर भी मैं या अहंकार की आग जल रही है, और इस आग में उनका सब कुछ अर्जित किया हुआ भस्म हो रहा है।

हमें हर पल सचेत होकर अपने अहं को परे धकेलते रहना है। यह सतत क्रिया है। जरा सी चूक भी सारे किए-धरे पर पानी फेर सकती है। सदियों से तमाम भक्तगण अपने-अपने इष्ट देवी-देवताओं की स्तुति गाते रहे है। समय-समय पर उन्हें यथाशक्ति भेंट चढ़ाते रहे हैं। आज भी तमाम देवी-देवताओं के दरबारों में भेंट-पूजा चढ़ाई जाती है। ऐसा करके हम समझते हैं कि इनसे देवी-देवता प्रसन्न हो जाएंगे। पर असल में हमारी पूजा अधूरी हैं इस तरह हम परमात्मा के आशीर्वाद के हकदार नहीं बन पाते हैं। क्यों ? क्योंकि परमात्मा को जिस चीज की भेंट चाहिए, वह तो मैं यानी अहंकार है। जब तक हम अपने मैं को, अपने अहंकार को परमात्मा के चरणों में अर्पित नहीं करेंगे, तब तक हम उसके दरबार से खाली हाथ ही लौटते रहेंगे।

अगर जीवन निर्मल चाहिए तो मैं की गंदगी दूर करनी ही चाहिए। मैं ही सब बंधनों का केंद्र है। जिस दिन, जिस पल मैं का नाता टूट जाएगा, उसी दिन, उसी पल परमात्मा से हमारा अटूट संबंध हो जाएगा। फिर कुछ मांगने-पाने की जरूरत ही खत्म हो जाएगी। जीवन को नया अर्थ मिल जाएगा और सबकुछ सहज ही हासिल हो जाने के अहसास से हम अपने आप ही तृप्त हो जाएंगे।

घमंड उस अभिमान का नाम है, जो वास्तविक नहीं है, और अभिमान उस घमंड का नाम है, जो वास्तविक है, लेकिन दोनों पाप हैं और दोनों आसुरी हैं। मतलब यह कि एक आदमी, जो सुंदर नहीं है और अपने को सुंदर समझता है और अकड़ा रहता है। सुंदर है नहीं, सुंदर समझता है; दूसरा आदमी सुंदर है, सुंदर समझता है और अकड़ा रहता है। वह अभिमान है। पर दोनों ही आसुरी हैं।

अहंकार है वहां कलियुग का निवास है। जब तक किसी महापुरुष की सेवा नहीं करो तब तक अहंकार निर्मूल नहीं होता। सबको नमन करो। नमन करने से अहंकार की मात्रा कमजोर होती है और धीरे-धीरे निर्मूल हो जाता है। जैसे-जैसे महात्माओंका ज्ञान बढ़ता है वैसे-वैसे ही वे और झुकते हैं। मनुष्य की बनाई हुई मूर्ति को नमन करना बहुत कठिन है, भगवान की बनाई गयी इस मनुष्य मूर्ति को नमन करना बहुत आसान है। नमन से परमात्मा बंधन में आ जाता है।

अपने अहंकारको छोड़ देनेका नाम नमस्कार है। विनय के सम्मुख अहंकार पानी हो जाता है।

अहंकारके विसर्जनसे मनुष्यमें मार्दव परिव्याप्त हो जाता है। मार्दवकी प्रकृष्टता ही भक्तको भगवत्प्रेमकी ओर आकृष्ट करती है। भगवत्प्रेमकी साधनामें मनुष्य सर्वप्रथम मोह-मायासे मुख मोड़ता है। सहज स्थितिमें आनेका उपक्रम करता है; क्योंकि जो जितना सहज- ऋजु होता है, वह उतना ही प्रभुके संनिकट होता है। भगवत्प्रेममें सहजता है, सरलता है और आर्जव-मार्दवकी चरम स्थिति है। कहीं कोई बाँकपन नहीं, कपट नहीं, छल नहीं और काम, क्रोध, घृणा, द्वेष, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि विकार भी नहीं हैं।

मनुष्य दूसरों को अहङ्कार के कारण तुच्छ समझता है। अहङ्कार वश अपने को सर्वश्रेष्ठ समझकर प्राणी दूसरों का

तिरस्कार करता है। जब हम अपने को बड़ा समझते हैं और दूसरा हमारे बड़प्पन को स्वीकार नहीं करता, तो हमारे मन में उसके प्रति द्वेष होता है। द्वेष आते ही उसका अनिष्ठ करने की- उसे नीचा दिखाने की- इच्छा मन में उत्पन्न होती है। यह इच्छा ही कलह का बीज है। इसी की शाखा प्रशाखा राग द्वेष, लड़ाई झगड़ा, पराजय तथा मृत्यु आदि हैं।

अहंकार व्यक्ति को नम्र बनने नहीं देता। अहंकारी कभी विनय नहीं कर सकता। अहंकारी व्यक्ति अपने उपकारी व गुरुजनों की भी उपेक्षा कर देता है। अहंकारी व्यक्ति का सबसे अच्छा मित्र खुद वह व्यक्ति ही हो सकता है। क्योंकि अगर वह स्वयं का अध्ययन निष्पक्ष होकर करें, तो पाएगा कि उसमें क्या गड़बड़ियाँ हैं। किसी भी स्व-निर्मित व्यक्ति का सिर बहुत बड़ा होता है और भुजाएं इतनी लंबी होती है कि वह खुद की पीठ थपथपा सके। इसीलिए अहंकारी व्यक्ति कहीं नहीं जा पाता, क्योंकि उसे लगता है कि वह काफी ऊंचा उठ चुका है।

रावण कहता है, राम पर विजय प्राप्त कर लूं। फिर सीता को ससम्मान भेज दूंगा। परिणाम हुआ कुल का सत्यानाश। इसीलिए अभिमान को मीठा विष कहा है, जो वर्तमान में तो मधुर और सुखद लगता है, लेकिन अंतत: दुखदायी साबित होता है।

अहंकार का जीवन नरक समान और नुकसानदायक है फिर भी हम इसे छोड़ने को तैयार नहीं होते। अहंकार की तृप्ति किसी चीज को पाने से नहीं अपितु उस चीज को किसी दूसरे की अपेक्षा ज्यादा पाने से होती है। वस्तुत: अहंकार का अर्थ ही अपने को दूसरों से श्रेष्ठ सिद्ध करने का दावा है, इसी वजह से लोग लोभ करते हैं ताकि वे दूसरों से संपन्न दिखें, दूसरों को दबाने की चेष्टा करते हैं ताकि अपनी प्रभुता सिद्ध कर सकें और दूसरों को मूर्ख बनाना चाहते हैं ताकि स्वयं बुद्धिमान सिद्ध हो सकें। अहंकार सदैव दूसरों को मापदंड बनाकर चलता है। दूसरों से तुलना कर अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की वृत्ति का नाम ही अहंकार है। इतिहास इस बात का गवाह है कि कैसे महान सभ्यताओं, शक्तिशाली राजवंशों और साम्राज्यों ने अहंकारी, अभिमानी और घमंडी शासकों के हाथों में गिरकर अपने मूल अस्तित्व को ही मिटा दिया। अतीत के राजा महाराजाओं और वर्तमान के शासकों के घमंडी स्वभाव की वजह से ही यह कहावत बनाई गई है कि सत्ता भ्रष्ट करती है और पूर्ण सत्ता बिल्कुल ही भ्रष्ट करती है। पुराणों में उल्लेख आता है कि देवता असुरों से जब-जब भी पराजित हुए तो उसका कारण था उनका असंगठित होना, क्योंकि प्रत्येक देवता को अपनी शक्ति का अहंकार रहा और इसलिए वे आपस में तालमेल बिठा नहीं सके।

किसी व्यक्ति में सारे सदगुण होते हुए भी यदि उसके भीतर अहंकार विद्यमान है तो वह उसके सद्गुणों की शक्तिको उसी प्रकार आवृत कर लेगा, जिस प्रकारकी आंख में पड़ा हुआ तिनका सारी दृष्टि को ढक लेता है। महाभारत में इस प्रकार के कई प्रसंग आते हैं, जब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुनके अभिमान का मर्दन किया और उसे भगवत प्राप्ति में सबसे बड़ा अवरोध बताया। इसी प्रकार रामायण में भी नारद के अभिमान का प्रसंग आता है और वे अनुभव करते हैं कि उनके मिथ्या अभिमान के कारण वे भगवान से कितने विमुख होते जा रहे हैं।

अहंकारी व्यक्ति सदा अपने आपको दूसरों की भेंट में अधिक महत्वपूर्ण मानता है और अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए वे अन्य से टक्कर लेने के लिए सदैव तत्पर रहता है। किन्तु ऐसा करने में वह ये भूल जाता है कि महत्वपूर्ण होना एक अलग बात है और स्वयं को महत्वपूर्ण मानना तथा उसे सिद्ध करना सर्वथा दूसरी बात है।

संसार में सबसे महत्वपूर्ण यदि कोई है तो वह सर्व शक्तिमान परमात्मा है और उस सर्वोच्च सत्ता की ऐसी कोई चेष्टा दिखाई नहीं देती, जो वह अपने आपको महत्वपूर्ण सिद्ध करने के लिए करता है। परमात्मा को अपनी सत्ता का अहंकार नहीं। अब जो समस्त संसार के स्वामी है, वे परमपिता परमात्मा अपनी सत्ता का अहंकार नहीं रखते हैं, हम जैसे अरबों व्यक्तियों के होते हुए हम अपने आपको सबसे महत्वपूर्ण मानें और दूसरों से टक्कर लेते फिरें।

अहंकार छोड़कर सोचें तो हर समस्या का समाधान मिलेगा

इंसान का अहंकारी होना जीवन की बड़ी विसंगति है। मानव चाहे साधारण हो या कोई बड़ा ऋषि-मुनि, कम या अधिक अहंकार सबमे होता है। यह ऐसी मनोग्रंथि है जो व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र को नष्ट कर देती है। हमने कुछ ऐसी अवधारणाएं एवं मान्यताएं बना ली हैं कि चाहकर भी इससे मुक्त नहीं हो पाते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ- जीवन की इन चार विसंगतियों का जनक अहंकार ही है। अहंकार से मुक्त होना कोई आसान काम नहीं है।

समस्या कैसी भी हो, कहीं भी हो, ज्यादातर तो अहंकार के ही कारण पैदा होती है। संबंधों में दुराव और कटुता का कारण भी अहंकार है। अहंकार का टकराव दो सहोदर भाइयों को कचहरी पहुंचा देता है। समाज में अनेक प्रसंग मिल जाएंगे कि बात कुछ भी नहीं थी, किंतु अहंकार ने सब बांटकर छिन्न-भिन्न कर दिया। भाइयों के बीच का विवाद उन्हीं तक सीमित नहीं रहता बल्कि दोनों ओर पक्ष बन जाते हैं। परिवार का तनाव समाज को प्रभावित करता है और समाज से राष्ट्र प्रभावित होता है। अधिकतर लोग एक फूलदान में एक ओक वृक्ष की तरह होते हैं। फूलदान अहं की तरह होता है और उनका अस्तित्व ओक वृक्ष। उन्हें अपने आपको अहं तक सीमित नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने निचले हिस्से को छोड़कर अपने ऊपरी हिस्से को फैलने देना चाहिए और अपने स्व को विस्तृत करना चाहिए।

अहंकार शांत करने के लिए तीन बातें जरूरी हैं। धारणाओं का परिवर्तन, चिंतन और प्रयोग। आदमी ने यह अवधारणा बना रखी है कि अमुक जाति या कुल का आदमी बड़ा होता है, अमुक जाति का छोटा होता है। जातिवाद ने आज तक अहंकार को बढ़ावा देने का ही काम किया है। इस गलत अवधारणा ने समाज को कई वर्गों में बांट दिया और इससे विद्वेष, घृणा और संघर्ष पैदा हुए। इसी तरह व्यवसाय एवं परिवार को लेकर जो अवधारणाएं बनी हुई हैं, उन्हें बदलना भी बहुत जरूरी है। जिस पल कोई व्यक्ति खुद को पूर्णत: समर्पित्त कर देता है, ईश्वर भी उसके साथ चलता है।

सूक्ष्म बातें जल्दी पकड़ में नहीं आतीं। हम जिस तल पर जीते हैं, उसी स्तर की बातें सहजता से हमारी समझ में आती है। सामान्य व्यक्ति कामना और अहंकार के तल पर जीता है। इन्हें पुष्ट करनेवाली बातें उसे अच्छी लगती हैं, इसलिए निर्वाण के बजाय स्वर्ग, मुक्ति या मोक्ष शब्द उसे अधिक आकर्षित करते हैं। इन शब्दों का भाव भी वही है, किंतु सकारात्मक होने के कारण ये शब्द हमें रुचते हैं। मोक्ष का अर्थ है- मुक्ति, पूर्ण स्वतंत्रता। बात तो वही कामनाओं, अहंकार से मुक्ति की है, लेकिन मोक्ष शब्द यह भ्रम पैदा करता है कि इससे व्यक्ति की अपनी सत्ता बची रहेगी, क्योंकि मुक्ति किसकी होगी? मेरी ही होगी न। तो मैं तो होऊंगा ही होऊंगा।

मुक्ति हमारे इस अहंकार को पुष्ट करती है कि हम गुलामी से मुक्त हो जाएंगे। हमारा अहंकार इससे राजी हो जाता है, क्योंकि यह बात हमारे चित्त को लुभाती है। हमारा अहंकार, मन और वासना ही वास्तविक बंधन है।

बुद्ध ने मोक्ष या मुक्ति की नहीं, केवल निर्वाण की बात की। पाली में अत्ता का अर्थ है- अहंकार। बुद्ध के अनत्ता का अर्थ

है- आत्मा का न हो जाना। इसका अर्थ चैतन्य का समाप्त हो जाना नहीं है। चैतन्य तो होगा, लेकिन उसमें मैं-भाव नहीं होगा। निर्वाण का दूसरा अर्थ है- परम आनंद। इसका अर्थ भी वही है क्योंकि जहां मैं-भाव नहीं होता, वहीं आनंद होता है।

निर्वाण की प्राप्ति के भी दो मार्ग हैं। पहला, निष्काम कर्म। परिधि पर तो सक्रियता हो, किंतु फलाफल के प्रति कोई आग्रह न रहे। साधक छोटे-छोटे कर्मों के प्रति जागे और देखे कि भीतर कोई कर्ताभाव तो नहीं है। आप अपने अहंकार को मजबूत करने के लिए काम कर रहे हैं या वह केवल अभिनय के तौर पर है? दूसरा है, जगत के हर काम के भीतर स्वयं को कर्ता के रूप में जानें। दोनों बातें विपरीत मालूम पड़ती हैं, लेकिन चाहे आप स्वयं को जगत के सभी कर्मों का कर्ता मान लें, दोनों ही से अहं या मैं- भाव समाप्त होता है। दोनों ही मंजिल उसी शून्यता की ओर, निर्वाण तक ले जाती है, जहां सिर्फ शांति और आनंद बचता है। असली बात है, अपना-अपना ढंग चुनकर मंजिल तक पहुंच जाना।

अहंकार के अंधकार को दूर करती है प्रेम के दीये की लौ - अहंकार शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के अहम अर्थात मैं से हुई है। मैं में केंद्रित होनेवाला व्यक्ति अहंकार रूपी रोग से ग्रस्त होता है। जब बच्चा जन्म लेता है तो उसके भीतर इस रोग के कोई अणु नहीं होते। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है, वैसे-वैसे बच्चे में प्रतिस्पर्धा का भाव प्रबल होता जाता है। कुछ अलग करने की, दूसरों से बड़ा होने-दिखने की सोच मस्तिष्क पर हावी होती जाती है। इसीसे हमारे भीतर अहंकार का बीज पनपने लगता है।

शुरू में तो यह भाव-आवेग हमारे वश में होता है, पर समय बीतने पर यह इतना बलशाली हो जाता है कि हम उसके सेवक बन जाते हैं। हमारे समूचे कार्यकलाप ही अहंकार-पूर्ति से प्रेरित होने लगते हैं। अहंकार वह पात्र बन जाता है जो कभी भरने का नाम नहीं लेता। धन, पद-प्रतिष्ठा और यश पाकर भी हम असंतुष्ट-अतृप्त रह जाते हैं। जीवन उस मरुस्थल के समान बन जाता है,जिसमें अहंकार-तृप्ति की प्यास मृगतृष्णा जैसी बन जाती है।

अहंकार के बलवती होने से जीवन जटिल और संघर्षपूर्ण बन जाता है। अहंकार के मद में हम और अधिक गहरे डूबते चले जाते हैं। असंतोष, ईर्ष्या, लोभ, क्रोध अहंकार रूपी रोग के ही लक्षण हैं। अहंकार के चक्रव्यूह को तोड़ पाना आसान नहीं है। उसके लिए सर्वप्रथम मन-प्राण से नम्रता, समर्पण और त्याग की सीढ़ी पर पांव रखना आवश्यक है। चूंकि अहंकार का घर कपाल में छुपे मन-मस्तिष्क में हैं, शायद इसीलिए हमारे पूर्वजों ने अनेक ऐसे धार्मिक अनुष्ठानों की रचना की जिनमें हमें अपना सिर झुकाना पड़ता है। प्रतीकात्मक दृष्टि से देखें तो नारियल फोड़ना, केश मुंडवाना आदि सभी अहंकार को चूर करने की निशानी है।

अहंकार से छुटकारा पाने की अगली सीढ़ी है- मृत्यु-बोध। हम जिस सुंदर शरीर, सांसारिक उपलब्धि और पद-प्रतिष्ठा पर गुमान करते हैं, वे सभी क्षणभंगुर हैं। फिर भी हम उन्हें पाने के लिए गलत काम करने से नहीं चुकते। पर जब हमारे भीतर यह अंतर्ज्ञान जाग जाता है कि मृत्यु ही जीवन यात्रा का अंतिम स्थल है तो अहंकार का भाव समर्पण में होम हो जाता है। इसके अलावा हृदय में प्रेम का दीया जलता रहे तो अहंकार के रोग से मुक्ति पाना आसान होता है। प्रेम की लौ से अहंकार का अंधेरा अपने आप ही छंट जाता है। यदि इस दीपमाला में प्रेम के साथ-साथ समर्पण का दीया भी जल उठे तो अहंकार रोग पास नहीं फटक पाता। मानवता का दिव्य प्रकाश चारों दिशा में अपनी रोशनी फैलाने लगता है।

हम अपने भीतर छुपे अहंकार के अंधेरे को जीत लें तो यह संसार अपने आप स्वर्ग की तरह हो उठेगा। उसमें न कोई

छोटा होगा, न कोई बड़ा। न कोई निर्धन होगा, न कोई धनी। न कोई राजा होगा, न कोई रंक। सभी अपनी अपनी कर्मयात्रा में लीन रहकर ही जीवन का सच्चा सुख भोग सकेंगे।

समाज के उत्थान या पतन में सामूहिकता का बहुत बड़ा हाथ होता है। इसकी पहल व्यक्ति ही करता है। जैसे आवश्यकता से अधिक भोजन शरीर में जमा होकर व्याधियों का कारण बनता है, उसी प्रकार अधिक महत्व मन में जमकर अहंकार को जन्म देता है। निरंतर मिलनेवाले अनावश्यक सम्मान के कारण कोई भी व्यक्ति स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगता है। इसकी निरंतरता भंग होने पर आक्रामक हो जाना भी स्वाभाविक है। यह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए कई स्तर पर हानिकारक है। आज महिलाओं पर हो रहे जघन्य अपराध परिवार द्वारा लड़कों को दिए गए अनावश्यक महत्त्व का परिणाम भी है। ऊंचे पद के लिए चल रही अंधी दौड़ समाज द्वारा इनके आधार पर सम्मान दिए जाने का परिणाम है। सम्मान पाने की भूख हर व्यक्ति की स्वाभाविक मनोवृत्ति होती है। इंसान वही बनना या करना चाहता है जिसे लोग प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं। किसान, प्लंबर को भी वही सम्मान मिले जो डॉक्टर, प्रशासनिक अधिकारी या विधायकों को मिलता है तो विद्यार्थी स्वयं अभिरुचि के अनुसार व्यवसाय चुनने लगेंगे।

अपना अहंकार ईश्वर के चरणों में डाल दें तो जीवन सुंदर हो जाएगा

हमारे पूर्वज और बड़े-बुजुर्ग देवी-देवताओं की पूजा करते हुए सदियों से भगवान को नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों का भोग लगाते आए हैं। यह सनातन परंपरा न केवल भारत में बल्कि दुनिया के बहुत से देशों में भी प्रचलित है। भक्तजन पूरे श्रद्धा भाव के साथ मेवा-मिष्ठान, घी, दूध, फल देवी-देवताओं के सम्मुख चढ़ाते हैं और उसे ईश्वर का प्रसाद मान नतमस्तक होकर पूरे रस के साथ ग्रहण करते हैं। यह अर्चना उस प्राचीन सामाजिक परंपरा का अंग है, जिसमें भोज्य पदार्थों का चढ़ावा ईश्वर के प्रति भक्तिभाव और समर्पण का सबसे बड़ा द्योतक था। उस काल में मानव के लिए भोजन से बड़ा दूसरा कोई धन न था। समय ने इस परंपरा को मानव समाज में रूढ़िगत कर दिया, जिसके कारण हम आज भी उसका श्रद्धा के साथ पालन करते हैं। पर गहराई से विचार करें, तो यह अनुष्ठान मात्र सांकेतिक है। वरना ईश्वर कहां हमारे द्वारा अर्पित भोजन ग्रहण करते हैं? वे तो मात्र हमारे भाव, हमारे आचरण, हमारे चरित्र का अवलोकन करते हैं, जिससे उनकी रची सृष्टि में अलग-अलग रंगों के सुंदर इंद्रधनुष तरंगित होते रहते हैं। आखिर ईश्वर खाते क्या है? उनके सम्मुख हमें अपना क्या अर्पित करना चाहिए? क्यों न हम अपना अहंकार अर्पित करें। अहंकार ही मनुष्य के समस्त कष्टों की जड़ है। उसे ईश्वर के चरणों में डाल दें, तो यह जीवन सुंदर हो जाएगा। न राग-द्वेष रहेगा, न लड़ाई-झगड़े होंगे। न सीमाएं रहेंगी, न द्वंद्व बचेंगे। न युद्ध-संग्राम होंगे, न अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता रहेगी। यह समस्त पृथ्वी वसुधैव कुटम्बकम् के पवित्र सूत्र में बंध जाएगी। धर्म में ऐसे अनेक अनुष्ठान और प्रतीक रचे-बसे हैं, जो हमें अहंकार छोड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। अपने इष्ट देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के सामने सिर झुकाना, दण्डवत प्रणाम करना, बाल चढ़ाना जैसे सभी कर्म-कृत्य अहंकार के त्याग के ही रूप-स्वरूप हैं। जिस श्रद्धा भाव के साथ हम मंदिर, गुरुद्वारे, मस्जिद या गिरजाघर में ईश्वर के आगे झुकते हैं, उस नमन भाव के अंशमात्र के साथ भी हम एक-दूसरे के साथ जीना सीख लें, तो यह धरती स्वर्ग बन सकती है। फिर भी यह कैसी विडंबना है कि हम जीवन यात्रा में जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, हमारा अहंकार घटने के बजाय अधिक सघन होता जाता

है। जन्म के समय अहंकार से पूर्णत: मुक्त शिशु जैसे-जैसे बड़ा होता है, अहंकार उसके सिर चढ़ता जाता है।

अहंकार शीशे के समान है। उसका एक दिन टूटकर चूर-चूर होना निश्चित है। यह जीवन उसे सिर पर बिठाए-बिठाए काट भी लें, तो आखिर मृत्यु के हाथों उसका तहस-नहस होना तय है। फिर उससे मोह कैसा। सच्चा सुख उसे ईश्वर के चरणों में छोड़ आने में ही निहित है। यह अनमोल जीवन निर्मल, निष्कपट, उज्ज्वल और आनंदमय हो उठेगा।

अहंकार ही काम-क्रोध, राग-द्वेष आदि विकारों को जन्म देता है। अहंकार जितना ज्यादा होता है, जीवन भी उतना ही ज्यादा कठिन हो जाता है। अत: जीवन को सरल बनाए रखने के लिए अहंकार को कम करना जरूरी है। अहंकार न बढ़े, इसके लिए हमारे भीतर सबके प्रति प्रेम होना और मन से आदर देना आवश्यक है। अहंकार से भरा हुआ व्यक्ति किसी के आगे झुकना नहीं चाहता। वह अपने को ही सबसे बड़ा समझ लेता है इसीलिए दुखी रहता है, क्योंकि अहंकार के बढ़ने पर अकेलापन आ जाता है।

अत: अपने को इतना बड़ा भी मत समझो कि कोई आशीर्वाद देनेवाला भी न बचे। अत: नमस्ते हमारे अहंकार को दूर कर हमें सरल बनाने का तरीका है। नमस्ते कहकर किसी को अभिवादन करना हमारी प्राचीन परंपरा रही है। जब आप किसी को नमस्ते करते हैं तो उसके किस भाग को नमस्ते करते हैं। क्या हम सामनेवाले के शरीर को नमस्ते करते हैं? उसके नाम या उसके मन को या उसके अहंकार को? यदि सोचा जाए तो हम किसी के शरीर को नमस्ते नहीं करते, क्योंकि शरीर तो सबका ही घटता-बढ़ता और बीमार होता रहता है, ऐसे ही हम किसी के नाम को भी नमस्ते नहीं करते, क्योंकि नाम तो बदल भी सकता है, एक नाम कई लोगों के हो सकते हैं।

इसी प्रकार हम किसी के मन को भी प्रणाम नहीं करते, क्योंकि मन तो ख्यालों व विकारों से भरा होता है, ऐसे ही हम सामनेवाले के अहंकार के प्रति भी नमन नहीं करते, क्योंकि अहंकार में तो मेरा-तेरा और सारे विकार जन्म लेते हैं। हम नमस्ते केवल इन सबको चलानेवाले पवित्र पावन आत्मतत्व को करते हैं।

अहंकार त्याग प्रेम के पौधे रोपने होंगे खुशहाल जीवन के लिए

एक दिन एक कुत्ता बैलगाड़ी के नीचे चल रहा था। रास्ते में उसे दूसरा कुत्ता मिल गया। उसने पूछा- भैया, आज क्या कर रहे हो? इस तरह से गाड़ी के नीचे क्यों चल रहे हो? उसने जवाब दिया- अरे, तुम्हें पता नहीं कि मैं चलता हूं, तभी तो यह गाड़ी चलती है। मेरे भरोसे ही यह गाड़ी चल पा रही है। मैं बाहर आ जाऊं तो पता नहीं फिर क्या होगा? इस तरह का अहंकार आधुनिक मनुष्य की भी विडंबना है। अनेक समस्याओं का कारण है यह अहंकार।

एक छोटे बच्चे से लेकर बड़े से बड़े आदमी में भी यही अहंकार बसा है। किसी में अर्थ का अहंकार है तो किसी में शिक्षा का अहंकार है। किसी में सत्ता का अहंकार है तो किसी में साधुता का अहंकार है। कोई स्वयं को पत्रकार कहकर तो कोई अपने को वकील कहकर, कोई स्वयं को मंत्री कहकर तो कोई स्वयं को संत्री कहकर अहंकारी बना हुआ है। दूसरों को डराए जा रहा है और अपने आपको बड़ा साबित कर रहा है। समृद्धि का घमंड, ऐश्वर्य का घमंड, ज्ञान का घमंड, सत्ता का घमंड उसी क्षेत्र विशेष के यश को नष्ट कर देता है। मानवीय दृष्टि से वास्तव में अहंकार एक विकृति है।

यह विकृति आज मनुष्य की सहज प्रकृति बन गई है। संत तिरुवल्लुवर ने कहा भी है कि उस मनुष्य का ठाट-बाट जिसे लोग प्यार नहीं करते, गांव के बीचोबीच उगे विषवृक्ष के समान है।

जो व्यक्ति शांति से जीना चाहें और दूसरों के साथ मिलकर काम करना चाहें और यह चाहें कि हम एक हो सकें और परस्पर कटुतापूर्ण व्यवहार न हो, उन्हें सबसे पहले अहंकार मिटाने पर ध्यान देना चाहिए। विनम्र बनना चाहिए। जीवन को खुशहाल बनाने के लिए अहंकार को त्याग कर मृदुता, स्नेह और सच्चे प्रेम के पौधे रोपने चाहिए। क्योंकि अहंकार की शिला पर कभी अच्छा फूल नहीं खिल सकता। स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि अहंकार छोड़े बिना सच्चा प्रेम नहीं किया जा सकता।

आज भी अनेक जगहों पर कोई दलित या हरिजन दूल्हा घोड़ी पर नहीं चढ़ सकता, अनेक मंदिरों में महिलाओं के प्रवेश पर पाबंदी है तो अनेक जाति के लोग कुएं से पानी नहीं भर सकते- यह सब इनसे अलग लोगों के अहंकार के कारण है। अहंकार ने इंसानों के बीच दीवारें खड़ी की हैं। उन्हें विभाजित किया है। अहंकार ने समाज को जोड़ा नहीं, तोड़ा ही है।

अहंकारी और अभिमानी व्यक्ति गुमराह करनेवाली बातों को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर, निरर्थक श्रम से अंतत: कलह ही उत्पन्न करता है। ऐसे व्यक्ति को सबसे ज्यादा आनंद दूसरे को चोट पहुंचा कर ही आता है किंतु अपने अहंकार पर चोट लगने से तीव्र क्रोध होता है। जीवन में ऐसी स्थिति बिखराव एवं टूटन का सबसे बड़ा कारण बनती है।

अहंकार और गर्व में अंतर- अहंकार सही रिश्ते बनाने में सबसे बड़ी रुकावट होता है। अहंकार अपने आप में नशा है। अहंकार एक झूठा गर्व है जो जिद और अड़ियलपने में बदलता है। गर्व आनंद और संतुष्टि का वह भाव है जो सही रूप में किसी काम को विनम्रता से किए जाने को कहते हैं। अहंकार से दिमाग चढ़ जाता है जबकि गर्व के भाव से सिर ऊंचा होता है। जितना दिमाग चढ़ा होगा उतनी बड़ी सिरदर्दी होगी और जितना दिल बड़ा होगा उतनी विनम्रता होगी। मैं सब कुछ जानता हूं एक अहंकारी व्यक्ति की दुनिया उसी से शुरू होती है और उसी पर खत्म होती है और वह समझता है कि यह उसके लिए उसी के चारों ओर घूमती है।

प्रेमी में करुणा का भाव प्रबल होता है तो अहंकारी में घृणा का। अहंकारी पद-प्रतिष्ठा और सम्मान का लोलुप होता है और अपने रास्ते में आनेवाली हर बाधा को मिटा देना चाहता है। इसी कभी न खत्म होनी वाली कामनाओं की कहानी में वह पूरी जिंदगी गुजार देता है। अहंकारी का शस्त्र है षडयंत्र। किसी को नीचा दिखाने, हरा देने में बड़ा रस मिलता है। अहंकारी छीनने के लिए आतुर रहता है और सदा बनावटी बुलंदियों को छूने के चक्रव्यूह में फंसा रहता है। अहंकारी ऊंच-नीच, भेद-भाव की बेड़ियों में जकड़ा रहता है तो प्रेमी वसुधैव कुटुंबकम के भाव में भीगा हुआ स्वयं को स्वच्छंद रखता है। अहंकारी की प्रार्थना में भी लोभ होता है। वह ईश्वर से भी कामनाएं पूरी होने की चाह रखता है। उसके लिए ईश्वर लालच की पूर्ति का साधन मात्र है। अहंकारी अपने को सृष्टि से अलग मान जीवन में अतृप्त और मृत्यु से भयभीत रहता है।

भले ही हमारे मन में एक छोटी सी अहं की चिंगारी पैदा हुई हो मगर उसे सामनेवाले व्यक्ति के मन में पैदा हुए अहं का पेट्रोल मिल जाता है तो इस छोटी-सी चिंगारी का रूपांतर क्लेश-संक्लेश के ऐसे विनाशकारी दावानल में होता है जिसमें झुलसने से कोई नहीं बच सकता। अहं के टकराव से निर्माण हुए इस दावानल में संबंधों की मिठास सुलग जाती है, मैत्री कि मस्ती खंडित हो जाती है, प्रसन्नता की पूंजी समाप्त होती है, आनंद की अनुभूति मिटती है, स्वस्थता का भाव लुप्त होता है, शांति का अस्तित्व नष्ट होता है। यदि सामनेवाले के गुणों को उत्तमता को देखने और समझने की भाषा प्रेम की है तो औरों की खामी या भूल को ही देखते रहने की भाषा अहंकार की है। अहंकार पर्वत के समान होता है। आग लगे तो पानी से बुझाना संभव है, किन्तु पर्वत को तोड़ने के लिए तो उसके तलहटी या आसपास बारुद की सुरंग उड़ाना जरूरी होता है।

काम- काम वायु रोग के समान है। शाश्वत नहीं है। कामना आती है और चली जाती है। कामनाओं पर नियंत्रण करना चाहिए। विनय, लज्जा, शील, संकोच आदि सद्गुण मनुष्यों के हृदयों में तभी तक रहते हैं, जब तक उनके हृदयों में काम का प्रवेश नहीं हुआ। यह कामरूपी शत्रु ऐसा प्रबल है कि यह अकेला ही समस्त गुणों का नाश कर देता है। काम से ही लोभ, मोह, क्रोध आदि सभी दुर्गुण उत्पन्न होते हैं। जो इस काम को अवसर नहीं देते, निरभिमान होकर अपने भगवत् चरणारविन्दों का सेवक समझकर सर्वदा सेवा सुश्रूषा तथा कथा कीर्तन में लगे रहते हैं, उनके समीप काम आता तो है, किन्तु दूर खड़ा होकर प्रतीक्षा करता रहता है कि कब ये भगवत् चिन्तन से विमुख हों और कब मैं उनके हृदय में प्रवेश करके अपना अधिकार जमाऊँ। यदि उसे छिद्र मिल जाता है, अर्थात साधक कथा कीर्तन तथा नित्य कर्मों में प्रमाद करता है तो काम को उसी समय प्रमाद बुला लाता है। किन्तु जो प्रमाद को ही नहीं आने देते, नित्य नियम से सावधानी से लगे रहते हैं, उन्हें काम छोड़ देता है। क्योंकि जहाँ राम हैं, वहाँ काम रह ही नहीं सकता। निरभिमान होकर निरन्तर नारायण के चिन्तन के अतिरिक्त काम को भगाने का दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। मनुष्य कितना भी बली हो, कितना भी शूर हो, कितना भी तेजस्वी यशस्वी हो, कितना भी विद्वान, बुद्धिमान्, जपी, तपी, त्यागी तथा विरागी क्यों न हो, अहंकार आते ही कामवश होकर गिर जाता है। काम सदा संकल्प से होता है। मन में जहाँ काम उत्पन्न हुआ नहीं कि फिर उसे संसार में कुछ सूझता नहीं। काम एक प्रकार का भूत है। जिसके सिर पर यह सवारी हो जाती है, उसकी समस्त इन्द्रियों को मथकर अपने अधीन कर लेता है। काम आता है मद से। मद होता है स्वामीपने से। मैं कुलीन हूँ, विद्वान हूँ, धनी हूँ, ऐश्वर्यशाली हूँ। मैं इतने ग्राम का स्वामी हूँ, मेरे इतने नौकर शिष्य सेवक हैं, मैं इनका शासन करता हूँ, मैं त्यागी हूँ, तपस्वी हूँ, आदि-आदि। ये ही मद के चिन्ह हैं। मद में भरकर अहंकारवश जब मनुष्य स्वेच्छा पूर्वक इन्द्रियों के अधीन होकर काम करने लगता है, तभी उस मन में मनसिज-कामदेव का प्रादुर्भाव होता है जिन लोगों को परमार्थ सम्बन्धी बहुत कार्य नहीं, जो खाली बैठे विषयों का ही चिन्तन करते हैं, उन्हें ही आकर काम पीड़ा पहुँचाता है। जो हर समय शुभ कार्यों में लगे रहते हैं, उनके पास काम फटकता ही नहीं। दूर खड़ा-खड़ा उनकी गति विधि को देखता रहता है।

यह संकल्प द्वारा मन में उत्पन्न होता है। जिस स्त्री या पुरुष के मन में यह प्रकट होता है, उसकी समस्त इन्द्रियों को तथा मन को मथ डालता है। उसे विवेकशून्य बना डालता है। सब अपराध काम के ही द्वारा होते हैं?

काम का विकार बाल और किशोरावस्था के बाद ही होता है। भाई या पिता के सम्मुख मन से जो भी कुत्सित विचार करता है उसे घोरातिघोर रौरव नरक की प्राप्ति होती है।

मनुष्य सबसे पहले अहंकार त्याग करे। यही भक्तको भगवत्प्रेमसे रोकता है। यह उसके प्रेममें सबसे बड़ी बाधा उत्पन्न करता है। समस्त विकारों और अज्ञानताकी जड़ यह अहंकार ही है। इसके वशीभूत मनुष्यको मैं की प्रतीति तो रहती है, किंतु भगवान्के यथार्थरूपसे वह सर्वथा वंचित रहता है। जिसके कारण उसे भगवान्का साक्षात्कार, सांनिध्य तथा तादात्म्यकी अनुभूति नहीं हो पाती।

जब काम संसारके विषयके लिए होता है तब वह अंकुरित होता है और उससे पुनर्जन्म, परलोक, नरक, स्वर्ग आदि उत्पन्न होते हैं। परन्तु यदि किसीने अपनी वृत्तिको, अपने चित्तको भगवान्में अर्पित कर दिया हो तब वह काम संसारका हेतु नहीं होता- ठीक वैसे ही, जैसे बीजको भून दिया जाय अथवा उबाल दिया जाये तो उससे अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता।

संसारी विषयों में जीव की स्वाभाविकी प्रवृत्ति है। इन इन्द्रियों द्वारा भोगे जानेवाले पदार्थों का ध्यान करते-करते जीव की इनमें भोग बुद्धि हो जाती है- अर्थात् आसक्ति बढ़ती है। फिर मन में कामभाव जागृत होता है। मन में कामभाव उत्पन्न होने से इन्द्रियाँ चञ्चल हो जाती हैं, वैसे तो सभी इन्द्रियाँ प्रबल हैं। किन्तु रसना और उपस्थ इन दो इन्द्रियों को अत्यन्त प्रबल कहा है। मन में काम भाव उत्पन्न होते ही प्राणी किंकर्तव्यविमूढ़-सा बन जाता है जैसे तीक्ष्ण वायु कदली के वृक्ष को झकझोर डालती है, वैसे ही काम के मन में प्रवेश करते ही सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। जैसे रई गाढ़े दधि के रग-रग को मथ देती है, उसी प्रकार अनङ्ग प्राणियों के-विशेषकर युवक-युवतियों के मन को बलपूर्वक मथ देता है। इसलिये काम का दूसरा नाम मन्मथ है। कामाधीन होनेपर प्राणी धर्म, कर्म, लज्जा, साहस, प्रतिज्ञा, कर्त्तव्य, मर्यादा तथा सदाचार को भूल जाता है। वह विवश हो जाता है। जो बली कभी कहीं भी पराजित नहीं हुए, वे काम के सामने झुक जाते हैं। नतमस्तक हो जाते हैं, उसके वश में हो जाते हैं।

शंकर ने इस दुष्ट काम को क्रोध करके मार तो डाला, किन्तु फिर दया के वशीभूत हो गये। अंगरहित करके भी इसे पुन: सब प्राणियों के हृदय में रहने का वर दे दिया। अंग वाला होकर जितना बली था, अनङ्ग होकर यह और बली हो गया। सब अनर्थों की जड़ यही दुष्ट है। इसका कोई रूप नहीं, रङ्ग नहीं, आकार नहीं, प्रकार नहीं, समय नहीं, यह संकल्प से उठता है। जो संकल्पहीन हो गये हैं, जिनके मन में कभी संकल्प विकल्प उठता ही नहीं, उनके पास तो यह फटकता ही नहीं।

संकल्प न हो तो काम कैसे पैदा हो, किन्तु संकल्पहीन तो इस संसार में विरले ही होते हैं। यह काम, भक्त अभक्त दोनों को ही कष्ट देता है, अन्तर इतना ही है, कि अभक्त तो इसके चक्कर में फँसकर चौरासी के चक्कर में घूमते हुए असंख्यों जन्मों तक दुख भोगते हैं। भक्तों के मन में यह होता है, तो कुछ दिन क्लेश सहकर किसी से शाप दिलाकर अति शाप या अति प्रसाद कराकर प्रभु के पादपद्मों में पहुँचा देता है। भगवान में यदि इसे लगा दिया जाय, तो मोक्ष का श्रेष्ठ साधन बन जाता है, इसीलिये इसकी देव संज्ञा है। यज्ञादि में इसका पूजन होता है। बसन्त ऋतु में इसकी पूजा का पर्व होता है और आम की मंजरी से पूजन करने का अनन्त फल बताया गया है।

चित्त के सब रोगों में काम सबसे प्रबल रोग है। काम से ही क्रोध, लोभ-मोह आदि की उत्पत्ति होती है। काम की उत्पत्ति ब्रह्माजी से हुई है। उत्पन्न होते ही उसने ब्रह्माजी पर ही अपना प्रयोग किया। उस समय ब्रह्माजी ने यह नियम बना दिया कि छोटे बालकों को काम पीड़ा न देगा। अत: बालकों को छोड़कर कामरोग सभी को पीड़ित करता है। काम की प्रबलता होने पर वह मानसिक रोग ही न रहकर शारीरिक रोग भी बन जाता है। स्त्रियों को काम ज्वर होता है। उसकी इष्ट वस्तु की प्राप्ति ही औषधि है। पुरुषों को वीर्योन्माद रोग हो जाता है। उसकी भी औषधि इष्ट वस्तु की प्राप्ति ही है या एक नश से रक्त निकाल देने से भी वह शान्त हो जाता है। काम का वेग बड़ा प्रबल होता है। इतना प्रबल वेग किसी भी रोग का नहीं होता। पुरुष के हृदय में काम रोग उत्पन्न हो जाता है तो उसका चित्त चंचल हो जाता है, नेत्रों में अनुराग छा जाता है, शरीर में पुलक व कंपायमान होने लगता है और इष्ट वस्तु का निरन्तर चिन्तन करता रहता है, किसी भी काम में मन नहीं लगता। वह अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है। और जो काम न भी करना चाहिये उसे करने उद्यत हो जाता है। इसी प्रकार स्त्रियों को कामवेग प्रबल हो जाय तो उनमें अत्यन्त दीनता आ जाती है, अंग-अंग में अनुराग फूट पड़ता है। बार-बार रोमांच होते हैं। इष्ट वस्तु की प्राप्ति से वह शान्त होता है। यदि कोई नारी कामातुर हो तो उसे रतिदान करना श्रेयस्कर है। साधारण स्त्री

पुरुष की अंग-संग इच्छा का नाम काम हैं।

यह पापी काम नर-नारी दोनों को दीन बना देता है। मनुष्य के मन में काम न हो तो उसमें श्याम में कोई अन्तर नहीं। ईश्वर में यही विशेषता है कि उसके मन में काम नहीं। उसे दूसरे के साथ रमण की इच्छा नहीं, अपने आप में ही रमण करने से वह राम अथवा आप्तकाम कहलाता है। जीव को रमण की इच्छा है, उसके मन में कामना है, काम से दीनता आती है और दीनता ही दु:ख की जननी है। मनुष्य के अन्त:करण में काम न हो तो वह सिंह की भाँति गरजता रहेगा। सिंह हाथी से बड़ा तो है ही नहीं। हाथी में यही दोष है कि वह अत्यधिक कामी होता है, इसीलिये वह बँध जाता है, वाहन बन जाता है। सिंह में काम की मात्रा कम होती है, कहते हैं वह वर्ष में एक ही बार रति करता है, किसी-किसी का कथन है कि वह जीवन में एक बार करता है। कुछ भी हो, वह भी काम के वश हो जाता है, इसीलिये वह भी कभी-कभी पकड़ा जाता है, पिंजड़े में बन्द हो जाता है। यदि उसमें उतना भी न हो तो कोई उसे स्पर्श भी न कर सके। काम स्त्री पुरुष दोनों के ही हृदय में होता है, जो जितना ही अधिक कामी होगा, वह उतना ही अधिक हीन होगा। इच्छा मात्र का नाम काम है, चाहे वह इच्छा धन, स्त्री, पुत्र, मान, प्रतिष्ठा किसी की भी क्यों न हो। काम के वश होने पर दीनता आ ही जायगी। जिसका पलड़ा भारी है तो वह स्त्री को कठपुतली बनाये रहेगा। यदि स्त्री का पलड़ा भारी है तो वह पुरुष को जमूड़ा बनाकर उसे अपने संकेत पर नचाती रहेगी। मनुष्य काम चेष्टा प्रदर्शित न करे यह असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।

काम के निवास स्थान इन्द्रियां, मन बुद्धि कहे जाते है। इनके द्वारा ही काम ज्ञान को आच्छादित कर देही पुरुष को मोहित करता है। इसलिये इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान के नाशक काम रूपी पाप को नष्ट करना चाहिये।

कामी मनुष्य को अमृत (सदाचार, गुण) नहीं भाता। वह तो काम-वासना के विष में ही डूबा रहता है। ऐसे मनुष्य की कुबुद्धि कभी नहीं जाती। भले ही उसे कितना भी ज्ञान-ध्यान, सदाचार का पाठ पढ़ा लो। वह तो काम-वासना में अंधा रहता है और श्रेष्ठ बातों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

काम-वासना का कहर तो सिर पर चढ़कर बोलता है और वह सबको ही मारकर खा जाएगा। कोई सच्चा भक्त हरि-जन (हरि का भक्त) ही इस प्रकोप से बच पाता है जिसे गुरु के सच्चे नाम का भी सहारा मिला हुआ होता है अर्थात जो हृदय से भक्ति-भावना में लीन रहते हैं उन्हें काम प्रभावित नहीं कर पाता।

माया के रजोगुण से निष्पन्न काम सृष्टि जीवों के पतन का मुख्य कारक है। यह मन, बुद्धि, इंद्रियों को अपने अधीन कर पुरुष को कामुक बनाता है और स्त्रीलिंग के प्रति उसमें आकर्षण उत्पन्न कर महामोह के गहन अंधेरे में धकेल देता है। काम के वशीभूत होने के कारण ही मनुष्य अपना कुछ भी विचार न करके भोग-विलास में इतना लिप्त हो जाता है कि अंतत: न केवल अपना शारीरिक ह्रास ही कर बैठता है बल्कि पश्चाताप की आग में जलने भी लगता है।

यदि मनुष्य काम पर विजय पाने का इच्छुक है तो उसे संतों की संगति कर उनके वचनों का पालन अवश्य करना चाहिए। हमारे संतजन सदैव से ही ब्रह्मचर्य के पालन का संदेश देते आए हैं, यह आवश्यक भी है। योग के क्षेत्र में इसी काम-भाव को वश में करके जब योगीजन तेज (शुक्र) को ऊर्ध्वगामी करते हैं तो उनके मुखमंडल पर तेजस्विता दमकने लगती है। अपनी शक्ति का क्षय न करें और सच्चे संत से काम पर विजय पाने की विधि सीखकर उस पर आचरण करें।

काम का अर्थ होता है- और-और की मांग। काम का अर्थ सिर्फ यौन नहीं होता। वह केवल एक शाखा है काम के बड़े

वटवृक्ष की। धन भी काम है और इसलिए जरा गौर से देखना, कंजूस आदमी धन को ऐसे देखता है जैसे कामी स्त्री को देखता हो, सुंदर देह को देखता हो। धन का दीवाना नोटों को ऐसे छूता है, जैसे उसने अपनी प्रेयसी के तन को छुआ हो। पद भी काम है। पद का आकांक्षी उतना ही कामग्रस्त है जितना की कोई और कामी।

मद- विनाश का मूल कारण है मद। मद होता है बल से धन बल, जन बल, ऐश्वर्य बल तथा शारीरिक बल इस प्रकार बल अनेक प्रकार का होने पर भी उसमें मुख्य होता है अहंकार। मैं ऐसा हूँ। मेरे सामने कौन ठहर सकता है? दूसरों का अपमान मनुष्य अहंकार के ही कारण करता है। वही बल यदि आध्यात्मिक हो और सर्वत्र अपने इष्ट को ही समझे, तब वह जीवमात्र का सम्मान करने लगता है, फिर उसके लिये संसार में कोई भी निन्दनीय या उपेक्षणीय नहीं रह जाता। किन्तु पृथक दृष्टिवाले पुरुष जिन्हें अपने से अधिक ऐश्वर्यशाली शूरवीर या पराक्रमी समझते हैं, उन्हें परास्त करने के लिये सतत प्रयत्न करते रहते हैं। वे चाहते हैं हम ही सबसे श्रेष्ठ रहें, हमारी बराबरी का दूसरा कोई भी न रहे। सभी हमारा सम्मान करें।

एक बरगद पर लौकी की एक बेल चढ़ी, मौसम था अनुकूल पल्लवित हुई बढ़ी।।
समय गया कुछ बीत, एक दिन सिर चढ़ बोली, उमर तेरी कितनी है, कितनी देखी होली।।
बरगद बोला धीरे से सौ साल हो गया, गर्मी आई लौकी का, अस्तित्व खो गया।
अहंकार की ये भाषा, जब-जब आयेगी, इसी तरह सर्वस्व नाश, वह करवायेगी।।

मान मद के रूप में प्रखर होता है अर्थात एक नशा-सा चढ़ जाता है जिसमें व्यक्ति आपा खो बैठता है और इस स्थिति में व्यक्ति को स्वयं का कहा हुआ, स्वयं का जीवन ही सत्य प्रतीत होता है, शेष सब असत्य।

धरती पर जन्म लेने के साथ ही सीखने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। ज्यों हम बड़े होते जाते हैं, सीखने की प्रक्रिया भी विस्तार लेती जाती है, जल्द ही हम उठना, बैठना, बोलना, चलना सीख लेते हैं। इस बड़े होने की प्रक्रिया के साथ ही कभी कभी हमारा अहंकार हमसे अधिक बड़ा हो जाता है और तब हम सीखना छोड़कर गलतियां करने लगते हैं। यह अहंकार हमारे विकास मार्ग को अवरुद्ध कर देता है।

अभिमान- अभिमान नि:सीम आत्म-तत्त्व को, मैं को, अहम् को चारों ओर से घेर कर देश, काल की सीमा में परिमित कर देता है, घर परिवार तक घेर कर रख देता है, यही उसका हिंसक होना है, हिंसा करना है। चारों ओर जो घेर कर रख दे, उसे, अभि=चारों ओर से मान=घेर कर रख देनेवाला, अभिमान कहते हैं। यह अभिमान महान हिंसक होता है।

धन, ऐश्वर्य, यौवन और प्रभुत्व पाकर भी जिसकी इन्द्रियाँ अपने अधीन बनी रहें, उसे भगवान का परम कृपापात्र समझना चाहिये। संसार में ऐसे व्यक्ति, बिरलै ही देखने में मिलते हैं। अधिकार और ऐश्वर्य का मद ऐसा होता है कि मनुष्य के सम्पूर्ण विवेक को नष्ट कर देता है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक रह ही नहीं जाता। अधिकारारूढ़ हो जाने पर मनुष्य समझने लगता है- मेरा हाथ पकड़ने वाला कौन है? मेरे जो मन में आवेगा वही मैं करूँगा। मैं प्रभु हूँ, स्वामी हूँ, सब सेवक हैं, सबको मेरी इच्छा के अनुसार बर्ताव करना चाहिये। मेरी हाँ-में-हाँ मिलानी चाहिये। मेरी आज्ञा का अविलम्ब पालन होना चाहिये। मैं जो करता हूँ ठीक करता हूँ। मुझसे भूल हो ही नहीं सकती। मेरा तिरस्कार करनेवाला मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला मेरा शत्रु है। उसका अस्तित्व मिटा दो। जिसे रहना हो मेरी इच्छा के अनुसार रहे। ये सब विचार, अविवेक से काम तथा अहंकार के कारण उठते हैं और इन्हीं विचारों से मनुष्य का पतन होता है। अभिमान होता है अज्ञान

से। जहाँ अभिमान हुआ कि कलह का सूत्रपात हो जाता है।

अभिमान के अनेक कारण हैं। जिसे जो वस्तु भाग्यवश मिल गयी, उसे वह प्रभु प्रसाद न समझकर अज्ञानवश उसे अपनी समझता है और उसके लिये अभिमान करता है कि मेरे पास यह अद्भुत वस्तु है। किसी का जन्म श्रेष्ठ कुल में हो गया है तो वह उसी से फूला नहीं समाता। हम अमुक वंश के हैं। हमारे पूर्वज ऐसे थे, वैसे थे, उसी मिथ्याभिमान में भरकर वह अन्य लोगों का तिरस्कार करता है। कोई अपने वर्ण और आश्रम के अनुरूप कर्म करता है, तो उसी अभिमान में चकनाचूर हो जाता है। सबसे कहता फिरता है- हम इतना जप करते हैं, ऐसे सदाचार से रहते हैं। अमुक तो बड़ा भ्रष्ट है। वह पण्डित हुआ तो इससे क्या मेरे समान कर्म तो नहीं करता। कोई युवक है, वह यौवन के मद में वृद्धों का तिरस्कार करता है। उनके पोपले मुख का अनुकरण करके खिल्ली उड़ाता है, कभी इस वृद्ध की भी तुम्हारी भाँति युवावस्था रही होगी। कोई अपने सौन्दर्य पर ही लट्टू है, कुरूपों से घृणा करता है। जो सुन्दर नहीं है उनकी निन्दा करता है। कोई अपनी विद्या के अभिमान में ही चूर हैं, अन्य लोगों को तृण के समान समझता है। कोई ऐश्वर्य पाकर ही मदान्ध बना हुआ है। सामने के पुरुषों को देखते हुए भी नहीं देखता। धनी अपने सम्मुख निर्धनों को तुच्छ समझता है, इसीलिये वह अपने से छोटों का अपमान करता है। यदि उत्तम कुल में जन्म, अच्छे-अच्छे सत्कर्मों का आचरण, सुन्दर रोग रहित युवावस्था, भव्य आकृति, सफल विद्या, अपार ऐश्वर्य और यथेष्ट धन, इनके सबके होने पर भी जिसे अभिमान न हो, उसके ऊपर भगवान का सबसे अधिक अनुग्रह है।

मोह- इस जग में यह मोह जाल न होता तो जीवों का कभी पुनरागमन पुनर्जन्म न होता। मोहवश ही प्राणियों को पुन: पुन: जन्म धारण करना पड़ता है। मोहवश ही जीव को ८४ के चक्कर में विवश होकर घूमना पड़ता है। मोह एक ऐसा मीठा दुख सुख से बटा हुआ बन्धन है कि उसे तोड़ते भी नहीं बनता और स्वेच्छा से बाँधा भी नहीं जाता। हमें कोई विवश करता है, कि इस बन्धन में बँधो। हम मन्त्रमुग्ध की भाँति बिना परिणाम का विचार किये उसमें बँध जाते हैं और पीछे पछताते हैं। इसका नाम माया है और मोह के क्षय का ही नाम मोक्ष है। यह बन्धन और मोक्ष का सार सिद्धान्त है।

संसार में प्रेम कहाँ हैं सर्वत्र स्वार्थ भरा पड़ा है। जब तक पति के पास पैसा है यौवन है, तब तक प्यारा है, जहाँ पैसा समाप्त हुआ युवावस्था बीती कौन किसका पति कौन पत्नी, पिता जब तक पालता पोसता है तब तक प्यारा है। जहाँ उसने डाटडपट की काम करने को कहा, वह शत्रुसा दिखाई देता है। युवा पुत्र वृद्ध पिता का परित्याग करके घर से निकल जाता है। किसी की मृत्यु पर जो हम रोते हैं तो उसके प्रेम के लिये नहीं रोते, अपने स्वार्थ में व्याघात होने से रुदन करते हैं। अब मुझे कौन कमाकर खिलावेगा, अब मेरी कौन रक्षा करेगा। जिस पिता ने रक्त पानी बहाकर नाना प्रकार के दुख उठाकर पुत्र को पाला है, वह वृद्ध पिता को किसी असाध्य रोग में ग्रस्त देखकर उसकी मृत्यु चाहता है। अनाथालय में प्रविष्ट करा आता है और कभी-कभी तो मरवाने तक का प्रयत्न चाहता है। फिर भी मोहवश पिता पुत्र का ही स्मरण करता है। मरते समय तक उसी के सुख की सोचता है, अपना सर्वस्व धन उसी को अर्पण करता है। मोह की महिमा है। धन मान तथा स्त्री के लिये यह जीव परस्पर में लड़ता रहता है। दूसरों से द्वेष करता है अपने परलोक को नष्ट करता है।

जिन भौतिक पदार्थों में अपनापन है, उसमें जो एक प्रकार की आसक्ति होकती है उसे मोह कहते हैं। मोह में और प्रेम में देखने में कोई विशेष अन्तर नहीं। अन्तर इतना ही है कि मोह सांसारिक नाशवान् वस्तुओं के साथ होता है, वही यदि अविनाशी

परात्पर प्रभु के साथ किया जाय तो प्रेम कहलाता है। विषयों के मोहवाले अन्त:करण में विश्वेश्वर नहीं विराजते।

आदमी को तीन मद छोडने चाहिये। धन मद, सत्ता मद और विद्यामद ये तीनो ही गर्त में लेजाने वाले होते है। धनमद:- आदमी को बेअक्ल बनाता है। पैसों के बल पर चाहे जो करने की वह सोचता है इससे प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या का जन्म होता है। पैसा होकर भी उसका उपयोग कैसे करे, यह पता न हो तो धनमद आदमी के लिये घातक साबित होता है। दूसरा मद सत्ता का होता है वह आदमी को अन्धा बनाता है। सत्ता के बल पर मनमर्जी करने की कोशिश की जाती है। इससे युद्ध संघर्षो का जन्म होता है और सत्ता के लालच में आदमी कभी न कभी पराजित होकर दु:खी होता है। तीसरा विद्यामद अधिक रूप में ही घातक है, क्योकि धनमद या सत्तामद सम्पति अथवा सत्ता के होने तक टिकता है लेकिन विद्यामद आदमी को अन्त तक नही छोडता। ऐसे मनुष्य ज्ञान के अहंकार मे बह जाता है। यह अहंकार उसे डुबाये बिना नही रहता, इसलिये जो इन तीनों मदों से दूर रहता है वही सच्चा सम्य जाना जाता है।

सांसारिक वस्तुएँ धन, जन, पद प्रतिष्ठा तथा अन्य ऐश्वर्य प्राप्त होने पर जो एक बड़ेपन का मिथ्याभिमान होता है, उसे मद कहते हैं। मद में आदमी अंधा हो जाता है। गुरुजनों का अपमान तक कर डालता है, न कहने योग्य बातों को कह डालता है, न करने योग्य कार्यों को करता है। धनमद, विद्यामद, ऐश्वर्यमद, रूपमद, वयमद, जातिमद तथा मदिरा आदि का मद इस प्रकार मद के अनेकों भेद हैं। ये सभी मद मनुष्य को संसार गर्त में गिरानेवाले हैं। अत: मदनमोहन को मन में बिठाने की इच्छावालों को मद का दूर से ही त्याग कर देना चाहिये। संसार में धनमद, ऐश्वर्यमद, जातिमद, रूपमद, यौवन मद और अधिकारमद आदि बहुत-से मद हैं, इनमें धन ऐश्वर्यमद सबसे बढ़ा-चढ़ा है। ऐश्वर्य के मद में आदमी किसी को कुछ समझता ही नहीं। सभी का अपमान करता है, अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता है। ये सब मद जब अत्यधिक हो जाते हैं, रोगरूप होकर समाज को पीड़ा देने लगते हैं, तो इनकी औषधि यही है कि मनुष्य को इनसे हीन कर दिया जाय। जो ऐश्वर्य मद में मत्त होकर श्री मदान्ध हो जाते हैं, उनकी अन्धी आँखों के लिये दरिद्रता रूप अंजन ही परमौषधि है। जब तक मनुष्य स्वयं दारिद्र्य दु:ख का अनुभव नहीं करता, तब तक वह दीन दुखियों की असुविधाओं को अनुभव करने में किसी प्रकार भी समर्थ नहीं होता। जब पुरुषार्थ से गई हुई लक्ष्मी को पुन: प्राप्त करता है, तब उसे उसका महत्व मालूम पड़ता है।

सुरा के मद में जब आदमी मत्त हो जाता है, तो फिर उसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। कौन-सी बात करनी चाहिये कौन-सी न करनी चाहिये इसका विवेक नहीं रहता। इस गुड़, जौ, महुए, अंगूर तथा अन्य वस्तुओं की बनाई मदिरा का मद तो एक दो दिन में उतर जाता है किन्तु काम का मद, मोह का मद तथा ऐश्वर्यादि का मद बहुत दिनों में जब भगवान ही कृपा करें तब उतरता है। धन के कारण यदि अत्यधिक मद हो जाय, तो उसकी एकमात्र औषधि है दरिद्रता। इसी प्रकार ऐश्वर्य का मद हो जाय, तो वह ऐश्वर्य नाश से ही शान्त होता है। हम लोगों का धन नष्ट हो जाता है, ऐश्वर्य कम हो जाता है, तो हम समझते हैं, हम पर बड़ी विपत्ति आ गयी, वास्तव में यह विपत्ति नहीं भगवान की बड़ी कृपा है। धन रहता तो न जाने और कितन अनर्थ बनते, दुष्ट लोगों का साथ होता। धन नष्ट करके भगवान ने हमारे हृदय में दीनता का संचार किया। धनहीन कैसे जीवन बिताते हैं। मद चूर होने पर जो ऐश्वर्य मिलता है, उसका प्रभु-प्रसाद समझकर उपयोग करें तो उसमें कभी मोह नहीं होता।

मोह तथा कर्त्तव्य का निर्वाह साथ-साथ नहीं हो सकता। मोह को तोड़ना होगा- कठोर हुए बिना कभी कोई कर्त्तव्य पर पूरा नहीं उतरा। असत-पुरुष विद्या, दान वैभव और कुल पाकर अभिमान से उन्मत्त हो जाते हैं, किंतु समता का साधक व्यक्ति उक्त मर्दों से सर्वथा अलिप्त रहता है। जब मनुष्य थोड़ा जानता है तब सर्वज्ञ होने का अभिमान करता है, किंतु जब वह उच्च कोटि के विद्वानों के पास कुछ और सीखता है तब शास्त्रज्ञान की समुद्र-गंभीरता और अपनी अंग की लघुता देखकर गर्व-रहित हो जाता है। अभिमान एवं आग्रह की लकड़ी निकाल देने पर मृदुता की विभूति प्राप्त होती है। क्रोध को बढ़ाने में शत्रु निमित्त होते हैं, परंतु जीवन में अभिमान एवं आग्रह की वृद्धि में स्वजन और प्रियजन निमित्त होते हैं।

सही अनुपात में हो तो मोह भी बुरा नहीं, यह जीवन को सुंदर बनाता है। भगवद्गीता के प्रथम श्लोक में धृतराष्ट्र संजय से प्रश्न कर रहे हैं, हे संजय। धर्मक्षेत्र रूपी कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से एकत्र हुए मेरे और पांडु पुत्रों ने क्या किया? संपूर्ण भगवद्गीता में धृतराष्ट्र ने यही एक श्लोक कहा है और उसमें भी अपने पुत्रों के विषय में जानने की जिज्ञासा है। यह जो मेरा का भाव है यही मोह है। विशुद्ध रूप में मोह प्रेम है, जिस कारण जीवन सरस होता है।

अपने स्वजनों को समस्त सुख-सुविधाएं मुहैया कराने के उद्देश्य से ही कर्म किया जाता है। बिना मोह के जीवन प्रयोजनविहीन हो जाएगा, मन शुष्क हो जाएगा और भावों में अकाल पड़ जाएगा। मोह को माया भी कहा गया है और यह संसार माया के आवरण में ही ढंका हुआ है। मनुष्य, पशु, पक्षी और देवता कोई भी मोह से मुक्त नहीं है। चिड़िया अपने नवजात बच्चों के लिए दाना चुगकर लाती है। बारिश में खुद भीगती है, पर उन पर अपने पंखों की छाया कर देती है। श्रीराम ने भी जब लंका पार कर दुष्टों का अंत किया तब उनमें सीता के प्रति मोह की भावना थी। फिर क्यों मोह तिरस्कृत है? क्यों अध्यात्म की यात्रा पर निकले पथिक को बार-बार मोह त्यागने का उपदेश दिया जाता है?

सही अनुपात में मोह प्रेरणा देता है। आपको कुछ बड़ा करने का साहस देता है। जीवन में जब मुश्किल क्षण आते हैं उस समय आपको अपने से अधिक अपने प्रियजनों की चिंता होती है और उनकी सुरक्षा के लिए आप कोई भी प्रयास करने से नहीं चूकते हैं। धृतराष्ट्र का मोह विकारग्रस्त है, ऐसा मोह विवेकशून्य हो जाता है। ऐसी दशा में आपके प्राण मोह के विषय-वस्तु में अटक जाते हैं और आप धर्म और नीति के विरुद्ध भी उनकी रक्षा के लिए चले जाते हैं।

भावनाओं के झंझावात में सही-गलत देख नहीं पाते हैं और हमें लगता है कि जो मेरा है वह हमेशा सही है, जैसा धृतराष्ट्र ने समझा। व्यापक रूप में मोह आपको समाज के लिए उपयोगी बनाता है क्योंकि आप मैं, मेरा से ऊपर उठकर समाज के लिए कार्य करते हैं।

मोह ही तो शुद्ध होकर प्रेम हो जाता है। प्रेम ही की तो आखिरी ऊंचाई प्रार्थना है। और प्रार्थना का ही आखिरी पड़ाव तो परमात्मा है। लेकिन ज्ञान तो अपने रास्ते पर जा चुका था, अकड़ा हुआ, अपनी धूल, सम्हाले हुए, खोपड़ी भरी और मजबूत और भारी और हृदय बिलकुल सूखा और रिक्त।

मोह और दु:ख- अनन्त संसार में मूढ़ बहुश: लुप्त (नष्ट) होते हैं। मूढ़ का अर्थ है- मोहग्रस्त। जिनके मन में मोह भरा होता है, वे व्यक्ति इस अनंत संसार में अनेक प्रकार से दु:खी होते हैं। जिस वस्तु पर मोह पैदा हो जाता है, वह यदि न मिले तो उसे पाने के लिए निरंतर प्रयास किया जाता है। उसमें औचित्य का या नीतिधर्म का भी ध्यान नहीं रखा जाता। इस प्रकार व्यक्ति धर्मभ्रष्ट तो होता ही है, साथ ही जब तक अभिष्ट वस्तु प्राप्त नहीं हो जाती तब तक अशांत भी रहता है। अभिष्ट

वस्तु प्राप्त होने पर भी मन को पूरी शांति नहीं मिल पाती, क्योंकि तब उसे संभालने की, नष्ट न होने देने की- चोरों से उसकी रक्षा करने की चिंता सिर पर सवार हो जाती है। कुछ लोग उसे मांगने आते हैं। सो यदि उन्हें वह वस्तु दे दी जाय तो बिगड़ने की शंका रहेगी और न दी जाय, देने से इन्कार कर दिया जाय तो मित्रों के शत्रु बन जाने का डर रहता है। इसलिए मोह छोड़े बिना इस संसार में दु:ख नहीं छूट सकता। मोह एक ऐसा शत्रु है जो आत्मा को अपने अनंत सुख का भान नहीं होने देता है। जहाँ ममत्व है वहाँ परिग्रह है और जहाँ ममत्व का अभाव है वहाँ अपरिग्रह का प्रभाव है। आक्रोश के आवेग में आत्मा उचित एवं अनुचित का भान भूल जाता है। क्रोधी व्यक्ति अन्य का ही नहीं स्वयं अपना ही अनिष्ट करता है। जहाँ निष्कपटता नहीं है वहाँ मैत्री नहीं है।

ममता- ममता ही बन्धन का कारण है। मोह ही संसार है। यदि इस पृथ्वी पर माता-पिता, भाई-बन्धु से मोह न हो तब तो संसार का अत्यन्ताभाव ही है। मोह के क्षय का नाम ही मोक्ष है। किन्तु मोह का क्षय होना अत्यन्त ही कठिन है। मनुष्य ही नहीं देवता भी मोह के वशीभूत होकर ऐसे-ऐसे घृणित, निन्दित और लज्जास्पद कार्य करते है कि जिन्हें स्मरण करके भगवान की मोहमयी माया की प्रबलता का अनुमान होता है।

गृह का अर्थ है, जो बाँध ले फँसा ले। गृहस्थी घर बनाकर ऐसा फँस जाता है कि फिर उसका निकलना कठिन होता है। एक-एक ईंट में उसका अनुराग हो जाता है। घर के छप्पर में जितनी गाँठें होती हैं, उतनी गाँठें उसके हृदय में लग जाती हैं। इस सजीव देह रूपी घर में जितना ममत्व होता है, उतना ही निर्जीव कंकड़ पत्थर के बने घर में हो जाता है। जिस वस्तु को नित्य अनुराग के साथ, अपनेपन के साथ देखेंगे उसमें मोह हो जायगा और अवश्य हो जायगा। हृदय पर संस्कार शनै: शनै: पड़ता है और वह अमिट हो जाता है। जिसमें जितनी ही अधिक ममता होगी, उसके वियोग में उतना ही अधिक कष्ट होगा। वस्तुयें दु:ख का कारण नहीं है, दु:ख का कारण तो है ममता। निरन्तर सङ्ग करने से निरन्तर उसकी सुविधाओं को स्वीकार करने से ममता हो ही जाती है। इसलिये त्यागपथ के पथिक को न तो कभी अधिक दिनों तक एक स्थान में रहना चाहिये न किसी से ममता ही करनी चाहिये।

क्रोध को शांति से, मान को नम्रता से, माया को सरलता से तथा लोभ को संतोष से जीतने का मार्ग है। जब तक मनुष्य के मन में काम, क्रोध, अहंकार तथा लोभ की अल्प मात्रा भी शेष रहती है, तब तक पंडित और मूर्ख दोनों एक समान होते है। कामना और अहंकार के त्याग से मुक्ति की मंजिल मिलती है

क्रोध, गुस्सा, तैश, चिड़चिड़ापन, बौखलाहट - हमारा महान शत्रु है क्रोध।

क्रोध आवेश जन्य स्थिति है, तात्कालिक और क्षणिक प्रमाद है। यह एक विचार मात्र नहीं, भावों का आवेग है जिसके आने से शांति भंग हो जाती है, श्वासें तीव्र हो जाती हैं और हृदय विक्षुब्ध हो जाता है। इसका संपूर्ण शरीर संस्थान और मन संस्थान पर प्रभाव पड़ता है। क्रोधी व्यक्ति अशांति और आवेश से घिरा रहता है। उसके घर में कलह छिड़ा रहता है एवं घृणा का पात्र बनता है। व्यक्ति अपने जीवन में कई व्यक्तियों के नित्य संपर्क में आता है और विभिन्न परिस्थितियों का सामना करता है। जन व्यवहार या परिस्थितियों अनुकूल होती हैं तो वह सुखी और प्रसन्न होता है लेकिन जब व्यवहार और परिस्थितियां प्रतिकूल होती हैं या उसकी कामना पूर्ति नहीं होती तो उसके मन में क्षोभ पैदा होता है और वह प्रतिकूल व्यवहार करनेवाले पर, प्रतिकूल परिस्थितियां पैदा करनेवाले पर और कामना पूर्ति में बाधक या अवरोधक बनने वाले पर

उत्तेजित होकर उन्हें हानि पहुंचाने या नष्ट-भ्रष्ट करने पर आमादा हो जाता है। यह आवेग कई बार इतना तीव्र होता है कि व्यक्ति अपनी समझ-बूझ और विवेक को ताक में रखकर हत्या, मारपीट या खून-खराबा कर बैठता है। इस प्रकार की आवशेपूर्ण स्थिति को बाधक या अवरोधक होने पर आनेवाला क्रोध भी कह सकते हैं।

अकारण क्रोध- व्यक्ति की क्रुद्ध मन:स्थिति पर जब कोई उसके संपर्क में आता है तो वह उन पर अकारण उत्तेजित होकर क्रोध करता है, जैसे पति-पत्नी आपस में झगड़ा कर रहे हों और उसी बीच बच्चा आ जाता है तो वे जरा सी बात पर बच्चे पर उत्तेजित होकर क्रोधित हो जाते हैं। दफ्तर का बाबू जब अपने अधिकारी से डांट खाकर आता है और पत्नी पर जरा सी बात पर उत्तेजित होकर क्रोधित होता है। इस प्रकार की आवेगपूर्ण स्थिति को अकारण क्रोध भी कह सकते हैं।

स्थायी क्रोध - मस्तिष्कीय संरचना ऐसी है कि जब कोई आवेग बार-बार उदय होता है तो उसके संस्कार गहरे पड़ते हैं। फिर वह आवेग जब बार-बार उदय होता है तो लंबे अभ्यास के कारण व्यसन बन जाता है। ऐसा व्यक्ति बार-बार क्रोधित होता रहता है। इस आवेग पूर्ण स्थिति को स्थायी क्रोध कह सकते हैं।

गुस्से की शुरुआत मूर्खता से होती है और खात्मा शर्मिंदगी से। गुस्सा इन्सानी अक्ल को अपाहिज बना देता है। इंसानी जज्बात में सबसे खतरनाक जज्बात गुस्सा है। जज्बात का मुनासिब इजहार ही इंसानी खूबियों को बरकरार रखता है।जब तुम्हें गुस्सा आये तो जमीन पर बैठ जाओ। अगर गुस्सा ज्यादा है तो लेट जाओ, गुस्सा काबू में हो जायेगा।

गुस्से के मामले में ये बात अच्छी तरह समझ लें कि गुस्सा अपने आप न अच्छा है न बुरा। असल में गुस्से की अच्छाई-बुराई का आधार मौका व समय की अच्छाई-बुराई पर है और अगर बे मौका गुस्सा किया और उसके प्रभाव बुरे जाहिर हुए तो वो गुस्सा बुरा है और यदि ठीक गुस्सा किया और उसके असरात अच्छे आए तो ये गुस्सा अच्छा है। किसी को यदि गुस्सा ही न आये, तो ऐसे लोग पागल भले न हों मगर इंसानी स्वभाववाले नहीं हो सकते। इंसान के स्वभाव में गुस्सा और प्यार दोनों है। मगर गुस्सा कहां करना और कहां न करना और गुस्सा कितना करना, इसकी समझ जरूरी है।

किसी भूखे-प्यासे दूध पीते बच्चे के रोने पर आपको गुस्सा आ गया और आपने बच्चे को मार दिया, तो ये आपका गुस्सा बिल्कुल गलत है और यदि किसी डाकू को डाका डालते देखकर आपको गुस्सा आ गया और तुमने बंदूक चलाकर उस डाकू को खत्म कर दिया तो ये गुस्सा स्वाभाविक है।

जिस गुस्से की निंदा व बुराई बयान की गई है वही गुस्सा है, जो बेमौका है और जिसके प्रभाव बुरे हो। बिल्कुल साफ सी बात है गुस्से में रहम की जगह बेरहमी और न्याय की जगह जुल्म, शुक्र की जगह नाशुक्री, ईमान की जगह कुफ्र हो तो भला कौन कह सकता है कि ये गुस्सा अच्छा है निश्चय ही ये गुस्सा बुरा है और ये बहुत ही बुरी आदत है। इससे बचना हर अच्छे इन्सान के लिये जरूरी है।आज युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, व्यवसायी और नौकरी पेशा, गरीब-अमीर हर वर्ग और हर स्तर का व्यक्ति क्रोध से ग्रसित रहता है। कोई व्यक्ति छोटे फलवाले से उधार फल मांगता है और वह पहले के पैसे बाकी होने के कारण देने से इंकार कर देता है तो वह उसकी इतनी पिटाई करता है कि वह मर जाता है। उसे इसके कारण आजीवन कारावास या फांसी की सजा भुगतनी पड़ती है। रोने और पछताने के अतिरिक्त उसके पास कुछ नहीं रहता है।

आज गुस्सा एक मानसिक रोग का रूप ले चुका है। हम शहरों में सड़कों पर आए दिन लोगों को छोटी-छोटी बात पर लड़ते देखते हैं। इसके पीछे भी क्रोध ही काम कर रहा होता है। गीता में कहा गया है कि जब हमारी नियंत्रण की इच्छा

योजना और उम्मीद टूट जाती है तब गुस्सा कठोर शब्दों और हिंसक कृत्यों में व्यक्त होता है। इसलिए यह नरक का द्वार है। आज संसार में आतंक फैलानेवाली के ऊपर यही बात लागू होती है। ये लोग पारिवारिक तौर पर असंतुष्ट, घरेलू हिंसा में लिप्त, गुस्से से भरे और एकाकी व्यक्ति होते हैं। वे न सिर्फ दूसरों के बल्कि अपने जीवन में भी दुख फैला रहे है।

गुस्से से भरे इंसान का विवेक नष्ट हो जाता है इसलिए वह अपने गलत काम को भी सही ठहराता है। क्रोध से बचने का उपाय तो सिर्फ उसे बताया जा सकता है तो उससे बचना चाहता हो, पर जिसे यह अहसास ही न हो कि यह गलत है, उसके आगे सब हार जाते हैं।

कहते हैं, गुस्से में फौरन कुछ न कहो, थोड़ी देर चुप रहने से उफान कम हो जाता है। गुस्से की आग को प्रेमपूर्ण शब्दों के छींटों से शांत करने के बाद शायद बात उतनी गलत न लगे। भगवान का नाम निरंतर लेना भी मदद करता है, पर जो ईश्वर का नाम लेकर हिंसा करते हैं उनके लिए नए उपाय सोचने पड़ेंगे ताकि यह संसार बेहतर जगह बन सके। जो भी हो, मानवता का अंत नहीं हो सकता क्योंकि रिश्तों के पुल बनानेवाले लोग हर समय मौजूद रहते हैं।

एक बार मदर टेरेसा से किसी ने पूछा, क्या कभी आपको अपने चारों ओर फैले सामाजिक अन्याय के अनेक उदाहरणों को देखकर क्रोध नहीं आता? मदर टेरेसा ने उत्तर दिया, मैं अपनी शक्ति को क्रोध में क्यों खर्च करूं जबकि मैं इसे प्रेम में लगा सकती हूं?

मदर टेरेसा की यह प्रतिक्रिया एक स्वस्थ नजरिया पेश करती है। इसे हम भी जीवन में अपना सकते हैं। अक्सर हम अनेक हालात ऐसे पाते हैं जिनसे क्रोध भड़क सकता है। कभी-कभी तब गुस्सा आता है जब कोई हमें चोट पहुंचाता है या नाराज करता है। ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें दूसरों को चोट पहुंचते हुए देखकर भी हमें गुस्सा आ जाता है। ऐसा सामाजिक अन्याय के मामलों में भी हो सकता है। हमें लग सकता है कि कुछ गलत हो रहा है। हो सकता है कि जो कुछ घट रहा है, उसे हम अनदेखा न कर पाएं। फर्क इस बात में है कि हम अन्याय के प्रति कैसी प्रतिक्रिया करते हैं? हम फैसला करने की क्षमता रखते हैं। हम क्रोध से प्रतिक्रिया कर सकते हैं या अपने क्रोध को काबू कर उसे प्रेम में बदल सकते हैं। मदर टेरेसा ने क्रोध को प्रेम से काबू करने का फैसला किया था।

संसार में क्रोध और हिंसा हर जगह है। हर गांव और शहर में, हर घर में हम क्रोध का विस्फोट होते देखते हैं। इस क्रोध के बदले और क्रोध करने से आग में घी डालने का ही काम होता है। हम आग पर पंखा करके आग को नहीं बुझा सकते। हमें आग को पानी से बुझाना होगा। ऐसे ही हम क्रोध की आग को, आग से शांत नहीं कर सकते। क्रोध की आग को प्रेम से ही शांत कर सकते हैं। किसी झगड़े के दौरान, क्रोध भरी आवाज में बोलने के बजाय हमें मिठास का मरहम लगाना चाहिए ताकि दूसरों का गुस्सा ठंडा पड़ जाए। हम प्रेमभरे विचारों को प्रसारित करें ताकि वातावरण सहज हो जाए।

क्रोध से जवाबी कार्रवाई करने में बहुत ऊर्जा खर्च होती है। ऐसी प्रतिक्रिया हमें कमजोर, शक्तिहीन कर देती है, पर अगर हम अपनी ऊर्जा प्रेममयी प्रतिक्रिया में लगाएंगे तो उससे न सिर्फ परिस्थिति में लगाएंगे तो उससे न सिर्फ परिस्थिति में सहजता ले आएंगे बल्कि स्वयं भी उस प्रेम से ऊर्जा पाएंगे। जब हम प्रेम से व्यवहार करते हैं तो दरवाजे को खोलते हैं ताकि प्रभु-प्रेम हममें से प्रवाहित हो। हम प्रभु प्रेम से ही ऊर्जा और उभार पाते हैं। अगली बार जब अपने आपको ऐसे माहौल में पाएं जहां अन्याय हो रहा हो, तो आप क्रोध की बजाय प्रेम से जवाब देने की कोशिश करें। हम अपनी सकारात्मक प्रतिक्रिया का उस माहौल और अपने आप पर हुए असर को देख सकते हैं। आज संसार में हर जगह बहुत क्रोध मौजूद है।

कई बार सामना ऐसे लोगों से होता है जो हमें बुरा-भला कहते हैं। उनके स्तर पर उतरने की जगह हमें उनके उपहारों को स्वीकार नहीं करना चाहिए। तब उनका क्रोध उनके साथ ही रहेगा। जब हम घटना स्थल से हट जाएंगे तो वे अपने आपको, अपने क्रोध के साथ अकेला पाएंगे। वे चकित होंगे कि उनके क्रोध के बावजूद हम प्रेममय बने रहे। वे हमें आदर देने के लिए हमारे पास आ सकते हैं। जैसे दिन गुजरे और हमारा सामना ऐसे लोगों से हो जो हमारे प्रति क्रोध और आलोचना से भरे हों तो हम उनके वचनों को शांति से सुनें।उनके वचनों में क्या कोई सच्चाई है। अगर ऐसा है तो हम उनके वचनों से कुछ सीखें और अपने आपको सुधारें। अगर उनके वचनों में कुछ भी सत्य नहीं हैं, तब हम उनके क्रोध के उपहार को स्वीकार न करें। हम उनके स्तर पर न उतर आएं। हम उनके प्रतिकूल वातावरण में शांति डालें। हमें क्रोध के उपहार को उनके पास छोड़ देना चाहिए और अपने शांत, खुशहाल रास्ते पर चल देना चाहिए।

अक्सर हम कहते हैं कि हम वेद, उपनिषद पढ़ते हैं, मनीषियों और संतों के प्रवचन सुनते हैं, साधुओं की संगत का आनंद उठाते हैं। लेकिन, उन सबका हमारे जीवन पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। इसका एकमात्र कारण यह है कि हमारे जीवन का लेंस इतना संवेदनशील है कि हमारे सामने जो भी दृश्य आते हैं, वह तुरंत उसे ग्रहण कर लेता है। यह ऐसा लेंस है, जो अपने पास एकत्र सभी पुराने चित्रों को मिटा देता है। उसके बाद इसका परिणाम यह होता है कि हमारे मस्तिष्क पर बननेवाला वर्तमान चित्र तो स्थायी हो जाता है, लेकिन उसके पहले के सभी चित्र गौण हो जाते हैं। जैसे स्मृतियों का लोप हो गया हो। यही कारण है कि संत-महात्माओं और साधु-संन्यासियों के मीठे और आध्यात्मिक विचारों से भरे प्रवचनों का प्रभाव हमारे जीवन पर स्थिर नहीं हो पाता है। जब हम ग्रंथों को पढ़ते हैं और प्रवचन सुनते हैं, तो उस क्षण तो हम उन सभी बातों को अपने जीवन में उतार लेते हैं, लेकिन जैसे ही उस जगह से हटते हैं, इस संसार के विकार, इसकी दुष्प्रवृत्तियां, सांसारिक मोह, ममता और अहंकार-आदि ये सभी चीजें फिर से हमारे चारों ओर खड़ी हो जाती हैं। हम अनेक संतों-महात्माओं के प्रवचन सुनते हैं, मगर इन विकारों से मुक्त नहीं हो पाते।

आपने अपना नाश्ता किया, यदि नहीं, तो आपको गुस्सा आना या चिड़चिड़ा होना, एक सामान्य बात है। जब आप भूखे होते हैं तो मूड बिगड़ जाता है। वास्तव में यह आपकी गलती नहीं है। आपकी इस तकलीफ के पीछे एक शारीरिक कारण है। जब हम भूखे होते हैं तो हमारे रक्त ग्लूकोज के कारण चिड़चिड़ापन आता है। यह कुछ ऐसा है जैसे कि आपकी मधुमेह ड्रॉप हो जाती है और मूडी व भ्रमित हो जाते हैं। हम जो आहार खाते हैं उसे हमारा शरीर एमीनो एसिड, फैटस और शक्कर में बदलता है यानी ग्लूकोज उनमें से एक है। जब इसकी कमी हो जाती है तो मूड बदल जाता है।

हमारा मस्तिष्क साधारण शक्कर पर निर्भर करता है जैसे ग्लूकोज। अगर इसमें गिरावट आती है तो आप बुनियादी काम भी अच्छे नहीं कर पाते और चरम स्थितियों में आपको चक्कर आना या बोलने में हकलाने की स्थिति पैदा हो जाती है। रक्त ग्लूकोज को रेग्यूलेट करना हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग होता है। जिम में खूब कसरत के बाद, कुछ लोग आराम महसूस कर सकते हैं तो कुछ में गुस्सा ज्यादा आ जाता है।

कम रक्त शर्करा और गुस्से के बीच इतना मजबूत संबंध है कि लोगों की हिंसा पहचानने में सक्षम हुए जिन्हें रक्त शर्करा को रेग्यूलेट करने में समस्या थी। रक्त में कम ग्लूकोज होने पर मस्तिष्क कुछ अंगों को आपको स्तर बढ़ाने के लिए संदेश भेजता है। यह एड्रेनालाइन को बढ़ाता है जो कि मूड को प्रभावित करता है। जब भूख लगे तो खाना खाएं।

त्याग, समर्पण, बलिदान

ग्रहण से ज्यादा सुख त्याग में है। दूसरों के लिए त्याग करना एक सद्‌गुण है, एक आदर्श है। हमारी परंपरा में त्याग की महिमा का खूब बखान किया गया है। लेकिन गौर से देखें तो त्याग अपने आप में कोई निरपेक्ष कार्य नहीं है। त्याग में भी प्राप्ति का भाव छिपा रहता है, उसमें भी कुछ न कुछ ग्रहण अवश्य किया जाता है। कोई आदमी सिद्धि पाने के लिए सांसारिक जीवन का त्याग करता है। यहां सिद्धि पाने का भाव प्रबल है। उस व्यक्ति को सिद्धि पाकर वही प्रसन्नता मिलेगी, जो सांसारिकता में रमे किसी साधारण व्यक्ति को कोई भौतिक वस्तु पाकर मिलती है। यहां सुख की तीव्रता एक है, बस स्वरूप अलग है। कई लोग जनकल्याण के लिए अपने निजी सुखों का त्याग करते हैं। लेकिन उनके भीतर जनकल्याण के माध्यम से कहीं न कहीं यश पाने की आशा रहती है। कुछ लोग पुण्य कमाने के लिए त्याग करते हैं। यानी यहां भी पुण्य पाने की लालसा है। हमारे समाज में प्राय: त्याग का उद्देश्य कुछ पाना ही बन गया है।

त्याग- त्याग ही धर्म है। त्याग का फल ही मुक्ति है। मुक्त होने में ही मानव मन की सार्थकता तथा सफलता है। इस अत्यन्त दुर्लभ मानव जीवन में विषय-भोग, राग, द्वेष, मोह से रहित न होना घोर प्रमाद, भूल व हानि है।

एक गरीब आदमी से हम कहें कि तू धन का त्याग कर दे, एक भिखमंगे से हम कहें कि तू बादशाहत को लात मार दे। भिखमंगे सदा तैयार हैं बादशाहत को लात मारने को, लेकिन बादशाहत कहां हैं जिसको वे लात मार दें धन कहां है जिसे वे छोड़ दें? और जिसके पास धन नहीं है, वह धन को कैसे छोड़ेगा? और जिसके पास बादशाहत नहीं है, वह बादशाहत कैसे छोड़ेगा? हम वही छोड़ सकते हैं जो हमारे पास है।

त्याग संसार बन्धन से छुटकर मोक्ष मार्ग में ले जाता है। माँ का अपने बच्चों के लिए प्रेम रहता है। वह बच्चों के लिए कितना त्याग करती है। इसी प्रकार गुरु-शिष्य, पति-पत्नी जहाँ कहीं भी प्रेम का सम्बन्ध है, वहाँ त्याग है ही। प्रेम हुए बिना वास्तविक त्याग नहीं होता और त्याग के बिना प्रेम नहीं होता। प्रेम प्राप्त करने के लिए त्याग आवश्यक है। बिना त्याग के प्रेम नहीं मिलता।

यदि हम सचमुच चाहें तो भगवान् कृपा करके अपने-आप त्याग करवा देते हैं; पर सच्ची बात यह है कि हम त्याग (जागतिक विषयों के प्रेम का त्याग) करना नहीं चाहते। हम चाहते हैं हमें प्रेम मिल जाय, पर विषय छोड़ना चाहते नहीं विषयों में सुख की भ्रान्ति ही इसका कारण है। प्रेम होने पर त्याग करना नहीं पडता, अपने-आप हो जाता है और उसी में आनन्द की उपलब्धि होती है।

सब त्याग इच्छा कामना, जो जन विचरता नित्य ही। मद और ममताहीन होकर शांति पाता वही।।

आसक्ति और विषयोंका त्याग ही वास्तविक त्याग है।

अमृतत्त्व प्राप्ति का एकमात्र उपाय है त्याग। त्याग के बिना सुख नहीं, शाश्वती शान्ति नहीं, संसार से सर्वदा के लिये मुक्ति नहीं। नि:श्रेयस का मूल कारण है त्याग। जो लोग प्रवृत्ति मार्ग को ग्रहण करते हैं वे फँसने के लिये नहीं करते। ग्रहण करना- विषयों में सदा लिप्त रहना- यह कर्मयोग अथवा वर्णाश्रम-धर्म का अभिप्राय नहीं। वह भी त्याग के लिये है। जैसे युद्ध करते समय किसी अवसर पर शत्रु को फँसाने को पीछे हटते हैं, जहाँ शत्रु फँसा कि एकदम आगे बढ़कर उस पर प्रहार

करते हैं। सिंह, शिकार करते समय तनिक पीछे हटकर तब आक्रमण करता है। वहाँ पीछे हटने से प्रयोजन आक्रमण को भीषण बनाने के लिये है। आगे कूदने के लिये कुछ हटकर बल को बढ़ाना पड़ता है, गति को द्रुत करने का यह उपाय है।

सनातन वैदिक वर्णाश्रम धर्म का लक्ष्य त्याग है। त्याग के बिना शाश्वती शान्ति है न सुख। धन का संग्रह गृहस्थ में भोग के लिये नहीं किया जाता, अपितु त्याग के लिये किया जाता है, धर्म का आचरण काम के लिये नहीं, किन्तु महान् त्याग की तैयारियाँ करने के लिये होता है। जितनी उत्सुकता से, जितने ही प्रसन्नता से संग्रह किया जाय उतनी ही प्रसन्नता से उसका त्याग किया जाय, तब वह संग्रह त्याग के लिये समझा जाता है। तब वह बन्धन मोक्ष का साधन है। यदि विषयासक्त होकर संग्रह किया जाय तो वह संसार में बाँधनेवाला और आवागमन के चक्कर को दृढ़ करनेवाला होता है। किसी चीज को ग्रहण करने से जो सुख मिलता है उससे सौगुना सुख उसके त्याग में मिलता है।

गृहस्थ आश्रम में रहता हुआ मनुष्य भी त्याग के द्वारा परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। परमात्मा को प्राप्त करने के लिए त्याग ही मुख्य साधन है। चोरी, व्याभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती हिंसा प्रमाद शास्त्र विरुद्ध कर्मों को मन वाणी शरीर से किस भी रूप में न करना उत्तम श्रेणी का त्याग माना जाता है। स्त्री पुरुष, धन आदि प्रिय वस्तुओं की प्राप्ति के उद्देश्य एवं रोग संकट दूर करने के लिए किए जाने वाले यश दान तप को अपने स्वार्थ के लिए न करना दूसरी श्रेणी के त्याग में आता है।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं पुत्र, धन जो भी प्राप्त हुए हैं उनके बढ़ने की इच्छा को भगवान प्राप्ति में बाधक मान कर त्याग करना तीसरे श्रेणी का त्याग कहा जाता है। निजी सुख के लिए किसी से धन अथवा सेवा कराने की याचना करना या बिना याचना के दिए हुए पदार्थों, किसी प्रकार के स्वार्थ की इच्छा रखना सुख का त्याग करना चौथी श्रेणी का त्याग है।

ईश्वर-भक्ति, देवताओं का पूजन, माता-पिता गुरु की सेवा, यज्ञ दान तप तथा गृहस्थ जीवन का निर्वाह, खानपान जो भी कर्तव्य कर्म है उन सब में सब प्रकार की कामना का त्याग करना चाहिए। त्याग से पुरुष का आदर बढ़ता है। ग्रहण की अपेक्षा त्याग में अधिक आकर्षण है।

त्याग के बिना कोई भी पूरे हृदय से दूसरों के लिए कार्य नहीं कर सकता। त्यागी पुरुष सबको समदृष्टि से देखता है- तब फिर तुम अपने मन में यह भावना क्यों पोसते हो कि पत्नी-पुत्र दूसरों की अपेक्षा तुम्हारे अधिक अपने हैं ? तुम्हारे दरवाजे पर साक्षात् नारायण एक दीन भिखारी के रूप में भूखों मर रहा है। उसको कुछ न देकर तुम केवल अपनी पत्नी और बच्चों की चटोरी रसना की तृप्ति में ही लगे रहते हो।

आपको सदा त्याग की चट्टान पर ही खड़ा होना पड़ेगा, अपने आपको इस उत्कर्ष दशा में दृढ़तापूर्वक जमा कर, जो काम सामने आए, उसके प्रति अपने आप को पूर्णत: अर्पण करना होगा। तब आप थकेंगे नहीं, फिर कोई भी कर्त्तव्य हो, आप उसे पूरा कर सकेंगे। त्याग का आरंभ सबसे निकट और सबसे प्रिय वस्तुओं से करना चाहिए। जिसका त्याग करना परमावश्यक है, वह है मिथ्या अहंकार अर्थात् मैं यह कर रहा हूं, मैं कर्ता हूं, मैं भोक्ता हूं- यही भाव हममें मिथ्या व्यक्तित्व को उत्पन्न करते हैं- इनको त्याग देना होगा।

अदालत में चाहे न्याय शोभा देता हो , परन्तु घर तो समाधान से ही शोभित होता है। हक की मारामारी चाहे अदालत

में होती हो, घर तो कर्त्तव्य के एहसास से ही गौरव पाता है। अधिकार की बातें परायों के बीच चाहे होती हो, परन्तु अपनों के साथ तो त्याग की बातें ही शोभास्पद बनती है।

जिसने स्वयं को ईश्वर के समर्पित कर दिया, वही चिन्ता मुक्त है और सन्यासी बन सकता है। आस्था, श्रद्धा और विश्वास समर्पण में ही आते है।

आदर्श तो बहुत अच्छा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार में आई संपत्ति से अपना आधिपत्य हटा ले; किंतु जिनके हाथ में संपत्ति है, जिन्हें संपत्ति के अबाध भोग का सुख मिल चुका है, जो उसके कारण सुविधाओं के साथ-साथ सीमारहित सत्ता के स्वामी बन बैठे हैं; वे उसका त्याग नहीं करेंगे। संपत्ति के त्याग के पश्चात् परिश्रम करना पड़ता है- शरीर को कष्ट देना पड़ता है, विलास छोड़ना पड़ता है... संपत्ति का त्याग करने के लिए उदार आत्मा तथा अनासक्त विवेक की आवश्यकता होती हैं। **औरों की खुशी में किया गया त्याग जीवन को सुखमय बना सकता है।**

यह हम सबके सोचने की बात है कि सुख की छड़ी तो सिर्फ हमें मिलेगी और दूसरी छड़ी के शाप से सारा नगर दुख में डूबेगा। हम सुखमय जीवन नहीं जी सकते। हजार आंखों में तकलीफ, दर्द और आंसू हों, वहां एक चेहरे पर क्या मुस्कान आ सकती है? इसके विपरीत यदि आप पूरे नगर के लिए सुख की छड़ी का त्याग कर देते हैं, उस स्थिति में हजारों परिवारों की मुस्कान के बीच क्या एक परिवार की आंखों में आंसू रह सकते हैं? यह तभी संभव है जब हम अपने मन को कड़ा कर त्याग की हिम्मत दिखाएं और तब हम पाएंगे कि सब तरफ खुशियां ही खुशियां हैं।

इसी सच्चाई की गहराई में जाते हुए भगवान महावीर ने त्याग-मूलक जीवन प्रणाली का विधान दिया। उपनिषद के ऋषियों ने कहा, तेन त्यक्तेन भुंजीथा:। यानी त्यागपूर्वक भोग। यह पूरब की देन है, जबकि पश्चिम कहता है भोगपूर्वक त्याग। त्यागमूलक जीवन प्रणाली में भौतिक दृष्टि से कुछ न होते हुए भी आप सम्राट का जीवन जिएंगे। भोगमूलक प्रणाली में भौतिक समृद्धि के बावजूद भिखारी की तरह रहने को विवश होंगे। हम विज्ञान प्रदत्त भौतिक समृद्धि की अंधी दौड़ में अपनी त्यागप्रधान जीवन प्रणाली को न भूलें। अपने एक परिवार की मुस्कान के लिए हजारों आंखों के आंसू को न भूल जाएं। अनुकंपा, करुणा, सेवा, दान ये सब इसी त्याग के अंग हैं।

भीतर का बदलाव बिल्कुल उसी जैसा, जैसे कोई सिक्का मात्र मुहर लगने पर अपनी कीमत पर बिकता है। यह उसका बाहरी रूप है। लेकिन सिक्के की धातु भी उतनी ही कीमत की हो जितनी कीमत मुहर लगने के कारण है, तो मुहर दिखाई ना देने पर भी बाजार मूल्य उसका उतना ही होगा, जितना बाहरी मूल्य है। यही आंतरिक परिवर्तन है। यह होते ही आंतरिक और बाहरी मूल्य समान हो जाते है। अपने भीतर से जिसको हम छोड़ रहे हैं, उससे हमारा संबंध छूटने के साथ उसकी ओर कोई आसक्ति, आशा-तृष्णा हमारे अंदर ना जागे। वस्तुत: यही आंतरिक परिवर्तन है। अगर थोड़ी सी भी आशा-तृष्णा बाकी रह गई तो यह सिर्फ खूंटा बदलने की तरह ही है। बाहर से साधु का लबादा जरूर दिखेगा, लेकिन साधुता का संगीत गायब रहेगा। हाथ में एकतारा जरूर होगा, पर सुर नहीं सजेंगे। हिरन की तरह हम दुनिया के वन में दौड़-धूप करते, भटकते रह जाएंगे, मिलेगा कुछ नहीं।

मानव जीवन में त्याग ही सर्वोपरि है, क्योंकि पतझड हुये बगैर पेडों पर नये पत्ते नहीं लगते। जीवन के हर मोड और हर

समय कभी भी कहीं भी त्याग करने में झिझकना या शर्माना नहीं चाहिये। घर में भी परस्पर एकदूसरे के लिये त्याग किये बगैर जीवन सुखद नहीं बनता। एक मां अपने बच्चे के लिये नींद और चैन दोनों का त्याग करती है तब बालक बडा होता है। त्याग की महिमा का विस्तार बहुत बडा है और शब्द बहुत ही छोटा सा है।

समर्पण बूंद का तवे पर गिरना नहीं, उसका सागर बन जाना है। शयनकक्ष की अलमारी में कुछ पुरानी मोमबत्तियां पड़ी थीं। धूल जम जाने से वह मैली दिखने लगी थी। मन में विचार आया कि क्या इनकी सार्थकता बिना जले, समय के साथ मैली होकर व्यर्थ पड़ी रहना है? तुरंत ही एक मोमबत्ती अपने कमरे में जला दी। ऐसा प्रतीत हुआ कि यह जलती हुई मोमबत्ती अपने को पिघलाकर प्रकाश की अनंत रश्मियां बिखेरते हुए खिलखिला कर हंस रही है। अपने को खोकर वह बहुत खुश नजर आ रही है। उसकी एक किरण मेरी आंखों में लीन होकर कह रही थी- इस समय मैं जीवन का सबसे सुखद क्षण जी रही हूं, क्योंकि मैं दूसरों के लिए समर्पित हो रही हूं। वस्तुत: समर्पण के मूल्य पर जो पाया जाता है, वह प्रकाश ही हुआ करता है। यदि जीवन प्रकाश की जोत बनने को राजी हो तो उसे समर्पित होना पड़ेगा। वे सभी आत्माएं भी प्रकाश पुंज ही हैं जिन्होंने त्याग का मानदंड स्वीकार कर दूसरों को कुछ दिया है। जलती मोमबत्ती केवल प्रकाश का उपकरण ही नहीं है, अपितु मानव मूल्यों की संदेश वाहक है। यह संसार को मिटने का, समर्पित होने का मूल्य समझा रही है। सच है कि बीज माटी को समर्पित होकर ही वृक्ष बनता है। लेकिन समर्पण ऐसा नहीं होना चाहिए, जैसे गर्म तवे पर बूंद गिरते ही मिट जाती है। समर्पण उस बूंद जैसा हो जो सागर में समाती है और सागर बन जाती है। सुख के क्षण वही हैं, जहां समर्पण के मूल्य पर प्रकाश का उत्सर्जन होता है, दूसरों के लिए जीवन का अर्थ देता है।

समर्पण से ही व्यक्ति की निष्ठा परखी जाती है। इसमें खरा उतरने पर ही उसका समर्पण सार्थक होता है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपनी पुस्तक आत्मदानियों से में कहा है कि समर्पण का अर्थ है मन अपना-विचार इष्ट के, हृदय अपना- भावनाएं इष्ट की, आपा अपना-समग्र रूप इष्ट का। इस परिभाषा का अर्थ अपने अहं से पूरी तरह अवकाश पा लेना है। समर्पण में आशाओं, आकांक्षाओं के लिए कोई स्थान नहीं होता। पारमार्थिक साधना के दौरान समर्पित होने के लिए संपूर्ण कामनाएं नष्ट करनी पड़ती हैं। मार्गदर्शक की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाए तो फिर कर्त्तव्य में अवांछनीयता की गुंजाइश रहती ही नहीं।

ऐसे साधक के लिए ही भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है- तू अपना मन और बुद्धि मेरे ईश्वरीय प्रयोजनों की पूर्ति में लगा। इस तरह तू मेरे में ही निवास करेगा। मुझे ही प्राप्त होगा।

इसमें कुछ संशय नहीं। सच्चे समर्पण की यही परिणति है। प्रभु समर्पित व्यक्ति का प्रत्येक चिंतन और कर्तृत्व एक ही दिशा में नियोजित रहने से अत्यधिक प्रखर और गतिशील हो उठता है। यही नहीं, उसके साथ पवित्रता की ऐसी भावना सन्निहित रहती है जो ध्येय को भौतिक प्रवंचनाओं से धराशायी होने से बचाती है।

**** प्रतिभाएं सुविधाओं का इंतजार नहीं करती, ऐसे लोग स्वयं अपना रास्ता बनाने में यकीन रखते हैं और यहीं लोग आगे चलकर एक मिसाल भी बन जाते हैं।***

संतोष-असन्तोष, शान्ति-अशान्ति, तृप्ति, तुष्टि-पुष्टि

शान्ति- कपट करनेवालेके मनमें निरन्तर अशान्ति रहती है। व्यवहारमें छल-कपट बहुत बढ़ गया है। इसलिए मनुष्यकी शान्ति नष्ट हो गयी है। जिसका व्यवहार अतिशय शुद्ध होता है, उसके पास भले ही कोई भी न हो तो भी उसको शान्ति मिलती है। छल-कपट करनेसे थोड़ा लाभ हुआ, ऐसा कदाचित् तुमको लग सकता है परन्तु यह तुम्हारी भूल है। तुम इस प्रकार शान्ति गवाँ बैठोगे। पाप और पारा- इनको कोई पचा सकता नहीं। यह बाहर निकलकर आते ही हैं। पाप सदैव छिपता नहीं। भाईको धोखा दिया, किसीके साथ कपट किया तो यह आज नहीं तो दो-चार सालमें, किसी दिन तो अवश्य जाहिर हो जाएगा। तुम कल्याण चाहते हो, शान्ति चाहते हो तो धर्म पालो, धर्मकी मर्यादामें रहो।

शान्ति प्राप्त करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न करता है, लेकिन दिशा भटकने हेतु प्रतिस्पर्धा करनी पडती है। लेकिन ईर्ष्या की प्रवृति के घातक इरादे से जब प्रतिस्पर्धा की जाती है, तब अकारण शत्रुता बढ़कर जीवन मे अशांति फैलती है। प्रतिष्ठा :- ख्याति यश प्राप्त करने की इच्छा स्वाभाविक होती है, लेकिन उसके लिये औरों को भी सम्मान देना चाहिये। औरों का अपमान कर सम्मान प्राप्त करना अशांति को आमंत्रित करना है। प्रदर्शन :- अपना ज्ञान, धन या वैभव जग हमारे पुरुषार्थ द्वारा ही देखता है। उसके लिये व्यर्थ प्रदर्शन करना आवश्यक नहीं। कुछ गलत प्रवृतियों के लोगों को आकर्षित कर अपना नुकसान करवा लेते है।

आज समाज में धन की लालसा और धन को हासिल करने के तौर तरीके, वैभव प्रदर्शन, पाखंड और आडम्बर जिस तरह बढ़ रहे है उनसे अनायास ही भय का माहौल निर्मित हो रहा है। उसका तर्क होता है कि मेरे पास जितना अधिक धन होगा, उतना अधिक सुख भी मेरे हिस्से में आयेगा। धन की इस मृग मरीचिका के पीडे पड कर वह सकल साधनों की खान, इस सुन्दर शरीर और अमूल्य जीवन को व्यर्थ में गंवा देता है।

समाज का अस्तित्व परिवार की व्यवस्था से होता है। परिवार व्यवस्था बिगडते ही समाज व्यवस्था भी बिखर जाती है। इसलिये परिवार में शान्ति चाहिये लेकिन उससे पहले वह प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक गृहस्थ के मन में होनी चाहिये। शान्ति का क्रम इस तरह होना चाहिये, परिवार के हर व्यक्ति का मन शान्त हो तो परिवार या घर में शान्ति रहेगी, जिससे पूरे संसार में शान्ति रहेगी। शान्ति केवल बाहरी भौतिक साधनों की प्राप्ति से नही मिलती, उसके लिये आस पास की स्थिति से समन्वय करना पडता है तभी परिवार तथा विश्व में शान्ति होगी।

मानसिक अशान्ति से कई दुष्परिणाम सामने आते है। १) वैमनस्य :- स्वार्थ की पूर्ति में कोई बाधक बन रहा हो तो मन अशान्त बन कर शत्रुता धारण करता है। २) निद्रानाश :- अनेक कारणों से मन विचलित होता है, अशान्ति उपजती है इससे चिन्ता बढ कर नींद नहीं आती है। ३) बेचैनी :- अशान्त व्यक्ति सही तरह से भोजन, निद्रा, विहार काम नहीं कर सकता। उसका चित्त सतत विचलित रहता है। ४) स्वास्थ्य नाश :- अशान्त और बेचैन व्यक्ति को नींद तो आती नही, भोजन में भी ध्यान नहीं रहता, चिडचिडापन बढ़ता है उसका स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है। ५) निर्धनता :- अशान्ति के कारण उपजीविका की और ध्यान नहीं रहता इस कारण निर्धनता आती है। ६) सम्बन्ध बिगडना :- पारिवारिक सम्बन्ध रिश्तेदार, मित्र, स्नेहीजनों से भी सम्बन्ध बिगडते है।

शान्ति और अशान्ति के विषय में आचार्य तुलसी का मत है कि जहां दो होते है वहां दु:ख है। सुख अकेलेपन में है।

शान्ति और अशान्ति ये दोनों तत्व शाश्वत है। कोई भी युग ऐसा नहीं था, जिसमे केवल शान्ति या केवल अशान्ति रही हो। भविष्य में भी किसी ऐसे युग की संभावना नहीं है, जिसमें शान्ति और अशान्ति दोनों में से एक का ही अस्तित्व रहे। अतीत में जितने भी तीर्थकर हुये है, वे सब शान्ति के लिये इस संसार में आये थे। भविष्य में जितने तीर्थकर होंगे, वे सब भी शान्ति की उपेक्षा नहीं कर पायेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार में अशांति की सत्ता सदा रहेगी और शान्ति के प्रयास भी सदा होते रहेंगे। अशान्ति है, वह सबके सामने है। अशान्ति के अस्तित्व को लेकर कोई मतभेद नहीं है। अशान्ति को देखने या स्वीकार करने मात्र से वह दूर नहीं हो सकती। उसे मिटाना भी है तो उसके मूल स्तोत्रों पर ध्यान देने से। अशान्ति के प्रमुख दो कारण है हिंसा और परिग्रह। हिंसा और परिग्रह की मात्रा जितनी बढेगी, अशान्ति उतनी ही अधिक बढेगी। इनकी मात्रा कम होगी तो आशन्ति भी कम होगी। इस संसार मे हिंसा और परिग्रह अथवा उनकी निष्पत्ति अशान्ति का नाम शेष हो जायेगा। मनुष्य के मन पर हिंसा और परिग्रह का अनुशासन नहीं होना चाहिये वह अहिंसा और अपरिग्रह से अनुशासित रहे। यदि ऐसा हुआ तो अशान्ति-शांति पर हावी नही हो पायेगी। जहां दो है वहां दु:ख है। शान्ति अकेलेपन में होती है।

शान्ति प्राप्त करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न करता है लेकिन दिशा भटकने के कारण अशान्ति ही मिलती है। मुख्यत: इसके तीन कारण है। १) प्रतिस्पर्धा :- विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये प्रतिस्पर्धा करनी पडती है लेकिन ईर्ष्या की प्रवृति के घातक इरादे से जब प्रतिस्पर्धा की जाती है तब अकारण शत्रुता बढ़कर जीवन में अशान्ति फैलती है। २) प्रतिष्ठा :- ख्याति प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा स्वाभाविक होती है, लेकिन उसके लिये औरों को भी सम्मान देना चाहिये। औरों का अपमान कर सम्मान प्राप्त करना अशान्ति को आमंत्रित करना है। ३) प्रदर्शन :- अपना ज्ञान, धन या वैभव जग हमारे पुरुषार्थ द्वाराही देखता है। उसके लिये व्यर्थ प्रदर्शन करना आवश्यक नही होता। कुछ गलत प्रवृतियों के लोगों को आकर्षित कर अपना नुकसान कर लेते है।

विश्व में शान्ति स्थापित हो यह सभी की इच्छा है। सब को लगता है कि दुनिया सुखयम हो। लोगों का स्वभाव बदले। ऐसे बाहरी बदलावों की इच्छा सबको होती है। मगर जब तक सब लोग अपने अन्दर बदलाव नहीं लायेंगे, तब तक बाहरी जगत का बदलना असम्भव है। अपना कोई शत्रु न हो यह इच्छा हो तो पहले सबका मित्र बनना सीखना चाहिये। पूरा जगत सुखी हो यह इच्छा हो तो पहले अपने स्वार्थ परे रखना चाहिये। सब लोग सिर्फ अपना विचार करते है। अपने देश को ही सुखी करने और देशों पर युद्ध थोपा जाता है। पूरा जगत सुखी करने की कामना सभी ने की तो युद्ध का कारण ही नहीं होगा। अपनी-अपनी देखने की संकुचित मानसिकता का त्याग किये बिना दुनिया में शान्ति या सन्तोष नहीं होगा। उसकी शुरुआत अपने आप से करनी पडती है।

मनुष्य के दु:ख दो तरह के होते है, व्यक्तिगत और सामाजिक। सामाजिक दु:ख अटल होता है और वह सबको भुगतना पडता है, लेकिन व्यक्तिगतदु:ख सबका अपना होता है। कई बार ये दु:ख हम खुद होकर बुला लेते है। अज्ञान, आलस, अकारण अहंकार, अनीति जैसे अवगुण व्यक्ति को दु:खी बनाते है। परिवार के अन्य सदस्यों या अडोस-पडोस के लोगों के मामलों में दखल देना भी पीडा दायी होता है। कभी-कभी झूठी प्रतिष्ठा के कारण क्षमता से ज्यादा काम स्वीकारने पर और वे न हो पाये तो क्रोध घृणा जैसी प्रतिक्रियाओं का सामना करना पडता है। इसी से व्यक्तिगत जीवन अशान्त होता है।

विश्व युद्ध कोई भी नही चाहता, फिर भी सभी देश उसकी तैयारी में लगे है। दार्शनिकों को चिन्ता रहती है कि क्या सचमुच संसार नष्ट होने वाला है ? युद्ध का प्रारम्भ मनुष्यों के हाथों में है, लेकिन उसके परिणाम पर मनुष्य का नियंत्रण नहीं। लोग शान्ति के लिये समझौते करते हैं, पर युद्ध के समय में वे ही कठोर बनते हैं। तब शान्ति वादी लोग ही कहेंगे कि एक बार युद्ध होने दो जो होगा सो होगा ऐसे भीषण माहौल में भी कहीं मानव हृदय की आस्था जिन्दा है। ईश्वरी विधान अगाध है। विश्व युद्ध से ही अहिंसा का युग शुरु होता है, युद्ध ही मनुष्य को शान्ति की सीख देता है।

शान्ति की बातें दुनिया में बहुत होती है। लेकिन शान्ति क्या है ? यह सिवाय सन्त महात्मा और अनुभवी लोगों के कोई नहीं जानता। जब से मनुष्य ने होश सम्भाला है तब से शान्ति पाने के लिये बैचेन है। जिन चीजों से शान्ति पाना चाहते है उनसे आज तक शान्ति नहीं मिली, यह जानते हुये भी उन्ही चीजों के संग्रह में लगे हुये है। अतृप्त कामना और इच्छाओं के वशीभूत लोग अशान्त हैं। यदि सचमच में शान्ति चाहते हो तो मात्र एक ही रास्ता है और वह है अपने अन्त:करण में झांकना। शान्ति हमारे अन्दर है।

एक तरफ शांति प्राप्त करने की कोशिश तो दूसरी तरफ मानसिक अशांति पैदा करने वाली खबरें। इसके पीछे का कारण यदि देखने की थोड़ी सी भी कोशिश की जाए, तो स्पष्ट होगा कि आज लोग केवल दौड़ रहे हैं। प्रतिस्पर्धा के इस युग में हर कोई आगे बढ़ना चाहता है, इसके लिए भले ही उसे किसी के भी कांधे पर पांव रखकर आगे बढ़ने का मौका मिले, वह चूकना नहीं चाहता। फास्ट लाइफ के साथ फास्ट फूड का भी जमाना आ गया है। लोग तेजी से आगे बढ़ना चाहते हैं, यही नहीं तेजी और जल्द से जल्द धन बटोरना भी चाहते हैं। मानसिक बीमारी पैदा होने का मुख्य कारण मानसिक अशांति है।

कई लोग मानसिक अशांति के अभ्यस्त हो जाते हैं, उन्हें यह स्थिति अधिक तकलीफदेह नहीं होती। हर स्थिति में अपने लिए वातावरण बना ही लेते हैं ऐसे लोग। पर हममें से बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं, जो थोड़ी सी भी मानसिक अशांति सहन नहीं कर सकते। वे विचलित हो जाते हैं। ऐसा कैसे हो गया, क्या ऐसा होना था आदि विचार ही इनके लिए परेशानी पैदा करते हैं, कुछ समय बाद यही लोग मानसिक अशांति के शिकार हो जाते हैं। एक व्यक्ति को हमेशा सिरदर्द हुआ करता था, इसके लिए वे गोली लेते, तो दर्द गायब हो जाता। वे इससे परेशान नहीं होते थे। पर एक दिन उन्होंने कहीं पढ़ लिया एक व्यक्ति को भी हमेशा सिरदर्द रहा करता था, उसने इसकी जांच कराई, तो पता चला कि उनके दिमाग में गांठ है। इससे वह व्यक्ति विचलित हो गया। अब उसे वहम हो गया कि उसके दिमाग में भी गांठ है। कई बार उन्होंने सोचा कि चलो जांच ही करा ली जाए। पर उन्हें भीतर यह डर साल रहा था कि कहीं उनके भी दिमाग में गांठ हुई तो क्या होगा? इसलिए वे जांच कराने से बचने लगे। इस बीच जब भी उन्हें सिरदर्द होता था, वे घबरा जाते, उनके हाथपैर ठंडे पड़ जाते थे। शरीर सुस्त पड़ जाता था। लेकिन गोली लेते ही सब कुछ ठीक हो जाता था।

अगर धन से शांति मिलती तो बुद्ध और महावीर तो राजपुत्र थे जो राजा बन सकते थे, परम बुद्धत्व को क्यों प्राप्त हुए।

अन्तरिक्ष में शान्ति प्रदान करें, पृथ्वी हमें शान्ति प्रदान करे, औषधियां, वनस्पति, पानी व दिव्य शक्तियां हमें शांति प्रदान करें सम्पूर्ण ब्रह्मांण्ड हमें शांति प्रदान करें और सर्वत्र शांति हो। जीवन में आते रहे, पतझड़ और बसन्त। मन की समता न छुटे, तो सुख शान्ति अनंत।।

चित्त में जब किसी प्रकार का उद्वेग न रहे, उस चित्त की वृत्ति का नाम शान्ति है। मनुष्य तब दु:खी होता है जब वह व्यर्थ

की इधर-उधर की चिंता करता है और नाना झंझटों से मन में अशान्ति हो जाती है। अशान्ति ही दु:ख की जननी है। संसारी लोग सदा अशान्त बने रहते हैं। इन अशान्ति और दु:ख के कारण इन सभी योग क्षेम की चिन्ताओं को हरि के चरणोंमें समर्पित करके मनुष्य निश्चिन्त हो जाता है, तब उसके हृदय में एक अपूर्व शान्ति का प्रादुर्भाव होता है। जहां शान्ति नहीं, वहाँ सुख नहीं। मनुष्य सदा बुभुक्षित रहता है। उसे तृप्ति नहीं होती। कितना भी मिल जाय और-और की इच्छा रहती है इसीको तुष्टि कहते है।

मन की प्रवृत्ति चंचल है। हृदय की ख्वाहिश रही है कि मैं आनंद में रहूं और दु:खोंसे बाहर निकलूं। आपके हृदय को चाहिये सच्चा प्रेम, सच्ची जिंदगी। आप सबको शांति देना चाहते है। इस संसार में जिसको शांति नहीं चाहिए ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है। अशांत से अशांत लोग भी शांति चाहते हैं। हमारी निजी आवश्यकता है कि हमे अपने जीवन में शांति चाहिए। अशांत हम हो नहीं सकते हैं। हमारी प्रकृति अशांतिवाली नहीं है। शांति ही हमारी प्रकृति है। आनंद ही हमारी प्रकृति है।

त्याग का फल है शान्ति, संग्रह का फल है अशान्ति। जिसके पास जितना ही अधिक द्रव्य होगा, वह उतना ही अधिक अशान्त होगा। शान्ति सभी चाहते हैं। शान्ति त्याग वैराग्य के बिना होती नहीं। अत: त्याग वैराग्य की आवश्यकता जान में अनजान में सभी अनुभव करते हैं। इसीलिये जिनको त्याग वैरागी देखते हैं, उनकी ओर सभी का आकर्षण स्वाभाविक होता है। बहुत से लोग त्याग की दीक्षा लेकर उनके संसर्ग में रहने लगते हैं।

जीवन शान्ति मरण की शान्ति है, जीवन की शान्ति नहीं। जीवित शान्ति बाहर-बाहर नहीं, अन्दर में जन्म लेती है। जब मनुष्य के मन की आवश्यकताएं कम होती जाती हैं, स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ की वृत्ति जागृत हो जाती है, विश्व कल्याण में ही अपने कल्याण की पवित्र आकांक्षा विकसित होती है, तब जीवित शान्ति का जन्म होता है और मानव समाज स्वर्ग को भूमि पर उतार लाता है।

अंदर और बाहर में जितनी समता (एकरूपता) उतनी शांति, और जितनी विषमता होगी, उतनी ही अशान्ति। धर्म और योग का मूल अर्थ ही है जीवन का सन्तुलन। शरीर तो हमारा ठीक है लेकिन हृदय ठीक नहीं है, चिन्तन ठीक नहीं है। बस यही गडबड है। यह अशान्ति दीमक की भांति अन्दर ही अन्दर पल रही है।

शांति जीवन के लक्ष्यों की ओर पहला कदम है, आखिरी नहीं। शांति क्या है? लोग कहते हैं कि पहाड़ पर बैठकर ध्यान करना शांति है। क्षणिक शांति हासिल होने की बहुत सी वजहें हो सकती है। जब भी आपका अहं संतुष्ट होता है, आपको बहुत शांति मिलती है। जिस जगह लोग आपके अहं को सहारा और बढ़ावा देते हैं, वहां आप बहुत शांत होते हैं। मगर अहं तुष्टि की कोशिश भी अशांति की एक पूरी प्रक्रिया है। कोई इंसान शांतिपूर्ण होने की जितनी ज्यादा कोशिश करता है, वह अपनी शांति खो बैठता है और रास्ते से भटक जाता है। ऐसी शांति की कोई अहमियत नहीं है। इससे बेहतर है कि आप अशांत रहें क्योंकि अगर आप अशांत होंगे तो कम से कम खोज तो करेंगे। अगर आप शांत हो गए, तो आप आत्मसंतुष्ट और बेपरवाह हो जाएंगे। आत्मसंतोष हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है। अशांति आपकी शत्रु नहीं है। आपकी आत्मसंतुष्टि आपकी सबसे बड़ी दुश्मन है और ऐसी शांति बस आत्मसंतुष्टि ही देगी।

शांति का मतलब शून्यता होता है। शांति कोई ऐसी चीज नहीं है, जो आप पैदा करते हैं, शांति कोई ऐसी चीज नहीं है,

जो घटित होती है। शांति एक ऐसी चीज है, जो हमेशा मौजूद होती है। इस शांति को पहचानना होता है। अशांति तो ऊपर की चीज होती है। उसमें गहराई नहीं होती। जो सतह पर घटित होता है, वह अशांति है। यह बिल्कुल समुद्र की तरह है। समुद्र की सतह पर आपको लहरें, भयानक उथल-पुथल और खलबली देखने को मिलती हैं। लेकिन अगर आप गहराई में जाएं, तो बहुत शांति होती है। अस्तित्व का मूल गुण हमेशा शांति होता है।

फिलहाल, ज्यादातर लोग सोचते हैं कि मन की शांति उनके जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य है। क्योंकि जब किसी का दिमाग अशांत होता है, तो उनके नजरिए में शांति सबसे ऊंचा लक्ष्य होगा। आप जिस चीज से वंचित होते हैं, वह आपके जीवन का सबसे बड़ा मकसद बन जाता है। यहां तक कि तथाकथित आध्यात्मिक लोगों का भी ऐसा ही सोचना है। शांति सबसे बड़ा लक्ष्य नहीं है। अगर आप भोजन का आनंद उठाना चाहते हैं, तो आपको शांत होना होगा। अगर आप अपने परिवार, अपने काम का अनंद उठाना चाहते हैं या पार्क में टहलने का आनंद उठाना चाहते हैं, तो आपको शांत होना होगा। शांति जीवन का आरंभ है, अंत नहीं। यह सबसे बुनियादी चीज है।

जब आप शांत होते हैं, तभी आपका शरीर अच्छे से काम करता है। दुनिया में आपकी कामयाबी और कुशलता इसी से तय होती है। जब आप दुख या अवसाद से गुजर रहे हों, तो आपकी काबिलियत का स्तर गिर जाता है। इसलिए, अगर आप अपनी क्षमताओं को बढ़ाना चाहते हैं, तो पहली और महत्वपूर्ण चीज अपने लिए एक खुशहाल आधार तैयार करना है। आपको ऐसा बनना चाहिए कि शांतिपूर्ण और खुश होना आपके लिए कोई समस्या न हो और यह किसी बाहरी चीज पर निर्भर न हो।

मन के अंदर हर तरह के भाव होते हैं, वह संतोषी भी बनाता है और हम मन की चंचलता पर काबू पा लें तो हमसे बड़ा सुखी प्राणी और कोई नहीं है। चंचलता हमारे मन को छोटा करती है और यही हमारे सारे दुखों की वजह है। हम चाहते हैं सुख, मिलता है दु:ख। मन छोटा होगा तो सुख भी छोटा होगा। मन बड़ा होगा तो सुख भी उतना ही बड़ा होगा।

हमारे ऋषि मुनियों ने इस मन को विराट बनाने के अनेक महत्वपूर्ण सूत्र दिए हैं। महावीर ने कहा है, परस्पर उपकार, प्रेमपूर्ण सहयोग ही जीवों का लक्षण है। यही हमें संतोष-धन देता है।

बुद्ध ने कहा है, बेशर्त जहां कहीं भी संतोष मिले, उसे जिओ। इसी को अनेक विचारकों ने अपने अपने अनुभवों से कहा है कि समृद्ध वह है जो संतुष्ट है।

शांति को बाहर न खोजते रहें, उसे अपने अंदर महसूस करें। मनुष्य इन छ: चीजों से बने हुए हैं- ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन, कैल्शियम, फॉस्फोरस और नाइट्रोजन। चाहे वह अमेरिकन हो, ऑस्ट्रेलियन या अफ्रीकन हो। सत्तर प्रतिशत आप पानी हैं। आप दूसरे मनुष्य से दुश्मनी क्यों करते हैं? जिन-जिन चीजों से वह बना है, उन्हीं चीजों से आप भी बने हुए हैं। जब आप दूसरे की इज्जत नहीं करते तो वह तो गया, पर आप भी गये। आज बेटा बाप से नफरत करता है, बाप बेटे से नफरत करता है। बचने का एक ही तरीका है, जो आपके अंदर विराजमान है उस चीज को अपने जीवन के अंदर अपनाने की कोशिश कीजिए। शांति हमारे अंदर है और बिना शांति के इस जीवन में मुश्किलें ही मुश्किलें होंगी।

आप अपने जीवन में शांति का अनुभव करना चाहते हैं तो इस बात को हम संभव बना सकते हैं। जिस चीज को आप खोज रहे हैं, वह पहले से ही आपके पास है। आपको मालूम नहीं है। इस संबंध में कहा गया है, कस्तूरी कुंडलि

बसै, मृग ढूंढ़ै वन मांहि। ऐसे घट-घट ब्रह्म हैं, दुनिया जानत नाहिं। आप हैं हिरण। जिस चीज की आपको जरूरत है वह पहले से ही आपके पास है। पर हम शांति को खोज रहे हैं। बात यह है कि इन आंखों से आप दुनिया को देख सकते हैं, पर अपना चेहरा नहीं देख सकते हैं और इसके लिए आपको चाहिए- आईना। बस, शांति को मत खोजिए। वह तो आपके ही अंदर है। बस इसका एहसास कीजिए। आप मनुष्य हैं। शांति ही आपकी एक बुनियाद है। जीवन में तूफान आते हैं, इनसे बचने के लिए आपकी बुनियाद मजबूत होनी चाहिए। और बुनियाद तभी मजबूत होगी, जब आप शांति को महसूस करके आगे चलेंगे।

आप पहले अपने छोटे से संसार में शांति को स्थापित कीजिए। आपका अपने परिवार में क्या व्यवहार है? क्या आप दो मिनट अपने बच्चों के साथ बैठते हैं? उनका संभाषण सुनते हैं, या अपना ही भाषण देते रहते हैं? यह बहुत गंभीर बात है। होना यह चाहिए कि बेटे से पूछा जाए कि, बेटा। बोल। आज तेरी बारी है। किस चीज से तू खुश है और किस चीज से तू खुश नहीं है? थोड़ा और समय निकालें परिवार के सदस्यों से पूछने के लिए कि, आप खुश तो हैं न। संसार में अगर अशांति हैं, तो उसका कारण कोई दूसरा नहीं है। कौन है? हम सब हैं। सबके सब हैं।

इस संसार में जो साढ़े सात अरब लोग हैं, उन सभी की जिम्मेदारी है। सबकी। इस भावना का जागरण हो।

जो व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों में भी व्यग्र और उग्र न हो उसको शांत कहते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में तो सभी शांत होते हैं, प्रतिकूल परिस्थितियों में जो मन की शांति कायम रखे उसे सच्चा साधक कहा गया है। उग्रता और व्यग्रता में थोड़ा फर्क है। दोनों ही इंसान में अशांति पैदा करते हैं।

यह बात अच्छे से समझ लेनी चाहिए कि अपनी अशांति का कारण हम स्वयं है। अशांति के मूल में कोई इच्छा है, कोई आग्रह है। वह आग्रह जितना दुराग्रह बनता जाएगा, अशांति उतनी बढ़ती जाएगी। अशांति के मूल में इच्छा और पूर्वाग्रह छिपे हैं। वास्तव में शांत रहना, अपने स्वरूप में स्थित होना है। शांति हमारा स्वरूप है। चौबीस घंटे हम शांत तो रह सकते हैं लेकिन चोबीस घंटे क्रोध में रहना संभव नहीं है। जिसे शांति, समाधि में रहना आ गया उसे दु:ख कदापि डगमगा नहीं सकता, घबरा नहीं सकता, दु:खी भी नहीं कर सकता।

शांति के ३ प्रकार है- १) मन २) वचन ३) काया। १) मन- संकल्प + विकल्प का व्यवहार बंद करो। २) विचार- कुविचार का व्यवहार बंद करो। वचन की मर्यादा रखो ३) काया- शरीर के प्रति जो राग है (मोह + ममता) उसे छोड़ दो।

शांति पाने के लिये ३ मार्ग बताये हैं- वाणी में संयम (नियंत्रण), क्रोध (गुस्सा) पर संयम, राग-द्वेष की गांठें खोलना (न कि बांधे रखना)। इन तीन बातों को हमेशा याद रखना, शांति आपकी कदम चूमेगी।

मनुष्य की वास्तविक सुंदरता चेहरे पर झलकती शांति में है

किसी चिड़िया को पिंजरे में डाला जाए तो वह क्या करेगी? खूब पंख फड़फड़ाएगी, तड़पेगी। बार बार उस पिंजरे से बाहर निकलने की कोशिश करेगी। क्योंकि उसको पता है कि स्वतंत्रता क्या है। उसे मालूम है कि पंख फैलाकर उड़ने में क्या आनंद है। उसने आकाश की शांति महसूस की है। परंतु वह चिड़िया जिसका जन्म ही पिंजरे में हुआ, वह भला क्या जानती है उड़ने के बारे में? अगर पक्षी को छोटे पिंजरे से निकाल करके बड़े पिंजरे में भी डाल दिया जाए, तो क्या उस पक्षी को स्वतंत्रता मिल गई?

हमने भी अपने विचारों का, ख्यालों का पिंजरा बनाया हुआ है और इस पिंजरे में दिल का पंछी बंद है। उसे भी तो स्वतंत्रता चाहिए। कैसे हम उसे आजादी दें? विचारों के एक पिंजरे से निकाल कर विचारों के दूसरे पिंजरे में डालने से उस पंछी को आजादी नहीं मिलेगी। पिंजरा बड़ा हो या छोटा, पढ़े-लिखों का हो या अनपढ़ों का, क्या फर्क पड़ता है? है तो वह पिंजरा ही। मनुष्य कोई भी हो, कहीं का भी हो, कैसा भी हो, उसका हृदय आजादी का परम सुख पाने को तड़पता है। हमारे अंदर धड़कता जो हृदय रूपी पक्षी है- उसके सामने कुछ भी लाकर रख दो, वह सुखी नहीं होगा। बगैर परमशांति मिले उसे सुख नहीं मिलने वाला। यह हृदय ही है, जो मनुष्य को आजादी पाने, आनंद लेने, प्रशंसा और सराहना करने की प्रेरणा देता है। जब हृदय प्रेम से भरा हो, तो न कल है, न परसों है। न दिन है, न रात है। कुछ नहीं रह जाता है। तब तो हृदय के लिए काल और प्रकृति की सारी बेड़ियां खुल जाती हैं। अपने जीवन में सिर्फ एक चीज जरूर करो कि अपने हृदय की जिस चिड़िया को हमने माया-मोह, अंधकार, अज्ञान और अहंकार के पिंजरे में जकड़ रखा है, आजाद कर दो।

एक एक ईंट करके जब यह पिंजरा टूटेगा, तभी जाकर हमें सब समझ में आना शुरू होगा। तब जाकर यह चिड़िया भी उड़ेगी। जब यह उड़ान भरेगी, तब वह मिलेगा जिसे शांति और परमसुख कहते हैं। जाने कब से हम सबने इस हृदय रूपी पक्षी को विचारों के पिंजरे में बंद कर रखा है। इस पिंजरे को खोलकर जिस दिन हृदय को आजादी मिलेगी, उस दिन प्रेम, आनंद और शांति छा जाएगी।

आप मनुष्य हो, भगवान की देन हो। मोर को नाचते हुए देखा है? वह भी भगवान की देन है। वह मस्ती में नाचता है और कितना सुंदर लगता है। जब आप भी अपने शांति रूपी पंख फैलाकर उस परमपिता परमेश्वर के लिए नाचोगे, तो आप भी बहुत सुंदर लगोगे । आजकल तो लोग सुंदर लगने के लिए तरह-तरह के श्रृंगार करते हैं। परंतु आप असली सुंदर तब लगते हो जब आपके चेहरे पर शांति झलकती है। शांति है आपका असली स्वरूप।

बाहर की दुनिया वैसी ही होती है, जैसी हमारे अंदर की दुनिया होती है। अगर हम खुश हैं, तो चांद भी सुंदर दिखता है। हम उदास हैं, तो चांद भी उदास दिखता है। आप अगर शांत रहते हैं, तो आसपास के जो अशांत लोग हैं, वे आपसे शांति पाने आपके पास आएंगे।

अगर आप जीवन में कुछ रचनात्मक करना चाहते हैं, तो शांत रहना सीखें। क्योंकि शांत रहने से आपकी ऊर्जा बची रहती है, जो आपको अधिक रचनात्मक बनाने में मदद करती है। शांत रहने की तरकीब यह है कि आप निरंतर वर्तमान में रहकर जिएं और पूर्ण विवेक के साथ सामने आ रही स्थितियों का सामना करें। धैर्य बनाकर रखें, जल्दबाजी न करें और हमेशा अपने ही लाभ के बारे में न सोचते रहें। शांति आपको उपहार में अच्छा स्वास्थ्य भी देगी।

आप समझते हैं आपको धन की जरूरत है, इसलिए आपका हर प्रयास ज्यादा से ज्यादा धन कमाने का रहता है। परंतु एक और जरूरत है। बिना उस जरूरत को पूरा किए चाहे मनुष्य के पास कितना भी धन हो, उसको चैन नहीं मिलेगा। वह जरूरत शांति की जरूरत है। चाहे मनुष्य के पास कुछ भी न हो, परंतु उसके जीवन में शांति है तो सब ठीक है। अगर उसके पास सब कुछ हो, परंतु जीवन में शांति न हो तो सब कुछ होते हुए भी ठीक नहीं लगता है। मनुष्य कोलाहल का प्राणी नहीं है।

अगर आपका हृदय ऐसी शांति का अनुभव करना चाहता है जो सदा बनी रहे, अगर आप चाहते हैं कि आपके जीवन में

हर दिन आनंद बना रहे तो ईश्वर से शांति मांगें, चैन मांगें, सुकून मांगे। इसकी कीमत कोई चुका नहीं सकता क्योंकि यह अनमोल है। उम्मीद की डोरी टूटने से सांसों की डोरी टूट जाती है। जो उम्मीदों के सहारे जिया, उसने खुद को धोखा दिया। इन्सान से उम्मीद लगाने के बजाये दुनिया के पैदा करनेवाले के सामने हाथ फैलाओ। उम्मीद के सहारे जिया तो जा सकता है मगर पेट नहीं भरा जा सकता।

मनुष्य दो चीजें जरूर चाहते हैं एक शांति और दूसरा सुख। वास्तव में सुख-शांति परमात्मा से हमें मिली मौलिक सौगातें हैं। हमारा जन्मसिद्ध अधिकार हैं। आत्मा की सुंदरता हैं। ये भौतिक चीजों की भरपूरता से नहीं, त्याग और परोपकारी वृत्ति से पनपती हैं। इसी से शांति आती हैं। हमारे श्रेष्ठ कर्म, अच्छे कर्म ही हमारी शांति को बहाल रख सकते हैं। दुनियावी बातें सुखद हों या दुखद, कभी हमारी उदासी तो कभी खुशी का कारण क्यों बनती है। इसका हमें जरूर चिंतन करना है। हमारा जीवन एक ऐसी यात्रा है, जिसके लिए न तो कोई निर्देश दिया जा सकते हैं और न ही किसी को इस यात्रा में आनेवाले विभिन्न पड़ावों के बारे में कुछ ज्ञात होता है। जन्म के बाद आत्मा का शरीर में प्रवेश और मृत्यु के बाद किसी दूसरे शरीर की तलाश, यही जीवन का सत्य है। जो व्यक्ति इस सत्य को जान लेता हैं, उसे समझ लेता है वह अपने सभी उद्देश्यों को बहुत आसानी से पा लेता है। वह सुख और शांति पा सकता है। विलासिता में सुख-शांति नहीं मिलती।

संतोष - असंतोष - जितना अधिक धन बढता है जीवन का सच्चा सुख उससे और आगे निकल जाता है। सच्चा सुख सन्तोष मे है, धन की लालसा में नहीं। आज का बुद्धिजीवी और धन के पीछे पगलाया व्यक्ति दोनों ही अध्यात्म की और जाने से दूर रहते है। उन्हे अध्यात्म पिछडे समाज की निशानी और धर्म औचित्यहीन लगता है। अध्यात्म या धर्म के बिना जीवन में सच्चा सुख सन्तोष नहीं हो सकता। मनीषियों ने ज्ञान, योग, और भक्ति को ही आनन्द का तात्विक आधार बताया है। मानव जल्दी इसे समझ लेगा, उतनी जल्दी उसे आनन्द का अनुभव प्राप्त होगा।

गो धन गज धन वाजिधन और रतन धन खान, जब आये सन्तोष धन, सब धन धूरि समान

कितना भी कमा ले, आदमी तृप्त नही होता। कितनी ही नदियां आकर मिल जाय, सागर की प्यास नहीं बुझती। कितनी ही लकडियां होम करे दे, अग्नि की भूख शान्त नहीं होती। आज तक अनगिनत लोगों के प्राण लेकर भी यमराज नहीं थकते। उसी तरह मनुष्य को भी चाहे सब कुछ मिल जाये, उसका मन कभी सन्तुष्ट नहीं होता। जो मिला है उसी में सन्तोष करे तो वह सुखी हो सकता है। जरूरत से अधिक संग्रह करने के कारण वह सन्तुष्ट नहीं रह सकता। एक सन्तोष रूपी धन मिल गया तो घोडे-गाय-हाथी, रत्न इनकी कीमत ही क्या ?

मनुष्य को धन सम्पत्ति जरूर प्राप्त करनी चाहिये, लेकिन उतनी ही जितनी जरूरत हो। मगर अपनी ही नहीं अगली सात पीढ़ियों के लिये काफी होगा इतना धन कमाने के चक्कर में मनुष्य सन्तोष गवा देता है। यही दु:ख का असली कारण है।

अशान्ति से कई रोग उत्पन्न होते है। जब तक सन्तोष नही आता तब तक स्थायी शान्ति असम्भव है। धन से सुख की सामग्री खरीद सकते है, किन्तु शान्ति नहीं। धन रोकने से कभी नही रूकता और मनौती करने से कभी प्राप्त नही होता। त्याग में जो सुख है, सच्चा आनंद है वह संग्रह में नही, वह अन्य किसी में नही। शुभ कर्मों से बढ़ कर अपने लिये और कोई सम्पत्ति नहीं। इस तरह के विचार जिनके मन से आते है वही परमेश्वर का सच्चा उपासक है। धन से बढ़कर धन को महत्व देकर धर्म की रक्षा में धन लगाना चाहिये। अत: धर्म की रक्षा के लिये सर्वस्व भी त्यागना पडे तो भी हर पल तैयार रहें, यही शिक्षा सभी धर्मों में समान रूप से दी गई है।

दुनिया के बारे में बहुत सुना गया कि यहां बहुत आनन्द आता है, बहुत रंगीनिया यहां है। लेकिन दु:ख और गम के सिवाय इन्सान को यहां कुछ प्राप्त नहीं होता। अगर कुछ शान्ति पानी है, जिन्दगी का मकसद पूरा करना है तो वह किसी महापुरुषों के चरणों में जाकर ही मिल सकती है। वे प्रभु के बन्दे होते है, प्रभु से जुडे होते हैं। उनके पास पहुंच कर हमारा मन शान्त हो जाता है और हमें आनन्द प्राप्त होने लग जाता है। महापुरुषों के चरणों में पहुंचने पर उनमें जो प्रभु प्रेम की तरंगे उमड रही होती है वे हमारी आत्मा तक पहुंचती है।

अगर संतोष मूर्खता है, तो संसार के नीति-ग्रन्थ, उपनिषदों से लेकर कुरान तक मूर्खता के ढेर हो जायेंगे। संतोष से अधिक और किसी तप की महिमा नहीं पाई गई है। असंतोष ही सबसे बढ़कर दु:ख है और संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। अतएव सुख के इच्छुक पुरुष को सदैव संतुष्ट रहना चाहिए।

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिन। जल बिनु चलइ कि नाव, कोटि जनत रचि पचि मरिय।।

(हे तात। स्वाभाविक सन्तोष के बिना किसी को सुख नहीं मिलता, जैसे करोड़ों उपाय करने पर भी बिना पानी के नाव नहीं चल सकती।)

जैसे हरा चश्मा लगा लेने से सभी वस्तुयें हरी-हरी दीखती हैं, उसी प्रकार संतोष धारण कर लेने पर सारा संसार आनन्द रूप ही दिखाई पड़ता है। जो खुशकिस्मत हैं, सन्तोष करते हैं। अगर तू खुशकिस्मत होना चाहता है तो सन्तोष के नूर से अपनी जान को रोशन कर। दान के समान दूसरी निधि नहीं है, लोभ के समान दूसरा शत्रु नहीं है, शील के समान दूसरा भूषण नहीं है, और सन्तोष के समान दूसरा धन नहीं है।

बिनु सन्तोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुं नाहीं।।

(सन्तोष के बिना काम का नाश नहीं होता, और काम के रहते हुए स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता।)

मनुष्य को स्वस्थ रखने के लिए संतोष एक सर्वोत्तम भोज्य पदार्थ है तथा रोगी को निरोग रखने के लिए सर्वोत्तम औषधि है। शान्ति के समान दूसरा तप नहीं है, न सन्तोष से परे सुख है, तृष्णा से बढ़कर दूसरी व्याधि नहीं है, और न दया से बढ़कर धर्म है। सन्तोष रूपी अमृत से जो मनुष्य तृप्त होते हैं, उन्हें जो शान्ति और सुख होता है, वह धन के लोभियों को, जो इधर-उधर भागा करते हैं, नहीं होता।

सन्तोष को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। इस मन्त्र से कठिन से कठिन समय में भी मन विचलित नहीं होता। सन्तोष दरिद्रता का दूसरा नाम है। सन्तोष दो प्रकार का है- एक परिश्रम से सम्बद्ध है दूसरा प्रमाद से। पहला पुण्य है दूसरा पाप। संतोष मुकुट पहनाता है, जहां भाग्य उससे वंचित रखता है। सन्तोष यद्यपि कड़वा वृक्ष है तथापि इसका फल बड़ा ही मधुर और हितकर है। सन्तोष वह पारस है जो जिस वस्तु को स्पर्श करता है उसे स्वर्ण बना देता है। संतोष साम्राज्य से भी बढ़कर है। संतोष से परमानन्द की प्राप्ति होती है। सुख चाहने वाले को संयम होना चाहिए। सुख का मूल संतोष है और दु:ख का असन्तोष। संतोष से बढ़कर अन्य कोई लाभ नहीं है। जो मनुष्य इस विशेष गुण से सम्पन्न है, वह त्रिलोक में सबसे धनी व्यक्ति है। संतोष स्वाभाविक धन है, विलासिता कृत्रिम निर्धनता है।

एक आदमी जल और स्थल के सारे रत्न पाकर गरीब रह सकता है, दूसरा फटे वस्त्रों और सूखी रोटियों से भी धनी हो सकता है। सुख सन्तोष से प्राप्त होता है। विलास से सुख कभी नहीं मिल सकता। असली प्रसन्नता सन्तुष्ट मन में से पैदा होती है। अहं भावना का त्याग करके विपत्ति को भी सम्पत्ति मानना ही सच्चा सन्तोष है। असन्तुष्ट आदमी को यहां, वहां

सब कहीं भय ही रहता है।

आज सभी को मानसिक शांति की आवश्यकता है। हर कोई इसी के पीछे भागा जा रहा है। पर शायद उन्हें मालूम नहीं है कि जिस तरह से मानसिक अशांति कहीं बाहर से नहीं आई है, उसी तरह से मानसिक शांति भी भीतर से ही आएगी। आजकल धार्मिक समारोहों में लोगों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इन समारोहों में स्कूल-कॉलेज के युवा भी बड़ी संख्या में दिखने लगे हैं। इसका आशय यही हुआ कि मानसिक शांति की तलाश सभी को है।

असंतोष। अज्ञानता इसकी जड़ है। क्यों होता है असंतोष ? समाज में कुछ विशिष्टता प्रदर्शित करने के लिए कि मैं कुछ हूं एक कारण है। अदम्य लालसाएं हैं। भौतिक पदार्थों के संग्रह की भूख। जो है उससे तृप्त नहीं हैं, जिससे अतृप्ता का भाव होता है। एक ऐसी प्यास, एक ऐसी भूख जो संसार में उपलब्ध भोजन व पानी से नहीं मिटेगी बल्कि एक अलग प्रकार का पानी है और भोजन है जिसे प्राप्त करना होगा और वह है ज्ञानरूपी पानी, ज्ञानरूपी भोजन। जब ज्ञान का प्रकाश जीवन में होगा तब अज्ञानता का अंधकार स्वयं ही हट जाएगा और संतोष प्राप्त होगा। कहा है-

गोधन, गजधन, वाजिधन और रतन धन खान। जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान।।

कितने प्रकार के धन हैं इस संसार में और प्रत्येक मनुष्य सभी धन प्राप्त करने के लिए दौड़ रहा है लेकिन जब तक संतोष रूपी धन नहीं मिलेगा, तब तक असंतोष जो कि सबसे बड़ा दु:ख है- लगा रहेगा। प्रत्येक आदमी में यह भावना होती है कि वह थोड़ा अलग दिखाई दे जिससे अपने आप पर गर्व महसूस कर सके और इस कारण बड़े-बड़े राजाओं ने आक्रमण किए अपने राज्य की सीमा बढ़ाने हेतु। बड़े-बड़े धनपति, मध्यमवर्गीय और गरीब ज्यादा से ज्यादा धन प्राप्ति की होड़ में जुटे हुए हैं जिससे वे कुछ अलग दिखाई दें। और यह भावना अतृप्तता की है जो कभी तृप्त नहीं होने देती।

सभी संत-महात्माओं ने कहा है कि यदि संतुष्ट होना चाहते हो, संतोष रूपी धन प्राप्त करना है तो अपने भीतर झांक कर देखो। अपने भीतर देखना है। परंतु हमारी आदत बन चुकी है बाहर की ओर देखना। बाहर के कोलाहलपूर्ण जीवन में जीना। बाहर की चकाचौंध हमें अच्छी लगती है लेकिन सबसे सुंदर और मन भावन चीज तो हमारे अंदर है और उसे हमने कभी देखा नहीं। उसे देखने के लिए ज्ञान-नेत्र की जरूरत पड़ती है और उस ज्ञान नेत्र को खोलने की जरूरत है जो कि बंद हैं। इसलिए कहना पड़ा- सब जग अंधा केहि समझाऊं। सारा जग अंधा है, कैसे समझाऊं।

जब तक ज्ञान नेत्र खोलकर मनुष्य उस सुख व शांति को नहीं प्राप्त करेगा तब तक असंतोष बना रहेगा। आज यह नहीं हुआ। आज फलां चीज नहीं मिली। दिन भर उलझे रहते हैं अतृप्त का बोझ लिए। और अतृप्ता के कारण ही असंतोष की ज्वाला अंदर धधक रही है। मित्रों। इस संसार में शरीर की सभी बीमारियों का, दु:ख दर्द का इलाज है लेकिन मन की पीड़ा का, दिमाग के दर्द का कोई इलाज नहीं है और यह दिमागी दर्द बहुत ही बुरा व भयानक है। इसके कारण आज मधुमेह, रक्तचाप, कैंसर, जोड़ों का दर्द, तनाव के मरीज ज्यादा बढ़ रहे हैं। संत-महात्माओं ने एक ही उपाय सुझाया है इस दिमागी दर्द से बचने के लिए और वह है- अपने आपको जानो, अपने आप से प्रेम करना सीखो और अंत:करण स्थित शांति को प्राप्त करो।

क्या है संतोष ? संसार के भौतिक पदार्थों के प्रति मोहित न होना, मैं यहां पर कुछ दिनों का मेहमान हूं और एक दिन यह जगत छोड़कर वापिस जाना है, समस्त प्राणियों से प्रेम करना और ईश्वर का शुक्रगुजार होना- इस प्रकार की पवित्र भावनाओं से ओत-प्रोत होने का नाम है संतोष और यह बिना ज्ञान के संभव नहीं है।

सब कुछ होते हुए मनुष्य अपने आपको अभावग्रस्त पाता है और यह अभाव की पीड़ा ही असंतोष है, अभाव कभी भरता नहीं है इसलिए अतृप्तता बनी रहती है। ज्ञान के जरिए, ज्ञान नेत्र खुलने पर विधाता के दिए हुए अनमोल उपहार की जानकारी होती है जिससे तृप्तता का अहसास होता है, संतोष धन की प्राप्ति होती है और जीवन पहले जो बोझ लगता था वह अब भारहीन तो लगता ही है, साथ ही आनंदमय भी लगता है। असंतोष को हटाओ अपने जीवन से और संतोष को लाओ। ज्ञान प्राप्त होने पर असंतोष रहेगा ही नहीं- यह दावा है। यह निर्णय हमें लेना है अपने जीवन में कि हम क्या चाहते हैं ? जैसा जीवन अभी जी रहे हैं असंतोष की दुनिया में यही चाहते हैं या फिर कुछ तब्दीली चाहते हैं जिससे सुख-शांति और आनंद की अनुभूति हो सके। असंभव कुछ नहीं है।

दिव्य शक्ति को मौका दें, कृतज्ञ रहें- इस वर्ष अपनी भक्ति को पूरी तरह खिलने दें और उसे काम करने का मौका दें। हमारे अंदर प्रेम, श्रद्धा और आस्था की जड़ें मजबूत होनी चाहिए फिर सब कुछ अपने आप होने लगता है। आपके अंदर मैं धन्य हूं की भावना किसी भी असफलता से आपको उबारने में सहायक होगी। जब आपको यह एहसास होता है कि आप धन्य हैं तो सारी शिकायतें और बड़बड़ाहट गायब हो जाती है और कृतज्ञ, संतुष्ट और शांत हो जाते हैं।

पैसे से आपके जीवन में संतुष्टि नहीं आ सकती है। जब आप पैसे के पीछे जाते हैं तो और-और ही करते रहते हैं। लेकिन जब आप अपने जीवन में करुणा जगाते हैं तो संतुष्टि और प्रसन्नता प्राप्त होती है।

समय हमेशा बहता रहता है। समय की धारा में बहते हुए हम इतना कर सकते हैं कि उसका सदुपयोग करें। उसे अपने लिए अर्थवान बनाएं। जीवन को सार्थक बनाने से आशय यही है कि हमें संतुष्टि मिले। हमें जीवन की सार्थकता के लिए प्रयास करना ही चाहिए। कुछ लोग अगर दूसरों को सताने, उनके साथ धोखा करने और उन्हें परेशान करने में ही समय लगाते हैं तो इससे उन्हें तात्कालिक राहत तो मिल सकती है लेकिन लंबे समय में मन पर एक बोझ रहता है। उनके जीवन में कभी संतुष्टि का भाव नहीं आ सकता। इसलिए अपने समय को उन कार्यों में लगाना चाहिए जो आपको सच्ची संतुष्टि देते हैं।

स्वयं के लिए समय निकालें- आप सूचनाओं को इकट्ठा करने में लगे रहते हैं और अपने लिए सोचने और विचार करने के लिए समय नहीं निकाल पाते हैं। इसलिए आप सुस्त और थका हुआ महसूस करते हैं। शांति के कुछ पल सृजनात्मकता के स्त्रोत होते हैं। मौन हमें स्वस्थ रखता है और हमें पुन: ऊर्जित करता है और आपको गहनता और स्थिरता प्रदान करता है। रोज कुछ मिनटों के लिए किसी भी समय अपने साथ बैठ जाओ और आंख बंद करके अपने दिल की गुफा में घुस जाओ। सारे संसार को गेंद के जैसे लात मार दें। स्वयं के लिए थोड़ा समय निकालने से आपके जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है।

इस जगत में कौन है, जो शांति नहीं चाहता? अंतरात्मा शांति चाहती है, लेकिन हम जो करते हैं, उससे अशांति ही बढ़ती है। सन्तोष सुख का सहोदर भाई ही है।

तृप्ति त्याग में है संग्रह में नहीं। कहते हैं संतोष बड़ा धन है। इस बात को गांठ बांध लें कि संतोष होगा तो गरीब भी अमीर है लेकिन यदि संतोष नहीं है तो अमीर से अमीर व्यक्ति भी गरीब है। आपके पास जितना है उसमें खुश रहिए। ज्यादा की लालसा करने से कुछ और हाथ भले ही न लगे लेकिन बेचैनी जरूर होगी। गरीब वह नहीं जिसके पास कम है बल्कि वह

है जिसके मन में और कई लालसा है।

ईर्ष्या या दुश्मनी के भाव को मन से निकाल दें। दूसरों के प्रति जलन या बैर न रखें। कई बार आप चीजें इसलिए नहीं खरीदते कि आपका उसके बिना चलता नहीं है बल्कि इसलिए खरीदते हैं क्योंकि आप में अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने की कामना होती है या फिर इसलिए खरीदते हैं क्योंकि आपके मित्र-परिचित के पास वो है। यदि आपका मन इसे जान ले व मस्तिष्क इसे समझ ले तो आप उसें जीत सकते हैं। यह प्रतिस्पर्धा स्त्रियों में अधिक पायी जाती है।

जीवन के देखने का ढंग को बदलो। अपनी आदत बदलो। उस आदत की बदलाहट में ही संतोष है। शांति है और जहां संतोष है, शांति है, वहां आज नहीं कल सत्य निश्चित ही आ जाता है।

आज भौतिक वाद के विषम युग में जहां एक ओर मन अशांति की विभीषिका से आक्रांत हो रहा है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य मन की शांति के लिए भटक रहा है। भौतिकता की चकाचौंध में मानवीय मूल्यों का ऱ्हास हो रहा है। घर-परिवार और समाज में एक-दूसरे से आगे निकलने की छदम् होड़ लगी हुई है। सब लोग संसार की मृगमरीचिका में भागते जा रहे हैं, ठीक उसी प्रकार से जिस तरह रेगिस्तान की चिलचिलाती धूप हिरण के लिए पानी जैसी नजर आती है और वह प्यास बुझाने के लिए रेत पर भागता रहता है, लेकिन उसके हिस्से में निराशा-हताशा और थकान के सिवाय कुछ हाथ नहीं आता। मनुष्य भी इसी तरह संसार रूपी रेगिस्तान में भाग ही रहा है। मृगतृष्णा के सुख रूपी जल की खोज कर रहा है, किंतु सांसारिक विषय वासनाओं में सुख का सर्वथा अभाव है। शान्ति सबसे बड़ा आनन्द है। जिसके घर में शान्ति है वही सच्चा सुखी है।

जागरुकता की प्रतीक है मन की शांति। यह आपकी विचारधारा को संगठित व सुव्यवस्थित करके, आप को निरंतर सक्रिय रखती है और अपेक्षा से बेहतर कार्य करने के लिए सक्षम बनाती है।

जिसके चित्त में असंतोष है वही दरिद्र है। संतोष ही सुख है।

नेकी पर चलते रहें तो सहजता से मंजिल तक पहुंचेगी जीवन यात्रा

आज हम भोगवादी सभ्यता में जी रहे हैं। हर कोई नाना प्रकार की सुविधाएं चाहता है। धन चाहता है, वैभव की आकांक्षा करता है और क्षणिक सुख के पीछे दौड़ता है। इसी तरह मन भी बेकाबू होकर छलांग लगाता है, भांति-भांति की चीजों की ओर ललचाता है। यही दु:ख का कारण है। इसी से असंतोष और तनाव पनपता है। डायोजनिस संतोष का प्रतीक है, सिकंदर लोभ का प्रतीक है। एक छोटा-सा झोंपड़ा भी डायोजनिस के लिए बहुत था, उसी में वह आनंदित था। परंतु सिकंदर सम्राट होकर भी असंतुष्ट था। विशाल साम्राज्य भी उसे संतुष्ट नहीं कर सका। वह पूरी दुनिया पर हुकूमत करना चाहता था। क्या पूरी दुनिया मिल जाने पर वह संतुष्ट हो जाता? बिल्कुल नहीं। फिर उसकी आकांक्षा कोई नई छलांग लगाती।

आवश्यकता शरीर की तृप्ति चाहती है, वासना अहंकार की तृप्ति का प्रयास करना चाहती है। परंतु अहंकार तो कभी किसी का तृप्त हुआ ही नहीं है। अपनी सोच को सकारात्मक बनाइए। सुंदर सोच से ही संतोष का जन्म होता है। यह आपको जहां हैं वहीं शहंशाह बना देता है। संतोष से सुख नहीं उपजता, बल्कि संतोष स्वयं सुख है। संतोष स्वयं एक परितृप्ति है। एक अमृत की रसधार है।

दया-कृपा और परोपकार, उपकार-अपकार, करुणा, दयालुता

ईश्वर ने संसार के आरम्भ मे जिन विभुतियों को परोपकार के लिये उत्पन्न व स्थापित किया है वे सदैव जन हित का परोपकार करती है वे इस प्रकार है -

१) सूर्य :- अपनी ऊर्जा शक्ति से सृष्टि का पोषण करता है। सूर्य न हो तो यह सारा जगत नष्ट होगा।

२) चन्द्रमा :- शीतलता और पोषकता दोनों प्रदान करता है।

३) मेघ :- पानी लाकर जलधारा बरसाकर सब को तृप्त करते हैं।

४) वृक्ष :- वृक्ष लगाने वाले और तोडनेवाले दोनों को छांव देता है, फल देता है और अपना शरीर यानि लकडी देता है। पर्यावरण सुधरता है।

५) नदियां :- नदी सबको जीवन-पानी देती है। सारी भूमि सुजलाम सुफलाम होती है।

६) गाय :- अपना निर्मल और पवित्र दूध देती है।

७) सज्जन पुरुष :- साधु, सन्त, ज्ञान-दान कर अज्ञान, दु:ख दूर करते है और प्रेम दृष्टि देकर ईश्वर के मार्ग की और प्रशस्त करते हैं।

करुणा- करूणा यह बन्धन रहित प्रेम है। करूणा यानि जीवंत प्रेम का प्रवाह। हम जिसे प्रेम कहते है वह बधां है। इस तरह बन्धन में फंसा प्रेम करूणा हीन होता है। जब मनुष्य किसी से प्रेम करता है तो बाकी सारी दुनिया के लिये उसकी भावनायें सूख जाती है। करूणा इस तरह एक मार्गी नहीं होती। करूणा यानि सबसे प्यार करना। उसके बिना प्रेम जमे हुये पानी की तरह होता है। रूका हुआ पानी प्रवाह न होने से धीरे धीरे मैला होने लगता है। उसी तरह प्रेम किसी व्यक्ति तक सीमित रहा तो कुछ समय बाद उसमें संशय, स्वार्थ की गंदगी आने लगती है। इसलिये झर झर बहनेवाले झरने की तरह बन्धनरहित प्रेम यानि करूणा है।

जिसके हृदय में दया और करुणा की लहर लहरा रही हो, बडों के प्रति आदर भाव भरा हो और जीवन को सरल भाव में रखता हो, वह निश्चय ही मनुष्य बनने की राह तय कर रहा है।पूर्णता है। इसलिए मानव होने के नाते आप में रस की माँग जगनी चाहिए। भोग में सुख तो है, पर रस नहीं है।

जिसके हृदयमें करूणा नहीं वह तो मनुष्य भी नहीं फिर सन्त कहाँसे होगा। करुणा ऐसा गुण है जो सदा नहीं रहता। कभी-कभी आता है। तितिक्षा और करुणा दोनों आगन्तुक गुण है। सदाके लिए करुणामें बँधना मोह है। सड़कपर रोगी दीखा तो उसे घर मत ले आना, अस्पताल में ले जाना।

दया- दया धर्म की माता है तो ज्ञान धर्म का पिता है। ज्ञान और दया के समन्वय से ही धर्म की उत्पत्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं। दया की अपेक्षा ज्ञान का महत्व अधिक है। पहले हमें सम्यग् ज्ञान होना चाहिये। फिर दया का पालन शुद्ध क्रियात्मक प्रवृत्ति में प्रवृत्त होना चाहिये।

जब अपने आचार-व्यवहार में सत्य उतर जाता है, जब जीवन में किसी प्रकार छल नहीं रहता, तब मनुष्य में धर्म का प्रवेश होता है। धर्मपरायण व्यक्ति सबमें ईश्वर का या अपने इष्ट का दर्शन करता है। वस्तुत: धर्म को जानना-पहचानना, उस पर मंथन-मनन करना और उसे जीवन में उतारना बहुत जरूरी है। संसार में श्रेष्ठ धर्म क्या है ? यक्ष ने जब पूछा तो युधिष्ठिर बडे धैर्य के साथ प्रसन्नभाव से उत्तर देने लगे-संसार में दया से बढ़कर श्रेष्ठ धर्म कोई नहीं हैं। व्यक्ति का जीवन दयामय हो, दयालुता से युक्त हो तो समझना कि वह व्यक्ति धार्मिक है। जिसके अंदर दया आई, वह व्यक्ति भक्ति से भरपूर हो गया। जो दयालु है, उसी पर परमात्मा अपनी कृपा बरसाता है। संसार में दयालुता से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। दयालु हृदय परमात्मा के साम्राज्य में प्रवेश पाने का अधिकारी है। जो कठोर है, निर्दयी है, वह परमात्मा को प्रिय नहीं है।

किसी संत ने प्रार्थना करते-करते आकाशवाणी सुनी- है भक्त। तुम्हारी तपस्या पूरी हुई। जो भी तुम माँगना चाहो, माँगो। जो भी वरदान माँगोगे, वही मिलेगा। भक्त ने हाथ जोडकर कहा- हे प्रभु। मेरे शरीर में ऐसी शक्ति दो, जिधर से भी मैं चला जाऊँ हर किसी को हँसता-मुस्कराता चला जाऊँ। लेकिन परमात्मा एक दया करना। मेरी छाया से दूसरों को शीतलता मिले, लेकिन लोगों को पता नहीं चलना चाहिये कि मेरे द्वारा दूसरों को सुख मिला है, क्योंकि मैं बदला नहीं चाहता। मैं संसार से प्रशंसा नहीं चाहता। भला करूँ, लेकिन भला करने का दिखावा नहीं करूँ। अच्छाई हूँ, लेकिन अच्छा होने का प्रमाण किसी से नहीं लूँ। तेरा प्यार मिल गया तो अच्छी बात है। यह भक्ति का चरम रूप है।

धार्मिक व्यक्ति की विशेषता यही होनी चाहिए- दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान। तुलसी दया न छोडिए, जब तक घट में प्राण।।

जब तक जीवन चल रहा है, तब तक इंसान को दयालु रहना चाहिए। जियो और जीने दो। धार्मिक आदमी की यही पहचान है। वह स्वयं भी सुख से जीता है और दूसरों को भी सुख से जीने देता है। दूसरों का सुख नहीं छीनता। अपने वैभव रूप पर इतराना नहीं। जिस व्यक्ति के हृदय में करूणा है, वह धार्मिक है। जो आदमी धार्मिक है, वह कठोर नहीं हो सकता। सभी ग्रंथों का सार, सभी महापुरूषों की वाणी का सार यही निकलता है कि व्यक्ति को दयालु होना चाहिए।

दया धर्म की जननी है। जहाँ दया नहीं वहाँ भगवान रहते नहीं। दया सत्पात्र पर दिखाई जाय तो उसका फल शुभ होता है। कुपात्र पर की हुई दया अन्त में दु:खदायिनी ही सिद्ध होती है। सर्प पर दया करके उसे दूध पिलाओ, उसका विष ही बढ़ेगा। बिच्छू को दयावश जल से निकालो, वह डंक मार ही देगा। मतवाले हाथी के घावों को पोंछो, वह प्रहार करेगा ही, चूहे पर दया करके उसे अन्न खिलाओ, वह काटेगा ही। दुष्टों को दया करके आश्रय दो, वे बिना दुष्टता किये मानेंगे नहीं, क्योंकि ये सब अपने स्वभाव से विवश हैं। जैसे उपकार करनेवाले के प्रति भी क्रूरकर्मा प्राणी अपकार करने को विवश हैं, उसी प्रकार धर्मात्मा दयावान पुरुष भी दया करने को विवश हो जाते हैं। उनका चाहे कोई कैसा भी बड़े-से-बड़ा अपराध करे, किन्तु जब वह दीन भाव से उनकी शरण ग्रहण कर लेता है, तब फिर उसे वे अभयदान दे देते हैं। फिर उस पर प्रहार नहीं करते हैं।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सोचते हैं कि अपना भला तो सबका भला। जबकि सोचना यह चाहिए कि सबके भले में ही

अपना भला है। जो लोग इस दृष्टि से सोचते हैं वे सदा ही सुखी रहते हैं। वे सदैव उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते रहते हैं और सफलताएं उनके कदम चूमती हैं। जो दूसरों के लिए त्याग करते हैं तथा जिनका परिश्रम दूसरों के लिए होता है, संसार में उसी का नाम सार्थक है। मगर हम देखते हैं कि यहां सभी अपने लिए जी रहे हैं। दूसरों के हित की जब आदमी बात सोचता है तो अक्सर उसके लिए सफलता का द्वार खुल जाता है। कहा जाता है कि हाथ की पांचों अंगुलिया एक जैसी नहीं होती। कुछ लोग ऐसे भी है जो दूसरों का भला करके ही संतोष प्राप्त करते हैं। उन्हें इसमें महान आनंद की अनुभूति होती है और वह आत्मविभोर हो जाते हैं। पर यह कार्य उच्च विचार के लोग ही करते हैं। उनकी विचारधारा परोपकार की होती है और वे सभी भावना के प्रवाह में बहते रहते है।

मैं भूखा था, ईश्वर ने खाना दिया। मैं प्यासा था, ईश्वर ने पानी दिया। मैं निराश्रित था ईश्वर ने स्थान दिया। मैं नंगा था, ईश्वर ने कपड़े दिए। मैं बीमार था, ईश्वर ने सेवा की। मैं संकटों में जकड़ा पड़ा था, ईश्वर ने मुझे सहायता पहुंचाई-चलो मेरे स्वर्ग में। धर्मात्माओं ने पूछा- हमने कब आप को भोजन, पानी, आश्रय, वस्त्र आदि दिए और कब सेवा सहायता की? ईसामसीह ने उत्तर दिया- मैं तुमसे सच कहता हूं, जो कुछ दीन-दुखियों के लिए किया गया है वह मेरे ही लिए है।

परमात्मा ने हमें ऐसी शक्तियां दी हैं, सामर्थ्य दिए हैं, ऐसी प्रतिभा प्रदान की है, जिसे हम दूसरों के कल्याण के लिए भी प्रयोग कर सकते हैं। हमारे अकेले प्रयत्नों से हमारे अपने जीवन में भी पूर्ण प्रगति और विकास संभव नहीं है। केवल हम अपने भले की चिंता कर लें, दूसरों से हमें कोई मतलब नहीं हो, इससे स्वार्थ की गंध आती है। यदि कोई व्यक्ति सिर्फ अपने ही प्रयत्नों से अपना भला कर पाता तो संसार का प्रत्येक मानव अच्छी हालत में होता, क्योंकि कोई भी मनुष्य बुरी हालत में नहीं रहना चाहता। हम सब अमीर होने की आकांक्षा करते हैं, परंतु अधिकांश लोगों की आकांक्षा पूरी नहीं होती।

बिना दूसरों का सहयोग पाए कोई भी व्यक्ति औसत स्तर से ऊंचा नहीं उठ सकता। न केवल व्यक्ति, वरन यह मानव समाज भी आगे नहीं बढ़ सकता। यदि सिर्फ अपने ही लिए सोचा जाए, तो कोई खोजकर्ता ज्ञान की खोज में अपना सारा जीवन क्यों लगाएं? संसार का सारा ज्ञान-विज्ञान इसी कारण विकसित हो सका है कि उनका विकास करनेवालों ने अपने स्वार्थ की उपेक्षा की और समूची मानवता के कल्याण का दृष्टिकोण अपनाया। जब दूसरों के हित-अहित की परवाह की जाती है, तब अपना लाभ-अलाभ गौण हो जाता है। तभी समाज में उन्नति और प्रगति की संभावनाएं बनती हैं। परोपकार ही हमारी उन्नति का मूल कारण है और जब भी इस देव वृत्ति को छोड़ कर स्वार्थपूर्ति को अपनाया जाता है, तो समाज में पतन के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं।

प्रकृति के कण-कण में इस देव वृत्ति का परिचय मिलता है। नदियां अपने तटवर्ती इलाकों को सींचती और प्राणियों की प्यास बुझाती हैं, पर अपना पानी स्वयं नहीं पीतीं। वृक्ष अपने फलों का स्वाद कभी नहीं चखते, वे उन्हें दूसरों की क्षुधा पूरी करने के लिए समर्पित कर देते हैं। गाय अपना दूध स्वयं नहीं पीती।

जब कोई वैज्ञानिक अपनी प्रतिभा द्वारा नए-नए आविष्कार करता है, तो वह स्वयं इतना लाभ नहीं उठाता, जितना कि दूसरे लाभान्वित होते हैं। परोपकार करनेवाला जितना सुखी और संतुष्ट रहता है, उतना संतुष्ट वह व्यक्ति नहीं रहता जो

सिर्फ अपने लाभ या प्रयोजन की दृष्टि से जीवन जीता है। वैसे तो संसार में एक से बढ़कर एक सम्पन्न व्यक्ति मिल जाएंगे, पर वे सुख और संतोष से कोसों दूर होंगे। संसार में सब प्रकार के सुख मिल जाएं और संतोष प्राप्त न हो तो सभी सुख व्यर्थ हैं। परोपकार से हमारी आत्मा को संतोष मिलता है। परोपकार की प्रवृत्ति अपना कर हम विश्वव्यापी आत्मा की सेवा करते हैं और उससे आत्म संतोष के रूप में जो तृप्ति मिलती है- वही हमारी संपत्तियों को सार्थक करती है। परोपकार की आध्यात्मिक उपयोगिता यह है कि हम दूसरों की आत्मा को सुख पहुंचा कर अपनी आत्मा को सुखी बनाते हैं।

इसीलिए हमारे मनीषियों ने सदा परामर्श दिया है कि अपने लिए जीने की वृत्ति छोड़कर उपलब्ध साधनों और अपनी क्षमताओं का एक अंश सदा परोपकार में लगाना चाहिए। जो परस्पर सहयोग, सेवा, सहायता और करुणा करते हैं, वही लोग समाज को प्राणवान और जीवंत बनाए रखने का काम करते हैं। हमें परोपकार को जीवन का एक अनिवार्य व्रत मान कर स्वीकार करना चाहिए।

बिना बजाए निशदिन बाजे घंटा-शंख नगारी रे। घंटा-शंख उसी मंदिर में बज रहा है। उस चीज का आप अपने अंदर अनुभव करो। क्या है वह? शांति। परमानंद। आज लोग समझते हैं कि क्रांति खत्म हो जाएगी तो शांति हो जाएगी। परंतु ऐसा नहीं है। जिन देशों में क्रांति नहीं है, क्या वहां शांति है? यही तो है दिमाग का चक्कर। लोग समझते हैं कि अगर हम कमरे में से अंधेरे को बाहर फेंक दें तो अपने आप उजाला हो जाएगा। लोग बाल्टी लेकर अंधेरे को कमरे की खिड़की से बाहर फेंकने की कोशिश करते हैं। क्या आप अंधेरे को बाहर फेंक सकते हो? नहीं। आपको अंधेरा दूर करने की जरूरत नहीं है, सिर्फ ज्ञानरूपी दीया जलाओगे, तो अंधेरा अपने आप भाग जाएगा। अपने जीवन के अंदर रोशनी लाओगे तो अंधेरा अपने आप दूर हो जाएगा। कोई रोशनी लाने की कोशिश नहीं कर रहा है। अशांति एक अंधेरा है। अगर तुम उस अशांति रूपी अंधेरे को दूर करना चाहते हो तो ज्ञान का दीपक जलाओ। जब ज्ञान का दीपक जलेगा तो अज्ञानता का अंधेरा अपने आप दूर हो जाएगा और तुम्हारे जीवन में भी शांति आयेगी। जीव मात्र पर दया करनी चाहिए। जीव मात्र पर मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी, कीट पतंग भी है।

दान कहते हैं किसी अपनी वस्तु को योग्य पात्र को सविधि समर्पित करके उसमें से अपनापन हटाना। अन्नदान, गौदान, जलदान, फलदान, द्रव्यदान, पृथ्वीदान, कन्यादान, आदि-आदि अनेकों प्रकार के दान हैं। किन्तु इन दानों को निर्मत्सर होकर देनेवाला ही परम पुण्य का अधिकारी बन सकता है। जो भूतों से तो द्रोह करता है और ऊपर से दान करता है तो उसका सभी दान व्यर्थ है। इसलिये भूतद्रोह का त्याग करना यह परम दान कहा गया है।

शुद्ध न्याय में शुद्ध दया होनी चाहिए। न्याय का विरोध करनेवाली दया, दया नहीं बल्कि क्रूरता है। पापी हों या पुण्यात्मा अथवा वध के योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उन सब पर श्रेष्ठ व्यक्ति को दया करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई नहीं है जो सर्वथा अपराध न करता हो। दया असल में वह भाषा है जिसे बहरे लोग सुन सकते हैं और गूंगे समझ सकते हैं।

दया जिसमें दया है वह भीतर से सुंदर है। आत्मा के आनंद के रूपी सामंजस्य का बाहरी रूप दया है, दुनिया में ऐसा कोई नहीं जो अपराध न करता हो, आज तक श्रेष्ठ मनुष्यों ने अपराधी पर भी दया की है। दया मानव के सौंदर्य में चार

चांद लगाती है, दया का लिबास (पेहनावा) चरित्र को सुंदर बनाता है।

परोपकार- परोपकार की प्रवृति से जीवन उत्सव बनता है। मनुष्य संग्रह करने वाला प्राणी है। इसलिये वह संकुचित स्वभाव का हो चुका है। केवल लेते रहने की आदत व्यक्ति को कठोर बनाती है, उससे वह सतत तनाव में रहता है। इसके बजाय देने की आदत हो तो जीवन एक उत्सव बन जाता है जैसे वृक्ष अपने फल औरों को देता है, लेकिन स्वयं प्रसन्न और हरा भरा रहता है। नदी पानी देती है और आनन्दपूर्वक बहती है। व्यक्ति अपनी आवश्यकता पूरी कर अतिसंग्रह की लालसा छोड दे तो संग्रह के कारण आनेवाला तनाव और चिन्तायें कम होकर मन मुक्त होगा। मन पर बोझ बननेवाली आशायें समाप्त हो जायेगी और वह व्यक्ति हास्य-नृत्य की प्रतिमूर्ति बनेगा। इस तरह से परोपकार की आदत से जीवन में आनन्दोत्सव प्रवेश करता है।

भारतीय संस्कृति में परोपकार, दया, दान को सदा एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, उसे जीवन का एक मूल्य माना गया है। हमारे ऋषि मुनि निरन्तर यह कहते आये हैं कि पूरी सृष्टि केवल परोपकार के लिए अपना कार्य करती रहती है। एक संस्कृत सुभाषित कहता है-

परोपकाराय फलन्ति वृक्षः। परोपकाराय वहन्ति नद्याः॥

परोपकाराय दुहन्ति गायः। परोपकारार्थ इदं शरीरम्॥

अर्थात् लोगों की भूख मिटाने के लिए वृक्ष फल फलों को धारण करते हैं। जीवित सृष्टि की प्यास मिटाने के लिए नदियां बहती हैं। प्राणि अपना जीवन सुखमय बना सकें, इसलिए गायें दूध देती हैं। उसी प्रकार हमारा शरीर भी परोपकार के लिए ही बना है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है दधिचि ऋषि।

असुरों के निर्दालन के लिए देवेन्द्र को नये अस्त्रों की आवश्यकता निर्माण हो गयी। यह अस्त्र बनना तभी सम्भव होता, जब कोई महर्षि अपना शरीर त्यागकर अपनी अस्थियां समर्पित करे। देवराज इन्द्र ने महर्षि दधिचि की प्रार्थना की। महर्षि ने समय की नजाकत को पहचानकर अपनी अनुमति दी और अपने शरीर का दान कर दिया।

कोई मूल्य अच्छा है, महत्वपूर्ण है इसलिए हम उसे अपने जीवन में उतारे, ऐसा सहसा नहीं होता। पुराणकारों ने परोपकार को धर्म के साथ जोड़ दिया। दान को पुण्य बताया गया। हमारे पूर्वजों ने धनसंचय के बजाए पुण्यसंचय को अधिक प्रतिष्ठा दी। प्राचीन काल से यहां के राजा महाराजा, धनिक, श्रेष्ठी लोग देशभर में यह काम बड़े मनोयोग से करते आए हैं। इसी कारण देशभर में नदियों पर अच्छे घाट बनवाए गए। निवास बने, पर्वतों की ऊंचाई पर बने मंदिरों तक सीढ़ियां बनी, पीने के पानी की व्यवस्था की गई, स्नान के लिए कुण्ड बनें, यात्रा के मार्ग पर विश्राम के लिए उद्यानों का निर्माण हुआ, मार्ग के दोनों ओर छाया के लिए पेड़ लगाए गए, अन्नदान की व्यवस्था हर देवस्थान में हो गयी।

पुण्यसंचय को प्रतिष्ठा थी, इसीलिए अनगिनत अज्ञात लोगों ने इस काम के लिए अपने हाथ बढ़ाएं। इसी भाव को प्रकट करते हुए संत कबीर कहते हैं- **दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप। जहां क्षमा, तहां धर्म है, जहां दया तहां आप॥**

हम मानते है कि अगर हम दूसरों को अपने से ज्यादा तवज्जो देगे तो जिस प्यार के हम हकदार है, वह हमें मिल जाएगा।

पर वास्तव में ऐसा नहीं होता है। इस तरह सम्मान नहीं मिलता है और आप दूसरों पर निर्भरता विकसित कर लेते हैं। आप दूसरों की खातिर काम करते हुए अपने खालीपन को भरते है इस आशा से कि बदले में आपको जिस चीज की जरूरत होगी वह वे देंगे। लेकिन अकसर ऐसा होता नहीं है क्योकि हर कोई आपके प्रति आभार प्रकट ही करे यह संभव नहीं है। इसलिए अपनी जरूरतों को पहचानते हुए उन्हे अहमियत दें। लोगों को लगता है ऐसा करना स्वार्थ की निशानी होता है जबकि यह बात सच नहीं है। असल में होता यह है कि हम लोग दूसरों को इस उम्मीद मे खुश करने में लगे रहते है कि वे हमारे उदाहरण से कुछ सीखकर उसी तरह का व्यवहार हमसे करेंगे। जो लोग हमेशा दूसरों की खातिर जीते हैं वे न सुनना पसंद नही करते। बदले में अगर कुछ न मिले तो उससे उत्पन्न निराशा से आप अगर लोगों को खुशी देना भी चाहते है तो उसका कोई महत्व नही रह जाता। अपने को खुश रखने के तरीके ढूंढे। अगर आप स्वयं से संतुष्ट होंगे तो लोग आपका साथ पसंद करेंगे। निरंतर प्रयास करते हुए जबर्दस्ती किसी की सहमति खरीदने की कोशिश न करे। किसी को खुश करने के लिए बहुत ज्यादा मेहनत करना इस बात की निशानी है कि आप चाहते है हर कोई आपसे प्यार करे। इससे यह भी पता लगता है कि आप स्वयं से प्यार नहीं करती। स्वयं से प्यार करना अहंकार का प्रतीक नहीं है, वरन् इस बात का अहसास है कि आपकी भी उतनी ही अहमियत है जितनी कि दूसरों की। अपनी खुशियों को अपनी प्राथमिकता बनाएं। इससे न सिर्फ आप भीतर से बेहतर महसूस करेंगे वरन् लोग भी आपके दृष्टिकोण को समझेंगे कि आप बिना किसी बाध्यता के उन्हे खुशी दे रहैं है, आपकी ज्यादा कद्र करेंगे।

अगर आप अपने जीवन को सार्थक और शरीर को भगवान का मंदिर बनाना चाहते हैं तब परोपकार करना सीखें। स्वयं के लिए सभी जीते हैं, परंतु जो दूसरों के लिए त्याग करता है, परोपकार करता है, दूसरों के लिए परिश्रम करता है, वही सच्चा आदमी है। उसी व्यक्ति ने मानव जन्म सार्थक किया। पशु-पक्षी भी मरने के बाद परोपकार करते हैं। परंतु मरने के बाद मनुष्य के शरीर का किसी को भी, एक कौड़ी का फायदा नहीं होता। संतों का जीवन भी परोपकार के लिए होता है। संत, महात्मा जप, तप, आराधना करते हैं। वे लोककल्याण के लिए लगातार योगदान देते हैं। अच्छा कार्य करने का समय आता है तब व्यक्ति पीछे हट जाते हैं। कोई अच्छा कार्य कर रहा है तब वे सोचते हैं कि इसके पीछे उस व्यक्ति का जरूर कोई स्वार्थ छिपा है। ऐसे लोग अपने फायदे के लिए दूसरों का नुकसान करते हैं। सुविचार द्वारा परोपकार करें और अपना जीवन सार्थक करें।

जिस प्रकार प्रकाश देना यह सूर्य का स्वभाव ही है उसी प्रकार परोपकार करना- यह आत्मा का स्वभाव होता है। सद्धर्म की प्राप्ति के लिये जीवन में परोपकार गुण का होना अत्यावश्यक है। जीवन को सफल बनाने के लिये परोपकार को जीवन मंत्र बनाना होगा। परोपकार से दान धर्म की सिद्धि होती है। मार्ग-भ्रष्ट को मार्ग बताना यह सबसे बडा परोपकार है। पर-हित (परोपकार) के समान कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है।

पानी बरसाने वाले मेघ खेतों का अन्न स्वयं नहीं खाते। इसी तरह से सज्जनों की विभूति परोपकार के लिए है। शरीर को देवालय कहा गया है, क्योंकि जीव केवल शिव है।

कहते हैं कि आदिकाल के ऋषि वैदिक थे। जो कृषि किया करते थे। कृषि इस अर्थ में कि जैसे किसान भूमि में बीज डालने के पूर्व सारी धरती को हल से जोत डालता है, ठीक वैसे ही आदि-ऋषि कलहयुगी सृष्टि को सतयुग में बदलने या युगसंपरिवर्तन अर्थ पुरानी मुर्दा परंपरा को अपने त्रिशूल रूपी ब्रह्म-मुहूर्त के समय चैतन्य बीज बोते थे।

इसीलिए ब्रह्मा को नई सृष्टि का प्रथम ऋषि कहा गया है जिसने कृषि धर्म का आविष्कार किया। वे प्रथम मनु का विधान बनानेवाले भी थे। जिन्होनें दैवी सनातन धर्म की ज्ञानामृत के कलश द्वारा नई सतयुगीधय सृष्टि की नींव डाली। उनके बाद ब्रह्मा मुखवंशावलियों द्वारा यह प्रकार्य आगे बढ़ाया गया। उनमें जो अनन्य वत्स थे। उन्होंने सप्त-ऋषियों की ख्याति प्राप्त की। वे थे ब्रह्मकुमार ही किंतु अपने पितामह की आज्ञा शिरोधार्य कर, मनस्वी से तपस्वी और अंतत: ऋषि बने। ये सारे ऋषिगण (विश्वामित्र, याज्ञल्क्य, वशिष्ठ, भारद्वाज, शांडिल्य, नारद) ने धर्म के जगत को मंत्र, तंत्र एवं यंत्र दिये। इसलिए ये ऋषिवर सृष्टि के प्रथम वैज्ञानिक थे। उन्होंने उस समय की विकृत भाषा को भी बदलकर, संस्कृत में बदला। चूंकि वे स्वयं आदिकाल के राक्षस या दैत्य थे, इसलिए वे स्वयं भी आदित्य (विष्णु) बने और हरिवंश की स्थापना की। इस हरिवंशराय में रावण का भी नाम लिया जा सकता है जिसने ब्रह्मा के महायज्ञ में अपने दसों मस्तकों की आहुति दी थी। अन्य ऋषिगण अपनी सिद्धियों के व्यामोह में नही फंसे जबकि रावण वैदिक ब्राह्मण होते हुए भी अपने ऋषि-धर्म से च्युत हुआ। यद्यपि रावण राम की तरह महर्षि न बन सका, तथापि उसने तपस्या के बल से तुंगनाथ के शिखर की ऊंचाई तो पाई ही। अब उसने अपनी सिद्धियों के बल से भोग की नगरी लंका बसाना चाहा। शिवजी को तो उसने अपनी सोने की नगरी में ले जाना चाहा किंतु उसने अपनी साधना की सिद्धि का कामभोग के लिए उपयोग किया। जिस कारण वो वेद-पाठी होते हुए भी कृष्ण और राम की तरह अच्युतम न बन सका। वो अपनी वैज्ञानिक सिद्धियों के उपभोग के कारण श्रापित हुआ और उसका पतन हुआ। उसकी विद्वता उसके विध्वंस का कारण बनी।

जीवन उसीका सफल माना जाता है जो परोपकार में तल्लीन रहता है, परोपकार का प्रत्येक कार्य स्वर्ग की ओर एक कदम उठाना है। इस परिवर्तनशील संसार में जन्म लेना मरना सार्थकशील होता है।

संत पुरुषों की संपदा लोक कल्याण के लिए होती है। वृक्ष फल दूसरों के लिए देते हैं। गाय दूध दूसरों के लिये देती है, नदियाँ परहित के लिए बहती है। जो दूसरों के लिए जीते हैं वे ही असल में जीते हैं।

परोपकार का प्रत्येक कर्त्तव्य कर्म स्वर्ग की ओर एक कदम है। सज्जनों का लेना भी देने के लिए ही होता है, जैसें बादलों का। वह धरती की नदियों से पानी लेते है और फिर उसे ही वापस कर देते हैं।

दान व दयालुता सर्वाधिक आनंददायी, सुखदायी कृत्य है। यह समाज के प्रति आपके कर्त्तव्यों को, सक्रियता प्रदान करते हैं। परोपकार व परहितपरता अत्यधिक संतोषजनक कर्म है। यह सृजनात्मकता/मौलिकता/रचनात्मकता के लिए बाधक है। केवल ईश्वर ही पूर्ण, सर्वसमर्थ और परोपकारी है।

मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं सभी जीव इसकी याचना करते हैं। मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष सीढ़ी है। मोक्ष के लिए कल्याणकारी है। ज्ञान वैराग्य और भक्ति को देनेवाला है। संसार में दरिद्रता के समान कोई दु:ख नहीं तथा

संतों के मिलने के समान संसार में बड़ा सुख नहीं। मन, वचन और शरीर से परोपकार करना संतों का सहज स्वभाव है। संत दूसरों की भलाई के लिए दुख सहते हैं। कृपालु संत वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं। दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं। वे पराई संपत्ति का नाश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं। दुष्ट का अभ्युदय जगत् के दु:ख के लिए ही होता है। संतों का अभ्युदय सदा ही सुखकर है जैसे चन्द्रमा और सूर्य का उदय विश्वभर के लिए सुखदायक है। परनिंदा के समान भारी पाप नहीं हैं। शास्त्रों में अहिंसा को परम धर्म माना है। दया और परोपकार ही सर्वश्रेष्ठ है। दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान। तुलसी दया न छोडिये जब लग घट में प्राण।।

सम्बन्धियों के दु:ख से दु:खी होने का नाम है कृपा। अपने बाल बच्चोंपर दया नहीं होती, उनके प्रति सहज मोह होता है। कृपा दया से बहुत छोटी है। दया तो देश, काल, पात्र की अपेक्षा भी नहीं करती। प्राणिमात्र उसकी सीमा है। पर जो सब पर दया के भाव रखता है उसको कभी किसीसे भय नहीं होता। भय सदा हिंसासे होता है। जिसने अपने हृदय से हिंसाकी भाव को निकाल दिया है, प्राणिमात्र को अपना बन्धु समझकर उनके दु:ख में दु:खी होता है, उसे किसी प्रकार का भय नहीं। धर्म की तृतीय पत्नी दया से अभय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

संसार में कुछ परोपकारी पुरुष भी होते हैं, जो अपने शरीर पर कष्ट सहकर दूसरे के दुखों को दूर करके उन्हें सुखी बनाते हैं। दूसरों की विपत्तियों को स्वत: ले लेते हैं। जो स्वेच्छा से परेच्छा से किसी को कुछ देताहै, उसे उसका फल तो अवश्य ही मिलेगा। दिया हुआ व्यर्थ तो जायगा ही नहीं, उसका फल तो मिलेगा ही। यह भी है तो व्यापार ही, किन्तु यह उच्चतम व्यापार है।

यह सत्य है, अपनी-अपनी देह सभी को प्यारी होती है। प्राणों की रक्षा करनी चाहिये, किन्तु दधीचि जैसे परोपकारी महापुरुष इसके अपवाद हैं। परोपकारी पुरुषों के लिये तो संसार में कुछ अदेय वस्तु है ही नहीं। धर्म की, देवताओं की रक्षा करना तो महापुण्य का कार्य है, परोपकारी पुरुष तो पशु पक्षियों के लिये प्राण दे देते हैं। हम सबसे अधिक स्नेह शरीर से करते हैं। शरीर की रक्षा और सुख के लिये ही हमारे सब व्यापार हैं। घर बनाते हैं, तो इसीलिये कि वर्षा, जाड़े तथा गरमी से शरीर की रक्षा हो सके, शरीर सुखी रहे, उसे कष्ट न हो। सवारी, वाहन आदि इसी लिये रहते हैं, कि शरीर को श्रम न हो। कुछ लोग धर्म धन उपार्जन करके भरसक पर पीड़ा से बचकर शुद्ध आजीविका द्वारा धन पैदा करके अपना तथा अपने परिवारवालों का पालन करते हैं। वे धर्मात्मा पुरुष हैं, वे सच्चे पुरुष हैं। किन्तु जो पर उपकार के लिये अपने शरीर को भी अर्पण कर देते हैं, वे मनुष्यों की अपेक्षा बहुत ऊँचे हैं, देवताओं से भी बढ़कर है। मोह उस वस्तु से करना तो उचित है, जो नित्य हो शाश्वत हो। यह देह अनित्य है, क्षणभंगुर है, नाशवान है, एक न एक दिन अवश्य ही नाश हो जायगी। जब इसे अपने आप नाश होना ही है तो इसे परोपकार में क्यों न लगा दें। यदि इसी अनित्य देह से नित्य वस्तु की प्राप्ति हो जाय, तो ऐसे लाभप्रद व्यापार को कौन नहीं करना चाहेगा? आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि व्यापार तो पशुपक्षी मनुष्य सभी में समान रूप से होते हैं। मनुष्यों में यही एक विशेषता है, वह इस अनित्य शरीर से जीवों पर दया करते हुए धर्म और यश का उपार्जन कर सकता है। जिसने यह सब नहीं किया, अपनी कीर्ति को चिरस्थाई नहीं बनाया वह तो

पशुओं के समान है। सब प्राणियों से अधिक निन्दनीय और शोचनीय है। मनुष्य में धर्म ही पशुओं से विशेष है। धर्महीन पुरुष पुच्छ विषाणहीन पशु ही है। दूसरों के दु:ख में दु:खी होना और दूसरों के सुख में सुखी होना यही सच्चा परोपकार है। धन, ऐश्वर्य- धन आज तक किसी का हुआ है? आज जिस रूपये को आप अपना कह रहे हैं, कल वही दूसरे के पास चला गया, तो वह उसे अपना कहता है, इस प्रकार कितने लोग धन को मेरा-मेरा कहकर मर गये, किन्तु धन किसी के साथ नहीं गया। वह किसी का भी नहीं हुआ। फिर धन में सुख हो सो भी बात नहीं। जो पुरुष इन दूसरों के ही भोग्य तथा क्षणभंगुर जन धन और शरीरादि से दूसरों का उपकार नहीं करता, वह जीता हुआ मृतक तुल्य है।

जो परोपकार के लिये हँसते-हँसते शरीर को त्याग देते हैं, उनसे बढ़कर संसार में दूसरा कौन होगा। वे भगवान के अंशावतार हैं, त्याग की मूर्ति हैं, परोपकार की सजीव प्रतिमा हैं और हैं वे नित्य और शाश्वत यशस्वरूप। अत: ऐसे परोपकारी सर्वस्वत्यागी महापुरुषों के पादपद्मों में कोटिश: प्रणाम है। जिस जीवन में शरीर का मोह है, वह जीवन मरण के तुल्य है। जो मरण परोपकार के निमित्त है, वह जीवन से भी बढ़कर महान जीवन है।

वृक्ष परोपकार के लिए फलते हैं, नदिंया परोपकार के लिए बहती हैं, गायें परोपकार के लिए दूध देती हैं, यह शरीर परोपकार के लिए ही है।

परोपकार दूसरों को तो प्रसन्नता देते ही हैं करनेवाले को आत्म-संतुष्टि भी प्रदान करते हैं। मेट्रो में एक व्यक्ति बंद होते दरवाजों में अपना बैग लेकर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। भागते-भागते उसने खुद को खतरे में डाल दिया था। तभी प्लेटफार्म पर खड़े एक व्यक्ति ने उसे बांहों में भर नीचे उतार लिया। पता चला कि उसका बहुत जरूरी सामान भाई के पास गाड़ी में ही छूट गया था। बचानेवाले ने भाई का नंबर लेकर उसे संदेश दिया कि वह अगले स्टेशन पर उतर जाए। फिर उसको दूसरी ट्रेन से अगले स्टेशन पर पहुंचा दिया। भाई को देखकर जो सुकून उसके चेहरे पर देखा, वह बचानेवाले को लंबे समय तक आत्मसंतोष देता रहा।

पारस्परिक विरोध की भावना का नाश करना और प्रेम भाव को बढ़ाना परोपकार कहलाता है। प्रकृति हमें निरंतर यह संदेश देती रहती हैं पवन प्राण वायु देकर हमारी गति को संचालित करता है। नदियां अपना अनंत जल जगत के लिए अर्पित कर देती हैं। वृक्ष अपनी छाया और फल दूसरों के लिए प्रस्तुत करते हैं। यदि हम महान लोगों के इतिहास को देखें तो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और मदर टेरेसा की याद आना स्वाभाविक है। गांधी जी ने देश के हित के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर दिया और मदर ने अनगिनत अनाथों, विकलांगों और रोगियों को अपने सीने से लगाया। जबकि मानव जीवन की सार्थकता इसी में है कि अपने बारे में सोचने के साथ-साथ हम दूसरों के बारे में भी सोचें। परोपकार करने से खुद को भी खुशी मिलती है। कभी किसी जरूरतमंद की मदद करके देखिए, आप पाएंगे कि अपने जीने की सार्थकता का अहसास होने लगा है। परोपकारी व्यक्ति दुखियों के प्रति उदार, निर्बलों के रक्षक और जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत होते हैं। परोपकार से जो आनंद हमें मिलता है, वह एकदम अलौकिक होता है। इसीलिए परोपकारी व्यक्ति खुद भी सुखी रहता है और दूसरों में भी सुख बांटता चलता है। वह खुद तो ऐसा करता ही है, दूसरों को भी प्रेरित करता है।

जो दूसरों के लिए जीते है उनके जीवन ही धन्य है। श्रेष्ठ पुरुषों की जीवनी, दर्शन और गुणों से शिक्षा मिलती है वे शिक्षालय ही है। जैसे चादर अपने स्वामी की शरण में रहती है, उसी प्रकार मानव को भी रहना चाहिए। कठपुतली सूत्रधार के रूप में दिखाई देती है। विश्व में ऐसा कोई काम नहीं जो मनुष्य न कर पाये। सभी प्राणियों की सेवा मनुष्य कर सकता है। मानव के अलावा कोई प्राणी ऐसा नहीं कर सकता। परमात्मा की तृप्ति से सबकी तृप्ति हो जाती है। अतिथि सेवा भी महायज्ञ है जो कुछ हम भोजन के लिए लाते है, दूसरों को देते है वह समाप्त हो जाए, हम भूखे रह जाएं तो वह अश्वमेघ यज्ञ के समान है। सारे संसार को भोजन और जल देकर स्वयं भोजन करना कितना महान कार्य है। हमें सभी के लिए अपना जीवन धारण करना चाहिए। दूसरों के परोपकार की चिंता करने वाले को अपनी चिंता नहीं सताती। अपनी चिंता दु:ख का स्त्रोत है जो दूसरों के विषय में सदा चिंतन करता है उसके विषय में परमात्मा चिंतन करने लगता है। श्रेष्ठ लोगों के संपर्क से मंदबुद्धि भी बुद्धिमान बन जाते है जैसे निर्मली फल से जल निर्मल हो जाता है।

हम जैसे जीते है उसी तरह बोलते है। महापुरुषों के मार्ग पर चलने पर प्रतिकूलता भी उन्नति तुल्य रहती है। दृढ़ इच्छाशक्ति संपन्न लोगों का मार्ग भयंकर कठिनाइयां नहीं रोक पाती। सतत् चलने वाली चींटी हजारों योजन पार कर जाती है, न चलता गरुड़ एक पग आगे नहीं जा पाता। विनम्रता अपयश का नाश करती है विनयपूर्वक सतत् दूसरों के परोपकार में वे ही लग पाते है जो आत्मप्रदर्शन से दूर होकर स्वार्थ लिप्सा से भागते रहते है। कभी स्वार्थ में दिया गया उपदेश असर नहीं डालता। व्यंग्य से दिया गया ज्ञान विपरीत प्रभाव छोड़ता है।

उपकार-अपकार- संसार में जिस व्यक्ति ने जन्म लिया है उस पर पूरे ज्ञात-अज्ञात समाज का ऋण है। व्यक्ति का जीवन सजाया संवारा गया है और उसे किसी योग्य बनाया गया है तो यह उसका केवल अपने निजी प्रयास का ही नहीं है बल्कि अनेक व्यक्तियों के प्रयास का परिणाम है। हम समाज के इतने ऋणी हैं तो हमें भी समाज के लिए अवश्य कुछ करना चाहिए। संसार में ऐसे अनेक लोग हुए भी हैं और आज भी हैं, जिनका जीवन दूसरों के हित, कल्याण, उत्थान एवं कष्ट निवारण के लिए पूरी तरह समर्पित है। ऐसा ही जीवन धन्य है जो दूसरों के काम आता है। दूसरी ओर आज की अत्याधुनिक जीवन धारा है जिसमें व्यक्ति ने स्वार्थ को ही मूलमंत्र मान रखा है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वह समाज को बड़ी से बड़ी क्षति पहुंचाने में भी नहीं हिचकिचाता। ऐसे व्यक्ति का जीवन, उसका सारा क्रियाकलाप, सारा परिश्रम, सारा प्रयास अपने तक ही सीमित रहता है। सभी महात्मा, विचारक एवं समाज सेवक इसी बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति को दूसरों के काम आना चाहिए।

आप यदि जीवन में अभाव, पराधीनता और नीरसता का अनुभव करते हैं, तो इसका अर्थ है कि आप जीवन से विमुख हो गए हैं। आपमें जीवन होते हुए भी आप इससे दूर हो गए हैं। भोग की रुचि हमें योग से विमुख कर देती है। योग की माँग सबल हो जाए, तो भोग की रुचि नाश हो सकती है। भोग में जीवन नहीं है, योग में जीवन है। ठीक कर्त्तव्य के पालन का फल है- योग की प्राप्ति। सामर्थ्य-विरोधी कर्म आप कर नहीं सकते और ज्ञान-विरोधी कर्म आपको करना नहीं चाहिए। तो जो कर्म हमारे ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार हो, उसका करना कठिन नहीं है। इसमें यह शर्त नहीं है कि हम परमात्मा

को मानते है कि नहीं, आत्मा को जानते है कि नहीं। कर्त्तव्य का विधान सबके लिए समान है। हमें बल मिला है- संसार की सेवा के लिए, ज्ञान मिला है- संसार से संबंध तोड़ने के लिए और विश्वास मिला है- परमात्मा से संबंध जोड़ने के लिए।

जब हम बल के द्वारा अपने सुख के लिए निर्बलों को सताने लग जाते है, तो हम स्वयं निर्बल हो जाते है। यह जीवन का सत्य है। जब हमारा बल किसी और के काम आता है, तो किसी और की वस्तु हमारे शरीर के काम आती है। शरीर के ही काम आती है, हमारे अपने काम तो फिर भी नहीं आती। परन्तु जब हम शरीर को अपना मान लेते है और परिवार को संसार से अलग मान लेते है, तब हम अनुभव करते है कि हमारा बल शरीर के काम आया और हमारा शरीर परिवार के काम आया। वास्तव में तो शरीर, परिवार अथवा समाज संसार का ही एक अंग है। इस दृष्टि से हमको यह मानना पड़ेगा कि संसार हमारे काम आनेवाली चीज नहीं है। तभी हम संसार के काम आ सकेंगे और अपने भी। जब हम उदार हो जाते है, तभी संसार हमें पसंद करता है। उदारता में रस है। उदारता का अर्थ थोड़ा दान दे देना अथवा थोड़ा शारीरिक काम कर देना नहीं है। उदारता का असली अर्थ है कि हम सुखियों को देखकर प्रसन्न हो जाएं और दुखियों को देखकर करुणित हो जाएं। करुणा में रस है, प्रसन्नता में रीस है। जो रस उदारता में है, वह रस भोग में नहीं है। उससे भी उत्कृष्ट रस है शान्ति में और उससे भी उत्कृष्ट रस है स्वाधीनता में और सर्वोत्कृष्ट रस है प्रेम में। स्वाधीनता का अर्थ है- अपने में अपने को सन्तुष्ट कर लेना, पर की अपेक्षा न रखना। पराश्रय से रहित परिश्रम से रहित स्वाधीनता होती है। इसमें स्व-आश्रय और विश्राम है। इसी को जीवन-मुक्ति भी कहते है। प्रसन्नता स्वाधीनता बनाती है और करुणा शान्ति प्रदान करती है। शान्ति और स्वाधीनता प्रेम में बदल जाती है। प्रेम ही प्रेम रह जाता है। प्रेम जिसके प्रति होता है उसके लिए रसरूप होता है और प्रेम की प्रतिक्रिया भी प्रेम ही होती है। प्रेमी और प्रेमास्पद का नित्य-विहार ही मानव-जीवन की सार्थकता है।

सत्पुरुषोंकी वृत्ति निरन्तर धर्ममें ही लगी रहती है, वे कभी दु:खीत या व्यथित नहीं होते तथा यह सनातन सदाचार सत्पुरुषोंद्वारा सेवित है- यह जानकर सत्पुरुष परोपकार करते हैं और प्रत्युपकारकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालते।

मनुष्य-जीवनकी सफलता इसीमें है कि वह कभी उपकारीके उपकारको न भूले। उसके उपकारसे भी बढ़कर उसका उपकार करे।

जन-रुचि अद्भुत होती है। जनता किसीसे उपकार-अपकार अधिक दिन स्मरण नहीं रखती। व्यक्तिका वर्तमान कृत्य ही जन-मनका हेतु होता है।

इस संसार में कोई भी काम-चाहे वह लौकिक हो या धार्मिक, बिना किसी की सहायता से नहीं किया जा सकता। हमें किसी न किसी रूप में दूसरे से मदद लेनी ही पड़ती है। हमें जब दूसरे से मदद लेने की जरूरत पड़ती है तो उसका अर्थ है कि हम भी दूसरे की मदद करने के लिए तैयार रहें। दूसरे की मदद करना ही हमारे लिए मदद प्राप्त करने का मार्ग है, क्योंकि जब हम किसी की कोई परवाह नहीं करते तो कोई हमारी क्यों परवाह करेगा?

अट्ठारह पुराणों में व्यास जी ने केवल दो बात कही है, दूसरे का उपकार करने से पुण्य मिलता है और दूसरे को पीड़ा देने से पाप। परोपकारार्थ अपना जीवन अर्पण करना सबसे बड़ा गुण है, धर्म है। बिना एक-दूसरे की सहायता कुछ भी

संभव नहीं है। चुटकी भी अकेली उंगली से नहीं बजती, उसे भी अंगूठे का सहारा लेना पड़ता है। जब हम भोजन की थाली से कौर उठाते हैं या कोई चीज पकड़ते हैं तो चारों उंगलियां और अंगूठे को मिला कर ही काम बनता है। लोटा, रस्सी की अपेक्षा अधिक कीमती होता है फिर भी कुए से पानी निकालना हो तो रस्सी ही काम देती है। अकेला लोटा कुएं से पानी नहीं निकाल सकता। छोटे-बड़े सब की उपयोगिता है। संसार में संपूर्ण कोई भी नहीं है, लेकिन सभी किसी न किसी काम में दक्ष अवश्य होते हैं। इसलिए हम अपनी क्षमता को जानें तो इस तथ्य को भी ओझल न होने दें कि दूसरों की मदद हमारे लिए अपरिहार्य है।

आप जीवन में जो कुछ भी चाहते हैं, वह प्राप्त कर सकते हैं। बस आप दूसरे लोगों की मदद करनी शुरू कर दें। महावीर का एक सूत्र है परस्परोपग्रहो जीवानाम। इसके पीछे की मूल अवधारणा यह है कि संपूर्ण संसार मेरा ही परिवार है। बेहतर जीवन जीने के लिए इस विशाल परिवार को अपने चिंतन में शामिल करें। यह परिवार निश्चय ही घर से शुरू होता है, पर इसके दायरे में पूरी पृथ्वी आ जाती है।

हम सामाजिक प्राणी हैं, लेकिन आधुनिकता के रंग में हमारी असामाजिकता बढ़ती जा रही है। दूसरों के दुख-सुख में शामिल होना धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। यह भी एक आश्चर्य है कि शहरों की आबादी जैसे-जैसे बढ़ रही है, हमारा अकेलापन भी उतना ही बढ़ता जा रहा है, लेकिन हमारे परंपरागत सामाजिक नेटवर्क टूट रहे हैं।

प्रकृति का कोई भी अवयव स्वयं के लिए नहीं, दूसरों के हितार्थ ही अस्तित्ववान है। समस्त वनोपज एवं वन संपदा, जल-स्रोत, खनिज परहितार्थ ही तो हैं। हमें भी यह दुर्लभ शरीर धारण करने का सौभाग्य मिला है तो हम भी प्रकृति का अनुसरण कर स्व का परित्याग करें और पर के लिए जिएं।

हम सभी ईश्वर के माध्यम से काम करते हैं। स्वामी विवेकानंद कहा करते थे कि ईश्वर मूर्ति में नहीं मानव में बसता है। उसकी सेवा करोगे तो प्रभु को पा जाओगे। ईसा मसीह प्रार्थना करते थे मेक मी दाई इंस्ट्रूमेंट हे प्रभु मुझे अपना माध्यम बनाओ। किसी की मुसीबत को दूर करने के लिए कोशिश करना ईश्वर के निकट जाना है। वह मनुष्यों को विपत्ति से उबारने के लिए समर्थ को माध्यम बनाता है।

❊ लाख जमाने भर की उपाधियां हों हमारे पास, अपनों की
आंखों से छलकते आंसू नहीं पढ़ पाए तो हम अनपढ़ ही हैं।
❊ अंधेरा जितना गहरा और घना होगा रोशनी की चमक उतनी ही उजली होगी।
❊ बुझी हुई शमां फिरसे जल सकती है, तूफानों में घिरी कश्ती किनारे लग सकती है,
मायूस न होना कभी जिंदगी में, ये किस्मत है, कभी भी बदल सकती है।
❊ हम समझते कम समझाते ज्यादा हैं, इसलिए सुलझते कम उलझते ज्यादा हैं।
❊ गिरने पर हौसलमा मत हार अगर दर्द यहां मिला है तो दवा भी यहीं मिलेगी।

इच्छा, कामनाएं, आकांक्षाएं, महत्वाकांक्षाएं, वासनाएं, विषयभोग और तमन्नाएं, अपेक्षाएं व अभिलाषा, लालसा

इच्छा - प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का निरीक्षण करना चाहिए साथ ही अति के प्रति सदा सावधान रहना चाहिए। जो अतिवादी होते हैं वे अपनी भूख, नींद आदि को नियंत्रित नहीं कर पाते है। इन इच्छाओं को नियमित करने से स्वास्थ्य को ठीक रखने में सहायता मिलती है तथा जीवन प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलने लगता है। इस नियमन या अनुशासन का आशय इच्छाओं का दमन नहीं है, बल्कि इसका अर्थ अपनी क्षमताओं के अनुसार संतुलन स्थापित करना है। बहुत अधिक खाना, सोना, जागना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ऐसा करने से शरीर की विभिन्न प्रणालियों को क्षति पहुँचती है तथा जीवन का उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। इससे मस्तिष्क क्षीण होता है, हीनभावना उत्पन्न होती है तथा आत्मविश्वास का ह्रास होता है। नकारात्मक संवेगो की मुख्य सात धारायें होती है, जो मूलभूत चार आवश्यकताओं या इच्छाओं से ही निकलती है। क्रोध दूसरा नकारात्मक संवेग है, जो चार मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न होता है। जब किसी इच्छा की पूर्ति नहीं होती है तो उससे मन व्यग्र या उद्विग्न होता है, तथा उससे क्रोध का जन्म होता है। अत: व्यक्ति के लिए यह शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है कि क्रोध को कैसे नियंत्रित किया जाये। ऐसा करना संभव है, यदि व्यक्ति यह जान ले कि इच्छाओं को कैसे नियंत्रित किया जाये। व्यक्ति को यह पहले निश्चित कर लेना चाहिए कि कौन इच्छाएँ उसके विकास में सहायक है तथा कौन इच्छाएं उसके विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। यदि बुद्धि को अनुशासित करना सीख लिया जाये तो इस कार्य में अवश्य सहायता मिलेगी। किसी व्यक्ति ने यदि यह योग्यता अपने में विकसित कर ली है तो क्रोधित होने के बाद स्वयं विश्लेषण करेगा कि वह क्यों क्रोधित हुआ तथा उसकी कौन सी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हुई। ऐसा करके वह अपने क्रोध के मूल कारण को समझ सकेगा। अहं आत्मविकास में सबसे अधिक बाधक है। यह व्यक्ति में इच्छाओं की पूर्ति के बाद उत्पन्न होता है। उसके मन में इस तरह की भावनाएँ उत्पन्न होती है कि मैंने अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर ली है, अन्य लोग नहीं कर पाये है। देखो मैं कितना अच्छा हूँ। यह अहं उस समय उत्पन्न होता है, जब कोई चीज किसी के पास हो जाती है, लेकिन वही चीज उसके आसपास के लोगों के पास नहीं होती है और वह व्यक्ति इस तथ्य के विषय में सतत सजग बना रहता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति सोचता है कि कोई चीज किसी के पास है तो उसके पास भी होनी चाहिए, लेकिन वह इसमें अपने को असमर्थ पाता है। ऐसी स्थिति में वह अपनी असमर्थता के लिए अपनी भर्त्सना करता है। वह एक प्रकार से अपनी पराजय स्वीकार कर लेता है।

इच्छा करना एक बात है और इच्छापूर्ति के उपायों को खोजना दूसरी बात। जब तक उपाय हाथ नहीं लगते, इच्छा पूरी नहीं होती। सुरक्षित रहने का सपना भी केवल सपना रह जाता है। यदि सजगता, पहरेदार की नियुक्ति, अंगरक्षक या कमांडो की व्यवस्था के बाद भी व्यक्ति सुरक्षित नहीं है तो वह क्या करे?

मनुष्यके हृदयमें एक ऐसी जगह बनी हुई है, जिसमें इच्छाओंका अनन्त भण्डार भरा हुआ है। उस भण्डारमें-से समय-समयपर इच्छाएँ निकलती रहती हैं। जब भगवान देखते हैं कि हमारा भक्त अब अपनी इच्छाओंकी पूर्ति नहीं चाहता, तब वे अपने चरणारविन्दको पिधान अर्थात् ढक्कनकी तरह रख देते हैं। भगवान् अपना चरणारविन्द इसलिए रख देते हैं भक्तके

हृदयके भीतरसे कोई इच्छा न निकल सके।

यह क्षुद्र मन महापुरुषों के चरणों में न फँस कर कामिनियों में फँस जाता है। इससे काममय बन जाता है।

जो पुरुष उत्पन्न होता है उसकी प्राय: तीन इच्छायें अवश्य रहती हैं। पहिली इच्छा तो यह है कि मैं धन संग्रह करूँ। दूसरी यह कि विवाह करके सन्तान उत्पन्न करूँ और तीसरी यह कि मैं उत्तम पद प्रतिष्ठा को प्राप्त करूँ। जब तक पुरुष की ये इच्छायें बनी रहती है, तब तक उसे बार-बार नाना योनियों में जन्म लेना पड़ता है। अन्य योनियों में तो जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं। संसार बन्धन से मुक्त होने का साधन नहीं कर सकता। एक मनुष्य योनि ही ऐसी है, इसें पुरुष साधनों द्वारा इन इच्छाओं को समाप्त करके जन्म-मरण के चक्कर से छूट सकता है।

जीवन में अनेक इच्छाएं सिर उठाती हैं और कुछ समय बाद स्वत: दब जाती हैं। हम यही सोचते है कि इच्छाएं तो मुक्त हैं, जो कभी भी सिर उठा सकती हैं। उन्हें पूरा करना सरल नहीं है। कुछ इच्छाएं साधनों के अभाव में दम तोड़ देती हैं। अक्सर हम यह नहीं सोचते कि जब इच्छा ने हमारे मन में जन्म ले ही लिया है, तो उन्हें पूरा करने की कोशिश ही कर ली जाए। जैसे सफलता, सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़कर प्राप्त होती है, उसी तरह इच्छा भी क्रमबद्ध तरीके से चलकर ही पूरी हो पाती है। विलियम बी स्प्राग कहते हैं कि प्रहार के लिए लोहे के गरम होने का इंतजार मत कीजिए, बल्कि अपने प्रहार से उसे गरम कर दीजिए। जब सीढ़ी-दर सीढ़ी आप आगे बढ़ेंगे और आपको शुरूआती सीढ़ियां चढ़ने में सफलता मिल जाएगी, तो इच्छा पूर्ण करने की ख्वाहिश और अधिक बलवती हो जाएगी। हो सकता है कि इच्छा पूरी करने की चाहत में कुछ कठिनाइयां उत्पन्न हों, दिक्कतों का सामना करना पड़े महात्मा गांधी यही मानते थे। छोटी-छोटी इच्छाओं को पूरी करते-करते वह पूरे विश्व के सामने एक ऐसी कामयाब शख्सियत के रूप में उभरे, जिनकी मिसाल दुनिया के कोने-कोने में दी जाती है। छोटी-मोटी उपलब्धि व इच्छा बड़ी उपलब्धि की ओर बढ़ाने का संकेत है।

जैसी हमारी इच्छाये होती है, जैसे हमारे भाव होगे ठीक उन्ही के अनुरूप हमारी भाव भगिमा हमारे मुख मंडल पर दिखाई देने लगती है।

कोई इच्छा पूरी होती है, कोई नहीं होती है। सब इच्छाये पूरी हो जाये यह कोई नियम नही है। इच्छाओं को पूरी करना हमारे वश में नहीं है। कोई भी इच्छा की जब चाह ही नहीं रहेगी तो आपकी स्थिति स्वत: परमात्मा में होगी। इच्छा करने से ही हम संसार से बन्धे है। इच्छा छोडते ही सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा में स्वत: स्वाभाविक स्थिति है।

अस्थिर मन साध लें तो इच्छाओं का बंधन पल में लुप्त हो जाता है। जीवन की दौड़ में हर कोई इच्छाओं के चक्रव्यूह में घिरा नजर आता है। साधारण व्यक्ति धन चाहता है, धनी पद-प्रतिष्ठा। सुकन्याएं रूप-सौंदर्य की चाह रखती हैं, तपस्वी स्वर्ग की इच्छा रखता है और ज्ञानी मोक्ष की। यह अनमोल जीवन कब-कैसे इच्छाओं की गति के साथ दौड़ते-दौड़ते बीत जाता है, इसका हमें पता ही नहीं चल पाता। चाहतों की मृगतृष्णा ही कुछ ऐसी है कि यह प्यास कभी खत्म नहीं होती। कुछ और होने और पाने की तीव्र इच्छा हमें सदा उस दुष्चक्र में डाले रखती है जिसमें डूबे रहकर हम जीवन की खुशियों को यूं ही गंवा देते हैं।

इच्छाओं का पात्र कभी नहीं भरता। जीवन में हमें जो प्राप्त हो चुका है, उसकी हम अवहेलना कर देते हैं। जिस चीज की तीव्र इच्छा हमें पहले सताए रहती है, उसके मिलने पर हम उसका सुख अनुभव नहीं कर पाते और नई इच्छा हमारे

भीतर बलवती हो उठती है। इसे भी पा लें और यह क्रम जिंदगी भर चलता रहता है। हम चाहतों के चक्रव्यूह से बाहर नहीं निकल पाते। बस, उन्हीं में कैद हो, असंतुष्ट-अतृप्त, दरिद्र और अपूर्ण बने रहकर, यह सुंदर जीवन लुटा देते हैं।

कोई इच्छा सामाजिक हित से प्रेरित हो तो उसे सच होता देख मन सच्चे सुख का अनुभव करता है। पर जब इच्छाएं व्यक्तिगत स्वार्थ से जुड़ी होती हैं तो उनकी परिधि का विस्तार होता जाता है। यूं भी विषय-भोग की इच्छा विषयों का उपभोग करने से कभी शांत नहीं हो सकती। वह तो जैसे घी की आहुति डालने से तेज हुई आग के समान बढ़ती ही जाती है। इच्छाएं ही हमें पाप के रास्ते पर ले जाती हैं। इच्छाओं से ही दु:ख के बीज पनपते हैं। अविवेक, अविश्वास, अशांति, असंतोष, ईर्ष्या, द्वेष, द्वंद्व, हिंसा, असत्य और अहंकार की जड़ें अतृप्त इच्छाओं से गहराई तक जुड़ी हुई हैं।

विजयों की सीमा है, पर इच्छाओं की नहीं। वर्तमान के सुंदर क्षण, कुछ पाने कुछ बांटने का आनंद, सहज-सरल जीवन जीने का सात्विक सुख, सभी तो भविष्य की उन अनदेखी परछाइयों में गुम हो जाते हैं, जिनमें कोई आत्मा नहीं। लेकिन हमारे भीतर ये इच्छाएं जन्म कहां से लेती हैं? अस्थिर अशांत मन ही इच्छाओं की जन्मस्थली है। यह अपने आप में रोग के लक्षण के समान है। अभ्यास, साधना और समर्पण से इस अस्थिर-अशांत उद्वेलित मन को साध लें तो न चित्त अशांत रहता है, न ही मन के ऊपर सांसारिक इच्छाओं का बंधन रहता है। सज्जन पुरुष ज्ञान द्वारा भोग-इच्छा को जीत कर शांति में रमता है। इच्छाओं की पराधीनता से छूटा मन खुले आसमान में उड़ान भरने के लिए स्वाधीन हो जाता है। इच्छाएं मिटने से पाप दूर हो जाता है और पाप दूर होने से दु:ख दूर हो जाता है। आत्मतत्व का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर चित्त अंतरतम अनंत सुख से खिल उठता है।

इच्छा की निर्मलता देती है सुकून, असफलताओं से मिलता है दुख - सांसारिक क्षेत्र में इच्छा असफल हो तब तो दुख है ही, इच्छा सफल हो जाए तब भी दुख का ही कारण बनती है। मगर इच्छा के बिना हम संसार में रह भी तो नहीं पाएंगे। परमात्मा कहते हैं कि ना इच्छाओं की सफलता की कामना करो ना ही विफलता की। बस अपेक्षा रखो इच्छाओं की निर्मलता की। हम इच्छाओं की सफलता या विफलता के लिए प्रार्थना न करके प्रभु से यही मांगें कि हमारी इच्छा निर्मल कर दो। संपदा कमाएं यह इच्छा की सफलता है और कमाने के बाद यह विचार आए कि पर्याप्त हो गया, यह इच्छा का निर्मल होना है।

इच्छा, आशा, अपेक्षा, आकांक्षा- ये ही हमारे समाज की चालक शक्तियां होती हैं। इच्छाएं ही हमारे जीवन की व्याख्या भी करती हैं। कुछ पाने से आती सफलता या कुछ न पाने से आती विफलता ही हमारा परिचय होती हैं। इच्छाओं और आशाओं में रचे-बसे हमारे समाज में अधिकतर लोग इन्हें नहीं मार पाते। उनकी इच्छाएं उन्हें मृग की तरह दौड़ाती रहती हैं। परंतु यही इच्छाएं जब टूटती हैं, तब कई बार वहीं से ज्ञान की किरण मनुष्य के हृदय में प्रवेश करती है।

अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए हम क्या-क्या नहीं करते। यदि इच्छाओं के विषय में सोचने लगें तो तय है कि उनका कोई अंत नहीं। एक पूरी की तो दूसरी पैदा हो जाती है। इस तरह से उन्हें पूरा करते-करते जीवन बीत जाता है। अपनी भावनाओं को पल भर के लिए रोककर सोचिए कि जन्म से लेकर अब तक आपने जीवन में क्या किया है? केवल और केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति? इन्हीं को पूरा करने में समय बीता जा रहा है और ये इच्छाएं भी समय के अनुसार बदलती जा रही है। मनुष्य समझता है कि इच्छाओं की पूर्ति से ही वह खुश रहेगा। इसी को लक्ष्य बनाकर वह प्यासे मृग

की तरह पानी की तलाश में कभी यहां, कभी वहां भटकते रहता है। परंतु होता यह है कि अंत तक प्यासा ही रह जाता है।

जीवन भर हम अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए क्यों तत्पर रहते हैं? हमारी इच्छाएं क्या आज तक पूरी हुई हैं? जीवन का रहस्य ही यह है कि हम जिसे पाना चाहते हैं, उसे हम नहीं पा पाते हैं। जिसके पीछे हम दौड़ते हैं, वह हमसे दूर हटता चला जाता है। जिसके लिए हम प्रार्थनाएं करते हैं, वह हमारे हाथ के बाहर हो जाता है। जीवन करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे मुट्ठी में हवा को बांधने की कोशिश। जितनी जोर से मुट्ठी कसते हैं, उतनी ही हवा मुट्ठी के बाहर हो जाती है। खुली मुट्ठी में हवा होती है, बंद मुट्ठी में हवा नहीं होती।

कृष्ण कहते हैं, जीना अपने में ही आनंद है। इच्छा खुद में ही दुख है। जैसे जीवन को अपना आनंद लेने से कोई नहीं रोक सकता, वैसे ही इच्छा को भी दुख देने से कोई नहीं रोक सकता। यह हमारे ऊपर है कि हम क्या चुनते हैं। आनंद की ओर जाना है तो इच्छाओं को तनिक विराम देना चाहिए।

जब तक भी कुछ हासिल करने की इच्छा है, कुछ उपलब्धि, कुछ होने की इच्छा है, भले ही वह किसी भी स्तर पर हो। तब तक, तब तब वहां पर क्षोभ, गुस्सा, शोक, भय होगा। अमीर होने की आकांक्षा, ये और वो होने की महत्वाकांक्षा तभी गिर सकती है जब हम इस शब्द में निहित सड़ांध या महत्वाकांक्षा की भ्रष्ट प्रकृति को समझ लें। उन क्षणों में जब कि हम देख समझ लेते हैं कि ताकत, सत्ता हासिल करने की इच्छा, चाहे वो किसी भी रूप में हो, चाहे वो प्रधानमंत्री बन जाने की हो या न्यायाधीश या कोई पुजारी या धर्म गुरु हमारी किसी भी प्रकार की शक्ति अर्जित करने की इच्छा आधारभूत रूप से पैशाचकीय या पाप है। लेकिन हम नहीं देख पाते कि महत्वाकांक्षा भ्रष्ट करती है, यह कि शक्ति की ताकत की आकांक्षा वीभत्स है। इसके विपरीत हम कहते हैं कि हम शक्ति और ताकत को भले काम में लगायेंगे, जो कि निहायत ही बेवकूफाना वक्तव्य है। किसी भी गलत चीज से अंत में कोई सही चीज हासिल नहीं की जा सकती। यदि माध्यम या साधन गलत हैं तो उनके अंजाम या परिणाम भी गलत ही होंगे। यदि हम सभी महत्वाकांक्षाओं के संपूर्ण आयश को, उनके परिणामों, उनके परिणामों के साथ ही मिलनेवाले ऐच्छिक-अनैच्छिक परिणामों सहित जानते समझते हैं और अन्य इच्छाओं का केवल दमन का प्रयास करते हैं तो इस बात का कुछ भी अर्थ नहीं है। हम अपनी इच्छाओं के लिए पागल हुए जाते हैं, हम अपने आपको इच्छा द्वारा तुष्ट करना चाहते हैं। लेकिन, हम यह नहीं देखते कि वैयक्तिक सुरक्षितता की इच्छा, व्यक्तिगत उपलब्धि, सफलता, शक्ति, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा आदि इन इच्छाओं ने इस संसार में क्या कहर बरपाया हुआ है। हमें यह एहसास तक नहीं है कि हम ही उस सब के जिम्मेदार हैं, जो हम कर रहे हैं। अगर कोई इच्छा को, उसकी प्रकृति को समझ जाये, तो उस इच्छा का स्थान या मूल्य ही क्या है? क्या वहां इच्छा का कोई स्थाान है जहां प्रेम है? या जहां इच्छा हो, क्या वहां प्रेम के लिए कोई जगह बचती है? इच्छा की कोई सीमा नहीं होती, उसकी जरूरत होती है।

मनुष्य की मूलभूत इच्छाएं उसे अध्यात्म में एष्णाएं कहा जाता है। ये चार तरह की ऐष्णाएं है जो बुनियादी शक्तियां है, जो इच्छा या भावना से गहरी होती है, जिनके लिए मनुष्य जीता है- १) जीवेष्णा, युयुत्सा- मनुष्य जब १५-२० वर्ष की आयु में उसका नस-नस में खून गरम रहता है और वह हर किसी से उलझने के लिए तैयार रहता है, झगड़े-फसाद करते रहता है। हर समय इस तैयारी में रहता है कोई भी सामने आये और हम से भीड़े। २) कामेष्णा - हर व्यक्ति २५-४० वर्ष

की आयु में कामी हो जाता है, सुन्दरता का पुजारी हो जाता है। सुंदर-सुंदर दृष्य देखने का ऐच्छुक हो जाता है। शादी-ब्याह हो जाते है, संताने हो जाती है और इसी में अपना जीवनयापन करता है। ३) वीतेष्णा- ४०-५५ वर्ष की आयु में उसे धन, वित्त की आवश्यकता महसूस होती है और वो दिन प्रतिदिन व्यस्त रहकर धन कमाने के पीछे पड़ा रहता है। व्यापार सीमा से अधिक करने लगता है। ४) लोकेष्णा- ५५-७५ वर्ष की आयु में मनुष्य की इच्छाएं असीम हो जाती है। वो चाहता है कि लोगों में मेरा नाम हो, शोहरत मिले, कई संस्थाओं का अध्यक्ष, नेता इत्यादि बने। मनुष्य की यह इच्छाएं हमेशा ही प्रेरक शक्ति की तरह काम करती है। वे इतनी गहरी होती है कि मनुष्य विवश होकर इनके पीछे-पीछे भागने लगता है। इससे भी गहरी इच्छा है जीने की इच्छा। अंतर्गत के अंधेरे में मरने की इच्छा भी उतनी ही प्रबल होती है। जीवन जीने का हर व्यक्ति का निजी मामला है, एक ही ऊर्जा है जो कभी तो जीने की दिशा में बहती है और कभी मरने की दिशा में। मनुष्य प्रगाढ़ता से जीने की इच्छा रखता है लेकिन उसके सफल न होने से वह आत्महत्या पर भी उतारू हो जाता है। जीवन की कशिश अधिक शक्तिशाली होती है। मनुष्य का मन बड़ा बेबूझ है, उसे जीने की तमन्ना तो होती है लेकिन मरने का इरादा भी साथ-साथ चलता है।

दृढ़ इच्छाशक्ति जीवन की हर सफलता की नींव है। ऐसा इन्सान विपरीत परिस्थितियों से भी बाहर निकलने का मार्ग पा जाता है और मंजिल तक पहुंचने में सफल हो जाता है। इसके विपरीत किसी के पास पर्याप्त भौतिक संसाधन होते हुए भी दृढ़ इच्छाशक्ति का अभाव हो, तो सारी सुख सुविधाएं धरी की धरी रह जाती है और वो असफल हो जाता है। हमारे भीतर यह सकारात्मक विचारों का योग ही दृढ़ इच्छाशक्ति है। यह हमें सदैव सही रास्तों में चलने के लिए विवश करती है। जीवन में हर कार्य की जिम्मेदारी ले, कम बोले, पारदर्शी हो, स्पष्ट बोले यही सफलता की प्रक्रिया है। एक ही विचार बार-बार न सोचे केवल वो ही सोचे जो आप करना चाहते है। यदि आप जो कर रहे उससे खुश है तो आप पहले से ही सफल है। नकारात्मक विचार हमारे दिल और दिमाग में हावी न होने दे। यह इसलिए आते है क्योंकि हम उन्हें जगह देते है। यदि उन्हें जगह न दे तो नये विचार तुरंत अपना कार्य प्रारम्भ कर देते है। वही कार्य करें जो आपके जीवन के लक्ष्यों के निकट ले जाएं। दृढ़ इच्छाशक्ति जीवन की हर सफलता का मूलमंत्र है। इसे जीवन में उतारना चाहिए और हर क्षेत्र में खुशियां बटोरना चाहिए।

आकांक्षाएं-महत्वाकांक्षाएं - वर्तमान समय में व्याप्त अशांति, असन्तोष और सन्ताप से युक्त जीवन का मुख्य कारण लोगों की विकृत आकांक्षाएं ही हैं। जो लोग मरीचिका और मोह को तृष्णा में भटकती हुई शांति नैसर्गिक सौंदर्य एवं सामाजिक मूल्यों से परे होती जा रही है। विकृत आकांक्षाओं के वशीभूत हो मनुष्य उस बाज पक्षी की भांति दिग्भ्रमित हो जाता है जो भूमि पर पड़े कांच के टुकड़े में अपना प्रतिबिम्ब को देखकर झपटता है और टकराकर आहत हो जाता है। स्वार्थपूर्ण विकृत आकांक्षाओं की माया मनुष्य को इतना कल्पनाशील तथा लोलुप बना देती है कि वह प्रत्येक ध्येय को अपने योग्य मान लेता है। जिन आकांक्षाओं का कोई उद्देश्य उपयोग नहीं अथवा जिनके पीछे कोई हितकर प्रेरणा मौजूद न हो वह मृग मरिचिका के अतिरिक्त और क्या कही जायेगी। वास्तविक आकांक्षाएं तो वही कहीं जायेगी जिनके पीछे सार्थक उद्देश्य हित अथवा उपयोगिता की प्रेरणा मौजूद हो। लोगों को चाहिए कि वह अपनी आकांक्षाओं का आत्मलोचन करें। उन्हें सत्य व यथार्थ की कसौटी पर परखें।

आप ही नहीं, दुनिया में लगभग ८० प्रतिशत महिलाएं अपनी स्थिति से नाखुश हैं। कहीं वजह शादी, तो कहीं शादी न होना है। कुछ महिलाएं बीमारी से परेशान रहती हैं, तो कुछ पारिवारिक तनावों से।

किसी के दुखी होने की वजह कम पैसा है, तो कुछ महिलाएं ज्यादा पैसा होने की वजह से तनाव में रहती हैं। यानी वजह चाहे जो हो, अंत में हाथ परेशानी ही आती है। यानी स्थितियां कमोबेश वही रहती हैं।

अगर खुश रहना है, तो अपने आपको बदलें, क्योंकि स्थितियों को बदलना आपके हाथ में नहीं है। वैसे यह बात बहुत किताबी लगती है। लेकिन अगर आप चाहें, तो इन परिस्थितियों में भी तनावमुक्त रह सकती हैं।

अधिकांश महिलाएं पैसे की तंगी, बढ़ती महंगाई और बढ़ती इच्छाओं की वजह से तनावग्रस्त रहती हैं। तनावमुक्त हों, तो कैसे ? आप इस बारे में अभी से चिंता न करें कि महंगाई बढ़ी, तो आप क्या करेंगी ? आप अपने घर के तमाम खर्चों की सूची बना लें। उन पर जरूरत के हिसाब से एक, दो, तीन लिखती जाएं। सबसे जरूरी खर्चे, तो आपको हर हाल में पूरे करने हैं। बाद के नंबरों पर दोबारा, तिबारा गौर करें। आपको खुद लगने लगेगा कि ये खर्चे रुक सकते हैं। इस तरह अगर आप योजना बना कर चलेंगी, तो आप पाएंगी कि कई मदों के खर्चे रोक कर आपने बजट संभाल लिया है। घर का कोई सदस्य बीमार हो, तो हर वक्त निराशावादी बातें होती रहती हैं। हो सकता है कि उनके इलाज में आप तन-मन-धन से खाली हो रही हों। ऐसे समय में कुंठित होना स्वाभाविक है। अगर आप भी ऐसी स्थिति से जूझ रही हैं, तो दिन में जरा सा वक्त अपने लिए निकालिए। घर में बीमार व्यक्ति के होने का यह मतलब नहीं है कि आप और बच्चे सामान्य जिंदगी नहीं जिएंगे। अपनी तुलना दूसरों से करना छोड़ दें, आप खुश रहेंगी।

एक और कारण है निराश रहने का, आपके अनुसार काम न होना। आपने चाहा बेटे का अभियांत्रिक महाविद्यालय में दाखिला हो जाए, नहीं हुआ। आपने चाहा ससुर पुश्तैनी मकान बेच कर आपको आधी रकम दें, ऐसा नहीं हुआ।

आपने चाहा कि आपकी बचत सालभर में दोगुनी हो जाए, इसलिए चिट फंड में डाल दिया और वे पैसे भी डूब गए। ये सारे कारण हैं निराश होने के। ये सारी बातें महत्वाकांक्षा से जुड़ी हुई हैं।

जिसकी स्पृहा (आकांक्षा) विशाल है, वह दु:खी है और जिसने अपनी स्पृहाओं पर नियंत्रण पा लिया है, वह हर संयोग के बीच भी अत्यंत सुखी है।

मनुष्य अपनी आकांक्षा की तीव्रता में भूल जाता है कि उसका हित जिस इच्छा की पूर्ति के लिये वह सिर झुकाये जंगली सूअर की तरह दौड लगा रहा है वह उससे उसे कितना सुख मिलेगा या दु:ख मिलेगा।

जीवन को जो लोग जितनी आकांक्षाओं में बांधना चाहते हैं, जीवन उतना ही हाथ के बाहर हो जाता है। अंत में सिवाय रिक्तता, विषाद के कुछ भी हाथ नहीं लगता है। स्वयं को आकांक्षाओं या इच्छाओं से मत बांधो। जीओ, लेकिन फल मिलने की इच्छा हेतु नहीं।

अपेक्षाएं- शास्त्रों में लिखा है- रक्षंति पुण्यानि पुरा कृतानि- पहले के किए हुए पुण्य प्रबल हों तो मनुष्य की सुरक्षा हो सकती है। जंगल हो या युद्ध का मैदान, शक्तिशाली शत्रु से सामना करना पड़े या प्रकृति के कोप से, सागर की उत्ताल तरंगे हों या पर्वत के उन्नत शिखर, मनुष्य सोया हो जाग्रत, उसने पुण्य किए होंगे, तो वे रक्षा करने आएंगे।

महाभारत में लिखा है- धर्मो रक्षति रक्षित:। मनुष्य धर्म की रक्षा करे तो धर्म भी उसकी रक्षा करता है। यह विनियम का

सिद्धांत है। सौदेबाजी है। संसार में ऐसा ही व्यवहार चलता है। एक पक्ष विनम्र है तो दूसरे पक्ष से विनम्रता की आशा की जा सकती है। एक पक्ष निरपेक्ष रहता है तो दूसरे पक्ष को उससे अपेक्षा क्यों हो? एक पक्ष में उद्दंडता है तो दूसरा पक्ष शालीनता क्यों करें?

अपेक्षा का अर्थ होता है किसी से कुछ चाहना, कुछ पाने की इच्छा रखना। आज का इन्सान यह चाहता है सहायता, मान-सम्मान, पद, सुविधा, अधिकार, समर्थन, सहानुभूति, दान, धन-संपत्ति, विजय यह अपेक्षाएं किसी भी प्रकार की हो सकती हैं। यह अपेक्षाएं जीवन में अशांति, दु:ख हीन भावना, असंतोष, प्रतिशोध, द्वेष, दुर्भावना, वैमनस्य, संघर्ष, तनाव आदि को जन्म देती है। उपेक्षा किसी प्रकार की चाहत न रखना, अपेक्षा के विपरित है। जब हम कुछ पाने की आशा नहीं रखेंगे तो मन की शान्ति भंग नही होगी, न पश्चात्ताप होगा, न ग्लानि होगी और न वैमनस्य ही होगा। हमारे जीवन में अनंत इच्छाएं है। इनकी पूर्ति के लिये हम हर किसी से कुछ न कुछ अपेक्षा रखते हैं। पर हमें ध्यान नहीं रहता है कि दूसरे भी हमसे इसी प्रकार की अपेक्षाएं रखते हैं। अपेक्षायें अशान्ति को जन्म देती है। अशांति के कारण आधारहीन होते हैं और जब हमारी अपेक्षाएं पूरी नहीं होती है तो हम अशांत व उद्विघ्न होते रहते हैं। संबंधों में खटास छोटी-छोटी बातों को लेकर आ जाता है और हम अपमान का बोझ लेकर जीते है, जिसकी परिणति कभी कभी लड़ाई-झगड़ों, मुकदमे बाजी व खून-खराबे तक होती है। यह वैमनस्य हम आनेवाली पीढ़ी को भी विरासत में दे जाते हैं। दाम्पत्य जीवन में मामूली बातचीत, मतभेद तलाक तक की नौबत पर ला खड़ा कर देते हैं और उसका खामियाजा अबोध बालकों को भुगतना पड़ता है।

यह जगत स्वयं में अपूर्ण है, असमर्थ है और स्वार्थी है। इस जगत में अपेक्षा रखना मृगतृष्णा के समान है। अपेक्षा मनुष्य को दीन हीन बनाती है। सच्ची शांति, अपेक्षा ओं तथा इच्छाओं की पूर्ति में नहीं बल्कि उनकी उपेक्षा से मिलती है। जगत की उपेक्षा से जगदीश मिलते हैं, शांति, संतोष परमानंद में मिलता है।

सुखी व सार्थक जीवन जीना है तो दूसरों से अपेक्षाएं न करें। आज की इस भागमभाग की जिन्दगी एवं प्रतिस्पर्धा के युग में प्रत्येक मनुष्य का यह स्वभाव बन गया है कि वह अपने माता-पिता से, भाई से, रिश्तेदारों से, देवी-देवताओं से, ग्रह नक्षत्रों से बहुत बड़ी अपेक्षाएं रखता है, खुद स्वयं कुछ मेहनत नहीं करना चाहता है और अपेक्षा करता है कि उसका काम कोई और कर दे। हमेशा ऐसा व्यक्ति आमतौर पर कहता पाया जाता है कि अगर पिताजी ने मुझे प्रचुर मात्रा में धन दिया होता तो मैं आज कहीं का कहीं पहुंच जाता, अगर ग्रहों ने, ईश्वर ने सहयोग दिया होता व शनि की दशा मेरे ऊपर साढ़े साती नहीं बैठती तो मैं भी आज उन्नति के शिखर पर पहुंचता। जबकि संसार में लाखों उदाहरण ऐसे भरे पड़े हैं कि उनके ऊपर से मां-बाप का साया बचपन में उठ गया, पर उनके चरित्र में विशेषता रही कि उन्होंने आशा व आत्मविश्वास का दामन नहीं छोड़ा और बिना किसी का सहारा लेकर उन्नति पर उन्नति करते रहे। ९० प्रतिशत गरीबी एवं भयंकर अभावों में जीकर अपने संकल्प बल से आगे बढ़े हैं और उन्नति के शिखर पर पहुंचे हैं। महान फुटबॉल खिलाड़ी पेले के मां-बाप के पास तो फुटबॉल के पैसे भी नहीं थे, चिथड़ों की गेंद बनाकर उससे खेला एवं आशा, संकल्प बल से फुटबॉल का महान बादशाह कहलाया।

अपेक्षा के कितने ही रूप हैं उदाहरणार्थ किसी दोस्त से १०००० रुपये की जरूरत पड़ी और उसने अपनी दिक्कत बताई कि स्वयं ही संकट में है, परन्तु दोस्त के न देने पर आक्रोशित होगा एवं उसके ऊपर कितने ही आरोप जड़ देगा।

आप किसी मेहमान के यहां जा रहे हैं और बड़ी मेहमाननवाजी की अपेक्षा लेकर जा रहे हैं कि बड़ा आदर सम्मान मिलेगा और ठीक उसी समय उसका इकलौता पुत्र अस्पताल में जिन्दगी और मौत से जूझ रहा है। तो आपको वह जल्दी में अपनी मजबूरी बताकर चला जाता है, और इसको आप अपना अपमान समझकर घर चले जाते हैं और उसके प्रति कितने मनगढ़त आरोप जड़ देते हैं। एक नेता को १० लाख व्यक्ति वोट देते हैं सबका काम होना संभव नहीं होता तो आप यह कहकर नेता से मिलने जाते हैं कि मैंने वोट दिया है मेरा काम तो करेगा ही करेगा और कई बार चाहते हुए भी काम नहीं बन पाता तो पीड़ा और दुखी मन से घर आते हैं। मानव जीवन में आज स्वयं की ही इतनी परेशानियां हैं कि वह स्वयं ही उलझा रहता है तो हो सकता है आपका काम परिस्थितिवश न करवा पाये तो आप उस व्यक्ति के प्रति गलत धारणा एवं संबंध विच्छेद कर लेते हैं। अत: सुखी और सार्थक जीवन जीना है तो दूसरों से अपेक्षाएं छोड़कर अपने आप से ही अपेक्षा करें एवं अपना आत्मविश्वास एवं आत्मबल बढ़ाकर स्वयं में जीयें, पराई आशा कभी न करें। दूसरों से मदद की आशा न करके स्वयं में सामर्थ्य पैदा करें। आप रिश्तेदारों के काम आ सकें तो आपका पूरा दृष्टिकोण बदल जायेगा व एक नये रूप में आपका रूपान्तरण होता चला जायेगा यही सुखी व खुशहाल जीवन जीने का सही व सरल रास्ता है, दूसरों का भरोसा कभी मत करो तो आपके स्वयं में आत्मबल व आत्म ऊर्जा का विकास होगा।

किसी रिश्ते की शुरुआत में दो व्यक्तियों में बहुत ज्यादा प्रेम होता है और तब सारा ध्यान खूबियों पर ही होता है लेकिन समय के साथ एक दूसरे की कमियां भी सामने आती हैं। लेकिन इन कमियों को नजरअंदाज करके अगर आप खूबियों पर ही ध्यान लगाएं तो रिश्ता कायम रहता है। जब आप किसी भी कमजोरी या कमी को ज्यादा बड़ा करके देखने लगते हैं तो चीजें खराब मोड़ लेने लगती हैं। किसी भी खुशहाल रिश्ते में एक दूसरे से प्रेम के अलावा किसी भी अन्य चीज की अपेक्षा से बचना चाहिए। कोई भी व्यक्ति पूरी तरह पूर्ण नहीं होता है पूर्णत: तो आपको तलाशना पड़ता है।

वासनाएं- वासना की भूमि पर कभी भी स्वतंत्रता अंकुरित नहीं होती, स्वतंत्रता ज्ञान के बीच उदित होती है। वासनाग्रस्त आदमी कहीं न कहीं जा रहा है, जाने की सोच रहा है; योजना बना रहा है; मगर जा रहा है। वस्तुत: न जा रहा हो, तो कल्पना में जा रहा है। लेकिन एक बात पक्की है, वासनाग्रस्त आदमी वहां नहीं मिलेगा। जहां वह है। वहां आप उसको नहीं खोज सकते। अपने घर में वह कभी नहीं ठहरता। वह हमेशा कहीं और का अतिथि है।

जैसे क्षमाशील अथवा अहिंसक व्यक्ति को वीर माना गया है, उसी प्रकार अपनी वासना पर नियंत्रण करनेवाला व्यक्ति भी वास्तविक वीर और पुरुष है। वासना का अर्थ ही है जरूरत से ज्यादा की इच्छा अथवा लोभ। जरूरत से ज्यादा की इच्छा अथवा लोभ एक विकार है। जो स्वयं के विकारों पर नियंत्रण नहीं कर सकता वह कैसा वीर?

भोगकी वासना (काम) धनकी वासना (लोभ) और असत् को नीचा दिखानेवाला (क्रोध) ये नरकके द्वार है। मनुष्यको पता नहीं लगता कि वह गड्ढेमें गिर रहा है और गिर जाता है। एक ही हृदयमें प्यास और शान्ति एक साथ नहीं रह सकती। जबतक वासना शान्त नहीं होगी तब तक जीवनन्मुक्तिका विलक्षण सुख नहीं मिलेगा। जिसे तुम चाह रहे हो, जिसके लिए प्यासे हो, वह जब तक नहीं मिलेगा, तब तक मनकी वासना नहीं मिटेगी।

जो पाप करता है उसका लक्षण प्रतिषिद्ध कर्म ही है। जब आदमी दु:खी होता है तब उसको पता लगता है कि वह पापी

है। जब अन्त:करणमें बहुत वासनाएँ उठती हैं तब समझना कि वे बुरा काम करवाकर ही छोड़ेंगी। जब मनुष्य आप्त पुरुषोंके द्वारा, वेदशास्त्रोंके द्वारा और गुरु-सम्प्रदायके द्वारा निषेध किये हुए कर्म करता है तब उसका वासना-वेग बहुत बढ जाता है। शास्त्रकी दृष्टिसे, गुरुकी दृष्टिसे, सम्प्रदायकी दृष्टिसे मना किया हुआ काम कभी नहीं करना चाहिए। पाप पहले कर्तापनके अभिमानके रूपमें आता है, फिर वासना के रूप में आता है और फिर दु:खके रूप में आता है। कहीं न कहीं बढ़े-बूढ़ें का तिरस्कार जरूर हुआ होगा जिससे पापकी उत्पत्ति होती है।

जब हृदय में कोई प्रबलकामना उत्पन्न हो जाती है, तब उस समय मनुष्य अपने प्रधान कर्त्तव्य से च्युत हो जाता है। वासना हृदय को मथ डालती है। वासना के हृदय में होते ही उसे पूरी करने का प्रयत्न करते हैं। जो उसकी पूर्ति में बाधा देते हैं, वे प्रिय जन होने पर भी बुरे लगते हैं। श्रद्धेय होने पर भी उनके प्रति अश्रद्धा हो जाती है। सम्माननीय होने पर भी उसकी अवहेलना की जाती है।

इन्द्रियों को तृप्त करने को जितने ही उपाय करेंगे, वासनायें उतनी ही बढ़ती जायेगी। बढ़ी हुई वासनायें ही यन्त्रणा की सृष्टि करते हैं। वासनाओं के अधीन होकर जो जितना सुख चाहेगा, उसे उतना ही दु:ख मिलेगा। वासना एक ऐसी प्रज्ज्वलित अग्नि है कि इसमें विषय रूप हवि या घृत जितना ही अधिक डालोगे उतना ही इसका वेग बढ़ेगा। किसी समुदाय या किसी भी देश का रहनेवाला हो, दूसरों को दुखी देखकर उनको सुखी करने की प्रक्रिया का नाम ही दया है।

जो कर्म-वासना में प्रेरित होकर विषयों का चिन्तन करते हैं उन्हीं के मन से नाना प्रकार के कर्म उत्पन्न होते हैं, अत: इन असद्-पदार्थों में से सद्बुद्धि का त्याग कर देना चाहिये। इन अनित्य पदार्थों को भूलकर भी नित्य न समझना चाहिये, परिणाम में दुखद सिद्ध होनेवाले विषयों से कभी सुख बुद्धि न करनी चाहिये।

अपने तप से, बल से, पराक्रम से, विद्या से तथा अन्य साधनों से चाहें जिसे जीत ले किन्तु जिसने काम को नहीं जीता, वह अन्त में कामिनी के विष बुझे कटाक्ष बाणों से बिँधकर मृत्यु के मुख में धँस जाता है। तपस्या करके कितनी भी शक्ति संचय क्यों न कर लो कैसे भी दुर्लभ वर प्राप्त क्यों न लो, अन्त में तो काम का लक्ष्य बनना ही पड़ेगा। अत: संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में उन्हीं प्रभु को व्यापक समझकर त्याग भाव से धर्मपूर्वक विषयोंका सेवन करना चाहिये। अधर्मपूर्वक दूसरों की वस्तु पर मन न डिगाना चाहिये। भूलकर भी काम के अधीन न होना चाहिये। जो काम के अधीन हो जाते हैं वे पीछे पछताते हैं। विषयों की प्रचुरता में सुख नहीं, शान्ति नहीं, सन्तोष नहीं, तृप्ति नहीं। उनके उपभोग से तो तृष्णा और अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। क्रोध होता है काम से। मनुष्य समस्त कामनायें कामिनी के लिये करता है। कामिनी को उपलक्ष्य बनाकर ही समस्त क्रियायें होती हैं।

यदि विषयों से आसक्ति नहीं हटी तो चाहें घोर बन में सब कुछ त्याग कर चले जाओ, मन उन्हीं विषयों का चिन्तन करता रहेगा और अवसर पाने पर उन्हें ही संग्रह करने लगेगा। इसके विपरीत जो प्राणी विषयों से विरक्त हो गया है, मन में उनके प्रति आदर भाव नहीं हैं तो विषयों के बीच में रहते हुये भी वह विरक्त है। सब कुछ करते हुए भी वह कुछ नहीं करता। सब कर्म करते हुए भी अक्रिय है।

कामना यदि संसारी वस्तु से की जाय तो स्वर्ग में वही वस्तु मिलती है, यदि यह भावना भगवान में हो तो भगवान के

लोक की प्राप्ति होती है। उपासना में भावना ही प्रधान कारण है। कामना ही इच्छा को प्रबल करती है, इच्छा ही हमें लोक-परलोक तथा चौरासी लाख योनियों में घुमाती रहती है। चाह ही चिन्ता को बढ़ाती है। इच्छापूर्ति होने पर कभी विवेक हो जाता है, कभी इच्छा और प्रबल हो जाती है प्रबल इच्छा का फल परलोक में प्राप्त हो जाता है। विवेक होने पर विषयों से वैराग्य हो जाता है। किसी भी कामना से शुभ कर्म किये जायँ, उनका फल शुभ होगा ही। वैसे तो इन संसारी पदार्थों में इन्द्रिय जन्य विषयों में-सुख है ही नहीं। इन वैषयिक पदार्थों का जितना ही अधिक ध्यान करोगे, उतना ही अधिक इनमें आसक्ति बढ़ती जायगी। जिसमें अधिक आसक्ति हो जाती हैं, उसे शीघ्र-से-शीघ्र प्राप्त करने की कामना प्रबल हो जाती है। अपनी इच्छित वस्तु के न प्राप्त होने पर, कामना की पूर्ति न होने पर, क्रोध का होना स्वाभाविक है। क्रोधी पुरुष को कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक तो रहता नहीं। अविवेकी पुरुष की स्मृति भ्रम में पड़ जाती है। स्मृति-विभ्रम होने से मनुष्य का अन्त हो जाता है। महत् पुरुषों की कृपा से यदि पुन: स्मृति हो जाय तो पुरुष अपनी इष्ट-सिद्धि कर सकता है।

संसारी विषयों से आज तक कभी किसी की तृप्ति न हुई है, न कभी होगी। ज्यों-ज्यों विषय मिलते जायँगे, त्यों-त्यों इच्छा भी बढ़ती जायगी। संसार के सभी विषय-भोग एक ही व्यक्ति को दे दिये जायँ, तो उन सबको भी भोगने से उस एक की भी तृप्ति न होगी। फिर इतने सीमित विषयों से, इतने भोगेच्छुक प्राणियों के रहते हुए, तृप्ति कैसे संभव है? यदि भोगों की प्रचुरता में ही सुख हो, तो इन्द्र को सदा सुखी रहना चाहिये। स्वर्ग में इन्द्रियों को प्रिय लगनेवाले सुखों की क्या कमी। स्वर्ग में पीने को अमृत मिलता है, जो संसार में सर्वोत्तम स्वादिष्ट पेय है। वहाँ कल्पवृक्ष के पुष्प हैं, जिनकी गन्ध योजनों तक जाती है, जिसके फूल कभी सड़ते नहीं, कभी कुम्हलाते नहीं। और भी घ्राणेन्द्रिय को प्रमुदित करनेवाली वहाँ दिव्य-दिव्य गन्धें हैं। उर्वशी, रम्भा, तिलोत्तमा तथा और भी ऐसी-ऐसी सुन्दरी अप्सराएँ वहाँ हैं जिनसे नेत्रों को सर्वाधिक तृप्ति मिल सकती हैं, जिनके सम्मुख संसार के सभी सौन्दर्य तुच्छ हैं। श्रवणेन्द्रिय को सुख पहुँचानेवाला सुमधुर संगीत वहाँ होता ही रहता है। गन्धर्वगण अपने गायन से, अप्सराएँ अपने कल-कूजित कण्ठ से वहाँ कोकिला के सदृश सदा कूजती रहती हैं। उनके नूपुरों की सुमधुर ध्वनि श्रवणों में अमृत घोलती रहती है। स्पर्श करने को उन कोमलाङ्गी कामिनियों की दिव्य गन्धयुक्त देह सभी सुकृतियों के लिये सुलभ है। चढ़ने के लिये इच्छाचारी विमान हैं, घूमने के लिये चैत्ररथ, विभ्राजक तथा नन्दन आदि कानन है। कौन सी इन्द्रिय का वहाँ आहार नहीं? फिर भी वहां मानसिक व्यथा है। पतन का भय लगा है। अतिशय दोष भी वहाँ विद्यमान हैं। अतएव वहाँ भी सुख नहीं। जितने विषय प्राप्त होते हैं, उनसे सन्तोष नहीं होता। उपदेश देवों का भोग चाहते हैं, देवता इन्द्र होना चाहते हैं, इन्द्र ब्रह्म-सुख को तरसते हैं। लाभ से लोभ बढ़ता है। यदि मन में असन्तोष हैं, तो ब्रह्मलोक में भी भले ही चले जाओ वहाँ भी सुख नहीं, शान्ति नहीं। यदि मन सन्तुष्ट है, स्वर्ग, नरक, पृथ्वी, पाताल, ब्रह्मलोक कहीं भी रहो, सुख ही सुख है। सन्तोष ही उत्थान है, असन्तोष ही पतन। ब्रह्म को छोड़कर एक-सी स्थिति में कोई भी कभी नहीं रह सकता। या तो उसकी उन्नति होगी, या अवनति। उत्थान-पतन का यह क्रम ब्रह्मलोक तक लगा ही रहता है।

वासना के आने पर जीव में छल-कपट आदि विकार उत्पन्न होते हैं। छल-कपट सदैव विश्वासघात करके जीव को चेतनाशून्य कर देते हैं।

इकाई के आगे जितने ही बिन्दु बढ़ाते जाइये, उतनी ही उसकी वृद्धि होती चलेगी। उसी प्रकार संसारी विषयों को जितना ही भोगो, उतनी ही उनमें अधिकाधिक इच्छा बढ़ती जायगी। विषयास्वाद एक ऐसा धन है, जिसका चक्रवर्ती व्याज निरन्तर बढ़ता ही रहता है। जब इन्द्रियाँ विषय-भोगों की अभ्यस्त हो जाती हैं, तब उनके बिना रहा ही नहीं जाता। मरते-समय भी चित्त इन्हीं भोगे हुए विषयों में फँसा रहता है। जिसका जो संस्कार प्रबल हो गया, उसी की स्मृति में उसके प्राण छूटेंगे और दूसरे जन्म में उन्हीं की प्राप्ति में प्राणी प्रयत्नशील होगा। अत: समस्त इन्द्रियजन्य विषय संसार-चक्र को और दृढ़ बनानेवाले हैं। विषयों में फँसना ही दु:ख है। विषयों से मुक्ति होना ही परम सुख है। यह कामाग्नि बड़ी प्रबल है। यह भोगों से शान्त नहीं होती। काम तो इतना प्रचण्ड भूत है कि यह कभी तृप्त हो नहीं सकता। जलती अग्नि में जितना ही ईंधन डालो, उतना ही वह प्रचण्ड होगी। घृत डालो तो उससे वह और प्रचण्ड होगी। अग्नि और तृण साथ-साथ रहेंगे तो उनमें अग्नि उत्पन्न होगी ही। घृत अग्नि के समीप रहेगा तो पिघल ही जायगा। इसलिए साधक को जहाँ तक हो, विषयों से सदा बचते ही रहना चाहिये। प्रात:काल का भूला यदि सायंकाल तक घर लौट आये तो उसे भूला हुआ नहीं कहते। इन संसारी विषयों के भोगों में इतना अधिक आकर्षण है कि प्राणी मरते-मरते इनका परित्याग नहीं कर सकता। चाहे जितनी वैराग्य की बातें बताई जायँ इन शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श- सुखों में फँसी इन्द्रियों को उनसे हटाना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है। जिस भाग्यशाली को पुण्यों के प्रभाव से-भगवत् कृपा से- विषय में वैराग्य हो जाय तथा यह सत् है, यह असत् है, ऐसा ज्ञान हो जाय, उसके सभी शुभ-अशुभ कर्म क्षीण हो जाते हैं। ज्ञान रूपी अग्नि समस्त भले बुरे कर्मों को भस्मसात कर देती हैं। कर्मों के नाश होने से पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।

जब मनुष्य काम के प्रबल वेग में पड़ जाता है, तब बड़ों का संकोच, धर्म-अधर्म का भय, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान उसे रहता ही नहीं, काम वेग शान्त होते ही फिर विचार आता है। देवता हो, मनुष्य हो, ऋषि-मुनि चाहे जो हो, जब उसे काम का वेग होता है, तब कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक उसे नहीं रहता। जिसके समीप भोगय-सामग्रियाँ यथेष्ट हैं, उन्हें उनके अभाव की स्थिति का सहज अनुभव नहीं होता। खाने-पीने की सब वस्तुएँ घर में विपुल परिमाण में होती हैं तो मंदाग्नि हो जाती है, भूख ही नहीं लगती। जब अन्न क्षय हो जाता है, तब जठराग्नि भी बढ़ जाती है, भूख भी अधिक लगती है। धनी लोग निर्धनों की स्थिति का अनुभव नहीं कर सकते। जो विषयी हैं, रात्रि दिन विषयों में ही लिप्त रहते हैं, वे काम के वेग को क्या जानें, वे तो कूकर, शूकर, कबूतर आदि की भाँति रात्रि दिन विषय भोगों में ही संलग्न रहते हैं। जो विषयों से पृथक् रहकर इन्द्रियजित होने का प्रयत्न करते रहते हैं, वे ही समझ सकते हैं कि विषयों के सानिध्य होने से वासना कितनी प्रबल हो जाती है। क्षुद्र लोग अपने पापों को छिपाते हैं, महापुरुष अपनी निर्बलता को सबके सम्मुख प्रकट कर देते हैं। यदि मनुष्य अपनी आकांक्षा को आधा कर लेता, तो उसकी कठिनाइयां दुगुनी हो जातीं।

कुछ लोगों का कहना है कि संसार में काम ही सबसे उत्तम सुख है। ब्रह्म चिन्तन में क्या सुख है उसे तो किसी ने देखा नहीं। वह तो आकाशकुसुम के सदृश केवल कहने मात्र के लिये है। काम सुख का अनुभव सभी को है। संसार में लोग बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ केवल कामसुख प्राप्त करने के लिये ही सहन करते हैं।

बड़े-बड़े मुनियों को देखा है, सहस्रों वर्ष तपस्या करते रहे, ब्रह्म का चिन्तन करते रहे, जहाँ कोई अप्सरा पहुँची कि

फिसल गये। काम में इतना सुख न होता, तो सहस्रों वर्ष के जप-तप के पश्चात भी मन उसकी ओर क्यों जाता। काम से समाधि होती है। अपनी इच्छानुकूल स्त्री को पति मिले और पति को मनोनुकूल स्त्री मिले तो उससे बढ़कर सुख, कल्याण, मोक्ष या आनन्द दूसरा नहीं। इसलिये वात्स्यायन आदि मुनियों ने काम शास्त्र की रचना की है, उसमें काम को ही श्रेय बताया है। काम का सेवन कैसे करना चाहिये इसकी विधि बतायी उनके मत में काम ही परम श्रेय है। ऋषियों ने दो ही आनन्द बताये हैं, विषयानन्द और ब्रह्मानन्द। इसलिये दो ही मार्ग हैं, काम मार्ग और राम मार्ग। काम मार्ग की साधिका नारी है, राम मार्ग की साधिका भक्ति है। जहाँ काम है वहाँ राम नहीं रहते और जहाँ राम हैं वहाँ काम का क्या काम। राम किसी के पुत्र नहीं वे चराचर जगत् के पिता हैं और काम संकल्प का पुत्र है, इसलिये राम मार्ग की ओर बढ़ने वाले को जिससे विषयों का संङ्कल्प हो उस काम को त्याग देना चहिये। संकल्प उठता है सङ्ग से इसीलिये मुमुक्षुओं के लिये निस्संगता ही मुक्ति का प्रधान साधन है। विषयों के ध्यान से, चिन्तन से सङ्ग होता है। जहाँ सङ्ग हुआ वहाँ काम की उत्पत्ति हो जाती है। मन में कामना के उत्पन्न होते ही चित्त की वृत्ति तदाकार हो जाती है। यह काम ही अनेक रूप रखकर संसार बन्धन को अधिकाधिक दृढ़ करता जाता है। स्त्री पुरुष के सङ्ग से शरीर की उत्पत्ति होती है, अत: शरीरधारी के मन में छिपी हुई कामना रहती है वह कामना मनोनुकूल वस्तु को पाकर उभड़ आती है और उसके प्रति आसक्ति हो जाती है। जिसमें आसक्ति हो जायगी मन उसी के हाथों बिक जायगा उसी का हो जायगा। अत: मुक्ति की इच्छा वाले पुरुष को स्त्री की आसक्ति छोड़नी ही पड़ेगी। जब तक ये दोनों परस्पर में आसक्ति न छोड़ेंगे तब तक वे भगवान को हृदय में बिठा नहीं सकते। क्योंकि हृदय की कोठरी बहुत छोटी-सी है उसमें दो के लिये स्थान है ही नहीं। या तो वहाँ कोदण्डधारी राम ही बैठेंगे या कुसुमायुध काम का ही आसन रहेगा। अन्धकार और प्रकाश दो साथ रहें यह असम्भव है।

मनुष्य का दूसरा नाम है साधक। यदि वह विषयों का सेवन केवल पशुओं की भाँति इन्द्रिय तृप्त के लिये करता है, उनको रागपूर्वक ग्रहण करता है तब तो वह साधकपने से च्युत हो जाता है और यदि उनका सेवन शास्त्रीय विधि से, संयम पूर्वक करता है तो सदा के लिये वासनाओं से मुक्त हो जाता है।

जीवन में एक है आवश्यकता और दूसरी है वासना। आपको जीवन की वास्तविक आवश्यकताएं तो पूरी करनी ही होंगी। मूल आवश्यकताएं खाने की रोटी, पहनने को वस्त्र और रहने को एक छोटा-सा मकान ही है। इससे आगे जो कुछ भी है वह वासना है। वासना अर्थात अहंकार, महत्वाकांक्षा, लोलुपता। उसे पूरा करने का कोई उपाय नहीं है।

आवश्यकताएं पूरी न हों तो जीवन जड़ हो जाएगा। भोजन शरीर का ईंधन है। पर वासना ऐसी वस्तु नहीं है। वासना तो अवरोध उठाती है क्योंकि वह स्वयं एक अवरोध है। वह आपको भगाती है, दौड़ाती है। आवश्यकता कहती है मुझे रोटी चाहिए। वासना कहती है मुझे स्वर्णथाल में रोटी चाहिए। आवश्यकता कहती है मुझे वस्त्र चाहिए, वासना कहती है मुझे अन्य लोगों से सुंदर वस्त्र चाहिए।

विषयभोग- जिन विषय भोगों की प्राप्ति के लिये संसारी लोग निरन्तर व्यग्र बने रहते हैं, विषयों की प्राप्ति ही जिनके जीवन का परम लक्ष्य है, उन्हें इच्छानुसार विषयों की भी प्राप्ति नहीं होती और भगवान से तो वे दूर ही हट जाते है, किन्तु जिन्होंने भगवान को ही अपना सर्वस्व समझ लिया है, जो अपना सुख दुख भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य से कहते ही नहीं, जो एकमात्र उनकी ही शरण में होकर अनन्यभाव से उन्हीं की आराधना में तत्पर हैं, उन्हें यदि विषय भोगों की भी

इच्छा होती है, तो उन्हें ऐसे विषय भोग प्राप्त होते हैं जो तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ हैं। किसी कारण विशेष से वे उन्हें कुछ काल के लिये ग्रहण कर लेते हैं। अन्त में वे उन्हें उसी प्रकार त्याग भी देते हैं जैसे पुरुष, मल-मूत्र का त्याग करके उससे निस्पृह-उदासीन हो जाते हैं।

दिव्य हों अथवा पार्थिव, इन विषयों में सुख नहीं। इनके सेवन में शाश्वती-शान्ति नहीं, फिर भी परम्परा से ऐसा प्रवाह चला आ रहा है कि इन्हीं विषयों में सुख समझकर उत्तरोत्तर इन्हीं की प्राप्ति के लिये हम व्यग्र रहते हैं। साधारण-निर्धन समझता है, लखपति सुखी होंगे, उनके समीप सुख की प्रचुर सामग्री है। लखपति समझता है कि करोड़पति सुखी होगा। करोड़पति, अरबपति को, वह पद्मपति को चक्रवर्ती को, वह चक्रवर्ती इन्द्र को, इन्द्र ब्रह्मा को और ब्रह्मा सर्वस्व त्यागी विरागी को सुखी समझते हैं। वास्तव में इन्हीं की समझ सत्य है। जितनी ही विषयों की अधिक प्राप्ति होगी, उतनी ही तृष्णा बढ़ेगी। जिसकी जितनी ही अधिक बढ़ी तृष्णा है, वह उतना ही अधिक दुखी है। परन्तु यह ज्ञान, बिना अनुभव के केवल सुनकर ही प्राय: नहीं होता। इसलिये क्रम मुक्तिवाले साधक इन सब दिव्य लोकों के सुखों का अनुभव करते हुए ऊपर बढते हैं। कोई-कोई बुद्धि द्वारा इन सब विषयों को दृढ़-धारण से तुच्छ समझकर, प्रकृति से परे पुरुषोत्तम-धाम में सदा नित्य सुखों के अधिकारी बन जाते हैं।

ब्रह्माजी ने इन चक्षुओं के गोलकों को बाहर की ओर ही बनाया है, अत: स्वभावत: जीव इन संसारी पदार्थों को ही देखता है, उन्हीं में रमण करता है, उन्हीं में सुख समझता है। विषयों की ओर लगाने को कोई विद्यालय, शिक्षणालय नहीं। अनेक जन्मों से विषयों को भोगते-भोगते जीव उनका आदी हो गया है। इसलिये तो उत्पन्न होते ही, बिना किसी के सिखाये ही माता के स्तन से दूध खींच लेता है। पूर्वजन्म का अभ्यास न होता, तो बालक क्या जानता कि इसमें दूध है और वह कैसी क्रिया करने से खींचा जाता है? संसार के सभी पदार्थ हमें अपनी ओर खींच रहे हैं, हम सभी इन चित्र-विचित्र विषयों को देखकर, सुनकर, सूँघकर तथा स्पर्श आदि करके उनकी ओर आकृष्ट होते हैं। यह आकर्षण जीव मात्र में है। मन तथा इन्द्रियों के साथ विषयों का संसर्ग होते ही कामना उत्पन्न हो जाती है। जो जहाँ से उत्पन्न होता है, उसका अपने उत्पत्ति स्थान को ओर स्वभाव से झुकाव होता है। उसमें नैसर्गिक-अनुराग होता है।

विषयोंका चिंतन करना मनुष्य के नाश का कारण है। वह मनुष्य को ज्ञानविज्ञान से भ्रष्टकर स्थावर योनि में ले जाता है। अतएव साधक को विषयीं पुरुषों का संग नहीं करना चाहिए।

जब तक विषय इन्द्रियों के सम्मुख नहीं हो तब तक हम विवेक द्वारा उनमें दोष देखकर चित्त को उनकी ओर से हटा लेते हैं। किन्तु अत्यन्त आकर्षण विषय इन्द्रियों के सम्मुख हुए कि फिर मन वश में रहता नहीं, मतवाले हाथी की भाँति दृढ़ लौह श्रृङ्खला को भी तोड़कर स्वच्छन्द हो जाता है। इसलिये त्यागियों के लिये कहा गया कि वे विषयों से भरसक दूर रहें।

कामनाएं- एक बालक अपने मित्र से मिलने गया। मित्र पलंग पर बैठकर भोजन कर रहा था। नौकर व्यंजन परोस रहे थे। सामने दूरदर्शन चल रहा था। बालक के मन में आया कि काश ऐसा ही भाग्यशाली जीवन मुझे भी मिलता। भगवान ने तुरंत ही उसकी वह इच्छा पूर्ण कर दी पर अपने तरीके से। दूसरे दिन उस बालक की दुर्घटना से पैरों की हड्डी टूट गई। वह अस्पताल में पलंग पर भोजन कर रहा था। सामने दूरदर्शन चल रहा था और सभी उसकी परिचर्या में जुटे थे। हमसे कोई बार-बार मांगे तो कितनी झुंझलाहट होती है। किसी के लिए कुछ करें तो कर्ताभाव आता है। दें तो दाता का भाव

आता है। मांगने वाले के आगे अपने को श्रेष्ठ समझने का भाव आता है। कभी हम अंदर झांक कर तो देखें। हमसे बड़ा याचक कौन हो सकता है। जबसे होश संभाला है मांगने का अनवरत सिलसिला शुरू है जो उम्र के साथ बदलता जाता है। परीक्षा में पास करें, मनचाहा साथी मिल जाये। फिर वांछित संतान, उसकी लम्बी उम्र, वैभव फिर उसे कायम रखने की इच्छा, स्वास्थ्य और न जाने क्या-क्या। एक से दूसरी कामना की अंतहीन श्रृंखला। जब तक अपने विवेक से पक्का नहीं हो जाता कि मनुष्य को जो मिलता है वह कर्मफलों के हिसाब से लिखी उसकी प्रारब्ध का फल है। संतोष नाम के धन की प्राप्ति संभव नहीं। भूख से रहना आसान है जब आवे संतोषधन सब धन धूरि समान, पर जीवन में उतारने में बहुत मेहनत लगती है। पल-पल में भटकते मन पर अंकुश लगाना पड़ता है। हम जितने बर्हिमुखी होकर जीते हैं, लालसाएं बढ़ती ही जाती है। जितने अंतर्मुखी होते हैं, योग परमात्मा से लगता है। एक बार मनुष्य का योग परमात्मा से लग गया तो उसका दृढ़ विश्वास हो जाता है कि इस जग में सब नश्वर है; क्षणभंगुर है। जब कुछ स्थिर है नहीं तो उसे मांगने से क्या फायदा। भाग्य से ज्यादा कुछ मांगोगे तो भगवान अपने हिसाब से देगा। अपने तरीके से देगा, क्या हम उसके लिए तैयार हैं। सफर खत्म होने पर तो एक तिनका भी साथ नहीं जायेगा फिर इतनी लालसाएं क्यों? जो मिला है उसे भगवान का प्रसाद समझकर उसी में संतुष्ट रहकर उसी का आनंद लेकर जिए, वही आदर्श जीवन है। कामनावाले के लिये क्रोध आवश्यक है क्योंकि कामना कभी तृप्त नहीं होती।

कामनाके द्वारा जब कामना पूरी होती है तो निश्चय ही वह संसार उत्पन्न करती है। अत: प्रेम ऐसे व्यक्तिसे करो जो तुमसे प्रेम नहीं करता। तुम्हारा प्रेम संसारमें नहीं भटकेगा। तुम्हारे भीतर संसार उत्पन्न नहीं होगा। निष्कामके प्रति जब कामना उदित होती है, तो वह कामना भी निष्काम हो जाती हैं; क्योंकि पूरी तो उसे होना ही नहीं है।

कामना की सिद्धि में विघ्न होने पर क्रोध उत्पन्न हो जाता है। जहाँ हृदय में क्रोध आया कि तत्क्षण बुद्धि सम्मोह में फँस जाती है। सम्मोह में फँसी बुद्धि की वही दशा होती है जो गहरे दलदल में फँसी गौ की होती है। बुद्धि अपने सद्-असद् के विवेक को खो बैठती है।

भरपूर संपत्ति अर्जित करने के बाद भी क्यों कमाते रहते हैं? संपत्ति के साथ जीना तो समझ आता है, लेकिन संपत्ति के लिए जीना क्यों? आज जिसे हम सुखी होना कहते हैं वह सुख नहीं, इच्छाओं की, कामनाओं की पूर्ति है। इसीलिए हम दिन-रात कामनाओं को ही सफल बनाने में लगे रहते हैं। किसी एक भी इच्छा, कामना की निष्फलता हमें दुख दे जाती है। लेकिन कई इच्छा, कामनाएं सफल हो जाने पर भी क्या हम आश्वासन के साथ कह सकते हैं कि हम पूरी तरह से सुखी हो गए? अब किसी कामना की इच्छा नहीं?

जब भी जहां भी संपदा का बाहुल्य हुआ, समाज में संपन्नता तो दिखाई दी, लेकिन व्यक्ति से लेकर परिवार और पूरा समाज ही अव्यवस्थित हो गया। हम आंतरिक विशुद्धि से व्यवस्थित होना चाहते हैं या बाहरी समृद्धि से अस्त-व्यस्त। सब कुछ जानते हुए भी हम कामनाओं के पीछे ऐसे भाग रहे हैं जैसे कुत्ता किसी कार के पीछे सांस फूल जाने तक भागता है, लेकिन पकड़ नहीं पाता। हम भाग दौड़ कर कामनाओं के सुख को पा ले तो भी शाश्वत सुख न पा सकेंगे।

लालसा - जो मृत्यु को सम्मुख देख कर भी संसार के भोग्य पदार्थों की ओर मन को चलायमान कर देती है वही तीव्र लालसा है।

ईर्ष्या - असूया - हसद

ईर्ष्या-असूया -हसद - ईर्ष्या एक स्वार्थ प्रेरित दुर्भावना है। ऐसी भावना है जो घृणा को जन्म देती है। आदमी को शंकालू बना देती है। जिसके प्रति ईर्ष्या होती है, उस पर से आस्था उठा देती है। ईर्ष्या (जेलसी) तथा मत्सर (एनवी) में बड़ा घनिष्ठ संबंध है। दोनों ही घृणा के लिए कारणरूप है और दोनों ही भावनाए स्वार्थ प्रेरित और द्वेषपूर्ण है। दोनों का अंत हानिकारक और विनाशात्मक है। ईर्ष्या अधिक उद्दंड होती है। ईर्ष्या मात्र दो परिचित व्यक्ति के बीच कलह लेकर आती है और अजीब बात यह है कि जब परिचित व्यक्ति कभी शाबाशी पाता है, तभी ईर्ष्या का जन्म होता है। ईर्ष्या के दो क्षेत्र है- १) सम्पत्तिवान २) सम्पत्तिहीन। जो संपत्तिवान है, उन्हें अपनी भौतिक समृद्धि पर गर्व होता है। उनका कोई मित्र या संबंधी भी संपत्ति का स्वामी हो रहा हो तो वे उसके प्रति ईर्ष्यालु हो जाते हैं। ईर्ष्या अपने शिकार को दूसरों की उन्नति नहीं देखने देती। जो सम्पत्तिहीन है वे संपन्न लोगों के प्रति ईर्ष्यालु हो जाते हैं। संपन्नवान लोगों को ये कोसते रहते हैं। यह बात उनकी क्षमता से परे होती है, पर वे लोग संपत्ति की कामना करते रहते हैं। फलस्वरूप उनके मन से शांति समाप्त हो जाती है। ईर्ष्यालु सदैव झूठ बोलता है। ईर्ष्यालु मिथ्या-दंभी होता है। कारण चाहे जो हो, सभी ईर्ष्या के शिकार होते देखे गये हैं। सभी विकारों के शीर्ष स्थान पर ईर्ष्या है। इसका पता चलते ही उससे मुक्ति का प्रयास नहीं करेंगे तो एक दिन सभी हित-मित्र आपसे बिछुड़ जाएंगे।

किसी को सम्पन्न देखकर अपने दिल को जलाना, उसकी नेमतों का छीन जाने की कामना करना ऐसी भावनाओं का नाम ईर्ष्या है। ईर्ष्या अपनी नेकियों को इस तरह खा जाती है जैसे आग लकड़ी को जला देती है। ये बड़ी खराब और बुरी आदत है, बहुत बड़ा गुनाह है। ईर्ष्या करनेवाले की पूरी जिंदगी जलन व घुटन की आग में जलते रहती है और उसे चैन व शांति नहीं मिलती।

अधिकांश लोग बहुत से दुर्गुणों को विकासित कर रहे है इन्ही मे से एक ईर्ष्या है यानि की जलन। बच्चों से लेकर वृद्धों तक में जलन की भावना व्याप्त रहती है। दूरदर्शन में भी विज्ञापनों में भी ईर्ष्या का मनोविज्ञान काफी दिखाया जाता है। एक बच्चा दूसरे बच्चे से इसलिये ईर्ष्या करता है कि उसका खिलौना दूसरे बच्चे के खिलौने से छोटा है। एक गृहिणी दूसरी गृहिणी से इसलिये ईर्ष्या करती है उसकी साडी दूसरी से कम चमकदार क्यो है ? कोई किसी के बढ़ते व्यवसाय से तो कोई किसी की उन्नति से ईर्ष्या करता है। ईर्ष्या करते तो सभी है लेकिन कोई कम या कोई अधिक। वर्तमान में दु:ख का मुख्य कारण ईर्ष्या ही है। किसी ने कहा है ईर्ष्या तू न गई मेरे मन से।

ईर्ष्या द्वेष एक ऐसा तेजाब है जो हमें अन्दर ही अन्दर खा कर खोखला कर देता है, चूकिं ईश्वर सर्वत्र है सदा है और सबमें है और जिससे भी द्वेष कर रहे है उसके अन्दर विराजमान ईश्वर से भी द्वेष करने में यह भागी हो जाते है। ईर्ष्या द्वेष हमारी अनन्त क्षमताओं को हर लेता है और हम अपने आपको ठगा सा महसूस करने लगते है। मूर्ख और विद्वान में कोई अन्तर नही यदि विद्वान होते हुये ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में झझक रहा है। ईर्ष्या-द्वेष को सदैव दूर रक्खे।

मनुष्य संसार में अपने दु:खों से इतना दु:खी नहीं है, जितना दूसरे के सुखमय जीवन को देख कर दु:खी है। अज्ञानी मनुष्य दूसरों का अनिष्ट और अहित सोच कर अपना अनमोल समय नष्ट करता है और कर्म बन्धन में स्वयं को जकडे रहता है। अज्ञानी मनुष्य इस संसार में रह कर सडक की गंदगी अपने घर में भरने जैसा हास्यपाद काम कर रहा है। जो समय मनुष्य को स्वनिर्माण मे लगाना चाहिये वह उस समय को ईर्ष्या की ज्वाला में जला कर अपना अनिष्ट कर रहा है। उसे सोचना चाहिये कि क्या बिल्ली के छींकने से छींका टूट सकेगा। हर आत्मा का अपना अलग-अलग भाग्य होता है, उसे कोई नहीं छीन सकता। अपनी भावना मलीन करने से अपने स्वयं का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। बिना कुछ दिये हम किसी का भला नहीं देख सकते तो भला पैसे देकर भला करने की कल्पना करना व्यर्थ है और वह करता भी है तो वह उसके पतन का कारण बनेगा। दुश्मन के घर पर भी मंगल बाजे बजे ऐसी पावन भावना जिस दिन हमारे दिल में पैदा हो जायेगी, उस दिन हमारी आत्मा के कल्याण को कोई नहीं रोक सकता। जो उपर मैत्री का भाव दिखाता है परन्तु अन्दर से ईर्ष्या के कीटाणु पालता है, वह नराधम मानवता पर कलंक है।

ईर्ष्या को प्रकृतिवाले का यदि वरदान भी मिल जाये तो वह अभिशाप के रूप में ही परिवर्तन हो जायेगा। हम को इस पर नियंत्रण करने की आवश्यकता है। अपने लक्ष्य को साधना बनाये तो इसी मे जीवन की सार्थकता है। ईर्ष्या की आग सबसे भयंकर है, यह बाहर तो प्रकट तो होती नहीं परन्तु भडकने पर पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले लेती है। इससे किसी दूसरे का नुकसान हो न हो, परन्तु स्वयं का जीवन अन्धकार में डूब जाता है। ईर्ष्या जैसा खतरनाक शत्रु मनुष्य का कोई नहीं है। मानसिक अशान्ति, तनाव को मनुष्य स्वयं पैदा कर रहा है। ईर्ष्या को त्यागे बिना स्थायी शान्ति संभव नही है।

ईर्ष्या मन का एक विकार है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अलग करता है या साधारण शब्दों में यूँ कहे कि परायेपन की भावना का सूचक होता है। वास्तव में ईर्ष्या हीन मनोवृतियों से उत्पन्न होती है जो कि ईर्ष्या करने वाले को दु:खी करती है। दूसरों की सफलता से ईर्ष्या करनेवाले व्यक्ति में यही ईर्ष्या, कुंठा, क्रोध और जलन को उत्पन्न करती है जिसके परिणाम स्वरूप ईर्ष्या करनेवाला व्यक्ति अन्दर ही अन्दर अपनी लगायी आग में जलता रहता है। ईर्ष्या की आग में व्यक्ति इतना अविवेकी हो जाता है कि वह यह भी भूल जाता है कि उसकी इस कुढ़न और क्रोध की प्रवृति का उसके शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ उसके स्वभाव पर कितना घातक प्रभाव पड रहा है।

ईर्ष्या व्यक्ति की संकीर्ण मानसिकता को दर्शाती है। यह भी वास्तविक तथ्य है कि ईर्ष्या की भावना पुरुषों की तुलना में महिलाओं में अधिक पायी जाती है। और यही कारण है कि महिलायें पुरुषों की तुलना मे अपना मानसिक सन्तुलन अधिक खोती है। ईर्ष्या व्यक्ति को इतना अन्धा बना देती है कि वह अपनी सामान्य विवेक बुद्धि भी गंवा बैठता है जिसके परिणाम स्वरूप उसे सामाजिक निन्दा का पात्र बनना पडता है।

ईर्ष्या रोग से पीडित व्यक्ति की दशा अत्यधिक दयनीय, कष्टदायक, और अनेक समस्याओं और परेशानियों से भरी हुई होती है। ईर्ष्यालु व्यक्ति स्वयं तो ईर्ष्या प्रवृति के कारण कष्ट भोगता ही है, साथ ही वह अपनी इस दुषित प्रवृति से दूसरों को भी कष्ट पहुंचाता है। ऐसा व्यक्ति समाज में सबके लिये चिन्ता और परिहास का कारण बना रहता है। ऐसा व्यक्ति कब और

कैसे किसको अपनी ईर्ष्या का शिकार बना ले, कुछ कहा नहीं जा सकता।

ईर्ष्या करके हम किसी का कुछ नही बिगाड सकते, सिर्फ अपना शारीरिक एवं मानसिक नाश ही करते है। ईर्ष्यालु व्यक्ति की एक पहचान यह भी है कि वह सदैव भाग्य की दुहाई देता नजर आता है कि क्या करे, हमारी तो तकदीर ही खोटी है, लेकिन आज का युग भाग्य की दुहाई देने का नहीं बल्कि प्रगति का युग है। किसी की प्रतिभा, सौभाग्य, शिक्षा, नौकरी आदि से क्या ईर्ष्या करना। ऐसा नहीं कि ईश्वर ने कुछ ही लोगों को प्रतिभाशाली, सौभाग्यशाली, या धनवान होने का वरदान दिया हो। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर एक दिव्य शक्ति विद्यमान है। आवश्यकता तो व्यक्तिद्वारा उसे स्पष्ट करने और आत्मविश्वास के साथ प्रयत्नशील होने की है। हम वास्तव में जीवन में कुछ करना चाहते है तो दूसरों से ईर्ष्या करने के बजाय यदि स्वयं पर विश्वास करेगे और मन में ईर्ष्या जेसे विकार को कभी उत्पन्न नहीं होने देगे, तभी हम शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ रहेंगे और तभी हम अपने जीवन में सफलता के नवीन कीर्तिमान स्थापन कर सकेंगे अन्यथा नहीं।

ईर्ष्या सामाजिक जीवन की कृत्रिमता से उत्पन्न वह विष है जो हमारे मन में दूसरों के प्रति निंदा की भावना को जन्म देता है। अधिकांश लोग अपने दुखों से दुखी न होकर दूसरों के सुख और प्रगति को देखकर अधिक जलते हैं। इसी कारणवश वह तनावग्रस्त रहते हैं। क्योंकि उनके हृदय में प्रेम खत्म हो चुका होता है। इसके स्थान पर ईर्ष्या व निंदा का भाव जागृत हो जाता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति किसी सफल व्यक्ति की इस प्रकार से निंदा करता है जैसे वह कोई बहुत बड़ा कार्य कर रहा हो। वह ऊपर से कितना ही साफ-सुथरा क्यों न हो जब तक वह अपने अंदर से ईर्ष्या व निंदा का भाव निकाल कर बाहर नहीं करेगा तब तक उसका हृदय कलुषित ही रहेगा। किसी शायर ने ठीक ही कहा है कि जब किसी से कोई गिला रखना, सामने अपने आईना रखना।

मनुष्य स्वभाव में जहाँ दया, क्षमा, प्रेम और परोपकार आदि की सद्वृत्तियाँ हैं, वहाँ उसमें क्रूरता भी है। जिनसे अपना स्वाभाविक वैर होता है, उनका अनिष्ट हो उनका अपमान हो तो हमें आन्तरिक प्रसन्नता होती है। इसके विपरीत अपने विपत्ति की उन्नतियाँ, प्रशंसा सुनकर हृदय में एक प्रकार की जलन होती है। मनुष्य चाहता है, मेरी ही उन्नति हो, सब लोग मेरी ही बात मानें, मेरे ही पक्ष में रहें, मेरी प्रशंसा हो। जो मेरी इस इच्छा पूर्ति में बाधक है, वह मेरा शत्रु है। मनस्वी लोगों के हृदय में ये भाव स्वाभाविक होते हैं। वीतराग महात्मागण इसके अपवाद भी होते हैं, किन्तु बहुत कम। बड़े-बड़े लोगों में भी ये भाव न्यूनाधिक रूप में पाये जाते हैं।

यह माना गया है कि दुनिया में सबसे श्रेष्ठ लोग वे हैं, जो दूसरों के सुख से सुखी होते हैं। जो दूसरों के सुख को देखकर सुखी हो जाए, अपनी ईर्ष्या पर काबू कर ले, वह महान व्यक्ति है। ऐसे व्यक्तियों को असूया-विजयी कहा गया है। असूया का अर्थ क्या है ? औरों की तरक्की देखकर अंदर होने वाली जलन को असूया कहते हैं। जलन बुरी नहीं होती, बशर्ते, हम दीये की तरह जलें। खुद जलें, पर दूसरों को रोशनी दें। अगर जलना ही है, तो दीपक की तरह जलो। दीये की तरह जलना पारमार्थिक प्रवृत्ति है।

इस बारे में एक प्रसंग है। मोमबत्ती जल रही थी और मोम पिघल रहा था, तो किसी ने मोम से पूछा कि जल तो रहा है

धागा, पर मोम तू क्यों पिघल रहा है ? मोम ने कहा, जिसे दिल में बसाया हो, अगर वह जल रहा हो, दुखी हो, तो उसको जलते देखा नहीं जा सकेगा। प्रियतम के दुख से प्रेमी भी तो पिघलेगा। तो सबसे ऊंचा वह आदमी है, जो दूसरों के सुख को देखकर सुखी होता है। लेकिन दूसरों के सुख में सुखी होना बेहद कठिन है। ऐसा तभी हो सकता है, जब तक मन एकदम निर्मल न हो जाए। इंसान संतत्व की ऊंचाइयों को छू ले। ऐसा हुए बिना संभव नहीं कि औरों के उत्कर्ष को देखकर हम राजी हो जाएं और कहें कि, वाह। भाई बहुत सुंदर, आगे बढ़ते रहो। हम बहुत प्रसन्न हैं। तुमने हमारा गौरव बढ़ाया।

हमारे देश, गुरु और पिता के लिए तो यह बड़े आनन्द की बात है कि चेला और बेटा आगे निकल जाएं। उनकी तरक्की से वे बहुत प्रसन्न होते हैं। वे आशीष देकर कहते हैं कि सब जगह तुम्हारी विजय हो। हमारा आशीर्वाद है कि जीवन में कभी हारो नहीं अगर हारो, तो अपने शिष्य से, अपने बेटे से। पुत्र और शिष्य की बात जहां तक है, लोग इनसे पराजय स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन जब बात आती है जनसाधारण की, अपने मित्र या पड़ोसी की तरक्की की, तो उनके सुख से वही व्यक्ति सुखी हो सकता है, जो ईर्ष्या को जीत चुका हो। मानव का सबसे बड़ा दुर्गुण है ईर्ष्या। मानव के मन में ईर्ष्यारूपी विष जब आ जाता है, तो उसका चरित्र प्रदूषित हो जाता है।

दुष्ट मनुष्यों के हृदय में भी बड़ी जलन होती है, वे हमेशा पराई सम्पत्ति देखकर जलते रहते हैं। वे जब कहीं दूसरों की बुराई सुनते हैं वहाँ ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे उन्हें पड़ी हुई सम्पत्ति मिल गयी हो। वे काम, क्रोध, मद और लोभ में लिप्त तथा निर्दयी, कपटी, खोटे और मन के मैले होते हैं, बिना कारण सभी से वैर भाव रखते हैं, चाहे उनकी भलाई करनेवाला हो या बुराई।

झूठ तो उनका पेशा ही है, झूठ ही लेना, झूठा देना, झूठा खाना और झूठा ही चबेना होता है। ऊपर से तो ऐसे मीठे वचन बोलते हैं जैसे मोर मीठे स्वर में कुहकता है, परन्तु उनका हृदय इतना कठोर होता है कि अत्यन्त विषैला सर्प भी खा जाता है। वे दूसरों से द्रोह करते हैं तथा पराई स्त्री, पराया धन और पराई निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे नीच पापी देह धारन किए राक्षस ही हैं। लालच ही उनका ओढना, बिछौना है, वे मैथुन और पेट की चिन्ता में ही लगे रहते हैं। यमपुर का भय भी उन्हें नहीं होता। जब किसी की प्रशंसा सुनते हैं तब ऐसी साँस लेते हैं मानो जूड़ी बुखार आ गया हो। जब किसी पर विपत्ति देखते हैं तो ऐसे सुखी होते हैं जैसे जगत के राजा हो गए हों, वे अपने स्वार्थ में लीन कुटुम्ब विरोधी, ठग, कामी, लोभी और क्रोधी होते हैं। माता-पिता, गुरु-ब्राह्मण किसी की नहीं मानते, आप तो नष्ट होते ही हैं दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोह बस दूसरों से द्रोह करते हैं, संत जनों की संगत और भगवान की कथा उन्हें सुहाती ही नहीं। वे दुष्ट अवगुनों के समुद्र मन्द बुद्धि, कामी, वेदों के निन्दक और पराये धन के स्वामी बननेवाले, विशेषकर ब्राह्मणों और देवताओं से द्वेष करनेवाले, पाखण्ड और कपट मन में भरे हुए ऊपर से अच्छा वेष बनाए रहते हैं। ऐसे नीच और खोटे मनुष्य सतयुग और त्रेता में नहीं होते, द्वापर में कुछ होंगे, परन्तु कलियुग में तो झुण्ड के झुण्ड होंगे। राग-द्वेष का उद्भव स्थान है- स्तुति और निन्दा।

असूया यानी ईर्ष्या। जिसके जीवन में कोई ईर्ष्या नहीं, मत्सर नहीं। ईर्ष्या बड़ा दुर्गुण है। यह बड़े-बड़े महात्माओंको छोड़ती नहीं। आदमी कितना ही बड़ा, महात्मा क्यों न हो जाय ईर्ष्या तो सबके हृदय में है। हम उनपर ईर्ष्या नहीं करते पर वे जो हमसे आगे बढ़ गये हैं उनसे ईर्ष्या करते हैं। ईर्ष्या करनेवाला व्यक्ति को कभी नहीं पकड़ सकता। वह तो परछायी को

ही पकड़ सकता है। उसके जाने के बाद उनकी निंदा करता है, यही ईर्ष्या है।

कभी किसी गुणवान के प्रति असूया नहीं करनी चाहिये। सबसे बड़ा पाप दूसरों से ईर्ष्या-डाह करना ही है।

शत्रुता का नाम ही द्वेष है। प्रेम बनाये रखना कहीं भी द्वेष मत रखो।

हृदय में जब किसी के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है, तब स्नेह सम्बन्ध सब शिथिल हो जाते हैं। मन में सदा द्वेषाग्नि जलती रहती है, चित्त चाहता है जैसे भी हो तैसे इसे नीचा दिखावें। किस तरह इसे क्लेश पहुँचावें, कैसे इस पर अपना विरोध प्रकट करें। संसार में ईर्ष्या द्वेष का अस्तित्व न होता, सब एक-दूसरे से प्रेम ही करते, तो ये लड़ाई झगड़े शोक, रोग, भय, मत्सर, कुछ न होते। मनुष्य चैन की बंशी बजाते आनन्द में विचरते।

ये मुझसे अतिशय धनी, मानी, यशस्वी, तेजस्वी, सुखी, समृद्धिशाली, सम्पन्न आदि सद्गुणों से क्यों है, ऐसी भावना का ही नाम सातिशय दोष है। अपने परिचितों सम्बन्धियों को अपने से बढ़ते देखकर एक प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न होती है। क्यों होती हैं, यह इस सृष्टि रचयिता का दोष प्रतीत होता है, या उस सर्वान्तर्यामी की महत्ता। चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त आप जिसे भी देखें वह अपने को सर्वश्रेष्ठ समझताहै। जो दूसरों की बढ़ती देखकर ईर्ष्या द्वेषवश उनके कार्यों में विघ्न करते हैं वही ईर्ष्या हैं। ईर्ष्यालु को पतन से कौन बचा सकता है, दूसरों की सम्पत्ति और परसुयश को देखकर जो जलता रहता है, उसकी अध:पतन से रक्षा करने की सामर्थ्य किसमें है।

ईर्ष्या क्या है और यह पैदा क्यों होती है? ईर्ष्या एक भाव है, जो किसी के पास कुछ ऐसी चीज होने की वजह से आ सकती है, जो आप पाना चाहते थे। या अगर किसी के पास कोई चीज आपसे ज्यादा है। अगर आप में किसी तरह की अपूर्णता है, जिसकी वजह से दूसरों के सामने आप अच्छा महसूस नहीं कर पाते, तो इससे भी ईर्ष्या पैदा होती है। ईर्ष्या में मुख्य रूप से एक अपूर्णता का भाव छिपा होता है।

यदि आप आनंद के भाव से पूरी तरह भरे हों, तो आपके भीतर किसी के भी प्रति ईर्ष्या का कोई बोध नहीं होगा। इस धरती पर हमेशा से ही अच्छाई को बढ़ावा दिया गया है। हमने कभी भी बुद्धि और बोध को प्रोत्साहित नहीं किया। एक समाज के रूप में हमने अच्छे इन्सानों को तैयार करने में अपना काफी कुछ लगाया है। अच्छाई की इस सोच के कारण ही दया, सहानुभूति जैसी मूर्खतापूर्ण चीजें पैदा हो गईं, जिनकी जरूरत किसी भी इंसान को नहीं है। आप उन्हें यदि कुछ देना चाहते हैं तो बस प्रेम दीजिए, नहीं तो कम से कम उनके साथ इज्जत से पेश आइए।

सिर्फ गूंगे ही बातूनों से ईर्ष्या करते है। यदि मनुष्य को यह पता लग जाये कि ईर्ष्या का फल कैसा होता है तो वह निश्चय ही राजा शिबि के समान अपने अंगों को काटकर दे देगा।

ईर्ष्या मन की क्षुद्रता है। मन का गुप्त पाप है और भीतर में छुपी आग है। ईर्ष्या में और विवेक में परस्पर दुश्मनी है। जहां ईर्ष्या होती है वहां विवेक नहीं रहता।

ईर्ष्या करनेवाले लोगों में स्वयं कुछ बनने की इच्छा नहीं होती बल्कि उनकी कोशिश होती है कि आप भी अपना कार्य छोड़कर उनके जैसे हो जाएं।

अगर ईर्ष्या से मुक्ति चाहिए तो हमें प्रेम में यकीन बढ़ाना होगा

कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई उससे आगे बढ़े। आप गरीब हो, तकलीफ में हो, अपमान से तिलमिला रहे हो, तो बहुत अच्छा। दया और सहानुभूति के मकराश्रु तुम्हें अवश्य मिलेंगे और कुछ नहीं। आप तरक्की की राह पर आगे बढ़े नहीं कि आपके शत्रुओं की सीमा बढ़ने लगती है। जिन्हें आप जानते-बूझते नहीं, जिनसे आपका कुछ लेना-देना भी नहीं रहा, वह सब आपके दुश्मनों की कतार में आकर खड़े हो जाते हैं। आपके बड़प्पन के कारण जितना वह नहीं कर पाते उतनी ही उनकी कटुता बढ़ती रहती है। आप गिरो, पड़ो, भुगतो मिट्टी में मिल जाओ तब उनकी छाती ठंडी होगी। कारण कुछ भी नहीं। आपका कसूर भी कुछ नहीं। वह तो बस मानव स्वभाव से उपजी ईर्ष्या है और कुछ भी नहीं। इसके लिए कोई क्या करेगा?

हमारे शास्त्रों में जिसे मनोविकार कहकर त्यागने की सलाह दी जाती है, उनमें से एक है- ईर्ष्या। शेख सादी ने तो यहां तक कहा है कि ईर्ष्यालु मनुष्य स्वयं ईर्ष्याग्नि में इतना जल जाता है कि उसे और जलाना व्यर्थ होता है। एक ईर्ष्या ही है जो दीमक की भांति हमारे सुखों को खोखला कर डालती है कि हमें इसका पता ही नहीं चलता। माना जाता है कि दुनिया में सबसे पहला अपराध ईर्ष्या से ही उपजा था। काइन ने अपने भाई हाबिल को मार डाला था।

ईर्ष्या हमारे व्यक्तित्व व संपूर्ण सुखों के मार्ग की एक बड़ी बाधा है। दूसरों की महानता या असफलता को जब हम पचा नहीं पाते तो उनसे हम ईर्ष्या करने लगते हैं। संत क्रिसोस्तम का वचन है कि जिस प्रकार कीट वस्त्रों को कुतर डालता है, उसी प्रकार ईर्ष्या मनुष्य को नष्ट कर डालती है। डॉक्टर कहते हैं कि ईर्ष्या का आवेश हमारे शरीर की सहज स्वाभाविक प्रक्रिया को विकृत कर डालता है। उसे रोकने की चेष्टा करें तो वह मन को और भी आहत कर देता है।

ऐसी स्थिति में विलियम पेन कहते हैं कि ईर्ष्या करनेवाले दूसरों को तो कष्ट देते ही हैं, पर स्वयं को तो वह महाकष्ट देते हैं। जो वस्तु हमारे पास नहीं, दूसरे के पास क्यों है? यही बात ईर्ष्या को जन्म देती है। ईर्ष्या करने वाले सब जगह हैं। वह व्यापार औलाद, शिक्षा, प्रेम, राजनीति, धन-दौलत, स्वास्थ्य, सौंदर्य आदि हर क्षेत्र में फैला है।

जब हम किसी दूसरे का विनाश करना चाहते हैं तो अन्तत: स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। संत तिरूवल्लुवर कहते हैं कि ईर्ष्या करनेवाले के लिए ईर्ष्या की बला ही काफी है क्योंकि उसके शत्रु यदि उसे छोड़ भी दे, तो उसकी ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर देगी। मनुष्य यदि ईर्ष्या से मुक्ति पाना चाहता है तो उसे प्रेम में यकीन करना होगा। प्रेम और सौहार्द्र ही ऐसे रास्ते हैं, जिनसे गुजरकर ईर्ष्या के दानव से आसानी से बच सकते हैं।

कभी सोचा, इस ईर्ष्या और नफरत से नुकसान किसको हो रहा है? सामने वाले को? नहीं। जिस लकड़ी में आग लगी है वह दूसरी को जलाए अथवा नहीं, लेकिन खुद जलकर राख हो जाती है। ऐसे ही ईर्ष्या दूसरे को नुकसान करे या न करे, अपने को जलाकर राख कर देती है। इसलिए जीवन में घृणा और नफरत का जहर नहीं, प्रेम हो।

जीवन में तीन चीजें जरूरी हैं- प्रेम, त्याग और सेवा। प्रेम से परमात्मा के लिए उपयोगी बनोगे, सेवा से समाज के लिए और त्याग से अपने लिए। लेकिन प्रेम के स्थान पर हम अपने जीवन में ईर्ष्या और नफरत के विष घोले हुए हैं।

जो जितनी मात्रा में अहंकारी होगा वह उतना ही मात्रा में निंदक होगा। द्वेष- द्वेष होने पर व्यक्ति दूसरों के गुणों का आंकलन नहीं कर पाता। उसे उसकी सारी बुराइयाँ ही दिखाई देती हैं। ३) ईर्ष्या भाव- ईर्ष्या भाव के कारण व्यक्ति दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करता है और वह प्रयास होता है निंदा करना।

आप संसार में किसी दूसरे की तरह नहीं हैं, ना ही किसी दूसरे की तरह बनना है, ना जीना है। ऐसा सोचें और ईर्ष्या से दूर रहें। जैसे ही अपनी तुलना किसी से करना छोड़ते हैं, आपका खुद को देखने का नजरिया बदल जाता है। खुद के लिए अच्छा सोचने लगते हैं। तुलना से पीछा छुड़ाने के लिए कभी रैट रेस का हिस्सा मत बनिए। ऐसे लोगों से भी पीछा छुड़ाइए जो हमेशा आपकी किसी से तुलना करते हैं। अपने लिए नई जमीन तलाश कीजिए। खुद पर विश्वास रखें। दूसरों की तरफ जब भी देखें, तस्वीर का दूसरा पहलू भी देखे।

संसार का सबसे दुखी प्राणी हूं मैं, मेरे दोस्त के पास मुझसे बेहतर नौकरी है, पत्नी है, घर है, बच्चे है। हर समय तुलना। ईर्ष्या में सिर्फ मन नहीं जलता, तन-मन और जिंदगी खाक हो जाती है। दूर के ढोल सुहावने दिखते हैं और जो अपने पास है, अपने हाथ में हैं, उसका खुद नाश किए देते हैं।

गनीमत है कि आदमी सिर्फ दूसरे आदमियों से ही ईर्ष्या करता है, तुलना करता है। पेड़ों की हरियाली, मोर के पंखों की खूबसूरती और कोयल की आवाज से नहीं करता। प्रकृति की दूसरी तमाम नियामतें व्यक्ति को बेचैन नहीं करतीं। लेकिन अपने जैसे दूसरे व्यक्ति की हर चीज उसे अपने से बेहतर लगती है। ईर्ष्या व्यक्ति के अंदर की एक सोच भर नहीं होती, वह जीने की एक प्रक्रिया बन जाती है। हर वक्त दिमाग में तुलना चलती है, उसके पास यह बेहतर क्यों? यह बुखार की तरह शरीर को जकड़ सोचने-समझने की शक्ति कुंद कर देती है। आत्म-विश्वास हाथ से छूटने लगता है और जिंदगी से बस शिकायतें ही शिकायतें रह जाती हैं। यह मानव स्वभाव है कि उसे दूसरों की तरक्की रास नहीं आती। उसे लगता है कि उसके अलावा बाकी सभी उससे बेहतर दशा में हैं। पर जिस समय व्यक्ति इस सोच को जिंदगी का सार बना लेता है, वह अपनी तरक्की खुद रोक देता है। उसकी ऊर्जा तुलना में जाया होने लगती है। उसे लगता है कि वह बेचारा है। वह अहसासे कमतरी से घिरने लगता है। प्रसिद्ध फिल्म थ्री इडियट्स में युवाओं की इसी प्रवृत्ति पर बड़ा सटीक कमेंट था। दो दोस्त उस वक्त बुरा महसूस करते हैं, जब उन्हें लगता है कि तीसरा फेल हो गया है। जब उन्हें लगता है कि तीसरा फेल हो गया है। पर जब उन्हें पता चलता है कि वो तीसरा फेल नहीं हुआ, बल्कि प्रथम आया है, तब उनके दुखी होने की मात्रा बढ़ जाती है।

ईर्ष्या के बिना जीवन जीना एक कला है, जो व्यक्ति को सीखनी पड़ती है। जिसने यह सीख लिया और अपनी जीवन पद्धति बना ली, उसकी जिंदगी आसान, सहज और आशा से पूर्ण हो जाती है। ईर्ष्या के संबंध में एक अर्थपूर्ण कहानी है। एक असंतुष्ट और ईर्ष्यालु व्यक्ति को लगता है कि वह सबसे ज्यादा दुखी है। वह रोज ईश्वर से प्रार्थना करता है कि उसे उसके कष्टों से मुक्ति दे दे, बदले में वह किसी और का कष्ट भोगने को तैयार है। आखिरकार एक दिन उन्होंने उस व्यक्ति से कह दिया कि वह अगले दिन अपने कष्टों की पोटली बनाकर सुबह मंदिर पहुंच जाए।

अगले दिन खुशी-खुशी वह मंदिर पहुंचता है अपने कष्टों की पोटली लिए। उसकी तरह ना जाने कितने व्यक्ति अपने-अपने कष्टों की पोटली सहित पहुंचे हुए हैं। ईश्वर कहते हैं- आप सब अपनी पोटली दीवार के किनारे रख दें और जिसे जो पोटली सही लगे, उठा ले। उस व्यक्ति ने लपक कर वापस अपनी ही पोटली उठा ली। सिर्फ उसने नहीं, सबने ऐसा ही किया। ऐसा इसलिए, क्योंकि दूसरों के कष्टों की पोटली पर तो उनकी नजर पहली बार गई थी। दूसरों की पोटलियां भारी थीं। उनके कष्ट भी नए थे। अपने कष्ट तो परिचित थे। किसी की सफलता से ईर्ष्या करना अपने आपको संकुचित करके सोचना है। एक व्यक्ति कभी किसी दूसरे की सफलता पर डाका नहीं डाल सकता। सफलता एक छूत की तरह होती है, जिसके जितने संपर्क में रहेंगे, उतना ही लाभ मिलेगा।

एक मनोविकार और भयानक महारोग है ईर्ष्या, इससे बचें - ईर्ष्या एक भयानक मनोरोग है, जो अकारण मनुष्य को दंडित करती रहती है। इसके कारण मनुष्य का सारा व्यक्तित्व विकृत हो जाता है, उसकी अपनी क्रियात्मक शक्ति नष्ट हो जाती है, जिससे उसके अपने व्यक्तित्व को कुछ लेना-देना नहीं रहता है। साधक कभी ईर्ष्या नहीं करता, क्योंकि वह साधना के क्षेत्र में अकेला होता है। ईर्ष्या मनुष्य के चरित्र के पराभव का छठा द्वार है। यह ऐसा मनोविकार है, जिससे मनुष्य का मौलिक व्यक्तित्व बुरी तरह आहत हो जाता है। कभी-कभी तो हम ऐसे लोगों से ईर्ष्या करने लगते हैं, जिन्हें हम पहचानते तक नहीं हैं। अकेला व्यक्ति कभी भी ईर्ष्या का शिकार नहीं बनता, उसके सामने जब दूसरा आ जाता है, तब उसकी जलन बढ़ जाती है। समाज में, घर या मोहल्ले में जब आदमी रहता है, तो उसके मन में न ईर्ष्या होती है, न कोई जलन होती है। आदमी अकेले वर्षों रह सकता है, लेकिन कभी भी वह ईर्ष्या का पात्र नहीं बनता, लेकिन ज्यों ही दूसरा उसके बगल में बैठ जाता है। तो ईर्ष्या शुरू हो जाती है। ईर्ष्या हमेशा दूसरों के कारण होती है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति खुद से ईर्ष्या नहीं करता, उसके लिए दूसरे का होना आवश्यक है। दरअसल, कोई भी व्यक्ति दूसरे को सहन नहीं कर सकता। वह चाहे राजनीति का क्षेत्र हो, धर्म का क्षेत्र हो, समाज या परिवार का हो, कहीं भी हम दूसरे को स्वीकार करके लिए तैयार नहीं हैं। सारी समस्याएं तब शुरू होती है, जब कोई दूसरा पास में खड़ा हो जाता है। केवल दूसरे के होने से हम ईर्ष्या के दंश को झेलने लगते हैं। कई बार तो हम अपने पास के मकान से ईर्ष्या करने लगते हैं, दूसरे के शानो-शौकत से ईर्ष्या करने लगते हैं और हम दूसरे की उन्नति देखकर ईर्ष्या करने लगते हैं।

** यह दुनिया किसी के बिना नहीं रुकती लेकिन*
हम सब इसी भ्रम में जीते हैं हमारे बाद हमारे अपनों का क्या होगा।

** अपनी तकदीर खुद ही लिखनी होगी, ये कोई चिट्ठी नहीं जो दूसरों से लिखवा लोगे।*

** शीशे, सपने, रिश्ते नाते और धागा किसे पता ही नहीं चलता*
वक्त की मार से कब टूट जाते है और कहां बिखर जाते है।

लोभ-तृष्णा, क्षुद्रता और स्वार्थपरता

स्वार्थपरता- स्वार्थी होना घटिया और बर्बादी का मूल है यह रिश्तों को तोडता है क्योकि स्वार्थ हमेशा गलत मूल्यों पर आधारित होता है, अन्याय और अनीति से सम्बधित होता है। यह हार और जीत के सिद्धान्त पर विश्वास करता है। अपनी भलाई देखना कोई बुरा नहीं है। लेकिन यह स्वार्थपरता से परे हो।

स्वार्थ ही पतन का कारण बनता है। यह वाक्य प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध है। यह वाक्य सन्तों, महात्माओं के उपदेशों, धर्म ग्रन्थों के मार्गदर्शक सिद्धान्तों कि स्वार्थ छोडो के सर्वथा विपरीत है। इस वाक्य से काश हम अपने वास्तविक स्वार्थ को पहचान पाते, हमारा वास्तविक सुख, हमारा सही आनन्द किस बात में है और अगर यह जान जाते, अपनी स्वार्थपूर्ति में लग जाते तो सदा सदा के लिये सुखी हो जाते। बडे बडे ओहदे पदों पर आसीन सरकारी कर्मचारी व अफसर व अन्य श्रेष्ठ वर्ग के व्यक्ति अत्यन्त उच्च आदर युक्त स्थानों पर पहुंचे हुये इन जैसे लोगों का वास्तविक स्वार्थ तो यही है कि बडे आदर और सम्मान के साथ प्रशंसा प्राप्त कर सेवा निवृत हो, बडे आनन्द से अपने परिवार और बाल बच्चों के साथ खुशी खुशी जीवन यापन करे। इतना जो कुछ मिलता उसका उपभोग करते और शान, मान और आन के साथ सिर ऊंचा करके रहते।

अपने इस वास्तविक स्वार्थ को नहीं पहचान सकने से गलत स्वार्थ के पीछे भागने से अपमान, धिक्कार, तिरस्कार, वेदना और लोहे की सलाखों के पीछे का नरकीय जीवन व्यतीत करना पडता है।

पापों की जड क्षुद्रता और स्वार्थपरता है। जो अनुचित, प्रतिबंधित है ऐसा काम करना यानि पापकर्म। ऐसे पापकर्मों का बाजार सा लगा हुआ है। लेकिन इन पापों की जडे दो चीजों में है। वे है क्षुद्रता और स्वार्थ। क्षुद्रता यानि व्यक्ति का स्वयं को कमजोर, असमर्थ समझना, बदनसीब समझना। मन में डेरा डालकर बैठी हुई यह प्रवृति मनुष्य को गलत कामों की और धकेलती है। यही क्षुद्रता स्वार्थ को जन्म देती है और फिर अपने ही फायदे का विचार आदमी करने लगता है। अपने मन से पहले तो क्षुद्रता और स्वार्थ दोनों को हटाना चाहिये। मन में इन दोनों का स्थान न होगा तो पापकर्म होंगे ही नहीं।

जब मनुष्य के मन में माँगने की इच्छा होती है, तब उसके सभी गुण संकुचित हो जाते हैं। नीतिकारों ने भिक्षुक को तृण से भी हल्का बताया है। बलि के यज्ञ में माँगते समय भगवान् को भी अपना छोटा रूप धारण करना पडा था। आशा ही दु:ख का कारण है। आशा कभी शान्त नहीं होती। जिन्होंने आशा का त्याग कर दिया है, उनके मन से दीनता चली जाती है। वे किसी के सामने गिडगिडाते नहीं और उन्हें किसी को प्रसन्न करने के लिये असत्य की शरण लेनी पडती है। दीनता, चापलूसी, भय, क्षुद्रता ये सब तो आशा में, याचना में, लोभ में ही है। लोभ का कारण मोह है। मोह से ही लोभ उत्पन्न होता है और समस्त पापों का बाप लोभ ही है। लोभी पुरुष किसी की ओर निर्भय होकर देख नहीं सकता। उसे सदा सर्वदा, सर्वत्र शंका बनी रहती है।

स्वार्थी का हृदय बहुत ही शंकित होता है। याचक का अंतकरण सदा डांवाडोल होता है। जिस समय यह माँगने को चलता है, उसी समय वह मृत्यु को आलिंगन कर लेता है। प्राणहीन शव होकर मानापमान की कुछ भी चिंता न करके तब किसी के सम्मुख हाथ फैलाना पड़ता है। याचक मृतक से भी अधिक घृणास्पद, तृण से भी अधिक हलका और

वेदनिंदक से भी अधिक नीच तथा क्रोध से भी अधिक अनादरणीय माना जाता है। जब अपना स्वार्थ सिद्ध करना होता है और अपने में पुरुषार्थ तथा शक्ति नहीं होती, तो स्वार्थी पुरुष धर्म का आश्रय लेते हैं। उपदेशक बनकर परोपकार की शिक्षा देते हैं। छोटा स्व स्वार्थ है बड़ा स्व परमार्थ है। स्वार्थ और परमार्थ में इतना ही अन्तर है। जो स्वार्थ शरीर तक ही सीमित है- मेरा शरीर सुखी रहे मैं दुर्बल न होऊँ, इस वस्तु को मैं ही खा लूँ, मेरे शरीर की ही रक्षा रहे यह सब क्षुद्रातिक्षुद्र स्वार्थ की भावना है। अब इस ओर स्व को बढ़ाया जाय मेरी स्त्री सुखी रहे, मेरे बच्चे सुखी रहे, मेरे परिवारवालों को कष्ट न हो यह अपेक्षाकृत देह स्वार्थ है। मेरा नगर सुखी रहें, मेरे बन्धु बान्धव, परिवार के प्रवासी नगर निवासी परिचित प्रसन्न हों, यह उससे बड़ा है। मेरे प्रान्तवासी देशवासी ही प्रसन्न रहें और चाहें मरें या जीवें यह उससे भी बड़ा स्व है सब प्राणी सुखी रहें, सब निरोग रहें, सभी का कल्याण हो, कोई दु:खी न हो। यह सबसे बड़ा, सबसे ऊँचा स्वार्थ है इसी का नाम परमार्थ भी है। ऐसे भाव रखनेवाला ही मोक्ष का अधिकारी है। सर्व भूतों के हित में निरत रहनेवाले परोपकारी पुरुषों के समीप अपनी कहलानेवाली तो कोई वस्तु ही नहीं। उनका तन, मन, धन सर्वस्व दूसरों के उपकार के लिये अमर बने रहते हैं। जिसकी कीर्ति जीवित है, वह मर कर भी जीवित है। जिसकी अपकीर्ति चारों ओर फैली है वह जीता हुआ भी मृतक सदृश है। अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये उचित-अनुचित का कुछ भी विचार न करके जैसे हो वैसे अपना कार्य सिद्ध कर लेना यह स्वार्थ परायण पुरुषों का ध्येय होता है।

संसार में स्वार्थ से बढ़कर निन्दित और प्रिय कार्य कोई नहीं। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये अर्थी किसी भी दोष को नहीं देखता। स्वार्थ के लिये गदहे को बाप बना लेते हैं। स्वार्थ के लिये मनुष्य नीच-से-नीच कार्य करने को उद्यत हो जाते हैं। जिससे अपना स्वार्थ सधता है, उससे मनुष्य कितना प्रेम प्रदर्शित करते हैं। उसके लिये प्राण अर्पण करने का अभिनय करते हैं। जहाँ स्वार्थ सिद्ध हुआ वहाँ तुम अपने घर, हम अपने घर। यही नहीं, स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर जिसके द्वारा स्वार्थ सिद्ध हुआ है, उसे बड़ी-से-बड़ी हानि भी पहुंचा सकते है, उनका प्राणान्त भी कर सकते हैं। ऐसे स्वार्थी संसार में न प्रेम है न आत्मीयता। सर्वत्र स्वार्थ का बोलबाला है। जिससे अपना स्वार्थ है, वह चाहे कितना भी दूर क्यों न हो, उससे कहेंगे- अजी, आप तो अपने घर के ही हैं, आत्मीय स्वजन हैं। कितना भी नीच प्रकृति का क्यों न हो उसे आशुतोष बतावेंगे। कितना भी बुरा क्यों न हो उसे दूध का धुला सिद्ध करेंगे। जिनसे अपना कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता, वे चाहें कितने भी अच्छे हों उनकी ओर देखेंगे भी नहीं। संसार की प्रीति स्वार्थमय है।

स्वार्थ के वशीभूत होकर जो श्रद्धा, जो प्रेम, जो सम्बन्ध आदि किये जाते हैं, वे उस स्वार्थ के पूरा होने पर या स्वार्थ में आघात होने पर नष्ट हो जाते हैं। हम किसी से इसलिये मैत्री करते हैं कि धनी है। समय-समय पर हमारी धन के द्वारा सहायता करता रहेगा, दैवयोग से उसका सब धन नष्ट हो जाय, वह निर्धन बन जाय, तो हमारी मैत्री का भी अन्त हो जायगा। अथवा हम उससे जो आशा रखते थे वह आशा पूर्ण न हो वह कृपणता के वश हमें द्रव्य न दे तो भी मैत्री न रहेगी, क्योंकि उससे जो मैत्री की थी वह उसके शरीर से नहीं की थी। उसके धन से की थी। जहाँ धन न मिला वहाँ मैत्री भी समाप्त। स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य घनिष्ट से घनिष्ट सम्बन्धियों को, माता, पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र, मित्र तथा गुरुओं को भी मार डालते हैं। अपने स्वार्थ में व्याघात होने पर मनुष्य सब कुछ कर सकता है। अर्थी तो दोषों को देखता नहीं।

उसका लक्ष्य तो होता है अपने स्वार्थ की सिद्धि करना।

अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी जीना होता है - एक व्यक्ति बीज बो रहा था। किसी ने पूछा, क्या बो रहे हो? उसने कहा, नही बताऊंगा। जवाब मिला, आज नहीं बताओगे तो क्या, जब उगेगा तब पता चल जायेगा। वह बोला, ऐसा बीज बोऊंगा जो उगेगा ही नहीं। स्वार्थ का यही दृष्टिकोण आज सबसे बड़ी समस्या है। अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए भी जीना है।

लोभ- धर्म से, अधर्म से कोई वस्तु हमें प्राप्त हो जाय और वह सदा हमारे पास बनी रहे, यह दूसरे के काम में न आवे, इस वृत्ति का नाम लोभ है। लोभी मनुष्य की समस्त सद्वृत्तियाँ नष्ट हो जाती है। लोभ के कारण वह पिता, माता, स्त्री, पुत्र, सगे-सम्बन्धियों के सुख की भी परवाह नहीं करता। लोभ सब पापों की जड़ है। लोभ से ही असत्य, क्रोध, द्वेष, दम्भ, छल और अनेक दुर्गुण उत्पन्न होते है। कामी को चाहे भले ही स्वर्ग मिल जाय, किन्तु लोभी की सद्गति नहीं। जो इन अनित्य पदार्थों को ही सर्वस्व समझता है, जो चाँदी, सोना और ताँबे की ठिकरियों को प्राणों से अधिक प्यार करता है, इन निर्जीव एक प्रकार की मिट्टी विशेष के लिये सब पाप करता है, उससे बढ़कर नीच कौन होगा ? लोभी पुरुष को सदा शंका बनी रहती है, कोई हमसे कुछ माँग न बैठे। उसे चोर से, राजा से, अपने स्वजनों से, यहाँ तक कि अपने आपसे भी सदा भय बना रहता है। लोभी पुरुष क्षुद्र होता है। वह कभी निर्भय नही रहता। अत: अपने पास की वस्तु की रक्षा के लिये भी मनुष्य पाप कर्मों में प्रवृत्त होता है। अपने पास जो है उससे अधिक की इच्छा रखना लोभ है। लोभ को हमेशा नियंत्रण में रखना चाहिए। सारी जिन्दगी इससे छुटकारा पाना कठिन है।

जैसे-जैसे लोभ होता जाता है, वैसे-वैसे लोभ बढ़ता जाता है। तृष्णा आकाश के समान अनन्त है। जीवन का अन्त निश्चित है, परन्तु लोभ का नही। लोभ के वशीभूत होकर मानव जीवन स्वाहा कर देते है। त्रिलोक की सम्पत्ति से भी मानव जन्म का एक-एक पल अनमोल है। सम्पत्ति देकर भी एक पल नहीं खरीदा जा सकता। सहकार्य करने पर जो बाधा डालता है, वह उसके पाप का उदय है। क्रोध तो प्रीति का विनाशक है। मान से विनय का, माया से सरलता का, परन्तु लोभ तो सभी सद्गुणों का नाश कर सकता है। सब पापों का मूल ही लोभ है। लोभ का भूत सवार होने पर मानव दानव बन जाता है। जिस प्रकार कुत्ता को कीडे पडने पर अशांत होकर भटकते रहता है उसी प्रकार लोभ के कीटाणुओं से मनुष्य की शान्ति भंग हो जाती है और आत्मा की दुर्गति होती है।

लोभ रूपी पिशाच ने पारिवारिक खून के रिश्ते में भी कडवाहट घोल दी है। आपसी खून के रिश्ते भी कडवाहट का रूप ले लिया है। भाई-बहन, माता-पिता सभी स्वार्थ और लोभ के रिश्ते बन गये है। धन की मुख्य भूमिका परिवार में पनप रही है। वह धन भी जीवन के लिये अभिशाप है, जो प्रेम सद्भावना के पावन रिश्तों को नष्ट कर देता है। मानव-मानव आपस में खून का प्यासा है। नीति को भूलते जा रहा है। अनीति का धन परिवार में अशान्ति ही पैदा करता है।

मलिनता का कारण है हमारा लोभ। हमारे मन में धन-पैसे का लोभ है। धन कितना ही बढ़ जाए, उतना ही कम मालूम पड़ता है। लोभ के साथ यह दिक्कत है कि जितना वह होता है, उतना लोभ बढ़ता जाता है। दूसरा लोभ होता है अपने पुत्र और अपने परिवार का। तीसरा लोभ होता है- समाज में अपनी प्रतिष्ठा का। वित्तेषणा, पुत्रेषणा और लोकेषणा ये तीन ही

प्रकार के लोभ हैं। लोभ की तासीर ही ऐसी है कि आशाएं बढ़ती हैं, आश्वासन मिलते हैं और हाथ कुछ नहीं आता। जो हमने पाया है, अगर उसमें संतोष रख लें तो फिर ऐसा कुछ नहीं है जो पाने को शेष रह जाए। पाते किसलिए हैं? आत्म-संतोष के लिए, पर आत्म-संतोष ही नहीं मिला तो क्या फायदा?

वर्तमान में यह भी प्रचलित हो गया है कि यदि हम संतोष धारण कर लेंगे तो हमारी प्रगति रुक जाएगी। लेकिन ऐसा नहीं है। हमें जो हासिल है, हम उससे संतुष्ट होंगे और जो नहीं है, उसके लिए अच्छे प्रयास करेंगे तो प्रगति नहीं रुकेगी।

इस लोभ के रोग का इलाज सब्र ईश्वर की तरफ से व्यक्ति को मिल जाये उस पर राजी होकर ईश्वर का धन्यवाद करे और इस बात पर आस्था जम जाये कि इसांन जब मां के पेट में रहता है उसी समय देवदूत ईश्वर की आज्ञा से इंसान की चार चीजें लिख देता है। व्यक्ति की उम्र, व्यक्ति की रोजी, व्यक्ति का अच्छा भाग्य, व्यक्ति का दुर्भाग्य। यही मनुष्य का भाग्य हैं लाख सर मारो वही मिलेगा जो भाग्य में लिख दिया गया है। ये जानकर लालच के किले को खत्म कर देना चाहिए जो मेरे भाग्य में था वो मुझे मिला और जो मेरे भाग्य में होगा वो आगे मिलेगा और कुछ कमी के कारण दिल में तकलीफ हो और इच्छाएं इधर-उधर लपके तो सब्र करके इच्छाओं की लगाम खींच लो। इस तरह धीरे-धीरे दिल में ईश्वर के दिए पर राजी हो तो आप प्रसन्नचित होंगे और लालच का काला बादल हट जायेगा। तकदीर पर भरोसा जरूरी है मगर भरोसा करके हाथ-पर हाथ रखकर नहीं बैठना चाहिए, बल्कि इस नियत के साथ कि जो तकदीर में है मिलेगा हमें तो सिर्फ कोशिश करनी है। इसलिए किसी चीज को हासिल करने की कोशिश जरूर करो मगर उसकी लालच मत करो।

तृष्णा - चाहे हजारों वर्ष पूर्व के अतीत को देखें, चाहे उससे भी पहले के पचास हजार वर्ष के अतीत को देखें, यह निष्कर्ष होगा कि अकेला कोई नहीं है, युग्म हैं। चलेंगे तो दो साथ में चलेंगे। आदमी चलेगा तो छाया भी उसके साथ चलेगीं बिंब है तो निश्चित रूप से उसका प्रतिबिंब भी होगा। ध्वनि है तो प्रतिध्वनि भी होगी। हम यह न मान लें कि जागरुकता ही रहेगी, प्रमाद नहीं रहेगा। हम बुराई का मूलोच्छेदन नहीं कर सकते, क्योंकि उसका सम्बन्ध मनुष्य की आंतरिक तृष्णा के साथ जुड़ा हुआ है। तृष्णा हर प्राणी में है और वह बहुत गहरे में है, उसे सहज ही छोड़ा नहीं जा सकता। वही तृष्णा बार-बार मांग करती है और हमारी इंद्रियां बेबस-सी उसकी मांग की पूर्ति के उपाय खोजती हैं। तृष्णा का मूलोच्छेदन बहुत दुष्कर है। वर्षों-वर्षों की तपस्या के बाद साधु-संन्यासियों के लिए भी इसे मिटाना संभव नहीं हो पाता। फिर सामान्य गृहस्थ की तो बात ही क्या। समस्या का सबसे बड़ा समाधान है तृष्णा या कामना का मूलोच्छेद, जिस पर भगवान महावीर ने भी बहुत कुछ कहा, भगवान बुद्ध ने भी कहा और गीता में बहुत कुछ कहा गया है। तृष्णा को मिटाने के लिए बहुत सारे सूत्र दिए गए हैं। तृष्णा के सूक्ष्म धागे को हम कैसे पकड़ें? इसी संदर्भ में कहा गया कि जब तक तृष्णा का मूलोच्छेदन नहीं होता, तब तक हम कितने ही उपचार करें, समस्या का समाधान नहीं होगा। वर्तमान बुद्धि को सृष्टि का अंतिम सत्य मत मानो। उसका विकास और संस्कार करने का प्रयत्न करो। जो सत्य दूसरों द्वारा अनुभूत है, उसके अनुभव का प्रयत्न करो। अपनी बुद्धि को इंद्रियों का दास मत बनने दो। वस्तुत: आपको उतनी वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है, जितनी आपने एकत्रित कर ली हैं। यह आपकी आवश्यकता नहीं

है, जो तुम्हें अर्जन और संचय के लिए प्रेरित करती है- यह आपका मोह है। यदि इस मोह को आप पहचान पाओगे, तो उसे त्याग भी पाओगे। मोह से मुक्त होते ही आप अनुभव करोगे कि जीवन मात्र धन के अर्जन के लिए नहीं है। आवश्यकता भर धन अर्जित करना सबके लिए अनिवार्य हो सकता है, किंतु उसकी एक सीमा है। वहां पहुंचकर व्यक्ति यह निर्णय करता है कि अब वह अतिरिक्त धन अर्जित करने के लिए कोई भी कार्य नहीं करेगा।

भोगों को नहीं भोगा गया, हम ही भोगे गए। तप नहीं तपा गया, हम ही तप्त हो गए।।

काल नहीं बीता, हम ही बीत गए। तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, हम ही जीर्ण हो गए।।

संसार में सौ रुपये मिल जायँ तो क्या। लाख मिल जाय तो क्या। एक पत्नी हो तो क्या, लाख पत्नी हो तो क्या, तृप्ति किसी की नहीं होती। जिसके पास जितनी ही अधिक विषय भोग की सामग्रियाँ हैं, उसे उतनी ही अधिक तृष्णा है, उतनी ही अधिक अशान्ति है। रूखे-सूखे से पेट भर लीजिये, छप्पन व्यंजन खा लीजिये। परिणाम दोनों का एक है, गले के नीचे जहाँ उतरा मल हो गया। क्षणभर जिह्वा का स्वाद है, सो स्वाद से तृप्ति हो जाती हो, सो भी नहीं। ज्यों-ज्यों खाते हैं, त्यों-त्यों लालसा बढ़ती जाती है।

धन की तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। जिसकी तृष्णा जितनी ही बड़ी होगी वह उतना ही दीन दरिद्री होगा। इसलिये भगवान जिन्हें अपनाना चाहते हैं उनका बन्धु-विछोह करा देते हैं, धन को हर लेते हैं, प्रियतम का वियोग करा कर संसार की अनित्यता दिखा देते हैं। जो तृष्णा को बढाते है वे उपाधि को बढ़ाते है और इससे दु:ख ही बढ़ता है। दु:ख का मूल कारण तृष्णा ही है। इस संसार में जो भी इस क्षुद्र उद्दण्ड तृष्णा को पराजित करता है, उससे दुख ठीक वैसे ही विलग हो जाते हैं, जैसे कमल-पत्र से जल की बूंदें।

अन्न की भुखमरी से भी ज्यादा दु:खद तृष्णा की भूखमरी है जो जीवन का आनन्द, सुख, शांति, सद्-व्यवहार, सदाचार आदि सबको भगा देती है।

तृष्णा के जाल से मुक्त नही हुये तो अतृप्त आत्मा बन कर उसके आस पास मंडराते रहेगी। धन सम्पत्ति का संयोग भागने दौडने से नहीं बनता किन्तु पुण्यापार्जन से होता है। पशु पक्षी के पास एक समय का भी संग्रह नहीं होता है फिर भी चैन की नींद सोते है जब कि मनुष्य के पास इतना होते हुये भी अशान्त है।

❊ खुशी एक ऐसा एहसास है जिसकी हर किसी को तलाश है। गम एक ऐसा अनुभव है जो हर किसी के पास है। पर जिंदगी तो वही जीता है जिसे खुद पर विश्वास है।

❊ बदल जाती है जिंदगी की सच्चाई उस वक्त,
जब कोई हमारा ही हमारे सामने हमारा नहीं रहता।

❊ जिन्दगी से आप जो भी बेहतर से बेहतर ले सको ले लो,
जिन्दगी जब वापस लेना शुरू कर देती है तो सांसें भी नहीं छोड़ती।

पवित्रता-अपवित्रता, शौच

जो परमात्मा के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है उसके जीवन में पूर्ण पवित्रता का होना आवश्यक है। जो अपवित्र जीवन जीता हो और परमात्मा की प्राप्ति का दावा करता हो उसका कथन ढोंग है क्योंकि ज्ञान होने के पश्चात निषिद्ध आचरण बन ही नहीं सकता। उपनिषद में कहा गया है कि जो विज्ञानवान शुद्ध मनवाला व सदा पवित्र रहनेवाला है वही उस परम को प्राप्त होता है। इसके विपरीत जो असंयत चित्तवाला व सदा अपवित्र रहता है वह उस पद को कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। पवित्र वह है जो आत्मतत्व में रमण करता है। जो इंद्रियों को जीता है वह अपवित्र है। जिस प्रकार साफ दर्पण में अपना मुख स्पष्ट दिखता है उसी प्रकार शुद्ध मन में ही परमात्मा का प्रतिबिंब दिखाई देता है। ईसा मसीह ने भी इसी बात को कहा है कि धन्य है वे जिनका हृदय पवित्र है क्योंकि वे परमात्मा के राज्य में प्रवेश पाएंगे।

जीवन में संयम रखो शौचम् बाहरी भीतरी दोनों तरह की पवित्रता रखो। बाहरी पवित्रता जल मिट्टी के द्वारा स्नानादिक क्रियाओं के द्वारा शरीर को शुद्ध करो और भीतरी पवित्रता धर्म पालन के लिये कष्ट सहना और प्रभु का स्मरण करते रहना। प्रभु के स्मरण से क्षमा, दया से शील से संयम से प्रभु के अर्चन से बन्दन से, हम बाहर भीतर दोनों तरफ से पवित्र हो जाते हैं। आपके कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का भेद बताकर कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करनेवाले एवं अकर्त्तव्य की ओर से रोकनेवाले जो धर्म शास्त्र हैं, धर्म ग्रन्थ हैं इन आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करो। कर्मों में आसक्त न होना ही पवित्रता है।

अपने को पवित्र रखो। यदि हम किसीको यह देखें कि वह सबका जूठा खा लेता है तो सोचेंगे- इसकी पवित्रता सम्बन्धी कोई धारणा नहीं है। तब शंका होगी कि यह चरित्रके सम्बन्धमें पवित्र भी है या नहीं। जैसे गन्दे कपड़ेवाला मनुष्य चाहे जहाँ बैठ जाता है, ऐसे ही च्युताचार व्यक्ति अपने शेष आचरणके रक्षाकी चिन्ता नहीं करता। जब मनुष्य अपनेको गन्दा रखने लगता है तो ठिकाना नहीं रह जाता कि कहाँ-कहाँ अपनेको गन्दा कर लेगा। अत: गन्दगीसे बचो। पवित्र वस्त्र पहनो, पवित्र स्थानमें बैठो, पवित्र वाणी बोलो, पवित्र कर्म करो, पवित्र भोजन करो। ऐसे पवित्र रहो कि दूसरे आदमी कहें- यह व्यक्ति कोई गलत काम कर नहीं सकता। आवश्यक इतना ही नहीं है कि हम पवित्र रहें, आवश्यक यह भी है कि हमारा साथी भी हमें पवित्र समझे। शुद्धता-सावधानी पवित्रतामें रखनी चाहिए। अन्तर्मुखताका पक्षपात रखो। संसारके भोग-बड़प्पन खोखले हैं। समनस्क रहो। मन तुम्हारे नियन्त्रणमें रहे, तब धर्म होगा। सदा पवित्र रहनेका प्रयत्न रखो। ऐसेको परमात्माकी प्राप्ति होती है। जिसमें अन्तर्मुखता नहीं, मन वशमें नहीं, पवित्र रहनेका प्रयास नहीं, उसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। तुम पवित्र रहो पर दूसरेको पवित्र बनानेका प्रयत्न मत करो। जो विज्ञानवान है, समनस्क है, सदा पवित्र है, वह उस पद को पाता है, जिससे फिर जन्म नहीं लेता। शौच कहते हैं भीतर बाहर की शुद्धि को। बहुत से लोग बाहर से तो बड़ी शुद्धता रखते हैं और भीतर भँगार भर रही है, वह यथार्थ शौच नहीं। यह तो वैसे ही हुआ जैसे सुरा से भरे घड़े को ऊपर से गंगाजल से धो देना। जिस पुरुष का मन बुरे कर्मों में फँसा है वह भीतरी शौच को कैसे रख सकता है, अत: शौच का यथार्थ स्वरूप है कर्मों में आसक्ति न रखना। जो अनासक्त है वही पवित्र है, जो कर्मों में फँसा है वह मलिन है अशुचि है।

एक समय था जब हम सभी शान्त व पवित्र थे, परंतु पवित्र होने का अर्थ क्या है और तब हमारा आचरण कैसा था ? अपवित्रता हमें जकड़ने वाली जंजीर है, विकारी बनानेवाली राक्षसी है और ऐसा सर्प है जो हमें डस कर इतना बेहोश कर देता है कि मानों हम सुप्त, अज्ञानी व मूर्छित हो। पवित्रता हमें मुक्ति दिलाती है। यह हमे ज्ञान, शांति, खुशी, शक्ति व ईश्वरीय खजानों की कुन्जी भेंट करती है। हमें अपने पुराने व्यक्तित्व तथा पुराने विकारों को, जो हमारे अभिन्न अंग बन चुके हैं, नष्ट करना पड़ता है। मुख्य पाँच विकारों के नाम है- काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार।

दुर्गुण-सद्गुण, अच्छाई-बुराई, गुण-दोष, अवगुण

अपनी भलाई के बारे में देखना सही है यह धन और शक्ति, दौलत मानसिक शान्ति अच्छी सेहत और खुशियों को बढ़ावा देती है और इन सब का स्वागत करती है। अपनी भलाई देखने की भावना सबकी जीत में विश्वास रखती है।

लोग दो तरह के होते है। सिर्फ औरों के दोष देखने वाले और सिर्फ अपने गुण देखने वाले। औरों के दोष देखनेवाले लोग समाज का कोई कार्य नहीं कर सकते। सिर्फ अपने आपको गुणवान माननेवाले लोग अहंकारी होते है।

वास्तव में गुण और दोष आपस मे जुडे होते है। इसलिये उन दोनों का विचार एक साथ करना चाहिये। स्वयं के दोष जानने की आदत हो तो वे दूर किये जा सकते है। औरों के गुण देखने की कोशिश की तो अपने लिये वे धारण किये जा सकते है। कोई भी व्यक्ति सम्पूर्ण गुणवान या सम्पूर्ण दोषी नही होता। इस जगत में यदि गुण दोष न होते तो कोई रूचि न होती। दोष न होते तो गुणों की कीमत न होती। अन्धकार न हो तो उजाले का महत्व न रहता। अज्ञान न होता तो ज्ञान के लिये विश्वविद्यालयों की आवश्यकता ही नहीं होती। दु:ख ही न होता तो सुख प्राप्त करने के प्रयत्न ही नहीं करने पडते। इसलिये गुणदोषों को एक दूसरे के कारण ही महत्व मिला है।

कोई चीज कब अच्छी और कब बुरी होती है इसका निर्णय सही तरह से करने को आना चाहिये। सच्ची बात कई बार अच्छी नहीं लगती। झूठी बात प्रसन्न लग कर भी नुकसान करनेवाली हो सकती है। इसी तरह सज्जनता कभी संघर्ष नही करवाती और संघर्ष कराने वाली सज्जनता नहीं हो सकती। बुद्धिमान मनुष्य बातें नहीं करते और बातें करनेवाले लोग अधिकतर बुद्धिमान नहीं होते। मनुष्य पैसा कितना खर्च करे इसकी सीमा होनी चाहिये। खर्चा करने वाला व्यक्ति उदार या दानी लग सकता है मगर वह बाद में संकट में फंसता है। इसलिये किसी भी कृति की अच्छाई-बुराई वह कृति कौन और किस हेतु से करता है इस पर निर्भर होती है। जैसे गंगा का पानी पवित्र होकर भी वह शराब की बोतल में पीना पवित्र नहीं होता।

दोष देखना गुण है वैसे ही अवगुण है। दोष के परे स्थित हेतु देखना चाहिये। दोष देखने के हेतु अच्छे या बुरे वे भी महत्व रखते है। इस बारे में चार दोष दर्शक ऐसे है। **१) पंडित :-** अपने आपसे ज्यादा विद्वान बुद्धिमान कोई मिलनेपर पंडित लोग उसके दोष ढूंढकर उसकी आलोचना करते है। **२) पिता:-** अपना बेटा बुद्धिमान बने, वह अच्छा आदमी बने इसलिये पिता अपने बेटे के दोष देखता है। **३) माता :-** अपनी बेटी को सुधारने, उसमे एक कुशल गृहिणी के गुण आये इस उद्देश्य से मां अपनी बेटी के दोष देखती है। **४) सास :-** सास-बहू का विवाद तो काफी प्रचलित है बहू में दोष ढुंढना जैसे सास का स्वभाव होता है।

हर किसी में आदतें होती है। मनुष्य अच्छी बुरी आदतों का पुतला होता है। व्यक्ति को अपनी बुरी आदतों की खोज करनी चाहिये तथा उसे सुधारने का प्रयास भी करना चाहिये। इससे जीवन में सुधार आता है तथा व्यकित्व भी प्रभावशाली बनता है। कई बार अच्छे खासे व्यक्तित्व का स्वामी अपनी एक बुरी आदत के कारण अपना प्रभाव खो बैठता है।

आमतौर पर व्यक्ति हमेशा दूसरों के गुण दोषों का जिक्र करते रहता है। वह कभी अपने अन्दर व्याप्त दोषों की तरफ ध्यान नहीं देता है जबकि एक अच्छे मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह दूसरों के दोषों की तरफ ध्यान न देकर उसके गुणों को भी देखे एवम् उनसे प्रेरित हो तभी वह उन्नति के मार्ग की ओर बढेगा साथ ही इन्सानियत धारण करेगा इससे उस व्यक्ति

की उन्नति होगी, राष्ट्र, हित होगा, समाज मे सन्मान प्राप्त होगा।

हमे जीवन सफल बनाना हो तो जीवन हीरे के समान बनाना होगा। इसी का सीधा अर्थ है जीवन में दैवी गुण धारण करना और आसुरी गुणों का त्याग करना। इन आसुरी गुणों के कारण ही मनुष्य का जीवन क्षुद्र और मूल्य हीन हो गया है।

दैवी गुणों की धारणा से ईश्वर का स्मरण होता है। साथ ही जीवन का सच्चा अर्थ समझकर जीवन जीने में आनन्द मिलता है। सतत शान्त सुखमय जीवन जीने का मार्ग यानी दैवी गुणों को धारण करना है।

दैवी गुणों की धारणा में पवित्रता, अर्न्तमुखता, सहनशीलता, गुण ग्राहकता, अर्पणशीलता, मधुरता, हंसमुखता, निर्भयता, नम्रता, सरलता, दृढ़ता, आत्म विश्वास, आदि वृतियां अपनाना अपेक्षित है।

मनुष्य का स्वाभाविक लगाव जन्म से लेकर शरीर की और झुका रहता है। इस शरीर में एकाकार होकर अपने आपको शरीर मान बैठा है। बचपन में शरीर के विषय में चिन्ता, यौवन में प्रेम वृद्धअवस्था में आसक्ति होती है। इसके विपरीत असाधारण व्यक्ति सदा गुणों को महत्व देते है। मनुष्य को कीर्ति, पद, यश प्राप्त होते है गुणों के कारण, केवल शरीर सजाने से नहीं। गुण प्राप्त करने के लिये शरीर की भी परवाह नहीं करनी चाहिये। शरीर मर जाता है और गुण अमर होते है इसलिये गुण शरीर से श्रेष्ठ होते है।

सबसे पहले अपने दोषों को, अपने अवगुणों को अवलोकन करो। औरों के दोष देखना, उस पर चिन्तन करना मन का स्वभाव है। दूसरे लोग जैसे रहते है, उसका अनुसरण करना मन अबोध अवस्था से सीखते हुये आता है। साथ ही अपूर्ण, अयोग्य क्या है, यह भी सतत देखते रहता है। अपने आपको परे रख कर, स्वयं को निर्दोष मान कर लोग दूसरों के दोष देखा करते है लेकिन दुर्बलता, दोष आदि का केवल चिन्तन करने से उन दोषों का निर्मूलन होना सम्भव नहीं है। उल्टे दूसरों के दोष देखने के सिवा अपने दोष देखने चाहिये। वह देखना आसान भी है और उससे दु:ख भी नहीं होता। उसमे सुधार के उपाय भी मिलते है। दूसरों के गुण अवश्य देखने चाहिये।

इस धरती पर अनेक गुणवान प्राणी और वस्तुये है लेकिन उनके गुणों की परीक्षा करने वाले नहीं होंगे तो क्या फायदा? गुणों के प्रशंसक, उनके जौहरी बहुत थोडे होते है एक हंस एक नगरी में आया, उसे लगा वहां गुणीजन रहते होंगे लेकिन उसके हाथ निराशा लगी, क्योंकि वहां कोयल की बजाय कौओं को चांव चांव चाहने वाले लोग ही थे। हाथी बेचने के लिये वह एक गांव में आया तो पाया कि वहां के लोग मिट्टी, ईंटें, चूना, गधे की पीठ पर ही ढोते है, इसलिये वहां पर हाथी की कोई कीमत न थी। गुणों की कसौटी जहां नही होती वहां रहकर कोई फायदा नही। गुणवान और गुण प्रिय होना मनुष्य जीवन का खूबसूरत पहलू है इसलिये आदमी को गुण प्रिय होना चाहिये।

स्वास्थ्य के लिये घातक होकर पथभ्रष्ट करने वाली सात लते मानी गई है। १) मांसाहारी आमिष आहार, २) तम्बाकू, चाय, मद्यपान ३) चोरी, ४) शिकार, ५) द्यूत क्रीडा, जुआ, ६) पर स्त्री गमन, ७) वेश्या गमन। इन लतों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम मनुष्य की शारीरिक या मानसिक स्थिति पर होता है। जैसे आमिष भोजन और मदिरा पान से शरीर का स्वास्थ्य बिगडता है। चोरी, जुए जैसी आदतों से नैतिकता में गिरावट आती है, पतन होता है इससे मानसिक विकृति बढने का असर होता है। इसलिये इन सात लतों से दूर रहना ही सर्वश्रेष्ठ है। आलस्य में समय न गंवाकर सतत् कार्यरत रहना, कुछ समय तक प्रकृति के वातावरण में रहना, प्रतिदिन कुछ समय तक स्वाध्याय, योग, ध्यान आदि करने से श्रेष्ठ जीवन उपलब्ध होता है।

आप बहुत परिश्रमी है मगर कडुवा बोल कर सब व्यर्थ हो जाता है। लोग आपका स्वभाव नहीं समझ पाते इस वजह से तकलीफ भी आपको ही होती है। जो महसूस करे उसे सौम्य लब्जे में व्यक्त करे तो आपके हित में होगी। आप बहुत जल्दी मन की कोई बात लगा लेते है। इस वजह से आपके मन में बदले की प्रतिशोध की भावना जागृत हो आती है और आपकी बहुत सी शक्ति इसमें बेकार चली जाती है। इसलिये अपना काम करते हुये दूसरों की और ध्यान न दे। अपना क्रोध, गुस्सा अवश्य निकाले मगर ढंग से। झटपट विस्फोट कर देने से दूसरों को तो इसका नुकसान होता ही है, तकलीफ में आप स्वयं भी आ जाते है। मानवता न भूले। आप कभी बहुत अच्छे तो कभी बहुत खराब हो जाते है। आपके अन्दर ये दो शक्तियाँ मौजूद है इनका सही उपयोग करने से आप पूरी दुनिया जीत लेंगे मगर दुरुपयोग होने पर आपके जीवन की वह बहुत बडी गलती साबित होगी। धर्म और मानवता का अच्छा अभ्यास आपको है पर धर्म को बाजार न बनाये।

आप दूसरों की समस्याओं को सुलझाने में माहिर है सक्षम है और इस गुण की वजह से आप समाज में एक प्रतिष्ठा हासिल कर सकते है। अति आदर्शवाद आपके हित में नही होगा। छोटी-छोटी बातों को नजर अन्दाज करते चलो और तरक्की की सीढियों पर कदम रखते जाओ। आपके अन्दर एक विशेष गुण है और वह है आपके अन्त:करण की आवाज। इसे सुनें तो आप जो चाहेंगे जीवन में हासिल कर पावोगे। अहंकार और आत्मविश्वास टाले और होनेवाले नुकसान से सदैव बचे। आप में निर्णय क्षमता है फिर भी ऐसे मौके आप पर अक्सर ही द्विधा मनस्थिति में रहते है और इस वजह से अपने फैसले में बदल करते रहते होगे। मौका पडने पर आप कैसी भी परिस्थिति को सम्भालने की क्षमता रखते हो अपनी इस ताकत को पहचानो।

मन के विश्वास को खोने न दे। जीवन में सकारात्मक सोच व नजरिया आपके आत्मविश्वास को बढ़ाने में सहायक होगा और जीवन में मिलनेवाली सफलताओं की ताली चाबी भी यही है। आप में व्यावहारिक दृष्टि है इसका इस्तेमाल करे। तन्हा होने से बचे। तन्हाई आपके मन को उदास कर देगी। जिन्दगी में कभी मायूस न हो। शिकस्त को स्वीकार करना सीखे। एक झूठ छुपाने के लिये दूसरे झूठ न बोले। इससे आपकी छवि धूमिल होगी और कोई आप पर विश्वास, भरोसा नहीं करेगा।

आप कभी बहुत मेहनती तो कभी बहुत आलसी हो जाते है अपनी मेहनत के गुणों को विकसित करे। खुलकर आप सभी की प्रशंसा करे जिससे विचारों का आदान-प्रदान करने में बाधा नहीं आयेगी। यदि आप मे सबसे बडी खामी यह हो सकती है कि आप बहुत जल्दी निराश हो जाते हो या आशा का त्याग कर देते हो, जो चीज आपके पास नहीं उसी का मातम मनाते रहते हो, इस प्रकार की दुर्बल भावना को मन से निकालने की कोशिश करो। आपके अन्दर बेहद मानवता का गुण है, इस कारण आप बार-बार धोखा खा सकते हो। पारिवारिक जीवन को आप दूसरी चीजों से अधिक महत्व नहीं देते हो। आप सहसा अपने विचार नहीं बदलते हो, अपने विचारों में दृढ़ हो, इस वजह से भी उदासी और निराशा आपके मन को घेर लेती है। आपका स्वभाव विचारों के लेन-देन मे बाधक बनता है और गलत फहमियों को जन्म देता है इसमे खुलापन अवश्य लाये।

मन के हारे हार है और मन के जीते जीत, किसी भी हालत में अपना आत्मविश्वास न डिगने दे। दूसरे से किये वादे कितना निभा पाते हो इससे पहले इस पर विचार करे कि खुद से किये वादे कितने निभा पाये हो। स्वयम् के प्रति जबाव देही की भावना व्यक्ति को अधिक जिम्मेदार व्यक्तित्व प्रदान करती है। भावुकता सुस्ती, मन की कमजोरी, कामचोरी आपकी सफलता में

बाधक है। बहुत अच्छाई और बहुत व्यवहारी अपने व्यक्तित्व में इसका ताल मेल बनाये रक्खे।

मनुष्य देवता बन सकता है। महान बन सकता है। लेकिन पर दोष प्रवृत्ति उसे देवता पद प्राप्त करने नहीं देती। इस जगत में सम्पूर्ण गुण युक्त कोई नहीं होता। हर एक में कोई ना कोई अवगुण अवश्य होते है। लोग एक दूसरे के सद्‌गुण नही केवल दोष देखते है। मुख से पर दोषों का उच्चारण करना, मन से उनका चिन्तन करना इससे मनुष्य की आत्मशक्ति काफी और अकारण खर्च होती है। इसके परिणाम में व्यक्ति के अन्त:करण पर कई दोषों के आवरण चढते है। तब सर्वत्र दोष दृष्टि बढ़ती है। व्यक्ति छिद्रान्वेषी बनता है। फिर वह एक आदत सी बन जाती है। इससे आत्म प्राप्ति का मार्ग बुरे विचारों से दूषित होकर आत्मविकास कुंठित होता है।

मनुष्य गुण और दोष दोनों से बना होता है। दोष प्रयास पूर्वक दूर करने पडते है और गुण अपनाने पडते है। मानव में ये दोष होते है, उनको त्याग कर गुण धारण करने चाहिये :- मानव दोष इस तरह :- अज्ञान, अविद्या, मोह, महामोह, कुमति, काम, रति, क्रोध, लोभ, तृष्णा, दम्भ, माया, दर्प, ईर्ष्या, असूया, स्तम्भ, मत्सर, अभिनिवेश, कुवासना, अहंकार, तिरस्कार, मान, संशय, स्पृहा, कार्पण्यता, प्रोह, हिंसा, अमर्ष, अतिमान, विपर्याय, तर्क, समय प्रमाद, भय, शोक, राग-द्वेष, मिथ्या, दृष्टी, उत्कंठा, आशा, आलस्य, मद, हर्ष, पैशून्य, मन्यु, परिवाद, रोष, अयोग, अनात्म, मृषा, अतिआशा, निवृत्ति, कलि, अधर्म, ममता, कुसंग इत्यादि।

किसी व्यक्ति की महानता केवल उसके कर्मों से नही, समाज के जनसाधारण की नजर से आंकी जाती है। इसलिये चरित्र ही व्यक्ति के सफल जीवन की सच्ची कसौटी है। उसके लिये इन गुण लक्षणों की आवश्यकता है। १) धैर्य, २) क्षमा भावना, ३) सहिष्णुता, ४) निर्लोभ, ५) शारीरिक-मानसिक पवित्रता, ६) इन्द्रिय संयम, ७) आत्म चिन्तन और आत्म परीक्षण, ८) ज्ञान लालसा, ९) सत्य जानना, समझना, अपनाना और श्रद्धापूर्वक अभिव्यक्त करना, १०) क्रोध उत्पन्न न होने देना। सफल बनने के लिये जिन्होने इन गुण लक्षणों को स्वीकार किया वे लोग कीर्तिवान- धनवान, गुणवान और आदर्श माने गये।

थोडी सी अकड के चलते लोग छोटी-छोटी बातों को तूल देकर अपने जीवन में बेकार की समस्याओं को जन्म देते है। हालांकि यह बात सही है कि इन्सान को खुद्दार होना चाहिये। लेकिन बेकार की बातों को अपनी प्रतिष्ठता व श्रेष्ठता का प्रश्न नहीं बनाना चाहिये। मैं क्यों किसी के पास झुकुं, वह क्यों नहीं ? यह बात अधिकतर लोगों के दिमाग में घर की हुई है। इसीलिये छोटी छोटी बातें बडे झगडे का रूप ले लेती है। मनुष्य का जीवन छोटा सा है उसे लडाई झगडों में नही बल्कि प्रेम से व्यतीत करना चाहिये। दैनिक जीवन में ही नहीं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भी कई समस्याये इसी अकड के चलते हल नही हो पा रही है। विनम्र व्यक्ति ही सबका प्रिय होता है। छोटी-छोटी बातों को नजर अन्दाज करे। सबके साथ विनम्रता का व्यवहार करे तभी हम अच्छे नागरिक कहला सकते है। कहते है - **अकड मुर्दे की पहचान है, झुकना जिन्दा दिल इन्सान की शान है।**

विचारपूर्वक अच्छे गुणों को अपनाना यही श्रेष्ठता का लक्षण है। व्यक्ति विनम् हो गया तो वह वीर कहा जाता है। सच्ची वीरता विनम्रता से प्रकट होती है। देश के लिये शत्रु से लडनेवाला वीर जवान अपने मातृ भूमि के चरणों मे लीन (नत) होता है। कम और उचित कारण से खर्चा करने वाला ही सच्चा उदार बन सकता है। कही भी पैसे उडाने वाला व्यक्ति उदार नही बन सकता। उसके अविचार के कारण वह एक दिन कंगाल बन सकता है और औरों के आगे अपना गुणगान

न करनेवाला आत्मप्रशंसा न करने वाला भक्त नेता बन सकता है। इस तरह श्रेष्ठ बनने के लिये विभिन्न गुण, मूल्य ध्यान पूर्वक अपनाने पडते है।

मनुष्य अच्छाई पसन्द करता है और वह बाहर से प्राप्त करने की कोशिश करता है, लेकिन कुछ श्रेष्ठ मूल्य वह अपना ले तो बाकी प्रयास करने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य के पास अगर क्षमा का गुण हो तो उसे आत्मरक्षा के लिये कवच धारण करने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य सज्जन व्यक्तियों से मित्रता करे तो वे ही उसे चिन्ता रोग से मुक्त करेंगे उसे अन्य औषधियों की जरूरत ही नहीं है। सुविधा उपलब्ध हो तो धन की क्या आवश्यकता है ? विनम्रता से बढ़ कर कोई श्रेष्ठ अलंकार नही है। कला के सामने सभी प्रकार के राज्य फीके है। मनुष्य के पास सत्य हो तो अलग से तपश्चर्या की जरूरत नहीं है। यदि मन शुद्ध है तो तीर्थ जाने की भी आवश्यकता नहीं है। भलाई का गुण हो तो सभी सद्‌गुण चले आते है।

प्राय: मानव यह कहता है कि उसे यह अनुभव होता है कि उसके हृदय मे भगवान है। यह अनुभव तब मिलता है जब व्यक्ति अपने सद्‌गुण प्रकट करता है। दूसरे व्यक्तियों के प्रेम, सरलता, भक्ति, क्षमाशीलता, सत्यप्रियता आदि गुणों को देख कर हम अत्यन्त प्रसन्न होते है। इसका कारण यह है कि ये सारे गुण ईश्वर को प्रिय है। वही ईश्वर हमारे अन्त:करण में होने के कारण यह अनुभव हमें मिलता है। सद्‌गुण मानव में ईश्वरतत्व के प्रतीक है। इसके विपरीत दुराचारियों के दुष्कर्मों पर हमें क्रोध आता है। इससे प्रमाणित होता है कि सबको सद्‌गुण अच्छे लगते है क्योकि वे ईश्वर स्वरूप है।

मिथ्या अहंकार, बुरी आदते और अन्धानुकरण मानवों के अनर्थकारक शत्रु है। सद्‌गुणों का गर्व करना एक तरह से ठीक है लेकिन कुछ लोग अपने अवगुणों को भी गुण ही मानते है और उन्ही का गुणगान करते रहते है। लेकिन सत्य की कसौटी पर यह अहंकार टिकता नही तब उन लोगों की पोल खुलती है। साथ ही बुरी संगत में बुरी आदते लग जाती है जिससे धन, स्वास्थ्य और मान इन तीनों पर विपरीत असर पडता है। अन्धा अनुकरण का रोग भी कुछ लोगों को लग जाता है। इस कारण मद्यपान, भारी कपडे, रेस, जुआ ऐसे महंगे शौक पालना प्रतिष्ठा का लक्षण माना जाता है। अन्धानुकरण से व्यक्ति अपना ही नुकसान करता है।

पीछे पीछे दूसरों की बुराई करना अत्यन्त ही अनैतिक व्यवहार का द्योतक है। पर निन्दा करने से न केवल अपयश की प्राप्ति होती है बल्कि जिसकी नाहक ही निन्दा की जा रही है जब उसे तथ्य मालूम होता है तो उसका हृदय असहनीय वेदना से कराह उठता है और उसका हृदय टूट जाता है। साथ ही उसे इस निंदनीय कार्य करने वाले की अच्छी व तुच्छ मानसिकता का भी ज्ञान हो जाता है। उसके मन में निन्दक के प्रति घृणा व नफरत के भाव पैदा होने लगते है। इस सम्पूर्ण प्रकरण के फल स्वरूप अच्छे भले सम्बन्धों में नफरत की दरार पडने लगती है। यदि निन्दक इस कृत्य से तौबा न करे तो अन्ततोगत्वा सम्बन्ध विच्छेद हो जाते है और साथ ही दिल भी। कुछ व्यक्ति जो अच्छे भले लोगों के प्रति द्वेष की भावना रखते है, उनकी उन्नति से जलते है तथा उनकी अनुपस्थिति में उन्हे अनुचित नामों तथा अपशब्दों से संबोधित करते है। यह भी पर निन्दा का ही अभिन्न अंग है। ऐसे में कलंकित व दुश्चारियों को दूसरों को सलाह देने का क्या औचित्य है। उस प्रकार के छिद्रान्वेषी प्रथम अपने आचरण को सुधारे।

काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर- से छह विकार मनुष्यों को हरदम सताते हैं। शरीर जीवित रहने तक वे व्यक्ति का साथ नहीं छोड़ते। इसलिये उनका त्याग किये बिना रूपांतरण करना चाहिये।

१) काम- खासकर स्त्री के विषय में कामना बलवान होती है। इसकी बजाय ईश्वर की आस में उसे बदल देना चाहिये।

२) क्रोध- अपने स्वार्थ की आड आनेवाले पर क्रोध आता है। इसकी बजाय, ईश्वरभक्ति की आड में आनेवाली बाधाओं पर क्रोध होना चाहिये। ३) लोभ- आम आदमी संपत्ति का लोभ होता है। इसकी बजाय अच्छे गुणों का लोभ होना चाहिये। ४) मद- अपनी उपलब्धियों का व्यर्थ दिखावा करना यानि मद। इसकी बजाय ईश्वर का कार्य निष्ठा से करने का मद (अभिमान) करें। ५) मोह- व्यक्ति को स्त्री सम्मान या धन का मोह होता है। इसकी बजाय संतों की संगत का मोह करें। ६) मत्सर- अपने से ऊंचे लोगों से मत्सर होता है। इसकी बजाय अपने अंदर पैठ जमानेवाले इन छह विकारों, दोषों से मत्सर करें।

परदोष दर्शनन्तु स्वाभाविकम् के अनुसार दूसरों की बुराइयों को खोज-खोज कर उजागर करना और अपनी कमियों पर धूल डालते जाना, मनुष्य ने अपना स्वभाव बना लिया है। (कतिपय अपवादों को त्याग) परछिद्रान्वेषण की यह प्रवृत्ति आधुनिक काल में तो और भी बढ़ गई है। कुछ लोगों का तो यह व्यसन हो गया है कि वे अपने परिवार और अपनी ही निन्दनीय कमियों को छोड़ अपने मुहल्ले और पड़ोसी की चर्चा और कमियों का बखान करने में ही निशि-बासर उलझे रहते हैं। कालान्तर में यही अपराधी प्रवृत्ति का रूप ले लेता है। आश्चर्य तो यह है कि जीवन वृक्ष में लगे इस घुन को वे घातक व मान साधक ही मानते हैं, अपना ज्ञान और विवेक खोकर ऐसे लोगों को दिवालिया बुद्धि उन्हें मानव की अधम कोटि में पटक देगी।

पारस एक जड़ पाषाण खण्ड ही तो है, किंतु अपने महान और समदर्शीगुण के कारण वह नाले और पूजा के सिंहासन के लोहे को स्वर्ण बना देता है और एक हम चेतन मानव होकर भी असूमा (गुणों में दोष देखना) दुर्गुण के कारण सज्जन और गुणवानों में भी बुराइयां निकालने में अपना गौरव समझते हैं।

यद्यपि सूरदास ने पारस गुन-अवगुन नहि देखत, कंचन करत खरौ कहकर प्रभु से अपने उद्धार की प्रार्थना की है परंतु हम मनुष्यों को भी चाहिए कि पर दोष दर्शन की कुप्रवृत्ति को त्याग सभी के साथ समानता का व्यवहार करते हुए मानव मात्र पर प्रेम की वर्षा करें, यही तो पारस का गुण है।

मनुष्य की बुद्धि तृष्णा की दासी हो गई है। तृष्णा निरन्तर बढ़ती जा रही है। विज्ञान का भी उपयोग अधिकांशत: विध्वंसक अस्त्रों के सृजन में हो रहा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को सुख और शांति कैसे प्राप्त होगी। भारतीय शिक्षा का आदर्श है भौतिक ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय। जैन शिक्षा के तीन अभिन्न अंग है- श्रद्धा, भक्ति और कर्म। सम्यक् दर्शन से हम जीवन को श्रद्धामय बनाते हैं, सम्यग् ज्ञान से हम पदार्थों के सही स्वरूप को समझते हैं और सम्यग चरित्र से हम सुकर्म की ओर प्रेरित होते हैं। इन तीनों का जब हमारे जीवन में विकास होता है तभी हमारे जीवन में पूर्णता आती है। यही जैन शिक्षा का संदेश है, हम प्रमत्त बनें, संयमी बनें, जागरूक बनें, चारित्रसंपन्न बनें। बहुत अधिक दोष-दर्शन की दृष्टि मत रखो। अधिक दोष देखने की बहुत ज्यादा आदत पड़ जाएगी तो अपने मन की शांति भी खत्म हो जाएगी। हमारा मन ऐसा है कि वह गंदगी ही तलाश करता फिरता है। केवल गंदा ही देखता है। दोष न भी हो, तब भी दोषदर्शन में अभ्यस्त दृष्टि दोषों को तलाशती है। जब दृष्टि दोष की बन गई तो हर जगह दोष ही दोष दिखाई देता है। उन्हें कोई अच्छा-सा नजर ही नहीं आता। परिवार के अंदर भी अलग-अलग भूमिका के लोग है। पत्नी अलग भूमिका की है, माँ अलग भूमिका की है, पुत्र अलग भूमिका के हैं, बंधु अलग भूमिका के हैं। मनोवृत्ति अलग-अलग है। अगर दोष ही देखना शुरू करेगा आदमी तो क्या होगा ? घर में हर समय यह खराब कर दिया, वह खराब कर दिया, यह ठीक किया, यह ठीक नहीं किया- अपनी क्या भूमिका है, कुछ

नहीं। दूसरों के दोष देखने में लगेगा तो परिवार में शांति कहाँ से होगी ? सर्वथा गुणी या दोषी ऐसा नहीं होता है संसार में। जहाँ कोई दोष होते हैं, वहाँ पर गुण भी होते हैं। ऐसी बात नहीं कि कोई गुण नहीं है। यह बात दूसरी है कि सज्जन पुरुष गुणों को महत्व देता है और दुर्जन दोषों को ही महत्व देता है और इस प्रकार वह दोषों के चक्र में पड़कर निंदाएं करता रहता है- यह ऐसा है, वह ऐसा। इस प्रकार गंदगी चाटता रहता है। यह एक मनोवृत्ति है।

अपने बालक-बालिकाओंको वाणीके द्वारा तथा आचरणोंके द्वारा ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि जिससे वे सत्यवादी, सदाचारी, सद्गुणसम्पन्न, दुखी और बड़ोंकी सेवा करनेवाले, धर्मभीरू, ईश्वरभक्त लोक और शास्त्र-मर्यादाके अनुसार चलनेवाले, अच्छे स्वभाववाले और परिश्रमशील बनकर माता-पिता आदि गुरुजनोंका, कुटुम्बका और देशका कल्याण करनेवाले हों।

श्रीहरि सभी सद्गुणों की खानि हैं। वैसे तो हरि ब्रह्म भाव से चराचर विश्व में व्याप्त हैं, किन्तु जहाँ उनका विशेष रूप से प्रादुर्भाव होता है, जिस भक्त के हृदय में वे भगवती भक्ति के द्वारा प्रकट होते हैं- उस हृदय में सभी सद्गुण स्वत: ही आ-आकर निवास करने लगते हैं। भगवान वासुदेव के प्रादुर्भाव का और सद्गुणों का शरीर और छाया के समान सम्बन्ध है। शरीर जहाँ रहेगा उसकी छाया उसके साथ-ही-साथ रहेगी। धवलता जैसे दूध से, शीतलता जैसे चन्द्रमा से, उष्णता जैसे अग्नि से, गन्ध जैसे पृथ्वी से पृथक् नहीं की जा सकती, उसी प्रकार सद्गुणों को सर्वेश्वर से भिन्न नहीं बनाया जा सकता। समस्त संसारातीत सद्गुणों से ही श्रीहरि का श्रीविग्रह बनता है। उस श्रीविग्रह के अन्तर्हित होने से उसके साथ-ही-साथ सब सद्गुण भी विलीन हो जाते हैं। सुख स्वयं ही एक सद्गुण है।

जहाँ आल्हाद न रहेगा, वहाँ ताप, संताप, चिन्ता आदि आकर बस ही जायँगे। सभी प्राणी आनन्द आल्हाद, सुख से हीन होकर ही दुखी और चिन्तित होते हैं।

यह संसार गुण दोषों से भरा हुआ है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें दोष ही दोष भरा हो, एक भी गुण न हो। इसके विपरीत ऐसी भी कोई वस्तु नहीं जिसमें गुण-ही-गुण हो एक भी दोष न हो। बुद्धिमत्ता और मूर्खता उनके ग्रहण में ही देखी जाती है, बुद्धिमान पुरुष सब वस्तुओं में से गुणों को ही ग्रहण करते हैं, अवगुणों को परित्याग कर देते हैं।

जो जिस गुण का ज्ञाता नहीं, यदि वह उसी गुण के गुणों की प्रशंसा करता है तो बुद्धिमान पुरुष उससे उतने प्रसन्न नहीं होते। यही नहीं-वे उसे परिहास समझते हैं, किन्तु उस गुण का मर्मज्ञ यदि प्रशंसा करताहै तो गुणी अपने गुण की सफलता समझते हैं। उनका रोम-रोम प्रसन्नता से खिल जाता है। वे अपने परिश्रम को सार्थक समझते हैं और प्रशंसा से अत्यन्त उत्साहित होकर अपनी कला को और भी उत्तमता से प्रदर्शित करते हैं। उत्साह, सामर्थ्य और मन में हिम्मत न हारना- ये कार्य की सिद्धि कराने वाले गुण कहे गये हैं। जो हर समय दूसरे के दोष को देखता है, वह अपनी पहचान खो बैठता है।

मनुष्य का स्वभाविक रूझान जन्म से लेकर शरीर की ओर झुका होता है। हम शरीर से एकाकार होकर अपने आपको शरीर मान बैठते हैं। इसलिए बचपन में शरीर के विषय में चिंता, यौवन में प्रेम और वृद्धावस्था में आसक्ति होती है। इसके विपरीत असाधारण व्यक्ति गुणों को, गुणों के विकास को महत्व देते हैं। मनुष्य को कीर्ति मिलती है गुणों के कारण केवल शरीर सजाने से नहीं। गुण प्राप्त करने के लिए शरीर की भी परवाह नहीं करनी चाहिए। क्योंकि शरीर मर जाता है और गुण अमर होते हैं, इसलिए गुण शरीर से श्रेष्ठ होते हैं। दोष से ही हम सभी भरे हैं, मगर दोषमुक्त होने का प्रयास करना हम सबका कर्त्तव्य है।

सद्‌गुणों में स्थिरता है दुर्गुणोंमें स्थिरता नहीं। सद्‌गुणसे भगवद्‌प्राप्ति होती हैं दुर्गुण से नहीं।

दुर्गुण सब अशान्त बनाते हैं। साधु शान्त होते हैं, उनमें कोई दुर्गुण नहीं होता। सद्‌गुण ही जिनके आभूषण हैं, शोभा सदगुणोंसे बढती है वो ही साधु है।

संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक तो ऐसे होते हैं जो किसी के गुण दोषों की ओर ध्यान ही नहीं देते। यही सोचते हैं, ये गुण गुणों में बर्त रहे हैं। दूसरे ऐसे सज्जन पुरुष होते हैं कि जो दूसरों के केवल गुणों को ही देखते है। अवगुणों की ओर ध्यान ही नहीं देते। किसी में सरसों के बराबर भी गुण हो, तो उसे सुमेरु समान समझकर आदर से उसे हृदय में धारण करते हैं। वे केवल गुणों को ही देखते हैं। संसार में ऐसा कोई भी नहीं, जिसमें एक भी गुण न हो। तीसरे ऐसे होते हैं कि दूसरों के गुण-दोष दोनों को देखते हैं। दोनों पर विचार करते हैं कि इसमें यह गुण है, यह दोष हैं। गुण-दोषों का विचार करके जो उन्हें अच्छा गुण लगताहै, उसकी प्रशंसा करते हैं। अवगुणों की अवहेलना अथवा निन्दा करते हैं। चौथे वे अधम पुरुष होते हैं जो सब में दोष ही ढूँढ़ते रहते हैं। कितना भी ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, यशस्वी, प्रतिष्ठित पुरुष क्यों न हो, वे उसमें अवगुण ही खोजेंगे। जैसे कितना भी सुन्दर स्वच्छ, शरीर हो, मक्खी वही बैठेगी जहाँ पीव, घाव, रक्त, मल आदि अशुचि वस्तु लगी हों। जिनकी इस क्षणभंगुर नाशवान् शरीर में ही आत्म-बुद्धि है, इसी को आत्मा समझे बैठे हैं, वे तो महापुरुषों के गुणों को देख ही नहीं सकते। जैसे कसाई पशु के सौन्दर्य की ओर नहीं देखता, वह यही देखता है, इसमें कितना मांस निकलेगा, कितना रक्त निकलेगा? महापुरुषों के अवगुण देखते-देखते और उनकी सदा निन्दा करते-करत उनका समस्त तेज नष्ट हो जाता है।

गुण अवगुण संसार में मिले-जुले रहते हैं। यह संसार प्रवाह अनादि है। जब से जीव इस देह में अहंबुद्धि करके कर्मों का भोग करने लगा हैं, तभी से उसके शरीर में गुण और दोष लगे रहते हैं। गुणों का अत्यधिक प्राधान्य हो तो देवयोनि मिलती है, दोषों का प्राधान्य हो तो असुर योनि। दोनों सामान्य रूप में हो तो मनुष्य योनि प्राप्त होती है। बड़ों में भी कुछ दोष रहते हैं, किन्तु उनकी महत्ता के कारण वे अवगुण छिप जाते हैं। मानवी सृष्टि में गुण, दोष का होना स्वाभाविक है, किन्तु मनुष्य में यही विशेषता है कि वह अपने दोषों को समझकर उनका मार्जन कर सकता है। अन्य भोग योनियों में ऐसा नहीं होता।

जो दूसरों को खाई खोदता है उसके लिये कूप तैयार हो जाता है। जो दूसरों की बुराई करता है उसमें वह बुराई स्वत: ही आ जाता है। जो दूसरों को बुरा कहता है वह स्वयं भी बुरा बन जाता है। बुराई से बुराई उत्पन्न होती है भलाई से भलाई। चिन्तन चाहे राग बुद्धि से करो या द्वेष से, चिन्तनीय वस्तु में आसक्ति हो ही जाती है।

पाप या पुण्य करते-करते मनुष्य का साहस बढ़ जाता है। साफल्यमण्डल तथा आशा, सफलता के प्रधान कारण हैं। यदि कोई काम मनुष्य करता है और उसमें उसे सफलता होती है तो उसका साहस अधिक बढ़ जाता है। यदि प्रवृत्ति अनुचित कार्य में है तो ऐसे अनुचित कार्य मनुष्य करेगा कि दुस्साहस पराकाष्ठा पर पहुँच जायगा। चाहे बड़े आदमी करें, चाहे छोटे, बुरे काम तो बुरे ही हैं। फिर भी समर्थ के दोषों को लोग छिपाते हैं, उनकी सामर्थ्य के आगे बड़े से बड़े अनुचित कार्य दब जाते हैं, सामर्थ्यवान प्रभावशाली पुरुषों के दूषण भी भूषण हो जाते हैं। एक बड़ा सद्‌गुण छोटे-छोटे कितने दुर्गुणों को दबा देता है और एक बड़ा दुर्गुण छोटे-मोटे सभी सद्‌गुणों को छिपा देता है। बड़े लोगों के दोषों को विचारना बड़ा अपराध है। दोष तो किसी के भी नहीं देखना चाहिये। देखने ही हों तो अपने मन के दोष देखे। किसी को भी अपने गुणों

का यथार्थ ज्ञान तभी होता है, जब दूसरे उसके उन गुणों के प्रशंसक हों, दूसरे उन पर विमुग्ध हो जायँ।

जैसे गुण निर्गुणी को प्राप्त करके दोष बन जाते हैं, वैसे ही अवगुण भी प्रेम के संसर्ग से गुण बन जाते हैं। जैसे चिन्ता, उन्माद तथा जड़ता आदि लौकिक दृष्टि से दोष हैं किन्तु प्रेम के सात्विक अनुभव होने से ये गुण ही माने जाते हैं, उसी प्रकार लोक में किसी के ऐश्वर्य आदि को देखकर ईर्ष्या करना बड़ा भारी दोष है, किन्तु इस प्रेममार्ग में ईर्ष्या का भी महत्व है। इस ईर्ष्या में एक प्रकार का सुख है।

बुराई करने का अवसर तो दिल में सौ बार आते हैं, पर भलाई का अवसर वर्ष में एक बार आता है। संसार में न कोई अच्छा है न बुरा। अच्छाई बुराई तो हमारे मन के ऊपर है, जिसे हम अच्छा कहते हैं, दूसरे उससे घृणा करते हैं, जो हमें अत्यन्त बुरा लगता है, जिसे हम फूटी आँख से भी देखना नहीं चाहते दूसरे उसके ऊपर प्राण देने को तत्पर हो जाते हैं। मन ने जिसे अच्छा मान लिया वह अच्छा है ग्राह्य है। उसके अतिरिक्त चाहे कोई कितना भी अच्छा हो वह उसके लिये बुरा है। विष के कीड़ा को विष ही अच्छा लगता है। पपीहा स्वाति की बूँद को छोड़कर अमृत की ओर भी नहीं देखता। चकोरी चन्द्रमा को ही निहारती रहती है। यद्यपि वह जानती है, चन्द्रमा बहुत दूर है, कहाँ चन्द्रमा और कहाँ मैं, किन्तु प्रेमी छुटाई-बड़ाई का व्यवधान नहीं देखता। वह तो सभी उपायों से अपने प्रेष्ठ से मिलना चाहता है। चकोरी को जब चन्द्र को स्मुख देखते हुए भी उसे प्राप्त नहीं करती तब स्मशान में जाकर जलती हुई चिताओं में से अग्नि ले-लेकर खाने लगती है। स्मशान में इसलिये खाती है कि अग्नि खाने से यहीं भस्म हो जाऊँगा।

आदमी का पतन तभी तक होता है, जब तक उसे अपने दोष दिखायी नहीं देते। अपने को निर्दोष समझता है। जहाँ उसे अपने दोष दिखायी देने लगते हैं तहाँ वह गुरुओं के समीप जाता है, उनसे प्रश्न करता है, हृदय से उनकी सेवा करता है, उनके उपदेश को ग्रहण करता है और अपने दोषों को मिटाने की सतत चेष्टा करता है।

उपदेश देना सबसे सरल काम है। अपने यहां शायद ही ऐसा कोई मनुष्य होगा, जो दूसरों को नसीहत देने का काम न करता हो या ऐसा करने की इच्छा न रखता हो। इसीलिए यह मुहावरा भी बना होगा- पर उपदेश कुशल बहुतेरे। कई लोग तो खुद मियां फजीहत होने के बावजूद दूसरों को नसीहत देते हैं, यानी जो काम खुद नहीं कर सकते, उसके लिए भी दूसरों को उपदेश देना। इसीलिए नसीहतबाजों से लगभग हम सभी नफरत करते हैं। लेकिन एक बात भी गौर करने की है कि आमतौर पर आदमी दूसरों को हर समय अच्छी बात बताता है। कोई यह उपदेश नहीं देता कि जाओ चोरी करो या फलां का गला काट लो। इसका अर्थ यह है कि वास्तव में हर आदमी कुछ सकारात्मक काम करना चाहता है। यह अलग बात है कि अपनी दुर्बलताओं के चलते वह उन्हें नहीं कर पाता, मगर तब वह दूसरों के जरिए किसी अच्छाई को आगे बढ़ते देखना चाहता है। दूसरों को शुभ कर्म का संदेश देकर वह एक तरह से अपने को संतोष देता है। उपदेश देने की प्रवृत्ति अच्छाई के प्रति हमारी आस्था का प्रमाण है।

मनुष्य में अनेक दोष होने पर भी वह अपने आपसे प्रेम करता है तो किसी के दो-चार दोष देखकर उसको धिक्कारना उचित नहीं है। मनुष्य के हृदय में जब दोष उग्र रूप धारण कर लेते हैं तो उसकी वृत्तियों में, दृष्टि और धारणा में भी विकार आ जाता है। गुणों में भी वह दोष देखता है, अच्छाई को भी बुराई के रूप में देखता है।

बुरा कार्य करना जितना आसान है, उसे दूसरे के समक्ष प्रकट करना उतना ही मुश्किल है। इसमें बड़ा कष्ट होता है।

यदि हम अपनी बुराइयों को कहना शुरू कर दे तो बुराई की जड़ें हिलने लगती हैं तथा एक दिन स्वत: ही बुराई से छुटकारा मिल जाता है।

चित्त के कुसंस्कारों से सद्गुण घबरा जाते है। परमात्मा के नाम स्मरण द्वारा हम सद्गुणों का संचय करे। हम आत्मविजय द्वारा संसार में महान बने।

जैसे जल की प्रकृति है शीतलता वैसे ही संत की प्रकृति है सरलता। उसके पूरे जिस्म को आग ने पकड़ लिया था। आग की लपटें ऊंची उठ रही थीं। वह तड़पकर इधर भागता कि उधर भागता। जलते हुए उस मनुष्य को देख भीड़ अफसोस कर रही थी। पास में कुछ ऐसा नहीं था जिससे यह आग बुझाई जा सके। उसी भीड़ में एक नौजवान खड़ा था। उसने पीछे मुड़कर देखा कि एक चाय के होटल में चूल्हे पर भगोने में पानी उबल रहा है। वह भीड़ चीरता हुआ निकला और भगोने का पानी लाकर उस जलते हुए आदमी पर उलट दिया। आग एक झटके में खत्म हो गई, मगर वह आदमी अब और तेज चीखने लगा। भगोने के खौलते पानी ने उसके जिस्म को अंदर तक उबाल दिया। यानी आग तो बुझ गई, लेकिन शरीर पर उसका बुरा असर कई गुना ज्यादा बढ़ गया।

नौजवान से उसकी तड़पन देखी नहीं जा रही थी। उसे मालूम था कि पानी से आग बुझती है। बस उसने यह गौर नहीं किया कि पानी अपना स्वभाव अगर खो दे तो वह आग भले बुझा दे, मगर नुकसान उससे ज्यादा करेगा। खौलता पानी आग बुझाने की खूबी तो रखता है, लेकिन उसमें आग से भी ज्यादा जलाने का अवगुण भी पैदा हो जाता है।

जब हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति मनुष्यता से कोसों दूर है, वह समाज को गलत मोड़ पर ले जा रहा है, वह झूठा है, पापी है, दुराचारी है, तब हमारा मन उससे खिन्न हो जाता है। हम भीड़ की तरह उसकी मन:स्थिति देख अफसोस करते हैं।

आग का इलाज शीतल जल है, उसी प्रकार पाप और दुराचार के विरुद्ध भी जल की शीतलता की तरह लड़ना होगा। जिस तरह खौलता जल नुकसान ज्यादा करता है, उसी प्रकार यदि संत हृदय भी अपनी प्रकृति छोड़कर कुछ करेगा तो नुकसान ही होगा। बुराई से कोई बुराई मरती नहीं बल्कि वह दोगुनी होकर हमारे सामने खड़ी हो जाती है। अगर कुछ गलत दिखे तो रुक जाओ। देखो कि उसे खत्म करने के सही अस्त्र कौन से हैं। उन्हें अपनाओ और बुराई पर विजय की पताका लहरा दो। जब कोई रास्ता न सूझे तो सरलता, प्रेम, अहिंसा को पकड़े रखो। इनमें इतनी ताकत है कि हर बुराई को समूल नष्ट कर सकती हैं। यदि जल की प्रकृति शीतलता है तो संत हृदय की प्रकृति सरलता, प्रेम और अहिंसा है।

हमारे जीवन में सुख है तो दुख भी है। लाभ के साथ हानि भी है। यश-अपयश दोनों हैं। विजय पराजय से जुड़ी है। पतन है तो उत्थान भी है। यूं तो सदा ही हम हर क्षेत्र में अपनी उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है कि बार-बार प्रयास करने पर भी सुख मिलता नहीं, दुख हाथ मिला लेता है। लाभ दूर तक दिखाई नहीं देता, नुकसान न जाने कहां से आ टपकता है। विजय का कितना ही उपक्रम करें, पराजय वक्त-बेवक्त सामने खड़ी रहती है। कोशिश करते हैं शिखर छूने की, पर बार-बार नीचे उतरते जाते हैं।

पूरे प्रयासों के बाद भी हम क्यों और कैसे सफलता से चूक जाते हैं? क्या कभी इस विफलता का कारण बनी अपनी गलतियों और कमजोरियों का हमने परीक्षण किया है? क्रिकेट का खिलाड़ी जब आउट होता है तो इसका कारण जानने के लिए खेल का विडियो देखता है। दुनिया उसकी शक्ति देखती है, वह अपनी कमजोरी तलाश करता है और उसे सुधारता

है। इसी तरह से क्या कभी हम भी अपनी विफलता के कारण देखने की कोशिश करते हैं?

कहीं जाने से पहले हम घर के आईने में चेहरा देखते हैं। कोई दाग-धब्बा दिखता है तो बिना उसको साफ किए घर से नहीं निकलते। क्या हमारे पास हमारी कमजोरी दिखानेवाला कोई शुभचिंतक रूपी आईना है? क्या जब वह हमारी गलती बताता है तो हम गलती सुधार लेते हैं? घर के आईने की तरह उससे भी सद्भाव बना रहता है या उनके प्रति कोई दुर्भावना मन में आ जाती है? सच्चाई यह है कि कोई जब हमारे दोष को दिखाता है तो हमारे अहं को ठेस लगती है। हम जानते हैं कि बाल्टी में एक छोटा सा छेद बाल्टी का सारा पानी बाहर बहा देता है। हमारी छोटी सी कमजोरी सारी ऊर्जा को खत्म कर देती है। मन का छोटा सा भी दोष पूरी सोच को दूषित कर हमारे पूरे व्यक्तित्व को धूमिल कर सकता है। हम अपने शरीर के रोग के साथ कभी कोई समझौता नहीं करते, तुरंत उपचार करते हैं। तो मन के दोष हमें व्याकुल क्यों नहीं करते?

इंसान के पास समस्याएं हैं। अब तो इंसान स्वयं में एक समस्या बन गया है। गलती करना तो हम बंद करते नहीं, बंद कर देते हैं गलतियों को सुनना और उन्हें सुधारना। इससे तो हमारा पतन सुनिश्चित हो जाता है। गलतियां करनेवाले को आदर देना सफलता की पहली सीढ़ी है।

परमेश्वर की दृष्टि में हैपीनेस ही रिचनेस है। हम तय नहीं कर पा रहे कि हमारे लिए जरूरी क्या है- आंतरिक खुशी या बाहरी सुख? अगर हममें गलती सुनने की इच्छा-शक्ति और उसे स्वीकार कर सुधारने की क्षमता है तो न सफलता के साथ खुशी हमसे दूर है न ही परमात्मा।

हमारे पास धन-दौलत अथवा अन्य किसी भी प्रकार की समृद्धि आती है, तो हम उसे सहेज कर रख लेते हैं। धन की प्राय: तीन गतियां कही गई हैं- सदुपयोग, दुरुपयोग अथवा विनाश। यदि हम अर्जित धन-दौलत अथवा समृद्धि का सदुपयोग नहीं करेंगे तो उसका दुरुपयोग अथवा विनाश अवश्यंभावी है। समझदार व्यक्ति अपनी धन-दौलत का न केवल सदुपयोग करते हैं बल्कि अतिरिक्त धन-दौलत को किसी उपयोगी व्यवसाय में लगा देते हैं अथवा बैंक में डाल देते हैं। पैसा भी सुरक्षित हो जाता है और अतिरिक्त आय भी नियमित रूप से होती रहती है। अच्छी आदतों अथवा सदगुणों के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। सदगुणों का उपयोग नहीं करेंगे तो उनका भी विनाश हो जाएगा और उनसे होनेवाले लाभ से हम वंचित रह जाएंगे। कई बार तो कुछ अच्छी आदतें हमें मृत्यु के मुंह तक से खींच लाती हैं।

आप बस कुछ ऐसा चुनें जिसे संभाल सकते हों

आप कहते हैं कि यह एक अच्छा विचार है और वह एक बुरा विचार है। यह एक अच्छा कर्म है और वह एक बुरा कर्म है। कोई आदमी बुरा काम कर रहा है, तो वह बुरा आदमी है। ऐसा ही मानते हैं न आप। अच्छा और बुरा खासकर उन लोगों की खोज थी जो स्वर्ग जाने का टिकट बेच रहे थे।

एक ईसाई उपदेशक, जजमेंट डे यानि जिस दिन ईश्वर फैसला करता है, उस दिन की घटनाओं का खुलासा कर रहा था। बीच-बीच में यहां वहां बाइबिल से पढ़ रहा था- ओह। मेरे मित्रों, जरा उन पापियों के कष्ट की कल्पना करो, जब वे खुद को घनघोर अंधेरे में तड़पते हुए पाते हैं, ईश्वर की मौजूदगी से हटाकर उन्हें शाश्वत अग्नि कुंड में डाल दिया जाता है। मेरे मित्रों, ऐसे समय में वे रो रहे होते हैं, कराह रहे होते हैं और अपने दांत पीस रहे होते हैं।

उसी समय एक बुजुर्ग आदमी उठा और उसने बीच में ही एक सवाल पूछ लिया, लेकिन सर, उन हताश पापियों में से

किसी के पास अगर दांत न हो, तब क्या होता है? उपदेशक ने मेज पर मुक्का मारते हुए कहा, मेरे मित्रों, ईश्वर को इन बातों से धोखा नहीं दिया जा सकता, आप बिल्कुल निश्चिंत रहिए, दांत उपलब्ध करा दिए जाएंगे। इसी तरह के लोग हैं, जिन्होंने अच्छे और बुरे को ढूंढ निकाला।

जब मैं कर्म कहता हूं, यह केवल शरीर से ही नहीं होता। कर्म विचार, भावना या ऊर्जा का भी हो सकता है। वह कर्म जो आपके जीवन में नकारात्मक या अशुभ नतीजा लाता है, उसे आप प्राय: बुरा कर्म कहने की कोशिश करते हैं। यह किसी बुरे कर्म की बात नहीं है, यह बस इतना ही है कि अलग-अलग कर्म अलग-अलग नतीजे पैदा करते हैं।

अगर आपमें पर्याप्त जागरूकता है, तो आप यह देख सकते हैं कि हरेक कर्म का एक नतीजा होता है। अगर आप खुशी-खुशी नतीजे को स्वीकार कर सकते हैं, तो फिर आप जो चाहें कर सकते हैं। लेकिन अगर आप आज कुछ करते हैं और जब उसका नतीजा आता है, तब आप रोने लगते हैं तो अपने कामों को, विचारों को, भावनाओं को थोड़ी लगाम दें।

कुछ ऐसा मत शुरू कर दें, जिसे आप संभाल नहीं सकते। यह अच्छे और बुरे के बारे में नहीं है। जीवन को विवेकपूर्वक जीने के बारे में है। अब आप एक ऐसा पत्थर न उठा लें जिसे आप ढो नहीं सकते। आप कुछ ऐसा चुनें जिसे आप संभाल सकते हों। अगर आप यह बात अपनी जागरूकता में लाते हैं, तो आपको इस बारे में चिंता नहीं करनी पड़ती कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। वही करते हैं जो आपके लिए जरूरी है।

बड़प्पन हममें तब आता है जब हम गलती स्वीकारना सीखते हैं। बड़े लोगों को मनमानी करने की छूट नहीं मिलती, बल्कि बड़ा होने से उनकी जिम्मेदारियां और बढ़ जाती हैं। जब हम अपने जीवन में कोई बहुत अच्छा या महत्वपूर्ण कार्य करते हैं तो उसकी प्रशंसा होना या उसका पुरस्कार मिलना स्वाभाविक है। प्रशंसा भी होनी चाहिए और पुरस्कार भी मिलना चाहिए। इससे व्यक्ति प्रतिष्ठित होता है और प्रतिष्ठा से व्यक्ति को और अधिक अच्छा करने की प्रेरणा मिलती है। कुछ लोग सोचते हैं कि समाज में एक बार प्रतिष्ठा मिल जाने पर उन्हें मनमानी करने का अनुमतिपत्र मिल गया है। आजकल राजनीति और आध्यात्मिक जगत में जिसे देखो वही मनमानी कर रहा है। कोई भ्रष्टाचार में तो कोई व्यभिचार में लिप्त है। जनप्रतिनिधि जनता का भरोसा तोड़ रहे हैं तो तथाकथित महाराज भक्तों का। वास्तव में कुछ अच्छा या महत्वपूर्ण कार्य करने वाले को उसके पुरस्कारस्वरूप मनमानी करने की छूट नहीं मिलती।

महत्वपूर्ण या जिम्मेदारी का काम मिलने का यह मतलब नहीं कि नियम तोड़ने की छूट मिल गई है। हमारी अच्छाई या हमारा महत्व तभी तक बरकरार रहता है, जब तक हम एक अच्छे नागरिक की तरह नियमों का पालन करते हैं और हमारा आचरण पवित्र बना रहता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो हम पतन की ओर उन्मुख होने लगते हैं। साथ ही हमारी अच्छाइयां निष्प्रभावी होने लगती हैं और उनका सकारात्मक प्रभाव भी समाज पर नहीं पड़ता। हमारे आचरण में गिरावट या नैतिक पतन के साथ न केवल हमारी अच्छाइयों का अंत हो जाता है, बल्कि हम समाज व कानून की दृष्टि में दोषी भी हो जाते हैं और उसका एकमात्र उपचार है दण्ड।

पूना में तिलक जी के प्रपौत्र डॉ. दीपक तिलक से मिलने का मौका मिला। जब उनसे पूछा गया कि तिलक जी की परंपरा से जुड़ने पर आपको कैसा लगता है, तो वह चुप रहे। लेकिन जब उनसे कहा गया कि अच्छा ही लगता होगा तो उन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया- हमारी जिम्मेदारी बढ़ जाती है। जब भी हम किसी महान परंपरा या उद्देश्य से जुड़ते हैं

तो हमसे लोगों की अपेक्षाएं बढ़ जाती हैं और उसी अनुपात में हमारी जिम्मेदारियां भी बढ़ जाती हैं। हमारे ऊपर स्वयं के आचरण के माध्यम से समाज में ईमानदारी, तटस्थता, सहिष्णुता, नियमपालन आदि उदात्त जीवन मूल्यों को स्थापित करने का दायित्व आ जाता है।

हम कितने भी अच्छे कार्य करने वाले क्यों न हों दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार भी अच्छा होना चाहिए। जब हम समाज के लिए भी उपयोगी काम करते हैं तो इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि हम दूसरों से बेरुखी से पेश आएं अथवा जो मर्जी उन्हें कह दें। हम दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत तो हो सकते हैं, पर विशेष रूप से सम्मान पाने का पात्र नहीं। वास्तविक बड़प्पन हमारे अंदर तब आता है जब हम अपनी गलतियों को स्वीकार कर उन्हें दूर करना सीख जाते हैं।

अवगुण के अंधेरे के सामने ज्ञान की एक मोमबत्ती जला दें। बहुत कुछ बदल जाने के बाद भी हमारे मन में अभी तक हमारा अप्रिय करनेवाले के लिए जैसे को तैसा का भाव कहीं न कहीं गहरे पैठा हुआ है। पर ऐसा करने से तो अप्रिय करने-कराने की यह परंपरा अनवरत चलती रहेगी। हो सकता है लड़ते-लड़ते उसके हाथों हम स्वयं ही समाप्त हो जाएं।

दोस्त बनाने में तो और भी जोखिम है। उसमें बहुत सारे अवगुण भी हैं। दोस्त बनकर तो भीतर घात करके हमारी हालत ही खराब कर देगा। दुश्मनी भी नहीं दोस्ती भी नहीं और वह हमारा अप्रिय करता रहे यह भी सहन नहीं। तो एक मार्ग है। जब हम बीमार होते हैं तो हम बीमारी से दुश्मनी और दोस्ती कुछ भी न कर उससे छुटकारा पाने के लिए मन में दृढ़ता लाते हैं कि चाहे जैसे भी हो, हर हाल में हमें स्वस्थ होना ही है। और बीमारी से भी ताकतवर दवा का इस्तेमाल करके उसे भगा देते हैं।

अपने हर उस अप्रियकारी दोष को पराजित करने के लिए उससे भी बलशाली गुण को उसके सामने ले आएं। जैसे क्रोध हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है। हमने ही उसे पाला-पोसा है। उससे दुश्मनी और दोस्ती दोनों ही घातक होगी। लेकिन ऐसे परम शत्रु से पीछा छुड़ाना भी आवश्यक है। उससे भी बलिष्ठ गुण क्षमा को उसके सामने लाकर उसे पराजित कर दें। इसी तरह हम कृपणात के सामने उदारता, कठोरता के सामने कोमलता और कृतघ्नता के सामने कृतज्ञता आदि गुणों को लाकर रख दें तो यह हमारे सारे अनिष्टकारी अवगुण अपने आप ही समाप्त होकर हमारा अप्रिय करना छोड़ देंगे।

बहुत समय से अज्ञान का अंधेरा छाया है। हम उसे न तो लड़कर भगा सकते हैं न उससे दोस्ती करके सुखी रह सकते हैं। वह भी भाग जाएगा अगर अंधियारे रूपी अवगुण के सामने हम ज्ञान के प्रकाश की एक मोमबत्ती जला दें। लेकिन यह तभी होगा जब हम अपने दिल और दिमाग में उस दोष को, दुर्गुण को बाहर निकाल फेंकने के लिए वैसा ही तिरस्कार का भाव रखेंगे जैसा ऑस्ट्रेलिया का मशहूर गेंदबाज डेनिस लिली गेंद फेंकने से पहले अपने मन में बैट्समैन के मन में भाव पैदा कर लेता था- कि जैसे भी हो उसे आउट तो करना ही है। यही भाव उसे सफलता भी दिलाता था।

हमें कटिबद्ध होना है कि भले ही हम वह सब कुछ न करें जो हमें परमात्मा ने करने को कहा है, लेकिन हम वो कदापि नहीं करेंगे जो उन्होंने नहीं करने को कहा है। पहले हम अपने दोषों को दूर करेंगे। उसके बाद भगवान का नाम लेंगे।

लोगों के गुणों पर ध्यान दें न कि अवगुणों पर- हम सभी के अंदर कोई न कोई कमी होती हैं, पर यह कमियां हमें अनोखा बनाती हैं। उन कमियों को पहचानें, उसका फायदा उठाएं। हमें भी लोगों को वैसे ही स्वीकार करना चाहिए, जैसे कि वे हैं। अच्छाई की तरफ ध्यान देना चाहिए, न कि बुराई की तरफ।

हर व्यक्ति अपनी अच्छाई को बढ़ाने का प्रयास करे। यह विश्वास रहे कि, मेरे साथ केवल अच्छा ही हो सकता है और फिर, विपरीत मूल्य एक दूसरे के पूरक हैं। तो, अगर आपको लगे कि आपका कुछ नुकसान हुआ है तो इस से अधिक फायदा आगे होनेवाला है। तो पहले तो इसे ठीक तरह समझ लो, और ऐसा ही इरादा रखो। दूसरी बात, यह जान लो कि पृथ्वी पर अच्छे लोग हैं, जो बहुत दयालु और सुहृदय हैं और आवश्यकता पड़ने पर लोग हमारी मदद करेंगे। आवश्यकता पड़ने पर यह दुनिया हमारी मदद करेंगे। बुरे व्यक्ति भी केवल ऊपरी रूप से बुरे हैं, उन व्यक्तियों के भीतर भी कुछ अच्छाई छुपी होती है। कोई भी व्यक्ति जो सौ प्रतिशत बुरा हो, ऐसा हो ही नहीं सकता है। तो हर व्यक्ति में कुछ अच्छाई होती है और उस अच्छाई को बढ़ाना हमारा काम है। हमारा जन्म इसी काम के लिए हुआ है। तो लोग अच्छे हैं।

दुनिया अच्छी है। और जब मुझे आवश्यकता होगी, तो वे मेरी कदद करेंगे। तो, जीवन में कोई असुरक्षा की भावना नहीं रहेगी। तीसरी बात, एक वैश्विक शक्ति है जो मेरे भीतर है, बाहर है और पूरे ब्रह्मांड में है। इस विश्व में जो कुछ भी हो रहा है, उसके लिए यही शक्ति जिम्मेदार है। समस्त सृष्टि इस शक्ति की वजह से ही है और वह शक्ति मेरी भी देखभाल करती है।

अच्छे कामों को खुल कर सराहें बुराई अपने आप कम होने लगेगी।दुनिया में अच्छाई और बुराई की बात करें, तो मुझे लगता है ज्यादातर लोगों की सूची में अच्छे लोग ही अधिक होंगे। बुरे लोग बहुत कम। जब हर किसी की सूची में अच्छे लोग अधिक हैं तो दुनिया में अच्छाई भी अधिक होगी। निश्चित रूप से, अच्छाई अधिक है। इस दुनिया में अच्छे लोगों की कोई कमी नहीं है।

मुट्ठी भर लोगों की बुराई की वजह से उठती चीखें लाखों लोगों की अच्छाई की आवाज को दबा देती हैं। आज हम बुरी खबरों में इतना उलझे रहते हैं कि हमारा ध्यान बुराई से हट ही नहीं पाता। चंद लोगों की बुराई को ही हमें बार-बार दिखाया जाता है। उस पर खूब चर्चाएं की जाती हैं और इसी वजह से पूरे माहौल में ही बुराई घुल सी गई है।

संपूर्ण ब्रह्मांड में हम जिस चीज पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिस चीज के बारे में ज्यादा सोचते हैं, जिसकी ज्यादा चर्चा करते हैं उसमें आश्चर्यजनक रूप से विस्तार होता जाता है। लगता है जैसे कोई व्यक्ति विशेष नहीं, पूरा का पूरा देश ही बुराई पर अपना ध्यान लगाए बैठा है। यह भी एक बड़ी वजह है कि हमें आए दिन और अधिक बुराई देखने को मिलती है।

अगर, अच्छाई अधिक है तो फिर बुराई के विस्तार को वह रोक क्यों नहीं पा रहा? क्या हम भी इसके जिम्मेदार हैं? जब कोई हमारे साथ गलत तरह से व्यवहार करता है, तो हम दस जगह इस बारे में बात करते हैं, लेकिन जब कोई हमारे साथ बहुत सलीके से पेश आता है तो इस बात को ज्यादा लोगों से नहीं बांटते। जब कोई सरकारी कर्मचारी हमारा काम करने में देर लगाता है तो हम सबसे इसका रोना रोते हैं, पर जब वही कर्मचारी ये काम फौरन कर देता है तो हम इसकी चर्चा कहीं नहीं करते। जब हमें हमारे कार्यस्थल में कोई कमी दिखती है तो हम उस पर बातें तो कर लेते हैं, पर दिल खोलकर उसकी तमाम अच्छाइयों के बारे में बात नहीं करते। ये बुराई को बढ़ाना ही हैं।

शायद बरसों से ग्रहण की जा रही नकारात्मकता की वजह से हम इस बात के आदी हो गए है कि स्वाभाविक रूप से अच्छे होने के बावजूद हम बुराई की तरफ आकर्षित होते हैं और भले उसकी निंदा के इरादे से करते हो, लेकिन उसका प्रचार करते फिरते हैं। हमें इस आदत को बदलना चाहिए। सबकी नहीं, पर अपनी जिम्मेदारी लेनी चाहिए। अपनी इच्छा से हमें अच्छाई को बढ़ावा देना चाहिए। तब बुराई अपने आप कम होने लगेगी।

मंत्र-तंत्र

शब्दों के कंपन न केवल विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं, वरन् वह कंपन संवहन की शक्ति भी रखते हैं। मनुष्य के शरीर में कुछ ऐसी ही चक्र व ग्रंथियां, आदि होती हैं, जो शब्दों की ध्वनियों को अपने-अपने ढंग से प्रभावित और प्रसारित करती हैं। शब्द व ध्वनियों का हमारे जीवन से गहरा संबंध है, भारतीय ऋषियों ने इस संदर्भ में जितना गहन अध्ययन किया, शायद संसार में और किसी ने नहीं किया हो। इसलिए भारतीय मनीषियों ने शब्द को ब्रह्म कहा है- अक्षर ब्रह्म- अक्षरं परमं ब्रह्म। ब्रह्म सर्वव्यापी तेजस् सत्ता का नाम है, जिसकी शक्ति का कोई पारावार नहीं। साधारणत: ये शब्द एवं ध्वनियां हर व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। बच्चे शेर की दहाड़, हाथी की चिंघाड़ से घबरा जाते हैं, जबकि उन्हें पता नहीं होता कि शेर हिंसक जीव है। उसी तरह कोयल की कू-कू से प्रसन्नता और कौए की कांव कांव से कर्कशता का स्वत: भान होता है। यह ध्वनियों का ही प्रभाव है। वैज्ञानिकों का मत है कि शब्दों के कंपन न केवल विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं, वरन् वह कंपन संवहन की शक्ति भी रखते हैं। मनुष्य के शरीर में कुछ ऐसी ही चक्र व ग्रंथियां, आदि होती हैं, जो शब्दों की ध्वनियों को अपने-अपने ढंग से प्रभावित और प्रसारित करती हैं। अब तक इस पर अनेक गंभीर खोजें हुई और मंत्र विज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा की स्थापना हुई है।

रुद्रयामल नामक ग्रंथ में मंत्र को परिभाषित करते हुए कहा है, जिसका मनन करने से संसार का यथार्थ स्वरूप विदित हो, भव-बंधनों से मुक्ति मिले, जो सफलता के मार्ग पर अग्रसर करे उसे मंत्र कहते हैं।

मंत्र शक्ति के प्रयोग- मंत्र शक्ति एक विशिष्ट प्रयोग है। इसमें असामान्य प्रभाव उत्पन्न करने के लिए मंत्र जप करने वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम आंतरिक शुद्धि करनी पड़ती है। परिष्कृत अंत:करण में ही मंत्र शक्ति का प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। भाव, संवेदना, श्रद्धा-संवेग का जितना उच्चस्तरीय समावेश मंत्र साधना में होता है, उतना ही उसका अच्छा परिणाम सामने आता है। जिस आधार पर मंत्र जप द्वारा शक्तियां हासिल की जा सकती है, उस आत्मिक धरातल को भी सुदृढ़, विकसित और पवित्र बनाया जाना आवश्यक है। इसके अभाव में मंत्र विद्या का कोई औचित्य नहीं हो सकता। अनुसंधानों एवं परीक्षणों के माध्यम से वैज्ञानिकों ने ध्वनि तरंगों से निकलने वाली विशेष शक्ति की खोज कर चिकित्सा उपचार से लेकर अन्य कई महत्वपूर्ण कार्यों के लिए इसका इस्तेमाल किया है। मंत्र जप के तहत भी ध्वनि तरंगों के माध्यम से कई प्रकार के लाभ उठाए जा सकते हैं।

कौन सा मंत्र जपें- प्रश्न उठता है, लाभ के लिए कौन से मंत्र का जप किया जाए, क्योंकि धर्म ग्रंथों में सैकड़ों प्रकार के मंत्रों का उल्लेख मिलता है। इसके जवाब में मनीषियों का मत है कि चिकित्सकीय ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक लाभ के लिए गायत्री मंत्र जप ही सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि मानवीय काया में संजीवनी शक्ति, प्राण शक्ति के गड़बड़ होने पर शारीरिक एवं मानसिक संतुलन गड़बड़ा जाता है और अनेकानेक प्रकार की व्याधियां धर दबोचती हैं। गायत्री मंत्र सूर्य का मंत्र है, जिसका प्राण यानी जीवनी शक्ति से सीधा संबंध है। वेदों में सूर्य को संसार की आत्मा कहा है। सूर्य पृथ्वी पर जीवन के प्रकटीकरण का प्रतीक है।

बीमारियों का इलाज- संसार का संपूर्ण भौतिक विकास सूर्य की सत्ता पर भी निर्भर है। गायत्री मंत्र में २४ शब्द संकलन कुछ इस प्रकार हैं कि उसके जप से शरीर की अनेक ग्रंथियों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और जपकर्ता प्राणवान हो जाता

है। जिससे कई प्रकार की बीमारियों का इलाज स्वत: हो जाता है। गायत्री मंत्र के चिकित्सकीय लाभ के संदर्भ में हास्पिटल एंड रिसर्च सेंटर, जबलपुर (म.प्र.) में हृदय रोग विभाग के विशेषज्ञ डा. आर. एस. शर्मा ने विशेष शोध अनुसंधान किए हैं। डा. शर्मा ने अध्ययन के लिए हृदय रोग और उससे संबंधित उच्च रक्तचाप संबंधी रोगियों को चुना और उसमें औषधि सेवन के साथ गायत्री मंत्र जप को भी अनिवार्य बना दिया। कई रोगियों ने दवा और मंत्र जप दोनों को साथ-साथ अपनाया उनके तथा मात्र दवा पर आश्रित रोगियों के स्वास्थ्य में भारी फर्क था। डा. शर्मा का मानना है कि यह एक तरंग प्रधान चिकित्सा है। उत्पन्न तरंगे रोगग्रस्त अंग की अव्यवस्थित तरंगों को पुनर्व्यवस्थित करती हैं। इस प्रकार कुछ काल तक इस मंत्र की उपासना के बाद जब बीमार अंग अपना स्वाभाविक स्पंदन प्राप्त कर लेता है, तो वह स्वस्थ हो जाता है और व्यक्ति निरोग। गायत्री मंत्र के आध्यात्मिक लाभ के संबंध में अथर्ववेद (१९.७१.१) कहता है, गायत्री मंत्र जप से दीर्घायु (लंबी आयु), प्राणवान (साहस), प्रजावान (सहयोगी), पशु संपत्ति (धन-दौलत), कीर्तिवान (यश), धन-संपदा और ब्रह्मवर्चस (आध्यात्मिक शक्ति) की प्राप्ति होती है। इस संदर्भ में गायत्री के विशेषज्ञ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य कहते हैं, महामंत्र जितने जग माहीं, कोई गायत्री सम नाहीं। अत: इतना तो निश्चित है कि गायत्री मंत्र का जप सर्वाधिक लाभदायक है।

ध्यानयोग, राजयोग, हठयोग, कुंडलिनी योग, अष्टांग योग जैसे योग के अनेक प्रकार हैं। इसमें मंत्रयोग भी शामिल है। मंत्र यानी विशिष्ट पद्धति से पिरोए गए अक्षर और उनका विशिष्ट पद्धति से उच्चारण। शक्ति, शुद्धि, आसव, पंचांग सेवन, आचार, धारणा, दिव्यदेशक सेवन, प्राणक्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन बलि, योग, जाप, ध्यान और समाधि ये मंत्रयोग के सोलह अंग हैं। आधुनिक जीवन में मंत्र का स्थान यंत्र ने ले लिया है। फिर भी तंत्र और मंत्र का संबंध कायम है। मंत्रयोग में प्रत्यक्ष अक्षरों अथवा शब्दों या उनके उच्चारण से संबंध आता है। इसमें शब्दध्वनि की शक्ति का उपयोग किया जाता है। सुस्पष्ट और सद्हेतु से उच्चारित मंत्र गुणकारी होते हैं, जबकि उसके विपरीत करने से मंत्र घातक होते हैं। मंत्र श्रद्धा और अनुभव का विषय है।

मनुष्य जीवन अत्यंत दुर्लभ है, जिसके लिए देवता भी तरसते है। ऐसे दुर्लभ जीवन का एकमेव लक्ष्य होना चाहिए ओमकार में विलीन हो जाना। यह तभी संभव है जब हम सात्विक पथ पर अग्रसर हो। इसके लिए जरूरी है हम प्रेम, करूणा, क्षमा, शांति, दया, सहिष्णुता को ग्रहण करे। मनुष्य को शरीर परमार्थ के लिए, मन भगवत सुमिरन तथा बुद्धि आत्मज्ञान व भले बुरे में भेद करने के लिए मिले है।

देवी-देवताओं की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए इनका नाम स्मरण तथा मंत्र जाप जरूरी है। वैज्ञानिक दृष्टि से इश्वरीय विद्युत चुम्बकत्व किरणों को मंत्र उच्चारण से जोड़ा जा सकता है। कलियुग में मंत्र उच्चारण मात्र से भगवत कृपा प्राप्त कर भौतिक जीवन की सभी समस्याएं खत्म करके दिव्य जीवन प्राप्त किया जा सकता है। जीवन में ध्यान और प्रार्थना का बड़ा महत्व है। इससे व्यक्ति की एकाग्रता और चिंतन- क्षमता बढ़ती है। जो चिंताओं के हल में मददगार हो सकती है। पूजा-साधना मनुष्य को कर्त्तव्य, ज्ञान, धर्म, पुण्य और भक्ति के पथ पर चलने के लिए प्रेरित करते है।

परम पिता परमेश्वर का मोबाईल फोन मानव निर्मित मोबाईल से ज्यादा शक्तिशाली है, जो आपके मुखारविन्द से

निकली हुई मंत्र ध्वनि को पकड़ लेता है। किसी भी धार्मिक विधि में देहशुद्धि के लिए मंत्रोच्चारण करने के नियम ग्रंथों में मिलते हैं। पर बुद्धवादी लोग उसकी मजाक उड़ाकर कहते हैं कि केवल शब्दों के उच्चारण से क्या होगा ? लेकिन मंत्रों के अक्षर साधारण अक्षर न होकर विशेष शक्ति उत्पन्न करनेवाले अक्षरों का समूह होता है, उनके उच्चारण से सूक्ष्म ध्वनि तरंग मनुष्य के मन पर सुपरिणाम करते हैं। मन भी स्थूल शरीर का एक अंग है।

मन प्रसन्न रहा तो शरीर प्रसन्न रहता है। मन दु:खी रहा तो शरीर पर उसका विपरीत असर होता है। मन शुद्ध होने लगा तो शरीर भी शुद्ध होता है। यह लाभ मंत्रोच्चारण से देहशुद्धि अवश्य होती है।

मंत्र-शक्ति की एक वैज्ञानिकता है। मंत्र-शक्ति अंधविश्वास पर आधारित परम्परा नहीं है, वरन् शब्द विज्ञान पर आधारित है। प्राचीन काल से भारतवर्ष में मंत्र, यंत्र एवं ज्योतिष पर काफी अनुसंधान होता आया है। मंत्र का मनोविज्ञान के साथ और यंत्र का सूक्ष्म भौतिक विज्ञान के साथ घनिष्ठ संबंध है। मंत्र का शाब्दिक अर्थ है हृदय से मनन करना। मंत्र-शक्ति वह शब्द है, जिसके उच्चारण मात्र से ही सजीव तथा निर्जीव, दोनों पर इसका प्रभाव पड़ने लगता है। साथ ही जिस कार्य की सिद्धि के लिए मंत्रोच्चार किया जाता है, वह धीरे-धीरे होने लगता है।

मंत्र-शक्ति का उपयोग किसी विशेष प्रकार के रोगों को मिटाने और भौतिक सुख-शांति, सुविधा के लिए भी किया जाता है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही मंत्र-शास्त्र एक विकसित शास्त्र रहा है। उपनिषद, मंत्रावली, वेद आदि जैसे सारे ग्रंथ मंत्रमय हैं।

मंत्र-शक्ति का पठन-पाठन, शुद्ध उच्चारण और विशेष लय तथा आरोह-अवरोह के साथ विशेष विश्वास के साथ किया जाता है। मंत्र-शक्ति ध्वनि प्रधान है। ध्वनि से वायुमंडल में कंपन पैदा होती है। यह कंपन वायु के अति सूक्ष्म भाग ईथर में होते हैं। कंपन का भी एक विशेष ही गुणरूप होता है। जितना अधिक कंपन होग, उतनी ही अधिक आवृत्तियों और प्रत्येक आवृत्ति के एक-एक और विभिन्न प्रकार के देवता होते हैं। ईथर में एक सेकेण्ड में २३०५१६३००० से ९२१३६९३९५७ तक कंपन उत्पन्न होती है। हालांकि हमारे कान ३२७७० से अधिक कंपन नहीं सुन सकते। यह कंपन अंत में एक एक्स किरण में बदल जाता है। कंपन अंतिम चरण तक नष्ट नहीं होती।

हर मंत्र में अनेक शब्द तथा स्वर होते है। इन शब्दों के कंपन अपने प्रभाव वस्तु विशेष पर डालते हैं। लय-स्वर से किया गया मंत्रोच्चार जिस कार्य की सिद्धि के लिए किया जाता है, वह कंपन पैदा करता है और अभिष्ट देवता उस कार्य को पूर्ण करते हैं। सभी देवता अपनी शक्तियों के साथ मौजूद रहते है। मंत्र के जिस अक्षर में कई अधिष्ठता देवता का समावेश हो वह बीजाक्षर कहलाता है। बीजाक्षर का जप करने से कई प्रकार की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। बीजाक्षर जप का नक्षत्रों से भी गहरा संबंध है। मंत्र के सभी अक्षर प्राणवायु तथा नाड़ी तंत्र को भी प्रभावित करते हैं, जो प्रणवाक्षर कहलाते हैं। मंत्रों में शब्द एवं ध्वनि समूह निहित होता है, जो विचार-तरंगों का उद्भव करने में समर्थ होता है। मंत्रों का विधिवत, एक ही शेली में उच्चारण करने से वातावरण में विशेष शांति व आनंद का अनुभव होता है।

मंत्र शक्ति का प्रभाव- वेद मंत्र, पौराणिक मंत्र, शाबर मंत्र, उपनिषदों के मंत्र आदि बहुत से मंत्र जीवन में आपने पढ़े होंगे। उनका प्रयोग भी किया होगा परन्तु ये नीचे दिये जा रहे मंत्र कुछ ऐसे चमत्कारिक मंत्र है जिनका चलते फिरते,

उठते बैठते किसी भी अवस्था में किसी भी स्थान पर उच्चारण किया जा सकता है।

मंत्रों का भी अपना विज्ञान है, कोरी कल्पना नहीं - मंत्रों के प्रयोगों और उनके प्रभावों के अनगिनत उदाहरण हमारे ग्रन्थों में मौजूद हैं। देखने-पढ़ने में मंत्रों के शब्दों का कोई खास अर्थ नहीं मालूम पड़ता। पर मंत्र हमारी सोई शक्ति को जगाने और संकल्प को वातावरण में विसरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मंत्रों का अति सूक्ष्म पर बड़ा प्रभाव होता है। मंत्र विज्ञान एक अनूठा विज्ञान है जिसका उचित लाभ मिलना इसके ज्ञाता, गुरु और उपयुक्त साधक पर निर्भर करता है और तभी मंत्र की महिमा सामने आती है।

मंत्रों के सही उच्चारण, शब्दों के उचित संयोजन, साधक की श्रद्धा, जप, एकाग्रता, सदाचार आदि का मंत्र जाप के फलदायी प्रभावों को प्रभावित करते हैं। यदि साधक की साधना में किसी प्रकार की कमी है तो अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। मन्त्रोच्चार में शब्दों का सही संयोजन और अक्षरों तथा मात्राओं का सही उच्चार होना चाहिएं संस्कृत में ह्रस्व और दीर्घ की गलती भी महत्व रखती है। साधक को पूर्ण श्रद्धा, संयम और एकाग्रता के साथ अपना कार्य करना चाहिए अथवा मन्त्र का प्रभाव बदल जाएगा। मंत्रों का प्रभाव ब्रह्माण्डव्यापी होता है। रामचरितमानस के रचयिता तुलसीदास के अनुसार- मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।

मंत्रों के प्रभाव को लेकर देश-विदेश में निरन्तर शोध भी होते रहे हैं। डा. लिवर लिजेरिया एवं अन्य का मानना है कि हीं, ओम्, हरि आदि के उच्चारण का शरीर के विभिन्न भागों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। डॉ. लिजेरिया ने अपने १७ साल के शोध में पाया कि हरि के साथ ओम् को जोड़कर उच्चारण किया जाए तो इसका सकारात्मक प्रभाव शरीर की पांचों ज्ञानेन्द्रियों पर पड़ता है। यहां माना कि नि:संतान दम्पति को संतान की प्राप्ति हो जाती है। यह आज के शोध के परिणाम हैं पर हमारे ऋषि-मुनियों ने हजारों साल पहले इस बात को जानकर शास्त्रों में लिख दिया था। उनके द्वारा मंत्रों के प्रभाव को लेकर की गयी खोज में उन्होंने स्थूल शरीर को ही नहीं अपितु समूचे विश्व को आधार बनाया था।

निराकार और साकार को लेकर भी विभिन्न धर्मानुयायियों में चर्चा होती रही है। यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि आकृति और शब्द का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। किसी सम्बोधन या शब्द के साथ आकृति का सम्बन्ध होना अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी होता है। जैसे हाथी शब्द दो अक्षरों और दो मात्राओं के मेल से बना है, इसके साथ उस शाकाहारी पशु की विशालकाय आकृति का सम्बन्ध है जो जंगल में रहता है और बुद्धिमान होता है। हाथी शब्द के उच्चारण के साथ ही उसकी छवि मानसपटल पर आ जाती है।

ऋषि-मुनियों का मानना था कि हमारा भौतिक अजमय है, इसके भीतर प्राणमय, मनोमन, विज्ञानमय और आनन्दमय चार शरीर और भी हैं। यदि शरीर से प्राणमय निकल जाएं तो अजमय शरीर निर्जीव हो जाएगा। प्राणमय शरीर का संचालन भी मनोमय शरीर करता है। मन के संकल्प-विकल्प के आधार पर ही प्राणमय शरीर क्रियाशील रहता है और मनोमय शरीर के भीतर विज्ञानमय शरीर होता है। पांचों ज्ञानेन्द्रियां और बुद्धि को विज्ञानमय शरीर कहते हैं। बुद्धि के द्वारा किये गये निर्णय के अनुसार शारीरिक अंग सक्रिय होकर सम्बन्धित कार्य को पूरा करते हैं। इस विज्ञानमय शरीर से भी अधिक गहराई में आनन्दमय शरीर होता है। हम जो भी प्रयास करते हैं वह आनन्द के लिए करते हैं, परमात्मा

आनन्दस्वरूप होता है और इस कोष के निकट स्थित कोष को आनन्दमय कोष कहते हैं। इस प्रकार हम जिस आनंद का अनुभव करते हैं वह परमात्मा का आनन्द हैं। वह आनन्दस्वरूप है और मन्त्र उस परमात्मा तक के पांचों कोषों को प्रभावित करता है। ईश्वर नाम के जप का इन कोषों, समस्त नाड़ियों और सातों केन्द्रों में सात्विक प्रभाव पड़ता है।

जिस देश में, जिस वेश में, जिस धाम में रहो, राधा रमण, राधा रमण, राधा रमण कहो।
चाहे मथुरा में, चाहे वृंदावन में, गोकुल में रहो, राधा रमण, राधा रमण, राधा रमण कहो।
चाहे हरिद्वार में, चाहे ऋषिकेष में, प्रयाग में रहो, राधा रमण, राधा रमण, राधा रमण कहो।
चाहे अनुराग में, चाहे विराग में, वीतराग में रहो, राधा रमण, राधा रमण, राधा रमण कहो।

मंत्र में अमोघ शक्ति है। तप का बड़ा प्रभाव है। कलियुगी पुरुष इन बातों का कभी विश्वास कर ही नहीं सकते। पूर्व के युगों में मन्त्रसजीव तथा अमोघ होते थे। महर्षि वैशम्पायन के कहने से उनके शिष्य याज्ञवल्क्य ने जो उनसे वेदमन्त्र पढ़े थे, वे सब उगल दिये। वे सब तेजस्वी मन्त्र सजीव होकर घूमने लगे। तब गुरु की आज्ञा से तीतर बनकर उनके शिष्यों ने उन्हें ग्रहण किया। जिससे तैत्तरेयी शाखा प्रसिद्ध हुई। अब इन बातों पर कौन विश्वास करेगा? ऋषियों ने महाराज को एक पुत्र प्राप्ति के लिये यज्ञ कराया था। एक कोरे घड़े में मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके जल रखा था कि प्रात:काल रानी को इस मन्त्रपूत जल को पिलायेंगे, इसे पीते ही उसके गर्भ रह जायगा। संयोग की बात राजा को रात्रि में प्यास लगी। बिना जाने उस मन्त्रपूत सम्पूर्ण जल को राजा पी गये। अब क्या हो सकता था। मन्त्रों की शक्ति तो व्यर्थ जानेवाली नहीं थी। राजा को ही गर्भ धारण करना पड़ा और उन्हीं की कुक्षि को फाड़कर जगत् प्रसिद्ध महाराज मान्धाता हुए। विश्वामित्रजी ने अपने तप के प्रभाव से नये स्वर्ग की ही रचना कर दी। तपस्वी सदाचारी वेदज्ञ ऋषि मुनि सब कुछ कर सकते हैं। उनके लिये भगवतकृपा से कोई बात असम्भव नहीं।

मन्त्र प्रयोग से दूसरों को प्राणान्त करना इसे अभिचार कहते हैं। अभिचार सदा अपवित्र और असावधान पुरुषों पर चलता है। जो पवित्र हैं, भगवद्भक्त हैं उन पर जादू टौंना अभिचार मारण, मोहन, उच्चाटना आदि नहीं चलते। जैसे धनुष से छूटा बाण व्यर्थ नहीं जाता, वैसे ही अभिचार किया गया है, उस पर निरर्थक हुआ तो उलटा करने वाले पर पड़ता है।

गायत्री के समान कोई तीर्थ नही। गायत्री से बढ़कर जपने योग्य मन्त्र न कोई हुआ है और न आगे होगा। गायत्री वेदों की जननी है। पापों का नाश करने वाली है। गायत्री से बढ़कर न कोई तप, ध्यान और यज्ञ है। इससे बढ़कर न कोई मन्त्र स्वर्ग मे या पृथ्वी पर है।

गायत्री मन्त्र द्वारा सारे विश्व को उत्पन्न करने वाले परमात्मा का जो उत्तम तेज है उसका ध्यान करने से बुद्धि की मलिनता दूर हो जाती है और धर्माचरण मे श्रद्धा और योग्यता उत्पन्न होती है।

जैसे हमारे विचार होते हैं वैसा ही व्यक्तित्व बनता है - एक कॉलेज में एक जैन मुनि के आने को छात्र उत्सुकता से देख रहे थे। लेकिन उससे ज्यादा वहां सवाल टंगे थे कि साधु का यहां क्या काम है? तभी एक छात्र ने आकर पूछा कि मैंने किस कॉलेज में पढ़ाई की है? मेरे जवाब पर कि मैंने स्कूल की भी ज्यादा पढ़ाई नहीं की है, वहां मौजूद सारे छात्र खिलखिला पड़े। एक ने उपहास की मुद्रा में कहा, नो नॉलेज विदाउट कॉलेज। मैंने भी हंसते हुए कहा कि इसीलिए तो

आज कॉलेज आया हूं। मेरा विषय था- मंत्र विज्ञान। मैंने यह बताने की कोशिश की कि हर अक्षर अपने आप में मंत्र होता है। अंत में फिर एक छात्र ने उपहास में पूछा, अगर हर अक्षर अपने में मंत्र है तो हम जीओडी का ही जाप क्यों करें, डीओजी का क्यों नहीं? दोनों में बस अक्षर क्रम ही तो आगे पीछे है। प्रश्न में जिज्ञासा का भाव नहीं था। तर्क जिज्ञासा को शांत करने के लिए हो तो उचित है। जब तर्क केवल तर्क के लिए हो तो वह निरर्थक हो जाता है। मैंने सहजता से कहा- सवाल बहुत अच्छा है। अगर आप डीओजी का जाप कर सकते हैं, इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी। लेकिन मंत्र विज्ञान का एक नियम यह भी है कि जो जिसका जाप करता है, वैसा ही हो जाता है।

जैसे हमारे विचार होते हैं, हमारा व्यक्तित्व भी वैसा ही हो जाता है। बाइबल भी यही कहती है। जब हम किसी भी भगवान को याद करते हैं तो हमारे भीतर उनका पूरा चित्र उभर आता है। राम मर्यादा के साथ, कृष्ण न्याय के साथ तो महावीर और बुद्ध अपनी अहिंसा की ताकत लिए मन-प्राण में खड़े हो जाते हैं। सवाल यह नहीं है कि मंत्र से विघ्न बाधा खत्म हो हैं या नहीं, सवाल यह है कि तब मन के अंदर विश्वास और पवित्रता का बोध होता है कि नहीं?

अक्षर जब नाम में समाहित होता है तो वह एक प्रतीक बन जाता है। नाम शब्दात्मक होता है जब कि शब्द अक्षरात्मक। अक्षर का संबंध ध्वनि से होता है। ध्वनि का प्रभाव हमारे तन, मन और चेतन तक जाता है। अक्षर ध्वनि पर सवार होकर ही अपनी यात्रा तय करता है। ऐसा कोई अक्षर नहीं है जो अपने में मंत्र न हो। बस उचित संयोजन की जरूरत है। इससे इंसान में गजब की शक्ति भी आ जाती है। शब्दों की सही संयोजना से अर्थपूर्ण भाषा बनती है। ध्वनियों की सही संयोजना से अर्थपूर्ण अक्षर बनता है। वे उचित संयोजना-पूर्ण-अक्षर ही मंत्र बनते हैं। राम, शिव, महावीर आदि अब नाम भर नहीं हैं, वे मंत्र का रूप धारण कर चुके हैं। सवाल यह है कि हम उस नाम या मंत्र को किस रूप में जीवन में शामिल करते हैं।

मानसिक उन्नति से असाधारण बुद्धिमत्ता आ सकती है। सृष्टि का रहस्य भेद जानने की प्रवेष्टा से ही अध्यात्मवाद का अविष्कार हुआ। मनुष्य यह जानने की कोशिश करने लगा कि प्रकृति की विभीषिका तथा सुंदरता का क्या कारण है। अपने चारों ओर फैले नदी-नाले, पर्वत बिजली की कड़कड़ाहट तथा भीषण भयानक जानवरों की हुंकार को देख-सुनकर उनके बारे में छान-बीन करने लगे। इस भेद के उत्तर प्राप्त करने की प्रचेष्टा को तंत्र कहते हैं, जिसके कारण इन पद्धतियों में हम थोड़ी बहुत विभिन्नता पाते हैं। जड़ता से छुटकारा पाना मनुष्य की सर्वाधिक प्रगति का आधार हैं। तंत्र के द्वारा जड़ता से त्राण पाना है। अत: तंत्र की साधना सर्वोपरि साधना है। उसके निर्माता आदि गुरु सदाशिव थे। उन्होंने स्थूल तथा सूक्ष्म साधना, दोनों का संग्रह कर तंत्र की महत्ता को सिद्ध कर दिया। योग की सूक्ष्म साधना कहते हैं। इस साधना के द्वारा मनुष्य का चरम विकास हो सकता है। जड़ की उपेक्षा कर पुरुष की साधना करने से, जड़ स्वयं ही साधक की खुशामद करेगा, दुनिया में अलौकिक नाम की कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य के अंदर सारी शक्तियां छुपी हुई हैं, जिसकी झलक कभी-कभी उसे आ जाती हैं। परिमार्जित भाषा में उसे ही बुद्धि और बोधि कहते हैं। इनका विकास होने पर मनुष्य में असाधारण शक्ति आ जाती है। अत: तंत्र से असाधारण शक्ति आती है। परंतु तंत्र की साधना द्वारा बंधन हट जाने के फलस्वरूप, मन स्थूल विषय से भी हट जाता है। यही है मनुष्य का विकास। विकास की ओर उन्मुख होने पर ही शारीरिक तथा आध्यात्मिक उन्नति संभव है। मानसिक प्रगति के कारण मनुष्य में असाधारण बुद्धि आ जाती है तथा मानसिक

प्रगति के कारण वह समाज में सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझा जाता है।

मन्त्र यानि विशिष्ट पद्धति से पिरोये गये अक्षर और उनका विशिष्ठ पद्धति से उच्चारण। शक्ति शुद्धि आसव, पंचांग, सेवन, आचार, धारणा, दिव्य देशक सेवन, प्राण क्रिया, मुद्रा तर्पण, हवन, बलि, योग, जाप, ध्यान और समाधि ये मन्त्र के सोलह अंग है। आधुनिक जीवन से मन्त्र का स्थान यन्त्र ने ले लिया है। फिर भी तन्त्र और मन्त्र का सम्बन्ध स्थिर है। मन्त्र योग मे प्रत्यक्ष अक्षरों अथवा शब्दों या उनके उच्चारण से सम्बन्ध आता है। इससे शब्द ध्वनि की शक्ति का उपयोग किया जाता है। सुस्पष्ट और सदहेतु से उच्चारित मन्त्र गुणकारी होते है जबकि उसके विपरीत करने से मन्त्र घातक हो सकते है। मन्त्र श्रद्धा और अनुभव का विषय है।

विभिन्न सिद्ध मन्त्र जिनके जाप से साधकों को अनेक लाभ होते है।

१) चतुराक्षी मन्त्र :- राधाकृष्ण, वासुदेव, दत्तात्रय इत्यादि। २) पंचाक्षरी मन्त्र :- नम: शिवाय :- यह एक मात्र पंचाक्षरी मन्त्र मानते है। इसमें न पृथ्वी तत्व, म:- जलतत्व, शि:- अग्नितत्व, वा:- वायु तत्व, य:- आकाश तत्व है। ३) अष्ठाक्षरी मन्त्र :- १) वैदिक अष्टाक्षरी मन्त्र :- ॐ भवति भिक्षाम् देहि, २) पारमार्थिक अष्टाक्षरी मन्त्र :- ॐ नमो नारायणाय। ॐ नमो वासुदेवाय। कृष्ण कृष्ण हरे हरे। श्री कृष्ण शरणां मम्, ३) वादशांक्षरी मन्त्र :- ॐ नमो भगवते वासुदेवाये।

मन्त्र एक ऐसा शब्द है जिसका निर्माण विशिष्ट अक्षरों के संयोजन से होता है। जिसके मनन् से मनुष्य संकट से, दु:ख से मुक्त होता है उसे मन्त्र कहते है। ऐसे अनेक मन्त्र विभिन्न धर्मों में होते है। साधक इन मन्त्रों का जाप श्रद्धापूर्वक करे, तो उसे निश्चित ही फल मिलता है। विश्व कल्याण, संकट नाश, सन्तान प्राप्ति आदि के लिये कई उपयोगी मन्त्र है, लेकिन इन मन्त्रों का सही प्रयोग योग्य साधक ही कर सकता है। मन्त्र जाप करनेवाले का उद्देश्य हितकारी होना चाहिये। साथ ही निर्धारित स्थान पर, निर्धारित समय में, विधिपूर्वक मन्त्र जाप करना आवश्यक है। ऐसा करने पर मन्त्र जाप का फल अवश्य मिलता है।

मन्त्रो के शास्त्र के अनुसार मन्त्रों के मुख्य तीन प्रकार है। वीज मन्त्र :- जिस में किसी बीजाक्षर का प्रयोग होता है जैसे की कली, ढं आदि। मूल मन्त्र :- जो सिद्ध कर लिया जाता है अथवा गुरु से विधिपूर्वक लिया जाता है। इसमे ॐ का प्रयोग किया जाता है जैसे ॐ नमो नारायणा, ॐ नमों भगवते वासुदेवाय। माला मन्त्र :- यह मन्त्र मूलमन्त्र, दोनों तरह का हो सकता है। लेकिन आमतौर पर यह नाम मन्त्र भी होता है। इसमे केवल नाम का प्रयोग किया जाता है जैसे श्रीराम, श्री हरि, जगदम्बा आदि। इसके अलावा सिद्ध मन्त्र, साध्य मन्त्र, सुसिद्धमन्त्र और शत्रु उच्चाटन मन्त्र ये चार प्रकार भी मंत्रशास्त्र मे बताये गये है।

मन्त्र ऐसा साधन है कि हमारे भीतर सोयी हुई चेतना को वह जगा देता है। हमारी महानता को विकसित कर देता है। सदगुरु से प्राप्त मन्त्र का ठीक प्रकार से विधि एवम् अर्थ सहित प्रेमपूर्ण हृदय से जप किया जाये तो क्या सबकुछ हो सकता है। जैसे टेलिफोन के डायल पर यदि नम्बर ठीक से घुमाया जाय तो विश्व के किसी भी कोने मे स्थित व्यक्ति से बात हो सकती है वैसे ही मन्त्र के ठीक ढंग से जाप करने से भी सिद्धि मिल सकती है। जब टेलीफोन के इतने छोटे से डायल का उपयोग कर हम विश्व से किसी भी व्यक्ति के साथ सम्बन्ध सम्पर्क कर सकते है तो

अन्त:करण का डायल को ठीक से उपयोग करके विश्वेश्वर के साथ सम्बन्ध जोडले। विश्व का टेलिफोन कभी खाली न मिले लेकिन विश्वेश्वर का टेलिफोन कभी भी मिल सकता है वह सर्वत्र और सदा मौजूद है। जेसे नम्बर घुमाने में जरा सा हेर फेर हो जाये तो गलत नम्बर लग जायेगा। घंटी बजानी कहां और बज कही और जाती है कहीं पर। इसी प्रकार मन्त्र में भी कही हेर फेर हो गया तो परिणाम ठीक से नहीं निकलेगा।

आजकल धर्म के इतने उपाय होते हुये भी मानव के जीवन में देखा जाय तो वह शान्ति नहीं, वह संगीत नहीं, वह आनन्द नहीं जो होना चाहिये। क्योंकि विश्वेश्वर में सम्पर्क करने के लिये ठीक से नम्बर जोडना नहीं आता। मन्त्र का अर्थ नहीं समझते। अनुष्ठान की विधि नहीं जानते, या जानते हुये भी लापरवाही करते है तो मन्त्र सिद्ध नहीं होता। मन्त्र जपने की विधि, मन्त्र के अक्षर, मन्त्र का अर्थ, मन्त्रानुष्ठान की विधि हम जान ले तो हमारी योग्यता खिल उठती है। हम विश्वेश्वर के साथ एक हो सकते है और हम स्वयं विश्वेश्वर है ऐसा साक्षात्कार कर सकते है।

तंत्र- सृष्टिसे पहले जब कुछ नहीं था तब एक ध्वनिमात्र वहां होती थी और वह ध्वनि अथवा नाद था- ओउम्। किसी शब्द विशेष का उच्चारण अर्थात मंत्र मंत्र में शब्द था, स्वर था अर्थात मंत्र शब्द और स्वर पर आधारित था। किसी शब्द का उच्चारण एक निश्चित लय में करने पर विशिष्ट ध्वनि कम्पन वातावरण में उत्पन्न होते हैं। यह कम्पन धीरे-धीरे शरीर की विभिन्न कोशिकाओं पर प्रभाव डालते हैं। विशिष्ट रूप से उच्चारण किए जाने वाले स्वर की योजनाबद्ध श्रृंखला ही मंत्र स्वरूप मुंह से उच्चारित होने वाली ध्वनि कोई न कोई प्रभाव अवश्य उत्पन्न करती है। इसी आधार को मानकर ध्वनि का वर्गीकरण दो रूपों में किया गया है जिन्हें वर्णमाला में स्वर और व्यंजन के नाम से जाना जाता है। मंत्र ध्वनि अथवा नाद पर आधारित है। नाद शब्दों और स्वरों से उत्पन्न होता है। यदि कोई गायक मंत्र का जानकार है, तो वह ऐसा स्वर उत्पन्न कर सकता है, जो प्रभावशाली हो। इसको इस प्रकार देखा जा सकता है- यदि स्वर की आवृत्ति किसी कांच, बर्फ अथवा पत्थर आदि की स्वाभाविक आवृत्ति के बराबर कर ली जाए तो अनुनाद के कारण वस्तु का कम्पन आयाम बहुत अधिक हो जाएगा और वह वस्तु खंडित हो जाएगी। यही कारण है कि सैनिकों की एक ताल-लय में उठने वाले कदमों की चाप उस समय बदल दी जाती है अथवा बेताल करवा दी जाती है जब वह बड़े समूह रूप में किसी पुल पर से जा रहे होते हैं। क्योंकि पुल पर एक ताल में कदमों की आवृत्ति पुल की स्वाभाविक आवृत्ति के बराबर होने से उसमें अनुनाद के कारण बहुत अधिक आयाम के कम्पन्न उत्पन्न होने लगते हैं, इससे पुल को क्षति हो सकती है। यह शब्द, स्वर व नाद का प्रभाव है। अत: मंत्र की कल्पना करिए वह किसी शक्तिशाली बम से भी अधिक प्रभावशाली हो सकता है। किसी भी शब्द की अनुप्रस्थ के साथ जब लयबद्धता हो जाती है तब वह प्रभावशाली हो जाता है। यही मंत्र का सिद्धांत है। इसलिए कोई मंत्र जप निरंतर एक लय-नाद आवृत्ति में किए जाने पर फलदायी सिद्ध होने लगता है। मंत्र के साथ-साथ उसका शुद्ध उच्चारण और लय-नाद आवृत्ति का अनुसरण करना आवश्यक है, तभी मंत्र प्रभावी सिद्ध होता है। मंत्र जप में उसका भाव-अर्थ महत्वपूर्ण नहीं होता। महत्वपूर्ण यह है कि उससे उचित कम्पन उत्पन्न हों जिससे कि शरीर तंत्र पर उचित आयामी प्रभाव संतुलित रहे।

तंत्र शास्त्र भारत की एक प्राचीन विद्या है। विश्वास है कि तंत्र ग्रंथ भगवान शिव के मुख से आविर्भूत हुए है। उनको पवित्र और प्रामाणिक माना गया है। भारतीय साहित्य में तंत्र की एक विशिष्ट स्थिति है। पर कुछ साधन इस शक्ति का

दुरुपयोग करने लग गए, जिसके कारण यह विद्या बदनाम हो गई जनसाधारण में इसके व्यापक प्रचार के न होने का एक कारण यह भी था कि तंत्रों के कुछ अंश समझने में इतने कठिन थे कि गुरु के बिना समझे नहीं जा सकते थे। अत: जनता का उनके प्रति अंधकार में रहना स्वाभाविक ही था। ज्ञान का अभाव ही शंकाओं का कारण बना। तंत्र शास्त्र वेदों के समय से हमारे धर्म का अभिन्न अंग रहा है। वैसे तो सभी साधनाओं में मंत्र, तंत्र एक-दूसरे से इतने मिले हुए हैं कि उनको अलग-अलग नहीं किया जा सकता, पर जिन साधनों में तंत्र की प्रधानता होती है, उन्हें हम तंत्र साधना मान लेते हैं। यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे की उक्ति के अनुसार हमारे शरीर की रचना भी उसी आधार पर हुई है जिस पर कि पूर्ण बह्माण्ड की। तांत्रिक साधना का मूल उद्देश्य सिद्धि से साक्षात्कार करना है। इसके लिए अंतर्मुखी होकर साधनाएं की जाती हैं। तांत्रिक साधना को साधारणतया वाम मार्ग कहा जाता है। कुछ साधकों का लक्ष्य केवल प्रेत सिद्धि होता है, श्मशान में जाकर मांस-मदिरा आदि पदार्थों के द्वारा प्रेतात्माओं को सिद्ध कर लेते हैं। ऐसे साधकों की अंतिम गति खराब होती है। वे प्रेतात्माएं उन साधकों को अपनी योनि में ले जाती हैं। श्मशान में साधना करने वाले का निडर होना आवश्यक है। जो निडर नहीं है वे दुस्साहस न करें। तांत्रिकों का यह अटूट विश्वास है, जब रात के समय सारा संसार सोता है तब केवल योगी जागते हैं।

या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी

तांत्रिक साधना के प्रकार- तांत्रिक साधना दो प्रकार की होती है- एक वाम मार्गी दूसरी दक्षिण मार्गी। वाम मार्गी साधना बेहद कठिन है। साधना में जब पात्रता का विचार किया जाता है, तब कहा जाता है गुरु भक्त हो जिसका मन चंचल न हो, वही तंत्र साधना का अधिकारी हो सकता है, जिसके हृदय में विश्वास नहीं है उसे मंत्र कभी सिद्ध नहीं हो सकते।

शांति, वक्ष्य, स्तम्भनानि, विद्वेषणोच्चाटने तथा। गोरणों तनिसति षट कर्माणि मणोषण:

शांति कर्म वशीकरण स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण इन छह प्रयोगों को तांत्रिक षट्कर्म कहते हैं। मारण मोहनं स्तम्भनं, विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण, आकर्षण, यक्षिणी साधना, रसायन क्रिया तंत्र के ये नौ प्रयोग हैं।

रोग कृत्वा गृहादीनां निराण शान्तिर किता।
विश्वं जानानां सर्वेषां निधयेत्व मुदीरिताम्
पूधृत्तरोध सर्वेषां स्तम्भं समुदाय हृतम्।
सिग्राधा द्वेष जननं मित्र, विद्वेषण मतत।
प्राणिनाम प्राणं हरणां मरण समुदाहृमत्।

जिससे रोग कुकृत्य और ग्रह आदि की शांति होती है, उसको शांति कर्म कहा जाता है और जिस कर्म से सब प्राणियों को वश में किया जाए, उसको वशीकरण प्रयोग कहते हैं तथा जिससे प्राणियों की प्रवृत्ति रोक दी जाए, उसको स्तम्भन कहते हैं तथा दो प्राणियों की परस्पर प्रीति को छुड़ा देने वाला नाम विद्वेषण है।

और जिस कर्म से किसी प्राणी को देश आदि से पृथक कर दिया जाए। उसको उच्चाटन प्रयोग कहते हैं तथा जिस कर्म से प्राण हरण किया जाए, उसको मारण कर्म कहते हैं।

भय, कातरता, निर्भयता, हीनता, डर, निडरता

जो जाग गया है, वह भय से मुक्त है, वह बुद्ध बन गया है। वह अपनी सारी चिन्ताओं, अपनी महत्वाकांक्षाओं और दु:खों की भी निस्सारता को जानता है।

भोगों मे रोग का भय है, उच्च कुल में पतन का भय है। धन में राजा का, मन में दीनता का, बल में दुश्मन का, रूप में बुढ़ापे का भय है और शास्त्र में वाद विवाद का, गुण में दुष्टजनों का और शरीर में काल का भय है। इस प्रकार संसार में मनुष्यों के लिये सभी वस्तुये भयपूर्ण है। भय से रहित तो केवल वैराग्य है।

भय के ७ प्रकार- १) इस लोक का भय- मनुष्य को मनुष्य से भय। २) परलोक का भय- मनुष्य को देव से भय। ३) आदान भय- संपत्ति नष्ट होने का भय। ४) अकस्मात भय- संकट आने का भय। ५) आजीविका भय- भरण-पोषण का भय। ६) मरण भय- मृत्यु का भय। ७) प्रतिष्ठा भय- मान-अपमान का भय। इनको छोड़ोगे तो जीवन सुखी ही सुखी बनेगा।

धर्म में आस्था हमारा डर भगाती और साहस का संचार करती है

डर हमेशा से हमें परेशान करता रहा है। दुनिया के विकास के साथ ही यह और भी बढ़ा है। हर कोई डरा हुआ है। बच्चे से बूढ़े तक, यहां तक कि पशु-पक्षी भी इससे अछूते नहीं हैं। अज्ञान का डर स्वाभाविक है। अगर कोई निडर होकर जीना चाहता है तो ऐसा सिर्फ कब्र में ही हो सकता है। कवियों ने भय को सांप के समान बताया है। भय विषधर की तरह हमें डराता है, मगर मनुष्य उसके विष से कुछ भी नहीं सीखता।

डर के कई कारणों में प्राणों की चिंता के बाद असफलता महत्वपूर्ण है। यह प्रेम, विवाह, संतान, धन, नौकरी आदि विभिन्न रूपों में व्यक्त होती है। आंतरिक डर के अलावा कई बार डर का संबंध प्राकृतिक, सामाजिक या किसी असामान्य स्थिति से भी होता है। बहुत बार दुनिया के किसी इलाके में हुए खून-खराबे की खबर भी डरा देती है। समाज में बढ़ती हिंसा, निरंकुशता, शक्ति का दुरुपयोग, असहनशीलता इसे और बढ़ावा दे रही है। इंसान का सबसे विश्वास उठ रहा है। धर्म, राजनीति सभी उसे अनिश्चितता की ओर धकेल रहे हैं। डर शक्तिशाली होता जा रहा है।

डर हमारी ऊर्जा के साथ ही इच्छा शक्ति को भी कमजोर करता जाता है। यह प्रेम को जाता है, हमें अपनों से भी डराता है। स्वामी विवेकानंद ने डर से बचने का उपाय बताया है। युवकों को संबोधित करते हुए उन्होंने बताया कि एक बार बनारस में कुछ बंदर उनके पीछे पड़ गए। वे डरकर भागने लगे, बंदर पीछे आते रहे। तभी एक आदमी ने चिल्लाकर उनसे कहा, भागो मत, खड़े होकर सामना करो। वे भाग जाएंगे। उन्होंने वही किया और वे भाग गए। अमेरीका में हुए अंतरराष्ट्रीय धर्म सम्मेलन में विवेकानंद ने कहा था, डरो मत, मजबूत बनो, क्योंकि भगवान तुम्हारे साथ चलते हैं। न वे तुम्हें छोड़ेंगे, न टूटने देंगे। हर अनुभव एक शक्ति और साहस देता है। डर की आंखों में देखोगे तो जान लोगे कि ऐसी परेशानियां तो मैं पहले भी भुगत चुका हूं। इसे भी पार कर लूंगा।

कठिनाई से भागना उपाय नहीं होता, उपाय उसे जीतने में ही है। परीक्षा हो या कोई और काम, डर से निपट कर ही विकास तक पहुंचा जा सकता है। हर धर्म में आस्था और प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण डर की जगह साहस जगाता है। किसी व्यक्ति या साधन के बल पर यह साहस जगाने की कोशिश करने से संदेह बना रहता है कि ये साधन काफी है या नहीं। यही नहीं, उन सहारों के हटते ही डर दोगुनी तेजी से लौटता है। जब हम यह तय कर लेते हैं कि डर से ज्यादा प्रभु में विश्वास

है, तो इंसान उन्हीं से सुरक्षा मांगता है। गुरुनानक ने कहा है जो नर कृपानिधि का यश गाता है, वे उसकी सहायता करते है।

व्यक्ति का मतलब है असीम का वह पहलू जो हर पल व्यक्त हो रहा हो। जिसकी अभिव्यक्ति निर्बाध और सतत जारी रहे, वही चेतना तो व्यक्ति है। जिसे बांटना संभव न हो वह असीम ही हो सकता है- अनंत और अपरिमित। अगर हम इस दृष्टि से देख सकें तो हर एक इंसान असीम का प्रतिनिधि है। वह छोटी-छोटी, क्षुद्र-सी सीमाओं से परे है। वह विलक्षण है। वह अद्भुत है। वह देश-काल से भी परे है।

लेकिन ऐसी कौन-सी शक्ति है जो अनंत को शांत कर देती है? क्या है जो असीम को ससीम कर देता है? ऐसा कौन-सा बंधन है जो महत्व चैतन्य को भी अपने पाश में जकड़ लेता है? वह है भय।

हमारे भीतर जो अनंत क्षमताएं और शक्तियां विद्यमान हैं, वे केवल इसलिए व्यक्त नहीं हो पातीं क्योंकि हम खुद को भय के चंगुल में फंसने देते हैं। इंद्र अपने इंद्रत्व, अग्नि अपने अग्नित्व, सूर्य अपने सूर्यत्व और सभी अपनी-अपनी सीमाओं में सिर्फ इसलिए बंधे हुए हैं, क्योंकि वे भय से मुक्त नहीं जिस क्षण वे डर को दूर करने में सफल हो जाएंगे, वे अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर अनंत को प्राप्त हो सकेंगे।

महान व्यक्तियों की जीवनियों में देखेंगे कि अमूमन वे हमारी तरह सामान्य ही है। फिर भी उनके अंदर की निर्भयता उन्हें दूसरों से अलग करती है। जब एक सामान्य आदमी निडर होकर महाशक्तिशाली साम्राज्य के खिलाफ खड़ा हो जाता है, तो वह गांधी बन जाता है। जब एक इंसान को २७ साल का कारावास भी डराने में कामयाब नहीं होता, तो वह मंडेला बनता है। जब एक व्यक्ति हजारों बार विफलताओं से भयभीत नहीं होता, तो वह बल्ब का आविष्कारक एडिसन बन जाता है। जब एक आम सा विद्यार्थी हार्वर्ड विश्वविद्यालय द्वारा लगातार १० बार खारिज कर दिया जाता है, लेकिन निराश नहीं होता, तो वह चीन की सबसे बड़ी कंपनी का मालिक जैक मा बन जाता है।

डर वह बांध है जो विशाल नदी को एक छोटी-सी धार में बदलकर रख देता है। लेकिन एक बार ठान लिया जाए कि डर की वजह रुकना नहीं है और कदम बढ़ाते रहना है, तो वह खुद ही छूमंतर हो जाता है। अगर आप भय की आंखों में आंखें डालकर देखेंगे, तो भय स्वयं ही अचकचाकर बगलें झांकने लगेगा।

भयभीत होना स्वाभाविक है। इसमें कोई बुराई नहीं है। लेकिन बुरा है डर को खुद पर हावी होने देना, डर के आगे घुटने टेक देना। इसलिए निर्भयता की बांह थामेंगे तो महानता, सफलता, समृद्धि और यश आपके हो जाएंगे, अन्तस का असीम अभिव्यक्ति होने लगेगा।

आनंद हर व्यक्ति चाहता है और वह उसके भीतर ही है। लेकिन उसे पाने या देने का उपाय न जाने के कारण वह सोया रहता है। हमें अपने भीतर के उस आनंद को जगाना है और जगाने का पहला उपाय है संवेदनशील होना। संवेदनशील लोग अल्प समय में कहां से कहां पहुंच गए? जो भी सफल होना चाहता है, फिर वह चाहे व्यापार, राजनीति, समाजसेवा हो या धर्म, उसमें गहराई, ईमानदारी, संकल्प और संवेदना के साथ जुड़ें तो सफलता जरूर मिलेगी।

एक आदमी हर समय प्रसन्न रहता है। दुख उसके चेहरे पर कभी नहीं दिखता था। वह कोई बहुत धनी या ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित नहीं था, न उसके पास कोई साधन-सामग्री थी। अभावों में पलनेवाला वह एक सामान्य आदमी था, लेकिन

लोगों के लिए वह आश्चर्य का विषय इसलिए था कि किसी भी परिस्थिति में वह उदास या निराश नहीं होता था। हंसना-मुस्कराना उसका स्थायी स्वभाव बन गया था। उसकी सदाबहार प्रसन्नता का रहस्य यही था कि साधन-सुविधाएं न होते हुए भी वह दिल से बहुत बड़ा था।

अक्सर हम पाते हैं कि बड़े लोगों के दिल बड़े छोटे होते हैं और जिन्हें हम छोटा कहते हैं, वे बड़े दिलवाले होते हैं। ऐसा लगता है कि धन-वैभव आदमी को दिल से छोटा और अहंकार की दृष्टि से बड़ा बनाते हैं। गरीबी आदमी को रहन-सहन की दृष्टि से छोटा भले ही कर दे, लेकिन चिंतन और संवेदना की दृष्टि से उसे बड़ा बनाती है।

बड़े होने की भावना दिलों में दूरी और दूसरे से अलगाव पैदा करती है। जहां अहंकार होता है, वहां संवेदना कम हो जाती है या समाप्त हो जाती है। संवेदना तो विनम्रता और सौहार्द्र में विकसित होती है। धन और सत्ता का मद तो आदमी को क्रूर और हृदयहीन बनाता है। अगर धनवानों में करुणा एवं संवेदनशीलता होती तो करोड़ों लोग भूख और अभाव में नहीं मरते। भारत को स्वर्णभूमि कहा जाता था। महात्मा गांधी ने कहा भी है कि भारतभूमि कभी स्वर्णभूमि कहलाती थी, इसलिए कि भारतवासी स्वर्णरूप थे। भूमि तो वही है, पर लोग बदल गए हैं, इसलिए यह भूमि उजाड़-सी हो गयी है। इसे फिर सोने जैसी बनाने के लिए हमें संवेदनशीलता को विकसित करना चाहिए।

शेक्सपियर कहते हैं कि दुनिया में सिर्फ दो संपूर्ण व्यक्ति हैं। एक मर चुका है, दूसरा अभी पैदा नहीं हुआ है। प्रसिद्धि व धन उस समुद्री जल के समान है, जिसे हम जितना ज्यादा पीते हैं, उतने ही प्यासे हो जाते हैं। हम जानते है कि हम क्या हैं, पर यह नहीं जानते कि हम क्या बन सकते हैं। यही कारण है कि समाज की स्थिति कमजोर एवं दयनीय बनी हुई है। अधिसंख्य लोगों की मनोवृत्ति स्वार्थी एवं संवेदनाशून्य हो जाती है। वे जो भी करते हैं, अपने लिए करते हैं। इसी कारण हमारी सुख की तलाश अधूरी रह जाती है।

ईश्वर नहीं, खुद पर भरोसा रखनेवाला होता है आस्तिक - हमारे जीवन में नकार की भूमिका बहुत बढ़ रही है। स्वीकार के प्रति लगाव कम होता जा रहा है। यह मानसिकता धीरे-धीरे संशय में और संशय दु:ख में तब्दील हो रहा है। जीवन के प्रति जो आस्था होनी चाहिए, उसे एक किनारे करने की कोशिश हो रही है। इस नकारात्मक धारणा ने लोगों को इस स्थिति में ला दिया है कि वे अपने लिए रास्ता चुनने में भी कठिनाई महसूस करने लगे हैं।

सचाई यह है कि आस्था स्वयं सुख है जबकि संशय खुद में दु:ख है। आस्था से विश्वास जुड़ा हुआ है और विश्वास से हम जुड़े हुए हैं। इसके टूटने से हमारा अस्तित्व बिखरने लगता है। इसका असर आसपास और समाज पर भी होने लगता है। अगर परिवार, समाज, देश से हम प्रेम करते हैं तो उसके पीछे विश्वास की ही ताकत है। प्रेम की बुनियाद ही विश्वास है। विश्वास टूटा कि प्रेम टूटा। हमें जानना चाहिए कि संशय अपने आप से भी तोड़ता है। फिर सुख नहीं प्राप्त होता। इसलिए गीता में कहा गया है, संशयात्मा विनश्यति यानी संशयशील आत्मा के चरण विनाश की ओर ही बढ़ेंगे।

हमारे शास्त्रों में आस्था को बहुत महत्व दिया गया है। हालांकि कुछ लोगों ने इसे मानसिक शोषण का एक कारगर हथियार बना दिया है। इसलिए कि आस्था को एक धार्मिक शब्द मान लिया गया है।जबकि यह पूरी तरह हमारे जीवन से जुड़ा हुआ भाव है। यह जितना आस्तिकों के लिए उपयोगी है, उतना ही नास्तिकों के लिए भी। मगर एक भ्रम पैदा कर दिया गया है कि भगवान पर आस्था रखनेवाला आस्तिक है और जो नहीं रखे वह नास्तिक। इसी ने एक गलत मान्यता की

नींव रख दी है, जबकि हमारे शास्त्र कहते हैं कि जो अपने पर आस्था रखे, वह है आस्तिक। जो न रखे वह है नास्तिक। यह ठीक बात है कि साम्यवादी विचारधारा ने धर्म और ईश्वर की अवधारणा को अस्वीकार किया है, लेकिन आस्था को कहां अस्वीकार किया है? जो स्थान ईसाई धर्म में बाईबल का, मुस्लिम मजहब में कुरान का, हिन्दुओं में गीता-वेद का और जैन में महावीर वाणी का है, वही स्थान साम्यवाद में दास कैपिटल का है। हर धर्म ने अपने मान्य धर्म-ग्रंथ को मुक्तिदाता कहा है, वैसे ही साम्यवाद में दास कैपिटल को मुक्तिदाता घोषित किया गया है। साफ है कि वह आत्मा-परमात्मा को नकार कर भी आस्था को इनकार नहीं कर सका है। आस्था का संबंध केवल आत्मा-परमात्मा से नहीं, संपूर्ण अस्तित्व से है। आस्था जीवन की संचालन शक्ति है। संशय उत्पन्न होते ही वह शक्ति गड़बड़ा जाती है। अगर जीवन-व्यवस्था को ढंग से चलाना है तो हमें विश्वास और आस्था का सहारा लेना ही होगा।

असल में जो व्यक्ति जितना दरिद्र होगा उतनी ही संपत्ति की खोज करता है। संपत्ति की खोज दरिद्र का लक्षण है। जो व्यक्ति बीमार होगा, वह स्वास्थ्य की खोज करेगा। स्वास्थ्य की खोज बीमार का लक्षण है। जो व्यक्ति अंधेरे में होगा, वह प्रकाश की खोज करेगा। प्रकाश की खोज अंधेरे में होने का लक्षण है।

यश की खोज हीन होने का लक्षण है। हीनता के भाव को मनोवैज्ञानिक इनफीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स कहते हैं। जिस व्यक्ति में जितनी हीनता का भाव होगा, उसमें बड़े पदों पर होने की उतनी ही आकांक्षा पैदा होगी। क्योंकि अपनी हीनता के भाव को भुलाने का और कोई उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि बड़ी से बड़ी कुर्सियों पर, बड़े से बड़े पदों पर बैठ जाया जाए। चाहे कितना ही धन इकट्ठा हो जाए, दरिद्रता नहीं मिटती। और चाहे कितने ही बड़े पदों पर पहुंच जाए, हीन भाव नष्ट नहीं होते। इसलिए क्योंकि दरिद्रता भीतर है और धन बाहर है और दोनों का कोई संबंध नहीं है। इसीलिए तो यह होता है कि एक पद मिले तो उससे बड़े पद की आकांक्षा पैदा हो जाती है। वह पद मिल जाए तो और बड़े पद की आकांक्षा पैदा हो जाती है। यह ऊपर पहुंच जाने की कोशिश इस बात का सबूत है कि हमें यह बोध है कि हम बहुत हीन हैं, हमें सिद्ध करना है।

इसलिए दुनिया में जिन लोगों में हीनता की भावना सर्वाधिक होती है, वे लोग बड़े-बड़े काम कर गुजरते हैं। बड़े काम उनसे हो जाते हैं। बड़े काम का अर्थ, जिन्हें दुनिया बड़ा कहती है। बड़े काम, बड़े युद्ध। हिटलर, स्टालिन या मुसोलिनी जैसे लोग बहुत हीनता के भाव से पीड़ित होते हैं। सिकंदर या चंगेज खां, तैमूरलंग जैसे लोग बहुत हीनता के भाव से पीड़ित होते हैं। इन्हें तब तक चैन न था जब तक इन्होंने यह न दिखा दिया कि लाखों लोग हमारे कब्जे में हैं। हम उनकी गर्दन जब चाहें मरोड़ दें। जब तक उन्हें यह विश्वास न आ गया कि हम शक्तिशाली हैं तब तक वे भागते गए। और यह विश्वास कभी नहीं आता, आखिर तक नहीं आता। इसलिए सारी दुनिया पर कब्जा हो जाए, करोड़-करोड़ लोगों के जीवन हमारे हाथ में हो जाएं, तो हीन-बुद्धि व्यक्ति के अंदर यह भाव पैदा होता है, उसे ऐसा खयाल आता है कि मैं भी कुछ हो गया। अब वह यह डर छोड़ सकता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, यह डर छोड़ा जा सकता है, क्योंकि इतने लोगों पर मेरा कब्जा है। लेकिन फिर भी भीतर डर बना रहता है। इसलिए जितना जो व्यक्ति शक्तिशाली होता जाता है, शक्ति इकट्ठी करता जाता है, उतनी ही निर्बलता उसको पकड़ने लगती है, उतनी ही उसे अपनी सुरक्षा की व्यवस्था करनी होती है।

विश्वास, श्रद्धा और आस्था, निष्ठा, प्रेरणा, अंध:विश्वास, अंधश्रद्धा, रूढ़िवाद

जिस व्यक्ति के लिए दिल से विश्वास हो वही व्यक्ति ज्यादा धोखा देता है।

नगर में रहने भर से कोई सच्चा नागरिक नहीं हो जाता। ऐसा होता तो नगर में तो अनेक कीट-पतंगे और पशु-पक्षी भी रहते हैं। वे सभी नागरिक कहे जाते, पर ऐसा नहीं है। नागरिक वही है, जिसमें सत्य, शौच, श्रद्धा, शील और समता जैसे सद्‌गुण हों। ऐसा इंसान अपनी सुविधा के लिए दूसरों को कष्ट नहीं दे सकता। इसी से जीवन शांत और सुखी बनता है। सत्य, प्रामाणिकता और नीति से संसार चल सकता है- यह आज का मानव स्वीकार करने में हिचकिचाता है। यह कितनी बड़ी विमूढ़ता है। आज इंसान की आत्म श्रद्धा डगमगा उठी है। जब तक मन में श्रद्धा या विश्वास नहीं होता, तब तक इंसान कुछ नहीं कर सकता।

माना जा रहा था कि चमत्कार को नमस्कार का मुहावरा २१वीं सदी में दम तोड़ देगा, लेकिन आज सारे आध्यात्मिक जगत में तथाकथित भगवानों के चमत्कार प्रदर्शन ने और भी भ्रम पैदा कर दिया है, विश्वास और अंधविश्वास में फर्क नहीं रह गया है। विश्वास को अंधविश्वास और अंधविश्वास को विश्वास बनाने की होड़ लग गई है। इसमें आधुनिक तकनीक का भरपूर इस्तेमाल किया जा रहा है। लगता है कि विज्ञान भी उसका दास बनता जा रहा है। चमत्कार और अलौकिक प्रदर्शन ने विचार को भी प्रभावित करना शुरू कर दिया है। इस पर नए सिरे से विचार करने की जरूरत आ गई है। धर्म के वास्तविक स्वरूप और उसके प्रयोजन से इन बातों का कोई वास्ता नहीं है। प्राय: ये कथित चमत्कार धर्म के मूल स्वरूप को ही विकृत कर डालते हैं। ऐसा भी नहीं है कि इनके द्वारा मानवता का कहीं कोई कल्याण किसी भी रूप में हो रहा हो या होनेवाला हो। उलटे ये मानव के मानसिक विकास के सबसे बड़े अवरोध हैं और धर्म के नाम पर समाज में नपुंसकता, जड़ता और दंभ के पोषक हैं।

आस्था- आस्था से सारे संसार का व्यवहार चल रहा है। आस्था, श्रद्धा और विश्वास का प्रतीक है। ईश्वर के प्रति आस्था हालांकि सभी को है लेकिन जब मन इच्छित कार्य नही होता है तो आस्था डगमगाती है, चोटिल होती है और ऐसा होना दुर्भाग्य पूर्ण है।

जिस प्रकार पंछी अपने परों से आकाश में उडान भरता है उसी प्रकार मनुष्य के पास आस्था रूपी पर है, श्रद्धा व विश्वास के वये पर मत काटो, मत कुतरो जिससे कि जीवन कुन्द हो जाय, फीका पड जाय। आस्था ही तो जीवन है, बिना पंख के क्या पंछी उडान भर सकेगा ? इसी तरह आस्था के पर है जो कि ईश्वर के सामीप्य का अनुभव कराते है। हृदयाकाश में आस्था रूपी परों के जरिये उडान भर सकते है और जीवन के सौन्दर्य का आनन्द ले सकते है, आस्था हमारे जीवन की एक ऐसी धरोहर है जिसमें विश्वास की नींव मजबूत होती है। एकलव्य ने मिट्टी की मूर्ति में निष्ठा रख कर द्रोणाचार्य जैसे गुरु को भी विचलित कर दिया था। आस्था एवम लगन हर समस्या का समाधान निकाल सकता है।

भारत में अनेक धर्म है उनमे जो मतभिन्नता है व अनुयायियों की बनाई हुई है। वास्तव में प्रभु, ईसामसीह, बुद्ध, भगवान श्रीकृष्ण, मोहम्मद पैगाम्बर भगवान महावीर, गुरुनानक ये सब ईश्वर के माननेवाले तो थे ही। एक कृपालु ईश्वर उस विश्व

का निर्माता है, हम सभी उसी की सन्तान है, यह उनकी विचारधारा भी समान रही है। भारत में ईश्वर आस्था की नींव होने के कारण सभी धर्मों ने अपना अस्तित्व कायम रखा है। हम आचार-विचार से अलग होकर भी सभी भारतीय ईश्वर में आस्था रखते है, इसलिये हम सब एक है इस पर विश्वास का जतन करे।

भावना के आघात से ध्येय की प्राप्ति होती है। भगवान बुद्ध कुछ दुखद घटनाओं से विचलित होकर और दु:खों का कारण खोजने घर से बाहर निकले। कठोर चिन्तन से वे बोधिसत्व बने। तुलसीदास, पत्नी रत्नावली द्वारा अपमानित होने पर उसके वाग्बाण हृदय पर कुठाराघात कर गये, गृहस्थ जीवन त्याग कर एक महान रामायणकार बने और सन्त तुलसीदास कहलाये। रत्नाकर डाकू को परिवार की स्वार्थपरिता का ज्ञान होने पर घर बार छोडकर नारद मुनि से ज्ञान प्राप्त कर महर्षि बाल्मिकी वैराग्य को प्राप्त कर तप से महामुनि बने। हर्षवर्धन पुत्र राजा भरथरी गृहस्थ की आसक्ति को स्वार्थ अनुभव कर अपने राज्य पाट को त्याग कर राजर्षि भरथरी बने। सौतेली मां ने बालक ध्रुव को अपमानित किया और ध्रुव ने उग्र तपश्चर्या से अटल अडिग स्थान प्राप्त किया। आघातों और दु:खद घटनाओं से मनुष्य की क्षमता बढ़कर उनका उज्ज्वल चरित्र उत्पन्न हुआ है। पांडवों को द्यूत क्रीडा में हरा कर कौरवों ने उन्हें सत्ता से वंचित कर वनवास भेज दिया। पर पांडवों ने अपनी पूरी शक्ति से सामर्थ्य से कौरवों का विनाश कर अपना राज्य पुन: प्राप्त किया। भावनापर हुये आघातों से उच्च ध्येय प्राप्त करनेवाले ऐसे कई लोग है।

सुखी, समृद्ध और चिन्ता मुक्त जीवन बिताने के लिये ईश्वर पर अगाध विश्वास और धर्म सम्मत, आचार-विचार और व्यवहार पर आस्था आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। कोई भी मनुष्य हो जब तक वह ईश्वर मे आस्था नहीं रखता, शक्तिशाली नहीं बन सकता। यह आस्था ही मनुष्य को आदिम सभ्यता से आधुनिक सभ्यता तक लेकर आई है। आस्था ने ही मनुष्य को एक सर्व कल्याणकारी भावना से ओत प्रोत किया है। धर्म की अवधारणा के उद्‌भव और विकास में आस्था और विश्वास ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यही नही, ईश्वर आस्था ने साहित्य, संगीत और विविध कलाओं को भी समृद्ध किया है। ईश्वर पर आस्थानेही मनुष्य को चिन्तन की और उन्मुख किया, फलत: धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति हुई। धर्मदर्शन का अध्ययन, विभिन्न धर्मों के मध्य समन्वय स्थापित करने में आस्था ही सहायक हुई है। सभी धर्म एक ही सत्य को प्रतिपादित करते है। सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है। भिन्नताये उनके वाह्य स्वरूप मे ही नजर आती है। मनुष्य अपनी जिज्ञासा और हर शंका का समाधान बुद्धि के स्तर पर पाना चाहता है। दर्शन, धर्म को वैज्ञानिक एवम बौद्धिक बनाने का प्रयत्न जरूर करता है पर आस्था के बगैर वह भी पूरा नही होता। ईश्वर धर्म के मूल मे है। ईश्वर और धर्म पर विश्वास मनुष्य में शक्ति का संचार करता है।

सच यही है कि मनुष्य अपूर्ण है। वह कभी न कभी स्वयं को अपूर्ण और असहाय महसूस करता है। तब ईश्वर के प्रति उसकी आस्था ही उसका मार्गदर्शन करती है। ईश्वर और धर्म पर विश्वास रख कर ही मनुष्य पुन: ऊर्जा प्राप्त करता है। ईश्वर को सर्वत्र समझने की भावना से ही मानव समाज में एकता स्थापित की जा सकती है। राजनैतिक सिद्धान्त और आर्थिक व्यवस्था मनुष्य के बीच विभेद पैदा करती है। ये चीजे मनुष्य के दृष्टिकोण को भी संकीर्ण बनाती है, जबकि ईश्वर पर श्रद्धा और विश्वास व्यक्ति और समाज को उदार तथा परोपकारी बनाता है, इसलिये धर्म-व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था से ऊंची मानी गई है। ईश्वर के प्रति आस्था का भाव मित्रता, त्याग, सहनशीलता, प्रेम और ममता की भावना को प्रबल

करता है और मनुष्य अपना अमीष्ट प्राप्त कर लेता है। ईश्वर धर्म का केन्द्र बिन्दु है।

ईश्वर और धर्म पर विश्वास नैतिक जीवन बिताने की प्रेरणा देता है। इस तरह प्रकांन्तर से ईश्वर स्वम् धर्म पालन में आत्मिक सम्बन्ध है। प्राय: सभी मुख्य धर्मों और नीति शास्त्रों में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया गया है। गीता में कृष्ण ने अर्जुन से कहा है, कुराने शरीफ में कहा है अल्लाह आकाश और धरती का प्रकाशक है। ईसाई धर्म मे बाईबल के अनुसार हर पवित्र शास्त्र, ग्रन्थ परमेश्वर की प्रेरणा से ही रचे गये है।

श्रद्धा का अर्थ है दृढ़ विश्वास। क्या है धर्म? क्या आज भी युवा ईश्वर में अंधविश्वास रखते हैं या उनकी आस्था केवल ईश्वर में है। ईश्वर हमारी समस्त कायनात को संचालित करता है, यही एक आम धारणा है। चाहे युग कोई भी रहा हो ईश्वर के प्रति भक्ति हमेशा थी। हमेशा से शक्ति की पूजा होती रही है। लेकिन कालांतर में धारणाएं बदलने लगीं, वैज्ञानिक तर्क, अंधविश्वास पर हावी होने लगे और अंधविश्वास विश्वास में बदलने लगा। आस्था में इंसान का विश्वास बदल सकता है वह अंधविश्वासी हो सकता है या उसका रूप बदल सकता है लेकिन आस्था अडिग रहती है। कितने आस्तिक हैं हमारे युवा और आस्था या भक्ति का वे क्या अर्थ लेते हैं।

विश्वास- कई ऐसे कारण भी होते है जो सही रिश्तों को बनाने और सदा कायम रखने में बाधक बन जाते है जैसे कि खुदगर्जी, तहजीब की कमी, लापरवाह व्यवहार अपने किये हुये वादों को पूरा न करना, रूखा या बदतमीज व्यवहार, सच्चाई और ईमानदारी का अभाव, स्वार्थी इन्सान जो सिर्फ अपने बारे मे ही सोचता है वह बहुत ही अपने आपको छोटा बना लेता है, अडियल पन, एक अडियल व्यक्ति अपने विचारों और ज्ञान से सन्तुष्ट रहता है, उसके अज्ञानी बने रहने की ही क्षमता है। अहंकार :- प्रकृति खाली जगह नही रखती इसलिये वह खाली दिमाग को अहंकार से भर देती है। घटिया नजरिया, बन्द दिमाग, संकीर्ण सोच, ध्यानपूर्वक सुनने व समझने की कमी, शक्की मिजाज व तेवर, नैतिक मुल्यों के सम्मान की कमी, अनुशासन हीनता, दया का अभाव-क्रूरता कमजोरी की निशानी है। उतावलापन, क्रोध-गुस्सा अहंकार, हेरा फेरी करने की आदत, सामना करने की शक्ति का अभाव, भावुक स्वभाव, अस्थिरता, सच्चाई का सामना या स्वीकार न करने की इच्छा, पिछला बुरा स्वभाव, लापरवाही का नजरिया, उपेक्षा :- यह एक अच्छा अहसास नही है यह बेरूखी जाहिर करता है। लालच :- पानी की तरह है जितना पीते है उतनी ही प्यास बढ़ती है। इन सब क्षेत्रों को परखने और सही रास्ते पर चलने से मन में किसी के प्रति विश्वास हो सकता है। **किसी भी रिश्ते की बुनियाद विश्वास पर टिकी होती है**। चाहे वह रिश्ता व्यावसायिक हो या फिर व्यक्तिगत। बिना विश्वास के किसी रिश्ते की बात सोची भी नही जा सकती। गहरे रिश्ते भी विश्वास के टूटते ही समाप्त हो जाते है। ऐसे में व्यक्ति आपकी कोई बात तब तक नहीं मानता, सुनता जब तक कि टूटे हुये विश्वास को जोडा न जाये। वैसे टूटे हुये विश्वास के लिये मुश्किल होता है, लेकिन यदि आप एक निश्चित प्रक्रिया अपनायें, तो यह उतना कठिन भी नहीं है। टूटे हुये विश्वास को जोडने के लिये सबसे पहले तो यह जानना आवश्यक है कि यह टूटा तो कैसे ?

दरसल विश्वास दो तरह से टूटता है। एक तो तब जब आप किसी से किये समझौते को तोडते है। समझौता यदि बहुत अहम हो, तो एक ही बार में पूरा आपसी विश्वास खत्म हो जाता है। दूसरे जब आप किसी की भावना को बारबार चोट या ठेस पहुंचाते हो। वैसे विश्वास चाहे किसी कारणवश टूटे हो, उसे जोडने की एक ही प्रक्रिया है। जब आपसे किसी ने कोई

समझौता या वादा तोडा हो। आप उस व्यक्ति से क्या चाहते है ? अन्य लोगों की तरह आप भी उसकी माफी या तर्कों को नहीं सुनना चाहते। उसकी बात सुनने की बजाय आप चाहेंगे कि वह इस बात को महसूस करे कि उसने किस तरह आपकी भावनाओं को चोट पहुंचाई है। इसलिये जब भी कोई आपसे दुखी हो, तो अपने किये को सही साबित करने की कोशिश के बजाय, उसके दु:ख को समझने का प्रयास करे। यदि पूरी बात आपकी समझ में नहीं आ रही हो, तो उससे इसे पूरी तरह समझाने का आग्रह करे। दरसल प्यार की तरह ही विश्वास के बिना जीवित नहीं रह सकते इसलिये जैसे ही विश्वास को चोट पहुँचे, उसे फिर से ठीक करने की कोशिश करनी चाहिये।

विश्वास स्वयं में एक सृजनात्मक एवम् रचनात्मक शक्ति है, जो सदा सहयोग तथा पारम्परिक सेवा के अक्सर चुनती रहती है। विश्वास के सहारे मनुष्य स्वयम् विकसित होता है। नीति परायण बनना तथा दूसरों को वैसा ही अनुकरण करने की प्रेरणा देता है। इस तरह विश्वास के बल पर व्यक्ति और समाज दोनों का ही विकास होता है।

आत्मविश्वास ही व्यक्ति की सफलता की आधार शिला है। विश्वास के सहारे ही थोडे से अनाज के दानों को मिट्टी में डाल दिया जाता है। वही अनाज पैदा होकर वही फसल बन जाता है। व्यक्ति विश्वास के जरिये ही कठिन से कठिन लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आत्मविश्वास कामना रूपी प्रसून को फलने-फूलने में बहुत सहायक होता है।

व्यक्ति निराशा के गर्त मे खुद को जब पाता है जब उसके मन का विश्वास टूट जाता है। दो व्यक्तियों की आपसी समझ बेहतर हो, इसके लिये पारस्परिक विश्वास की भावना का मजबूत होना आवश्यक है। विश्वास के बल पर ही साधारण व्यक्ति महापुरुष की श्रेणी में आते है, विश्वास के सहारे सब कुछ संभव है। व्यक्ति जो सोचता है पारस्परिक सम्बन्धों के दायरे में उसमें विश्वास, प्यार और समर्पण का आधार स्तम्भ है, जो कि घनिष्ठ रिश्तों को और भी ज्यादा प्रगाढ़ करता है।

जिस तरह जिन्दा रहने के लिये श्वास का महत्व है, उसी तरह अध्यात्म जगत में विश्वास का महत्व है, व्यक्ति के जीवन में दृढ़ विश्वास और अखण्ड श्रद्धा होनी चाहिये।

जीवन की उत्पत्ति विश्वास का आधार है। हर क्षण विश्वास का मूल क्रियाशील होता है। विश्वास तो ईश्वरत्व है, जबकि अविश्वास अनीश्वरतत्व। जीवन का प्रत्येक अंश व्यावहारिक प्रयोग की धारणा से प्रेरित है, जो विश्वास के बिना संभव नही। प्रकृति का दृश्य व अदृश्य स्वरूप सहचर्य के मौलिक तत्व से विकसित होता है। इसे प्राकृतिक नियम से प्रचालित माना जाता है। सहचर्य भौतिक और आध्यात्मिक जगत का अनिवार्य अंग है। रचनात्मक प्रक्रिया का स्त्रोत सही सहचर्य सदैव विश्वास से उत्पन्न होता है। मनुष्य की अनुभूतियों में इसका स्थान स्वत: निश्चित हो सकता है। चिंतन और मनन के इसके फल का महत्व समझना सर्वथा अनुकूल विषय है। विश्वास को धारण करना जितना कठिन है, उतना ही सरल भी है। जीव किन्ही दो स्थितियों में स्थिर होता है, विश्वास अथवा अविश्वास। सामान्यत: मनुष्य द्वंद्व की स्थिति मे भटकता है- स्थिर नहीं होता। यह द्वंद्व की स्थिति कोई मध्य मार्ग नहीं है। द्वंद्व केवल अविश्वास के नीचे की सीढ़ी है। लेकिन प्राय: लोग इसी स्थिति में बने रहने के अभ्यस्त हो जाते है। क्रियाहीन पुरुष को इसमें सुख प्रतीत होता है। आधुनिक युग मे स्पष्ट देखा जा सकता है कि अधिकांश लोगों की दिनचर्या इस कथन पर अवलम्बित है कि किसी पर विश्वास मत करो। गृहस्थाश्रम से लेकर संन्यास तक विश्वास की डोर से बंधा एक सुदृढ़ धागा ही तो है, जिसे तोड़ने की आकांक्षा मात्र कौतूहलवश मनुष्य अपने मन में पाल लेता है। इसका हृदय से कोई संबंध नहीं। हृदय में आत्मा का

प्रवेशद्वार है, जहां अटूट विश्वास के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

धारण करने जैसा कोई प्रयास किसी उद्यम का कारण नहीं बनता, लेकिन प्रयास करना एक सकारात्मक कर्म है, यदि वह धर्म के लिए हो। धर्म को यथा संभव कल्याण की दृष्टि से जानना चाहिए, अन्यथा इसकी अनंत रेखा अपने मूल बिन्दु से आगे बढ़ने में दुष्कर हो सकती है। इसलिए सत्कर्म द्वारा विश्वास को धारण करने का प्रयास निश्चय ही उत्तम उपाय सिद्ध होता है। मन को जीतना उतना सरल नही है, फिर भी इसे संशय मुक्त करने में भलाई है। अपने आत्मस्वरूप में स्थित होने का प्रयास ही सद्कर्म है, कल्याणकारी है, विश्वास का जनक है। इसी पर प्रेम और भक्ति का महान साम्राज्य अवस्थित है। विश्वास मनुष्य को एक-दूसरे के निकट लाता है। मानवता की पहचान है विश्वास, जिसका संबंध आत्मा से है। एक विश्वास का ही आधार है जो संबंधो में दृढ़ता तथा सरसता बनाये रखता है। विश्वास की डोर को हमें अक्षुण्ण बनाए रखना है।

दुनिया में किस पर विश्वास करें, इनके तो अजब नजारे हैं। बस उन पर ही विश्वास है हमें, जो हो गये रब को प्यारे हैं।

किसी भी चीज पर एकदम विश्वास कर लेने की जरूरत नहीं है। मगर, बारीकी से जांच करने के बाद जिस चीज पर विश्वास जम जाय, उससे तो उसी तरह चिपटे रहना चाहिए जैसे चींटी गुड से चिपटी रहती है।

विश्वास ही हमें वह मार्ग सिखाता है जो हमें अपनी मंजिल तक पहुंचाता है।

ईश्वर के अनेक दलाल, पंडे, पुजारी और मौलवी जगह-जगह अपनी-अपनी दुकानें सजा कर बैठे हैं। उनका कहना है कि आप उन्हें अनुदान दीजिए और वे किस तरह से आपकी सिफारिश वे परमात्मा के पास भेजते हैं। वे न केवल हमें हमारे पापों के दंड से बचा देंगे, बल्कि ईश्वर से हमें पुरस्कार भी दिलाएंगे- हमारी मनोकामनाएं पूरी करा देंगे। मानों ईश्वर उनकी सिफारिश के अनुसार ही अपना काम करते हों।

अगर आप साधन संपन्न तथा पैसेवाले हैं और आपको ईश्वर के दर्शन करने हैं तो आपको किसी पंक्ति में खड़े होने की जरूरत नहीं है। बड़ा अनुदान दीजिए, पंडे आपको पहले दर्शन करवा देंगे। कई बड़े और प्रसिद्ध धर्मस्थलों में इस तरह अपार धन जमा हो रहा है।

विश्वास जीवन है और अविश्वास मृत्यु। विश्वास मानव जीवन में सबसे बड़ी शक्ति है। विश्वासी कभी हारता नहीं, थकता नहीं, गिरता नहीं, मरता नहीं। विश्वास अपने आप में अमर औषधि है।

विश्वास के तीन रंग - जिंदगी में जितने रिश्ते हैं, सब विश्वास पर टिके हैं। जहां यह आधार टूटा, वहीं संबंध बिखरने लगते हैं। इस भाव को बनाए रखना उतना ही कठिन है, जितना सुई की छेद से लदावन को निकालना। जिसने इस शक्ति को पा लिया, उसकी जीत ही जीत है।

विश्वास के कई रंग हैं। मोरारी बापू इसे त्रिगुणात्मक मानते हैं। सतगुण प्रधान विश्वास में कभी संदेह नहीं उपजता। वह कभी परीक्षा नहीं लेता। उसका समर्पण बिना शर्त का होता है। रजोगुणी और तमोगुणी का भरोसा डगमगाता रहता है। वहां बदले में बड़ी-बड़ी अपेक्षाएं होती हैं। रामायण और महाभारत में सभी पात्रों में यह दिखाई पड़ता है। कौशल्या तो मां है, लेकिन सुमित्रा भी एक पल के लिए कमजोर नहीं पड़ी। लक्ष्मण के सामने राम हनुमान को दोगुना प्रिय कहते हैं। चौदह साल तक सेवा करनेवाले लक्ष्मण के मन में एक बार भी मलाल न हुआ।

तमोगुणी विश्वासी जरा-जरा सी बात पर नाराज हो जाते हैं। महाभारत में गांधारी और धृतराष्ट्र भी तामसिक विश्वासयुक्त हैं। अधर्मी के प्रति विश्वास कभी सात्विक नहीं होता। द्रौपदी कृष्ण की सखी थी। सब सहारे टूटने पर उन्हीं को पुकारती थी। मगर जब अश्वत्थामा ने उसके पुत्रों की हत्या कर दी, तो वह बिफर गई। सांत्वना देने आए कृष्ण को यह तक कह डाला कि गोविंद तुम चाहते, तो बचा सकते थे।

इस षड्यंत्र में कहीं तुम्हारा भी तो हाथ नहीं? तब कृष्ण पहली बार रोये थे। व्यथा ने द्रौपदी के सात्विक विश्वास को राजसी बना डाला था। मीरा का गिरधर के प्रति त्रिगुणातीत विश्वास था। कोई सांसारिक बाधा उसे डिगा न सकी। जीवन में ऐसे ही विश्वास का आधार जरूरी है।

आज आस्था और विश्वास का संकट है। नैतिक मूल्यों में गिरावट सामाजिकता और परस्पर व्यक्ति और संपत्ति के अधिकारों के प्रति सम्मान भावना में कमी, बढ़ती हुई उछृंखलता और पकड़े जाने के बाद दंडित होने के किसी भी प्रकार के भय के अभाव ने अपराधी प्रकृति को प्रोत्साहित किया है। दूसरी ओर व्यक्ति समाज और कानून का सम्मान करने वाले नागरिकों से ही समाज बना और चल रहा है। लेकिन कानून नहीं मानने वालों के दंडित नहीं होने और उन्हें हर तरह का संरक्षण प्राप्त होने के कारण उनमें भय का संचार हो रहा है। अपराधियों के खिलाफ आवाज उठाने वालों को अपराधियों द्वारा बदले की भावना से अधिक क्रूरता से पीड़ित करने और उन्हें किसी तरह का संरक्षण नहीं होने के कारण स्थिति और भी अधिक खराब हुई है। कानून-व्यवस्था, न्याय प्रणाली और प्रशासन व राजतंत्र की निष्पक्ष और प्रभावी कार्यवाही की आम जनता में विश्वास की भावना की बहाली कर सकती है। यह सामाजिक सद्भाव और शांति और निरंतर प्रगति के लिए अनिवार्य आवश्यकता है। गुंडागर्दी, अराजक एवं असामाजिक तत्वों का जनजीवन में वर्चस्व किसी भी छोटी सी घटना स्वरूप चिंगारी व्यापक सामाजिक अशांति के तांडव में बदल सकती हैं।

श्रद्धा- श्रद्धा-विश्वास-आस्था जब सब कुछ ठीक रहता है तब तो श्रद्धा रहेगी ही लेकिन विपरीत परिस्थितियों में श्रद्धा चोटिल होती है और श्रद्धा का इम्तहान होता है। सच्चा मूल्य तो उस श्रद्धा का है जो कडी से कडी कसौटी के समय भी टिकी रहे और अक्सर कडी से कडी कसौटी के समय ही श्रद्धा के तार-तार होने लगते है लोगों का विश्वास डगमगाने लगता है। श्रद्धा-श्रद्धा है परिस्थितियाँ परिवर्तनशील है लेकिन श्रद्धा यदि सच्ची है, अटूट है तो कोई बदलाव नही होगा श्रद्धा में। यदि श्रद्धा में स्वार्थ है तो वह कैसी श्रद्धा? और आज अधिकतर श्रद्धा स्वार्थ के बलबूते पर है जो कभी न कभी चोटिल होनी है। इसलिये श्रद्धा को स्वार्थ रहित रखना चाहिये तभी इसका फल परिणीत आनन्ददायक है। जहां आदर और विश्वास का संगम हो वहां श्रद्धा उपजती है। श्रद्धा में सन्देह का कोई भी स्थान नहीं है, उसमें आत्मभाव से सम्पूर्ण समर्पण है। श्रद्धालु अपने आराध्य की कृपा के प्रति निश्चिंतता का भाव रखता है।

पंचतन्त्र में बताया गया है कि सात चीजें श्रद्धेय और भावना की तरह फल देनेवाली है। मन्त्र तीर्थ द्विजे दैवज्ञे भेषजे गुरौ या दृशी भावना यस्थ सिद्धिर्भवति तादृशी मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देव, ज्योतिषि, औषधि और गुरु इन सात चीजों पर व्यक्ति को आस्था रखनी चाहिये। क्योंकि आस्था के बिना फल नही मिलता। श्रद्धा हीन मन्त्र जाप, तीर्थयात्रा भावना हीन होकर किया हुआ ब्राह्मण पूजन, देवता पूजन, श्रद्धा के बिना ज्योतिष विद्या का प्रयोग विश्वास के बिना सेवन की गई औषधि, शरणागति के बिना दिखाने की गुरु भक्ति कभी फल नही देती। इसलिये इनपर आस्था व श्रद्धा रखना आवश्यक है।,

आत्मविश्वास की अनुभूति के लिए ये दो ही सम्बल विख्यात हैं- आस्था और श्रद्धा। श्रद्धा और आस्था अन्त:करण की शक्तियां है। अन्त:करण में उठी उमंगे, आकांक्षाएं और प्रेरणाएं ही स्वभाव का निर्धारण करती है। अगाध आस्था और अपार आत्मविश्वास से हृदयाकाश प्रभु के श्री चरणों की ओर उन्मुख हो जाता है। श्रद्धा के बिना कुछ भी पाना असंभव है। यदि कोई व्यक्ति अपने स्वभाव और व्यवहार में बदलाव नही लाता तो उसकी प्रभु के प्रति श्रद्धा जागृत हो ही नहीं सकती। स्वभाव बदलने का अर्थ है स्वयं को प्रभु के प्रति समर्पित कर देना। किसी का बुरा न चाहना और अहित न करना यही स्वभाव बदलने का मूल मंत्र है।

माता-पिता और गुरु की लगन से सेवा करना और दीन-दुखियो की मदद करना। जब व्यक्ति के मन में मानवता का प्रेम उत्पन्न होगा तो स्वभाव स्वत:ही बदल जाता है। स्वभाव बदलने पर व्यक्ति द्वारा की गई साधना, तपस्या, त्याग, तप सार्थक होने लगती है और भक्त प्रभु के श्री चरणों में लीन हो जाता है। ईश्वर के आशीष से संतों का सान्निध्य प्राप्त होता है। संत की संगत पाकर स्वभाव तो क्या व्यक्ति के रहन-सहन, आचार-विचार, हाव-भाव और जीवन शैली तक बदल जाती है। इसलिए, प्रभु की कृपा का पात्र बनने के लिए व्यक्ति को अपने स्वभाव में बदलाव लाना जरूरी है। वर्तमान की अवज्ञा और भविष्य की अनदेखी से व्यक्ति ईश्वर को नहीं समझ पाता। जिन्हे ईश्वर की उदारता पर विश्वास है, वे उदार बनकर जीते है। जिन्हे ईश्वर पर अगाध आस्था है वे आराधना करके जीते है। जिन्हे नियति की नीयत पर श्रद्धा है, वे मजे से जिंदगी जीते है। श्रद्धा और स्वभाव इन दो बीजों का विकास रूप ही व्यक्तित्व वृक्ष है। वृक्ष में जब स्वभाव रूपी फल लगते है तब श्रद्धा रूपी व्यक्ति उसे खाता है। खाने से बुद्धि, विवेक का निर्माण होता है। यह बुद्धि ही संकल्प की ओर ले जाती है। संकल्प प्रबल होते ही व्यक्ति लक्ष्य की ओर बढ़ने लगता है और असीम आकाश को भी हाथ पसारकर छू लेता है। आकाश का मतलब प्रभु के समीप पहुंचने का है। चरणानुरागी भक्त प्रह्लाद ने आस्था की दम पर वह उच्च स्थान प्राप्त किया जो हम सबके लिए आज भी प्रेरणास्त्रोत है। दृढ़ विश्वास के सहारे ध्रुव ने प्रभु को विवश कर दिया और ईश्वर ने उन्हे सदैव ध्रुवतारा के रूप में जगमगाते रहने का आशीर्वाद दिया। कुरुक्षेत्र की रणभूमि में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के स्वभाव में बदलाव लाकर दु:शासन का अंत किया। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना कर लोगों में श्रद्धा की अद्वितीय अलख जगाई। श्रद्धा और स्वभाव के बिना जीवन के दर्शन को समझना कठिन है। धर्म, दर्शन, संस्कृति को समझने के लिए स्वभाव में बदलाव लाना आवश्यक है। श्रद्धा, आस्था, विश्वास और स्वभाव एक दूसरे के पूरक है।

श्रद्धा है तो चमत्कार अवश्य घटित होते हैं, क्योंकि श्रद्धा स्वयमेव एक महान चमत्कार है। हमें श्रद्धा नहीं मिली और सब कुछ मिला। धर्म के प्रति, परमात्मा के प्रति स्वयं हमारे भीतर सम्यक श्रद्धा का सदैव अभाव बना रहा। इसीलिये हम भटकते रहे हैं।

धर्मश्रद्धा से आसक्ति मिटती है, गृहबंधन टूटते हैं, मानसिक और शारीरिक दु:खों का छेदन होता है और अव्याबाध सुख मिलता है। अव्याबाध सुख ऐसा सुख है जिसे कोई बाधा बाधित नहीं बना सके।

श्रद्धा ही धर्म है- श्रद्धा जीवन का आधार है। जीवन में श्रद्धा का अवतरण अत्यंत कठिन बात है। श्रद्धा धर्म का धरातल है। श्रद्धा धर्म का आधार है। श्रद्धा के बिना धर्म ठहर नहीं सकता है। श्रद्धा से शून्य धर्म ऐसे है जैसे सुगंध के बिना पुष्प होता है और प्राण के बिना देह होती है। श्रद्धा प्रथम बात है। धर्म बाद की बात है। श्रद्धा ही धर्म है। अश्रद्धा सबसे बडा पाप

है और श्रद्धा पाप से छुटकारा दिलानेवाली है। सत्य के प्रति अखण्ड आस्था है श्रद्धा। श्रद्धा दृष्टिकोण को बदल देती है। श्रद्धाशील व्यक्ति का दृष्टिकोण साकारात्मक बन जाता है। उसका चिंतन और व्यवहार सकारात्मक हो जाता है। धर्म में अनंत बल है। उसके प्रति अपने भीतर श्रद्धा उत्पन्न करो। बिना श्रद्धा के धर्म निष्प्राण है। श्रद्धा जब व्यक्ति के हृदय में उतर आये तो उसके भटकाव का अंत हो जाता है। उसे धर्म का राजमार्ग मिल जाता है। संशयात्मा विनाश को प्राप्त होता है। श्रद्धाशील विजयी होता है। श्रद्धा की शुरुआत अपनी ही आत्मा से होती है। आत्मश्रद्धा से सम्पन्न बनिए। आस्था और आत्मा का सम्मिलन कीजिए, अपने विकारों पर विजय प्राप्त कीजिये। श्रद्धा आत्मा की सुगंध है, श्रद्धा मनुष्यता का गौरव है। श्रद्धा की उपेक्षा करके न तो भक्त रह सकता है, न ही श्रद्धापात्र। श्रद्धा नहीं तो सब कुछ व्यर्थ।

जीवन में आस्था का अत्यंत महत्व है। आस्था ही सभी सफलता की पुंजी है। यह आस्था भगवान, गुरु, देवी-देवता किसी में भी हो तो सफलता के द्वार खोल देती है और साथ-साथ अध्यात्म की ऊंचाई प्राप्त कर संत पद को प्राप्त कराती है। जीवन में साधना में आगे बढ़ने के लिए श्रद्धा के साथ-साथ ज्ञान ध्यान एवं तत्परता का संयोग होना आवश्यक है। प्रत्येक कर्म करते हुए परहित का ज्ञान अवश्य रखना चाहिए। अपने कार्य और व्यवहार से दूसरों को विक्षेप हो ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए। दूसरों के हित का ख्याल रखकर कार्य करना चाहिए। यह सामाजिक जीवन में सफलता की पुंजी है।

विवेक के बिना श्रद्धा श्रद्धा नहीं होती है वो तो मात्र आत्म प्रवंचना है। श्रद्धा है जानना, मानना नहीं है श्रद्धा। अनुभव श्रद्धा है ध्यान ज्ञान नहीं, ज्ञान विश्वास पैदा कर देता है। संदेह है अज्ञान और श्रद्धा है स्वानुभव, साक्षात्कार। सत्य के साथ मिले संदेह से श्रद्धा को खोजे, श्रद्धा सत्य से मिला देगी। यह सम्यक सूत्र है। संदेह की सीढ़ी बनाओ, श्रद्धा के मंदिर पहुँचने के लिए और कोई उपाय नहीं है और न कोई सरल मार्ग है। यूं ही प्रखरता आती है और यूं ही गत्यात्मकता आती है प्रवाह आता है यूं ही जीवन में आविर्भाव होता है। चुनौतियों से ही तुम जागते हो, संदेह चुनौतियां देता है। संदेह का उपयोग करना सीखे। संदेह को दबाएँ मत। आदमी संदेह से जरूर मुक्त हो। लेकिन संदेह को दबाकर कभी भी नहीं मुक्त हुआ। जिसको तुम दबा लोगे उसे बार-बार दबाना पड़ेगा, उससे कभी भी मुक्ति नही होगी, वह भीतर बैठा रहेगा। वह आप के अंदर पड़ा रहेगा और लाख कोशिश करो किन्तु अवसर पाकर निकल आएगा। जैसे किसी बीज को जमीन में दबा दे, वर्षा आयेगी फिर अंकुरण हो जाएगा। आप लाख दबाए, लेकिन अंकुर बार-बार आएगे। इस तरह से अंकुरित होने के अवसर बार-बार आएंगे। संदेह फिर खड़ा हो जाएगा और यह संदेह मिटाया जा सकता है। मिटाने का उपाय है। संदेह को जियो, संदेह को उसकी समग्रता से जियो। डरना क्या है, भय क्या है, संदेह की सीढ़ी से पूरी तरह चढ़ो। आप चकित हो जाएंगे, यह जानकर कि संदेह ही श्रद्धा तक मनुष्य को ले जाता है।

मनुष्य संदेह से श्रद्धा तक पहुँच सकता है और यह अनुभव बताते है कि संदेह से श्री श्रद्धा तक पहुँचा जा सकता है। संदेह के अतिरिक्त कोई कभी भी श्रद्धा तक नही पहुँचा है ? यह तो कह सकते है कि संदेह से कोई सत्य तक नही पहुँचा है, संदेह केवल श्रद्धा तक ले जाता है और जो श्रद्धा तक पहुँचा उसकी जमीन तैयार हो गई। सत्य तक जाना नही होता, सत्य खुद ही आता है मनुष्य का काम है संदेह से श्रद्धा तक आना। उसके बाद प्रतीक्षा करे, धैर्य रखो, तुम्हारे पास सत्य स्वयं आकर खड़ा होगा। संतो का कहना है कि मै खोज-खोज कर तुम्हे थक गया तुम नहीं मिले। आखिर तुम कौन हो?

परमात्मा, यह कहते है। परमात्मा खोजने से नहीं मिलता। मनुष्य खोजेगा कहाँ ? अगर संत का कहना है कि खोजते-खोजते एक बात जरूर घटती है कि वह खोजने वाला स्वयं को खोया हुआ पाता है। जिस समय मनुष्य अपने आप को खोया हुआ पाता है उसी समय से परमात्मा उसके पीछे लग जाता है।

गुरु और शास्त्र के वचनों पर विश्वास रखने का नाम है श्रद्धा। जिसे गुरु के वचनों पर प्रतीति नहीं, जो शास्त्रों को नहीं मानता, उसकी श्रद्धा, श्रद्धा नहीं, वह तो तर्क को ही सब कुछ समझता है। तर्क उस स्वैरिणी स्त्री के समान है, जो कभी एक की बनकर रहती नहीं। जिसे पहिले ग्रहण किये हुए पति से श्रेष्ठ समझती है, उसीके पास पहिले पति को छोड़कर चली जाती है। वह स्थिर होकर एक का पल्ला पकड़कर नहीं रह सकती। इसीलिये उसके बच्चे नहीं होते, उसे रोग हो जाता है। बच्चे होते भी हैं, तो अशुभ दर्शन, अकुलीन होते हैं। उनके कुल गोत्र पिता का पता नहीं रहता, किसको वे पिता कहें? इसीलिये धर्म विरुद्ध तर्क की आस्तिकशास्त्रों में प्रतिष्ठा नहीं। तर्क करने की मनाई नहीं। किन्तु शास्त्रों पर श्रद्धा रखकर धर्म-संगत तर्क करो।

यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण। मनुष्य श्रद्धा से संसार प्रवाह को पार कर जाता है। हमारी श्रद्धा अखंड बत्ती जैसी होनी चाहिए जो स्वयं को ही नहीं अपने आसपास को भी प्रकाशित करती है। सब लोग हृदय के दृढ़ संकल्प से श्रद्धा की उपासना करते हैं, क्योंकि श्रद्धा से ही ऐश्वर्य प्राप्त होता है। श्रद्धा या आस्था के बिना जीवन-दृष्टि तो नहीं होती, जीने का ढर्रा या नक्शा-भर बन सकता है। चाहे गुरु पर हो या ईश्वर पर, श्रद्धा अवश्य रखनी चाहिए, क्योंकि बिना श्रद्धा के सब बातें व्यर्थ होती हैं। अश्रद्धा की अपेक्षा श्रद्धा अच्छी है। लेकिन बेवकूफी की अपेक्षा तो अश्रद्धा ही अच्छी है। हमारी श्रद्धा अखंड बत्ती जैसी होनी चाहिए। वह हमको तो प्रकाश देती ही है, आसपास भी देती है।

वैदिक परंपरा में अर्थात ज्ञानमय परंपरा में अंधश्रद्धा, कल्पना एवम् भावना को प्रधानता नहीं है, वहां केवल बुद्धि को प्रधानता दी जाती है।

प्रेरणा- बाहरी वस्तुयें, व्यक्ति, घटनायें इत्यादि व्यक्ति के लिये प्रेरणा स्त्रोत होते है। जैसे भगवान बुद्ध बोधिसत्व कैसे बने? वे बाहरी जगत के दु:ख को देखकर व्याकुल हुये और दु:ख का कारण खोजने सर्व संग परित्याग कर आत्मज्ञानी बने। कालिदास की पत्नी ने उन्हे मूर्ख कहकर उलाहना किया। उससे प्रेरित होकर वे विद्वान बनने की तीव्र लालसा पाल कर विद्वान बन गये। महात्मा गान्धी को दक्षिण अफ्रीका में काफी कुछ झेलना पडा। उसी कारण अन्याय के विरोध में लडने की उन्हे प्रेरणा मिली। आरम्भ में स्वयं को ज्ञानी समझनेवाले स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस के पास जाकर अपने अज्ञान का पता चलने के बाद उन्ही से प्रेरणा लेकर विश्व में ज्ञान प्रसार करने वाले बन गये। इस तरह बाहरी घटनायें व्यक्ति को प्रेरित करती है।

अंध:विश्वास - हमें विश्वास ही नहीं होता कि हम आज २१ वीं सदी में जी रहे हैं। समाज अपने आपको चाहे कितना ही आधुनिक मानें, विकास के चाहे कितने ही दावे करे, शिक्षा का कितना ही विस्तार हो रहा हो लेकिन अंधविश्वास आज भी हमारे समाज में गहरी पैठ जमाए हुए है। आज भी भूत-प्रेत, डायन-चुडैल, झाड़-फूंक, टोटका आदि अंधविश्वासों का अस्तित्व हमारे समाज में है। सवाल उठता है कि इसके लिए स्वयं व्यक्ति जिम्मेदार है या हमारा समाज, जो पीढ़ी-दर पीढ़ी ऐसे अंधविश्वासों को आगे बढ़ा रहा है। अत: समाज के शिक्षित वर्ग को अंधविश्वास का दामन छोड़ ऐसे अंधविश्वासों

को मिटाने के लिए पहल करनी चाहिए।

भारतीय समाज में अंधविश्वास की जड़ें गहरी हैं। जहां पिछड़े व अशिक्षित लोग अंधविश्वासों के दल-दल में फंसे हुए हैं, वहीं पढ़ा-लिखा व शिक्षित वर्ग भी इस मकड़जाल में फंसा हुआ है। दूरदर्शन पर भूत-प्रेत और तंत्र-मंत्र के धारावाहिक प्रसारित हो रहे हैं। ये धारावाहिक जनता में अंधविश्वास फैला रहे हैं वहीं बच्चों के कोमल मन-मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं। अत: ऐसे धारावाहिकों पर सख्ती से पाबंदी लगनी चाहिए।

अंधविश्वास की जंजीर ने मनुष्य को इस तरह से जकड़ रखा है। आज भी सांप के काटने पर बाजीगरों से इलाज कराया जाता है। मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति पर भूत-प्रेत का साया समझ कर प्रताड़ित किया जाता है। पुत्र प्राप्ति के लिए किसी दूसरे के बच्चे की बलि दे दी जाती है। यह नहीं सोचा जाता कि वह भी किसी का बच्चा है। महिला सशक्तिकरण के इस युग में भी महिलाओं को डायन बता कर पीटा जाता है। इन तांत्रिकों व ओझाओं पर अंकुश लगाना चाहिए।

खोल दो खिड़कियां, ताजी हवा आने तो दो, दूर होगा ये अंधेरा, कल का सुबह आने तो दो...

जिंदगी गुलजार होगी, देख लेना एक दिन, इस जहां से तंगख्याली को जरा जाने तो दो...

उस वक्त आर्यभट्ट ने पांचवीं शताब्दी में जब कहा था कि राहु-केतु कुछ नहीं होते, ग्रहण वास्तव में धरती और चांद की छाया है, तब उनके खिलाफ मठाधीशों ने फतवे जारी कर दिये थे। फिर १५वीं शताब्दी में कोपर निक्स ने कहा था कि जमीन सूर्य के चारों ओर घूमती है। तभी ब्रूनो ने भी जब ऐसी ही कुछ बातें कहीं थीं तो उन्हें जिंदा जला दिया गया था। गैलीलियो ने यह साबित किया कि जमीन घूमती है तो उन्हें घर में ही कैद कर दिया था। डार्विन के सिद्धांत पर सारी दुनिया में आज भी हल्ला मचा रहता है। पिछले पांच सौ सालों में धार्मिक मठाधीशों और रूढ़िवादी विचारधारा के समर्थकों की आवाज सिर्फ धीमी ही नहीं पड़ी है बल्कि अब तो वह धर्म की बातों पर विज्ञान की मोहर भी लगाने की कोशिश होने लगी है। इसे विज्ञान की जीत ही कहेंगे, मगर अब तो वैज्ञानिकों ने हद कर दी और प्रयोगशाला में जीवन को जन्म दे दिया। इस बात पर बहुत हो हल्ला मचा, जैसे कि जीवन-चक्र में दखलंदाजी नहीं करनी चाहिए या वैज्ञानिकों को भगवान बनने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, इस तरह का शोध मानव को विनाश की तरफ ले जायेगा और इस तरह के शोध पर बंदी डालने के कानून बनाने चाहिए। यह भी कहा गया कि यह शोध धरती पर एक नए तरह का आतंकवाद पैदा करेगा। वास्तव में यह सब कहना अपनी जगह पर है, लेकिन विज्ञान और सोच के तरीके में एक बड़ा फर्क है। विज्ञान को समझने और वैज्ञानिक राय कायम करने के लिए मेहनत करनी पड़ती है।

अवैज्ञानिक बातें करने के लिए मेहनत नहीं आडंबर चाहिए। वैज्ञानिक यह नहीं कह सकते कि आज तुम पर शनि का प्रकोप है या गणेशजी ने दूध पीना शुरू कर दिया है या दरगाह के चमत्कार से समुद्र का पानी मीठा हो गया है। उन्हें हर बात साबित करनी होती है और वैज्ञानिक एक-दूसरे पर कड़ी नजर भी रखते हैं। डीएनए ट्रांसप्लांटेशन का विज्ञान हमारे पास पहले से ही था, मगर जिंदगी पैदा करने की तकनीक पैदा करने में वैज्ञानिकों को सफलता नहीं मिली थी, इसलिए यह उतना ही बड़ा आविष्कार है जैसे कि आग को वश में करना, पहिया बनाना, खेती की शुरूआत करना, भाप का इंजन बनाना, परमाणु का विखंडन, अंतरिक्ष में स्पूतनिक भेजना या क्लोनिंग से भेड़ बनाना। जीवन की सबसे छोटी इकाई कोशिका यानी सेल ने जीवन और मौत की परिभाषाएं बदल दीं। जिंदगी और मौत को आत्मा से नहीं समझा जा सकता।

अभी कुछ दशक पहले पता चला कि जीवन की सारी जानकारियां डीएनए में दर्ज होती हैं। किसी जीव के डीएनए का नक्शा बनाने को डीएनए मैपिंग कहते हैं। डीएनए मैपिंग ने एक इंकलाब पैदा कर दिया है। दुनियाभर से लोगों के डीएनए जमा किए गए। अब हर मनुष्य के बारे में पता लगाया जा सकता है कि उसके मां-बाप कौन हैं। इससे जाति, नस्ल, रंग, ऊंची कौम, नीची कौम के भेदभाव नहीं रहे। इस खोज ने हमारी सोच के तरीके बदल दिए हैं। हमारी इस दुनिया में धर्म के ठेकेदारों ने भगवान का जो दायरा बनाया था, वह सिमट गया है। हमारे मुल्ला और पंडित- पुरोहित तो अभी भगवान को पिलाने या समुद्र का पानी मीठा करने में इतने ज्यादा व्यस्त हैं कि जब उन्हें इससे फुरसत मिलेगी, तब कुछ पढ़ेंगे या लिखेंगे। जब तक हमारे ये मुल्ला पंडित व्यस्त हैं, हमारे पास वक्त है कि हम इस नये आविष्कार का जश्न मनाएं। यह आविष्कार हमारे आज की सोच की सीमाओं के पार तक जाने की क्षमता रखता है। यह अपनी कोख में मानवता की सेवा का वादा लिए है, मगर इसी कोख में विनाश की क्षमता भी मौजूद है जो हर नई तकनीक में होती ही है। इस धरती पर तो वो ही लोग ज्यादा हैं, जो इंसानियत के पक्ष में हैं, जो विनाश के पक्ष में हैं वे तो बहुत ही कम अर्थात मुट्ठीभर लोग हैं। विनाश की सोच पर काबू पाना, आज विज्ञान के बस में नहीं है, लेकिन जिस तेजी से विज्ञान आगे बढ़ रहा है, उसमें यह भी संभव है कि वो विनाश पर काबू पा ले।

आज अगर हमारे समाज में अंधविश्वास फैल रहा है तो इसका एक कारण चलचित्र जगत भी है। अंधविश्वास अर्थात किसी भी बात, विचारधारा, दर्शन, प्रवृत्ति या सिद्धांत पर आंख मूंदकर विश्वास कर लेना। सिनेमा के जन्म से लेकर अब तक इसके माध्यम से भूत-प्रेम, आत्मा, तंत्र-मंत्र, नाग-नागिन, नक्षत्र, सूर्य-चंद्रमा, नदी, जंगल, मकान, जानवर दिन-रात, प्रकृति आदि से संबंधित अंधविश्वास हमारे समाज में फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। इसके परिणाम स्वरूप हमारे समाज का एक बड़ा तबका अवैज्ञानिक, अतार्किक व पाखंडी मानसिकता का बन गया है। समझ में नहीं आता कि एक तरफ तो हम शिक्षा, सुसंस्कार व दर्शन के जरिए समाज में वैज्ञानिकता, आधुनिकता व जागरूकता का प्रचार-प्रसार करने की वकालत करते हैं और वहीं दूसरी तरफ अंधविश्वास के दलदल में धकेलनेवाली फिल्मों व धारावाहिकों का भरपूर समर्थन व गुणगान भी करते हैं। सरकार को इस परिप्रेक्ष्य में सकारात्मक कदम उठाने चाहिए। सेंसर बोर्ड को भी चाहिए कि वह अंधविश्वास को प्रोत्साहन देनेवाली फिल्मों के प्रदर्शन की अनुमति न दे।

वर्तमान के आधुनिक व वैज्ञानिक युग में भी अशिक्षित ही नहीं बल्कि शिक्षित लोग भी अंध विश्वासों से घिरे रहते हैं। गांवों में अधिकांश लोग अभी भी अंध विश्वास के शिकार हैं किसी व्यक्ति को मानसिक रोग होने पर उसे ऊपरी चक्कर मान कर ढोंगी साधुओं, तांत्रिकों से झाड़-फूंक, तंत्र-मंत्र कराते हैं। बिना परिश्रम धन प्राप्त करने, संतान उत्पत्ति के लिए अनेक व्यक्ति महिलाएं अपना सब कुछ खो बैठते हैं। बीमार होने, किसी मानसिक परेशानी में पड़ने पर योग्य चिकित्सक की शरण में जाएं, ढोंगी-कपटी लोगों के जाल में न फंसे, क्योंकि इन्होंने तो अंधविश्वासी लोगों को ठगना इसी को अपना धंधा बना रखा है।

आज के वैज्ञानिक युग में भी न जाने कितने अशिक्षित, अज्ञानी व्यक्ति पाखंडी क्रियाओं में फंस अमानवीय कर्म कर रहे हैं। इसके परिणाम स्वरूप दु:ख, दरिद्र, क्षोभ, कष्ट व पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ भी हासिल नहीं होता। कितने ही धूर्त प्रवृत्ति के लोग निहित स्वार्थवश भोले-भोले लोगों को अपने कपट जाल में फंसाकर मूर्ख बनाते हैं। तंत्र-मंत्र की आड़ में

न जाने कितनी महिलाओं का शोषण हुआ। कितने घर बर्बाद हुए किन्तु आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में लोग इस चक्कर में बेवकूफ बन रहे हैं। सरकार को समाज में फैले इन पाखण्डियों का बंदोबस्त करना चाहिए।

अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने भूत के अस्तित्व को चुनौती देते हुए दावा किया है कि भूत-प्रेत नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं होता है। भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र, जादू, टोना सब काल्पनिक हैं और इनमें किसी भी प्रकार की शक्ति नहीं होती। कोई भी सर्प मणिधारी नहीं होता। ७५ प्रतिशत सर्पों में जहर नहीं होता। ऐसा कोई भी हंस नहीं है जो दूध पी ले और पानी छोड़ दे अर्थात पानी से दूध को पृथक कर दे। आशीर्वाद, श्राद्ध, श्राप, स्वर्ग व नरक कोरी कल्पना है। पूर्व जन्म, फलित ज्योतिष अंध विश्वास है। किसी को शक है तो समाधान कर लें।

अन्धविश्वास एक सामाजिक कुरीति है। हमारे देश में बहुत से लोग अन्ध विश्वासी है और इनमें भी महिलाओं की संख्या अधिक है। अन्धविश्वास की सबसे बडी बुराई यह है कि यह आदमी के आत्मबल को ही तोड देता है और उसे नाकारा बना देता है। वह अपनी सफलता या असफलता को इन्ही अन्ध विश्वासों से जोडने लगता है। हर काम में शुभ या अशुभ दिन या समय का सहारा लिया जाने लगता है। यह भले ही कुछ क्षणों के लिये मानसिक सन्तोष प्रदान कर दे लेकिन कालान्तर में यही मानसिक कष्ट का प्रमुख कारण बन जाता है इसलिये अन्ध विश्वासों से बचना चाहिये।

यदि सवा-सौ डेढ़- सौ वर्ष पहले, हम विमानों का वर्णन करने बैठ जाते तो कोई भी यही कहता कि आप अन्धश्रद्धा का समर्थन करते हैं। मानव कभी उड़ सकता है क्या ? पंछी उड़ते हैं। लेकिन उसके पश्चात् राइट बन्धु आये। उन्होंने विमानों की खोज की। और आज करोड़ों लोग नित्य आकाश में उड़ रहें हैं। अब वायु यात्रा साधारण बात है। उस समय का मानव उसका समर्थन नहीं कर सकता था। तो जिस प्रकार डेढ़-सौ वर्षों में विज्ञान की यह प्रगति हुई, उसी प्रकार विज्ञान की और भी प्रगति आगे सौ वर्षों में हो सकती है।

विश्वास और अंधविश्वास के बीच एक महीन सी रेखा होती है। विश्वास का एक सुदृढ़ आधार होता है। किसी निश्चित तथ्य के आधार पर ही विश्वास की सीढ़ियां चढ़ी जाती हैं। विश्वास से अद्‌भुत और असंभव कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अंधविश्वास का कोई ठोस आधार नहीं होता। किसी भ्रम या कल्पना को आधार बना कर वह अपनी जड़ें जमाता है। तांत्रिक और ओझा जैसे लोग उस भ्रम को हवा देते हैं। शीर्ष राजनेताओं, प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आज इन चमत्कारी बाबाओं की खोज रहती है, क्योंकि कम समय में उन्हें किसी चमत्कारी लाभ का लालच रहता है। अंधविश्वास का सम्मोहन उन्हें आकर्षित करता है। सामान्यजन मान्यताओं और परंपराओं के सहारे जीवन जीते हैं। वे हर बात को तर्क की कसौटी पर रख कर नहीं देखते। अंधविश्वास का मनोविज्ञान गहरा होता है। इसे फैलानेवाले उस मनोविज्ञान को समझते हैं। वे जानते हैं कि कैसे कोई व्यक्ति किसी चीज के लिए स्वाभाविक रूप से तैयार किया जा सकता है। उसे वे मान्यताओं और परंपराओं की दुहाई देकर समझाते हैं, जिसे वह सहजता से मान सकता है। वर्तमान समय में अंधविश्वास का यह कारोबार खूब फलफूल रहा है। हमें अंधविश्वासी नहीं, बल्कि ईश्वर विश्वासी होना चाहिए। अंधे का भरोसा कौन करता है? जो खुद देख नहीं सकता है। जो सब कुछ देखता है, जानता, समझता है और सर्वसमर्थ है- वह ऐसा क्यों करेगा? ईश्वर हमारे अंदर ही है। उसकी सिफारिश बाहर से कराने की जरूरत नहीं है। वह किसी प्रतिमा में नहीं है।

अत: सब को छोड़कर अपने दुख-कष्ट निवारण के लिए अपनी ओर उन्मुख होना चाहिए। अपने भीतर ही वह ईश्वर है, जो चमत्कार का भंडार है। वही अंधे को ज्ञान की आंख दे सकता है। उसके अलावा किसी और पर विश्वास करना अंधविश्वास के अंधकार में भटकने जैसा है। इसलिए ईश्वर विश्वासी तो बनें, पर अंधविश्वास से दूर रहें।

प्रत्येक धर्म इस विश्वास पर आधारित है कि संसार को कोई परम सत्ता गति दे रही है। इसी भावना के आधार पर धर्म की नैतिकता संबंधी धारणा विकसित होती है। नैतिक मूल्य भी ईश्वर की इच्छा के बिना नहीं बन सकते। लेकिन जिसे सब कुछ संचालित करना है, वह परम सत्ता किसी एक या दो जनों के लिए अलग से कुछ क्यों करेगा? हम लोगों ने भौतिक प्रगति तो कर ली है, परंतु मानसिक स्तर पर हम संकीर्ण और अंधविश्वासी ही बने हुए हैं। इसीलिए आज शिक्षित एवं सभ्य कहलाने वाले हमारे समाज में अंधविश्वास सिर चढ़कर बोल रहा है। श्रद्धा तो आत्मबलका लक्षण है। विश्वास में प्रेम का निवास है।

हालांकि अथर्ववेद में जादू-टोने, तंत्र-मंत्र का जिक्र मिलता है। संभव है उस समय यह क्रियाएं कारगर होती होंगी। लेकिन आधुनिक युग में जादू-टोनों पर आंखें मूंदकर विश्वास करना ठीक नहीं है।

आस्था और विश्वास को अंधविश्वास में न बदलें- हम ईश्वर पर आस्था और विश्वास रखते हैं। यदि उन पर सच्ची आस्था और विश्वास रखें तो हमारे कार्य बिना किसी गलत तरीके से स्वयं होते हैं। ऐसा अमूमन हर व्यक्ति ने जीवन में एक-न-एक बार तो जरूर महसूस किया होगा। इसलिए आस्था और विश्वास को अंधविश्वास में न बदलें।

धैर्य के बारे में हिंदू धर्म ग्रंथों में काफी कुछ लिखा गया है। यदि पूरी निष्ठा से धैर्य रखते हुए, कोई भी कार्य करेंगे तो वह जरूर पूरा होता है। लोगों में धैर्य न होने के कारण ही अंधविश्वास को बढ़ावा मिलता है। लोग चाहते हैं उनका ही भला हो, दूसरे का सर्वनाश हो। यही कारण है कि वह जादू-टोने की मदद लेते हैं। ऐसे में वे खुद का बुरा ज्यादा कर बैठते हैं।

हर व्यक्ति को कोई न कोई हुनर जरूर आना चाहिए। ऐसे में वह कभी परेशान और विषम परिस्थितियों में भी सकारात्मक रहकर अपने काम को बेहतर तरीके से कर सकता है, अमूमन लोग नौकरी में उन्नति, व्यवसाय में सफलता, प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता के लिए भी जादू-टोने का सहारा लेते हैं। लेकिन यदि ऐसे लोग मेहनत, हुनर और काबिलियत के बल पर इन कार्यों को करें तो सफलता जरूर मिलती है।

अमूमन यह भी देखा जाता है कि लोग वैवाहिक समस्याओं, संतान न होना और कई तरह के रोगों के इलाज के लिए तांत्रिकों और जादू-टोने करनेवाले जादूगर, टोनी की सहायता लेते हैं। यज्ञ-हवन करवाते हैं। यह महज अंधविश्वास है। यदि ऐसे लोग किसी विषय विशेषज्ञ बेहतर चिकित्सक से इलाज करवाएं तो स्वास्थ्य लाभ ले सकते हैं।

रूढ़िवादी - इसे जनता की रुढ़िवादी मानसिकता ही कहा जाएगा कि आज के इस बदले युग में भी वह पुरानी परंपराओं में ही जकड़ी हुई है। मसलन छींक हो जाने या फिर बिल्ली के रास्ता काट जाने पर घर से बाहर नहीं जाना, छोटी-सी बीमारी के लिए सयानों के चक्कर काटना आदि कुछ ऐसी अंध मान्यताएं हैं जो जनता को समय के साथ कदम नहीं मिलाने देना चाहती हैं। जबकि, शास्त्रों में उल्लेख है कि जो होना है वह तो होकर ही रहेगा, फिर ऐसा अंधविश्वास किस काम का, अत: जनता को इस बदले समय में पुरानी परंपराओं को त्यागना चाहिए, ताकि समाज को एक नई दिशा दी जा सके।

रूढिवादिता तथा संकीर्ण मानसिकता तथा कथित सभ्य एवं आधुनिक लोगों में स्पष्ट नजर आती है। जातिवाद के

आधार पर बने समूह कार्यस्थलों पर एक दीवार खड़ी रखते है ताकि परस्पर वैमनस्य एवं कटुता का माहौल बना रहे। महिला हो या पुरुष एक संकुचित विचार धारा से घिरे रहते है। देश के विकास के लिये परस्पर मिलन अति आवश्यक है ताकि हम एक दूसरे के खानपान, रीति-रिवाज, संस्कारों एवं विचार शैली से अवगत रहे। उच्च शिक्षित वर्ग में भी अन्य जातियों के बारे में अज्ञानता एवं सोच जान शर्म महसूस होती है। कई बार तो लोगों का देखने अथवा मिलने का नजरिया ही रूखेपन का अहसास कराता है। अत: युवा वर्ग को स्वस्थ समाज की रचना हेतु उन्मुक्त एवं समता परक विचारों के प्रचार-प्रसार के लिये जागृति लाने की कोशिश करनी चाहिये।

निष्ठा- मनुष्य अपने जीवन में किसी एक शुभ विषय में पूर्ण निष्ठा करले तो उसी में उसका बेड़ा पार है। निष्ठावानों ने अपनी सच्ची निष्ठा के प्रभाव से असम्भव बात को सम्भव कर दिया है। जो चाहा है वही प्राप्त किया है। भगवान् निष्ठावानों की भाँति-भाँति से परीक्षा लेते हैं कि यह अपनी निष्ठा में दृढ़ है या नहीं। या दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि विपत्ति का दान देकर भगवान निष्ठ को पुष्ट करते हैं। निष्ठारूपी वृक्ष में विपत्ति रूप वारि न दिया जाय तो उसकी जड़ें दृढ़ होती नहीं। तनिक सा झोंका लगने से उसके गिर जाने का भय है। इसलिये निष्ठावान पर जो विपत्तियाँ आती हैं, वे उसके हित के ही निमित्त होती हैं। सुवर्ण को जितना ही तपाया जाता है, वह उतना ही खरा निकलता है। निष्ठा के ऊपर जो स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, राज्य यहाँ तक कि सर्वस्व को निछावर कर देते हैं वही सर्वान्तर्यामी प्रभु प्रकट हो जाते हैं।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं- श्रद्धा और आस्था का संबंध बाह्य आडंबरों से कदापि नहीं है। दरअसल, बाह्य आडंबरों और धर्म के वास्ते दिखावा करने से परम पुरुष का कोई लेना देना नहीं है। असलियत में मन के अधिष्ठान में ही परमात्मा का रहस्य समाया हुआ है। किंतु फिर भी मन उस विराट को अपनी सुविधा और स्वार्थ के अनुसार प्रतीकों में खोजता है। लोग पहले पत्थर तराशते हैं, फिर उसमें भगवान को तलाशते हैं, किंतु ईश्वरीय आनंद की अनुभूति केवल उसी के लिए उपलब्ध है, जो पत्थर की बजाय खुद को तराशते हैं।

हम सदैव परमात्मा में ही रहते हैं, किंतु अपने चैतन्य की बागडोर चंचल मन के हवाले छोड़ देने की वजह से परमात्मा के प्रकाश से वंचित रहते हैं। ज्यों-ज्यों सतत अभ्यास से आप अपने मन से मुक्त होते जाते हैं, चैतन्यस्वरूप परमेश्वर का प्रकाश आपके जीवन को रोशन करता जाता है।

एक दूसरे पर विश्वास का होना इन्सान का वो गुण है, जो उसे आगे बढ़ाता है और समाज में प्रतिष्ठा दिलाता है। जब लोग अपनी छवि के अनुसार भरोसा देने लायक व्यवहार नहीं कर पाते, तब वे तनाव में आ जाते हैं। यह बात भी स्पष्ट है कि जब लोग झूठ बोलते हैं तो हमारा मस्तिष्क पूरी तरह इससे वाकिफ होता है। विश्वसनीय लोगों में आत्मसम्मान की भावना कूट-कूटकर भरी होती है। इसलिए वे दूसरों के प्रति भी विनम्रता का भाव बनाए रखते हैं। दुनिया के महान लोग विचार पर बात करते हैं। औसत लोग घटनाओं पर बात करते हैं और छोटे दिमाग के लोग दूसरे लोगों के बारे में बात करते हैं। यानी विश्वसनीय लोगों को आप गप्पे मारते हुए नहीं पायेंगे।

क्योंकि वे जानते हैं कि लोगों के बारे में बात करना समय गंवाना है। इसलिए वे उन विषयों पर बात करना पसंद करते हैं, जो महत्वपूर्ण हैं। विश्वसनीय लोगों में वास्तविक स्थिति को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता होती है। जब हालात उनकी इच्छा के मुताबिक नहीं होते, तब भी वे शांत रहते हैं। उतावले नहीं होते।

मन, चित्त, चिन्तन, चिंता

मन- आदमी के मन की गहराई को समझना किसी वैज्ञानिक के लिए भी आसान नहीं है। मन यानि आत्मा का सूक्ष्म रूप में आविष्कार। आत्मा मन के माध्यम से इन्द्रियों द्वारा विभिन्न वस्तुओं का उपभोग करती है। आत्मा हमारा मूल स्वरूप और मन हमारा सेवक है। लेकिन वह मन ही हम पर सवार होकर अपने ईशारों पर हमें नचाता है। वास्तव में मन रूपी घोडे पर सवार होकर, उस पर संयम की लगाम डालकर और सत्कर्म से काबू करना चाहिये। मन किसी भी तरफ दौडता है और यह उसका स्वभाव है। उसे कर्मद्वारा भय दिखाना चाहिये। कभी-कभी उसे अच्छे कर्म फलों का लालच दिखा कर के भी वश में किया जा सकता है तो मन से हमेशा मित्रता ही करनी चाहिये। उससे शत्रुता रखने से वह संवेदनशील बन सकता है, जब कि मित्रता के मार्ग से उसे अपनाया जा सकता है। तब अपने स्नेह के कारण उससे जैसे कहा जाय वैसे रहता है।

मन की भूख का आकलन नहीं किया जा सकता। तन की भूख तो तनिक है अधिक से अधिक तीन पाव और सेर पयमन की भूख अनन्त है निगले मेरू और सुमेरू। मेरू और सुमेरू पर्वत जैसे-जैसे विशालकाय को भी मन निगलने की क्षमता रखता है। शरीर की भूख कितनी? अतृप्त मन का गुलाम होने के कारण ही मानव दु:खी और बेचैन है। ताकत वर मन को वश में करना है तो योगाभ्यास और वैराग्य द्वारा ही किया जा सकता है। आज तक किसी ने भी मन पर काबू नहीं पाया है, शरीर क्षीण हो जाता है पर मन नहीं। कहते है - **आशा तृष्णा ना मरे, मर मर जाये शरीर।**

दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी का मिलन केवल शरीरों तक न रहे इसी उद्देश्य से विवाह अवसरों पर शास्त्रकारों ने ये प्रतिज्ञायें उनके मुख से कहलवाई है कि पति-पत्नी का मिलन केवल वासना सुख के लिये नही, धर्म, अर्थ काम इन तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति आपसी सहयोग से करे। शरीर का आकर्षण तो क्षण मात्र का है। सच्चा सुख एक दूसरे के प्रगाढ़ मनोमिलन में है। आत्मा, आत्मिक प्रेम का आकर्षण ही गृहस्थी में सुख लाता है। इसलिये शरीर के साथ-साथ मन का मिलना अत्यन्त आवश्यक है।

अकारण विवाद कर झगडा करना भी मन का स्वभाव होता है। उसे दुराग्राही मन कहते है। जो मन संवाद करने के उद्देश्य से विवाद करता है उसे संवादी मन समझना चाहिये। दुराग्राही मन के लोग कहीं भी जाकर झगडे कर बैठते है। यह दुराग्राही मन बडा विचित्र होता है। पागल घोडे की तरह वह इधर-उधर दौडता है। इसके विपरीत संवादी मन वाले लोग किसी भी स्थिति में मन की शान्ति को ढ़लने नहीं देते। प्रतिकूल प्रसंगों में मन शान्त रख कर प्राप्त स्थिति का समाधान ढूंढते है। कोई भी व्यक्ति अकारण विवाद करे तो भी मन का सन्तुलन स्थिर रख कर उसका पक्ष ध्यान में लेकर अपनी प्रतिक्रिया देते है इसलिये संवादी मन दुराग्रही मन से श्रेष्ठ है।

मनोरथ करना या कल्पना करना मन का खेल है। अपनी क्षमता व योग्यता देखकर ही कल्पना करनी चाहिये। कल्पना के साथ विवेक होना अत्यन्त आवश्यक है।

मन मनन करता है। जो मनन करता है वह मुनि है। लेकिन मनन करने से ही मुनि बन जाता तो चोरी करने, हिंसा करने का ही मनन कुछ दुष्ट लोग करते है वे तो मुनि नहीं कहला सकते। इसलिये जो सत्य का मनन करता है वह मुनि है। मुनियों ने अपने सत्य के मनन से ही मानव कल्याण के लिये चिंतन ग्रन्थों की रचना की है। ईश्वर प्राप्ति और शाश्वत आनन्द प्राप्ति

के मार्ग उन्होने मनन के माध्यम से खोजे। उनके मनन के कारण जगत का कल्याण होता है। मनन जितना सूक्ष्म होता है वैसे वैसे सृष्टि का गहन अर्थ स्पष्ट होते जाता है। उससे नई-नई खोज की जाती है।

सत्य की खोज के लिये मन को सूक्ष्म और शुद्ध करना पडता है। कोई प्रसंग जब घटता है तो उसका कारण ऊपरी तौर पर खोजा जाता है, लेकिन वह कारण अधूरा या गलत साबित हो सकता है। इसलिये उसका असली कारण जानने के लिये मन को सूक्ष्म करना होता है। अपराध अन्वेषण विभाग में काम करने वालों में यह गुण होता है क्योंकि इसी गुण के कारण असली अपराधी खोजे जाते है। व्यक्ति के सामने कई बार कई संकट आते है ऐसे समय में बाहर का स्थूल मन घबरा उठता है लेकिन सूक्ष्म मन संकट के कारण की खोज करता है। मन शुद्ध होना यानि ग्रहणक्षम होना। पूर्व ग्रहों से दूषित मन सत्य की खोज में बाधा निर्माण करता है जिससे गलत निष्कर्ष निकल सकते है। सत्य की खोज के लिये मन सूक्ष्म और शुद्ध बनाना पडता है।

मन यदि अच्छी दिशामें जा रहा हो तो उसे बीच में नही रूकना चाहिये। राह में जो बाधायें आती है वे मन को अपने ध्येय से विचलित कर देती है। मन को केवल अपने ध्येय की ओर बढ़ने की प्रवृति हो व इधर-उधर न उलझे। अन्यथा बीच में रुकने लगे तो जीवन में दु:खी, हताश और असफल होना पडेगा।

मन सूक्ष्म हो सकता है वैसे ही स्थूल भी हो सकता है। जिस तरह पानी ठंड में जम कर बर्फ बन जाता है और गर्मी बाष्प बन जाता है उसी तरह बर्फ की तरह जमने वाला स्थूल मन होता है। ऐसे मन में अनेक इच्छाये आकांक्षाये भरी होती है। जैसे वह पूरी वासना की गठरी हो। स्थूल मन स्वार्थ केन्द्रित होने से केवल स्वयं के बारे में ही विचार करता है अपने मनोरथ ही सोचता है। गर्मी से पिघल कर बर्फ जब पानी बनता है और पानी उबल कर भाप बनती है तब वह व्यापक स्वरूप में होती है। मन भी ऐसा ही है अपना स्वार्थ छोडकर संसार के कल्याण के लिये ऐसा मन दया से पिघलता है और दूसरों के दु:ख के प्रति सहानुभूति रखने वाले का मन विशाल और व्यापक बनते है। ऐसे मन जिन्हें मिले उन्हें महान लोगों के तौर पर जाना जाता है।

मन हमारे विचारों, यादों तथा अनुभूतियों को बढ़ाता है। मनुष्य मन की रचना अत्यन्त उलझी हुई है। ऊपर से चेहरा देखकर मन की यह उलझन जानी जा सकती है ऐसा नहीं है लेकिन चेहरे के पीछे एक चेहरा होता है जो दिखता नहीं। मनुष्य दिखता तो शरीर से है पर वह रहता है अपने मन के संसार में। उस मनोमय जगत में हरदम कुछ न कुछ उधेड बुन होते रहता है। विचारों का ढ़ेर लगता रहता है और ढ़हते रहते है। अनेक कल्पनाओं के महल बनते टूटते हैं। अनेकों संकल्पों के गुब्बारे उठते है और फटते है इसलिये अपना मन जानने, संवारने का प्रयत्न करना पडता है अन्यथा मन दिशाहीन हो जाता है।

मन को मजबूत करने के लिये, बलवानों का आदर्श लेना चाहिये। लेकिन उससे पहले मन ने उस आदर्श को स्वीकार करना चाहिये। केवल स्वीकार ही नहीं, उस पर विश्वास कर उसके अनुसार आचरण करने की कोशिश भी की जानी चाहिये। दिव्यता स्मरण ही ईश्वर का स्मरण है और उसी से मन बलवान शक्तिशाली बनता है।

मन अशान्त क्यो रहता है? इस प्रश्न का उत्तर मानसिक रोगों के वैज्ञानिक भी ढुंढ रहे है। मन की अशान्ति वासना होती है, जबकि वासना मुक्त मन शान्त होता है। मन सतत कामनाओं से भरता रहता है। जब तक कामनाओं का प्रभुत्व रहेगा मन अशान्त व उद्विग्न रहेगा।

मानव का मन हमेशा लेता रहता है संग्रहीत करता रहता है। मन की पोटली कई चीजों की स्मृतियां होती है। यह पोटली कभी नही भरती। मानव मन विस्तृत, अथांग और संग्रहक है। मन की तिजौरी में अच्छे-बुरे, विचारों का संग्रह सतत होता है। लेकिन वह कभी मन को स्थिर नहीं होने देता। इसलिये मन में किसे प्रवेश देना है और किसे नहीं इसका विचार होना आवश्यक है। उसके लिये ध्यान, मनन, चिन्तन आदि मार्गों पर सतत चलना चाहिये।

मन और वाणी का गहरा सम्बन्ध है। मन में विचार उत्पन्न होते है, वाणी से वे शब्दों के रूप मे निसृत होते है। मन और वाणी शुद्ध हो तो विचार भी शुद्ध होते है और उच्चारण भी, लेकिन उसके लिये मन और वाणी का संयम होना पडता है। कोई कुविचार पहले मन में घर न कर जाये, वहाँ पर वह पैठ जमाता है, बढता है और मन को घेर लेता है। उस विचार पर मनन करता है और उस विचार-सोच के अनुकूल घटना घटते ही वाणी द्वारा वह विचार शब्दों के रूप में बाहर निकलता है। वह यदि अपशब्द रहा तो कईयों के मन को आघात करता है, अनेक शत्रु, उत्पन्न करता है। इसलिये ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर आदि विचार रूपी शत्रुओं को मन में प्रवेश नहीं करने देना चाहिये मन के आसपास सद्विचारों की संरक्षक आड खडी करनी चाहिये तब वाणी पर अपने आप नियंत्रण आ सकेगा।

शृंगार करना कोई बुरी बात भी नहीं, लेकिन बाहर से आप सुरूचि पूर्ण वेशभूषा में हों साथ में भीतर से ही सुंदर हों तो आपका सौंदर्य द्विगुणित हो जायेगा, आपकी व्यक्तित्व के कुछ अहम् हिस्से हैं ये जिन्हें आप किसी भी तरीके से नजर अंदाज नहीं कर सकते... तन के साथ-साथ मन को भी खूबसूरत बनाना सीखें।

अवचेतन मन क्या है ? हमारे शरीर या दिमाग में इसका स्थान कहां है ? वैसे भी अवचेतन मन को देखने, ढूंढने या अहसास करने के लिए न तो ध्यान लगाने की जरूरत है और न ही किसी रत्न या चमत्कार की। बस आपको अपने जीवन के भीतर, इर्दगिर्द तथा अपने क्रिया-कलापों पर ईमानदारी से नजर डालनी होगी। यह प्रक्रिया यदि एक बार शुरू कर दें, तो हम अपने जीवन का पराधीन परिस्थितियां होते हुए भी अपने विचारों, अपनी इच्छाओं के अधीन कर सकते हैं। हम क्षण-प्रतिक्षण अपने जीवन को नियंत्रित करते हैं, किन्तु इसका अहसास करते ही नहीं या अहसास करने पर भी पहचान नहीं पाते। पिछले एक-डेढ दशक से जब से पूरी दुनिया में असंतोष तथा अराजकता का साम्राज्य अपनी जडें जमाने में सफल होता-सा प्रतीत हुआ, तब अनेक मनोविज्ञानियों और खुले दिमाग से सोचने वाले वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर गया। इन मनोविज्ञानियों और वैज्ञानिकों के बीच वैज्ञानिक संगठनों के बाहर एक बात पर सहमति हो गई लगती है कि हमारी चेतना परा प्रकृति और मन के भीतर चल रही रासायनिक प्रक्रिया जनित ऊर्जा सृजन व्यवस्थाओं का जो परिणाम मिलेजुले रूप में सामने आ रहा है, वह भौतिक शरीर पर परिलक्षित हो रहा है। यह वह बहुआयामी व्यवस्था है जो हमारे मन के भीतर से सृजित होकर भौतिक शरीर में निवास करती है और जिस क्षण शरीर मृत होता है उसी क्षण वह बहुआयामी व्यवस्था गायब हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे भौतिक को संचालित करने के लिए इस बहुआयामी व्यवस्था का होना ही एकमात्र आवश्यकता है। हम सबके भीतर एक अवचेतन मन होता है, जो मस्तिष्क और शरीर के बीच सेतु का काम करता है।

अत: इसका आधार घना भौतिक पदार्थ होता है, किंतु इस सेतुरूपी मन को निर्देश देने के लिए हमें आध्यात्मिक मिशन नियंत्रण की जरूरत होती है और यह मिशन नियंत्रण ही हमारी अवचेतना है। यह अवचेतन स्तर ही अतीत की सारी घटनाओं, भविष्य की चिंताओं और आशंकाओं-अपेक्षाओं तथा वर्तमान की क्षणिक सोच को एक व्यवस्थित रूप देते

हुए अपनी अहम भूमिका निभाता है। संक्षेप में हमारी सोच और चेतना का मिलाजुला रूप ही वह दृष्टि है जो हमारी व्यक्तिगत सोच या भावना का विकास करती है। यही भावना हमारे चारों ओर एक ज्ञान का घेरा ऑरा बनाती है जो व्यक्ति को प्रभावी बनाता है। हमारे जितने भी अवतार हुए हैं उनके चेहरे के चारों ओर एक प्रकाश घेरा भी तो यही ऑरा है। जब भी हम किसी व्यक्ति के बारे में यह राय व्यक्त करते हैं कि वह अच्छा है, खराब है, बहुत अच्छा है या बहुत खराब है, भला है, बुरा है या और कुछ है तो यह राय उसके विचारों से जनित प्रतिबिंब या छवि पर आधारित होती है और इन्हीं विचारों का असर उस व्यक्ति के चारों ओर, उसके घर या कार्यस्थल पर भी साफ नजर आता है। यह असर सकारात्मक या नकारात्मक वातावरण बनाता है। सकारात्मक वातावरण में स्वत:ही चुंबकीय तत्व व्याप्त होता है जो अन्य लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। जब मन में सकारात्मक विचार आने लगते हैं तो अवचेतन मन सक्रिय होने लगता है और हमारे क्रियाकलापों में शुद्धता आने लगती है।

मन मनुष्य का भावना प्रधान है। मनुष्य के मन पर भावना और बुद्धि का समान असर होता है। अन्य प्राणियों के मन पर भी ऐसा असर होता है लेकिन मनुष्य की तुलना में बहुत ही कम होता है। मानव मन भावना और तर्क के व्यूह में उलझा रहता है। इन दोनों गुणों की रचना मन से होती है। इसलिये अतिभावुक या अतितार्किक मन निश्चित निर्णय नही कर पाता। अत्यन्त भावुक होकर लिये गये निर्णय अन्धविश्वास की और घुस सकते है। वहां कर्त्तव्य की बजाय भावना को महत्व दिया जाता है। इसलिये अति भावुकता मोह में डाल कर अंतत: नुकसानदायी होती है। अत्यन्त तार्किक मन भी कहीं आस्था न रखने के कारण लडखडाता रहता है। अति भावुकता और अतितार्किकता दोनों ही घातक होते है इसलिये भावना और बुद्धि का समन्वय करना चाहिये।

मन विचार प्रसार का केन्द्र है। विचार निर्मिति का प्रभाव शाली केन्द्र है। जहां विचार उत्पन्न होते है और वहीं विचार वाणी के माध्यम से शब्द रूप लेकर बाहर निसृत होते है। इन शब्दों से मन का विचार स्तर जाना जा सकता है। मन का विचार मिलते किधर से है? बाहरी जगत के क्रिया कलापों से अर्थात इन क्रिया कलापों का निरीक्षण, परीक्षण, समीक्षण करने हेतु शरीर के ऊपरी यानि बाहर की और ज्ञानेन्द्रियों की रचना की गई है। कान बाहर है, आंख, नाक, त्वचा बाहर है जीभ भी बाहर निकलती है ये इन्द्रिय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन सम्वेदनाओं से बाहरी बातों का ज्ञान मन तक पहुँचाते है और मन को विचारों का खाद्य मिलता है। वह अगर शुद्ध हो तो विचार भी शुद्ध और पवित्र होते है इससे विपरीत हो तो विचार भी अशुद्ध और अपवित्र होते है।

जो मन नीर-क्षीर विवेक कर सके वह राज हंस के समान है। राज हंस जैसे दूध का दूध और पानी का पानी अलग-अलग कर देता है। वैसे यह मन अच्छे-बुरे की परख कर सकता है। राज हंस की यह प्रवृति जो नहीं अपना सकता वे बगुले प्रवृति के होते है। बगुला प्रवृति अच्छी नहीं होती है क्योकि वहाँ पर सारासार विवेक नही होता है। वह मानसरोवर में भी जाकर राज हंस की तरह मोती नहीं खाकर पानी मे मछलियों की कामना करता है। मानव मन ऐसा ही है। यह सम्पूर्ण विश्व एक मानसरोवर है और जिन लोगों का मन राज हंस की तरह विवेक पूर्ण है वे आनन्द प्राप्त कर सकते है और जिनका मन बगुला स्वरूप ही है उनके भाग्य में दु:ख ही आते है।

आमतौर पर विकार मन पर आक्रमण कर चले जाते है तब मन सम्भल कर पश्चाताप करता है। यूं तो मन में गुस्सा होना मन का स्वभाव है लेकिन वह आता है तो अचानक आता है। उस समय मन असावधान होता है। घटना चाहे कितनी ही

मामूली क्यों न हो, मन उससे तुरन्त एक रूप हो जाता है। इस घटना से प्रेम की प्रतिक्रिया हो तो प्रेम और द्वेष की प्रतिक्रिया हो तो द्वेष व्यक्त करता है। राह में कही सिक्का गिरा हो तो उसी क्षण मन का आदेश हाथ तक जाकर वह सिक्का हाथ से उठाया जा सकता है। किसी सुन्दर, आकर्षक वस्तु या व्यक्ति की और मन आंख के रास्ते दौडता है। इस तरह मन उन भावनाओं के आक्रमण में बह जाता है। कार्य होने के बाद वह सतर्क होता है। इससे सिद्ध होता है कि मन के नियंत्रण के लिये अत्यन्त सतर्क एवम् जागृत होना चहिये।

सच्चा सुख मन के मानने पर निर्भर होता है। सुख या दु:ख परिस्थिति के अनुरुप तय होता है। अच्छी तरह से उतीर्ण होने का इच्छुक छात्र सोने का सुख त्याग कर कठिन परिश्रम से पढ़ाई करने के दु:ख को सुख मानता है क्योंकि आरम्भ मे दु:ख जैसा लगे की वह अन्त सुखदायी होता है। कुछ स्थितियों में सुख-दु:ख जैसा लगता है। जैसे कोई व्यक्ति अपने प्रियतम से दूर है और उसे उसी समय इच्छित लाभ प्राप्त हो जाता है तो भी उसे उसी समय सुख प्राप्त नहीं होता है। इस तरह सुख और दु:ख की स्थिति मन की स्थिति से ही तय होती है।

हमेशा अच्छा ही हो, हमारे अनुकूल ही हो, यह सोचना मनुष्य स्वभाव का अंग है। लेकिन अच्छा बुरा करने वाली नियति एक ही है और अच्छा बुरा करने में नियति का उद्देश्य भी अच्छा ही होगा, एक बार मन में यह ठान ले तो अनुकूल या प्रतिकूल कुछ भी हो। नियति का उद्देश्य समझने पर मन अपना संतुलन नहीं खोता। ऐसा मन फिर ज्यादा संवेदनशील, गुण ग्राही और ज्ञान ग्राही बनता है। ऐसे मन को आनन्द की डगर मिल जाती है और दु:ख में भी सुख देखने की कला प्राप्त होती है।

साधारण व्यक्ति का मन प्रवाह पतित होता है। पानी सहज रूप से उतार से लुढकता है। पानी जिस तरह नीचे की और बहता है, उसी तरह सहज रूप से मन नीचे की तरफ दौडता है। उसे उच्चमूल्य या ध्येय नही होता है। लेकिन उसमें असाधारण बनने की क्षमता होती है उसे पहले जान लेना चाहिये, पहचान कर बढ़ाना चाहिये और बढ़ाकर संजोना चाहिये। जन्म से कोई भी कलाकार पैदा नही होता। अपने अन्दर छिपी प्रतिभा कोई पहचानता है तो प्रशिक्षण तथा प्रयत्नों के साथ उसे जागृत किया जाता है, इन सब के लिये मन मानना चहिये एक रात के प्रयत्न कर लेने से कोई सफल नहीं बन जाता उसी तरह मन भी थोडी सी मेहनत से तैयार नहीं होता। उसे निरन्तर दीर्घकाल के प्रयत्नों की आवश्यकता होती है।

मन रस ग्राहक है। किसी व्यक्ति या वस्तु में रूचि लेना, उसका आस्वाद लेना मन को भाता है। निन्दा सुनना या निन्दा करने में मन को बडा मजा आता है। कोई हमारे विरोधियों की निन्दा करे तो मन बडे मजे से उसमें शामिल होता है । किसी खास अप्रिय व्यक्ति को निन्दा सुनने में विशेष रूचि उत्पन्न होती है, उस समय अपना कोई होश नही रहता और यही हाल आत्म प्रशंसा के समय होता है। कोई गैर आदमी हमारी प्रशंसा करे तो मन खुश रहता है और हमारे पीठ पीछे भी किसी ने प्रशंसा की और हमें बाद मे भी पता चले तो भी मन प्रसन्न रहता है और बुराई सुनकर मन खिन्न रहता है इसलिये मन रस ग्राहक है।

मन का एक पहलू ऐसा भी है कि मन सूक्ष्म से सूक्ष्म बनता है और बडे से बडा भी बन सकता है उसे हर तरह का आकार दिया जा सकता है। उसमें कभी सद्भावना, कभी दुर्भावना और कभी अभावना भी पैदा हो सकती है। मन जिस विचार में लगायें, वैसा ही आकार धारण करता है उसका खुद का कोई आकार नहीं होता। इसलिये मन को उचित आकार हमें ही देना पडता है। हम उसे जो आकार देंगे वह उसके अनुसार ही काम करता है इसलिये हमेशा सद्भावना रखने की सीख मन को देनी चाहिये।

मन अनेक शक्तियों का केन्द्र है। संसार के समस्त ज्ञान और कलाओं का बीज मनुष्य के मन में है, क्योंकि नित नये संकल्प करना मनुष्य मन का असली स्वभाव है। इस स्वभाव के कारण उसे मर्कट मन यानि बन्दर की तरह चंचल मन भी कहते है। मन की समाधि लग सकती है, उसे स्थिर और शान्त करना पडता है। उसके लिये केन्द्र पर मन के तल की एक ही शक्ति पर मन स्थिर करना होता है। उसी से मन अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है पर उसके लिये नियोजन के साथ कदम उठाने चाहिये।

मन एकाग्र हो सकता है। वह चंचल है, मगर स्थिर किया जा सकता है। लेकिन मन का सिर्फ स्थिर होना ही जरूरी नहीं है। उसे सन्तुष्ट रखना पडेगा। इसका वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाईबल इत्यादि महान ग्रन्थों में उन धर्म वेताओं ने एक ही उपाय बताया है कि ईश्वर में मन स्थिर करो। दुनिया में विज्ञान के बदले हुवे विकास में नैतिकता की गिरावट आ रही है इसलिये नैतिकता बढ़ाने के लिये उसका मन स्थिर और सन्तुष्ट होना बहुत आवश्यक है और यह जरूरत सिर्फ ईश्वर की शक्ति से ही पूरी हो सकती है। ईश्वर ही सभी सुखों का सागर है। मन को ईश्वर का अस्तित्व स्वीकारना चाहिये।

मनुष्यों के मन का प्रधान धर्म है कि उसके सुख का कुछ न कुछ आधार होता है। जिस चीज या व्यक्ति से सुख मिलने की सम्भावना लगे उसी के चिन्तन में मन खो जाता है। उम्र और अवस्था के स्तरों के अनुसार ये चिन्तन अलग-अलग होते है बचपन में चिन्तन के विषय खेल अध्ययन इत्यादि रहते है, युवावस्था में धन, पैसा, मान, यश, ख्याति, जीवन साथी पाना इन्ही विषयों का चिन्तन रहता है। वृद्धावस्था में संकल्प पूर्ति तथा जीवन की सखोलता का चिन्तन हो सकता है। चिन्तन के अन्य स्तरों पर साधु का ईश्वर चिन्तन, गृहस्थ व्यक्ति का ईश्वर चिन्तन, कामी व्यक्ति का स्त्री चिन्तन इत्यादि विषय होते है। मन का यह चिन्तन व्यक्तित्व निर्माण करता है।

हम जब यह कहते हैं कि कोई व्यक्ति क्षुद्र है, तब उसके मन में औरों के प्रति बुरी भावनाये अधिक होती है। दूसरों के दोष, अभाव, त्रुटिया आदि ही वह देखता है उसका मन विशाल हो सकता है लेकिन उसमें दुर्भावनायें भरी होती है। इसकी बजाय वह औरों के सद्‌गुण, भलाई, विशेष कला कौशल की जानकारी अपने मन में रक्खे और हमेशा उसका उच्चारण करे तो वह क्षुद्र नहीं होगा, उसका मन विशाल कहलायेगा। अपने मन में कभी भी क्रोध को न तो जगह ही दो और न क्रोध का प्रवाह होने दो।

केवल साधु का ही मन उच्च भावना से युक्त होता है उसके मन का स्तर बहुत ऊंचा होता है। क्षुद्र मन के लोग उस बारे मे सोच भी नहीं सकते। मन को उच्च स्तर पर ले जाने के लिये साधु कठिन परिश्रम करते है। यह मन न किसी की सुननेवाला और चंचल है। एक बार हवा को समेटा जा सकता है पर मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है। यह मन योग से काबू में किया जा सकता है। चंचल मन को रोकना कठिन है रोक देने के पश्चात उसे स्थिर रखना उससे भी अधिक कठिन है क्योंकि वह स्थिर नहीं रहता। साधु महात्मा इसी तरीके से अपने मन पर संयम रखते है। यह निश्चित है कि मन वश में किया जा सकता है।

मन को ईश्वर प्रेम से भर दो। मनुष्य का मन भी पत्थर बन सकता है। भाव, प्रेम, संवादहीन मन यदि ईश्वर के प्रेम में मगन हो जाय तो मन खिल उठता है। पूरा जडत्व दूर होता है, चेतना का संचार होता है और मन में दिव्यता जागती है। अच्छे गुणों का चिन्तन करने वाले मन में दिव्यता प्रकट होगी, दिव्य जीवन प्राप्त करता है।

मानव मन की शक्ति असीम है। मन सूक्ष्म होकर भी व्यापक है, इसलिये उसे आकाश की उपमा दी है। आकाश जिस

प्रकार सबको व्याप्त करता है, उसी तरह मन अधिकतर विषयों का विचार करता है। मन की दो अवस्थायें है जागृत एवम् सुप्त। जागृत अवस्था में वह प्रत्यक्ष क्रिया करने के लिये शरीर एवम् इन्द्रियों को प्रवृत करता है। पर सुप्त अवस्था में भी वह क्रियाशील रहता है। निद्रावस्था में मन दिन भर या उससे पहले की अधूरी इच्छायें स्वप्न के रूप मे भुगतता है। जागृत अवस्था का अधूरा कार्य वह सुप्तावस्था में पूरा करता है। इसलिये उसे ज्योति स्वरूप कहा गया है। ज्योति उज्वली सफेद होती है तथापि मूढ़ या अज्ञानी व्यक्ति का मन अज्ञान के आवरण मे होता है। ज्ञान की दिशा में मन को प्रेरित करने पर वह आवरण रहित होकर व्यापक बनता है।

इच्छा करना मन की एक विशेष व प्रबल शक्ति है। इच्छा का असर होते ही मन चंचल हो जाता है। असीम इच्छायें मन पर कब्जा कर लेती है। मनो विकास की राह में कुछ मोड खतरनाक होते है, जिनमें इच्छा की अनिवार्यता प्रमुख है। यदि इच्छा रूपी घोडे को विवेक बुद्धि की लगाम न हो तो ऐसे घोडे की सवारी करने वाला भटक जाता है। मन वह सफेद कपडा है उसे जिस रंग में डुबो दो उस पर वही रंग से रंग जायेगा। अपने मन को कभी भी बीती हुई बातों से बोझिल मत करो। अपने मन को मन्दिर बनाओ और उसमे प्रीति बसाओ। मन की दुर्बलताओं से अधिक कोई पाप नहीं है।

मन के दो स्तर होते है। सूक्ष्म शुद्ध या पवित्र मन। शुद्ध पवित्र सूक्ष्म मन में सदुपदेश या सद्विचार आसानी से प्रवेश कर लेते है। इसके विपरीत जड, अशुद्ध मन में वे विचार आसानी से नहीं जाते। वे ऊपर-ऊपर से चले जाते है। सद्विचार सुनते सभी है लेकिन आचरण हर कोई नहीं कर सकता। इसका कारण है मन कि स्थिति। हजारों व्यक्तियों में कोई एक साधुवृति वाला होता है। मन शुद्ध करना सबका दायित्व है। शास्त्र, धर्मग्रन्थ, साधु संत सिर्फ सद्विचारों का केवल मार्गदर्शन कर सकते है लेकिन मन को शुद्ध तो स्वयं करना पडेगा।

मानसिक विकृति, मनोरोग या मनोविकार आजकल काफी फैल रहे है इसका कारण है मानसिक दुर्बलता, जिसका मन मूल रूप से दुर्बल होने के कारण सकारात्मक दृढ़ विचार नहीं कर पाना। हठी प्रवृति, अपनी ही बात सही है, यह प्रवृति भी मनोविकार उत्पन्न करती है। भावी समय की व्यर्थ चिन्ता करना मनोविकार बढाता है। धन सम्पत्ति, प्रतिष्ठा विद्या इनके कारण मन में उन्माद होता है ऐसे लोग मोह या भ्रम में रहते हैं। लकवे जैसे रोग होने से भी मन विकृत हो जाता है। मन सतत् उदास विचारों में डूबे रहने के कारण मन में अनेक विकार बनते है।

मन का सन्तोष स्थिर रखने के लिये किसी प्रकार का व्दन्द उत्पन्न न हो। निर्धारित ध्येय का संधान खंडित होने पर दु:ख और अशान्ति प्रवेश कर मन को अस्थिर कर देते है। साथ ही मतभेद होकर मन का सन्तोष लुप्त होकर आत्म विश्वास भी नष्ट हो जाता है इसलिये बिना विवाद किये दो परस्पर भिन्न मतों में समझौता करे।

कल कल बहने वाले पानी का प्रवाह आकर्षक लगता है, लेकिन ठहरे हुये पानी का गड्ढा कभी भी अच्छा नहीं होता है। उसी तरह मन भी पानी जैसा प्रवाहित होना चाहिये। प्रवाहित मन सन्देह, विकार, तर्क का मैल बाहर निकाल कर वहा ले जाता है। प्रसन्न मन का प्रवाह आस पास के प्राणियों को आनन्द देता है। स्थिर ठहरा हुआ मन कुटिल, जलने वाले, ईर्ष्यालु द्वेष करने वाले व्यक्तियों का होता है। यह मन विकार, सन्देह, कुतर्क को संग्रहित करता है और हमेशा चिन्ताग्रस्त, चिडचिडा होता है। ऐसे लोगों के पास कोई फटकता नहीं इसलिये मन हमेशा प्रवाहित ही रखना चाहिये।

मन की मदद बुद्धि को होती है। मन जो संस्कार ग्रहण करता है वही संस्कार बुद्धि को देता है। वास्तव में बुद्धि मन से श्रेष्ठ होती है, लेकिन बाहरी सम्वेदना, बाहरी घटना ज्ञान की पहली अनुभूति मन लेता है। पहले सभी विचार मन के पास

एकत्रित होते है। मन इन विचारों को छांट नही सकता क्योंकि मन चंचल होता है और छांटना मन का स्वभाव भी नहीं है। किसी तितली की तरह मन अनेक दिशाओं में आकर्षित होता है। वह पहले उपरी विविधता देखता है। हो सके उतनी जानकारी लेकर वह बुद्धि के पास छंटनी के लिये भेजता है यह उसका काम है। बुद्धि और मन का तालमेल हो गया तो मन बुद्धि को जो चाहिये वही भेजेगा इसलिये मन और बुद्धि का संयोग व सहयोग आवश्यक है।

मन भटकाव का कारण है वासना। वासनायें मन को चैन से नहीं बैठने देती। उसे शान्त करने कुछ न कुछ कर्म करना पडता है। कर्म करना हो तो संसार से सम्बन्ध आता है। संसार का उपयोग कर अपनी वासनायें पूरी करने की कई कल्पनायें मन में उत्पन्न होती है इस कारण मन को चैन नहीं मिलता है। वासना पूर्ति के लिये बाहरी जग को छोड कर अन्य मार्ग नहीं होता और बाहर निकलना हो तो संघर्ष अनिवार्य है क्योंकि कुछ दिये बिना कुछ मिलता नहीं, लेकिन वासना पूर्ति की तीव्र इच्छा जब जागृत होती है तब मन बिना मेहनत, बिना दाम के छोटे व गलत रास्तोंसे प्राप्त करने का विचार करता है और यही मन का मार्ग भटक जाता है। एक बार मन की दिशा भटक गई तो उसे वापस मार्ग पर लाना कठिन होता है इसलिये वासनाओं को समय पर रोकना आवश्यक है।

मन से कभी हार मत मानो, उसके सामने हथियार मत डालो। मन को नियंत्रण में रखो। मन सही करो तो फिर जिधर जाना होगा उधर ही लेकर जायेगा। मन ही बिगडा हुआ हो तो गलत जगह लेकर जायेगा। जिसका मन पवित्र नही, उसका कोई कर्म पवित्र नहीं हो सकता। किसी को आदर्श मान कर ज्ञान, पूजा, पाठ और ध्यान द्वारा मन को ऊंचा उठाये। हर एक ने अपना-अपना संसार बसा रखा है। जैसी विचार धारा बना लोगे वैसे ही संसार को देखोगे। संसारिक जीवन बिताते-बिताते मनुष्य मौन के परम आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाता। दुनिया में जितने भी महापुरुष हुये है उन्होने मौन का सहारा अवश्य लिया है। महापुरुष कहते है मन को पवित्र बनाओ। अन्त:करण की निर्मलता उसकी पारदर्शिता है।

मन के दोषों का तल मिलना कठिन होता है। मनुष्य के पास बुद्धि हो तो किसी कला के बल पर वह ख्याति अर्जित कर सकता है। उस कला के कारण जग उस व्यक्ति की और आकर्षित होता है। किसी व्यक्ति की विद्या, बुद्धि, सम्भवतया एक दिन में पहचानी जा सके लेकिन उसके मन के दोष तुरन्त पहचानना असंभव होता है। इसलिये लोग किसी की विद्या या बुद्धि पर मोहित होते है और उसके मानसिक दोष जाने बिना उस पर पूरा भरोसा रखकर, कालान्तर में ठगे जाते है। बाद में पश्चाताप से कोई लाभ नहीं होता है। इसलिये केवल गुणवता के बजाय मानसिक शुद्धता, पवित्रता देखना अत्यन्त आवश्यक है।

मन की स्वस्थता का भान नहीं रहता कि मन कहां जा रहा है? मन अक्सर अधोगति की और अधिक जाता है और इसे रोकना ही मानसिक रूप से स्वस्थ होना है। अच्छे लोगों की संगत से मन स्वस्थ रहेगा और बुरे लोगों की संगत से मन दूषित होकर अस्वस्थ होगा। कहावत है मन के हारे हार है मन के जीते जीत तात्पर्य मन एक ऐसा केन्द्र है जहाँ से सब सुखी हो सकते है और दु:खी भी हो सकते है। मन पवित्र है तो सारा विश्व अच्छा है और यदि मन अपवित्र है तो सब कुछ गडबड है इसलिये कहा गया है मन चंगा तो कठौती में गंगा अतएव मानसिक सम्पन्नता अत्यन्त आवश्यक है और इसके लिये आवश्यक है तत्व चिन्तन, अच्छी संगत, सेवा और परोपकार जैसे शुभ कर्मों में सदैव लिप्त रहना।

हमारा आज का दिन कल के दिन से उगता है इसलिये कल के कर्मों का प्रभाव आज पर निश्चय ही होता है और आज के कर्म पर कल का कर्म निर्भर होता है। कल-आज-कल की इस गति में मन का हिस्सा बडा होता है। क्योंकि कर्म की

गति की मूल प्रेरणा मन से मिलती है। इसलिये पिछले कर्म से वही सम्बधित होता है। सुख-दु:ख के प्रत्यक्ष परिणाम शरीर पर दिखते है लेकिन सूक्ष्म परिणाम मन पर ही होते है। इसे ही सूक्ष्म संस्कार कहते है। इन संस्कारों से मन को आकार मिलता है और उसके अनुसार मन कई विकार उत्पन्न कर विभिन्न कर्म प्रकारों में उलझता है।

पंच ज्ञानेन्द्रिय मानव को मिला हुआ वरदान है। इन पांचों के पीछे मन होता है। इन पांच द्वारों से मन बाहरी सुख-दु:ख की संवेदना अन्दर लाता है। मन और इन्द्रियों का सम्बन्ध सही रखना आवश्यक है। इन इन्द्रियों में यदि मन न हो तो शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध और रस की अनुभूति ही नहीं होगी। आखों में मन न हो तो सामने का दृश्य भी समझमे नही आयेगा। जीभ में मन न हो तो व्यंजन का स्वाद अनजान होगा। कान में मन न होगा तो सुना हुआ अनसुना रह जायेगा। इसलिये यह चंचल व बलवान मन इन इन्द्रियों द्वारा सुयोग्य प्रसारण करता है और दुर्बल मन अयोग्य प्रसारण करेगा। इसलिये मन को सुदृढ़ स्वस्थ, पवित्र और प्रसन्न होना चाहिये।

मन में हमेशा विचार तरंग उठते रहते है। उसमे अनेक भावनाओं के ज्वार उठते है जो वाणी के माध्यम से मन प्रकट करता है। शब्दों का यह प्रकटीकरण सावधानीपूर्वक करना चाहिये। उसे ऋतु कहते है। ऋतु यानी हमें जितना जो भी समझा है, पता है वह ज्यों का त्यों वाणी द्वारा शब्दों में प्रकट करना। यह करते हुये शब्द छल नहीं करना चहिये, मन से बढा चढ़ाकर नहीं बताना चाहिये। दिशा भ्रमित नहीं करनी चाहिये। इन नियमों के अनुसार कही बात ऋतु होती है। सत्य होती है। इससे उलट कही बात अनृत या असत्य है। उससे अनेक शंकाये, संदेह या समस्याये उत्पन्न होती है। संशोधक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, आत्मज्ञानी सब मनन के द्वारा महान बने। इसलिये सत्य का मनन् आवश्यक है।

मन को चिन्तनशील, भावनामय और स्नेहमय बनाने के लिये प्रार्थना करना अत्यन्त लाभदायक है। शरीर में रक्त बन कर शरीर को पुष्ट करता है, उसी तरह मन से की गई प्रार्थना आत्मा को प्रसन्न करती है। इसलिये स्तोत्र, उपासना, प्रार्थना इत्यादि को अन्ध विश्वास नहीं कहना चाहिये। मन केवल शरीर तक सीमित शक्ति न होकर शरीर से बाहर भी व्याप्त है। अन्न पानी शरीर के लिये जितना आवश्यक है उससे अधिक प्रार्थना आवश्यक है। प्रार्थना रहित मन बंजर रेगिस्तान जैसा बन जाता है वहां पर प्रेम की हरियाली नहीं होती है। विकारों के कंटीले झुरमुट ही होते है। इसलिये बलात से मन पर काबू करने के बजाय प्रेम, स्नेह और आत्मीयता से नियंत्रण करना चाहिये जो प्रार्थना से किया जा सकता है।

मनोविकास के चार चरण है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा। अर्थात मनो विकास विकार, विचार, विवेक और विज्ञान इन चार स्थितियों से होता है। केवल इन्द्रियों का उपभोग करने वाले लोग तो पशुतुल्य होते है, क्योंकि वे तो पूर्ण रूप से विकार वश होते है। खावो, पीवो, मौज मस्ती करो वे तो इतना ही जानते है लेकिन आगे विचार करने वाला मन अच्छे बुरे का भेद करता है तब वह व्यक्ति कहलाने योग्य होता है। विचार करने के पश्चात भी सार युक्त चुनने के विवेकशक्ति जागृत होने पर बौद्धिक स्तर का मानव मन सन्त, साधु महात्मा के स्वरूप की और बढ़ता है। और विवेक से ही आत्म ज्ञान जागृत कर साधारण मन ईश्वर का ध्येय रख कर ईश्वर रूप होता है।

मानसिक संयम के अनेक साधन या उपाय होकर भी व्यक्ति को अपनी रूचि के अनुसार संयम करना चाहिये। अपने मन की स्थिति जान कर उसके अनुसार मन की सीमायें तय करनी चाहिये। मन के संयम और शक्ति संवर्धन हेतु जरूरी प्रयास करना चाहिये। इसकी पूर्तता से मनोयोग साधने में आता है। मन सतत् उत्साही रखना चाहिये। क्योंकि बोझील मन अनियंत्रित हो सकता है। मन में साहस के विचार होने चाहिये। साहस और उत्साह का सहचर्य रख कर मन को

उत्तेजित न करते हुये धैर्य और प्रेमभाव के पाठ पढ़ाने चाहिये तब कहीं मन स्थिर होता है, लेकिन मन का झुकाव गलत दिशा में न जाये इसलिये सत्संग और सद्विचार, अच्छे ध्येय के प्रति निष्ठा और श्रद्धा मन में होनी चाहिये।

सुख मन की अनुकूल अवस्था होती है और दु:ख प्रतिकूल। इन्द्रियों से होने वाली संवेदना मन बराबर छांटते रहता है। जो संवेदनायें अच्छी लगें, उन्हें सुख का और जो संवेदनायें बुरी लगे उन्हे वह दु:ख का नाम दे देता है, लेकिन सुख और दु:ख परिस्थिति के अनुसार तय होते है वह निर्णय भी मन ही करता है।

मनुष्य का मन सतत संस्कार ग्रहण करता है। प्राथमिक अवस्था में यह मन निर्मल पानी की तरह होता है। वातावरण, संस्कार और साधन उसे अलग-अलग दिशाओं में भेजते है। पानी का प्रवाह नाव को बहा ले जाता है। हवा जिस दिशा में बहती है, पतंग भी उसी दिशा में आकाश में उडती है। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है, उसका मन भी वैसे ही गतिशील होता है। धीरे-धीरे उसी परिस्थिति के सांचे में मन की आकृति ढ़लती है। अपना मन शुद्ध करने और प्रगट करने के लिये उसे सतत् उच्च, श्रेष्ठ विचार चिन्तन मनन में रखना चाहिये।

मन को ज्ञान का दामन थामना चाहिये। मन की शुद्धता और अशुद्धता ज्ञान पर निर्भर रहती है। मन तलवार जैसा होता है। तलवार का कभी प्रयोग नहीं किया, उसे पडा रहने दिया तो वह जंग खाती है, मगर वह बार-बार पत्थर पर घिसी जाये तो प्रयोग की जा सकती है। मन भी ऐसा ही है वह ज्ञान के पत्थर पर घिसा जाना चाहिये, जिससे मन को धार मिलती है, उसका तेज बढ़ता है। इसलिये बुद्धि के अनुसार व्यक्ति के दो प्रकार होते है। जन्म से कोई व्यक्ति मूर्ख या विद्वान नहीं होता। मूर्खता व्यक्ति ओढ़ लेता है, क्योकि मन रूपी तलवार वह ज्ञान के पत्थर पर घिसे बिना पडे रहने देता है। विद्वान व्यक्ति मन को नित नये तत्व चिन्तन में लगाता है, उससे उसकी प्रतिभा जागृत होकर मन तेज पूर्ण बनता है।

मनुष्य मन की रचना अत्यन्त उलझी हुई है। उपर से चेहरा देखकर मन की यह उलझन जानी जा सकती हो ऐसा नहीं है, लेकिन चेहरे के पीछे एक चेहरा होता है जो दिखता नहीं है। मनुष्य दिखता तो शरीर से पर वह रहता अपने मन संसार में। उस मनोमय जगत में हर दम कुछ न कुछ होते रहता है। विचारों का ढेर लगता है और ढ़हते रहते है। अनेकों कल्पनाओं के महल बनते-टूटते है। अनेकों संकल्पों के गुब्बारे फूलते फटते है। इसलिये अपना मन जानने, संवरने की कोशिश करनी पडती है अन्यथा मन दिशाहीन हो सकता है।

पातंजलि योग शास्त्र में अष्टांग योग के अन्तर्गत अपरिग्रह को योग का एक अंग माना गया है। उसमें कितना संग्रह करना चाहिये, क्या लेना चाहिये, कितना रखना चाहिये और कितना त्यागना चाहिये इसका विचार किया है।

मनुष्य के मन की प्यास आन्तरिक सन्तोष, सन्तुलन, खुशी ऐसे चिन्तन से ही बुझती है। मन सतत् अतृप्त रहता है क्योंकि उसके सामने रोज अभिलाषाओं के नये क्षितिज आते रहते है और वे मन को आकर्षित करते है। पुराना आकर्षण फीका लगता है और नया आकर्षण सत्य लगता है। इस तरह मृग मरीचिका के पीछे भागने का खेल जारी रहता है। बहुत सारी चीजे या बहुत लोग मिलने से सन्तोष नहीं मिलता, वह नकली, बनावटी सन्तोष होता है। वस्तु नष्ट होती है और लोगों से वैमनस्य निर्माण हो सकता है। इसलिये मन को शाश्वत चिन्तन से जोड कर आत्मावलोकन की राह दिखानी चाहिये।

आज भौतिक प्रदूषण की तरह मानसिक प्रदूषण भी बढ़ रहा है। उस कारण ईर्ष्या, स्वार्थ निन्दा, अहंकार, तान-तनाव बढ़ चुके है। संसार में युद्ध, चोरी, आतंकवाद, खून खराबा हो रहा है। मन अगर निरोगी और विकारों से मुक्त रक्खा जाय तो बाहरी रोग और समस्यायें नियंत्रित होगी। मन को तनावमुक्त रखने के कुछ उपचार किये जाने चाहिये। सबसे पहले

आहार शुद्धि करनी चाहिये। शुद्ध पौष्टिक और ताजा अन्न मन को प्रोत्साहित करता है। मन को ध्यान धारणा की आदत बनानी चाहिये उससे अनेक अनावश्यक विचार मन से निकल जाते है और मन को अच्छे चिन्तन की आदत पड जाती है जिससे मन शुद्ध, पवित्र, निरोगी और कार्य प्रवृत होता है। हमें मिला हुआ मन मूल्यवान है। इसी मन से हम विचार करते है और अपना भविष्य सुधार सकते है। मन के मुख्य चार दोष हैं। १) किसी की हिंसा का क्रूर विचार करना, २) झूठ बोलने की मन ही मन में योजना करना, ३) किसी के धन का अपहरण करने का चिन्तन करना, ४) मिले हुये धन के संरक्षण की चिन्ता करना। हमारा मन हमें अच्छा व्यक्ति बनवा सकता है। इस तरह के दोषों से मनुष्य का अध:पतन होता है इसलिये इन दोषों से मन को बचाना चाहिये।

प्राण और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राण चंचल होते ही मन भी चंचल होता है और प्राण स्थिर होते ही मन स्थिर होता है। इसलिये प्राणायम का महत्व है। मन की स्थिरता और उदात्तीकरण के लिये प्राणायाम की साधना विशेष रूप से प्रचलित है। मन शान्ति के लिये प्राणायाम् की विभिन्न पद्धतियां उपयोग की जा सकती है। हम सांस जोर से खीचें और अधिक से अधिक बाहर छोडे और बाद में सांस सावधानी से ज्यादा अन्दर ले तो इस क्रिया से मन शुद्ध होने में मदद मिलती है ऐसा विशेषज्ञों का मत है। और एक प्रकार सांस धीरे-धीरे खेंचते हुये हम सभी सुख, आनन्द प्रेम अन्दर भर रहे है। ऐसा संकल्प करे और सांस धीरे-धीरे छोडते हुये अन्दर से दु:ख, द्वेष, मत्सर, चिन्ता छोडने का संकल्प करे। इस तरह प्राणायम से मन सन्तुलित होता है।

आज का युग समय प्रबन्धन का युग है। समय का नियोजन जीवन में अत्यन्त आवश्यक है। प्रमादी व्यक्ति सुबह संकल्प करता है, शाम को भूल जाता है, समय का नियोजन नहीं कर पाता है और प्रमाद के कारण तर्क भी प्रस्तुत कर देता है इन दोनों को प्रभावित करने वाली बाधा है, मन की चंचलता जो व्यक्ति को असफल, दु:खी व अशान्त बनाती है।

मन चिन्तन शील भावुक और स्नेहमय बनाने के लिये प्रार्थना काफी उपयोगी होती है। शरीर में पचन किया गया अन्न रक्त बन कर शरीर को पुष्ट करता है उसी तरह मन से की गई प्रार्थना आत्मा को प्रसन्न करती है। इसलिये प्रशंसा, उपासना, प्रार्थना को अन्धविश्वास नहीं कहना चाहिये। मन केवल शरीर तक सीमित न होकर शरीर से बाहर व्यापने वाली शक्ति है। शरीर के लिये अन्न जितना आवश्यक है उतना ही या उससे अधिक मन के लिये प्रार्थना आवश्यक है। जिस मन में प्रार्थना नहीं वह मन रेगिस्तान की तरह बंजर होता है। वहां प्रेम की हरियाली नहीं उगती। इसलिये मन को आग्रहपूर्वक काबू में लाने की बजाय प्रेम, स्नेह एवम् आत्मियता से काबू में लाना चाहिये और ये सब होता है प्रार्थना से।

मन वश में नही होता यह भोगी से लेकर योगी तक का कहना होता है। मन वश में नही होने के कारण कई दु:ख भी भुगतने पडते है। इसलिये मन को वश में करना आवश्यक है। अभ्यास और वैराग्य से मन को वश में किया जा सकता है। मन सदैव फंसाता है, भ्रम में डालता है, चकमा दे देता है, आशा निराशा की लहरे उत्पन्न करता है। इसलिये मन पर सतत् ध्यान रख कर उसे विचलित होने से रोक कर वश में करना चाहिये।

जगत के सभी धर्मों के सन्त एक ही आत्मानुभव बताते है कि मन के शत्रु न होकर उसे प्रेम मार्ग दिखाये। ईश्वर के प्रेम मार्ग का उसे परिचय दे। यइ ईश्वर और कोई नहीं वह सभी प्राणियों में व्याप्त है। उस ईश्वर से प्रेम करो। किसी से घृणा मत करो। परोपकार करो। इस उपदेश का उद्देश्य यह है कि मन प्रगत होते समय वह शुद्ध होना आवश्यक है। राक्षस या असुरों का मन भी प्रगत था लेकिन शुद्ध नहीं था। आसुरी लोग बुद्धिवान या शक्तिशाली हो सकते है लेकिन मन शुद्ध न होने के

कारण वे अपनी बुद्धि का प्रयोग बुरे कर्मों के लिये करते है इसलिये मन को नैतिकता की शिक्षा आवश्यक है।

कामनाओं की रचना करना, उनमें रमना मानव मन का स्वभाव हें मन कामना अथवा इच्छा से मन को ऊर्जा और प्राणशक्ति मिलती है। कामना रहित मन या तो समाधिलीन योगी का होता है या मुर्दा व्यक्ति का होता है। कामना बिना रूप में प्रगट होती है तब संस्कार जन्म लेता है। ऐसे अनेक संस्कारों का संचय मन में होकर उनसे नितनई कामनायें जन्म लेती है। इस संसार में कुछ भी नष्ट नहीं होता, केवल रूपांतरित या परावर्तित होता है। इसलिये मन से निकले सभी संकल्प लौट कर मन में आते है। इसलिये मन को शुभ कामनाओं की आदत हो तो क्रियायें शुभ होगी, संस्कार शुभ होंगे।

आचार-विचार और व्यवहार से मन प्रकट होता है। व्यक्ति अच्छा है या बुरा यह कैसे निश्चित किया जाय, तो उसकी मन की स्थिति से ही किया जाता है। बाहर की कृति से हम किसी की भी अच्छाई-बुराई निर्धारित करते है लेकिन कृति में भी मन का आधार होता है। अच्छे व्यक्ति की कृति भी अच्छी होती है, क्योंकि उसके पीछे अच्छा मन होता है। इसलिये दु:खितों को हंसाना, पतितों को उठाना और मृत्यु उन्मुख लोगों को जीवन की आशा देनी, यह अच्छे व्यक्ति के कर्म व लक्षण है। यह करते समय मन की विशालता, करूणा, दया आदि गुण सामने आते है इसकी बजाय औरों को दु:खाना, अपने स्वार्थ के लिये औरों का नुकसान करना यह सब सडे हुये खराब मन की प्रवृति है।

तनाव, चिन्ता भय और क्रोध आदि मानसिक संवेगों पर नियंत्रण न हो तो मन असंतुलित होता है। इसका असर मस्तिष्क पर पडता है और दिमाग की कोशिकायें नष्ट होती है। इससे मुक्ति का उपाय है आत्म विश्वास पूर्ण गहन अध्ययन, ध्यान धारणा और अध्ययन मनपूर्वक किया जाये तो चिन्ता, भय तनाव आदि होगा ही नही। तनाव को अपने अन्दर हम स्वयं पैदा करते है। इसलिये आत्मनिरीक्षण, आत्म सुझाव और अध्ययन प्रति दिन करना चाहिये। भय प्रवृति का प्रभाव, पाचन क्रिया, रक्तप्रवाह की प्रक्रिया पर होता है। क्रोध होने पर सावध मन से संयमित होने का प्रयास करना चाहिये। मन के आवेग से स्वास्थ्य पर भी असर पडता है इसलिये मन के आवेग को संयमित होकर नियंत्रित करे।

मन से ही बद्ध या मुक्त होना सम्भव है। स्वतन्त्रता संग्राम में कारावास के दौरान स्वतन्त्रता सेनानियों के पांव में भारी बेडिया पडी हुई थी लेकिन उनका मन स्वतन्त्रता के गगन में संकल्पों के पंख लगा कर विचरण करता था। मन की तुलना में शरीर काफी छोटा और सीमित है। इसलिये मन की सच्ची पहचान करनी चाहिये। मन एक सफेद वस्त्र है। प्रकृति ने मानव शरीर के साथ यह शुभ्र सफेद-साफ वस्त्र दिया है। उसे जो भी रंग दो वही रंग धारण करेगा। कोई उसे भक्ति का रंग देगा तो कोई योग का। इसे कौन सा रंग देना है यह हमारे हाथ में है, लेकिन एक बार दिया हुआ रंग उतारना कठिन होता है।

मन में एक होठो पर कुछ और यानी बात कहना कुछ और करना कुछ, इसे अस्वच्छ भावना कहते है। यह एक विकृति है जो मन साफ न होने के कारण होती है। ऐसे लोग एक ही मार्ग से चलते है लेकिन उनकी दिशा निश्चित नहीं होती। वे पल-पल में अपना निर्णय बदलते है उससे शारिरिक और मानसिक शक्ति का अपव्यय होता है।

अपने कार्य का क्रम बनाना, नियोजन करना वे नहीं कर सकते। इस कारण शान्ति और सन्तोष नहीं पाये जाते। सतत अपूर्णता अनुभव होती है। खालीपन सा लगता है, उदासी छाई रहती है। ऐसे मनोरोग की अवस्था से बाहर निकलने के लिये मन, वाणी, और कर्म मे सुसूत्रता होनी चाहिये। अपने कर्म से प्रामाणिक रहना चाहिये। उससे मन की एकाग्रता बढेगी। कार्य के प्रति प्रेम बढ़ कर लोगों से सम्मान मिलता है।

मन में विचारों की भीड होती है उसमे कुविचार अधिक होते है। मन में अच्छे विचार आने के लिये अच्छी पुस्तकों का

अध्ययन करना चाहिये। जो लोग सद्विचार करते है जो सच्चरित्र है, ऐसे लोगों का सत्संग भी उपयोगी होता है। अपने हाथों कोई गलती हो तो एकान्त में बैठ कर अपने आपको दण्ड देना चाहिये ताकि फिर ऐसी कोई गलती न बने। मन में दृढ़ संकल्प कर ऐसी गलतियों को दुहराने नहीं देना चाहिये। अगले दिन जागते ही नये संकल्प के साथ दिन की शुरुआत करे। रात में सोते समय उस दिन में किये हुये काम का विवरण देखे इससे हमारी विचार शक्ति प्रभावी होकर शान्ति, सम्पन्नता और प्रगति की ओर मार्गक्रमण होता है।

चोर पर निगाह रखने पर उसे चोरी करने का अवसर ही नहीं मिलता इसलिये हमारा नुकसान अपने आप टल जाता है। उसी तरह हमारे मन में अनेक दुर्गुणों के चोर, विकारों के लुटेरे होते है जो मन की शक्ति और शांति लूट लेते है। उन्हे बन्द कर उस पर सद्विचारों का पहरा लगाना चाहिये। उससे दुर्गुण और विकार रूपी चोरों को मन:शान्ति चुराने का मौका नहीं मिलता। अर्थात यह काम इतना आसान नहीं है लेकिन यदि सावधान होकर किया जाय तो इतना कठिन भी नही है। सावधानी और निष्ठा इन दो साधनों से मनोविकारों पर कडा नियंत्रण रखा जा सकता है।

सत्य, पवित्रता और सद्गुण इन तीनों का परिणाम मन की रचना में होना स्वाभाविक है। सत्य को स्वीकार नहीं किया तो असत्य के संस्कार मन पर होते है। पवित्र भावना का चिन्तन न हो तो मन पर मलीनता का लेप चढ़ता है और सद्गुणों का चिन्तन न हो तो दुर्गुणों का घेरा मन के इर्द-गिर्द फैलता है। ऐसे मन वाले लोग सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में भी कलंकित होते है। लेकिन सत्य का पक्ष लेने से मन को असत्य के खिलाफ लडने की प्रेरणा मिलती है। पवित्रता के विषय में प्रेम रखने से मन प्रसन्न होता है और सद्गुणों की राह पर चलने से मन विशाल होता है, करूणा, दया, क्षमा से भर जाता है और ऐसा मन आनन्दवन के झरने जैसा होता है।

देव मन-दानवमन-मानवमन ये मन के तीन प्रकार चिन्तकों ने बनाये है। जिसका मन केवल अपना विचार करता है, अपनी ही गृहस्थी का विचार करता है, उसे मानवमन कहते है। इसके उल्टे, व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिये औरों का नुकसान करने की सोचता है, उसके लिये चाहे जिस गलत मार्ग की ओर बढ़ता है अपने स्वार्थ के लिये जो औरों की बलि देने की सोचता है उसे दानव मन या राक्षस मन कहना चाहिये। इन दोनों के विपरीत मन अपने और दूसरों के हितों का सतत विचार करता है, जिसे अच्छी कल्याणकारी बातें पसन्द आती है, जो औरों को सुखी करने की सोचता है उसे देवमन कहा गया है।

मन में हमेशा अच्छे विचार रखना आमतौर पर कठिन होता है। मन का स्वभावपानी की तरह है। नीचे की ओर बहना यह उसका गुण है। वैसे अध:पतन की ओर बढ़ना मन का गुण है। इसी कारण मन में सद्विचार कायम नही रहते। मन के शुभ चिन्तन का प्रभाव पूरी जीवन शैली पर होता है। सद्विचार सुनने से ग्रहण करने की आदत अपनानी चाहिये। श्रवण या पठन के बाद उस पर बार-बार मनन करना चाहिये और एक महत्वपूर्ण उपाय है मन सतत प्रसन्न रखने का। यह कला कठिन है, लेकिन असम्भव नहीं। क्योंकि प्रसन्न मन मे ही अच्छे विचार रहते है।

मन न दिखने वाला निराकार इन्द्रिय है। इन्द्रियों को करण भी कहा जाता है। अन्दर का यानि न दिखने वाला करण अंत:करण है। मन को भी अंत:करण कहा जाता है। हमारी छोटी सी आखों में पूरा दृश्य समाता है वैसे मन में भी अनेक जन्मों के संस्कार समाये हुये रहते हैं। कुछ संस्कार मन के निम्नतम हिस्से में बद्ध होते है। बाहरी घटनाओं से मन की संस्कार क्षमता पर आघात होती है मन अपने संस्कारों से उसे ताड कर अनुकूलता या प्रतिकूल संवेदना व्यक्त करता है।

मनुष्य ही नहीं प्राणी या पक्षियों में भी मन होता है। वृद्धों में भी संवेदनशील मन होता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को अन्त:करण के चार विभाग कहा जाता है। वास्तव में ये चार मन के परिणत प्रकार है, लेकिन अन्त:करण विचार, भाव, निष्ठा, प्रेम, विश्वास इत्यादि व्यक्त करता है। इसलिये अंत:करण के मुख्य तीन विभाग है। प्रेम, इच्छा और भावना, किसी व्यक्ति, वस्तु या कार्य के विषय मे अच्छी बुरी भावना जन्म लेती है, तब उस व्यक्ति, वस्तु या कार्य की लालसा उत्पन्न होती है। लालसा पूरी होने के बाद उस वस्तु से प्रेम होता है। यह सब मानव के अन्त:करण से व्यक्त होता है। इसके विपरीत घटित होने पर प्रेम का रूपान्तरण द्वेष में, इच्छा का रूपान्तरण निराशा में और भावना का रूपान्तरण दुर्भावना में होता है। स्नेह और द्वेष के प्रवाह अन्त:करण से सतत बहते है और व्यक्ति उनमें बह जाता है।

मानव मन में पहले विचार उत्पन्न होते है जो उसे कर्म के लिये प्रवृत या कर्म से परावृत करते है। जब व्यक्ति दुष्कर्म करता है तब प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों? सभी लोग समान है तो एक व्यक्ति सत्कर्म करता है, दूसरा दुष्कर्म करता है जबकि और कोई साधारण कर्म करता है ऐसा क्यों होता है? इसका कारण मानव मन की रचना है। दुष्कर्म करने के तीन कारण है। वे है अधर्ममूलक विचार। अमृता इच्छा और अच्छी शिक्षा का अभाव। अधर्ममूलक विचार खास कर व्यक्ति यदि बुरी संगत में हो तो जैसा संग वैसा रंग न्याय से उसके विचार बुरे ही हो सकते है। कोई इच्छा सीधे मार्ग से पूरी न हो और दुराचारी लोगों का कुसंग हो तो भी दुष्कर्म करने का मन करता है। अच्छी शिक्षा या मार्गदर्शन के अभाव में भी व्यक्ति के हाथों दुष्कर्म होता है।

मन, चित्त और इन्द्रियों का आपस में सम्बन्ध होता है और सतत् होता है। चित्त को चिन्तन, मन को मनन और इन्द्रियों को स्वास्थ्य चाहिये होता है। इन तीनों का तालमेल हो तभी व्यक्ति स्वाभाविक प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है लेकिन चित्त चिंतन की बजाय चिन्ता में डुबा रहता है, मन मनन की बजाय दु:ख में डुबा हो और इन्द्रिया स्वास्थ्य की बजाय रोग से घिरी हो तो जीवन में प्रसन्नता नही रहती। प्रसन्नता मूलत: हमारे अन्दर होती है। उसका स्तोत्र अन्त:करण में होता है लेकिन बाहरी मन वस्तुओं से आनन्द प्राप्त करने की आशा करता है, लेकिन काल प्रवाह में वस्तु हमसे दूर जाती है या खो जाती है। इसलिये मन, चित्त, इन्द्रियों के माध्यम में शरीर में बहनेवाली प्रसन्नता चाहिये तो आत्मनिष्ठ होना आवश्यक है।

बहिर्मन और अंतर्मन अन्त:करण के दो संलग्न भाग है। बहिर्मन एक दरवाजे जैसा है जिसे खोल कर अन्तर्मन को गहराई में उतरा जा सकता है, लेकिन उसके लिये दोनो मनों का आपसी सम्बन्ध जुडना आवश्यक है और वह सम्बन्ध आस्था के माध्यम से जोडा जा सकता है। आत्म श्रद्धा व श्रृंखला है जिससे दोनों मन एक साथ जोडे जा सकते है। बहिर्मन अन्तरमन की शक्ति पर व्यक्त होता है या अन्तरमन ही स्थूल रूप से बहिर्मन के आधार पर व्यक्त हो सकता है। आत्म श्रद्धा का जतन करना यानी दोनों मनों की भावनात्मक एकता स्थापित करने का प्रयास करना। यह एकता स्थापित करने का आसान उपाय है शुभ चिन्तन, जिससे बहिर्मन का शुद्धिकरण होकर अन्तर्मन की उन्नति होती है।

मन को चुभता है वह पाप है। पाप कर्म मनुष्य के लिये अस्वाभाविक है क्योंकि मानव मन और प्राणियों की तुलना में आत्मा के निकट होता है। वह शरीर का स्तर लांघ कर आत्मा तक जा सकता है। इसलिये पुण्य या सदाचारण मनुष्य का सच्चा स्वभाव है। पानी वास्तव में निर्मल होता है बाद में संग के कारण उसका रंग रूप बदल जाता है।

दर्पण मूलत: साफ होता है किन्तु धूल से भरने के बाद वह धुंधला हो जाता है। वैसी ही मानव मन शुद्ध और निर्मल होता

है किन्तु मलीन वस्तुओं की संगत से वह मैला हो जाता है। उसका आकर्षण सत् की ओर प्रवाहित होता है। मानव मन आत्मिकता की ओर प्रवाहित करना होता है। उसकी बाहर की और बढ़ने वाली प्रवृति को ही निवृति कहते है।

मन में भय और निर्भयता के विचारों के प्रवाह बहते रहते है जिसका परिणाम चिन्ता और निश्चिंता के रूप से व्यक्त होते है। सदाचारी व्यक्तित्व सद्गुणों से प्रकट होता है क्यों कि उसमें चिन्ता नहीं होती। इसके उलट, दुराचारी व्यक्तित्व, विकृति, चिन्ता और भय से प्रकट होता है। सदाचारी व्यक्ति के मन में चिन्ता और भय नहीं आते। ऐसे मन का पात गहन होता है, उस पर विकृत प्रवृतियों के तरंग नहीं उठती। उसमे आत्मिक व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब प्रकट होता है। दृढ़ निश्चय, आत्म विश्वास और सत्य के स्वीकार के कारण वह मन निर्भय होता है। निर्भय होने का अर्थ आक्रमक होना नहीं है। जीवन के प्रवाह में अच्छी बुरी घटनाओं में भी शान्त स्थिर रहना यानि निर्भयता है।

आम व्यक्ति दिखने वाली बातों पर सच्चे मन से प्रेम करता है। उसका मन कूप मंडूक की तरह होता है। कुयें का मेढ़क उसी कुये को ही पूरा संसार मान लेता है। उसी तरह साधारण लोग अपने आस पास एक छोटा सा संसार बना लेते है। उस संसार में मग्न रहते है। बाहर के विशाल संसार की वे कल्पना तक नहीं कर सकते। इसके विपरीत महात्मा का मन इस विशाल संसार की परिक्रमा करने का प्रयास करता है। कोष में बंद कीडे की तरह जीना उसका ध्येय कभी नहीं होता। चार दीवारों को घर माननेवाले साधारण मन की बजाय यह मन पूरे विश्व को घर मानता है। इसलिये एक को क्षुद्र मन कहते है तो दूसरे को विश्व मन कहते है। क्षुद्र मन के लोग कितने आये, कितने गये उनकी दखल कोई नहीं लेता, लेकिन विश्व मन वाले लोग युगों युगों तक कीर्तिरूप बने रहते है।

मनुष्य बिना किसी कारण से चिन्ता करता है। जो घटनाये होनी है वे अचानक घट जाती है। जीवन में जो भोग हमें भुगतने होते है वे सब हमारे पूर्व कर्म के अनुसार होते है। अज्ञानी मनुष्य मृत्यु से उपजने वाले वियोग पर दु:ख करता है। मृत्यु, दुर्घटना, प्रकृति का कोप, भूकम्प आदि घटनाओं पर मनुष्य अपने प्रयत्नों से उपाय कर सकता है, लेकिन उनमे से कई घटनायें वह टाल नहीं सकता और ये घटनाये पहले तय कर नहीं घटती। अचानक घटती है इसलिये घटनेवाली इन घटनाओं को मन ही मन स्वीकारने पर, बाद में कुछ भी हुआ तो भी मन का सन्तुलन नही बिगडता। उससे मन हमेशा स्थिर रह सकता है, लेकिन अज्ञानी मनुष्य को लगता है ये घटनायें घटे ही नहीं। इसलिये अकस्मात घटनेवाली घटनाओं से उनका जीवन तबाह होता है। इसी कारण मन स्थिर रखने के लिये हालात को स्वीकारना आवश्यक है।

कई बार मनुष्य मन अत्यन्त चंचल बन जाता है व तेजी से सोचता है जिससे विसंगति उत्पन्न होती है। तब काफी कुछ देखकर भी न देखे जैसा, सुनकर भी न सुने जैसा, समझ कर भी न समझे जैसा रह जाता है। मन की अस्थिरता में मानसिक क्रियाओं का सन्तुलन बिगडता है और बोलने सुनने में समन्वय नहीं रहता इसके लिये मानसिक स्थिरता का अभ्यास करना पडता है। एकाग्रता से देखने का नाम त्राटक है। त्राटक के अभ्यास से मन के अनावश्यक विचार दूर होते है। अस्थिरता दूर होती है।

चित हमेशा प्रसन्न रखने से जीवन में आनन्द खिल उठता है। लेकिन साधारण व्यक्ति थोडे से कारण से नाराज हो जाता है। उसकी मन की स्थिति चंचल होती है। वास्तव में चित्त की प्रसन्नता हमेशा स्थिर रखना छोटी बात नहीं है। आमतौर पर लोगों को लगता है कि कोई शक्ति मिलने से या शत्रुओं का नाश होने से प्रसन्नता मिल सकती है या काफी सारा धन मिलने पर हम प्रसन्न होगे। लेकिन क्या वास्तव में चित्त की प्रसन्नता इन बातों पर निर्भर है? क्योंकि ये सब होकर भी लोग

बेचैन रहते है जबकि ये सब न होकर भी कोई सुख से रहता है। अर्थात मन की प्रसन्नता मन शुद्ध और व्यापक बनाने पर ही आधारित है।

मन मनुष्य की प्रगति का श्रेष्ठ माध्यम है इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मन को व्यापक, पवित्र और उदात बनाने के लिये उतने ही श्रेष्ठ, व्यापक तत्व की पहचान करानी चाहिये। ईश्वरी तत्व ही वह पवित्र, व्यापक उदात्त तत्व है। उससे पहचान होने पर मन को आधार और राहत मिलती है। मन कई बडे बडे शत्रु निर्माण करता है या मानता है और हमेशा उनका भय या चिन्ता भी साथ में रखता है। व्यापक ईश्वरी तत्व शरणागत भक्त को घोर संकटों, शत्रुओं से बचाता है। यह राहत मिलते ही मन निश्चिंत हो जाता है।

मन बाहरी जगत की और दौडता है इसलिये मन को बहिर्मुख कहा जाता है। मन का एक मुख अन्तरआत्मा की ओर होता है वह अन्तर्मुख होता है। बाहरी जगत मे मन कई सफलता पाकर भी असन्तुष्ट रहता है। इस बारे में मनन करते ही मन बाहर का मुख बन्द कर देता है। निश्चय और शान्त होकर वह अन्दर की ओर खोज करने लगता है। सोने, हीरे, चान्दी, जमीन पर नही मिलते उसके लिये भूगर्भ में खदान में उतरना पडता है। जिसका मन बाहर की और रमता है उसे अन्तरात्मा का अनमोल खजाना नहीं मिल सकता। गहरे उतरने वाला मन वह खजाना प्राप्त कर सन्तुष्ट होता है।

मन के पास एक सिक्का होता है उस सिक्के के दो पहलू होते है। एक है देह और दूसरा है सम्पत्ति। शरीर के लिये जी कर उसी के लिये सम्पति कमाने के विचार मन हमेशा करता है। पर इन दो पहलुओं से अलग भी कई श्रेष्ठ अच्छे पहलू हो सकते है। बहुत थोडे से लोग यह जानते है। इसी कारण शरीर के पोषण और सम्पत्ति कमाने में कईयों के जीवन खर्च हो जाते है। मन हमेशा इन्ही दो बातों का चिन्तन करता है। क्योंकि मन हमेशा इन्ही दो बातों से चिपका रहता है। शरीर के सुख-दु:ख का असर मन पर और मन के सुख-दु:ख का असर शरीर पर होता है। श्रेष्ठ लक्ष्य से बंधा मन शरीर का उपयोग साधन की तरह करता है। लक्ष्य दिलाने वाले साधन के तौर पर ही शरीर का उपयोग है और जीवनयापन के लिये पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त करनी है यही मन की नीति होनी चाहिये।

मन सदा एकाग्र रहे। बाहर ऐसा कुछ भी नही है जो भीतर न हो। मन ही सर्वस्व है। यदि मन चंचल है तो एकान्त भी बाजार बन जाता है तब आंखे मूंदने से भी कोई लाभ नही। मानसिक चक्षु बन्द रखने से सब ठीक होगा।

शारीरिक रोगों का मूल मानसिक रोगों में होता है। मानसिक शक्ति प्रबल हो तो शारीरिक रोगों पर नियन्त्रण किया जा सकता है। क्षय रोग, रक्त कैन्सर, एड्स जैसे भयानक संक्रामक रोगों में भी कई रोगी मानसिक शक्ति के सहारे प्रसन्न जीवन जीते हुये दिखते है। इसका कारण ढूंढने पर उत्तर मिलता है एकाग्रता और ध्यान। ध्यान धारणा हमें प्रेममय और मधुर बनाती है। उससे मन का कपट दूर होकर हृदय निर्मल होता है। व्यक्तित्व का स्तर बढ़ कर चेहरे पर रौनक छा जाती है। सभी लोगों को सभी रोग नहीं होते लेकिन चिन्ता रोग सबको होता है उसे हटाने का सर्वोत्तम उपाय है ध्यान धारणा, नित्य नियम से ध्यान लगाकर निरामय जीवन जीना सम्भव है।

मनुष्य मन हमेशा शान्ति के लिये खोज करता है पर मन कब शान्त होता है? जब वह ध्यान में स्थिर होता है तो शान्ति को पा सकता है। उपभोग करते समय मनुष्य का मन स्थिर होता है। जैसे चाय पीते समय, बीडी सिगरेट धूम्रपान करते समय, गाना-नृत्य करते समय इन क्रियाओं में क्षणिक ध्यान होता है। ध्यान का अर्थ एकाग्रता से है। ऐसे समय व्यक्ति खुद को भूल जाता है। यह भूलना ही एक तरह का ध्यान होता है और उन कुछ पलों में मन शान्त होता है। लेकिन मन

शान्ति के ये भ्रामक मार्ग है। ये खुजली की तरह है, खुजलाने तक अच्छा लगता है मगर खुजलाना बन्द करने से वेदना होती है। शराब, सिनेमा, उपन्यास, जुआ आदि में क्षणिक सुख मिलता है लेकिन अंतत: वह घातक होता है। मन शान्ति के लिये इन गलत मार्गों को ही आध्यात्मिक भाषा में अज्ञान कहते है।

सुख के साधनों की सीमा हमें अपने मन से निश्चित करनी चाहिये अन्यथा सारा समय दिशाहीन भटकाव में बीत जाता है। मनुष्य को धन की प्यास होती है यह जान कर ही कई भूल भूलैया का निर्माण किया गया है, जैसे प्रतियोगितायें, लांटरी, सेल, बम्पर धमाका इत्यादि। आदमी उस हर एक मार्ग से भटकने की कोशिश करता है लेकिन उन मार्गों में प्रतियोगी भी काफी होते है। खींचा तान, उठा पटक होती है। उससे कुछ हाथ लगने का भरोसा भी नहीं होता। परिणाम स्वरूप विफलता ही आती है। समय और शक्ति दोनों बेकार हो जाते है। उसकी बजाय एक ही भरोसे मन्द और अच्छे मार्ग पर दृढ़ता से यात्रा करे तो सफलता का शिखर पाना मुश्किल नहीं।

जिस व्यक्ति में आत्म विश्वास नहीं है उसे बेचारा कह कर पुकारा जाता है। आत्म विश्वास सम्पूर्ण एवम् आत्म निर्भर मनुष्य ही श्रेष्ठ बन सकता है। हर व्यक्ति को जीवन में अनेक अवसरों का सामना करना पडता है। हर अवसर के अनुभव से उसका मन झटका खाता है। यही बाधक मानना चाहिये। मन रूपी सागर पर ऐसे कई तरंग और लहरे हर समय उठती है। सागर की सतह सतत अस्थिर होती है। आत्म विश्वास से भरा व्यक्ति पहले स्थिर होता है। बाहरी चिन्तन की बजाय वह अन्दर के मन का परीक्षण पहले करता है। समस्या से सहमे बिना, उनके कारण जानने की वह कोशिश करता है। हम आत्म निर्भर हुये कि मन स्वयं ही निश्चित और निश्चल हो जाता है। ऐसा मन ही उच्च ध्येय प्राप्त करता है।

पांव में बन्धन हुआ तो क्या हो? प्रश्न मन का है। मन से बद्ध होकर मन से ही मुक्त हुआ जा सकता है। स्वतंत्रता संग्राम में, स्वातंत्र्य वीरों के पावों में मनों-मनों की जंजीर होकर भी उनका मन खुला था। वह स्वतंत्रता-कल्पना से आकाश में संकल्पों के पंख लगा कर उड रहा था। शरीर मन की तुलना में बहुत छोटा और सीमित है। इसलिये मन को अच्छी तरह से पहचानना चाहिये। मन एक सफेद वस्त्र है। प्रकृति ने मानवी शरीर के साथ ही यह स्वच्छ, साफ, निर्मल वस्त्र दिया है। उसे लाल, नीला, काला जो भी रंग दे वह रंग वह धारण कर लेता है। कोई उसे भक्ति में रंगता है, कोई योग में रंगता है। उसे कौनसा रंग देना है, यह हमारे हाथों में है, लेकिन एक बार चढ़ा हुआ रंग उतारना कठिन होता है, इसलिये मन को सद्विचारों से रंगना चाहिये।

मन का उपशमन करने शास्त्रों ने अनेक मार्ग बताये है। मन यानि एक बिगडा हुआ घोडा है। संयम की लगाम न हो तो यह घोडा कहीं भी भटकता है। मनन करना मन की लगाम है। मन किसी चिन्तन में रमता है, तल्लीन होता है तब मनन होता है। इसलिये शास्त्रकारों ने ईश्वर या गुरु की शरण यह मन की स्थिरता का आसान मार्ग बताया है। निश्चित होने के बाद चिन्तन होता है और चिन्तन से ईश्वर की शक्ति पर विश्वास कायम होता है। तब विनम्रता से नमन होता है और नमन की स्थिति प्राप्त होती है। इस तरह के मन के बिगडैल घोडे को चिन्तन-मनन की लगाम से काबू मे किया जा सकता है।

मन शक्ति का केन्द्र है, लेकिन वह सूक्ष्म होता है इसलिये आम आदमी उसका महत्व नही जान पाता। ऊंची पहाडी पर बारिश गिरने से पानी हर तरफ बहने लगता है। ठीक से बांध डाल कर उस पानी को एक जगह इकट्ठा किया जाये तो जलाशय बन सकता है। उसी तरह मनुष्य के मन में विभिन्न शक्तियों के प्रवाह होते है, लेकिन वे दिशाहीन होते है। उन शक्तियों का प्रवाह एक ही दिशा में मोडा जाये, तो शक्ति का अपार भंडार हमें मिल सकता है। इसके लिये मन एकाग्र

करना आवश्यक होता है। मन को एक ही ध्येय की और प्रवाहित करे। अत्यन्त सतर्कता एवं निष्ठा से यह काम करे। तब मन की शक्ति सभी तरफ से प्रकट होती है और बडे बडे कार्य सहजता से हो जाते है।

मनुष्य जीवन का संचालक है मन। एक संस्था की प्रगति और अधोगति जिस प्रकार उस संस्था के संचालक एवम् पदाधिकारियों पर अवलम्बित है, इसके लिये इन्हे ही जिम्मेदार ठहराया जाता है। उसी प्रकार मनुष्य जीवन रूपी संस्था की गति अधोगति के लिये मन जिम्मेदार होता है। क्योंकि मन ही मनुष्य का संचालक है। मन के कब्जे में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय होते है। वे सिर्फ मन के आदेश का पालन करते है। शरीर को सही स्थिति में रखना है, अथवा इसके विपरीत निर्णय भी मन ही लेता है। अगर मन पर उचित समय पर उचित मात्रा में नियंत्रण नहीं रखने पर वह शिरजोर बन कर जिस प्रकार मदारी बन्दर को नचाता उसी प्रकार मन के इशारे पर हमें नाचना पडता है। लेकिन हम मन के मालिक है, स्वामी है यह अपनी पहचान आप खुद ही करे तब हम मन पर इच्छित नियंत्रण रख सकते है। इसके पश्चात मन आपकी इच्छानुसार चलता है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब हमें अहसास हो कि हम मन के स्वामी है और मन गुलाम है तभी यह सम्भव है।

मन पर विजय पाना उसकी निर्मलता पर निर्भर है। मन पर हम विजय नही पा सकते है क्योकि वह गंदगी से भरा होता है। मन अधिकाधिक मलीन हो ऐसा जीवन बिताते हुये हम मन पर काबू पाने का प्रयत्न करे तो वह हाथी स्नान की तरह व्यर्थ होता है। हाथी स्वच्छ पानी में नहाता है, लेकिन किनारे पर आते ही धूल सूंड में लेकर अपने शरीर पर डालता है। उसका स्वच्छ स्नान व्यर्थ हो जाता है। इसलिये मन शुद्ध किये बिना उस पर विजय प्राप्त करने का हमारा प्रयास विफल हो जाता है। हमारे मन में द्वेष, मत्सर, क्रोध, भय, भोग लालसा, मोह, व्यर्थ अभिमान आदि का कूडा भरा हुआ है। उसे हटा कर मन साफ करना चाहिये।

कामनाओं में रहना, कामनाओं की रचना करना, उसी में रमना यही मन का स्वभाव है। कामना या इच्छा से मन को ऊर्जा या प्राणशक्ति मिलती है। कामनाहीन मन या तो किसी सिद्ध योगी का होता है या मृतप्राय: व्यक्ति का। कामना न हो तो मन का अस्तित्व न होने के समान है। वह जब कर्म रूप से प्रकट होती है तो उससे संस्कार उत्पन्न होता है। ऐसे अनेक संस्कारों का संयम फिर से मन में संग्रहित होता है, उसी से प्रेरणा लेकर मन फिर नई-नई कामनाये करता है। इस जगत में कुछ भी नष्ट नहीं होता वह तो परिवर्तित या रूपान्तरित होता है। इसलिये मन जो भी संकल्प बाहर छोडता है वह फिर मन के पास लौट आता है। इसलिये मन शुभ कामनाओं का आदी हो तो कर्म शुभ होंगे। संस्कार शुभ होंगे और फिर मन भी शुभ संकल्पयुक्त होगा। इसलिये कहा गया है कि तन्मे मन शिव संकल्पमस्तु।

हम जिन्हे साधु कहते है, वास्तव में मन उनका भी होता है। पर उनका मन अत्यन्त संवेदनशील, कोमल होता है। ऐसे मन में औरों के सुख-दु:ख के प्रतिबिम्ब तुरन्त पडते है। इसलिये औरों के सुख से वे सुखी और औरों के दु:खों से दु:खी होते है। इससे विपरीत साधारण व्यक्ति का मन कठोर होता है। सम्भवत: औरों के दु:ख में उसका स्वार्थ छुपा होता हे। साधु अभ्यास और आचरण के मार्ग से अपना मन सद्गुण और सुविचारों से सम्पन्न बनाते है। उसके लिये वे ध्यानपूर्वक और सुनियोजित प्रयास करते है। साधारण व्यक्ति मन की ओर ध्यान देता ही नहीं। शरीर का उपभोग ही उसे आकर्षित करता है। इससे मनोविकास की उपेक्षा होती है। इस कारण मनोविकास में कितना दक्ष रहना पडता है यह जाना जा सकता है।

मन मे दो क्रियाये हमेशा होती रहती है लेना और देना। इसे ही परिग्रह और अपरिग्रह कहते है। बाहरी संसार में भागना मन काफी पसन्द करता है। बाहर के दृश्यों और पदार्थों का ज्ञान, जानकारी, संस्कार इन्द्रियों के द्वारा अन्त:करण तक पहुंचाना यह मन का काम है। उसका चुनाव और छाननी करना बुद्धि का काम होता है, पर बाहरी दृश्यों-वस्तुओं से विचार या संकल्प-विकल्प का कच्चा माल देना मन का कार्य होता है। और वह हमेशा चलता रहता है। लेकिन विचारों का यह कच्चा माल अच्छा या बुरा है यह मन निश्चित नहीं कर सकता। इसलिये कई बार अन्त:करण में गलत विचारों का संग्रह हुआ दिखता है। वह व्यर्थ और दु:खदायक होता है। इसलिये मन के आचरण पर ध्यान देना चाहिये।

मन की प्रवृति प्राप्त करने की होती है। लेना उसका स्थायी भाव है। मनुष्य का मन केवल जीवनकाल में ही मृत्यु के बाद भी संकल्प थामे रहता है। जमीन में बोये बीज में जैसे भावी महावृक्ष का सूक्ष्मरूप होता है वैसे शरीर के जन्म से पहले मन रूपी बीज में भी अगले संकल्पों का सूक्ष्मरूप विद्यमान होता है। बीज से वृक्ष, वृक्ष से फल और फल से पुन: बीज का क्रम जैसे जारी रहता है वैसे संकल्प से आकार और प्रवृति, प्रवृति से फिर संकल्प का क्रम जारी रहता है। मनुष्य के जन्म-मृत्यु के चक्र को गति देने का काम मन ही करता है। इसी गति से वह सुख-दु:ख के झटके सहता है।

हमारा आज का दिन कल के दिन से उगता है इसलिये कल के कर्मों का प्रभाव आज पर निश्चय ही होता है। और आज के कर्म पर कलका कर्म निर्भर रहता है। कल आज कल की इस गति में मन का हिस्सा बडा होता है। क्योंकि कर्म की गति की मूल प्रेरणा मन से मिलती है। इसलिये पिछले कर्म से वही सम्बन्धित होता है। सुख-दु:ख के प्रत्यक्ष परिणाम शरीर पर दिखते है लेकिन सूक्ष्म परिणाम मन पर ही होते है। इसे ही सूक्ष्म संस्कार कहते है। इन संस्कारों से मन को आकार मिलता है और उसके अनुसार मन कई विकार उत्पन्न कर विभिन्न कर्म प्रकारों में उलझता है।

मन दो तरह का होता है बर्हिमुख और अन्तरमुख। अन्तरमुख मन सच्चा है, बर्हिमुख मन उसका सहायक है और कम महत्वपूर्ण है। फिर भी बर्हिमुख मन ही अक्सर प्रबल होता है। बाहरी चीजे मन को बडी प्यारी लगती है। कस्तुरी मृग की अपनी नाभि में कस्तुरी होती है वही से कस्तुरी की सुगन्ध फैलती है। लेकिन वह भ्रमित होकर, कस्तूरी की खोज मे भटकता फिरता है। वह उसे मिलती तो नही, मगर दम भर आने से वह मर जाता है। मन भी इसी तरह बाहरी पदार्थों में सुख ढूंढता है। कोई धन में, कोई स्त्री में, कोई प्रतिष्ठा में तो कोई विद्या में। लेकिन, सभी चीजों का स्रोत अपने पास होने की बात भूलता है और भागदौड करने के बाबजूद भी उसे दु:ख ही प्राप्त होता है।

मन को किसी उच्च आदर्श की उत्कंठा होती है पर वह तात्कालिक ही होती है। ध्येय का प्रेम जब मुरझा जाता है। मेहनत से बनाये बाग मे पेड पौधों को हर रोज पानी से सींचा नही गया तो वह बाग भी मुरझा जाता है। उसकी उपेक्षा की गई तो सारी मेहनत व्यर्थ हो जाती है। यही हाल मन का होता है। हमेशा ऐसे होते देखा गया है। ध्येय की और हजारों लोग चलते है पर ध्येय तक पहुंचनेवाले थोडे होते है। इसका कारण है ध्येय पर लक्ष्य पर कायम न रहना। यदि ध्येय प्रेम निष्ठा से सिंचन न हो तो वह मुरझा जाता है, इसको प्राप्त करने का उत्साह, जोश कम हो जाता है। तब केवल पलायन या जैसे तैसे चलते रहना यही विकल्प रहता है इसलिये मन:शक्ति हमेशा तरोताजा रखने के लिये ध्येय प्रेम जागृत रखना चाहिये।

मन को ही तीर्थ कहा गया है। मन शुद्ध नहीं हो तो बाकी कितनी ही तीर्थ यात्राये करने से क्या लाभ? मन ही गंगा है। गंगा मे स्नान करने से पाप नष्ट होते है पाप की बुद्धि नहीं। इसलिये मन को निर्मल गंगा बनाना चाहिये। मन ही सच्चा शास्त्र है। मन को जाने बिना ऊपर से कितना ही शास्त्राध्ययन कर ले। मन शुद्ध नहीं होगा। कुल मिला कर मन का शुद्धिकरण

अत्यन्त आवश्यक है। जमीन में अच्छी उगाई हो इसलिये जमीन पर पूरी मेहनत करनी पडती है। इसलिये मन के दुर्विचारों को पहले निकालकर उसमें सुविचारों के बीज बोये, उसे निश्चय और प्रेम के जल से सींचे निर्धार और सावधानी से उस फसल का संरक्षण करे। इसी से आखिर आत्मज्ञान का अनाज हाथ में आता है।

मन एकाग्र हो सकता है। वह चन्चल है, मगर स्थिर किया जा सकता है। लेकिन मन सिर्फ स्थिर होने से नहीं चलता उसे सन्तुष्ट रखना पडता है। यह सन्तोष कहां प्राप्त होगा? वेद, शास्त्र, पुराण अथवा कुरान, बाईबल जैसे पवित्र धर्मग्रन्थों में उन धर्म वेताओं ने एक ही उपाय बतलाया है वह है ईश्वर के रूप में मन स्थिर करना। लेकिन आजकल के विज्ञान वादियों को यह नहीं आयेगा। मगर दुनिया में विज्ञान का अन्धाधुंध विकास के कारण एक तरफ तो मनुष्य की गिरावट तथा दूसरी और सच्चा विज्ञानवादी यह सच्चाई नकार नहीं सकता। तो मनुष्य की नैतिकता बढाने के लिये उसका मन स्थिर और सन्तुष्ट होना जरूरी है और यह जरूरत केवल ईश्वर की शक्ति से ही पूरी हो सकती है। क्योंकि ईश्वर ही सभी सुखों का सागर है। इसलिये मन को ईश्वर का अस्तित्व स्वीकारना चाहिये।

मन निर्भय कैसे होगा? यह बडी ही महत्वपूर्ण बात है। कोई अभयदाता सहारा हो तो मन का भय दूर हो सकता है। नन्हा सा बालक अन्धेरे में भी मां की गोद में मजे में रहता है। शेरनी की गोद में उसके बच्चे निर्भयता से खेलते है। उसी तरह मनुष्य का मन भी निर्भय होना चाहिये। मैं ईश्वर का अंश हूं, मुझमे ईश्वरीय शक्तियों और गुणों का अंश है। मुझे संकटों से डर नहीं है। इस तरह के विचार मन में हमेशा रखने पर, चाहे जितना भी प्रतिकूल अवसर हो, मन में भय नही होता। ईश्वर की शक्ति का आधार होने की आस्था हो, तो मन निर्भय होकर खेलता है।

मन का संगोपन न करना आवश्यक होता है। हम शरीर का संगोपन करते है क्योंकि वह स्थूल होता है। उस पर बाहरी परिस्थिति के कारण आघात होते है। शरीर को होने वाले रोग व्याधि कहलाते है। इन व्याधियों पर लोग इलाज करवाते है, लेकिन स्थूल शरीर के साथ और एक शरीर उसी में बसा होता है। इसे सूक्ष्म शरीर या मनोमय शरीर कहते है। उसे जो रोग होते है उसे आधि कहते है। ऐसे आधि-व्याधियों से मन पीडित होता है। क्रोध, द्वेष, मोह, कपट ये मन के रोग होते है। उनसे मन कलुषित होता है। विकारयुक्त मन बुरे कार्यों को जन्म देता है। इन विकारों से बचने के लिये संयम की ढाल मन पर ओढनी चाहिये। इस मार्ग से जाते हुये निश्चय का कवच और प्रयत्नों की तलवार धारण कर यात्रा करनी होती है। इसके लिये मन को किसी अच्छे चिन्तन या कार्य व्यस्त में रखना होता है।

मनोविकास के और दो चरण है। आत्म संवाद और पर सम्वाद। स्वयं अच्छा चिन्तन कर अपने आप को वह सुनाना इसे कहते है। आत्मसंवाद और ये अच्छे विचार औरों के समक्ष व्यक्त करना होता है पर सम्वाद। औरों से बात करने से विचारों का आदान-प्रदान होता है जबकि आत्मसंवाद में विचारों की जांच होकर अचूकता प्राप्त होती है और इसी से संस्कार सम्पन्न मन आकार लेता है, लेकिन सुसंवाद करते हुये दुराग्रह दूर रखे। झूठा युक्तिवाद भी नहीं होना चाहिये। उससे मन विकृत होता है। मलिन होता है। मन के सुविचारों की श्रृंखला अखंड रखने सद्विचारों का सतत आग्रह रख कर, सतर्कता से उन पर नजर रखना आवश्यक होता है। उसमे मन अधिकाधिक सूक्ष्म होकर ज्ञानवान होता है।

पशु-पक्षी प्राणियों के चेहरों पर चिन्ता नहीं झलकती क्योकि वे कल की चिन्ता नहीं करते। उनके मन में वर्तमान क्षण का ही विचार चलता है इसलिये वे हमेशा प्रसन्न दिखते है। मनुष्य एक मात्र प्राणी है जो चिन्ता मग्न दिखता है। इसका मन ही चेहरे पर दिखता है। मन में विचारों के जो आवर्त उत्पन्न होते है उसी की झलक चेहरे पर मिलती है और वही

आखों से व्यक्त होता है। व्यक्ति चाहे जितना निर्विकार दिखने का प्रयास करे, उसके मन मे उठने वाली सुख-दु:ख की लहरों का प्रतिरूप नेत्रपटल में अवश्य उभरता है। इसीलिये शरीर, मन की सुस्थिति के लिये यही सन्तुलन रखना चाहिये। यह कठिन है पर असम्भव नहीं।

संसार एक ही है पर व्यक्ति व्यक्ति में भिन्नता है। खास कर मनुष्य की मानसिकता एकदम अलग होती है। जुडवा भाई बहनों तक का स्वभाव अलग होता है। मानसिकता के तीन स्तर है, उच्च मानसिकता, मध्यम मानसिकता और कनिष्ठ मानसिकता। उच्च मानसिकता उच्च संस्कारों से बनी होती है अथवा वह इस तरह से बनाई जाती है। ऐसे लोग गिने चुने होते है पर समाज में उनकी गहरी छाप होती है। पराक्रमी व्यक्ति के रूप में ऐसे लोग ख्याति प्राप्त करते है। मध्यम मानसिकता में केवल स्वार्थ भरा होता है। वे लोग अपनी ही दुनिया में खोये रहते है। वे लोग अधिक उपद्रव नहीं देते पर किसी के काम भी नहीं आते। तीसरा प्रकार है कनिष्ठ मानसिकता का। ये लोग स्वार्थ और कपट से भरे होते है और पीडादायक भी होते है। अपने दुष्कृत्यों के कारण उनकी छवि खराब होती है। इसलिये उच्च मानसिकता ही मूल्यवान है।

अहंकारी मन नारियल के कठोर कवच की तरह होता है। थोडा सा कुछ पाते ही मन तुरन्त उसका अभिमान करने लगता है। हम औरों से श्रेष्ठ है, यह अहंकार भी वह करता है। थोडासा धन प्राप्त होते ही धन का नशा बोलने लगता है और हम औरों से कितने श्रेष्ठ और सुखी है, इसकी तलाश मन करता है। मन का अहंकार हमेशा तुलना से होता है। इसलिये ज्ञानी मनुष्य को भी यह रोग लगता है। विद्वान और ज्ञानी लोग हमेशा इस भ्रम में रहते है कि हमें सब कुछ पता है। क्योकि भ्रम के फेरे मे उनका मन घूमता है। फिर वह अहंकार की पतंग पर कल्पना के आकाश में उडता है। कभी न कभी भ्रम का वह गुब्बारा फूट जाता है और मन वास्तविकता की भूमि पर आता है। तो मन को अहंकारी न बनने देना ही अच्छा है।

आत्महत्या का मुख्य कारण सदैव धन की निर्धनता नहीं है। आत्महत्या के बारे में मनोवैज्ञानिकों व चिकित्सकों की राय यह है कि गहन निराशा के क्षणों में एक विशेष प्रकार का रसायन श्रावित होता है जो उसे आत्महत्या करने के लिये प्रेरित करता है। यदि समय पर कोई सही सलाहकार या सहायता मिल जाती है तो आत्महत्या का विचार छूट जाता है और नहीं मिल पाने पर आत्महत्या की घटना घट जाती है। आजकल मनोवैज्ञानिक और कई तरह के सलाहकार सारे विश्व में ऐसे लोगों के लिये उपलब्ध है। भारत के ग्रामीण भागोंमे भी अभी तक इस तरह की सुविधा उपलब्ध नहीं हुई है।

आत्महत्या वैज्ञानिक रूप से जीवन से प्रतिगहन निराशा की उपज है। इसकी मनोविज्ञान के अनुसार व्याख्या की जाये तो हम यह कह सकते है कि मन का विस्तार ही शरीर है। मन जब जीने की आकांक्षा-इच्छा छोड देता है और मरने की इच्छा करने लगता है तो मस्तिष्क भी शरीर को मरने के लिये तैयार कर देता है। इस तरह मन शरीर को नष्ट करने या आत्महत्या करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। असफल प्रेम, कर्ज, नुकसान, या उपेक्षा, तिरस्कार आदि से ऐसी घटना मन में घटती है। यदि इसी समय संबंधित मनुष्य के चारों और का परिवेश बदल दिया जाये तो मन में तत्क्षण परिवर्तन सम्भव है। यदि मरने के लिये तैयार किसी व्यक्ति को जीवन ऊर्जा से फिर आप्लावित करने कोई आयोजन किया जाये तो वह व्यक्ति फिर से जीने की इच्छा करने लगेगा।

इसके लिये सर्वाधिक आवश्यक मन की कार्य प्रणाली को समझना है। मन एक साथ या अलग-अलग समय मे विपरीत क्रियाएं कर सकता है। वह एक ही समय में प्रेम व घृणा, जीवन व मृत्यु, सृजन और विध्वंस दोनों के बारे में विचार कर सकता है और उन्हे अंजाम देने प्रेरित कर सकता है। जिस समय यह विचार हो रहा हो, उस समय दोनों विपरीत

विचारों मे से किसी एक का ज्यादा प्रभाव व तत्क्षण घटी बाहरी घटनायें दोनों मिलकर सक्रिय रूप में फल की निष्पत्ति करते है । आत्महत्या से मनुष्य को बचाने का एक मात्र तरीका यह है कि उसमें अपने मन की कार्यप्रणाली को समझने की क्षमता विकसित हो । वह देख सके कि मन कैसे कैसे खेल खेलता है । किस तरह शरीर को संचालित करता है । जब यह क्षमता आजायेगी तो वह अपने मन को तत्काल सृजनात्मक दिशा दे सकेगा । मन का सृजनात्मक होना जीवन को सौन्दर्य व आनन्द से भर सकता है । ऐसी स्थिति में विपरीत स्थिति में भी आत्महत्या असम्भव हो सकती है।

स्वभाव को जानने के लिये हमारी इन्द्रियों की वृतियों का जानना आवश्यक है । इन्द्रियां इस जगत के सम्पर्क में आकर प्रभावित होती है । यह प्रभाव वृतियों के रूप में ज्ञानेन्द्रियों में उत्पन्न होता है । ये कृतियां ही संकल्पित रूप में मन के रूप में मानी जाती है । मन इस जगत के साथ एक रूप होने के कारण दूषित होता रहता है । राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक प्रकार के भावों से मन भरा रहता है । ये भाव ही जब कर्म रूप में प्रगट होते है तो मानव की पहचान दिखाई देती है । मन की दुषित अवस्था के कारण मानव का आचरण भी दूषित होता है, परिणाम स्वरूप समाज व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न होते हैं । इसलिये मन की शुद्धि करना अनिवार्य है ।

सत्पुरुषों का मन वायु की तरह अलिप्त होता है । वायु हर तरफ संचार करती है लेकिन किसी चीज से लिप्त नहीं होती । सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों का वह समान रूप से वहन करती है । सुगन्ध या दुर्गन्ध की वह उपेक्षा नहीं करती है न ही उसका अभिमान करती है । साधारण व्यक्ति को ऐसे सत्पुरुष का मन समझना अत्यन्त कठिन होता है । क्योकि साधारण व्यक्ति का मन अपने संकुचित और स्वार्थी विचारों को कोष से बाहर निकल कर देखता तक नहीं है । कूपमंडूक की तरह उसका मन अपनी संकुचित दीवारों में रमता है । तथापि, सत्पुरुष का मन असीमित विश्व में विश्वरूप बनकर विहार करता है ।

मन में एक और होठों पर कुछ और यानी बात कहना कुछ और करना कुछ, इसे अस्वच्छ भावना कहते है । यह एक विकृति है जो मन साफ न होने के कारण होती है । ऐसे लोग एक ही मार्ग से चलते है लेकिन उनकी दिशा निश्चित नहीं होती । वे पल पल में निर्णय बदलते है । उससे शारीरिक और मानसिक शक्ति का अपव्यय होता है । अपने कार्य का क्रम बनाना नियोजन करना वे नहीं कर सकते । इस कारण शान्ति और सन्तोष नहीं पाये जाते । सतत अपूर्णता अनुभव होती है । खालीपन सा लगता है । उदासी छाती है । ऐसे मनोरोग की अवस्था से बाहर निकलने के लिये मन, वाणी और कर्म में सुसूत्रता होनी चाहिये । अपने कर्म से प्रामाणिक रहना चाहिये । उससे मन की एकाग्रता बढेगी । कार्य के प्रति प्रेम बढकर लोगों से सम्मान मिलेगा ।

शरीर को कुछ भोग देने ही होते है उन्हे आहार और विहार कहते है । लेकिन भोग का ही दूसरा रूप रोग है और इस रोग पर भोग में योग रखना उपाय है । यह योग मन की स्थिति पर निर्भर है । मन निरोगी हो तो शरीर भी रोग मुक्त रहता है । मन के चिन्तन का असर शरीर पर होता है । सदाचरण और नम्रता से मन में शुभ चिन्तन हो सकता है । उल्लासित और प्रसन्न मन की तरह शरीर के रोग प्रतिकारक व्यवस्था का विकास होता है । मन अप्रसन्न, दु:खी हो या बुरे विचारों से घिरा हो तो उस ग्रन्थी में विकृति आकर शरीर पर रोगों का आक्रमण सुलभ होता है । मन अधिक से अधिक निरामय बनाया तो रोग अपने आप भाग जाते हैं ।

मन की प्रवृति प्राप्त करने की होती है । लेना उसका स्थायी भाव है । मनुष्य का मन केवल जीवन काल में ही मृत्यु के बाद भी संकल्प थामे रहता है । जमीन में बोये बीज में जैसे भावी महावृक्ष का सूक्ष्म रूप होता है वैसे शरीर के जन्म से पहले

मनरूपी बीज में भी अगले संकल्पों का सूक्ष्म रूप विद्यमान होता है। बीज से वृक्ष, वृक्ष से फल और फल से पुन: बीज का क्रम जैसे जारी रहता है वैसे संकल्प से आकार और प्रवृति, प्रवृति से संकल्प का क्रम जारी रहता है। मनुष्य के जन्म-मृत्यु के चक्र को गति देने का काम मन ही करता है। इसी गति से वह सुख-दु:ख के झटके सहता है।

बहुत बार ऐसा होता है कि हम खुद को ही लताड़ रहे होते हैं कि अगर मैंने अपने मन की सुन ली होती तो ऐसा न होता या इतनी दिक्कत न होती। यह एकदम सही है कि अगर हम अपने मन की सुन लें तो बहुत सी मुसीबतों से बच सकते हैं या फिर कोई स्थिति हमारे लिए ज्यादा हितकारी हो सकती है।

मन की भाषा को समझना जटिल नहीं है। यह अपने संदेश आराम अथवा बेचैन के माध्यम से देता है। अगर कोई निर्णय लेते समय किसी तरह का तनाव पैदा हो रहा हो तो वह निर्णय नहीं लेना चाहिए या कुछ समय के लिए उसे टाल देना चाहिए। इसी तरह अगर किसी कार्य को करने के लिए मन खुशी-खुशी तैयार हो जाता है तो उसे सहर्ष कर देना चाहिए। हालांकि, यहां यह कहा जा सकता है कि क्या गारंटी है कि मन जो कहेगा, वह सही कहेगा लेकिन तब भी मन को अपनी करनी करने देना चाहिए।

मन हमेशा हमारा सही मार्गदर्शन ही करे उसकी राय यहीं से होकर जाती है कि उसे उसकी करनी करने दी जाए। वैसे भी मन कभी हमें गलत निर्देश नहीं देता। यह हो सकता है कि उसकी सुनने में हम ही गलती कर जाएं लेकिन वह कभी भी आपके या दूसरों के अहित में कुछ नहीं कहता। हो सकता है कि कभी आपको लगे कि मन के अनुसार ऐसा करने से तो मुझे नुकसान होगा लेकिन वास्तविकता कुछ और ही होती है। उस क्षण विशेष में लगने वाली विरोधी परिस्थिति भविष्य में कहीं न कहीं आपके विकास में ही मददगार साबित होती है। मन की इस भाषा को समझने में व्यक्ति के खान-पान और जीवन जीने के ढंग का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सात्विक और सादा भोजन शरीर में सकारात्मक ऊर्जा को बढ़ावा देता है और उसे निर्बाध गति से पूरे शरीर में प्रवाहित होने देता है। तिस पर अगर प्रतिदिन नियमपूर्वक ध्यान भी किया जाए तो फिर एक दिन ऐसा भी आता है कि हमें मन से पूछने की जरूरत नहीं पड़ती, बल्कि फिर हमारे द्वारा सही निर्णय ही लिए जाते हैं।

मन के दो स्तर होते हैं। सूक्ष्म, शुद्ध या पवित्र मन और स्थूल, अशुद्ध या अपवित्र मन। लोहे की किल मिट्टीवाली जमीन में आसानी से ठोंकी जा सकती है, लेकिन चट्टानों वाली जमीन में उसे खूब ठोंकना पड़ता है। उसी तरह शुद्ध पवित्र, सूक्ष्म, मन में सदुपदेश या सद्विचार आसानी से जाते हैं। इसके विपरित जड़, अशुद्ध मन में वे विचार आसानी से नहीं जाते। वे ऊपर ही ऊपर से चले जाते हैं। सद्विचार सुनते सभी हैं लेकिन आचरण सब लोग नहीं कर सकते। इसका कारण है मन की स्थिति। इसलिए हजारों व्यक्तियों में कोई एक साधुवृत्ति वाला होता है। मन शुद्ध करना सबकी जिम्मेदारी है। शास्त्र, साधु, संत, वे सद्विचारों से केवल मार्गदर्शन करेंगे लेकिन मन का शुद्धिकरण हमें स्वयं करना पड़ेगा।

चित्त हमेशा प्रसन्न रखने से जीवन में आनंद खिल उठता है। लेकिन साधारण व्यक्ति थोड़े से कारण से नाराज हो जाता है। उसकी मन की स्थिति चंचल होती है। वास्तव में चित्त की प्रसन्नता हमेशा कायम रखना छोटी बात नहीं है। आमतौर पर लोगों को लगता है कि कोई शक्ति मिलने से या शत्रुओं का नाश होने से प्रसन्नता मिल सकती है या काफी सारा धन मिलने पर हम प्रसन्न होंगे। लेकिन क्या वास्तव में चित्त की प्रसन्नता इन बातों पर निर्भर है ? क्योंकि ये सब होकर भी लोग बेचैन रहते हैं जबकि ये सब न होकर भी कोई सुख से रहता है। अर्थात् मन की प्रसन्नता मन शुद्ध और व्यापक बनाने पर ही आधारित है।

मन बड़ा चंचल- मन बड़ा चंचल है। मानव का मन पलक झपकते ही जाने कहां की सैर कर आता है। हमें उसका पता तब चलता है जब हमारी बुद्धि उसे ग्रहण करती है। बुद्धि और मन का संगम होता है तब हमें हकीकत का अहसास होता है। हमें यह पता नहीं होता है कि हमारे मन के घोड़ों की लगाम किन हाथों में है। सीने में जरा-सा दर्द का अहसास हुआ, मन में आया कहीं दिल का दौरा तो नहीं पड़ गया। बुद्धि का साथ नहीं होता मन के साथ। शरीर शिथिल होने लगता है। हाथ-पैर फूलने लगते हैं। परिवार के लोग एम्बुलेंस में अस्पताल ले जाते हैं। रास्ते भर मन में पता नहीं क्या क्या विचार बिजली की तरह कौंधते जाते हैं। डाक्टर देखते हैं, पता चलता है, मात्र गैस ट्रबल थी और कुछ नहीं। मन का क्या? उसने क्या क्या नहीं सोचा ? क्योंकि वह शक्तिशाली नहीं था। संस्कारी नहीं था। प्रतिरक्षाकारी नहीं था। हमने कभी उस ओर ध्यान दिया ही नहीं। शरीर बीमार हुआ, तुरंत एक टेबलेट खा ली। मन की बीमारी के लिए क्या किया, कुछ नहीं।

गधा है इसलिए लदा है या लदा है इसलिए गधा है। यह सवाल मनुष्य के लिए ज्यादा है। मनुष्य जानता है, सोचता है, समझता है, विचार करता है, अपनी बुद्धि का उपयोग करना जानता है। जीवन नश्वर है, आत्मा अमर है। आत्मा है तो परमात्मा है। वह आत्मा से परमात्मा को जोड़ने का प्रयास करता ही नहीं। अपने मन, अपनी आत्मा की तृप्ति के लिए उसे कुछ करना चाहिए, वह यह जानता है, मगर इसके लिए भौतिकता की दौड़ में दौड़ते रहने के कारण उसके पास समय ही नहीं है। उसकी बुद्धि, उसका मन दोनों एकमत होकर उसके पास होते हुए भी उससे दूर भाग जाते हैं। मनुष्य पत्नी, बच्चे, परिवार, उसके सुख-साधनों में ऐसा उलझ जाता है कि उसका सारा विज्ञान, सारी तकनीक, उसकी अन्य जीवों से महानता सब एक दायरे में सिमट कर रह जाती है। उसे मिलता है दु:ख।

मन से बदलें विचार- मनुष्य संसार का सबसे बुद्धिमान प्राणी है। बुद्धिमान लोग शासन करते हैं। अत: बुद्धि पर मनुष्य का अधिकार होना चाहिए। बुद्धि से दृष्टि बदलती है और दृष्टि के बदलने से जीवन बदलता है। बुद्धि को जड़वत नहीं, बदलते रहना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है मनुष्य के विचारों में परिवर्तन होना। विचार बदलते हैं मन से। मन और बुद्धि का संगम जीवन का नजरिया बदल सकते हैं। हम शरीर की गंदगी दूर करने के लिए अच्छे से अच्छे साबुन से स्नान करते हैं। एंटीबैक्टीरिया साबुन का उपयोग करते हैं। सुंदर नजर आएं, क्रीम पावडर लगाते हैं, मगर मन पर जमी परत को साफ नहीं करते। उसे निर्मल साफ नहीं करते।

मन बड़ा ही चंचल है। मन की चंचलता ही समाज की समस्त बुराइयों की जड़ है। मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है। मनुष्य का चंचल मन उसे दानव बना देता है। चंचल मन ही अशांति का कारण है। चंचल मन को रोकने का एकमात्र साधन है, परमात्मा के सच्चे नाम का निरंतर स्मरण।

मन (चित्त) की व्याख्या करना बड़ा मुश्किल कार्य है। मन बड़ा चंचल होता है। मन का स्वभाव स्थिर रहना नहीं है। वह सदा दिन-रात घूमता ही रहता है; परंतु मन की गति पर विजय पाना, उसे पकड़ना खेल नहीं है। आध्यात्मिक एवं लौकिक जगत में बड़ी से बड़ी दिव्य शक्तियां इस मन के समक्ष नतमस्तक हो जाती हैं।

दुनिया में जितने भी धर्म व धार्मिक ग्रंथ हैं। इन सबके पीछे मन को शुद्ध करने का पवित्र लक्ष्य है। परंतु मन है कि पकड़ में आता नहीं है। जिस प्रकार तालाब व समुद्र में तरंगे नित्य उठती रहती है। उसी तरह मन भी लहरों-तरंगों के समान चलता ही रहता है। मन कभी तृप्त नहीं होता क्योंकि उसमें तृष्णा रूपी छिद्र हैं। एक बार आप समुद्र की गहराई नाप सकते हैं; परंतु मन की गति, ऊंचाई, तरंगों को नापना बहुत मुश्किल है। मन घड़ी के पेंडुलम-सा इधर-उधर घूमता रहता

है। व्यक्ति समाज, प्रतिष्ठा, कानून के भय से काम, वचन से चाहकर भी पाप नहीं कर पाता; उसका चंचल मन उन पापों में सदा कार्यरत रहता है।

सच्ची सुंदरता इंसान के मन में बसती है, यह बात कभी नहीं झुठलाई जा सकती है। यही कारण है कि आज मस्तिष्क के साथ सुंदरता की मांग है। यदि किसी का मन साफ नहीं हो तो उसकी सुंदरता कोई मायने नहीं रखती। मन की सुंदरता का कोई मुकाबला नहीं लेकिन यदि मन के साथ आप बाहर से सुंदर दिख सकते हैं तो बात कुछ अलग हटकर ही होगी। सुंदरता सिर्फ चेहरे से ही नहीं पूरे व्यक्तित्व से झलकती है। यही कारण है कि अब हर कोई अपनी वेश भूषा व दिखावे के प्रति सजग रहता है। सुंदरता पर किसी का एकाधिकार नहीं होता। यह तो इंसान के ऊपर निर्भर करता है कि वह अपने गुणों व व्यवहार कुशलता से कितनों को अपनी ओर आकर्षित कर पाता है। वास्तविक अर्थों में यही सच्ची सुंदरता है।

जीवन का सुख अच्छी सेहत में ही निहित है और इसके लिए संतुलित, पौष्टिक और सुपाच्य भोजन लेना तथा उम्र के लिहाज से नियमित व्यायाम, योगाभ्यास, प्राणायाम और स्वच्छ वायु में तीव्र गति से सैर जरूरी है। इन सबसे ऊपर है स्वस्थ मन एवं अच्छे विचार। नकारात्मक सोच मनुष्य को मानसिक रूप से बीमार कर देती है। दूसरों की भलाई करने अथवा सोचने में ही अपनी भलाई हो जाती है। अहिंसा का मार्ग अपनाने से मन में दिव्य अनूठी शक्ति पैदा होती है। अहिंसा का अर्थ है मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देना। अहिंसा से यह भी अभिप्राय है कि अच्छाई का सत्कार और बुराई का प्रतिकार किया जाए। मन शरीर का संचालक है, अगर ड्राइवर ही बीमार होगा तो गाड़ी कैसे चलेगी?

मन विश्व का सर्वाधिक गतिवान है। जब तक व्यक्ति मन की एक इच्छा को पूरा नहीं कर पाता है, तब तक मन में अनेक इच्छाएं पैदा हो जाती हैं। सभी इच्छाएं पूर्ण होने की आशा में व्यक्ति गतिवान मन के इशारों पर चल कर दासतां स्वीकार कर लेता है। गतिवान मन काफी दूर चला जाता है और व्यक्ति अपनी इच्छाओं, आशाओं के साथ रास्ते में ही भटक जाता है। परिणाम स्वरूप इच्छाएं भी पूरी नहीं होती हैं साथ ही व्यक्ति को निराशा और अशान्ति ही मिलती है। व्यक्ति को मन की दासतां स्वीकार नहीं करनी चाहिए बल्कि मन पर नियंत्रण कर मन का स्वामी बनना चाहिए।

मानव इतना स्वार्थी है कि सदैव तन के स्वास्थ्य की चिन्ता करता है और मन जो प्रभु की पावन स्थली है, जहां उसका निवास है, उसकी उसे कोई चिन्ता नही। आध्यात्मिक रूप से स्वास्थ्यवर्द्धक बनने की उसे कोई फिक्र नहीं, जबकि आत्मिक आहार जब शरीर को मिलता है तो उसका शरीर स्वयं ही मजबूती प्राप्त कर लेता है, क्योंकि आत्मा जब मजबूत होती है तो मन शान्त होता है, मन शान्त होने पर मानव तनावमुक्त रहता है, भय, क्रोध, चिन्ता उससे कोसो दूर भाग जाते हैं। तब शरीर पर रोगों की छाया नहीं पड़ती, दुखों के बादल आये भी तो छट जाते हैं। दुनियावी उतार चढ़ाव असर नहीं करते और इस प्रकार शरीर और आत्मा दोनो स्वस्थ रहते है। पर अब सोचना यह है कि आत्मा व शरीर का भोजन है क्या?

शरीर का भोजन प्राकृतिक वस्तुएं, सुगन्धित फल और शाक तथा उष्ण या शीतल जल आदि हैं और मन का आहार है, प्रभु के प्रेम में मग्न, उससे तादात्म्य स्थापित करना उसकी प्रार्थनाओं में लीन रहना, पावन लेखो का पाठ करना आदि। जैसे-जैसे आत्मा आध्यात्मिक आहार पाकर परिपक्व होती है, वैसे ही मानव दरिद्रता, शोक की बेड़ियों की जकड़न से छुटकारा पा लेता है और शरीर को स्वास्थ्यवर्द्धक रखने के लिए जो वह खाता-पीता है, उससे शरीर तो निरोगी रहता है, पर वास्तविक रूप से पूर्ण स्वस्थ तभी होता है, जब आत्मिक भोजन निरन्तर प्राप्त करता है, क्योकि जैसे-जैसे आत्मिक भोजन निरन्तर प्राप्त करता है, शरीर स्वयं भी सशक्त रहना आरम्भ कर देता है। उसे दवा और दुआ दोनों लग जाती है। मन

सुखी रखने के लिए आध्यात्मिक आहार तभी प्राप्त कर सकते है, जब हर अवस्था में संतोषी रहते हैं, क्योंकि आज उथल पुथल की दुनिया में तभी सुख चैन से जी सकते है जब हम संतोष रखते है और सहिष्णुता के भाव से जुड़ते हैं। वैसे हर अवस्था में संतोष रखने के लिए बहाई लेखनी में कहा गया है कि निश्चय ही प्रत्येक अवस्था में संतोष अत्यंत आवश्यक है। इससे मनुष्य रोग और क्लान्ति से बचा रहता है। शोक और खेद के अधीन न हो जाओ, यह बड़े से बड़े दुख का कारण है। ईर्ष्या शरीर को क्षीण करती है और क्रोध शरीर को दग्ध कर देता है। इन दोनो से दूर रहो, जैसे सिंह से बचे रहते हो। हमारे मन का सुख हमारे हृदय के वास्तविक आनन्द में है। हमें हर अवस्था में प्रभु की रजा मानकर खुश रहना चाहिए, चाहे वे हमें दुख दे या सुख हमें उसकी ओर से आशीर्वाद समझने चाहिए तभी हमारा मन और तन सुखी रह सकते है क्योकि महापुरुषों का कहना है कि आनन्द हमारे पंख लगा देता है। हर्ष के समय हमारी शक्ति बड़ी और बुद्धि तीव्र होती जाती है पर जब हम पर शोक आता है तो शक्ति हमें छोड़ जाती है। मानव को अपने मन को निरन्तर ईश्वर की ओर लगाना चाहिए। परमात्मा की शक्ति पर भरोसा करना चाहिए ताकि हमें वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सके। ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त हो सके। हमारी देह यदि आत्मा की सच्ची सेवक रहेगी तभी शरीर भी स्वास्थ्यवर्द्धक रहेगा वरना दिन-प्रतिदिन कमजोर होता चला जायेगा। इसीलिए कहते है कि मन को यदि प्रभु का सान्निध्य प्राप्त हुआ तो तन भी सुखी रहेगा। ऐसे प्रयास के लिए बहाई लेखनी में कहा गया है कि देह को आत्मा का सेवक होना चाहिए न कि स्वामी। पर यह अधीन, आज्ञाकारी और कुशल सेवक हो। इसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए जैसा कि एक ईमानदार सेवक का अधिकार है। यदि इसके साथ भी एक अच्छा बरताव न किया जाए तो बीमारियां और क्लेश भोगने पड़ते है, जिसका परिणाम स्वामी और सेवक, दोनो के लिए अहितकर होता है। मानव यदि हर अवस्था में शान्त रहता है, तभी अपने हृदय दीप को कामनाओं की आंधी से न बुझाकर उसे प्रभु के प्रति अपने दृढ़ विश्वास, प्रेम व आस्था की ज्योति से प्रज्ज्वलित रख सकता है। अहंकार से मुक्त जीवन जी सकता है।

अपने जीवन में तन और मन दोनों को सुखी रखना चाहते है। तन और मन का सेवक और स्वामी जैसा सम्बन्ध है, ऐसा सेवक जो कुशल और आज्ञाकारी हो इसके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसा कि एक ईमानदार सेवक का अधिकार होता है। हमे अपव्यय द्वारा धन उड़ाने वाला न बनकर सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए। मन सुखी सन्तुष्ट मित्र का रह सकता है। मादक और नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए क्योकि इनके सेवन से स्वास्थ्य, शक्ति, मानसिक आनन्द, बुद्धि में हानि होती है। भौतिक वस्तुएं हमारे लिए है, ताकि हम कृतज्ञता द्वारा यह समझ ले कि जीवन ईश्वरीय प्रसाद है और हमारा भौतिक और आध्यात्मिक जीवन ईश्वरीय कृपा है, इसलिए हमें प्रसन्न रहना चाहिए और सब वस्तुओं की प्रशंसा और गुण ग्रहण करने चाहिए।

शेक्सपियर ने लिखा है, देयर इज नथिंग आइदर गुड ऑर बैड, बट थिंकिंग मेक्स इट सो। यानी संसार में अच्छा या बुरा कुछ नहीं है। अगर कुछ अच्छा या बुरा लगता है, तो ऐसा हमारी सोच के कारण होता है। हमारी सोच किसी भी स्थिति, घटना, वस्तु या व्यक्ति को अच्छा या बुरा बनाती है। वास्तविक जीवन में क्या घटित हो रहा है, इससे ज्यादा महत्व इस बात का है कि मन में क्या घटित हो रहा है।

खलील जिब्रान ने कहा है कि जब तुम में हर्ष की लहरें उठें, तब अपने मन में झांकों। तुम्हें पता चलेगा कि जो तुम्हें हर्ष प्रदान कर रहा है, यह वही मन है, जिसने तुम्हें शोक भी प्रदान किया है। अगर दुख और सुख या पीड़ा और हर्ष एक ही

जगह से पैदा होते हैं, तो उस जगह यानी मन से कभी सुख और कभी दुख की धाराएं क्यों पैदा होती हैं ? कोई घटना दुर्घटना लगती है, तो कोई दुर्घटना भी कभी सुखद लगती है। एक ही वाक्य किसी को सुखद, तो किसी को दुखद महसूस होता है।

सुख और दुख का स्थान शरीर में कहा है ? दुख होने पर क्या हाथ, पैर या आंखें दुखी होती हैं अथवा यकृत, फेफड़े या गुर्दे दुखी होते हैं ? शरीर का कौन-सा अंग स्थिति विशेष में सुखी या दुखी होता है ? यदि शरीर का कोई अंग विशेष दुखी होता तो डॉक्टर उस अंग विशेष का ऑपरेशन करके आपको सुखी कर देता। आपके शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग स्वस्थ हैं, सारी प्रणालियां बखूबी कार्य कर रही हैं। आपकी नब्ज ठीक चल रही है, रक्तदाब सामान्य है, इसके बावजूद आप सुखी नहीं हैं। आपके दुखों की कोई सीमा नहीं है। वास्तव में दुखी आपका भौतिक शरीर नहीं है। दुखी है आपका मानसिक शरीर अर्थात् मन। आपके प्रिय पुत्र या पुत्री के पैर में चोट लग गई, लेकिन दर्द हो रहा है आपको। अपदार्थ शरीर में और यही अपदार्थ शरीर है मन।

जीवन में न जाने कितने ऐसे अवसर आते हैं, जब अंगारों-सी तपती धरती पर नंगे पैर चलने में भी आनंद की सीमा नहीं रहती। ऐसे मौके भी आते हैं, जब विभिन्न रंगों के सुगंधित और मनमोहक फूल भी हृदय में शूल से चुभते हैं। जैसी मन की अवस्था होगी, बाहरी कारण उसी के मुताबिक हम पर असर डालेंगे। मन की प्रसन्नता के आगे कैसी गर्मी, कैसी सर्दी अथवा कैसी बरसात ? मन दुखी है, तो क्या बारिश का आनंद क्या वसंत ऋतु की मादकता और क्या शरद ऋतु की शीतलता।

बहरहाल, कोई भी स्थिति अच्छी या बुरी नहीं है। यह तो मन के ऊपर निर्भर है। और मन, जैसी इसकी हालात हो चुकी है, उसी के मुताबिक प्रतिक्रिया करता है। मन की हालात होती है हमारे संस्कारों से। हमारे परिवेश के असर से और हमारी तालीमों-तबीय से। हमारी धार्मिक निष्ठा, हमारा खान-पान, हमारी आजीविका के साधन, हमारी सामाजिक हैसियत तथा विभिन्न क्षेत्रों में हमारे विश्वास- ये ऐसे तत्व हैं, जो हमारे मन और सोच को प्रभावित करते हैं।

हमारा मन एक हजारों चैनल वाले टीवी सेट के समान है। जिस चैनल को हम चालू करते हैं, उस क्षण हम वही चैनल होते हैं। क्रोध के चैनल का चुनाव करने पर क्रोधित, शांति और प्रसन्नता के चैनल का चुनाव करने पर शांत और प्रसन्नचित्त हम सब में चैनल का चुनाव करने की योग्यता है। हम जिस चैनल का चुनाव करते हैं हम वही तो हैं। मन को वर्तमान में ले आइए। अपना सारा ध्यान इसी क्षण पर केंद्रित कर आंखें बंद करके ध्यान को अपने श्वास के आवागमन पर लगा दीजिए। क्या आप इन क्षणों में दुख-सुख की सीमा से परे नहीं है। न सुख, न दुख, केवल आनंद की अनुभूति।

संत की प्रकृति होने के बावजूद आत्मा का मोह शरीर के साथ भी होता है और मन के साथ भी। शरीर, मन की चंचलता और चातुर्य के प्रभाव में आकर सांसारिक सुखों, ऐश्वर्य, ईर्ष्या-द्वेष, धन, मकान, पत्नी-पुत्र आदि में लिप्त हो जाता है और कभी आत्मा की आवाज सुनकर शरीर संतई पर उतर आता है, मोह, ममता आदि से खिन्न होकर आध्यात्मिक चिंतन में विलीन हो जाता है। यद्यपि गीता में कहा गया है कि यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा नि:संदेह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहनेवाली और सनातन है। शरीर का भाव निष्काम है। शरीर नि:क्षोभ, नि:छल, नि:पक्ष, नि:पाप, नि:संकल्प, नि:संपात और नि:स्पृह है। शरीर तो आत्मा और मन के दबाव में आकर कार्य करता है। मन के चातुर्य के लिए शास्त्रों में कहा गया है कि मनो यदनुसंधत्ते तदेवाप्नोति तत्क्षणाव। अर्थात मन जिस चीज को पाने का इरादा कर लेता है उसे तत्काल अवश्य प्राप्त कर लेता है। आत्मा

स्थिर, अव्यक्त, अचिंत्य और विकार रहित है तथा मन चंचल, चलायमान और विकारों से परिपूर्ण है। आत्मा और मन दोनों ही का निवास शरीर है। कभी ऐसा भी होता है कि आत्मा शरीर को सात्त्विकता की ओर ले जाने के लिए पूरी तरह से प्रेरित करती है, लेकिन मन भोगों में सुख का लालच दिखाकर शरीर को भटका देता है। यही मन अपकर्मों के लिए प्रेरित करता रहा है और आत्मा शरीर के मोह में फँसी रहकर शरीर के चारों ओर पतंगे की भांति मंडराती रहती है। यहां तक कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा शरीर का पीछा नही छोड़ती है।

शरीर का संबंध जब आत्मा और मन से समाप्त हो जाता है तब वह निष्काम भाव से शांत हो जाता है। उसकी किसी से मोह नहीं है। शरीर किसी के पीछे भागता नहीं है। बल्कि शरीर नष्ट होने के पश्चात उसके द्वारा किए गए कार्य एवं गुणों को सदैव स्मरण किया जाता है। यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है। मन को वश में करने के लिए अभ्यास व वैराग्य, ये दो उपाय बतलाये गये है। अभ्यास और वैराग्य से विचारों में स्थिरता आती है और विवेक जागृत होता है। विचार और विवेक के सामने आते ही मन का उद्वेग समाप्त हो जाता है तथा सुखों की प्राप्ति में स्पृहा दूर हो जाती है एवं राग, भय और क्रोध नष्ट हो जाते है। मन को नियंत्रित करने का अर्थ है कि हमने आत्मा के छह शत्रुओं-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य को अपने वश में कर लिया। ऐसी तपस्या से ही हम आत्मा का मोह भी भंग कर सकते है, मन की चंचलता को भी स्थिर कर सकते है और आत्मा की सात्त्विकता के प्रकाश में प्रभु से साक्षात्कार भी प्राप्त कर सकते है।

मन बहुत चंचल होता है। आम भाषा में कहें तो चलायमान होता है। जहां कुछ भी देखा, मन में उत्सुकता होने लगती है। जो लोग मन पर अंकुश रखते हैं वे गलत काम नहीं कर पाते। मन को वश में रखना आसान नहीं है। मन को वश में रखना साधना कहलाता है।

कोई भी काम करने से पहले यह संकल्प करें कि मैं मन को भटकने नहीं दूंगा। मन को शांत रखें, धीरज न खोएं। गंभीर बने रहें। धीरे-धीरे मन शांत होकर काम में लगने लगेगा। मन को किसी काम के लिए रोकने से पहले ठीक तरह से सोचें। सहज ढंग से सोचने पर मन सही काम करने के लिए तैयार हो जायेगा।

मन में गलत विचार आएं तो उन्हें शीघ्र रोकने का प्रयास करें। अपना दृष्टिकोण हमेशा आशावादी बनाए रखें। समाज सेवा में मन लगाएं। गपशप से बचना सीखें। मन की गहराई में उतरें और अपने अंदर झांककर देखें। स्वयं को सुधारने का प्रयास करें। भक्ति से मन को भर दें। दूसरों की बुराई की उपेक्षा करें। मन एवं स्वास्थ्य में गहरा संबंध है। यदि मन मंदिर है तो स्वास्थ्य ईश्वर है। यदि हम मन में जाकर देखते हैं तो स्वास्थ्य भी नजर आता है। हमें अपना मन हमेशा स्वच्छ रखना चाहिए। मन तभी साफ रह सकता है। जब हम सभी अपने दुश्मन के विषय में भी बुरा न सोचें। न ही हम अपने मन में किसी ऐसी बात को छिपायें जो सोचने पर हमें बार-बार दु:खी बनाये। जीवन में कभी-कभी ऐसी बात भी किसी विश्वासपात्र को बतानी चाहिए, जो मन को दु:ख पहुंचाती हो। यदि हम अपनी खुशी को बता सकते हैं तो दु:ख भी बताना चाहिए। दोनों को ही बताने से मन दिमाग एवं स्वास्थ्य पर अच्छा असर पड़ता है। कुछ लोग अपनी खुशी तो बांटते हैं पर दु:ख नहीं और अंदर ही अंदर घुटते रहते हैं। ऐसा बोझ मन पर नहीं डालना चाहिए। इससे शरीर में वह तेज नहीं रह पाता जो ऐसा न सोचने से आ सकता है। अच्छा स्वास्थ्य हमें हर कहीं सफलतायें दिलाता है।

मन बदला तो जीवन बदला- जीवन में किये गये सद्विचार अनुरूप कार्य उसे पुण्य उपार्जित करने में सहायक होते हैं। वहीं मन की चंचलता एवं कषाय के वशीभूत क्रोध, मान, माया तथा लोभ के चंगुल में रहकर पौद्गालिक सुख के मोहांध

होकर पद् भ्रमित हो जाता है, तब वह पाप की श्रृंखला में बंधने लगता है। इस प्रकार निज भावों की निम्नता जहाँ क्रोध-मान -माया-लोभ इन चार चक्रों में घुमाते हुए पाप कर्म के पथ पर प्रवर्तित कराते हुए निम्न गति में भटकाती है। स्वभाव से सरल, स्वभाव से विनीत, दया भाव सहित तथा ईर्ष्या भाव से रहित आचरण मन, वचन एवं कर्म से करे तो उसकी गति कभी बिगड़ नहीं सकती और वह अपने जीवन के लक्ष्य को पाने के मार्ग में निष्कंटक चल सकेगा। वहीं उसे किसी तरह के उहापोह की स्थिति का सामना नहीं करना पड़ेगा। सर्वप्रथम मन से ही पाप कर्म की ओर प्रवर्तित होते हैं। फिर वचन से तत्पश्चात काया से। इसलिए प्रतिदिन के व्यवहार में मन से निश्चल-निष्कपट आचरण करे तो घर-परिवार में कोई विवाद की स्थिति नहीं बनेगी। यदि कोई विवाद है तो वह भी तुरन्त सुलझ जायेगा। जब मन में कोई कपट या लाग-लपट नहीं है तो शब्दों के रूप में किसी के मन को व्यथित नहीं कर सकती है। मन-वचन पर नियंत्रण की स्थिति पा लेने पर शरीर से तो किसी का अहित करने को कोई आगे बढ़कर प्रहार नहीं करेगा। ऐसी स्थिति जहाँ स्वयं व्यक्ति को पाप कर्म से बचाती है, वहीं गृहस्थ कर्म में उसकी गाड़ी बहुत अच्छे से चलेगी। भौतिक जीवन में समस्त रोग-दोष का कारण तनाव है और तनाव मुक्ति के इससे श्रेयस्कर उपाय संभवत: दूसरे नहीं हो सकते।

रामकृष्ण परमहंस ने कहा, सब काम करना चाहिए, परंतु मन ईश्वर में लगाए रखना चाहिए। माता-पिता, स्त्री-पुरुष, संतान आदि सबकी सेवा करनी चाहिए। परंतु मन में इसका बोध भी रखना चाहिए कि अंतत: वे हमारे कोई नहीं हें। जैसे किसी धनी के घर एक दासी उसके घर का सारा काम करती है, किंतु मन उसका गांव के अपने घर पर लगा रहता है। मालिक के लड़कों का लालन-पालन वह अपने बच्चों की तरह करती है, पर जानती है कि वे पराए हैं। जैसे कछुआ तैरता तो पानी में है, पर उसका मन रहता है किनारे पर, जहां उसके अंडे रखे हैं। इसी तरह संसार का सभी काम करो, पर मन रखो ईश्वर में।

हम अपनी उस चेतना या शक्ति से स्वयं अनजान होते हैं और प्रकाश के लिए इधर-उधर भटकते हैं। इसका कारण यही है कि हम कोई भी प्रयास करने से पूर्व अपने अंतर्मन में नहीं झांकते। हम उसके द्वार पहले ही बंद कर बैठते हैं। यदि अपने अंतर्मन को जाग्रत रखें, उसकी शक्ति को पहचान लें तो हमें कठिनाई का सामना करना ही न पड़े। क्योंकि तब हम अपना पथ स्वयं सुगम बनाते जाएंगे।

मन वही है जो हम सोचते हैं, जैसा चाहते हैं, वैसा ही वह करता है। हमें वह वैसी ही राह दिखाता है। यदि आपने मन में विजय प्राप्त करने का संकल्प ले रखा है तो निश्चय ही आप विजयी होंगे। जब हम आत्मचिंतन करते हैं तो हमारे अंदर का मैं हमें बताता है कि वह किसी कार्य को करने में सफल होगा या नहीं। स्पष्ट है कि आत्मचिंतन द्वारा स्वयं को अपनी आंतरिक शक्तियों से परिचित कराना बहुत आवश्यक होता है। जब व्यक्ति अपनी शक्तियों को जान लेता है, तो उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन आ जाता है। हमारा मन कई बार हमें प्रेरित करता है कि डरो मत, अमुक काम करो। महात्मा गांधी तो यहां तक कहते थे कि निर्मल अंत:करण को जिस समय जो प्रतीत हो, वही सत्य है। उस पर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है। मानव का अंत:करण ही ईश्वर की वाणी है। आवश्यकता होती है, उसे ध्यान से सुनकर अमल में लाने की।

पांडवों के तेरह वर्ष के वनवास के दौरान एक बार तालाब के रक्षक यक्ष ने प्यासे युधिष्ठिर से कई सवाल पूछे थे। उनमें एक सवाल यह भी था कि इस जगत में वायु से भी अधिक तेज, चंचल या द्रुतगामी कौन है ? इस पर धर्मराज युधिष्ठिर ने

उत्तर दिया था कि इस जगत में सर्वाधिक चंचल या द्रुतगामी हमारा मन है।

यह सत्य है कि इस मन की गति की कोई तुलना नहीं कर सकता। कोई इसे पकड़ नहीं सकता, कोई इसे बस में नहीं कर सकता। पलक झपकते ही यह हजारों मील दूर पहुंच जाता है, कुछ ही क्षण में भ्रमण करके वापस भी आ जाता है। हमारे शरीर की सभी इंद्रियां थक जाती है, किंतु हमारे मन को एक क्षण भी आराम नहीं मिल पाता। यह अपनी कल्पना में मित्रों से तो मिलता ही है, किंतु अपने शत्रुओं से तो अकेले ही क्रोध में लाल पीला होकर लड़ता-झगड़ता है। जो इसे पसंद नहीं करता, वहां भी यह मन बिन बुलाए पहुंच जाता है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इसके प्रबल साथी हैं। हमारे शरीर की सभी इंद्रियां मन के इशारों पर नाचती हैं। मन की और पानी की गति एक सी होती है। पानी का स्वभाव नीचे की ओर जाना है। यह मन भी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए नीचे से नीचे गिर सकता है। लेकिन हमें सदा रहना तो इसी मन के साथ है। इसे हम छोड़ भी नहीं सकते। इसलिए मनीषियों-धर्मगुरुओं ने कहा है कि इस मन को समझा बुझाकर, प्यार-पुचकार कर हम इसे अपना अंतरंग साथी बना लें, तो यह मन हमारा सबसे विश्वासपात्र मित्र बन सकता है। थोड़े से प्रयास या अभ्यास की बात है। थोड़ी साधना, प्रार्थना, आराधना, भावभक्ति के द्वारा यह मन संभल सकता है। हमारा अपना मित्र बन सकता है, यह मन पावन पवित्र बन सकता है। सद्ग्रंथों के अध्ययन, चिंतन-मनन, भगवत-स्मरण से यह सही मार्ग पर जा सकता है। और तब यह भोग-विलास में भटकना बंद कर देता है। उछल-कूद मचाना बंद कर देता है।

वैसे तो हमारे शरीर का मालिक मन नहीं, आत्मा है। आत्मा निर्लिप्त, निर्विकार है, परमात्मा का अंश है और हमारे शरीर में परमात्मा का प्रतिनिधि है। पर मन इस शरीर का मंत्री है। वही इस शरीर का सारथी है। हमारा मन हमारे शरीर को कहीं भी ले जा सकता है। वह हमें बहका सकता है, गड्ढे में भी गिरा सकता है। ऐसी स्थिति में बुद्धि हमें संभालती है। बुद्धि सदैव आत्मा का साथ देती है, जबकि मन कभी-कभी बुद्धि की भी उपेक्षा कर लेता है। इसीलिए मन को प्रशिक्षण देने और उसे साधने की जरूरत है।

श्रीमद् भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में मन को नियंत्रित करने के लिए बहुत कुछ कहा गया है। उसमें लिखा है कि जैसे कछुआ अपने अंग-प्रत्यंग को सिकोड़कर अपनी इंद्रियों को वश में करते हुए शत्रु से अपनी रक्षा करता है, ठीक इसी भांति ज्ञानी पुरुष भी विषय-वासनाओं, इच्छाओं से अपनी रक्षा करते हुए अपने मन को नियंत्रित करता है। कई बार जीवन में आने वाली सम-विषय परिस्थितियां भी मानव मन को बदल लेती हैं। चोट खाने पर, ठोकर खाने, घायल होने पर या अपमानित होने पर भी यह मन सहसा बदल जाता है। वृक्ष की जिस टहनी पर बैठे थे, उसी टहनी को काटकर मूर्ख कहलाने वाले कालिदास अपनी पत्नी विद्योत्मा की प्रताड़ना पाकर विद्वत समाज की संगति से महान कालिदास बन गए। इसी भांति तुलसीदास अपनी पत्नी के प्रेम में आसक्त थे। एक रात घर पर पत्नी को न पाकर उसके विछोह में व्याकुल होकर अर्द्धरात्रि में ही पत्नी के मायके पहुंच गए। मायके में सबके बीच लज्जित होकर उनकी पत्नी ने तीखे वचनों से तुलसीदास के मन को बुरी तरह झकझोर दिया। उसी वक्त पत्नी अनुरागी तुलसीदास का मन बदल गया। यह चंचल मन बदल जाए, साधक बन जाए, मायामोह के इस संसार से पूर्णत: निर्लिप्त हो जाए, तो यही हमारा मन जीवन में महानतम कार्य कर सकता है। जिसने अपने मन पर विजय पाई है, वही व्यक्ति विश्व पर विजय प्राप्त कर सका है।

अच्छा मन ही अच्छा जीवन है- आवश्यक है कि अच्छे विचारों का चिंतन किया जाय। मन के अच्छे विचार अच्छे

जीवन का निर्माण करते हैं। प्रात:काल प्रभु वन्दना, प्रभु स्मरण अच्छे विचार है, शुभ चिन्तन है। कभी बैठे हो, विचार कर रहे हो तो किसी को दु:ख देने का क्यों विचार करो ? अपने से कुछ अच्छा हो जाय इसी का विचार करो। अच्छा विचार करने में कौनसी हानि हो रही है ? विचार तो अच्छे करो कम से कम। अच्छा करना न करना वह तो अगली बात है। पहले अच्छा करने का संकल्प करो। इसमें कौनसी दरिद्रता आ जाती है ? कौनसी गरीबी आती है ? लेकिन लोग ज्यादातर विचार-दरिद्र ही होते हैं। नहीं कर पाते श्रेष्ठता के, क्षमा के, करुणा और मैत्री के विचार। भगवान ने कहा मनपुण्णे मन से जो अच्छे विचार करता है वह पुण्यार्जन करता है। विचारशील मन ही मूल है, बाकी सब शाखा है, प्रशाखाएं हैं, पत्र है पुष्प है। अत: मन के मूल को सींचो, उसे खाद दो अच्छे विचारों का, पानी दो करुणा का।

मन है राजहंस- वास्तव में मन ही हमें हराता है और मन ही आगे बढ़ाता है। हमारा मन ही हमें ऊपर उठाता है और हमारा मन ही हमें नीचे गिराता है। मन की शक्ति ही महान शक्ति है। हंसों का राजा गंगा में भी डुबकी लगाता है। और यमुना में भी तैरता है। लेकिन गंगा में तैरने से उसकी शुभ्रता, श्वेतिमा बढ़ती नही और कालिन्दी यमुना में तैरने से उसका दूध सा सफेद रंग कम नहीं होता। न बढ़ती है, न घटती है उसकी शुभ्रता। वह राजहंस वैसा का वैसा ही रहता है। हमें राजहंस बनना है। जीवन में जो द्वन्द एवं संघर्ष आते हैं वे क्षणिक होते हैं। आये हैं संघर्ष तो वे जायेंगे भी। हमारे मेहमान है ये सब। सुख भी मेहमान है, दु:ख भी मेहमान हैं। आते हैं और जाते हैं।

सावधानी- मन तो भटकने वाला है, स्व में नहीं तो पर में चला जायेगा। चुप बैठनेवाला तो वह नहीं है। अत: क्या करना और क्या नहीं करना इसका विवेक तो होना ही चाहिए। बाजार से आप साधारण-सी वस्तु लेने जाते हैं, वह भी देखभाल कर लाते हैं। घड़े जैसी मामूली चीज भी देखते हैं तो यह सोच कर लेते हैं कि इसमें पानी ठंडा रहेगा या नहीं। कहीं फूटा हुआ तो नहीं है। उसे बजा कर भी देखते हैं। साग भाजी भी सड़ी-गली लेना नहीं चाहते। इसी तरह दूध, दही, गेहूं-बाजरा भी देख कर लिया जाता है। खराब चीज कोई भी लेना नहीं चाहता। जहां शरीर स्वास्थ्य के लिए इतनी सावधानी रखी जाती है तो मानसिक स्वास्थ्य के लिए हमें कितनी अधिक सावधानी रखनी चाहिए ? खराब विचार मेरी आत्मा को कहीं मलीन न बना दें यह क्यों नहीं आज सोचा जाता है ? आप कह सकते है मन में बुरे विचार ही क्यों आते हैं ? अच्छे क्यों नहीं आते ?

मन वाहन पर बसे विरला, वा नर की बलिहारी से। जो पुरुष मन को वश में कर लेते हैं वे ही नर से नारायण बन जाते हैं। यह मन का घोड़ा इतना चंचल है कि इसको वश में नहीं करोगे तो यह तुम पर सवार हो जायेगा। तुम्हें घुमाने लग जायेगा। तुम सवार हो, घोड़े पर तो तुम्हें बैठना चाहिए, परन्तु आज तो घोड़ा तुम्हारे ऊपर चढ़ा हुआ है, यह कैसी हालत है तुम्हारी? मन के हाथ में अपनी डोरी मत दो, मन को काबू में रखोगे तो बाकी इन्द्रियां अपने आप वश में हो जायेंगी। एक शेर जंगल में घूम रहा है और दूसरा पिंजरे में बंद है। दोनों की शक्ति में बड़ा अन्तर होता है। पिंजरे में बंद शेर की शक्ति कुंठित हो जाती है। इसी तरह मन को भी पिंजरे में बन्द कर दो, उसे बाहर मत भटकने दो। यही मन की सावधानी है, मन का तप है।

कैसा विचित्र है यह मन। यह दु:खी होने को तत्पर हो जाता है पर झुकने के लिये तैयार नहीं होता। अपने स्वयं के दु:खमय और त्रासित अनुभवों से शिक्षा लेकर भी मिथ्यामार्ग को न हीं छोड़ता और नहीं किसी संत या सज्जन के उपदेश से सन्मार्ग पर आता है। अपनी शांति खोना उसे मंजूर है लेकिन अपना दुराग्रह छोड़ने की उसकी तैयारी नहीं होती। यह अपरिचित व्यक्तियों से मित्रता बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील रहता है परंतु पूर्वाग्रह से मुक्त होकर स्वजनों के साथ स्नेह में वृद्धि करने में असफल होता है। यह कीचड़ में पड़ी हुई चवन्नी उठाने को तैयार है मगर जिनके प्रति कलुषित भावों को संचित

कर बैठा है उनके जीवन में विद्यमान सत्वगुणों को देखना भी इसे स्वीकृत नहीं। इसकी आकांक्षा यही रहती है कि स्वयं के चेहरे पर सदैव हंसी-खुशी उमड़ती रहे किंतु इसके लिये सामनेवाले के आंसू भी बहाने पडे तब भी इसे उससे कोई सरोकार नहीं होता। मन के विचित्र स्वभाव की बात है। यदि निश्चित समय पर मंजिल तक पहुंचना है तो रास्ते में आनेवाले कंकर-पत्थरों से अपने पांवों को संभालना जरूरी है। ठीक उसी तरह, किसी भी व्यक्ति के साथ समझौता करने को मन तैयार है तो उस व्यक्ति के प्रति भूतकाल में घटित कटु प्रसंगों की स्मृति को भी सर्वप्रथम मन से हमेशा के लिये निकालना जरूरी है। भूतकाल का स्मरण यदि दु:खद और त्रासदायक भविष्य को आमंत्रण दे रहा है तो ऐसे भूतकाल को हमेशा के लिए भूलाकर भविष्यकाल को सुनहरा बनाने के प्रयास में जुट जाना चाहिए। मात्र सच का आग्रह यह मन की भाषा है जो कि मतभेद बढ़ाता है, अहंकार के भावों को जन्म देता है जबकि अच्छे का आग्रह यह हृदय की भाषा है जो कि तमाम मतभेदों को नष्ट करता है, अहंकार की सारी दीवारों को गिरा देता है। मन की भाषा हो सकता है कभी संबंधों को बिगाड़ दे किंतु हृदय की भाषा कभी भी संबंधों को बिगड़ने नहीं देगी। मन स्वार्थ का प्रतिनिधित्व करता है तो हृदय त्याग का। बुद्धि से पैदा हुये संघर्ष-वन को प्रसन्नता के नंदनवन में परिवर्तित करने की जो शक्ति हृदय के पास है वह बुद्धि के पास नहीं है। कदाचारी मन से पैदा हुये संघर्षों और समस्याओं के तूफान को शांत करने की जो शक्ति खुले मन के पास है वह बंद मन के पास नहीं है। जीवन के आचार-व्यवहार में यह सच्चाई तो देखते ही है कि किसी विशेष बात को अनेक सामान्य लोगों को समझने के बदले यदि उनके मुखिया को बतायी जाये तो फिर कोई भी समस्या हल करने में इच्छित सफलता अवश्य मिलती है। देश के विषय में प्रजा सामान्य है- नेता श्रेष्ठ है, युद्ध के विषय में सैनिक सामान्य है- सेनाधिपति मुखिया है, शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थी सामान्य है- गुरुजन श्रेष्ठ है, कुटुंब के मामले में परिवारजन सामान्य है- पिताजी श्रेष्ठ हैं, परंतु जीवन के विषय में सब कुछ सामान्य है- केवल मन ही सबसे श्रेष्ठ है। यदि मन मान जाये तो विकराल समस्या भी पलभर में हल हो जाती है और यदि मन न समझे तो अति सामान्य लगनेवाली समस्या भी जीवन को तहस-नहस कर सकती है। जब मन को यह विश्वास होता है कि किसी अवस्था या व्यवस्था में परिवर्तन के लिये कोई गुंजाइश नहीं है तो वह धीरे-धीरे उस अवस्था को स्वीकार कर लेता है।

हर एक मनुष्य के भाग्य में कुछ ऐसा ही लिखा है या कुछ ऐसा घटित होता है जो अरुचिकर है, अप्रिय है। अब यदि उसके पास ऐसे अरुचिकर और अप्रिय प्रसंगों को हंसकर भूला देने की कला न हो तो उसकी स्थिति क्या होगी ? वह प्राप्त आनंद का मजा नहीं ले सकता, प्राप्त सुख का भोग नहीं कर सकता और भाग्य में आये अरुचिकर या अप्रिय प्रसंग की याद में सतत दु:खी ही रहता है। शरीर के क्षेत्र में होनेवाले नुकसान को हंसकर उड़ा देने के लिये वह किसी भी तरह से तैयार नहीं होता। मन के आदर्श गगन में उड़ते रहने में जितना आनंद है उतना आनंद वास्तविकता की धरती पर चलने में नहीं है। मन को जो अनुकूल लगता है उसे करने में तो उसे विशेष तकलीफ नहीं होती लेकिन जो प्रतिकूल लगता है उसे अनुकूल बनाने में विशेष रुचि नहीं होती। वर्तुल (गोलाकार) से उसके केंद्रबिंदु से निकलनेवाली सारी रेखाएं परिधि को समान अंतर से स्पर्श करती है। वैसे ही हमारे जीवन वर्तुल का केंद्रबिंदु प्रेम ही होना चाहिए। सामनेवाले व्यक्ति के साथ यदि कभी तुम्हें उसकी पात्रता की कमी के कारण कर्कश और कठोर व्यवहार करना भी पड़े तब भी उस व्यवहार में प्रेम का स्पर्श बना रहना ही चाहिए। जब हाथ मारे तब भी हृदय रोये ऐसी प्रेमपूर्ण प्रकृति होती है। उदार हृदयवाले व्यक्ति को दंड देने का निश्चय उसकी मजबूरी हो सकती है, उसका स्वभाव तो हरगिज नहीं हो सकता। उसके द्वारा आवश्यकता पड़ने

पर कभी-कभी कठोर व्यवहार किया जा सकता है, पर स्थायी तौर पर वह कठोरता से पेश आये यह कदापि संभव नहीं। आक्रोश से वह केवल दु:खी होता है, आनंदित कभी नहीं।

अनंत शक्ति का पुंज है हमारा मन। अनंत-अनंत क्षमताएं इसमें संचित है। इस विशिष्ट शक्ति के स्वामी है आप। इसका उपयोग करना सीखना है न कि निंदा। मन के सम्यक् उपयोग की कला है, अप्रतिम बनकर जीना। विवेक को जागृत करके जीना। जो भी आप सुने, पढ़े, देखें अथवा जो भी आप क्रिया करें राग और द्वेष से मुक्त बनकर करें। गलत शब्दों से, गलत संगत से, गलत दृश्यों से स्वयं को दूर रखें। कोई भी कचरा अपने भीतर प्रवेश न करने दे। मन को मारिए नहीं उसे सम्यक् राह दीजिए। द्रष्टा भाव से जीने का अभ्यास करें। सम्यक पथ पर गतिमान मन शीघ्र ही आपको परम पद पर आरोहित कर देगा।

हम स्वयं अपने मित्र और शत्रु- इस संसार में हम स्वयं ही अपने परम मित्र भी एवं जानी दुश्मन भी है। जब हमारा मन पवित्र भाव से सुवासित हो जाता है तब शुभ-चिंतन में मग्न हो जाता है। तब हमारी वाणी मधुर होती है, परोपकार की भावना उत्पन्न होकर हम तन-धन से परोपकारी कार्यों में जुट जाते हैं। पर जब हमारा मन क्लेश से ग्रस्त होता है तब दूसरों की बुराईयों की बातें मन में उठने लगती हैं। वाणी कठोर, कर्कश, तुच्छ बन जाती है। वर्तन हिंसक, क्रूर व निर्दयता का बन जाता है और आप अपने शत्रु बनते हैं।

चित्त- चेतन, चित्त यानी आत्मा के कर्म, चित्त में होनेवाले विकार ही हैं। इन्हीं विकारों को हम विकल्प भी कहते हैं। विकल्पों का फल व्याकुलता ही है। आत्मा से स्वभाव से चिपक जाते हैं। जैसे विकल्प हम करते रहते हैं, उसी के अनुरूप हमारा स्वभाव होता रहता है। स्वभाव में होनेवाला परिवर्तन ही चित्त की आकुलता है। दु:खों से छुटने की और सुखी होने की आकुलता ही सबको होती होगी। आकुलता और वेदना की अनुभूति समान होती है। चिंता तो चिंता ही है, वेदना तो वेदना ही है, पर पदार्थ और पर द्रव्य सदा अपने साथ नहीं रह सकते हैं। उनका मिलना और बिछुड़ना अनिवार्य है। इसीलिए संसार को दु:खमय कहा है। जो इष्ट है वह बिछुड़ न जावे और जो अनिष्ट है वह गले न पड़ जावे, मात्र ये दो चिन्ताएं ही तो हमारा सारा समय खाये जा रही हैं। अपने शरीर से अन्य को तो पर सभी मानते हैं परन्तु अपने शरीर को भी पर जानने की कोशिश बिरले ही करते हैं। देह त्याग करते समय सभी छटपटाते हैं, फडफड़ाते हैं, बिरले ही देह का त्याग पर वस्तु जानकर शांति से, समता से, समाधिपूवर्क कर पाते हैं।

यदि जीवन की तुलना एक ऐसे मकान से की जाए जिसमें कई मंजिल हो तो इस जीवन ही पहली या सबसे निचली मंजिल शरीर होगा। जीवन की इस प्रथम या निचली मंजिल में अनेक प्रकार की गंदगियों का अड्डा है। जीवनरूपी मकान की दूसरी मंजिल इन्द्रियों की है जिसमें आँख, कान, नाक, जिव्हा (रसना) और स्पर्शन इन्द्रियों की दीवारें बनी हैं। तीसरी मंजिल मन की है। मन रूपी मालिक जहाँ पर आसन जमाए अपना दफ्तर करके बैठा है, वहीं से वह शरीर और इन्द्रियों को आज्ञा देता रहता है और अपने इशारों पर नचाता रहता है। सारी नाच-दौड़ तीसरी मंजिल पर बैठे मन की आज्ञा से ही होती है। मन से भी ऊपर का तल आत्मा का तल है। यदि मन से काम, क्रोध, मत्सर की दुर्गन्ध समाप्त हो गई और वहाँ करुणा, दया, क्षमा का सौरभ महकने लग गया तो समझिए कि आपके प्रयत्न व धर्माचरण सार्थक हो रहे हैं। वास्तव में जब तक अन्तर का द्वार नहीं खुलता, तब तक कुछ नहीं होता। जब तक भीतर का प्रकाश नहीं जग जाता तब तक बाहर का प्रकाश किसी काम का नहीं। मन के अंदर जो गलत इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं विकल्पों की भीड़ लगी रहती है, उनकी

छटनी की जाए और जो निरर्थक एवं अनावश्यक इच्छाए आदि हैं उन्हे दूर भगाया जाए और केवल उन्हीं इच्छाओं और संकल्पों को वहाँ ठहरने दिया जाए तो अति आवश्यक और सार्थक हो। जीवन में जो तथ्य जिस रूप में आता है, उसे स्वीकार करके आगे बढ़ते जाना, आशा और विकल्प के चक्कर से छूटने का मूल मंत्र है। मनोविज्ञान की यह एक सर्वसम्मत राय है कि मनुष्य गलती करता है और जब यह जान पाता है कि उसने कुछ गलत किया है तो तत्काल उसमे एक प्रकार का अहं जागृत हो जाता है। अहं उस गलती को गलती स्वीकार करने नहीं देता, बल्कि उसे उसी रूप में सही सिद्ध करने के लिए प्रयत्न करता है। यह वृत्ति बड़ी घातक होती है और जीवन में कभी सफल नहीं होने देती। मन कभी निकम्मा नहीं रहता, वहां हमेशा इच्छा और संकल्प-विकल्प की होड़ लगी रहती है। अत: विवेक को जागृत करना चाहिए,, ज्ञान और बुद्धि को प्रकाशमान रखना चाहिए। विवेक के हाथ का इशारा जिधर हो, उधर संकल्प-विकल्प और इच्छाओं की दौड़ बंद हो जाए। विवेक का होना अत्यंत आवश्यक है, जिससे इच्छाओं के जमघट को रोका जा सके। वृत्तियों पर इस प्रकार का विवेक का अधिकार होना चाहिये। हमारे मन की सराय-नया मंदिर सदा शुभ, निर्मल और उच्च संकल्प एवं धारणाओं से भरे रहने चाहिए जिससे अशुभ विकल्पों को वहाँ स्थान ही न मिले। बुराई अधिक व्यापक होती है। जब वह खत्म होने लग जाती है तो अच्छाई को खोजना नहीं पड़ता, वह अपने आप प्रकट हो जाती है। इस अभ्यास के लिये स्वाध्याय तथा चिंतन का क्रम बनाना चाहिए। जिसमें जीवन का संपूर्ण उल्लास, आनंद और प्रकाश मिलता है। फिर मुक्ति के लिए कही दौडधूप करने की जरूरत नहीं, वह स्वयं अपने अंदर में प्रकट हो जाएगी।

एकांत का मन के साथ प्रगाढ़ संबंध है। मन बुद्धि के साथ जुड़ा हुआ है। बुद्धि के पास तर्क होता है। इसलिए बुद्धि कभी कौशल्या का कार्य करती है, कभी मंथरा का। तर्क सुतर्क होता है वैसे कुतर्क भी होता है। तर्क सीधा होता है, टेढ़ा भी होता है। परंतु मनुष्य का जीवन तर्कबद्ध नहीं हो सकता। न तो क्रमबद्ध होता है, न तर्कबद्ध। हर मनुष्य में कौरव होते हैं, पांडव भी होते हैं- मोह के, माया के, इच्छाओं के, क्रोध, काम के।

अपनी अप्रामाणिकता हम को विच्छिन्न-विभक्त कर देती है। भले ही देह स्थिर हो, मन का भटकाव चलता रहता है, एकांत में विशेष। अपना मन स्वार्थ के अलावा कहीं भी रुकता नहीं, टिकता नहीं, मन के विकार हम को एकाग्र या एकत्रित होने देते नहीं हैं। हम भीतर में छिछले हैं। सब बातों में अपना विरुप व्यक्तित्व ही प्रकट होता है।

हम भले ही अपनी चेतना की पुड़िया बांध कर बैठने की बात करें, परंतु वह संभव नही है। एकांत का उपयोग यदि संप्रज्ञात समाधि प्राप्त करने के लिए किया जाये तो अपनी नैया किनारे लग जाये। एकाग्रता आनी चाहिए। मन आकाश जैसा निर्विकार, निराकार और निर्लेप बन सकता है। कीचड़ जिस प्रकार से आकाश लिप्त नहीं होता है, वैसे मन पापों से लिप्त नहीं होता है। चाहिए एकांत में ध्यान, धारणा और समाधि।

एकांत योगी को उठाता है, भोगी को डुबोता है। एकांत में आत्म साधक मौन रहकर अंतरात्मा बना रहता है। परंतु जो बहिरात्मा होता है वहां भी विषय विकारों में लिप्त हो जाता है। एकांत में विकारी की वासनाएं ज्यादा प्रज्ज्वलित होती है। ज्ञानी पुरुष अपने भीतर गहराई में रहे हुए आत्मतत्व में रममाण रहता है और परम आनंद पाता है।

जिस प्रकार वर्षा की बूँदें उस घर में टपकती हैं जिसका छप्पर ठीक नहीं होता, उसी प्रकार आसक्ति, घृणा और विभ्रम उस मन में प्रवेश करते हैं, जो आत्मनिष्ठ ध्यान से विदित होता है। जिसका मन स्थिर नहीं है, जो सद्धर्म से अवगत नहीं है, जिसकी आस्था चंचल है; ऐसे व्यक्ति की प्रज्ञा कभी पूर्ण नहीं होती। सभी प्रकार की बुराइयों से दूर रहना, सत्कर्मों को

सम्पन्न करना तथा अपने मन को शुद्ध करना; यही बौद्धों का मत है।

मन की शांति का मूल्य जीवन में बहुत है, संपत्ति एवं स्वास्थ्य से भी अधिक। मन ही मनुष्यके पूर्व रूपको तथा भविष्य रूपको बतलाता है। यह पूर्वजन्म में कैसा था और अगले जन्म में कैसा होगा। इस जन्म में जीवन्मुक्त होगा या नहीं। सब खेल मन का ही है। मन के हारे हार है मन के जीते जीत, यह लोकोक्ति सत्य है। जब तक मन इन संसारी विषयों में भ्रमवश सुख मानकर भटकता रहेगा, तब तक उसे परमपद की प्राप्ति नहीं हो सकती। जहाँ यह मन विषयों से विरक्त हुआ, तहाँ इसकी जड़ता नष्ट हुई। फिर यह आकाश स्वरूप ब्रह्म में तन्मय हो जायगा। मेरा-तेरा, अच्छा-बुरा, ऊँचा-नीचा, दु:ख-सुख आदि द्वन्द्वों की कल्पना इस मन ने ही तो कर रखी है। जहाँ मन से यह मिथ्या कल्पना निकली नहीं कि फिर कुछ नहीं है। अँधेरे में तम के कारण मन में भय वश एक भ्रम होता है कि सामने भूत खड़ा है। यथार्थ में ज्ञान दृष्टि से सोचा जाय तो न तो भूत बाहर से आया था न कहीं अन्यत्र चला गया। मन से उत्पन्न हुआ था, मन में ही विलीन हो गया। मन ही कल्पनामयी सृष्टि रचता है। स्वयं ही उसमें सुखी-दुखी होता है। उसी के द्वारा शुद्ध बुद्ध जीवात्मा भी जन्मता मरता-सा दिखाई देता है। यदि मन विषयाभिमुख न हो तो जीव को न कोई बन्धन है न साधन, वह तो नित्य मुक्त है ही। यह मन तो जड़ है चैतन्य की सत्ता को लेकर देहाभिमानी जीव को सुख-दु:ख भुगाता है। सात्त्विक, राजस और तामस इन तीनों गुणों और इनके शुभाशुभ कर्मों में आसक्त हुआ मन संसार में फँसानेवाली बहुत-सी वृत्तियों को उत्पन्न करके वंशवृद्धि करता रहता है। जहाँ इन गुणों से अलग हुआ कि फिर अपने कारण महतत्त्व में विलीन हो जाता है।

मन ही इन्द्रियोंका नियन्ता है। मन निर्मल है तो इन्द्रियोंमें विकार सम्भव नहीं है। इन्द्रियके सामने शुभ या अशुभ कुछ आवे, मन निर्विकार है तो आप निर्विकार हो। अहंकारी मन सबका शत्रु बनकर सबसे घृणा करने लगता है तथा दूसरे के लिये भी घृणा का पात्र बन जाता है। घृणा से जीवन नष्ट होता है। जब तक अहंकार का त्याग नहीं होगा तब तक परमात्मा को पाना मुश्किल है। अहंकारी मन अपने में उलझा रहता है। अपने अहंकार भाव को जागृत रखने के लिये अधिकतम प्रयास में परमात्मा को पाने के लिये क्षणों को खो देता है।

जो विवेकी, विरक्त, शमी, दमी और मुमुक्ष हो, उसी में ब्रह्म विस्तार ब्रह्म विचार की योग्यता मानी जाती है। तुम्हारा सोता हुआ मन जाग जाये, इतनी योग्यता तो तुम में आनी चाहिये।

जो शरीर को काबू मे रखता हुआ जान पडता है किन्तु मन के विकार का पोषण किया करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है। मन को विकारपूर्ण रहने देकर शरीर को दबाने की कोशिश करना हानिकर है।

भौतिक शरीर में मन की विचित्र गति है। इंद्रियों का राजा मन ही कहलाता है। इसका निवास तो शरीर के भीतर है लेकिन चेष्टाएं यह बाहरी करता है। चेष्टाएं ही नहीं करता बल्कि इंद्रियों के द्वारा ही यह समस्त भोगों का उपभोग भी करता है। इसको जितना दबाया जाता है, उतना ही यह बाहर की ओर भागता है। इसको नियंत्रित करने का एक ही साधन है- अभ्यास। अभ्यास के द्वारा ही इसे वशीभूत किया जा सकता है। अर्जुन ने जब श्रीकृष्ण से मन को वश में करने का उपाय पूछा था तब श्रीकृष्ण ने भी एकमात्र अभ्यास ही उपाय बताया था।

यह मन बहुत चंचल है। अत: इस मन को ही परमोधिये (शिष्य बनाएं) और इसे ही ज्ञान-ध्यान का उपदेश दें अर्थात अपने मन को एकाग्र कर और संशयों को दूर कर स्वच्छ कर लो। जो भी इस मन को अपने वश में कर लेता है और मन को अपने कहे अनुसार चलाता है तो सारा संसार उसका शिष्य बन जाता है।

संसारी तो मन के मुरीद (दास) हैं। मन के वश में होकर लोग मन के कहे अनुसार चलते हैं। किंतु अपने गुरु का मुरीद (दास) तो कोई कठिनता से ही होता है, जो अपने गुरु की सच्ची सेवा भक्ति करे। जो मन को छोड़ अपने गुरु के वचनों का पालन करता है उसका मत अगाध (अथाह) होता है।

जो इस मन को मारकर अपने अधीन न कर सकता और न ही पांचों इन्द्रियों के प्रहार को रोक पाया और भोग-विलास में ही उलझा रहा, उसके मन में शीलता (नम्रता), सांच (सत्य) तथा श्रद्धा के भाव कभी नहीं आ सकते। उसकी इन्द्रियां नग्नवस्था में ही फिरती रहती हैं। इन पांच इन्द्रियों में ही बंधकर (मन के विकार) यह जीव बार-बार मानव शरीर धारण करता है। जो कोई मन के इन पांचों विकारों को त्यागकर मन को अपने वश में कर लेता है, वही इस भवसागर को पार करता है अर्थात मोक्ष को प्राप्त होता है।

मानव को इस चंचल मन को संयमित करना चाहिए। भले ही इसके लिए अथक प्रयास करने पड़ें। अर्थात सत्गुरु का नाम जपना पड़े तो अवश्य जपना चाहिए। जो अपनी इस भक्ति से तन और मन दोनों को अपने वश में कर लेता है, उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वह तो काल को भी जीत लेता है।

इन्द्रियों सहित मन को जीते बिना ही जो मन्त्रियों को जीतने की इच्छा करता है या मन्त्रियों को अपने अधीन किये बिना शत्रु को जीतना चाहता है, उस अजितेन्द्रिय पुरुष को सब लोग त्याग देते हैं।

जो पहले इन्द्रियों सहित मन को ही शत्रु समझकर जीत लेता है, उसके बाद यदि वह मन्त्रियों तथा शत्रुओं को जीतने की इच्छा करे तो उसे सफलता मिलती है। इन्द्रियों तथा मन को जीतनेवाले, अपराधियों को दण्ड देनेवाले और जांच-परखकर काम करनेवाले धीर पुरुष की लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है।

मनुष्य जिन-जिन विषयों से मन को हटाता जाता है, उनसे उसकी मुक्ति होती जाती है। इस प्रकार यदि सब ओर से निवृत्ति हो जाए तो उसे लेशमात्र दु:ख का भी कभी अनुभव नहीं होता।

हे मन। तू इतनी ऊंची सोच कि तू बहुत ऊंचाई पर पहुंच जाए। तेरी ऊंचाइयों तक कोई अन्य व्यक्ति न पहुंच सके तथा तेरी ऊंचाई के आगे सब ऊंचे-ऊंचे स्थान भी नीचे पड़ जाएं।

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुवा है। मन समस्त इन्द्रियों की शक्तियों से उत्कृष्ट है। सभी सापेक्ष विचार मन में ही पैदा होते हैं। मन सभी संवेदनाओं का अग्रगामी है। इस भौतिक विश्व के समस्त तत्त्वों की अपेक्षा मन सबसे सूक्ष्म है। समस्त विषयभूत चेतना मन में ही उत्पन्न होती है। यदि कोई शुद्ध मन से बोलता या काम करता है, तो आनन्द उसकी छाया के समान उसका अनुसरण करता है।

शरीर मिट्टी के कच्चे घडे के समान क्षण भंगुर है। शरीर की क्षणभंगुरता का बोध होने पर तथा परमात्मा निष्ठ हो जाने पर मनुष्य का मन जहां जहां जाता है उसके लिये वही समाधि बन जाती है। तुम्हारा शरीर पवित्रता का मन्दिर है।

जीवन के विषय में सब कुछ सामान्य है केवल मन ही सबसे श्रेष्ठ है। यदि मन मान जाये तो विकराल समस्या भी पलभर में हल हो जाती है और यदि मन न समझे तो अति सामान्य लगनेवाली समस्या भी जीवन को तहस-नहस कर सकती है। मन को जो अनुकूल लगता है उसे करने में तो उसे विशेष तकलीफ नहीं होती, लेकिन जो प्रतिकूल लगता है, उसे अनुकूल बनाने में मन में विशेष रुचि नहीं होती।

आत्मा का उत्थान करना है तो मन को वश में रखो। हमारा मन ध्वजा की तरह है। जिस दिशा की हवा उसे लगती है

वैसा ही वह उड़ते रहता है। मन को वश में करने के लिये सत्संग की आवश्यकता है। सत्संग में वह शक्ति है जो मन को वश में कर सकता है।

मन तो सीढ़ी जैसा है, तुम उसे जहां केंद्रित करोगे वह तुम्हे वहां ले जायेगा। पदार्थ पर ही केंद्रित करते रहोगे तो वह तुम्हें पापी बनाकर पापगतियों में रवाना करता रहेगा और यदि तुम उसे परमात्मा पर ही केन्द्रित करोगे तो वह तुम्हें पवित्र बनाकर परमगति में पहुंचा देगा। जिस प्रकार निर्बल शरीर पर वातावरण का असर जल्दी होता है, उसी प्रकार निर्बल मन पर निमित्त का असर जल्दी होता है। जीवन के आंगन में बहुत सुख नहीं आये, उसी प्रकार बहुत दु:ख भी नहीं आये हैं, इस वास्तविकता को सतत नजर के समक्ष रखकर प्राप्त सुख में संतुष्ट बने रहे व अप्राप्त सुख की इच्छा से मन को मुक्त रखें।

बरफ की सिल्ली के ऊपर कचरा डाल दो तो उसे बहा देता है कि न कि उछलकूद करता है। मन को बरफ की सिल्ली बनाना है। जो प्रति पल घटता ही रहता है, वह है- आयुष्य। जो प्रति पल बढ़ती ही जाती है, वह है तृष्णा और जिसमें प्रति-पल वृद्धि-कमी आती रहती है, होती रहती है, वह है- मन।

मन पर अनेक प्रकार की परतें चढ़ जाती है, उसको भी उसी प्रकार मांजने की जरूरत है जैसे बर्तनों को हम प्रतिदिन मांजकर चमकाते रहते है। मन ही संसार है। प्रयास करके उसीको शुद्ध करना चाहिये। जैसा मन होता है वैसा ही मनुष्य बन जाता है। यह सनातन रहस्य है। मन संसार की सबसे शक्तिशाली वस्तु है। जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह संसार की किसी भी चीज को नियन्त्रित कर सकता है।

साधु का वेश बाहरी बदलाव है मन का बदलना सबसे अहम है। आकाश को ध्यान से देखें तो लगता है कि थोड़ी दूर ही आकाश की सीमा-रेखा है, क्षितिज है। लेकिन जैसे ही वहां पहुंचते हैं तो प्रतीत होता है कि आकाश तो अभी और दूर है। हम आगे बढ़ते जाते हैं लेकिन क्षितिज नहीं मिलता।

हमारा मन भी ऐसा ही है। वह भी इसी तरह विस्तार ले लेता है। आसमान की तरह ही फैलाव मन का स्वभाव है। इसकी हर सीमा प्रवंचना है। हमारे पैर तो एक ही ओर चलते हैं, लेकिन मन चहुंओर घूमता है। हालांकि उसे जाना हमारे अंत:स्थल की ओर ही होता है।

संसार के समस्त जीवों में मानव की श्रेष्ठता और प्रभु प्रदत्त वरदानों में मानव-मन की सर्वोच्चता सर्वमान्य है। सामान्यत: मन का अर्थ है प्राणियों की वह शक्ति जिसके द्वारा विचार, अपना-पराया, सुख-दुख और संकल्प की अनुभूति होती है। चंचलता और स्वच्छंदता मन की नैसर्गिक विशेषता है। दार्शनिकों का मानना है कि मानव-मन उस जलाशय की तरह है, जिसका स्थिर जल हवा के प्रभाव से लहर बन कर शीघ्र गतिमान हो जाता है। जिसने मन को अपने अधीन बना लिया, वह मनोनिग्रह में कदम रखने में सक्षम हो सकता है। क्योंकि जिसका मन नियंत्रित है वही मानसिक रोगों और शारीरिक पीड़ाओं से मुक्त रहेगा। मन को इसी सीमा-रेखा में बांधने के लिए संसार त्याग कर साधु संत बन जाना एक उपाय माना गया है। लेकिन सांसारिक बाना छोड़कर साधु बनने मात्र बाहर ही परिवर्तन होता है। इस बाहरी परिवर्तन की बदौलत बाहरी शत्रुओं से रक्षा करना थोड़ा आसान हो जाता है। परंतु अपने भीतर के शत्रुओं से स्वयं को बचाने के लिए भीतर में भी परिवर्तन चाहिए। बाहर से परिवर्तन न भी हो तो कोई खास फरक नहीं है, मगर भीतर का परिवर्तन जरूरी है।

जो वस्तु हमारे जितने पास होती है, उसे समझना उतना ही जटिल होता है। आंखों के लिए आंखों को देखना संभव नहीं, क्योंकि वे स्वयं से निकटतम हैं। यही हाल हमारे मन का भी है। मन हमारे सबसे नजदीक है- इतना कि मनुष्य

यह तक भूल बैठता है कि वह स्वयं मन नहीं बल्कि मन का स्वामी है, मन से परे है। यही भूल हमें मन का गुलाम बना देती है। वस्तुत: वह हर वस्तु जिसे हम ठीक से समझते न हों, अपने साथ परतंत्रता लेकर आती है। यदि हम स्वतंत्र होना चाहते हों तो हमें उसे भली-भांति समझना चाहिए, उस वस्तु पर नियंत्रण कैसे स्थापित किया जाए- गुलाम की बजाय मालिक कैसे बना जाए?

उपनिषदों में कहा गया है कि मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है। इतिहास में देखें तो पाएंगे कि जो मन को साध ले गया उसे वह सब कुछ मिला जो उसने चाहा, लेकिन जो मन के हाथों सध गया उसका सब चला गया। जीवन का चाहे कोई भी आयाम क्यों न हो- धर्म अध्यात्म, व्यवसाय, कला या खेल-सफल होने के लिए मन का संयम बहुत आवश्यक है। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं, निश्चय ही मन अत्यंत चंचल स्वभाव वाला है और इसे वश में करना बहुत कठिन है। लेकिन उपयुक्त अभ्यास और वैराग्य द्वारा इसे नियंत्रित करना संभव है। अभ्यास का अर्थ है बार बार सही तरीके से प्रयास करना और वैराग्य का मतलब है राग या आसक्ति में पड़कर अनियंत्रित न होना। गीता का यह सूत्र महज धार्मिक बात नहीं है, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में सफल होने का रहस्य है।

इस बारे में विख्यात अमेरिकी मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर विलियम जेम्स कहते हैं, आम तौर पर ऐसा लगता है कि हम उसके अनुसार कार्य करते हैं जो हम महसूस कर रहे होते हैं। लेकिन कार्य और भावनाएं साथ में चलते हैं। हम अपनी क्रियाओं को नियंत्रित करके- जो कि हमारी इच्छाशक्ति के ज्यादा काबू में हैं- अपने मनोभावों को भी नियंत्रण में ला सकते हैं। इसलिए यदि हमारी स्वाभाविक प्रसन्नता खो गई हो, तो खुद प्रसन्न होने का मार्ग यह है कि हम खुश होकर बैठें और ऐसे व्यवहार करें मानो हम वाकई प्रसन्न हों।

विचारों की स्वच्छंद उड़ान मन को नई ताकत प्रदान करती है - व्यक्ति खुद को अपनी सोच के कटघरे में बंद रखता है। यही कारण है कि वह अपने विचारों को सही मानता है, साथ ही औरों को भी उन्हीं खांचों में फिट करना चाहता है और खुद भी उन्हीं में फंसा रहता है। जब खुद को या दूसरे को भी उस रूप में नहीं पाता तब असंतुष्ट हो जाता है। असंतोष और तनाव से नाखुशी आती है। जो अपनी पसंद-नापसंद को सर्वोपरि मानता है, वह अपने सारे गुणों व उपलब्धियों के बावजूद हर समय अशांत रहता है। इस सबके पीछे वह चंचल मन होता है, जो हर किसी को अपने अनुसार हांकता है।

शरीर के अवयव भी उसी के अधीन होते हैं। बुजुर्ग कहते आए हैं, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। यही नहीं, मन इंसान की भूख-प्यास, भावनाओं आदि सभी पर काबू रखता है। किसी को एक वक्त खाना न मिले तो उसका मन दुखी हो जाता है, जबकि दूसरा व्यक्ति पूरे दिन भूखा रहकर संतोष महसूस करता है क्योंकि उसका मन उपवास का व्रत पूरा होने की उपलब्धि से खिला होता है।

दिमाग पर मनुष्य का वश नहीं चलता। उसकी बनावट और क्रियाकलाप वंशक्रम और बचपन के अनुभवों आदि से जुड़े होते हैं। परंतु आज के मनोवैज्ञानिकों और न्यूरो वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का दावा है कि इस मान्यता में बदलाव आ रहा है। न्यूरो वैज्ञानिकों का मामना है कि दिमाग की नसों में लचीलापन होता है। यह वंशक्रम और अनुभवों से प्रभावित भले ही होता है, पर मन के अनुसार उसे बदला जा सकता है। यही कारण है कि दिमाग का कोई हिस्सा किसी कारणवश क्षतिग्रस्त भी हो जाए तो दूसरा हिस्सा काफी हद तक उसकी कमी को पूरा कर सकता है। परंतु इसके लिए जरूरी होता है कि मन की शक्ति को जागृत किया जाए।

भारत में आध्यात्मिकता की चर्चा में चेतना पर बल दिया जाता है। परमहंस योगानंद का मानना है कि मन में व्यापक चेतना निहित है पर वह अज्ञान में फंसे होने के कारण अपनी ताकत को पहचानने में असमर्थ होता है। योग वशिष्ठ स्पष्ट करता है कि सृष्टि के विचार से असीम चेतना निकली जो मन के द्वारा व्यक्त हुई। उसने कई रूपों का निर्माण किया। इस प्रक्रिया से मन का विकास हुआ।

मानवीय दिमाग में आध्यात्मिक तत्व बड़ी मजबूती से पिरोया हुआ है, पर अधिकांश लोग उसे जागृत नहीं करते, इसलिए वह छिपा हुआ है। जो लोग आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हें अपने अंदर वह प्रतिभा जगानी चाहिए जिससे मन यह सीख सकेगा कि कैसे बिना प्रयत्न के मन को एक बिंदु पर केंद्रित किया जाए, तभी वह ऊंचाई तक पहुंच सकेगा। तब वही मन जो व्यक्ति को कटघरों में फंसाता है, उसे आजाद होने की ताकत देगा।

परमात्मा का प्रवेश-द्वार है शांत मन। पर मन मस्ती का प्यासा है। हमारी तो दो ही निगाहें हैं, लेकिन मन के पास हजारों आंखें हैं। उस सर्वशक्तिमान को पाना है तो विचरण करें उस लोक में जहां मन की गति नहीं है। पहचानें मन के व्यक्तित्व को, उजागर करें उसके दृष्टा-स्वरूप को। मन स्वयं कोई ऊर्जा नहीं है। हम ही उसे ऊर्जा देते हैं, तो वह गतिशील होता है। हम ही उसमें चाबी भरकर अविराम इधर-उधर दौड़ाते हैं। जैसे ही हम ये चाबी भरना बंद करेंगे, अस्तित्व के आंगन में दृष्टा भाव का सूर्योदय हो जाएगा।

प्रथम स्तर में मन स्वयं ज्ञान का आधार है। मन क्या है? मानव संरचना बहुकोशीय है। मानव मन के तीन भाग है। प्रथम है- सामूहिक एककोशीय मन, द्वितीय है सामूहिक बहुकोशीय मन और तृतीय है- उसका अपना मन। इन तीनों को मिलाकर मानव मन बनता है। जिस प्राणी में बहुकोशीय मन जितना विकसित रहता है वह प्राणी उतना ही आगे जाता है। कौरवों और पांडवों के बीच युद्ध के समय कौरवों को युद्ध का परिणाम समझाने की बहुत चेष्टा कि गई। यहां तक कि युधिष्ठिर ने उन लोगों में परिवर्तन लाने के लिए भगवान से प्रार्थना भी की। परमात्मा की अनुकंपा भी थी, किंतु जड़ भाव होने के कारण वे उसे समझ न सके। हां, अर्जुन के गांडीव की टंकार को वे आसानी से समझ सके थे। इसलिए एककोशीय मन भौतिक शासन से ही शासित होता है अन्य से नहीं।

हमारा विवेकी मन एक ऐसा प्रकाश बिखेरता है जिसमें किसी भी तरह के पागलपन को पनपने नहीं दिया जाता, यह प्रकाश किए गए कुकर्मों पर एकांत में आंसू बहाने का अवसर भी देता है और स्वयं के प्रति ग्लानि और पश्चात्ताप के भाव भी पैदा करता है। जबकि इससे हटकर एक मन ऐसा होता है जो अंधेरा ही अंधेरा देता है और जिसमें खुलेआम ईमान बेचकर शोषण, अन्याय और अत्याचार करने को उकसाया जाता है।

मन को स्थिर नहीं बनाना है उसे खास दिशा में चलाना है। व्याप्त जगत में परमात्मा गतिशील हैं। किंतु जहां अव्यक्त जगत है वहां गति नहीं है। परमात्मा अव्यक्त अवस्था में गतिहीन और व्यक्त अवस्था में गतिशील हैं। सब चलायमान है।

आपका जो मन है वह भी चलायमान है। लोग कहते हैं कि मन को स्थिर बनाओ। मन को स्थिर बनाओ कहना त्रुटिपूर्ण है। कहना चाहिए मन को एक विशेष दिशा में चलाओ। मन स्थिर हो गया तो एक मतलब यह भी निकला कि मन की मौत हो गई। जहां गतिहीनता है, वहीं मृत्यु है। इसलिए गति जीवन का धर्म है।

अस्तित्व रहने से देश-काल-पात्र है। देश-काल-पात्र का स्वभाव है परिवर्तित होना। इनके भीतर जो रहेंगे, उनको चलना पड़ेगा। फिर वो चाहें या न चाहें, उनको चलना ही पड़ेगा। जीवन धर्म के लिए चलना फर्ज है। पांच हजार साल

पहले मानव समाज जहां तक पहुंचा था, आज उससे बहुत आगे बढ़ा है, क्योंकि चलना उसका धर्म है। अगर किसी में प्राचीनता का मोह हो और उस मोह के कारण वह अगर यह बोले कि पांच हजार साल पहले जो समाज था, जो पुरानी समाज व्यवस्था थी, वह अच्छी थी तो इसका मतलब यही हुआ कि वह अधोगति का समर्थक है। गंगासागर को, गंगा को गंगोत्तरी की तरफ ले जाने की कोशिश करनेवाले ही अधोगति के समर्थक हैं। वह मानव समाज का कल्याण नहीं चाहते हैं। समाज की प्रगति नहीं चाहते हैं। जीवन का मूल धर्म गति है और जो गति के विरोधी हैं, वही मृत्यु के समर्थक भी हैं।

रूको मत, आगे बढ़ो- यही है जीवनधर्म। यही है जीवन का संपूर्णता से भरा नारा। आगे बढ़ो, बढ़ते रहो- यही है जीवनधर्म। सृष्टिधारा में प्रथम सृष्टि की उत्पत्ति मन में होती है, यथा - मैं कुछ बनाऊंगा। एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में बैठकर यह ध्यान कर रहा है कि मैं इस रोग की दवा बनाऊंगा। तो दवा बनकर लैब के बाहर आने से पहले मन में तो बन ही गई। सृष्टि की प्रथम उत्पत्ति मन में हुई और मन का यह जो बीच है, बनाने की यह जो इच्छा है, यह जब अधिक शक्तिशाली हो जाती है, तब इसका चित्ताणुगत ढांचा पदार्थ के रूप में, जड़ में रूपांतरित हो जाता है। मन की धातु जड़ पंचभूत में रूपांतरित हो गई। यह जो एषणा यानि इच्छा है वही इस सृष्टि का बीज है। यह बात भूमा यानी अनंत के संबंध में भी प्रयोज्य है। अर्थात पहले सृष्टि की इच्छा, उसके बाद सृष्टि। मन में एक दीवार है, आप आसानी से मन वाली दीवार को तोड़ सकते हो। भौतिक दीवार को तोड़ने के लिए अधिक मेहनत की जरूरत होती है।

योगी और ध्यानी कहते हैं कि आंखें बंद करो और चुपचाप बैठ जाओ। मन में किसी तरह के विचार को न आने दो- समस्याओं से जूझने का यह एक तरीका है। पर गीता का ज्ञान तो वहां दिया गया जहां दोनों ओर युद्ध के लिए सेनाएं तैयार खड़ी थीं। श्रीकृष्ण को ईश्वर का रूप मान लें तो उन्हें सुननेवाले अर्जुन तो सामान्य जन ही थे। आज भी खिलाड़ी हजारों दर्शकों के शोर के बीच अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करते हैं। अर्जुन ने भरी सभा में मछली की आंख को भेदा था। असल में सृजन और एकाग्रता के लिए, जगत के नहीं, मन के कोलाहल से दूर जाना होता है।

मन की गहराइयों में रखी संपत्ति को पहचानें।

सृष्टि ने हर व्यक्ति के मन की गहराइयों में ऐसी संपत्ति रखी है, जिसे पहचानने के लिए हमें केवल एक संकेत शब्द चाहिए और वह शब्द है चिंता मत करिये। ब्रह्मांड में एक ऊर्जा है, जो आपको आपके माता-पिता से, मित्रों से या जीवनसाथी से भी अधिक प्रेम करती है। वह ऊर्जा आपका ख्याल रखती है। थर्मोडाइनैमिक्स के तीसरे नियम के हिसाब से हम जानते हैं कि ऊर्जा का न तो सृजन हो सकता है, न विनाश। मन भी ऐसी ही एक शक्ति है, जो बहुत समय से है और इस चेतना में बहुत सी छवियां बस जाती हैं और इन सबका अध्ययन बहुत रोचक है।

मन का संतुलन साधने से शुरू होती है ज्ञान की साधना। मनुष्य का शरीर अनेक कोशिकाओं से बना है। हर एक कोशिका का अपना मन होता है। चूंकि मनुष्य का मन काफी विकसित है। सामूहिक प्रोटोजोइक (एककोशिकीय जीवद्ध मन), सामूहिक बेटाजोइक (बहुकोशिकीय जीवद्ध मन) और मनुष्य के अपने मन के मिलने से मन को निर्माण हुआ है। देखा जाए तो प्रथम स्तर में मनुष्य का मन विकसित है, दूसरे स्तर में जानवर का मन और तीसरे स्तर में पेड़-पौधे, अमीबा इत्यादि का मन विकसित है। प्रोटोजोइक और मेटाजोइक मन काम विकसित होने के कारण मनुष्य के मन को पशुत्व भाव से प्रभावित करना चाहता है।

किसी ने बहुत सही कहा है कि खुशी मन में होती है, बस उससे हमारा संपर्क टूटा रहता है। वस्तुत: आदमी का मन

समुद्र की तरह गहरा और आकाश जैसा विराट होता है। जब भी कुछ घटित होता है तो सबसे पहले उसका असर मन पर ही होता है। मन से पूरा शरीर जुड़ा हुआ है। मन खुश रहता है, तो शरीर नाचने लगता है, जब दुखी होता है, तो शिथिल हो जाता है। मन एक चेतना है। उस चेतना के धरातल पर किस चीज को कितनी जगह मिलनी चाहिए, यह हम पर निर्भर है। अगर दुख का प्रभाव मजबूत दिखाई दे रहा है, तो समझें कि हमने मन को बौना कर दिया है। मन छोटा होगा, तो सुख भी छोटा ही होगा। मनीषियों ने तो हमेशा मन को विराट बनाने की कल्पना रखी है। जिसके मन का बल जितना मजबूत होगा, वह उतना ही बड़ा विजेता होगा। अमेरिका यात्रा के दौरान जब स्वामी विवेकानंद को बोलने की अनुमति नहीं मिली, तो वह निराश नहीं हुए। उन्होंने दृढ़ मनोबल का परिचय देकर अपने लिए अनुमति प्राप्त कर ही ली। उसके बाद जो हुआ, दुनिया जानती है। इसका सीधा संकेत है कि कोई भी लड़ाई मनोबल से जीती जा सकती है।

पूरी जिंदगी लोगों के गले काटने वाले अर्जुन माली को जब भगवान महावीर का सान्निध्य मिला, तो वह अच्छाई के शिखर तक पहुंच गया। लोगों ने मजाक किया, तो भगवान महावीर ने कहा, कुछ परिस्थितियां ऐसी होती है, जिनसे व्यक्ति प्रभावित होता है। अच्छा वातावरण मिलता है, तो वह अच्छा भी होता है। अगर मन हमारा मीठा, उदार तथा दूसरों के अस्तित्व को स्वीकार करता हो, तो जीवन की सारी विषमताएं समाप्त होंगी। हर धर्म और दर्शन ने मन को मूल माना है।

मन से बनें मजबूत। बाह्य रूप से बहुत कड़क व्यक्तित्व के दिखनेवाले लोग भी कई बार आंतरिक रूप से बहुत कमजोर पाये जाते हैं। मजबूत कद काठी वाले लोगों के बजाय नाजुक कमजोर लगनेवाले कई बार मन की मजबूती को देखें तो उनसे बाजी मार लेते हैं। मन के जीते जीत है मन के हारे हार, इस कहावत में कितना तथ्य है, यह इस रोजमर्रा के जीवन में होनेवाली घटनाओं से जान सकते हैं।

वैसे काफी हद तक तो यह जींस का ही कमाल है लेकिन चूंकि मनुष्य के पास कॉमन सेंस है, वह अपने को मानसिक रूप से बचा सकता है, समय पर मनोचिकित्सक की मदद लेकर।

मन के कमजोर होने के कई कारण हो सकते हैं। इसमें वंशानुगत कारण ऐसा है जिस पर किसी का वश नहीं। पूर्वजों में किसी की व्यावहारिक बुद्धि, भावनात्मक बनावट, समझने की शक्ति औसत से कम रही हो, इसके अलावा शराब की लत, ड्रग एडिक्शन, जुआ खेलने की आदत, हद दर्जे की फिजूलखर्ची भी व्यक्ति को मानसिक रूप से कमजोर बना देते हैं।

दूसरों को देखकर अपने भीतर हीन भावना पालना खुद को हर तरह कमतर समझना भी मन की कमजोरी के लक्षण हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि कमजोरी में ही ताकत छुपी होती है। कई बार मानसिक रूप से कमजोर लगने वाले व्यक्ति ही भविष्य में अपने को साबित कर महान व्यक्तियों की श्रेणी तक पहुंच जाते हैं।

दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसने अपने जीवनकाल में कोई भूल, कोई नादानी, कोई बेवकूफियां न की हों। उसे सोचते रहने उसे लेकर अपराध बोध पालते रहने से आपकी आंतरिक ऊर्जाओं का ऱ्हास होता है। आपकी प्रगति की राह में यह बाधा डालेगा, इसलिए अच्छा तो यह है कि वर्तमान में जीते हुए भविष्य संवारने की सोचें। भूतकाल बीत चुका है। उसका अब कुछ नहीं हो सकता।

अपनी आनंददायी उपलब्धियों को याद रखें। जीवन के सुंदर पल, विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न मौकों पर दिए गए कांप्लीमेंट्स मन के लॉकर में सुरक्षित रखें। उन्हें समय-समय पर महसूस करें। इससे आपका आत्मबल बढ़ेगा जो आत्मविश्वास के लिए जरूरी है। आपके जीवन में जो लोग हैं, उनके बारे में आप विचार करें। क्या वे ऐसे हैं जो आपके

क्षितिज को विस्तार देते हैं और जीवन में उत्तेजना लाते हैं। क्या जीवन में उनकी सोच सकारात्मक और विस्तृत है, आपका उत्साहवर्द्धन करते हैं, सच्चे दिल से प्रशंसा करते हैं। पीठ पीछे आपकी बुराई नहीं करते।

दूसरी तरफ वे लोग भी हैं जिन्हें हम ऊर्जा ड्रेनर कह सकते हैं। अपने नकारात्मक रवैया से वे हमेशा आपके उत्साह को बुझाने की ताक में रहते हैं। ऐसे लोग आपकी साइकी के लिए खतरनाक साबित होते है। ऐसे सेडिस्ट लोगों से सदा बच के रहना चाहिए। वे आपको जान से मारने की हिम्मत तो नहीं रखते मगर ये उनसे कम खतरनाक नहीं। मन से मजबूत होंगे तो ऐसे लोग आपका कुछ बिगाड़ नहीं पाएंगे।

जो लोग आपको पसंद करते हैं, आप उन्हें पसंद करते हैं। उनके बीच उठने-बैठने से आपका दिमाग ऐसे रसायन तैयार कर रिलीज करता है जो आपको मनसे मजबूत बनाता है और खुशी प्रदान करता है। इससे आप आशंकाओं व हताशाओं की तरफ से अलग हो जाते हैं। आपका मन सकारात्मक सोचने लगता है। गिरता हुआ आत्मविश्वास ऊपर उठ जाता है। मनुष्य का जन्म संसार की ऐसी मिस्ट्री है जिनका जवाब किसीके पास नहीं।

एरोबिक्स, जैसे दौड़ना, तैरना, रस्सी कूदना, सीढ़ियां चढ़ना उतरना जैसी कसरतें बीडीएनएफ को बनाकर उन्हें रिलीज होने में सहायक होती है। आलस्य एक रोग है जिसका रोगी कभी नहीं सुधरता। शारीरिक क्रियाएं व्यक्ति को चुस्त बनाती हैं। मन की मजबूती के लिए शरीर का भी स्वस्थ रहना जरूरी है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

प्रतिदिन पंद्रह मिनट जरूर अपने को जांचने में लगाएं। अपनी सीमाओं को जानें। कोई काम आप नहीं कर सकती तो उसे लेकर अपराध बोध न पालें। इससे आपका आत्मसम्मान आहत होगा। अपनी प्रतिभा हो पहचानें। प्रयत्न करें कि उसी क्षेत्र में आपकी प्रतिभा और योग्यता आगे बढ़े।

कुछ मूलभूत बातों का अनुसरण करें जिससे मन मजबूत बनेगा। मेहनत से जी न चुराएं। दूसरों से ईर्ष्या न करें। मौके को हाथ से न जाने दें। बात करते हुए नजरें न चुराएं बल्कि सीधे आंखों में देखकर बात करें। मुस्कुराने में कंजूसी न करे। अपनी चाल-ढाल, शारीरिक भाषा ऐसी रखें कि इससे आपका आत्मविश्वास छलके।

अपनी कमजोरियों को जिस तिस पर प्रगट न करते रहें। इससे दूसरे के सामने आपकी प्रतिष्ठा घटेगी। बेहतर होगा आप उन्हें समझकर दूर करने का प्रयत्न करें या किसी विश्वसनीय व्यक्ति से सलाह लें।

अंधविश्वास से बचें। ये व्यक्ति को मानसिक रूप से कमजोर, दूसरे पर निर्भर और डरपोक बनाते हैं। मन विचारों से मजबूत बनता है। सदविचार रखें। सही राह चलेंगे तो होगा मन मजबूत बल्कि विशिष्ट मजबूत।

वाणी और शरीर द्वारा किए जानेवाले कर्मों को नियमित करने के लिए मन पर नियंत्रण करें इंद्रियों के कार्य में प्रवृत्त होने के लिए मन का सहयोग आवश्यक है। हमारा मन बड़ा चंचल है। इसी के वशीभूत होकर व्यक्ति कर्मेंद्रियों को रोककर इंद्रियों के भोग के लिए प्रवृत्त हो जाता है। इससे बचने के लिए मन को बुरे विचारों से हटाना चाहिए।

जिस आदमी को केवल विज्ञान ही सब कुछ मालूम होता है पर उसने शरीर के पार नहीं झांका। उसने शरीर पर ही अपनी इतिश्री मान ली। उसने शरीर पर ही पूर्व विराम लगा दिया। इस आदमी के जीवन में काव्य नहीं होगा, संगीत नहीं होगा, साहित्य नहीं होगा। भर्तृहरि का प्रसिद्ध वचन है- जिसके जीवन में साहित्य न हो, काव्य न हो, कला न हो, वह मनुष्य मनुष्य नहीं है। यानी उसके भीतर मन अभी पैदा ही नहीं हुआ। मन से मनुष्य बनता है। नहीं तो पशु और मनुष्य में क्या फर्क है? पशु सिर्फ देह है। पशु को अपनी देह के पार और किसी चीज का कोई पता नहीं है। जो

मनुष्य भी देह के पार अपने को अनुभव नहीं करता, उसको पशु से भिन्न मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह मनुष्य के शरीर रूप में तो है, मगर मनुष्य की गरिमा अभी उसे उपलब्ध नहीं हुई। जो व्यक्ति सिर्फ वैज्ञानिक दृष्टि को ही अंगीकार करता है, उस व्यक्ति में मनुष्य का जन्म नहीं हुआ है; वह नाममात्र को मनुष्य है। मन पैदा होता है काव्य से, कला से, संगीत से, सौंदर्य बोध से। लेकिन, जो मनुष्य मन पर ही समाप्त हो जाता है, वह मनुष्य तो है, लेकिन ईश्वर भी हो सकता था; उससे चूक गया। क्योंकि एक आखिरी उड़ान भी है, जिसके पार फिर कुछ भी नहीं- जहां मनुष्य अपने को आत्मवान अनुभव करता है; जहां वह अहं ब्रह्मास्मि का अनुभव करता है। वह मन के भी पार है। जिसके पास मन होगा उसके जीवन में सौंदर्य का भी बोध होगा। वह रूखा-सूखा नहीं हो सकता। अगर रूखा-सूखा हो, तो समझ लेना कि वह किसी तरह मन को बचाकर निकल गया है।

आध्यात्मिकता नामक शब्द भी आपके अपने मन के कारण ही है। अपने मन के कारण ही आप समझ पा रहे हैं कि मैं आपसे क्या बात कर रहा हूं। अत: जो आपका मित्र है, आप उसे अपना शत्रु मत बनाइये। आपका मन आपका शत्रु है या मित्र? इस भौतिक जीवन में आप जो भी हैं, अपने मन के कारण ही हैं। आप अपना हाल बुरा कर लेते हैं, या किसी परेशानी में पड़ जाते हैं तो वह सब आपकी ही वजह से होता है, अगर आप इसके बिना जीवन चाहते हैं, तो यह बहुत सरल है। बस अपने सिर पर जोर से चोट कीजिये। मन कोई समस्या नहीं है।

समस्या यह है कि आपको इसे संभालना नहीं आता। इसलिन मन का दोष देखें, यह देखें कि आप कितनी अक्षमता से इसके साथ पेश आने की कोशिश करते हैं, तो यह आपके लिए परेशानी का कारण ही बनेगी। उदाहरण के तौर पर देखे तो मैं अगर आपसे चावल उगाने की बात करूं, तो आपको क्या लगता है कि यह एक बहुत बड़ी बात है? एक सीधा-सादा किसान भी धान उगा लेता है। लेकिन, अगर आपको सौ ग्राम चावल, खाद और बाकी सब कुछ दे दूं और कहूं कि आप मुझे एक एकड़ जमीन में धान उगाकर दिखाइये। तो आप देखेंगे कि आपकी क्या हालत हो जायेगी। इसकी वजह यह नहीं है कि धन उगाना कोई मुश्किल भरा काम है, बल्कि इसकी वजह यह है कि आपको यह काम करना नहीं आता है, इसलिए आपकी हालत बिगड़ जायेगी। सारी परेशानी की जड़ यही है। हम दूसरे से यही अपेक्षा रखते हैं कि दूसरों का मन निर्मल रहे। दूसरा हमारे बारे में अच्छा सोचे। जब हम दूसरे से अपेक्षा रखते हैं, तब हमें अपने से भी अपेक्षा रखनी चाहिए कि हम भी दूसरे के बारे में अच्छा ही सोचें। अपने मन को मलिन न होने दें। जो मलिनताएं हमारे भीतर हैं, उन्हें कैसे हटाएं और कैसे हम अपने जीवन को, अपने मन को, अपने कर्म को पवित्र बनाएं।

हमारे ऋषि-मुनियों ने इस मन को विराट बनाने के सूत्र दिए हैं। महावीर ने यहां तक कहा है, परस्पर उपग्रह, परस्पर उपकार और प्रेमपूर्ण सहयोग ही जीवों का लक्षण है। अगर भीतर प्रेम नहीं बह रहा है तो हमारा पूरा अस्तित्व ही गड़बड़ा जाएगा। इसलिए पहले हम अपने मन से जुड़ें और फिर उस मन को समाज के बीच ले जाएं। दु:ख ही नहीं, सुख को भी साझा करें। गांधीजी ने यही प्रयोग किया और सबका विश्वास जीत लिया। उन्होंने इस बात की चिंता की कि समाज का अंतिम आदमी तनकर खड़ा हो जाए और सबके साथ चलने लगे। सुख-दु:ख को भी हम मन से ही खड़ा कर लेते हैं। जिसने मन को वश में कर लिया, उसने संसार को वश में कर लिया। जो मन के अधीन हो गया, वह संसार में फँस गया। सुख-दु:ख, बन्धन-मोक्ष आदि सभी का कारण मन है। जिन्होंने मन की गति के रहस्य को समझ लिया है, वे पहिले तो संसारी विषयों में फँसते ही नहीं। यदि प्रारब्धवसात्, भगवत इच्छा से उन्हें किसी परिस्थिति में विषयों को स्वीकार करना भी

पड़ता है, तो वे शीघ्र ही उनसे पृथक् भी हो जाते हैं।

मुख्य कारण मानसिकता होती है। जीवन में जो होता है। जो तुम पर बीतता है, उसे तुम कैसे लेते हो, यह महत्व रखता है। कुछ लोग थोड़ी सी तकलीफ में भी हाय-हाय करने लगते हैं। जबकि बहुतेरे ऐसे भी होते हैं जो दर्द को चुपचाप सहकर अपना ध्यान कहीं और लगा उसे कम करने की कोशिश करते हैं। इंसान जिस बात से बहुत दुखी होता है, उसे किसी से बांट भी नहीं पाता। कभी कभी करीबी रिश्तों में भी न जाने कब और कैसे ईर्ष्या या होड़ आ जाती है। दूसरों के भाग्य से ईर्ष्या करना कुछ लोगों का स्वभाव ही बन जाता है। इसी वजह से वे भगवान को भी दोष देने लगते हैं। संपूर्ण विश्व में उस आध्यात्मिक शक्ति की ताकत देखी जा सकती है। दृष्टि से अदृश्य, स्पर्श से अछूती होते हुए भी वह सबको प्रभावित करती है। सुख-दूख की मात्रा किसी के लिए कम और किसी के लिए ज्यादा क्यों होती है। जब हमारा मन ईर्ष्या, क्रोध, हिंसा जैसे नकारात्मक भावों से भरा होगा तब सुख और शांति कैसे मिल सकती है। मन को पैराशूट की तरह खुला रखने पर ही वह सही काम कर पायेगा।

जब आपका चेतन मन अज्ञात भय से भरा होता है, तो अवचेतन मन में आशंका और निराशा जैसे नकारात्मक भाव आते हैं। जब आप अतार्किक व भावनात्मक तरीके से दृढ़तापूर्वक़ निडरता, आत्मविश्वास और ईश्वरीय सत्यनिष्ठा को अपने अवचेतन मन को सौंप देते हो तो आपके अवचेतन मन की ओर प्रवाहित होनेवाले अज्ञात भय और अविश्वास का बहाव निरुद्ध हो जाता है और आपके अवचेतन से असीमित ज्ञान, कुशाग्र बुद्धि और सकारात्मक ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है। खजाना आपके भीतर है। अपनी हार्दिक इच्छाशक्ति का जवाब अपने अवचेतन की गहराई में खोजे।

अव्यवस्थित दिमाग को बिखरापन ही पसंद आता है। जो चीज जितनी ज्यादा बिखरी दिखाई देती है, वह उसको उतना ही ज्यादा पसंद करता है। अधिकतर लोगों का दिमाग अव्यवस्थित ही होता है। इस बात को मार्केटिंग और मीडिया के लोग भलीभांति जानते हैं। इसलिए वो मन के इस बिखरेपन के हिसाब से अपनी प्रस्तुति देने की कोशिश करते हैं।

जैसे किसी मन को वही न्यूजपेपर ज्यादा अच्छा लगेगा, जो जितना ज्यादा एक ही पेज पर छोटी-बड़ी अक्षरों और अनेक रंगों से भरा होगा। उसी न्यूजपेपर के जिस पृष्ठ पर इस प्रकार का बिखरापन कम होगा, वो पेज ज्यादा नहीं पढ़ा जाएगा। इसलिए एडिट पेज प्राय: कम पढ़ा जाता है क्योंकि वह न्यूजपेपर का सबसे व्यवस्थित और बौद्धिक पृष्ठ होता है। आमतौर पर सामान्य लोग अपने जीवन में इतने साधेपन के आदी नहीं होते, इसलिए इस पेज को नजरअंदाज कर देते हैं। ऐसे पाठकों का मन ड्राइंग रूप की तरह रंगों से भरे पेज की ओर आकर्षित हो जाता है। अत: बिखरा हुआ मन बिखरी चीजों के प्रति आकर्षित होता है।

वास्तविकता यह है कि हमारा मन प्रभु द्वारा बनाया गया एक अद्भुत उपकरण है, जो हमे संसार का ज्ञान कराता है। संसार से व्यवहार कराकर उससे जोड़े रखता है और यही मन जब अंतर्मुखी होकर आत्मा के साथ जुड़ता है तब व्यक्ति को मुक्ति दिला देताहै । अत: मन ही बंधन देता और यह मन ही मुक्ति में भी सहायक हो जाता है। हमारा मन केवल ख्यालों की माला नहीं बल्कि अपने में अपार शक्ति लिए हुए होता है। मन बड़ा शक्तिशाली है, लेकिन यही कभी सबसे कमजोर भी बन जाता है। एकाग्र, धीरशाली और शांत मन शक्तिवान होता है और बिखरा मन शक्तिहीन बन जाता है। उदाहरण के लिए- सूर्य की किरणों को एक लेंस के माध्यम से जब किसी कागज पर डाला जाता है तब लेंस उन बिखरी हुई किरणों को इकट्ठा कर देता है और कागज जल जाता है। सूर्य की किरणें जब बिखरी हों तब भी उनमें गर्मी तो होती है, लेकिन फिर

भी वे कागज नहीं जला सकतीं। मन भी ऐसा ही है, अत: इसके बिखरेपन को दूर कर इसमें एकाग्रता लानी चाहिए।

लेकिन यदि हम चाहें तो मन को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा एकाग्र कर सकते हैं। मन जितना ज्यादा दुनिया की तरफ आसक्त होकर संशयों में रहता है, उतना ज्यादा बिखर जाता है। हम अपना मन संसार की अनेक चीजों में बांटे रखते हैं। हर मनपसंद वस्तु, स्थान, व्यक्ति, संबंध, धन आदि असंख्य चीजों से मन जकड़ा रहता है। जब तक मन आसक्ति के कारण बाहर की अनेक चीजों से जुड़ा रहता है, तब तक मन की शक्ति उन सभी चीजों में बंटती जाती है। इस कारण मन शक्तिशाली होते हुए भी संशयों में बना रहता है और बिखरकर शक्तिहीन हो जाता है।

चिंतन- सोच को बदलिये सितारे बदल जायेंगे, नजर को बदलिये नजारे बदल जायेंगे। हमारे चिन्तन की दिशा बदलते ही हमारा जीवन बदल जाता है दुनिया की और देखने की दृष्टि बदलते ही दृश्य बदल जाता है। इसलिये चिन्तन बहुत महत्वपूर्ण है। आग्रह पूर्ण, आवेश पूर्ण और अपेक्षाओं से भरा चिन्तन निषेधात्मक चिंतन है। क्योंकि उसमें चिन्तन करनेवाला चिन्तक एक ही विचार से भरा होता है। जिस चिंतन में लचीलापन, सन्तुलन, सहजता और आशावाद हो वह चिन्तन सकारात्मक चिन्तन है। निषेधात्मक या नकारात्मक चिंतन से समस्याओं का निर्माण होता है जब कि सकारात्मक या विधायक चिन्तन से सन्तोष प्राप्त होता है। इनमे से कौनसा चिन्तन करना है यह तो स्वयं का विषय है। सकारात्मक नकारात्मक भाषण, लेखन, श्रवण या दर्शन नही करना चाहिये।

मानव मन मे पशु और भगवान छिपा रहता है वे प्रसंग पर प्रकट होते है। क्रम विकास की दृष्टि से जानवरों में मानवता छिपी थी। बाधायें दूर होते ही मानव जानवरों से प्रकट हुआ। उसी तरह मनुष्य में देवत्व छिपा है। वह अज्ञान से ढ़का हुआ है। अज्ञान का आवरण दूर होते ही देवत्व प्रकट होता है। देवत्व के मार्ग पर बाधायें दूर करने के लिये आध्यात्मिकता उपयोगी होती है। उसी के लिये योग, ध्यान धारणा, ज्ञान और उपासना से मार्गक्रमण करना होता है। पहले पशुता, फिर मानवता और अन्त में देवत्व यह विकास मन के माध्यम से ही किया जा सकता है। इसके लिये सुव्यवस्थित चिन्तन आवश्यक है।

मनन करना, चिन्तन करना, निश्चय करना ये तीन क्रियायें मन ही तीन अलग-अलग स्तरों पर करता है। मन किसी विषय का मनन करता है जैसे कोई परीक्षा देनी है उसका विशेष पाठ्यक्रम है, उसके लिये खास पढ़ना पडता है। यहां केवल मन ही कार्यरत होता है। चुने हुये विषय की प्राप्ति के लिये मार्ग निर्धारण का जो विचार किया जाता है उसे चिन्तन कहते है, जैसे पाठ्यक्रम कौनसा चुनना है, उसमे मार्गदर्शन किससे लेना है, समय का नियोजन कैसे करना है आदि। बाद में फल को ध्यान में रखते हुये विषय पूर्ति का निश्चय करना होता है जेसे वह विशेष पाठ्यक्रम पूरा करना ही है। इस तरह से एक ही मन मनन, चिन्तन और निश्चय से गुजरता है।

चिन्ता- चिन्ता चिता से भी बढ़कर है, घुन के समान लग जाती है। मुर्दे को चिता जलाती है, जिन्दे को चिन्ता खाती है।।

चिन्ता अच्छी चीज नहीं है, लेकिन वही चिन्ताभगवान की दिशा में हो जाय, ज्ञान-वैराग्य-भक्ति की दिशा में हो जाय, तो वही चिन्ता चिन्तन कहलाती है और शोभनीय हो जाती है। कल का चिंतन याने आज की चिंता।

चिंता को अपने चित्त (मन) से बिल्कुल निकाल दो और इससे अपनी दुविधाओं के बारे में भी कुछ मत पूछो। इन्द्रियों में जो मोह-माया-वासनारूपी विषय हैं, उन्हें मिटा दो-तभी भगवान (इष्टदेव) के सहज दर्शन हो जाएंगे। अर्थात पवित्र मन में भगवान बसते हैं। यदि साम्राज्य प्राप्त करना चिन्ताओं का घर है तो फिर इसे ग्रहण नहीं करना चाहिए इसे त्याज्य

करे। अभाव की चिन्ता भी तो चिन्ता ही है। जितना समय हम किसी कार्य की चिन्ता में लगाते हैं यदि उतना ही समय हम उस कार्य में लगाएं तो चिन्ता जैसी कोई चीज ही नहीं रह जायेगी।

पिछले दिनों एक रिश्तेदार के शादी-समारोह में पुराने परिचित से मुलाकात हुई। उल्लास से भरे इस माहौल में भी वह कुछ परेशान से दिख रहे थे। दरअसल, वह कई महीनों से गठिया रोग की असहनीय पीड़ा से जूझ रहे थे। मशहूर न्यूरोलोजिस्ट डॉ. स्टैनले कॉब की राय है, चिंता और गठियारोग का संबंध ठीक वैसे ही है जैसे एक ही सिक्के के दो पहलू।

असल में चिंता एक विध्वंसात्मक प्रवृत्ति है। चिंता इंसान के उत्साह व उमंग के प्रवाह को अवरुद्ध करके उसके मौलिक व्यक्तित्व को विखंडित कर देती है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि ज्यादातर लोग सिर्फ इसलिए बीमार है कि उन्होंने अपने दिमाग में चिंताओं को बांध बनाकर रोक रखा है। चिंता का कारण चाहे कुछ भी हो, उसका दुष्प्रभाव व्यक्ति के शरीर की कोशिकाओं, ऊतकों, नाड़ी-संस्थान और मस्तिष्क के कोमल तंतुओं पर अवश्य पड़ता है।

प्रसिद्ध मनोविश्लेषक डॉ स्माइली ब्लैंटन कहते हैं, चिंता आधुनिक युग का बहुत बड़ा प्लेग है। किंतु राहत की बात यह भी है कि समय रहते इस बीमारी से निजात पाना ज्यादा मुश्किल नहीं है। मानसिक चिंताओं अथवा नकारात्मक भावनाओं के विरेचन करने का एक कारगर सूत्र है। अपने दैनिक जीवन में आपने यह महसूस किया होगा कि जब आप चिंताओं को किसी विश्वासपात्र के सामने उलीच देते हैं, तो आपके दिल का बोझ कम हो जाता है और आप हल्का महसूस करते हैं। आपा-धापी और प्रतिस्पर्धा के इस दौर में रिश्तों का टूटना व संयुक्त परिवारों का बिखरना इंसान को अंतर्मुखी बनाकर रुगणता की ओर ले जाता है। फलस्वरूप उसके हृदय में उद्विग्नपा पनपने लगती है और वह अपने आप को असुरक्षित महसूस करने लगता है। असुरक्षा की मन:स्थिति में व्यक्ति परिणामों को लेकर बेहद चिंतित रहता है।

अपनी असामान्य चिंताओं को दिमाग से बाहर निकालने का एक व्यावहारिक तरीका है और सोने से दस मिनट पहले इसका अभ्यास करना अत्यंत लाभप्रद है। सोने से पहले के दस मिनट चिंताओं से मुक्त होने में बहुत कारगर होते हैं। इस समय हमारा मस्तिष्क आत्म-सुझावों के प्रति सबसे अधिक ग्रहणशील होता है। यह उन समस्त विचारों को स्पंज की भांति सोख लेता है जो हमारे सकारात्मक चिंतन में बाधा उत्पन्न करते हैं। सोने से पहले शांत होकर आंखें बंद कर लें और बंद आंखों से शरीर को ढीला छोड़ते हुए उसके प्रत्येक अंग का मानसिक अवलोकन करें। अब सजगतापूर्वक धीमे-धीमे ये आत्मसुझाव पांच से दस बार दोहराएं- मुझे विश्वास है कि मेरे दिमाग में अब कोई चिंता, डर या असुरक्षा की भावना नहीं बची है। इस प्रक्रिया के सतत अभ्यास से चिंता सकारात्मक चिंतन में बदलने लगती है और आपके दिमाग में रचनात्मक विचारों का सृजन होने लगता है।

चिंता चिता के समान है। चिता तो मुर्दे को जलाती है, किन्तु चिन्ता जीवित आदमी को ही जला देती है। चिन्ता एक दीमक है। यह जिसके जीवन में घर कर जाती है उसके जीवन को मिटाकर ही दम लेती है। चिन्ता किसी समस्या का समाधान नहीं है। समस्या का समाधान चिंतन है, अत: चिन्तन करो। तुम्हारे बच्चे दुनिया में अपना भाग्य लेकर आये हैं। अपने भाग्य का पायेंगे और खायेंगे। तुम उनकी चिंता क्यों करते हो? बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करो, लेकिन उन्हें कंधे पर उठाकर मत चलो। लंगड़ा-लूला मत बनाओ। सोचो- जो तुम्हारा है वह जा नहीं सकता और जो चला गया वह तुम्हारा था ही नहीं इसलिए चिंता छोड़ो।

चित्त - एकाग्र किया हुआ चित्त ही पूर्ण स्थिरता को प्राप्त होता है। कुशल चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। चित्त वृत्ति का निरोध ही योग जाना जाता है। इस प्रेमी चित्त की विलक्षण अवस्था को कोई नहीं समझ सकता। यह ज्यों-ज्यों श्रीकृष्ण के प्रेम में डूबता है त्यों-त्यों उज्ज्वल होता जाता है। चित्त शुद्धि के लिये आज तक कोई सौन्दर्य प्रसाधन नहीं बना। हम अपने समाज के दरिद्र, उपेक्षित लोगों में नारायण के दर्शन करे, बस हमारा चित्त शुद्ध होते जायेगा।

मोटे तौर पर लोग दो तरह के हैं- स्त्रैण चित्त वाले और पुरुषोचित। चित्त या मानसिक प्रवृत्ति का देह से सीधा संबंध नहीं है। जरूरी नहीं कि सारी स्त्रियां स्त्रैण हों। पुरुष भी स्त्रैण चित का हो सकता है। ऐसे ही, स्त्री भी पुरुष चित्त की हो सकती है। हमारे बीच करीब-करीब आधे लोग पुरुष चित्त के हैं और आधे लोग स्त्रैण चित्त के। पुरुष चित्त वह है जो मस्तिष्क केंद्रित है। स्त्रैण चित्त वह है जो हृदय केंद्रित है। दोनों ही प्रकार के चित्त वाले व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रगति के लिए साक्षी चेतना तो महत्वपूर्ण है ही, भाव का शुद्धिकरण भी उतना ही अहम है।

पुरुष चित्त की भावशुद्धि के लिए ध्यान का मार्ग अधिक उपयुक्त है। ऐसे लोग साक्षी भाव साधकर, अधिक से अधिक चैतन्य बनकर, परम जागरूकता की स्थिति हासिल करके ही अपनी चेतना का दर्पण साफ कर पाएंगे। जो स्त्रैण चित्त के लोग हैं, उनके लिए प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, प्रार्थना और समर्पण भावशुद्धि का मार्ग होगा। स्त्रैण चित्त के लिए भक्ति मार्ग उनके लायक होगा। ध्यान यानी होश की साधना और भक्ति यानी प्रेम की साधना।

दोनों में एक बात समान है- शुद्धिकरण। ऐसा इसलिए कि हमारे भीतर अमृत भी है और जहर भी। उदाहरण के लिए- प्रेम। हमारे हृदय का प्रेम भी मिश्रित है क्योंकि इसके साथ क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, मालकियत की भावना और अहंकार के तत्व भी मिले होते हैं। इसलिए, जैसे जहर से अमृत को अलग करने के लिए अमृत मंथन किया गया था, वैसे ही हमें अपने भाव सागर का, अपने हृदय का मंथन करके अमृत को छांटना चाहिए, जहर को निकालना चाहिए।

इसी प्रकार ध्यान के मार्ग पर चलने के लिए भी हमें अपनी बुद्धि की, विचारों और मन की शुद्धि करनी पड़ती है। इनमें जो कूड़ा-करकट जमा है, उसे हटाना होगा, उसका साक्षी होना होगा, अधिक चैतन्य होना होगा। इसलिए ध्यान की सारी विधियां संकल्प से, कैथारसिस से, मन की सफाई से, रेचन से शुरू होती है ताकि जो कुछ भी भीतर दमित है, वह बाहर निकल जाए। तभी निर्विचार जागरूकता में डूबना संभव होता है।

प्रभु के मन-मंदिर को पाने के ये ही दो मुख्य मार्ग हैं। साधना चाहे होश की हो या प्रेम की, मार्ग चाहे योग का हो या भक्ति का, संकल्प का हो या समर्पण का-दोनों का परिणाम एक ही है। दोनों ही मार्ग पर परमात्मा तक ले जाते हैं।

पुराने जमाने में योग और भक्ति के मार्ग बिल्कुल अलग-अलग थे। जिसका चित्त एकदम स्त्रेण था, उसके लिए भक्ति का और पुरुष चित्त के लिए योग या ध्यान का मार्ग अधिक अनुकूल जान पड़ता था। लेकिन हमारे बीच ऐसे लोग भी बड़ी संख्या में हैं- करीब करीब पचास प्रतिशत, जिन्हें स्त्रैण या पुरुष चित्त की किसी स्पष्ट श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। ये वे लोग हैं जिनमें बुद्धि और भावना का अनुपात आधा-आधा है। ऐसे लोगों के लिए मिश्रित मार्ग उपयुक्त है। अगर आप भी इस दुविधा में हैं कि आपके लिए कौन-सा मार्ग ठीक है, तो आप दोनों के सम्मिश्रण को अपनाएं।

जो ध्यान का मार्ग चुनता है, वही शुद्ध चैतन्य में डुबकी लगा पाता है। निर्मल मन की इस अवस्था में ही भक्ति की यात्रा संभव होती है। जो होशपूर्ण है, जिसका मन निर्मल है, उसी का ऊर्जा जागरण संभव होता है। उसी के भीतर अहोभाव पैदा होता है, वही संगीत के साथ नाच सकता है, गा सकता है।

विद्या-अविद्या, ज्ञान-अज्ञान, विज्ञान और विद्वान, आत्मज्ञान, पण्डित

विद्या-अविद्या- उत्तम विद्या क्या है ? उत्तम विद्या कैसी है ? **विद्या या विमुक्तये** जिस विद्या से मुक्ति मिले वही उत्तम विद्या है। मुक्ति अज्ञानता से, अन्धकार से, आज तो लोगों का दृष्टिकोण ही बदल गया है, विद्या के बारे में कहते है जिससे अकूत अपार धन राशि प्राप्त हो वह विद्या है। लेकिन यह गलत धारणा है। धन सम्पत्ति से भी महान है विद्या। जिसे जीवन के मूल्यों की ही जानकारी नहीं है तो विद्या किस काम की।

नाना शास्त्र पठेन, आत्मज्ञान बिना सर्व निरर्थकम्। सब विद्याये निरर्थक है यदि आत्मा की विद्या से परिचित नहीं हुये, आत्म विद्या के होते हुये शेष सभी विद्यायें सार्थक हो सकती है, लेकिन समस्त विद्याओं का ज्ञानी होते हुये भी बिना आत्म विद्या के कोई अर्थ नही है इसलिये उत्तम विद्या लीजिये। विद्या धनम् प्रधानम् फिर धन की लालसा किस लिये ? विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता आती है और पात्रता से धन यही सर्वोत्तम जीवन चक्र है।

विद्या का व्यसन होना चाहिये जिससे नैतिकता की नीव मजबूत होती है विद्या-सचमुच में ज्ञान वृद्धि, ज्ञान प्रकाश का साधन है। विद्या का व्यसन होना हमारे जीवन में अत्यन्त आवश्यक है। गीता, भागवत, वेद पुराण, रामायण इत्यादि का पूरे दिन के समय में कम से कम आधा घंटा भी इसके लिये विद्याध्ययन को देना आवश्यक है।

विद्या और कर्म अव्यय में ज्योति और अन्धकार स्वरूप रहते है। सोम रूप कृष्ण अन्धकार है, ज्योति रूप राधा है। ज्योति और तम अभिन्न रूप से साथ साथ रहते है। अत: बुद्धि भी विद्या और अविद्या रूप में दो प्रकार की होती है। बुद्धि के भेद करना विज्ञानात्मा का कार्य है। वही महानात्मा से मिल कर विद्या और अविद्या के चार-चार भेद करता है। सारे जीवों को अविद्या के द्वारा बन्धन में लेना और विद्या के द्वारा मुक्त करना इसका कार्य है। यह सत-रज-तम से अलग प्रकार का सत्व है जो इससे नही जुडता, वह तम है। दोनों का सन्धि स्थल रज है। तीनों मिले हुये है। सत और तम का क्रिया भाव रज से ही पैदा होता है। सत्व गुण के कारण ही महानात्मा और विज्ञानात्मा का योग होता है। इसी योग के कारण सारे देव भाव व्यक्ति में प्रतिष्ठित होते है। दैविक सम्पति और धातुओं के धर्म व्यक्ति में प्रादुर्भूत होते है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति में वरदान और शाप देने की शक्ति आजाती है। इसी प्रकार महान के तम भव में असुर प्राण प्रतिष्ठित होते है। इससे आसुरी सम्पति आ जाती है। असुरों के धर्म प्रादुर्भूत होने लगते है।

अविद्या रूप माया चिदात्मा के अक्षर भाग को ढक लेती है। विद्या का तिरोधन होने लगता है। आत्म धर्म, सत्ता, चेतना आत्मा से विलुप्त हो जाते है। अत: यह आत्मा जन्मकरण, सुख-दु:ख आदि द्वन्दों से घिर जाती है।

अन्धं तम: प्रविशन्ति यउविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो ये उ विद्यायां रता:। अर्थात जो अविद्या की उपासना करते हैं, वे घोर अंधकार में प्रवेश करते हैं और जो विद्या में रत रहते हैं वे मानो उससे भी अधिक अंधकार में प्रवेश करते हैं। जब हमने पहली बार परम ऋषियों द्वारा रचित यह अद्‌भुत सूत्र सूना तो हैरत में पड़ गए क्योंकि अभी तक तो हम यही सोचते हैं कि अविद्या की उपासना करनेवाले यानी अनपढ़ लोग ही अंधकार में रहते हैं।

ज्ञान मानव जीवन के चरम लक्ष्य अर्थात् भगवत्प्राप्ति का एक प्रमुख साधन है। दैहिक और भोतिक तापों के मूल मे हमारा अज्ञान ही छिपा है। जहाँ ज्ञानी, विवेकी ज्ञान तत्व जानकर आत्मसाक्षात्कार से परब्रह्म के शाश्वत ज्योतिर्मय लोक में अमृत्व में सदा के लिए विलीन हो जाते है, वही दूसरी ओर अज्ञानी जन घोर अंधकार से आच्छादित कष्टप्रद जगत में

सदा के लिए प्रवेश करते हैं। अविद्या के मूल में अज्ञान है और अज्ञान के मूल में आसक्ति है विद्या में अमरता प्रदान करने की शक्ति निहित है। जो विद्या अर्थात् ज्ञान को यथार्थ जानकर ज्ञान के अनुष्ठान से अमृत को भोगता है वह अमृतरूप अविनाशी आनन्दमय परब्रह्म को प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता है। सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् विद्या वही है जो हमे मोक्ष प्रदान करे। अज्ञानवश मनुष्य भौतिक सुख साधन जुटाने में अपना अमूल्य जीवन व्यतीत कर देता है। देहासक्ति से उत्पन्न कामनाओं की पूर्ति में सारा समय चला जाता है। मोहासक्ति के मूल में अविद्या ही प्रमुख है। योग दर्शन में वर्णित है अविद्या, अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश (मरण भय) पाँच क्लेश है। अन्तिम चारों का कारण अविद्या है। अविद्यज्ञा से आसक्ति और अहंता का जन्म होता है। अविद्या ही कामनाओं की जननी है। कामनाओं की पूर्ति में बाधा आने पर क्रोध की उत्पत्ति होती है। अन्तत: क्रोध पतन का द्वार खोलता है। गीता में भी आया है कि कामना में विघ्न से क्रोध होने पर सम्मोह (मूढ़ भाव) आता है जिससे स्मृति भ्रम, बुद्धि नाश से मानव निवष्ट हो जाता है। अविद्या त्यागकर श्रद्धा, संयम और समर्पण से युक्त यथार्थ ज्ञानार्जन प्राप्त करना श्रेष्ठ है। श्रद्धावान को ज्ञान मिलता है। सर्वोत्कृष्ट विद्या (तत्वज्ञान) की प्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वाध्याय रूपी ज्ञान यज्ञ करना उपादेय है। कठोर व्रतों से युक्त प्रयत्नशील पुरुष स्वाध्याय रूप यज्ञ करते है। ईश्वर इससे पूजित होता आया है।

मानव जीवन में विद्या की व्यावहारिक उपादेयता का निरूपण सर्वत्र मिलता है। विद्या धन सभी धनों में श्रेष्ठ है। इसे न तो कोई बाँट सकता है, न चुरा सकता है न छीन सकता है। विद्याधन का दान देने से विद्या बढ़ती है। इसीलिए विद्या हमें विनय प्रदान करती है। विनय से पात्रता प्राप्त होती है। सत्पात्रता से हमें धन की प्राप्ति होती है। धन से धर्म विकसित होता है और धर्म से सभी प्रकार के सुख मिलते है। श्रेष्ठ लोगों के पास तत्वज्ञान मिलता है। तत्वज्ञान का पथ अत्यन्त कठिन है। कहा गया है- न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते। ज्ञान के समान मनुष्य लोक में पवित्र करने वाला कोई अन्य साधन नहीं है। विद्ययामृत मश्नुते की आस्था भारतीय संस्कृति की संजीवनी है। विद्या कल्पतरु है। विद्या मानव को अमरत्व देती है।

पोथी पढ़कर कोई विद्वान नहीं हो सकता है। लोग कहते हैं कि तब विद्या क्या है? सा विद्या या विमुक्तये। विद्या वही है जिससे मुक्ति मिलती है। तब मुक्ति क्या है? मुक्ति है बंधन से छुटकारा। किंतु एक बंधन से छुटकारा मिल जाए, तो दोबारा भी तो बंधन हो सकता है। फिर क्या होगा? इसलिए एक बार बंधन से ऐसा छुटकारा हो जाए कि दोबारा बंधन की संभावना ही नहीं रहे, तो वह जो विशेष प्रकार की मुक्ति हुई- इसी को विमुक्ति कहते हैं। जिसके द्वारा विमुक्ति मिलती है, उसी को विद्या कहते हैं; विद्या जिनमें है वही हैं विद्वान। लेकिन विद्वान वही है जिनका आचरण बन गया है। धर्म है आचरणात् धर्म। अनपढ़ आदमी भी धार्मिक बन सकते हैं, महापुरुष बन सकते हैं। और महामहोपाध्याय पंडित भी अधार्मिक हो सकते हैं।

सद्-असद् के विवेक का नाम ज्ञान है। ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में सुख-दु:ख आदि द्वन्द्व रहते ही नहीं।

विद्वान- इस संसार में अज्ञानी और विद्वान दोनों होते है। आम लोगों को वे एक जैसे दिखते है। दोनों एक समान तरीके से कार्य करते है। आम लोगों को वे एक जैसे दिखते है। दोनों एक समान तरीके से कार्य करते है। लेकिन कार्य का उद्देश्य दोनों का अलग रहता है। अज्ञानी फल की आसक्ति से कर्म करता है। विद्वान यानि ज्ञानी जो शास्त्रों को जाननेवाला ही नही व्यक्ति है उसे शब्द ज्ञानी या अधिकतर पंडित कहते है। इसलिये जिसके जीवन में ईश्वरी तत्व प्रकट हुआ है वही विद्वान

है। विद्वान मनुष्य लोक संग्रह के लिये कर्म करता है। लोक संग्रह यानि गलत मार्गों पर जा चुके मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाना। और यह काम केवल विद्वान कर सकता है। क्योकि वह शक्ति से, कृति से, विचार से, आचरण अधिक महत्वपूर्ण समझता है। सच्चा विद्वान लोगों को संगठित कर उनका मार्गदर्शन करता है। आम व्यक्ति कर्म फल की लालसा से जितने उत्साह से काम करता है उससे ज्यादा उत्साह से विद्वान नि:स्वार्थ बुद्धि से कार्य करता है।

केवल पढ़ा-लिखा आदमी विद्वान नहीं है, परन्तु जो सत्य को ग्रहण करनेमें समर्थ हैं वही विद्वान है। विद्वान इस बातको जानता है कि भगवानके सिवाय सबकुछ असत् है, अनित्य हैं और अस्थिर है। इसलिये उसको विषयोंको लेकर कोई चिन्ता नहीं होती।

ज्ञान-अज्ञान- राग-द्वेष, अभिमान फलकामना से रहित आचरण करना ही ज्ञान है। इससे मनुष्य सुख पूर्वक जीवन यात्रा पूर्ण करता है। जीवन सुखमय बनाने का ज्ञान ही शास्त्रों में ज्ञान है। लेकिन यह ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता होनी चाहिये। जो मूलत: अध्ययन करते है और उसमें अनुसार आचरण करते है उन्हें शास्त्र जानने का अधिकार है। जिन्हें आस्था है मगर उसके अनुसार आचरण नहीं कर सकते, वे भी शास्त्र जान सकते है। लेकिन सबसे भी अलग एक समूह है। कुछ लोग आधे अधूरे ज्ञानी होते है, वे अपना ही मत सच्चा मान कर हमेशा शास्त्र मत का खंडन करते है या अपने स्वार्थ के अनुसार उसे मरोडते है या सुविधा देख कर अर्थ निकालते है, उन्हें शास्त्र जानने का अधिकार नहीं है। ये लोग कभी सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसे लोग **अधजल गगेरी छलकत जाय** की तरह ही इनकी स्थिति होती है इसलिये अपने और दुनिया के कल्याण के लिये आवश्यक ज्ञान देने वाला शास्त्र जानने के लिये वैसी ही योग्यता होनी जरूरी है।

अन्धेरा अज्ञानता है और उजाला ज्ञान है। तुम अपनी जिन्दगी में अंधेरा चाहते हो या उजाला। यदि अंधेरा चाहते हो तो अज्ञानता है ही और यदि उजाला प्रकाश चाहते हो तो अन्दर की आंखे खोलनी होगी, तब अन्दर जो है वह दिखाई देगा। मनुष्य हमेशा उजाला पसन्द करता है, जो चीज मनुष्य को अज्ञानता से रोके वह उजाला है, जब अंधेरा होता है तो मनुष्य कों दिखाई नहीं देता क्योकि अज्ञानता का अन्धेरा है, इसलिये अपने जीवन में उजाला लाओ। जीवन को सुखमय व आनन्दमय बनाने के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उजाला हो इसके लिये ज्ञान चक्षु खुलने चाहिये। संकीर्णता से व्यक्ति कूप मंडूक बन जाता है, उसे न अंतर्ज्ञान हो पाता है और न बाहर की दुनिया दिखाई देती है, मन को विशाल बना कर उसके कपाट खोल कर प्रकाश भीतर आने दो, **तमसो मा ज्योतिर्गमय।**

जो अनुभव से आता है वही श्रेष्ठ ज्ञान है। ज्ञान के दो प्रकार है उत्तम ज्ञान एवम् सामान्य ज्ञान। सामान्य ज्ञान में संसार के सभी विषयों के ज्ञान का समावेश होता है लेकिन उत्तम ज्ञान आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान सबको स्वयम् प्राप्त करना होता है वह बाहर से शास्त्र, ग्रन्थों के अध्ययन से नहीं मिलता है। वह ज्ञान जिसे मिला है ऐसे किसी अनुभवी व्यक्ति से ही प्राप्त करना पडता है। कोरे कागज पर **शक्कर** लिख देने से मिठास का अनुभव नहीं हो सकता वह तो प्रत्यक्ष में शक्कर खाकर ही मिठास का अनुभव दिया जा सकता है। इसलिये श्रेष्ठ आत्मज्ञान भी उसी तरह है, जो अनुभव से जाना जाय वही सर्व श्रेष्ठ ज्ञान है।

ज्ञान उस स्थान पर ले जाने की सामर्थ्य देता है जो सरल है और सचमुच तुम्हारा ही है। ज्ञान उस स्थान तक ले जा

सकता जहाँ पर अन्दर की और उल्टा मोड है, जहां एक असीम सन्नाटा, असीम मौन, घोर अन्धेरा और पूर्ण एकाकीपन अत: व सभी को ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये जिससे अपना खोया हुआ प्राप्त हो, जीवन का रहस्य अनुभूति परक हो जाये तो जीवन सफल हो सकता है।

हमारा देश ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में उस समय शिखर पर था, जब दुनिया भर के सब इलाकों में लोग आदिम जीवन जी रहे थे। जब धरती का बडा भू-भाग जंगलों में रहनेवाली असभ्य, नग्न और हिंसक जातियों से भरा पडा था। जब धरती के बडे हिस्से पर भोजन ही आदमी का लक्ष्य था और इसके लिये शिकार करना और अपनी मांद में जाकर सो जाना ही उसका जीवन था, जब भयवश जीवन रक्षा की स्वत: स्फूर्त प्रेरणा के कारण लोग समूहों में रहते थे और किसी भी बाहरी हमले के प्रतिकार के लिये सदेव सन्नद्ध रहते थे। जब संकट में अपनों को ही मार कर खा जाने की पशु परम्परा मनुष्यों में भी थी तब भारत वर्ष के गुरुकुलों में शस्त्र विद्या के साथ ही दर्शन और आत्म विज्ञान की शिक्षा दी जा रही थी तब यह देश वसुधैव कुटुंबकम् की घोषणा कर रहा था, तब एकाकी जीवन की आवश्यकता से परे सारे विश्व को ज्ञान-विज्ञान का लाभ दिलाने हेतु हमारे वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहे थे। आयुर्वेद, योग, शल्य क्रिया, ज्योर्ति विज्ञान, शस्त्र विद्या सहित सभी क्षेत्रों में अचूक और अगम्य प्रगति के संकेत हमारे प्राच्य शास्त्रों में है। तब अध्ययन और अनुसन्धान के लिये न तो अलग अनुशासन थे, न ही अलग से संकाय। आश्चर्यजनक तरीके से इस देश की अविराम श्रुति परम्परा ने उस ज्ञान को हजारों वर्षों तक उसी रूप में बिना किसी त्रुटि के सुरक्षित रक्खा। भारत के समानान्तर अनुसन्धान और ज्ञान की परम्परा केवल चीन और मिश्र में दिखाई पडती है।

कालान्तर में जब इस देश की उर्वरता और समृद्धि पर आक्रमण हुये तो प्राच्य ज्ञान के संरक्षण के सामने मुश्किले खडी हुई। श्रुति परम्परा तो खंडित हुई, कुछ विद्वानों के प्रयास से तैयार कराई गई पांडु लिपियों पर भी संकट मंडराने लगा। विदेशी हमलो में हमारी सब कुछ बची खुची ऐसे लोगों के हाथ पड गई जो उनकी गम्भीरता व सार्थकता को नहीं समझते थे। बस यही से भारती ज्ञान-विज्ञान की सम्पदा पर, अखण्ड परम्परा पर ग्रहण लगा। अब मुश्किल यह हो रही है कि इस अपरिमित ज्ञान भंडार को धर्म की चादर में लपेट कर केवल वाचन और श्रवण की वस्तु बना देने का अभियान सा चल रहा है। हजारों लोग इसी काम में जुडे हुये है और अपने वाणी कौशल से आस्था और विश्वास की तर्कहीन श्रेष्ठता सिद्ध कर अपना स्वार्थ अपना उल्लू सीधा करने में लगे है। वे सचमुच वास्तव में भारतीय ज्ञान के प्रतिनिधि नही है। अगर वे होते तो गायन-वादन और शाब्दिक पुनरावृति के आकर्षण में बन्धने की जगह वे अपनी ज्ञान परम्परा को विश्व व्यापी प्रतिष्ठा दिलाने के लिये अनुसन्धान करते, उसे आगे बढाते, दुनिया के सामने उसे वैज्ञानिक तौर तरीके से प्रस्तुत करते। इस दिशा में कुछ हुआ ही नहीं यह कहना तो अन्योति होगी लेकिन जो कुछ हुआ वह बहुत ही थोडा है। वैदिक गणित, वैदिक शास्त्र, ज्योर्ति विज्ञान, योग और आयुर्वेद की प्रखरता का आभास कुछ लोगों ने बाहरी दुनिया को जरूर कराया है लेकिन इसे राष्ट्रीय धरोहर मान कर संस्थागत और संगठित तरीके से कोई भी प्रयास नहीं किया। जब अपने ही देश में अपनी विरासत को निरर्थक, पुरातन और ऊबाऊ कह कर खारिज करने का आधुनिकता वाद चल पडा तो कोई फिर क्या करेगा। बाहर के विद्वान, अन्तरराष्ट्रीय संस्थायें भी आयुर्वेद,

उपनिषद की श्रेष्ठता को स्वीकार करती है। हमारा आधुनिक होने का दर्प हमें दूसरे रास्ते पर ढकेल रहा है। आज का विज्ञान नये क्षितिज की तलाश कर रहा है; इसमें किंचित मात्र भी दोष नहीं है लेकिन भारतीयों को अपने पूर्वजों के अनुसन्धानों के बारे में भी विचार करना चाहिये, उन्हे प्रतिष्ठित करने की दिशा में समूचे प्राच्य साहित्य का वैज्ञानिक मन्दन कर पुर्न:स्थापित करना चाहिये। और उसके आगे की सीढियाँ चढने की खोज, तलाश जारी रखनी चाहिये। हमारी ज्ञान सम्पदा कितनी है इससे हम अनभिज्ञ है, हम नहीं जानते है इसलिये हम दरिद्र बने हुये है।

व्यर्थ के आकर्षणों से आदमी इतना कुछ बदल गया है कि खुद आनन्द स्वरूप होते हुये, सुख स्वरूप होते हुये ईश्वर का सनातन अंश होकर भी दर दर की ठोकरे खा रहा है। ऐसे मानव की बुद्धि मोह रूपी दलदल में फंस रही है। उसे धर्म का, सत्संग का, ईश्वर का कोई ख्याल ही नहीं है। इस प्रकार के व्यक्ति को यदि पशु कह दे तो पशु जाति का अपमान हो जाता है। पशु तो अपने कर्मों के कर्म फल भोग कर उन्नति की और जा रहे है जबकि ऐसा मनुष्य अपने पुण्यों को नाश करके पतन की और बढ़ रहा है। पशु उन्नत होकर इन्सानियत की और आ रहा है। आदमी यदि इन्द्रिय गत ज्ञान के बहाव में बढ़ता जाये, बहता गया तो पशुओं से भी बदतर दशा में चला जायेगा।

आदमी के पास बुद्धि का इतना बढ़िया साधन है यदि उसे अगर सत्संग मिल जाये और धर्म का सम्पूट आ जाये तो, सदाचारी व्यक्तियों को सम्पर्क मिल जाय, जैसे बालिया (रत्नाकर डाकु) लुटेरा से वाल्मिकी ऋषि बन जाय। धन हीन, साधन हीन, सत्ता हीन, जाति हीन दासी पुत्र को सत्संग मिला तो वह देवर्षि नारद हो कर चमका।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य मे बुद्धि थोडी ज्यादा विकसित थी। मनुष्य यदि उस बुद्धिगत का ज्ञान का आदर कर ले तो वह जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूट जाता है। बुद्धिगत ज्ञान का आदर न करे तो पशुओं से भी बदतर हो सकता है।

ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो कुछ न कुछ न जानता हो। चाहे वह अनपढ़ हो या मूर्ख हो फिर भी कुछ न कुछ जानता अवश्य है, कुछ न कुछ मानता है। जो कुछ जानते है उसका आदर करे और जो कुछ मानते है उसका विश्वास करे। मनुष्य अपनी जानकारी का आदर नही करता है इसलिये पतित हो जाता है। अपनी मान्यता पर स्थिर नहीं रहता है इसलिये गिर जाता है फिर भी जानते हुये उन गलतियों को दुहराता है क्योंकि वह इन्द्रियगत ज्ञान के आकर्षण में बह जाता है, बुद्धिगत ज्ञान का आदर नहीं कर पाता।

सागर तो कई है इस ब्रह्माण्ड में और इनके किनारे देश बसे हुये है लेकिन इन सागरों से अलग एक सागर है और वह है ज्ञान सागर। सद्गुरु इस ज्ञान सागर की जानकारी देते है और जब एक बार इसका पता चल जाय तो तब जब जी चाहे इसमें गोता लगावो, इस सागर का जल इतना शुद्ध व शीतल है कि अपने मन की प्यास शान्त कर सकते हो। संसार की समस्याओं की गर्मी से ऊब कर ज्ञान सागर में गोता लगाने पर शीतलता का एहसास होगा। ज्ञान से संसार की धूल मिट्टी से जमा हुआ हृदय का मैल भी साफ किया जाता है। ज्ञान सागर के जल से सन्त महात्माओं ने स्वयं इस अनुपम और विलक्षण सागर में मोक्ष पिपासुओं को शीतल जल का पान करने का तरीका बताया है। यह ज्ञान सागर अपने ही अन्त:करण में दिन रात अविरल गति से प्रवाहित हो रहा है और इसके स्त्रोत से प्राप्त जल को पीकर असीम तृप्ति की अनुभूति जिज्ञासुओं ने प्राप्ती तथा जीवन अपना धन्य किया।

जो स्वयम् को जाने वही आत्म ज्ञानी। औरों के मन की बात को जाननेवाला ज्ञानी है चतुर है और स्वयं को जानता है व आत्मज्ञानी है। औरों को जीतता है वह समर्थ कहलाता है, जो तेज चलता है, प्रयास करता है वही ध्येय तक, लक्ष्य तक, मंजिल तक पहुँच पाता है। जो निष्पाप है वही सुखी है। ज्ञानी वही है जिसका बोलना करूणामय है। अति भाषण विश्वास का लक्षण नही है। ज्ञानी कभी किसी से विवाद नहीं करता, जो विवाद करता है ईश्वर निष्ठ नहीं है। सहज कर्म करनेवाला ही ज्ञानी बनता है। अपने दोष और दुर्गुण फेंक दो, इनसे रहित होकर कोरे बन कर जहां हो वही निश्चिन्त रहो।

वेदों में तीन मुख्य विषयों का प्रतिपादन किया गया है वे है कर्मकाण्ड, ज्ञान काण्ड और उपासना काण्ड। ज्ञान कांड में लोक, परलोक, और परमात्मा के विषय में वास्तविक रहस्य बताये है इसलिये मनुष्य स्वार्थ, पदार्थ और परमार्थ साध्य कर सकता है।

ज्ञान कांड के अंग :- सत्, चित्त, आनन्द, अस्ति, भाति, प्रिय, रूप, नाम, आत्मा, ब्रह्म, अनन्त, तत्, त्वम् और आस्ति। **ज्ञान कांड के लक्षण :-** अक्रोध, वैराग्य, इन्द्रिय निग्रह, क्षमा, दया, शान्ति, लोक प्रेम, उदारता, दान, भय, शोक, हानि। **ज्ञान के साधन :-** सहज वृति, तर्क, बुद्धि, और अन्त: स्फूर्ति।

स्वामी विवेकानन्द ने चिन्तन किया कि पाश्चात्य संस्कृति केवल बौद्धिक शिक्षा की ही चिन्ता करती है हृदय की और ध्यान नहीं देती। इसके फल स्वरूप मनुष्य स्वार्थी होकर पतन की और अग्रसर होता है किसी भी जाति या समाज से घृणा न करके प्राणिमात्र को प्रेम भरी दृष्टि से देखो। सर्वोच्च ध्येय को सन्मुख रख कर कार्य करो। मनुष्य का अन्तिम ध्येय सुख नही अपितु ज्ञान है। आज कल मनुष्य बुद्धिवाद के कारण हृदय शून्य, स्वार्थी, निर्दयी तथा अधिक धन लोलुप होकर पतन की और बढ़ रहा है। राजनेता विभिन्न जातियों तथा सम्प्रदायों में वैमनस्य और घृणा पैदा करके स्वार्थ सिद्ध करते है। आजकल व्यापारी, कर्मचारी, नेता सभी धन पद व झूठी मान मर्यादा, प्रतिष्ठा के लिये ही कार्य करते है। सर्वोच्च ध्येय कही भी नहीं रहा है। अब शिक्षा का उद्देश्य या मूल्य किसी भी प्रकार से उपाधि प्राप्त करके धन उपार्जन है ज्ञान नहीं। आज राष्ट्र को विश्व बन्धुत्व, भाईचारा, मानवता, ज्ञान-विज्ञान व अध्यात्म के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान पर ले जाने तथा पाश्चत्य संस्कृति से बचाये जाने के उपाय करने अत्यन्त आवश्यक है।

आज का युग भोगवादी होते जा रहा है। उपभोग का भ्रामक विकास दिन प्रतिदिन हो गया है। आज्ञा के इस विज्ञान युग में उपभोग की संस्कृति चरम सीमा पर है, फिर भी मनुष्य को सुख चैन नहीं है। क्या व्यक्ति का सन्तोष उपभोग की वस्तु पर निर्भर होता है? नहीं। इस युग में उपयुक्त साधनों को उपभोग के साधन का रूप दिया जाता है। साबुन उपयोगी वस्तु है लेकिन दूरदर्शनों के विज्ञापनों के कारण लोग महंगे साबुन खरीदते है। शीतपेय का इस्तेमाल कभी कभार अच्छा है पर उससे जोश या ताजगी बढने का भ्रामक प्रचार करने से वह उपभोग की चीज बनती है। ऐसी चीजों के लिये पैसे लगते है और वे पैसे गलत मार्गों से आते है। कैल्कुलेटर का महत्व ऊंची गणिती क्रियाओं में है लेकिन उसका हर घडी हर समय उपयोग करना बुद्धि की, मस्तिष्क की आत्महत्या है। दूरदर्शन जानकारी, प्रचार प्रसार के माध्यम के स्त्रोत के रूप में उपयुक्त है लेकिन उसके सामने घंटों बैठ कर टी वी चैनल देखने में क्या विकास है? आज स्थिति यह कि विकास के बहाव मे सुख तो दूर रहा चैन भी महंगा हो रहा है। ज्ञान प्राप्ति के तीन साधन शास्त्रकारों ने बताये है। १) शास्त्राध्ययन, २)

गुरोपदेश, ३) अनुभव। अनेक शास्त्रों, ग्रन्थों के अध्ययन से हमारा शब्द ज्ञान बढ़ सकता है लेकिन केवल शब्द ज्ञान से कुछ नही होता। वह ज्ञान आचरण में कैसे लाया जाय यह बताने वाला अनुभव प्राप्त मार्गदर्शक गुरु चाहिये और मार्गदर्शक के उपदेश पर ना चले तो वह ज्ञान व्यर्थ है। जैसे अच्छा व्यंजन किस तरह बनाया जाय यह पाक कला की पुस्तक से सीखा जाये तो भी जिन्हे इसका पूर्वानुभव है उनके मार्गदर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान लेना चाहिये। लेकिन एक बार जान कर ही उस क्रिया का पूरा ज्ञान नही होता है, उस पाक क्रिया मे कुशलता प्राप्त होने तक बार-बार कृति का प्रयास करना चाहिये। इसे कहते है अनुभव, इसलिये शास्त्र गुरु और अनुभव से ज्ञान पूर्ण होता है।

अपने कर्मो से ज्ञान की क्यारियों को सीचों। जीवन की आंच में ज्ञान की धातु को पिघला कर सिद्ध करो और मार्ग मे अपने आप को चुका कर ज्ञान की मंजिल पाओं।

ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र विचार करने की क्षमता सुयोग्य, अयोग्य सही गलत आदि के परख करने की शक्ति दी है। जैसे कटु, खट्टा, नमकीन, तीखा, मीठा आदि अन्न सेवन करने की क्षमता व्यक्ति की जीभ में होती है। ताकि वह पदार्थ चख कर निर्णय कर सकता है कि वह चीज सेवन करनी है या नहीं। उसी तरह मानवों में ज्ञान कैसे प्राप्त करे, सही ज्ञान कौनसा है गलत क्या है यह जानने की क्षमता दी है। इसका उद्देश्य है जीवन के लिये आवश्यक और सुयोग्य दिमाग स्वीकार कर सके। सुविचार और कुविचार में लाभदायक विचार लेकर उनका प्रयोग करने का चुनाव करने की क्षमता मानवों की बुद्धि में है। यह चुनाव क्षमता सबके अन्दर जन्म से होती है।

ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती है और न ज्ञान के लिये कोई आयु ही होती है। ज्ञान व्यक्ति के जीवन और जन कल्याण मे सहायक होता है। ज्ञान प्राप्त करने के प्रमुख साधन इस प्रकार है **१) विश्वास :-** ज्ञान अर्जन के लिये सबसे विश्वासी होना लाजिमी है और यह विश्वास स्वयं पर तथा गुरु दोनों पर होना चाहिये। **२) जिज्ञासा :-** यानी जानने की इच्छा। ज्ञान प्राप्त करते समय अगले चरण को जानने की आकांक्षा होनी चाहिये। जो ज्ञान मिला उसी में सन्तुष्ट होना चाहिये। नये-नये ज्ञान के क्षेत्र को जानने की इच्छा होनी चाहिये। **३) सदाचरण :-** विद्या ददाति विनयम् यानि की विद्या विनय देती है और विनम्रता के लिये सदाचरण आवश्यक है। इसलिये ज्ञान ग्रहण करनेवालों को सदाचारी होना चाहिये। **४) एकाग्रता :-** मन एकाग्र कर ज्ञान प्राप्त करना चाहये। **५) ज्ञानी का संग :-** ज्ञानी व्यक्ति का संग ज्ञान प्राप्ति में लाभकारी होता है उससे ज्ञान प्राप्ति का दायरा बढता है।

मनुष्य को जगत के स्वरूप और सम्बन्ध का ज्ञान होना आवश्यक है इसे ज्ञान भावनाये कहते है इन भावनाओं का सतत् चिन्तन मनन् करना चाहिये। १) मृत्यु अटल है। २) देह अलिप्त और ऐश्वर्य अनिश्चित है। ३) जीव संसार में भटकता रहता है। ४) जीव अकेला जन्मता है और अकेले मरता है। ५) आत्मा अन्य पदार्थों और देह से भिन्न है। ६) देह मलमूत्र बिष्ठा का घर है। ७) मोह के कारण हम कर्मो मे लिप्त रहते है। ८) व्रतों का पालन करने से ही कल्याण होता है। ९) तप योग से कर्म साध्य होता है। १०) अनन्त आकारों का यह जगत किसी का उत्पन्न किया हुआ नहीं है। ११) मनुष्य जन्म और ईश्वर ज्ञान प्राप्ति दुर्लभ है। १२) ईश्वर प्रणित धर्म ही सर्वोच्च और सच्चा है।

बाहरी वस्तुये, व्यक्ति घटनाये, व्यक्ति के लिये प्रेरणा दायी बन सकती है। जैसे भगवान बुद्ध बोधिसत्व कैसे बने? वे

बाहरी जगत के दु:ख देख कर व्याकुल हुये और दु:ख का कारण खोजने सर्व संग परित्याग कर आत्मज्ञान प्राप्त किया। कालीदास की पत्नी ने उन्हें मूर्ख कह कर उलाहना दिया। उससे प्रेरित होकर वे विद्वान बनने की तीव्र लालसा पाल कर विद्वान भी बन गये। महात्मा गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका में काफी कुछ झेलना पडा। उस कारण अन्याय के विरोध में लडने की उन्हें प्रेरणा मिली। आरम्भ में स्वयं को ज्ञानी समझने वाले स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण के पास जाकर अपने अज्ञान का पता चलने के बाद उन्ही से प्रेरणा लेकर विश्व मे ज्ञान प्रसार करनेवाले बन गये। इस तरह बाहरी घटनायें व्यक्ति के लिये प्रेरक बनती है।

आत्मज्ञान ही वह ज्ञान है जो सभी प्रकार के दु:खों का निवारण करता है। जैसे ही साधक अपने आत्म के ज्ञान की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है उसकी उलझने कम होने लगती है। मनुष्य को जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक वह सांसारिक पदार्थों में आसक्ति रखता है पर आत्म ज्ञान होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है। अज्ञानी व्यक्ति को संसार के सारे पदार्थ मिल जाये तब भी वह दु:खी ही दिखाई देगा।

वृक्ष अपने स्थिर पर गर्मी सहन कर लेते है किन्तु, अपनी शीतलता और छाया से औरों को गर्मी से बचाते है।

ज्ञान एक ऐसी जानकारी है जिसमे सब कुछ समाया हुआ है। एक ऐसी अनुभूति जिससे जीवन आनन्दमय बन जाता है। ज्ञान की महिमा का विशाल अथाह सागर है गीता जिसमे भगवान कृष्ण कहते है **न ही ज्ञानेन सदृशं पवित्र इदम् उत्तमम्** ज्ञान के समान पवित्र और उत्तम कोई चीज इस संसार में नहीं है। ज्ञान और संस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सौपे जा सकते है। पहली पीढ़ी अगली पीढ़ी के निर्माण के लिये कई तरह के त्याग करती है, परिश्रम करती है, इसलिये कहा गया है **दादाजी के लगाये पेड के फल पोते को मिलते है।** इन पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता जताना अगली पीढ़ी का कर्त्तव्य होता है। इसलिये कुछ ऐसे काम करो अपने कुल, परम्परा का नाम रोशन हो। अपनी परम्परा का जतन करते हुये, समय के अनुसार नया विज्ञान स्वीकार कर वह ज्ञान अगली पीढी तक पहुंचाना अपने पूर्वजों का ऋण चुकाने जैसा ही है। जो यह कुलाचार पालन नहीं करता वह कृतघ्न और दुर्भागी होता है।

भारतीय विद्या के दो अंग है ज्ञान और अज्ञान। कई तरहों के पदार्थों में एक ही मूलतत्व देखना ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान का भारत में सर्वोच्च स्थान है। **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते** इस तरह से ज्ञान की महिमा का वर्णन गीता में बताया गया है। आदि शंकराचार्य ने भी कहा है **ज्ञानात् एव कैवल्यम्** यानि ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। भारतीय विद्या का दूसरा अंग है विज्ञान। इसमे एक ही तत्व नाना रूपों में प्रकट होता है जैसे सोना कई अलंकारों में सामने आता है। यह मान्यता ही विज्ञान है। विज्ञान में कार्य करण सम्बन्ध माना जाता है। एक ही परमात्मा सृष्टि में विराजमान एवं व्याप्त होने का ज्ञान विज्ञान का यह समन्वय केवल भारत ने किया है।

अज्ञान ही बन्धन है और ज्ञान ही मोक्ष है। यह जानकारी ही शास्त्रों ने अज्ञान नाश के चार उपाय बताये है। **१) सत्संग:-** श्रेष्ठ लोगों के सहवास, उनके शब्दों का सुपरिणाम होता है क्योंकि ज्ञान का सच्चा स्वरूप वे जान चुके होते है। वह ज्ञान मार्ग समझने के लिये सत्संग ही उपाय है। **२) अच्छे विचार :-** अच्छे आचरण के लिये अच्छे विचार करना चाहिये। सत्संग में सुविचार मिलता है। यह विचार दृढ़ करने पर बुरे एवम् अनावश्यक विचार दूर होकर ज्ञान प्राप्ति का

विचार पक्का होता है। **३) शम** :- यानि नियंत्रण। मन इन्द्रियों और सुविचारों का नियंत्रण करना पडता है क्योकि वे स्थिर हो तो ही ज्ञान प्राप्ति होती है। शम से यह साध्य होता है। ४) **सन्तोष** :- सन्तोष की प्रवृति रखना यानि अनावश्यक इच्छाये, अपेक्षाये, वासनाये छोड कर ज्ञान के मार्ग पर चलते रहना यही सन्तोष है।

ज्ञान के प्रकार चौदह विद्याये और ६४ कलाये है। समय के अनुसार इसमें बढोतरी हुई है लेकिन ज्ञान की शाखायें कुछ इस प्रकार है।

१) **दर्शन** - इसमें व्यक्ति के अध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के सम्बन्ध में विचार होता है।

२) **सांख्य** :- इसमे शरीर और सृष्टि की रचना तत्वों का संख्यात्मक विवेचन होता है।

३) **परोक्ष** :- इन्द्रियों को प्रत्यक्ष अनुभव मिलता है उसका समावेश इसमें होता है।

४) **साधन ज्ञान** :- विभिन्न साधनों व उपकरणों से प्राप्त ज्ञान साधन ज्ञान है।

५) **विवेक ज्ञान** :- किसी अवसर पर कैसे व्यवहार किया जाय यह ज्ञान।

६) **लौकिक ज्ञान** :- वैज्ञानिक-भौतिक अविष्कारों का विचार इसमें किया जाता है।

७) **शस्त्र ज्ञान** :- अस्त्र शस्त्रों का निर्माण, उपयोग सम्बन्धी ज्ञान।

जिस प्रकार गुण अपने स्त्रोत को, दृष्टि आंख को, गन्ध नाक को और रस जीभ को नही समझ पाते उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य भी परमेश्वर के अस्तित्व को अपने शरीर मे नही पहचान पाता। अज्ञानी पुरुष संसार को यथार्थ रूप में नही देखता बल्कि अपने मन के रंग में रंग कर और उसके बाहरी स्वरूप को ही देखता है। इसलिये व दुनिया की चीजों को ही दोषपूर्ण मान बैठता है। लेकिन ज्ञानी पुरुष संसार को उसके वास्तविक रूप में ही देखता है इसलिये वह उसमें आनन्द का अनुभव करता है।

मानव जीवन में जो स्थान विद्या आधारित ज्ञान का है वह स्थान अन्य किसी और का नहीं। इस बात पर हमारे समाज मे प्राचीन काल से ही जोर दिया जाता रहा है कि एक बुद्धिमान व्यक्ति परिवार के साथ-साथ समाज एवं देश का भी भला कर सकता है। यह बात नहीं है कि समाज में पढे लिखे लोगों की कमी है वरन यह है कि वे समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाना नही चाहते। यह शाश्वत सत्य है कि जो व्यक्ति विद्या का गहन अध्ययन मानव कल्याण के हित में रख कर करता है वह सदा विनम्र रहता है। वह सदैव दूसरों की भलाई के बारे में सोचता है कि किस प्रकार से मानव का कल्याण और एक संस्कारित समाज का निर्माण हो, एक शिक्षित समाज का हो।

ज्ञान प्राप्त करना मानव जीवन का अनिवार्य अंग है। लेकिन वह ज्ञान कृति में उतारना चाहिये। केवल सिद्धान्त रहने से ज्ञान नही आता। जो अनुभव लेता है वही ज्ञानी है। संगीत, मल्लविद्या, चिकित्सा इन शाखाओं का केवल किताबी ज्ञान किसी काम का नहीं है। संगीत की महफिल में गाना आवश्यक है, आखाडे में भिडना आना चाहिये। प्रत्यक्ष मे इलाज करना आना चाहिये। केवल पुस्तकें पढ कर ये ज्ञान मिलना असम्भव है। पेट पर कपडे बांधकर गर्भावस्था का नाटक करना आसान है लेकिन प्रसव की वेदना और मातृत्व का आनन्द उससे नहीं मिल सकता।

मनुष्य अपनी अज्ञानतावश अपना ही अहित कर बैठता है। अज्ञानता हटते ही ज्ञान का उदय हो जाता है। अहंकार भी अज्ञान से ही पोषित होता है, जो विराट को क्षणभर में लघु में परिवर्तित कर सकता है। केवल शिक्षित हो जाने से ही ज्ञान का

सम्बन्ध नहीं है। जब तक शिक्षा से अर्जित ज्ञान को परिमार्जित न किया जाये तब तक वह उपयोगी नहीं होगा। ज्ञान से ही आचरण की शुद्धि होती है, सदाचार का आधार ही ज्ञान है। ज्ञानी और सदाचारी व्यक्ति की जीवन शैली परिष्कृत होती है, जो दूसरों के लिए प्रेरणादायक होती है। जैसे दिन होते ही रात्रि का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, जाड़ा आते ही गर्मी का कोई अर्थ नहीं रहता, प्रकाश की किरण पड़ते अंधेरा सिमट जाता है। जिस प्रकार पापों से पुण्य ही मुक्त करा सकता, उसी प्रकार ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है।

अज्ञानता मिटाने के लिए ज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय है ही नहीं। ईश्वर के स्वरूप को ज्ञान के माध्यम से प्रकाशित किया जा सकता है। ज्ञान का प्रकाश सदा सर्वदा हमारे अंतस में उपस्थित रहता है केवल उसे विवेक द्वारा खोजने की आवश्यकता है। प्रभु के प्रकट होने पर भी गुरु के ज्ञान बिना उनका साक्षात्कार होना संभव नहीं होता। गुरु ही परमात्मा को पाने की सामर्थ्य प्रदान करते है।

भगवान श्रीकृष्ण ने परम गुरु बनकर अर्जुन को ज्ञान-चक्षु प्रदान किये। जब उन्हे अंत:चक्षु प्राप्त हुए तब उन्होने हृदय में परमात्मा पा लिया। अपने अंदर के साक्षी को देखो, आपके जीवन के व्यवहार को सुव्यवस्थित रूप से दृष्टा बनकर कौन देखता है ? ज्ञान के अनुसार विचार और विचार के अनुसार भावना और भावना के अनुसार ही हृदय में शांति का स्फुरण होता है। सुख-दु:ख, लाभ-हानि आदि सभी अदृष्ट के भोग है, इनका सम्बन्ध स्थूल शरीर से है ज्ञान तो महाकारण शरीर की सम्पत्ति है। अत: बाह्यजगत को छोड़कर अंतर जगत को खोजे।

ज्ञान के बिना परम प्राप्ति नहीं, परमेश्वर का स्वरूप है ज्ञान। अज्ञान अंधकार है, जब प्रकाश का उदय होता है तो अंध:कार स्वत: ही समाप्त हो जाता है। मनुष्य का अंत:करण ज्ञानस्वरूप होने पर भी वह गलती करता रहता है, आत्मा अजर-अमर होने पर भी हमारी दयनीय दशा क्यों ? हमने अपने ज्ञान स्वरूप होने की जानकारी क्यो नहीं की? हम अपनी यह स्थिति लाने के स्वयं जिम्मेदार है। इन सबका कारण है हमारा अज्ञान। मनुष्य अपने अज्ञान के कारण ही महान से लघु तथा पूर्ण से अपूर्ण बना हुआ है। ज्ञान से जीवन की तमाम समस्याओं का निराकरण होना भी संभव है। जब ज्ञानी अपनी सामर्थ्य को भूल जाता है तभी उसे कष्टों का सामना करना पड़ता है। विद्या शरीर है तो ज्ञान आत्मा है। यह एक दूसरे के बिना अपूर्ण है।

बुद्धि का भोजन है ज्ञान, जो हमे सत्संगति या सत्साहित्य से मिलता है। हमारे जीवन का लक्ष्य यदि ज्ञानार्जन होगा तो हम अपने आचरण और व्यवहार से अपने जीवन को बहुत सी जटिलताओं से बचा सकते है। ज्ञान में अद्भुत शक्ति व सामर्थ्य है। ज्ञानी बनकर हम अपने अतिरिक्त दूसरों को भी प्रकाशित कर सकते है। सहनशीलता, विवेक, दूरदृष्टि, कर्मठता, ईमानदारी, निर्णय लेने की शक्ति, सदाचार जैसे सद्गुण ज्ञान से ही पोषित होते है।

ज्ञान से भगवान को जानो। प्रेम से उसका ही रूप हो जाओ। ज्ञान ऐसी अग्नि है, जो कर्मों को जला देती है।

ज्ञान की तपस्या है, निरिच्छ होना। ज्ञान से मन इंद्रिय वश में आ जाते है।

या तो हम वस्तु से बंध जाते हैं या फिर व्यक्ति से। यदि इससे बच गए तो अंतत: सुखद-आरामदेय स्थिति से बंध जाते हैं। ज्ञानी का लक्षण क्या है ? वो न तो वस्तु से बंधेगा, ना व्यक्ति से और न ही स्थिति से।

ऐसा ही नहीं कहा गया है कि बहता जल सर्वदा निर्मल होता है। यह इसीलिए कि जो सत्य की यात्रा पर हैं उन्हें वस्तु, व्यक्ति और आरामदेय स्थिति से अनासक्त रहना है। वह तभी संभव है, जब उसकी चेतना नदी की तरह दो किनारों से बंधे बिना मुक्त हो। मन बहुत जल्दी अपना मान-शान का घर बना लेता है। तो ज्ञानी को सदैव मान-अपमान, लाभ-हानि के दो किनारों से अछूता होकर के शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हो करके बहते रहना है। बुद्ध ने अपने शिष्यों को भी यही कह रखा है- चरैवेति-चरैवेति अर्थात इस पथ पर चलते रहो चलते रहो। कहीं भी आसक्त न होओ- न वस्तु, न व्यक्ति और न ही स्थिति से। क्योंकि यही है ज्ञानी का लक्षण।

ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधन दो तरह के हैं- बाहरी और अंतरंग- प्रणाम, परिप्रश्न और सेवा- ये बाहरी और श्रद्धा, लगन व इंद्रिय ये अंतरंग साधन हैं। केवल बाहरी साधन हमारे जीवन में ज्ञान की प्रतिष्ठा नहीं कर सकते। क्योंकि बाहरी साधन जैसे प्रणाम आदि जो उपाय हैं वे कपटी मनुष्य द्वारा भी किये जा सकते हैं। श्रद्धा आदि अंतरंग साधनों में कपट नहीं चल सकता। ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में प्रमुख बाधा है संशय। संशयनाश और ज्ञान प्राप्ति एक दूसरे पर आश्रित हैं। श्रद्धावान, लगनशील व्यक्ति ज्ञान अवश्य प्राप्त करता है। प्रणाम, परिप्रश्न और सेवा के माध्यम से प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं मिलता। इनसे तो गुरु को उपदेश देने के लिये प्रार्थना की जा सकती है। केवल उपदेश सुन लेने से ज्ञान नहीं मिल जाता। उसके लिये तो श्रद्धा, लगन और संयम बहुत जरूरी है। श्रद्धा गुरु और उनके बचन दोनों पर होनी चाहिए। ज्ञान प्राप्ति के लिये आलस्य और प्रमाद का त्याग करके शरीर और मन उत्साह से परिप्लावित होना चाहिये। इंद्रिय योग घड़े में छेद के समान है। भले ही श्रद्धा हो, ज्ञान प्राप्ति के लिये लगन भी बहुत हो पर इंद्रिय-निग्रह अर्थात संयम न हो तो ज्ञान का सारा जल बह जायेगा।

ज्ञान और ज्ञान मे भेद है। एक ज्ञान है- केवल जानना, जानकारी, बौद्धिक समझ और एक ज्ञान है- अनुभूति, प्रज्ञा, जीवंत प्रतीति। एक मृत तथ्यों का संग्रह है, एक जीवित सत्य का बोध है। दोनो मे बहुत अंतर है- भूमि और आकाश का, अंधकार और प्रकाश का। वस्तुत: बौद्धिक ज्ञान कोई ज्ञान ही नहीं है। वह ज्ञान का भ्रम है। क्या अंधे व्यक्ति को प्रकाश का कोई ज्ञान हो सकता है ? बौद्धिक ज्ञान वैसा ही ज्ञान है।

ऐसे ज्ञान का भ्रम अज्ञान को ढंक लेता है। वह आवरण मात्र है। उसके शब्दजाल और विचारों के धुएं में अज्ञान विस्मृत हो जाता है। यह अज्ञान से भी घातक है; क्योकि अज्ञान दिखता हो तो उससे मुक्त होना संभव ही नहीं रह जाता है। तथाकथित ज्ञानी अज्ञान में ही नष्ट हो जाते है। ज्ञान-सत्य-ज्ञान बाहर से नहीं आता है और जो बाहर से आये, जानना कि वह ज्ञान नहीं है, मात्र जानकारी ही है। ऐसे ज्ञान के भ्रम में गिरने से सावधानी रखनी आवश्यक है। जो भी बाहर से आता है, वह स्वयं पर और परदा बन जाता है। ज्ञान भीतर से जागता है। वह आता नहीं, जागता है और उसके लिए परदे बनाने नहीं, तोड़ने होते है। ज्ञान को सीखना नहीं होता, उसे उघाडना होता है। सीखा हुआ ज्ञान जानकारी है, उघाड़ा हुआ ज्ञान अनुभूति है और जिस ज्ञान को सीखा जाए, उसके अनुसार जीवन को जबरदस्ती ढालना पड़ता है, फिर भी वह कभी संपूर्णतया उसके अनुकूल नहीं हो पाता है और उस ज्ञान और जीवन में एक अंतर्द्वंद्व बना ही रहता है। पर जो ज्ञान उघाड़ा जाता है, उसके आगमन से ही आचरण सहज उसके अनुकूल हो जाता है। सत्य-ज्ञान के विपरीत जीवन का होना एक असंभावना है। वैसा आज तक धरा पर कभी नहीं हुआ है।

एक कथा स्मरण आती है। एक घने वन के बीहड़ पथ पर दो मुनि थे। शरीर की दृष्टि से वे पिता पुत्र थे। पुत्र आगे था पिता पीछे। मार्ग था एकदम निर्जन और भयानक और फिर अचानक सिंह का गर्जन हुआ। पिता ने पुत्र से कहा: तुम पीछे आ जाओ, खतरा है। पुत्र हंसने लगा; आगे चलता था- आगे चलता रहा। पिता ने दोबारा कहा। सिंह सामने आ गया था। मृत्यु द्वार पर खड़ी थी। पुत्र बोला: मैं शरीर नही हूं, तो खतरा कहां है ? आप भी तो यही कहते है न ? पिता ने भागते हुए चिल्लाकर कहा- पागल, सिंह की राह छोड़ दे। पर पुत्र हंसता ही रहा और बढ़ता ही रहा। सिंह का हमला भी हो गया। वह गिर पड़ा था, पर उसे दिख रहा था कि जो गिरा है वह मैं नहीं हूं। शरीर वह नहीं था। वह उसे दिख भी रहा था और वह अंतर महान है। पिता दुखी था और दूर खड़े उसकी आंखों में आसूं थे और पुत्र स्वयं मात्र द्रष्टा था। उसे न दुख था, न पीड़ा। वह अविचल और निर्विकार था, क्योकि जो भी हो रहा था वह उसके बाहर हो रहा था। वह स्वयं कही भी उसमें सम्मिलित नहीं था। इसलिए कहता हूं कि ज्ञान और ज्ञान में भेद है।

जानकर बोलें- जिस विषय में हमें पूरी जानकारी न हो, उस विषय में निश्चयपूर्वक कोई बात नहीं कहनी चाहिए। अन्यथा सुननेवालों को जब अन्य स्त्रोतों से यथार्थ ज्ञान हो जायेगा, तब हमारी स्थिति उपहासास्पद बन जायगी। लोग हम पर विश्वास ही नहीं करेंगे। एक बार विश्वास उठ जाने पर लोग हमारी सच्ची बात भी नही सुनेंगे और सुनी भी तो उसे मानेंगे नहीं। इस प्रकार हमारे बोलने का जो उद्देश्य है, वही नष्ट हो जायेगा। अत: श्रेयस्कर यही होगा कि जिस विषयों में हमें संशय हो- शंका हो, उस विषय में यह ऐसा ही है ऐसी निश्चयात्मक भाषा का प्रयोग न करें, अन्यथा सुननेवाले यदि श्रद्धालु हुए तो उन्हें मार्ग भ्रष्ट करने के अपराधी हम बन जायेंगे। इससे हमारा भी पतन होगा और दूसरों का भी। अंधे जिस प्रकार अंधों को मार्ग नहीं दिखा सकते, उसी प्रकार अज्ञान व्यक्ति भी अज्ञानियों का पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकते। हमें चाहिए कि बोलने से पहले स्वयं समझे, सदा जान कर बोले।

३ प्रकार के मनुष्यों को ज्ञान नहीं देना- १) क्रोधी मनुष्य को- ज्ञान नहीं देना चाहिए। जिसके दिमाग में गरमी चढ़ जाती है वह उपदेश ग्रहण नहीं करता। क्रोधी मनुष्य अस्थिर रहता है। अत: वह उपदेश श्रवण नहीं कर सकता। २) अविनयी- जो अविनीत है वह भी उपदेश के योग्य नहीं है। अविनीत के १४ लक्षण बताये गए हैं- १) बार-बार क्रोध करनेवाला २) दीर्घकाल तक क्रोध करनेवाला ३) मित्रता का नाश करनेवाला ४) ज्ञान का अभिमान करनेवाला ५) अपना पाप-दोष दूसरों पर मढ़नेवाला ६) मित्रों-स्वजनों पर क्रोध करनेवाला ७) मित्रों की पीठ पीछे निन्दा करनेवाला ८) असंबद्ध बोलनेवाला ९) द्रोही १०) अहंकारी ११) रसलोलुप १२) अजितेन्द्रिय १३) बांट कर नहीं खानेवाला १४) अविश्वासी। ३) रस का प्यासा- जो दिया हुआ ज्ञान पचा नहीं सकता। इसके विपरीत जो अक्रोधी है, विनयवान है और तपस्वी (जिव्हा को वश में रखनेवाला) है उसे ज्ञान देना चाहिए। ये तीनों ज्ञान पाने के हकदार कहे गये हैं।

ज्ञान तो प्रकाश (बुद्धिमत्ता) की ओर ले जाता है। लेकिन जब ज्ञानियों यानी अपने आपको पढ़ा-लिखा विद्वान समझनेवालों के करतब देखे तो मन हुआ कि उस ऋषिवर को दावत दें जिन्होंने बात ही बात में कह दिया कि शिक्षित लोग भी महाअंधकार यानी मूर्खता में प्रवेश कर जाते हैं। इसका कारण भी है। अज्ञानी भूलें करता है लेकिन भूल सुधारने को भी तैयार हो जाता है। लेकिन ज्ञानी को भूल सुधारने में दिक्कत होती है। इसका कारण है उसका अहंकार। मानो या न मानो

ज्ञान अहंकार भी पैदा करता है और इसीलिए हम ज्ञानियों को दूर से ही दंडवत करते हैं। क्योंकि कई बार ऐसे ज्ञानियों के फंदे में पड़ चुके हैं जिन्होंने अपनी बुद्धि से धोबीपछाड़ मार-मार के हमारे मस्तिष्क के सारे पुर्जे हिला दिये। कुछ ज्ञानियों का तो यह भी मानना है कि बुद्धि का सम्बन्ध शरीर से भी होता है। जैसे मोटे ज्ञानी की बुद्धि मोटी और नाटे ज्ञानी की बुद्धि नाटी।

हमारी इतनी औकात नहीं कि महाज्ञानियों की इस धारणा को ध्वस्त करें लेकिन विनम्रता पूर्वक कहना चाहते हैं कि हमारी समझ से ऐसा नहीं होता। कई बार ऐसा भी होता है कि ज्ञानी कहने लगता है कि वह अज्ञानी है, नहीं जानता और अज्ञानी दावा करते चले जाता है कि वह परम ज्ञानी है, सब कुछ जानता है।

मनुष्य का जन्म और उसका उद्देश्य एक रहस्यमय प्रक्रिया है। जो वास्तविक रूप से दोनों को समझ लेता है, उसका जन्म लेना सार्थक हो जाता है। समझने के बाद उस पर अमल करना एक बहुत बड़ी साधना है। फिर शुरू होती है, स्वात्म की ओर चलते रहने की साधना। यह मार्ग सी मार्गों से कठिन और मर्यादा से युक्त है। जो हर संघर्षों को पार करके नियमों का पालन करते हुए निरंतर आगे बढ़ता रहता है, वह योग साधक कहा जाता है। देखा जाए तो सारी जिंदगी ही एक कठिन साधना है। जो खुद को साध लेता है, वह जिंदगी के उद्देश्य को पूरा कर लेता है।

वेद में कहा गया है, परमात्मा और आत्मा-दोनों का स्वरूप अग्नि के समान यानी उध्वगामी होता है। इसलिए यज्ञ करते समय मंत्र के द्वारा यज्ञमान यह प्रार्थना करता है कि हे परमपिता परमात्मा, जिस तरह से हवन कुण्ड की आग सदैव ऊपर की तरफ ही बढ़ती जाती है, उसी तरह से हमारा जीवन भी सदैव उध्वगामी हो। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में आत्मसाधना को सबसे श्रेष्ठ कर्म कहकर, इसे निरंतर करते रहने पर बल दिया है। कण-कण में बसनेवाले उस सर्वशक्तिमान को अगिन्न रूप में धारण करें, फिर देखेंगे कि अपने अंदर व्याप्त अंधकार की जगह परम आलोक अगोचर होने लगा है। सारा विश्व फिर पराया नहीं अपना लगने लगेगा। अंतरतम में जब परमात्म-प्रकाश फैल जाता है, तब हर तरह की भ्रांतिया, दु:ख, भौतिक इच्छाएं, वासनाएं और क्लेश मिट जाते हैं। ये प्रश्न यजुर्वेद में उठाए गए हैं-ओम्कोसि, कस्यासि और को नामासि। अर्थात तू कौन है, मैं कौन हूँ ? तू कौन-सा है, मैं कौन सा हूँ ? तू किसका है, मैं किसका हूँ ? ऐसे ही कुछ सवाल ऋग्वेद में किए गए हैं- कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वर:। को ह कस्मिन्नसिश्रित: अर्थात रक्षा करनेवाला तू कौन है और किसके आश्रय में है ? इन जीवन से संबंध रखने वाले तमाम सवालों को जो हल कर लेता है, उसे उपनिषदों में आत्मज्ञानी कहा गया है। आत्मज्ञानी को लौकिक और अलौकिक दोनों विद्याओं का ज्ञान होता है और ज्ञानी लौकिक विद्याओं में पारंगत होता है। स्वात्म का साधक आत्मज्ञानी हो जाता है और मानव का जन्म लेना तभी सार्थक होता है, जब वह आत्मज्ञानी बनकर आगे बढ़े।

वेद में कहा गया है- ऋते ज्ञानान्न मुक्ति अर्थात बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं। गीता में भी ज्ञान और विवेकपूर्वक कर्म करने की सलाह दी गई है। तीन तरह का ज्ञान बताया गया है। पहला वह ज्ञान है जिसमें सभी प्राणियों में एक ही तरह की सत्ता भाषित होती है। यह सात्विक ज्ञान कहा जाता है। दूसरा राजसिक ज्ञान है। इसमें विविध प्राणियों में उनकी पृथकता की वजह से अस्तित्व की विविधता दिखलाई पड़ती है और तीसरे तरह का ज्ञान तामसिक होता है। एक ही कार्य को सब कुछ मान कर कारण और दूसरे कार्यों को नहीं जान पाना, मतलब संकीर्ण दायरे का ज्ञान तामसिक श्रेणी में आता है। इसी

तरह के कर्म भी तीन तरह के बताए गए है। बिना किसी आसक्ति और राग-द्वेष के जो कर्म किए जाते है, जिनमें फल की इच्छा नहीं होती, वह सात्विक कर्म कहलाता है। राजसिक कर्म वह है जिनमें फल की इच्छा और अहंकार होता है। अज्ञानता के कारण हानि और लाभ का विचार किए बिना जो कर्म किए जाते है, वे तामसिक कर्म कहे जाते है। इसी तरह से तीन तरह की बुद्धि और तीन तरह के कर्ता बताए गए है। बुद्धि और कर्ता भी ज्ञान और कर्म से जुड़े हुए है। वेद में ज्ञान को प्रकाश के समान माना गया है। जिस तरह से प्रकाश के उदय होते ही सब कुछ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है, उसी तरह हृदय में ज्ञान होने से आत्मा और परमात्मा की अनुभूति होने लगती है। चारों पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को हासिल करने के लिए ज्ञान और कर्म की पूरकता का होना जरूरी है। बिना पूरकता के चारों को मर्यादित और आदर्श ढंग से नहीं किया जा सकता है।

महर्षि अरविंद के अनुसार चेतना के विस्तार और परमात्म अनुभूति के लिए ज्ञान और कर्म की पूरकता जरूरी है। इनकी पूरकता से अध्यात्म का ध्येय सहजता से प्राप्त किया जा सकता है। इनसे जो शक्ति पुरुषार्थ के लिए मिलती है, मनुष्य जन्म के असली मकसद को पूरा करने के लिए संजीवनी के समान है। ज्ञान और कर्म की पूरकता का मर्म जिसे समझ में आ जाता है, वह जिंदगी के किसी मोड़ पर असफल नहीं होता है। जो कर्म को कुशलतापूर्वक अर्थात योगचर्या के मुताबिक करता है, वह तो गृहस्थ में रहते हुए भी संन्यासी जैसा ही होता है। ज्ञानपूर्वक कर्म करने से जन्म-जन्मांतर की वासनाएं मनुष्य को दु:ख नहीं देती। आज संसार में जितनी भी गड़बड़ियां है वे सभी अज्ञानता और दुष्प्रवृत्तियों के कारण है। अज्ञानता का कारण अविद्या है। अविद्या का कारण संस्कार-प्रांजलता है।

विद्या वह है जो दु:खों से छुड़ा दे। इसलिए विद्या के लिए योग्य गुरु की खोज जरूरी है। बिना गुरु ज्ञान नहीं, इसलिए देव शास्त्र और महापुरुष गुरु बनाने पर जोर देते हैं। ज्ञान और कर्म में जिसमें पूर्ण पूरकता हो ऐसे महामानव को गुरु बनाकर जीवन के उद्देश्य के लिए निरंतर आगे बढ़ते रहे। शिक्षा मनुष्य को मानवता से देवत्व तक पहुंचाती है। आत्मज्ञान से जन्म-मरण, सुख-दुख सब खत्म हो जाते हैं।

यह अहंकार किसको होता है, और कब होता है ? अहंकारी के लक्षण क्या है ? अज्ञानतावश, भवसागर से पार करनेवाले रचनापालक, संहारकर्ता सत्य-ब्रह्म को जो मिथ्या कहे। कहाँ है, किसने देखा, क्या करता है ? हम सब कुछ करते हैं, जिसको कभी देखा ही नहीं, सुना ही नहीं वह सत्य कैसे ? मिथ्या संसार को जो सत्य मानता है, यह रहा परिवार-संसार, खेल-तमाशे जो प्रत्यक्ष दीखे वह सत्य है। ऐसा कहने वाला अज्ञान से भरा है।

अज्ञानता का नाश कैसे हो ? उसके नाश हुए बिना भवसागर से पार होना कठिन है। ज्ञान से सद्गुरुओं की शरण लेने से उसके बताये रास्ते पर चलने का ज्ञान हो। ज्ञान होने पर ही अज्ञान का नाश होता है और अज्ञान का नाश होने पर ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

प्राचीनकाल से लोग कहते आए हैं कि परमपुरुष को पाने का रास्ता त्रिविध है- ज्ञान, कर्म और भक्ति। लोग कहते हैं कि ज्ञान से लोग समझ लेते है कि परमात्मा क्या है, वे स्वयं क्या हैं और परमात्मा को पाना क्या है?

यह विचारणीय है कि ज्ञान से कोई मनुष्य कैसे समझेगा कि परमात्मा क्या है? मनुष्य का ब्रेन (मस्तिष्क) तो छोटा सा

है, वह भी भगवान का दिया है। वह कैसे समझेगा कि परमपुरुष किस तरह के हैं? इसलिए ज्ञान के माध्यम से परमात्मा को समझ लेने का दावा सही नहीं हो सकता।

थोड़ा रोग होने से बुद्धि चली जाती है, बुढ़ापे में बुद्धि चली जाती है। एक बाईस साल का युवा जितना याद रख सकता है, उतना अस्सी साल का बूढ़ा आदमी याद नहीं रख सकता। फिर यह भी कहते हैं कि ज्ञान से यह समझ लेंगे कि वह (मनुष्य) क्या है।

मनुष्य यह नहीं जानता है कि वह कौन है। आज से दो सौ साल पहले तुम लोग कौन थे, और फिर दो सौ साल बाद कहां रहोगे, यह भी नहीं जानते। इसलिए यह कहना भी सही नहीं है कि ज्ञान से आगे के बारे में, भविष्य के बारे में जाना जा सकता है। ज्ञान से कुछ हद तक मन की तृप्ति हो जाती है, कुछ हद तक वह दूसरोंको समझा सकता है, मगर इससे अधिक कुछ नहीं। मैं यह नहीं कहूंगा कि ज्ञान की चर्चा नहीं करो। जब तक ज्ञान की भूख है तब तक ज्ञानार्जन करते रहो। जब महसूस करो कि इसके आगे ज्ञान से कुछ होनेवाला नहीं है, तब उसे छोड़ना। इसके पहले ज्ञान की राह छोड़ने की आवश्यकता नहीं।

ज्ञान और आचरण- ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ज्ञान हो और आचरण न हो, यह ज्ञान की सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। आचरण हो और ज्ञान न हो, तो भी सही नहीं है। ज्ञानवादी लोग केवल ज्ञान को ही सब कुछ मानकर चलते हैं। क्रियावादी ज्ञान की उपेक्षा करते हैं और आचरण को मोक्ष का प्रधान अंग मानते हैं। ये दोनों दृष्टिकोण एकांगी हैं। ज्ञान के अभाव में आचरण की समीक्षा कैसे होगी? ज्ञान है और आचरण नहीं है तो ज्ञान का क्या मूल्य होगा?

जैन दर्शन में समन्वय के तत्व भरे पड़े हैं। उसकी शैली व्यावहारिक है। उसकी दृष्टि में न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। वह सापेक्ष प्रतिपादन करता है। साधु भिक्षा के लिए जाता है। उस समय उसे झोली और पात्रों की अपेक्षा होती है। झोली महत्वपूर्ण है या पात्र? किसी एक को महत्वपूर्ण मानते ही विवाद खड़ा हो जाएगा। झोली के बिना पात्रों का उपयोग कैसे होगा? पात्र नहीं है तो झोली क्या काम आएगी? इनके बारे में कुछ कहना होगा तो एक साथ नहीं कहा जा सकता। इसलिए कोई क्रम तो बनाना होगा। कभी किसी को प्राथमिकता दी जा सकती है और कभी किसी को। पर उपयोगिता का दृष्टिकोण दोनों के साथ जुड़ा हुआ है।

ज्ञान और आचरण की चर्चा में ज्ञान को प्रथम स्थान देने पर एक प्रश्न उपस्थित होता है- कुछ किए बिना ज्ञान कैसे होगा। इसके लिए पुरुषार्थ करना होगा। पठन-पाठन और चिंतन-मनन आदि जिस सीमा तक होते हैं, ज्ञान भी उसी सीमा तक फलवान बनता है। पठन-पाठन का क्रम शिथिल होते ही ज्ञान पर आवरण छा जाता है।

कभी नाव पर गाड़ी और कभी गाड़ी पर नाव- इस कहावत के अनुसार कभी ज्ञान आचरण को पुष्ट करता है और कभी आचरण से ज्ञान की पुष्टि होती है। ज्ञान और आचरण की ही तरह ज्ञान और श्रद्धा का संबंध भी सापेक्ष है। ज्ञान से श्रद्धा बढ़ती है और श्रद्धा से ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान न हो तो मोक्ष की जिज्ञासा नही हो सकती, अभिलाषा तो उससे आगे की बात है। दूसरी ओर धर्म और श्रद्धा बिना विषयों की आसक्ति या गृहत्याग की भावना घटित ही नहीं हो सकती। गुरुकुल वास के साथ भी ज्ञान का सीधा संबंध है। गुरुकुल वास से ज्ञान की प्राप्ति होती है, दर्शन और चरित्र में दृढ़ता आती है। वे व्यक्ति

धन्य हैं, जो जीवन भर गुरुकुल वास में रहते हैं। गुरुकुल वास शब्द के दो अर्थ हैं- गुरु का सान्निध्य और धर्मसंघ। ज्ञान, दर्शन और चरित्र की पुष्टि के संदर्भ में दोनों अर्थों की संगति बैठ जाती है। जो साधु-साध्वियां यहां से विहार कर अन्य क्षेत्रों में जाते हैं, वे गुरुकुल वास को छोड़ते नहीं है। पतंग आकाश में कितनी ही दूर चली जाए, डोर हाथ में रहती है। इतनी दूरी से डोर पतंग को उड़नेवाले से जोड़कर रखता है। यही बात गुरु और शिष्य के संबंध की है। शिष्य कितनी भी दूर रहे, उसे गुरु से पोषण मिलता रहता है। ज्ञान और आचार की युति मोक्ष में साधक है। ज्ञान का बहुत मूल्य है। पर आचार शून्य ज्ञान वांछित अर्थ की प्राप्ति में सहयोगी नहीं बन सकता। किसी व्यक्ति में ज्ञान कम होता है। पर आचार की निर्मलता से वह पूज्य बन जाता है। इसी प्रकार आचार के क्षेत्र में साधारण व्यक्ति ज्ञान के बल पर पूज्य बन सकता है। ज्ञान के साथ आचार और आचार के साथ ज्ञान का थोड़ा अंश भी रहता है, तो व्यक्ति महत्वपूर्ण बन जाता है।

जहां ज्ञान और आचार दोनों ही उत्कृष्ट हों, वहां तो कहना ही क्या? इसलिए तो कहा जाता है- प्रथम ज्ञान और फिर आचार- इस सिद्धांत के आधार पर साधु ज्ञानपूर्वक आचार का पालन करते हैं। अज्ञानी क्या करेगा? वह कैसे जानेगा कि उसके लिए श्रेयस्कर क्या है?

आज हम जितने साधन संपन्न हैं, हमारे जीवन में जितनीं सुविधाएं हैं, वैसी पहले कभी नहीं थी। फिर भी हमें जीवन में जिस आनंद, जिस सुकून जिस मस्ती का अनुभव होना चाहिए था, वह नहीं होता जहां तक सुख व दु:ख का सवाल है, ये तो जीवन में धूप-छांव की तरह आते-जाते रहते हैं लेकिन मस्ती का आलम बना रहना चाहिए। किसी कवि ने कहा है- यह जीवन क्या है निर्झर है, मस्ती ही इसका पानी है। सुख-दु:ख के दोनों कूलों में चल रहा राह मनमानी है।

यद्यपि विज्ञान जीवन की राह में बाधक नहीं है, बल्कि जीवन की राहों को आसान बनाने का सबसे सरल साधन है। लेकिन ज्ञान के बिना विज्ञान की उपलब्धियां अभिशाप बनती जा रही हैं। ज्ञान किसे कहते है? क्योंकि आत्मा को जानते ही अपने हृदय में बैठे हुए परमात्मा की परम सत्ता का ज्ञान तुरंत हो जाता है, जिसके बाद और कुछ जानना शेष नहीं रहता। श्रीकृष्ण ने इसी ज्ञान को राजविद्या कहा। अर्थात सभी विद्याओं की राजा है। ज्ञानं लब्धवा परां शांतिम चिरेणाधिगच्छति ज्ञान प्राप्त होने पर परम शांति को प्राप्त होता है मनुष्य। संसार के समस्त मनोवैज्ञानिकों का मानना है और प्रयोगों से भी यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य अपने दिमाग का सिर्फ आठ दस प्रतिशत ही उपयोग करता है, शेष नब्बे प्रतिशत क्षमता सुषुप्तावस्था में रहती है। तीन वजह बतायी गई हैं। प्रथम हम सकाम भाव से कर्म करते हैं। इसलिए हमारी बुद्धि को दस प्रतिशत ही हमारी चेतना का अंश मिला हुआ है। शेष नब्बे प्रतिशत हमारी आत्मा में निहित रहता है। हम जैसे ही ज्ञान प्राप्त करके चेतना की ओर अग्रसर होते हैं तो सारा अंधकार मिट जाता है और आत्मा जो कि निर्लिप्त और निरामय है, का बोध होता है। दूसरा तथ्य है पूर्ण चैतन्य के अभाव में ही हमारी बुद्धि मोहग्रस्त रहती है जिससे दस प्रतिशत का ही उपयोग होता है और जब ज्ञान द्वारा हम पूर्ण चैतन्य हो जाते हैं तो संसार का मोह मिट जाता है और हमें आत्मस्वरूप की, निजी स्वरूप की प्राप्ति होती है जो कि आनंदमय है। तीसरा कारण है हर मनुष्य के जीवन में एक अंतर्द्वंद्व, एक कम्शकश यह तेरा है, यह मेरा है, निरंतर चलते रहता है। और इस द्वंद के चलते हमारा बौद्धिक स्तर संकुचित हो जाता है जिससे हमारे दिमाग की नब्बे प्रतिशत शक्ति सुषुप्तावस्था में चली जाती है और हम अपनी आत्मा का

दर्शन नहीं कर पाते हैं। लेकिन जब ज्ञान प्राप्त होता है तो यह नब्बे प्रतिशत शक्ति का जागरण होता है और परम सुख की प्राप्ति होती है। आत्मा का कोई आकार, प्रकार नहीं है। आत्मा कोई पदार्थ नहीं है और न ही इसका कोई रंग है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि आत्मा का न जन्म होता है, न मरण, न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है। आत्मा शाश्वत है, अर्थात अजर, अमर अविनाशी है। हम सभी एक-एक मनुष्य आत्मा की धरोहर हैं। अर्थात हम सब अमृत के पुत्र हैं। अमकृतस्य पुत्रा: वयम। इसलिए मन के चक्कर में पड़कर मृत्यु की ओर क्यों बढ़ें? क्यों नहीं हम अमृतत्व की ओर ही बढ़ें। कहा भी है वेदों में हमारे ऋषि मनिषिओं ने मृत्योर्मा अमृतम गमय। श्रीमद् भागवत में भीष्म पितामह ने कहा है अपनी बुद्धिरूपी क्वांरी कन्या भगवान से ब्याह दी, ताकि वह भगवान के पीछे-पीछे चलती रहे। और मन को भैंसा का रूपक मानकर भगवान को दहेज के रूप में दिया ताकि भगवान उसको अपने वश में कर लें। क्योंकि मन जो कि चंचल है, जब भगवान के वश में चला जाता है तो निरस्त हो जाता है वरना यदि संसार के विषयों की हरी-हरी मोहमाया रूपी घास चरता है तो एक दिन यमराज अपने भैंसे पर बैठकर आता है और मार-मार कर प्राण निकालता है। आजकल योग को शारीरिक स्वस्थता प्राप्त करने तक ही सीमित माना जाता है। लेकिन शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर हम जो खोते जा रहे हैं उसको पुन: प्राप्त करने का नाम योग है। स्वस्थ शरीर, सही सोच और आत्मज्ञान द्वारा ही आत्मा की अनुभूति जागती है। दुर्लभ मनुष्य शरीर को व्यर्थ में न गंवाए। जितनी जल्दी हम अपने सहज स्वरूप को प्राप्त कर लें, उसमें अपना भला तो है ही, साथ ही औरों का भी भला हो सकेगा। एक दिन तो अपने आपको जानना ही होगा, क्योंकि अपने आपको जानें बिना मनुष्य जीवन का मकसद पूरा नहीं होगा। वेद शब्द विद धातु से बना है, जिसका अर्थ है जानना। इसलिए जहां वेद है वहां सुख है, शांति है, संवेदना है, मानवता है। जहां वेद नहीं है, ज्ञान नहीं है वहां सिर्फ वेदना है क्योंकि अज्ञानता सभी दु:खों का कारण है। इसलिए ज्ञान में छिपे हुए जीवन का परम सुख, परम आनंद प्राप्त करना चाहिए। बिना ज्ञान मनुष्य जीवन पशु से भी बदतर है। मनुष्य का जन्म ही इसीलिए हुआ है कि वह अपनी आंखों पर पड़े हुए अज्ञानता के सारे पर्दे हटाकर अपनी आत्मा का दर्शन करे। श्रीकृष्ण ने कहा, तत्वदर्शन महापुरुष की शरणमें जाकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यदि सच्चे मार्गदर्शक की, सच्चे सद्गुरु की जरूरत है तो अवश्य मदद लेनी चाहिए ज्ञान-प्राप्ति हेतु।

जो अपनी आत्मा के समान सब आत्माओं को समझे, उसका नाम पण्डित है।

ज्ञान दो तरह का होता है- निर्बल और सबल। पापी लोग जब सभामें ज्ञानकी बात करने लगते हैं उनका ज्ञान, ज्ञान होते हुए भी निर्बल है। ज्ञानका बल वैराग्य है। जब वैराग्य होता है तब उसमें छोड़नेकी सामर्थ्य भी होती है और परमात्माके पदकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्मज्ञान मूक ज्ञान है, स्वयंप्रकाश है, सूर्य को अपना प्रकाश मुंह से बखान नहीं करना पड़ता। वह हमें दिखाई देता है।

नाशवान वस्तु को मैं या मेरी माननेवाला मूर्ख है। बंधन मोक्ष क्या है, इसको जाननेवाला पंडित है।

मध बिन्दु सम जगत है, सोच जरा नादान। चूक जायेगा समय जब होगा महा हैरान।। अत: समय रहते विनय विवेक से, कर ले धर्म ध्यान। निज को निज पर कोपर, जान यही ज्ञान महान्।।

आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान। विश्वशांति का मूल है, वीतराग विज्ञान।।

अज्ञान कहते हैं नासमझीको, किसी वस्तुको ठीक-ठीक न समझनेका नाम ही अज्ञान है।

वस्तुओं का जुटाना, बढ़ाना, भोग सामग्रियों में परिवर्तन करना यह उन्नति नहीं। यह तो विवशता है, अवनति है। तमोगुण प्रधान लोग अधर्म को ही धर्म मानते हैं, अवनति को ही उन्नति के नाम से पुकारते हैं, पतन को ही उत्थान बताते हैं। इसी का नाम अविद्या है।

भगवान कहते हैं मेरा आश्रय लेकर, निष्काम भाव से अपने वर्णाश्रमकुलाचार का अनुष्ठान करे। निर्मल बुद्धि के मनुष्य को सावधानी के साथ यह देखना चाहिए कि गुण यानी इंद्रियों के विषयों को सत्य समझने से विषय लोलुप मानव के सभी प्रयत्नों का फल उल्टा ही हुआ करता है। मेरे परायण होकर निवृत्त कर्म और प्रवृत्त कर्म त्याग दे। ब्रह्म विद्या के लिए जिज्ञासा रखकर श्रुत्युक्त कर्म की प्रेरणा का भी आदर न करे। मेरा भक्त अहिंसा आदि यमों का निरन्तर आचरण करे, नियमों का भी यथाशक्ति पालन करे और मुझे जाननेवाले शान्त सद्गुरु की मद्रूप भगवान से उपासना करे। साधक को निरभिमानी, निर्मत्सर, दक्ष, ममताशून्य, स्नेह में दृढ़, जल्दबाजी न करनेवाला, तत्त्व-जिज्ञासु, असूयारहित और सत्यवादी होना चाहिए। स्त्री-पुत्र, घर-बार, खेती-बारी, स्वजन-सम्पत्ति आदि से उदासीन (यानी अनासक्त) रहें। और आत्मौपम्य बुद्धि से सबके लिए सम-दृष्टि रखें। जिस तरह जलनेवाले काष्ठ आदि से उन्हें जलानेवाला और प्रकाश देनेवाला अग्नि भिन्न होता है, उसी तरह स्थूल और सूक्ष्म देहों से आत्मा पृथक् है। वह द्रष्टा और स्वयं-ज्ञानं-प्रकाशरूप है। यह जो त्रिगुणों से बनी मनुष्य-देह है, उस देह से सम्बन्ध होने के कारण ही चैतन्यमय पुरुष के पीछे संसार लगा है, ऐसा जानें। इसलिए तत्त्वजिज्ञासा से अपने में ही स्थित केवल परमात्मा को प्राप्त कर इस देह के सम्बन्ध की वस्तु-बुद्धि क्रमशः मिटायें। विद्यारूप अग्नि उत्पन्न करने के लिए आचार्य और शिष्य ऊपर-नीचे की अरणियों यज्ञ में अग्नि पैदा करने के लिए काम में लाये जानेवाले दो काष्ठखण्ड जैसे हैं। गुरु का प्रवचन इन दो अरणियों को मिलानेवाला संधान है। उस संधान से निर्माण होनेवाली सुखावह संधि या अग्नि है विद्या। उस पारंगत, ज्ञानी शिष्य की वह अति विशुद्ध बुद्धि त्रिगुण से उत्पन्न माया को झटकार डालती है और जिस तरह समिधाओं को जलाकर आग अपने-आप शान्त हो जाती है, उसी तरह जिन त्रिगुणों से यह दृश्य भासित होता है, उन्हें जलाकर वह विद्या स्वयं शान्त हो जाती है।

अज्ञानी रहने की अपेक्षा उत्पन्न ही न होना कहीं श्रेयस्कर हैं, क्योंकि अज्ञानता ही दुर्भाग्य का मूल है। ऐसा भी समय आता है जब अज्ञानता भी वरदान सिद्ध होती है। एक मनुष्य के लिए अपने शरीर की रचना, उसके अंगों और उनके कार्यों से अधिक संतोषजनक कोई ज्ञान नहीं हो सकता।

अज्ञानी शरीर को ही आत्मा मानता है। उसके प्रति उसकी अत्यंत आसक्ति हो जाती है। वह शरीर के दुखी होने पर अपने को दुखी समझता है, उसी की रक्षा के लिये भाँति-भाँति के छल प्रपञ्च करता है। इसके विपरीत ज्ञानी भी शरीर में उसी प्रकार रहता है, किन्तु उसमें आसक्त नहीं होता। अपने को शरीर से पृथक् समझता है, इसलिये उसकी चिन्ता भी नहीं करता। वह सोचता है, जब तक प्रारब्ध के भोग हैं, शरीर टिकने को है, तब तक प्रारब्धानुसार आहार अपने आप ही मिल जायगा। जब शरीर का प्रारब्ध समाप्त हो जायगा, तब प्रयत्न करने पर भी नहीं टिक सकता।

मोह भी बार-बार जन्म लेता है किन्तु ज्ञानाग्नि मे मोह जब भस्म हो जाता है तो कर्म मे उगने की क्षमता नही होती। जैसे भुना हुआ बीज खेत मे नही उगता वैसे ज्ञान की आंच मे तपा कर्म भी नि: सत्व हो जाता है और वह जन्म नही लेता।

ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं। उस ज्ञान में वर्णमाला का अपना उपयोग है, पर वह अनिवार्य नहीं है। भीतरी आंखें खुल जाने पर बाहर की साक्षरता निर्मूल्य सी हो जाती है। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं रह जाता। बाहरी साक्षरता की दृष्टि से गुरु नानक देव, संत कबीर आदि अनेक संत पुरुष अपढ़ हैं, लेकिन उन्होंने अंतर्ज्ञान के बल पर जो कुछ लिख दिया, बड़े बड़े विद्वान वर्षों से उसके अर्थ निकालने में लगे हुए हैं।

ज्ञानियों ने दृष्टि के ४ प्रकार बताए हैं- १) माईक्रोस्कोप (सूक्ष्मदृष्टि)- जीवन को प्रदूषित न करो। २) एक्स-रे (आंतरिक दुर्गुण)- बाहर की कमी मत देखो, अंदर के दुर्गुणों को देखना है। ३) दुर्बिन (बायनाक्युलर)- भूतकाल की गलतियों को देखकर उसे सुधारने की कोशिश करो। व्यवहार सुधरा तो भविष्य सुधरा। ४) टेलीस्कोप (दूर-दृष्टि)- अपने से ऊंचे (महान) व्यक्ति के गुणों को देखे। गिद्ध (वह हमेशा नीचे देखता है) की नजर न रखें।

आत्मज्ञान का दीया जल जाए तो देहाभिमान का अंधेरा नहीं टिकता। कठोपनिषद में कहा गया है, उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत। यानि उठो, जागो और ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों का सानिध्य प्राप्त करो, जो तुम्हारे भीतर आत्मज्ञान की ज्योति जला दें। जागने से अभिप्राय बिस्तर से उठकर खड़े हो जाना मात्र नहीं हैं। आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में जागने का अर्थ होता है- अंधविश्वास, विसंगतियुक्त रूढ़ियों व अकर्मण्यता का परित्याग कर सतत पुरुषार्थ के द्वारा अपने भीतर विवेक जागृत करना।

आत्मज्ञान की साधना में विवेकशील होना अनिवार्य है। विवेक के जागरण से व्यक्ति के समस्त प्रकार के भ्रम समाप्त हो जाते हैं। श्रीकृष्ण ने आत्मज्ञान को ज्योतिस्वरूप बताते हुए कहा है- ज्ञान का प्रकाश मनुष्य के समस्त प्रकार के बंधनों, अंधविश्वासों व कुसंस्कारों को मिटा देता है। सदियां बीत गईं हमें दीपोत्सव मनाते, लेकिन कैसी विडंबना है कि घट-घट में व्याप्त अज्ञानता के तिमिर के सामने बाहर की रोशनी फीकी पड़ जाती है। हमें अंधविश्वासों ने इतना अकर्मण्य बना दिया कि हमने आत्मा की ज्योति जलाने के पुरुषार्थ को विस्मृत कर दिया।

गौतम बुद्ध से उनके शिष्य भद्रक ने पूछा, भंते, आपके देह त्यागने के बाद हमें ज्ञान का मार्ग कौन दिखाएगा? तथागत स्नेहपूर्वक बोले, भद्रक, अप्प दीपो भव। जिस ज्ञान की खोज में तुम दूसरे का सहारा लेना चाहते हो, जिस ज्ञान को तुम बाहर के उजालों में ढूंढना चाहते हो, वह तुम्हें अपने भीतर की अतल गहराइयों में मिलेगा। आत्मज्ञान रूपी दीपक को प्रज्वलित करने के लिए पुरुषार्थी बनना पड़ता है। पुरुषार्थ दो शब्दों से मिलकर बना है- पुरुष तथा अर्थ। पुरुष यानि विवेकशील प्राणी और अर्थ का भावार्थ है- लक्ष्य। विवेकशील प्राणी का लक्ष्य होता है आत्म-अनुशासन और इंद्रिय-संयम द्वारा आत्मज्ञान को जागृत करना। उस प्रकाश से अपनी जीवन यात्रा को सार्थक बनाना।

पुरुषार्थ-साधना के द्वारा आत्मचेतना की ज्योति ज्यों-ज्यों प्रज्ज्वलित होने लगती है, हमें अपना मौलिक स्वरूप दिखाई देने लगता है। आत्मज्ञान की आंतरिक यात्रा में जलता हुआ दीपक हमें प्रेरणा देताहै कि हम पवित्र बनते हुए आंतरिक रोशनी के सुपात्र बनें। बाह्य संस्कारों व मन की दूषित वृत्तियों को बदले बिना भीतरी प्रकाश का पात्र बनना संभव नहीं है।

यूनान की राज्य देवी का वार्षिकोत्सव बड़े उल्लास से मनाया जा रहा था। पूजा-पाठ संपन्न हो जाने पर विशिष्ट लोगों ने देवी के समक्ष प्रश्न रखा- आज यूनान में सबसे अधिक विद्वान व्यक्ति कौन है? राज्य देवी ने सुकरात का नाम लिया। सुनते ही भीड़ जय-जयकार करती सुकरात के घर पहुंच गई। सुकरात ने इसका कारण पूछा। लोगों ने राज्य-देवी की घोषणा सुनाते हुए कहा- हम आपका सम्मान करने आए हैं। सुकरात ने कहा- देवी ने जिसका नाम सुकरात बताया है, वह कोई दूसरा होगा।

लोग फिर देवी के पास आए और हाल कह सुनाया। तब देवी ने फिर घोषणा की- असली सुकरात वही है, जिससे मिलकर आए हो। वही सर्वाधिक विद्वान व बुद्धिमान है। लोग फिर सुकरात के घर पहुंचे। देवी की घोषणा को उन्हें बताया गया। सुकरात ने फिर दृढ़ता से कहा- देवी की घोषणा का मैं निरादर नहीं करना चाहता। किंतु मैं ज्ञानी हूं नहीं। मैं इतना ही जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। सब चकित थे। जिसके बुद्धिमान होने की घोषणा देवी कर रही है, सारा राज्य जिसे सम्मान देने को आतुर है, वह कह रहा है, मैं तो बस इतना जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। लोग फिर देवी के दरबार में आए तो उन्होंने रहस्य पर से परदा उठाया- अपने ज्ञान को ही जानने वाला सच्चा ज्ञानी नहीं होता। सच्चा ज्ञानी वह होता है जो अपने अज्ञान को जानता है। सुकरात कह रहा है कि मैं तो इतना जानता हूं कि मैं कुछ नहीं जानता। इसीलिए वह ज्ञानियों का सिरमौर है। ज्ञानी वह है जो अपने अज्ञान को जानता है। ज्ञान का विस्तार तभी तक संभव है जब तक हमें अपने अज्ञान का भान है। अज्ञान का भान मिटा कि ज्ञान का विस्तार ठहर जाएगा। फिर ज्ञान की सीमा आ जाएगी। ज्ञान तो असीम है, जिसकी कोई सीमा नहीं। सीमा हमारी है, अंत हमारा है। वह सीमा असीम में तभी बदल सकती है, अब ज्ञान पाने की ललक मन में बनी रहे। ज्ञान पाने की ललक तब तक ही रह सकती है, जब भीतर अज्ञान का भान हो। तभी अहंकार से मुक्ति मिलेगी।

अहंकार टूटा कि हम विराट से जुड़े। इसलिए ज्ञान का अर्थ वर्णमाला से परिचय होना ही नहीं है, उस विराट चेतना से परिचय होना है, जो अक्षर है, नित्य है, सनातन है। विद्या वही है जो बंधनों से मुक्त करे। सबसे बड़ा बंधन अज्ञान का है। अज्ञान मोह और राग द्वेष को जन्म देता है। राग द्वेष से हम टुकड़ों-टुकड़ों में विभाजित हो जाते हैं। जो अहम को तोड़े, विराट से जोड़े, महावीर वाणी में वह है ज्ञान, शेष है अज्ञान।

एक बार दो बड़े विद्वानों में बहस छिड़ी-पहले ध्वनि पैदा होती है या पहले ताड़ गिरता है? वाद-विवाद महीनों चलता रहा किंतु किसी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सका। तब उन दोनों ने निश्चय किया कि रातभर पेड़ के नीचे बैठकर व्यावहारिक रूप से देख लिया जाए कि पहले ताड़ गिरता है या पहले ध्वनि होती है। अगली सुबह पाया गया कि सिर पर ताड़ गिरने के कारण दोनों विद्वान मरे पड़े हैं। वास्तव में तथाकथित ज्ञान, ज्ञान नहीं बल्कि ज्ञान की भ्रांति है। उसे कोई भी मनुष्य अर्जित करना नहीं चाहेगा।

ज्ञान है बाहरी विषयों का आत्मसात। यह व्यक्ति को स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है। जहां यह पाया जाता है, उसे ज्ञान कहा जा सकता है और जहां यह नहीं है, वहां ज्ञान नहीं है। जहां ज्ञान भौतिक है वहां ज्ञान का आधार मन है। जहां यह पूर्णत: आध्यात्मिक है वहां उसका आधार आत्मा है। ज्ञान मन को आत्मा के साथ जोड़ता है। जो मन को आत्मा के साथ नहीं मिलाता, वह ज्ञान नहीं है। इस तथाकथित ज्ञान से अहंकार पैदा होता है।

सांसारिक ज्ञान अपने प्रथम स्तर में भौतिक-मानसिक होता है और इसके बाद मानसिक। जब इस ज्ञान को भौतिक

जगत में कार्यान्वित किया जाता है तब यह मानसिक भौतिक होता है।

इस भौतिक मानसिक ज्ञान का इस भौतिक जगत में मूल्य बदलता रहता है। जो सिद्धांत आज पसंद किया जाता है, कल वह बदल जाता है। वह उस सत्ता का ज्ञान है जिसमें देश, काल और व्यक्ति में परिवर्तन से भी कोई परिवर्तन नहीं होता। जिस ज्ञान का अंतिम बिंदु आध्यात्मिक ज्ञान हो, वही वास्तविक ज्ञान है।

आज एक अजीब सा माहौल है। समाज और जीवन के हर क्षेत्र में अफरातफरी है। हर पल लगता है कि हम कोयले के ढेर पर बैठे हुए हैं, पता नहीं कब नीचे से आग फट जाए और जलना हमारी नियति बन जाए। इससे इन्कार नहीं है कि समाज विकास के रास्ते पर है, लेकिन उसके साथ जो अंधकार चल रहा है, उससे या तो हम मुंह चुराने या उसके होने को नकारने की कोशिश कर रहे हैं। यह अंधकार है हमारे अज्ञान का। हमारे कुछ न होने के बावजूद खुद को श्रेष्ठ साबित करने का, हमारे अहंकार का। हर क्षेत्र के कथित ताकतवर और प्रभावशाली लोग अहं ब्रह्मास्मि के भाव के साथ अपनी बात मनवाने की कोशिश कर रहे हैं। इन सबने सुंदर और सुखद भविष्य के दरवाजे पर मानो सांकल चढ़ा दी है।

समुद्र किनारे खड़े वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन से किसी ने पूछा था कि अब तो इस संसार का कोई भी रहस्य आपसे अनजाना नहीं होगा? आइंस्टाइन ने एक रज-कण हाथ में लेकर कहा, समुद्र किनारे फैले असंख्य रज-कणों के विस्तार के सम्मुख जैसे यह रज-कण अकिंचन है, ठीक वैसे ही ज्ञान के अनंत विस्तार के सामने मेरा ज्ञान भी इस एक रज-कण की तरह ही तुच्छ है। अभी तो बहुत कुछ जानना शेष है। यह है ज्ञान की दृष्टि, जो जानती है अपने अज्ञान को। उसे अपने ज्ञान पर घमंड नहीं है बल्कि उसके अंदर तो उस अंजाने ज्ञान को प्राप्त करने की लालसा है जिसे जानने के बाद शायद वह नियंता के और नजदीक पहुंच सके। आइंस्टाइन के अर्जित ज्ञान ने उन्हें विनयशील बना दिया था।

विनय अहंकार को तोड़ता है और हमें विराट अस्तित्व के साथ समरस होने के मौके देता है। इसलिए ज्ञान का अर्थ वर्णमाला के अक्षरों से परिचय होना ही नहीं है, उस विराट चेतना से परिचय होना है, जो अक्षर है, ध्रुव है, नित्य और सनातन है। हमारे यहां कहा गया है कि विद्या वही है जो बंधनों से मुक्त करे। सबसे बड़ा बंधन अज्ञान का है। अज्ञान मोह को जन्म देता है, मोह राग-द्वेष को जन्म देता है और राग-द्वेष से हम टुकड़ों-टुकड़ों में विभाजित हो जाते हैं। यह मेरा-वह तेरा। इस तेरे-मेरे के भेद ने ही समाज और दुनिया को आज दो किनारे पर आमने-सामने खड़ा कर दिया है। सभी एक दूसरे को मरने-मारने और अस्तित्व मिटाने के लिए उतावले हो गए हैं। वे खुद को ज्ञान से दूर कर अंधेरे के हाथों कैद करा रहे हैं। रोशनी की भूख-प्यास उनकी खत्म हो रही है।

इस अंधेरे को भेदकर जिन्होंने ज्ञान की मशाल जलाई, उनमें ही कोई महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट, नानक, कबीर, गांधी और आइंस्टाइन बना है। ये ज्ञानी-पुरुष बने। गीता में तो कहा गया है कि ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है।

श्रद्धा के साथ ज्ञान और ज्ञान के साथ श्रद्धा की उपस्थिति जरूरी है। भगवान महावीर ने साधना का एक गहरा रहस्य खोलते हुए कहा है- जैसे धागा पिरोई सुई हाथ से गिर जाने पर भी गुम नहीं होती, वैसे ही ज्ञान के धागे में पिरोया हुआ यह जीवात्मा संसार में गुम नहीं होता।

आज श्रद्धा और अंधश्रद्धा को लेकर काफी बहस हो रही है। धर्म जगत में श्रद्धा पर इतना बल दिया जाता रहा है कि वह

अपनी शुद्धता खोकर अंधश्रद्धा में बदलती जा रही है। श्रद्धा का अपना महत्व है, किंतु श्रद्धा की शुद्धता को कायम रखना जरूरी है। इसकी शुद्धता तभी संभव है, जब उसके साथ ज्ञान जुड़े। श्रद्धा के बिना ज्ञान संशय बन जाता है। वह हमें किसी भी निर्णय तक नहीं पहुंचाता। ज्ञान के बगैर श्रद्धा अंधी हो जाती है। वहां सारा चिंतन ही जड़ता को प्राप्त हो जाता है। इसलिए श्रद्धा के साथ ज्ञान और ज्ञान के साथ श्रद्धा का होना जरूरी है। आज शिक्षा का विस्तार बहुत हो रहा है। सरकार हो या स्वयंसेवी संस्थाएं या फिर माता पिता, सब अपने-अपने तरीकों से इस काम को अंजाम तक पहुंचा रहे हैं। शिक्षा के साथ ज्ञान का विस्तार होना आवश्यक है। लेकिन इसके साथ ही वह अपनी पहचान भी खोता जा रहा है। कारण यह है कि आज की शिक्षा का अधिक ध्यान बौद्धिक विकास पर है। हृदय पक्ष की दृष्टि से आज का शिक्षा-विज्ञान सर्वथा उदासीन है। बुद्धि का विषय है चिंतन और हृदय का विषय है भावनाएं। भावना-शून्य चिंतन में स्वार्थ प्रधान हो जाता है। भावनाएं ही हैं जो आदमी को आदमी से जोड़ती हैं।

विज्ञान चांद के बाद मंगल से जुड़ गया है। वहां से धरती की दूरी सिमट रही है। लेकिन संवेदना-शून्य विज्ञान के विकास के कारण आदमी और आदमी की दूरी आज बढ़ती जा रही है। आज की शिक्षा में हृदय सिकुड़ता जा रहा है, दिमाग बड़ा होता जा रहा है। हम कल्पना करें एक ऐसे शरीर की जिसमें सिर का भाग बहुत बड़ा हो और शेष शरीर अविकसित ही रह गया हो। आज की शिक्षा का स्वरूप यही बनता जा रहा है। भारतीय संस्कृति में विद्या की निष्पत्ति विनय है। लेकिन आज की शिक्षा-प्रणाली में विद्या की निष्पत्ति अहंकार में देखी जाती है। विद्या-विकास के साथ व्यक्ति का अहंकार टूटना चाहिए।

भारतीय मनीषियों ने हमेशा उस ज्ञान को महत्व दिया जो हमें अपने विराट अस्तित्व से जोड़े। क्योंकि तब यह जीवात्मा संसार मोह में नहीं बंधेगा। धागे में पिरोई हुई सुई की तरह वह संसार में गुम नहीं होगा। ज्ञान वह तीसरा नेत्र है जिससे शिव ने कामदेव को भस्म किया था। ज्ञान के बिना श्रद्धा अंधी है और आचार विवेकहीन।

ज्ञान मन को आत्मा के साथ संयुक्त करता है। यह ज्ञान की अपने आप में एक बड़ी विशेषता है। जो मन को आत्मा के साथ नहीं मिलाता है वह ज्ञान नहीं है बल्कि भ्रांति है। इसी कारण तथाकथित ज्ञान से मन में अहंकार पैदा होता है। कौरवों और पांडवों के बीच युद्ध के समय कौरवों को युद्ध का परिणाम समझाने की बहुत चेष्टा की गई। यहां तक कि युधिष्ठिर ने उन लोगों में परिवर्तन लाने के लिए भगवान से प्रार्थना भी की। वहां परमात्मा की अनुकंपा भी थी, किंतु जड़ भाव होने के कारण कौरव इसको समझ नहीं सके। इसलिए अविकसित मन भौतिक शासन से ही शासित होता है अन्य से नहीं। सांसारिक ज्ञान अपने प्रथम स्तर में भौतिक-मानसिक होता है और इसके बाद मानसिक। जब इस ज्ञान को भौतिक जगत में कार्यान्वित किया जाता है तब यह मानसिक भौतिक होता है। इस भौतिक मानसिक ज्ञान का इस भौतिक जगत में अल्प मूल्य है। किंतु इसका मूल्य बदलता रहता है। यथार्थ ज्ञान उस सत्ता का ज्ञान है, जिसमें देश, काल और व्यक्ति में परिवर्तन होने से भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अपरिवर्तनीय होने के कारण यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक-मानसिक ज्ञान अर्जित करने की चेष्टा करता है, अपेक्षा भौतिक मानसिक ज्ञान के, अर्थात यदि उसके ज्ञान का स्रोत बाह्य भौतिकता नहीं है बल्कि आंतरिक आध्यात्मिकता है, तब उस अवस्था में वह ज्ञान यथार्थ ज्ञान होगा।

ज्ञान की बारिश से जीवन का रेगिस्तान हरा-भरा होगा। जब ज्ञान रूपी बारिश होती है, तब अज्ञानता का सूखापन दूर होता है, तब आदमी सुख महसूस करता है। तब आनंद रूपी पौधे इस जीवन के रेगिस्तान में भी उगने लगते हैं। क्योंकि बात रेगिस्तान की नहीं है, बात है पानी की। अगर पानी उपलब्ध हो तो घास या छोटा सा पौधा, पत्थर के बीच में भी उग सकता है। पत्थर के बीच में यदि छोटी सी दरार हो और पानी उपलबध हो तो वह पौधा उत्पन्न हो जाएगा। अगर पानी उपलब्ध नहीं हैं तो फिर बहुत मुश्किल है।

इसी प्रकार ज्ञान की बात है। अज्ञानता तो बहुत है, पर जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं है, तब तक बारिश नहीं होगी और जब तक बारिश नहीं होगी, तब तक आनंद रूपी पौधे नहीं उग पाएंगे। इसलिए आप सचमुच में बहुत भाग्यशाली हैं, क्योंकि आपके जीवन में यह संभावना मौजूद है कि आपके जीवन के रेगिस्तान में भी सब हरा भरा हो सकता है। पर आप इसे हरा भरा होने देंगे या नहीं? ज्यादातर लोग कहते हैं, हमारे पास समय नहीं है।

हम किसी भी मनुष्य के प्रति भेदभाव नहीं करते हैं। जो हमारे पास आता है, सच्चे हृदय से आता है, उसको हम ज्ञान देते हैं। कैसा ज्ञान? जो आपका परिचय आपसे करा दे, ऐसा ज्ञान। रेगिस्तान में बीज डालने से बीज नहीं उगते हैं। जब तक बारिश नहीं होगी, तब तक कुछ नहीं उगेगा। बीज न भी डालो, बीज तो वहां है ही। पहले से ही उस रेगिस्तान के अंदर बीज हैं, बस बारिश का इंतजार कर रहे हैं। जैसे ही बारिश होगी तो वे उगेंगे।

रेगिस्तान में हरियाली नहीं है, पौधे भी बहुत कम हैं। सिर्फ एक चीज की कमी है। वह है बारिश की, पानी की। हमारे जीवन का रेगिस्तान ज्ञानरूपी बारिश होने पर हर-भरा हो सकता है। दुख की जगह सुख ही सुख मिल सकता है।

मन की चेतना का आंतरिक बोध ही ज्ञान है। विज्ञान एक तर्कसंगत अभिव्यक्ति है। प्रत्येक अवस्था में कारण और प्रभाव तत्व उपस्थित रहता है। जब हम कोई भी काम विवेक के अनुसार तर्क के आधार पर करते हैं, उसी समय हम कारण और प्रभाव तत्व की ओर भी आकर्षित होते हैं, तब वह विज्ञान कहलाता है। इस दुनिया में कोई भी चीज अकारण नहीं है। हम देखकर पता लगा सकते हैं कि कारण तत्व क्या है? जैसे, चीनी का कारण तत्व क्या है? चीनी का कारण तत्व गन्ना है? जहां गन्ना कारण तत्व है, तो चीनी वहां प्रभाव तत्त्व है। जब यहां गन्ना प्रभाव तत्व है, तो बीज कारण तत्व है इसलिए जीवन के हरेक क्षेत्र में कारण तत्व है। विज्ञान क्या है? जो विवेकशीलता पर आधारित हो तथा कारण और प्रभाव तत्व पर भी ध्यान रखता हो, वह विज्ञान कहलाता है। आध्यात्मिक साधना का अभ्यास भी विज्ञान के दायरे में आता है। सभी प्राणियों में कमोवेश ज्ञान होता है, किंतु अंतर्ज्ञान दोनों तत्व रहता है। मनुष्य के मस्तिष्क के कुछ भागों में चेतन और कुछ भागों में अचेतन अवस्था है। वहीं पर सारी क्षमताएं उपस्थित हैं। एक बार पार्वती ने भगवान शिव से पूछा कोई कैसे जान सकता है कि भक्ति ही एकमात्र पथ है। जब कोई अपने सभी संभव क्षमताओं को, भक्ति को विकसित करने के लिए परमपुरुष में समर्पित कर देते हैं, तब यह समर्पित भक्ति मनुष्य को भक्त बनाता है और इसी अवस्था को भक्ति कहा जाता है। अब भगवान शिव कहते हैं- आत्म बोध क्या है? जब मन की चेतना बाह्य जगत से निकलकर आंतरिक जगत में परिवर्तित हो जाती है, वही वास्तविक ज्ञान है। यहां बाह्य ज्ञान का कोई स्थान नहीं है।

बुद्धि-सद्‌बुद्धि-दुर्बुद्धि-मेधा, विवेक, बुद्धिमान

कहते है कि मन इन्द्रियों का राजा होता है। यह बात हर भारतीय को मालूम है कि मन की चंचलता का कारण भी ये इन्द्रियां ही हैं। जब ये बातें शास्त्रों में लिखी गई थीं तब समय और था। बातें तो आज भी सच हैं, किन्तु परिवेश बदल गया। देश और काल के अनुरूप शास्त्रों की व्याख्या भी बदलती रहनी चाहिए। यह कार्य वास्तव में तो धर्मगुरुओं का है। वे ही शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। आज की शिक्षा में मन और इन्द्रियों के सम्बन्ध में कोई चर्चा ही नहीं है।

दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं। कुछ जो प्राप्त करते हैं उसे अपने तक सीमित रखते हैं, मगर कुछ ऐसे लोग हैं, जो उसे बांट देते हैं। अगर आप बांटने का चुनाव करते हैं तो देव बन जाते हैं। अगर आप उसे जमा करते जाते हैं तो राक्षस बन जाते हैं। आप राक्षस इसलिए नहीं बनते क्योंकि आप जो कर रहे हैं वो दूसरों की नजरों में बुरा है, बल्कि इसलिए बनते हैं क्योंकि आप में देने का भाव नहीं है। देव ऐसे प्राणी होते हैं जो तेजस्वी होते हैं, जिनमें बिखेरने का गुण होता है।

देने के भाव से मतलब बस इतना है कि आप हमेशा कुछ दे रहे हैं। जो भी दिया जा सकता है, उसे दे दिया जाए जहां भी उसकी जरूरत हो। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आपको कहां देना है, कितना देना है और क्या देना है। आपको अपने जीवन को मैं क्या पा सकता हूं से मैं क्या दे सकता हूं में रूपांतरित करना है।

जीवन को तेजस्वी बनाने के लिए आपको धर्मग्रंथ पढ़ने की जरूरत नहीं है। सिर्फ परोपकार के बारे में सोचकर आप तेजस्वी नहीं बनते। आप तेजस्वी तब बनते हैं, जब आपके भीतर रख लेने का भाव खत्म हो जाता है। लोग हमेशा सोचते हैं, अगर मैं यह दे दूंगा तो इतना चला जाएगा। ये सब हिसाब-किताब व्यर्थ है। आप अपना जीवन अपने आसपास मौजूद हर इंसान से बांटते रहते हैं, उनको देते रहते हैं, तो हर कोई आपकी देखभाल करेगा।

क्या आपको लगता है कि एक नारियल का पेड़ ये हिसाब लगाता है कि मुझे कितने नारियल देने चाहिए, अगर मैं सौ नारियल दे दूंगा तो ये लोग ज्यादा पैसे बना लेंगे। चलो मैं पचास नारियल ही देता हूं। क्या आपको लगता है कि नारियल का पेड़ खुद को रोक रहा है। सच तो यह है कि नारियल का पेड़ जितना भी पोषण हो सकता है, उसे पाने की कोशिश करता है और फिर ज्यादा से ज्यादा नारियल देता है। इंसान ही है जो चीजें अपने पास रोके रखने की कोशिश कर रहा है। इसकी वजह है कि उसकी बुद्धि तो तार्किक है, लेकिन वह उसका सही इस्तेमाल करना नहीं जानता। इस अस्तित्व ने, इस सृष्टा ने आपको बुद्धि इसलिए दी कि आप उसका वैसे इस्तेमाल कर सकें, जैसे संसार के दूसरे प्राणी नहीं कर सकते। ऊंचा उठने के लिए, अपने रूपांतरण के लिए न कि संचय के लिए।

मनुष्य के शरीर में दो चीजें हैं- एक उसकी रचना अर्थात काया और दूसरी चेतना। मनुष्य के पास जो विशेषता और महत्ता है, जिससे वह स्वयं उन्नति करता है और समाज को ऊंचा उठाता है, वह उसकी विचारधारा है। जिसको हम चेतना कहते हैं, अंतरात्मा कहते हैं, विचारणा कहते हैं। यही मनुष्य को ऊंचा और महान बना सकती है। शांति दे सकती है और समाज के लिए उपयोगी बना सकती है। किस आदमी का विचार करने का क्रम कैसा है? असल में वही उसका स्वरूप है। आदमी लंबाई-चौड़ाई के हिसाब से छोटा नहीं होता, वरना जिस आदमी के मानसिक स्तर की ऊंचाई कम है, वह आदमी ऊंचे सिद्धांत और ऊंचे आदर्शों को नहीं सुन सकता। जो व्यक्ति सिर्फ पेट तक और संतान पैदा करने तक सीमाबद्ध रहता है, वह छोटा आदमी है। उसे अगर एक इंच का आदमी कहें, उसकी तुलना कुएं में मेंढक से करें, तो कोई अचंभे की बात नहीं है। प्रकारांतर से विचार ही महान परिवर्तन कर सकनेवाली क्रांति की रूप-रेखा है। लोक के मानस

का परिष्कार नाम से भी इसी का उल्लेख किया जाता है। अवांछनीय मान्यताओं, गतिविधियों की रोकथाम के लिए यह अनिवार्य है। इसके लिए हमें आपातकालीन स्थिति से निबटने जैसे उदार साहस का परिचय देना चाहिए। पड़ोस में हो रहे अग्निकांड के समय मूकदर्शन बने रहना किसी को भी शोभा नहीं देता। विवेकशीलता और उदारता से संपन्न लोगों के लिए यह अशोभनीय है कि विश्वसंकट का समाधान समझते हुए भी, उससे उपेक्षा दिखाएं, अन्यमनस्कता जैसी निष्ठुरता अपनाएं। दानों में सबसे बड़ा दान एक ही है कि व्यक्ति की प्रस्तुत मानसिकता को झकझोर कर जागृत बनाया जाये।

बुद्धि- व्यक्ति तो आत्मा है। मन-बुद्धि और शरीर उसके उपकरण है। शिक्षा चूंकि बुद्धि प्रधान है, अत: जीवन भी बुद्धि प्रधान होता जा रहा है। बुद्धि कोई खराब चीज हो ऐसा भी नहीं है। बुद्धि का उपयोग सही और गलत हो सकता है। वैसे बुद्धि सदा मन का अनुसरण करती है। मन की इच्छाओं को पूरा करने का मार्ग तय करती है। साधारण जीवनचर्या से लेकर वैज्ञानिक अनुसंधान तक पहुंच सकती है। मन-प्राण-वाक् सदा साथ रहते हैं। जहां मन प्रधान होता है, वहां प्राण अनुसरण करते हैं। जहां प्राण प्रधान होते हैं, वहां मन सिमट जाता है। जीवन को कर्म और ज्ञान का संतुलन कहा गया है। कर्म शरीर का और ज्ञान बुद्धि का। शान्ति इन दोनों का लक्ष्य होता है। सुख प्राप्ति लक्ष्य होता है। सुख का अनुभव दोनों को ही नहीं होता। केवल मन ही सुखी या दु:खी हो सकता है। अत: मूल में मन रहता है। मन भीतर है, अत: उसको समझने के लिए व्यक्ति को भी भीतर जाना पड़ता हे। आज की शिक्षा में सारा व्यापार बाहरी जीवन पर आकर ठहर गया है। व्यक्ति बुद्धिमान ही कहलाने पर गर्व करता है।

बुद्धि की भूमिका को ध्यान से देखें तो समझ में आने लगेगा कि व्यक्ति हृदयहीन बनकर जीवन व्यतीत कर रहा है। जैसे-जैसे उसकी बुद्धि प्रखर होती जाएगी, वह हृदय से दूर होता जाएगा। आज के बुद्धिजीवी इसका उदाहरण हैं। इस प्रकार जी रहे हैं कि मन के सम्बन्ध भी दिमाग से निभाए जा रहे हैं। यहां तक कि प्रेम भी दिमाग से ही करते हैं जो कि दिमाग का विषय ही नहीं है। प्रेम तो सोच-समझकर, नाप-तौलकर करने का क्षेत्र नहीं है। यह तो भक्ति है।

बुद्धि के कारण प्रेम भी व्यापार का रूप लेता जा रहा है। देने के साथ-साथ लेना भी उतना ही अनिवार्य हो गया। इस लेन-देन का नाम ही व्यापार है। प्रेम तो व्यापार नहीं हो सकता। जहां लेन-देन है, वहां प्रेम नहीं हिसाब हो सकता है। मैंने यह किया, तुमने यह नहीं किया। अपेक्षाओं का एक पूरा शास्त्र कार्यरत रहता है। अहंकार के कारण प्रेम में भी दो व्यक्ति एक न होकर दो ही रहते हैं फिर सुख की मिठास कैसे मिल सकती है।

जब व्यक्ति सुख की तलाश शुरू करता है, तब उसे अनेक बार मन को टटोलने की जरूरत पड़ती है। बुद्धि का एक पूरा का पूरा जाल दिखाई पड़ता है जो मन को ढके हुए है। मरते दम तक व्यक्ति अपने बारे में कोई चिन्तन कर ही नहीं पाता। बाहर के ज्ञान से बाहर की जिन्दगी जी कर मर गया होता। अधिकांश इसी गलतफहमी में जी कर चले जाते हैं। मानव जीवन का उपयोग ही नहीं कर पाते। सुख के लिए भावनात्मक धरातल चाहिए। प्रेम चाहिए, सम्मान चाहिए, माधुर्य चाहिए, हृदय के खुले द्वार चाहिए। जिस ज्ञान के सहारे वह सेवानिवृत्त होता है, वह उसके काम नहीं आता। होता विपरीत है। उस सारे ज्ञान, सारी अवधारणाओं और दर्शनों को भुलाना पड़ता है, तब जाकर बुद्धि के अवरोध रुकते हैं। हृदय तक पहुंचने की पली सीढ़ी है दिमाग को बन्द करना। विचारों को शान्त करना। चिन्तन से हटकर मनन में प्रवेश करना। शब्द और भाषा को विराम देकर भावधारा में बहना। उसके बिना इन्द्रियों के अनुभव भी मन तक नहीं पहुंच सकते भले ही मन इन्द्रियों का राजा हो। बुद्धिरूपी द्वारपाल उन्हें रोक देता है। हृदय में कोई अनुभव पहुंचता ही नहीं। अधिकांश पुरुष इसी वर्ग में आते हैं।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां हृदयजीवी होती हैं। वहां भावों की प्रधानता है। वे भक्ति में आसानी से प्रवेश कर लेती हैं। वे प्रेम करना भी चाहती हैं और यह भी चाहती हैं कि उनसे भी कोई प्रेम करे। पुरुष जब नाप-तौल कर बुद्धि के साथ प्रेम करता है तो उसमें प्राकृतिक सहजता नहीं रह पाती।

उसकी यह गणित स्त्रियों को आसानी से संतुष्ट भी नहीं कर सकती। भावभूमि के कारण ही स्त्रियां हर स्थिति में प्रसन्नता से गुजर जाती हैं। पुरुष के चेहरे पर हंसी कम ही दिखाई देती है या फिर दिखाना पड़ता है। यह दूसरी बात है कि शिक्षा ने स्त्रियों को भी बुद्धिजीवी बना देने का बीड़ा उठा लिया है। उनके जीवन का सुख भी धराशायी हो जाएगा। वे भी पुरुषों की तरह रूखी हो जाएंगी। आज तो दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक बुद्धिजीवी है- दूसरा हृदयजीवी। कल दोनों बुद्धिजीवी हो जाएंगे। जीवन का मिठास बुद्धि के पट बन्द रखने में ही है। इसका सुगम तरीका तो यही है कि घर में प्रवेश करने से पहले ही बुद्धि को शान्त कर लिया जाए। इसे व्यापार के लिए ही छोड़ दें। जगत व्यवहार के लिए ही इसका उपयोग हो। घर में व्यक्ति हृदयजीवी बनकर रहे। बाद में नहीं हो पाता। शुरू से अभ्यास करे तो मन पटु बन सकता है।

वीरों में सबसे बड़ा वीर कौन है ? जो कामयाब से पीड़ित नहीं होता। बुद्धिमान, धीर और समदर्शी कौन है ? जो स्त्रियों के कटाक्षों से आसक्ति को प्राप्त न हो। कूटनीति के प्रमुख आचार्य चाणक्य ने कहा है कि जिस इंसान के पास सद्‌बुद्धि न हो, उस व्यक्ति को वेद भी सही मार्ग पर नहीं ला सकते। जिस तरह से अंधे इंसान को आइने की कोई जरूरत महसूस नहीं होती, उसी तरह बुद्धिहीन को वेद और शास्त्रों का महत्व समझ नहीं आता। जिस प्रकार अंधे व्यक्ति को रास्ता नहीं सूझता, उसी तरह सद्‌बुद्धि से रहित इंसान को कुछ भी ऊंचनीच नहीं दिखाई पड़ता। नीति वचन में कहा गया है, जिसके पास बुद्धि है, उसी के पास बल है। बिना बुद्धि वाले के पास बल कहां ?

विज्ञान ऐसा सोचता था कि बुद्धि केवल आदमी में है, लेकिन वह बात भ्रांति सिद्ध हुई। बुद्धि पशुओं में भी है। उसकी मात्रा भिन्न होगी, उसका ढंग और होगा। उसे हम न समझ पाते हों, यह भी हो सकता है, क्योंकि हमसे पशुओं की बुद्धि का कोई संवाद नहीं है। लेकिन अब तो विज्ञान यह भी स्वीकार करता है कि पौधों में भी बुद्धि है और पौधों के पास भी स्मृति है और पौधे भी स्मृति को संरक्षित रखते हैं। शायद शीघ्र ही हम ये सारे रास्ते खोज लेंगे, जिनसे पौधों की स्मृति को भी खोला जा सके। विवेक और वैराग्यद्वारा मनुष्य निश्चय कर लेता है। संसार अनित्य है, क्षणभंगुर है और नाशवान है। ज्ञान इसकी दृढ़ता से पुष्टि करता है।

बुद्धि की शरण में जाने से मनुष्य की सभी चिंतायें दूर हो जाती है। निरर्थक ही पुरुष चिन्ता करता है। जहाँ बुद्धि का आश्रय लिया हमारे सभी श्रम सार्थक हो जाते हैं। बुद्धि विचार से उत्पन्न होती है। मेधा बिना अभ्यास के शुद्ध अन्त:करण में स्वत: प्रकाशित होती है। इस संसार में नाना प्रकार के दु:ख है। फिर भी हम संसार में फँसे रहते हैं, उसे छोड़ने की इच्छा नहीं करते। थोड़े समय बाद हम दु:खों को भूल जाते है। यदि विस्मृति हमारे दु:खों का नष्ट न करे तो इस संसार में कोई भी बुद्धिमान अधिक दिन रहने की इच्छा न करे। विस्मृति देवी भी बड़े-बड़े दु:खों पर पर्दा डालती है।

तैजस अहंकारमें विकार आनेपर बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ। बुद्धिका विज्ञान है इन्द्रियोंके व्यापार में सहायक होना, पदार्थोंका विशेष ज्ञान करना, वृत्तियोंके भेदसे संशय, विपर्यय, निश्चय, स्मृति और निद्रा भी बुद्धिके लक्षण हैं।

जो शत्रुओंपर विजय और अपने मित्रोंकी अभिवृद्धि चाहते हैं, उन्हें दो बातोंका आश्रय लेना चाहिये- प्रज्ञा और उत्साह। प्रज्ञाका अर्थ शुद्ध बुद्धि है। और शुद्ध बुद्धि वही है, जो अन्तर्मुख है, विश्वकल्याणके लिये जो स्वार्थका त्याग कर सकती

है। उत्साहका अर्थ है अपनी शक्तिको समझकर उसके उचित उपयोगकी इच्छा। यदि दोनों प्राप्त हों तो व्यवहारमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं हो सकती। जिनकी बुद्धि सूक्ष्म है, वे बाहर तो थोड़ा-सा ही स्पर्श करते हैं, परन्तु भीतर बहुत अधिक घुस जाते हैं; और जिनकी बुद्धि स्थूल है, वे मिट्टीके ढेलेके समान स्पर्श तो बहुत अधिक करते हैं परन्तु भीतर बहुत कम घुसते हैं। जिन्होंने भगवान्का आश्रय नहीं ले रक्खा है, वे छोटा-सा काम शुरू करते हैं और उसके लिये अत्यधिक व्यग्र हो जाते हैं। और जिन्होंने शुद्ध बुद्धि तथा भगवान्का आश्रय प्राप्त कर लिया है, वे बहुत-से काम करके भी निराकुल ही रहते हैं।

क्रोध मनुष्य में अज्ञान को जन्म देता है और अज्ञान मनुष्य की स्मृति (याददाश्त) को दोलायमान कर देता है। यानी मनुष्य की निर्णय क्षमता को नष्ट कर देता है। स्मृति के भ्रंश (गिरने से) होने से बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि के नष्ट होने पर मनुष्य ही नष्ट हो जाता है।

अविवेकी मनुष्य स्वयं ही अपना अहित करके अपना शत्रु होता है और विवेक से कार्य करने वाला मनुष्य स्वयं का हित करते हुए अपना मित्र होता है, आत्म-चेतना की अवहेलना उचित नहीं।

बुद्धि का नाश ही मोह है, वह धर्म और अर्थ दोनों को नष्ट करता है। इससे मनुष्य मे नास्तिकता आती है और वह दुराचार मे प्रवृत्त हो जाता है। बाह्य विषयों का अस्तित्व तभी तक है जब तक बुद्धि है। बुद्धि के लय हो जाने पर इनका अस्तित्व नहीं रह जाता। ज्ञाता सदैव ही ज्ञाता रहता है, इसलिए द्वैत का कोई अस्तित्व नहीं। जिस बुद्धि को प्रेम का स्पर्श नहीं मिलता वह भयंकर हो जाती है। माना कि बुद्धि के बिना प्रेम अपूर्ण है, परंतु प्रेम के बिना की बुद्धि तो विनाशकारी होकर ही रहती है। जहाँ जवाबदारी सामनेवाले व्यक्ति की मानी जाती है, वहाँ बुद्धि का हिसाब-किताब शुरू हो जाता है और बुद्धि के हिसाब-किताब का ही अर्थ है- संघर्षों का सर्जन। हृदय का काम है- हँसते रहना व हँसते रखना, जबकि बुद्धि का काम है- सामनेवाले को चुप करके स्वयं का वर्चस्व स्थापित करना।

मजबूत पांववाला इंसान जिस प्रकार हाथ में लाठी लेने के लिए तैयार नहीं होता, आँखों से देखनेवाला इन्सान जिस प्रकार किसी और का हाथ पकड़ने के लिए तैयार ही नहीं होता उसी प्रकार जिसे अपनी बुद्धि पर बहुत गर्व होता है वह ढेर सारे गलत अनुभवों के बाद भी अपनी प्रवृत्तियों में परिमार्जन करने के लिये तैयार नहीं होता।

बुद्धि को क्या समझाना, व कभी भी भूल को कबूल करने के लिए तैयार नहीं, बल्कि भूल को सही साबित करने के लिए ही तत्पर रहती है। वह दु:खी होने के लिए तैयार होती है, परन्तु झुकना तो वह समझती ही नही।

केवल बुद्धि की वृद्धि होने से मनुष्य हृदय शून्य हो जाता है। दया, प्रेम, शान्ति आदि हृदय के सात्विक गुण है। वे बुद्धि के प्रखर तेज से झुलस जाते है।

जीवन में हम अनेक अनुभवों से गुजरते हैं। अनुभव के लिए दो चीजें जरूरी हैं- विषय और विषयी। विषय से अभिप्राय भौतिक वस्तुओं से है और विषयी मन और बुद्धि है। जब विषय और विषयी दोनों होते हैं तभी अनुभव होता है। यदि विषयी अर्थात मन और बुद्धि जागृत नहीं हैं तो विषयों के होते हुए भी हमें उनका एहसास नहीं होगा। जैसे हम सो रहे हैं और कमरे में किसी ने अल्मारी खोली, सामान निकाला और चला गया पर हमें पता नहीं चला। क्योंकि विषय तो था पर मन और बुद्धि सो रहे थे। यह संसार विषय और विषयी से बना है। सुबह से शाम तक यदि हमें सौ अनुभव हुए और उनमें से पचास-साठ अनुभव अच्छे नहीं थे तो हमारा सारा दिन खराब गया।

समस्या यह है कि लोग तमाम क्षेत्रों को सुधारने में लगे हैं। आज चिकित्सक, अभियांत्रिक, वैज्ञानिक, शिक्षक, सभी

विषयों को सुधारने में लगे हैं। आज से पचास वर्ष पूर्व हाथ से झुलानेवाला एक बड़ा-सा पंखा होता था। विज्ञान ने एक बड़ा वजनदार मोटरवाला पंखा तैयार किया जिसे उठाने के लिए भी दो आदमी चाहिए। तकनीकी का विकास हुआ। हल्के वजन वाले पंखे आए। आधुनिक तकनीकी के कारण विषयों का जितना विकास हुआ है, क्या मानव में उस अनुपात में सुधार हुआ है? वेदांत इनका समाधान बताता है। वह विषयों को सुधारने की अपेक्षा विषयी के सुधार पर बल देता है।

हमारा भौतिक शरीर बाहरी तत्व है। मन और बुद्धि भीतर है। भीतर हमारे व्यक्तित्व का एक पक्ष है। हमारा मन दरअसल बच्चा है, बुद्धि का उस पर नियंत्रण चाहिए। मन और बुद्धि उस पर रोक लगाती रहती है। मन और बुद्धि की लड़ाई में यदि मन पर बुद्धि का वश हो तो बुद्धि अनुचित कार्य करने से रोक देती है। लेकिन यदि मन बुद्धि के वश में न हो तो उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता। जैसे किसी मधुमेह के रोगी का मीठा खाने का बहुत मन है और बुद्धि उसे खाने के लिए मना करती है। लेकिन मन बुद्धि की बात नहीं मानता और वह रोगी मीठा खा लेता है। बाद में उसे पश्चाताप होता है। मन और बुद्धि दोनों साथ-साथ चलते हैं तो अनुभव अच्छा होता है।

संसार के ज्यादातर लोग बुद्धिमान हैं। उनमें बुद्धि कूट-कूट कर भरी हुई है, तभी तो हमारी जीवन शैली इतनी आधुनिक होती जा रही है। बुद्धि के बल पर हम आए दिन कोई नई खोज अथवा पुरानी खोज का नवीनीकरण करते रहते हैं। बुदिध के बल पर तरक्की करना अच्छी बात है, इससे सबको सुख ही मिलता है। किन्तु समस्या तब आती है जब हम अपनी बुद्धि के बल पर मिली सफलता पर अभिमान करने लगते हैं। उस अभिमान के चलते हम भूल जाते हैं कि हमारे लिए अच्छा क्या है और बुरा क्या। जब तक हम गुरु के कहे अनुसार चलते हैं, हमारा नुकसान नहीं होता। होता क्या है कि हम गुरु की शरण में तब तक ही रहते हैं, जब तक हमारी बुद्धि के अनुसार गुरु उपदेश दे रहा होता है।

बुद्धि ही आज मुनष्य के तनाव की वजह बन गई है। पढ़े-लिखे लोग ज्यादा तनाव में रहते हैं क्योंकि वे अपेक्षाओं और डर के साथ जीवन जीते हैं। इनकी वजह से उनके मन में चिंताएं रहती हैं। जानवरों की सोच तात्कालिक होती है लेकिन हम आगे-पीछे का भी सोचते हैं। हम सिर्फ अपने ही जीवन के बारे में नहीं सोचते बल्कि पीढ़ियों के बारे में सोचने लगते हैं। यहीं हम जीवन में चिंता के लिए जगह बना लेते हैं।

बुद्धिमान- बुद्धिमान व्यक्ति यदि भीतर जाता है तो वह दूसरों से जल्दी आगे निकल सकता है। हृदय के योग से प्रज्ञा का जागरण कर सकता है। प्रज्ञावान बन सकता है। ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा। सूक्ष्म को समझने की क्षमता प्राप्त कर सकता है। आत्मा का धरातल ढूंढ सकता है। ईश्वर में तो बुद्धिमान को विश्वास हो ही नहीं सकता। इसके लिए तो भक्तिभावयुक्त हृदय चाहिए। बुद्धिमान वह है जो इंद्रियों की तुलना में मन की और अधिक ध्यान देता हैं। यदि मन का ध्यान नहीं रखा केवल सुख के साधन व इंद्रियों पर ही ध्यान रहा, तो आप अवसाद में उतर जाओगे। वस्तुओं के प्रति आपकी लालसा आपके मन से अधिक आवश्यक है। आपकी बुद्धि, बुद्धिमत्ता मन से परे हैं, यदि आप केवल मन के अनुसार चलोगे, तो आप असमंजस की स्थिति में रहोंगे। जीवन में आपकी कोई प्रतिबद्धता नहीं रहेगी और आप और भी दुखी हो जाओगे। जो वस्तु मन की इस प्रकृति को मिटा सकती है, वह है अनुशासन, तुम्हारा मालिक आप पर दबाव डालता है, आपको इतने दिन काम करना हैं, तुम्हें सप्ताह के पांच दिन काम करना है। यदि ये दबाव न हों तो तुम कभी काम नहीं करोगे। बुद्धि मन से अधिक जरूरी हैं, क्योंकि बुद्धि ज्ञान की मदद से निर्णय लेती है। कहती हैं ये अच्छा है, ये करना चाहिए, ये नहीं करना चाहिए, जो सबसे बुद्धिमान होंगे बुद्धि का अनुसरण करेंगे, मन का नहीं बुद्धिमत्ता ये है कि आप भावनाओं की परवाह नहीं

करते, क्योंकि वे हमेशा बदलती रहती हैं। लोग बैठकर कहते हैं, ओह मुझे अच्छा लग रहा है, ओह, आपको बुरा लग रहा है, आपको ऐसा लग रहा है, मुझे वैसा लग रहा हैं, आप अपने लिए नरक बना लेते हो। आपने भूतकाल में कुछ लोगों को दुखी किया है और वह दुख तुम अभी अनुभव कर रहें हो। इस अनुभव को झेलो। उससे भागो मत। जीवन प्रतिबद्धता से चलता है। तुम्हारा जीवन इस ग्रह पर किसी कल्याणकारी हेतु के लिए समर्पित है। ये तुममें निर्भयता, ताकत, शांति, स्थिरता, जोश, सब कुछ तुम्हारे भीतर से बाहर ले आता है औरों की चिंता करो, भावनाओं की ज्यादा परवाह मत करो। किसी भी बात के लिए विलाप करने बैठे मत रहो।

सद्‌बुद्धि- बुद्धि से यहां आशय सद्‌बुद्धि से है। बुद्धि का मतलब है- बोध का होना। बोधनात बुद्धि- यानी जो किसी पदार्थ या विषय का ज्ञान (बोध) कराए, उसे बुद्धि कहते हैं। खुद के लिए क्या भला है और क्या बुरा है, इसका बोध कराना बुद्धि का काम है। जाहिर है, जिस इंसान में नफे-नुकसान का ज्ञान नहीं होता, वह बुद्धिहीन माना जाता है। हालांकि उसके पास बुद्धि तो होती है, पर वह सद्‌बुद्धि नहीं कहलाती। पर जब बुद्धि परमार्थिक यानी दूसरे की भलाई में लगने लगती है, तब वह सद्‌बुद्धि कही जाती है। सद्‌बुद्धि तब बढ़ती है, जब चित्त की गलत वृत्तियों (आदतों) पर लगाम लगती है। महर्षि पंतजलि के अनुसार, चित्त की वृत्तियों पर लगाम लगाने का एक रास्ता योग साधना है।

बुद्धि के स्तर पर दो तरह की प्रवृत्तियों वाले लोग होते हैं। एक तो वे, जिनके पास अच्छे-बुरे को समझने की योग्यता नहीं होती। ऐसे लोग मूर्ख कहे जाते हैं। दूसरे वे, जो अच्छा-बुरा समझते हुए भी गलत काम करते हैं। ऐसे लोग प्रज्ञापराधी कहे जाते हैं। मौजूदा वक्त में दुनिया में प्रज्ञापराधियों की तादाद ही सबसे ज्यादा है। दुनिया में जितने भी आतंकी, हिंसक, अन्यायी, धनलोलुप, स्वार्थी, संवेदनहीन, व्याभिचारी, भ्रष्टाचारी, शोषक, जुल्म ढाने वाले और धोखेबाज लोग हैं, उन्हें प्रज्ञापराधी कह सकते हैं। ऐसा नहीं है कि दुनिया में सद्‌बुद्धि रखने वाले लोगों की संख्या कम हो, पर वे अपने स्वार्थ और अहंकार के कारण सद्‌बुद्धि का इस्तेमाल न करके एक प्रकार से प्रज्ञापराध में ही शामिल होते जा रहे हैं।

विवेकवान लोग प्रज्ञापराध से बच सकते हैं। इसका सबसे अच्छा और कारगर तरीका है- निरंतर चिंतन करके अपने विवेक यानी सद्‌बुद्धि को जगाना। वेद शास्त्रों में वे तमाम तरीके बताए गए है, जिनका पालन करके हम अपने विवेक को जागृत कर सकते हैं, सद्‌बुद्धि का इस्तेमाल कर सकते हैं। इनमें जाहिर तौर पर पहला है सद्‌ग्रंथों का स्वाध्याय (पढ़ना व चिंतन करना) इसके अलावा महापुरुषों के बताए रास्ते पर चलना, अच्छी शिक्षा-दीक्षा, अच्छे संस्कार पाने के लिए अच्छे माहौल में रहना, सत्य, प्रेम, न्याय, धर्म और ज्ञान भक्ति का पालन करना भी सद्‌बुद्धि जागृत करने के तरीके हैं।

ध्यान रहे कि प्रज्ञापराध करने वाले व्यक्ति की जिंदगी किसी हिंसक जानवर जैसे ही होती है। इसलिए पशुता जिन कारणों से बढ़ रही हो, उन वजहों को खत्म करना सबसे पहली जरूरत है। यह भी गौरतलब है कि प्रज्ञापराध दानवी कर्म है, जबकि सद्‌बुद्धि बढ़ाना दैवीय कर्म। अर्थ यह हुआ कि कुकर्म का रास्ता प्रज्ञापराध का है और सुकर्म का रास्ता सद्‌बुद्धि के विकास का। सद्‌बुद्धि के विकास से चारों पुरुषार्थ संतुलित रूप से करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। सद्‌बुद्धि बढ़ने से मन-मस्तिष्क पर अनुकूल असर पड़ता है। विचार-शक्ति में संतुलन और स्थिरता आती है। साथ ही धैर्य, धारणा, चिंतन-मनन और संकल्प की शक्ति बढ़ती है। संताप सहन करने की शक्ति भी सद्‌बुद्धि से बढ़ती है। जीवन में शांति, सहिष्णुता और परोपकार जैसी भावनाओं का विकास होता है। कह सकते हैं कि हर धनात्मक अथवा सकारात्मक कर्म का आधार सद्‌बुद्धि है। महर्षि मनु ने कहा है कि जो इंसान जान-बूझकर प्रज्ञापराध (कुकर्म) करता है, वह इस जन्म में तो दुख पाता ही है, साथ

ही, उसका अगला जन्म पेड़-पौधों या पशु की योनि में होता है। हमारा इहलोक (यह जन्म) और परलोक (अगली यात्रा) आनंदमय हो, इसके लिए हम सुकर्मी बनें और हर संभव कोशिश करे प्रज्ञापराध से बचें।

हमने जीवन मे भौतिकता को इतना महत्व नही दिया है जितना कि सद्विचारों को। गायत्री मन्त्र में हमने रोटी, रोजी की याचना नहीं की। केवल सद्बुद्धि मांगी है कारण मनुष्य के सब कार्य बुद्धि से ही प्रेरित होते है।

विवेक- या तो हम उपर ऊठते हैं, या फिर नीचे की ओर गिरते ही चले जाते हैं। मध्य में रहने का अर्थ है कि आप नीचे सरकने के लिये राजी हो गए हो। यदि आपका विवेक जगा हुआ होगा, तो आप नीचे नर्क की और सरकने की यह मन की दुर्गति को तुरंत सद्गति में रुपान्तरित कर लोगे। तत्क्षण प्रमाद को भी ऊर्ध्वगति में बदल लोगे। आप फिर आलस्य वासना आदि को झटककर उमंग, उत्साह के द्वारा पुन: उद्भवतेतस् के द्वारा, उत्कर्ष के मार्ग पर स्वयं को ले आओगे। पुरुषार्थ कर अपनी सुस्ती को चुस्ती और रुहानी मस्ती में बदल लोगे। तो सतत ऊपर की और उठने के लिए हमारा विवेक हमारा सद्गुरु बने। फिर आपको किसी और गुरु के शरण में जाने की जरुरत नहीं। जगा हुआ विवेक ही आपको मार्ग की सूचना देते रहेगा। क्या करना है और क्या नहीं करना है। क्या बोलना है और क्या नहीं बोलना है। क्या देखना है और क्या नहीं देखना है। क्या खाना-पीना है और क्या नहीं खाना पीना है। क्या पहनना है और क्या नहीं पहनना है। कहाँ जाना है और कहाँ नहीं जाना है। तो विवेक की तलवार पर ध्यान की धार रखते चले जाओ। यह तेजदार अस्त्र-शस्त्र आपको पग पर गिरने से बचाए और उपर की ओर उठाए चले जाएगा।

पुरुषों में काम की शक्ति अत्यधिक होती है तथा उससे पूरी तरह से भयभीत होना चाहिए। इसलिए निष्ठापूर्ण अध्यवसाय एवं शराग्र के समान तीक्ष्ण विवेक जीवन में लाने का व्रत लो। वे सब, जो विवेकी हैं, शरीर के सुखों की अवहेलना करते हैं। वे काम की उपेक्षा करते हैं तथा अपने आध्यात्मिक अस्तित्व को विकसित करने की चेष्टा करते हैं।

मनुष्य अपने विवेक से सुखी भी हो जाता है। मात्र विचार करने की देर है। परिस्थितियां तो अनुकूल व प्रतिकूल होती ही रहती है। दोनों में ही समताभाव रहे इतना प्रयास हमारा होना चाहिए।

मार्ग में पड़े हुए शव का जिस प्रकार चिकित्सक चिरफाड़ कर देते हैं; उसी प्रकार बुद्धि प्रत्येक परिस्थिति का, उपकारी के प्रत्येक व्यवहार का, उपकारी के प्रत्येक वचन का, बस विश्लेषण ही किया करती है। अगर मनुष्य अपने विवेक का अनादर करता है तो उसका विवेक लुप्त हो जाता है और अगर वह अपने विवेक का आदर करता है तो उसका विवेक इतना बढ़ता है कि शास्त्र तथा गुरु के बिना भी उसको परमात्मा तक पहुंचा देता है।

पीड़ा और आनंद सभी जीव-जंतु समान रूप से महसूस करते हैं। यहां तक कि वृक्ष भी संवेदना व्यक्त करते हैं, लेकिन मनुष्य के पास बुद्धि (विवेक) है जो उसे दूसरों से अलग करती है। मगर विवेक हमारी बहुत-सी समस्याओं का कारण बन गया है।

महत् नाम के अक्षर तत्व को बुद्धि कहते है यही विद्या से जुडकर सत्व भाव में आता है। महान कहलाता है। सारे त्रिगुणों का संचार करने वाला है इसी को बोधिसत्व कहते है। विज्ञानात्मा बुद्धि के उच्च धरातल का रूप है। इसमें एक अक्षर रूप चिदात्मा अव्यय रूप के साथ मिल कर परमेष्ठि मंडल से आ रहा है। अर्थात आनन्द विज्ञान-मन के साथ परमेष्ठि मंडल का पूर्ण अव्यय जुड जाता है। अत: किसी भी अवस्था में ये आनन्द में ही रहता है, ये ही विदेह अवस्था कहलाती है।

आनन्द

आनन्द आत्मा का विषय है, खुशी मन का विषय है और सुख इन्द्रियगत व शरीर का विषय है। भगवान से भक्त प्रार्थना में कुछ न कुछ मांगता है और मांगने का अधिकार, हक भी है भक्त को। कोई पुत्र मांगता है, कोई धन मांगता है, कोई अच्छी नौकरी मांगता है तो कोई मान सम्मान मांगता है। पुजारी मांगता है कि खूब भक्त लोग मन्दिर में पूजा करने के लिये आवे। सभी लोग अपने-अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु मांगते है। भगवान से यह नही मांगते कि सद्‌बुद्धि दो जिससे तुम्हारा गुण गान कर सकूं। भगवान धन मांगने के लिये, सन्तान मांगने के लिये नहीं है बल्कि जो परमानन्द अन्दर है, उसे प्राप्त करने के लिये है तुम्हारे अन्दर आनन्द है और इसके बिना तुम रह नहीं सकते तो भगवान से क्या मांगना चाहिये। आनन्द मांगना चाहिये, ज्ञान और सद्‌बुद्धि मांगना चाहिये। सचमुच में यदि अन्दर चैन नही है, आनन्द नहीं है तो बाहर कितना भी सुख हो जाये, कोई अर्थ नही रखता।

आनन्द का प्रवाह हमारे मन में ही, अन्त:करण में ढूंढना पडता है। मनुष्य सुख बाहरी दुनिया में, बाहर के दृश्यों में खोजने के प्रयत्न करता है, लेकिन दु:ख कष्टों से उसका दामन बचता नही है। बाहरी वस्तुओं, व्यक्तियों या पदार्थों से सुख नही मिलता है, जो मिलता है वह सुख का आभास होता है। बाहरी सुख दु:खों के ही जुडवा भाई होते है। इसलिये हाथ आये सुख के समय के साथ दु:ख दिखता है या यूँ कहे कि हम जिसे सुख कहते है वह सुख नहीं होता। सुख का मुखौटा ओढे दु:ख ही आता है। सच्चे आत्म सुख को ही सुख कहते है। सच्चा सुख जानने के लिये ही उसका नाम आनन्द होता है और यह आनन्द अपने अन्दर होता है। जहां सभी वासनाये शान्त होती है उस अन्त:करण के ध्यान में ही आनन्द का प्रवाह बहता है।

काफी समय बीत जाने पर भी पत्र नहीं दिया तो भी चाहनेवाले का स्मरण तो बना ही रहता है। आपकी जीवन ज्योति निरन्तर प्रभु चरणों को खोज रही है। यह प्रयास सफल हो इसकी प्रार्थना व आशा सदा बनी रहती है। अन्धेरा है, दु:ख है, बन्धन है पर यदि प्रकाश की एक किरण भर भी दिख जाये तो उसके अनुगमन से इन सबके बाहर हुआ जा सकता है। उसका अनुगमन प्रकाश के मूल-स्त्रोत तक पहुंचा देता है। इस प्रकाश अनुगमन का ही नाम साधना है। समाधि योग के अनुभव प्रतीत हो उन झलकों के पीछे चलते जाना है, उनका पीछा करना है, छोडना नहीं है। फिर आज जो क्षण मिला है कल वही सदा को मिल सकता है, प्राप्त हो सकता है इसी का नाम आनन्द हे। वही अनुभव आनन्द है।

प्रभु के सानिध्य में कितना आनन्द है। जरा सा मोड लेते ही कितने रहस्यमय लोक के दर्शन होते है। इन्द्रियों के इस पार अपार दु:ख और पीडा है। बन्धन के अतिरिक्त यहां कुछ भी नहीं है। पूरा जीवन उनकी मृग-मरीचिका में दौड कर अवसाद और पराजय के सिवाय और क्या मिलता है ? और इन्द्रियों के पीछे कौन छिपा बैठा है ? उसका द्वार खोलते ही सब कुछ मिल जाता है- जिसकी खोज थी जन्मों जन्मों से। तृष्णा मिट जाती है, प्यास विलीन हो जाती है और हो जाता है चैतन्य परिपूर्ण। इन्द्रियों के पीछे झांकने की आवश्यकता है इसके सिवाय अशान्ति से जगने का और अशान्ति को जीतने का और कोई मार्ग है भी नहीं, और प्रत्येक व्यक्ति झांक सकता है। तो इनके बाहर झांक रहा है, वह इनके भीतर भी झांक सकता है। बाहर देखने पर मिलन होता है **पर** से और भीतर देखने पर मिलन होता है **स्वयं** से। यह मिलन ही योग है। और यह मिलन होता है नृत्य से, संगीत से भर देता है। पर मिलन हो तब ही यह नृत्य होता है। इसी मिलन का नाम आनन्द है।

हम हमारे भीतर की प्राप्त चीज को भूला कर बाहर ढूंढ रहे है। जो चीज हमारे में है नही वह आ नहीं सकती और जो चीज हमारे में है वह भला बाहर कैसे जा सकती है ? जो कुछ हमारे पास है वह अभी तक आवृत है, अज्ञानता का आवरण पडा हुआ है इसलिये हमारे पास होते हुये भी हमें मालूम नहीं है जब अज्ञानता का पर्दा हटता है, ज्ञान का प्रकाश होता है तब वह चीज जो हमारे अन्दर मौजूद है, अनुभूति होती है, प्राप्त पर से आवरण हटा देना ही उसे पा लेना है। अप्राप्त कभी पाया नहीं जा सकता लेकिन प्राप्त को पाना अति सरल व सहज है।

धूप घनी हो गयी है और आप एक वृक्ष की छाया में बैठे हो और आकाश में उडते बादलों को देख रहे हो। बादलों की भाति ही बेजड, विचार होते है। और जैसे बादल आकाश को घेर लेते है ऐसे ही विचार आत्मा को। बादलों के हटते ही आकाश के दर्शन होते है और विचारों के हटते ही आत्मा के। और विचार शून्य हो तो स्वयं को जानना ही आनन्द है। जब कोई भी इस भाति स्वयं मे स्थित हो जाता है तभी वह आनन्द को उपलब्ध हो जाता है। जिन्हे आनन्द खोजना हो उन्हे निर्विचार को खोजना होता है।

बहुत विचार में न पडे। विचार से सत्य तक जाने का कोई मार्ग नही है। अगर मार्ग है तो निर्विचार से ध्यान। और ध्यान की ओर जितना बढेंगे, उसी मात्रा में शान्ति, आनन्द और आत्मा की गति होगी और सत्य का साक्षात होगा। सत्य तो सतत् मौजूद है लेकिन हम अन्धे है वो आनन्द नही देख सकते। सत्य का धैर्य से अनुसन्धान करे। सत्य तो निकट है किन्तु अधैर्य से हम उसे देख नहीं पाते। मन जब शान्त होता है और धैर्य में तो मन मिट ही जाता है और तब जो शेष रहता है वही है सत्य। इसलिये खोजना कम है, खोना ज्यादा है। बीज स्वयं को खोकर ही वृक्ष बनता है। बूंद अपना अस्तित्व मिटा कर ही सागर बनता है। यही एक मार्ग है, मिटना ही मार्ग है। मृत्यु से जो राजी है, उसके लिये अमृत के द्वार खुल ही गये। अहं के अतिरिक्त स्वयं तक पहुंचने में और कोई बाधा नही है।

आनन्द का अनुभव इस प्रकार से होता है कि शरीर में कुंडलिनी जागृत होती है। विद्युत दौडने लगती है शरीर में। मूलाधार पर आघात लगते है। शरीर हल्का लगने लगता है जैसे गुरुत्वाकर्षण खो रहा हो और दिव्य व अलौकिक अनुभवों की वर्षा शुरू हो जाती है। प्राण अनसुने नाद से आपूरित हो उठते है। रोम रोम आनन्द की पुलक में कांपने लगता है। जगत प्रकाश पुंज मात्र प्रतीत होता है। इन्द्रियों के लिये बिल्कुल अबूझ अनुभूतियों के द्वार खुल जाते है। प्रकाश महकने लगता है। महक में संगीत सुनाई देने लगता है। संगीत में स्वाद आता है। स्वाद में स्पर्श मालूम पडता है। तर्क, ज्ञान विज्ञान की सभी मर्यादाये टूट जाती है, कोई सीमा ही नही रहती और तो और विज्ञान के नियम भी उलट-पुलट जाते है। कभी तो कुछ समझ मे ही नही आता और कभी फिर सब सदा से जाना पहचाना हुआ सा मालूम पडता है। कुछ भी कहा नही जाता है फिर भी सब जीभ पर रक्खा हुआ सा प्रतीत होता है। गूंगे का गुड का अर्थ पहली बार समझ में आता है। गूंगा गूड के बारे में वर्णन नही कर सकता ऐसा ही आनन्द होता है जिसका वर्णन सीमाओं से बाहर है। यह आनन्द जभी प्राप्त हो सकता है जब किसी पर प्रभु की अनुकम्पा हो।

आनन्द या सुख किस में माने, यह मनुष्य की विशिष्ट मान्यता पर निर्भर होता है। किसी की खुशी वस्तु निष्ठ होती है तो किसी की व्यक्तिनिष्ठ होती है। वस्तु निष्ठ आनंद मे घर, अन्न, वस्त्र, धन आदि का समावेश होता है। इन दोनों सुखों की प्राप्ति मे ही मनुष्य कृतर्थिता अनुभव करता है, लेकिन वे हमेशा नित्य सुखदायक नहीं होते। कभी उसमें कमी आती है तो कभी उसमें प्रतिकूलता आती है। धन, सम्मान की आत्यंतिकता व्यक्ति को सन्तुष्ट नही कर सकती और स्त्री, पुत्र के प्रति

अधिक मोह भी दु:ख भुगतने का कारण बनता है। इसलिये वस्तुनिष्ठ या व्यक्तिनिष्ठ आनन्द से सर्वश्रेष्ठ आनन्द यानि आत्मनिष्ठ आनन्द। इसे दिव्य आनन्द कहते है। इसमें ईश्वरीशक्ति की प्राप्ति की उत्कटता होती है। इससे दु:ख दायक चीजों का आकर्षण कम होकर मन स्थिर एवं सन्तुष्ट रहता है इसलिये आनन्द का सही चुनाव करना आवश्यक है।

हम सभी आनन्द चाहते है, उसे खोजते है लेकिन आनन्द हमारे भीतर छिपा हुआ है। सिर्फ हमे उसे उजागर करना है। आनन्द रस है और उसे पीना एक कला है। हम जितने सहज, सरल, तरल और स्वाभाविक होंगे, आनन्द हमसे उतना ही करीब होगा। हम अकडे हुये रहेंगे; भौहे तनी हुई होगी, चेहरा तमतमाता हुआ और उखडा हुआ होगा तब आनन्द हमसे दूर ही होगा। आनन्द से मित्रता करने की पहली शर्त यह है अहं का विसर्जन करो। आहं हमारे व्यक्तित्व को तरलता, सरलता और सहजता से दूर करता है। आनन्द सहज है। अहं से उसका कोई नाता नहीं है। पद, प्रतिष्ठा, नाम, धन और बल से उसका कोई सरोकार नहीं। वह नि:स्वासर्थ है, अबोध है। जैसे ही आप वयस्क हुये, समझदार हुये, दुनियादारी में आये कि आनन्द लुप्त हो गया। समझ से आनन्द सम्भव नहीं। आनन्द समझने, देखने, परखने का विषय नही है। आनन्द सहज नदी की धारा है। सुलभ झरने की उछाल है। सागर सा अथाह है। आनन्द हृदय की निर्मलता का वाहक है।

प्रेम, उदारता, सहृदयता का रसायन है आनन्द। सृजन का चरिणबिंदु है आनन्द। सारा जगत ही आनन्द का सृजन है। सत्य, ज्ञान, ब्रह्म, सभी आनन्द के सहोदर है। प्रसिद्ध चित्रकार आनन्द को परम और अंतिम सत्य मानते है इसमे तनिक भी आश्चर्य नही है। आनन्द हमे उदार, सहिष्णु और उत्तम पुरुष बनाता है। आनन्द का सम्बन्ध भौतिक सुविधाओं और धन से नही जुडा है, यह बस बाह्य चमक-दमक और जग दिखावा है। आनन्द आत्मा के तल पर है, इसे पाने के लिये हमे गहरना उतरना पड़ेगा। पात्रता प्राप्त करने के लिये अभ्यास करना चाहिये। पहले मस्तिष्क से मन और फिर आत्मा से तल तक पहुंचने की यात्रा करनी होगी। आनन्द के मूल स्त्रोत तक हमे पहुंचना होगा। आनन्द का मूल स्त्रोत सन्तोष है। सन्तोषी बनना होगा। आनन्द स्वत: मुक्त है इसलिये उसे मिलने के लिये अपने कद को आनन्द की ऊंचाई तक लेजाना होगा।

हमारे सामने कदम-कदम पर आनन्द प्राप्त करने के हजार-हजार अवसर है लेकिन हम उन्हे जानते नही। तनिक आभास, अनुभव मे आते है तो हम भटक जाते है। उदाहरण एक लाचार, असहाय, बेवस, मजबूर, दु:खी व्यक्ति हमसे याचना भरे स्वर मे कुछ चाहता है और हम उसे आदतन झिडक देते है। उसे आगे का रास्ता दिखा देते है। हम समझते है कि हमने उससे अपना पीछा छुडा लिया, लेकिन हमने आनंदित होने का, सार्थक होने का, धन्य होने का, करूणा से गदगद होने का अवसर खो दिया। उस याचक की तनिक सहायता करके तो देखते वह हमे आनन्द देने आया था और हमने आनन्द को बैरंग लौटा दिया। यथा सामर्थ्य किसी को देकर देखे, पता चलेगा हम आनन्द से भर गये। जिस हाथ से कुछ दिया, वह आनन्द से खिल खिला उठा। उस हाथ का संदेश हमारी आत्मा ने ग्रहण किया और हम गदगद हो गये। निस्वार्थ भाव से किये गये हर कार्य मे हमे आनन्द की प्राप्ति होगी।

सबको जो आनंद दे वह नंद। दिल न पिघले तबतक आनंद नहीं आता। ऐसा सादा, सरल और पवित्र जीवन जीओ कि किसी को उद्वेग न हो। सदा शांति और प्रसन्नता रखो। जो बार बार दिल को जलाता है वह आत्मघाती है। सबको आनंद देना अति कठिन है। सबको आनंद न दे सको तो कोई बात नहीं किन्तु किसी को दु:ख मत दो। मंदिर में दीप जलाने से घर में प्रकाश नहीं आता। मंदिर में ही महोत्सव करना पर्याप्त नहीं है। उत्सव में बाह्य क्रिया का अधिक महत्व नहीं है। ईश्वरका प्राकत्य ही उत्सव है।

जीवन में निर्मल आनंद प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है, लेकिन अपनी ही गलत कल्पनाओं के कारण वह आनंद लुप्त हो चुका है।

प्रभात की प्रसन्न वेला में टहलना, कलकल बहने वाली नदी में पैर छोड़कर बैठना, हरियाली प्रकृति के बीच पहाड़ी में घूमना, बरसात की धाराओं में मन:पूर्वक भीगना इसमें भी आनंद मिल सकता है।

किसी गरीब, अनाथ छात्र को मदद करना, स्पर्धा में जीतने वाले अनजान व्यक्ति का अभिनंदन करना, बालकों के साथ बतियाते हुए उनके साथ बालक बनना, इसमें भी निर्मल आनंद का आस्वाद लिया जा सकता है, लेकिन उसके लिए समय न मिलने का बहाना नहीं और मन की संकुचितता भी छोड़ देनी चाहिए।

जब तक नदी हैं, नदी में पानी है, तब तक लहरें हैं। ये कभी शांत नहीं होंगी। अगर स्नान का आनंद लेना है, तो नदी में उतरो। तब ये लहरें तुम्हें शत्रु नहीं मित्र लगेंगी। नदी का मर्म वही जानता है, जो नदी में घुसा है, किनारे पर बैठकर लहरें गिनने से तुम कैसे समझोगे कि नदी में स्नान का क्या आनंद है। यहां बैठे अपने विचार बनाते रहो। कबीर दासजी ने भी लिखा है, जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ, हौं बौरी ढूंढ़न गई, रही किनारे बैठ।

परेशानियों का रोना किसलिए। मुस्कराएं कि आपके पास बहुत कुछ है। हममें से कितने लोग रोज निकलते सूरज और शाम को छाते अंधकार को देखते हैं ? हर सुबह सूर्य उदित होकर अपनी किरणों से अंधकार को दूर करता है और सूर्य के छिपते ही अंधकार फिर से बढ़ आता है। लेकिन कितनी देर ? अगली सुबह फिर सूरज अपनी मुस्कराहट लेकर आता है और अंधकार का नामो-निशान तक नहीं रहता। अंधकार का फिर से आना रुकता नहीं है, लेकिन सूर्य इससे कभी विचलित नहीं होता।

रस्किन ने ठीक ही कहा कि दिल डूबा तो नैया डूबी अपनी जैसी भी स्थिति है उसका आनंद लेना ही अपने अंधकार को भगाना है। अन्यथा उत्साह तो भंग होगा ही, आशाएं भी धुंधली पड़ने लगेंगी। जाहिर है उत्साह ठंडा पड़ जाए और जीवन में आशा न हो तो सब कुछ आनंद विहीन होते देर नहीं लगेगी। प्रसिद्ध शायर मिर्जा गालिब की मुफलिसी का वह गहरा दौर, जब आर्थिक तंगहाली के चलते उनके घर की दीवारों पर चारों और काई लग गई थी और दीवारों पर छोटे-छोटे पेड़-पौधे उग आए थे। इस कठिन दौर में भी इस अजीम शायर ने किस तरह अपनी गुरबत का आनंद लिया-

उग रहा है दर-ओ-दीवार से सब्ज: गालिब, हम बयावां में हैं और घर में बहार आई है।

दरअसल, आनंद लेने की प्रवृत्ति बोझिल, तनावपूर्ण व थकान भरी जिंदगी को भी प्रफुल्लित बना देती है। एडीसन कहा करते थे कि भोलेपन से युक्त हंसमुख स्वभाव सौंदर्य को आकर्षक, ज्ञान को आनंदप्रद और वाग्विदग्धता को प्रिय बना देता है। यह बीमारी, निर्धनता और वेदना को हल्का कर देता है, अज्ञान को प्रिय सरलता में और विकृतियों को रुचियों में बदल देता है। दुनियाभर के मनोवैज्ञानिक भी लगभग इस एक बात पर तो सहमत दिखाई देते हैं कि अपनी स्थितियों में आनंद लेने वाला व्यक्ति अपने साथ-साथ दूसरों के लिए भी स्फूर्ति का कारण बनता है। यह बहुत ध्यान देने वाली बात है कि भौतिक लाभ को अकसर आनंद से जोड़ा जाता है। लाभ भी जीवन में महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं, लेकिन ये सब परिवर्तनीय हैं और इसीलिए आनंद के जगत में इनकी कोई गणना नहीं होती। विशुद्ध आनंद जीवन का आधारभूत तत्व है। इसे हर स्थिति में बनाए रखना कठिन भले ही हो, लेकिन यही सरलता के द्वार खोलता है। छोटी-छोटी खुशियों को समेटने की आदत डालिए। धीरे-धीरे लगने लगेगा कि अपने पास जो कुछ भी है वह किसी से कम नहीं है। और इसी रास्ते से जब

आप अपनी संभावनाओं को टटोलेंगे तो लगेगा कि आप भी किसी से कम नहीं हैं।

जिससे अपनत्व हो जाता है उसके बिना चैन नही पड़ती और अंत में एकता अनुभव होती है। अपने में जो शरीर-भाव स्थापित कर लिया है, उसको विचारपूर्वक निकाल दे। किसी के निकलने पर किसी का आना अवश्य होता है, क्योकि स्थान खाली नहीं रहता। आस्तिकता की आवश्यकता होने पर आस्तिकता की दृढ़ता अपने आप होगी। संसार की रूचि मिट जाने पर संसार नहीं दिखाई देता और जब तक रुचि बनी रहती है, संसार के सिवाय कुछ और अनुभव नहीं होता। जिस प्रकार भोजन पचाता रहता है, परन्तु हमे यह नही मालूम होता कि हम भोजन पचाते है, उसी प्रकार करने का भाव मिट जाने पर क्रिया हो सकती है। पर उन क्रियाओं का फल कुछ नहीं बनता। एक चीज मिटकर दूसरी चीज बनती है। प्राणी मिटने के डर से सत्य से विमुख रहता है। सुख-दु:ख मिटने पर आनंद आता है। संसार से संबंध होने पर सुख-दु:ख का अनुभव होता है और मिटने पर आनंद का। आनंद की स्थायी अभिलाषा होने पर आस्तिकता दृढ़ होती है। सत्य का मार्ग इतना तंग है कि उस पर हम अकेले ही जा सकते है। अकेले होने पर मार्ग अपने आप दिखाई देगा।

जीवन आनंद की खोज है। हर प्राणी यही चाहता है कि उसे आनंद मिले। हम सब चाहते हैं कि हमें सदा आनंद मिलता रहे। इसी को सुख कहते हैं, इसी को खुशी कहते हैं। यह सुख तन का भी होता है और मन का भी।

हमें भूख लगती है और भोजन मिल जाता है, तो बड़ा सुख मिलता है। भोजन सुस्वादु हो, तो वह सुख बढ़ जाता है। उसे खाने के बाद हम तृप्त होकर कहते हैं, अहा, आनंद आ गया। लोग अपने लिए घर बनाते हैं या गाड़ी खरीदते हैं, तो उन्हें खुशी होती है। अपने बच्चों के साथ खेलकर और उन्हें बड़ा होते देखकर लोग खुश होते हैं। लोग जीवन भर इन चीजों को पाने का प्रयास करते हैं और जब ये चीजें प्राप्त होती हैं, तो उन्हें सुख प्राप्त होता है। यह सुख भोग है, यानी सुख का भोग। कोई ऊँचे पद पाकर आनंदित होता है, कोई अपने आसपास के लोगों की प्रशंसा पाकर। मंच पर लोग किसी को माला पहनाते हैं और वह खुश हो जाता है और कोई आइसक्रीम खाकर। ये सब दुनियावी भोग हैं। सांसारिक लोग ऐसे सुखों की इच्छा करते हैं, इनके लिए प्रयास करते हैं और इन्हें पाकर आनंदित होते हैं। आध्यात्मिक जनों को कार और बंगले में आनंद नहीं मिलता। भगवान के भक्त को सुरा-सुंदरी में सुख नहीं मिलता। वह कहता है, खुद को राम के चरणों में रख दो और तब देखो, कैसा आनंद आता है। राधे-राधे जपते रहो और देखो कि कैसा अद्‌भुत रस मिलता है।

सूफी लोग कहते है कि असली आनंद तो इस आत्मा के परमात्मा से मिलन में हैं, उसके साथ एकाकार हो जाने में है। योगी कहते हैं, पद्मासन में बैठकर कुंडलिनी पर ध्यान केंद्रित करें, वहाँ आनंद की वर्षा होती है। वे लोग भी आनंद का ही भोग करना चाहते हैं। चाहे सांसारिक हो या योगी, चाहे भक्त हो या रोगी, सबको सुख की लालसा है। सब आनंद प्राप्त करने का ही प्रयास कर रहे हैं। उनके आनंद के रूप अलग-अलग हैं- एक का सुख धन-दौलत में बसा है, कोठी-बंगले में बसा है, बेटों-पोतों में बसा है। दूसरे का आनंद प्रभु की भक्ति में है, ध्यान की मुद्राओं में है, मीरा की तरह उसके भजन में लीन हो जाने में है। आनंद पाने की राहें अलग-अलग हैं, उसे भोगने का ढंग अलग-अलग है, लेकिन इस भोग का इच्छुक मैं दोनों में शामिल है। चाहे आनंद भोग सांसारिक हो या आध्यात्मिक, भोगने वाला मैं दोनों जगह है। चाहे हम संसारी हों या पुजारी, आनंद भोग दोनों को चाहिए। लेकिन एक स्थिति आनंद भोग से आगे है- वह है आनंद योग। जब आदमी आनंद भोगना नहीं चाहता, दूसरों को बांटना चाहता है। वह खुद आनंद का रस पी-पीकर अघा चुका है, अब उसे और नहीं पीना, बाकी रस छलक रहा है। वह छलकता हुआ रस दूसरों के लिए है। उसके निकट आने वाले उस रस का

भोग बिना किसी प्रयास के कर सकते है। आनंद योग में पहुँचा व्यक्ति उस अवस्था में जा चुका है, जहाँ आनंद भोग की अपनी कोई इच्छा ही नहीं है, वह उससे परे जा चुका है।

इस तरह तीन सीढ़ियाँ हैं- एक है संसारी के सुख भोग की। उससे आगे बढ़ें, तो दूसरी सीढ़ी है आध्यात्मिक के आनंद भोग की। लेकिन आनंद योग में मैं भी छूट जाता है और आनंद की चाहत भी। यह तीसरी सीढ़ी है। आनंद योग का अर्थ है आनंद पाने का अवसर, संयोग। ऐसा उपकरण, ऐसी राह, जो दूसरों को आनंद भोग की अवस्था तक ले जा सके। अखबार अपने लिए आनंद की इच्छा नहीं करते। उनका अपना कोई सुख-दुख नहीं होता। पर अपने पाठकों के लिए वे आनंद योग उपस्थित करते हैं। आनंद का रस छलक रहा है- वह सांसारिक भी है, आध्यात्मिक भी, जिसे जो पीना है, छककर पीए। आनंद भोग पाठक के लिए है, वह जिस आनंद का चाहे भोग करे या योग करे।

मनुष्य का मूल स्वभाव है खुशी अथवा आनंद। हम सब हर पल हर घड़ी आनंद में ही तो जीना चाहते हैं। इसीलिए तो हर पल आनंद की खोज में लगे रहते हैं। आनंद प्राप्ति के लिए न जाने क्या-क्या करते रहते हैं। अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं, लेकिन बात बनती नहीं। किसी को पढ़ने में आनंद आता है तो किसी को लिखने में। कोई चापलूसी करने में आनंद प्राप्त करता है तो कोई करवाने में। लेकिन जितना हम आनंद पाने के लिए भाग-दौड़ करते हैं, छटपटाते हैं, आनंद उतना ही हमसे दूर भागता है। आनंद का सीधा संबंध है सहजता और सरलता से। हम जितने सहज और सरल होते हैं, उतने ही अधिक आनंद में होते हैं। लेकिन क्या आज हमारा जीवन सहज और सरल रह गया है। जीवन के हर क्षेत्र में भागमभाग। एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़। जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रतियोगिता, विश्लेषण और दूसरों से तुलना। मात्र यहीं नहीं कि उसकी कमीज मेरी कमीज से ज्यादा सफेद कैसे, बल्कि यहां तक कि उसका कफन मेरे कफन से ज्यादा सफेद कैसे ? ऐसे में भला आनंद कैसे मिले ? हम खुशी बाहर की दुनिया में तलाशते हैं। धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा में आनंद खोजते हैं। खुशी किसी वस्तु या घटना पर आधारित है। वह वस्तु पा लेते हैं या वह घटना घटित हो जाती है तो खुश, वरना दुखों की सीमा नहीं। तो फिर सच्ची खुशी या आनंद कैसे प्राप्त हो ? आनंद का वास्तविक स्रोत तो हमारे भीतर है। यदि मन आनंद से भरा है, तो बाहरी चीजों की कमी हमारे आनंद में कमी नहीं कर सकती। शुभ विचारों से भरा मन ही सच्चा आनंद प्रदान कर सकता है।

खुशियां तो हमारे चारों ओर बिखरी पड़ी हैं। आनंद के क्षण हमारी बाट जोह रहे हैं कि आओ और मुझमें समा जाओ। लेकिन नहीं। पार्क में दौड़ने या टहलने जाते हैं, तो सोचते है कि डॉक्टर के कहे मुताबिक किसी तरह तीन चक्कर पूरे हो जाएं तो छुट्टी मिले। कभी पार्क के सौंदर्य को पूरी तरह नहीं निहारते। पेड़-पौधे, फूल-पत्तियां सब आपसे मिलने को बेचैन हैं। रुकिए जरा, उनसे मिलिए तो सचमुच आनंद आएगा। वे आपकी पीड़ा और आपके तनाव को सोख लेंगे। आपको प्रफुल्लित कर देंगे, अपने जैसा बना देंगे। हिल स्टेशन पर जाकर सूर्योदय तथा सूर्यास्त देखने की बड़ी उत्सुकता होती है।

सूरज, चांद, सितारे-ये सब सदा हमारे साथ होते हैं, हमारे जीवन में आनंद की वर्षा करने के लिए। लेकिन उनके साथ का लुत्फ हम नहीं उठाते। हम बच्चों के साथ दुकान पर जाते हैं और बच्चे से पूछते हैं कि कौन सी चॉकलेट लेगा। बच्चा कहता है कि लेमन पीऊंगा या लॉलीपाप लूंगा। लेकिन नहीं, ये नहीं लेना। हम वही दिलवाते हैं जो हमको अच्छा लगता है, जिससे हमारे अहम की तुष्टि होती है। लेकिन क्या आपको खुशी या आनंद की प्राप्ति होती है ? नहीं। सच्चा आनंद दूसरों को आनंदित करने में है।

आप गर्मियों में प्याऊ लगवाते हैं, अच्छी बात है। शर्बत पिलवाते हैं। सड़क पर टेंट लगवाकर सब्जी-पूरी बांटते हैं, पर क्या कभी किसी भूखे को सब्जी-रोटी खरीद कर दी है। किसी मजदूर, किसी कामगार, किसी कूरियर वाले को जो जेठ की भरी दुपहरी में आपके घर के दरवाजे की घंटी बजाता है, एक गिलास पानी के लिए पूछा है ? जो प्यासा होने पर भी आपसे एक गिलास पानी मांगते हुए झिझकता है, उसे पानी पिलाकर देखिए तो सही- बहुत आनंद आएगा। कोई भिक्षुक आपके सामने हाथ फैलाता है, उसे अपने घर में नहीं, तो घर के बाहर बरामदे में ही सही, अपने हाथों से भोजन करा के देखिए कितनी तृप्ति मिलती है। क्या यह सच्चा आनंद नहीं ?

आनंद बहुत अधिक धन-दौलत, शोहरत और बड़ी-बड़ी उपलब्धियों में नहीं, रोजमर्रा की छोटी-छोटी चीजों और घटनाओं में ही भरा होता है। आनन्द-प्रसन्नता आत्मिक भाव है। यह सहजता में रहता है, सरलता से आता है। इसमें कोई चाह व इच्छा नहीं रहती है न सन्मान की, न बड़प्पन की, न व्यक्ति की, न धन की। मात्र आत्मसंतोष। समस्त इच्छाओं का शांत हो जाना और अपने सहज भाव की लीनता ही सम्यक् आनन्द है- उल्लास है- प्रसन्नता है। हर्ष प्रमाद लाता है और अहं को पुष्ट करता है। हर्ष बाधित होता रहता है और बाधित होने से खेद होता है, क्लेश होता है, दु:ख होता है। इनसे छुटकारा होने से खेद होता है, क्लेश होता है। चाह की तीव्र होना ही आसक्ति है, उत्तेजना है, क्लेश है, दु:ख है। अनावश्यक संग्रह की प्रवृत्ति ही इस विषमता का, द्वेष का, कलह का कारण है और कठोरता व कलुषता का स्वभाव में उपजते रहना और असाता ही असाता का वेदन होना इसका फल है। फिर भी हम इस पर सोचते तक नहीं, यहीं हमारी भूल हो रही है, जिसे हमें सुधारना है और संवारना है। इसके बिना जीवन का सुख और आनंद हमें नहीं मिलेगा। तृप्ति, संतोष, समता, सौहार्द, सहानुभूति, दया परोपकार आदि सभी का सुख होना ही आत्मिक आनंद-उत्साह और उल्लास की वृद्धि करेगा, यह विश्वास दृढ़ होना चाहिए। आज की हमारी जीवनशैली कुछ इस प्रकार हो गई है जिसमें न्याय-अन्याय, नीति-अनीति और उचित-अनुचित का विचार करना और उसमें निर्वाह करना, कठिन लगने लगा है। हम बिना प्रयोजन व्यर्थ संग्रहकर और बलात् अधिकार कर पशु से भी नीच बन सकते हैं और यदि चाहे तो पीड़ा दूर कर अपने मनुष्य जन्म को सुफल कर सकते हैं, और स्वयं भी सुखी रहकर आनंदमय हो सकते हैं। यह सब हमारे सोच-विचार और विवेक के अनुसार हो सकता है।

अतैव सच्ची शांति व आनंद का स्थान हमारे अंदर है। वह परमानंद साक्षात् सबके अंदर विराजमान है। और उस चीज का ज्ञान जो कल्पना से परे की चीज है, ज्ञान के द्वारा अंदर जा करके मनुष्य स्वयं उस आनंद का अनुभव करे। आनंद का अनुभव। जब मनुष्य को अनुभव होता है, तो उसका हृदय गद्‌गद् हो जाता है। इसीलिए संत महात्माओं ने कहा है कि वे लोग धन्य है, जिनका आकर्षण केंद्र उस दिशा में है, जहां वह आनंद है, जहां वह सच्चिदानंद है। जहां वह परमानंद है। जो उसका चिंतन करते हैं, वे सचमुच में धन्य है। वह आनंद जिसे तुमने हमेशा अपने जीवन में चाहा है, वह तुम्हारे अंदर ही विद्यमान है।

दूसरों को ज्ञान दो, परंतु स्वयं ज्ञान के अलावा कुछ न लो। मैं और मेरेपन को समाप्त कर संपूर्णता और समानता का अनुभव करने वाले त्यागी बनो। जब मेरापन समाप्त हो जाता है तो समानता का अपनापन प्रारंभ हो जाता है। अहंकार मिटने लगता है। बुरा कर्म, बुरी दृष्टि, बुरी लत अंधकार की ओर ले जाएगा। अंधकार में दीपक जलाकर अंधकार को उजाले में परिवर्तित करने की शक्ति जुटाओ। जब त्याग की भावना जागृत होती तो सुख का अनुभव होगा। किसी वस्तु

की चाह नहीं रह जाएगी, एक प्रभु की ही चाह रहेगी। अपना संपूर्ण प्रभु को देकर देखो, तो आनंद ही आनंद मिलेगा।

जब भी समय मिले एकांत में बैठकर ज्ञान चिंतन करना है। अविनाशी प्रभु की याद निरंतर रहने का अभ्यास ही एक अल्पकाल के जीवन को पूर्णता की ओर ले जाएगा। अपनी बुद्धि द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान सागर मथकर मूल्यवान रत्न प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए, दु:ख और अशांति में भी शांत रहो। सभी अशुद्ध कामनाओं को त्यागकर शुद्ध कामना करनी है। कोई भी भूल छिपाकर अपने को ठगो नहीं। निष्काम सेवा द्वारा अपने संबंध, संपर्क को भी पाठ पढ़ाओ। अपनी सूक्ष्म कमजोरियों का चिंतन कर उसे मिटाना है, यह स्वआदर्श चिंतन कहलाता है। विनाशी आकर्षण न हो तभी आध्यात्मिक, अलौकिक, अतींद्रिय आनंद पथ प्रशस्त होगा। इसके लिए निरंतर प्रभु की याद में रहना होता है। शुद्ध मन, वचन, कर्म द्वारा मानव की सच्ची सेवा आनंद अनुभूति देगी। रचना और रचयिता का ज्ञान, आत्मा और परमात्मा का ज्ञान पौराणिक ग्रंथों में मिलता है। उस ज्ञान की तरह-तरह की समीक्षा भी होती रहती है। इन्हीं में आनंद को परिभाषित किया गया है। इसमें साधक उस जीवनदाता के तेज का ध्यान करता है और प्रार्थना करता है कि प्रेरणा, आनंद, शांति और शक्ति दे। कालक्रम में साधक अपने अस्तित्व को भूलकर उस विराट सत्ता की और उठने की अनुभूति करने लगता है। ऐसा लगता है कि वह आनंद पथ की ओर अग्रसर है। इस आनंद को पाने हेतु दृढ़ इच्छाशक्ति, अपनी इंद्रियों पर अंकुश, प्रभु पर पूर्ण विश्वास, उन्हें पूर्ण समर्पण आदि आवश्यक है। उपनिषदों में परमात्मा का वर्णन सच्चिदानंद के रूप में हुआ है, इसमें सत् सत्य है चित् चेतन है तथा आनंद ब्रह्मस्वरूप है। आनंद जन्म में नहीं जीवन में है।

आनंद ही एक ऐसी वस्तु है जो आपके पास न होने पर आप दूसरों को बिना किसी असुविधा के दे सकते हैं।

मनुष्य का मन आनंदोन्मुख है। यह मन आनंद की खोज संसार में करता है, जब उसे वहां नहीं पाता तो भीतर की ओर मुड़ता है। आनंद केंद्र है- संसार का भी, मोक्ष का भी। उसकी धुरी पर ही लौकिक व पारलौकिक जीवन घूमता है। आनंद जीवन का लक्ष्य है। आनंद अखंड आनंद जीवन का उद्देश्य है। संसार में उसकी झलक है। मोक्ष में उसका मूल स्त्रोत है। बाहर उसका प्रक्षेपण है, भीतर उसका मूल है। परिधि पर छाया है; केंद्र पर उसके प्राण हैं।

वास्तव में तो जीव, सच्चिदानन्द घन आनन्द-स्वरूप परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ है। इसका अनुराग तो उनकी ही ओर होना चाहिये, किन्तु मुख्य कारण को भूलकर गौण-करण को वह अपना जनक समझता है। जैसे फूलों में रंग नहीं है, रंग तो सूर्य में अर्थात् प्रकाश में है। प्रकाश न हो, तो सभी पुष्प एक ही से हो जायेंगे। प्रकाश में जो विविध रंग दिखाई देते हैं, वे पुष्पों के न होकर प्रकाश-किरणों के हैं। हम अज्ञान-वश उन्हें फूलों का रंग कहते हैं। इसी प्रकार प्राणिमात्र के बीज तो श्रीहरि ही हैं, हम अपनी अपनी उत्पत्ति का कारण न समझकर जननी, जनक, रज-वीर्य आदि को कारण समझते हैं और फिर उन्हीं में रमण करके आनन्द का अन्वेषण करते हैं। हम जिस आनन्द या सुख के अन्वेषण में सदा व्यस्त बने रहते हैं, वह आनन्द क्या है? वह आनन्द ब्रह्म ही हैं। उसे भगवान कहो, परमात्मा कहो, ब्रह्म कहो- एक ही बात हैं। खोज तो रहे हैं हम अपने उत्पत्ति स्थान को ही, किन्तु हमारी खोज मिथ्या है। जिसे पाकर हम चिल्ला उठते हैं- अरे, इसमें तो बड़ा आनन्द मिला, वह आनन्द, आनन्द नहीं है मात्र आनन्द का आभास है। वास्तविक आनन्द उससे बहुत दूर है वह तभी प्राप्त होगा जब हमारा भ्रम दूर होगा।

हम जो इन सुन्दर रूप, स्वादिष्ट रस मनोहर गन्ध, सुखद स्पर्श तथा हृदयस्पर्शी शब्दों आदि को पाकर अपने को सुखी समझ रहे हैं, वास्तव में यह सुख नहीं है। अज्ञान वश इनमें सुख मान बैठे हैं। जब तक समस्त प्रकृति और उसकी विकृति

के पदार्थों को पुरुष से पृथक् करके इनका भेद न समझ लेंगे, तब तक यह अज्ञान दूर न होगा। जहाँ प्रकृति पुरुष और पुरुषोत्तम का यथार्थ-ज्ञान हो गया, वहाँ ये संसारी विषय तुच्छ दिखाई देंगे, फिर इनमें कुछ भी सुख प्रतीत न होगा। ऐसा होता तो बड़े-बड़े चक्रवर्ती समस्त सुखों को त्यागकर बन-बन क्यों भटकते रहते? किन्तु ऐसा किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है। ऐसी जिज्ञासा पूर्वजन्म के सुकृतों से ही उदित होती है।

वास्तविकता यह है कि अधिकार के सुख को पकड़कर रखने का जो आनन्द है, उसकी तुलना में अधिकार के सुख की अवगणना होने पर जो मानसिक उद्वेग होता है, उसकी वेदना बहुत भयंकर है।

यदि मानव-जीवन का मजा (आनंद) प्राप्त करना है तो चिंता में नहीं चिंतन में, आरोप में नहीं विश्वास में है। भोगों में नहीं त्याग में है, ममता में नहीं समता में है। लोभ में नहीं संतोष में है, स्वार्थ में नहीं परमार्थ में है।

न सुख का कोई मूल्य है और न दु:ख का कोई मूल्य है। जितना हम सुख-दु:ख का मूल्य कम करते जायेंगे भीतर से उतना ही आनन्द का झरना प्रवाहित होता जायेगा।

हमारा मन सहज वृत्ति, निर्मल और अंतरंग आत्म परिणाम उल्लासपूर्ण व आनंद से परिपूर्ण कैसे रहे, मात्र इतना ही चिंतन हमारे मन में रहे और कुछ न रहे।

अन्य के प्रति उनकी भलाई के लिए सोचो, विचारों और काम करते रहो। जिसका जीवन आनंद से व्यतीत होता है वह कभी बूढ़ा नहीं होता और न कभी निराश ही होता है। अन्य दूसरे हमारे लिए क्या कर रहे हैं इसकी परवाह किए बगैर ही अपना काम किए चले जाना ही सुखी व आनंदमय जीवन जीने की कला है।

सुख बाँटत सुख होत है, दु:खी करत दु:ख होत। आनंद बाँटते हुए खुद भी आनंदमय रहना ही हमारे जीवन को सुखी करेगा और आगे भी सुख का लाभ होगा। संसार के दु:खों से छुटकारा पाने का यही एक सम्यक् उपाय है।

हम अपना जीवन-निर्वाह करने के लिये जितने पर पदार्थों और प्राणियों, मनुष्यों आदि की जरूरत महसूस करेंगे उन पर हमारी निर्भरता इतनी अधिक बढ़ जायेगी कि उनके बिना हम अत्याधिक दु:खी, बेचैन और बेकरार होते चले जायेंगे। हमारा सुकून, साता-सुख, समता-आनन्द सभी छीन जायेंगे। इस सत्य को जानो, समझो और अपने आपको अधिक स्वावलंबी बनाए, रखने का प्रयास करते रहो। बुरा चाहनेवाले पर भी क्रोध ना आवे, इसका प्रयास करते रहना है। इससे तुम्हारा जीवन स्वयं ही सुखी होता जायेगा और अंतरंग मन आनंद से भरता चला जायेगा।

हम अन्तर्दृष्टि से अपने पीछे के जीवन को देखे। अपनी अन्तर्प्रज्ञा को जगाये। अन्तर्मन के कांटों को भी निकाल दे, फिर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द होगा।

हर मनुष्य की जीवन में चाह रहती है कि संसार में जो अच्छा है, वह सब उसे मिल जाए। एक को पा लेने में सफल हो जाने पर, अभी वह उसका सदुपयोग और सुख भोग नहीं पाता कि दूसरे की चाह में भटकने लगता है। यह सिलसिला जीवन भर इसी प्रकार चलता रहता है।

सांसारिक सुख मृगमरीचिका की भांति है, स्वर्ण-सा दिखाई तो देता है, लेकिन जिसमें वह सुख और आनंद खोज रहा है, वास्तव में वह सब वहां है नहीं। भूत के शौक, वर्तमान का मोह और भविष्य की चिंता छोड़े। इन्हीं में डूबे रहेंगे तो वर्तमान के आनंद से भी वंचित होंगे। सुख की कामना करना दुख को आमंत्रण देना है।

जैसे रात के बाद दिन और दिन के बाद रात का आना सृष्टि का एक चक्र बना हुआ है, उसी प्रकार सुख के बाद दुख का

आना भी तय है। सुख शरीर का और आनंद आत्मा का है। पैसे के बल पर सुख के साधन जुटाए जा सकते हैं, उन्हें भोगा जा सकता है। लेकिन आनंद आपके अंदर है। वह है, उसे कहीं खोजना अथवा लाना नहीं है। उसे तो केवल प्रकट करना है। उसे व्यक्त करने के लिए शब्द अपर्याप्त हैं। वह अंदर ही अंदर महसूस किया जाता है। उसे पाने के लिए संसार में कहीं परिश्रम करने और भटकने की आवश्यकता नहीं है।

सुख दिखाई देता है पर वह स्थायी नहीं है। जिस प्रकार रात-दिन, धूप-छांव, सुबह-शाम है, उसी प्रकार से सुख-दु:ख है। मन प्रफुल्लित रहे इसका प्रयास करना चाहिए। इसके लिए बहुत साधन जुटाने की आवश्यकता नहीं है। आप दरवाजों और खिड़कियों पर पर्दा लगा कमरे में बैठे हैं। अगर वहीं बैठे बाहर का कुछ देखना चाहते हैं तो हर हाल में पर्दा हटाना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि आनंद लेना चाहते हैं तो कहीं न भटकें और न अटकें। केवल सांसारिक वासना का पर्दा हटा दें। आनंद स्वत: फूट पड़ेगा। वह तो प्रतीक्षा कर रहा है। उसके मार्ग में बाधा तो आपने स्वयं उत्पन्न की है। क्योंकि परमात्मा है ही आनंदस्वरूप। हम उसके अंश हैं। जिस दिन आप वासना का चश्मा उतार देंगे आनंद के अलावा कुछ शेष रह ही नहीं जाएगा। प्रेम की निर्मल जल धारा फूट पड़ेगी। उसे आप चाह कर भी कभी रोक नहीं पाएंगे। उसका एक लाभ यह होगा कि अपने पराए का भेद एकदम मिट जाएगा।

जिस प्रकार से मिट्टी, जल, वायु, खाद और अनुकूल मौसम के संपर्क में आने पर बीज फूट पड़ता है, वही स्थिति आनंद की भी है। इसलिए जीवन का आनंद लेना है तो उसे प्रकट करने के लिए ऐसा वातावरण पैदा करें जो उसके लिए जरूरी है। ज्ञान, ध्यान और भक्ति आनंद प्राप्ति के साधन हैं। वैराग्य और अभ्यास से ही चंचल मन को जीता जा सकता है।

दुनिया में हमें धन-दौलत इकट्ठा करने की जरूरत नहीं, जरूरत है खुशहाली पैदा करने की। धन इंसान को सुख-सुविधा मुहैया कराकर खुशहाल बनाने का बस एक साधन है, वह अपने आप में खुशहाली नहीं है। दौलत का काम है आपके लिए बाहर की चीजों को सुखद बनाना। पैसा सिर्फ एक साधन है; यह स्वयं समाधान नहीं है। हम बेमतलब ही इसको बहुत बड़ा बना रहे हैं। यह दोनों में से कुछ भी नहीं है; यह महज एक साधन है, जो हमने बनाया है।

कोई भी इंसान दौलत के पीछे नहीं भागता। यह सुनने में बेतुका लग सकता है, लेकिन फिर भी लोगों को जो चाहिए, वह दौलत नहीं है। दौलत उन चीजों को पाने का साधन जरूर बन गया है। हर इंसान चाहता है कि उसकी जिंदगी खुशहाल हो। खुशहाली पांच अलग-अलग तरीकों से आती है। अगर आपका शरीर खुशहाल हो जाता है, तो उसे सुख या आराम कहा जाता है। अगर आपका मन खुशहाल हो तो हम उसको शांति कहते हैं। अगर मन बहुत ज्यादा खुश हो तो उसे आनंद कहा जाता है। अगर खुशहाली आपकी जीवन-ऊर्जा तक पहुंचे, तो हम उसको परमानंद कहते हैं। अगर आपके चारों ओर का माहौल खुशहाल हो जाता है, तो हम उसको कामयाबी कहते है। आप स्वर्ग इसलिए जाना चाहते है, क्योंकि यह प्रचार किया जाता है कि यह बहुत मनोहर और सुखद स्थान है।

वास्तव में आपको जो चाहिए वह है सुख और आनंद और फिलहाल आपको यकीन है कि इस दुनिया में पैसा आपके लिए यह खरीद सकता है। पैसा बस बाहरी खुशहाली दे सकता है, यह आंतरिक खुशहाली और आनंद नहीं दे सकता। पैसों के बल पर आप एक पांच सितारा होटल में ठहर सकते हैं, लेकिन आप शरीर, मन, भावना या ऊर्जा के स्तर पर खुश नहीं है तो आप अपने पांच सितारा होटल का मजा नहीं ले पाएंगे। लेकिन अगर ये पांचों खुशहालियां हैं तो आप एक पेड़ की छाया का भी मजा ले सकते हैं।

अगर आपके अंदर ये तमाम खुशहालियां हैं और आपके पास पैसा भी है तो आप बाहरी माहौल की बहुत खुशनुमका बना सकते हैं। धन-दौलत के बारे में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं होता। यह बस एक साधन है। बात बस इतनी है कि अगर पैसा आपकी जेब की जगह सिर में घुस जाए, वहां जगह बना ले, तो तनाव और परेशानियां ही पैदा होंगी।

बहिरंग की प्रफुल्लता सर्वसामान्य में देखी जाती है, पर वह भौतिकता से जुड़ी होने के कारण अस्थिर होती है। लेकिन आनंद आत्मिक होने के कारण चिरस्थायी होता और समान बना रहता है। आनंद अध्यात्म की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आनंद और उत्फुल्लता के बीच वही भेद है जो सूर्य और चंद्रमा के प्रकाश में है। बाह्य वस्तुओं में हमें जब सुख मिलता है, वह वस्तुत: हमारे अंत:करण के आनंद का ही प्रकाश है, क्योंकि वहां सुख कभी होता नहीं। यदि भौतिक पदार्थ आनंद के स्रोत रहे होते, तो जिस चीज से एक को प्रसन्नता मिलती है, दूसरे के लिए भी वह उत्फुल्लतादायक ही होनी चाहिए थी। पर दैनिक जीवन में कुछ विपरीत देखा जाता है। जो सामग्री किसी एक के जीवन में सुख शांति लाती है, दूसरे के लिए वही दुख का कारण बन जाती है।

संसार में सौंदर्य भरा पड़ा है। यदि वह वास्तविक है, तो इसकी खोज करनेवाले को इससे सुख मिलना चाहिए, किंतु ऐसा कहां होता है? जिस सौंदर्य से, भोग और विलासिता से हमें आनंद मिलता है, उसी से कोई बुद्ध भाग खड़ा होता है, कोई महावीर वैरागी बन जाता है। कभी यही स्थिति भर्तृहरि के समक्ष उपस्थित हुई थी। उन्होंने अपनी पुस्तक श्रृंगार-शतक में बाह्य जगत में सुखोपलबिध की व्यर्थता का विस्तार से उल्लेख किया है। जब संसार की विषय वासनाओं में उन्हें बार-बार अतृप्ति और अशांति मिली, तो वे समझ गए कि उनकी तलाश गलत दिशा में चल पड़ी है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ वैराग्य-शतक में लिपिबद्ध करते हुए बताया कि स्थिर आनंद की उपलब्धि आंतरिक एवं आत्मिक हैं।

आरंभ में मनुष्य संबंधी मान्यता थी कि वह एक शरीर है और यह संसार उसके उपभोग हेतु है। ऐसी स्थिति में वह अधिकाधिक भोग में लिप्त रहता था। अब जबकि शरीर के अंदर आत्मा की उपस्थिति को स्वीकार लिया है तो मनुष्य को उसी परमतत्व की शोध में जुट जाना चाहिए जिससे संपूर्ण और शाश्वत सुख उपलब्ध हो।

हम सुख को बाहरी वस्तुओं में ढूंढने के लिए प्रयत्नशील हैं, पर आज तक कोई भी पूर्ण सुख पाने का दावा नहीं कर सका। पत्नी सोचती है कि उसे पति के सानिध्य में सुख मिलेगा और पति की सोच सुख पत्नी की प्राप्ति में है। मां को बेटे में, जबकि बेटे को इस सुख की तलाश मां में है। पिता पुत्र में, पुत्र पिता में, संसारी संसार में और वैरागी विराग में इसे सब अपने-अपने ढंग से खोज रहे हैं। सब की यह खोज यात्रा जारी है।

हम उपलब्ध साधनों में संतुष्ट रहें तो एक दिन उस अवस्था में पहुंच सकते हैं, जिसको सहजानंद कहा गया है। यही उच्च आध्यात्मिक स्थिति है। फिर इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम साधनहीन हैं या साधनसंपन्न।

भारत में खेलों को आनंद से जोड़ा गया है, जिससे खेलनेवाले सभी लोग उसका आनंद ले सकें। खेल में सामनेवाले को हराकर खुद जीतने का भाव नहीं होता, अन्यथा खेल अपने मूल उद्देश्य से हट जाएगा। यदि खेल में जीतने का भाव है, तब वह खेल नहीं, प्रतिस्पर्धा है। खेल हमारी परंपरा में स्वास्थ्य और मनोरंजन के लिए हौ किसी को हराकर खुद जीतने के लिए नहीं। हमारे यहां लोगों में खेल को लेकर आनंद के ही संस्कार चले आ रहे हैं, इसलिए हम ओलिंपिक में ज्यादा मेडल नहीं ला पाते। यदि मेडल न भी आए तो कोई बात नहीं। जिन देशों ने खेल को प्रतिस्पर्धा माना है, वहां स्पोर्ट्स एंज्युरी भी

उतनी ही ज्यादा होती हैं। आप कभी हारनेवाले के चेहरे को देखना, खेल उसे खुशी नहीं बल्कि उदासी देने लगता है। वैसे भी प्रतिस्पर्धा हिंसा का भाव पैदा करती है, जबकि खेल समानता का भाव पैदा करता है। न तुम जीते, न मैं हारा के भाव से खेल का समापन हमेशा आनंददायी होता है। जब कोई खिलाड़ी प्रतिस्पर्धा के भाव से खेल की तैयारी करता है, तब वह अन्य खेलों से वंचित रह जाता है। क्योंकि उसे एक ही खेल में मजबूत होना है। ऐसे में उसकी एक ही तरह की मांसपेशियां ज्यादा मजबूत और लचीली होती है, बाकी मांसपेशियां कमजोर ही रह जाती है। केवल एक खेल का ध्यान देने से वह खेल तो मजबूत हो जाएगा, लेकिन खेल से मिलनेवाली प्रसन्नता खो जाएगी। लंबी सराव के बाद यदि जीत गए तो ठीक, अन्यथा वही खेल निराशा का कारण बन जाएगा। जबकि खेल जीतने के लिए नहीं, बल्कि मस्त और स्वस्थ होने के लिए होता है।

आनंद क्या है? सुख और दुख दोनों जिस साम्यावस्था में होते हैं, उसको आनंद की अवस्था कहते हैं। वहां न हमें सुख महसूस होता है और न ही दुख। सिर्फ आनंद ही आनंद होता है।

अपने जीवन को देखकर बड़ी आसानी से यह कह सकते हैं कि हम दुखी हैं। परंतु जब हम दुखी हैं, व्याकुल हैं, तब भी हमारे अंदर इतना सुख भरा हुआ है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। कई लोग पंडितों के पास जाते हैं, ज्योतिषियों के पास जाते हैं, कहते हैं- हमारे हाथ पढ़ो। और हाथ पढ़नेवाले भी हाथ की रेखाएं देखते हैं। अगर किसी के दोनों ही हाथ कटे हुए हों, तो रेखा क्या देखेंगे? क्या वे जिंदा नहीं हैं? वे क्यों जानना चाहते हैं कि भविष्य में क्या होगा? दरअसल, लोग यह जानना चाहते हैं कि उनके जीवन रूपी रेगिस्तान में बारिश कब होगी?

लोगों को नहीं मालूम कि हमारा जीवन रेगिस्तान इसलिए है, क्योंकि यहां बारिश नहीं हो रही है। हम सोचते हैं, विधि का विधान है। मैं जहां भी जाता हूं लोग कहते हैं, भगवान किसी को अमीर बनाता है, किसी को गरीब बनाता है। क्यों? लोग समझते हैं कि जो अमीर हैं, वे सुखी हैं। बात तो सुख की है।

कोई आपको यह कहे कि, मैं आपको दस लाख रुपये देने को तैयार हूं, पर आपकी गर्दन काटनी पड़ेगी। तो क्या आप दस लाख लेंगे और गर्दन कटवाएंगे? अगर गर्दन कटवानी पड़े तो आपको दस लाख का क्या फायदा होगा? तो आप अपने जीवन में यही सोचते हैं कि वह सुखी है, क्योंकि वह धनवान है। वह इसलिए सुखी हैं, क्योंकि वह सुंदर है। वह इसलिए सुखी है, क्योंकि वह बढ़िया गा सकता है।

परंतु अगर बात सुख की है, तो सुख सभी के अंदर बराबर है। ऐसा नहीं है कि किसी के पास ज्यादा है और किसी के पास कम है। सबके पास आनंद का भंडार समान रूप से भरा हुआ है। पर बात यह है कि हम इस बात से अनजान हैं। चाहे दरिद्र हो, चाहे अमीर हो, चाहे छोटा हो, चाहे मोटा हो, सभी खुश रहना चाहते हैं। परंतु खुश कैसे होंगे? यह नहीं मालूम।

आनंद की राह में बाधा यह संसार नहीं, बल्कि घोर सांसारिक वृत्ति है। व्यक्ति का मूल स्वभाव ही नहीं, जीवन का अंतिम लक्ष्य भी आनंद ही होता है। इसके लिए मोक्ष अथवा मुक्ति अनिवार्य है। हमारे आनंद में बाधक कौन है? कहते हैं कि यह संसार ही आनंद प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है। अब संसार से तो जीते जी मुक्ति संभव नहीं।

वास्तव में यह संसार किसी के आनंद में बाधा नहीं बनता। वास्तविक बाधा कोई है तो वह है हमारी घोर सांसारिक वृत्ति। हमारे जो विकार हैं अथवा हमारी जो नकारात्मकता है, वही सबसे बड़ी बाधा है। हम अपने जीवन में बहुत कुछ पाना चाहते हैं, सबसे आगे निकलना चाहते हैं। यहां तक भी कुछ-कुछ ठीक है। समस्या तब भयावह हो जाती है जब हम

दूसरों को कुचलकर या पीछे धकेलकर आगे बढ़ना चाहते हैं। जो कुछ हम पाना चाहते हैं उसके लिए जो कुछ खोना पड़ता है, वही हमारे आनंद की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है।

कुछ लोग आनंद की खोज में घर-बार छोड़कर संन्यासी हो जाते हैं। एक सन्यासी भी आनंद की कामना ही करता है। सबसे पहले वह अपने प्रचलित सांसारिक नाम का त्याग कर नया नाम पाता है और बन जाता है शिवानंद, रामानंद, सच्चिदानंद, नित्यानंद, चिन्मयानंद अथवा निरंजनानंद। नाम के अंत में जो शब्द या उत्तरपद जुड़ा है वह है आनंद। ऊपरी तौर पर पता चलता है कि अब से इनके जीवन का परम लक्ष्य आनंद की खोज ही हो गया है। पर क्या यह खोज सन्यास लेने अथवा गृहत्याग के उपरांत ही प्रारंभ होती है? वास्तव में यह खोज उसी दिन प्रारंभ हो जाती है, जिस दिन कोई स्वयं को बदलने का फैसला कर लेता है। इसके लिए संसार को छोड़ना नहीं, अपितु मन को बदलना पड़ता है। मन को सकारात्मकता से आप्लावित करना पड़ता है।

हम प्राय: दो परस्पर विपरीत स्थितियों से जूझते रहते हैं। हम केवल सुखों की कामना करते हैं और दुखों को किसी भी कीमत पर स्वीकार करना नहीं चाहते। यह असंभव है। इसी असंभव की कामना जीवन में तनाव उत्पन्न करती है जो आनंद की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है। यदि हम सुख और दुख दोनों ही स्थितियों को स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लें तो तनाव से बचते हुए दुखों से उबरकर सुखों का आनंद उठा सकते हैं। इसके लिए किसी भी प्रकार से घर-बार छोड़ना अथवा कपड़ों का रंग या पूर्व नाम बदलना अपेक्षित नहीं। यदि हम गृहस्थ जीवन में निष्काम कर्म व नि:स्वार्थ सेवा का आदर्श अपना लें तो इससे भी कम आनंद की प्राप्ति नहीं होगी। आनंद की प्राप्ति के लिए किसी आडंबर की नहीं अपितु संतुलन व ठहराव द्वारा मन के रूपांतरण की आवश्यकता है।

सच्चाई यह है कि मनुष्य हमेशा विपन्नता में जिया है। विपन्नता की अच्छी बात यह है कि वह कभी तुम्हारी आशा को नष्ट नहीं करती। वह कभी तुम्हारे स्वप्नों के खिलाफ नहीं जाती। वह हमेशा आनेवाले कल के लिए उत्साह का संचार करती है। इस विश्वास में व्यक्ति को आशा रहती है कि कल सब कुछ बेहतर हो जाएगा। यह अंधकारमय काल व्यतीत हो रहा है, शीघ्र ही प्रकाश हो जाएगा। लेकिन यह स्थिति बदल गई है। विकसित देशों में लोगों ने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है और लक्ष्य की यह प्राप्ति विषाद का कारण है। अब कोई आशा नहीं है। आनेवाला कल अंधकारमय है और परसों तो अधिक अंधेरा छा जाएगा। जिन चीजों के उन्होंने स्वप्न देखे थे, वे बहुत सुंदर थीं। अब उन्हें वे मिल गई हैं उलझनों के साथ।

कोई व्यक्ति गरीब होता है तो उसमें भूख होती है फिर व्यक्ति संपन्न होता है मगर उसमें भूख नहीं रहती। आपके पास हर चीज होती है, मगर भूख समाप्त हो जाती है, जिसके लिए आप इतना संघर्ष करते रहे। आप सफल हो गए। सफलता की तरह कुछ भी असफल नहीं होता। आप जहां पहुंचना चाहते थे, वहां पहुंच गए। लेकिन, उसके आस-पास होनेवाले परिणामों की आपको जानकारी नहीं थी। आपके पास लाखों डॉलर हैं, मगर आप सो नहीं सकते। जब व्यक्ति निर्धारित लक्ष्यों तक पहुंच जाता है, तब उसे पता लगता है कि इन लक्ष्यों के चारों ओर बहुत सी बातें हैं।

जीवन भर आप धन कमाने का प्रयत्न करते हो और सोचते हो जब आप यह मिल जाएगा तो तुम आराम का जीवन जिओगे। लेकिन आप जीवन भर तनावग्रस्त रहे हो और जीवन के अंत में जब आपको इच्छित धन-दौलत मिल जाती है तो आप आराम से नहीं रह सकते। जीवन भर तनाव और पीड़ा में रहे हो और चिंता आपको आराम नहीं लेने

देगीं आप विजयी नहीं हो, आप तो एक हारे हुए व्यक्ति हो। आपने अपनी भूख खो दी है, आपने अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर लिया है, आप अपनी संवेदनशीलता को नष्ट कर लेते हो, अपनी संवेदना को नष्ट कर लेते हो। आप डॉलरों के पीछे दौड़ रहे हो। गुलाब के फूलों को देखने का समय किसके पास है? उड़ते हुए पक्षियों को देखने का समय किसके पास है? मनुष्य के सौंदर्य को देखने का समय किसके पास है? आनंद एक ऐसी वस्तु है जिसका पोषण किया जाना चाहिए। यह एक तरह का अनुशासन है, एक तरह की कला है। और इसमें समय लगता है, लेकिन जो संसार के पीछे भाग रहा है, वह उस हर चीज की उपेक्षा कर रहा है जो दिव्यता के द्वार तक ले जाती है। राह के अंत में वह यात्रा समाप्त कर देता है तब उसके आगे मृत्यु के सिवाय कुछ भी नहीं होता।

हमने ही आनंद के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है। अगर आप ऐसा चाहें कि आज आपको केवल आनंद मिले, केवल प्रसन्नता पानी है, केवल मुस्कुराते फूलों को देखना है। उस दिन आपको कांटे नहीं दिखेंगे। यदि आप काम को नहीं देखेंगे, तो आपके ऊपर काम का प्रभाव भी नहीं पड़ेगा। क्रोध को आप अगर अपने ऊपर नहीं आने देना चाहेंगे, तो वह कभी भी आपके ऊपर प्रभाव नहीं डाल पायेगा।

लेकिन इसके लिए आपको एक दृढ़ संकल्प लेना पड़ेगा। दुष्प्रवृत्तियों और षड्विकारों को अपने से दूर रखने का यह निर्णय लें कि हमेशा आपको प्रसन्न रहना है। फिर तो आप जिधर भी अपनी नजर दौड़ायेंगे, उधर आनंद की ही बौछार होगी। आपके चारों ओर केवल आनंद के ही फूल खिलेंगे और आनंद के फौव्वारे से बौछार होने लगेगी, लेकिन आपने तो उस फव्वारे को जबरदस्ती सील कर दिया है। वह खुलने को बेताब है, लेकिन आप उसे खोल नहीं रहे। आपने तो अपने बगीचे में बहुत से पैसे खर्च करके आनंद के फव्वारे तो लगा लिये हैं, लेकिन जहां से पानी निकलता है, उसे आपने बंद कर दिया है। फौव्वारे से पानी निकलेगा कैसे, आपने तो उस मार्ग को ही अवरुद्ध कर दिया है।

गंभीरता से सोचें तो इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि हमारे दुख तकलीफ इसलिए हैं क्योंकि हमने वैसी सोच बना रखी है। ऐसा न हुआ तो क्या होगा और वैसा न हुआ तो क्या हो सकता है। सब दुख हमारी नासमझी और गलत सोच के कारण मौजूद हैं। इसलिए सिर्फ अपनी सोच बदल दीजिए, सारे दुख उसी वक्त खत्म हो जाएंगे। ऐसा नहीं है कि जितने संबुद्ध हुए हैं, उनके जीवन में सब कुछ अच्छा-अच्छा हुआ हो, लेकिन वे २४ घंटे मस्ती में रहते थे। कबीर आज कपड़ा बुनकर बेचते, तब कल उनके खाने का जुगाड़ होता था। लेकिन वह कहते थे कि आनंद झरता रहता है। नानक आनंदित होकर एकतारे की तान पर गीत गाते चलते थे।

सुख और दु:ख सिर्फ आदतें हैं। दुखी रहने की आदत तो हमने डाल रखी है। सुखी रहने की आदत भी डाल सकते हैं। सुबह सोकर उठते ही खुद को आनंद के भाव से भर लीजिए। इसे स्वभाव बनाइए और आदत में शामिल कर लीजिए।

यह गलत सोच है कि इतना धन, पद या प्रतिष्ठा मिल जाए तो आनंदित हो जाएंगे। जिसने भी अपने आनंद पर शर्त लगाई वह आज तक आनंदित नहीं हो सका। अगर आपने बेशर्त आनंदित जीवन जीने का अभ्यास शुरू कर दिया तो ब्रह्मांड की सारी शक्तियां आपकी ओर आकर्षित होने लगेंगी। क्राइस्ट ने अद्भुत कहा है, पहले तुम प्रभु के राज्य में प्रवेश करो यानी तुम पहले आनंदित हो जाओ, बाकी सभी चीजें तुम्हें अपने आप मिलती चली जाएंगी।

हम सब अपने जीवन को खुशियों से भरना चाहते हैं। सभी हर घड़ी आनंद में ही तो जीना चाहते हैं। जीना भी चाहिए। इसीलिए लोग हर पल आनंद की खोज में लगे रहते हैं। आनंद प्राप्ति के लिए न जाने क्या-क्या करते रहते हैं। अच्छा खाते

हैं, अच्छा पहनते हैं, घर को भी खूब सजाकर रखते हैं, लेकिन बात नहीं बनती। हम आनंद पाने के लिए जितनी भाग-दौड़ करते हैं, छटपटाते हैं, आनंद उतना ही हमसे दूर भागता है।

हम जितनी अधिक खुशियां दूसरों को उपलब्ध कराने का प्रयास करते हैं उतनी ही अधिक खुशियां हमारे पास लौटकर आ जाती हैं। पाने के लिए बांटना सीखना अनिवार्य है। जो हम नहीं बांटते, वो नहीं पा सकते। हमें वही अच्छा लगता है जिससे हमारे अहं की तुष्टि होती है लेकिन अहं की तुष्टि आनंद प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकती। सच्चा आनंद दूसरों को आनंदित करने में है। आनंद बहुत अधिक धन-दौलत, शोहरत और बड़ी-बड़ी उपलब्धियों में भी नहीं। आओ जीवन के हर पल में हर क्षण में खुशी खोजें और आनंद का उत्सव मनाएं।

दूसरों को देखकर अभिमान या दीनता न आए तो यह आनंद है

इच्छापूर्ति करने में मनुष्य का संपूर्ण जीवन नष्ट हो जाता है और वह इसके फंदे में फंसा का फंसा रह जाता है। इस चक्र से बाहर निकलने के लिए मनुष्य को गहराई से चिंतन-मनन करना चाहिए न कि चिंता। कारण कि जीवन के इसी मोड़ पर चिंतन-मनन की काफी आवश्यकता होती है।

आज के भौतिकवादी समय में इंसान सभी आधुनिक सुख-सुविधाएं जुटाकर अपने जीवन को उन वस्तुओं के आधीन कर स्वयं के सुखी होने की बात करता है और गर्व महसूस करता है। लेकिन किसी दूसरे व्यक्ति के पास अपने से कुछ अधिक देखकर वह दुखी हो जाता है। दूसरी ओर, जब वह किसी दूसरे से अपने को अधिक देखता है तब उसे अभिमान हो जाता है। यही दीनता और अभिमान उसके जीवन को पतन की ओर गतिशील करते हैं, क्योंकि मनुष्य अपना मूल्य भौतिक शक्ति अर्थात धन-संपत्ति से ही आंकता है।

मनुष्य का चंचल मन इन बाह्य वस्तुओं को पाने के लिए सदैव बेचैन रहता है। वह अपनी संपूर्ण शक्ति उन्हीं सुख-सुविधाओं को पाने में लगाता रहता है, लेकिन अंत में ऊर्जा रहित हो जाता है।

शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य को अपने मन को नियोजित करना चाहिए और इसके नियोजन के लिए संयम, विचार-मंथन तथा चिंतन की आवश्यकता है। जब हम अपने को नियोजित कर लेंगे तभी हमें ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञान की प्राप्ति होने पर ही मनुष्य अंधकार से प्रकाश की तरफ बढ़ेगा। ऐसी स्थिति में वह समझेगा कि मैं शरीर नहीं, शरीर में रहनेवाली चेतना या आत्मा हूं। यह आत्मा संजीवनी की तरह शरीर को संवारती रहती है। यदि इन मनोदशा से उबरकर चिंतन करें तो दिशा और दशा दोनों मिलाने लगते हैं। सृजन और विनाश सृष्टि का क्रम है। हम इसे रोक नहीं सकते है। किंतु इन दोनों के बीच आनंद से रह सकते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। धन की इच्छा हमें दुखी बना देती है। यह अशांति और दुख तब तक नहीं मिटेंगे जब तक हम उनकी खोज में पड़े रहेंगे। यदि यह खोज बंद हो जाए तो जीने की कला आ जाए।

अत: हम दूसरों जैसा बनने की कोशिश छोड़, यह देखें कि हम क्या बन सकते हैं? इसी में हमारी स्वाधीनता है। छोटे-बड़े की तुलना ही अशांति का कारण है। ऐसे में न तो कहीं अशांति रहेगी और न ही दुख रहेगा। आपका जीवन आनंद से भरा-भरा दिखने लगेगा। हमारी अशांति और दुख को कोई और दूर नहीं करेगा। यह हमें ही दूर करना होगा। उसको दूर करने की योग्यता और सामर्थ्य हमारे पास है। हम धनी बन जाएं, यह हमारे वश में नहीं है, किंतु धनी बनने की इच्छा हम छोड़ दें, यह हमारे वश में है।

मान-सम्मान, यश - कीर्ति - प्रशंसा-बडाई, गौरव, प्रतिष्ठा, अपमान-तिरस्कार

प्रशंसा-बड़ाई - आत्मप्रशंसा मनुष्य मात्र की एक सहज वृत्ति है। उसे अपनी प्रशंसा सुनना बड़ा ही अच्छा लगता है। स्वयं भी अपनी प्रशंसा के गीत गाता हुआ वह अघाता नहीं है। प्रबुद्ध विचारक कहते हैं कि यह आत्मप्रशंसा-वृत्ति आध्यात्मोन्नति में बाधक है, प्रशस्त मार्ग की अवरोधक है। हर जीव में अनंत शक्ति है, अनंत गुण है। किसी में परोपकार का, किसी में ज्ञान का, किसी में तप का, किसी में दान का, किसी में ध्यान का, किसी में सेवा का, किसी में सबको प्रसन्न रखने का, किसी में समाधान देने का है। सभी में कुछ न कुछ गुण है और वह प्रशंसा के योग्य भी है। किन्तु प्रज्ञा पुरुषों की वाणी है कि आत्मप्रशंसा करना स्वयं अपने उत्थान की एवं सद्गुणों की अभिवृद्धि को रोकना है। आत्म-प्रशंसक अपने ही हाथों अपना वध करता हैं। आत्मप्रशंसा करना जिसका स्वभाव है वह निश्चिंत हो परनिंदा से मुक्त नहीं रह पाता। आत्मप्रशंसी, मिथ्याभिमानी जहाँ भी जाता है, उसे सर्वत्र सब में अवगुण ही दिख पड़ते हैं। माता-पिता तथा गुरुजनों को अपमानित करने में उसे संकोच नहीं होता। आत्मप्रशंसा के जोश में वह अपना होशो हवास खो बैठता है। जैसे आत्मप्रशंसा आत्मघाती है उसी प्रकार दूसरों का अपमान करना परहिंसा है। गुण प्रशंसा ऐसी शक्ति है जो भवोदधि से पार भी करा सकती है और संसार-सागर में डूबा भी सकती है। आत्मप्रशंसा में उन्मत्त मनुष्य दोनों ओर से अपने ऊपर घात-प्रत्याघात करते हुए अपने विकास का मार्ग अवरुद्ध कर देता है। स्व के प्रति एवं अन्य के प्रति देखने की वृत्ति को मोड़ दे। दिशा बदलेगी तो हमारी जीवन की दशा भी बदल जायेगी। भाव बदलेंगे तो भव बदल जायेगा। जीव से शिव बनने का यह एक उत्तम मार्ग है।

प्रशंसा भला किसे पागल नहीं कर देती। मूर्तिकार जिस षड्यंत्र की आहुति चढ़ा, बड़े-बड़े उससे बच नहीं पाते। धर्मी-अधर्मी, पंडित-मूर्ख, नेता-अभिनेता और यहां तक कि संत-महात्मा भी उसके भ्रमजाल से मुक्त नहीं रह सके। यह तो विष भरा सोने का घड़ा है, जिसका स्पर्श पाते ही आदमी का विवेक और सत्य-असत्य का निर्मल बोध साथ छोड़ जाता है, सही निर्णय लेने की क्षमता नष्ट हो जाती है। उसका मायाजाल आदमी के सिर चढ़ उसे एक ऐसे नशे में बांध देती है कि वह अपने-पराए की समझ भी भूल जाता है, उसे अच्छे-बुरे का भेद नहीं दिखाई देता, कर्त्तव्य और कर्त्तव्य-विमूढ़ता के बीच का अंतर भी उसकी नजरों में धूमिल हो जाता है।

वैसे प्रशंसा के प्रीतिकर लगने के पीछे उसका अपना एक विशेष मनोविज्ञान हे। यह हमारे भीतर छिपी हुई उस हीन भावना का द्योतक है जिसे हम दूसरों से छुपाना चाहते हैं और जब दूसरे ही उस बाबत हमारी बड़ाई करते हैं तो हम सच्चाई को जानते हुए भी उसे अनदेखा कर देते हैं, चूंकि हमारे अंतर्मन को उससे दिलासा मिलता है। यह खोटा फिसलाऊ मान-सम्मान ही हमारी पराजय और पतन का कारक बन जाता है। झूठी प्रशंसा से फूटी अहंकार की बेल हमें कब डस लेती है, इसका जब तक हमें बोध होता है, हम अपने विनाश के गर्त में गिर चुके होते हैं।

हृदय की पवित्रता का सबूत होती है दूसरों की मुक्त कंठ से प्रशंसा। प्रशंसा और प्रसन्नता एक-दूसरे से जुड़े हैं। प्रसन्न मन का उद्गार प्रशंसा में फूटता है। प्रशंसा करना भी एक कला है। कुछ लोग सकुचाते हैं, लज्जावश प्रशंसा नहीं कर पाते हैं। कुछ लोग दूसरों को कम समझते हैं, इस वजह से प्रशंसा नहीं कर पाते। जो हृदय दूसरों की प्रशंसा करने से

कतराता नहीं है, वह निर्भीक और पूर्वाग्रहों से रहित होता है। एक पवित्र हृदय में ही प्रशंसा के भाव आते हैं और जिसकी प्रशंसा की जाती है, उसे बेहतर व्यक्ति बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

रामचरितमानस के किष्किंधा काण्ड में जब हनुमान को सीता की खोज में समुद्र के पार जाना था, वह उदास और गुमसुम से बैठे थे। उस समय रीछराज जामवंत की प्रशंसा प्रोत्साहित करनेवाली थी और उन्हें सागर पार जाने का हौसला देनेवाली थी। महाकवि कालिदास लिखते हैं- स्तोत्रं कस्य ना तुष्टये। स्तुति अर्थात् प्रशंसा किसे प्रसन्न नहीं करती है? वेदों, पुराणों में देवी-देवताओं की स्तुति के लिए विविध स्तोत्रों की रचना की गई है। चाणक्य नीति में भी किसी व्यक्ति से मनचाहा कार्य करवाने के चार सूत्र हैं- साम, दाम, दंड और भेद। साम अर्थात् स्तुति का स्थान प्रथम है। ऐसा नहीं हो सकता कि आप किसी की प्रशंसा करें और वह आपके वश में न आ जाए।

अपनी तारीफ सुनना किसे नहीं भाता है? सभी चाहते हैं कि लोग हमारे कार्यों, प्रयासों की सराहना करें, पर तारीफ के दो बोल बोलने पड़ते हैं तो जाने क्यों हमारी जबान पर ताला लग जाता है। सिर्फ एक स्थान है जहां हर आगंतुक मुक्तकंठ से सिर्फ प्रशंसा करता है। उसका नाम शोक सभा है। प्रशंसा करने के लिए शोक सभा की प्रतीक्षा न करें। प्रशंसा को आप सकारात्मक ऊर्जा कह सकते हैं। यह ऐसा भाव है जो मिलनेवाले का उत्साहवर्धन करता है और उसके व्यक्तित्व को निखारने में सहयोग देता है।

एक छोटी सी बात गांठ बांध लें- निंदा, हिंसा और प्रशंसा, प्रेम का एक रूप है। प्रशंसा मुक्तकंठ से करें, पर चाटुकारिता नहीं। चाटुकारिता में अपना उल्लू सीधा करने की मंशा होती है। साथ ही यह भय होता है कि अगर सत्य वचन कहे जाएं तो कहीं कोपभाजन न बनना पड़े। इसलिए सत्य कहा जाए और वह कर्णप्रिय हो।

मान-सम्मान - जो भी नया काम होता है, वह आसान नहीं होता। बनी-बनायी पेढियाँ चलाना आसान होता है, किन्तु नये निर्माण के लिए प्राप्त यश, प्रतिष्ठा, सब कुछ न्यौछावर करना होता है। नया निर्माण वही कर सकता है, नयी ज्योति वही जला सकता है जो मानापमान से ऊपर उठता है। जो अपमान को आगे और सम्मान को पीछे डालकर चलता है वही नरक को स्वर्ग बना सकता है।

जो दूसरों का सम्मान करता है, वह अपने ही सम्मान को बढ़ता है। जो अपने को ही श्रेष्ठ समझकर सबसे सम्मान पाने के लिये लालायित रहता है, वह श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। चाहनेवाले की अपेक्षा दाता श्रेष्ठ है। वास्तव में सम्मानित तो वही है जो सबका सम्मान करे। अपना कोई अपमान भी करे उसे भी सम्मान की दृष्टि से देखे। श्रेष्ठता की यही सर्वोत्तम पहिचान है।

मन जब मतवाला हो जाता है तो वह विचार करना और अन्य दूसरों का आदर करना छोड़ देता है। इसे ही मान कहा जाता है और इसी से अहं जागता है। मान गल जाने पर ही मन सहज, सरल व द्रवित होने की योग्यता पाता है।

मानवीय चेतना में सबसे गहरी पैठ रखती है सम्मान की इच्छा। मनुष्य की चेतना में सम्मान की आकांक्षा सबसे गहरी है। सब कुछ हो, लेकिन इज्जत न हो तो संतुष्टि दब जाती है। सम्मान पाने के लिए आदमी कुछ भी करने को राजी हो जाता है। साधु-संत भी इतने कष्ट इसलिए उठाते हैं कि उन्हें सम्मान मिलता है।

सम्मान प्रेम से बहुत ऊपर की स्थिति है और समानता के बोध से जन्मता है। मां अपने बच्चे को बहुत प्रेम करती है, जान दे सकती है उसके लिए। लेकिन बच्चा मां के लिए समान नहीं होता। मां का स्थान ऊपर होता ही है। पति-पत्नी में भी परस्पर सम्मान नहीं होता, एक-दूसरे पर हावी होने की प्रवृत्ति रहती है, तलाक के मामले इसलिए बढ़ रहे हैं।

सम्मान विकसित करना हमारे वश में है। हम मतभेद के बावजूद मैत्रीपूर्ण हो सकते हैं। यदि मतभेद को हम पसंद-नापसंद के रूप में स्वीकार कर सकें तो बात बदल जाती है और परस्पर सम्मान संभव होता है। जिनसे आप प्रेम करते हैं, उनके प्रति उदार बनने से ही संबंधों में मधुरता संभव है। आज पीढ़ियों का अंतराल बहुत बढ़ गया है। आप अपनी बात किसी पर थोप नहीं सकते। सलाह देने से पहले, उस व्यक्ति के स्थान पर स्वयं को रखकर देखें। बिना अपेक्षा के यदि आप अपनी बात कहें, तभी आपके प्रति सम्मान पैदा होगा। बिना मांगे सलाह न दें बल्कि सलाह लेना सीखें। जब भी हम किसी से राय मांगते हैं, वह व्यक्ति सम्मानित महसूस करता है।

सम्मान अहंकार बढ़ाता है, लेकिन दूसरों को सम्मान देकर ही आप समझ पाते हैं कि उसके साथ कैसा व्यवहार करना है। इसी समझ से आप समानता का व्यवहार भी कर सकते हैं क्योंकि जो चीज आपको बुरी लगती है, वह दूसरों को भी बुरी लगती होगी। दंड देने से कोई नहीं सुधरता, इसलिए दुर्गुणों को प्रकट न करें। यही दृष्टि अपने प्रति भी रहे, तभी दूसरे के प्रति भी सम्मान पैदा होगा। जीवन में जो भी हताशा, निराशा है, उन्हें अपने जीवन का केंद्रीय तत्व न बनने दें। आत्मनिंदा से बचें। जो स्वयं को ही न माफ कर पा रहा हो वह दूसरे के प्रति भी कठोर ही होगा।

हर आदमी अपने अनुभव से सीखता है, इसलिए सबकी वैचारिक स्वतंत्रता का सम्मान करें। कहें कि तुम मेरी बात न मानो, तब भी तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कम न होगा। हर व्यक्ति अपने किए की मान्यता चाहता है, लेकिन हम यह बताने में हिचकते हैं कि दूसरे व्यक्ति का हमारे जीवन में क्या महत्व है। बल्कि होता उल्टा है। अगर आप चाहते हैं कि लोग आपका सम्मान करें तो आपको भी सम्मान से समानतापूर्वक व्यवहार करना सीखना होगा।

आंतरिक सुख का वृक्ष सम्मानों की माया से दूर ही पनपता है। मनुष्य में मान-सम्मान की गहरी प्यास होती हे। समाज भी पद प्रतिष्ठा की प्राप्ति को प्रोत्साहित करता है। हम हमेशा यश-कीर्ति पाने के लिए आतुर रहते हैं। दूसरों द्वारा प्रशंसा और पुरस्कार हमें बड़े ही प्रीतिकर लगते हैं। कोई हमारा गुणगान करे तो हमारी छाती गर्व से फूल जाती है। सरल साधारण जीवन हमें रास नहीं आता। असाधारण होने-दिखने की चाह हमारे भीतर छलांगें मारती रहती है। सफलता और मान-सम्मान की मृगतृष्णा हमारे भीतर इतनी तीव्र हो जाती है कि हम उसे पाने के लिए सत्य का मार्ग छोड़ अनैतिकता के पथ पर चलने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। इसके ठीक विपरीत कहीं तिरस्कार, अपमान और अपयश के बादल घने होते दिखें तो हम भीतर तक सिहर जाते हैं। हम उस स्थिति से छूटकर दूर भाग जाना चाहते हैं।

आखिर मान-सम्मान का मोह, दूसरों से मान्यता की लालसा हमारे भीतर इतनी तीव्र होती कि भीतर झांकें तो यह हमारे भीतर छुपे हीन भाव की ही प्रतिमा है। यह कैसी विडंबना है कि सच को जानते हुए कि हम किसी मान-सम्मान के योग्य नहीं, दूसरों से मान-सम्मान की अपेक्षा करते हैं। स्वयं अपना सम्मान कर नहीं पाते और अंदर के गहरे अंधकार को छुपाने के लिए बाहर के झूठे प्रकाश के मोह में पड़े रहते हैं। इस मिथ्या मायाजाल में हम इतने गहरे डूब जाते हैं कि सत्य, सदाचार, सहृदयता और संकल्प की सच्ची डोर हमारे हाथ से दूर छिठक जाती है।

नतीजतन जब तक सांस रहती है हमारा चित्त, हमारा व्यवहार दूसरों की मुट्ठी में भींचा रहता है। मन सदा इसी उधेड़बुन में अस्थिर रहता है कि कैसे यह मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति बची रहे। यह मान-मर्यादा अंदर से जितनी खोखली होती है, उतना ही गहरा हमारे भीतर यह भय बना रहता है कि कहीं यह हमसे छिन न जाए। अपने भीतर की नग्नता का यह अंतर्बोध हमें उस सुख से भी वंचित किए रखता है जिसके लिए हम इस मायावी मान-सम्मान का षडयंत्र रचते हैं।

इतना ही नहीं, इसे गंवा देने का भय हमें कब अधर्मी बना देता है यह सहज-सरल विवेक भी हम गंवा बैठते हैं।

भीतर सुख का वृक्ष पनपता देखना चाहते हैं तो हमें खुद को इस मायावी मान-सम्मान के खेल से मुक्त रखना चाहिए। जीवनपथ सत्कर्म, परोपकार, सत्य के असीम प्रकाश से प्रकाशित रहे तो भीतर आत्मसम्मान के असंख्य सूरज उग जाते हैं। न मान-अपमान, यश-अपयश की चिंता सर पर सवार रहती है, न दूसरों की प्रशंसा की बैसाखी की ही जरूरत पड़ती है। आत्मतत्व के बोध से तृप्त मन जीवन की निर्मल धारा के साथ प्रवाह करते हुए जिस आनंदमयी अवस्था में प्रविष्ट हो जाता है, उसमें न तो निंदा, न ही प्रशंसा उसकी ढाल को भेद पाते हैं। गुण-दोष की व्याख्या, निंदा, आक्षेप, तिरस्कार, अपमान निरर्थक हो जाते हैं।

एक बार नेपोलियन हिल ने सुझाव दिया कि हमारा अंतिम लक्ष्य अपने आपको महान बनाना होना चाहिए, लेकिन इस अंतिम लक्ष्य तक पहुंचने से पहले हमें महान लोगों का अनुकरण करना चाहिए। संस्कृत में एक मंत्र है- अहं ब्रह्म अस्मि यानी मैं ईश्वर हूं। हम व्यर्थ उसे बाहर मूर्तियों, ग्रंथों, पूजा-स्थलों में ढूंढते रहते हैं। हमारा ही सर्वश्रेष्ठ रूप ईश्वर है। सो हमें अपने सर्वश्रेष्ठ स्वरूप को हासिल करने की कोशिश करनी है। दूसरे शब्दों में महानता को हासिल करने का पहला कदम है स्वयं का सम्मान करना सीखना।

किसी के सम्मान की अस्वीकृति बड़ी कठिन होती है। सम्मान की अस्वीकृति का अर्थ है किसी का अपमान अथवा उपेक्षा करना। इसके लिए अत्यधिक ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। इतनी कि बाकी के कामों के लिए ऊर्जा बचती ही नहीं। किसी का अपमान अथवा उपेक्षा करना सरल नहीं कठिन होता है, क्योंकि इसके लिए मन में विशेष परिस्थितियों का निर्माण करना पड़ता है। जब तक हम अपने मन में किसी के प्रति घृणा अथवा विद्वेष नहीं पालेंगे उसकी उपेक्षा अथवा अपमान कैसे कर पाएंगे? किसी का अपमान करने के लिए हमें अपने अंदर जहर भरना होता है, अपने आपको सुलगाना पड़ता है तब कहीं जाकर वह जहर, वह आंच आगे फैलती है। जितना अधिक जहर होगा, जितनी अधिक आंच सुलगेगी उतनी ही अधिक ऊर्जा भी नष्ट होगी।

किसी का अपमान अथवा उपेक्षा मनुष्य की जीवनी शक्ति अथवा ऊर्जा का भयंकर दुरुपयोग है, अपव्यय है। इससे अच्छे भले संबंध भी खराब हो सकते हैं। हो सकते हैं नहीं, हो जाते हैं। यदि हमारे अंदर जहर ही जहर भरा हो, आग ही आग भरी हो, तो वह कभी भी किसी पर गिर सकती है। जब अंदर मिठास भरी हो तो वह भी किसी पर गिर सकती है, लेकिन इसके गिरने से कोई नुकसान नहीं होता। कई बार गलती से किसी पर यह मिठास गिर जाती है तो चमत्कार हो जाता है। इससे ऊर्जा नष्ट नहीं होती, ऊर्जा स्तर और सुदृढ़ हो जाता है।

गौरव- गौरव यानि शोभादायक, कीर्ति बखानेवाला, ऐश्चर्य या सम्मान बढ़ानेवाला। यह सब मिल सकता है उत्तम चरित्र से। इसलिए उत्तम चरित्र गौरव है। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं, रात का गौरव चंद्रमा, दिन का सूर्य, भक्त का गौरव भक्ति, भक्ति का गौरव ज्ञान, ज्ञान का गौरव ध्यान और ध्यान का गौरव बुराई का त्याग, त्याग का गौरव शांति, दया, परोपकार, आदि गुण हैं। राजा भर्तृहरि ने कहा है, ऐश्वर्य का गौरव सज्जनता, शूरता का गौरव मितभाषण, ज्ञान का गौरव शांति, कुल का गौरव विनम्रता, धन का गौरव समुचित व्यय, तप का गौरव निश्चलता और इन सबका गौरव शील यानि उत्तम चरित्र है। सद्गुण और सच्चरित्रता ही सच्चा गौरव है। प्रशंसा एक अत्यन्त क्षणभंगुर उत्तेजना- मात्र है, जो इसके पात्र से निकटता प्राप्त करते ही शीघ्र नष्ट हो जाती है।

प्रतिष्ठा- प्रतिष्ठा बाजार से खरीदी नहीं जाती। प्रतिष्ठा त्याग से बनती है, मिलती है, होती है, टिकती है। प्रतिष्ठा के लिये सोचना नहीं पड़ता, कार्य करना पड़ता है आचरण सही रखना पड़ता है। आप दान दीजिये, खर्च (किसी और पर) कीजिये, इससे आपका नाम जरूर होगा, प्रसिद्धि तथा यश भी जरूर मिलेगा परन्तु जो प्रतिष्ठा की बात है वह नहीं मिलेगी जिसकी लोग मिसाल दे सके।

अपमान, तिरस्कार- मनुष्य का जीवन विचित्र है। उसका सुख-दुख के अनुभवों से भरा जीवन वैचारिक संतुलन पर ही सुदृढ़ हो सकता है। दुख छोटा ही क्यों न हो विचलित अवश्य करता है और अत्यधिक सुख मिलने पर अति उत्साह और ऊर्जा भी हमें चैन से नहीं रहने देती। प्राय: शांत सुशील व्यक्ति को भी तनावग्रस्त होने में समय नहीं लगता। परिस्थितियां इतनी प्रतिकूल होती हैं कि व्यक्ति का आत्मसंयम भी विफल होने लगता है। हम कितने भी जागरूक हों, नकारात्मक परिस्थितियों से घिर ही जाते हैं। ऐसे में किसी से किसी प्रकार की लौकिक-पारलौकिक सहायता की कामना करना वैसे ही व्यर्थ है, जैसे पाषाण से जल की धार फूटने की इच्छा करना।

इन परिस्थितियों में हमारे पास अपनी सहायता स्वयं करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं होता। ऐसी ही एक परिस्थिति है अपमान का सामना करना। अपमानित होने पर अधिकांश लोग बुरी तरह अव्यवस्थित हो उठते हैं। वे अपमान भावना का गुणाभाग इस तरह करते हैं कि इसके दुष्प्रभाव से मृत्यु आने तक नहीं छूट पाते। जीवनभर अपमान भाव में घुटते रहने के कारण उनका भौतिक-भाविक अस्तित्व विषैला हो जाता है। परिणामस्वरूप अपने प्रियजनों को पल-प्रतिफल आहत करता हुआ उनका जीवन एक निरर्थक बोझ बन जाता है। जब हमें स्वयं से इतना प्रेम है कि अपना अपमान हम सहन नहीं कर सकते तो स्वयं से प्रेम के आधार पर हमें इस भावनात्मक द्वंद्व से बाहर आने के प्रयास भी तो करने चाहिए। इसके लिए उन परिस्थितियों का पुन: विश्लेषण करें जिनमें आपको लगा कि आपका अपमान हुआ। यह सब करने से महसूस होगा कि आपने अपने लिए जिन आधारों पर अपमान का भावनात्मक आधार बनाया, उनकी सच्चाई वास्तव में कुछ और है। जिस व्यक्ति ने आपको बुरा कहा, उसकी विवशता का ध्यान करें। उसने जिन बातों व्यवहारों के माध्यम से आपके साथ बुरा और असभ्य आचार किया, उनके खोखले मंतव्यों का विचार करें।

अपमानित होने का अवसर मिलना आत्ममंथन का माध्यम भी हो सकता है। इसे गंभीरतापूर्वक स्वयं में मथना चाहिए। इससे निश्चित रूप से मनुष्य को स्वयं की पहचान होगी और वह हर उस बात व्यवहार से बचना चाहेगा, जिससे उसके अपमानित होने की आशंका हो। इस तरह व्यक्ति को अपमान के वैचारिक कलंक को सदैव के लिए अपने साथ जोड़ने की हानिकारक आदत से मुक्ति मिलती है। अपमान की भावना को साधारण भावना समझने का विवेक प्राप्त होता है। यदि व्यक्ति को जीवन में अपमान मिलने के बाद आत्मजागरण का आभास हो तो यह उक्ति बुरी नहीं है। अपमान यदि व्यक्ति का भविष्य प्रशस्त करता है तो एक बार सबका अपमानित होना आवश्यक है।

यदि हम अपनी ऊर्जा का सही प्रयोग करना चाहते हैं तो हमें बिना किसी भेद-भाव के सबका आदर करना शुरू कर देना चाहिए। इससे न केवल बिगड़े हुए संबंधों को सुधारने में मदद मिलती है, अपितु वर्तमान अच्छे संबंध और अधिक अच्छे व अर्थपूर्ण हो जाते हैं। इसी में जीवन का वास्तविक आनंद है। यदि हम इस क्षेत्र में थोड़ा सा भी प्रयास करें तो चमत्कार घटित हो सकता है। जीवन में कोई भी चमत्कार कोई दैवी घटना नहीं अपितु अपनी ऊर्जा को सही दिशा में करना ही जीवन है। जीवन के हर क्षेत्र में सकारात्मक सोच ही चमत्कार उत्पन्न करने में सक्षम होती है।

आसक्ति-अनासक्ति, विरक्ति, वैराग्य

आसक्ति में पड़कर अनियंत्रित न होना ही वास्तविक वैराग्य है ।

आसक्ति-अनासक्ति- अनासक्त वह है, जो संसार में रहकर भी कमल की पंखुड़ियों की तरह निर्लिप्त जीता है। मनुष्य ज्यों-ज्यों उम्र पाता है, जीवन के प्रति उसकी और गहरी होती जाती है।

आसक्ति का अर्थ है- मूच्छ्र्रा। इसे हम सम्मोहन भी कह सकते हैं। मेरा भाई, मेरी पत्नी, मेरी मां, मेरी दुकान, मेरा घर। यह मेरी ही आसक्ति है। परिजनों के बीच रहना, जीना, कपड़े पहनना और भोजन करना आसक्ति नहीं है, वरन इन सबके साथ, मेरे को जोड़ना ही आसक्ति है। अनासक्त वह है जो, संसार में रहकर भी कमल की पंखुड़ियों की तरह निर्लिप्त जीता है।

मनुष्य ज्यों-ज्यों उम्र पाता है, जीवन के प्रति उसकी आसक्ति और गहरी हो जाती है। व्यक्ति संसार में प्रवेश तो आम जीवन जीने के लिए ही करता है, लेकिन धीरे-धीरे ऐसे चक्रव्यूह में फंस जाता है, जिससे बाहर निकलना दुष्कर हो जाता है। जाल बनाती है मकड़ी औरों को फंसाने के लिए, लेकिन उन बारीक और चिपचिपे रेशमों से वह खुद ही उलझ जाती है। उसका जाल ही उसके लिए चक्रव्यूह बन जाता है।

मकड़ी के शरीर में एक विशेष ग्रंथी होती है जिससे एक विशेष एसिड स्त्रवित होता है। उसी से मकड़ी जाला बुनती है। इसके जाले की विशेषता यह होती है कि इसमें फंसा जीव निकलने के लिए जितना छटपटाता है, उतना ही उलझता जाता है।

किसी को अपने शिकंज में जकड़ने के लिए आतुर मकड़ी किसी और को जकड़ पाए या न जकड़ पाए, उसकी अकड़ तब ढीली पड़ जाती है जब वह स्वयं ही अपने जाल में उलझ जाती है। मकड़ी के इस जाल से मुक्ति नामुमकिन तो नहीं, टेढ़ीखीर अवश्य है। जब जाल बनाया जाता है तब जीवन का एक लंबा भाग रेशे को जोडने में बीत जाता है।

भूख-प्यास की चिंता नहीं, सर्दी-गरमी की परवाह नहीं, धुन की धनी मकड़ी बड़े आराम से जाल बनाती है और इस जाल में फंसकर रोते-रोते जिंदगी पूरी करती है। यहा संसार में जिस-जिस ने जाल बुना है, वह अवश्य फंसा है। मनुष्य की आसक्ति का मकड़-जाल मकड़ी के जाल से भी बदतर है।

मकड़ी तो केवल एक जाल बुनती है और बनाती है, लेकिन मनुष्य न जाने कितने मकड़-जाल बुनता और बनाता है। यदि वह अपने बनाएं मकड़-जाल से निकल नहीं पाता तो उसकी दुर्गति निश्चित है इसलिए मनुष्य को इस जाल से निकलने की कोशिश अवश्य करनी चाहिए।

देवताओं को भी दु:ख के गर्त में धकेलती है वह है आसक्ति ! मानवों और दानवों को भी इस आसक्ति ने नहीं छोड़ा। देवता कामासक्त, मनुष्य लोभासक्त और दानव क्रोधासक्त होने के कारण तीनों दु:खी होते हैं। देवताओं को आसरा, अमृत और स्वर्ग की कामना होती है। मनुष्य को धन की आस होती है और दानवों को उपभोग की इच्छा। इस कारण, वे सच्चा सुख नहीं पा सकते। इन आसक्तियों के चंगुल में फंसकर मनुष्य तरह-तरह के बंधनों में फंसता है। दलदल में फंसे आदमी की तरह, अपने हर कर्म के साथ लालच-मोह के दलदल में फंसता जाता है। आसक्ति यानि आत्यंतिक पिपासा जो बुद्धि भ्रष्ट कर देती है। धन, सम्मान, कीर्ति, प्रतिष्ठा मनुष्य जीवन का अंग है, वे अवश्य प्राप्त करने चाहिए, लेकिन वह सब कुछ

खुद को मिले, औरों को नहीं, यही आसक्ति मनुष्यजाति के दु:खों की जड़ है। आसक्ति से दूर रहना, यानि अनासक्त होकर ही जीवन सुखी किया जा सकता है।

भोगों में सुख तभी तक प्रतीत होता है, जब तक उनमें थोड़ी बहुत आसक्ति हो, जहाँ विषयों में से आसक्ति हटी, कि वे ही वे ही विषय विषवत् प्रतीत होने लगते हैं। आसक्ति के आधार पर ही यह संसार प्रपंच चल रहा है। जहाँ संसार से वैराग्य हुआ कि फिर संसार नाशवान्, क्षणभंगुर, अनित्य और मिथ्या प्रतीत होने लगता है। आत्मा के सम्बन्ध से हम इस शरीर में नाना प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करते हैं। यह मेरा पिता है, पुत्र है, पति है, सम्बन्धी है इत्यादि। जहाँ जीवात्मा इस शरीर से पृथक् हुआ, तहाँ सब सम्बन्ध छूट जाते हैं। शरीर बुरा लगने लगता है, शीघ्र-से-शीघ्र उसे घर से बाहर करने के लिये व्यग्र हो जाते हैं, जिन अंगों को देखकर सम्बन्धी सिहाते थे, आज वे सब भयानक दिखाई देने लगते हैं। जिन्हें इन विषयों की अनित्यता का ज्ञान हो गया है, उन्हें फिर संसारी-झंझटों में फँसा रहना भार-सा प्रतीत होता हैं। कर्तव्य वश कुछ दिन और रहना ही पड़े, तो वे दिन गिनते रहते हैं। आसक्ति सर्वथा त्याज्य है; किन्तु यदि उसे त्याग देना सम्भव न हो तो सन्तोंमें आसक्ति करनी चाहिए; क्योंकि सन्त आसक्तिकी दवा है। अपना नाश करनेवालेमें काम, क्रोध तथा लोभ नरकके त्रिविध हैं इन तीनोंको त्याग देना चाहिए। न पैसा किसीको बाँधता है, न भूमि, न मकान। मनुष्य अपने हृदयकी आसक्तिसे ही बँधता है। यह आसक्ति ही बाँधकर रखती है। आसक्ति मिटाओ मत। उसे सत्पुरुषसे जोड़ दो। सत्पुरुषसे आसक्ति होगी तो वह संसारके बन्धनसे छुड़ा देगा। इन्द्रियोंका असंयम ही आपत्तिका मार्ग कहा गया है और उनको जीतना सम्पत्तिका मार्ग है। भगवानसे, सन्तोंसे प्रेम करोगे तो बन्धनसे छूट जाओगे। इन्द्रियोंसे, विषयोंसे, लोगोंसे, संसारसे प्रेम करोगे तो बन्धनमें पड़ोगे। मनुष्य संसारकी आसक्तिके कारण भगवानसे विमुख होकर दु:खमें पड़ जाता है, अत: आसक्तिका मुख भगवानकी ओर मोडना आवश्यक है। मोह भगवानसे हो, संसारसे मोह न हो। अपनी ललित-क्रूर सब वृत्तियोंका सम्बन्ध भगवानसे ही हो।

आसक्तिमें दोष है काम। जब किसीसे बहुत संग, आसक्ति होती है तो उसके प्रति सकामभावका उदय हो जाता है। यदि दोनोंमें आसक्ति हुई तो कामना पूर्ण होती है। यह काम फलपर्यंत जाता है। इससे बन्धन होता है। यदि निष्कामके प्रति काम होगा तो उस निष्कामके साहचर्यसे अपनी कामना मिट जायेगी। अत: संगदोषरूप कामको भस्म करनेवाले ये महात्मा शिव हैं। वासनाकी निवृत्तिके लिये दो चीजें चाहिए। एक तो चाहिए वैराग्य और दूसरी चाहिए भगवानकी भक्ति। भक्तिसे वासना रूपान्तरित हो जाती है, बदल जाती है और वैराग्य वासनाको क्षीण कर देता है।

घर की आसक्ति न होना, गृहासक्ति न होना ही अनिकेतता है। जो मनुष्य अनिकेत है, बिना घरवाला है, स्थिरमति है यानी जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा व्यक्ति भगवान को प्रिय हैं। जो मनुष्य केवल सादा कपड़ा पहने, जो शीत-उष्णादि व लज्जाके लिये कपड़ा पहने, जिस किसी स्थिति में उसे रहना पड़े, उसीमें शरीर-श्रम करें, प्रामाणिक धन्धा करके कमाई करें और जो कुछ मिले, उसीमें संतोष माने ऐस व्यक्ति भगवानको प्रिय है।

जिन्होंने घोर साधनों द्वारा अपने चंचल चित्त की बिखरी हुई वृत्तियों को एकत्र करके प्रभु पादपद्मों में उन्हें नहीं लगा दिया है, जिन्होंने विषयों की ओर बहती हुई इन्द्रियों की वृत्तियों का भली भाँति निरोध नहीं कर लिया है, ऐसे अजितेन्द्रिय पुरुषों के लिये संसार से वैराग्य होना महान दुर्लभ है। लोग कहते तो हैं, कि प्राण सबसे प्यारे हैं, किन्तु इन प्राणों की भी बाजी

लगाकर मनुष्य धन का उपार्जन करता है। फिर साथ ही स्वजनों का स्नेह भी अपनी ओर खींचता है। सबसे बड़ा आकर्षण तो है बच्चों का। इस सुख का जिसने अनुभव कर लिया है, वह यदि ब्रह्मा भी कहें, तो भी घर को नहीं छोड़ सकते। बच्चा माता-पिता दोनों का प्रतीक ही हैं, दोनों की सजीव क्रीड़ा करती हुई आत्मा है, दोनों के बाह्य प्राण हैं। गृहस्थ का सर्वश्रेष्ठ सुख है सुत के सुन्दर सुललित शरीर का संग। उसकी अमृत से भी मधुर वाणी का श्रवण। जीव को ये ही सब आकर्षण संसार में बाँधे हुए हैं। ये ही सब इसे चौरासी के चक्कर में घुमा रहे हैं। यद्यपि प्रधान बन्धन ये ही हैं, तो भी इनके अनुगत और भी बहुत से प्रलोभन हैं, जिनसे मनुष्य छूटने में अपने को असमर्थ पाता है।

रेशम का कीड़ा अपने मुख से ही सूत निकालता है और उसे अपने चारों ओर पूरने लगता है। उसे मुख से सूत निकालने में आनन्द आता है, किन्तु इसके परिणाम की ओर ध्यान नहीं देता। जितना ही अधिक वह रेशम का सूत निकालकर अपने चारों ओर लपेटता है उतना अधिक फँसता जाता है। अन्त में ऐसा फँस जाता है, कि उसका निकलना असंभव हो जाता है। पेट में जब तक बालक रहता है, तब तक सभी सम्बन्ध दूर खड़े रहते हैं। जहाँ बाहर आया कि सम्बन्ध उससे लिपट जाते हैं। बहिन भाई कहती है, माता-पिता पुत्र कहते हैं, मामा भानजा कहते हैं, चाचा भतीजा कहने लगते हैं। सारांश सभी सम्बन्ध जोड़ने लगते हैं, वह स्वेच्छा से इन्हें स्वीकार ही नहीं करता, स्वयं भी नये-नये सम्बन्ध बनाता है। न जाने कहाँ किसके यहाँ उत्पन्न लड़की को स्वेच्छा से ले आता है, उसे पत्नी मानने लगता है। उसके सम्बन्ध से सास, ससुर, साले, सरहज न जाने कितने सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। फिर पुत्र पौत्र आदि को उत्पन्न करके इन सब सम्बन्ध रूपी जाल में ऐसा फँस जाता है, कि उससे निकलना अत्यन्त दुरूह हो जाता है। भगवान ही निकालना चाहें, तो यह मोह जाल छिन्न-भिन्न हो, नहीं तो अत्यन्त ही दृढ़ बन्धन है। निकलना अत्यन्त ही कठिन है। एक-एक वस्तु में मन फँसा रहता है। घर की एक-एक वस्तु में चित्त आसक्त रहता है। मेरा भवन है, सुन्दर-सुन्दर शैयायें हैं, गद्दा, तकिये, गलीचे हैं, नाना प्रकार के वाहन हैं, बाग बगीचे हैं, वापी, कूप, तड़ाग, आराम हैं। व्यापार है, बड़ी-बड़ी कोठियाँ हैं। लेन देन है, ग्राम हैं, पद हैं, प्रतिष्ठा है। आज्ञाकारी भृत्य सेवक हैं, संगी साथी, पुरजन परिजन, प्रजा परिवार वाले हैं।

सारांश सभी में मन फंसा रहता है। कुटुम्ब के भार से दबे रहने के कारण चित्त निरन्तर धन से आसक्त रहता है। आवश्यकतानुसार धन मिलता नहीं क्योंकि तृष्णा बढ़ी है। यह भी जानता है कि अन्याय से, चोरी से धन उपार्जन करेंगे, पकड़े जायेंगे, कारावास में जायेंगे, मरकर नरकों की यातनायें सहनी पड़ेंगी, किन्तु यह सब जानते हुए भी दूसरों का धन चुराता हैं। परदाराभिगमन करता है, क्योंकि इन्द्रियों को अपने वश में नहीं कर सका है, स्वयं इन्द्रियों का दास बना हुआ है। इसीलिये सदा अशान्त काम बना रहता है। जिस गृहस्थी में इतने बन्धन हैं, उन सब बन्धनों को तोड़ना हँसी खेल नहीं। मूर्खों की बात तो जाने दो, जो विद्वान है, जिन्होंने विधिवत् अध्ययन किया है, वे लोग भी अज्ञानियों के समान तमोग्रस्त हो जाते हैं। वे भी अपने पराये का भेदभाव करके कुटुम्ब पोषण के लिये तथा इन्द्रियों की तृप्ति के लिये पाप करते देखे गये हैं। ऐसे लोगों को परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

भक्ति अंतर (आत्मा) को शुद्ध बनाती है तो आसक्ति अंतर को अशुद्ध बनाती है। एक बार आसक्ति का प्रवेश हो गया तो वह जल्दी जाती नहीं है। इसको दूर करने के दो माध्यम है- तप और त्याग। तप शरीर की आसक्ति से दूर भगाता है। तो

त्याग राग ममत्व से दूर भागता है।

अनासक्त वह है जो संसार मे रह कर भी कमल की पंखुडियों की तरह निर्लिप्त जीता है। मनुष्य ज्यों ज्यों उम्र पाता है, जीवन के प्रति उसकी और गहरी सोच होती जाती है। आसक्ति का अर्थ है मूच्छ्र्रा। इसे हम सम्मोहन भी कह सकते हैं। मेरा भाई, मेरी पत्नी, मेरी मां, मेरी दुकान, मेरा घर। यह मेरा मेरी ही आसक्ति है।

व्यक्ति संसार में प्रवेश तो आम जीवन जीने के लिये ही करता है, लेकिन धीरे-धीरे ऐसे चक्रव्यूह में फंस जाता है, जिससे बाहर निकलता दुष्कर हो जाता है। जाल बनाती है मकडी औरों को फंसाने के लिये, लेकिन उन बारीक और चिपचिपे रेशमों से वह खुद ही उलझ जाती है। उसका जाल हो उसके लिये चक्रव्यूह बन जाता है। इसी तरह मनुष्य का जीवन का एक लम्बा समय इस जाल के बुनने मे निकल जाता है। भूख प्यास की चिन्ता नहीं, सर्दी गर्मी की परवाह नहीं, बाद में इसमे फंसकर रोते रोते जिन्दगी पूरी करता है। मनुष्य की आसक्ति करा बुना जाल मकडी के जाल से भी बदतर है। मनुष्य न जाने कितने मकड जाल बुनता है और बनाता है। यदि वह अपने बनाये मकड जाल से निकल नहीं पाता है तो उसकी दुर्गति तो निश्चित है इसलिये मनुष्य को इस जाल से निकलने की कोशिश अवश्य कर लेनी चाहिये।

वैराग्य- वैराग्य के लिये दृष्टान्त दिये जाते हैं। यह मथुरा नगरी भी बड़ी विचित्र नगरी है। यह सात नगर है इनको मोक्षदायिनी भी कहा गया है। अयोध्या, काशी कांची, उजैनी, मथुरा, हरिद्वार, द्वारका ऐसे सात नगरियां है। यह मथुरा नगरी जो है शूरसेन नगरी भी कहते है। यह मधुरा के नाम से भी जानी जाती है। इस नगरीको बसानेवाला लवणासुर राक्षस था। मधुरा इसका नाम पड़ा। शत्रुघ्न ने इस पुरी को बसाया, जब रामचन्द्रजी साकेतको जाने लगे थे तो अपने दो-दो पुत्रोंको राजगद्दी दे रहे थे। प्रत्येक चारों भाइयोंको दो-दो पुत्र थे। शत्रुघ्न को यह हिस्सा दिया गया मथुरा प्रान्त, यह मथुरा नगरी। इसीमें महाभारत का पूरा वर्णन आ जायेगा। इसी मथुरा नगरी में बालक ध्रुव ने बहुत कठिन तपस्या की। उस मथुरापुरी में एक गणिका चिन्तामणी के नाम से रहती थी और सूरदास नाम का एक व्यक्ति। सूरदास नाम बाद में पड़ा होगा। बिल्वमंगल इसका पुराना नाम था। बिल्वमंगल कवि था। वह लिखता था, पढ़ता था। चिंतामणी गणिका थी, वेश्या नहीं थी, कण्ठ बड़ा सुरीला था, वह नृत्य करती थी, नृत्यकला। संगीत का जब संगम होता है नृत्य, कण्ठ, स्वर, कवि, उसके शब्द यह सब मिलकर एक संगीत बनाते है। यह लिखता था, बोलता था, वह नृत्य करती थी। कोकिलकण्ठा थी। सूरदास उसपर मुग्ध हो गया। बिल्वमंगल रोज उसके घरमें जाता था। थोड़ी देर के लिये जाता फिर समय बढ़ने लगा सुबह से शाम हो गया। इतनी आसक्ति हो गयी एक क्षण उसके बिना नहीं रहता। एक दिन गांव से उसके पिताका समाचार आया बिल्वमंगल को। तुम्हारे पिताश्री बहुत बीमार है, अस्वस्थ है, आप शीघ्र लौट आवे। बिल्वमंगलको मालूम हुआ, वो समाचार उसने चिंतामणी को बताया। चिंतामणी ने कहा आपको जाना चाहिए पिताश्री के अस्वस्थ होनेपर आपको वहां जाना चाहिए। बिल्वमंगल जाने को तैयार नहीं, जबर्दस्ती चिंतामणी के आग्रह पर उसे भेज दिया। पिताश्री के यहां पहुंचे वह पहुंचने के पहले पिताश्री का इन्तकाल हो गया। अत्यंसंस्कार हुए अन्त्येष्टि करी, पूरी नहीं हुई शव जल रहा है उसी बीच दौड़कर उस गणिका से मिलने के लिये दौड़ पड़े। इतना मोह, इतनी आसक्ति। आधीरात नदी पार करनी थी एक मुर्दा बह रहा था आव देखा न ताव कैसे भी चिंतामणी के निवास पर पहुंचना था इतनी आसक्ति थी। मुर्दे को पकड़कर उसपर बैठ गये। देखिये कितना जघन्य

कर्म बिल्वमंगल का और उस कोठेपर जहां मुजरा, नृत्य होता है पहुंच गये। चिंतामणी ने पूछा तुम आधी रात आये कैसे है तुम्हारे पिताश्री। वह बोला- वो तो गये, दाह क्रिया हो गई है बाकी जो बची वो हो जायेगी। मुझे तो तुम्हारा प्रेम खींच लाया। चिंतामणी बोली- आये कैसे? वह बोला- देखो नीचे वहां गठरी पड़ी है ना। चिंतामणी खिड़की से देखती है- अरे बोली मुर्दे का शव। वह बोला- मैं इसपर बैठकर आया हूँ। वह बोली- तुम्हें घृणा नहीं हुई। वह बोला- मुझे मिलने की त्वरा थी। वह बोली- हाय कैसा मन, प्रेम। एक माखनचोर की मूर्ति, एक छबी वहांपर लगी हुई थी उस कोठे में। बोले मेरे में इतनी अनुरक्ति रखी, यदि यही अनुरक्ति इस मूर्तिमें होती कितना सुन्दर रूप है कौनसे रूप पर तुम मोहित हो तुम्हारा तो बेड़ा पार हो जाता। छी, पिताश्री से भी तुम्हें प्रेम नहीं है, तुम क्या मुझसे प्रेम करोगे। यह वाक्बाण बिल्वमंगल के हृदय में प्रवेश कर गये। उसी समय दो ताकु लिये अपनी दोनों आँखे फोड़ ली। बोले अगर उसका रूप इतना सुन्दर है तो मैं अब अन्य रूप देखूंगा ही नहीं मैं देखूंगा तो यही रूप देखूंगा और अपनी आँखे फोड़कर वृंदावन चले गये। वहां उन्होंने भक्ति करी यह सूरदास की महिमा, एक चिंतामणीके कहने से जगत्का वैराग्य।

राजा भर्तृहरी उसकी पत्नीका नाम पिंगला। बड़ी सुन्दर। राजा उसपर पूरा आसक्त था। पूरा-पूरा अपनी पत्नीके वशमें। पत्नी शायद राजाको इतना प्यार नहीं करती थी। राजा भर्तृहरी राजवर्धन का पुत्र, हर्षवर्धन का पोता। यह राजा भर्तृहरी अपने राजदरबार में बैठे थे। एक दिन एक ऋषि वहांपर आये। ऋषि ने पूछा, महाराज राजपाट तो अच्छा चल रहा है। क्या चिंता है। भर्तृहरी बोला- मैं अपनी पत्नीको बहुत प्यार करता हूँ और मुझे लगता है मैं कोई दिन मर जाऊंगा। ऋषिने एक फल दिया और बोले- तुम खा लो राजन् तुम अमर हो जाओगे और मरोगे नहीं। फिर तो कोई चिंता की बात ही नहीं। राजा बोले- ठीक है। राजाने वह फल लिया रात में वह फल खाया नहीं। पत्नी आयी अब राजाको लगा यह मेरा क्या है। यह पत्नी नहीं मर जाये मैं मर गया तो कोई बात नहीं। यह मर गयी तो मैं कहा जाऊंगा, मैं इसको इतना चाहता हूँ। रानी को दे दिया और बोले- यह फल तू खा ले तू अमर हो जायेगी फिर मैं तेरे साथ रह सकूंगा। जितने दिन मैं भोगूं कम से कम तुझे तो मै भोगूंगा। पत्नीने वह फल ले लिया और रख दिया। वो किसी सेनापतिको चाहती थी। उसने देखा राजा का तो क्या है वह मरनेवाला है बूढ़ा हो गया। सेनापति नहीं मर जावें यह मर गया तो मेरी आशिकी किसमें रहेगी वह फल उठाकर उसने सेनापति को दे दिया। सेनापति एक राजदरबार की नर्तकी को चाहता था। उसने रातमें वह फल उस नर्तकी को दिया। मैं मर गया तो कोई बात नहीं यह तो रहेगी। राजनर्तकी राजाको चाहती थी प्रेमसे नहीं। यह हमारा राजा है, बड़ा न्यायी राजा है, बड़ा पुण्य राजा है यह रहें तो प्रजा सुखी रहेगी वो फल उठाकर उसने राजाको दिया। बोली- महाराज मेरे पास यह एक अमूल्य फल है इसे आप लीजिये खाईये आप अमर हो जायेंगे। राजाने वह फल देखा। बोले- यह फल तो वही है जो मैंने रानीको दिया। इसके पास आया कैसे? नर्तकी को राजदरबार से बाहर ले आया। राजा बोले- यह फल आपके पास कहांसे प्राप्त हुआ।

नर्तकी बोली- नहीं महाराज। राजा बोले- सच बताओ नहीं तो राजदरबार में तुम्हें सजा मिलेगी। वो बोली- महाराज मैं चाहती हूँ, आपको उम्र मिले, आप प्रजाके पालक है। राजा बोला- मैं यह नहीं पूछता हूँ आपने मुझे क्यों दिया। मैं यह पूछता हूँ कि आपके पास यह फल आया कैसे? उसने बोला- यह फल मुझे सेनापति ने दिया। वह मुझसे बहुत प्रेम करता है। राजाने सेनापतिको बुलाया- मालूम पड़ा है रानीने यह फल दिया है। राजा बोला यह फल

मैंने रानीको दिया, रानीका प्यार इससे, इससे इसका प्यार नर्तकी से। मतलब उलटा तो कोई प्यार कर ही नहीं रहा है। राजा भर्तृहरी को उसी समय वैराग्य आ गया। यह सब माया झूठी है, यह सब संसार झूठा है, कोई किसीको नहीं चाहता है, सब स्वार्थके वशीभूत है। न मेरी पत्नी है। उसी समय राजपाट छोड़ दिया अपने पुत्र को राजगद्दी सौंपकर राजा वनको चला गया। यह वैराग्य, संसार से वैराग्य।

महाराज शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ। मगध देश, पटना पाटलीपुत्र की राजधानी। बड़े छोटे थे, शादी हो चुकी थी। पुत्र सिद्धार्थ कहीं बाहर नहीं जाते थे, कुछ काम नहीं करते था, राजपुत्र थे, बड़े ऐशोआराम में रहे। एक दिन शहर घूमने निकले। रास्तेमें एक बूढ़ा आदमी खैं-खैं करते जा रहा था। राजदरबारियों को पूछा यह कौन है? राज दरबारी बोले- महाराज यह बूढ़ा आदमी है, बीमार है? अच्छा क्या हो गया है? बोले- बूढ़ा है। झुका हुआ था। राजा बोले- अच्छा फिर मैं भी बूढ़ा होऊंगा। थोड़ी दूर और आगे चलें- एक आदमी खैं-खैं करते जा रहा था। राजा बोले-यह क्या है? राज दरबारी बोले- बीमार है उसको क्षयरोग था? राजा बोले- यह कैसी बीमारियां होती है? बोले- बड़ी खतरनाक बीमारी है। हो सकती है। कभी ऐसा होता तो नहीं। पर हो सकती है। और आगे चलें- एक शवयात्रा जा रही थी। राजाने पूछा- बोले यह क्या है? बोला- यह मुर्दा है। राजाने पूछा- यह मुर्दा क्या होता है? बोला- मर गया, इसके प्राण निकल गये, इसको जलानेके लिये ले जा रहे है। राजाने पूछा- मैं भी कभी ऐसा होऊंगा, मर जाऊंगा, मुझे भी यह आगसे जलायेंगे? मैं आगसे तो बहुत डरता हूँ। वह बोला- महाराज यह तो सभीका होता है। राजकुमार सिद्धार्थ लौटकर राजमहल में आ गये। अब सोच रहे, सोच रहे। यह वैराग्य, यह घर, यह राज्य किस कामका जो कुछ दे नहीं सकता। रातोंरात पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को छोड़कर महल से चले गये। नेपाल के एक गांव में जाकर एक गुफामें नीचे बैठ गये। यहां महाराज शुद्धोधन सब जगह ढूंढ रहे, पता नहीं अपने पड़ोसी राज्योंको, मित्र राज्योंको सबको पत्र लिखें, सूचना पहुंचाई कि इसको ढूंढके दो। कोई नहीं ढूंढ पाये। एक पड़ोसी नेपाल के राजा ने देख लिया है कि उनका पुत्र गुफा के पास बैठा है। तुरन्त सूचना दी शुद्धोधन को कि वो यहां बैठे है। शुद्धोधन ने बोला मैं जब तक आऊं उसको रोककर रखो, आप उसके साथ बातचीत करो, उसको वापिस भेजो। नेपालके राजा सिद्धार्थ के पास जाते है जहां वो गुफामें बैठे है। बोले राजकुमार- सिद्धार्थ बोले, मैं कोई राजकुमार नहीं। नेपालके राजाने कहा- मुझे मालूम है तुम शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ हो। शुद्धोधन मेरा मित्र है, मेरा पड़ोसी देश है। बोले- क्या चाहते हो? वो तप में बैठे, समाधि में बैठे, अपने आस्थामें बैठे है। नेपालके राजा बोले- मैं जानता हूँ यह संसार में होता है पिता-पुत्र का झगड़ा हो जाता है, ऐसी कोई बात नहीं पुत्र होता रहता है। तुम अभी थोड़े नादान हो, बच्चे हो, पिता से झगड़कर आये हो तुम चलो मैं तुम्हारे पिताके पास पहुंचा देता हूं। तुम्हारे पिताको समझाऊंगा। सिद्धार्थ बोले- आप कौन है महाराज।

नेपालके राजा बोले- मैं नेपाल का राजा हूँ, तुम्हारे पिताका मित्र हूँ। सिद्धार्थ बोला- मेरा कोई झगड़ा नहीं हुआ पितासे। राजा बोला- फिर तुम क्यों चले आये? सिद्धार्थ बोला- बस, मेरा राज्य में मन नहीं लगा। राजा बोले- तुम अभी लौट चलो, सब सुख सुविधा वहां है यहां क्या है? सिद्धार्थ बोला- नहीं मैं लौटना नहीं चाहता। राजा बोला- कोई बात नहीं मत लौटो मेरे राज्यमें रहो इसे भी अपना ही राज्य समझो और मेरी एक लड़की है वह बड़ी सुन्दर है, जवान है उस लड़की से तुम शादी कर लो, रमण करो इस राज्य में रहो। तुम्हारे पिताश्री के पास दो राज्य हो जायेंगे। तुम्हारे

पिता का भी और यह भी राज्य तुम्हारा हो जायेगा। सिद्धार्थ बोला- मुझे कुछ बातें आपसे पूछनी है। आपने कहा कि पुत्र-पुत्री, पत्नी इसी में अनुरक्त। एक डाकू था रत्नाकर हर रोज लूटनेका और शामको घर जानेका यह उसका पेशा। एक दिन नारद जी के साथ कुछ साधुसंत मिले। वो उनको लूटने के लिए सामने आ गया। तम्बुरा, कमण्डल, भजन, कीर्तन का सामान लूट लिया। संत बोले तू यह ले जा तेरा मोह इनमें पड़ा है ना यह भी ले जा हमतो यही बैठे है और तू अपने घरवालों से पूछकर आ जाना अगर मैं पकड़ा गया तो राजा मुझे सजा देगा। उस सजा को भोगने के लिए आप सभी लोग तैयार है ना। अब तो कोई तकलीफ नहीं है ना। जो मेरा काम है सामान लूटनेका वो मैंने ले लिया और वो तम्बुरे, कमण्डल, कम्बल ले चला और घरको गया, रखा। अब विचार कर रहा है उन सन्तोंने क्या कहा कुछ समझमें नहीं आ रहा। स्त्री, पुत्र तेरे साथ में है क्या? एक-एक को बुलाया। वह बोला यह मैं कमण्डलु, कम्बल मैं यह सब लूटकर लाया हूँ। पुत्र बोला- बहुत अच्छा है पिताश्री। रत्नाकर डाकू बोला-पकड़े गये तो? पुत्र बोला- पकड़े गये तो पकड़े गये फिर सजा भुगतना पड़ेगा और क्या? रत्नाकर बोला- तुम मेरे हिस्से की सजा भुगतोगे क्या? वह पुत्र बोला- मैं क्यों भुगतुंगा? रत्नाकर बोला- पकड़ा मैं ही जाऊंगा ना? मैं तुम लोगोंको खिलाता भी हूँ ना। पुत्र बोला- यह तो आपका काम है पुत्रोंको, पुत्री को परिवार को खिलाना है। रत्नाकर बोला- तो यह सजा भुगतना। पुत्र बोला- ना बोले यह हमारा काम नहीं है। जो करेगा वो भुगतेगा। उन्होंने पुत्री को बुलाया- उसने बोला पिताजी बेटी आपने जन्मी है उसके पीले हाथ करना, वर ढूंढना आपकी जिम्मेदारी है मैं थोड़े ही कोई घरसे बाहर जाती हूँ मेरा थोड़े ही काम है सजा भुगतना यह सब काम आपका है जिसके लिये आप कर रहे हो। जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। पत्नी को बुलाया- पत्नी बोली भर्ता आपही कहलाते हो भर्ता का अर्थ है भरण-पोषण करना। आप मेरे लिये कुछ नहीं कर रहे हो। जिम्मेदारी आपकी है, कर्त्तव्य आपका है इसके लिये कर रहे हो। सजा भुगतोगे तो आप ही हम क्यों भुगतेंगे। परिवार से सब निराशापूर्ण उत्तर मिल गया। रत्नाकर को ज्ञान आ गया इस संसार में कोई अपना नहीं है। संसार से वैराग्य आ गया। संसार त्याग कर दिया और गया साधुओं की मंडली में बोला- महाराज आज आपने मेरी आंखे खोल दी। यह तम्बुरा यह जो सामान है आपका यह लीजिये। मैंने आज जान लिया यह संसार असार है संसार में कोई नहीं है अपना आगे का मार्गदर्शन करें। साधुसंत बोले- बैठ जा और रामनाम का जाप कर। वाल्मीकि ने राम नाम का जाप शुरू किया राम राम तो लेने आया नहीं उसने मरा मरा कहकर जप करने शुरू किया। यह वही वाल्मीकि है जिसने रामायण लिखी है। वैराग्य आ गया।

एक दिन तमसा नदीके किनारे बैठा हुआ क्रौंच पक्षी दो मादा और नर आपसमें समागम कर रहे थे। बड़ा सुन्दर दृश्य है। सूर्य की लालिमा, इधर पक्षी, शाम का वक्त। वाल्मिकी देख रहा है वह बड़ा प्रसन्न हो रहा है प्रकृति का यह दृश्य उसमें दो पक्षी। इतने में एक बहेलिया आता है। उसने मादा पक्षी को तीर मार दिया। मादा पक्षी मर जाता है, पक्षी रोता है। वाल्मिकी के मुखसे एक आह निकलती है। वियोगी होगा पहला कभी आह से उपजा होगा गान, आँखोंसे उमड़कर वही होगी कविता अंजान। वह संस्कृत की कविता जो निकली वह रामायण बनी है।

चित्त की वृत्ति स्वभाव से ही विषयों की ओर जानेवाली है, उसे विषयों से खींचकर श्यामसुन्दर की ओर लगाने का ही नाम वैराग्य है। जिसे वैराग्य है, उसे संग्रह की क्या आवश्यकता? जो कुछ संग्रह नहीं करता उसे रक्षा की भी चिन्ता नहीं।

इस जीवात्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं, न इसको आग जला सकती है, न पानी गीला कर सकती है और न ही वायु

सुखा सकता है; फिर जीवात्मा दु:खी क्यों ? यदि सूर्य पूर्व-दिशा को छोड़कर पश्चिम-दिशा में निकलने लगे, अचल सुमेरु पर्वत उड़ने लगे, तापवाली अग्नि शीतल हो जल में खिलने लग जाय; यह असंभव संभव हो सकता है, परन्तु मानव की प्रारब्ध रेखा नहीं टल सकती। जीवात्मा आसक्ति के कारण दु:खी है। आसक्ति जीव के अध:पतन का हेतु है।

संसार की समस्त विषयों की आसक्ति का परित्याग कर देते हैं। समस्त प्रकार के भोगों में आसक्ति रहित होते हैं।

जन्म, मृत्यु, शोक, बुढ़ापा आदि का बार-बार स्मरण करने से मानव में वैराग्य उत्पन्न होता है। अत: मृत्यु को याद रखना चाहिए। पाप के संस्कारों से छूटने पर ही वैराग्य होता है। हमेशा काल का चिंतन करने से पाप वृत्ति का उदय नहीं होता, और धीरे-धीरे मनुष्य वैराग्य की ओर बढ़ता है। अज्ञान से मोह उत्पन्न होता है। अज्ञान जब समाप्त होता है, ज्ञान आता है, तब वैराग्य होता है। यह वैराग्य ही जीवन का सार तत्व है। और जब वैराग्य हो जाता है तो सांसारिक वस्तुओं में कोई आकर्षण नहीं रहता।

अपने मन पसंद की कोई वस्तु, कोई विषय-भोग या व्यक्ति सामने आ जाये फिर भी उसको स्पर्श करने की, अपने पास रखने की, अपना बनाने की इच्छा न हो वही वैराग्य है। इच्छाओं को कम करो जीवन जीने की आवश्यकताओं को जितना कम करोगे उतना ही पाप कम होगा। जैसे-जैसे तुम्हारी कामना बढ़ती है आप अधिक से अधिक पाप करोगे। जितना भोग कम करोगे उतना पुण्य बढ़ेगा पाप कम होगा। जीवन में सादगी आ जाय यही सभ्यता का लक्षण है। सादगी ही सभ्यता है। इच्छाओं का और इन्द्रियों का दमन करने पर वैराग्य आता है।

ज्ञानका सार है वैराग्य। वैराग्यके बिना असंगता नहीं आयेगी और दु:ख नहीं मिटेगा। दु:खका आत्यन्तिक निवारण वैराग्य से ही होता है। असलमें वैराग्य ही असंगता ही ज्ञानका सार है।

वैराग्य माने राग-द्वेषके वशमें होकर किसीका पक्षपात या किसीके साथ क्रूरता न करना। राग-द्वेष दोनोंकी न्यूनताका नाम वैराग्य है, शिथिलताका नाम वैराग्य है। वैराग्य माने नंगे रहना नहीं, वैराग्य माने पहाड़में जाना नहीं, वैराग्य माने जंगलमें रहना नहीं, वैराग्य माने नदीके तटपर रहना नहीं, वैराग्य माने हमारे हृदयके स्रोतमें किसी प्रकारका दूषण न हो, दूसरेको हानि पहुँचानेवाली कोई वस्तु न हो। हमार हृदय एक सरोवर है।

हमें सिर्फ मनोभावों द्वारा परिचालित नहीं होना चाहिए। मनोभावों की पकड़ को नकारने का साहस ही वैराग्य है। घर-बार छोड़कर जंगल जाना वैराग्य नहीं, बल्कि मन की गुलामी से आजादी पाने की कोशिश वैराग्य है। ठीक इसी तरह इच्छाशक्ति के बल पर वह करना जो आप उचित समझते हों, साथ ही उसे फिर फिर करते रहना जब तक कि मन भी उसके अनुकूल न हो जाए- यही अभ्यास है।

जिनसे हम प्यार करते हैं और उनसे स्वयं भी प्यार करने की आशा रखते हैं, यदि वे हमारे प्रेम को ठुकरा दें, वे हमारी सर्वदा उपेक्षा कर दें, तो प्राय: ऐसे समय वैराग्य हो जाता है। प्राय: इसलिये कहा कि उन्हीं को वैराग्य होता है, जिनके अन्दर कुछ आध्यात्मिक संस्कार रहते हैं। जो मायामोह में अत्यन्त ग्रसित हैं, उन्हें बार-बार तिरस्कृत और अपमानित होने पर भी वैराग्य नहीं होता। उनकी असद् में सद्बुद्धि बनी ही रहती है। यह जीव माया मोह में ऐसा ग्रसित हो गया है, कि स्वयं अपने प्रयत्न द्वारा इसका छूटना अत्यन्त ही कठिन है। श्रीहरि ही कृपा करें सन्त रूप में स्वयं ही आकर दयावश मार्ग बता दें, तब तो इस संसार चक्र से यह प्राणी छूट सकता है। नहीं तो बड़ा कठिन यह काल चक्र है।

संसार को असार व देह को मिट्टी समझना ही वैराग्य है। प्राय: वैराग्य का अर्थ लिया जाता है कि घर बार छोड़कर उदास होकर गंगा किनारे बैठ जाना। इसलिए कुछ लोग कहते हैं कि हम तो गृहस्थवाले हैं अत: हम वैराग्य कैसे करें? कुछ लोगों का कहना है कि घर-बार, समाज, सोसाइटी सब कुछ छोड़कर जंगलों में या शहर से दूर निकल जाओ। जो घर में रहता है, उसके बारे में कहते हैं कि यह राग वाला है, संसारी है, गृहस्थी है। वैराग्य का यह अर्थ नहीं है। घर-बार छोड़कर हरिद्वार जाकर बैठ जाने का नाम वैराग्य नहीं है। संसार को असार जानना, देह को मिट्टी समझना- वैराग्य है। उसके लिए यह जरूरी नहीं है कि तुम शहर या गांव में रहो या हिमालय की किसी गुफा में रहो। अगर आपको यह बात समझ लग गयी कि तुम्हारा यह देह मिट्टी है और जिस संसार को तुम देख रहे हो, यह सदा नहीं रहेगा, इस बात का निश्चय हो जाये, यही वैराग्य है। इस वैराग्य को पक्का करो। संसार में रहने से वैराग्य खत्म नहीं होता। संसार छोड़ देने से भी मन राग से छूट जायेगा- यह बात झूठ है। क्योंकि जिस मन को पकड़ने की आदत हो, राग करने की आदत हो, पहले तो बीवी-बच्चे, घर, रिश्तेदार, धन, प्रतिष्ठा को पकड़ते थे और मान लो ये सब छोड़कर कहीं चला जाये, वैसे तो कोई जाता नहीं है किसी का दीवाला निकल जाये, कर्जदार सिर पर खड़े हैं, पैसा है नहीं, घबराहट के मारे भाग सकता है, किसी की बीवी मर गयी या मियां-बीवी में लड़ाई हो, तो भी भाग जाते हैं, तो ऐसा आदमी फिर चाहे कहीं भी चला जाये, वह वहां भी अपने मन की पकड़ को बना लेगा। जिसके मन में आसक्ति है, वह अगर घर छोड़कर किसी आश्रम में, गुफा में हरिद्वार, ऋषिकेश चला जाये, तो वहां जाकर राग बना लेगा कि ये मेरा कमरा है। क्या यह वैराग्य है? ऐसे तो भगवा पहन लिया, पर मन ही मन सोचता है कि गुरुजी कब मरें और मैं गद्दी पर बैठूं यह वैराग्य नहीं है।

हमारे शास्त्रों में वैराग्य की बात को बड़ा महत्व है। माँ आनंदमूर्ति वैराग्य बाबत कहती हैं कि घर बार छोड़कर गंगा किनारे बैठना या हिमालय की गुफाओं में तपस्या करना ही नहीं है। बल्कि संसार को असार जानना या देह को मिट्टी समझना ही वैराग्य है। अगर आप ये समझ गये कि जिस संसार को तुम देख रहे हो, वो हमेशा नहीं रहेगा और यह शरीर मिट्टी है, ये हम समझ रहे हैं, तो बस यही वैराग्य है। इसी वैराग्य को पक्का करो और मजे से घर में रहो। व्यापार भी करो, नौकरी भी करो, बच्चे भी पालो, रीति-रिवाज जो भी करना चाहो सो करो। संसार में रहने से वैराग्य खत्म नहीं होता।

वैराग्य का मतलब सिर्फ यही है कि आप इस बात को अच्छी तरह जान लो कि यह संसार सदा नहीं था और न ही सदा रहेगा, मन में यह चिंतन चलता रहे, तो यही वैराग्य है। अब ऐसे चिंतनशील व्यक्ति ने पेंट-शर्ट पहना है या धोती पहनी है। तिलक लगाया है या गले में माला पहनी है, इन बातों से क्या फर्क पड़ता है। तुम खुद एक परम संत हो सकते हो, अगर आप अपने वैराग्य को गहरा कर लो। वैराग्य के बिना कोई संत नहीं हो सकता। साधक भी नहीं हो सकता। घर त्याग कर वैराग्य नहीं होता, घर में रहते हुए वैराग्य होता है और यही चुनौती भी है। तुम्हारा मन संयमित है, यही वैराग्य है।

विरक्ति- यह फलाकांक्षा, दुख और सुख का उदाहरण है। मनुष्य का कर्म के साथ, कल्पना के साथ, जीवन की योजनाओं और आशाओं के साथ कितना गहरा संबंध होना चाहिए, यह प्रत्येक व्यक्ति को जानना जरूरी है। जो व्यक्ति इसको नहीं जानते हैं, वे हमेशा दुखी ही रहते हैं। गीता में कहा गया है कि अनासक्ति का अर्थ कर्म का त्याग नहीं होता है। अनासक्ति का अर्थ होता है कि कर्म से उत्पन्न होनेवाले फलों को जो हमारे दिमाग पर असर होता है, उस असर से हम स्वयं को अलग रखें।

तकदीर-भाग्य-मुकद्दर-नसीब, प्रारब्ध, पुरुषार्थ और नियति

पुरुषार्थ परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में है। भगवान की कैसी अद्भुत माया है। कोई कहीं उत्पन्न होता है, उसकी ख्याति कहीं दूसरी जगह होती है। कोई किसी के उदर से उत्पन्न होता है, नाम दूसरे का होता है। कभी सगे भाई एक माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाले परम शत्रु बन जाते हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी देखा गया है, जिनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं वे लोग अपने सगे सम्बन्धियों से अधिक स्नेही और प्रेमी बन जाते हैं। भगवान् ने यह बड़ी कृपा की कि हम सबको उसने सर्वज्ञता प्रदान नहीं की। यदि हम सर्वज्ञ होते तो संसार में सबसे सदा द्वेष ही करते रहते। सदा चिन्ता में ही मग्न रहते कि कल यह विपत्ति आनी है, परसों यह अनिष्ट होना है। जो त्रिकालज्ञ कहे जाते हैं, उन्हें भी हर समय समस्त घटनाओं का ज्ञान नहीं होता, उनकी दृष्टि के सामने भी भूत भविष्य की समस्त घटनायें नाचती नहीं रहतीं, वे भी ध्यानमग्न होकर ही देख सकते हैं। ऐसा न होता तो बड़े ऋषि महर्षि, देवताओं को भ्रम क्यों होता ?

कुछ लोग कहते हैं- प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों का ही महत्त्व है। जैसे उड़ने के लिये पक्षी के दोनों पंख आवशयक है जैसे चलने के लिये रथ के दोनों पहिये चाहिये, जैसे संतति के लिये स्त्री-पुरुष दोनों का होना अनिवार्य है, उसी प्रकार प्रारब्ध और पुरुषार्थ- दोनों से ही काम चलता है। पुरुषार्थ न करे तो प्रारब्ध कैसे बने? पूर्वजन्म के पुरुषार्थकृत कर्म ही तो आगे के जन्मों में प्रारब्ध को बनाते हैं। इसलिये निरन्तर पुरुषार्थ करते रहना चाहिये, किन्तु उसके फल को दैवाधीन समझकर प्रारब्ध के ऊपर छोड़ देना चाहिये, अर्थात् कर्म करने में तो हमारा अधिकार है, किन्तु उसकी फल-प्राप्ति में हमारा अधिकार नहीं।

पुरुषार्थ से प्रारब्ध मेंटा नहीं जा सकता। साथ ही पुरुषार्थ किये बिना कोई रह नहीं सकता। जब तक शरीर है तब तक कुछ-न-कुछ करना ही होगा। बिना कुछ किये कोई एक क्षण भी नहीं रह सकता। सात्त्विक प्रकृति के पुरुष सात्त्विक कार्य करते हैं और रजोगुण, तमोगुण प्रकृति के पुरुष हिंसा, प्रमाद, आलस्य, आदि करते हैं। जो जनमा है, उसकी मृत्यु निश्चय है, मृत्यु किसी प्रकार टाली नहीं जा सकती। फिर भी प्राणी सबसे अधिक मृत्यु से डरता है। उसकी समस्त चेष्टायें इसीलिये होती हैं, मैं जीवित बना रहूँ। जीवन सबको प्यारा है। पुरुषार्थ करना तो उचित है, किन्तु विधाता के लेख पर मेख मारने की सामर्थ्य किसी में है नहीं। जो भाग्य में लिखा है वह होकर ही रहता है, सबका पूर्व जन्म का संस्कार होता है।

किसी भी कार्य में बाधाएं और समस्याएं आनी संभव हैं। उन समस्याओं से घबराकर निरुत्साहित हो जाना जीवन से पलायन है। शांत दिमाग से समस्याओं का समाधान खोजा जाए तो उनका निराकरण संभव हो सकता है। जो लोग छोटी-सी समस्या आने पर भी घबराकर अपने को अशांत और व्यग्र बना लेते हैं, वे जीवन में बड़ी उपलब्धियों से हमेशा वंचित रह जाते हैं।

कठिनाई आने पर उससे डरकर भागो मत। उससे व्यथित भी मत हो। मन में दृढ़ता और धीरज धरकर उसे देखो, पहचानो और समझो। अपनी समस्या को शांत चित्त से अगर आपने समझ लिया है तो उसकी आधी शक्ति तो वहीं खत्म हो गई। शांति और धीरज से उसके समाधान पर आप सही ढंग से विचार करेंगे तो आपको प्रकाश की किरण दिखते देर नहीं लगेगी।

कई लोग पूछते हैं कि हमारे सितारे अनुकूल हैं या नहीं? सितारे अनुकूल हैं या नहीं, इस ओर ध्यान देने की बजाय अपने दिमाग को अनुकूल बनाने की ओर ध्यान दिया जाए तो सचमुच भाग्य बदल सकता है। भाग्य को कोसने में तुम जितना समय लगाते हो, उतना भाग्य के निर्माण में यदि लगाओ तो तुम मंदिर के देवता कहलाओगे और भाग्य तुम्हारा पुजारी।

हमारा जीवन या हमारा भविष्य ठीक वैसा ही बनता है जैसा हम गहराई से सोचते हैं। अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं। हाथ की रेखाओं को हम बदल भी सकते हैं और हमारा प्रयत्न, हमारा पुरुषार्थ सही दिशा में चले तो अपने प्रतिकूल समय को भी हम अच्छे समय में बदल सकते हैं। खुशी तक पहुंचा नहीं जा सकता, उस पर कब्जा नहीं किया जा सकता, उसे अर्जित नहीं किया जा सकता, पहना या ग्रहण नहीं किया जा सकता- वह हर मिनट को प्यार, गरिमा और आभार के साथ जीने का आध्यात्मिक अनुभव है।

बहुत से लोग ज्योतिषियों के चक्कर में उलझकर अपने को अनावश्यक ही तनावग्रस्त बना लेते हैं। तथाकथित हस्तरेखाविद जब किसी को आसन्न संकट की बात कह देते हैं कि अभी तुम्हारा समय प्रतिकूल चल रहा है या आनेवाला समय प्रतिकूल है तब आदमी की क्या मन:स्थिति बन जाती है, आप समझ सकते हैं। हमें यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि हमारा भविष्य वैसा ही बन जाता है जैसा हम हृदय से सोचते हैं।

तकदीर-भाग्य-मुकद्दर-नसीब- भाग्य के जनक विचार है। मनुष्य के माथे पर उसका भाग्य लिखा होता है। भाग्य को ही कर्म का लेख कहा जाता है। मस्तक मे स्थित विचार की जीवन का स्वरूप तय करते है और सम्भावनाओं की रूपरेखा बनाते है। इसलिये एक तरह से यह सच है कि भाग्य का हिसाब माथे पर होता है। माथा यानि मस्तिष्क यानि विचार। मानस विशेषज्ञों ने सही कहा है कि भाग्य का आधार हमारी विचार पद्धति है। विचारों की प्रेरणा और दिशा अपने अनुरूप कर्म करवाते है। कर्म अपने आप नहीं किये जाते उसका आधार विचारों मे होता है। इसलिये कहते है विचार बदल दो ताकि भाग्य बदल जायेगा।

भारत वर्ष मे भाग्य पर विश्वास करने वालों की संख्या अधिक है। कहा जाता है कि भाग्य में जो कुछ लिखा है वह अवश्य होगा और भाग्य को लिखनेवाला ईश्वर है। जन्म कुंडली में भी भाग्य भाव की सर्वाधिक प्रधानता है, कुंडली में भाग्य का भाव नवम है। इतना ही नहीं पूर्व जन्म के भाग्य का भी सामंजस्य कुंडली के भावों के साथ जुडा रहता है। कभी कभी यह भी देखा जाता है कि पति-पत्नी दोनो के भाग्य मिलकर भाग्योदय का योग बनाते है।

भाग्य बिना संसार में कुछ नहीं है, मानसागरी के अनुसार वही व्यक्ति कुलीन है, वही वक्ता है, वही दर्शनीय है, वही सब गुणों से युक्त है, जो भाग्यवान है क्योकि सब कुछ भाग्य से ही मिलता है। कुछ व्यक्ति जन्म से भाग्यवान होते है तो कुछ अपने कर्म से अपने को भाग्यवान बनाते है। कुछ का भाग्य विवाह के बाद खुलता है। विवाह उपरान्त व्यक्ति का सोया भाग्य सप्तम भाव, सप्तम भाव का कारक एवं सप्तमेश की स्थिति के कारण जागृत होता है तो विवाह के बाद बन्द किस्मत खुलती है। किसी किसी को भाग्यशाली पत्नी प्राप्त हो तो उसका भाग्य उदय हो जाता है और भाग्य चमक उठता है।

कर्मठ पुरुष भाग्य को भी बदलने की शक्ति रखता है।

कई बार ऐसा होता कि जो लोग आस्तिक होते हैं वे नाकामयाब रहते हैं और नास्तिक कामयाब। इस तरह के परिणाम का कारण व्यक्ति स्वयं होता है। भाग्य का आस्तिक होने या न होने से कोई संबंध नहीं है। भाग्य उन लोगों का भी होता है,

जो भाग्य को नहीं मानते हैं। वास्तविकता में भाग्य अस्तित्व में तभी आता है जब कर्म होता है। जैसे प्रकाश के बगैर छाया संभव नहीं है, वैसे ही कर्म के बगैर भाग्य का लाभ संभव नहीं है। यदि कोई नास्तिक बेहतर कर्म करता है तो यकीनन उसे भाग्य के सापेक्ष कामयाबी मिलेगी और यदि कोई आस्तिक कर्म की उपेक्षा करता है तो निश्चय ही जीवन में उसे नाकामयाबी मिलेगी। भाग्य तो महज किसी प्रयास की सफलता का प्रतिशत तय करता है। इसलिए बगैर प्रयास के, बगैर कर्म के केवल आस्तिक होने के दम पर सफलता नहीं पाई जा सकती है। भाग्य की प्रबलता पूर्व जन्मों के सत्कर्मों पर निर्भर है, जो हो चुका उसे बदलना व्यक्ति के हाथ में नहीं है, लेकिन वर्तमान सत्कर्म भाग्य को संवार जरुर सकते हैं, इसलिए यह तय है कि सच्चा और सात्विक जीवन जीनेवाला नास्तिक, किसी ढोंगी आस्तिक से ज्यादा सुखी और सफल रहता है। भाग्य और सफलता का यही संबंध है और जो इसे अपना लेता है वही सफल होता है, चाहे आस्तिक हो या नास्तिक।

जो सोचता है, वह होता नहीं। जिसकी मन में कल्पना भी नहीं करते वह सहसा हो जाता है। श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं- मैं प्रात:काल चक्रवर्ती राजा होने वाला था, सो अब चीर-वल्कलधारी तपस्वी होकर वन को जा रहा हूँ। भाग्य का पता नहीं क्या-से-क्या कर दे।

महापुरुषों के जीवन चरित्र हमें भिन्न-भिन्न तरह की शिक्षायें देते हैं। कोई चरित्र तो हमें पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाता है, कोई धर्म की दृढ़ता सिखाता है, कोई सत्य का महत्व, कोई ब्रह्मचर्य का गौरव, कोई दान का श्रेष्ठत्व। हम पात्रों का नाम सुनते हैं, उनके गुणों की ओर खिंच जाते हैं और उनके लिये मन में एक प्रकार की धारणा स्थिर कर लेते हैं। हरिश्चन्द्र का नाम आते ही हमें सत्य का गौरव दिखाई देने लगता है, महाराज शिवि की चर्चा छिड़ते ही अतिथि-सत्कार और धैर्य का गुरुत्व मालूम पड़ने लगता है। इसी प्रकार प्रत्येक के जीवन के लिये यही बात है। महात्मा कर्ण का जीवन एक भाग्य का उपहास है। प्रारब्ध का प्रतिबिम्ब तथा भाग्य का चारु-चित्र है। पुरुषार्थ के आगे दैव का नग्न-नृत्य देखना हो तो वह कर्ण चरित्र में मिल सकता है। मनुष्य कितना भी कुलीन हो, कितना भी शूरवीर हो, कितना भी दानी, त्यागी, विनम्र, सत्यवादी क्यों न हो यदि भाग्य उसके प्रतिकूल है तो सब गुण उसके लिये प्रतिकूल हो जाते हैं। सम्भवतया इसीलिये किसी संस्कृत कवि ने यह कहा है- भाग्यं फलति सर्वत्र न तु विद्या न च पौरुषम्।

अपने नित्य-प्रति के जीवन में अनुभव करें कि हम जिस काम को करना नहीं चाहते उसे कोई शक्ति हमसे विवशतापूर्वक करा लेती है। जिसको हम करना चाहते हैं लाख प्रयत्न करने पर भी वह नहीं होता। जो काम होना होता है वह बहुत साधारण शक्ति से ही हो जाता है। जो नहीं होने को होता उसमें बड़ी शक्ति लगाते हैं, नहीं होने पाता। एक आदमी जन्म से ही स्वस्थ है, निरोग है, धनी है, ऐश्वर्यवान है। दूसरा पैदा होते ही नाना रोगों से ग्रस्त रहता है, समय आने पर भोजन नहीं मिलता, किसी का स्नेह प्राप्त नहीं होता। एक ही कक्षा में पढ़ने वाले छात्र हैं, एक ही पढ़ने का विषय है, एक ही अध्यापक है। उनमें बहुत से सुनते ही समझ जाते हैं, बहुत से श्रम करने पर समझते है, बहुत से ऐसे होते हैं कि लाख प्रयत्न करने पर भी उनकी समझ में बात नहीं आती। एक ही पिता के चार पुत्र हैं। पिता ने समान रूप से शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया है। उनमें से एक महान् विद्वान होता है, दूसरा महामूर्ख, तीसरा व्यापारी और चौथा दुश्चरित्र। चार परमार्थ पथ के साधक एक ही गुरु से दीक्षा लेकर साधना में प्रवृत्त होते हैं। एक तो स्वल्प काल में ही सिद्ध बन जाता है। दूसरा घोर तप, कठोर

व्रत उपवास करके बीसों वर्ष में थोड़ी सिद्धि प्राप्त करता है। शेष ऐसे हैं कि जिन्हें इस जन्म में सिद्धि मिलती ही नहीं। इन सब बातों का समाधान पूर्वजन्म के सिद्धान्त को मानने पर स्वत: ही हो जाता है।

मनुष्य पैदा होने के साथ ही अपने भोग साथ लेकर आता है। यह बात अक्षरश: सत्य है। अन्न के दाने पर, जल के कण-कण पर मुहर छाप लगी है। जिस वस्तु पर जिसका नाम लिखा है, वह उसे अवश्य प्राप्त होगी और जो जिसकी नहीं है, जिसके भाग्य में वह नहीं लिखी है, वह उसे प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकती। पुरुष के भाग्य को कोई जान नहीं सकता इसीलिये हम प्रयत्न करते रहते हैं। यदि मनुष्य को भाग्य का पता लग जाय तो वह प्रयत्न ही क्यों करें ? यह जगत् में मेरा-तेरा, हाय-हाय, लूट-मार, लड़ाई-झगड़ा क्यों हो ? संसार के समस्त प्रयत्न भाग्य के अज्ञान के ही कारण हो रहे हैं। जिन ऋषियों को सूक्ष्मज्ञान के द्वारा भाग्य के रहस्य का पता चल गया है जिन्हें पता चल गया है कि यह शरीर दैववश है, जब तक चलना होगा अवश्य चलेगा, जो भोग प्राप्त होने होंगे वे अवश्य होंगे यदस्मदीयं नहितत् परेषाम् वे कोई इच्छा से कर्म नहीं करते, वे प्रारब्ध कर्मों के भरोसे निश्चेष्ट बैठे रहते हैं। चिन्ता और विस्मय यह अज्ञान के कार्य हैं। जो प्राप्त होना है अवश्य प्राप्त होगा। इसीलिये किसी वस्तु के मिलने पर हम विस्मय क्यों करें ? जो नहीं प्राप्त होना है, लाख प्रयत्न करने पर भी न प्राप्त होगा, उसकी चिन्ता निरर्थक है, भाग्य सबको घुमा रहा है और मतिमन्द पुरुष संसारी व्यापारों में चिन्ता विस्मय करके व्यर्थ ही दुख मोल ले रहा है।

भाग्य बायां हाथ है और कर्म दायां हाथ है। भविष्य जानने का प्रयत्न मत करो कि हमारा क्या होनेवाला है। इससे तुम भयभीत हो जाओगे। भूतकाल को याद मत करो। अतीत को याद मत करो। यदि प्रभु नाम में शक्ति है तो अपने भाग्य को पलट सकते हो। पुरुषार्थ का सहारा पाकर ही भाग्य भली भांति बढ़ता है। भाग्य के मारे हुए व्यक्ति की स्मपूर्ण बुद्धि विपरीत हो जाती है।

प्राणी का पुरुषार्थ तभी तक सफल होता है; जब तक उसका भाग्य साथ देता है। भाग्य के विपरीत हो जाने पर सभी पुरुषार्थ विफल हो जाते हैं फिर जिस कार्य को करते हैं, वही व्यर्थ हो जाता है। भाग्य के अनुकूल होने पर जो समुद्र को पार कर जाते थे, भाग्य के विपरीत होने पर वे गौखुर के सदृश गड्ढे में गिर जाते हैं। अनुकूल परिस्थिति में जो सुमेरु के आघात को सहन करने में समर्थ थे, वे ही परिस्थिति के प्रतिकूल हो जाने पर एक कंकड़ी में मर जाते हैं।

जब भाग्य उलटा होता है, तो विपत्ति के ऊपर विपत्ति आती है, सोना छूने से मिट्टी हो जाता है, स्वजन-विजन बन जाते हैं। अपने पराये हो जाते हैं। सभी उद्योग विफल हो जाते हैं।

जो हमारे भाग्य में होगा हम कहीं भी रहें, वह अवश्य हमें प्राप्त हो जायगा। जो सुख-दु:ख के भोग हमें मिलने वाले हैं, वे अवश्य मिलेंगे। विधाता ने जो इस जन्म के सुख-दु:ख, वय तथा भोग हमारे भाग्य में लिखे हैं, वे हमें, जहाँ भी रहें, वहीं प्राप्त हो जायँगे। जितना धन हमारे भाग्य में लिखा है, उतना हमें बालू में भी बैठे रहने पर प्राप्त हो जायगा। जो हमारे भाग्य में है ही नहीं, वह चाहे सुवर्ण के पर्वत पर जा बैठें तो भी हमें नहीं मिलेगा। संसार में अन्न के दाने-दाने पर, जल की बूँद-बूँद पर, वस्त्र के टुकड़े-टुकड़े पर प्रत्येक का नाम लिखा है। जिस पर जिसका नाम लिखा है, वह जहाँ भी रहे, वहीं उसे प्राप्त होगा। जिस पर तुम्हारा नाम नहीं है, कितना भी प्रयत्न करो, तुम्हें मिल ही नहीं सकता। आमों के पेड़ों को कौन लगाता है, कौन पानी देकर बड़ा करता है, कौन फलों को तोड़ता है, कौन टोकरों में भरकर बेचता है। कितने आदमी मेरे आम, मेरे

आम की रट लगाते हैं, किन्तु उन्हें खाता वही है, जिसका उन पर नाम लिखा है।

भाग्यवश जो सम्मुख आ जाय, उसे प्रभु का प्रसाद समझकर प्रेम से पा लो। कुछ न आवे तो यही समझो, आज प्रभु की यही इच्छा है। इस विचार के लोग इतना तो पुरुषार्थ करते हैं कि जो आ जाय, उसे उठाकर खा लेते हैं, जो भूखा-प्यासा आ जाय, उसे उठाकर दे देते हैं। इसके अतिरिक्त वे भोग्य-सामग्रियों को जुटाने के लिये कोई पुरुषार्थ नहीं करते।

अनन्त जन्म की वासनाएँ ही जीव को संसार-चक्र में घुमा रही हैं। हम जो भी शुभ-अशुभ करते हैं, वे सब संचित होते जाते हैं। उन संचित कर्मों में से जो एक जन्म के भोग लेकर शरीर बनता है, उसे प्रारब्ध कहते हैं। इस जन्म में जो प्रारब्ध के भोग भोगने होंगे, उनका तो बिना भोग के नाश हो ही नहीं सकता। हम आगे के लिये जैसी वासना रखकर मरेंगे, वैसा ही जन्म होगा। प्रारब्ध-कर्म किसी को डण्डा मारकर कार्य नहीं कराते। प्रारब्ध का जैसा भोग होता है, वैसे ही बानिक बन जाते हैं। दरिद्र-घर में जन्म लेने पर भी बहुत से राजा बन जाते हैं। बहुत से राजा के घर पैदा होने पर भी प्रारब्धानुसार भीख माँगते हैं। निर्धन-दरिद्र की लड़की रानी बन जाती है, राजकुमारी वन-वन भटकती फिरती है। हम जो भी इच्छायें करते हैं, वे सबकी सब पूरी अवश्य होंगी, किन्तु कब होंगी यह ठीक नहीं। बहुत से भोग स्वप्न में ही भोगकर क्षय हो जाते हैं, बहुत से मनोरथ द्वारा ही भोगे जाते हैं। बहुतों के लिये जन्म धारण करना होता है। अत्युत्कट पुण्य-पापों का फल यहीं प्राय: मिल जाता है। यह प्राणी भावमय है- जैसा भाव करता है, वैसा ही बन जाता है। यह संसार भी भावमय है- जिसका जैसा भाव होता है, उसे वैसा ही यह दिखाई देता है। सुख-दु:ख का दाता कोई व्यक्ति विशेष नहीं। सभी सुख-दु:ख प्रारब्ध से ही प्राप्त होते है। पुरुषार्थ से आगे लिये संस्कार बन सकते हैं, प्रारब्ध सर्वथा मेटा नहीं जा सकता।

नि:सन्देह मनुष्यों का सुख-दु:ख भाग्य पर ही अवलम्बित है। मनुष्य जो अनेक आश्रय खोजता है, असंख्यों दु:ख निवृत्ति के उपाय करता है, वे एक भी काम नहीं आते। उसका एकमात्र सच्चा आश्रय तो भाग्य ही है। भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरूषम्। मनुष्यों का मोह तभी होता है जब वह दूसरों को अपने सुख-दु:ख का कारण समझता है। राग और द्वेष ही संसार-बन्धन को दृढ़ करनेवाले हैं। जो प्रत्येक कर्म को अपने भाग्य का ही कारण मानता है, ऐसा विवेकी पुरुष कभी मोहग्रस्त नहीं होता।

कीर्ति भी सभी को प्राप्त नहीं होती। एक आदमी है वह दूसरों का भला करता है लोग उसकी बुराई करते है, ढोंगी बताते हैं, कीर्ति लोलुप कहकर उसकी निन्दा करते हैं। दूसरा उतना कुछ भी नहीं करता फिर भी सब लोग उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। एक ऐसे होते हैं, जो न भी कोई कार्य करें तो भी उन्हें मिथ्या कलङ्क लग जाता है। दूसरे ऐसे होते हैं जो चोरी भी करते हैं तो भी उनकी प्रशंसा होती है। इन सब बातों से इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि यह सब भाग्य के अधीन है। जैसे धन, वैभव, विद्या, पौरुष या सदाचार से ही प्राप्त नहीं होता इसमें प्रारब्ध ही मुख्य कारण है, ऐसे ही मान प्रतिष्ठा और कीर्ति की बात है।

जब दैव प्रारब्ध अपने प्रतिकूल हो जाये और पुरुषार्थ निष्फल हो जाये उस समय भी सत्त्वगुण का आश्रय लेनेवाले मनुष्य अपने मन में विषाद नही लाते। **भाग्य को कोसने के बजाय उसे बदलने में लगें तो बात बन जाए।**

प्रारब्ध- हम प्रारब्ध के अधीन होकर कार्य कर रहे है। दैव या प्रारब्ध हमें नचा रहा है, वही हमें भटका रहा है। जैसा होने

को होता है, वैसे ही संयोग जुट जाते हैं, वैसी ही हमारी बुद्धि हो जाती है और उसी भाँति के कर्मों में हमारी प्रवृत्ति होने लगती है। प्रारब्ध पुरुषार्थ से ही निर्मित है और प्रारब्धानुसार ही पुरुषार्थ होता है। इन दोनों में बीज और वृक्ष का-सा सम्बन्ध है। इसीलिये शास्त्रकारों ने प्रारब्ध और पुरुषार्थ को जीवन-रूपी रथ के दो पहिये या पक्षीरूपी पुरुष के दो पंख बताये है। जैसे रथ एक पहिये के बिना नहीं चल सकता, जैसे पक्षी एक पंख से अच्छी तरह नहीं उड़ सकता, उसी तरह पुरुषार्थ और प्रारब्ध दोनों के बिना जीवन का प्रवाह नहीं बह सकता। इसीलिये मनुष्य को बड़ी सावधानी से निरालस्य होकर अपने कर्तव्य का तत्परता के साथ पालन करते रहना चाहिये। उसके फल को प्रारब्ध के, दैव के, भगवान के ऊपर छोड़ देना चाहिये।

प्रारब्ध को कोई भेट नहीं सकता। दैवेच्छा ही प्रधान है। मनुष्य जो करना चाहता है उसे कर नहीं सकता है और जिसे नहीं करना चाहता वह उसे प्रारब्ध वश अवश्य करना पडता है।

संसार मे समस्त प्राणी प्रारब्धवश होकर परिभ्रमण कर रहे हैं। जीव नदी में पड़े हुए तिनके के समान हैं, वह स्वयं चलने में असमर्थ हैं। नदी का प्रवाह जहाँ चाहे इसे ले जाय। कहीं उनका सुन्दर-सुन्दर मरकत मणि के सदृश सुकोमल घास से संग हो जाता है, कुछ समय उसमें उलझ जाता है, दूसरा प्रवाह आया वहाँ से भी बह गया। आगे उसे महान् कंटकों की शाखायें बहती हुई मिलती हैं, प्रवाह के चक्कर में पडकर कुछ दूर उनका साथ हो जाता है। एक और का प्रवाह आता है, काँटों वाली डाली कहीं दूसरी ओर बह जाती है, तृण कहीं दूसरे तृणों में जाकर मिल जाता है। कभी बहुत से तृण एकत्रित हो जाते हैं, कभी सब पृथक-पृथक हो जाते हैं। जैसे वायु से सूखे पत्ते एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते रहते हैं, वैसे प्रारब्धवश जीव कहीं-से कहीं भटकता रहता है। उसका न कहीं निश्चित स्थान है, न स्थायी साथी। जिस-जिसके साथ जितने दिन का संयोग बदा है, उतने दिन रहकर वह उससे अलग हो जाता है। यह नियम मनुष्यों के लिये ही नहीं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, ईंट-पत्थर, स्थावर-जंगम, समग्र प्राणियों सभी के लिये एक-सा लागू है।

यदि संसार में प्रारब्ध की प्रबलता न होती तो ज्योतिषशास्त्र व्यर्थ ही हो जाता। भविष्य की कोई बात कहना सन्दिग्ध हो जाता। प्रारब्धवाद वाले कहते हैं, मनुष्य की आयु, सुख-दु:ख विद्या, संयोग-वियोग, ये जन्म लेने के पहिले ही निश्चित हो जाते हैं। उन्हें पुरुष अपने पुरुषार्थ से टाल नहीं सकता। क्रियमाण कर्मों द्वारा संचित कर्मों को बढ़ाया जा सकता है। किन्तु इस जन्म के प्रारब्ध तो ज्ञान होने पर भी शरीर द्वारा भोगकर ही क्षय करने होते हैं। ज्ञानी अथवा भक्त अपने ज्ञान तथा भक्ति के प्रभाव से उनका अनुभव नहीं करते, क्योंकि उनकी वृत्ति सुख-दु:ख से ऊँची उठी रहती है, फिर भी शरीर तो प्रारब्ध के अधीन ही है। प्रारब्ध भोगने को ही शरीर मिला है। यह सम्पूर्ण संसार दैवाधीन है। विधि के विधान को यदि मिटा देने की सामर्थ्य जीवों में होती तो रावण, कुम्भकरण, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, दिलीप, प्रियव्रत जैसे प्रबल पराक्रमी राजा कभी मरते ही नहीं। रावण ने तो अपनी मृत्यु न होने के अनेकों उपाय किये। तपस्या करके बड़े-बड़े दुर्लभ वरदान प्राप्त किये। उसे अपनी मृत्यु का पता भी लग गया था। ब्रह्माजी ने बता भी दिया था, फिर भी उसने उनकी अवहेलना की। अपनी मृत्यु को असम्भव माना। अन्त में उसे भी विधि के विधान के आगे सिर झुका देना पड़ा। उसे भी मानना पड़ा कि भावी को कोई मेंट नहीं सकता। प्रारब्ध अन्यथा हो नहीं सकती। ब्रह्माजी की लकीर कभी व्यर्थ होती ही नहीं। प्रारब्ध को

कोई मेंट नहीं सकता। विधि का विधान व्यर्थ नहीं बन सकता।

आयु, विद्या, बुद्धि, धन, दु:ख-सुख ये जन्म से पहले ही बन जाते हैं। इसी का नाम है प्रारब्ध। इसलिये इन संसारी पदार्थों की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ को लगाना मूर्खता है।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ दो इस जीवन रूपी रथ के पहिये हैं। ये जीव रूपी पक्षी के दो पंख हैं। इसलिये संसारी भोगों को तो प्रारब्ध पर छोड़ दो। आने पर बहुत हर्ष नहीं, जाने पर विषाद नहीं। जो हमारे प्रारब्ध का होगा, उसे कोई ले नहीं सकता। जो हमारे प्रारब्ध का नहीं है वह किसी भी प्रयत्न से, किसी भी पुरुषार्थ से हमें मिल नहीं सकता। इन भोगों को तो दैवाधीन समझो। अपने पुरुषार्थ का प्रयोग भगवत् कृपा की प्रतीक्षा में करो। भाग्य कुछ नहीं करता वह तो महज एक कोरी कल्पना है। भाग्य की कल्पना साहसहीन लोग करते है। बुद्धिमान लोग अपने पुरुषार्थ से ऊंचे पद प्राप्त कर लेते हैं। पहले प्रारब्ध बना, पिछे बना शरीर। संसार में अचरज यह बड़ी, की मन में बांधे धीर।।

पुरुषार्थ का सहारा पाकर ही भाग्य भली भांति चमकता है। शास्त्रकारों का कथन है स्त्रियों के चरित को, पुरुष के भाग्य को कोई जान नहीं सकता। यह भाग्य मनुष्य को कहाँ ले जायगा, प्रारब्ध कर्म कहाँ ले जाकर पटक देंगे, इसका ठीक-ठीक निर्णय कोई नहीं कर सकता। कितने विधान बनाकर कितनी ऊहापोह करके हम किसी कार्य में प्रवृत्त होते हैं। उत्साह और पुरुषार्थ के सहारे हम अनन्त-जलराशि वाले समुद्र को कुछ भी न समझ कर बाहुओं द्वारा ही उसे पार करने का विचार करते हैं, कूद पड़ते हैं। सम्मुख किनारा भी दिखाई देने लगता है किन्तु बीच में ही अकस्मात् दैवगति से एक ऐसी लहर आती है। कोई ऐसा बवण्डर उठता है कि हम बीच में ही डूब जाते हैं। हमारे सब मनोरथ विफल हो जाते हैं। सब विधान बने-के-बने ही रह जाते हैं। हम अथाह समुद्र में डूब जाते हैं।

जिसका जिसके साथ संयोग होना होता है, वह किसी न किसी रूप में अवश्य हो जाता है। जिस बात को हम असंभव समझते हैं, प्रारब्ध-वशात् वह संभव हो जाती है। स्वर्ग में हो, मृत्यलोक में हो या पाताल में सभी प्रारब्ध के वशीभूत होकर एक दूसरे से मिलते और पृथक् होते हैं। जब-जैसा होना होता है, तब तैसा ही शाप या आशीर्वाद समर्थ पुरुषों द्वारा प्राप्त होता है। कोई न किसी को शाप दे सकता है; न किसी पर अनुग्रह ही कर सकता है। जब जैसा होने को होता है, तब वैसा ही वचन महापुरुषों के मुख से निकल जाता है। इसलिये किसी बात को असंभव सहसा न समझना चाहिये। प्रकृति मंडल में सबका काल निश्चित होता है। उस समय वैसा ही बानक बन जाता है।

मनुष्य प्रारब्ध में निष्ठा करनेवाला है, इस कारण प्रारब्ध ही मुख्य हैं। क्योंकि जब प्रारब्ध उदय होता है, तब सब आ मिलते हैं और प्रारब्धहीन होने से बिछुड़ जाते हैं। प्रारब्ध ही सुख-दु:ख का कारण है। प्रारब्ध को जो जानता है, वह मोह को नहीं प्राप्त होता।

पुरुषार्थ- पुरुषार्थ व्यर्थ है, भाग्य ही सब कुछ है। पुरुषार्थ से मनुष्य भाग्य को अन्यथा नहीं कर सकता।

दैव की इच्छा पूरी होती है। मनुष्य की इच्छा व्यर्थ होती है। यह समझता हुआ भी मनुष्य पुरुषार्थ करने से रुक नहीं सकता। वह कर्म करने के लिये, सफलता प्राप्त करने के लिये विवश है, लाचार है, मजबूर है। वह करेगा, अवश्य करेगा। बिना करे मानेगा भी नहीं। करना कराना भी दैवाधीन है। यदि सभी दैव के आधीन होकर हाथ-पर-हाथ रखे बैठे रहें तो यह

संसार ही न चले। सृष्टि का सम्पूर्ण नाटक ही समाप्त हो जाय। किन्तु सभी चुपचाप बैठ ही नहीं सकते। समस्त प्राणी प्रजनन कार्य बन्द कर दें तो प्रजा की उत्पत्ति रुक जाय, किन्तु ऐसा होना असम्भव है। सभी स्वभाव से प्रेरित होकर प्रजनन कर्म में प्रवृत्त होंगे ही और यह संसार इसी तरह चलता रहेगा। भाग्य को कौन अन्यथा कर सकता है। भावी होकर ही रहती है। भगवान को ऐसा ही मंजूर था। जो होना होता है होकर ही रहता है। भाग्य को कौन अन्यथा कर सकता है। भावी होकर ही रहती है। भगवान को ऐसा ही मंजूर था। जो होना होता है होकर ही रहता है।

पुरुष बली नहि होते है, काल होत बलवान। भीलनि लूटीं गोपिका, वही अर्जुन वही बान।।

पुरुषार्थ यही, पुरुष का बल, सामर्थ्य, उद्योग। जल बिन्दु चाहे न बना सकें किन्तु पुरुषार्थ द्वारा ही धन प्राप्त होता है, पुरुषार्थ से शरीर के उपयोगी सामग्री जुटाई जाती है। पुरुषार्थ न करें तो रण में शत्रु कैसे पराजित हो सकता है। संसार में जो भी हो रहा है पुरुषार्थ से ही हो रहा है। सभी प्रारब्ध के भरोसे हाथ-पर-हाथ रखे बैठ जायँ तो संसार का कार्य ही न चले। आप नित्य प्रति प्रजा की उत्पत्ति के लिये पुरुषार्थ करते रहते हैं। सभी प्राणी पुरुषार्थ के ही द्वारा दु:खों की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होते रहते हैं।

जो पुरुषार्थी है, वह विपत्तियों पर विजय प्राप्त करता है। भगवान पर विश्वास रख कर पुरुषार्थ करने से परिस्थितियों को बदला जा सकता है। पुरुषार्थ से पूर्व के कुसंस्कार नष्ट किए जा सकते हैं। पुरुषार्थ के कारण ही एक साधारण तथा महान व्यक्ति में अंतर है। हमसे प्राय: भूल यह होती है कि हम परिस्थितियों को तो दोष देते हैं, पर अपनी त्रुटियों की ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें दूर करने की बात ही नहीं सोचते। यदि मनुष्य अपने मन में यह सोच ले कि मैं हर स्थिति से लोहा लूंगा और आगे बढ़ूंगा तो निश्चय ही वह आगे बढ़ेगा। उसका निश्चय उसे विपरीत परिस्थितियों से टक्कर लेने की शक्ति प्रदान करेगा, सफलता दिलाएगा।

कोई भी प्राणी किसी का न अनिष्ट कर सकता और न सुख ही पहुँचा सकता है। न कोई किसी को स्वेच्छासे वरदान ही देने में समर्थ है न शाप ही दे सकता है। पूर्वजन्म के जिसके जैसे कर्म होंगे प्रारब्धानुसार वैसा ही उन्हें सुख-दु:ख प्राप्त हो जायगा। शाप और वरदान देनेवाले तो केवल निमित्त मात्र होते हैं, जो कुछ मिलता है, वह तो प्रारब्धानुसार ही मिलता है। परिस्थिति सर्वथा जिनके प्रतिकूल हो, किन्तु दैव अनुकूल हो तो कठिन परिस्थिती में भी मनुष्य उभर सकता है। संसार में दैव का अनुकूल होना महान सौभाग्य का सूचक होता है। पुरुषार्थ वहीं काम देता है, जहाँ प्रारब्ध अनुकूल होता है। जिस काम में दैव विपरीत है, वहाँ पुरुषार्थ विफल हो जाता है। फिर भी पुरुषार्थ तो निरन्तर करते ही रहना चाहिये, क्योंकि पुरुषार्थ करने से ही प्रारब्ध का पता चलता है कि यह वस्तु हमारे भाग्य में है या नहीं।

संसार में हम सब कर्म करते हैं सुख के लिये किन्तु किसी विरले ही काम में विघ्न न पड़ता होगा, नहीं तो शुभ कामों में पग-पग पर विघ्न पड़ते हैं। उन विघ्नों के कारण अल्प साहसी पुरुष काम को छोड़ बैठते हैं। किन्तु जो उत्साही कर्मवीर और परिश्रमी भी होते हैं, वे विघ्नों से डरते नहीं। विघ्नों के सम्मुख ताल ठोंककर युद्ध करने के लिये तत्पर हो जाते हैं। जिस समय वे पुरुषार्थ करने को तत्पर होते हैं, उस समय वे अपने को अजर अमर मानकर कार्य करते हैं, वे प्रतिज्ञा करते हैं सूर्य चन्द्र चाहें विपरीत उदय होने लगें। हिमालय चाहें अपने स्थान से डिग जायँ, समुद्र चाहे सूख जाय, दिग्गज चाहें पृथ्वी को छोड़ दें। सम्पूर्ण प्रकृति चाहें हमारे विरुद्ध क्रान्ति कर दे किन्तु एक जन्म में न सही,

अनेक जन्मों में हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करके ही छोड़ेंगे। ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ पुरुषों के सम्मुख सिद्धि हाथ जोड़े खड़ी रहती है। श्री उन्हें हँसकर वरण करती है, विजय उनके गले में स्वयं जयमाला डालती है समस्त प्रतिकूलताएँ अनुकूल हो जाती हैं। सदाशिव उन विष रूप विघ्नों को पान कर जाते हैं। नीलकंठ उनको पेट में पहुँचाकर पचाते नहीं, न मुख से निकालते ही हैं, केवल कंठ में धारण किये रहते हैं।

जिसमें स्वच्छता हो, कान्ति हो, पवित्रता हो, तेज और ओज हो, उसी की रत्न संज्ञा है। रत्नों में श्री का निवास है। संसार में ९ रत्न प्रसिद्ध हैं, धेनुरत्न, तुरङ्गरत्न, गजरन्त, वनस्पति रत्न, स्त्री रत्न, मणिरत्न, धनरत्न, वारुणीरत्न। इन सबमें श्री का निवास है। ये सब रत्न प्रयत्न से पुरुषोत्तम ही आश्रय ग्रहण करने से प्राप्त होते हैं। उद्योगी पुरुषसिंह ही लक्ष्मी को प्राप्त कर सकता है, उद्योग करने पर भी सफलता श्रीहरि के हाथ में है, अत: प्रयत्न करते हुए हरि को सदा स्मरण बनाये रखना चाहिये।

जिन्होंने अपने आप को गुरु चरणों में समर्पित कर दिया है, उनके सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। संसार में सभी कार्य पुरुषार्थ से होते हैं। उद्योगी अपने उद्योग से भारी-से-भारी संकट आने पर भी विचलित नहीं होता। कार्य करने में विघ्न तो होते ही हैं किन्तु मनस्वी उन विघ्नों को तुच्छ समझकर सर्वथा उनकी अवहेलना करते रहते हैं। एक तो पुरुषार्थ अहंकार पूर्ण होता है, उसकी सिद्धि में तो सन्देह ही रहता है क्योंकि प्राणी अपूर्ण है, किन्तु जो पुरुषार्थ श्रद्धा सहित-गुरुजनों की सेवा सुश्रूषा करते हुए किया जाता है वह कभी असफल नहीं होता। उसकी सिद्धि में तो कभी किसी प्रकार का सन्देह नहीं। उसमें सफलता होना तो ध्रुव है।

जीव सोचता है कुछ, हो जाता है कुछ। भाग्य को कोई मिटा नहीं सकता। कर्म की रेख पर मेख मारना अत्यन्त कठिन हो जाता है। भगवान की इच्छा से ही यह सब हो रहा ह। जीव तो उन्हीं की प्रेरणा से चेष्टा करता है उन्हीं की शक्ति से सभी शक्तिशाली बनते हैं। उनकी शक्ति सर्वोपरि है। उनका संकल्प ही सत्य है और सब तो मिथ्या है। जग जंजाल है। अत: उनकी इच्छा में इच्छा मिला देना यही कर्त्तव्य है, यही प्रधान साधन है। यही पुरुषार्थ है। यही जप, तप, भजन, पूजा, पाठ तथा सब कुछ है। अत: सब में उन्हीं की इच्छा समझकर सभी को उन्हीं की क्रीड़ा समझनी चाहिये।

संसार में, कुछ लोग, पुरुषार्थ को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। सब कुछ पुरुषार्थ से ही प्राप्त होता है। दैव के अधीन रहना निर्वीय आलसियों का काम है। इसलिये भाग्य की चिन्ता न करके निरन्तर पुरुषार्थ ही करते रहना चाहिये। पुरुषार्थ के सम्मुख भाग्य कुछ नहीं है। सोते हुए सिंह के मुख में हरिण स्वयं आकर नहीं घुस जाते। जब तक वह प्रयत्न न करे तब तक भाग्य कुछ भी नहीं।

किसी-किसी का मत है, कि अहिंसा का भाव रखना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य से रहना, बहुत संग्रह न करना, पवित्रता से रहना, संतोष रखना, मन्त्र जप करना, ईश्वर पर विश्वास रखना मन और इन्द्रियों का दमन करना, यही पुरुषार्थ है, सब ओर से चित्त वृत्तियों को हटाकर अपने स्वरूप का चिन्तन करते रहना यही परम पुरुषार्थ है।

पुरुषार्थ करो- केवल आज का ही दिन आपका है- कल व्यतीत हो चला, आनेवाला कल का कोई भरोसा नहीं। अत: वर्तमान जीवन का श्रेष्ठतम उपयोग करो, उठो और पुरुषार्थ करो। आज का दिन परोपकारमय एवं पूजामय व्यतीत करो। व्यर्थ की गपशप में निन्दा चुगली फैलाने में, व्यर्थ की आशा-निराशा में, बातचीत में अपना अमूल्य समय न नष्ट करो

अन्यथा पश्चाताप और रूदन करते हुए इस संसार से प्रयाण कर जाएंगे।

वीर पुरुष रणभूमिमें जाकर उच्चकोटिका मानवोचित पराक्रम दिखाकर अपने धर्मसे उऋण होता है। विद्वान पुरुष फल मिले या न मिले इसके लिये चिन्ता नहीं करता; वह तो निरन्तर पुरुषार्थ्यसाध्य कर्तव्यकर्म करता रहता है।

पुरूषार्थ से सुखद भाग्य- प्रत्येक व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के बलबूते पर ही कर्मों का क्षय करते हैं। सभी प्राणी स्वतंत्र है। सभी अपने भाग्य के विधाता है, निर्माता है। सम्यग्र पुरुषार्थ से सुखद् भाग्य का निर्माण होता है। अर्थोपार्जन की उधेड़बुन में आज श्रम हो रहा है। इस कारण नैतिकता का ऱ्हास हो रहा है।

सत्य के साधकों की तो आत्मा ही परम तीर्थ बन जाती है - मंदिर की सीढ़ियों से उतरते हुए वह आदमी मेरे सामने आ खड़ा हुआ। कहने लगा आप तो साधु हैं, आपको मंदिर आने की क्या जरूरत है। आपको भगवान से क्या चाहिए? मेरे कुछ जवाब देने के पहले वह बुदबुदाता हुआ आगे बढ़ गया। लेकिन मुझे उसके सवाल पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। इसलिए कि कुछ ही लोग खुद की खोज में मंदिर आते हैं, अधिकांश तो चमत्कार की उम्मीद में आते हैं। इसे हमारी परंपरा और पंथों का समर्थन हासिल है। चमत्कार पर भरोसे के कारण पुरुषार्थ दोयम दर्जे पर चला गया है। श्रमण परंपरा भी इससे अलग नहीं है, जबकि भगवान महावीर के संदेशों में प्रमुख रूप से पुरुषार्थ की ही प्रतिष्ठा है।

तीस वर्ष की उम्र में महावीर ने राजमहलों का सुख-वैभवपूर्ण जीवन त्यागकर तपोमय साधना का रास्ता लिया। उनका वह साढ़े बारह वर्षों का साधना-जीवन कष्टों का जीवंत इतिहास है। इस कठोर जीवन का उद्देश्य आत्मकल्याण तो था ही, जनकल्याण भी उनके साथ जुड़ा हुआ था। वह बंधनों से स्वयं के साथ-साथ जन-जन को भी मुक्त करना चाहते थे। केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद जन-जन के कल्याण और अभ्युदय के लिए महावीर ने धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन किया। उन्होंने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका- इन चार तीर्थों की स्थापना की। इसलिए वे तीर्थंकर कहलाए। यहां तीर्थ का अर्थ लौकिक तीर्थों से नहीं बल्कि अहिंसा, सत्य आदि की साधना द्वारा अपनी आत्मा को ही तीर्थ बनाने से है।

उन्होंने स्पष्ट किया कि ईश्वर या भाग्य के भरोसे बैठे रहना कायरता है। परमात्मा हमारा आदर्श जरूर है लेकिन अपने सुख-दु:ख के लिए जिम्मेदार हम खुद हैं। अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं। जैसा हमारा पुरुषार्थ होगा, वैसा ही हमारा भाग्य होगा। उन्होंने आत्मकर्तृत्व और पुरुषार्थ के इस संदेश के माध्यम से ईश्वरवाद और भाग्यवाद में फंसे देश को नवनिर्माण का क्रांतिकारी उद्बोधन दिया।

पुरुषार्थ का अर्थ है कि गहन अंधकार के क्षणों में भी हमें ऐसा कुछ करना चाहिए जिससे रास्ता मिल सके और सदगुणों का विस्तार भी हो सके। इसके लिए महावीर ने उसके आधार में अहिंसा की दृष्टि दी। कहा, सबको जीवन प्रिय है, मरण कोई नहीं चाहता। इसलिए किसी का प्राणहरण पाप है। वाणी और कर्म से किसी को दुख देना, किसी को गुलाम बनाना, औरों का हक छीनना और किसी की उपेक्षा भी हिंसा है। उन्होंने समतामूलक पुरुषार्थ को व्यक्ति के लिए अनंत आनंद का द्वार बताया। पुरुषार्थ का मतलब ही है अपना किया हुआ कर्म। यह हमेशा बोध कराता है कि क्या सही है और क्या गलत। यह भी कि कुछ किए बिना फल नहीं मिलता। पुरुषार्थी जब अपने लक्ष्य में सफल होता है, उसे भाग्य का भी साथ मिलने लगता है और उसके मन से पराजय की आशंका खत्म हो जाती है।

ग्रह - नक्षत्र, ज्योतिष

विस्फोट से पैदा हुये ये आग के गोले, उनेकों वर्षों बाद यह ठंडे होकर ग्रहों मे परिवर्तित हुये। वेद काल मे नक्षत्रों की गणना पर ज्योतिषशास्त्र आधारित था। नक्षत्र की कल्पना पानी पर आधारित है। ऐसी मान्यता है कि विस्फोट से पहले यह सब ग्रहों का वास पानी में था। ग्रहों का अपना कोई भी अस्तित्व नहीं है। सूर्य के प्रकाश से जो ऊर्जा वह ग्रहण करते है इसी से उनका नाम ग्रह पडा। सूर्य का प्रकाश ग्रहों से होकर मनुष्य के शरीर पर पडता है इसी शास्त्रीय आधार पर ज्योतिषशास्त्र का आधार तय हुआ और ग्रहों को मनुष्य का भाग्यविधातधा करार दे दिया गया। एक ही समय में जन्मे लोगों का भविष्य फल अलग-अलग क्यों निकलता है। यह शरारत शरीर की है, ग्रहों की नही। सूर्य प्रकाश और ग्रहों के अलावा पृथ्वी पर फैली अन्य बहुत सी चित्रों का परिणाम मनुष्य के शरीर और मन पर भी होता है, जो जीवन को प्रभावित करता है। उसके आसपास का वातावरण, माहौल, उसका समाज, समय काल, उसकी आर्थिक स्थिति, उसका पडोस इन सभी चीजों का परिणाम मन के द्वारा शरीर पर पडता है। ऐसे में ज्योतिषशास्त्र की प्रमाणिकता को लेकर नया सवाल पैदा होता है कि क्या आसमानी नौ ग्रह ही गणना के लिये पर्याप्त है या धरती के माहौल की गणना को भी किन्ही अतिरिक्त नये ग्रहों के शोध की आवश्यकता है।

कोई भी ज्योतिषि, तान्त्रिक, साधु सन्यासी आपका भाग्य नहीं बदल सकता। ज्योतिषि से मात्र भविष्य मे क्या होने वाला है इसका अन्दाज समय से पहले हो जाता है। एवं व्यक्ति समय से पहले सावधान होकर उस समस्या का सामना करने के लिये मानसिक रूप से तैयार हो जाता है। तथा देव कृपा प्राप्त कर या पूजा, पाठ, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र द्वारा आनेवाले अनिष्ट को टालने की पूरी कोशिश करता है।

मनुष्य की शरीर रचना, उसका स्वभाव, उसका भाग्य, उसके जीवन के सुख-दु:ख, आशा-निराशा, दिन-रात यह सब मदारी के खेल की तरह ज्योतिषशास्त्र में सिर्फ नौ ग्रहों पर चलते है। युग बीते, शास्त्रज्ञ इस विषय की तह तक पहुंचने की कोशिश में लगे रहे और अन्धेरे में तीर मारते रहे। वैज्ञानिक भी पीछे नहीं रहे। ज्योतिषी इस शास्त्र की प्रामाणिकता अपने-अपने ढंग से सिद्ध करते रहे और वैज्ञानिक इसे झुठलाते रहे। यह विवाद अब फिर गहराया है। भविष्य बतानेवालों का भविष्य खतरे में इस रिपोर्ट के मुताबिक अमेरिका के वैज्ञानिकों ने दो हजार ऐसे लोगों की जन्म कुंडलियां दुनिया भर से एकत्रिक की जो एक ही दिन, एक ही समय, एक ही तारीख, एक ही नक्षत्र, एक ही लग्न और एक ही राशि में जन्मे थे। इन कुंडलियों पर शोध के बाद पता चला कि इनके जीवन ग्रहों की चाल पर नहीं चले और ना ही बताये हुये भविष्य के अनुसार चले थे। एक ही राशि में जन्मे इन सभी के जीवन अलग-अलग थे। ज्योतिषशास्त्र पर लगे इस प्रश्न चिन्ह से दुनिया भर के ज्यातिषियों में खलबली मच गई। आनन फानन में एक ज्योतिष परिषद बुलाई गई जिसमें इस शास्त्र के प्रामाणिक होने की बात दोहराई गई। ज्योतिषशास्त्र का आधार ग्रह, नक्षत्र और राशि को माना जाता है तो सर्वप्रथम हमें ग्रहों के वैज्ञानिक आधार पर विचार करना चाहिये। ग्रह क्या है ?

ग्रह-नक्षत्र- ज्योतिषशास्त्र में अपने ग्रहों को अनुकूल बनाये रखने के लिए पूजा-पाठ व अन्य कई उपाय बताये गये हैं। पर आप अनभिज्ञ होंगे कि इसका सीधा संबंध हमारे पर्यावरण से भी है।

इस जगत में चर-अचर, सूक्ष्म एवं स्थूल, नदी, पर्वत अर्थात पूरी धरती ९ ग्रह एवं २७ नक्षत्रों से संचालित हैं। ग्रहों में राजा सूर्य, रानी चंद्रमा, सेनापति मंगल एवं पुरोहित के रूप में गुरु व शुक्र विराजमान हैं। बुध राजकुमार, शनि सेवक, शुक्र सुख के संसाधन एवं राहु-केतु शनि एवं मंगल के सेनापति हैं। इस संसार में सारे सुख-दुख के नियंता ये ग्रह ही हैं। अगर हम प्रकृति में संतुलन कायम रखते हैं, तो हमारे ग्रह भी अनुकूल होते हैं।

सूर्य और चंद्रमा का मानव शरीर पर प्रभाव सर्वाधिक पड़ता है। सूर्य ऐश्वर्य, आत्मविश्वास, आत्मा, पिता एवं राजकृपा के कारक हैं। यदि हम वातावरण में धुल, धुंआ या अन्य जहरीली गैसों का उत्सर्जन करते हैं, तो इनकी कृपा नहीं मिलती है। सूर्य सिंह राशि के स्वामी हैं, जो एक राजकीय राशि है एवं पहाड़ तथा गुफा को नियंत्रित करते हैं। यदि जंगल एवं पहाड़ कटेंगे, तो समस्या मानव जाति उनकी कृपा से वंचित रहेंगे। ग्रहों में चंद्रमा, मन, माता एवं गृहसुख के कारक हैं। मानव शरीर का तीन चौथाई हिस्सा जल से बना है, तो यदि हमारे घर की नालियां नदी की ओर जायेंगी, तो इनकी कृपा नहीं मिल सकती। नदियां अपवित्र हों, तो जीवन में कभी सुख नहीं मिल सकता, मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकते।

गंगा च शिप्रा यमुना सरस्वती, गोदावरी नेत्रवती च नर्मदा,
स चन्द्रभागा, वरुणा त्वसीनदी, कुर्वन्तु मम पूर्ण मनोरथ सदा।

पाणिग्रहण संस्कार में हम इन नदियों से आशीर्वाद लेते हैं। गुरु जीवन के ग्रह हैं। अगर हम अन्न का संरक्षण नहीं करते हैं तो इनकी कृपा नहीं मिल सकती है। अगर हमारी प्रवृत्ति हिंसक हो यानी मांसाहार करते हों, तो घोर दुर्घटना के कारक मंगल की कृपा नहीं मिल सकती। हरे वनस्पतियों पर बुध का नियंत्रण है, जो बुद्धि, लेखन, गणित, भाषा के कारक हैं। अगर हम इन्हें काटते हैं, तो बुध सही निर्णय नहीं लेने देगा। बहुत ज्यादा आराम पसंद एवं सुख-सुविधाओं में रहने से शुक्र की कृपा अगले जन्म में नहीं मिलती। गरीब, दीन-दुखी, मूक प्राणी जैसे पशु-पक्षी, कौआ, चींटी आदि प्राणियों पर शनि का नियंत्रण है।

ज्योतिषि भविष्यवाणी नही करता अपितु ग्रह स्वयं बोलते बताते है। यह बात अलग है कि कौन ज्योतिषि ग्रहों की भाषा कितनी समझता है। ग्रहों का इंसान के जीवन पर काफी असर पड़ता है। ग्रह कई रोगों के लिए जिम्मेदार होते हैं। शरीर में कुल मिलाकर पांच तत्व और तीन धातुएं होती है। जो कि ९ ग्रहों से नियंत्रित होती हैं। जब कोई तत्व या धातु कमजोर हो जाती है तब शरीर में बीमारियां बढ़ जाती है। बीमारी चाहे छोटी हो या बड़ी यह ग्रहों से संबंधित रहती है और ग्रहों की दशा ठीक करके हम शरीर के रोगों को दूर कर सकते है।

जैसे जहां सूर्य मे तेज ओज प्रकाश जगाने का गुण है और नेतृत्व शक्ति का परिचायक है तो चन्द्रमा में शीतलता, प्रकाश तथा चलायमान मनोवृत्ति है। मंगल है ही संहारक ग्रह, युद्ध, लडाई, न्यायालय कहचरी इत्यादि का परिचायक। बुध युवराज सदैव सूर्य का आश्रम ढुंढता है। बुद्धिमान और सुन्दर है। गुरु देवराज गरिमामय उपदेशक पठन पाठन विद्या का द्योतक है, चरित्र में भी सहायक है। ईमानदार है तो जनमानस के लिये भी कल्याणकारी है। शुक्र को तो सभी तरफ से काम देव, रूप-श्रृंगार, भोग ऐश्वर्य आनन्द का सागर माना जाता है। शनि न्यायाधीश बन कर वाचालता रहित न्यायप्रिय कठोर है। राहू केतु क्रमश: शनि और मंगल के छाया रूप है। ग्रह अपने गुण धर्म नही छोडते। कर्म का फल व्यक्ति को देकर ही रहते है।

पाप करके सुखी होना चाहो या भोग लिप्त रह कर मोक्ष की कामना करो, आलसी बन कर ऐश्वर्य चाहो, कुसंगति में रह

कर न्याय चाहो, किसी का अहित कर हित की कामना करो तो भला यह ग्रह आपको कैसे करने देगे ? बोया पेड बबूल का तो आम कहां से खाय। पाप ग्रहों से घिर कर सुखी होना कदापि सम्भव नहीं है। इसी को ज्योतिष में पाप कर्तरी योग कहते है। सप्रम भाव के दोनो और पाप ग्रह अर्थात सूर्य, मंगल, शनि, राहू, केतु में से कोई हो और गृहस्थ सुख पा जाये यह कभी भी सम्भव नही हो सकता। अष्टम दशम मे पाप ग्रह होकर महा भाग्यवान के घर भी जन्म लेकर जातक दरिद्र बन जाता है।

शास्त्र कभी गलत नहीं होता, शास्त्री गलत हो सकते है। ज्योतिषियों के अनुभव में आया है कि ग्रह खुद बोलते है जरूरत है उनकी बोली समझने की पहचानने की। चिन्तन मनन करने की। ग्रहों की चाल, उनका रंग रूप, उनका स्वरूप अथवा प्रभावित क्षेत्र समझने की। अपने कर्म ठीक करते चलो, ग्रह दशा अपने आप ठीक होती जायेगी। पापग्रह अपने आप अपना रास्ता बदल लेगे।

ग्रहों द्वारा ही शरीर के हर भाग का संचालन होता है, सूर्य आखों में स्थित होकर प्राणिमात्र को देखने की शक्ति प्रदान करता है। वही अमाशय में बैठकर पाचन क्रिया संचालित करता है। चन्द्रमा का प्रभाव क्षेत्र मन है और वह शरीर में स्थित जल तत्व का उचित ढंग से संचारित होने मे योगदार देता है। मंगलद्वारा शरीर मे रक्त संचार कि क्रिया सम्पादित होती है। बुध ग्रह जीव की बुद्धि तथा हृदय का नियंत्रक है और जीव को आनन्द का एहसास करने की क्षमता से युक्त बनाता है जिससे उसे तरह-तरह का ज्ञान हासिल होता है। शुक्र ग्रह का निवास प्राणिमात्र की जीभ तथा जननेंद्रियों पर होता है जो उसे हर प्रकार के रसों का आस्वादन करने और जननेन्द्रियों का सुख भोगने व प्रजनन करने की क्षमता प्रदान करता है। उदर की क्रिया संचालित करने में शनि, राहु और केतु तीनों का नियन्त्रण रहता है। शनि प्राणियों के स्नायु मंडल का स्वामी होता है। गुरु बुद्धि व ज्ञान का स्वामी है। राहु का स्थान नाभि से ४ अंगुल नीचे है जहां से वह पिंडलियों में बैठकर प्राणियों को चलने की शक्ति प्रदान करता है। केतु का निवास पाचन तन्त्र और पांव के तलवे में होता है। इस प्रकार यह ग्रह मनुष्य की पाचन शक्ति चलने की गमन शक्ति को नियंत्रित करता है। फल परिपाक की दृष्टि से जन्म-जन्मान्तरों से लेकर आज के वर्तमान क्षण तक किये गये अमुक्त कर्मों के फल संचित फल कहलाते है। अनेक जन्म जन्मान्तरों के संचित कर्म फलों को साथ भोगना सम्भव नहीं है क्योंकि इन कर्मों के परिणाम स्वरूप मिलने वाले कई प्रकार के फल परस्पर विरोधी होते है।

देवता शब्द का अर्थ है दाता। जो देता है वह देवता देनेवाला कहलाता है। हमारे शरीर को मन, प्राण, बुद्धि आदि आवश्यक गुण शरीर में स्थित देवताओं से ही मिलते है। चन्द्र देवता नहीं एक ग्रह है वह एक अधिष्ठान है। चन्द्र का सम्बन्ध मन से है। इसलिये मन शक्ति बढाने के लिये चन्द्र का पूजन करना लाभकारी है। हमारे प्राण का सम्बन्ध सूर्य से है। मंगल का सम्बन्ध शरीर के रक्त से है। बुध का सम्बन्ध वाणी से है। गुरु का सम्बन्ध बुद्धि से है। शुक्र का सम्बन्ध वीर्य से है और शनि का सम्बन्ध जठरा अग्नि से है।

मंगल ग्रह :- मंगल दोष विवाह मे देरी का प्रमुख कारण माना जाता है लेकिन इसे शान्त कर अमंगल को मंगलकारी बनाया जा सकता है। विवाह के मामले मे मंगल दोष का इतना बढ़ा-चढ़ाकर प्रचार किया गया कि मंगली वर-वधू के माता-पिता इसके नाम से ही भय खाते है। यही भय अच्छे भले युवक-युवतियों के विवाह मे व्यवधान और विलम्ब काप्रमुख कारण बनता है।

शक्ति, त्रिशूल, गदा और वर मुद्राधारी चतुर्भुज मंगल भूमि का पुत्र है। सूर्य पिता तथा चन्द्र मातृ स्वरूपा है। इन्हे लाल

रंग प्रिय है। इनका रथ सोने से बना है। लाल रंग के घोडे स्वर्ण रथ मे जुते है। रथ पर अग्निसे उत्पन्न रक्तध्वजा लहरा रही है। तत्व निधि में इनका वाहन मेष अर्थात भेडा है। मंगल साहस, पराक्रम, रोग, बन्धु, युद्ध, सेवा, क्रोध तथा भवन भूमि के प्रमुख कारक है। इन्हे सिंह राशि प्रिय है। मेष तथा वृश्चिक इनकी अपनी राशियां है। सूर्य, चन्द्र और गुरु इनके मित्र है। तथा राहु इनके शत्रु है।

ज्योतिषशास्त्र में शनि व मंगल ग्रह का नाम बहुत डर कर लिया जाता है क्योंकि ये दोनों मानव जाति के लिये अशुभ प्रभाव देने वाले ग्रह माने जाते है। मंगल जहाँ जातक में उत्साह, शक्ति, साहस आदि देता है वही अशुभ प्रभाव में आने पर दुर्घटना, चोट तथा मृत्यु का कारक भी बन जाता है। मंगल अग्नि से पीडा देनेवाला, फोडे फुन्सी, ग्रन्थियों का बढ़ना तथा शल्य चिकित्सा इत्यादि का कारक माना जाता है। इस ग्रह में शारीरिक व मानसिक दोनों स्थितियों का प्रभावित करने का सामर्थ्य है। इसलिये पुलिस, सैनिक, ड्राइव्हर आदि जिन्हें शारीरिक सामर्थ्य की आवश्यकता, राजनेता, अधिकारी, सेनापति तथा क्रान्तिकारियों का होगा कि डाकुओं, लूटेरों व गुण्डागर्दी करने वालों का कारक ग्रह भी मंगल है। इस कारण इसे पाप ग्रह भी कहते है। स्त्रियों को संतान सूर्य व मंगल की कृपा का फल है। यदि किसी स्त्री जातक की कुंडली में मंगल व शनि की युति केन्द्र १२ वे या ७ वे भाव में हो तो उसे विधवा, तलाक, बांझ आदि फल प्राप्त होते है। इसी प्रकार शनि यदि मंगल से दृष्ट हो तो भी अशुभ फल प्राप्त होते है। ऐसे जातक को सन्तान की प्राप्ति तो नहीं होती मगर सम्पत्ति की प्राप्ति अवश्य होती है। ऐसे जातक को यदि किसी परिस्थिति वश संतान हो भी गई, तो उसका दिवाला निकल सकता है। नौकरी से विलम्बित हो सकता है या उस पर भ्रष्टाचार, रिश्वत इत्यादि के आरोप लग सकते है। ऐसे जातक को काफी अपमानित भी होना पड सकता है और उसके मन मे आत्महत्या करने या शहर, घर छोडकर कही जाने का विचार आने लगता है। यह तब भी प्राप्त होता है जब गोचर का शनि मंडल से गोचर करता है। ऐसे जातक को जीवन भर उतार-चढ़ाव झेलना पडता है।

मंगल ग्रह का प्रभाव वीरता, धैर्य, साहस युद्ध, लूटमार, रक्त, व्याधियाँ प्रदोष, गर्भ, प्रदर, रक्त-पित्त, वायु, विशूचिका, खुजली, छोटा भाई, रक्षा विभाग, पट्ठे, सिर, अंडकोष, चौर्य कार्य, चतुराई, हड्डी के आन्तरिक तत्व, मज्जा, डाकाजनी, पुलिस विभाग, सेना विभाग, स्वदेश प्रेम वर रक्षा कार्य आदि का प्रतिनिधित्व करता है। यह बहुत ही भारी ग्रह है। मंगल मुख्य रूप से रक्त का स्वामी होता है। यह रक्त और दुर्घटना की समस्या देता है। यह उच्च रक्तचाप और बुखार के लिए भी जिम्मेदार होता है। यह कभी कभी त्वचा में संक्रमण भी पैदा कर देता है। मंगल ग्रह का प्रभाव व्यक्ति के जीवनकाल के २८वें वर्ष में पड़ता है। मंगल एक क्षत्रिय और पुरुष ग्रह है। इसका प्रभावी समय दिन में होता है। यदि यह व्यक्ति के जीवन में शुभ होगा तो उसे जमीन-जायदाद और संपत्ति आदि में वृद्धि देगा।

शनि ग्रह :- शनि शरीर के वात स्थान, पुसत्व, स्नायु, मंडल और गुह्य प्रदेश को विशेष रूप से प्रभावित करता है। शनि के कारण लंबे समय तक चलनेवाली बीमारियां होती हैं। यह स्नायु तंत्र और दर्द की समस्या देता है। यह व्यक्ति का चलना फिरना रोक देता है। आम तौर पर शरीर को विकृत बना देता है। शनि का प्रभाव जातक के जीवन में ३६ वर्ष की आयु में पड़ता है। यह एक नपुंसक ग्रह है और इसका प्रभावी समय सुबह और शाम का होता है। यदि यह जातक की कुंडली में शुभ अवस्था में होता है तो जातक को दुकान शासन आदि से सम्बन्धित लाभ होता है। शनि न्याय के देवता हैं, इसलिए यदि जातक की कुंडली में अशुभ हैं तो और भी विपरीत परिणाम देंगे।

बुध :- बुद्धि तत्व का स्वामी होने के कारण बुद्धि पर, शरीर मे, वक्ष, वाणी, मतिष्क, शिरोभाग, अंत: संरचना वायु तथा रक्तज दोष, भौतिक कष्ट, शिरो भाग आदि पर प्रभाव डालता है। बुध शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का स्वामी होता है। इसके कारण संक्रमण वाली बीमारियां होती हैं। यह कान नाक गले की बीमारियों से संबंध रखता है। इसके अलावा त्वचा के रोग भी बुध के कारण ही होते हैं। यह ग्रह ३४ वर्ष की उम्र में जातक पर अपना प्रभाव दिखाता है। बुध नपुंसक ग्रह है और इसका प्रभावी समय सुबह और शाम का होता है। यदि यह जातक की कुंडली में शुभ है तो जातक को व्यवसाय और नौकरी के क्षेत्र में लाभ देता है, परन्तु यदि यह विपरीत हो तो व्यक्ति को इन्हीं क्षेत्रों में हानि देगा।

गुरू या बृहस्पति ग्रह :- यह नौकरी, व्यवसाय, लोक सभा विधान सभा को सदसस्यता, न्यायाधीश, लेखन, प्रकाशन, काव्य, राज्य, राज्य कृपा, वाक्चातुर्य आजिवका तथा महत्वपूर्ण पद को प्राप्त कराने वाला है। यह व्यक्ति को स्वस्थ भी रखता है। साथ ही गंभीर बीमारियां भी देता है। कर्करोग, हेपटाइटिस और पेट की गंभीर बीमारियां यही देता है। इस ग्रह को गुरु भी कहा जाता है। बृहस्पति ग्रह का संबंध जातक की शिक्षा और संस्कारों से है। इसका प्रभाव जातक पर १६ वर्ष की उम्र में पड़ता है। यह एक पुरुष ग्रह है और इसका प्रभावी समय दिन का होता है। यदि जातक की कुंडली में यह ग्रह शुभ है, तो शिक्षा और संस्कारों में वृद्धि होगी। परन्तु यदि यह अशुभ हुआ तो जातक को उक्त क्षेत्रों में हानि देगा अर्थात यही जातक के सुधरने और बिगड़ने का समय होता है। यदि गुरु की स्थिति शुभ हुई तो जातक उच्च शिक्षा के साथ-साथ अच्छे संस्कारों वाला होता है।

शुक्र ग्रह :- वस्त्र, रत्न, भूषण, धन, इत्र, पुष्प, सुगन्धित द्रव्य, गीत, काव्य, कोमलता, यौवन, वैभव, साहित्य चर्चा, वशीकरण, इष्ट की सिद्ध कला प्रेम, मधुरवाणी, गायन वादन, टोन्सिल, उदर दाह, स्त्री रोग, कन्या सन्तान आदि पर प्रभाव डालता है। यह शरीर के रसायनों को नियंत्रित करता है। इसके कारण संक्रमण और मधुमेह की समस्या हो जाती है। कभी-कभी यह आंखों को भी प्रभावित करता है। शुक्र ग्रह जातक के जीवन में २५ वर्ष की आयु में अपना प्रभाव दिखाता है। यह एक स्त्री ग्रह है और इसका प्रभावी समय रात्रिकाल है। इसका संबंध जातक की कुंडली में जीवनसाथी और प्रेम से है। यदि यह उच्च का और शुभ है तो जातक को जीवनसाथी से भरपूर प्रेम मिलता है और भौतिक सुखों में वृद्धि होती है। इसका नीच अवस्था में स्थित होना ठीक इसके विपरीत फलदायी होता है।

सूर्य ग्रह :- यह रजा दूतावास, जुआ, सट्टा, वस्त्र का व्यापार, जवाहारत का व्यापार, दवाइयों, फोटोग्राफी, ऊनी वस्त्रों, चाय के रोजगार, अभियांत्रिक व विद्युत सम्बन्धी कार्य, बडे भाई का सुख, दांयी आंख, पितृ यश, कार्य ज्ञान, आत्मा प्रभाव आरोग्य, मन की शुद्धता को बढ़ाता है तथा हृदय, पीठ, नाडी, राज्य कृपा व हड्डियों का प्रतिनिधित्व करता है। सूर्य ग्रहों का राजा है। हर ग्रह की शक्ति के पीछे सूर्य ही होता है। सूर्य के कारण हड्डियों की और आंखों की समस्या होती है। हृदय रोग, क्षयरोग और पाचन तंत्र के रोग के पीछे सूर्य ही होता है। सूर्य ग्रह जातक के जीवन में २२ वर्ष की आयु में अपना प्रभाव दिखाता है। सूर्य एक पुरुष ग्रह है और इसका प्रभावी समय दिन का होता है। यदि कुंडली सूर्य उच्च का है और शुभ है तो जातक को पिता एवं सरकारी क्षेत्र से लाभ प्राप्त होता है और यदि यह नीच अवस्था में है, तो यह विपरीत परिणाम दिखायेगा।

चन्द्रमा :- यह स्मरण शक्ति, भावनाये, मनोविकास, बांयी आंख, फेफडे, छाती, माता, यश, मन, बुद्धि, सम्पत्ति, मातृ चिन्ता, कृषि, कर्म, निन्दा, यश, ललित कलाओं के प्रति प्रेम आदि तथा औषधि क्षेत्र मे अनाज के व्यापार, आयात,

निर्यात, रेल्वे, जहाज, डेयरी, श्वेत रंग की वस्तु, चांदी, मोती आदि का प्रतिनिधित्व करता है। चंद्रमा व्यक्ति के मन और सोच को नियंत्रित करता है। इसके कारण व्यक्ति को मानसिक बीमारियां होती हैं। व्यक्ति को चिंताएं परेशान करती रहती हैं। नींद, घबराहट, बेचैनी की समस्या हो जाती है। चंद्र ग्रह का प्रभाव जातक के जीवनकाल में २४वें वर्ष में पड़ता है। चंद्र स्त्री ग्रह है और इसका प्रभावी समय रात्रिकाल होता है। यदि चंद्र शुभ हो और उच्च का हो तो जातक को माता की तरफ से प्रेम और सांसारिक भौतिक सुखों में वृद्धि होती है। परन्तु यदि यह विपरीत होगा तो अशुभ परिणाम दिखायेगा।

राहु ग्रह :- ज्योतिषशास्त्र मे राहु ग्रह को छाया ग्रह की संज्ञा दी गई है। इसका प्रभाव जन्मकुंडली मे महत्वपूर्ण होता है। राहु को शनिव्रत माना गया है। राहु काल सर्प का मुख है। राहु सदा वक्री रहता है इसलिये राहु ग्रह का पूर्वजन्म से विशेष सम्बन्ध माना जाता है। राहु जिस राशि के घर मे बैठा हो उसके स्वामी के समान, जिसके साथ हो, जिससे दृष्ट हो तथा जिन वर्गों में बैठा हो उनके समान प्रभाव उत्पन्न करता है। प्रतिष्ठा, उन्नति, कठोर वाणी, विदेश, वृद्ध अवस्था, बिजली तथा सम्बधित कार्य, कमीशन दलाल कार्य, रबड उत्पाद, मदिरा एवं मादक पदार्थ, सिनेमा उद्योग, अध्यात्म सिद्धि एवं मुक्ति में राहू अपना महत्वपूर्ण प्रभाव रखता है। चन्द्रग्रहण तथा सूर्य ग्रहण के दौरान राहू की शक्ति में वृद्धि होती है। पूर्णिमा के दिन भरणी नक्षत्र मे तथा चन्द्रमा मिथुन राशि में हो तो राहु की शक्ति में वृद्धि होती है। यह हमेशा रहस्यमयी बीमारियां देता है। इसकी बीमारियां शुरू में छोटी पर बाद में गंभीर हो जाती हैं। इसकी बीमारियों का कारण अक्सर अज्ञात रहता हे। ये खुद आती हैं और खुद ही चली जाती हैं।

शुक्र ग्रह सांसारिक शक्ति का प्रेरक ग्रह है। ज्योतिष शास्त्र मे शुक्र को सुन्दर व आकर्षक वस्तु का कारक माना गया है। जिस प्रकार बृहस्पति को आध्यात्मिक शक्ति का प्रेरक माना गया है ठीक उसी प्रकार शुक्र सांसारिक शक्ति का प्रेरक ग्रह है सौर मंडल में सूर्य तथा चन्द्रमा के बाद शुक्र ही सबसे तेज चमकने वाला ग्रह है। जन्म कुंडली में शुक्र की स्थिति से यौन शक्ति, स्त्री सुख, अलंकार, ऐश्वर्यशाली वस्तुओं, ललित कलाओं, कवित्व, संगीत, दाम्पत्य जीवन, रति शक्ति आदि मामलों का विचार किया जाता है। निर्बल शुक्र जातक को स्त्री सुख में कमी, वीर्य विकार, मूत्र प्रणाली के रोग तथा दरिद्रता जैसे कुफल देता है जबकि बलवान और शुभ शुक्र स्त्री सुख में निरन्तर वृद्धि, ऐश्वर्य और वैभवशाली जीवन, उत्साह रतिसुख में वृद्धि तथा भौतिक सुखों में वृद्धि सर्व सुख सम्पन्न करता है। शुक्र का अशुभ सम्बन्ध जातक को चारित्रिक दोष देकर समाज में अपमानित करा देता है जबकि शुक्र का शुभ सम्बन्ध जातक को मिलनसार तथा मातृ पितृ भक्त बनाता है। शुक्र जातक को अभिनय, चिकित्सा, संगीत ज्योतिष या प्रकाशन के कार्यों में लाभ पहुंचाता है।

सृष्टि चमत्कार है, इसके पार न तो कोई सीमा है और न तो कोई सत्य है। पृथ्वी पर जीवन चक्र की हर घटना हमारे सौर मंडल में स्थित २७ नक्षत्रों और १२ राशियों की छाया में घूम रहे ९ ग्रहों की शक्ति से प्रभावित है। प्रत्येक ग्रहों की स्वयं की रश्मियां होती है। पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक जीव जन्तु, पेड पौधे, पशु पक्षी पर भी इन रश्मियों का प्रभाव हर समय पडता ही रहता है। ग्रहों की रश्मियों का अभाव या अधिकता ही मनुष्य के दुर्भाग्य एवं दुर्योग का कारण बनती है। इसलिये इन समस्त ग्रहों का उचित अनुपात ही मानव जीवन की श्रेष्ठता के लिये आवश्यक है। नव ग्रहों में से एक भी ग्रह की दुर्बलता मानव जीवन के दुर्भाग्य का कारण बन सकती है।

दुनिया मे अरबों खरबों चेहरे है और एक भी चेहरा एक दूसरे से नहीं मिलता। ईश्वर की यह एक अजीब लीला है और कुदरत का एक बडा अजीब करिश्मा। चेहरा देख कर भविष्य का अनुमान लगाना आसान नहीं। मगर भारतीय ऋषि

मुनियों ने इस कला साधना में भी निपुणता हासिल की। इतना ही नहीं किस व्यक्ति का चेहरा किस ग्रह से प्रभावित है। चन्द्रमा की गति के अनुसार मोटे तौर पर तीन प्रकार के चेहरे होते है। १) पूर्ण विकसित चन्द्रमा के समान चेहरे वाले- ये चांद की तरह खिले हुये चेहरे के लोग उत्साही, कल्पनाशील, शीघ्र निर्णय लेने मे दक्ष होते है। ये तीव्र बुद्धिवाले, व्यावहारिक, आशावादी होते है। इनमे धैर्य की कमी होती है। कई बार इनके उतावलेपन के कारण इनके कार्य बिगड जाते है। २) खडा चेहरा- ऐसे चेहरे वाले लोग हमेशा सही दिशा में सोचते है। ये ठंडे एवं तर्कयुक्त दिमाग वाले होते है। ये अपनी हार स्वीकार नहीं करते। वस्तु को जड से पकडते है व समझते है। ये आसानी से हिम्मत नहीं हारते है। परिस्थिति देख कर अपने विचारों को बदल लेते है अन्यथा दृढ़ निश्चयी होते है। ३) अन्दर की और धंसा हुआ चेहरा (नतोदर)- ऐसे चेहरेवाले शान्त व गम्भीर होते है। कुछ निराशावादी होते है। चिडचिडे स्वभाव वाले ये लोग अधिक घुलने मिलने से विश्वास नहीं रखते। स्वामिभक्त और वफादार होते है। परन्तु साहस व उत्साह की कमी एवं मन मर्जी से काम करने की इच्छा इनको भौतिक उपलब्धिधयों की दौड में पिछाड देती है। राहु एक नपुंसक ग्रह है और इसका प्रभावी समय सुबह और शाम दोनों का है। यह जातक की उम्र के ४२वें वर्ष में अपना प्रभाव दिखाता है। यह एक आकस्मिक ग्रह है। यदि यह शुभ है तो आपको राजा बना देगा और यदि यह अशुभ स्थिति में हैं तो रंक बनाकर ही छोड़ता है।

केतु ग्रह- यदि कोई व्यक्ति चोरी डकैती इत्यादि करके दूसरों को सताता है, यदि कोई व्यक्ति विभिन्न रोगों एवं कष्टों से निरन्तर दु:खी हो रहा है तथा कोई व्यक्ति अपचन-अतिसार, पेट के रोगों से परेशान है। निरन्तर दुर्घटनाओं का सामना करना पड रहा है तो इन सबसे निश्चित है कि वह केतु के दोष से प्रभावित है। दु:ख, रोग, दुर्घटना एवं शोक का प्रतीक है केतु। केतु भी नव ग्रहों में से एक है। केतु को अंग्रेजी भाषा में ड्रेगन टेल कहते है। राहु सिहिका राक्षसी का पुत्र का कटा हुआ सिर है और केतु उसी राक्षस का धड है। केतु दुष्प्रवृति का ग्रह है। यह जातक को सताता है। अपने स्वभाव के कारण वह जातक के बने बनाये काम बिगाड देता है। केतु मूलत: तन्त्र, अध्यात्मिकता व ईश्वर भक्ति का ग्रह है। यह मोक्षकारक तथा तीर्थ यात्रा कारक ग्रह भी है। यह अधिक शुभ प्रभाव भी दिखाता है। यह दिव्य शक्ति, इन्द्रियातीत ज्ञान, सम्मोहन विद्या, दूसरों के विचारों को जानने की कला इत्यादि विद्या का कारक है। केतु पापयुक्त हो तो जातक के पाप कर्म या छुपे कर्म अथवा भ्रष्टाचार सामने आते है। समाज में आलोचना होती है तथा आकस्मिक हानि होती है और इस प्रकार यह कर्म भोग से जातक की आत्मा को शुद्ध बनाता है। केतु का वाहन बगुला है। इसका रंग पीला होता है। पीले रंग को प्राथमिकता देने वाले व्यक्ति साधारणतया खतरे के समय कुछ डर प्रदर्शित करेंगे, वे कुछ समय के लिये हौसला बनाये रखेंगे। अपने आस पास के लोगों की टीका टीप्पणी का कुछ विशेष ख्याल नहीं करते। यदि परिस्थिति अड जाये तो घबरा कर हिम्मत छोड देते है। प्रशंसा के बहुत भूखे रहते है। अन्य लोग ऐसे जाचक की तारीफ करे या उसके चमकीले भडकीले वस्त्रों की और बार बार मुड मुड कर देखे यह उन्हे बहुत अच्छा लगता है। कहानियों को, बातों को बडा चढ़ा कर कहना बहुत अच्छा लगता है। अपने बारे में बातों बातों में अपनी बडाई करना अच्छा लगता है। यह पीला रंग आनन्द, ऐश्वर्य, कीर्ति, भव्यता का सूचक है जबकि हल्का या मिश्रित पीला रंग दरिद्रता, बीमारी का प्रतीक है। पीला सुनहरा रंग प्रेम और सौभाग्य का सूचक है। प्रतीकात्मक रूप में इसे सूर्य के प्रकाश का रंग माना गया है। पंच तत्वों में यह पृथ्वी तत्व का प्रतिनिधित्व करता है और योग साधना में मूलाधार चक्र का रंग माना गया है। इसके प्रयोग से मन में पुनीत और सात्विक भावों का उदय

होता है। इसी कारण वैवाहिक अवसरों पर हल्दी के पीले उबटन लगाने की परम्परा है और शुभ अवसरों पर वस्त्रों को पीले रंग से रंग दिया जाता है। यह सृजन और प्रजनन क्षमता का प्रतीक है अत: बसन्त ऋतु में प्रकृति इसी रंग में प्रकट होती है। पीला रंग स्थापत्य कला की दृष्टि से भी अति महत्व रखता है। इस रंग के चाहने वाले कलाकार होते है। वे अपनी कला से सभी का ध्यान आकर्षित करते है। ऐसी बहुत सी इमारते है जो अपने पीले रंग के लिये प्रसिद्ध है। नगर स्थापत्य कला की दृष्टि से भी अति महत्व रखता है। नगर स्थापत्य में पश्चिमी राजस्थान की जैसलमैर नगर अपनी पीत और स्वर्णिम छटा के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध है। केतु भी रहस्यमयी बीमारियां देता है। आमतौर पर त्वचा की और रक्त की विचित्र बीमारियों के पीछे यही होता है। इसकी बीमारियों का कारण और निवारण समझ नहीं आता। यह कल्पना की बीमारियां भी देता है। केतु जातक की ४६ वर्ष की आयु में अपना प्रभाव दिखाता है। यह एक नपुंसक ग्रह है और इसका प्रभावी समय सुबह और शाम का होता है। यदि यह जातक की कुंडली में शुभ है तो संतान और ननिहाल की तरफ से जातक को लाभ प्राप्त होता है और यदि यह अशुभ है तो इन्हीं क्षेत्रों से हानि मिलती है।

बुध ग्रह- बुध सौर मंडल का लघु ग्रह है और सूर्य के निकट है। अथर्ववेद के अनुसार बुध के पिता का नाम चन्द्रमा और माता का नाम तारा है। बुध ग्रह के अधिदेवता भगवान विष्णु है। बुध मिथुन और कन्या राशि का स्वामी है और इसकी महादशा १८ वर्ष की होती है। यह ८८ दिनों में सूर्य की परिक्रमा करता है। यह उत्तर दिशा का स्वामी है। ज्योतिष, शिल्प, चिकित्सा, विधि एवं वाणिज्य आदि का ज्ञान इसी ग्रह से होता है। सूर्य, मंगल, राहु, केतु व शनि के साथ रह कर अशुभ फल देता है। चौथे स्थान पर रहने पर यह प्रभावहीन होता है। जिस व्यक्ति की कुंडली के लग्न मे बुध होता है वह अपने जीवन मे प्रगति की ओर अग्रसर होता है। बुध यदि ६,८ या १२ वे स्थान पर हो तो व्यक्ति को रोग, व्याधि, दुर्घटना एवं मानसिक तनाव आ सकते है। बुध ग्रह की अशुभ स्थिति मे व्यापार मे घाटा, असाध्य रोग, एवं शत्रुओं का भय इत्यादि हो सकता है। पांच मूलांक वाले व्यक्तियों का स्वामी बुध ग्रह है, इनके लिये सोमवार एवं बुधवार शुभ दिन है। इनकी धातु सोना तथा प्लेटिनम् है।

सृष्टि चमत्कार है उस दिव्य शिक्त का जो अप्रत्यक्ष है, निराकार है, अनंत है, सर्वत्र है और संपूर्ण है। इसके पार न तो कोई सीमा है और न ही कोई सत्य। यही अप्रत्यक्ष मूल है इस प्रत्यक्ष ब्रह्मांड का। यही मूल है ब्रह्मांड में गतिमान असंख्य आकाशगंगाओं और सौरमंडलों में समाए असंख्य तारों, सितारों, ग्रहों और उपग्रहों का इस ब्रह्मांड का हर पल रहस्यों से भरा हुआ है। सृष्टि की हर रचना सनसनीखेज है। मृत्युलोक पर जीवन भी इसी प्रत्यक्ष आश्चर्य का एक अंश है। अप्रत्यक्ष से उभरा हर प्रत्यक्ष संपूर्ण ब्रह्मांण्ड में व्याप्त इसी दिव्य शक्ति द्वारा एक दूसरे से जुड़ा है।

इस धरा पर जीवन चक्र का गूढ़ रहस्य भी इसी शक्ति में लुप्त है। हमारे सौरमंडल की आत्मा सूर्य भी उसी आकाशगंगा की तरंगों से प्रभावित है जो विद्युत गति से अंतरिक्ष में स्थित अज्ञात शक्ति के चारों ओर गतिमान है। अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष का उदय, फिर प्रत्यक्ष का एक निश्चित सीमा तक विकास और अंत में इसी प्रत्यक्ष के विनाश व अप्रत्यक्ष में विलीन होने का क्रम ही सृष्टि का नियम है। इस अद्‌भुत चमत्कार का रहस्य काल के तीन आश्चर्यजनक तत्वों में छिपा है जिन्हें हम भूत, वर्तमान और भविष्य कहते हैं। बृहद् पाराशर होरा शास्त्र के अनुसार काल विष्णु भगवान का वह रूप है जिसकी व्याख्या सांसारिक भ्रमजाल में डूबे हुए मानव द्वारा असंभव है। काल अप्रत्यक्ष है। निराकार है। मानव को इसकी उपस्थिति का आभास तो होता है परंतु इसके गर्भ में छिपी शक्ति से वह बेखबर है।

वैदिक ज्योतिष ही इस धरा पर वह ज्ञान है जिसमें काल के विस्मयकारी तीनों तत्वों में झांकने की अद्‌भुत क्षमता है। इस पवित्र ज्ञान से वे चार वेद सुशोभित हैं जो इस सृष्टि के रचनाकार ब्रह्मा के चार मस्तिष्कों (मुखों) का उद्‌घोष करते हैं। यही दिव्य दृष्टि है जीवात्मा की अनंत चेतना की और केवल इसी दृष्टि से सृष्टि का अवलोकन संभव है। इसी दिव्य दृष्टि में मृत्युलोक पर लागू कर्म और कर्मफल का रहस्य छिपा हुआ है। प्रारब्ध का अवलोकन केवल ज्योतिष से ही संभव है। वैदिक ज्योतिष की संपूर्ण रचना जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म, कर्म, कर्मफल, कर्म बंधन और मोक्ष के उस सूत्र में बंधी है जो इस धरा इस जीवनचक्र को ब्रह्मांड में स्थित २७ नक्षत्रों, १२ राशियों, १२ भावों और ९ ग्रहों के सतत गोचर से जोड़ता है। जन्म के समय पूर्व क्षितिज पर उग रही राशि तथा आकाश में नवग्रहों की स्थिति कुंडली के माध्यम से मनुष्य के भविष्य का उद्‌घोष करती है। जन्म के समय चंद्रमा की किसी खास नक्षत्र में स्थिति दशाक्रम निर्धारित करती है यानी जातक के भाग्य में कब, कहां और क्या लिखा है। कुंडली के बारह भाव जीवन के विभिन्न पक्षों को दर्शाते हैं। बारह राशियां इन पक्षों की विशेषताएं बताती हैं तथा आकाश में निरंतर गोचर कर रहे नौ ग्रह वह ऊर्जा प्रदान करते हैं जो जातक को कर्म के अनुसार जन्म से मृत्यु तक का सफर तय कराती है। बारह भावों की कुंडली दर असल ब्लू प्रिंट है मनुष्य के प्रारब्ध का। प्रारब्ध संचित कर्मों का वह हिस्सा है जो जातक को एक जीवन में भोगने के लिए काल यानी समय प्रदान करता है। प्रारब्ध के अनुसार ही मनुष्य का जन्म एक खास काल, परिवार व स्थान पर होता है। इसके अनुसार ही उसके मस्तिष्क व देह (रूप, रस, गंध) का विकास होता है। सतत गोचर में नौ ग्रहों की अदृश्य ऊर्जा दशानुसार जातक में विद्यमान महातत्व के तीन रूप यानी सात्विक, राजसिक तथा तामसिक गुणों को प्रेरित करती है। इन गुणों की हलचल से मस्तिष्क, देह से वह कर्म कराता है जो जातक के प्रारब्ध से मेल खाते हैं।

मृत्युलोक में कर्म चार पुरुषार्थ यानी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के जाल में उलझे चक्र के चारों ओर घूमते हैं और यही चारों पुरुषार्थ अद्‌भुत रूप से कुंडली में विद्यमान होते हैं और यही सच्चा आधार है वैदिक ज्योतिष की गूढ़ता का। यही मूल है काल के गर्भ में छिपी घटनाओं का। मृत्युलोक कर्मभूमि है जीवन की और कर्म मनुष्य के जीवन में छिपी बाध्यता है जो चार पुरुषार्थों द्वारा मृत्युलोक पर प्रकट होती है। कहा भी गया है धारणात् इति धर्म यानी जिससे जगत उत्पन्न होता है, आत्मा जीवन पाती है उसे जानना ही धर्म है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पृथ्वी के सबसे निकट चन्द्रमा है। ग्रहों में चन्द्रमा का महत्त्व अधिक है। मानव जीवन को सबसे अधिक प्रभावित चन्द्रमा ही करता है। वनस्पति एवं पशु-पक्षी भी ग्रहों के प्रभाव से अछूते नहीं हैं। प्रकृति एवं मानव जीवन प्रति क्षण ग्रहों से ही प्रभावित होता है।

प्राचीन मनीषियों ने हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले नौ ग्रहों (७ ग्रह व दो छाया ग्रह) की व्याख्या की है। ये ग्रह है- सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहू और केतू। राहू और केतु को हमारे यहां छाया ग्रह रूप में माना जाता है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने तीन ग्रहों का और पता लगा लिया, वे हैं-१, हसर्ल २, नेप्चुयन ३, प्लूटो, लेकिन इन तीनों ग्रहों का वनस्पति व प्राणियों पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इस बात की जानकारी वैज्ञानिक सही रूप से पता नहीं लगा पाए। क्योंकि इनकी गति काफी धीमी है।

ग्रह हैं तो जीवन को प्रभावित अवश्य करते हैं। हमारे यहां साप्ताहिक दिवसों के नाम भी उपरोक्त सातों ग्रहों के नाम के अनुसार ही रखे गए हैं जैसे- सूर्य से रविवार, चन्द्रमा से सोमवार, मंगल से मंगलवार, बुध से बुधवार, गुरु से गुरुवार, शुक्र

से शुक्रवार और शनि से शनिवार।

नौ ग्रह अपनी स्थिति के अनुसार पृथ्वी, पशु, पक्षी, वनस्पति एवं मानव को प्रभावित करते रहते हैं। कुछ समय पूर्व का एक साधारण सा व्यक्ति या कर्मचारी आज अचानक करोड़पति बन गया। क्यों? क्योंकि यह सब ग्रहों का कमाल है।

ग्रह मानव जीवन के उत्थान, पतन, समृद्धि, सुख, दु:ख निरोगिता, बीमारी आदि में इनका अपना महत्व है। मानव ही नहीं अपितु पृथ्वी पर स्थित सभी प्राणियों की दैनिक क्रिया-कलाप इनसे प्रभावित होते हैं।

आपने अक्सर सुना होगा कि जब कोई मनुष्य तकलीफ में होता है तो वह कहता है क्या करें भाई ग्रहों का चक्कर है, शनि का चक्कर है आदि आदि ! जबकि ऐसे व्यक्ति को ग्रहों के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी नहीं होती, लेकिन उन्हें मानना पड़ता है कि ग्रहों से मनुष्य का जीवन प्रभावित होता है।

सूर्य (ग्रह) के उत्तरायण व दक्षिणायन से मौसम में परिवर्तन होता रहता है- गर्मी-सर्दी व वर्षा। इन तीनों मौसमों से प्राणी व वनस्पति जगत प्रभावित होते हैं जैसे-सर्दी में गर्म कपडे, गर्मी में पतले व बरसात में सिंथेटिक कपड़े धारण करते हैं। छोटा बच्चा जिसे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता, इन मौसम परिवर्तन से सुरक्षा करता है या सुरक्षा के लिए कहता है। प्रकृति मनुष्य को अपने आप शिक्षित करती है।

ग्रहों का प्रभाव मानव तक ही सीमित न होकर संपूर्ण प्राणी व वनस्पति जगत पर पड़ता है। आपने देखा होगा कमल रात को खिलता है और दिन में मुरझा जाता है। सूरजमुखी का पौधा हमेशा सूर्य के सामने ही रहता है। ऐसा चन्द्रमा व सूर्य के प्रभाव से होता है। वर्षा का अधिक व कम होना, यह सब भी सूर्य, मंगल व अन्य ग्रहों के साथ नक्षत्रों के योग पर आधारित होता है। अत्यधिक वर्षा व कम वर्षा से प्राणी व वनस्पति प्रभावित होती है।

जहां तक पशुओं के प्रभावित होने का प्रश्न है आप सभी जानते हैं बिल्ली की आंखों की पुतली चन्द्रकला के प्रभाव से घटती-बढ़ती रहती है। जब सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण होता है तो पक्षी दिन में ही अपने-अपने घोसलों की ओर प्रस्थान करने लग जाते हैं। चन्द्रमा के प्रभाव से जब समुद्र में ज्वारभाटा व तूफान आता है तो जहाज पर स्थित प्राणियों में सबसे पहले जहाज पर रहने वाले चूहे हरकत में आते है और इधर-उधर भागने लगते हैं। पृथ्वी पर होने वाली असामान्य घटनाओं का आभास सबसे पहले पशु-पक्षी और जानवरों को होता है। वे असामान्य आचारण करने लग जाते हैं।

मनुष्य की दिनचर्या में सब ग्रहों में चन्द्रमा का ज्यादा महत्त्व है क्योंकि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पृथ्वी के सबसे निकट चन्द्रमा ही है। वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के शरीर में लगभग ७० प्रतिशत खून के रूप में पानी है। जिस प्रकार समुद्रीय जल चन्द्रमा के प्रभाव से अमावस्या-पूर्णमासी को सर्वाधिक उद्वेलित होता है, उसी प्रकार मानव भी भावनात्मक रूप से विशेष उद्वेलित होता है और उसका प्रभाव उसके मन तथा स्नायुतंत्र की उत्तेजना से प्रकट होने वाले कृत्यों में दिखाई देता है।

चन्द्रमा के धार्मिक पक्ष को देखें तो प्राय: लोग अपनी आराधना, चन्द्रमा की कलाओं को ध्यान में रखकर करते हैं। चन्द्रमा एक राशि में सवा दो दिन तक रहता है।

आप देखेंगे कि इस्लाम में तो मास ही चन्द्रमा की प्रथम कला से प्रारम्भ होता है। हमारे पंचांग व संवत साल भी चन्द्रमा की प्रथम कला से प्रारम्भ होता है। यात्रा में भी चन्द्रमा का बहुत महत्त्व है, जैसे सन्मुख चन्द्रमा श्रेष्ठ, दाहिना शुभ, पीछे के चन्द्रमा में कष्ट, मृत्यु तक हो सकती है, बाईं ओर से हानि होना मानी जाती है।

सहवास, गर्भाधान एवं स्त्री के रजोदर्शन में भी ग्रहों (चन्द्रमा, मंगल, गुरु या शुक्र) का महत्त्व है लेकिन चन्द्रमा का विशेष महत्त्व है। चन्द्रमा एक जलीय ग्रह है और मंगल की प्रकृति उष्ण होती है। यह ग्रह अग्नि प्रधान ग्रह है, जो पित्त रूप में शरीर में रहता है। पुरुष के शरीर की विशेषता है कि यह दोनों साथ-साथ रह सकते हैं। जब बच्चा जन्म लेता है तो घर वाले पूछते है कि बच्चा कौन से पाया में जन्मा है (सोना, चांदी, तांबा, लोहा) क्योंकि जन्म समय चन्द्रमा की स्थिति को देखकर ही पाय का निर्णय होता है। उसके पश्चात जलवा, शादी- विवाह यात्रा व शुभ कार्यों के लिए भी चन्द्रमा की स्थिति को देखा जाता है। तात्पर्य यह है कि मानव जीवन निरन्तर, क्षण-प्रतिक्षण ग्रहों से ही संचालित होता है।

दांपत्य जीवन और पापी ग्रह - प्रत्येक मनुष्य का आचरण समय-समय पर उत्पन्न होने वाली मनोवृत्तियों की प्रबलता के अनुसार हुआ करता था, परंतु यह बर्ताव श्रेयस्कर नहीं था। ना ही उचित था अन्य रीति से विवाह व्यवस्था की शुरुआत सर्वप्रथम श्वेतकेतु से की थी। हिन्दू संस्कृति संस्कारों से परिपूर्ण है। हिन्दू संस्कृति में १६ संस्कार होते हैं। इनमें पाणिग्रहण १३ वां संस्कार होता है। ये उन सभी संस्कारों में सर्वश्रेष्ठ होता है, जो शास्त्रोत पद्धति से वचन व प्रतिज्ञाओं द्वारा दो आत्माओं का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक मिलन करता है, भगवान राम के जीवन में पाप ग्रहों की भूमिका स्पष्ट नजर आती है। उनका वैवाहिक जीवन भी विघटनकारी ही रहा और उनको अपनी पत्नी सीता का त्याग करना पड़ता है। पापी ग्रह किस तरह जातक के वैवाहिक जीवन में अशांति, कलाह, तनाव, तलाक की स्थिति निर्मित करते हैं।

जन्म कुंडली विवाह का स्थान सप्तम भाव है। सप्तम भाव, भावेश एवं कारक ग्रह शुक्र यदि पाप ग्रह से युक्त हो या पाप ग्रह के मध्धय में हो कुंडली में मंगलीक दोष हो या पूर्ण काल सर्प योग हो तो विवाह के कुछ समय बाद ही दांपत्य जीवन में अशांति का जन्म हो जाता है। यदि शनि, मंगल, राहु, केतु, सूर्य स्थित राशियों के स्वामी यदि लग्न या अष्टम भाव में स्थित हो या उनको देखते हो जहां विशेष रूप से इनकी शत्रु अथवा नीच राशि में स्थित हो या परस्पर दृष्टि रखते हों, शत्रु ग्रह के साथ स्थित हो अस्त हो या अन्य प्रकार से पीड़ित हो तब वैवाहिक जीवन में विघटन दुर्घटना आदि को जन्म देते ही हैं। यदि २, ७, १२ भाव में शुक्र के साथ सूर्य बैठा तो स्त्री तेज तर्रार, तत्काल निर्णय करने वाली होती है, जिससे वह अपने परिवार में वैचारिक सामंजस्य नहीं बना पाती हैं और अपने परिवार के साथ दीर्घ काल तक नहीं रह पाती हैं और अलग हो जाती हैं। इन्हीं भावों में शुक्र, शनि की युत्ति भी गृहस्थ को प्रभावित किये बिना नहीं रहती और धीरे-धीरे तलाक की ओर ले जाती है। सप्तमेश शुक्र से अष्टमेश या षष्टेश मंगल दर्दनाक विघटनकारी स्थिति निर्मित करता है और सप्तमेश या शुक्र जन्म लग्न व नवांश दोनों में ही अशुभ प्रभाव में हो तो जातक का विवाह ही नहीं होता यदि होता भी है तो शीघ्र खत्म हो जाता है। अष्टम भाव अधिक पाप पीड़ित होने पर स्त्री कम समय में ही विधवा हो तजाती है। यदि स्त्री पुरुष की कुंडली में इस प्रकार के योग होते हैं, तो नवांश चक्र और ग्रहों की दशा अंतर्दशा को ध्यान में रखकर ही घटना दुर्घटना का समय निर्धारित किया जा सकता है।

वेदों में मुहूर्त विज्ञान के रूप में नौ ग्रह और सत्ताइस नक्षत्र तथा उनके शुभ-अशुभ काल का महत्व वर्णन किया गया है। एक उदाहरण दिया जा सकता है कि केवल स्विच या मीटर होने से घर में बिजली हो ऐसा नहीं है, मूल बिजली घर से तार का संपर्क होना चाहिए। उसी तरह घर में केवल नल होने से पानी नहीं होता, उसका संपर्क पानी की टंकी से होना चाहिए। उसी तरह मानव पिंड में दस इन्द्रिय, मन, बुद्धि का संबंध आकाशस्थ नौ ग्रहों और सत्ताइस नक्षत्रों से है। अगर मूल

बिजलीघर में बिगाड़ आया तो बिजली गुल होती है, वैसे ही नक्षत्रों और ग्रहों में बिगाड़ आने से कई समस्याएं आती हैं। इसी कारण नक्षत्रों-ग्रहों का अनुकूल समय देखकर मुहूर्त निश्चित कर कार्य करने चाहिए।

हमें दिखता है वह चंद्र देवता नहीं एक ग्रह है। चंद्र देवता का वह एक अधिष्ठान है। एक प्रतीक है। देवता शब्द का अर्थ है दाता अर्थात देनेवाला। हमारे शरीर को मन, प्राण, बुद्धि आदि आवश्यक गुण शरीर में स्थित देवताओं से मिलते हैं। हमारे प्राण का संबंध सूर्य से है। मंगल का संबंध शरीर के रक्त से है, बुध का संबंध वाणी से है। गुरु का संबंध बुद्धि से है, शुक्र का संबंध वीर्य से है और शनि का संबंध जठराग्नि से है। उसी तरह चंद्र का संबंध मन से है इसलिए मन:शक्ति बढ़ाने के लिए चंद्रदेवता का पूजन करना लाभकारी होता है। इसलिए चंद्र की पूजा करें।

व्यवसाय में प्रतिष्ठाकारक है सूर्य - सूर्य स्वाभिमानी ग्रह है, अत: इससे प्रभावित जातक अपनी प्रतिष्ठा के लिए त्याग कर करने में नहीं हिचकिचाते हैं। अभिमानी होने के कारण इनका वर्चस्व अपने कार्यस्थल में सर्वदा बना रहता है। सूर्य आत्मा का महत्वपूर्ण कारक है। इसी कारण जब जातक अपनी स्वेच्छा से कोई कार्य करते हैं, तब उनमें उन्हें विशेष संतुष्टि मिलती है।

ग्रहों में सूर्य ग्रह को राजा की मान्यता दी गई है, इसलिए स्वाभाविक है उसमें राजा के समान मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा, यश, उदारता, नेतृत्व करने की क्षमता, महत्वाकांक्षा, प्रतिनिधित्व की निपुणता एवं कुशलता परिपूर्ण होना चाहिए। चूंकि अब राजा का स्वरूप सरकार हो गया है, इसलिए सरकारी कर्मचारी वर्ग के प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों में, इनकी गणना में विशेष ध्यान देना चाहिए।

व्यवसाय के क्षेत्र में भी सूर्य ग्रह को प्रतिष्ठा का कारक माना गया है। यही कारण है कि डाक्टर, वकील, मैनेजर, चार्टर्ड एकाउंटेंट, ज्योतिषी इत्यादि में यह ग्रह उनके लाभ एवं प्रसिद्धि का कारक माना गया है। इस ग्रह का प्रमुख योगदान व्यक्ति विशेष के स्तर तौर तरीके एवं समृद्धि में निरंतर वृद्धि कर सकते हैं। सूर्य ग्रह व्यापारिक उच्च घरानों की पारंपरिकता में उनके कुल के नाम में वृद्धि कराते हैं। इस ग्रह की विवेचना वैसे तो समाज के सभी वर्गों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लिए करना उपयुक्त है, जैसे राजनेता, अभिनेता, प्रतिष्ठित व्यक्ति, जो किसी भी क्षेत्र में कार्यशील क्यों हों।

यह एक स्वाभिमानी ग्रह है, अत: इस प्रकार के जातक अपनी प्रतिष्ठा के लिए त्याग तक करने में नहीं हिचकिचाते हैं। अभिमानी होने के कारण इनका वर्चस्व अपने कार्यस्थल में सर्वदा बना रहता है। सूर्य आत्मा का महत्वपूर्ण कारक है। इसी कारण जब जातक अपनी स्वेच्छा से कोई कार्य करते हैं, तब उनमें उन्हें विशेष संतुष्टि मिलती है। ये किसी के भी बहकावे में नहीं आते, उनकी इच्छा ही सर्वोपरि होती है।

उत्साहवर्धक ग्रह होने से जातक जीवन के अंत तक एक विचित्र शक्ति द्वारा संचालित होते हैं। कार्य में पूर्णरूपेण समर्पित रहते हैं। चाहे वह कार्य स्वयं का हो अथवा किसी भी व्यक्ति का क्यों न हो। महत्वाकांक्षा में इनकी कोई मिसाल नहीं, क्योंकि स्वयं की खूबियों से पर्याप्त रूप से वाकिफ रहने से आकांक्षा स्तर एवं योग्यता स्तर दोनों में सामंजस्य स्थापित करने से अपनी प्रतिभा को चहुंमुखी दिशा में विकास करने सर्वदा तत्पर रहते हैं। इन्हें सफलता भी शनै: शनै: मिलती है। यदि जातक सरकारी कर्मचारी है तो वृद्धावस्था तक उच्च पदों में आसीन होने में सफल रहते हैं।

सूर्य ग्रह से पिता के स्तर एवं उनके जीवनकाल के कार्यकलापों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जब

जन्मकुंडली में सूर्य को पर्याप्त रूप से शुभ ग्रहों द्वारा बल मिलता है तब नि:संदेह जातक के पिता को भी मान्यता मिलती है। सूर्य ग्रह का प्रभाव शारीरिक रूप से नेत्र एवं हड्डी की ओर रहता है। ग्रह निर्बल होने पर नेत्र अथवा हड्डी के जोड़ों में तकलीफ होती है, कई परिस्थिति में सूर्य से प्रभावित जातक तीखापन अथवा कटाक्ष देकर वाक्य की शुरुआत करते हैं, दूसरों की मर्यादा तथा प्रतिष्ठा खिल्ली उड़ाना इनके स्वभाव में आ जाता है। सूर्य ग्रह निर्बल होने से चेहरे की कांति कम हो जाती है। गंभीर बातों में अरुचि, दूसरों की प्रतिष्ठा से ईर्ष्या, ज्ञान की बातों से दूर, कुतर्क की शक्ति का विकास निरंतर होता है। जब ग्रह कमजोर हो जाता है, तब व्यक्ति ज्यादा कल्पनाप्रिय हो जाते हैं एवं क्रमश: जीवन की संवेदनाओं से दूर भागने की कोशिश करते हैं।

मंगल करे अमंगल- मंगल ग्रह अग्निप्रधान ग्रह है। जिसका रंग लाल होता है। यह ग्रह दक्षिण दिशा का स्वामी है। मंगल प्रधान व्यक्ति अत्यंत महत्वाकांक्षी होते हैं, इसी कारण इनमें उत्साह और कार्य करने की इच्छा प्रबल रहती है। इनमें ग्रहण शक्ति, तर्कशक्ति और पूर्ण परिपक्वता होती है। इनका तर्क अकाट्य होता है। यदि द्वितीय, पंचम, दशम और एकादश भाव के स्वामी होकर नवांश में भी बल मिले तब मंगल ग्रह का प्रभाव विशेष में पाया जाता है।

जब जन्म कुंडली में मंगल योगकारक ग्रह होकर बलशाली हो, उस समय मंगल के विशेष गुण देखने को मिलते हैं। मंगल प्रधान व्यक्ति किसी के भी समझ झुकना अथवा घुटने टेक देने में कठिनाई अनुभव करते हैं। अपने जीवन में आने वाली हर मुसीबत को चुनौती के रूप में स्वीकार करना पसंद करते हैं।

मंगल प्रधान व्यक्ति जब क्रोधित हो जाते हैं, तब अपने आप पर नियंत्रण नहीं कर पाते हैं। तीव्र उत्तेजना के समय स्वयं पर नियंत्रण पाना अत्यंत दुर्लभ हो जाता है। इन्हें किसी भी बात की परवाह नहीं होती है। इनकी वाकपटुता आसानी से लोगों का ध्यान अपनी और आकर्षित करती है। इनमें नेतागिरी के विशेष गुण देखने को मिलते हैं। मंगल ग्रहों में सेनापति की भूमिका अदा करते हैं, जिसके फलस्वरूप इनके अनुयायी भी काफी होते हैं। मंगल एवं शनि की युति यांत्रिक कार्य में सफलता बताती है तथा स्वाभाविक रूप से स्थायी सम्पत्ति का कारक है। यदि व्यक्ति विशेष में इच्छाशक्ति हो तो ये फार्म हाउस अथवा कृषि संबंधी क्षेत्र में विशेष रूप से आय के स्त्रोत निकाल सकते हैं। मंगल जब नीच का होकर निर्बल हो तथा अष्टम अथवा सप्तम, द्वितीय, एकादश भाव में हो, तब कुतर्क की शक्ति में वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप इनके पारिवारिक जीवन में अथवा निकट संबंधियों के बीच मतभेद होता है। ऐसे मंगल प्रधान व्यक्ति में कई बार हिंसात्मक प्रवृत्ति तक आ सकती है। लड़ाई-झगड़े, मुकदमा इत्यादि से नुकसान भी उठाना पड़ता है। यदि मंगल शनि के साथ लग्न, लग्नेश एवं उसका कारक सूर्य की युति हो, तब मनुष्य में जिद्दीपन अति तीव्र हो जाता है। ये दूसरों से अपनी बात मनवाने का असफल प्रयास करते हैं। मतभेद, गृहकलह तथा द्वेष तक की भावना कई परिस्थितियों में प्रबल हो जाती है। मंगल जिस समय दूषित अथवा म्लेच्छ ग्रह द्वारा आक्रांत हो जाता है अर्थात शनि, राहु, केतु के साथ युति के द्वारा आक्रांत होता है एवं तृतीयेश, षष्ठेश, अष्टमेश अथवा एकादश का प्रतिनिधित्व करते हुए जब नवांधश में निर्बल हो जाता है उन परिस्थितियों में आत्महत्या अथवा विषावह पदार्थ द्वारा मृत्यु को इंगित करते हैं। ऐसे कई हालात में व्यक्ति विशेष को अग्नि अथवा ज्वलनशील पदार्थ, उदाहरण स्वरूप बारूद, पेट्रोल इत्यादि से स्वयं को दूर ही रखना चाहिए। संवेदनशील होने के कारण इनमें तीव्र प्रतिक्रिया होती है, जिससे उत्तेजना

की अवस्था में दूसरों को चोट भी पहुंचा सकते हैं। मंगल जब स्वाभाविक रूप से बलशाली होता है एवं जन्म कुंडली में योग कारक ग्रह को निर्देश करते हैं तब ऐसे जातक की रुचि डिफेंस में विशेष रूप से होती है तथा युद्ध के क्षेत्र में इनको विशेष शौर्य प्राप्त होता है। मंगल निम्नस्तरीय व्यक्तियों में चोरी की भी प्रवृत्ति दे सकता है। मंगल दाम्पत्य जीवन के लिए एक प्रकार से सुख एवं संतुष्टि का कारक भी है, इसलिए आमतौर पर जब जन्म कुंडली में प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम अथवा द्वादश में विद्यमान रहता है तब ऐसी कुंडली को मंगली कहते हैं। मंगल जब स्त्री जातक की कुंडली में दूषित पाया जाता है, तब उनके जीवन में मौखिक विवाद की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। निर्बल मंगल ग्रह कलह, मतभेद अथवा वैवाहिक सुख का हरण तक कर सकता है, इसलिए कन्या की जन्म कुंडली में मंगल का विचार विशेष रूप से विवाह के समय करना नितांत आवश्यक है।

शरीर पर ग्रहों के लक्षण- यह सर्वविदित है कि मनुष्य का जीवन विभिन्न ग्रहों के अधीन होता है किंतु इनमें भी कोई एक ग्रह ऐसा होता है जो उसे विशेष रूप से प्रभावित करता है। वह जो कुछ भी सोचता है, करता या फल-कुफल भोगता है, उसमें उस ग्रह विशेष की भूमिका अग्रणी होती है। निम्नलिखित कुछ संकेत हैं, जिनके आधार पर बिना जन्मकुंडली देखे भी किसी व्यक्ति मात्र को देखकर यह पता लगाया जा सकता है कि वह किस ग्रह विशेष से प्रमुख रूप से प्रभावित है और उसके जीवन पर उसका क्या परिणाम आने वाला है।

सूर्य- लक्षण- रंग गोरा, ललाट लालिमायुक्त, ऊंचा कद, तेजस्वी आंखें, चेहरे पर ओज, वाणी में प्रभाव, मुख कुछ गोल, गति तेज, कान कनपटी से सटे हुए।

प्रभाव- सूर्य से प्रभावित लोग स्वतंत्रता प्रेमी होते हैं। अपने कार्य में किसी का हस्तक्षेप उन्हें पसंद नहीं। सत्यवादी व स्पष्टवक्ता होते हैं तथा अन्याय को सहन नहीं कर पाते। पैसा कमाना व खर्च करना दोनों जानते हैं। अच्छे प्रशासक व अच्छे मित्र होते हैं और सामान्यतया उच्च पद प्राप्त करते हैं।

चंद्रमा- लक्षण- भरा हुआ शरीर, गोलाकार, अंग, गोल मुख, फूले हुए गाल, त्वचा तैलीय, अंगों में कोमलता व शीतलता तथा आड़े-तिरछे दांत।

प्रभाव- चंद्र प्रभावित लोग अत्यधिक कल्पनाशील, भावुक व स्वप्नदर्शी होते हें। अस्थिर स्वभाव के होने के कारण वे नित नवीनता ढूंढते हैं। छोटा सा भी आघात लगने पर वे व्यथित, निराश व हताश हो जाते हैं, कला व संस्कृति के अनुरागी, यात्राप्रेमी, शांतिप्रिय ये जातक सामान्यतया उदर की बीमारियों से ग्रस्त रहते हैं।

मंगल- लक्षण- क्या आंखें, क्या मुख और क्या हथेली-मंगल प्रधान व्यक्ति के पूरे शरीर में ही एक लाल आभा प्रस्फुटित होती है। इसके अतिरिक्त शुष्क त्वचा, कठोर चेहरा, घुंघराले बाल, लंबा मुंह, हल्का शरीर व पतली कमर इनकी विशेष पहचान है।

प्रभाव- ऐसे जातक साहसी किंतु झगड़ालू, उग्र, उतावले, क्रोधी व असंयमी होती हैं। आलोचना व विरोध इन्हीं बर्दाश्त नहीं। अपमान कभी नहीं भूलते व अवसर मिलने पर शत्रु को परास्त करने का प्रयास करते हैं। हठ इनका शत्रु है व दुर्घटनाओं की आशंका इन पर हमेशा बनी रहती है। अग्नि व विस्फोट का इन्हें डर रहता है।

बुध- लक्षण- पारिवारिक सदस्यों की तुलना में ऊंचाई कम व रंग सांवला, सुमधुर, शुद्ध व मुखर वाणी, चेहरा कुछ

चौड़ाई लिए हुए, प्रशस्त ललाट, आंखों व भोहों में आकर्षण, दांत बड़े।

प्रभाव- बुध प्रधान व्यक्ति स्वार्थी, धन लोलुप व वाचाल, मित्र बनानेमें माहिर, मानसिक रूप से सजग किंतु तनावग्रस्त, त्वरित निर्णय क्षमता सम्पन्न, किंतु फल की तत्काल इच्छा रखने वाले, अगंभीर व लचीले स्वभाव के शीघ्र क्रुद्ध होने वाले, किंतु अगलेही क्षण क्रोध को भुला देने वाले, हस्तक्षेप सहन न करने वाले धन के लिए जोखिम उठाने वाले व एक स्थान पर न टिकने वाले होते हैं।

गुरू- लक्षण- गंजापन, गुरू प्रधान व्यक्तियों की सबसे प्रबल पहचान है। बशर्ते यह अनुवंशिक न हो। मंगल प्रभाव व्यक्तियों के विपरीत इनकी आंखों में लालिमा का अभाव होता है। औसत कद-काठी, सामने के दो दांत बड़े व ठुड्डी में गड्ढा इनके अतिरिक्त लक्षण हैं।

प्रभाव- ये स्वाभिमानी, महत्वाकांक्षी, सत्ता प्रेमी, स्वाधीन प्रवृत्ति के, अनुशासन प्रिय, विवेकशील, उत्तरदायित्व को निभाने वाले, दूरदर्शी, विचारशील व नेतृत्व क्षमता सम्पन्न होते हैं। कभी-कभी अहंकारी, सत्ता लोलुप व तानाशाह होते भी देखे गए हैं, जीवन में संघर्ष बहुत करते हैं। चर्म रोग, डायबिटीज व उदर संबंधी अन्य विकारों से सामान्यतया पीड़ित रहते हैं।

शुक्र- लक्षण- मोहित कर देने वाला रूप शुक्र प्रधान लोगों का सबसे प्रमुख लक्षण है। स्निग्ध, कोमल व प्रभापूर्ण मुख, गुलाबी ओंठ, छोटी-छोटी सुंदर व श्वेत दंत पंक्ति, लंबी नासिका तथा सभी अंगों में सौंदर्य व संतुलन इनके अन्य पहचान चिन्ह हैं।

प्रभाव- ये लोग अत्यंत कल्पनाशील तथा राजसी प्रवृत्ति के होते हैं। ग्लैमर की दुनिया में ये अच्छी सफलता पाते हैं। महिला प्रेमी होते हैं। लेखन, पत्रकारिता, कानून, न्याय तथा प्रशासनिक क्षेत्र में अच्छी सफलता पाते हैं। स्वभाव से भावुक और कल्पनाशील होते हैं।

नवग्रह मंडल में राहु का प्रतीक वायव्यकोण में काला ध्वज है। राहु की महादशा १८ वर्ष की होती है। राहु के अधिदेवता काल तथा प्रत्यधिदेवता सूर्य हैं।

राहु का स्वरूप- राहु का मुख भयंकर है। ये सिर पर मुकुट, गले में माला तथा शरीर पर काले रंग का वस्त्र धारण करते हैं। इनके हाथों में तलवार, ढाल, त्रिशूल और वरमुद्रा है। राहु सिंह के आसन पर विराजमान हैं। ध्यान में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं।

राहु के ग्रह बनने का कारण- राहु की माता का नाम सिंहिका है, जो विप्रचिति की पत्नी तथा हिरण्यकशिपु की पुत्री थी। माता के नाम से राहु को सैंकिकेय भी कहा जाता है। राहु के सौ और भाई थे, जिनमें राहु सबसे बड़ा था। समुद्रमंथन के बाद जिस समय भगवान विष्णु मोहिनी रूप में देवताओं को अमृत पिला रहे थे, उसी समय राहु देवताओं का वेश बनाकर उनके बीच में आ बैठा और देवताओं के साथ उसने भी अमृत पी लिया, परंतु तत्क्षण चंद्रमा और सूर्य ने उसकी असलियत बता दी। अमृत पिलाते-पिलाते ही भगवान ने अपने तीक्ष्ण धारवाले सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट डाला। भगवान विष्णु के चक्र से कटने पर सिर राहु कहलाया और धड़ केतु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परंतु अमृत का संसर्ग होने से वह अमर हो गया। फलस्वरूप ब्रह्माजी ने उसे ग्रह बना दिया। तभी से अन्य ग्रहों के साथ राहु भी ब्रह्मा की सभा में बैठता है।

राहु की विशेषता- राहु ग्रह मंडलाकार होता है। पृथ्वी की छाया भी मंडलाकार होती है। अत: राहु इसी छाया का भ्रमण करता है। यह छाया का अधिष्ठातृ देवता है। असूया (सिंहिका) पुत्र राहु जब सूर्य और चंद्रमा को तम से आच्छत्र कर लेता है, तब इतना अंधेरा छा जाता है कि लोग अपने स्थान को भी नहीं पहचान पाते।

ग्रह बनने के बाद भी राहु बैर-भाव से पूर्णिमा को चंद्रमा और अमावस्या को सूर्य पर आक्रमण करता है। इसे ग्रहण या राहु पराग कहते हैं। मत्स्यपुराण के अनुसार राहु का रथ अंधकार रूप है।

नौ ग्रह २७ नक्षत्र- नौ ग्रह क्रमश: सूर्य, चंद्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु व केतु को कहते हैं। वैसे आजकल नेपच्यून, हर्षल व प्लूटो को भी ग्रहों में मान्यता दी गई है, लेकिन हमारे पूर्व मनीषियों ने इनको ज्यादा महत्व नहीं दिया है। इन नौ ही ग्रहों में से राहु, केतु को छोड़कर शेष ७ ग्रह आकाश मंडल में दिखाई देते हैं व राहु-केतु सिर्फ छाया ग्रह ही होते हैं। नेपच्यून, हर्षल, प्लूटो का प्रभाव नगण्य रहता है, बल्कि सभी ग्रह प्रभावी होते हैं।

२७ नक्षत्र भारतीय ज्योतिष में माने गये हैं, कहीं अभिजीत को लेकर २८ मानते हैं, इस प्रकार प्राचीनकाल से ही २७ और २८ नक्षत्रों को माना गया है। २७ नक्षत्र इस प्रकार है- अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, रेवती। उपरोक्त २७ नक्षत्र हुए। अभिजीत नक्षत्र का क्षेत्र इन्हीं के मध्य उत्तराषाढ़ा के चतुर्थ चरण और श्रवण के आरंभ के १/१५ भाग को मिलाकर है। इसका कुल क्षेत्र ४ अंश १३ कला २० विकला है। प्रत्येक नक्षत्र का क्षेत्र १३ अंश २० कला है। इस प्रकार २७ नक्षत्र में ३६० अंश पूरे होते हैं। १ अंश बराबर १ घंटा, १ कला बराबर १ मिनट और १ विकला बराबर १ सेकंड होते हैं। इस प्रकार एक नक्षत्र १३ घंटे २० मिनट का होता है।

भूतकाल को अधिकाधिक महत्त्व न देकर ज्योतिषी को वर्तमान और भविष्य के बारे में ही सोचना चाहिए। कहा जाता है कि भाग्य मात्र कर्मों की चरम परिणति है अर्थात जैसे-जैसे कर्म हम करते चले जायेंगे, वैसा-वैसा बनता, बदलता चला जायेगा। अच्छे भाग्य और अच्छे भविष्य हेतु अच्छे कर्मों की ओर ज्योतिषी प्रेरित तो कर सकता है, परंतु अच्छे कर्म करना अथवा न करना जातक के अपने हाथ में होता है या फिर प्रकृति के हाथ में।

ज्योतिष- हमारे यहां अलग-अलग जानकारी के लिए अलग-अलग शास्त्र बने हुए हैं। उसी प्रकार ग्रहों के क्रियाकलापों की जानकारी हमें ज्योतिष शास्त्र से प्राप्त होती है। ज्योतिष शास्त्र एक विस्तृत और वैज्ञानिक शास्त्र है। इसके दो मुख्य भाग हैं १) गणित २) फलित। गणित शास्त्र के आधार पर हम ये घोषणा करते हैं कि सूर्य-चन्द्र ग्रहण किस वर्ष, किस मास में कितने बजकर कितने मिनट पर होगा। यहां तक कि हम ग्रहों की गति के आधार पर एक से सौ साल तक की घोषणा कर सकते हैं। यही कारण है कि घोषित समय में सैकण्डस् का अन्तर भी नहीं आता है। यही इसकी वैज्ञानिकता का आधार है।

ज्योतिषी का प्रमुख कार्य है। ब्रह्मांड में विभिन्न ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति एवं गति को जानना, ग्रहों एवं नक्षत्रों की विभिन्न स्थितियों एवं गति के योग से भविष्य में निकलनेवाले प्रभावों, परिणामों का आकलन करना। ज्योतिष का संबंध

केवल पृथ्वी और उस पर बसनेवाले प्राणी मात्र के साथ ही नहीं बल्कि संपूर्ण ब्रह्मांड की समस्त गतिविधियों के साथ है। भौतिक, जीव एवं खगोल विज्ञान के अनुसंधान एवं अन्वेषण कार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से ज्योतिष से जुड़े हुए हैं। पर्यावरण में आनेवाले परिवर्तनों, प्राकृतिक आपदाओं तथा मानव जीवन में आनेवाले उतार-चढ़ाव की पूर्ण जानकारी देना ज्योतिषी का कार्य है।

आज ज्योतिष को विज्ञान का दर्जा नहीं मिल पा रहा है ? कारण स्पष्ट है अगर किसी तालाब का पानी दस-बीस बरस तक न बदला जाये तो उस पानी में काई जम जाती है पानी इतना गन्दा हो जाता है कि वह पीने या नहाने योग्य नहीं रहता। सतत गतिशीलता प्रकृति का नियम है। समय के साथ-साथ यदि ज्योतिष में रचनात्मक गतिशीलता बनी रहती तो ज्योतिष भी आज विज्ञान ही होता। अगर हमें ज्योतिष को विज्ञान बनाना है तो गड्ड मड्ड हो चुके सामान्य नियमों तथा सिद्धान्तों का पुनर्मूल्यांकन करना होगा। कपोल कल्पनाओं, पाखंडों और अन्धविश्वासों को ज्योतिष से अलग-थलग करना होगा। प्राचीन एवं मध्यकालीन ज्योतिष ग्रंथों की मात्र समीक्षा, पुनर्समीक्षा और पुनर्समीक्षा की समीक्षा करते चले जाने से ही बात नहीं बनेगी। कुछ न कुछ नया सृजन तो करना ही पड़ेगा। मात्र नकल के सहारे कब तक गाड़ी खींची जा सकती है ?

पश्चिमी राष्ट्रों और अब पूर्व में भी ज्योतिष के नाम पर अजीबो-गरीब किस्म के कई खेल-तमाशे पनपे हैं। ताश द्वारा भविष्य जानिये, पर्चियों द्वारा भविष्य पढ़िये, तोते या पशुओं द्वारा भविष्य जानिये वगैरह-वगैरह। ज्योतिष सुनिश्चित भविष्य बताने का विज्ञान है तो फिर ये सट्टेबाजोंवाले खेल इसमें कहां से आ जुड़े। और तो और, इन खेल-तमाशों द्वारा निकाले गये अनुमानों अथवा परिणामों को लोकप्रिय समाचार पत्रों/पत्रिकाओं में भी जगह मिलने लगी है। ऐसे में ज्योतिष को विज्ञान का दर्जा भला कैसे मिलेगा ? समय आ गया है जब हमें ज्योतिष में घुसे अवैज्ञानिक नियमों, सिद्धान्तों और अप्रासंगिक हो चुकी प्रक्रियाओं को निकाल बाहर करना चाहिये क्योंकि परम-सत्य तक सटीक और वैज्ञानिक नियमों द्वारा ही पहुंचा जा सकता है।

कहा भी जाता है कि - जो इंद्रियों की गिरफ्त से बाहर है, भूत के अंधकार और भविष्य के उजाले में विद्यमान है उसे केवल ज्योतिष ही देख सकता है और ज्योतिष अध्यात्म का ही अंश है।

नक्षत्र - मूलनक्षत्र भगवान विष्णु के दोनों चरणों, रोहिणी नक्षत्र दोनों जंघाओं एवं अश्विनी नक्षत्र दोनों घुटनों का रूप धारण करके स्थित हैं। पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा- ये दोनों नक्षत्र वासुदेव के दोनों ऊरुओं में, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र गुह्य प्रदेश में एवं कृत्तिका नक्षत्र कटि भाग में स्थित हैं। पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र भगवान के दोनों पार्श्वों में, रेवती नक्षत्र दोनों कुक्षियों में, अनुराधा नक्षत्र हृदय में तथा धनिष्ठा नक्षत्र पृष्ठदेश में स्थित हैं। विशाखा नक्षत्र भगवान की दोनों भुजाओं में स्थित है। भगवान के दोनों हाथों में हस्त नामक नक्षत्र का स्थान है। पुनर्वसु नक्षत्र भगवान की अंगुलियों और अश्लेषा नक्षत्र उनके नख हैं। ज्येष्ठा नक्षत्र ग्रीवा में, दोनों कानों में श्रवण नक्षत्र और मुख में पुष्य नक्षत्र स्थित हैं। भगवान के दांतों को स्वाति नक्षत्र कहा जाता है। शतभिषा नक्षत्र भगवान की दोनों हनुएं तथा मघा को नासिका कहा गया है। नक्षत्रों का रूप धारण करनेवाले भगवान के दोनों नेत्रों में मृगशिरा नक्षत्र का निवास है। चित्रा ललाट में भरणी सिर में तथा आर्द्रा नक्षत्र केश में रहता है। नक्षत्रपुरुष भगवान विष्णु का यह नक्षत्र-शरीर है।

कर्म-सत्कर्म, कर्मफल, क्रिया, कर्त्तव्य

शुभ कर्म करनेवाला कभी डरता नहीं है, अश्रु उसकी आंख से गिरता नहीं है,
सत्कर्म करनेवाले को युग भूलता नहीं है, संसार की निगाहों में वह मरता नहीं है।

जिसने अनंत कोटि ब्रह्माण्ड की रचना की है, उसी ने ब्रह्माण्ड के संचालन के नियम भी बनाए है। नियम से ही सूरज-चाँद निकलते है, नदियाँ-झरने निरंतर बहते रहते है, सारी नदियाँ समुद्र में निरंतर गिरती रहती है, फिर भी समुद्र की मर्यादा बनी रहती है, चक्रानुक्रम से एक के बाद एक ऋतुएं आती जाती रहती है और जीवों के जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है। अद्‌भुत है यह रचना। इसी सृष्टि में हम और आप है। तो हमारे-आपके लिए भी विधि का विधान सुनिश्चित है। भले ही हम कुछ और सोचे, कुछ और करे, किन्तु जो होना है, भले ही वह हमें पसंद हो या नापसंद, होकर ही रहता है। यह बात अवश्य है कि मानव को कार्य करने की थोड़ी-सी छूट है। इस छूट के कारण ही कर्म में विकल्प बना रहता है, पर यह सीमित है। जो विवेकी है वे कर्म के इन विकल्पों में से वही चुनते है जो हितकर हो।

सृष्टि को हितकर कर्म ही अभीष्ट हैं। इस संसार में सुखी वही रह सकता है जो विधि के विधान को स्वीकार कर लेता है, उसी में राजी हो जाता है और कर्मों के प्राप्त विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प चुनकर अपना कर्त्तव्य करता है। रावण, कंस, शिशुपाल, हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यिप, जरासंघ आदि एक से एक बलवान, शक्ति-संपन्न, सुविधा-संपन्न और महिमावान् थे, बहुत कुछ कर सकने की सामर्थ्य से युक्त थे सभी जानते है, सभी को अंत में विधि के विधान को अंगीकार करना पड़ा। विधि का विधान हमें अकर्मण्य नहीं बनाना चाहता, बल्कि सत्कार्य में लगाए रखना चाहता है। सत्कार्य से अपना भी भला होता है और दूसरों का भी। सृष्टि के संचालन मे भी सुगमता होती है। सृष्टिकर्ता को भी प्रसन्नता होती है। सर्जक ने तो मानवों के लिए कर्म का विधान रच ही रखा है। कर्म के अभाव में जीवन-यात्रा ही संभव नहीं। विधि के विधान का पता कैसे चले ? कैसे हम जान सके कि हमारे लिए विधि का विधान क्या है ? प्रश्न महत्वपूर्ण है। व्यक्ति की अंतरात्मा की आवाज विधान की संसूचना है। जिन कार्यो का अनुमोदन अंतरात्मा कर दे उसे विधान के अनुकूल समझा जा सकता है।

मनुष्य एवं प्राणी सृष्टि सहित विश्व का निर्माण करने वाले विधाता ने प्रत्येक प्राणी का कर्म सुनिश्चित कर रक्खा है लेकिन मनुष्यों का कर्म अटल कहा गया है। मनुष्यों को छोड कर बाकी प्राणी प्रकृति पर निर्भर होते है। जीवन और भोजन तक उनका कर्म सीमित है तथापि मनुष्य सर्व श्रेष्ठ प्राणी है। केवल उसी में देवता पद पाने की क्षमता है। इसलिये उसे अपने कर्त्तव्य कर्म का त्याग करना सम्भव नहीं है। शरीर की प्राप्ति के साथ कर्म का बन्धन जुड जाता है। कर्म निभाना ही पडता है। समय पर न करो तो दु:ख है, ठीक से न करो तो दु:ख है। कर्म सावधानीपूर्वक करना आवश्यक है। इसी कारण कर्म मनुष्य के अस्तित्व के लिये अनिवार्य है।

"श्रम मेय जयते" श्रम ही पूजा है। श्रम क्या है? क्या श्रम का अर्थ मेहनत मजदूरी से है? क्या श्रम यानि पैसा कमाना, कैरियर बनाना? उपाधियाँ हासिल करना, सडकों-भवनों का निर्माण या चुनाव प्रचार है? श्रम क्या है? श्रमिक कौन है? श्रम का उद्देश्य क्या है? इन पर पूरी गहराई से विचार करना चाहिये। बौद्ध व जैन सम्प्रदाय श्रमण संस्कृति के सम्प्रदाय है जहां श्रम के सभी संकीर्ण अर्थ विदा हो जाते है। भारत में कर्म की महत्ता आदि काल से प्रतिपादित की जाती

है। **"कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।" "कर्मण्ये वा अधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"** मनुष्य सिर्फ कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है। फल भगवान के हाथ है अर्थात वह फल निष्पति के लिये स्वतन्त्र नहीं है। **"सकल पदार्थ है जग माही- कर्म हीन नर पावत नाही"** तुलसीदास जी की इन पंक्तियों से यही अभिप्राय है कि सब कुछ इस जगत में उपलब्ध है पर कर्म हीन व्यक्ति को कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण ने भी गीता में कर्म को योग से जोडा और कर्म योग का अर्जुन वो उपदेश दिया। उसी के साथ यह भी स्पष्ट कर दिया कि तू अगर सोचता है कि तू कर्म नही करेगा तो तेरा यह भ्रम है, तू अपनी प्रकृति से विवश होकर कर्म करेगा। मनुष्य प्रकृति के ही स्वभाव से कर्म करने को विवश है। यह विवशता प्रकृति प्रदत्त होती है। मनुष्य की यह विवशता ही दृष्टि का अभाव है। मनुष्य की प्रकृति या मन में कर्म की लहरे उठती ही है और शान्त भी होती है।

आज का युग प्रतियोगिता का युग है और इसमें व्यक्ति को सक्रिय रहने की आवश्यकता है। जो व्यक्ति जितना अधिक सक्रिय रहता है वह उतना ही आगे बढ़ता है तथा आलसी लोग पिछड़ते जाते हैं। कई युवक आलसी होते हैं तथा हर काम में ढीलापन अपनाते हैं।

इसके कारण उनके पास जानकारियों का अभाव होता है। उनके पास अवसर होने पर भी जानकारियों के अभाव में वे उसको भूला नहीं पाते हैं। जिसके कारण वे पिछड़ते जाते हैं। हमारे देखते ही देखते एक व्यक्ति छोटे से पद से प्रगति करके ऊँचे पद पर पहुँच जाता है तथा कोई गरीब व्यक्ति थोड़े से दिनों में ही एक अमीर व्यक्ति बन जाता है। यह सब व्यक्ति की सक्रियता का ही परिणाम होता है। सक्रिय व्यक्ति ही मौके का फायदा उठा पाते हैं। तथा मौके को हाथ से जाने नहीं देते हैं और वे प्रगति करते ही जाते हैं।

कोई भी मनुष्य किसी भी परिस्थिति में क्षणमात्र भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। गीता में भी कहा गया है कि कोई भी देहधारी कर्म सर्वथा नहीं त्याग सकता। जब तक शरीर है कर्म करने की आवश्यकता है। मनुष्य शरीर, वाणी और मन तीनो से ही काम करता है अर्थात केवल शरीर से ही कर्म नहीं होता मन और वाणी द्वारा भी कर्म होता है। शरीर से यदि कोई कर्म न करे तो भी मन निरन्तर कार्य करता रहता है। धम्मपदं में कहा गया है कर्म करते हुए मनुष्य सौ वर्षों तक जीवित रहता है, कर्म को हमेशा महत्व दो। कर्म के बिना जीवन निराधार है। गृहस्थ मनुष्य कर्त्तव्य पालन समझकर कर्म करता है, सन्यासी मुक्ति पाने के लिये तप कर्म करता है। कोई यदि सोचने लगे कि तपस्वी तो केवल साधक है, साधना में लिप्त रहता है। हाथ जोड़कर बैठा रहता है और कोई कार्य नहीं करता। ऐसा सोचना उचित नहीं है। वह यदि सच्चा तपस्वी है, मन, वचन से ईश्वर भक्ति चाहता है। संसार के दु:खों से पलायन नहीं, अपितु उसने जीवन के सुख और वैभव को छोड़कर तप मार्ग अपनाया है, तब अपने शरीर को तपाकर तप करना भी एक कर्म ही है। एक साधारण मनुष्य में ऐसी शक्तियां कभी नहीं हो पाती, जो एक सच्चे साधक में होती है वह उसके द्वारा किए कर्म का ही फल होता है।

भारतीय मानस आदिकाल से कर्म और कर्मफल को मानता रहा है। इसीलिए उसे ईश्वर से या किसी से कोई शिकायत नही रही है और वह वर्तमान शरीर को नए सिरे से शुभ कर्म करने का दुर्लभ अवसर मानता रहा है। बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा। इस प्रकार जो दर्शन मनुष्य आदि योनियों को कर्मफल का परिणाम मानता हो वह कर्म की अवहेलना कैसे कर सकता है। ईशावास्योपनिषद् के अनुसार कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषवतं समा अर्थात मनुष्य को कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करनी चाहिए। कर्महीन जीवन की कल्पना ही नही है। इसी प्रकार गीता व स्मृतियां कर्म

की ही शिक्षा देती है। यहाँ तक कि भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि नियत कर्म न करने से शरीर यात्रा भी नहीं निभती है। अकृते नियता क्षुत् अर्थात् अकर्मण्य व्यक्ति निश्चय ही भूख से पीड़ित होगा (चाणक्य)। तीसरे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि मैं इस सृष्टि को चलाने के लिए अहर्निश कर्म करता हूँ अन्यथा इस सृष्टि का लोप हो जाए। ज्ञानी पुरुष को जनक आदि की भांति लोककल्याण हेतु एवं अन्य मनुष्यों को प्रेरणा देने हेतु कर्म करते ही रहना चाहिए। जीव किसी भी क्षण बिना कर्म के नहीं रहता है। वह शारीरिक रूप से या मानसिक रूप से ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाये हर समय करता रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस पर काफी विचार किया है। निंदनीय और अकरणीय कर्म अर्थात जिससे स्वयं को एवं समाज को और राष्ट्र को पीड़ा, हानि पहुँचती है वे तो बिल्कुल ही वर्जित है दंडनीय है। परन्तु करणीय कर्म भी दो वर्गों में बांटे गए है।

कर्म ईश्वर को समर्पित करो। आसक्त हो कर किया गया कर्म जन्म-मृत्यु स्वरूपी व्याधि उत्पन्न करता है। ईश्वर की पूजा समझकर समर्पण भावना से किया गया कर्म संसार के बन्धन से मुक्त रहता है। साधारण व्यक्ति कर्म के बुने हुये जाल में फंसता है। एक कर्म से दूसरा कर्म बनता है। यह कर्म मैंने किया ऐसा समझकर कर्त्ता भाव धारण करता है इसलिये उस कर्म का फल भी उसे ही भुगतना पडता है। ज्ञानी लोग कर्म तो करते है पर समझकर सही तरीके और उपायों से करते है आसक्त हो कर नहीं, ईश्वर के लिये करते है। कर्म करने पर भी वे मानते है कि यह कर्म मैंने नही, ईश्वर ने किया है। सुख-दु:ख प्राप्त फल वे ईश्वर का प्रसाद मानकर स्वीकार करते है इसलिये वे दु:ख से बाधित नहीं होते। कर्म ईश्वर को समर्पित करना ही दु:ख निवृति का उपाय है।

भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि अपने-अपने कर्म के अनुसार मनुष्य को फल भुगतने पडते है। रामायण, महाभारत, गीता आदि मुख्य-मुख्य ग्रन्थों में यही सिद्धान्त है। उसका प्रकरण प्राचीन ऋषि मुनियों ने किया है। इन्ही सिद्धान्तों से भारतीय नीति तत्वों का विकास हुआ है। कर्म करते समय पाप पुण्य का भी विचार किया गया। पाप का फल दु:ख और पुण्य का फल सुख, यह कर्म फल भारत में मान्य हुआ। इसलिये दान, जप, यज्ञ, तीर्थयात्रा, तप आदि साधनों का प्रचलन भारत में ही हुआ। पुण्य परोपकार और पाप परपीडा का सूत्र कर्म सिद्धान्त में रक्खा गया। इन्ही सिद्धान्तों से भारतीय संस्कृति संस्कारित है। जो दुष्प्रवृत्ति के लोग इस संस्कृति पर कुठाराघात कर रहे है कर्म सिद्धान्त के अनुसार आते समय में उनका विनाश हुये बिना नहीं रहेगा।

अच्छे कर्म स्वयं करे व औरों से भी करवाये। खास कर बडी-बडी संस्थाओं और कार्यालयों में काम कर के लेने की जिम्मेदारी वरिष्ठों पर होती है। यदि वहीं पर वरिष्ठ केवल आदेश देकर बैठ जाये और बाकी लोग काम करे ऐसा नहीं हो सकता, इससे कनिष्ठ लोगों के मन मे वरिष्ठ लोगों के लिये आदर की भावना नहीं होगी। वे काम में उचित निष्ठा नहीं रखते उससे कार्य की गुणवत्ता कम हो जाती है। वहीं यदि वरिष्ठ स्वयं अपना काम खुद करे और कनिष्ठों को भी सम्भाले, उन्हे काम के लिये प्रोत्साहित करे, उनके दोष सौम्य मार्गों से दिखाये और काम के समय उन पर दृष्टि रखे तो कार्य की गुणवत्ता सुधारेगी। परिवार में भी प्रमुख व्यक्ति स्वयम अच्छे कर्म करता हो तो उसका आदर्श लेकर परिवार के अन्य सदस्य भी अपने काम बराबर करेंगे। कर्म का आदर्श इस तरह से हो।

जन्म के समय कोई व्यक्ति सम्पूर्ण नहीं होता, लेकिन हर कोई कुछ न कुछ विशेषता लेकर आता है। फिर वह अपने गुणों के अनुसार कर्म करने लगता है। कर्म कौनसा है यह महत्वपूर्ण नहीं है, वह कर्म व्यक्ति के जीवन को आकार देता है

या नही यह महत्वपूर्ण नही है, इसलिये दुष्कृत्य कर्म नहीं हो सकते। कर्म उचित ही होने चाहिये और हमारे गुणों का विकास हमें ही करना चाहिये। अपने कर्म में सन्तुष्ट रह कर विकसित होना यही स्वधर्म है। मनुष्य स्वाभाविक रूप मे जिस कर्म को कर सकता है उसी में उसे प्रगत होना चाहिये। अपनी तुलना औरों से नहीं करनी चाहिये। अपने कर्म से इमानदार रह कर अपनी गुणवत्ता बढ़ाना यही मनुष्य का स्वधर्म है।

कानून दो तरह के होते है। एक मानवीय कानून और दूसरा ईश्वरीय कानून। ईश्वर के कानून मानव के कानून से बहुत सूक्ष्म होते है। शारीरिक पाप कर्म करने वालों को भी इस कानून में दंड मिलता है। व्यक्तिगत पाप करने वालों को उनके पापकर्म का परिणाम तो मिलता है साथ ही उसके परिणाम उसके साथवालों, परिवारवालों को भी भुगतना पडता है। इसी तरह जब सामाजिक पाप बहुत बढ़ जाता है तब उसका परिणाम समाज को भुगतना ही पडता है। जब किसी का घर जल रहा तो उसकी आंच पडौसी के घर को भी लग जाती है। आज सामाजिक वातावरण काफी बिगड गया है क्योंकि भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, धोखाधडी अत्याचार करने वालों की संख्या काफी बढ़ गई है।

ईश्वर कर्म के अनुसार फल देता है। ईश्वर की कृपा सबके लिये समान होकर भी कर्म का फल वह एक समान नही देता। सबको अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ईश्वर कर्मफल देता है। केवल बाहर से पूजा पाठ कर अन्दर से पाखंड करने वाले पर ईश्वर की कृपा नहीं होती। ईश्वर अन्त:करण की शुद्धता और पवित्रता पहचानता है और उसके अनुसार सबको कर्म फल देता है। हम उसे जिस भावना से देखे, वह भी हमे वैसा ही दिखता है। इसलिये ईश्वर किसी से पक्षपात नहीं करता, न ही कम ज्यादा करता है।

नियति यानी मनुष्यों के कर्मों का परिणाम। हर मनुष्य की नियति अलग-अलग होकर वह शुभ या अशुभ हो सकती है। इसके लिये पुराण काल या आधुनिक काल के उदाहरण दिये जा सकते है। रावण वेदों का ज्ञाता और शिव भक्त था तब उसकी नियत अच्छी थी। वह स्वर्ण लंका में रहता था। सभी देव दानव उससे डर कर रहते थे। लेकिन बाद में उसकी प्रवृति बिगड गई और उसने सीता का अपहरण किया। शास्त्र कहता है कि पराई स्त्री और पराये धन को चुराने वाले के भाग में दरिद्रता और भाग्यनाश आता है। रावण ने अपने अशुभ कार्यों से अशुभ नियति बनाई इसलिये उसका सर्वनाश हुआ।

हम भारतीयों ने कर्म की भारी उपेक्षा की। कर्म को हमने शूद्र दर्जा दिया। उसे पतित-दलित किया। यही कारण है कि कर्म का महत्व क्षीण होते गया। देश आलस्य में डूब गया। उसकी श्री सम्पन्नता वैभव चला गया। मुठ्ठीभर आक्रमण कारी हमें गुलाम बनाने लगे। कर्म संस्कृति को हमने धर्म के नाम पर एक तरह से नकार दिया, तिरस्कृत कर दिया। भारत जो सम्पूर्ण जगत के वैभव का केन्द्र था वह कर्म हीनता व आलस्य का शिकार हो गया, भिखारी बन गया। अर्थ यह है कि इस दारूण स्थिति में जब देश में कर्म की महता आज भी स्थापित नहीं हुई है। जब आलस्य का भारी प्रभाव है तब यह स्थिति है तो जब भारत आलस्य छोड उठ खडा होगा तब क्या परिणाम प्राप्त होगा। तब भारत क्या विश्व वैभव का केन्द्र नहीं होगा?

प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्म का फल भुगतना पडता है। सभी धर्मों में यह विश्वास है। बाइबल में कहा है जो जैसे बोता है वही उगाता है। अच्छा बोओगे तो अच्छा पावोगे। बुरा करोगे तो बुरा प्राप्त होगा। ईश्वर सबको कर्म के अनुसार फल देता है। कुरान मे कहा है कि किसी पर आनेवाला संकट उसके कर्म का परिणाम है। जो एक कणभर भी उपकार या सत्कर्म करेगा उसे अच्छा फल अवश्य प्राप्त होगा और जो बुरा कर्म करेगा उसे बुरा फल अवश्य मिलेगा। भगवान बुद्ध ने

कहा है - पाप कर्म करने वालों को मृत्यु के बाद खराब गति को प्राप्त होना पडता है और अगला जन्म दु:खी एवम् खराब गति को प्राप्त होना पडता है और अगला जन्म दु:खी एवम् निर्बुद्ध मनुष्य का मिलता है। पुण्य कर्म करनेवाला उत्तम मनुष्य बनेगा। हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म और कर्मफल का सिद्धान्त अनादि समय से प्रचलित है।

स्वधर्म में बने रहना स्थिरता कहलाती है। स्वधर्माचरण (कर्त्तव्यकर्म) करते हुए लोभ-मोह में नहीं फंसना चाहिये और किसी चीज की ओर आकर्षित नहीं होना चाहिये। अपने काम को टालना नहीं चाहिये। स्वकर्म को हलका समझकर उसकी उपेक्षा न करें। अपना कर्त्तव्य तत्परता से करें। अपेक्षित फल न मिले तो भी निराश नहीं होना चाहिये। आवश्यक कार्य दीर्घकाल तक करना पड़े तो भी उससे कतराना नहीं चाहिये। उत्साह बनाये रखें। तभी हम स्थिर हैं यह माना जा सकता है। जीवटता और एकनिष्ठता से ही स्थिरता प्राप्त होती है।

८४ लाख यौनियों में मनुष्य को छोड़कर सभी भोग यौनियां है। मनुष्य जीवन ही कर्म के लिए स्वतंत्र है, लेकिन फल भोगने के लिए स्वतंत्र नहीं है। नो भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। चाहे सौ करोड़ कल्प भी क्यों न बीत जाये परंतु बिना भोगे कभी कर्म नहीं छूटता। कर्म बिना भोगे क्षीण नहीं होता। कर्म वाद के सिद्धांत के तहत सर्व शक्तिमान भगवान भी कर्म फलदाता के रूपमें कर्मों से असंयुक्त नहीं है, फिर यह अल्प शक्ति जीव बिना भोगे कर्म फल के पचडे से कैसे छूट सकता है। प्रारब्धकर्म की प्रबलता सभी स्वीकार करते है। इसके सामने संसार की सारी शक्ति हार मानती है। नल और युधिष्ठिर इस का प्रतिकार नहीं कर सके। इसके सामने विद्या और पौरूष का भी वश नहीं चलता। ब्रह्म ज्ञान से या पुण्य करने से प्रारब्ध का नाश नहीं होता। प्रारब्ध का नाश भोगने से या नाम जप से ही संभव है। लेकिन हरिनाम में नाश करने की अतुल शक्ति है। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि जैसे आग की चिनगारी भूल से भी छू पाय तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार ओठों से श्री हरिनाम का स्पर्श होते ही वह समग्र पापों का नाश कर देते है। हरि: हरति पापानि- हरि पाप को हरते है। भगवान कृष्णने गीता के तीसरे अध्याय में कर्मयोग की महिमा को सर्वोपरि बताया है। कर्म धर्म प्रेरित होना चाहिए क्योंकि हर क्रिया की प्रतिक्रिया के आधार पर हर कर्म फल का प्रतिफल होता है। रामचरित मानस में उल्लेख किया गया है की- कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस कर ही सो तस फल चाखा। भगवान कृष्ण उद्धव को कर्म रहस्य समझाते हुए कहते है की- कर्मन की गति न्यारी साधो, कर्मन की गति न्यारी साधो, कर्मन की गति न्यारी रे, निर्बन्धा बन्धा रहे, बन्धा निर्बन्ध होय। कर्म करे करता नहीं, कर्म कहावे सोय। कर्म मनुष्य की मृत्यु के पश्चात भी उसका छाया की तरह पीछा करता है। यहां तक की अवतार भी इस कर्म बन्धन से नहीं छूट पाये- भगवान राम ने छुपकर बाली को जो तीर मारा वही तीर भगवान कृष्ण के पैर में व्याध बन कर लगा। भक्त प्रहलाद व बिभीषण राक्षसों के घर जन्म लेकर भी अपने कर्म से महान बने। अष्टावक्र शरीर से विकृत होने पर भी अपने कर्मों से महान बने जब कि रावण विद्वान ऋषि व तपस्वी पिता विश्रवा के घर जन्म कर भी दुर्गति को प्राप्त हुआ। धूंधूंकारी ने तपस्वी ब्राह्मण आत्मदेय के यहां देव कृपासे जन्म लिया, कंस महात्मा राजा उग्रसेन के यहां जन्मा लेकिन दुष्कर्मों में फसकर प्रेतयोनी में चले गये। जब कि मंदोदरी रावण की भार्या होने पर भी अपने उत्कृष्ट आचरण व आदर्शों के कारण महासती बनी और पंच महासतियों में अपना स्थान बनाया। आये है सो जायेंगे, राजा रंक फकीर। एक सिंहासन चढे चले, एक बांधा जाए जंजीर। सत्कर्म की ज्योति अलौकिक सुख की ओर प्रवृत करती है। भगवान श्रीकृष्ण कहते है की गहना कर्मणो गति- कर्म की गति बडी गहन है। अत: कर्म ऐसे करे की कर्म विकर्म न बने, बंधन कारक न बने और अपने परमात्म पद को पाले। गीता में परमात्म प्राप्ति

के तीन मार्ग बताये है: ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और निष्काम कर्म मार्ग। कर्मों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है- कर्म संस्कार से जुड़े हुए है और जिस प्रकारके संस्कार होते है उसी प्रकार के कर्म प्रतीत होते है। नियंत्रित विहित (शास्त्रोक्त) कर्म धर्म बन जाते है। कर्म स्वयं जड़ होते है और कर्ता को उसकी भावना के अनुसार फल मिलता है। अत: ईश्वरकी प्रीति के लिए कर्म करोगे तो कर्म, साधना हो जायेगा, पूज्य हो जायेगा। कर्म का सिद्धान्त अकाट्य है: जैसे कांटे से कांटा निकलता है ऐसे ही अच्छे कर्मों से बुरे कर्मों का प्रायश्चित होता है। कर्मों का ऋणानुबंध चुकाना ही पड़ता है। जीव कर्म रुपी सूत्र में बंधा हुआ है। हो सकता है कभी सूर्य भगवान पूर्व को छोडकर पश्चिम में उदय हो जाए, अग्नि शीतल हो जाए, मेरु पर्वत भी गिर जाय, पत्थर पर फूल पैदा हो जाए, किन्तु भावी नहीं मिट सकती। कर्म रेखा कभी नहीं बदल सकती। कर्मफल अमिट है। फल दिए बिना कर्म शांत नहीं होता, कर्म के पीछे घूमता रहता है। कर्मयोग के आधार पर ब्रह्माजी के सौ करोड़ कल्प के पूरे होने पर भी मनुष्य अपने कर्मों से छुट नहीं सकता। (ब्रह्माजी का एक कल्प मृत्यु लोक के ४.३२ करोड़ वर्षों के बराबर होता है।)

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अपना किया हुआ जो भी कुछ शुभ-अशुभ कर्म है, वह अवश्य ही भोगना पड़ता है। बिना भोगे तो सैकड़ों-करोड़ों कल्पों के गुजरने पर भी कर्म नहीं टल सकता। अत: कर्म करने में सावधान और फल भोगने में प्रसन्न रहना चाहिए। यह मनुष्य जन्म एक चौराहे के समान है। यहाँ से सारे रास्ते निकलते हैं। आप सत्कर्म करके देवत्व लाओ और स्वर्ग के अधिकारी बनो अथवा तो ऐसे कर्म करो कि यक्ष, किन्नर, गंधर्व बन जाओ या ऐसे घृणित कर्म करो कि ब्रह्मराक्षस बन जाओ। आपके हाथ की बात है। जप, ध्यान-भजन, संतों का संग आदि करके ब्रह्म का ज्ञान पाकर मुक्त हो जाओ। यह भी आपके ही हाथ की बात है। फिर कोई कर्म बंधन आपको बाँध नहीं सकेगा।

भगवान श्रीकृष्णने कहा है:- तस्मादक्त: सततं कार्य कर्म समाचर। असवतो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुष:।।

हे पार्थ, तू निरंतर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्त्तव्य कर्म को भली भांति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म कर्ता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। कर्म के सिद्धांत को समझकर जो उचित ढंग से कर्म करता है, वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। परंतु जो ठीक से कर्म करना नहीं जानता वह जन्म-मरण के चक्कर में पिसा जाता है। हंस हंस के किया गया पाप, रो रो कर भोगना पड़ता है। कष्ट सहन कर के किया गया तप, सुख शांति का कारण बनता है। शुभा शुभं कृतं कर्म भुंजते देवता अपि, सविता हेम हस्तोऽभ्भूद्रभगोऽन्ध पूषकोऽद्विज नीतिमंजरी। ऋग्वेद की एक ऋचा के अनुसार अशुभ कर्म के कारण सवितादेव को हिरण्यपाणि होना पड़ा। (हिरण्यपाणि: सविता) दुष्कर्म मनुष्य के कर्म बंधन बनते है जब कि सत्कर्म मुक्ति का साधन बनते है। अत: सत्कर्म करके परम लक्ष्य को प्राप्त करें। योगस्थ होकर कर्म को करो, जो कर्म योगस्थ होकर किए जाएं, वही पूजा के तुल्य है। जब कृष्ण भगवान परमधाम सिधारे तो केवल विदुरजी को ही याद किया जो एक सात्विक महापुरुष थे। जिस प्रकार बछड़ा हजारो गायों में भी अपनी मां को पहचान लेता है उसी प्रकार कर्म भी अपने कर्ता को पकड़ लेता है।

लोग कोई भी कार्य करने के पहले संशय करने लगते है कि पता नहीं यह काम जो हाथ में लिया है वह पूरा होगा भी कि नहीं ? ऐसी स्थिति में पूरे मन से काम नहीं होता और कार्य पूरी तरह सम्पन्न होना संदिग्ध रहता है। साथ ही हमारी काम करने की शक्ति या शारीरिक अथवा मानसिक ऊर्जा में शिथिलता भी आ जाती है। यह स्थिति हमारी काम करने की

सामर्थ्य व क्षमता को सीधे प्रभावित करती है। साथ ही काम शुरू करने के पहले ही हार मान लेने के समान है। जीवन का पर्याय है कर्म, यही हमें जीवन का बोध कराता है। यदि हम कर्म फल को सदैव अपने अनुकूल ही चाहते है तो यह हमारी भूल होगी, जिसके फलस्वरूप हमें निराशा मिलेगी। जिस क्षण हम कर्म से विरत होंगे उसी क्षण हमारे अस्तित्व का कोई अर्थ न रह जायेगा। यह सोचकर जो काम हाथ में लिया गया हो कि पता नहीं यह पूरा होगा भी कि नहीं और सफलता संदिग्ध हो, फिर भी काम में शिथिलता न आने देना चाहिए।

ईश्वर पूजा के समय हार, फूल, नारियल, पेढे, आदि की क्या आवश्यकता होती है ? ईश्वर की प्रसन्नता का मूलमंत्र है समुचित कर्माचरण। व्यक्ति को अपने हिस्से का कर्म सही ढंग से करना चाहिए। सत्कर्मों से ईश्वर की पूजा करनी चाहिए। ईश्वर की सच्ची पूजा हमारे आचरण से होती है, जो हम औरों के साथ करते हैं। और ईश्वर वह पूजा स्वीकार करता है। मानव को शरीर मिला है कर्म करने के लिए।

इस शरीर से अच्छे कर्म करवाने की योजना ईश्वर ने की है। कर्म इस शरीर का मुख्य स्वभाव बनाया है। सत्कर्मों से ईश्वर पूजा करने से मनुष्यता की खाल गिर जाती है और ईश्वरी रूप प्रकट होता है।

जैसे देव पर भरोसा करके कर्म से दूर भागनेवाले लोग होते हैं वैसे ही प्रयत्नों को पूरा महत्व देकर दैव को न माननेवाले लोग भी होते हैं। दोनों में कर्मपरिपाक की दृष्टि से कर्मवादी दैववादी की तुलना में श्रेष्ठ सिद्ध होता है। क्योंकि सोए हुए शेर के मुंह में हिरन स्वयं प्रवेश नहीं करता, उसके लिए शेर को प्रयास करने पड़ते हैं। कुछ अवसरों पर कुछ लोगों को बिना किसी मेहनत के कुछ मिलता हुआ दिखता है और दैववादी कहते हैं कि वह भाग्य के कारण मिला, लेकिन जो भाग्य से मिला है उसके पीछे भी कोई न कोई प्रयत्न होता है। इसलिए कर्मवादी दैववादी की तुलना में श्रेष्ठ होता है।

निष्काम कर्मयोग ही कर्मयोगी का ध्येय होना चाहिए। कर्मयोग यानी अखंड कर्माचरण, लेकिन वह निष्काम होना चाहिए। कोई वृक्ष फल पकने तक उसकी देखभाल करता है, खयाल रखता है परंतु फल पकते ही उस पर आसक्ति छोड़ देता है। उसी तरह कर्मयोगी कर्म करता है पर फल की आसक्ति से नहीं, कर्म के लिए कर्म करता है। साधारण व्यक्ति फल की ओर नजर रखकर कर्म करता है, इसलिए वह कर्म की बजाय सतत फल की ओर देखता है। लेकिन उससे कर्मपूर्ती नहीं होती और होने पर भी इच्छित फल की प्राप्ति नहीं होती। परंतु कर्मयोगी अपना सब कुछ कर्म मानता है। कर्म का फल निश्चय ही मिलता है यह सिद्धांत उसे पता होने के कारण, फल की आशा रखे बिना, वह सर्वस्व भावना से कर्म ही करता है। वही कर्मयोगी का ध्येय होना चाहिए।

कोई भी व्यक्ति कर्म किए बिना नहीं रह सकता। कुछ न कुछ करना ही है तो ऐसा कर्म करना ही है तो ऐसा कर्म करना ही उचित होगा जो कल्याणकारी हो। लोग मोटे रूप से तो जानते ही हैं कि कौन से कर्म अच्छे है और कौन से कर्म बुरे। अच्छे कर्म कल्याणकारी होते है। शास्त्र और धार्मिक ग्रन्थ हमें कल्याणकारी कर्म की अच्छी जानकारी देते है, हमारा मार्गदर्शन करते है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है कि कल्याण कर्म करने वाला कोई भी कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता। कर्म का बीज नष्ट नहीं होता। अत: निश्चिन्त भाव से व्यक्ति को अच्छे कर्मों का आश्रय लेना चाहिए, व्यवहार करना चाहिए। इससे अपना तो भला होता ही है, दूसरों का भी भला होता ही है, दूसरों का भी भला होता है। वे निश्चित रूप से प्रशंसा के पात्र है। जो कल्याणकारी कर्म में सदा लगे रहते है। कर्म संस्कारवश होते है और संगति के परिणामस्वरूप भी। हमारे पूर्वजन्म के जो संस्कार है, उनका न तो हमें पता है और न उस पर हमारा वश ही चलता

है, किंतु जो कर्म लोगों के संग-साथ के परिणामस्वरूप होते है, उन्हे हम जानते रहते है। अच्छी संगति है तो अच्छे कर्म की सम्भावनाएं है। यही कारण है कि सभी धार्मिक ग्रंथ सत्संग की महिमा से भरे पड़े है। सभी उपदेशक सत्संग की महिमा का गुणगान करते है। कल्याणकारी कर्म की विशेषता है कि जो व्यक्ति इस मार्ग पर चलने की वास्तविक इच्छा करता है उसे ईश्वर के अदृश्य हाथ का सहारा मिलता है। कठिनाइयाँ आती है तो उनका निराकरण होता रहता है। अन्तर हृदय से प्रेरणा मिलती रहती है।

हर एक मनुष्य को अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है। यही ईश्वरीय नियम है और इसी न्याय के अनुसार हर एक कर्म का फल अलग-अलग भुगतना पड़ता है। सुख मिले तब हर्षित न होकर और दुख मिले तब व्याकुल या व्यथित न होकर मनुष्य शांति का अनुभव करता है। यही परमात्मा की कृपा से शक्ति का पात्र होना है। रामकृष्ण परमहंस और रमण महर्षि ने कैंसर की बीमारी से भी व्यथा का अनुभव नहीं किया और शांति से अपने कार्य करते रहे। जब मनुष्य अपना पूरा समर्पण भगवान को कर देता है तब उसमें अहम भाव नहीं रह जाता वह अपने लिए कोई काम नहीं करता। इससे उसमें सहज ही अनासक्ति आ जाती है। जो मनुष्य आसक्त भाव से कार्य करते हैं अर्थात जो लोभवश सब कुछ अपने लिए ही रख लेना चाहते हैं। उन्हें बुद्धिवाद से नहीं समझाया जा सकता है। अनासक्त भाव से बर्ताव करके ही अज्ञानी और लोभी मनुष्य को सही रास्ता दिखाया जा सकता है। माया में लिप्त मनुष्य का अज्ञान हटाने का यही सही मार्ग है।

कर्म सर्वोपरि है- व्यक्ति अपनी रुचि, श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास के आधार पर ही किसी दूसरे व्यक्ति को सही या गलत ठहराने की चेष्टा करता है। जैसे कबूतर को पृथ्वी से आकाश में छोड़ें तो वह कौवों के समूह में शामिल नहीं होगा। वह कबूतरों के समूह में ही मिलेगा। तोता-तोतों के व बाज बाज के समूहों में ही मिलेगा। इसी तरह ईश्वर समान रुचियों, आदतों, श्रद्धा और विश्वास के आधार पर व्यक्तियों को मिलाता या दूर करता है। एक देवत्व का समर्थक हो और दूसरा आसुरी प्रवृत्ति का हो तो वहां देवासुर संग्राम अवश्यंभावी है। यह अटल नियम है। दो विपरीत धाराएं जब तक एक साथ टकराती रहेंगी तब तक उन दोनों में से किसी भी एक का साम्राज्य स्थापित नहीं हो जाएगा। अत: मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ वैर रखना, द्वेष करना उसकी मूर्खता व अज्ञानता का ही परिचायक है। वस्तुत: आज हम जिस स्थिति में हैं वह हमारी अपनी ही गढ़ी हुई है। इसमें ईश्वर या किसी दूसरे का कतई दोष या हाथ नहीं है।

कर्म की गति विचित्र है। जिस देश, काल और आय से जिसने जैसा शुभ-अशुभ कार्य किया है, वह वैसा ही फल भोगता है। इन कर्मों के बंधन को ज्ञान की तलवार से काटा जा सकेगा।

बहुत से लोगों का मत है कि परमात्मा ही सुख या दुख देने वाला है। इंसान तो उसके हाथों की एक कठपुतली भर है। पर यहां सवाल उठता है कि परमात्मा तो परम पिता है। पिता अपनी संतानों को दुख क्यों देगा ? या फिर किसी को सुख तो किसी को दुख देकर भेदभाव क्यों करेगा ?

महापुरुष बताते हैं कि हमारे सुख-दुख का कारण तो हमारे कर्म ही हैं। हम जो कार्य करते हैं, उन्हीं के फल के आधार पर ही हमें सुख और दुख मिलते हैं। परमात्मा ने तो हमें कर्म करने की आजादी दी है। जैसे बिजली का बोर्ड हमें बिजली देता है। हम इस बिजली का प्रयोग करने को स्वतंत्र हैं। हम चाहें, तो इस बिजली से पानी गर्म करें या फ्रिज में रखकर उसे ठंडा करें। पंखा चलाएं या हीटर। या फिर बिजली का नंगा तार पकड़कर एक जोरदार झटका खा लें। बिजली का बोर्ड किसी कार्य के लिए हमें आकर मना करने या रोकने नहीं आएगा। मतलब यह है कि हम अपने

मन-मुताबिक कर्म करने के लिए आजाद हैं। साथ ही इन कर्मों के जो फल होंगे, उन्हें भोगने के लिए विवश भी हैं श्रीकृष्ण ने भी यही कहा था- कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन:, अर्थात् तुम्हारा अधिकार महज कर्म करने तक सीमित है, फल क्या मिलेगा- यह तुम तय नहीं कर सकते।

सभी कर्म तत्काल फलीभूत नहीं होते। कुछ कर्म जन्म-जन्मान्तरों के बाद फलित हो आते हैं। कर्म तीन प्रकार के होते हैं- क्रियामान, संचित और प्रारब्ध। क्रियामान कर्म वे हैं, जिनका फल हमें फौरन मिल जाता है। जैसे आपने पानी पीया, आपकी प्यास मिट गई। संचित कर्म ऐसे कर्म हैं, जो हमें उसी समय फल नहीं देते। जैसे, जब आप परीक्षा देते हैं, तो क्या उसी समय आपको उसका फल मिल जाता है ? नहीं। एक-दो महीना ठहरना पड़ता है। ऐसे ही हमारे बहुत से कर्म होते हैं, जो जमा होते जाते हैं। मान लीजिए कि हमने एक दिन में हजार कर्म किए और उसमें से ९०० क्रियामान कर्मों के रूप में भोग लिए। पर अब भी सौ कर्म बाकी हैं, जो जमा हो गए और संचित कर्म बन गए। एक वक्त आता है, जब हमारे पास करोड़ों-अरबों कर्मों का बड़ा ढेर इकट्ठा हो जाता है। और तब हमें इन कर्मों के फल भोगने ही पड़ते हैं।

बहुत से लोग कहते हैं कि अक्सर देखा गया है कि जो व्यक्ति अपने जीवन में अच्छे कर्म करता है, वह तो सदा दुखी रहता है। और जो लोग बुरे से बुरा काम करते हैं, उनके पास कोठियां हैं, कारें हैं, सब प्रकार के सुख हैं। यह सब देखकर तो लगता है कि परमात्मा के घर अंधेर ही अंधेर है। पर महापुरुष कहते हैं कि परमात्मा के घर में न तो देर है और न ही अंधेर। वहां तो सब ठीक समय पर और ठीक तरह से होता है। यदि कोई इंसान बुरे कर्म करने पर भी सुख भोग रहा है, तो इसलिए कि उसके प्रारब्ध कर्म बहुत अच्छे थे। लेकिन एक दिन जब उसके ये पुण्य कर्म समाप्त हो जाएंगे, तो उसे उसके बुरे कर्मों का फल भी जरूर भोगना पड़ेगा।

तो क्या हम अपने कर्मों के चक्रव्यूह में सदा के लिए फंस चुके हैं ? क्या कर्म बंधनों से छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं है ? गुरुग्रंथ साहिबजी (६३७) की वाणी है- लेखु न मिटई हे सखि, जो लिखिआ करतारि।। अर्थात् परमात्मा ने हमारे कर्मों के अनुसार हमारा जो भाग्य लिख दिया है, उसे कोई नहीं मिटा सकता। पर गुरुवाणी में एक और अटल सत्य भी उजागर किया गया। उसमें लिखा है कि साधु की संगत मिलने से परमात्मा द्वारा लिखा गया जीवन का लेख भी मिट जाता है। अत: कर्म बंधनों से मुक्त होने का केवल एक ही उपाय है। वह है पूर्ण संत द्वारा ज्ञान प्राप्ति। ज्ञान रूपी अग्नि में हमारे कर्म धीरे-धीरे जलकर स्वाहा हो जाते हैं। इस तरह वे फल देने की शक्ति खो देते हैं और हम सदा के लिए कर्मबंधन से मुक्त हो जाते हैं।

एक ब्राह्मण के घर जुड़वां पुत्र हुए। दोनों का लालन-पालन एक जैसा हुआ। दोनों को एक जैसी ईश्वर की उपासना सिखाई गई, लेकिन माता-पिता की मौत के बाद एक पुत्र राज पुरोहित हो गया और दूसरा भिखारी। ऐसा क्यों हुआ, जबकि दोनों एक समय, एक दिन और एक ही जगह पैदा हुए। एक राज महल में बैठा है, दूसरा सड़क पर। राजा ने एक को भव्य भवन दिया तो, दूसरे को झोपड़ी। दरअसल यह भाग्य का दोष नहीं है। कर्म का दोष है। गइराई से देखें तो दोनों के भाग्य में कोई फर्क नहीं है।

राज पुरोहित ईश्वर की आराधना, धर्म-कर्म करके पैसा दक्षिणास्वरूप सम्मानपूर्वक प्राप्त कर रहा है तो दूसरा भगवान के नाम पर पैसा मांग रहा है। श्रेष्ठ धर्म-कर्म के कारण राजा ने राज पुरोहित को भव्य भवन उपहारस्वरूप दिया है, तो दूसरे को गरीब होने के कारण झोंपड़ी दान में मिली है। मिला दोनों को है लेकिन स्वरूप अलग-अलग हैं।

राज पुरोहित को भाग्य के साथ कर्म का परिणाम ससम्मान मिला है, तो दूसरे को केवल भाग्य का लिखा फल भाग्य व्यक्ति को आटा देता है, रोटी नहीं। यह व्यक्ति के कर्म पर निर्भर है कि वह आटे की रोटी बनाता है; हलवा बनाता है या फिर आटा पानी में घोल कर कच्चा ही पी जाता है। भाग्य में लिखा व्यक्ति को मिलता है, लेकिन उसकी मात्रा, सम्मान, भोग आदि व्यक्ति के कर्म पर निर्भर हैं। इसीलिए कर्महीन व्यक्ति महज भाग्य की खाते हैं और कर्मयोगी भाग्य को संवारते भी हैं।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म की प्रधानता बताते हुए कहा है कि मनुष्य को अपने कर्म में हमेशा तत्पर रहना चाहिए। कर्म का पालन करना ही मेरी सच्ची पूजा है। जरूरी नहीं कि रोज मंदिर जानेवाला, घंटो पूजा करनेवाला, जप-तप करनेवाला ही पूजा करता हो। एक चालक जो गाड़ी चलाते वक्त बस में बैठी सवारियों की ज्यादा चिंता करता है, अपनी जान की भी परवाह नहीं करता। नदी के किनारे घंटों माला जपनेवाले से कहीं अधिक अच्छा वो है जो नदी में डूबते बच्चे को बचाने के लिए अपनी जान की परवाह न करके नदी में कूद पड़ता है। उनकी भी पूजा कम नहीं जो बीमारी से तड़पते लोगों की जिंदगी बचाने के लिए अपनी जान तक न्यौछावर कर देते हैं। सीमा की रक्षा में मुस्तैदी से खड़े जवान की पूजा भी कम नहीं है जो अपने सुखों को भूलकर देश की रक्षा में लगा हुआ है। अपने कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़नेवालों से ईश्वर कभी नाराज नहीं होता बल्कि उनकी ही हर तमन्ना को पूरी करता है।

मनुष्य का जन्म होते ही उसका भाग्य भी जन्म ले लेता है। मनुष्य का आधा भाग्य उसके कर्मों के आधार पर लिखा जाता है और आधा भाग्य उसके परिश्रम के आधार पर। यदि मनुष्य शुभ कार्यों का सम्पादन करता है और परिश्रम भी, तो वह सौभाग्यशाली माना जाता है।

कुछ मनुष्य बिना कर्म-परिश्रम किये अपने जीवन को नरक बना देते हैं और अपने भाग्य को दोषी ठहराते हैं जो उनकी सबसे बड़ी मूर्खता होती है। कुछ मनुष्य कर्म तो करते हैं परंतु परिश्रम की अल्पता के कारण उनको आधी सफलता प्राप्त होती है। मनुष्य को प्रत्येक कर्म पूर्ण परिश्रम के साथ करना चाहिए तभी पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नहीं।

जिसके जीवन में न्याय, नीति, सदाचार, धर्म होता है वह कर्म के बंधन तोड़ता है और कर्म की गुलामी से मुक्त होकर सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करता है। कर्म की परतंत्रता के जड़मूल का नाश कीजिए और आत्मा की अमर आजादी प्राप्त कीजिए।

कर्मफल कभी निष्फल नहीं जाता- हर व्यक्ति मुस्कराना चाहता है, ऐश्वर्य से संपन्न होना चाहता है लेकिन कभी उसके जीवन में अकर्मण्यता बाधक बनती है तो कभी उसके द्वारा बिना लक्ष्य का कार्य तो कभी वह धैर्य खो बैठता है, क्योंकि व्यक्ति बहुत कुछ जल्दी पा लेना चाहता है। न मिल पाने पर कभी भगवान तो कभी किस्मत को दोष देना शुरू कर देता है और यहीं से उसके जीवन में भटकाव, दुविधा शुरू होती जाती है। जीवन में कर्म करते रहो लेकिन हताश-निराश होने की जरूरत नहीं। आप अपना कर्त्तव्य निभाते जाइये, कर्म का फल कभी निष्फल नहीं जाता। एक व्यक्ति को किसी ने बताया कि अमुक जगह की खुदाई करने पर सोना मिलेगा। उसने खोदना प्रारम्भ किया। जब कई दिनों तक कुछ हासिल नहीं हुआ तो वह हिम्मत हार गया, धैर्य खो बैठा और जो जगह उसने जितने पैसों में खरीदी थी किसी दूसरे व्यक्ति को बेचकर चलता बना। उस व्यक्ति ने थोड़ी सी खुदाई की और सोना प्राप्त हो गया। यही कहानी हम सबकी है। हम जीवन में बहुत कुछ करते हैं लेकिन जब फल मिलने का समय आता है तो धैर्य खो बैठते हैं। धैर्य रखोगे तो लक्ष्य प्राप्त होगा। वस्तुत: इच्छाओं और कामनाओं का हमने इतना ज्यादा दर्द इकट्ठा कर लिया है कि कोई भी दवा असर नहीं करती।

हर कर्म का एक समय होता है, एक परिस्थिति होती है। अत: समय एवं परिस्थिति के अनुसार कर्म को मोड़ देते रहना चाहिए। कर्मशून्य होकर पड़ना नहीं चाहिए। जीवन भी कर्म की गंगा है। अत: न गर्मी की चिंता करो, न सर्दी की, न वर्षा की। यह तो प्रकृति का क्रम है। चलता रहेगा। स्वीकृत कर्म के पथ पर निरन्तर चलते रहो, चलते रहो। जो चलता है वही पाता है। इस जगत में अनहोनी नाम की कोई घटना नहीं है। यहां पर जो कुछ होता है, प्रकृति के नियमों के अनुसार ही होता है। संसार में हर प्राणी को अपने कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है। कर्म-सिद्धान्त से अनभिज्ञ जनों को यहाँ पर घटित घटनाएं अनहोनी-सी प्रतीत होती है। कर्मीय-सिद्धांत पर आस्था रखनेवाले लोगों को उन पर कोई आश्चर्य नहीं होता।

कर्म को शर्म नहीं- बुरे काम का तो फल बुरा ही है। कर्म का खेल बड़ा विचित्र है, वह किसी को भी नहीं छोड़ता है। जीव कर्म बांधते समय तो हंस-हंस कर कर्म बांध लेता है, पर भोगते समय जब वह रोता है, तब उसे याद आता है कि मैंने यह क्या कर लिया ? अच्छा काम करते हुए हिचकिचाते हो, पर बुरा काम करने से नहीं घबराते हो। जिसके पीछे तुम दिन-रात पड़े रहते हो, वे यहीं रह जानेवाले हैं। किए हुए कर्म ही साथ में जाते हैं और कोई नहीं जाता। कर्म बांधे हैं तो भोगना ही पड़ेगा। दुनिया में कोई भी ऐसा आदमी नहीं मिलेगा, जिसे अपने घर की बरबादी, धन का विनाश या कुटुम्ब का नाश प्रिय लगता हो। तो फिर आप अपनी आत्मा का विनाश क्यों कर रहे हो ? क्यों कर्म बांध रहे हो ?

कर्म करनेवाले का काम बोलता है- कर्म के नियमानुसार संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं। एक वे जो सिर्फ बोलते रहते हैं, दूसरे वे जो बोलते नहीं पर काम करते है। सिर्फ बोलनेवाले दूसरों को सस्ती सलाह देने में ही धन्यता मानते हैं, पर कर्म करनेवालों के शब्द नहीं, उनका काम बोलता है। कथनी और करनी के बारे में बताया गया कि कांस्य का मूलधर्म है आवाज करना, पर सोने का मूलधर्म है मौन रहना। कांस्य जमीन पर गिरते ही जोर से आवाज करता है, पर सोने की आवाज नहीं होती। इसलिए मनुष्य का जीवन कांस्य की भांति नहीं बल्कि सोने के जैसा होना चाहिए उसी तरह, जिस तरह फूल की सुगंध को हवा स्वयं विश्वभर में फैलाती है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार शुभ कर्म करते रहना चाहिए।

कोई भी मनुष्य जन्म से ऊंचा या नीचा नहीं होता। कर्म से ही वह ऊंचा या नीचा बनता है। आपके सत्कर्म ही आपको राम बना सकते हैं और आपके दुष्कर्म रावण बना सकते हैं। कर्म का अभिप्राय है क्रिया-कार्य करना। ये कर्म ही हमें समाज में ऊंच और नीच का स्थान प्रदान करते हैं। यदि हम अच्छे कार्य करेंगे तो उसका फल भी अच्छा ही होगा। अब हमें यह विचार करना है कि कर्म क्या है ? क्या कर्म के कारण ही मनुष्य उच्च-नीच, धनिक-निर्धन, सुन्दर-कुरूप, रोगी-निरोगी बनता है ? जीव का जो परतन्त्र करते हैं, वे कर्म कहलाते हैं। स्वयं के अच्छे और बुरे का निर्णय व्यक्ति के कर्म पर ही निर्भर है। हम जैसे कर्म करेंगे, उसका फल आज नहीं, कल नहीं, परन्तु भविष्य में अवश्य प्राप्त होगा। संसार के सभी प्राणी अपने कृतकर्मों से कष्ट उठाते हैं। कर्म आदमी को कहां से कहां पहुंचा देता है। वाल्मीकि जन्म से ब्राह्मण थे परन्तु कर्म से वे डाकू-लुटेरे और हत्यारे थे। जीवन में मोड़ आया, परिवर्तन आया, सुकर्म की ओर जीवन मोड़ा तो वे सभी के पूज्य बन गये।

अपनी आत्मा को शुभ कर्म की ओर उन्मुख करो। सत्कर्म की ओर मन को मोड़ना चाहिए। अच्छे कर्म ही आत्मा को शान्ति प्रदान करके उच्च सोपान पर चढ़ा सकते हैं। कर्म ही श्रेष्ठ है, उच्च कुल या मानव-भव मिलने पर भी यदि हमारे कर्म हीन है तो जीवन का कोई महत्व नहीं है। यदि कर्त्तव्यों की ओर आप सजग है तो कर्म भी निश्चित रूप से उत्तम ही

होंगे। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है- माँ तथा गुरु। माँ अपने बच्चे का लालन-पालन अपने सुखों का परित्याग करके करती है, यह उसका कर्त्तव्य है। अब गुरु अपने शिष्य को योग्य बनाने हेतु प्रति पल सजग रहता है। शुभ कर्म की प्रेरणा देता है। यह उसका कर्त्तव्य है। शुभ कर्मों की ओर ध्यान दो, यही मानव के भाग्योदय का कारण बनेगा। यही तुम्हें सफलता की ऊंचाई प्रदान करेगा। दूसरों का अहित कभी मत सोचो। यदि सोचा और किया तो उसका परिणाम भी तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।

व्यक्ति में हो परिवर्तन तो, युग परिवर्तित हो सकता है।

मानव यदि जग जाये तो वह, पाप कालिमा धो सकता है।

आप सभी को जागना है, दूसरों के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए। यह संसार है, कर्मक्षेत्र है। अच्छे कर्म करके सभी को अपना बनाओ। अहंभाव को त्यागकर संसार का भला हो वैसा कर्म करो।

हमें किसी की जरूरत नहीं है, ऐसा कहना अहंभाव है।

जो संसार में है, उसे सारे संसार से काम पड़ता है। अपने कार्यों से सभी का मन जीतना ही जीवन की सफलता है। अहंभाव की तुष्टि के लिए हीन कर्म करने को तैयार हो जाना पाप के पंक में गिरने के समान है। कर्म की महानता ही मानव को महान बनाती है। यदि महान बनना है तो उसका एक ही रास्ता है। कर्म को उच्च बनाओ, कर्म आपको उच्च बना देंगे। कर्मों के करने में जो निपुणता है, उसे कुशलता कहते है। जो सुन्दर कर्म करे वो कुशल। पाप का ही पुत्र दु:ख है जो कुशल व्यक्ति के पास नहीं फटकते।

कर्म के सिद्धांत का अर्थ है तुम इसके जिम्मेदार हो, तुम जहां हो, अपने ही कारण हो।

ईश्वर ने हमें शरीर दिया और इंद्रियां भी। ये सब सक्रियता के लिए ही दी हैं। इनसे हम सत्कार्य करते हैं या असत्कार्य? सत्कार्य का फल सुख और असत्कार्य का फल दु:ख है। हम असत्कार्य करके सुख पाना चाहते हैं तो वह मृग-मरीचिका ही होगी। यदि हम संसार की गतिविधियों को देखें तो यही पाएंगे कि सब लोग सुख की ही कामना से नाना प्रकार के कार्यों में लगे रहते हैं। कठोर परिश्रम के पश्चात थोड़ा सा सांसारिक सुख मिलता है, पर अंत में दु:ख ही हाथ लगता है। सुख तो उसी कर्म से मिल सकता है जो दूसरों को सुखी करने के लिए किया जाता है, परंतु नासमझी के कारण हम अपने स्वयं के सुख के लिए दूसरों के दु:ख की परवाह नहीं करते इसीलिए कालांतर में हमें वह सुख प्राप्त नहीं होता जो हम प्राप्त करना चाहते हैं। क्रिया दो प्रकार की होती है; एक आंतरिक और दूसरी बाह्य।

आंतरिक क्रिया मन, बुद्धि एवं भावना से होती है। हम जितना ही अपने भीतर जाते हैं, अपनी अंदरूनी दुनिया में जाते हैं, उतना ही अधिक सुख और शांति मिलती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हमारे हृदय में ईश्वर विराजमान हैं। वे ही शाश्वत आनंद के परम एवं एकमात्र स्रोत हैं। हम अपने अंदर स्थित ईश्वर से जितनी अधिक निकटता बना पाते हैं, हमारा आनंद भी उतना ही अधिक घनीभूत होता जाता है। एक बार उस आनंद का स्वाद मिल जाए तो फिर और सब बाहरी सुख एकदम फीके पड़ जाते है। उसी की चाह सबको है पर सब कोई उस स्रोत की ओर उन्मुख नहीं होता। हम चाहें तो अपनी बाहरी क्रियाओं को भी सुख का साधन बना सकते हैं। इसके लिए यह विशेष विचार जोड़ना आवश्यक है कि हम जो क्रियाएं कर रहे हैं वे प्रभु की ही इच्छा की पूर्ति के लिए हैं। ऐसी भावना होगी तो हमसे सत्कार्य ही होंगे। जो क्रियाशील है वही जीवित है। जो निष्क्रिय है उसका जीवन भार-स्वरूप है। न उसकी अपने लिए ही कोई उपलब्धि है और न दूसरों के

लिए ही। जीवन पाकर जिस समाज ने जीवन में निरंतर सहयोग प्रदान किया है उसके लिए उसका ऋण चुकाने के लिए प्रत्युत्तर में लाभकारी क्रियाशीलता का योगदान करना मानवता है। वस्तुत: मानवता की महानता सक्रियता से ही संभव है।

उत्तम कार्य- उत्तम कार्य असीमित हैं, जो भी कार्य हम करते हैं उससे मन, वचन, कर्म से किसी की हानि न हो और जन हित हो, यह ध्यान रखने से समाज सुधरता है, अपने दैनिक कार्य का परीक्षण करने पर लगे कि दिन के कामों में १०० भाग में ५०-६० भाग परोपकार के हुए तो बात बहुत है। आर्थिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए यदि आय का १ प्रतिशत भी जनहित पर आप व्यय करें तो भी काफी है।

यदि १ प्रतिशत भी जन सेवा में न लगा पांए तो भी कोई बात नहीं, जन हित के कार्यों में आप उपेक्षा नहीं करें और अपना कार्य ठीक करें, इतना भी मन, तन और धन की सफाई के लिए काफी है।

अच्छे कार्य और अच्छे चिन्तन आपकी भावी पीढ़ियों को अच्छा बनाते हैं, आनेवाली पीढ़ियों के लिए ही सिर्फ अच्छा बनें, काफी है, राष्ट्र और समाज के अपने दायित्वों का सही निर्वाह करें। किसे क्या बुरा लग सकता है क्या भला ? इसको अपनी स्थिति पर रख कर तोले।

ध्यान और ज्ञान- जितने क्षण हम अपने की अच्छे कार्यों में व्यतीत करें ठीक है, अच्छी संगति में अच्छे विचारों के बीच समय काटें, समाज के लिए सोचें। प्राणी समाज आपसे आशाएं रखता हैं। ज्ञान और ध्यान नव निर्माण करती है।

यह परोपकार और प्रसार की चीजें हैं, संकुचन की नहीं। इस सबसे जरूरी है कि परिणाम और प्राप्ति की आशा से काम न करें, बल्कि काम करना मानव जीवन की सार्थकता है यह सोचकर कार्य करें। परोपकाराय सतां विभूतय:, आत्मा की शुद्धि करें, शुद्ध आत्मा होने पर परमात्मा आपको भी दिखेगा और उसका निवास आप में भी होगा। यह महज दर्शन नहीं, वास्तविकता है। एक पल के लिए जो कार्य आप करते हैं, उस पर विचारें कि वैसा कार्य कोई और करे तो सुपरिणाम और दुष्परिणाम क्या होंगे ? जो अच्छा लगे वही काम करें यही चेतना है।

सृष्टि की रचना निष्काम कर्त्तव्य-कर्म द्वारा एक दूसरे की उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त करने के लिए हुई है। यह रचना दो प्रकार से हुई है। एक तो उन जीवों की रचना जिनके द्वारा स्वाभाविक रूप से संसार का हित होता है जैसे पशु-पक्षी, वृक्ष आदि। दूसरे मनुष्यों की रचना, जिन्हें विवेक शक्ति दी गयी है जिससे वे सत्-असत्, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, उचित-अनुचित को समझ सके। केवल मनुष्यों को यह कहा गया कि तुम लोग बुद्धि के द्वारा अपना कर्त्तव्य जानकर दूसरों को सुख पहुंचाओ। कर्त्तव्य-कर्म द्वारा दूसरों की सेवा करो और परम कल्याण को प्राप्त करो। मनुष्य को सुख-दु:ख भोगने के लिए नहीं बनाया गया है, वरन् दूसरों की सेवा करके अपना कल्याण करने के लिए उत्पन्न किया गया है।

जो मनुष्य सर्व-हितकारी भाव से कर्म करते हैं, उनके सम्पूर्ण कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं। कर्त्तव्य-कर्मों से अतिरिक्त अन्य कर्मों में लगा हुआ मनुष्य ही कर्मों द्वारा बंधता है। दूसरों के लिए कर्म करने से उसका पहले वाला बंधन भी छूट जाता है। हमें शरीरादि जो कुछ भी मिला है, वह सब साधन-सामग्री है, जो केवल दूसरों की सेवा करने के लिए मिली है। हमें दो बातें विशेष रूप से माननी है कि मिला हुआ अपना नहीं है और अपने लिए नहीं है। शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, घर-सम्पत्ति, परिवार आदि सबका सदुपयोग करने का हमें अधिकार है, इनसे ममता करने का नहीं। हम जो नए कर्म करते हैं उनके फलों पर तथा पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप जो शरीर, साथी और सामान आदि मिले हैं, उन पर हमारा अधिकार नहीं है। जो मनुष्य सुख-भोग, ऐश्वर्य और संग्रह में आसक्त हैं, वे परमार्थ-पथ पर चलने का निश्चय ही नही कर सकते। जब

शरीरादि अपने नहीं तो उनके संगठन से होने वाली क्रियाएं भी अपनी नहीं और जब क्रियाएं अपनी नहीं तो क्रियाजनित फल के हेतु हम कैसे हो सकते हैं ?

जिस तत्व से बना हुआ यह समष्टि संसार है, उसी तत्व से बना हुआ यह शरीर है। शरीर की संसार के साथ एकता है। इसके एक छोटे से अंश को अपना मानकर ही हम इसमें फँस गए। जिन वस्तुओं और व्यक्तियों को हमने अपना माना है, उन्हीं की चिन्ता हमें रहती है। वस्तुत: ये अपने न होकर समष्टि संसार के हैं। यदि संसार तुम्हारा नहीं, तो यह शरीर तुम्हारा कैसे ? और यदि यह शरीर तुम्हारा है तो सारा संसार तुम्हारा क्यों नहीं ? इसलिए या तो शरीर और संसार दोनों अपने हैं अथवा कोई अपना नहीं। हमने भूल से शरीर को तो अपना मान लिया, पर संसार को अपना नहीं माना। इस भेद-बुद्धि ने ही हमें जगत् और जगत्पति दोनों से दूर कर दिया है। इसने ही हमें विश्व प्रेम और प्रभु प्रेम से विरत कर दिया है।

यदि जीवन को सँवारना है तो इसकी शुरुआत इन्हीं छोटे-छोटे क्षणों को सजाने-सँवारने से करनी होगी। सच भी है क्योंकि ब्रह्मांड को जानने के लिए कण को समझना होगा, क्योंकि कण ही पिंड, शिलाखंड, भू-भाग, द्वीप, पृथ्वी, सौर मंडल और ब्रह्मांड बनाता है। आप पूछ सकते हैं कि कण-ब्रह्मांड के उदाहरण से मानव जीवन का क्या संबंध। जैसे कण-कण से ब्रह्मांड बनता है वैसे ही छोटी-छोटी बातों से जीवन गढ़ा जाता है। छोटे-छोटे कार्य, प्रयास और खुशियाँ बहुत मायने रखती हैं इसलिए इन्हें सुंदर से सुंदर बनाना ही चाहिए। यदि किसी से कहा जाए कि अमुक पहाड़ की जगह फुटबॉल का मैदान बना दो तो बहुत संभव है उसे पसीना छूट जाए। देखने में यही लगता है कि यह संभव भी नहीं है, पर आज तक ऐसे हजारों पहाड़ है जिन्हें समतल किया जा चुका है। इसमें कई पहाड़ दैत्याकार भी थे। इतना बड़ा काम कैसे हो सका ? इसका एक मूलमंत्र है पहाड़ को जमींदोज करने की शुरुआत एक छोटे से पत्थर से हुई थी। एक-एक पत्थर हटता गया, पहाड़ खत्म होता गया। आजकल तमाम संस्थाएँ, संगठन ऐसे हैं जो अपने-आप में विशाल हैं और जब इनके संस्थापकों से पूछा जाता है कि यह कैसे संभव हो सका तो वे बताते हैं कि उन्होंने तो कभी ऐसा सोचा ही नहीं था, बस उन्होंने एक ईमानदार शुरुआत की थी, बाकी काम धीरे-धीरे होता चला गया। इसीलिए जीवन की ऊँचाइयों में पहुँचने वाले व्यक्ति अपने छोटे-छोटे कामों को बड़ी सावधानी और निष्ठापूर्वक करते हैं। समय और परिस्थिति के हिसाब से तो महान कोई भी बन सकता है पर जरूरी है कि हर काम ईमानदारी के साथ हो। गौतम बुद्ध अपने शिष्यों से कहा करते थे कि तुम जो भी काम करो, उसमें अपनी पूरी शक्ति झोंक दो, कोई कसर बाकी मत छोड़ो। यदि कोई अपने काम कोतही और बेमन से करता है तो समझना चाहिए कि वह व्यक्ति दुर्बल मानसिकता का है। चीन में कन्फ्यूशियस नाम के प्रख्यात दार्शनिक हुए हैं। वे अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे कि जब खाना खाओ तो राजा-महाराजाओं की तरह बैठकर स्वाद से, झूम-झूम कर भोजन करो। उसे महत्व दो, पूरे मनचित्त से करो। १८ वीं सदी के महान संन्यासी स्वामी विवेकानंद अपने संस्मरण में एक साधु की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वह जो करता था पूरी निष्ठा और लगन के साथ। पूजा की थाली और घंटी भी धोता था तो ऐसे कि वह चमचमा उठे। अपने छोटे-छोटे कामों को बड़े मनोयोग से करने की जो सलाह दी गई है उसके अपने मनोवैज्ञानिक कारण भी हैं। हड़बड़ाहट में किया गया कार्य सिद्ध नहीं होता और किसी काम को एकाग्रचित्त हो करना सतत अभ्यास के बाद आता है। एक बार ऐसी आदत पड़ जाने के बाद वह व्यक्ति दाँत भी माँजता है तो मन लगाकर, पूजा भी एकाग्रचित्त होकर करता है और दैनिक कार्यों में भी एक ही बार में सफलता

प्राप्त करता है। इसकी कितनी महत्ता है इसे इसी बात से जान लेना चाहिए कि भगवान श्रीकृष्ण गीता में उपदेश देते समय अर्जुन से कहते हैं कि कर्म में कुशलता का नाम योग है।

कुछ लोग कहते हैं कि कर्म के द्वारा परमपुरुष को पाएंगे। यह भी ठीक है। परमपुरुष के पास जाना भी कर्म ही है। कर्म के बिना तो मनुष्य एक पल भी रह नहीं सकते हैं। सांस लेने की क्रिया भी कर्म है। कर्म करना चाहिए, किंतु वह सही कर्म होना चाहिए। यदि परमपुरुष की ओर चलें तो ठीक है, अगर उधर नहीं चलते तो वह अकर्म है। उससे कोई फायदा नहीं है। अगर परमपुरुष की भावना लेकर कर्म किया तभी ठीक है।

कर्मका परिणाम कैसे निकलता है, यह गणित उनको मालूम नहीं है। काम करने, बात बोलने और उनका फल प्राप्त करनेका एक गणित होता है। वह गणित जिसको मालूम है उसका जीवन सफल होता है। और जिसको वह गणित नहीं मालूम, उसका जीवन संशयग्रस्त और असफल होता है। जहाँ बुद्धि भी मन्द हो, भाग्य भी मन्द हो और हृदयमें रागद्वेषका उपद्रव लगा हुआ हो वहाँ जीवनमें सफलता कैसे मिलेगी? कर्म एक निरन्तर साधना है उसमें संयोग या अकस्मात उपलब्धि का कोई स्थान नहीं। वैराग्यहीन के लिये कर्मका विधान है। जब तक वैराग्य न हो तबतक कर्म करें अथवा जबतक भगवत्कथा श्रवणमें, कीर्तनमें श्रद्धा न हो जाये तबतक कर्म करें। जिस यत्न से शरीर के बन्धन से आत्मा के छूटने का योग सधे वही कर्मयोग है। कर्म जीवन का अमृत है, व्यस्त व्यक्ति ही सबसे सुखी है।

कृष्णके बाद निष्काम कर्मयोगके प्रथम आचार्य सूर्य ही हैं। उनके जीवनमें एक क्षण के लिये भी विश्राम नहीं है। वे सबको प्रकाश देते हुए कहीं भी आसक्त नहीं होते और बदलेमें किसीसे कुछ न चाहते हुए अपने कर्मोंमें संलग्न है। वे वचनसे बोलकर कर्मयोगकी शिक्षा नहीं देते, अपनी क्रियाके द्वारा कर्मयोग की शिक्षा देते हैं।

जीव अपने पूर्व स्वभाव के पूर्व, संस्कारों के अधीन है। देवता हों, असुर हों, मनुष्य हों, पशु, पक्षी, कीट-पतंग तथा और भी समस्त चराचर जगत् के प्राणी सभी स्वभाव में स्थित हैं। कोई उत्तम कर्म करने से उत्तम योनि को प्राप्त होता है, दूसरा अधम कर्म करके अधम योनि में जाता है। संसार में हमारा न कोई शत्रु है न मित्र न उदासीन। कर्म के ही अनुसार शत्रुता, मित्रता उदासीनता होती है, गुरु भी कर्मानुसार ही प्राप्त होता है। प्राप्त क्या होता है कर्म ही गुरु का रूप रख लेता है, कर्म ही गुरु है और ईश्वर भी कर्म ही है। सबसे अधिक आदरणीय कर्म ही है।

कर्म करने का स्वभाव प्राणियों का स्वाभाविक है, कोई भी प्राणी कभी भी क्षण भर को भी बिना कर्म किये रह नहीं सकता। स्वभाव से प्रकृति से ही सभी व्यक्त होने को विवश हैं, कर्मों की आसक्ति जन्म-मरण का कारण है।

बिना कर्म किए अकेला मनुष्य भी अपनी जीवन यात्रा को पूरा नहीं कर सकता क्योंकि शरीर की रक्षा के लिए भोजन, जल तथा वस्त्र आदि आवश्यक हैं और यह सब कर्म किए बिना मनुष्य कोई फल प्राप्त नहीं कर सकता।

कर्म चित्त की शुद्धि के लिये ही है, तत्त्व दृष्टि के लिये नही। वस्तु सिद्धि तो विचार से होती है। करोडो कर्मों से कुछ भी नही हो सकता। जिस कर्म में भोग की कामना होती है और जो अहंकार से किया जाता है तथा जिसके करने में बहुत प्रयास होता है वो तो राजस कर्म कहा जाता है।

अपनी करनी का फल सबको अपने किये हुये कर्मों के अनुसार भुगतना पडता है जैसे बबूल का पेड बोने पर उसमें आम के फल की अपेक्षा व्यर्थ है।

कथनी तो इस जगत में खोखली होती है। कोई भी कुछ भी कह देता है किंतु असली बात तो करनी की है। अपनी कथनी के अनुसार करनी बहुत कम लोग ही कर पाते हैं। करनी ही सबसे भली है। कर्म करके ही मानव संसार-सागर को पार कर पाता है। कथनी कहते-कहते फूले नहीं समाते, अपनी कथनी को ही मधुर और उत्तम बताते हैं और घमंड करते हैं। मूर्ख प्राणी भक्ति भावना को तो समझता नहीं और गंवारों वाली बातें करता है। केवल कथनी से ही लोगों को बहलाया नहीं जा सकता।

कथनी का तात्पर्य है कहना। जो कुछ भी मनुष्य बोलता है वह कथनी ही है। कथनी और करनी का प्रगाढ़ संबंध है। कथनी का महत्त्व तभी होता है जब करनी भी उसी के अनुकूल की जाए। करनी के बिना ही जो कथनी कथता फिरता है वह कभी भी गुरु पद को प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे केवल पकवानों की बातें करके ही पेट नहीं भर सकता, उसी प्रकार करनी भी महत्त्वपूर्ण होती है। केवल कथनी कहने से काम नहीं चलता। उस पर अमल भी जरूरी है।

करनी तो करो किंतु उस पर गर्व मत करो। करनी करने के पीछे केवल मुक्ति पाने का ही स्वार्थ होना चाहिए। केवल कथनी करना छोड़ दो और करनी पर ध्यान दो। तभी मुक्ति की प्राप्ति संभव है।

जब सुनने के लिए श्रोता ही उपस्थित न हों और अगर उपस्थित हों भी तो उनका ध्यान अन्यत्र हो तो वक्ता की कथनी व्यर्थ ही है। जब श्रोता और वक्ता दोनों एक ही उद्देश्य से उपस्थित रहेंगे अर्थात वक्ता ज्ञान उपदेश हेतु तथा श्रोता ध्यान से सुनने हेतु तब ही कथनी में स्वाद (रस) मिलेगा।

सच्चे मन से की गई करनी तो रज (मिट्टी) के एक छोटे से कण के समान भी नहीं है। किंतु कथनी तो सुमेरू पर्वत की तरह बढ़ाई जा सकती है। कितने ही मूर्ख अज्ञानी व्यर्थ की कथनी (बकते-बकते) करते-करते मर गए अर्थात नष्ट हो गए। जो काम कल करने की सोच रहे हो अथवा कल पर टाल रखा है उसे आज ही कर डालो और जो आज करना है उसे तुरंत कर लो, आलस मत करो। पल में प्रलय हो जाएगी। तब कुछ भी करने योग्य नहीं रहोगे अर्थात मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है। अत: अपने कोई भी काम टालो मत, तुरंत ही कर डालो।

यह मानव अपने कर्मों के कारण (दुष्कर्मों का बोझ उठाने के कारण) बैल के समान बन गया है। बस सींग और पूंछ की कमी रह गई है। केवल एक गुरु के नाम, ज्ञान और ध्यान के बिना तो इस मानव की दाढ़ी और मूंछ दोनों पर धिक्कार है।

हम जो कुछ भी कर्म करते है उसका असर हमारे मन पर पडता है। कर्मयोगी का कर्म एक प्रकार का जप होता है। उससे उसकी चित्त-शुद्धि होती है और निर्मल बुद्धि का प्रभाव हमारे कर्म पर पडता है।

कर्मवाद यही सिखाता है कि अपना किया कर्म है। शांति से भोगो। व्यर्थ ही दूसरों को दोष देने और घृणा करने से क्या लाभ ? दोषारोपण और घृणा तो आगे के लिए और अधिक बंधन में डालेगी। दु:ख का मूल कारण अपनी आत्मा में ही है, अपने दोष में ही है। दूसरे तो मात्र निमित्त कारण होते हैं। कर्मवाद, विचारक के लिए समभाव का आलंबन है।

जो मनुष्य कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म को पहचान सकता है वह मनुष्यों में बुद्धिमान है और ऐसा योगी कर्म मे निरत रहता है। जिस प्रकार भुने हुये चनो के दाने अंकुरित नहीं होते, उसी प्रकार ईश्वरोन्मुख व्यक्ति के कर्म अंकुरित नही होते और नवीन कर्मों का सृजन नहीं होता।

शास्त्र एवं धार्मिक ग्रंथों का सारा निचोड़ एक ही पंक्ति में समा गया है, ऐसे हों हमारे करम। साफ और सीधी सी बात है

कि कौन सा कर्म वांछनीय है और कौन सा अवांछनीय। जो कर्म मनुष्य एवं प्रकृति के हित में है, वह करने योग्य है। कर्म में ही समस्त सृष्टि के अमरत्व का सार है। जिस कर्म को करके आत्मसंतुष्टि हो, चित्त प्रफुल्लित रहें एवं आत्मा पर कोई बोझ न हो, वही वास्तविक कर्म है। जिस कर्म से किसी को हानि हो, चोट पहुंचे उससे हमें बचना है। जितनी हानि मनुष्य को स्वयं मनुष्य ने पहुंचाई है, उतनी अन्य किसी प्रजाति या प्राकृतिक घटना ने नहीं। महात्माओं के बताए हुए मार्ग से भटकाव के कारण ही हमें अपने चारों ओर गरीबी, भूखमरी, झगड़े इत्यादि नजर आते है। नेक कर्म से ही शांति एवं सद्भाव संभव है।

सुख दुख भोगने से काफी पहले ही हम उन्हें चुन चुके होते हैं - सूफी संत खलील जिब्रान कहते हैं, हम अपने सुखों और दुखों का अनुभव करने से बहुत पहले ही उसका चुनाव कर लेते हैं। कर्म फल के सिद्धांत के अनुसार हम जैसा कर्म करते हैं, वैसा ही फल पाते हैं। जो बीज हम बोते हैं, उसी बीज से उत्पन्न पेड़ के फल हमें प्राप्त होते हैं। कुछ बीज ऐसे होते हैं जो बोने के बाद जल्दी ही बड़े होकर फूल-फल प्रदान करने लगते हैं, जबकि कुछ बीज धीरे-धीरे अंकुरित होते हैं और धीरे-धीरे ही उनकी वृद्धि होती है। जिस प्रकार हमें अपने बोए बीजों के फूल-फल अवश्य मिलते हैं, उसी प्रकार हमारे कर्म रूपी बीजों के फल भी देर-सबेर वहन करने पड़ते हैं।

कोई भी विचार सबसे पहले मन में आकृति ग्रहण करता है, इसके बाद ही वास्तविकता में परिवर्तित होता है। इस प्रकार कर्म की उत्पत्ति हमारी सोच, हमारे चिंतन, हमारे संकल्पों का परिणाम मात्र है। यह हमारे विचारों अथवा संकल्पों की तीव्रता तथा हमारे विश्वास की सीमा पर निर्भर है कि हमारे विचार कब कर्म फल के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। सोच अच्छी या बुरी यानी सकारात्मक या नकारात्मक कुछ भी हो सकती हे। सही सोच का चुनाव करना व्यक्ति, उसके परिवेश, शिक्षा-दीक्षा और संस्कारों पर निर्भर करता है। सकारात्मक सोच से उत्पन्न कर्म हमारी भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति में भी सहायक होते हैं, जबकि नकारात्मक से उत्पन्न कर्म हर दृष्टि से पीछे की ओर ले जाते हैं। मनुष्य की स्थिति ठीक एक दोपहिया वाहन के समान होती है। सभी दोपहिया वाहन केवल आगे की ओर चलते हैं। स्कूटर, मोटर साइकल अथवा साइकल में पिछला गियर नहीं होता। साइकल में सही दिशा में पैडल मारेंगे तो आगे बढ़ेंगे। गलत दिशा में पैडल मारेंगे, तो कुछ हासिल नहीं होगा। ज्यादा प्रयत्न करेंगे तो संतुलन बिगड़ जाएगा और गिर जाएंगे। सकारात्मक या नकारात्मक सोच द्वारा अपने सुख-दुख का सामान जुटानेवाले हम स्वयं हैं, अन्य कोई नहीं।

एक बार एक व्यक्ति चूहे मारने की दवा खरीदने गया। दुकानदार से दवा ली और घर की तरफ चल दिया। रास्ते में मन में न जाने क्या ख्याल आया कि वापस दुकान पर गया और दुकानदार से पूछा, भाई, यह तो तय है कि दवा से चूहे मरेंगे तो पाप लगेगा। ये बताओ कि पाप तुम्हें लगेगा या मुझे? दुकानदार ने कहा, पाप-पुण्य का सवाल तो तब उठेगा जब चूहे मरेंगे। आज तक इस दवा से कोई चूहा नहीं मरा है। मनुष्य से अपेक्षा की जाती है कि वह कर्म करे और फल अथवा परिणाम की चिंता न करे। लेकिन हमारे मन में परिणाम की आशंका पहले से ही घर कर जाती है, जिससे न तो कर्म का मूल अर्थात विचार ही सहज रह पाता है और न ही सहज रूप से कर्म का निष्पादन हो पाता है।

निराशा के भंवर में फंसे मन को शांति व सुकून देता है कर्मयोग। आज तक दुनिया में जो भी महत्वपूर्ण मानव कल्याण के कार्य हुए हैं, वैज्ञानिक शोध किए गए हैं, वे सब शांत, एकाग्र, धैर्यपूर्वक निरंतर किए गए प्रयोगों के फल हैं। जल्दबाजी

में कोई भी महत्वपूर्ण कार्य आज तक नहीं हुआ। कहते हैं जल्दी का काम शैतान का। अत: जीवन में यदि कुछ महत्वपूर्ण प्राप्त करना है तो आराम से, तनाव रहित होकर ही पाया जा सकता है।

कई बार जब हमारा काम करने का दिल नहीं होता अथवा हम उस काम को करते हुए उत्साह नहीं दिखाते तो वह काम अत्यंत कठिन और बोरियत भरा लगता है। इच्छा न होने पर काम करते समय क्रोध व तनाव जैसे आवेग उसकी राह में अनेक बाधाएं खड़ी कर देते हैं। वहीं उत्साह, प्रेम के भाव किसी काम को सहज और सरल बना देते हैं। अक्सर हम अपनी असफलता का कारण इधर-उधर खोजते हैं, जबकि असफलता का कारण हमारे स्वयं के ही अंदर छिपा होता है।

गीता में भगवान कृष्ण कर्मयोग की प्रेरणा देते हैं किंतु कर्मयोग में भी अंधी दौड़ के लिए कोई संदेश नहीं है। हमारी योग्यता, वातावरण और शक्ति के अनुसार हम जो अधिकतम पूर्ण गुणवत्ता के साथ कर सकें, वही करने की प्रेरणा गीता में दी है। गलाकाट प्रतियोगिता तो कामना और स्वार्थों के कारण होती है जिसका गीता में निषेध है।

भगवान कृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं, इस कर्मयोग में निश्चय करनेवाली और समाधान देनेवाली बुद्धि एक ही है। अस्थिर विचार वाले मनुष्यों की बुद्धि कई तरह की शंकाएं पैदा करती है। अगर बुद्धि बिखरी है और मन भटका है तो निश्चय की कमी होती है और छोटी-छोटी बातें तकलीफ देती रहती हैं। इसका मतलब है कि हम केवल कुछ पाने की इच्छा से ही कर्म कर रहे हैं। केवल फल की इच्छा में लगी बुद्धि विवेक को खा जाती है। विवेक हमारे मन के भीतर लगे एक तराजू की तरह काम करता है, जो गलत और सही का भेद बताता है।

आज आधुनिकता के नाम पर अंधी प्रतियोगिता हो रही है। किसी भी धर्म में इस प्रकार की प्रतियोगिताओं का समर्थन नहीं है। मनुस्मृति में कहा गया है, सदाचारी, श्रद्धावान और ईर्ष्या रहित मनुष्य सौ वर्ष जीवित रहता है। अन्य गुण कम हो या न भी हो, यदि व्यक्ति में सदाचार है तो वह भले ही प्रतियोगिता या अंधी दौड़ से बाहर रहेगा, लेकिन तनाव रहित रहेगा और उसके ही हृदय में परमशांति का निवास होगा। गीता निराशा के भंवर में फंसे संसार को सफलता और असफलता के प्रति समान भाव रखकर कार्य करने की प्रेरणा देती है। इसे ही कर्मयोग कहा गया है। रामायण में भी कहा गया है कि जो कर्म का विचार न कर केवल फल के लिए दौड़ता है, उसका फल मिलने पर भी वैसे ही व्यर्थता का अहसास देता है जैसी व्यर्थता ढाक का वृक्ष सींचनेवाले को मिलती है।

जितने बड़े सपने होंगे, परिश्रम उतना ही अधिक करना होगा। आत्मा और परमात्मा के बीच संबंध एक वास्तविकता है जिसे जितना जल्दी हो स्थापित निष्कर्ष मान लेना चाहिए। इसके साथ ही यह भी मान लेना चाहिए कि व्यक्ति की इच्छाओं को फलित करने का परम अधिकार इस संसार में सिर्फ परमात्मा का है और इसलिए व्यक्ति जो भी इच्छा रखता है उसे परमात्मा की जानकारी में मानना चाहिए, जिसका पूरा होना अमुक व्यक्ति के कर्म और भाग्य पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति के भाग्य में किसी इच्छा का पूरा होना लिखा है और उसने उसी अनुपात में कर्म भी किए हैं तो उसकी इच्छा अवश्य पूरी होगी।

यह भी हो सकता है कि इच्छा पूरी होने में समय लग रहा हो, जिसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो व्यक्ति के अभी तक के कर्म वांछित अर्हत के स्तर के हुए ही नही हों और दूसरा यह कि वह इच्छा पूरा होना उसके भाग्य में लिखा ही न हो। जैसे ही व्यक्ति के कर्म वांछित स्तर को पा लेंगे, वैसे ही उसकी इच्छा को अंजाम मिल जाएगा। बावजूद इसके, यह

भी मानकर चलना चाहिए कि किसी इच्छा के पूरा न होने की स्थिति में भी कर्मों के अनुपात में परमात्मा उस व्यक्ति को कुछ न कुछ जरूर देंगे, यानि कि व्यक्ति के कर्म व्यर्थ नहीं जाएंगे। इसलिए कर्म करते रहना सबसे महत्वपूर्ण है।

इसका अर्थ यह हुआ कि कर्म करना व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में है तथा कर्म और भाग्य के मिश्रण से इच्छारूपी फल को तैयार करना परमात्मा का विशेषाधिकार है। कर्म-भाग्य के मिश्रण का अनुपात क्या रहता है- यह भी परमात्मा का विषय है। और जो विषय परमात्मा के क्षेत्राधिकार में आते हैं, उनमें पड़ने से व्यक्ति को बचना चाहिए। जहां तक व्यक्ति का संबंध है, उसे खुलकर इच्छा रखने का भी हक है और तदनुसार कर्म करने का भी। व्यक्ति को पूरी तरह आशावादी होना चाहिए और बड़ी से बड़ी इच्छा रखनी चाहिए, उसी से तो पता चलेगा कि वह इच्छित मुकाम उसके भाग्य में है या नहीं। उसे अपने कर्म भी उसी अनुपात में करने का पूरा प्रयास करना चाहिए, अर्थात बड़ी इच्छा के लिए बड़े स्तर का परिश्रम।

व्यक्ति द्वारा कोई भी इच्छा अपनी योग्यता और क्षमता को ध्यान में रखकर ही की जानी चाहिए क्योंकि यदि योग्यता कम होते हुए बड़ी इच्छा रखी तो अकेले क्षमता से काम नहीं चलेगा और इसी तरह क्षमता में कमी होने के कारण बड़ी से बड़ी योग्यता भी कुछ नहीं कर पाएगी। योग्यता और क्षमता दोनों को बढ़ाने की ताकत भी परमात्मा ने व्यक्ति को दी है, जिसका पूरा इस्तेमाल करना चाहिए। और अंत में अपने सब कर्मों को परमात्मा को समर्पित करते हुए निर्लिप्त भाव से कर्म करने की आदत विकसित करने की दिशा में बढ़ना चाहिए।

सोच सार्थक व सकारात्मक है तो कर्मफल की कामना में दोष नहीं - श्रीमद्भागवत गीता में ही नहीं उसके बाद के अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रंथों में भी निष्काम कर्म को बहुत महत्व दिया गया है। हर विवेकशील व्यक्ति ने इस पर अपने विचार रखे हैं, क्योंकि निष्काम कर्म से उत्तम कोई स्थिति हो ही नहीं सकती। श्रीमद्भावगत गीता में कहा गया है कि मनुष्य कर्म करे, फल की इच्छा न करे और वह कर्म से कभी विरत न हो। विभिन्न पुस्तकों के माध्यम से मनीषियों ने इस संसार सागर को पार करने अथवा मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग बतलाए हैं- भक्ति, ज्ञान और कर्म। जो व्यक्ति नियमित रूप से कर्म में व्यस्त रहता है उसे बाकी चीजों के लिए न तो समय मिल पाता है और न उसे बाकी चीजों की जरूरत ही रह जाती है।

एक किसान जब हम सब की भूख मिटाने के लिए अन्न उगाता है तो उसका यह कर्म किसी भी प्रकार से निष्काम कर्म से कम नहीं बैठता। विवेकानंद के लिए तो मानवमात्र की सेवा ही सबसे बड़ी आध्यात्मिकता है जो सात्विक व निष्काम कर्म का ही एक उत्तम रूप है।

कर्म के अभाव में मनुष्य अकर्मण्य अथवा निष्क्रिय हो जाता है। एक अकर्मण्य अथवा निष्क्रिय व्यक्ति जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। कर्म अनिवार्य है। कर्म के अभाव में हमारा अस्तित्व ही संकट में पड़ सकता है। इसीलिए कहा गया है कि बेकार से बेगार भली। इसीलिए हम सब कभी खाली नहीं बैठते। क्या फल की इच्छा अथवा कामना से रहित होकर कर्म करना संभव है? वास्तव में इच्छा अथवा कामनारूपी बीज के अभाव में कर्मरूपी पौधे उत्पन्न ही नहीं हो सकते। हम पाते हैं कि हमारे हर कर्म के मूल में कोई न कोई विचार या कामना अवश्य होती है। होनी भी चाहिए। कामनारहित होना असंभव है। यदि हममें से कोई व्यक्ति यह दावा करे कि वह अपने जीवन में निष्काम कर्मयोग का पालन करता है तो वह एक जुमले से अधिक कुछ नहीं होगा।

हमारे विचार, इच्छाएं अथवा कामनाएं कैसी हों। यदि उद्देश्य ठीक है और समाज अथवा राष्ट्र के लिए सार्थक व उपयोगी है तो ऐसा कोई भी कर्म बुरा नहीं कहा जा सकता। वैसे यदि हम कुछ भी अच्छा करना अथवा निष्काम भाव से करना चाहते हैं तो यह भी एक कामना ही तो है। आज पूर्णत: निष्काम कर्म संभव ही नहीं। जहां तक फल की इच्छा की बात है वह भी इतनी खराब नहीं लगती। क्या ईमानदारी से कार्य करते हुए सफलता प्राप्ति अथवा उसके पारिश्रमिक की इच्छा करना बहुत बुरी बात है? क्या हमें अपनी सफलता अथवा अपने परिश्रम के बदले में उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने के लिए सचेत नहीं रहना चाहिए? हम कोई भी कार्य क्यों न करें, हमारी सोच सार्थक व सकारात्मक होनी चाहिए। हमारे विचार सात्विक होने चाहिए। कर्म हमारा अधिकार नहीं कर्तव्य हो, लेकिन सकारात्मक सोच से उत्पन्न कर्म करना ही हमारा कर्त्तव्य हो।

सुख न विजिटिंग कार्ड के विस्तार में है और न आलसी होने में। आजकल हर आदमी जिंदगी में संतुलन लाने की बात करता है। हर आदमी यह सिखाने के लिए आतुर है कि नौकरी और जिंदगी के बीच संतुलन कैसे बिठाया जाए। कई तरह के गुरु हैं- योगा गुरु, प्रबंधन गुरु।

हममें से बहुत से लोग जिसे काम समझते हैं, वह हमारे जीवन का तीन चौथाई भाग है, जब हम जाग रहे होते हैं। इसलिए यदि हम कर्म और जीवन के विभाजन में विश्वास करते हैं, तो जीवन में कुछ सार तत्व बचता ही नहीं। क्योंकि बाकी बचा एक चौथाई हिस्सा तो वह है, जब अमूमन हम सोए होते हैं। इसलिए खुशी हासिल करने के लिए काम से भागना या उसे गुलामी समझना- हमारी नासमझी का परिचायक है। आवश्यकता इस बात की है कि केवल सन्तुलित जीवन पर विचार किया जाए। कर्म उसका महत्वपूर्ण भाग हो। कर्म को यातना न समझा जाए। लोग छुट्टियों में घूमकर आते हैं तो आपको बार बार विश्वास दिलाने की कोशिश करते हैं कि उन्होंने बहुत मजा किया। लेकिन कुछ काम न करना, सिर्फ सुनने में ही अच्छा लगता है, इसलिए उसे अपनी आकांक्षा बनाने से बचना चाहिए। किसी ने ठीक कहा है कि लाखों लोग इतवार की आलस भरी दोपहरी कैसे बिताएं- यह तो नहीं जानते, पर अमर होना चाहते हैं। अमरत्व के अभिलाषी लोगों में एक हम भी हो सकते हैं। यह इच्छा कर्म से विमुख होकर तो पूरी नहीं हो सकती। आईंस्टाईन को हम प्रयोगशाला में किए उनके प्रयोगों और टॉलस्टाय को उनके लेखन के कारण याद करते हैं। आज कैमरॉन को निर्देशक के रूप में, तेंदुलकर को क्रिकेट के मैदान में किए उनके कारनामों के कारण नारायणमूर्ति या बिलगेट को उनके विशेष क्षेत्र में योगदान के लिए वाहवाही मिलती है।

रणभूमि में कर्त्तव्य का प्रतीक वर्दी पहने सैनिक शहीद हो जाते हैं, तो हम उनको सलाम करते हैं। हम अपने गुरुओं के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करते हैं, जिन्होंने हमें कक्षा के बाहर भी पाठ पढ़ाए। चिकित्सकों के प्रति आभारी होते हैं, क्योंकि उन्होंने हमें पूरी सामर्थ्य से संभाला।

उपर्युक्त उदाहरणों में लगभग सभी ने जो कुछ किया, खुशी और विश्वास से किया। उन्हें वह काम करना अच्छा लगा। शायद दफ्तर में नियत घंटों से ज्यादा समय बिताने पर भी वे दुखी नहीं हुए। निगमों में प्रचलित अपनी संस्थानों से अधिक अपने काम से प्यार करो मुहावरे के पीछे गहरी व्यावहारिक बुद्धि है। परंतु प्राय: जब हम संतुलन की बात करते हैं, तब काम से मुक्ति चाह रहे होते हैं। ऐसे अवसरों पर नीति की दृष्टि से सही होते हुए भी हमारी सोच अतिवादी हो जाती है।

आचार-सदाचार, विचार-सद्विचार, आचरण, व्यवहार, अनुशासन, शिष्टाचार

अनुशासन - दुर्भाग्यवश आज भारत के अधिकांश क्षेत्रों में अनुशासन की भारी कमी है। उच्च स्तर से लेकर निम्न स्तर तक तथा सभी क्षेत्रों में अनुशासनहीनता व्यापक रूप से विद्यमान है। इसका दिन-प्रतिदिन विस्तार होता जा रहा है। राष्ट्रीय एकता, राजनीतिक आत्मनिर्भरता एवं आर्थिक समृद्धि के लिए अनुशासन विशेष रूप से राष्ट्रीय स्तर पर नागरिकों का चरित्र निर्माण अत्यंत आवश्यक है। विविधता के मध्य अनुशासन एक कड़ी है जो एकता स्थापित करने की क्षमता से युक्त है।

प्रकृति की प्रत्येक वस्तु नियमों से आबद्ध है। मनुष्य की सबप्रकार की उन्नति अनुशासित जीवन से ही होती है। वर्तमान में अनुशासन हीनता के कारण समाज में उच्छृंखलता, अराजकता व्याप्त है एवं पारिवारिक जीवन की श्रृंखला की कडियां टूट रही है। आधुनिक चकाचौध से ओतप्रोत जीवन यापन मे मनुष्य मर्यादित परम्पराओं को विस्मृत कर रहा है। अत: जीवन यापन में मनुष्य मर्यादित परम्पराओं को विस्मृत कर रहा है। अत: जीवन के सर्वांगिण विकास के लिये अनुशासित जीवन बिताना ही आवश्यक है।

मनुष्य जीवन में अनुशासन का विशेष महत्व है। इसे व्यवहारगत रखकर ही वह अपने चरित्र को प्रभावशाली बना सकता है। जिस राष्ट्र के नागरिक अनुशासित है वह राष्ट्र विकास की बुलंदियों को छूता है। हमारे देश में बदलती जीवन शैली के कारण अनुशासन गौण होते जा रहा है और सभी स्वहित के लिये राष्ट्र की उपेक्षा कर रहे है। जो न देश के हित में है और न ही नागरिकों के हित में। सभी को देश के संपूर्ण विकास में जीवन में अनुशासन को महत्व देना चाहिये।

लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम आत्म-अनुशासन की आवश्यकता होती है। पशुओं के कार्य उनकी प्रकृति से निर्देशित होते है, लेकिन मनुष्य के साथ ऐसा नहीं होता है। मानवीय क्रियाकलाप उसकी इच्छाओं से निर्देशित होते है। इन इच्छाओं को आत्म-अनुशासन द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। अनेक व्यक्ति अनुशासन शब्द से ही डरते है, क्योकि जब अनुशासन दूसरों द्वारा लागू किया जाता है, तो असुविधाजनक प्रतीत होता है। लेकिन जब अनुशासन स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है, तब यह शरीर को स्वस्थ और मस्तिष्क को संतुलित रखता है। अनुशासन का अर्थ अपनी आदतों को नियमबद्ध करना है। मनुष्य की आदतें ही उसके चरित्र का आधार होती है। उसका व्यक्तित्व उसके चरित्र के अनुरूप होता है, लेकिन इस चरित्र का निर्माण कौन करता है ? कुछ लोग कहेंगे परमात्मा या प्रकृति, लेकिन यह सत्य नहीं है। वस्तुत: व्यक्ति की आदतों में उसके चरित्र का गठन होता है और उनसे ही व्यक्तित्व का स्वरूप निर्धारित होता है। आदतों की जड़े व्यक्ति की इच्छाओं में निहित होती है। वह चाहे तो इन आदतों को सुदृढ़ कर सकता है अथवा परिवर्तित कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति वास्तव में अपनी आदतों को बदलना चाहता है, तो उसे जानना चाहिए कि आदतें बनती कैसे है। इसके बाद वह साधारण अभ्यास द्वारा सफल हो जाएगा। कोई व्यक्ति थोड़े समय इन नियमों का पालन करके अपना आंतरिक रूपांतरण कर सकता है। ऐसा करके वह अपने शरीर या चेहरे को नहीं परिवर्तित कर सकता है, किन्तु वह अपने आंतरिक जगत को अवश्य परिवर्तित कर सकता है। एक व्यक्ति आज अपने आपको गलत समझ सकता है, किन्तु दूसरे दिन अपने को पूर्णरूप से रूपांतरित करके सृजन, सुख और सत्य की आंतरिक क्षमता के संपर्क

मे आ सकता है। मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति को सचेतन रूप में निर्देशित करके आत्म-अनुशासन प्राप्त कर सकता है।

जीवन में कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो अनुशासन के बिना संपन्न होता हो, इसीलिए जीवन को सफल बनाने के लिए सबसे ज्यादा अनुशासन पर बल दिया गया है। धर्मग्रंथों में भी अनुशासन को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। पर चिंता का विषय है कि आज की युवा पीढ़ी में अनुशासन का सर्वथा अभाव दिखाई दे रहा है। फलस्वरूप अधिकतर युवा सफलता के अभाव में कुंठित महसूस कर रहे हैं और गलत निर्णय ले रहे हैं।

जीवन में अनुशासन होना चाहिए। स्कूल-कॉलेज-रेल-बस-वायुयान सभी की अपनी दिनचर्या होती है। सिर्फ मनुष्य की ही समय सारिणी क्यों नहीं ? जीवन में धर्म+अर्थ+काम+मोक्ष को कैसे आचरण करना, इस पर चिंतन करे। अगर परमात्मा पर श्रद्धा है विश्वास है तो दिन की शुरुआत परमात्मा से करें। संपत्ति और विपत्ति आती है, परन्तु सन्मति आनी चाहिए। सन्मति से विचार ऊंचे रहते हैं। कोई भी दैनिक कार्य (प्रभु स्मरण, ध्यान, दर्शन, गुरु स्मरण, भक्ति) से असफल नहीं होगा। सुखी जीवन युक्त विचार से आदर्शमय बने। जीवन सफल, सुखी और गौरवमय बनेगा।

हम सबके जीवन में अनुशासन का अत्यंत महत्व है। यदि हमारे दैनंदिन जीवन में अनुशासन न हो तो जीवन का कोई भी कार्य व्यवस्थित रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता। प्रकृति का कण-कण अनुशासन में बंधा हुआ है। अनुशासित व्यक्ति स्वस्थ, सुशील, सभ्य एवं विनम्र हो जाता है। जो लोग अनुशासनहीन होते हैं वे असभ्य, हिंसक की संज्ञा में गिने जाते हैं और दण्ड के भागी होते हैं। अनुशासित व्यक्ति स्वयं तो प्रसन्न रहता है, साथ-साथ औरों को प्रसन्न रखने का प्रयास करता है। अनुशासन विश्वास का महामंत्र है। जीवन में कुछ महान बनने की संकल्पना करनी है तो पहले अनुशासन की पहली सीढ़ी चढ़नी होगी। अनुशासन से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा समाज को विकसित होने के लिए एक गति मिल जाती है। अनुशासन में कार्य करने के लिए सर्वप्रथम मन को संभालना होगा, क्योंकि मन की चंचलता होना भी मानवीय गुण है। इसीलिए मुनि हमेशा यही कहते हैं कि आप अपने मन को बांधो, इसे चंचल मत होने दो। यदि आपने मन को बांध लिया, उस पर काबू पा लिया तो तुम हर चीज अपनी आकांक्षा की तरह प्राप्त कर सकते हो जो तुम प्राप्त करना चाहते हो, जिसकी तुम इच्छा, आकांक्षा रखते हो। हमारी जिंदगी के निर्माता हम स्वयं है। भगवान ने जिंदगी का कोरा कैनवास हमें देकर अच्छी-बुरी बातें, सुख-दु:ख के रंग दिए हैं और तूलिका हमारे हाथ में दे दी है। अब हमें इस जीवनरूपी कैनवास पर विविध रंगों से तूलिका चलानी है और जीवन को रंगमय बनाने के लिये शुरू से ही गौर करना है। जीवन में हमेशा सकारात्मक रूख रखें। आप जैसा सोचते हैं जिंदगी वैसी ही बनती है। इसीलिये अच्छी बाते सोचें, क्योंकि आपका कर्म, आपकी सोच का परिचायक है। अच्छी बातों से मन हमेशा खुश रहता है। हर मानव के जीवन में सुख-दु:ख तो लगे ही रहते हैं। कहावत ही है कि हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। हमारी जिंदगी भी एक सिक्का ही है और यह जीवन सिक्का उछलकर कभी इस तरफ तो कभी उस तरफ पड़ता रहता है। हमें हमारे जीवन में आनेवाली हर घटनाओं को हर परेशानियों को अनुशासन का रंग देकर उसे रंगीन बनाना चाहिये।

हमारे यहां अनुशासन है, एक नेतृत्व है, विकास का यही मूल आधार है। अनुशासन कब चलता है ? पात्रता हो, तब चलता है। सहन करने की शक्ति हो, तब चलता है। सहन करने की शक्ति नहीं हो तो अनुशासन चल नहीं सकता। अनुशासन अपने आप नहीं चलता सबसे पहले पात्र बनो, यानी अनुशासन को झेलने की क्षमता पैदा करो। अनुशासन

को झेलने की पात्रता नहीं है, क्षमता नहीं है। हिंसा और उद्दण्डता को पुलिस और सुरक्षाबलों के जवान और फौज भी नहीं रोक पाते। आचार्य के पास तो कुछ भी नहीं है। रिवाल्वर, बंदूक तो छोडो, उनके पास हाथ भर का डण्डा भी नहीं है। कैसे करेंगे ? आज राष्ट्र की समस्या भी यही है कि पात्रता पैदा नहीं की जा रही है। व्यक्ति को पढ़ाया जाता है, बुद्धिमान बनाया जाता है, किंतु उसे पात्र नहीं बनाया जा रहा है।

जिंदगी को सही ढंग से चलाने अनुशासन बेहद जरूरी। आप अपनी मर्जी से सोना-जागना चाहते हैं। बच्चों का मन होता है कि वह ज्यादा दूरदर्शन देखें और खेल खेल सकें। पत्नी सोचती है कि काश, उसे घर के कामों से छुट्टी मिल जाती, लेकिन परिवार को सुचारू तरीके से चलाने के लिए आपको अनुशासन में रहना ही पड़ता है, ताकि जिंदगी सहज तरीके से चलती रहे। समाज में कायदे-कानून इसीलिए रहे हैं कि अनुशासन कायम रहे और सब कुछ सामान्य रूप से चले।

नियमों से आजादी का मतलब है, अपनी जिम्मेदारी को नकारना। यह किसी कहानी के एक पक्ष या अधूरे सच की तरह है। आपके अंदर अनुशासित स्वतंत्रता संस्कारों से आती है। मानवीय व्यवहार में यह तीन स्तरों पर होती है। पहले स्तर पर आप अपने आस-पास के माहौल के अनुरूप आजादी और जिम्मेदारी को अपने मनोभाव व विचारों में ढालते हैं। दूसरे स्तर पर आप अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हुए, खुद अनुशासित जीवन जीते हैं, जबकि तीसरे स्तर पर अनुशासन प्यार भरी दृढ़ता है। यह अच्छी कार्यक्षमता के लिए आपकी ऊर्जा और शक्ति को एकत्रित और क्रमबद्ध करने का तरीका हे। अनुशासन से आजादी कम नहीं होती। यह गलतफहमी है कि आजादी का मतलब है- जो मन में आए, वह करना। अनुशासन के बिना कोई काम करना बहुत आसान नहीं हो सकता। नियमों को मानकर ही हम अपनी आजादी का सही आनंद उठा सकते हैं।

आचरण- आचार से स्वर्ग मिलता है, सुख मिलता है और मोक्ष प्राप्त होता है। सदाचार से मनुष्य को आयु, लक्ष्मी, लोक परलोक में कीर्ति प्राप्त होती है। आचारवान पुरुष ही आयु, धन, पुत्र, सौख्य, धर्म तथा शाश्वत शान्ति एवम् विद्वत्व समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करते है।

जीवन में कभी कभी धूर्त और चालाक लोग मिलते है, तब हमें चोर पर मोर बनना ही हितकर है। कुछ लोग उदंड, अहंकारी, शीघ्र कोपी मूर्ख होते है। उनके दोषों की उपेक्षा कर, सद्‌गुणों की सराहना करनी चाहिये। कुछ लोगों की बुद्धि मंद होती है, बातों-कृतियों का विवेक नहीं होता लेकिन उसका अन्त:करण साफ और निर्मल होता है। उन्हें प्रेम देकर अन्त:करण के सामने नम्र होना चाहिये। कुछ लोग हमारी सज्जनता को मूर्खता समझकर हमें कष्ट देना चाहते है, समय पर उन्हे उतर देना चाहिये ताकि वह फिर कष्ट न दे। इस तरह व्यक्ति-व्यक्ति की योग्यता के अनुसार आचरण रखना चाहिये।

चिंतन की उत्कृष्टता एवं प्रखरता हमारी बौद्धिकता पर निर्भर करती है। जिसका सीधा प्रभाव हमारे आचरण, रहन-सहन एवं विचारों पर पड़ता है, जिसके आधार पर ही हम समाज में अपना स्थान निर्धारित कर सकते है। हमें सामाजिकता को नैतिकता, मानवता, आदर्शों और मूल्यों से परिमार्जित करना होगा तभी समाज में सुख-शांति एवं समृद्धि का वातावरण विकसित होगा जो स्वयं तथा समाज के लिए कल्याणकारी होगा। परिष्कृत बुद्धि का ही स्वरूप है प्रज्ञा और विवेक जो हमें गलत रास्ते पर जाने से रोकते है। विचारों की श्रेष्ठता से आचरण भी श्रेष्ठ बनते है। समाज में हमारे आचरण का ही मूल्य है शरीर का नहीं।

शरीर कितना ही सुंदर क्यों न हो यदि उसमें आदर्शों और उत्कृष्ट विचारों का समावेश न हो तो उसकी सुंदरता का कोई अर्थ नहीं। यदि हमने केवल अपनी ही सुख-सुविधा देखी और दूसरों की अनदेखी की तो यह बात हमारा शरीर भले ही स्वीकार कर ले किंतु हमारी आत्मा उसे नहीं स्वीकारेगी। आचरण की श्रेष्ठता को एक प्रतियोगिता की भाँति समझे, कि हम अपने उत्कृष्ट आचरण से किसी को आगे न निकलने दे। परमात्मा को सभी प्राणियों में मानव अति प्रिय है। मनुष्य अपने विचारों की उत्कृष्टता और आचरण की श्रेष्ठता से देवत्व को प्राप्त कर सकता है। अपने कर्म और आचरण से ही मनुष्य याद किया जाता है, यही उसे अमरता दिलाते है। देखने में ऐसा भी आता है कि किसी व्यक्ति को उसके परिवार के लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते है, पर समाज में वह सम्माननीय होता है। पारिवारिक उपेक्षा का मुख्य कारण निज स्वार्थ होता है। प्राय: देखने में आता है कि यदि किसी के प्रति कोई भला काम कर दिया जाए तो करने वाले के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना तो दूर उसकी एक कमी से लोग एक क्षण में उसका किया कराया मेट देते है। इस आपाधापी वाली जीवन शैली के चलते समाज में संबंधों की मर्यादा और गरिमा का ऱ्हास होता जा रहा है। आने वाली पीढ़ी को मूल्यों और आदर्शों की बातें कहानी-किस्सों की तरह लगेगी। इन सबके लिए कहीं न कहीं हमारी ही भूल या कमी है, जो अभिभावक होने के नाते अपने बच्चों को जीवन और उसके शाश्वत मूल्यों से परिचित न करा सके। श्रेष्ठ आचरण ही मनुष्य के आभूषण है। यदि हमें दूसरे के हृदय में अपना स्थान बनाना है तो आदर्शों को आत्मसात करना होगा। आदर्श ही हमारे आचरण को परिष्कृत करते है। विचारों और चिंतन में हम जितनी ही उत्कृष्टता लाएंगे उतना ही हम अपने आचरण मे श्रेष्ठता ला सकते है। इसके लिए हमें सत्साहित्य या सत्संगति का सहारा लेना पड़ेगा। समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए हमें अपने बच्चों को सर्वहितकारी और सही दिशा देनी होगी।

अपना आचरण बना लो। आचरण सब कोई बना सकता है। आदर्श का प्रचार करना जैसे साधक का काम है, वैसे ही स्वयं को पवित्र बनाना भी साधक का काम है। कहा गया था, आत्ममोक्षार्थ जगत्हिताय च। तुम अपने सत् बन गए, समाज को भी सत् बनाना होगा। अपने साफ-सुथरा रहते हो, वह यथेष्ठ नहीं है। तुम स्वयं धार्मिक बनोगे और तुम्हारे पड़ोस, तुम्हारे परिचित जितने लोग हैं, परिवार के और लोग पापी रह गए तो तुम भी पापाचार से नहीं बचोगे, क्योंकि उनका असर तुम पर पड़ेगा। मान लो, पति धार्मिक है और पत्नी नहीं है, पति घूस लेना नहीं चाहते हैं और पत्नी कहती है घूस लो- तो घर में लड़ाई होगी। ठीक उलटा भी हो सकता है पत्नी धार्मिक है और पति नहीं है। ऐसे में पति भी दबाव डाल सकता है कि ऐसा करो, वैसा मत करो। उसके सद कार्यों में बाधा भी पहुंचा सकता है। इसलिए तुम धार्मिक हो- यही यथेष्ट नहीं है। अपने वातावरण को भी धार्मिक बनाना चाहिये। यह जो धर्म का प्रचार है, इसआचार में दार्शनिक ज्ञान गौण है। मुख्य है अपना आचरण। लोग तुम्हारे पांडित्य से जितना प्रभावित होंगे, तुम्हारे आचरण से उससे अधिक प्रभावित होंगे। धर्माचरण, धर्म का आचरण। आचरण ठीक होने से तुम्हारी भी तरक्की हो रही है- रूहानी तरक्की हो रही है, आध्यात्मिक उन्नति हो रही है, और जो तुम्हारे संपर्क में आ गए हैं, वे भी तुम्हारे आचरण से प्रभावित होंगे। तुम सिद्धांत के रूप में धार्मिक बन गए हो- काफी धार्मिक पुस्तकें पढ़ लिए हो, किंतु आचरण ठीक नहीं है, तो उससे क्या होगा? तुम्हारी तो आध्यात्मिक उन्नति नहीं होगी, मन नहीं बदलेगा और लोग भी प्रभावित नहीं होंगे। लोग कहेंगे- हां, उन्होंने काफी पुस्तकें पढ़ी है, पर खुद उनमें तो कुछ नहीं है। तुम्हारा असर दूसरों पर नहीं पड़ेगा, क्योंकि जो अपने को नहीं बनाता है, अपने बनने की कोशिश नहीं की है, वह दूसरों को कैसे बनाएगा? धर्म आचरण की चीज

है। यम-नियम में कट्टर बनो और साधना में नियमित बनो। जब तक दुनिया में हो अपना कर्त्तव्य करो और दूसरों को भी कर्त्तव्य की राह पर ले चलो। यही तुम्हारा काम है।

आपके सामने एक विराट व्रत है, एक विराट उद्देश्य है और उसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए तुम इस दुनिया में आए हो। तुम तुच्छ जानवर के समान नहीं हो।

शेर की गर्जना सदियों पहले जैसी बनी हुई है। भैंसा आज भी हजार वर्ष पहले जैसा है। गुस्सा आता है तो वह किसी को भी मार डालता है। सांप पहले जैसे फुफकारता और डंसता था, आज भी उसी तरह करता है। इन सबके व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आया। केवल मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो अपने व्यवहार में परिवर्तन कर सकता है। मनुष्य भटका हुआ देवता है। यदि उसे सही राह पर चलाने के लिए कोई कुशल मार्गदर्शक मिल जाए, तो वह अपनी असाधारण ऊंचाई और सामर्थ्य से हर किसी को चमत्कृत कर सकता है। लेकिन अक्सर हम अपने सुखों और छोटे स्वार्थों की दौड़ में विचलित हो जाते हैं। जीवन के सबसे महत्वपूर्ण कार्य, अपने आचरण यानी चरित्र निर्माण को भूला बैठते हैं।

राम का स्मरण करते ही मर्यादा मूर्तिमान हो जाती है। सीता और हनुमान का नाम आते ही पवित्रता और भक्ति की अनुभूति होने लगती है। दान का प्रसंग छिड़ते ही कर्ण की छवि उभरती है। क्या हमने भी अपनी कोई ऐसी पहचान बनाई है? प्राचीन काल जैसी सत्य-निष्ठा आज हममें नहीं है। पहले इंसान घबराता था कि उससे कोई बुरा काम न हो जाए, कहीं उसे झूठ न बोलना पड़े। आज यह निष्ठा समाप्त हो गई है। आज जो झूठ बोल सकता है, बात को छिपा सकता है, वही अधिक कुशल और व्यावहारिक माना जाता है। इस प्रवृत्ति ने हमारी संपूर्ण आस्था को ही इधर आंदोलित कर दिया है।

आदमी का भरोसा कहीं जम नहीं पा रहा है, क्योंकि हम अपने जीवन मूल्यों को आचरण में लाना भूलते गए हैं। हमारे जीने का तरीका ही हमारी सबसे बड़ी पहचान है। हमारी संपदा है- हमारा चरित्र। यही आचरण और व्यवहार हमारा सबसे बड़ा परिचय है। हम एक ओर तो शांति के लिए आकाश मे कबूतर उड़ाते हैं और दूसरी तरफ इंसान के विनाश के लिए घातक शस्त्रों का निर्माण करते रहते हैं।

ऊपरी तौर पर हम विकास के नए-नए कीर्तिमान तो बनाते रहते हैं, लेकिन हमारा और हमारे समाज का नैतिक मूल्यों का ग्राफ पतन की निचली सतह तक पहुंचता जा रहा है। जानकारियों के बीच खड़े मानव के पास समझ के मीठे जल का एक लोटा भी नहीं है। इसका परिणाम गंभीर मनोरोगों से लेकर कलह, अशांति और गहन विषाद के रूप में सामने आ रहा है। जीवन में अराजकता फैल गई है। मन पर व्याकुलता छा गई है। सुख के समय अनीति के मार्ग पर दौड़ते रह कर, दुख के समय में जीवन समाप्त करनेवाले कायरों की संख्या हर रोज बढ़ रही है।

सदाचार और संस्कारों से प्राप्त सफलता ही गरिमापूर्ण होती है। जिन्हें धार्मिक बनना है उन्हें आचरण बनाना है, सुधारना है। पोथी पढ़कर कोई विद्वान नहीं हो सकता है। लोग कहते हैं उस अर्थ में विद्या क्या है? सा विद्या या विमुक्तये अर्थात्त विद्या उसी को कहते हैं जिससे विमुक्ति मिलती है। विमुक्ति क्या है? मुक्ति है बंधन से छुटकारा मिलना। किन्तु बंधन से छुटकारा मिलने के बाद दोबारा भी तो बंधन हो सकता है। एक बार बंधन से छुटकारा हो गया और दोबारा बंधन की संभावना नहीं रह जाती है तो उस विशेष प्रकार की मुक्ति को विमुक्ति कहते हैं। जिसके माध्यम से विमुक्ति मिलती है उसी को विद्या कहते हैं और जिनमें विद्या है, वही विद्वान हैं।

विद्वान भी वही है जिनका आचरण बन गया है। धर्म है आचरणात् धर्म। अनपढ़ व्यक्ति भी धार्मिक बन सकता है और

महामहोपाध्याय पंडित भी अधार्मिक हो सकता है। आनंदमार्ग का दर्शन आज जनता के लिए नहीं है, यह विद्वानों, पंडितों के लिए है। किंतु आचरण सब कोई बना सकता है। आदर्श का प्रचार करना जैसे साधक का काम है, वैसे ही स्वयं पवित्र बनना और दूसरों को पवित्र बनाना भी साधक का काम है।

कहा गया था आत्ममोक्षार्थम् जगत्हिताय च। समाज को सत् बनाना होगा। स्वयं साफ-सुथरा रहते हो, वह यथेष्ठ नहीं है। महामारी के समय मान लो कि आपका घर साफ-सुथरा है, आप खूब स्नान करते हो किंतु बस्ती एकदम गंदी है, उस दशा में महामारी से नहीं बचोगे। क्योंकि वातावरण तो खराब है। आप खुद धार्मिक बनोगे और आपके अपने और पड़ोस के जितने लोग हैं, पापी रह गए तो आप भी पापाचार से नहीं बचोगे।

मान लो कि पति धार्मिक है, पत्नी नहीं है। पति घूस लेना नहीं चाहता है और पत्नी कहती है घूस लो। फिर तो घर में लड़ाई होगी। वैसे उलटा भी हो सकता है। पत्नी धार्मिक है, पति नहीं है। उसमें पति भी दबाव डाल सकता है, ऐसा करो, ऐसा मत करो। इसलिए आप धार्मिक हो, यह यथेष्ट नहीं है। वातावरण को भी धार्मिक बनाना पड़ेगा। तुम साफ-सुथरा रहोगे और बस्ती, मोहल्ले को भी साफ सुथरा रखोगे, तभी महामारी से बचोगे। वैसे ही आप धार्मिक बनोगे और दूसरों को भी धार्मिक बनाओगे। धार्मिक के लिए यह अवश्य करणीय है। यह फर्ज है।

और यह जो धर्म का प्रचार है, इस आचार में दार्शनिक ज्ञान गौण है। मुख्य है अपना आचरण। लोग तुम्हारे पांडित्य से जितना प्रभावित होंगे, तुम्हारे आचरण से उससे अधिक प्रभावित होंगे। आचरण ठीक होने से तुम्हारी भी रूहानी तरक्की हो रही है, आध्यात्मिक उन्नति हो रही है और जो आपके संपर्क में आ गए हैं, वे भी आपके आचरण से प्रभावित होंगे।

कोई व्यक्ति किसी विशिष्ठ कला, गुण या कार्य के लिए पात्र है, यह उसके स्वाभाविक विशेषताओं से निश्चित किया जा सकता है जैसे कोई व्यक्ति क्षमाशील स्वभाव का होता है, कोई हमेशा सच बोलनेवाला होता है, कोई उदार होता है। इस तरह गुणों की विशेषताओं से पात्रता निर्धारित की जाती है। पात्रता निश्चित करते समय केवल गुण-विशेषताएं ही नहीं यह भी देखना आवश्यक है कि क्या वह अपने आपसे तथा दूसरों से प्रामाणिक है। प्रामाणिकता पात्रता-निश्चय की मुख्य शर्त है। जो स्वयं से और दूसरों से प्रामाणिक होता है उसे पात्रता-निश्चय की आवश्यकता भी नहीं होती। उसके सदाचरण से वह स्वयंमेव सिद्ध होती है।

एक समय ऐसा था जब सारी सृष्टि पैदल विहार करती थी। वाहनों का आविष्कार तो विज्ञान का है। इस परंपरा का मुख्य उद्देश्य मिट्टी से जुड़े रहना है। मिट्टी के पुतले को मिट्टी से जुड़े रहना चाहिये यह इसके पीछे की सीख है। गाडगील ने पूछा कि जैन मुनि नग्न क्यों होते हैं? इसके जवाब में मुनि का कहना था कि नग्न नहीं हम तो दिगंबर हैं। दिगंबर शब्द के साथ अंबर शब्द जुड़ा है। अंबर यानी आकाश। ये आकाश ही हमारा वस्त्र है। जो व्यक्ति कपड़े नहीं पहनता वह नग्न नहीं होता, बल्कि जिसका आचरण अच्छा नहीं होता वह नग्न होता है। हमारा आचरण ही हमारा वस्त्र है। जैन शब्द को हटाकर उसकी बजाय व्यक्ति शब्द का उपयोग सही होगा। क्योंकि जैन यह बहुत ही संकुचित व्याख्या होगी।

सदाचार- सांसारिक सुख-संपन्नता की कुछ कसौटियां होती हैं। हर कोई इन्हें अपनी बुद्धि के अनुसार तय करता है। कुछ लोग शिक्षा, भरपूर ज्ञान के संग्रह को सुख मानते हैं। कुछ लोग शरीर की तंदुरुस्ती को सुख मानते हैं कुछ लोग सुंदर कपड़े, जेवर पहनने, मौज-मस्ती में सुख मान लेते हैं, लेकिन सुख की ये कल्पनाएं अधूरी हैं क्योंकि इसमें केवल व्यक्तिगत विचार किया गया है। भरपूर ज्ञानसंग्रह से अभिमान बढ़कर अनर्थ हो सकता है। शारीरिक बल स्वास्थ्य के लिए

ठीक है, लेकिन हिंसा के लिए उसका उपयोग हो सकता है। मौज-मस्ती से भी रोगप्रवृत्ति बढ़ सकती है। इसलिए गृहस्थी सुख का असली परिमाण है सदाचार।

सदाचार के बिना मानवता का कोई अर्थ नहीं। यह एक दूसरे के पूरक है। मानवता का पहला पाठ है कि जैसा हम दूसरों से चाहते है वैसा ही हम दूसरों के प्रति आचरण करे। सदाचार और मानवता धर्म से ही पोषित होते है और धर्म विहीन मानव की कल्पना हम किस रूप में कर सकते है वह कोई कहने की बात नहीं है, हम और आप भलीभाँति अनुभव कर सकते है। सदाचार को थोपा नहीं जा सकता, क्योकि सद्‌गुण मानव में जन्म से ही होते है केवल संस्कारों द्वारा इन्हें विकसित किया जाता है। सदाचरण का सीधा संबंध संस्कारों से है। मानवता और सदाचार से आत्मबल का विकास होता है। आत्मीयता और प्रेम भावना का विस्तार होता है, वसुधैव कुटुंबकम् की प्रवृत्ति जाग्रत होती है। यह संसार अपना परिवार नजर आता है जो शाश्वत आनंद का स्रोत है। हमारी चेतना मूलरूप से परमात्मा से सम्बद्ध है, जिससे हमारे अन्दर दैवीय गुणों का समावेश होता रहता है। भौतिकता के चक्कर में आध्यात्मिकता की हम उपेक्षा करते रहते है जिसके दुष्परिणाम हमारे सामने आते रहते हैं। कटुता, स्वार्थपरता, बैरभाव आदि तमाम दुष्प्रवृत्तियाँ जाने अनजाने हमारे आचरण में आती रहती है जो हमारे व्यक्तित्व को धूमिल करने के साथ ही असामाजिकता को बढ़ावा देती है, जो विश्वबंधुत्व की भावना के सर्वथा विपरीत है। इसके प्रति हमें सदैव सचेष्ट रहना पड़ता है। सदाचार का पर्याय है प्रेम, जो आत्मा का ही गुण हैं। भौतिक प्रेम, जिसमें आकर्षण तो बहुत है, जिसमें भौतिक सुख भी मिलता है, उसके द्वारा अर्जित धन, कीर्ति मनुष्य को इतना आनंदित कर देती है कि वह इन्हे भवबंधनकारक और दु:खदायक समझते हुए भी पूरी उम्र उसके संग्रह में व्यतीत कर देता है और जीवन की वास्तविकता को पाने से वंचित रह जाता है। समय निकल जाने के बाद पछताने के सिवा कोई रास्ता भी नहीं दीखता। हम जीवन की वास्तविकता को पहचाने और सही समय पर सही मार्ग पर सही कदम रखे, जिससे अपने कल्याण के साथ-साथ दूसरों के कल्याण का भी माध्यम बन सके, सही अर्थों में तभी हमारा जीवन सफल होगा।

परंपरागत भूमिकाओं की जरूरत खत्म हो गई है। आत्मीय-रिश्ते लाक्षागृह की आग में झुलस रहे हैं। उपभोक्तावाद ने स्वच्छंदता और एकल परिवार प्रवृत्ति को इतना बढ़ावा दिया है कि संयुक्त परिवार में रहना बंधन समझा जाने लगा है।

एकल-परिवार में माता-पिता धन कमाने में व्यस्त हैं। लेकिन नौकरों के भरोसे पल रहे अपने डिजाइनर बेबी को हर क्षेत्र में पूर्ण देखना चाहते हैं। हॉबी सेंटर में संगीत, नृत्य और पर्सनैलिटी ग्रूमिंग की प्रशिक्षण दिला रहे हैं। परिणाम हो रहा है कि बेबी को विडियोगेम के टारगेट और जीवित मनुष्य में कोई अंतर ही नजर नहीं आता। मॉम-डैड उसके लिए सिर्फ बैंक-लॉकर हैं। उसके लिए जीवन का अर्थ सिर्फ मस्ती है। एकल परिवार के बच्चों की सारी मांगें पूरी की जाती हैं। यही कारण है कि उन्हें जब अपना चाहा हासिल नहीं होता तो तुरंत कैसे भी हो, उसे छीन लेना चाहते हैं। मामूली सी बात पर असहिष्णु हो हिंसक और आक्रामक हो जाते हैं। सबके होते हुए भी आत्मीय अपनों से दूरी हो, कोई सुख-दुख बांटनेवाला न हो तो स्वयं में उपजे संवेगात्मक तनाव के चलते यह किशोर अनिद्रा, खीझ, घबराहट, माइग्रेन, भूख की कमी, अपच के शिकार होते जा रहे हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में जल्दी ही आपा खो देते हैं।

वे देखते हैं कि प्रभाव और पैसे से सब कुछ हासिल किया जा सकता है। इसलिए अपना इच्छित पाने की होड़ में गलत रास्ता अपनाने में भी नहीं झिझकते। उनमें न तो कोई भय है और न ही सामाजिक दायित्व या मानवता का बोध है। मैं हूं, मेरा कोई क्या कर लेगा, जैसे भाव अपनी सुदृढ़ जगह बनाते जा रहे हैं। वास्तव में वे मानसिक रूप से

बिखराव का सामना कर रहे हैं।

शिक्षण-संस्थानों में बच्चों को इस संकल्प के साथ उतारा जाता है कि दिग्विजय तुम्हें करनी ही है। तुम्हारे लिए असफलता जीवन का घृणित पक्ष है। इन सबके मिश्रित प्रभाव से उत्पन्न तनाव, अवसाद व चिंता को यह नयी पीढ़ी शराब, सिगरेट, ड्रग्स के नशे में डुबोकर या किसी मित्र की बाहें समाकर, सहारा ढूंढते हुए यौन रोगों का शिकार होती है।

इस भयावह स्थिति से उबरने के लिए आवश्यकता है संपूर्ण पारिवारिक, आर्थिक और शैक्षिक परिवेश में परिवर्तन की। हमारा लक्ष्य मात्र धन कमाना ही नहीं, अपितु सुखी समृद्ध परिवार, सुशिक्षित, संस्कारित संतान का होना ही है। युवा मन की इस भ्रांति को तोड़ा जाए कि सफलता के लिए दूषित मनोवृत्ति अनिवार्य है। उन्हें समझाना चाहिए कि सदाचार और संस्कारों से प्राप्त सफलता स्थायी एवं गरिमापूर्ण होती है।

उपार्जित वस्तु नियमानुकूल चलनेवाले व्यक्ति के समीप ही रहती है। प्रतिकूल व्यवहार करनेवाले के समीप कुछ दिन भले ही वह रह जाय, किन्तु स्थाई रूप से उसके समीप नहीं रह सकती। ऐश्वर्य-मद में मत्त होकर जो अपने कुलाचार और सदाचार खो बैठते हैं, वे अन्त में पछताते हैं। इसलिये अनधिकार चेष्टा न करके अपने वंश-परम्परागत सदाचार का पालन सदा करते रहना चाहिये।

कोई भी धर्म या समाज व्यसन और बुराइयों को तथा विलासिता को अच्छा नहीं मानता हैं। आज के समुन्नत कहलानेवाले राष्ट्र मलिन आचार-विचार-संस्कार को खुली छूट दे रहे हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अर्थ बुराइयों के लिए कदापि छूट नहीं होनी चाहिए। सांप्रदायिकता ने तो संसार में दुराचरण की आंधियां उड़ा रखी है। विश्वव्यापी सदाचरण के रास्ते में सांप्रदायिक भ्रष्टता सबसे बड़ी बाधा है। अब मानव की चरित्र हीनताएं दूर कर उच्च सदाचरण ही स्थापन करना आवश्यक हो गया है।

प्राय: लोगों में यह धारणा है कि हिंसक-वृत्ति में बदलाव लाना बहुत मुश्किल है। लेकिन परमात्मा ने प्रत्येक प्राणी के हृदय को संवेदनशील बनाया है। शील-सदाचार और मंगल-मैत्री ऐसे सदगुण हैं, जिनका असर बहुत सूक्ष्म स्तर पर, किंतु कारगर ढंग से घटित होता है और सामनेवाले का हृदय रूपांतरित हो जाता है। गौतम बुद्ध कहते हैं, ज्योंही व्यक्ति मंगल-मैत्री के भाव को हृदय से आत्मसात करता है, उसके चारों ओर एक आभामंडल बनने लगता है, उसकी तरंगें सामनेवाले की हिंसक प्रवृत्ति को करुणा में बदल देती है।

व्यवहार- कुछ लोगों के स्वभाव में उद्विग्नता भरी रहती है, जैसे वे हमेशा इमली खाये हुए है, मिसरी कभी खाई ही नही है। यदि वे किसीको कुछ काम करने के लिए कहते हैं तो सामनेवाले व्यक्ति के हृदय में प्रतिकूल प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। इससे काम करनेवाला प्रसन्न चित्त से उसमें भाग नहीं लेता, न अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करता है। प्रतिकूल प्रतिभाव के कारण कहनेवाले की जीवनशक्ति भी क्षीण होती है और काम बिगड जाता हैं। इसके विपरीत यदि शांति एवं प्रसन्न चित्त से किसीको सम्पन्न काम करने के लिए कहते हैं तो वह प्रसन्नतापूर्वक उस कार्य को सम्पन्न करता है। काम लेने का यही सही ढंग है और इसके विपरीत सब ढंग गलत है। यह विचार छोड दो कि बिना डाँट-डपट के, बिना डराने धमकाने के और बिना छल कपट के तुम्हारे मित्र-साथी, स्त्री बच्चे या नौकर-चाकर बिगड जायेंगे। सच्ची बात तो यह है कि डर, डाँट और छल-कपट से तो तुम उनको पराया बना देते हो और सदा के लिए उन्हें अपने से दूर कर देते हो। प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, मधुर वचन, सक्रिय हित, त्याग- भावना आदि से हर किसीको सदा के लिए अपना बना सकते

हो। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होगा तो लोग तुम्हारे लिए बडे-से बडे त्याग के लिए तैयार हो जायेंगे। तुम्हारी लोकप्रियता मौखिक नहीं रहेंगी। लोगों के हृदय में बडा मधुर और प्रिय स्थान तुम्हारे लिए सुरक्षित हो जायेगा। तुम भी सुखी हो जाओगे और तुम्हारे संपर्क में आने वाले को भी सुख शांति मिलेगी।

शरीर और प्राण ठीक रखने के लिए खान-पान, आराम, प्राणायाम, योगासन, व्यायाम, सत्संग आदि के नियम अपनी प्रकृति अनुसार बनाएं एवं उनका पालन करें। अपनी प्रतिदिन की दिनचर्या बनायें और फिर घड़ी के अनुसार हर दिन बितायें। सत्संग में प्रतिदिन समय पर आएं। किन्हीं कारणों से यदि न आ सकें तो जहां हों वहीं सत्संग अपने आप करें और जिस सेवा में लगे हों उसे सत्संग समझें।

अपने धंधे-नौकरी को भगवान द्वारा दी गई सेवा समझकर न्यासी के रूप में चलाएं, मालिक के रूप में नहीं। हर समय यह भाव रहे कि प्रत्येक वस्तु मेरा नहीं परंतु मेरे उपयोग के लिए है। घर के मुखिया न बनें। परिवार में सहयोगी के रूप में सब कार्य करें और सबके साथ नम्रता और प्रेम से व्यवहार करते हुए सामंजस्य स्थापित करें। आपका व्यवहार घर में ऐसा प्रेम भरा हो कि आपके घर में आपको देखकर सभी लोग प्रसन्न हों। आपके साथ विचारों में भेद होने पर अपना दृष्टिकोण समझाकर फैसला सामने वाले पर छोड़ दें। दूसरे के दु:ख को अपना दु:ख समझकर उसका निवारण निष्काम सेवा समझ कर करें।

व्यावहारिकता क्या है। व्यावहारिकता है प्रेम। व्यावहारिकता है वह दृष्टि जो जीव और जगत को जगा दे। व्यावहारिकता का अर्थ है देना न कि लेना। लेना तो मानवता नही, व्यावहारिकता नहीं, पशुता है। बल्कि पशु भी प्रेम देते है। व्यावहारिकता है निश्छलता, निष्कपटता। व्यावहारिकता ज्ञान को यदि आत्म सात करेंगे तो ही मनुष्यता का भविष्य है अन्यथा नहीं तो फिर यह है पशुता।

शिष्टाचार- छोटे व्यक्तियों को बडे व्यक्तियों को, बुजुर्गों को प्रणाम या अभिवादन करना होता है। शिष्य के लिये गुरु को, भक्त के लिये भगवान को वन्दन या प्रणिपात करना होता है। अभिवादन का शिष्टाचार लगभग सभी धर्मों में अलग-अलग तरह से प्रचलित है। अपार प्रेम, भक्ति भाव व्यक्त करने के लिये अभिवादन किया जाता है। भारत में साष्टांग प्रणाम करने की पद्धति है। सीना मस्तक, आंख, मन, वाणी, हाथ पांव, घुटने इन आठ अंगों से साष्टांग अभिवादन करते है। अभिवादन की क्रिया में श्रेष्ठ व्यक्ति और श्रेष्ठ गुणों के समय झुकने की क्रिया से अहंकार झुक जाता है। जिन श्रेष्ठ व्यक्तियों, देवताओं, साधुओं को अभिवादन किया जाता है, उसके आशीर्वाद मिलते है। शुभ कामना, मंगल चिन्तन होता है जो अभिवादन करने वालों के लिये कल्याणकारी होता है इसलिये अभिवादन किया जाता है।

मार्ग में शौच या लघुशंका करना केवल सभ्यता के प्रतिकूल ही नहीं अपितु धर्म शास्त्र के विरुद्ध होने से पाप है। मनु स्मृति में लिखा है कि मनुष्य को मार्ग में राख के ढेर में, अग्नि में, गोशाला, हल जोते हुये खेत में, पानी में, चिता में, पर्वत पर पुराने निर्जन मन्दिर और सांप की बांबी में, बिल में लघुशंका, शौचादि क्रिया नहीं करनी चाहिये। यह नियम नागरिक स्वास्थ्य, स्थानों की पवित्रता तथा जन सुरक्षा की दृष्टि से बनाये गये है।

दूरी में शिष्टाचार और संकोच रहता है। समीपता मनुष्य को क्वचित् धृष्ट बना देती है। गम्भीरता की एक सीमा होती है। मनुष्य कुछ पुरुषों में कुछ अवसरों पर, कुछ काल तक गम्भीर रह सकता है। सदा सर्वदा कोई भी गम्भीर नहीं रह सकता और उसकी आवश्यकता भी नहीं। कभी मनुष्य बनावट को छोड़कर स्वाभाविकता का भी अनुभव करना चाहता है। जिन

राजे-महाराजों को, जिन आचार्यों और धर्मोपदशकों को हम सभा में अत्यन्त गम्भीर, शिष्टाचार युक्त और नपे-तुले शब्द बोलनेवाले पाते हैं, उन्हें ही जब अपने अत्यन्त निकटवर्ती-स्त्री, पुत्र, भृत्य, शिष्य तथा अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्धियों के साथ एकान्त में बातें करते देखते हैं, तो उनकी वह अस्वाभाविक गम्भीरता वहाँ नहीं रहती। वे खुलकर बातें करते हैं, हँसते हैं, खेलते हैं और विनोद भी करते हैं। गम्भीर से गम्भीर पुरुष जब बच्चों के साथ खेलता है, तो वह बच्चा बन जाता है।

पति-पत्नी का सम्बन्ध भी ऐसा ही होता है, आरम्भ में जब तक एक दूसरे के हृदय पर अधिकार नहीं कर लेते, संकोच, लज्जा, शिष्टाचार और भय रहता है। सम्पर्क बढ़ता जाता है, एक दूसरे को स्नेह पाश में बाँधते हैं, त्यों-त्यों संकोच शिष्टाचार कम होते जाता है और धृष्टता आकर उनका स्थान ग्रहण करती जाती है।

महाकवि कालिदास के अनुसार, शालीन और शिष्ट व्यवहार से व्यक्ति के आंतरिक गुण प्रकट होते हैं। रवींद्रनाथ टैगोर ने विनम्रता को आध्यात्मिक शक्ति माना है। उनके अनुसार नम्रता और शिष्टता में सात्विक विचारों का तेज होता है।

विनम्रता और शिष्टाचार अंत:करण की अभिव्यक्ति है। समाज, देश और परिस्थिति के अनुसार इसकी अभिव्यक्ति के तरीकों में अंतर हो सकता है, परंतु हर जगह उनका आधार यह है कि दूसरों के प्रति सम्मान, विनम्रता और मधुर स्वभाव वाला व्यवहार में साफ नजर आना चाहिए। इससे जहां एक ओर व्यक्ति के अंतर्मन की झलक मिलती है, वहीं दूसरी ओर समाज की जागरूकता का भी पता चलता है।

भावप्रधान व्यक्ति कभी भी अशिष्ट और असभ्य नहीं हो सकता है। जिसका हृदय संवेदना से भरा हो वह किसी के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्ति की ही वाणी के बारे में कहा गया है औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होये। शिष्टाचार का मूल मंत्र है- विनम्रता और दूसरों का सम्मान। एक व्यक्ति का दूसरों के प्रति व्यवहार कैसा होगा- इस पर व्यक्ति की उन्नति-अवनति का, प्रसन्नता-उदासी, मान-अपमान बहुत कुछ निर्भर करता है। इसके विपरीत अगर किसी का व्यवहार अशिष्ट, उद्दंड और अनगढ़ होगा, तो इससे उस व्यक्ति और उसके समाज, दोनों का विकास रुकता है। निराश रहनेवाले, कटुभाषी, असंतुष्ट और खीझ पैदा करनेवाले व्यक्ति के साथ दूसरों का व्यवहार भी ऐसा ही रहता है। ऐसे आचरण के बदले उपेक्षा, असहयोग और अपमान ही हाथ लगता है। क्रोध, आवेश और खराब आचरण सबसे पहले खुद को नुकसान पहुंचाता है। इससे दूसरे जो अपमान महसूस करते हैं, उससे वैर-विरोध भी पैदा होता है। हममें से बहुत से लोग ऊंची डिग्री और अच्छे कपड़ों को ही असली शिष्टाचार मानने की भूल कर बैठते हैं। उच्च शिक्षित और कीमती कपड़े पहनने वाला व्यक्ति भी अपने व्यवहार में अशिष्ट हो सकता है। इसके विपरीत एक अनपढ़ देहाती भी अपने आचरण में बहुत शिष्ट हो सकता है।

सभ्य और शिष्ट आचरण का ज्ञान पूर्वजों से विरासत में मिलता है। इसका अभ्यास बचपन से ही कराया जाना उचित है। वैसे तो शिष्टाचार की बातें पाठ्य पुस्तकें में सिखाई जाती है लेकिन जब शिक्षक और माता-पिता इस दायित्व का अभ्यास अपने आचरण से कराते हैं तो ही यह हमारे जीवन में उतरता है। बोलचाल में शिष्टाचार का बहुत कम लोग नियम से पालन कर पाते हैं। लोग अभिवादन के सामान्य व्यवहार तक से बचना चाहते हैं और बोलते समय आदर सूचक शब्दों की भी कंजूसी करते हैं। जबकि नमस्ते नमस्कार या प्रणाम कहने में किसी का कुछ नहीं जाता। महज इतना करने भर से सामनेवाले व्यक्ति को लगता है कि उसे सम्मान दिया जा रहा है।

वह प्राचीन शिष्टाचार है कि जो अपने प्रति उपकार करे, उसके उस उपकार के बदले में हम उसके आभारी हो उसे

धन्यवाद दें, उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करें, उसके छोटे से उपकार को बड़े से बड़ा मानकर आदर करें और सदा उसके उपकार के लिये हृदय में आदर के भाव बनाये रखें। जो उपकार कर्ता के प्रति मनसा वचसा तथा कर्मणा कृतज्ञता प्रकट नहीं करता, उसके आभार को नहीं मानता वह कृतघ्न कहलाता है। वसुन्धरा का कहना है मैं इतने बड़े हिमालय, सुमेरू आदि पर्वतों को सरलता के साथ धारण किये रहती हूँ। लाखों-करोड़ों बड़े-बड़े पर्वतों के धारण से मुझे उतना कष्ट नहीं होता, जितना एक कृतघ्न के धारण करने से होता है। कृतघ्नता एक महान् पाप है। इसीलिये हमारे यहाँ स्वल्प उपकार के प्रति भी सम्मान करने की आज्ञा है। जो हमें एक भी अच्छी बात बता दे, एक भी अक्षर पढ़ा दे, उसका अपमान करने वाला करोड़ों वर्ष तक नरकों में पचता रहता है। अन्त में वह विष्ठा का कीड़ा होता है।

शिष्टाचार तभी तक रहता है, जब तक घनिष्टता नहीं रहती। घनिष्टता में शिष्टाचार शिथिल पड़ जाता है। जिन छोटों के प्रति अपनापन हो जाता है। इन्हें डाँटने-डपटने में बड़ा सुख मिलता है। ममत्व के बिना कौन कैसे किसे प्रेमपूर्वक घुड़क सकता है। बिना अपनापन हुए कौन किसकी स्नेह भरी हँसी उड़ा सकता है। यह संसार सम्बन्ध पर ही अवलम्बित है। सासांरिक सम्बन्ध हो या पारमार्थिक दोनों ही में पक्षपात होता है। पक्षपात के बिना सम्बन्ध नहीं। योग्य शिष्य पर गुरु का पक्षपात होता ही है। बड़ों को जिनके प्रति जितना ही अधिक पक्षपात होगा, उसे वे उतना ही अधिक डाटेंगे डपटेंगे। योग्य बनाने की चेष्टा करेंगे, उसकी हँसी उड़ायेंगे और व्यंग से कहेंगे।

हर नववर्ष पर हमारी इच्छा होती है कि आगामी वर्ष पिछले से बिलकुल भिन्न हो। अधूरी इच्छाएं पूरी हो जाएं। इसके लिए एक कुंजी है, जो सारे मनोरथों को पूर्ण कर देगी। धन्यवाद देना शुरू कीजिए, जीवन स्वयं धन्य हो जाएगा। धन्यवाद देना शिष्टाचार का एक अभिन्न अंग है, पर यह शिष्टाचार से बढ़कर है। यह भाव मन, प्राण और जीवन को धन्य कर देता है। जब हम किसी के द्वारा अपने प्रति किए गए कार्य के लिए स्वयं को उपकृत समझते हैं, उस क्षण मन से धन्यवाद का उद्‌गार निकलता है और यह भाव मन को कृतज्ञ कर देता है।

वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन के विषय में प्रसिद्ध है कि वे दिन में १०० बार धन्यवाद देते थे। ५-१० बार की तो बात समझ में आती है, पर १०० बार? इसका अर्थ हुआ कि दिनभर में हुई हर बात के लिए चाहे वह छोटी हो या बड़ी, धन्यवाद का भाव आइंस्टाइन को ऊर्जा से भर देता था।

हमारे ऋषियों, मुनियों ने धन्यवाद द्वारा जीवन को धन्य किए जाने के भाव को हजारों बरस पूर्व स्वीकार कर लिया था। इसलिए पाश्चात्य सभ्यता के शेक हैंड करने के विपरीत यहां एक दूसरे से मिलने पर नमस्कार या प्रणाम किया जाता है। नमस्कार शब्द की उत्पत्ति नमस् से है, जिसका अर्थ नमन होता है। पर नमन किसका? वेदों में अहम् ब्रह्मास्मि का सिद्धांत प्रतिपादित है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में ब्रह्म का निवास है और शक्ति अनाहत चक्र में हृदय के पास स्थित है। उस शक्ति को धन्यवाद देने का भाव नमस्कार है। प्रार्थनाओं में भी जब आप नम: शब्द का उच्चारण करते हैं, उस क्षण धन्यवाद का भाव मुखरित होता है। अगर हम धन्यवाद का आदान-प्रदान नहीं करते हैं तो हम कृपण हो जाते हैं।

जीवन प्रत्येक क्षण एक चुनाव है। या तो आप उस सुबह का स्वागत करें, या फिर जीवन के दुखों की गणना करें। शायद यही कारण है कि ऋषियों ने सुबह की शुरुआत सूर्य नमस्कार से करने की परंपरा बनाई, क्योंकि सूर्य है तो जीवन है और उसे धन्यवाद देना दिन की शुभ शुरुआत है। प्रत्येक क्षण धन्यवाद भाव से ओत-प्रोत होकर जिएं, क्योंकि जो आप देंगे, वही कई गुणा होकर वापस आएगा। इसलिए धन्यवाद दें और बार-बार दें।

योग, अध्यात्म व साधना

गहरी निद्रा यानि सुषुप्ति अवस्था, उसमें चेतना का सम्पूर्ण विकास होता है लेकिन ऐसी भी एक निद्रा है जिसमे व्यक्ति सोते हुये भी जागृत रहता है इसे ही योग निद्रा कहते है। यहां चेतना, अवचेतन मन और उच्च चेतना का सम्बन्ध होता है। योग निद्रा के माध्यम से शरीर को गहन शिथिलता मिलती है। इससे व्यक्तित्व में नूतनता आती है। शरीर के महत्वपूर्ण केन्द्रों में मन एकाग्र होता है। सभी इन्द्रिय शक्तियां उस केन्द्र में आती है। इससे शारीरिक, मानसिक थकावट दूर होती है। मन के तनाव दूर होते है। प्रसन्नता और ताजगी का अनुभव होता है। आत्म निरीक्षण के लिये योग निद्रा का प्रयोग योगी प्राचीन समय से कर रहे है।

सेवा, स्वाध्याय, साधना, सत्य और संयम ये पांच परमार्थ मार्ग पर चलने वाले साधकों के लिये महत्वपूर्ण होते है। साधक में सेवा भाव होना चाहिये। ईश्वर सेवा, जन सेवा, समाज सेवा, गुरु सेवा, माता-पिता की सेवा आदि से विनम्रता बढती है। आवश्यक बातों की ज्ञान प्राप्ति के लिये सतत् स्वाध्याय करना चाहिये। आत्म परीक्षण करना एक तरह का स्वाध्याय ही है। ईश्वर और आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये आवश्यक साधना नित्य और नियमपूर्वक करना साधक का मुख्य कर्त्तव्य है। किसी भी स्थिति में मन का संयम ढ़लने न देना अर्थात संयम की प्रवृति भी साधक के पास होनी चाहिये।

जगत के कल्याण का प्रमुख आधार अध्यात्म है क्योकि अध्यात्मिक शक्तियों के प्रति मानवीय चेतना सदा से ही अपने दृष्टिकोण को सकारात्मक बनाये रखने में विश्वास करती रही है, विश्व साहित्य में इस तथ्य के अनेक प्रमाण उपलब्ध है, जिसमें यह उल्लेख मिलता है कि मानव जाति के उद्धार हेतु अध्यात्म ने अपनी सक्रियता को पूरी निष्ठा के साथ समर्पित किया है, मानवीय चेतना को परिष्कृत करने में आध्यात्मिक योगदान को सदा ही उपकृत करने के भाव से देखा जाता है, निस्वार्थ भावनाओं को जब जब व्यावहारिक धरातल पर अवतरित करने की आवश्यकता मानव ने समझी तब तब उसने अध्यात्म का ही सहारा लिया है, जीवन के उत्थान हेतु मानवीय मस्तिष्क जिन सूक्ष्म अवधारणों को आत्मसात करने की बात करता रहा है उसमे अध्यात्म की शक्ति का एहसास सबसे अहम पहलू है, परिवर्तन और उससे जुडी स्थितियां मानव को इस बात के लिये प्राय: अभिप्रेरित किया करती है कि किसी भी परिस्थिति में अध्यात्म का दामन नहीं छोडना चाहिये। लौकिक आनन्द के अवसरों के बीच स्वयं की उपस्थिति मानव को एवं स्थिति से अलग करने की परिस्थिति के रूप में प्रकट तो होती ही है लेकिन अध्यात्म के प्रति आराध्य का भाव ही स्व स्मृति से उसे भटकने नहीं देता है, अर्न्तआत्मा की आवाज को अनसुना करने में अवरोध का आधार अंतत: अध्यात्म ही बनता है। मानवीय एव दानवीय शक्तियों के विरोधाभास जब इन्सानियत के रिश्तों को कलुषित करने से बाज नहीं आते तब अध्यात्म का अवलम्बन ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है, अध्यात्म की यात्रा का आरम्भ स्व निर्माण से होता हुआ विश्व निर्माण की ओर अभिमुखित होता है, मानव बोध की अवधारणा जब सम्पूर्ण रूप से अन्त:करण को जागृति के भावों से परिपूर्ण करती है तब आध्यात्मिक शक्तिया निर्माण से निर्वाण की अवस्थाओं का निरूपण मुक्ति के संदर्भों में प्रारम्भ कर दिया करती है।

अध्यात्म रूपी धर्म को धारण करने की पहल और कर्त्तव्यों का व्यावहारिक स्वरूप मानवीय कृत्यों का सुफल परिणाम होता है। मानव धर्म की स्पष्ट व्याख्या किन्ही कल्पनाओं का स्वरूप नही बल्कि यह तो उत्तरदायित्व के निर्वहन का जीता

जागता प्रमाण है। मानवीय चेतना जब धार्मिक अभिव्यक्तियों से होकर गुजरती है तभी अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त हो पाता है। महात्मा गांधी ने धर्म की व्यापकता को स्पष्ट करते हुये कहा था कि धर्म रहित जीवन सिद्धान्त रहित जीवन है और सिद्धान्त रहित जीवन पतवार रहित नौका के समान है। जीवन की विशालता में धर्म की प्रवेशता मानवीय प्रवृति को संकुचन से बाहर निकालने में अपना विशिष्ट योगदान देती है।

मानव जाति के लिये दिशा बोध का आधार धर्म सहित जीवन ही है। क्योकि इसके बिना जीवन में सिद्धान्तों का ठहरना सम्भव नहीं है। सुख शान्ति और कल्याण की भावनाओं का विकसित होता स्वरूप पूर्णत: धर्म के सानिध्य में गतिमान होता है, जिसका प्रमुख आधार आध्यात्मिक शक्ति है। इन्सानियत के धर्म को धारण कर लेने की परिस्थिति आज प्राय: लुप्त होती जा रही है जिसका वास्तविक कारण स्व धर्म की विस्मृति है। वर्तमान परिवेश में धर्म की राह पर चलने की कोशिशें केवल इन्सानी जज्बात तक सीमित होकर रह गई है। स्व चिन्तन से उपजित स्थितियां मानव को अपने कर्त्तव्यों का बोध तो कराती है परन्तु, आवश्यकता के अनुरूप मनुष्य आत्माओं का धर्म सम्पूर्ण रूप से आध्यात्मिक नहीं हो पाता है। धर्म का मर्म समझने और समझाने की यथार्थ अनुभूति मानव के कर्त्तव्योन्मुखी आचरण में निहित रहती है, जिसे अध्यात्म निरन्तर सम्बल प्रदान किया करता है। विश्व के मनुष्य जब मानव धर्म को अपने जीवन में सर्व धर्म सम भाव के संदर्भो में आत्मसवात कर लेंगे तब इस धरा पर सामाजिक सदभाव पूर्णत: स्थापित हो जायेगा, स्वयम् की भावनाओं को स्वयम् तक सीमित कर देने से सर्व धर्म के प्रति हमारी सोच प्राय: संकुचित हो जाया करती है। जीवन के विविध आयामों में अध्यात्म की व्यापकता यह स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है कि मानव को स्व सम्मान के साथ दूसरों के प्रति भी आदर भाव बनाये रखना चाहिये।

मानव धर्म जहां स्वयम् के कृत्यों पर कडी नजर रखने में सहयोगी भूमिका निभाता है, वहीं यह प्रेरणा भी दिया करता है कि अध्यात्म के प्रति रुझान और व्यवहार में उसका प्रयोग ही अन्तत: बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना को बल प्रदान कर सकता है, सामाजिक समरसता के लिये मानवीय तडफ के जितने भी प्रसंग व्यावहारिक स्थितियों मे दृष्टिगोचर होते है उनमें प्राय: सर्व मानव आत्माओं के हितों का ध्यान रखा जाता है। सामान्यत: मानव जाति के साथ अत्यन्त ही विचित्र किन्तु सत्य घटनाओं और अन्यायपूर्ण स्थितियों के सन्दर्भ मानवीय मन की गहराई से जुडे रहते है एवम् इस आघात से निकलने हेतु आध्यात्म ही उसे एक सशक्त आधार प्रदान कर सकता है। मानव मन सर्व हित को जब अपने अन्त:करण में स्थान प्रदान करता है तब आध्यात्मिक शक्तियां मानवीय हृदयों को भारमुक्त करने में अपना योगदान देना प्रारम्भ कर देती है।

धर्म के मार्ग पर जीवन की गतिशीलता हेतु मानवीय प्रयास किसी न किसी रूप मे अपनी उपस्थिति प्रकट कराते है क्योकि जीवन का यथार्थ और उसका बोध सदैव मानव जाति को अध्यात्म की और प्रेरित किया करता है। मानव जीवन में सुख और दु:ख का सानिध्य किन्ही विस्मयकारी घटना का प्रतीक नहीं है बल्कि मनुष्यता के मध्य सत्य की प्रस्तुति है जिसे अध्यात्मद्वारा सहजता से समझा जा सकता है। मानवता के स्वार्थ जीवन की वास्तविकताओं के साक्षात्कार की अनुभूति भले ही सुखान्त एवम् दुखान्त के स्वरूपों में हमारी अनुभूति तक पहुंचती हो लेकिन इनके विरोधाभास के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का कार्य केवल अध्यात्म ही कर सकता है।

अध्यात्म की पृष्ठ भूमि ही धर्म को सुनिश्चित दिशा प्रदान कर सकती है जिसके लिये सद प्रयास की आवश्यकता है।

वर्तमान समाज में दिखाई पड रही है अपनत्व की भावना का जन्म मानव स्वभाव की एक सशक्त कडी है जिसका अभ्युदय प्राय: बचपन से ही हो जाया करता है। बाल्यकाल से ही अध्यात्म के प्रति रुझान होना व्यक्ति को मनुष्य बनाने में उसके विशिष्ट दायित्व का बोध कराता है, अध्यात्वद्वारा जहां एक और व्यक्ति के संस्कारों का परिस्कार संभव है वहीं यह मानव की अन्त: चेतना को विकसित करने में अपनी गहरी पैठ भी रखता है। अध्यात्म की प्रासंगिकता आज विश्व समुदाय के मध्य मानवता वादी दृष्टिकोण को उजागर करते हुये व्यावहारिक धरातल पर अवतरित करने में पूर्णता सक्षम है। अध्यात्म ही मानव धर्म बन जाये इसके लिये इस धरती के मनुष्यों को वसुधैव कुटुम्बकम् की व्यापकता को समझना ही होगा तभी कल्याणकारी स्थितियां समाज में व्याप्त हो सकेगी।

सम्पूर्ण विश्व की आत्माओं को कुटुम्ब के दृष्टिकोण से देखने और समझने की प्रवृति ही अध्यात्म को सही अर्थों मे मानवता के उत्थान का कारक बना सकती है। आध्यात्मिक जीवन के प्रति लगाव की स्थिति जब मनुष्यों में बढने लगती है तब इस बात के संकेत मिलने लगते है कि मानव ने अपने कर्त्तव्यों को सही अर्थों में समझ लिया है और विश्व समुदाय के प्रति उसके मन में अब सदा सदभाव ही बना रहेगा। सम्पूर्ण मानव जाति के लिये धर्म की स्थिति और उसका स्वरूप पूर्णत: अध्यात्मिक होने के पश्चात ही इस धरा पर सर्व भवन्तु सुखिन: की मूल अवधारधणा का सहज बोध प्रत्येक मानव आत्मा को हो सकेगा। इस प्रकार अध्यात्म का मानव जीवन की वास्तविकता से सम्बन्ध स्थापित होते ही मानव धर्म की गहराई जीवन के व्यवहार में समग्र रूप से प्रविष्ट कर जाती है तथा अहसास की स्थितियां कर्म प्रधान विश्व रचि राखा को जीवन का संदर्भ मान कर कर्त्तव्य पथ का निर्धारण करने लगती है। मानव धर्म का आध्यात्मिक परिवेश परहित सरिस धर्म नहीं भाई आज विश्व के मनुष्यों का आधार बनाने के लिये पूर्णत: तैयार है। धार्मिक आस्था और विश्वास का संगम ही मानवीय हृदयों में आध्यात्मिक जीवन जीने की लालसा सृजित किया करते है।

अध्यात्म के प्रति अनुराग मानव जीवन के रहस्यों को उद्घाटित करते हुये प्रश्न उत्पन्न करता है कि मैं कौन हूं ? कहां से आया हूं ? क्यों आया हूं ? मुझे क्या करना है ? तथा मुझे जाना कहां है ? ये सब से सम्बन्धित जीवन्त सवालों के हल भी खोजने के उपाय बताता है। स्व परिवर्तन से ही विश्व परिवर्तन सम्भव है यह दृष्टिकोण जब मन:स्थिति मे विकसित हो जाता है तभी मनुष्य अपनी स्वाभाविक स्थिति में स्थित होकर स्वत: ही सत्य का संग अर्थात सत्संग करने लग जाता है। मानव को अपने धर्म की यथार्थता जब श्रेष्ठ कर्त्तव्य के साथ उत्तरदायित्व के रूप में ज्ञात हो जाती है, तभी वह मन, वचन एवम् कर्म की पवित्रता के अध्यात्म को समझ पाता है। जीवन में लौकिक और अलौकिक स्थितियों का विवेचन मानव द्वारा ईश्वरीय शक्तियाँ की अनुभूति के साथ कर्म, अकर्म एवम् विकर्म के सन्दर्भो मे किया जाना वास्तविक अध्यात्म को प्रकट करना है। बडे भाग्य मानुस तन पावा का उद्घोष आज विश्व समुदाय के लिये जीवन के सकारात्मक प्रसंगों की विवेचना प्रस्तुत करता है जिसके आधार से आध्यात्म की व्यापकता को समझा जा सकता है, जब समाज में मनुष्यों के लिये अध्यात्म की व्यापकता को समझा जा सकता है, जब समाज में मनुष्यों के लिये अध्यात्म ही मानव धर्म बन जाये उस स्थिति में इहलोक एवम् परलोक को आसानी से सुधारा जा सकता है अत: आज आवश्यकता है कि मानव जीवन का उत्कर्ष इस रहस्य को पूर्णत: उजागर करने में संलग्न हो जाये जिसमें यह अभिव्यक्त किया गया है कि सिया राम मैं सब जग जानी इस विराट अनुभूति को व्यावहारिक धरातल पर साकार करके ही विश्व के मनुष्यों का धर्म अध्यात्म ही है का प्रतिपादन किया जा सकता है।

अध्यात्म यानि कुछ गूढ़ अनाकलनीय चीज होने का आभास दिला कर लोगों के मन में असमंजस पैदा किया जाता है। गलत कल्पनाओं और भावनाओं का शिकार हुये लोग बाहर से धार्मिक दिखते है पर अन्दर से अधार्मिक ही रहते है। ईश्वर प्राप्ति हर व्यक्ति के जीवन में अनिवार्य होती है और सब लोग उसी दिशा में आगे बढ़ रहे है। किसी न किसी जन्म में यह लक्ष्य प्राप्त होगा यह इतना निश्चित है इसलिये अध्यात्म क्या है यह ठीक से जानना चाहिये। आत्मा के विषय में ज्ञान यानी अध्यात्म। अपने साथ साथ पूरे विश्व में परमात्मा समाया है यह जान कर अपना कर्त्तव्य कर्म परमात्मा के स्मरण में करना यही अध्यात्म है।

दुनिया में धर्म एक ऐसा उत्तम शब्द है जिसके द्वारा जीवन का परिष्कार किया जा सकता है। मनुष्य जन्म मिला है पर जब तक परिष्कार नही होता तब तक मनुष्य जन्म की विशेष सार्थकता जीवन में नहीं होती। मनुष्य ने अपने मस्तिष्कीय विशेषताओं के आधार पर ही भौतिक व आध्यात्मिक दोनो क्षेत्रों में आज काफी विकास किये है। अध्यात्म धर्म का ही पर्याय है। धर्म का एक पर्याय है नैतिकता, संयम और तप। नैतिकता का अर्थ है व्यवहार की शुद्धि। व्यवहार की शुद्धि वहां होती है जहां दो हो अर्थात समाज है एक दूसरे के साथ प्रवंचना करे, ठगी का व्यवहार करे यह अनैतिकता है। नैतिकता और धर्म दो नहीं है। इन्द्रियों का संयम करना, तपस्या व साधना का विकास करना यह धर्म का दूसरा पर्याय है। अध्यात्म का अर्थ है आन्तरिक दोषों का परिमार्जन करना। क्रोध, मान, माया, लोभ यह कषाय है इनका परिष्कार करना, उपशमन करना आध्यात्मिक गुण है। अध्यात्म में प्रविष्ठ होना धर्म की सर्वोत्तम अवस्था है क्योकि भीतर जाये बिना सत्य का बोध नहीं होता। जब व्यक्ति को सत्य का बोध होता है तो सारी समस्यायें स्वत: ही समाप्त हो जाती है।

साधना क्या है ? जीवन में दु:ख और अशान्ति सबके हिस्से मे कभी न कभी आते है लेकिन उन्हे टालने का उपाय अध्यात्म बताता है। वह उपाय है योग का लेकिन वह उपाय एक दिन में साध्य नही हो सकता। उसके लिये शरीर, मन, बुद्धि, को विशेष प्रशिक्षण प्रतिक्षण देना पडता है। इस तरह उन्हें आकार देने का नाम ही साधना है। इससे साधक अपने आप में रूपान्तरण करवाता है। वह एक अलग मनुष्य होता है। साधना अध्यात्म तक सीमित नहीं है वह लौकिक जगत को भी व्याप्त करती है।

आध्यात्मिक व्यक्तित्व प्राप्त व्यक्ति में कुछ इस प्रकार के लक्षण होते है जो उसे सफल बनाने में काम आते है। जो नियमित आत्म उपासना करता है, ध्यान धारणा आदि क्रियाये नियमित रूप से करता है। जो गुरु और माता का सम्मान करता है। जो समान व्यवहार में भावनापूर्वक कर्त्तव्याचरण करता है। जो अपने सत्संकल्प पर दृढ़ होता है। जो ब्रह्मचर्य पालन में आस्था रखता है। जो जन्म मृत्यु एवम् तत्सापेक्ष दुखों से भयभीत नहीं होता। जो व्यवसाय और व्यापार में प्रामाणिक होता है। जिसके मन में समर्पण भाव जागृत होता है और जो आत्म सन्तुष्ट होता है ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक होता है।

विकास क्रमश: ही सम्भव है। बीज अंकुर बनता है, पौधा पेड़ बनता है और फल-फूलों से लद जाता है। यह सब परिणति बीज बोने की ही है। आध्यात्मिक और भौतिक, उभय पक्षीय प्रगतियों का बीज तत्व है सभ्यता। यह बहिरंग है। समयानुसार जब यह अंतरंग क्षेत्र में प्रवेश करती है तो सुसंस्कारिता कहलाती है। सिद्धान्त रूप में तो यह भी कहा जाता है कि सुसंस्कारिता को हृदयंगम करने के उपरान्त सभ्यता की रीति-नीति भी व्यवहार मे मिलने लगती है। परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव यह बतलाता है कि जनसामान्य में सुसंस्कारिता के प्रति उमंग पैदा करने के लिए सभ्यता के

बहिरंग सूत्रों को ही माध्यम बनाना पड़ता है। अध्यात्म का एकमात्र उद्देश्य चेतना को उत्कृष्टता अपनाने के लिए प्रशिक्षित करना है। परन्तु इसके लिए केवल कल्पना करने भर से काम नहीं होता। जप-तप, ध्यान-धारणा, व्रत-उपवास, आसन-प्राणायाम जैसे शरीरगत प्रयोग और अभ्यास भी करने पड़ते है। क्रिया के आधार पर मानस प्रशिक्षण अधिक सरल, संभव और स्वाभाविक है।

योग के प्रकार :- ध्यान योग, राज योग, हठयोग, कुंडलिनी योग, अष्टांग योग ऐसे योग के अनेक प्रकार है इसमें मन्त्र योग भी शामिल है। मन्त्र यानि विशिष्ट रूप से रचित अक्षर और उनका विशिष्ट उच्चारण। शक्ति शुद्धि आसव, पंचाग सेवन, आचार धारण, दिव्य देश सेवन प्राण क्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन बाली, यज्ञ, जाप ध्यान और समाधि ये मन्त्रयोग के सोलह अंग है। आधुनिक युग में मन्त्र का स्थान यन्त्र ने ले लिया है लेकिन यन्त्र का सम्बन्ध तन्त्र और मन्त्र दोनों से होता है। मन्त्र योग में प्रत्यक्ष अक्षर या शब्द या उनके उच्चारण का महत्व होता है। शब्द ध्वनि की शक्ति का प्रयोग इस योग मे किया जाता है। सुस्पष्ट तरीके से और सद् हेतु से उच्चारित मन्त्र गुणकारी होते है। इसके विपरीत करने से वे घातक होते है। मन्त्र योग श्रद्धा और अनुभव का विषय है।

जब सपना बिल्कुल ही नहीं है तो तुम जागे हुये कहे जा सकते हो। हम बुध को जागृत पुरुष कहते है। यह जागरण वस्तुत: आन्तरिक स्वप्न-प्रक्रिया का विसर्जन है। भीतर कोई सपना नहीं है। तुम जाते हो, तो वहां कोई सपना नही मिलता। मानो आकाश में तारे रहे, शुद्ध आकाश ही है। जब स्वप्न नहीं रहा तो तुम शुद्ध आकाश हो। यह शुद्धता, यह निर्दोषता, यह स्वप्न रहित चैतन्य ही बुद्धत्व या जागरण कहलाता है। सदियों से सारे संसार का अध्यात्म चाहे व पूर्व का रहा हो या पश्चिम का यही कहता आया है कि मनुष्य सोया हुआ है जरूरत है इसे जगाने की।

जैसे ज्योति से ज्योति जलती है, वैसे ही, जीवन से जीवन प्राप्त होता है। कोई जागृत आत्मा ही हमें गहरी नींद से जगा सकती है। हम धर्मग्रन्थ पढते रहे और बलिदान व पवित्र कर्म करते रहे, लेकिन आत्मिक जागृति और आत्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकते। आध्यात्मिकता न तो खरीदी ही जा सकती है और न ही किसी को पढाई जा सकती है परन्तु उसे किसी आध्यात्मिक व्यक्तित्व से, जिससे आध्यात्मिकता की किरणें प्रवाहित हो रही हो, इस तरह से पकडा जा सकता है जैसे कोई छूत का रोग पकड लेता है।

आध्यात्मिक साधना करते समय साधक अपनी पद्धति के अनुसार साधना करता है। कोई जाप करता है, कोई ध्यान तो कोई योग साधना करता है। लेकिन जिस तरह यात्रा के दौरान हमारे द्वारा काटा गया अन्तर मार्ग पर दूरी बताने वाले पत्थर बताते है वैसे आध्यात्मिक साधना की यात्रा मे कुछ कुछ चिन्ह इसी प्रकार के है जैसे ध्यान मार्ग से जाने वाले साधक को पहले विभिन्न रंगों की रोशनी दिखती है, बाद में विभिन्न देवी देवताओं के रूप दिखने लगते है। उसके बाद विविध सुगन्ध अनुभूत होते है और बाद में विविध नाद सुनाई देने लगते है उसके बाद उसे आत्मिक आनन्द प्राप्त होने लगता है।

आध्यात्मिक चिन्तन सूक्ष्म यानि अभौतिक स्तर का होता है। वहां बाहरी जग, मेरा तेरा, संकुचितता की जगह नहीं होती। हम केवल अपने या परिवार तक सीमित न होकर सम्पूर्ण विश्व के साथ हमारा सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध आत्मियता का है इसका ज्ञान आध्यात्मिक चिन्तन से होता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में स्थिरता के लिये धैर्य आवश्यक होता है। जल्दबाजी में या केवल मनोरथ बना कर किये गये काम नुकसान देते है। लेकिन धैर्य और स्थिरता

आध्यात्मिक चिन्तन से आते हैं। उससे साहस प्रवृति बढती है। कुछ नया कर दिखाने की प्रेरणा प्राप्त होती है। कुशलता से काम कर अपनी आन्तरिक प्रगति करने के लिये आध्यात्मिक चिन्तन उपयोगी होता है।

जीवन साधना सर्वांगीण होना चाहिये, एक पक्षीय नहीं अन्यथा जीवन के एक ही अंग पर जोर देकर और अंगों की उपेक्षा हो जाती है। कोई युवक किसी युवती से प्रेम करता है, प्रेम में पागल होकर वह अपने शरीर और कार्य की उपेक्षा करने लगे तो वह एक पक्षीय प्रेम साधना है। व्यापारी अधिक से अधिक मुनाफे की सोच कर व्यापार करे तो वह बस सिर्फ पैसा ही देखेगा बाकि मानवता, परोपकार, दान जैसे कर्त्तव्यों की अनदेखी होने लगेगी। कोई ज्ञानोपासक सारा समय ग्रन्थों के अध्ययन में ही बिताने लगा तो स्वास्थ्य, उपजीविका, गृहस्थी की अनदेखी होने की सम्भावना हो जायेगी। एक पक्षीय साधना में प्रणीवता मिल कर भी जीवन के बाकी महत्वों की उपेक्षा होती है।

मनुष्य के कल्याण के लिये तीन योग बताये गये है। १) कर्म योग २) ज्ञान योग ३) भक्तियोग। कर्म योग जड को लेकर चलता है, ज्ञान योग चेतना को और भक्ति योग भगवान को लेकर चलता है। कर्म योग तथा ज्ञान योग तो लौकिक साधन है। लोके स्मिन्द्विविद्या निष्ठा पर भक्ति योग अलौकिक निष्ठा है। कारण कि जगत क्षर तथा जीव (अक्षर) दोनों लौकिक है। द्वाविमौ पुरुषों लोके अक्षर चाक्षर एव च परन्तु भगवान क्षर और अक्षर दोनों से विलक्षण अर्थात अलौकिक है। उत्तम: पुरुषस्त्वन्य:।

भारत में विभिन्न योगों का सम्मेलन जुटा दिखता है। इस संस्कृति में भोग से अधिक योग की प्राथमिकता है इसलिये योग के पोषक त्याग का यहां महत्व है। अष्टांग योग, ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, आत्म संयम योग जैसे विभिन्न हाथों में डाले एकत्र रहते हुये केवल भारतीय संस्कृति में ही दिखते है। इसका महत्व जानकर उपभोग से ऊबे हुये पश्चिमी जिज्ञासु लोग भारत की और दौड रहे है। इसके उलट भारत के कई लोग पश्चिम की भोगवादी जीवन शैली का अनुसरण कर रहे है। यह दुर्भाग्य की ही बात है। योग संस्कृति में मौज मस्ती के लिये कोई स्थान नहीं है। संयम ही योग का प्राण है। आत्मसंयम में प्रचण्ड शक्ति है और यह शक्ति भारत ही प्राप्त करके संसार को दे सकता है।

अध्यात्म हमें लम्बा जीवन जीने में बहुत मदद करता है। इसके पीछे कारण दिये गये है कि धार्मिक व्यक्ति तनाव ग्रस्त कम होता है। खानपान उसका शुद्ध होता है। सिगरेट मांसाहार, शराब से वह बचा रहता है। धर्म स्थल पर जाकर पूजा, प्रार्थना, जप, ध्यान, स्वाध्याय न केवल मानसिक शान्ति उपलब्ध कराते है बल्कि कई मानसिक रोगों से बचाते है। तनाव से मुक्त होने में अध्यात्म बहुत ही प्रभावी सिद्ध हुआ है। मनुष्य की सारी प्रवृतियां उसके दृष्टिकोण के आधार पर होती है। अध्यात्म हमें सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान कर भली बुरी दोनो स्थितियों में प्रसन्न रहने की प्रेरणा देता है। फल की चिन्ता छोडकर कर्म की सच्चाई में आनन्दित रहो का चिन्तन, मनुष्य को तनाव मुक्त रखता है। नित्य प्रार्थना ध्यान करनेवाले तनावमुक्तता का अनुभव करते है अत: तनावमुक्त होने में अध्यात्म बहुत ही मददगार साबित होता है।

हजारों वर्ष पूर्व भारत के साधु सन्तों का देव योग रोगों के निवारण में एक अचूक उपचार के रूप में सामने आया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान सहित औषधि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के रोग विशेषज्ञों ने रोग निवारण में तथा रोगों को कम करने में इन विधियों की भूमिका की सराहना की है। योग के अभ्यास से जीर्ण प्रतिरोधात्मक फेफडों सम्बन्धी रोगों जैसे श्वसनी शोध और दमा के उपचार करने की क्षमता है। इसी तरह के परिणाम मधुमेह की चिकित्सा, कमर के निचले हिस्से में दर्द और तनाव जन्य मनोदेहिक विकारों को ठीक करने में पाये गये है। जापान की एक तिहाई आबादी अपने

जीवन को बेहतर बनाने के लिये योग का सहारा लेती है। टोकयों की निप्पान योग को राई के अध्यक्ष कजुओं के अनुसार जापानी लोगों ने योग को १९५७ से अपनाना शुरू किया। अब जापान के सुसंस्कृत और पढे लिखे लोग अध्यात्म की विद्या योग को जानना जरूरी मानते है। प्रत्येक धर्म में मांस, मदिरा, गलत आचरण का निषेध किया गया है। शराब, सिगरेट, गलत सम्बन्ध न रखने में व्यक्ति स्वयमेव ही कई भयंकर रोगों से बच सकता है। धार्मिक आचरण करनेवाले व्यक्ति हृदय रोग, एडस्, कैंसर आदि से बचे रहते है। अध्यात्म, व्यक्ति में मृत्यु का भय समाप्त कर जीवन का आनन्द प्रदान कराता है, परिणाम स्वरूप धार्मिक व्यक्ति मृत्यु की विभिषीका से मुक्त रहता है। प्रत्येक धर्म शरीर को धर्म का साधना मानता है तथा शरीर की भली भाति रक्षा करने का उपदेश देता है अत: आध्यात्मिक लोग शरीर को ईश्वर का मन्दिर समझ कर उसकी रक्षा करते है। ऐसी वृत्ति हमें स्वस्थ जीवन में अति उपयोगी सिद्ध होती है।

भक्तियोग के ११ अंग :- श्रवण, कीर्तन, नाम स्मरण, सेवा, आर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन, प्रेम, भक्ति और परा भक्ति।

आष्टांग योग के आठ अंग :- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान धारणा, समाधि.

आध्यात्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से मनुष्य अपने आपको सुदृढ़ बनाता है। जीवन के अनगिनत सुख-दुख के अनजाने पलों में इसी आध्यात्मिक सुदृढ़ता के माध्यम से सहन करने की शक्ति प्राप्त करता है। समाज के बढ़ते प्रदूषण की भयंकर दुर्गंध से स्वयं को बचाता है। अनाचार, दुराचार, अत्याचार और भ्रष्टाचार के काँटों की चुभन से बच कर अपने जीवन को एक आकर्षित गुलशन में परिवर्तित करता है।

धर्ममार्ग : साधना का सुख- साधना इंद्रियों को साधने की एक कठिन कला है। इंद्रिय-नियंत्रण को साधना का अभीष्ट माना गया है। जब इंद्रियां वश में हो जाती है तो साधक साधु की श्रेणी को प्राप्त कर लेता है। भौतिक से आध्यात्मिक संसार में प्रवेश का प्रथम चरण साधना अर्थात इंद्रिय-निग्रह ही है। जब तक मन इंद्रियों का स्वामी बना रहता है, तब तक भौतिकता उसका पीछा नही छोड़ती, वह उसके सिर पर सोते-जगते आठों प्रहर सवार रहता है। उसे असार संसार ही सारभूत, सरस, सुखद एवं सत्य प्रतीत होता है। आध्यात्मिकता की गोद में वह अज्ञानी शिशु की भांति किलकारियां तो मारना चाहता है किंतु आध्यात्मिकता की उंगली पकड़ वह साधना के दुर्गम एवं प्रत्यक्षत: नीरस और अरुचिकर मार्ग में चलने में आनाकानी करता। आध्यात्मिकता का अमृत उसे अरुचिकर लगता है। ये सब चंचल मन की मनमानी और इंद्रियों का उसके वश में होने का कुफल है। इसीलिए आध्यात्मिक लोक का यात्री सबसे पहले मन और इंद्रियों को साधने का प्रयास करता है। जब मन स्थिर और इंद्रियां नियंत्रित रहना सीख जाती है तब साधना सार्थक होती है।

साधना ही व्यक्ति को मानवता का पाठ पढ़ाती है, उसे मानवोचित आचरण करने की ओर प्रवृत्त करती है। साधना मानवता को संस्कारितकरती है। इस प्रकार साधना मानव स्वभाव के परिष्कार का एक सफल साधन है। इच्छाओं का तीव्रगामी अश्व साधना की रास के कारण ही सवार के अनुकूल गतिमान रहता है। रास द्वारा ही सवार अश्व पर अपनी पकड़ बनाए रखने में सक्षम होता है। निरंकुश अश्व का सवार सदैव गिरता है। गिरने के पश्चात वह पश्चाताप करता हुआ सोचता है कि क्यो नहीं हमने रास का सहारा लिया। गृहस्थ के लिए साधना की रास का महत्व बहुत अधिक होता हे। प्रत्येक गृहस्थ इच्छाओं के असीम सिन्धु में अपने सीमित संसाधनों की नौका लिए जीवन यात्रा पूरी करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। उसकी नौका डूबने न पाए इसके लिए इच्छाओं को सीमित करना आवश्यक होता है। इच्छाओं का

यह सीमितीकरण इंद्रिय-निग्रह के द्वारा ही संभव है अस्तु, इच्छाओं का दास और अनुगामी बनने के बजाय व्यक्ति को उन पर अपना नियंत्रण रखना सीखना चाहिए, यही साधना है। जो गृहस्थ जितना अधिक अपनी इच्छाओं को नियंत्रित कर सीमित कर लेता है वह उतना ही अधिक इंद्रिय-निग्रही होता है, और जितना अधिक वह इंद्रिय-निग्रही होता है, उतना ही अधिक उसमें साधुत्वता होती है और साधुत्वता सम्पन्न व्यक्ति ही सारग्राही होता है। वह जीवन का अर्थ और जीने की कला जानता है। इस प्रकार एक जितेन्द्रिय गृहस्थ श्रेष्ठ साधु हो सकता है। संयमी और इंद्रिय निग्रही गृहस्थ दोनो का आनंद लेता हुआ अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध कर दूसरों को भी अपने व्यवहार और आचरण से आनंदित करता है।

हमारी साधना के परिणामस्वरूप हमारे अंतस में उपजी ऊर्जा की शक्ति शब्दों द्वारा उकेरी गयी चेतनाजनित संवेदना पाषाण को भी द्रवित कर देती है। जब संसार की प्रत्येक वस्तु एवं जीव नश्वर है तो हम क्यो न मूल्यों के लिए जिएं। हमारे और प्रभु के बीच में जो भौतिकता का आवरण है उसे हमें अपनी भक्ति की शक्ति से हटाना होगा। गरीबी और अमीरी के बीच के अंतर का प्रमुख कारण आर्थिक ही होता है, किंतु हमारी सोच दोनों के बीच में दूरियाँ पैदा कर देती है। हमे अपनी सोच और विचारों में जीवन के शाश्वत मूल्यों को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन लाना होगा। हमारी मानसिक साधना का एक पक्ष यह भी है कि हम अपने ही समान दूसरे को भी समझे और व्यवहार करे। साधना का तात्पर्य अपने को संयमित या नियंत्रित करना है। जब हम अपने को संयमित कर लेंगे तभी हम वास्तविक रूप में साधना अर्थात भक्ति के पात्र होंगे। अपने मन, मस्तिष्क को एकाग्र करके प्रभु आराधना में लगाने से ही साधना सार्थक होती है। निर्मल मन वाले व्यक्ति ही प्रभु को प्रिय है। तुलसीदास जी ने भी लिखा है- निर्मल मन जन सो मोहिं पावा, मोहिं कपट छलछिद्र न भावा। विचारों की निर्मलता मन को एकाग्र करने में सहायक होती है। हमारे मन, मस्तिष्क में जिस अनुपात मे उत्कृष्ट विचारों का प्रादुर्भाव होगा उसी अनुपात में हम साधक हो सकेंगे। चिंतन से विचार बनते है, हम जैसा सोचते है उसी के परिणामस्वरूप हमारा आचरण बन जाता है, जो हमारे चरित्र को प्रभावित करता है। साधक को अपने चिंतन में उत्कृष्टता लाना साधना की प्रथम आवश्यकता है। साधना का क्षेत्र केवल भक्ति तक ही सीमित नहीं है इसे सदाचार और आचरण की उत्कृष्टता के लिए भी अपनाया जाता है। आज के समय में ईमानदारी से मानवता का पालन करना भी एक प्रकार की साधना ही है। साधक को अपनी साधना हेतु अपने अंदर पात्रता विकसित करने के लिए ईमानदारी से नैतिक और शाश्वत मूल्यों का पालन करना होगा। परमात्मा का अनुग्रह पाने के लिए हमें कुछ तो करना ही होगा। जिसके लिए सबसे सरल साधन है मानवता का पालन करना। त्याग, तप, संयम-नियम, इंद्रियों को वश में करना आदि बाते हमे साधना के पथ पर ले जाती है। जब हम इन्हे अपनायेंगे तभी हम प्रभु के अनुग्रह के पात्र होंगे। प्राय: जब हम जीवन की आपाधापी और भागमभाग से त्रस्त हो जाते है तभी हमें प्रभु की याद आती है और हम उनकी शरण में जाते है। यदि हम अपने को कर्ता न मान कर हानि लाभ प्रभु को ही समर्पित कर दे तो प्रभु अवश्य ही हमारी सहायता करते है। तमाम विकृतियों से बचने के लिए हमें सदैव परमात्मा को अपने हृदयंगम रखना होगा।

प्रभु के प्रेम में मगन होने का आनंद - अक्सर कहा जाता है कि बड़ा कठिन है अध्यात्म के रास्ते पर चलना। बहुत मुश्किल है प्रेम की डगर। संभव है कि बहुतों के लिए यह काम नामुमकिन हो। वे अध्यात्म और आध्यात्मिक प्रेम की साधना असंभव मानते हों, पर इस देश में अनेक साधकों ने अध्यात्म को गहराई से जाना है। उन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की सिर्फ बातें ही नहीं की, बल्कि उसका रसपान भी किया है।

असल में, आध्यात्मिक-पथ पर चलना प्रेम के पथ पर चलना ही है। अध्यात्म पढ़ने या रटने लायक रूखासूखा विषय नहीं है। यह सख्त ध्यान भी नहीं है, जिसमें डूबकर हम खुद को समाज या अपने परिवार या फिर जिंदगी से अपने आपको अलग कर लें। बल्कि अध्यात्म का मतलब तो अपने आपको उस प्रेम में डुबो देना है, जो हमारी असली प्रकृति है और जो हमारे जीवन का आधार भी है।

अध्यात्म में हम स्वयं प्रेम बन जाते हैं। यह अजूबा इसलिए होता है, क्योंकि हम अपने अंतर में प्रभु की सत्ता से जुड़ जाते हैं। इस तरह हम प्रेम के महासागर में समा जाते हैं। चूंकि हम प्रेम की अवस्था में होते हैं, इसलिए हमें पूरे संसार में प्रभु के प्रेम और सौंदर्य की ही झलक दिखाई देती है। हम वृक्षों, फूलों, नदियों और पहाड़ों को ईश्वर की रचना मानकर उन्हें देखते हुए आनंदित होते हैं। साथ ही, हमें इंसान द्वारा बनाई गई वस्तुओं में भी सौंदर्य दिखाई देता है। हमें पृथ्वी के निम्न कोटि के जीवों में भी, चाहे वे कीड़े-मकोड़े ही क्यों न हों, सौंदर्य दिखने लगता है।

ऐसे संत-महापुरुषों के अनेक उदाहरण मिल जाएंगे, जो प्रभु-प्रेम में इतने मगन हुए कि उन्हें संसार के दुखी, गरीब, बीमार और परित्यक्त लोगों में भी सौंदर्य दिखाई दिया। प्रेम के अलावा और क्या शक्ति हो सकती है, जिसके असर से सेंट फ्रांसिस ने एक कोढ़ी को गले लगाया और मदर टेरेसा ने बेहद गरीब और संक्रामक बीमारियों से ग्रस्त लोगों को प्रेम दिया और उनकी तीमारदारी की ? प्रेम की यह शक्ति ही हमें दूसरे लोगों में मौजूद सौंदर्य के प्रति जागृत करती है। दूसरों के सौंदर्य को महसूस करने पाने की इस अवस्था में हम एक तरह के आध्यात्मिक नशे में रहते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि जब हम किसी से प्रेम करते हैं, तो हम उस प्रेम की ठीक वैसी ही तीव्रता महसूस करते हैं, जो प्यार करने वाले दो दिलों के बीच होती है। पर जब हम पूरी सृष्टि से प्रेम करते हैं, तो हमारे प्रेम और आनंद, दोनों का दायरा बढ़ता जाता है।

इसका एक उदाहरण महात्मा बुद्ध के जीवन से मिलता है। गौतम बुद्ध की जिंदगी की शुरुआत सौंदर्य से भरपूर थी। राजकुमार होने के नाते उन्हें सभी ऐशोआराम हासिल थे। उनका विवाह एक सुंदर स्त्री से हुआ था। पर चारों ओर सौंदर्य होने के बावजूद, उन्हें जिंदगी में किसी चीज की कमी महसूस होती थी। इसी सूनेपन के कारण वह आध्यात्मिक खोज के लिए प्रेरित हुए। उन्होंने अपना राजपाट छोड़ा और अंतरात्मा की जागृति की खोज में निकल पड़े। हालांकि यहां एक विरोधाभास यह है कि आत्मा की जागृति के बाद वह एक बार फिर से सौंदर्य के अनुरागी हो गए। पर इस बार उनका अनुराग उस प्रेम और सौंदर्य के प्रति था, जो सृष्टि में हर कण में मौजूद है।

अगर हम प्रेम के इस नशे और आनंद को चखना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले नियमित रूप से ध्यान या ध्यान करना होगा। यही वह कुंजी है, जो हमें सृष्टि में मौजूद अद्भुत प्रेम और सौंदर्य के नजदीक ले जाती है। जब हम ध्यान साधना के दौरान हासिल हुए रूहानी असर और अनुभव के बल पर प्रभु की आध्यात्मिक ऊर्जा को ग्रहण करने की कोशिश करते हैं, तो वह ऊर्जा हमारी तरफ और तेजी से आती है। असल में, वह ऊर्जा तो हर समय मौजूद है, ध्यान से हम उसके बेहतरीन पानेवाले बन जाते हैं। इस प्रकार हम संसार का सौंदर्य उसकी संपूर्णता में देखने के योग्य बन जाते हैं।

नीति और धर्मशास्त्र मनुष्य के जीवन में समरसता का संचार करने के स्त्रोत है। साथ ही मानव मन में अदृश्य परम सत्ता के प्रति आस्था उत्पन्न करते है। आपस में प्रेम और भाईचारे के साथ रहने का रास्ता बताते है। वशिष्ठ जब रघुनंदन को सत् असत् का उपदेश देते है तो यह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जगत वास्तव में कोई वस्तु नहीं है। कभी न उत्पन्न होने के कारण इसका अस्तित्व है ही नहीं। अस्तित्व केवल परमात्मा का ही है। नीति नैतिक बनाती है, शास्त्र व्यवस्था देते है और

इन सबकी प्रेरक शक्ति गुरु दृश्य और अदृश्य के समरस बोध के साथ जीना सिखाता है। स्वप्न के आँगन में घटना और आचरण में सिलसिला नहीं होता पर जब हम स्वप्न के विराट संसार में अपना सामाजिक जीवन जागरण की शैली में जीते है तो इसमें अपने स्वार्थों की गणित भी होती है और हर आदान-प्रदान का एक सिलसिला भी। खेल दृष्टि का है। जैसी दृष्टि होगी सृष्टि भी वैसी ही दिखती है। संसार को स्वप्न समझते हुए भी सत्य का आश्रय लेकर जीना चाहिए। सत्य केवल अदृश्य परमात्मा ही है। संतों और शास्त्र के अनुभव का निचोड़ है अध्यात्म। सामान्य मनुष्य आहार, निद्रा, सुख, आवास के स्वप्न साकार करने की साधना में एक जन्म से दूसरे जन्म की यात्रा करता रहता है। उसे जीवन के आदर्श मूल्यों का न तो ज्ञान होता है और न ही उसके पास आत्मा और परमात्मा के गूढ़ रहस्यों के जानने का समय ही होता है। ऐसे लोगों के लिए ही गीता ने मार्ग सुझाया है कि सभी कर्म मुझे अर्पण कर दो अर्थात् परमात्मा को समर्पित कर्म कभी कर्ता को उसे फल से नहीं बाँधता। ऐसा भाव तभी दृढ़ होता है जब आहार, निद्रा, सुख, आवास की वंशी वादक को सामान्य स्वर ज्ञान हो। यह सत्संग के माध्यम से सहज अनुकरण में आ जाता है। अनुकरण जब आचरण का अंश हो जाता है तब परमात्मशक्ति स्वत: उस व्यक्ति का वरण कर लेती है। संशय और द्वंद्व रहित मन ही खुल कर जी सकता है। अध्यात्म सारे संशय और द्वंद्व के दागों को सहज ही धो देता है। मानव की पहचान उसके कर्मों से होती है और कर्मों के अनुसार ही उसे फल मिलता है। अच्छे और बुरे कर्मों के विभाजन में हमारा विवेक ही साथ देता है। जिसे हम सत्संग व स्वाध्याय के द्वारा सदैव परिष्कृत करते रहे। संयम, स्वाध्याय, सेवा से हम अपनी साधना को लोककल्याण के कार्यों में लगाये, जो आज के समय व समाज की महती आवश्यकता है। यदि कोई व्यक्ति स्वयं को आध्यात्मिक मान रहा है तो समाज की उसके प्रति ऐसी अपेक्षा होना स्वाभाविक है कि वह श्रेष्ठ मानवीय गुणों से लैस हो। यदि यह अपेक्षा पूरी नहीं होती तो किसी के आध्यात्मिक होने का कोई विशेष महत्व नहीं, क्योंकि आध्यात्मिकता का एक खास गुण व्यक्ति को श्रेष्ठ आचरण की ओर उन्मुख करना है।

अध्यात्म- आध्यात्म के दो मूलभूत आधार है- एक आत्मा और दूसरा कर्म। इन दोनों के बिना समूचा आध्यात्म शून्य है। आध्यात्म साधना आत्मा को कर्म से मुक्त रखने की साधना है। कर्म के दो अर्थ है- प्रवृत्ति और बन्धन। जहाँ प्रवृत्ति है वहाँ बंधन है। जहाँ बंधन है, वहाँ प्रवृत्ति है। ऐसा कभी नहीं है कि जहाँ प्रवृत्ति हो और बंधन न हो।

कुछ लोग सोचते हैं कि वे आध्यात्मिक जीवन में किसी भी प्रकार की प्रगति नहीं कर सकते, क्योंकि वे बुरे संस्कारों के साथ जन्में हैं तथा उनका जीवन विफलताओं में ही समाप्त हो जाएगा। सोचने का यह तरीका पूरी तरह से गलत हैं। हमें इस भावना को सकारात्मक विचारों के द्वारा प्रभावहीन कर देना चाहिए। जिस प्रकार वायु का एक झोंका धूल कणों को उड़ा ले जाता है और आकाश के मेघों को कहां से कहां पहुंचा देता है, उसी प्रकार हमें सद्विचारों की आंधी से मन के कुविचारों को भगा देना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के अंदर दैवी और आसुरी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां होती हैं। देवासुर संग्राम मन में सतत चलता रहता है। तुच्छ लाभों और इंद्रिय सुख के चक्कर में पड़कर हम स्वयं ही आसुरी वृत्तियों को शक्ति प्रदान करते रहते हैं और उन्हीं के बलबूते वे दैवी भावनाओं को दबाए रहती हैं। हमें अपने अंदर विद्यमान देवत्व का ही बार-बार चिंतन करना चाहिए और उसे अधिकाधिक पुष्ट बनाने का प्रयास करते रहना चाहिए। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। मनुष्य का जन्म तो सहज होता है, पर मनुष्यता उसे कठिन प्रयत्न से प्राप्त करनी पड़ती है।

हमें भी अपने को सुसंस्कारी बनाए रखने के लिए सतत कठिन परिश्रम करना होगा और सदैव सतर्क रहना होगा। छोटी

से छोटी बुराई आगे चलकर हमारे स्वभाव का अंग बन जाती है और बाद में हमें भारी क्षति उठानी पड़ती है। ऐसी घातक उत्तेजनाओं से सावधानीपूर्वक बचे रहना हमारा कर्त्तव्य है। हमारा मन बड़ा चंचल होता है। उस पर एक क्षण के लिए भी विश्वास नहीं किया जा सकता। कभी-कभी बुराई सूक्ष्म रूप में गुण, दया और मित्रता के रूप धारण करके हमें मोहित करती है। ये तो अच्छी बातें हैं, पर यदि हम सतर्क नहीं रहते, तो इनसे आसक्ति व मोह की भावना जन्म ले लेती है, जो दया और मित्रता की मूल भावना को दबाकर लोभ और स्वार्थ की ओर प्रेरित कर देती है। असली आध्यात्मिक जीवन के लिए अत्यधिक आत्मसंयम की आवश्यकता है। इसकी कीमत चुकानी होती है, इसमें किसी प्रकार की सौदेबाजी की गुंजाइश नहीं है। अपने सांसारिक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए आत्मसंयम को अपनाना होता है। संयमित जीवन से ही वास्तविक आत्मविकास संभव है।

राजनीति और अध्यात्म बिल्कुल विपरीत विषय हैं। राजनीति का अर्थ है- दूसरों पर कैसे मेरा कब्जा हो जाए? मैं दूसरों का मालिक कैसे हो जाऊं? अध्यात्म का अर्थ है- मैं अपना मालिक कैसे हो जाऊं? ये बड़ी विपरीत बातें हैं। इसलिए तो हम संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी का मतलब, अपना मालिक स्वयं का मालिक। ये दो अलग यात्राएं हैं। राजनीति बहिर्यात्रा है- दूसरों का मालिक कैसे हो जाऊं? कितने बड़े समूह का मालिक हो जाऊं? अध्यात्म का अर्थ है- मेरे जीवन पर मेरी मालकियत कैसे हो जाए? मैं मन का गुलाम न रह जाऊं, मैं मन का मालिक हो जाऊं। मेरे भीतर अंतर्साम्राज्य पैदा हो।

आध्यात्मिकता सत्य की खोज है। खोज एक प्रक्रिया है, परिणाम नहीं है। खोज तब सार्थक होती है जब उसकी खोज कर ली जाये, जिसे खोजने चले थे। सिर्फ प्रक्रिया एक अधूरा शब्द अथवा भाव है। प्रक्रिया का मूल्यांकन होता है परिणाम से। पेड़ का मूल्यांकन फल से होता है। फल बताता है कि पेड़ कौनसा है इसी प्रकार परिणाम बताता है कि प्रक्रिया कितनी सार्थक अथवा निरर्थक थी। आध्यात्मिकता सत्य खोजने की प्रक्रिया नहीं है बल्कि सत्य की प्राप्ति का परिणाम है। जब सत्य की प्राप्ति हो जाती है तो प्रक्रिया भी आध्यात्मिकता में समाहित हो जाती है। उससे पहले तो खोज, रास्ता भर है। मंजिल के बिना रास्तों की क्या महत्ता है? मंजिल मिलती है तो रास्ते भी सार्थक हो जाते हैं इसी प्रकार सत्य की प्राप्ति हो जाती है तो प्रक्रिया भी सार्थक हो जाती है। तभी वह आध्यात्मिकता का अंग बन पाती है। वाहनों से लेकर विज्ञानों के अनेकों अंगों तक, चाहे जहां तक भी नजर दौड़ाएं, सर्वत्र गतिशीलता उजागर होती है। इसके विपरीत आध्यात्मिकता ठहराव का नाम है। यह स्थितप्रज्ञता की अवस्था है। प्रभु रूपी शिखर पर पहुंचे और वहीं ठहर गये। यह ठहराव मनोवस्था का है, जीवन का नहीं। जीवन के समस्त क्रियाकलाप तो चलते रहते हैं। फिर भी ठहराव बना रहता है क्योंकि मन में विचारों में, सोच में, गहराई बनी रहती है। हर गति को विश्राम चाहिए। गति होती है विश्राम तक पहुंचने के लिए। प्राय: गति के कारण थकान व तनाव पैदा होता है। संघर्ष से अराजकता होती है और अराजकता से विनाश होता है। अध्यात्मिकता ही स्थायी विकास की सदी बना सकती है अन्यथा तनाव, अशान्ति व असंतुलन से विनाश अवश्यम्भावी है। साधनों की कमी नहीं है, कमी तो साधना की है। साधना चाहिए विशालता की, उदाहरण की, सत्य के प्रभाव की, जियो और जीने दो के भाव की।

जैसे माता अपने बच्चे के लिए तरसती हैं, वैसे ही भगवान भी अपने भक्त के लिए तरसते हैं। बच्चा कैसा भी हो, माता उससे प्रेम करती है। बच्चा भी यही समझता है कि मुझे मेरी मां का प्रेम मिलेगा। भगवान में तो माता से भी अनंत गुना वात्सल्य है। जो एक मात्र भगवान को ही अपना मानते हैं, उनको भगवान का प्रेम मिलता है, यह भक्तों का अनुभव है।

यही प्रेम-मार्ग का अंतर है। प्रेम मन-इन्द्रियों का व्यापार नहीं है, वह तो ईश्वर और संबंध से प्राप्त होता है। ईश्वर को प्राप्त करने में कर्म की अपेक्षा नहीं है। इसके लिए तो एकमात्र लालसा चाहिए, व्याकुलता चाहिए। साधक जितना अधिक प्रभु के लिए व्याकुल होगा, उतना ही शीघ्रता से उसे भगवान मिलेंगे।

यदि तुमसे भगवत-चिंतन नहीं होता, तो विषयों का चिंतन क्यों करते हो ? जिस शक्ति से विषयों का चिंतन करते हो, उसी शक्ति से भगवत चिंतन करो। जब तुम भगवत चिंतन नहीं करते हो, तब विषयों का चिंतन करते हो। कोई भला काम नहीं करता तो बुरा करता है। यदि कोई कुछ भी न करे, तो भी बहुत ठीक है। परंतु बिना करे रहे नहीं और करने योग्य काम न करके उल्टा करे, तो यह साधन नहीं है। इससे विकास नहीं हो सकता। प्राय: लोग अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। जिसका चिंतना करना चाहिए उसके लिए तो कर्म करते हैं और जिसके लिए कर्म करना चाहिए उसका चिंतन करते हैं, इसलिए दोनों ओर असफल रहते हैं। संसार और सांसारिक भोगों के लिए चिंतन नहीं कर्म आवश्यक है। ईश्वर तो उसे मिलते हैं, जो अपना मन शुद्ध करके उसे ईश्वर के समर्पण कर देता है। जो सचमुच साधक है उसे पराये दोष देखने की फुरसत ही नहीं मिलती। साधक को चाहिए कि वह दूसरों से किसी प्रकार की आशा न रखे, और तत्परता से अपनी रूचि और योग्यता के अनुसार साधन करता रहे। कठिनाई एक प्रकार का तप है। तप के बाद सामर्थ्य आती है। अत: साधक को कभी निराश नहीं होना चाहिए। साधक को चाहिए कि जानने के पीछे न पड़े, जो कुछ जाना है उसके अनुसार करने का आरंभ कर दे। जिसको न कर सके उसको करने की इच्छा का त्याग कर दो। कर्म करने के लिए पर की आवश्यकता होती है। इसमें मनुष्य पराधीन है। परन्तु विश्वास, प्रेम और चिंतन-शक्ति का किसी के पास अभाव नहीं हैं। इसमें मानवमात्र सदा स्वाधीन है।

व्यक्ति के व्यवहार पर उसकी जरूरतों का बहुत अधिक असर होता है। यह बात चिकित्सा विज्ञान ने भी स्पष्ट कर दी है। व्यक्ति के क्रियाकलाप उसके मन के हिसाब से तय होते हैं और मन आवश्यकताओं के हिसाब से, लेकिन व्यक्ति की जरूरतें क्या है ? व्यक्ति किस प्रकार से अपनी जरूरतों को देखता है ? कौन सी चीज वह पहले चाहता है और कौन सी उसके बाद।

इस पर कई लोगों ने अध्ययन किया और अपने-अपने सिद्धान्त दिये है। भारतीय पहलु है तो पश्चिमी भी। लेकिन इस विषय में सबसे ज्यादा चर्चित रहे अब्राहन मैसलो। उन्होंने कहा कि व्यक्ति पहले अपनी मूल जरूरतें पूरी करता है। इसके बाद अन्य जरूरतों की ओर बढ़ता है। मैसलो ने १९४३ में इस बात की व्याख्या की थी।

व्यक्ति की मौलिक जरूरतें भोजन, आवास और प्रजजन हैं। लेकिन ये आवश्यकताएं हमारे भौतिक शरीर को ही तुष्ट कर पाती है। जिनकी सांसारिक जरूरतें पूर्ण हो जाती हैं, वे अपनी मानसिक जरूरतों को पूरा करने में लग जाते हैं। मैसलो ने जरूरतों को एक पिरामिड के जरिए समझाया था। उन्होंने इनको पांच स्तरों में बांटा था। इसमें नीचे चार स्तर तक की जरूरतों को शारीरिक और पांचवीं को मानसिक जरूरत से जोड़ कर देखा गया था। उनका मानना था कि पहले चार स्तर की जरूरतों के पूरा होने के बाद ही व्यक्ति का ध्यान पांचवें या सबसे ऊपरी स्तर की जरूरतों की ओर जाता है। व्यक्तिगत जरूरतों की व्याख्या का भारतीय पहलू भी है। डॉ. दीपक चोपड़ा ने जरूरतों को सात स्तरों में बांटा हैं। उनके मुताबिक सबसे पहले जीवन या सुरक्षा का स्थान होता है। इसके बाद सफलता, संपत्ति, अपनी अहमियत, अध्यात्म, वृद्धि और उत्कर्ष का स्थान आता है। वेद के अनुसार अगर हम जरूरतों के वर्गीकरण को समझें तो यह शारीरिक, मानसिक,

बौद्धिक, अहम और अध्यात्म से जुड़ी बताई गई हैं। मैसलो का वर्गीकरण, वैदिक वर्गीकरण से अलग नहीं था। उन्होंने भी उपरोक्त पांच प्रकार की ही जरूरतें बताई थीं। फक सिर्फ इतना था कि उन्होंने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और अहम से जुड़ी जरूरतों को भी मूल आवश्यकता बताया और आध्यात्मिक जरूरत को उच्च आवश्यकतायें।

हम सभी अपनी जरूरतों के हिसाब से काम करते हैं। चिकित्सा विज्ञान में हर व्यवहार का पुष्टिकरण किया गया है। सभी अपनी-अपनी मनोस्थिति के हिसाब से काम करते हैं। अगर कोई व्यक्ति चोरी, बलात्कार, छेड़-छाड़ जैसे काम करता है तो वह भी कहीं न कहीं उसकी जरूरतों से जुड़ा होता है। बेशक वे जरूरतें भौतिक और शरीर के लिए होती हैं। जिनकी भौतिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं, वे मानसिक जरूरतों को पूरा करने में लग जाते हैं। मानसिक जरूरतों को दिमाग, बुद्धिमत्ता और अहम जैसे कारक निर्धारित करते हैं। अहम के कारण पैदा हुई जरूरतें ध्यान आकर्षण, प्रतिष्ठा और शक्ति प्राप्ति पर केंद्रित होती हैं। अधिकतर राजनीतिक निर्णय-चाहे वे राज्य, देश या अंतरराष्ट्रीय स्तर के हों, अहम आधारित इच्छाओं को पूरा करने के लिए ही लिए जाते हैं। जब तक व्यक्ति अपनी मानसिक जरूरतों को नियंत्रित नहीं करेगा, वह अध्यात्म के मार्ग पर नहीं चल सकता। अध्यात्म का द्वार यहीं से खुलता है। हर नियंत्रित व्यक्ति को प्रेम, प्रशंसा, स्वयं के स्वीकार्य होने के साथ-साथ आत्मिक खुशी की जरूरती होती है। आध्यात्मिक जरूरतों की पूर्ति पूरी तरह से अहिंसा पर आधारित है। वर्तमान समय में संसार में बहुत ही कम आध्यात्मिक गुरु बचे हैं। इसीलिए हमारा व्यवहार भौतिक या फिर मानसिक जरूरतें पूरी करने तक सीमित हो गया है। भगवत गीता के अनुसार सुख और दु:ख के तीन मुख्य द्वार हैं मोह, लालच और अहम। जैसे-जैसे इनसे जुड़ी इच्छाएं पूरी होती जाती हैं, लालच, मोह और अहम बढ़ता जाता है। वहीं जब इनसे जुड़ी इच्छाएं पूरी नहीं हो पाती हैं, तो मोह के कारण क्रोध, विभ्रम और कष्ट पैदा होते हैं। लोभ और ज्यादा लगाव पैदा करता है। नतीजतन हम नकारात्मक कदम उठाते हैं और जब हमारे अहम की तुष्टि नहीं होती तो हम आक्रमक हो जाते हैं।

अधिकतर लोग सोचते हैं कि विज्ञान और अध्यात्म पूर्णतया विपरीत क्षेत्र हैं। वे एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं। विज्ञान का लक्ष्य है गहरी आध्यात्मिक सच्चाइयों का खुलासा करना और अध्यात्म का लक्ष्य है वैज्ञानिक तथ्यों के पीछे छुपे कारणों की खोज करना।

कुछ महानतम वैज्ञानिकों से जब उनकी खोजों के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने अपनी खोजों के पीछे आध्यात्मिक प्रेरणा या दिव्य शक्ति के होने की बात कही। सापेक्षता का सिद्धांत खोजने के बाद वैज्ञानिक खोजों के पीछे सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति ब्रह्मांडिय धार्मिक अनुभव है।

अगर हम आज विज्ञान की ओर देखें, तो पाते हैं कि वैज्ञानिकों का एक लक्ष्य यह पता लगाना है कि यह सृष्टि कैसे बनी और हम इंसान कैसे बने? हमारे ग्रह के ऊपर मंडरा रहा एक दुर्बिण या महा धमाके के प्रारंभिक अवशेषों को ढूंढकर दिखाने में कामयाब रहा है। अनेक प्रकाश वर्ष दूर के संकेतों को पकड़ कर, हम अरबों वर्ष पहले हुई गतिविधियों की झलक देख सकते हैं, क्योंकि वहां की रोशनी अरबों वर्ष बाद अब यहां पहुंच सकी है। वैज्ञानिकों में होड़ लगी है कि कौन सबसे पहले यह खोज करके दिखाएगा कि सृष्टि के शुरू में क्या हुआ था। क्यों?

ज्यादातर लोगों को यह मानने का दिल नहीं करता कि हम मात्र एक ब्रह्मांडीय दुर्घटना की उपज हैं। हर दिल में यह साबित करने की इच्छा छुपी रहती है कि एक परम प्रभु है और हम आत्मा है, उस प्रभु के अंश। विज्ञान इन अति गहन

रूहानी सचाइयों को ढूंढ निकालने के लिए है।

दूसरी ओर, जो रूहानियत में लगे हैं, वे वैज्ञानिक तथ्यों के पीछे छुपे कारणों का पता लगाने की कोशिश में हैं। वे प्रकृति के वैज्ञानिक नियमों में रुचि रखते हैं। वे उस दिव्य नियम को खोजना चाहते हैं, जिसके द्वारा सब कुछ अस्तित्व में आया। वैज्ञानिक बाहरी यंत्रों के द्वारा खोज करते हैं, रूहानी वैज्ञानिक इस भौतिक मंडल से ऊपर, चेतना के उच्चतर मंडलों में पहुंचकर अपनी खोज करते हैं।

जिनको लोग करामात कहते हैं, वे कुछ और नहीं बल्कि उच्चतर नियम हैं, जिनसे कि हम अनजान हैं। वैज्ञानिक महसूस करने लगे हैं कि यह संसार इतना ठोस नहीं, जितना कि हमने सोचा था। वास्तव में, जड़ पदार्थ कंपन करती ऊर्जा है, जो कि भौतिक आंख को ठोस प्रतीत होती है। जब हम संसार को मूल अवयवों में बांट देते हैं, तो हमें ऊर्जा, ज्योति और ध्वनि मिलते हैं। करामात करने का अर्थ कुछ और नहीं, बल्कि इस ऊर्जा को पकड़ना है और विचारों एवं आत्मा की शक्ति से इससे काम लेना है।

अगर हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को देखें, तो वहां एक बिल्कुल नई पद्धति पाएंगे। पहले हम सोचते थे कि दवाइयों से बीमारियाँ ठीक होती हैं। लेकिन चिकित्सा की इस नई पद्धति में मन और शरीर के आपसी संबंध की बात कही जाती है। इस पद्धति को चलानेवाले कहते हैं कि मन को स्वस्थ करने से शरीर भी स्वस्थ हो जाता है और वे स्वस्थ होने के लिए आत्मा की शक्ति का इस्तेमाल करते हैं।

दुनिया के कुछ बड़े चिकित्सा संस्थानों में चिकित्सक तनाव और तनाव संबंधी बीमारियों को कम करने के लिए ध्यान टिकाने को कहते हैं। जो लोग ध्यान या धार्मिक शिबिरों में समय बिताते हैं वे शल्य-चिकित्सा के बाद उन लोगों से जल्दी स्वस्थ होते हैं, जो कि ऐसा नहीं करते हैं। हम एक आश्चर्यजनक युग में जी रहे हैं, जिसमें विज्ञान और अध्यात्म के बीच की रेखाएं अस्पष्ट होती जा रही हैं।

भारत में विभिन्न योगों का सम्मेलन जुटा दिखाता है। इस संस्कृति में भोग से ज्यादा योग की प्राथमिकता है, इसलिए योग के पोषक त्याग का यहां महत्व है। अष्टांग योग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, आत्मसंयम योग जैसे विभिन्न योग हाथों में हाथ डाले एकत्र रहते हुए केवल भारतीय संस्कृति में ही दिखते है। इसका महत्व जानकर, उपभोग से ऊबे हुए पश्चिमी जिज्ञासु लोग भारत की ओर दौड़ रहे हैं।

इसके उलट भारत के कई लोग पश्चिम की भोगवादी जीवनशैली का अनुसरण कर रहे हैं, यह दुर्भाग्य की बात है। योग संस्कृति में मौजमस्ती का कोई स्थान नहीं है। संयम ही योग का प्राण है। आत्मसंयम में प्रचंड शक्ति है और यह शक्ति भारत ही प्राप्त करके संसार को दे सकता है।

आध्यात्म, एक यात्रा है विचारों की, और विचार ? विचार, एक द्वंद्व है,
द्वंद्व इच्छाओं का, भावनाओं से, द्वंद्व अपना-अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए।
इच्छा रेगिस्तान में भटकते राही की तरह, भौतिकता की मरीचिका की ओर आकर्षित।
इच्छा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है, मरीचिका दूर होती जाती है,
और दे जाती है हौसला, चंद पल और विचारों को जीवित रखने के लिए।
हौसला, और कुछ नहीं है, भावना की विजय है इच्छा पर,

एक सफलता है अपने अस्तित्व को बनाए रखने की।
इच्छा, अकसर एक स्पर्श की दूरी पर होती है, भावना से, अंतर्मन से।
और जब भावना अपने अस्तित्व का फैलाव कर, इच्छाओं को संकुचित कर देती है
तो विचार, विचार नहीं रहता वह चिंतन हो जाता है।
चिंतन वह अमृत है, जो विचारों के मंथन से निकलता है,
और हर मंथन सबसे पहले विष उगलता है।
जो इस विष से बच पाया, जो चिंतक के अमृत को अपनी जिव्हा पर रख पाया,
वही उस छोर तक पहुँच पाता है, जिसे आध्यात्म कहते हैं।
मगर यह यात्रा का अंत नहीं शुरूआत है।

बुद्धिमान व्यक्ति शैशव काल से ही धर्म साधना करते हैं। क्योंकि मनुष्य का शरीर दुर्लभ है और उससे भी अधिक दुर्लभ है वह जीवन जो जीवन साधना के द्वारा सार्थक हुआ हो। हर कर्म उचित समय पर करना चाहिए। जैसे आषाढ़ महीने में धान की रोपाई होनी चाहिए और अगहन में कटाई होनी चाहिए।

कोई अगर अगहन में रोपाई करे तो मुश्किल हो जाएगा, काम ठीक तरह से नहीं होगा। ठीक वैसे ही कोई व्यक्ति अगर यह सोचे कि बुढ़ापे में धर्म साधना करेंगे, तो यह बहुत बड़ी भूल होगी क्योंकि तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। वैसे भी कहा जाता है कि कोई भी काम कल के लिए छोड़ना नहीं चाहिए। जो कुछ भी अच्छाकाम करने की इच्छा होती है, तुरंत कर लिया जाना चाहिए।

रावण से राम को कुछ उपदेश मिला था। जब रावण मरणासन्न था, तो उस समय श्रीराम ने उससे कहा कि आप अभिज्ञ राजा हैं, आप मुझको कुछ उपदेश दीजिए, तो रावण ने कहा- शुभस्य शीघ्रम, अशुभस्य कालहरणम। यानी जब शुभ कर्म करने की इच्छा हो तो तुरंत करो, एक मुहूर्त की भी देर नहीं होनी चाहिए। इसी तरह जब अशुभ कर्म करने की इच्छा हो तो केवल देर करो, आज नहीं कल, कल नहीं परसों। रावण ने कहा- देखो श्रीराम, मेरी इच्छा थी मैं स्वर्ग तक सीढ़ी बना दूंगा, किंतु आज नहीं कल, कल नहीं परसों करते-करते देखो आज मेरी मृत्यु हो रही है, सीढ़ी बनने का काम शुरू नहीं हुआ। दूसरी बात है, अशुभस्य कालहरणम। मेरे मन में यह हुआ था कि सीता का अपहरण करूंगा। यह अशुभ कर्म था। अगर मैं देर कर देता, आज नहीं कल, कल नहीं परसों करता तो यह अशुभ कर्म नहीं होता और इस तरह की मेरी मौत भी नहीं होती। इसीलिए कह रहा हूं कि शुभस्य शीघ्रम् अशुभस्य कालहरणम्। मनुष्य में थोड़ा-बहुत ज्ञान और थोड़ी-बहुत बुद्धि का उदय चार-पांच साल की उम्र से ही हो जाता है। उसी वक्त से साधना हमारे जीवन का हिस्सा हो जानी चाहिए, अर्थात साधना शुरू कर देनी चाहिए। बुढ़ापे का इंतजार नहीं करना चाहिए, क्योंकि जरूरी नहीं कि बुढ़ापा सबके जीवन में आए ही। बहुत से लोग ऐसे भी हो सकते हैं कि आज ही उनका अंतिम दिन हो। जीवन में कल नहीं आ सकता है। एक और बात है। जिसके जीवन में तय हो कि उसे बुढ़ापा आएगा ही, उसे भी एक बात याद रखनी चाहिए कि जब शरीर स्वस्थ है, उम्र कम है, साधना के लिए वही उचित समय है। बुढ़ापे में तो शरीर कमजोर हो जाएगा। नया कर्म मनुष्य बुढ़ापे में शुरू नहीं कर सकता है।

जो कुछ भी अच्छा कर्म है, उसे कम उम्र में शुरू करना चाहिए। हर कर्म अभ्यास से पुष्ट होता है। साधना भी तो देखते

हो कि धीरे-धीरे पुष्ट होती है। इसलिए जितनी कम उम्र में मनुष्य साधना शुरू करेगा, उतना ही अच्छा होगा। अगर साधना बुढ़ापे में शुरू की जाएगी, तो आखिर साधना पुष्ट कब होगी?

बुद्धिमान व्यक्ति कौमार्य अर्थात बचपन से ही धर्म साधना शुरू करते हैं। कितने जन्मों के बाद मनुष्य का जन्म मिला है। पहले पेड़-पौधे, कीड़े-मकौड़े बनना पड़ा, उसके बाद धीरे-धीरे अनेक जन्मों के बाद मनुष्य का शरीर मिला। यह मनुष्य का शरीर अवश्य ही दुर्लभ है। मनुष्य का शरीर मिलने पर भी अगर रहन-सहन कीड़े-मकोड़े के जैसे ही रहा, तो यह बहुत दुख की बात है। पवित्र साधना द्वारा मनुष्य जीवन सार्थक होता है। इस प्रकार का आपका मनुष्य जीवन तो और भी दुर्लभ है।

इसलिए बुद्धिमान मनुष्यों को दुर्लभ चीज को पाने का प्रयत्न करना चाहिए। जो लोग साधना मार्ग में नहीं है, उनके लिए यह कर्त्तव्य है कि वे अविलंब साधना शुरू कर दें जो साधना मार्ग में है वे अपनी साधना और तीव्रता लाना शुरू कर दें। तब ही मनुष्य तन में आना उनके लिए सार्थक होगा।

सभी मनुष्य परमपुरुष को पाना चाहते हैं, किंतु यह कहां संभव है। क्योंकि हर व्यक्ति इस भौतिक संसार के मोह माया में बुरी तरह फँसा हुआ है। इस माया से निकलकर परमपुरुष को पाना कठिन है। फिर भी मनुष्य अपने-अपने तरीके से प्रयास करता है। परमपुरुष को पाना तभी संभव है, जब उसमें परमपुरुष के लिए आंतरिक व्याकुलता हो, भूख हो। अटूट प्रेम और समर्पण की भावना हो।

हर कोई आध्यात्मिक साधना करता है, कोई वेद मंत्र का उच्चारण करके, कोई जप करके या कोई मंदिर-मस्जिद या गिरजाधर में जाकर। हम प्रार्थना करके परमपुरुष को पाने का प्रयास करते हैं। इसी तरह हम मुक्ति पाने के लिए भी विभिन्न तरीके अपनाते हैं। यह स्वाभाविक भी है। हर व्यक्ति स्वतंत्र है, क्योंकि अपने लक्ष्य की ओर जाने के लिए वह खुद ही अपना रास्ता निकालता है। तंत्र में साधना के चार स्तर के बारे में बताया गया है- ब्रह्म साधना, ध्यान धारणा, जप-स्तुति और मूर्ति पूजा। जब आध्यात्मिक साधना ईश्वर का भाव लेकर करते हैं तो यह ब्रह्म सद्भाव या ब्रह्म साधना कहलाता है। साधना के समय मन को विशेष चक्र पर केंद्रित किया जाता है। उसके बाद श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया के द्वारा जब मंत्र का जाप ईश्वर का भाव लेकर करते हैं, वही इष्ट मंत्र कहलाता है। इस पूरी प्रकिया को आध्यात्मिक साधना या ब्रह्म साधना कहते हैं। इसलिए ब्रह्म साधना को श्रेष्ठ माना गया है।

साधना क्या है? साधना का अभिप्राय है, जब कोई विधिवत ढंग से मन को स्थिर करके उचित प्रगति का लगातार प्रयास करते हुए एक विशेष विधा में स्थापित करता है, तब यह साधना कहलाता है। जिस तरह आध्यात्मिक क्षेत्र में ध्यान करना एक साधना है, उसी तरह भौतिक क्षेत्र में हर प्रकार के कार्यों का लगातार प्रयास करना भी एक साधना है। साधना शब्द मूल धातु साध से बना है, जिसका अर्थ है लगातार प्रयास करना। कहा गया है आध्यात्मिक साधना या ब्रह्म साधना, साधना का श्रेष्ठ मार्ग है। ध्यान-धारणा साधना का दूसरा स्तर है, क्योंकि यहां ईश्वर भाव नहीं है। भाव की अनुपस्थिति में आध्यात्मिक साधना पूर्ण नहीं हो सकती है। जहां परमपुरुष को पाने के लिए आंतरिक व्याकुलता नहीं है, वहां ध्यान-धारणा सिर्फ दिखावटी है। जप-स्तुति साधना का तीसरा स्तर है। फिर जप क्या है?

आनन्द मार्ग साधना पद्धति में जप कभी ध्यान और कभी ईश्वर-प्रणिधान है। अब यह ईश्वर प्रणिधान क्या है? ईश्वर प्रणिधान का अर्थ हुआ ईश्वर भाव में अपने को स्थित करना, ईश्वर को एकमात्र आदर्श के रूप में ग्रहण करना। ईश्वर प्रणिधान भी एक प्रकार का ध्यान ही है यानी यह मानसिक चेष्टा है। कभी-कभी कुछ लोग अपने अंगुली द्वारा मंत्र का जप

करते हैं और साथ ही साथ दूसरा काम भी करते हैं- यह एक जप-तप का उदाहरण है। जप तीन प्रकार के हैं- वाचनिक, उपांसु और मानसिक। वाचनिक जप यानि बोल-बोल कर जपना या याद करना। जब अस्फुट स्वर से होठों में ही मंत्र का उच्चारण करते हैं तो वह उपांसु जप कहलाता है। ईश्वर प्रणिधान के लिए मानसिक जप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जिसका भाव मन लेता है, उस भाव का उच्चारण मन ही करेगा। स्तुति का अर्थ है- प्रशंसा करना। जप और स्तुति तृतीय स्तर की साधना है, जिससे साधक को कोई खास लाभ नहीं होता है। उसी प्रकार मूर्ति पूजा साधना का चौथा स्तर यानी प्रारंभिक स्तर माना गया है। इन काल्पनिक देवी-देवताओं का निर्माण मनुष्य की कल्पना से ही तो हुआ है। तब इन देवी-देवताओं की पूजा करने से साधक को मुक्ति या मोक्ष कैसे मिल सकता है? मनुष्य तो उस परमपुरुष का ही एक अंश है। जहां से मनुष्य की सृष्टि हुई है, उस सृष्टिकर्ता का निर्माण मनुष्य कैसे कर सकता है? इसीलिए कहा गया है कि मूर्तिपूजा सबसे प्रारंभिक स्तर की पूजा है। आध्यात्मिकता भारतीय राष्ट्र की प्राण शक्ति है तथा धर्म, आध्यात्म का प्रचार- प्रसार एवं भारतीय दर्शन का प्रचार प्रसार राष्ट्र की अनुपम सेवा है। साधना का अर्थ है स्वभाव में डूबना, स्वभाव में जीना, स्वभाव ही हो जाना।

स्वयं को जानकर ब्रह्म की ओर अग्रसर होना ही अध्यात्म ज्ञान है। आज मानव के पास भौतिक सम्पदा तो बढ रही है किन्तु उसे मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है। भौतिक मूल्य उन्नत हो रहे है जबकि नैतिक मूल्यों का ऱ्हास हो रहा है। इसका कारण यह है कि वह आध्यात्म से दूर जा रहा है। आध्यात्म-जागरण से मानव को कर्त्तव्य परायणता का आभास कराकर उसे कल्याण-पथ पर अग्रसर करना है।

विविध भाषाओं को बोलनेवाले अनेक प्रकारके धर्मोंका पालन करनेवाले और एक घर में रहनेवाले विविध मनुष्यों की तरह हम सबको धारण करती हुई यह पृथ्वी सबको धारण करती है। आज समग्र विश्व आतंकवाद, उग्रवाद व संघर्ष की दहशत में जी रहा है। इस विषम परिप्रेक्ष्य में जरूरत है सत्य व न्यायपर आधारित विश्व दृष्टिकोण जो आध्यात्मिक जागृति से सम्भव है। जरूरत है एक नयी विश्व व्यवस्था की जो विश्व को प्रेम, विश्व बंधुत्व और विश्व एकता पर आधारित हो। यह आध्यात्मिक जागृति से सम्भव है। आध्यात्म सर्व जनों को सर्व सुलभ मार्ग प्रदान करता है। मानवता ही सर्वोपरि राष्ट्रधर्म है। नव रस का संचार हो यह मानवता की महान सेवा होगी और विश्व शांति स्थापित करने में एक सार्थक अहम पहल होगा।

जिस प्रकार पीतल के पात्रों को यदि नित्य स्वच्छ न किया जाए तो वे अपनी चमक खो देते हैं और जंग लग जाता है, उसी प्रकार यदि साधक नित्य साधना न करे तो उसका हृदय भी अपवित्र होने लगता है।

कोई व्यक्ति कितना आध्यात्मिक है, यह हम कैसे माप सकते हैं? हम देखते हैं कि शरीर का तापमान, उच्च रक्तचाप, हीमोग्लोबिन, मधुमेह आदि नापने के लिए सैकड़ों उपकरण हैं। पर किसी व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति कितनी है, इसको मापने के लिए कोई उपकरण नहीं है।

जो व्यक्ति पूजा करता है, माला जपता है, जो सुबह-शाम मंदिर जाता है, क्या हम उसे आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त कह सकते हैं? अथवा जो व्यक्ति वस्त्र त्याग चुका है, दाढ़ी बढ़ा रखी है, क्या उसे हम आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त कह सकते हैं? वेदांत ने इसे जानने का एक थर्मामीटर इस नियम के रूप में दिया है। हमारी संसार पर निर्भरता जितनी अधिक होगी, हम अध्यात्म से उतने ही दूर होंगे। जो व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से अस्सी प्रतिशत उन्नत है, उसकी संसार पर निर्भरता बीस प्रतिशत होगी। जो व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से बीस प्रतिशत उन्नत है, तो उसकी संसार में प्रवृत्ति अस्सी

प्रतिशत होगी। आध्यात्मिक विकास का प्रतिशत जितना बढ़ता जाएगा, सांसारिक निर्भरता उतनी कम होती जाएगी।

जो व्यक्ति सांसारिक अथवा ऐंद्रिय विषयों पर जितना अधिक निर्भर है वह उतना कम आध्यात्मिक है। ऐंद्रिय विषय जितने हमारे वश में होते जाते हैं, उतनी हम आध्यात्मिक उन्नति करते जाते हैं। यदि दवाई अधिक मात्रा में ली जाए तो वह विष बन जाती है, ऐसे ही विषयों का अधिक सेवन किया जाए तो वे विष बन जाते हैं। छोटी-छोटी बातों को लेकर आज हम दुखी होते हैं। जो व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत है, वह छोटी-छोटी बातों से दुखी नहीं होता। वह इन सबके मोह से परे हो जाता है।

जो संसार से मोह रखते हैं वे अंधकार में हैं, पर जो अध्यात्म में मोह रखते हैं वे गहन अंधकार में हैं। अध्यात्म पर निर्भरता भी एक बंधन है, इस बंधन से भी जो व्यक्ति मुक्त हो जाता है वह वास्तविक रूप से आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करता है।

जो मनुष्य अपना कल्याण चाहे, उसको आध्यात्मिक योग करना चाहिए। अपने देहके भीतर जो स्थूल-सूक्ष्म कारण है उसका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना, जो सभीके भीतर है वही अध्यात्म है। अध्यात्म माने अपने शरीरमें, इन्द्रियोंमे, मनमें, अपनी आत्मामें इस शरीर के भीतर क्या-क्या है यह सब ठीक-ठीक अनुभव कर लेनेका, जान लेनेका नाम ही अध्यात्म योग है। यह सुख-दुख का जो चक्कर है वह कट जाये जैसे शरीरमें कभी रोग हो जाता है, कभी शोक हो जाता है। हम दुबले हो जाते हैं, हमारा मन कभी हर्ष से फूल जाता है और कभी दु:खसे दुबला हो जाता है। यह सब मनके रोग है। बाहरके साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिये इनके स्वरूपको ठीक-ठीक जान ले तो सुख-दु:ख दोनों भी नष्ट हो जायेंगे। जैसे आकाशके दो रूप होते हैं, एक तो रातमें अन्धेरा होनेपर, दूसरा दिनमें प्रकाश होनेपर। किन्तु न तो अन्धेरा आकाश का रूप है, और न ही उजाला आकाश का रूप है। प्रसन्न, निर्मल और निर्वाचन का नाम ही सुख है और उसका विपरीत रूप काम, क्रोध, लोभ ही दु:ख है। इसके सिवा दु:ख-सुख कहीं नहीं होता।

आध्यात्मिकता के बिना आदमी जीवन का सच्चा लक्ष्य पहचान नहीं पाता, भटक जाता है। उसके पास भौतिक सुख के कितने ही साधन क्यों नहीं हो जाएं, उनसे दुख नहीं मिटता। आध्यात्मिक उन्नति के बिना सुख, संभव नहीं।

अध्यात्म योग ही मनुष्यों के सर्वोत्तम कल्याण का साधन है। उसके अनुष्ठान से मनुष्यों के दु:ख एवं सुख दोनों का अत्यन्ताभाव हो जाता है।

मन में महान शक्ति है, ब्रह्माजी मन से ही इस चराचर-विश्व की रचना करते हैं। मन के संकल्प द्वारा ही श्रीविष्णु विश्व का पालन करते हैं और मन से ही समस्त सृष्टि का शंकरजी संहार करते हैं। जिसने मन को वश में कर लिया उसने जगत् को वश में कर लिया। भगवान को वश में कर लिया, वह सबसे बड़ा हो गया। जो स्वयं, मन के वश में हो गया-वह तृण के आधीन हो गया। छोटे-से-छोटा हो गया-विषयों का दास बन गया। मन की शक्ति का पारावार नहीं। इतना शक्तिशाली मन हमारे पास रहने पर भी हम दुर्बल दुखी क्यों बने हैं? इसलिये कि हमने उसे विषयों में फँसा रखा है। बिना संयम के उसे इधर-उधर छोड़ रखा है। उसका निरोध-करके उसके गले में रस्सी बाँधकर-एक नियतस्थान पर स्थिर नहीं रखा है। जो गाय खूँटे पर बँधी है, समय पर दूध देती है, उससे दही बनता है दही से मक्खन मट्ठा होता है- मक्खन से घृत बनता है और यज्ञ-याग होते हैं, भगवत्-प्रसाद बनता है, सबकी तृप्ति होती है, बछियाँ बछड़े होते हैं, वंश बढ़ता है, समस्त सुख देती हैं। उसी गौ को हमने स्वतन्त्र छोड़ दिया- वह दूसरों के खेत चरती है, खेत वाले गाली देते हैं, शाप देते हैं, अपयश होता है, दूध-दही नहीं देती, दु:ख-ही-दु:ख है। ठीक इसी तरह संयम में रखा मन, एक लक्ष्य पर बँधा हुआ मन महान् बलवान हो

जाता है। वह जो चाहे कर सकता है। चित्त की बिखरी वृत्तियों के निरोध करने का नाम ही तो योग है। चित्त की वृत्तियाँ यथाभिमत-ध्यान से निरुद्ध होती हैं। जो प्रिय है, इष्ट हो उसी में सर्वात्यभाव से मन लगा देने का नाम योग है। कोई इस मन को भगवत-प्रतिमा में लगाते हैं कोई मन्त्र-जप में, कोई धर्म में, कोई प्राण में।

जो योग के द्वारा काल को जीत लेते हैं वे चाहे जब तक शरीर धारण किये रहें वे देश, काल, अवस्था के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। सावधानीका नाम ही साधना है।

अध्यात्म मार्गमें चलनेवाले जिज्ञासुका पहला लक्षण यह है कि वह दुष्टको छोड़कर संसारकी और कोई वस्तु नहीं चाहता। मनुष्यके परम कल्याण का साधन अध्यात्म योग ही है, जिसमें दु:ख और सुख दोनोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। अध्यात्मयोग अर्थात भीतर देखना। अपनी भलाई चाहते हो तो भीतरकी ओर देखो। इससे आपका दुहरा लाभ होगा। पैसेकी प्राप्ति लाभ नहीं है। मुकदमा जीतना या राग मिटना भी लाभ नहीं है। लाभ है अपने भीतर बैठ जाना।

शरीर निरोगी रहे, दीर्घायु प्राप्त हो, शरीर वृद्ध अवस्था में भी सबल रहे, मन प्रसन्न चित रहे, कार्यक्षमता बनी रहे इन सबके लिये योग साधना अनिवार्य है।

योगयाग-विधि से कोई सिद्धि नहीं होती। व्यर्थ ही उपाधि और दंभ बढ़ता है। योगशास्त्र झूठा नहीं है, सिद्धियाँ भी झूठी नहीं है; पर आत्मप्राप्ति के साधन में उनका कोई उपयोग नहीं है, प्रत्युत वे विघ्नस्वरूप ही हैं। भागवत-धर्म में योगसिद्धि का कोई प्राधान्य नहीं है। योग की कवायत से भगवान् नहीं मिला करते।

मनुष्य से देवत्व की और विकासोन्मुख करने के चार साधन है- सद्विचार, सद्ग्रन्थ, सत्संग व सत्कर्म। इनमें से किसी एक की भी साधना अन्य तीन की प्राप्ति का सहज साधन है।

समत्व ही योग कहलाता है अर्थात हानि-लाभ, सुख-दु:ख आदि में सम भाव रखना, विचलित न होना ही योग है। योग तो बहुत खाने वाले का, न बिल्कुल न खाने वाले का, न बहुत शयन करने के स्वभाववाले का और न सदा जागनेवाले को ही सिद्ध होता है।

जितेन्द्रिय को ही ईश्वर प्राप्ति के कठिन मार्ग पर चलना चाहिए। ईश प्राप्ति की साधना का मार्ग इतना कठिन है कि उस पर जीवित रहकर नहीं चला जा सकता। इस मार्ग पर तो वही चल सकता है जिसने जीते जी स्वयं को मार लिया है। अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटा लिया है। जो इच्छाओं का दास है, वह साधक नहीं हो सकता।

आज व्यक्ति साधना के अंतर (अंदर) में जाने की कोशिश नहीं करता है और न अंतर को जानने की कोशिश करता है। जिसने साधना में प्रवेश किया, उसका जीवन सार्थक हो गया है।

साधक के प्रकार - १) पत्थर के समान- कितना भी भिगाओ वह सूखा ही रहेगा। (बेअसर) २) गेहूं-चना-बाजरी के खेती के समान-समय के साथ (जैसा मौसम+वैसी फसल) ३) रेनकोट (बरसाती) के समान- बाहर से गीला- अंदर से सूखा (प्रदर्शनीय) ४) नीम-आम के वृक्ष समान- एकदम गहरा। चाहे कितना भी बड़ा तूफान- आंधी आ जाये परन्तु वह टस से मस भी नहीं होता है। वह खुद ही जमीन से पानी खींच लेता है। सिंचने की जरूरत ही नहीं पड़ती है।

तूने स्थान परिवर्तन बहुत किया परन्तु स्वभाव परिवर्तन करना जरूरी है। तूने आज तक साधना बहुत की परन्तु नौकर बन कर। अब तू मालिक बन कर साधना करना शुरू कर। मालिक बनेगा तभी टिकाकर रखेगा। मालिक अपनी वस्तु को टिकाकर रखता है जबकि नौकर ध्यान नहीं रखता है।

साधक प्रत्येक दिवस के अंत में विचार करे कि मैंने क्या सत्कर्म किया है और क्या नहीं किया है। साथ ही यह भी विचार करे कि वह कौन सा कार्य है जिसे क्षमता होते हुए भी करने से वंचित रहा हूं ?

विवेकशील मन हमें साधना की राह पर आगे बढ़ाता चलता है - व्यावहारिक क्षेत्र में कौन सी चीज कितनी सार्थक है, इसका विचार विवेकशील मन ही कर सकता है। खाना-पीना और शांति से रहना भी तो मानसिक तृप्ति के लिए ही होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि तर्कशास्त्र भी मननशीलता के ऊपर ही निर्भर है, चाहे किसी मतवाद की बातें क्यों न लें। वर्तमान परिवेश में मनुष्य के मन की परिस्थिति को ध्यान में रखकर एक आध्यात्मिक व्यक्ति ही एक समुचित दर्शन दे सकता है। अर्थात नियमित साधना से आगे बढ़ने से ही मनुष्य आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आनंद मार्ग ऐसा ही एक दर्शन है। इसलिए अध्यात्म विद्या की आराधना में जो सुख मिलेगा, वह नित्य सुख है और उसे ही आनंद कहते हैं। अनित्य वस्तुओं से आनंद नहीं मिलता। अनित्य वस्तुएं आएंगी, कभी हंसाएंगी या कभी रुलाएंगी। अनित्य जगत में चाहे कितनी भी प्रिय वस्तुएं पाओ, एक दिन तुम्हें कंगाल बनाकर और रुलाकर चली जाएंगी। लेकिन नित्य वस्तु कभी तुम्हें नहीं रुलाएगी। वह नित्य है, अपरिणामी है और अपरिवर्तनशील सत्ता है।

यम कहते हैं, हे नचिकेता, तुम्हारे सामने ब्रह्मधाम का द्वार खुल गया है। तुमने विनाशशील तथा विनाशरहित दोनों प्रकार की वस्तुओं का ज्ञान अर्जित किया है। मननशीलता की वृद्धि के साथ-साथ जीव खंड सुख से बृहत सुख की ओर अर्थात आनंद की ओर अग्रसर होता है। उस समय उतना ही वह शरीरगत सुख छोड़कर, मानसिक सूक्ष्म सुख की ओर झुकता है। देश प्रेम या ऐसे ही अनेक सूक्ष्म सुखों के लिए मनुष्य अपनी देह को उत्सर्ग करने में जरा भी नहीं हिचकता। ये मनुष्य के उन्नत मन का लक्षण है। आनंद मार्ग के बताए अष्टांग योग की साधना के द्वारा साधक धीरे-धीरे अपनी छिपी हुई मनन शक्ति को जगा सकता है और उस उन्नत मन की सहायता से अंत में आत्मिक स्थिति पा सकता है। इस आत्मिक स्थिति में ही उसे सच्चा आनंद मिल सकता है। प्राकृत ज्ञान के द्वारा यह नहीं मिल पाएगा, मोटी-मोटी पोथियां पढ़कर ब्रह्मज्ञान का अर्जन नहीं होता। निष्ठा जगाने की इच्छा करो। निष्ठा जग जाने से भगवत कृपा अवश्य होगी। इस भगवत कृपा का लेश मात्र प्राप्त हो जाने पर भी मनुष्य का अपने स्थूल शरीर से मैं का बोध हट जाता है और यह विवेक ही उसे ब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित करता है। साधना मार्ग में सबसे बड़ी बात है निष्ठा। निष्ठा रहे तो भगवत कृपा अवश्य होगी।

उपयुक्त साधना के द्वारा ही मनुष्य इस देहगत आसक्ति तथा अन्य तमाम तरह की आसक्तियों को जीत सकता है। अष्टांग योग साधना हमारे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रूप को जगा सकती है। इस साधना के प्रभाव से मनुष्य की सब तरह की आसक्तियों का बंधन लुप्त होते चले जाते हैं। नियमित साधना के द्वारा साधक परम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होता है।

विकास क्रमश: ही सम्भव है। बीज अंकुर बनता है, पौधा पेड़ बनता है और फल-फूलों से लद जाता है। यह सब परिणति बीज बोने की ही है। आध्यात्मिक और भौतिक, उभय पक्षीय प्रगतियों का बीज तत्व है सभ्यता। यह बहिरंग है। समयानुसार जब यह अंतरंग क्षेत्र में प्रवेश करती है तो सुसंस्कारिता कहलाती है। सिद्धान्त रूप में तो यह भी कहा जाता है कि सुसंस्कारिता को हृदयंगम करने के उपरान्त सभ्यता की रीति-नीति भी व्यवहार में मिलने लगती है। परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव बतलाता है कि जनसामान्य में सुसंस्कारिता के प्रति उमंग पैदा करने के लिए सभ्यता के बहिरंग सूत्रों को ही माध्यम बनाना पड़ता है। अध्यात्म का एकमात्र उद्देश्य चेतना को उत्कृष्टता अपनाने के लिए प्रशिक्षित

करना है। जप-तप, ध्यान-धारणा, व्रत-उपवास, आसन-प्राणायाम जैसे शरीरगत प्रयोग और अभ्यास भी करने पड़ते है। क्रिया के आधार पर मानस प्रशिक्षण अधिक सरल, संभव और स्वाभाविक है।

योग से आध्यात्मिकता को हटा लें तो वह योगा बनकर रह जाता है - योग और योगा में बड़ा भेद है। आजकल हम योगा को ही योग समझ रहे हैं, जबकि योग तो शरीर, मन व बुद्धि को स्वस्थ करते हुए, आत्मस्वरूप तक पहुंचने का तरीका है। इसमें हम अपनी चेतना की सबसे ऊंची स्थिति से जुड़कर, जीवन जीने लगते हैं। इस प्रकार का जीवन, पूर्णता से भरा होता है। योग और आध्यात्मिकता, ये दोनों पर्यायवाची शब्द ही हैं। गीता, अध्यात्म का प्रमुख शास्त्र है। गीता के सभी अठारह अध्यायों के नाम किसी न किसी योग पर ही रखे गए हैं। यदि योग से आध्यात्मिकता को हटा दिया जाए, तो योग का कोई वजूद नहीं रह जाता। योग को यदि शरीर मानो तो अध्यात्म उसका मस्तिष्क है। जैसे बिना मस्तिष्क के शरीर बेकार है वैसे ही बिना अध्यात्म के योग, योगा हो जाता है। योग तो तन-मन को स्वस्थ रखते हुए, मुक्ति मार्ग की साधना है।

जब योग भारत से पाश्चात्य देशों में गया, तब वह योगा हो गया। जैसे राम, रामा और कृष्ण कृष्णा हो गया। वहां केवल शारीरिक पक्ष को मजबूत और लचीला बनाने के लिए योगा का प्रचलन हुआ। धीरे-धीरे योग से अध्यात्म निकल गया और योग ने पूरी तरह योगा का रूप ले लिया। आज अधिकतर जो योगा जानते हैं, उनको अध्यात्म की पूरी समझ नहीं और जो अध्यात्म जानते है, उनको योग के शारीरिक पक्ष की समझ नहीं। इस प्रकार हमने, योग को दो भागों में बांट दिया है, जबकि योग जोड़ने के लिए है, बांटने के लिए नहीं।

योगा को फिर से योग बनाने के लिए योग शिक्षकों को ही आगे आना चाहिए। पाश्चात्य देशों में अब योग के आध्यात्मिक पक्ष की ओर भी रुझान बढ़ रहा है। जब भी कोई आपके पास योग सीखने आए तो उसका प्रशिक्षण शुरू करने से पहले पहले पूछ लें कि वह योग क्यों सीखना चाहता है? हो सकता है कोई कहे फलां बीमारी को दूर करने या बीमारी होने का डर दूर करने के लिए या शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए। ऐसे में उसकी बीमारी का इलाज करते हुए, उसे आध्यात्मिकता की जानकारी भी देनी चाहिए। अन्यथा हम योग के मूल स्वरूप से भटक जाएंगे।

हम आसनों के अभ्यास से शरीर को स्वस्थ और लचीला बना सकते हैं, लेकिन योगी नहीं हो सकते। अगर शरीर को लचीला बनाना योग है तो फिर तो सबसे बड़े योगी जिमनास्ट वाले हो जाएंगे, क्योंकि उनमें संतुलन, लचीलापन और फुर्ती योग शिक्षक से ज्यादा होती है। योग शिक्षकों से यह भी अनुरोध है कि वे योग का उच्चारण, योग ही करें, योगा नहीं, क्योंकि योग शब्द में आध्यात्मिकता झलकती है और योगा में स्थूलता। योगा से कभी भी भारत विश्व गुरु नहीं बन सकता, लेकिन योग की आध्यात्मिकता से भारत हमेशा विश्व गुरु ही रहेगा।

आध्यात्मिक यात्रा का सहज मार्ग शाकाहार से निकलता है

आध्यात्मिक साधना हमारे चित्त की सफाई का कार्य करती है। साधना में हम ऐसा कुछ नहीं करते, जिससे मन में हलचल पैदा हो। यदि मन अशांत रहेगा तो साधना में रुकावट आने लगेगी। मन के अशांत होने के अनेक कारणों में हिंसा एक बड़ा कारण है। इसीलिए महर्षि पतंजलि, बुद्ध, महावीर, आदि सभी ने आध्यात्मिक साधना में हिंसा को सबसे बड़ा शत्रु माना है। अत: जिन कारणों से हिंसा हमारे मन में आती है उन्हें रोकना जरूरी हो जाता है।

मांसाहार में, किसी जीव को मारकर उसका मांस खाना हिंसा में ही शामिल होता है। मांसाहार के लिए किसी जीवधारी

प्राणी को मारा जाता है और उस जीव को मारते समय उसके तड़पने का भाव भी मांस में आ जाता है। फिर उसका सेवन करने से व्यक्ति के अंदर हिंसक वृत्ति पैदा होने लगती है। कहा भी गया है, जैसा खाये अन्न, वैसा होए मन। इस प्रकार मांसाहारी के चित्त में हिंसा के संस्कार बनने लगते हैं। नकारात्मक संस्कार हमेशा प्रबल, भारी व बड़े ताकतवर होते हैं, जो जल्दी से नहीं जाते। चित्त में इन हिंसा के संस्कारों के कारण मानव कभी भी शांत नहीं रह पाता। ऐसे अशांत चित्त में आध्यात्मिकता कभी नहीं टिक सकती। इसलिए आध्यात्मिकता की यात्रा में यदि मांसाहार से दूर रहा जाए तो मन आराम से और जल्दी सधने लगता है।

वैसे भी दुर्गंध वाले आहार को खाने से व्यक्ति में तमो गुण बढ़ता है। मांसाहार भी दुर्गंध से भरा होता है, जिसे घी-मसालों और अनेक पाक-विधियों से छुपाया जाता है। तमोगुणी होने के कारण मांसाहार व्यक्ति में आलस्य, क्रोध, चिड़चिड़ापन, निराशा, द्वेष, वासना जैसे नकारात्मक भाव पैदा हो जाते हैं जो एक शाकाहारी की अपेक्षा कई गुना ज्यादा होते हैं। ऐसे व्यक्ति का अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है।

असलियत में अध्यात्म समर्पण का मार्ग है। यदि लगता है कि आपको मांसाहार ज्यादा पसंद है और आप उसको छोड़ नहीं सकते, तो शायद अभी आध्यात्मिकता के लिए आपका इरादा उतना प्रबल नहीं हुआ है। जिस दिन अपने से जुड़ने का भाव आपके अंदर मजबूत हो जाएगा, उस दिन आपसे मांस खुद ही नहीं खाया जाएगा। आप अपने अध्यात्म मार्ग को बल देना शुरू करें, मांस की परवाह न करें। एक दिन आप पाएंगे कि मांसाहार की इच्छा स्वत: समाप्त हो गई है। इसलिए अध्यात्म के सभी शास्त्र सात्विक भोजन अर्थात शाकाहार की ही बात करते हैं। शाकाहार से शरीर व मन हल्का तो बना ही रहता है, व्यक्ति मांसाहार के चलते पैदा होनेवाले अनेक रोगों से भी बच जाता है। सभी जीवों के प्रति दया का भाव हमारे अंदर बढ़ने लगता है जिससे हम प्रेम में ही बने रहते हैं।

आध्यात्मिक साधना करने का अधिकार हर जीव को है। हर जीव परम पुरुष की संतान है। हर जीव के पिता परम पुरुष हैं, इसलिए मनुष्य में ऊंच-नीच का भेद रहना ही नहीं चाहिए। जो जात-पांत मानते हैं वे वास्तव में परम पुरुष की बात की उपेक्षा कर रहे होते हैं, उसे नकार रहे होते हैं। एक ही पिता के पुत्र-पुत्रियों की अनेक जातियां नहीं हो सकती हैं। सही अर्थों में जो परम पिता को मानता है वह जात-पांत को नहीं मान सकता।

अगर जीना है, आगे बढ़ना है तो कोई एक रास्ता चुनना होगा। परम पुरुष को मानो या जातपांत को। जो दोनों को मानता है, वह असल में ढोंग कर रहा होता है। वह खुद को भी छलता है और समाज को भी। आजकल ऐसे लोग बढ़ गए हैं।

साधना मार्ग में नियम है कि एक को पकड़े रहो, एक के पीछे दौड़ते रहो, एक से मुहब्बत करो। एक बार हनुमान से पूछा गया था कि परम पुरुष के तो अनेक नाम हैं। तो तुम अनेक नामों का व्यवहार क्यों नहीं करते हो। माना कि राम तुम्हारे इष्ट हैं पर और नामों का भी तो महत्व है। इस पर हनुमान का उत्तर था- मैं जानता हूं कि दार्शनिक विचार के अनुसार श्रीनाथ अर्थात नारायण और जानकीनाथ अर्थात राम इन दोनों में कोई अंतर नहीं हैं। दोनों एक हैं यह अच्छी तरह मालूम है मगर मैं अनेक के पीछे, अनेक नामों के पीछे दौड़ना नहीं चाहता हूं। मैं एक नाव पर रहना चाहता हूं और मेरे लिए दुनिया में सिर्फ राम ही हैं और कोई नहीं है। मैं और किसी को नहीं जानता हूं। और किसी को नहीं मानता हूं। इसलिए साधना मार्ग में मनुष्य को एक को लेकर रहना है। उस पर ध्यान लगाना है। उसके प्रति समर्पित हो जाना है। कहा भी

गया है कि एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाए। अगर परम पुरुष कहते हैं, तुम मूर्ख हो, तुम पतित हो, मैं तुमसे मुहब्बत करना नहीं चाहता हूं, तो तुम कहो हां, परम पुरुष, मैं हीन हूं, मैं पतित हूं मगर हूं तो तुम्हारा ही। तुमचाहो या नहीं मैं तुमसे मुहब्बत करता रहूंगा।

साधना का क्रम तथा आध्यात्मिक साधना मानसिक स्तर के अनुसार होती है। जैसे जीव-जगत में काममय कोष थोड़ा सा है और कुछ नहीं है। भूख-प्यास पेड़-पौधे समझ लेते हैं, उससे अधिक नहीं। अन्य जीव जंतुओं में मन थोड़ा सा उन्नत है और कौन प्यार करता है, कौन निरादर करता है यह सब पशु-पक्षी कुछ हद तक समझ लेते हैं अर्थात् केवल खाना-पीना नहीं, उसके अतिरिक्त और चीजों को महसूस करने की क्षमता उनमें है। यहीं मनुष्य और पशु-पक्षी में फर्क है। मनुष्य के पास एक उन्नत मन है। वह अपना भला-बुरा सोच सकता है। मनुष्य अच्छी तरह जानता है कि उसका जीवन परम पुरुष पर केंद्रित है। साधना ही वह राह है जो साधक को उसके साध्य तक ले जाती है।

मनुष्य के साथ परमपुरुष का जो संपर्क है, इसमें उन्हें कुछ कहकर तो बुलाना पड़ेगा। उन्हें बुलाने का जो माध्यम है, वह है इष्ट मंत्र। इष्ट मंत्र बहुत सरल, सीधा, सहज भाषा में होना चाहिए। कारण उसी से तो उन्हें बुलाया जा सकता है। परमपुरुष की सबके साथ आत्मीयता है। वह तो बिल्कुल घर के हैं, किंतु उन्हें बुलाने का कोई शब्द तो होना चाहिए। प्रत्येक कार्य करते समय हमें याद रहे कि उनकी दोनों आंखें हमें देख रही हैं। इसे याद न करने पर इष्ट मंत्र को व्यवहार करने की सुविधा नहीं रह जाती। उस समय किस शब्द का हम व्यवहार करते हैं- बाप रे। यही तो हुआ गुरुमंत्र। अरे बाप रे। दो आंखें मुझे देख रही हैं, मुझे छोड़ेंगी नहीं।

साधना शब्द संस्कृत के साध् धातु से आया है। अर्थात् आपका एक लक्ष्य है और उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए आप प्रयत्न कर रहे हो। तुम्हारा जो लक्ष्य है- संस्कृत में उसे कहते हैं साध्य और लक्ष्य तक पहुंचने का जो प्रयास होता है, वह है साधना। जैसे तुम कोलकाता से वर्धमान जाओगे, इस क्षेत्र में वर्धमान तुम्हारा साध्य हो गया और वर्धमान जाने के लिए ट्रेन, बस या पैदल यात्रा कर सकते हो। ये प्रयास हैं साधना। परमपुरुष जीव के लक्ष्य हैं, तो परमपुरुष जीव के साध्य हुए। उन तक पहुंचने का जो प्रयास है, वह हुई साधना। मान लो कोई गायक गाते-गाते उच्च स्तर पर पहुंच गया। यदि वह बाजा बजाता है तो उसके हाथ और यदि गाता है तो उसके गले का रियाज साधना हुई। इसीलिए कहा गया है, किसी लक्ष्य या साध्य तक पहुंचने की चेष्टा साधना है। आध्यात्मिक साधना क्या है? वह जो परमपुरुष है, जो मनुष्य के लक्ष्य और साध्य हैं, उन तक पहुंचने का प्रयास आध्यात्मिक साधना है। इसलिए साधना तो सभी मनुष्यों को सभी क्षेत्रों में करनी ही होगी।

परमपुरुष हमारे ध्येय हैं, हम परमपुरुष के पास पहुंचने की चेष्टा कर रहे हैं, अर्थात साधना कर रहे हैं। परमपुरुष का और एक नाम है, लीलामय। वह जगत को अपनी लीला दिखाता है। परमपुरुष को लीला करना, खेलना-खिलाना बहुत अच्छा लगता है। इसलिए आप जो चाह रहे हो वह तो देंगे, किंतु थोड़ा खेल-खेलाकर, थोड़ा घुमा-फिराकर। अवश्य ही आंतरिक रूप से आप जो चाहते हो ठीक वही पाओगे। कारण यह है कि यदि आपको खेल न खेलाएंगे तो पृथ्वी रहेगी कैसे? मनुष्य यदि दौड़ा न करे, हाय क्या होगा, क्या होगा न करे तो पृथ्वी रहेगी कैसे? यह जो क्या होगा, क्या होगा, इसके बाद क्या होगा, आगे क्या होगा, यही तो पृथ्वी का माधुर्य है।

मनुष्य के सामने एक लक्ष्य है। वह उस लक्ष्य की ओर प्रेरणा के आधार पर चलता है। वह प्रेरणा है, सत्वगुण। तमोगुण बढ़ जाए तो वह बाधा उत्पन्न करता है। धरती की जो आकर्षण शक्ति मनुष्य की प्रगति में अवरोध पैदा करती है, वही तमोगुण है। बाधा के मार्ग में आने से मनुष्य बार-बार गिरता है। किंतु इसे तमोगुणी बाधा के कारण ही मनुष्य में चेष्टा की प्रवृत्ति भी जागती है। बाधा नहीं रहने से चेष्टा भी नहीं बढ़ती है।

जब बच्चा चलना सीखता है तो उस पर भी दुनिया की तमोगुणी शक्ति बाधा देती है, वह बार-बार गिर जाता है। इससे एक लाभ होता है कि बच्चा जिद पकड़ लेता है। इस जिद के कारण ही वह चलना सीख लेता है। हर कर्म में ऐसा होता है। बाधा आते ही मन जिद पकड़ लेता है कि नहीं, मैं हार नहीं मानूंगा। आज यह तमोगुणी शक्ति प्रत्यक्ष रूप से विरोध करती है। यह बात ठीक है, किंतु अप्रत्यक्ष रूप से मदद भी करती है, क्योंकि बाधा से जिद पैदा होती है और इसमें आपकी तरक्की होती है। यह कहना उचित है कि बाधा विरोधी शक्ति नहीं है, बल्कि वह विरोधिनी शक्ति के रूप में मदद करती है। बाधा आपकी सहायता के लिए आती है, ताकि तुम आसानी से अपने लक्ष्य का मार्ग तलाश सको। आपकी सहायता के लिए ही इसका आगमन होता है।

साधना करोगे तो अनेक विरोध होंगे। सास विरोध करेंगी, श्वसुर विरोध करेंगे। इससे तुम्हें बाधा हो सकती है। घर के लोग विरोध कर सकते हैं। संभव है, सास के डर से अच्छी तरह साधना नहीं कर सको। यह बाहरी विरोध है। बहुत ऐसे लोग हैं जो साधना का विरोध करेंगे, वे कहेंगे साधना करके क्या होगा? इससे कुछ लाभ नहीं होगा। इस विरोध से तुम्हारे मन में चिढ़ पैदा होगी और इससे तुम और अधिक साधना करोगे।

मनुष्य जब साधना करता है, तब मन में तमोगुणी बाधाएं उत्पन्न होती हैं। जिस चीज को और जिस विषय को आसानी से छोड़ सकते हो साधना में वे ही बाधा के रूप में उपस्थित हो जाते हैं। इससे आपको लाभ होगा। आप जिद पकड़ लोगे कि मैं अवश्य करूंगा। यह है आंतरिक बाधा। जिन बातों के संबंध में कभी सोचते भी नहीं थे, वे भी साधना के समय मन में उठती हैं। यह बाधा है। बाधा का आना एक अच्छी सूचना है। बाधा के आने से समझोगे कि साधना ठीक तरीके से हो रही है, इसलिए बाधाएं आ रही हैं। साधना ठीक रूप से नहीं होने पर बाधाएं नहीं आती हैं। साधना के समय यदि बाह्य बाधा हो, सामाजिक, पारिवारिक या राष्ट्रीय बाधा या मानसिक बाधा हो तो समझ लो कि साधना ठीक से चल रही है। बाधा के नहीं आने से समझना चाहिए कि साधना ठीक से नहीं चल रही है।

योग जीवन जीने की कला है इसे समय रहते अपनाएं - योग जीवन जीने की कला है। शुरुआत चाहे आसन से करें या ध्यान से, योग वह तरीका है जिसके जरिए हम अपने जीवन को नई दिशा दे सकते हैं। इंसान सिगरेट पी सकता है, पान खा सकता है तो योग करने में हिचक क्यों? जब हम एक बुरी आदत डालकर अपनी आयु कम कर सकते हैं तो एक अच्छी आदत डालकर आयु को बढ़ा भी सकते हैं। विज्ञान भी मानता है कि योग मानव शरीर को निरोग रख सकता है। लेकिन आमतौर पर लोग योग तब अपनाते हैं जब होम्योपैथी से लेकर एलोपैथी चिकित्सा तक आजमा चुके होते हैं। तब तक रोग बढ़कर पचास प्रतिशत तक हो चुका होता है। फिर इस लाइलाज बीमारी के खौफ से पैदा तनावों के कारण बीमारी बढ़कर कहीं से कहीं पहुंच जाती है।

कई मामलों में बीमारी के भयावह रूप धारण कर लेने के बावजूद जब मरीज योग की शरण में आता है तो उसकी नब्बे

फीसदी बीमारी चालीस दिन में ठीक हो जाती है। इस संदर्भ में मधुमेह के कुछ रोगियों के मामले गौर करने लायक हैं। परमहंस स्वामी सत्यानंद सरस्वती द्वारा स्थापित बिहार योग विद्यालय ने उड़ीसा के बुरला मेडिकल कॉलेज के सहयोग से डायबिटीज के ऐसे मरीजों पर अनुसंधान किया था जो चालीस वर्षों से इंसुलिन का इंजेक्शन ले रहे थे। दरअसल, योग को पहले साधु-संतों की साधना का माध्यम ही माना जाता था। स्वामी जी ने बिहार में मुंगेर के एक छोटे से कमरे से योग विद्या का प्रचार शुरू किया। धीरे-धीरे यह विद्या विश्वव्यापी हो गई।

योग उपचार के बाद एक दशक तो क्या, उससे भी ज्यादा समय बीत जाने के बावजूद उनमें से किसी रोगी ने फिर से डायबिटीज की शिकायत नहीं की। जीवन में किसी न किसी कारण तनाव रहता ही है। यही आगे चलकर गंभीर बीमारियों का रूप ले लेता है। इसका निराकरण योग के जरिए बेहद आसान है। रोज आधा घंटे तक योग निद्रा का अभ्यास करने से मानसिक अशांति से छुटकारा मिल जाता है।

बर्लिन में हुए एक सम्मेलन में दुनिया भर के मनोवैज्ञानिक पहुंचे थे। वहां भागलपुर मेडिकल कॉलेज के मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ. इंद्रभूषण ने योग निद्रा पर व्याख्यान दिया। मनोवैज्ञानिक इतने प्रभावित हुए कि सम्मेलन में प्रस्ताव पारित करके मानसिक रोगियों को दवा देने के बदले योग निद्रा कराने का फैसला किया गया। अनुसंधानों से पता चल चुका है कि आसन और प्राणायाम दमा, डायबिटिज, गठिया, पेट और हृदय संबंधी रोग, यहां तक कि कर्करोग और एड्स जैसे असाध्य रोगों के निवारण में भी मददगार हैं।

आज के जीवन की जरूरत और भविष्य के लिए संस्कृति है योग - आसन, प्राणायाम और योग की कुछ अन्य क्रियाएं ही संपूर्ण योग नहीं हैं। योग की शुरुआत मनुष्य की आत्मा से नहीं, बल्कि मन से होती है। इसलिए योग को तीन वर्गों में बांटा गया है- शारीरिक योग, मानसिक योग और आध्यात्मिक योग क्रिया योग है। स्वामी जी हठ योग को जो विस्तार देते हैं, उसी से पता चल जाता है कि आज लोगों को योग के जरिए स्वस्थ बनाने के लिए जो योगासन बताए जाते हैं, वे तात्कालिक लाभ तो दिला सकते हैं, पर उनसे शरीर का पूरी तरह निरोग होना असंभव है।

आज आमतौर पर योग की शुरुआत आसन और प्राणायाम से की जाती है। हठ योग की शुरुआत शुद्धिकरण से होती है और शुद्धिकरण होता है षटकर्म से। यह विधि ही वैज्ञानिक है और मानसिक स्वास्थ की प्राप्ति में सहायक है। षटकर्म में छह प्रकार के कर्म होते हैं, जिनमें नेति, धौति और वस्ती शरीर के विकारों को दूर करते हैं। उनके बाद होते हैं कपालभाती, नौलि और त्राटक। इनके उद्देश्य होते हैं क्रमश: मन की विक्षिप्त अवस्था को दूर करना, मन को शांत करना तथा स्थिर बनाना। हठ योग में आसन का नंबर इसके बाद आता है। प्राणायाम तो तीसरे नंबर पर है।

योग का कार्य मनुष्य के जीवन व प्रतिभा का उत्थान करना है। इसलिए योग को केवल एक क्षेत्र में सीमित नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा करके भले ही शरीर स्वस्थ हो जाएगा। पर प्रतिभाओं, मन की शांति और मन के विवेक से दूर ही रहना होगा। यदि हम केवल मन पर ही काम करेंगे तो शरीर अनियंत्रित हो जाएगा। इंद्रियां भागती रहेंगी। दादा गुरु स्वामी शिवानंद सरस्वती ने परिभाषित किया था कि आसन और प्राणायाम मनुष्य को कितना और किस अनुपात में करना चाहिए। इस परिभाषा को विकसित किया था हमारे गुरु स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने। आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध पर प्रकाशित अपनी पुस्तक में उन्होंने कहा था, योग वर्तमान युग की अनिवार्य आवश्यकता और आने

वाले युग की संस्कृति है।

आज योग हमें एक बहुमूल्य आध्यात्मिक विरासत के रूप में प्राप्त हुआ है। यद्यपि योग का मुख्य विषय आध्यात्मिक पथ के उच्चतम शिखर पर चढ़ना है, तथापि यौगिक अभ्यासों से उनके आध्यात्मिक उद्देश्यों के अलावा हर किसी को प्रत्यक्ष एवं सुनिश्चित लाभ प्राप्त होता है।

इसलिए जो योग का उपयोग अपनी समस्याओं के निदान के लिए ही करते हैं, वे दृष्टि में मात्र योगाभ्यासी हैं। जो योग द्वारा निर्दिष्ट लक्ष्यों को पाने का प्रयास करते हैं, वे योग साधक हैं। जो योग नियम को दैनिक जीवन में आत्मसात करते हैं उनके लिए यह एक जीवनशैली है और जिनके जीवन में शांति, आनंद तथा सत्य साकार हो उठे, वे यौगिक संस्कृति के साक्षात संदेशवाहक हैं।

धर्म मनुष्य को जड़ बनाता है, पर अध्यात्म जीने का स्वाद बताता है। धर्म व्रत का आग्रह करते हैं, लेकिन ताओ कहते हैं कि होश पर जोर होना चाहिए। यदि हम धर्मों का पालन करें तो भोजन का आनंद नहीं ले सकते और ऐसी स्थिति में पूर्ति के लिए आदमी अधिक खाता है। लेकिन अगर हम स्वाद का मजा लेना सीखें तो भोजन भी आनंददायी बन जाएगा। तब हम कम खाएंगे क्योंकि अधिक खाने की आवश्यकता न रही। धीरे-धीरे, हर ग्रास का स्वाद लेकर खाएंगे और इस तरह खाना ही ध्यान बन जाएगा। अध्यात्म न तो स्वाद के विरुद्ध है और न ही इंद्रियों के। संवेदनशील होने का अर्थ है- जीवंत होना और प्रज्ञावान होना। लेकिन धर्म हमें जड़ कर देते हैं क्योंकि वे स्वाद के विरूद्ध हैं। धर्म चाहता है कि हमारी जिव्हा संवेदनहीन हो जाए। अध्यात्म स्वाद के पक्ष में है।

हमें इंद्रियों की संवेदनशीलता का उपयोग करना आना चाहिए। अध्यात्म शरीर को मंदिर मानता है। इतने संवेदनशील, सुंदर और अद्भुत शरीर को जड़ करना परमात्मा का अपमान है। स्वाद का यंत्र परमात्मा ने ही हमें दिया है, यह हमारी ईजाद नहीं है। परमात्मा का दिया जो कुछ भी है, जितनी भी इंद्रियां हैं, उनमें एक तरह की लयबद्धता है।

जापान की झेन परंपरा में लोगों ने चाय पीने को भी एक ध्यान बना लिया है। सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि हमारा दृष्टिकोण क्या है। हम चाय भी ध्यानपूर्वक, एक-एक घूंट का स्वाद लेते हुए पी सकते है। इसकी सुगंध ले सकते हैं, इसे जी सकते हैं। तब चाय पीने की वह घड़ी प्रार्थना का क्षण होगी, चाय पीना एक दिव्य कार्य होगा। धार्मिकता में जीने का अर्थ गंभीर होकर जीना नहीं है, बल्कि होशपूर्वक जीना है।

परमात्मा का अपना स्वाद है। परंतु इसे अनुभव करने के लिए हमें अपनी संवेदनशीलता बढ़ानी होगी। उत्तेजना की इच्छा संवेदनशीनला को मार देती है। जब हम अधिक की मांग करते हैं तो हम अपनी इंद्रियों को मार डालते हैं। उत्तेजनाओं से दूर रहकर ही इंद्रियां शुद्ध हो सकती हैं। जिव्हारूपी जो इंद्रिय है, उसकी शुद्धि इस भाव से होती है कि जो कुछ भी आप खाते हैं, पहले उसकी सुगंध लें। सारा अस्तित्व दिव्य सुगंध से भरा हुआ है। सुगंध का अनुभव आपको सूक्ष्म बनाता है क्योंकि वह शांत और अनुत्तेजक होता है। जिस प्रकार फूल अपनी सुगंध बिखेरते हैं, वैसे ही हमारी आंतरिक गहराई दिव्य सुगंध से भरपूर है।

अन्न की शीतलता या गर्माहट को कुछ क्षण के लिए महसूस करें और फिर उसे प्रार्थनापूर्वक इस भाव से ग्रहण करें कि शीघ्र ही वह आपकी अस्थि-रक्त-मज्जा में दौड़ेगा। धीरे-धीरे आपको अपने होने में भी दिव्यता का अनुभव होने लगेगा

आप पाएंगे कि इस स्वाद और सुगंध की दिव्यता का संबंध अस्तित्व से है। यह अस्तित्व भी एक गुण की ही तरह है जो हमारे हृदय में केंद्रित है। यही हमारा होना है। यही हमारी चेतना है।

केवल उन्हीं बातों को सुनूंगा, जिसको सुनने से मन परमपुरुष की ओर बढ़ता जाएगा। केवल उन्हीं बातों को सोचूंगा, जिनको सोचने से मन परमपुरुष की ओर बढ़ता जाएगा। केवल उसी को मन की भावना का विषय बनाऊंगा, जिसकी भावना लेने से मन जड़ से चैतन्य की ओर बढ़ता जाएगा। बुद्धिमान मनुष्यों के लिए उचित है कि वह ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से मन में जो कुछ भी लेते हैं, ईश्वर भक्ति की भावना भी उसमें समेट लें।

ठीक उसी तरह कर्मेंद्रियों के द्वारा मनुष्य जो कुछ करता है, उनके प्रति यह भावना लेनी होगी कि वे सभी वस्तुएं परमात्मा के ही विशेष रूप हैं। गुरु-मंत्र के द्वारा मनुष्य ये सब काम करते हैं। साधक मन ही मन जो कुछ भावना लेंगे, उसके पहले मन ही मन गुरु-मंत्र का व्यवहार कर लेंगे। बाहर में जो वस्तु जगत के संपर्क में आएंगे, जो कुछ देखेंगे या संपर्कित होकर काम करेंगे, उसके ऊपर ईश्वर भावना का भाव लेंगे। उस अवस्था में जागतिक कर्म, कर्म नहीं और मानसिक भावना भी मानसिक भावना नहीं रह जाएगी। सभी आध्यात्मिक साधना हो जाएगी।

श्रवण, मनन और ध्यान से मनुष्य पुण्य अर्जन करता है। महापुरुषों के दर्शन या स्पर्श से भी पुण्य अर्जित होता है, क्योंकि मन कहता है कि मैं इस विराट महान व्यक्ति के संपर्क में आ गया हूं। यह भावना मन में लगातार बढ़ती रहती है। इसके कारण मन सुपवित्र होता रहता है जिससे मनुष्य का कल्याण होता है। उसी प्रकार महापुरुषों के स्पर्श से भी मन सुपवित्र होता है। इसलिए यह कहना संगत है कि महापुरुषों के दर्शन या स्पर्श से जीव की मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रगति होती है। किंतु जहां दर्शन या स्पर्श के बदले मन में भावना लेनी होती है, वहां क्या होगा? मन में जब भावना लेते ही हैं, तब दर्शन या स्पर्श शब्द अलग-अलग कहने की क्या आवश्यकता है?

श्रवण शब्द को धर्म प्रचार के लिए रखा गया है। लोगों के मन में सात्विक भाव जगाने के लिए श्रवण की आवश्यकता है। तुम जब कीर्तन करते हो, उससे केवल तुम ही आनंद पाते हो- ऐसी बात तो नहीं है। तुम्हारे मुंह से जो कीर्तन हो रहा है, वह जिस-जिस के कान में पड़ता है, उन सभी की प्रगति होगी। उनका भी कल्याण होगा।

दूसरा है मनन। शरीर के अंग नहीं काम करते, वास्तव में मन ही काम करता है। हाथ से चोरी करने का अर्थ है, मन चोरी कर रहा है। इसलिए मनन क्रिया के ऊपर अधिक जोर दिया जाता है। सत्संग या साधु संग के फलस्वरूप मन काफी समय तक अच्छी बातों को लेकर चिंतन करता है, जिसके फलस्वरूप मानसिक उन्नति होती है। मानसिक उन्नति का अर्थ है, पूरे मनुष्य की उन्नति। श्रवण मनन और मन में भावना लेने से मनुष्य सतर्क आध्यात्मिकता में निष्ठावान हो जाता है। ऐसे मनुष्य का कल्याण अनिवार्य है।

अपनी इच्छा को प्रभु की इच्छा में मिलाना मुक्ति की ओर बढ़ना है - परमशिव ने कहा है, मुझसे ही सब कुछ सृष्ट हुआ है। चना-मूंग को जल में भिगोकर रख देने पर अंकुर निकल आता है। ठीक उसी प्रकार अभी हमारे इस ब्रह्मांड में जो कुछ घट रहा है, वह परम पुरुष के विचारों का अंकुर ही है। आकाश, पाताल, पर्वत, समुद्र- ये सब अंकुर है। ज्ञान भी उसके मन का अंकुर हैं, छोटे-छोटे अंकुर।

पूरी सृष्टि परमपुरुष के चिंतन का परिणाम है। इस मन की कल्पना से मैंने जिन्हें बनाया है, वे सभी मेरे मन के भीतर ही

हैं, मन के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। चाहे जितना हाथ-पैर पटक लें और कहें कि हे परमपुरुष। मैं तुम्हें नहीं मानता, मैं तुम्हें मान नहीं रहा। यह भी वह कहेगा तो इस मन के भीतर से ही।

इसलिए वही मनुष्य बुद्धिमान है जो मन ही मन परमपुरुष से कहता है, हे परमपुरुष, तुमने तो सब कुछ ही जान लिया है। सब कुछ देख लिया है और अब मुझे खींच कर, अपनी गोद में बिठा लो। क्योंकि मैं चाहे जितना नीचे उतर गया हूं, पर हूं तो तुम्हारे हृदय के भीतर ही। विद्यापति कहते हैं कि अपनी चेष्टा से मनुष्य क्या कर सकता है? परमपुरुष से जो शक्ति पाई है, उससे ही छटपट करता है, काम करने की चेष्टा करता है और व्याकुल होकर बोल सकता है- हे परमपुरुष। इस सृष्टि के आदि में भी तुम्हीं थे और सृष्टि का यदि किसी काल में अंत है तो उसमें भी तुम्हीं हो। आदि में जो है, अंत में भी वही है। मध्य का मालिक भी वही है। कोई भी पल ऐसा हो नहीं सकता जिसमें मालिक कोई और हो। फिर तुमसे अलग तो कुछ हो ही नहीं सकता।

मैं तो आदि और अंत के बीच में ही हूं। सो, इसमें कोई शक हो ही नहीं सकता कि मेरे मालिक तुम हो। जब तुम मालिक हुए, मेरे यदि तुम नाथ हुए, तब मुझे मुक्ति दिलाने, मेर परित्राण करने का दायित्व क्या ईश्वर का नहीं है? निश्चय ही ईश्वर का दायित्व है। अत: मेरे लिए जो कुछ करणीय है, वह आप करो। आप करोगे और मैं तुम्हें बस केवल इतना सुनाए जाऊंगा कि मैं तुम्हारा हूं, अतएव मेरे प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य भी है और अधिकार भी। इसे कोई चाहे तो निष्काम कर्म कहे और चाहे तो पूर्ण समर्पण। यह अपनी इच्छा को परम पुरुष की इच्छा में लीन कर देने की एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमें साधना के सर्वोच्च लक्ष्यों की ओर ले जाती है।

आत्मा का परमात्मा से मिलन ही है सर्वश्रेष्ठ योग प्रक्रिया - योग के बारे में लोग समझते हैं कि दो-चार आसन और प्राणायाम किया और संपूर्ण अभ्यास हो गया। किंतु ऐसा नहीं है। महर्षि पतंजलि के अनुसार मनुष्य के अंदर जितनी वृत्तियां हैं, उसका निरोध ही योग है। स्वाभाविक तौर पर मनुष्य के अंदर पचास वृत्तियां हैं और अस्वाभाविक तौर पर एक हजार। वैसे योग शब्द का शाब्दिक अर्थ है जोड़ना, एकीकरण या मिलन। जब दो को दो से जोड़ा जाता है तब चार होता है। जिस तरह बालू और नमक को मिलाने से दोनों का अस्तित्व अलग-अलग रहता है, उसी तरह दो को दो से घटाने पर दो ही होता है। अर्थात दोनों दो का समान अस्तित्व रहता है। लेकिन पतंजलि योग का अर्थ जोड़ने और एकीकरण से नहीं बल्कि सभी वृत्तियों के निरोध से है।

योग के बारे में भगवान शिव और कृष्ण ने व्याख्या की है- जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकाकार होने का नाम ही योग है। जिस तरह पानी और चीनी आपस में मिलने से एक हो जाते हैं और मिलने के बाद दोनों का अलग अस्तित्व नहीं रहता है, उसी तरह साधना के माध्यम से साधक परमात्मा के साथ मिलकर एक हो जाता है और उस समय मैं और परमात्मा के बोध का कोई अस्तित्व नहीं रहता। यही सर्वश्रेष्ठ योग प्रक्रिया है। इसके अलावा महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग सर्वश्रेष्ठ और व्यावहारिक माना गया है। आसन करने से शरीर और मन स्वस्थ रहता है। यह ग्रंथि दोष को दूर करता है। आसन सूक्ष्म और उच्च कोटि की साधना में काफी मददगार साबित होता है। नियमित आसन करने से शरीर लचीला होता है और मन का संतुलन कायम रहता है। आसन मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं- स्वास्थ्यासन और ध्यानासन। स्वास्थ्यासन मुख्यत: स्वास्थ्य लाभ और आध्यात्मिक प्रगति के लिए किया जाता

है, जबकि ध्यानासन मन को केंद्रित करने और साधना में मदद करता है।

प्राणायाम एक प्रक्रिया है जो श्वास नियंत्रण के साथ ईश्वरीय भाव जगाता है। अष्टांग योग साधना में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का सैद्धांतिक ज्ञान से व्यावहारिक ज्ञान ज्यादा महत्व रखता है। मन को बाहरी जगत से हटाना और परमात्मा की ओर ले जाना ही प्रत्याहार साधना है। मन को विशेष चक्र पर केंद्रित कर ब्रह्म भाव में लीन रखना धारणा है। शोधन का अर्थ होता है शुद्धिकरण। आनंद मार्ग साधना में पहली बार शोधन के बारे में बताया गया है। इसके पूर्व शोधन के बारे में कहीं जिक्र नहीं है। जब आध्यात्मिक साधना में मन को चक्र पर केंद्रित किया जाता है तो उसे आनंद मार्ग साधना में शोधन कहते हैं। जब अणु मन भूमा मन में मिल जाता है तो उसे समाधि कहते हैं। समाधि कोई साधना की प्रक्रिया नहीं है बल्कि साधनाओं का परिणाम है।

आत्मोदय के साथ सर्वोदय का सामंजस्य सिखाता है योग दर्शन। आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में योग का सीधा अर्थ है- आत्मा का परमात्मा से संबंध। आमतौर पर देखा जाए तो जब भी किसी समुदाय, समाज या परिवेश में अध्यात्म की चर्चा होती है तो वर्तमान जीवन जीने की गुणवत्ता की बजाय पारलौकिक जीवन, मोक्ष और कैवल्य जैसे गंभीर विषयों को योग से जोड़ने पर विशेष जोर दिया जाता है। असल में वर्तमान जीवन को गुणात्मक, समन्वयशील, सामंजस्यपूर्ण और कलात्मक बनाना ही वास्तविक योगसाधना है। यदि योग के नियमित अभ्यास से हमारे जीवनमूल्य ऊंचे नहीं उठते, हमारा लोक-व्यवहार नहीं सुधरता तो ऐसा योग हमारे लिए अप्रासंगिक है, निरर्थक है। ऐसा योग मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता।

पतंजलि का अष्टांगयोग जीवन जीने की ऐसी पद्धति है, जिसके अनुशीलन से व्यक्ति के अन्त:करण में दूसरों के प्रति बंधुत्व भाव अपने आप उमड़ता है। असल में योग पारस्परिक रूप से जुड़कर अपने परिवेश से सह-अस्तित्व स्थापित करते हुए जीवन जीने की कला है। पतंजलि कहते हैं, यह लोक एक रंगमंच की भांति है और हरेक मनुष्य का जीवन कुछ निर्धारित कालावधि तक अलग-अलग भूमिका निभाने के लिए बना है। यदि व्यक्ति अपनी होशपूर्ण ऊर्जा से समन्वय स्थापित करके इस रंगमंच पर अपनी भूमिका कुशलतापूर्वक निभाता है तो वह समस्त प्रकार के कर्म-बंधनों से मुक्त हो जाता है, तब उसके संपूर्ण अस्तित्व में एक गहन शांति उतरती है और इस शांत अवस्था में ही आत्मबोध की घटना घटित होती है। वस्तुत: यही योग की अंतिम स्थिति कैवल्य है, जिसे अष्टांगयोग में समाधि कहा जाता है। योग अतीत पर पश्चात्ताप न करते हुए भविष्य की चिंता से मुक्त होकर अपने वर्तमान को सहर्ष स्वीकार करते हुए जीवन जीने की अद्भुत पद्धति है। असल में जो वर्तमान के उत्सव को अस्वीकार कर भविष्य में आनंद मनाने की लालसा रखता है, वह विधिपूर्वक आसन-प्राणायाम करने के बावजूद योग के वास्तविक अर्थ से वंचित ही रहता है। योगसाधना का एक सकारात्मक पक्ष यह भी है कि योगमार्गी साधक किसी अज्ञात शक्ति को संतुष्ट करने के लिए योगसूत्र का पालन नहीं करता, अपितु आत्मकल्याण के साथ-साथ बहुजन समाज के हित-सुख एवं मंगल-कल्याण के लिए योगसाधना करता है।

आत्मोदय और सर्वोदय का सामंजस्यपूर्ण स्वस्थ जीवन ही योगदर्शन है। शुद्ध और शांत वातावरण में रहना, शुद्ध-स्वच्छ प्राणवायु का सेवन करना सिर्फ इसलिए जरूरी नहीं है कि यह हमारे लिए हितकर है, बल्कि हमें इसके लिए सतत

प्रयासरत इसलिए भी रहना चाहिए कि यह संपूर्ण प्राणियों के लिए समान रूप से हितकर है। यही योग की समग्रता है, यही योग की सार्थकता है।

योग शब्द की दूसरी व्याख्या है- सभी चिंताओं से मुक्त होने का नाम ही योग है। मान लीजिए कि हम सभी चिंताओं से मुक्त हो गए, तो फिर योग की स्वाभाविक प्रकिया कैसी होगी।

भगवान बुद्ध अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें एक बेसुध व्यक्ति दिखलाई पड़ा। बुद्ध के संकेत पर एक शिष्य दौड़कर पानी लाया। उन्होंने उस बेसुध व्यक्ति के सुख पर पानी के छींटे मारे और उसके होश में आने पर उसे थोड़ा पानी पिलाया। जब वह व्यक्ति कुछ सहज हुआ, तब एक शिष्य ने बुद्ध से कहा, भगवन्, अब आप इसे धर्म का उपदेश दें और इसे अपने संघ में सम्मिलित करें।

बुद्ध ने कहा, नहीं, अभी यह भूखा और कमजोर है। इस समय इसे उपदेश की नहीं, भोजन की जरूरत है। पहले इसके लिए भोजन की व्यवस्था करो।

लोक प्रचलित धारणा भी यही है कि भूखे भजन न होय गोपाला। यही बात योग और अध्यात्म के संबंध में भी कही जा सकती है। प्रश्न उठता है कि योग और अध्यात्म क्या हैं? योग मात्र कुछ आसनों या सांसों की प्रक्रियाओं का नाम नहीं है। इसके आठ अंग हैं जो क्रमश: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि की श्रेणी में रखे जाते हैं। यम-नियम से लेकर समाधि तक की यात्रा ही वास्तविक योग है। योग की शुरुआत होती है यम से। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का पालन ही यम है। सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का पालन ही यम है। सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) और अपरिग्रह यम के अनिवार्य अंग हैं। पर मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में मात्र योग और अध्यात्म उपयोगी नहीं हो सकता।

यदि जीवन में यम का समावेश और यम में सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) और अपरिग्रह का समावेश नहीं होगा, तो कैसा योग? इनके अभाव में आसन, प्राणायाम तथा ध्यान व योग के अन्य अंग भी निरर्थक साबित होंगे। जिससे हमारे कर्मों में कुशलता की वृद्धि संभव नहीं है, वह निरर्थक है। वह सही अर्थों में योग नहीं है। क्या आज हमारा योग इस कसौटी पर खरा उतरता है? देश में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और अंधविश्वास का तांडव अपने चरम पर है। जहां अधिकांश लोगों के पास भूख मिटाने के लिए रोटी, तन ढकने के लिए कपड़ा और सर छुपाने के लिए टूटा छप्पर भी न हो, उस देश में पांच सितारा आश्रमों और योग संस्थानों का क्या औचित्य हो सकता है?

आज जरूरत है अन्न का उत्पादन बढ़ाने और गांवों में रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने की, जिससे हर व्यक्ति के लिए भोजन सुनिश्चित किया जा सके और जिससे बाल श्रम और मानव तस्करी रोकने में मदद मिल सके। जो अध्यात्म लोगों को दो वक्त की रोटी और सम्मानपूर्ण जीवन का आश्वासन न दे सके, वह अध्यात्म नहीं; ढोंग और दुकानदारी है। जहां आम आदमी के पास खाने के लिए रोटी नहीं, पहनने के लिए ढंग के कपड़े नहीं और सर छुपाने के लिए छप्पर नहीं, वहां आध्यात्मिक उत्पति कैसे होगी?

यहां के अनेक धार्मिक और आध्यात्मिक न्यासियों के पास अरबों-खरबों की संपत्ति है। इस धन से हजारों गांवों का कायाकल्प किया जा सकता है। लेकिन उन गांवों में आध्यात्मिक प्रवचन देने से उनकी दशा नहीं सुधरेगी? वहां के भूखे

किसान और बेरोजगार युवकों की बुद्धि संतों के समान निर्मल नहीं हो पाएगी। हर धर्म में ऐसी शिक्षा दी गई है कि अध्यात्म और योग से पहले भरपेट भोजन और सही शिक्षा होना अनिवार्य है।

हम अपने इन न्यासों के भौतिक संसाधनों का उपयोग देश में आध्यात्मिक वातावरण बनाने के लिए करें। वहां सिर्फ प्रवचन न दें, सिर्फ मंत्र और ज्ञान न दें, सिर्फ अनुष्ठान न बताएं, बल्कि उन्हें स्कूलों, शिक्षा संस्थानों और चिकित्सालयों में तब्दील कर दें। यदि एक बार संपूर्ण समाज अथवा राष्ट्र शिक्षित हो गया तो यहां शोषण की प्रक्रिया भी स्वत: रुक जाएगी। आखिर किसी न्यास का धन समाज के कल्याण के लिए इस्तेमाल किया जाए, इससे बड़ा अध्यात्म कोई नहीं।

योग हमें परमेश्वर से जुड़कर स्वयं को मुक्त करना सिखाता है। आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में सदाशिव को आदियोगी यानी योग का जन्मदाता माना जाता है। शिव ने मानवजाति के समक्ष योग की एक अस्तित्वगत अवधारणा प्रस्तुत की। आमतौर पर साधारण व्यक्ति अपनी जड़ मान्यताओं एवं परंपरागत आस्थाओं में बंधकर ही सांसारिक जीवन जीता है। सदाशिव ने योगसूत्र का अन्वेषण कर मानवजाति के हितार्थ इस यथार्थवादी जीवन-दर्शन को व्यावहारिक रूप दिया।

अकर्मण्यता, संशयात्मक बुद्धि, आलस्य-प्रमाद, अमर्यादित-कामासक्ति, शारीरिक व्याधि, मानसिक दुर्बलता एवं चित्त की चंचलता व्यक्ति को एक सीमित दायरे से बाहर नहीं निकलने देती। फलस्वरूप वह एक कुंठित मानसिकता व जड़ मान्यताओं के सहारे जीवन गुजार कर संसार से विदा हो जाता है। महर्षि पतंजलि अष्टांग योगसूत्र में कहते हैं कि हरेक व्यक्ति का गंतव्य उस असीम-अनंत से जुड़कर अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना है। जबकि सांसारिक व्यक्ति की तो बात छोड़िए, कथित धार्मिक संस्थाओं और मठों से जुड़े लोग भी विलासितापूर्ण जीवन-पद्धति में मोक्ष का मार्ग खोज रहे हैं।

पतंजलि कहते हैं कि जो जीते जी तमाम सांसारिक विषय-वासनाओं से मुक्ति प्रदान करता है, वही योग है। जो साधन अथवा उपाय चित्त की वृत्तियों व विकारों से निजात दिलाने में सहायक बनता है, वही योग है। इसलिए अष्टांगयोग में कहा गया है- योगश्चचित्तवृत्ति निरोध: यानी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और धारणा का क्रमश: अनुशीलत करते हुए चित्त की वृत्तियों पर लगाम कसना। वस्तुत: चित्त नैसर्गिक रूप से जड़ है, किंतु आत्मा के नजदीक होने की वजह से उसके प्रकाश से प्रकाशमान हो जाता है। वास्तव में जब व्यक्ति अष्टांग योग के सात सोपानों के साधना मार्ग पर चलकर चित्त पर पड़े विकर्मों व प्रारब्ध-संस्कारों को उलीचना शुरू कर देता है तो वह स्वत: ही अष्टांग योग के आठवें सोपान समाधि के करीब पहुंचने लगता है।

अष्टांग योग के इस आठवें और सबसे महत्वपूर्ण सोपान समाधि को धर्मग्रंथों में भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। पतंजलि योगसूत्र में समाधि योग-साधना की अंतिम अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति का बाह्य जगत से संबंध टूट जाता है तथा उसके समस्त मानसिक विकारों का परिशोधन हो जाता है। जैन धर्म में इसे कैवल्य ज्ञान कहा गया है, यानी जब व्यक्ति के प्रारब्ध कर्म, क्रियमाण कर्म, संचित कर्म और कषायों का पूर्णत: क्षरण हो जाता है, तब व्यक्ति समाधिस्थ हो जाता है। बौद्ध धर्म में इसे निर्वाण कहा गया है, जो अष्टांगिक मार्ग के अनुरूप चलकर ही संभव है। किंतु संत कबीर इन सबसे हटकर कहते हैं- साधो सहज समाधि भली यानी गृहस्थ में रहकर भी निर्लिप्त भाव से परमेश्वर का सुमिरन करने से समाधि की अनुभूति संभव है।

सकारात्मक विचारों का वाहक ही योग्य कहलाने का हकदार है। जो व्यक्ति किसी कार्य को कुशलतापूर्वक कर सके,

आमतौर पर हम उसे योग्य कह देते हैं। जो चिकित्सक रोग का सही निदान करके अपेक्षित सही दवा दे दे, वही योग्य चिकित्सक कहलाने का अधिकारी हो सकता है। इसी प्रकार अपनी कुशलता के कारण कोई भी विद्यार्थी एक योग्य विद्यार्थी या शिष्य, कोई भी गृहिणी एक योग्य गृहिणी और कोई भी पुत्र एक योग्य पुत्र कहलाने लगता है। कई बार कहते हैं कि अमुक व्यक्ति एक रद्दी बढ़ई, रद्दी दर्जी, रद्दी इलेक्ट्रिशियन है। इसका सीधा सा अर्थ है कि जो लोग कुशलतापूर्वक अपना काम कर पाते हैं, योग्य हैं और जो नहीं कर पाते, वे अयोग्य की श्रेणी में आ जाते हैं

कदाचित योग शब्द से ही योग्य की उत्पत्ति हुई होगी। योग क्या है? महर्षि पतंजलि द्वारा प्रवर्तित योगदर्शन अथवा योगसूत्र में वर्णित मार्ग विशेष ही योग है। योगसूत्र में कहा गया है, योग: चित्तवृत्ति निरोध:। यानी चित्तवृत्तियों का निरोध अर्थात मन को स्थिर करना ही योग है। जीवन जीने की एक उत्तम पद्धति अथवा कला है योग। संभव है प्रारंभ में योगमय जीवनशैली को अपनानेवाला ही योग्य कहलाता हो। कालांतर में इसके अर्थ में विस्तार हो गया हो और हर प्रकार के कार्यों में कुशल व्यक्ति के लिए इस विशेषण का उपयोग किया जाने लगा हो।

कुशल शब्द को ही लीजिए। प्रारंभ में कुशल उस व्यक्ति के लिए प्रयोग में आता था जो कुश अर्थात एक प्रकार की घास उखाड़ने में सक्षम होता था। कुश की पत्तियां व उनके अग्र भाग बहुत पैने होते हैं। सही तरीके से उन्हें नहीं उखाड़ने वालों के हाथ इनके अग्रभाग से लहूलुहान हो जाएंगे। आजकल तो सभी अपने-अपने कार्यों में कुशल, सक्षम अथवा योग्य हैं।

आजकल जो लाखों लोगों को शिष्य बनाकर, उन्हें हमेशा के लिए अंधविश्वासी बनाकर अरबों-खरबों की कमाई कर सके उससे बड़ा, उससे कुशल, उससे योग्य गुरु कौन होगा? कहने का तात्पर्य यह है कि जो जितने अधिक लोगों का शोषण कर सकता है, भ्रष्टाचार के बल पर जितना अधिक कमा सकता है वह उतना ही अधिक कुशल, उतना ही अधिक योग्य माना जाता है। जैसे आज एक कुशल व्यक्ति का कुश नामक वनस्पति के उखाड़ने से कोई रिश्ता नहीं रह गया है। उसी प्रकार से एक योग्य व्यक्ति का योग से कोई रिश्ता नहीं दिखाई देता है। लेकिन जिस व्यक्ति में योग का अभाव है, जो अपने मन पर नियंत्रण करके सकारात्मक विचारों का संवाहक नहीं है, एवं स्वयं का और राष्ट्र का उद्धार करने में सक्षम नहीं हो सकता, योग्य कहलाने का भी अधिकारी नहीं हो सकता।

अध्यात्म आत्मा को सुंदर बनाने का अभ्यास है। प्रेम सभी नकारात्मक भावनाओं का जन्मदाता है। जिनको उत्तमता से प्रेम होता है, वे शीघ्र क्रोधित हो जाता हैं। वे सब कुछ उत्तम चाहते हैं। उनमें पित्त अधिक होता है। वे हर चीज में पूर्णता ढूंढ़ते हैं। ईर्ष्या प्रेम के कारण होती है। आप किसी से प्रेम करते हो, तो ईर्ष्या भी आती है। लालच आता है, जब आप लोगों की बजाय वस्तुओं को अधिक चाहते हैं। जब आप अपने आपको बहुत ज्यादा प्रेम करते हो, तो अभिमान बन जाता है। अभिमान अपने आप को विकृत रूप से प्रेम करना है। इस ग्रह पर कोई एक भी ऐसा नहीं है, जो प्रेम नहीं चाहता और प्रेम से अलग रहना चाहता हो। फिर भी हम प्रेम के साथ आनेवाले दुख को नहीं लेना चाहते। ऐसी अवस्था कैसे प्राप्त की जा सकती है? अपने अस्तित्व और आत्मा को शुद्ध करके, जो अध्यात्म द्वारा ही संभव है। हम पदार्थ और आत्मा दोनों से बने हैं। हमारे शरीर को विटामिन की आवश्यकता होती है। यदि शरीर में कोई पोषक तत्व नहीं हो, तो शरीर में इसकी कमी हो जाती है। इसी तरह हम आत्मा भी है। आत्मा सुंदर, आनंद, सुख, प्रेम और शांति है। अध्यात्म वह है, जिससे ये सारे गुण बढ़ते हैं और सीमाएं खत्म हो जाती हैं। हम अपने बच्चों और युवाओं की इस

आध्यात्मिक तरीके से परवरिश कर सकते हैं। आजकल कॉलेज कैंपस में हिंसा आम बात हो गयी हैं। स्कूल और कॉलेजों में शांति, खुशी, उत्सव और आनंद लाना चाहिए। पर अगर हम स्वयं दुख में हैं, तो यह संभव नहीं होगा। पहले हमें अपने दुख का निपटारा करना चाहिए। यदि आप खुश नहीं हो, तो आप दूसरों को खुश करने के लिए कुछ नहीं कर सकते। तो आप कैसे खुश हो सकते हो। खुश रहने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है।

आध्यात्मिक मार्ग बाधाओं से भरा हुआ है। एक बाधा पर विजय प्राप्त करते ही दूसरी प्रकट हो जाती है। यदि आप स्वाद-इंद्रिय को नियंत्रित करेंगे, तो पायेंगे कि कोई दूसरी इंद्रिय दोगुनी शक्ति से आप पर हमला करने के लिए तैयार खड़ी है। यदि आप लोभ को दूर करेंगे, तो क्रोध आपको धक्का मारकर गिराने हेतु तैयार रहेगा। यदि आप अहंकार को एक दरवाजे से बाहर करेंगे, तो वह दूसरे दरवाजे से अंदर आ जायेगा। आध्यात्मिक मार्ग पर अपार धैर्य, अध्यवसाय, सावधानी एवं निर्भयता जैसे गुणों की नितांत आवश्यकता है। वर्तमान में जीएं, कार्य करें तथा प्रसन्न रहें। प्रतिदिन आपके अनमोल जीवन का एक अंश आपके हाथ से निकलता जा रहा है। अत: आप उत्साहपूर्वक साधना में निमग्न हो जाएं। अर्थहीन पश्चात्ताप का शिकार न हों। आज का दिन सर्वोत्तम दिन है। तत्काल साधना प्रारंभ करें। पुरानी गलतियों और कमियों को अलविदा कहें। नई आशा, दृढ़ संकल्प एवं सतर्कता के साथ आज और अभी अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारंभ करें। आपके अंदर अनंत शक्ति का भंडार है, अत: हतोत्साहित न हों। बाधाएं तो सफलता के सोपान हैं। वे आपकी संकल्प-शक्ति को बढ़ाती हैं। आप उनसे परास्त न हों। यदि आप ऐसा सोचते हैं कि मैं तब स्नान करूंगा, जब समुद्र की समस्त लहरें शांत हो जायेंगी, तो यह संभव नहीं है। सागर की लहरें कदापि शांत नहीं होंगी और आप कभी भी स्नान न कर सकेंगे। इसी प्रकार यदि आप सोचते हैं कि मैं आध्यात्मिक साधना तब प्रारंभ करूंगा जब मेरी सभी चिंताए और परेशानियां समाप्त हो जायेंगी, मेरे सभी पुत्र-पुत्रियां जीवन में व्यवस्थित हो जायेंगे और अवकाश प्राप्ति के बाद मुझे पर्याप्त समय मिलेगा, तो ऐसा होना संभव नहीं है।

व्यवहार और अध्यात्म एक दूसरे के पूरक है। दोनों में मतभेद या फर्क नहीं करना चाहिये। अन्त:करण की शुद्धता अध्यात्म का महत्वपूर्ण अंग है। इसलिये अन्तरशुद्धि अपने लिये अधिक और दूसरों के लिये कम होनी चाहिये। लेकिन व्यवहार कुशलता दूसरों के लिये अधिक होनी चाहिये और स्वयम् के लिये कम। अध्यात्म के अनुसार अन्तर शुद्धि किये बिना केवल व्यवहार कुशलता छल है और व्यवहार कुशलता के बिना अन्तरशुद्धि औरों के लिये उपयोग में पाई नहीं जा सकती। अध्यात्म से पूर्ण व्यवहार पवित्र होता है जबकि व्यवहार से निकला व्यवहार अनेक प्रश्नों और समस्याओं को जन्म देता है। अध्यात्म और व्यवहार के एकत्र आने पर प्रगति होती है।

साधना का लक्ष्य जीवन को उन सीमाओं से मुक्त करना है, जिनसे अभी वह घिरा हुआ है। इस संसार में हमारा आगमन साधना करने के उद्देश्य से ही हुआ है। साधना आजीवन चलनेवाली प्रक्रिया है। हमारे जीवन का प्रत्येक दिन, प्रत्येक क्षण आगे बढ़ने का अभियान है। इस महान यात्रा के मार्ग में बाधाएं अनेक हैं, किंतु जब तक आपके रथ सारथी परमात्मा है, चिंता की कोई बात नहीं है आप अवश्य ही अपने गतव्य पर पहुंचेंगे। प्राय: लोगों के मन में आध्यात्मिक मार्ग के प्रति कोरी उत्सुकता ही रहती है। वे सोचते हैं कि यदि वे कुछ यौगक अभ्यास करेंगे, तो कुछ शक्तियां एवं सिद्धियां प्राप्त कर लेंगे। जब ऐसा नहीं होता तो वे धैर्य खो बैठते हैं एवं अभ्यास करना भी बंद कर देते हैं। वे आध्यात्मिक मार्ग को ही छोड़ देते हैं तथा योग एवं योगियों का तिरस्कार तक करने लगते हैं। मात्र उत्सुकता

आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति प्रदान करने में सहायक नहीं होगी। अपने विचारों का विश्लेषण कीजिये तथा पता लगाइये कि आपके अंदर सच्ची आध्यात्मिक जिज्ञासा है या केवल क्षणिक कौतूहल। सतत सत्संग, श्रेष्ठ आध्यात्मिक पुस्तकों के अध्ययन, प्रार्थना, जप, तप एवं ध्यान द्वारा अपनी उत्सुकता को मुक्ति की सच्ची पिपासा में रूपांतरित कीजिये। केवल उत्तम उद्देश्यों से काम नहीं होता है। उनके साथ पर्याप्त प्रयास भी होना चाहिए। साथ ही काम, क्रोध, लोभ, अहंकार एवं स्वार्थपरता से स्वयं को सुरक्षित रखना चाहिए। नैतिक शुद्धि एवं आध्यात्मिक आकांक्षा एक साधक के जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएं हैं। नैतिक मूल्यों, दृढ़ आस्था के बिना आध्यात्मिक जीवन तो संभव ही नहीं, इसके बिना आप उत्तम सांसारिक जीवन भी नहीं जी सकते।

सीमित साधनों के सहारे महान लक्ष्य तक पहुंचा सकता है योग। मनुष्य की लालसा कभी सीमित वस्तुओं से संतुष्ट नहीं होती है। संस्कृत में कहा जाता है- नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्। मानवीय तृष्णा कभी भी सीमित से संतुष्ट नहीं हो सकती यानी मनुष्य की भूख कभी भी सीमित वस्तु से तृप्त नहीं हो सकती। असीम की खोज के क्रम में मनुष्य सर्वप्रथम नंदन विज्ञान के संपर्क में आया। नंदन विज्ञान में हमेशा सुखात्मक स्पंदन ही मिले, ऐसी बात नहीं है। इसमें असहज, दुखात्मक स्पंदन भी मन को तरंगित कर सकता है।

नंदन विज्ञान की अभिव्यक्ति सूक्ष्मता की दिशा में होती है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर यह बोध, जब सूक्ष्मतम बिंदु पर पहुंचता है, तब यह बिंदु ही मानवीय गरिमा का ऊर्ध्वतम बिंदु हो जाता है। अब कलाकारों, शिल्पियों का यह दायित्व है कि वे अपनी कलाकृतियां इस नांदनिक बोध की सुंदरता, सरलता और सूक्ष्मता के साथ दुनिया के सामने प्रस्तुत करें। सभी ऐसा नहीं कर सकते। लेकिन नांदनिक रुचि अथवा नांदनिक आकर्षण का आस्वादन सभी मनुष्य कर सकते हैं। यह सभी मनुष्यों के अधिकार क्षेत्र में है।

अनंत आनंद की खोज में जब मनुष्य ने परमपुरुष की ओर चलना शुरू किया, तब वह अध्यात्म के संपर्क में आया। आध्यात्मिकता जब ससीम के संपर्क में आती है, तब इसी के माध्यम से वह असीम के संपर्क में भी आती है। ससीम और असीम का यह मिलन ही योग कहलाता है। असीम को पाने के लिए, अपनी असीमित क्षुधा की तृप्ति के लिए साधक जब रहस्यवादी शैली में उस अनंत की ओर चलना शुरू करते हैं, तब उसी को योग कहा जाता है।

संस्कृत में योग का अर्थ है- जोड़ना। उदाहरण के लिए, दो जोड़ दो बराबर चार। लेकिन रहस्यवादी लक्ष्य प्राप्त करनेवाले साधक के लिए, ब्रह्म संप्राप्ति के लक्ष्य को पानेवाले साधक के लिए, योग मात्र इस तरह का जोड़ नहीं है। यहां योग का अर्थ है एकीकरण। यह एकीकरण चीनी और पानी के एकीकरण जैसा। चीनी पानी में मिल जाने के बाद अपनी अलग पहचान नहीं रख पाता है, क्योंकि चीनी पानी में घुल गया और वह पानी के साथ एकाकार हो गया। रहस्यवाद के क्षेत्र में योग का तात्पर्य इसी तरह के एकीकरण से है। दो और दो जोड़ की तरह यह जोड़ना नहीं हुआ। इस प्रकार यहां प्रारंभिक बिंदु हुआ नांदनिक रुचि बोध या नंदन विज्ञान। और नंदन विज्ञान का अंतिम बिंदु जो है, वहीं से शुरू होती है असीम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए महान यात्रा।

वृहत् के आकर्षण को लक्ष्य कर चलने की यह प्रवृत्ति, इस तरह की गतिशीलता मनुष्य को परमपुरुष के साथ एकाकार कर देती है, जिनका आसन मानव अस्तित्व के ऊर्ध्वतम बिन्दु के भी ऊपर है। परम तत्व के साथ एकात्म होने के लिए मानव मन की यह जो गतिधारा है, वृहद के साथ क्षुद्र का यह जो मिलन का प्रयास है, यही है योग का पथ।

नीति-अनीति, नैतिकता

अनीति की कमाई बुद्धि को परिवर्तित कर देती है। कलह दु:ख द्वन्द्व का कारण बनता है। अनीति लोभ में छिपी रहती है।

समाज को उन्नत एवं खुशहाल बनाने के लिए जरूरी है कि हम कोरी नीति की बात ही नहीं करें, बल्कि उसे जीकर भी दिखाएं। एक अच्छा दिमाग भर होना काफी नहीं है, अहम बात यह है हमें इसका बेहतर इस्तेमाल करना भी आता हो। यदि नीति पर चलते हुए किसी कारणवश असफलता मिलती है तो वह भी कम गौरव की बात नहीं है है कि व्यक्ति ने जो प्रयास किए, उसमें झूठ या छल-कपट आदि का सहारा नहीं लिया। जीवन में सफलता न मिलने पर हमारा भौतिक जीवन कुछ असुविधापूर्ण तो हो सकता है, पर नीति का त्याग कर देने से तो लोक-परलोक, आत्मसंतोष, चरित्र, धर्म, कर्त्तव्य और लोकहित सभी कुछ नष्ट हो जाता है।

नैतिकता और अनैतिकता का संबंध मानव-जीवन के सुख-दु:खों से होता है। मनुष्य सुख चाहता है दु:ख नहीं। यह कैसे संभव हो सकता है ? केवल इच्छा से यह हो सकता तो लोगों ने बैठे-बैठे मनचाहे बदलाव करवाए होते। तब इस संसार में कोई दु:खी, दरिद्र, रोगी, अनाथ, असहाय नहीं दिखता। सबलोग सुखी, धनवान, स्वस्थ दिखते।

केवल इच्छा से काम नहीं होता, इच्छा के साथ क्रिया होनी चाहिए। वह क्रिया नीतिवान है या अनीतिवान् इसके आधार पर सुख-दु:ख निर्धारित होते हैं। अध:पात, आत्मवंचन एवं हीनता अनैतिक क्रियाओं के परिणाम जबकि उर्ध्वगति, आत्मविश्वास और उच्च भावना नैतिक क्रिया के परिणाम है।

संसार मे उपदेश देने वालों की कमी नही है, परन्तु प्रभाव उन्ही का पड़ता है जो स्वयं उस बात का पालन करते है। जो जिससे जितना अधिक नैतिक मूल्यों में श्रेष्ठ होते है उनकी शिक्षा का असर भी उतने गुना अधिक पड़ता है। इसीलिए असत्यवादी का सत्य पर दिया गया उपदेश शून्य रहता है। जो सदाचारी होते है, उनके व्यवहार का दूसरों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है, वे चाहे मौन ही रहे, कुछ लोग अदृश्य रहकर भी अपना प्रभाव डालते रहते है। वृक्ष में जो पानी नहीं डालता, उसे भी वह छाया देता है। वह किसी से कुछ नहीं मांगता। निष्काम भाव से किया गया कार्य महान बन जाता है। वृक्ष फल देकर कुछ नहीं लेते, इसी प्रकार की सहनशक्ति अप्रतिम रहती है।

नियमों के प्रति अज्ञानता कोई बहाना नहीं है। हम सोचते हैं कि हम दूसरों को धोखा दे सकते हैं, स्वयं को धोखा दे सकते हैं, परमात्मा को धोखा दे सकते हैं, परन्तु इस प्रकार हम कर्मों के भुगतान से बच नहीं सकते। कभी न कभी तो सच्चाई सामने आती ही है और कर्मों का भुगतान करना पड़ता है। समाचार पत्र में हम पढ़ते हैं कि चोर बैंक को लूटकर भाग गये। माता-पिता बच्चों से झूठ बोलते हैं। हम अपने कार्यस्थल से पैसे चुरा सकते हैं। हम अपने नजदीकी लोगों को धोखा दे सकते हैं। हम अपने काम निकालने के लिए दूसरों से चालाकी करते हैं। हम ऐसे वायदे कर लेते हैं जो हम निभाना नहीं चाहते। झूठ के अनेक रंग हैं। परन्तु अंत में सत्य हमारे सामने आयेगा, इस जन्म में नहीं तो यमराज के दरबार में चाहे हम किसी भी धर्म को मानते हों, हर धर्म बताता है कि हमारी करनी का लेखा जोखा रखा जाता है। यह लेखा-जोखा कैसे रखा जाता है, इसका विवरण हर धर्म में अलग-अलग रूप से किया गया है पर एक बात सब बताते हैं कि

हिसाब रखा जाता है। सत्य का जीवन हमें भय से मुक्त कर देता है।

जब न्याय पर अन्याय, सत्य पर असत्य, नैतिकता पर अनैतिकता, विश्वास पर दगाबाजी, कर्म पर अकर्मण्यता, हिंसा पर अहिंसा, विवेक पर पाखंड, सेवा पर स्वार्थ हावी हो जाये तो नैतिकता का पतन होता है। जब व्यक्ति अच्छी तरह से जानता है कि यह अच्छा है और यह बुरा है, उसके बाद भी बुरे रास्ते पर क्यों जा रहा है। जग जाहिर है कि कोई अपराधी या दागी है, उसके बाद भी व्यक्ति उनको गले लगाता है, सरकारी कर्मचारी पैसा लिए बिना कोई काम नहीं करते। यह भारत की अधिकांश जनता मानती है। पैसा देकर वोट खरीदे जाते हैं, यह प्रत्यक्ष दिख रहा है।

वर्तमान जीवन की बड़ी त्रासदी है कि हम प्रतिष्ठित व्यक्ति अथवा किसी अपराधी व्यक्ति की प्रशंसा या सम्मान इसलिए करते हैं कि उसके पास जो पैसा और सुख है, वह हमारे लिए लाभकारी हो सकता है। इस विकृति को रोकने के लिए दृष्टिकोण बदलना आवश्यक है।

मनुष्य जन्म पाकर ज्ञान को प्राप्त करना, सबसे बड़ा कर्त्तव्य माना जाता है। पर ज्ञान का मतलब सिर्फ बहुत सारे ग्रंथ पढ़ लेना या कोरा पंडित बन जाता नहीं है। जब तक विद्या बुद्धि के साथ मनुष्य में नैतिक बल व सच्चाई का गुण नहीं होगा, तब तक कोई उसका आदर सम्मान नहीं करता। जब किसी को बुरी आदत लग जाती है तब बुद्धि के बल पर उसे रोका नहीं जा सकता। जिनमें नैतिक ताकत की कमी है, वे केवल बुद्धि के द्वारा धार्मिक नहीं बन सकते। कई बार देखा जाता है कि जिनमें नैतिकता और सच का भाव नहीं है, उनकी बुद्धि दूसरों का नुकसान करनेवाली और झूठ को ही सच सिद्ध करनेवाली बन जाती है। इसलिए जो शक्ति नैतिकता में है, वो बुद्धिमानी नहीं है। बुद्धि केवल मार्ग दिखाती है, मार्ग पर चलने वाला आदमी अगर गलत रास्ते पर चला जाए और मुसीबत उठाए तो बुद्धि उसका कुछ नहीं कर सकती। मगर नैतिकता वो गुण है जो आदमी को गलत मार्ग पर नहीं जाने देता। इसलिये मनुष्य को बुद्धि रहते हुए भी नैतिकता को छोड़ना नहीं चाहिए। पिछले १५ सालों में आदमी का जीवन, आदमी के मूल जीवन जैसा नहीं रहा। जो कुछ भी है, जैसा भी है, सब रफ्तार के हवाले हैं। आज लोगों को वाकई सांस लेने की भी फुरसत नहीं है। धरती के एक छोर पर रह रहा आज का मनुष्य धरती के दूसरे छोर पर अपने दोस्त या रिश्तेदारों से आसानी से संपर्क कर सकता है।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को चरित्रहीनता से दूर रखना, होना चाहिये। प्रत्येक नागरिक को शुरू से ही नैतिकता की शिक्षा दी जाए और उसे उसी के अनुसार चलने का अभ्यास कराया जाए। परमात्मा को सौंदर्य का भण्डार और आनंद का समुद्र कहते हैं, क्योंकि उसने इस दुनिया को बनाने में बेइन्तहा मेहनत की है और अपनी कला का परिचय दिया है। इसमें हमारा योगदान सत्य और नैतिकता के आधार पर ही हो सकता है।

❊ पत्थर तब तक सलामत है, जब तक वो पर्वत से जुड़ा है। पत्ता तब तक सलामत है, जब तक वो पेड़ से जुड़ा है। मनुष्य तब तक सलामत है, जब तक वो परिवार से जुड़ा है, क्योंकि परिवार से अलग होने पर आजादी तो मिल जाएगी, लेकिन संस्कार चले जायेंगे।

❊ साथ छोड़नेवालों को तो बहाना चाहिए, वरना निभानेवाले तो मरने तक साथ नहीं छोड़ते।

चरित्र

गिरि से गिरकर जो गिरे, गिरे एक ही बार। जो चरित्र गिरि से गिरे, बिगड़े जन्म हजार।।
गिरि से गिरा सो गिर गया, उठा हजारों बार। जो चरित्र से गिरा, उठा न एकही बार।।

मानव जीवन में चरित्र का महान महत्व है। चरित्र की सीढ़ी है सदाचरण। यदि हमारा आचरण सत्य प्रेरित और सत्य की ओर उन्मुख है तो निश्चित ही हम अपने चरित्र का निर्माण करने में प्रयत्नशील है। इसके लिये हमारा चिन्तन सर्वजण हिताय-सर्वजण सुखाय हो। चरित्र हमारो जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु है। चरित्र के बिना हमारा ज्ञान बुराई की ताकत बन जाता है। अनेक विद्वानों का मत है कि चरित्र-निर्माण शिक्षा का मूल उद्देश्य होना ही चाहिए। चरित्र के विकास की शर्त है- आत्मविश्वास। यदि हमारी आत्मा में विश्वास की भावना नहीं जग पाई अथवा हममें मानवीय एवं नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था व निष्ठा उत्पन्न नहीं हुई तो चरित्र का विकास कठिन हो जाएगा। चरित्र-विकास (निर्माण) जैसा रचनात्मक कार्य दूसरा कोई नहीं है। यही पूरे राष्ट्र की धुरी और देश के नवनिर्माण की नींव है। इसके बिना हमारी सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रगति व्यर्थ और निष्फल ही है। विज्ञान के उपयोग में विवेक मुख्य है और यही विवेक चरित्र निर्माण का आधार है। अत: हमारे जीवन का मूल चरित्र ही है। उसके निर्माण में ही हमारी सारी शक्ति, हमारे सब साधन, हमारा समय, हमारी आस्था और निष्ठा पूर्णतया लगना ही चाहिए। चाहे उसके लिये हमें कठिन साधना करने पड़े, महान त्याग करना पड़े अथवा कठिन आत्म-नियंत्रण भी रखना पड़े तब भी हम चरित्र-निर्माण के लिए कटिबद्ध अवश्य रहेंगे ही, क्योंकि जिनका चरित्र बन गया, उनके व्यक्तित्व का विकास मानो हो गया है। सम्पूर्ण मानवता का भला हो सकेगा।

मनुष्य में ऐसा उत्तम गुण है जो उसे कुछ करने के लिए प्रेरित करता है। अपनी आंतरिक ऊर्जा द्वारा ही वह अपने क्षेत्र में संघर्ष कर पाता है और मजबूत मनोबल रख मुश्किलों को ठोकर मार आगे बढ़ जाता है। मानव का चरित्र ही सब कुछ है। चरित्रहीन व्यक्ति मुर्दे के समान होता है। चरित्र से धन कमाया जा सकता है परंतु धन से चरित्र नहीं खरीदा जा सकता। चरित्रवान व्यक्ति अपने चरित्र रूपी पुष्प की सुगंध से सभी को प्रभावित करता है। मनुष्य में दृढ़ इच्छा शक्ति हो तो वह अपनी बुरी आदतों को त्यागकर सद्गुण अपना सकता है।

हमारे देश में यह अक्सर कहा जाता है कि जिस समाज या राष्ट्र में चरित्र का बोलबाला है, वहां सुख, शांति और समृद्धि कायम होती है। सुव्यवस्था बनती है और जीवन का चौतरफा विकास होता है। हमेशा से ही धन और सत्ता की अपेक्षा चरित्र को ज्यादा महत्व दिया जाता रहा है। यह तर्क दिया जाता है कि प्राचीन भारतीय जनजीवन में धनी और सत्ताधारी राजा भी नैतिकता और चरित्र को अहमियत देते थे।

कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति में चरित्र को ज्ञान से ज्यादा कीमती माना गया है। चरित्र की महानता का बखान करते कई उदाहरण और कथाएं इस प्रसंग में पेश किए जाते हैं और यह अफसोस जताया जाता है कि आज हमारे समाज में चरित्र कतई मूल्यवान नहीं रह गया है। इसके लिए पश्चिमी संस्कृति पर आरोप लगाया जाता है। इस संस्कृत के असर के कारण बेटे-बेटियां अपने माता-पिता और बड़े-बूढ़ों का सम्मान नहीं करते। अश्लीलता को बढ़ावा देने वाली मजलिसों में गाना-बजाना करते हैं। शराब और जुए में आनंद खोजते हैं। उनके लिए पारिवारिक मूल्यों का महत्व नहीं है।

भारतीय संस्कृति में चरित्र की महानता का वर्णन इस तरह से है कि चरित्र के बिना तो धर्म भी पंगु यानी लाचार है। धर्म चरित्र के सहारे ही लोकजीवन में उतरता है। न केवल भारतीय दर्शन में, बल्कि पाश्चात्य दर्शन में भी चरित्र को महत्व देने के प्रसंगों का हवाला दिया जाता है। एक अंग्रेज विद्वान ने कहा है कि यदि धन गंवा दिया, तो कुछ भी नहीं गंवाया, पर अगर स्वास्थ्य खो दिया, तो कुछ खोया है। पर जिसने चरित्र गंवा दिया, मानना चाहिए कि उसने सब कुछ गंवा दिया है। एक और उदाहरण है। अमेरिका में एक दौर ऐसा था, जब वहां गुलामी प्रथा प्रचलित थी। उस समय अब्राहम लिंकन और जॉन ब्राउन ने इस प्रथा पर काबू पाने के लिए एक आंदोलन छेड़ा। ब्राउन ने इसके लिए एक संघ की स्थापना की और देशवासियों से कहा, मैं इस संघ में हैजा, क्षय और प्लेग के बीमारों को खुशी से स्थान दूंगा, लेकिन इसमें चरित्रहीन इंसानों को जगह नहीं मिलेगी। चरित्र से गिरा हुआ इंसान उस मछली की तरह है, जो सारे तालाब को गंदा कर देती है। हमारे देश में महात्मा गांधी, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, विनोबा भावे आदि महापुरुषों ने भी चरित्र के उत्थान पर जोर दिया। चरित्र का कितना महतव है, यह श्रीराम और रावण के उदाहरण से और स्पष्ट होता है। रावण कोई कम विद्वान नहीं था। वह एक पराक्रमी और धनाढ्य राजा था, लेकिन उसे पूजनीय नहीं मानकर बुराई का प्रतीक माना जाता है। इसके उलट श्रीराम के पास सत्ता व संपत्ति थोड़ी होते हुए भी वे पूजनीय माने गए। लोकहृदय में सम्मानजनक स्थान श्रीराम ने पाया, रावण ने नहीं। इसका कारण चरित्र ही था। रावण ने चरित्र के उत्थान-पतन की कोई परवाह नहीं की, जबकि चरित्र की रक्षा को श्रीराम ने अहम माना। पौराणिक प्रसंगों से अलग ऐतिहासिक प्रसंग की बात करें तो विद्वता में हमारे यहां और विदेशों में महात्मा गांधी से बढ़कर कई लोग थे। लेकिन वे सभी लोग गांधीजी के सामने शीश झुकाते थे। इसकी भी मुख्य वजह गांधीजी का ऊंचा चरित्र था। सत्ता या संपत्ति तो गांधीजी के पास थी ही नहीं। सज्जनता की परीक्षा कपड़ों, गहनों, संपत्ति या सत्ता से नहीं, व्यक्ति के चरित्र से होती है। गांधीजी तो खादी का छोटा-सा कपड़ा लपेट लेते थे, फिर भी उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी और उन्हें महात्मा कहा जाता था। यह उनके चरित्र बल का ही असर था।

किसी मकान की नींव बहुत मजबूत और गहरी हो, उसकी दीवारें चौड़ी और मजबूत हों, उन पर बढ़िया रंग-रोगन किया गया हो, रोशनदान-खिड़कियां-दरवाजे सभी यथास्थान हों, लेकिन ऊपर की छत न हो, तो वह मकान किसी के रहने के लिए उपयुक्त नहीं होगा। जिस तरह छत के बिना जैसे दीवारों से घिरा कोई निर्माण मकान नहीं कहलाता, वैसे ही चरित्ररूपी छत के बिना धर्म, दर्शन, ज्ञान और सत्ता-संपत्ति रूपी दीवारों वाले मकान यानी इंसान का जीवन भी व्यर्थ है।

केवल कठोर परिश्रम से सफलता मिलती है ऐसा नहीं है, उसके लिये शुद्ध चरित्र भी होना चाहिए। व्यक्ति के चरित्र का प्रभाव औरों पर पड़ता है। चरित्र और सही तरीके से प्रयत्नों का समन्वय होकर सफलता मिलती है। राक्षसों ने संयम पालन कर, कठोर तपश्चर्या से, मनोवांछित सिद्धियां प्राप्त कीं, लेकिन उसका उपयोग उन्होंने गलत कारणों के लिये किया। चरित्र की ओर ध्यान न देने के कारण उनका विनाश हुआ। इसलिए जिसका आचरण जगत के सभी प्राणियों के लिये और अपने लिये भी कल्याणकारक होता है, जो सत्य और न्याय का बीज बोता है और परिश्रम करता है, ईश्वर उसे सौ गुना फल देता है। इसलिए चरित्र ही सफलता की कसौटी माननी चाहिए।

नहुष ने प्रश्न किया- ब्राह्मण कौन है ?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया- दान, धर्म, क्षमा, दया, शील एवं अहिंसा के गुणों से जो विभूषित है, वही ब्राह्मण है।

नहुष ने फिर कहा, यदि यही गुण ब्राह्मण की पहचान है तो ये सारे गुण तो किसी शुद्र में भी हो सकते हैं, तो क्या तुम उस शूद्र को भी ब्राह्मण मान लोगे ?

युधिष्ठिर ने कहा, जो भी व्यक्ति इन सारे गुणों से युक्त हो वह शूद्र जाति में जन्म लेने के बावजूद ब्राह्मण ही है। और यदि कोई जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी इन गुणों से हीन है तो वह वास्तव में शूद्र ही है। चरित्र ही जाति का आधार है। उत्तम चरित्र वाला व्यक्ति ही ब्राह्मण है, फिर वह किसी भी कुल का क्यों न हो ?

हमारा चरित्र ही सच्चा दर्पण है। दर्पण मे हम अपना प्रतिबिम्ब देखते है। हमारे चेहरे पर यदि काला धब्बा हो तो दर्पण में वह दिखता है और मिटाया जा सकता है। हमारा चरित्र भी एक आईना की तरह है। उससे हम कैसे दिखते है यह हर एक को अपने बारे में देखना चाहिये। दर्पण की विशेषता है हमारा रूप जैसा है वैसा ही वह दिखाता है इसी लिये कहते है **दर्पण झूठ ना बोले।** कोई व्यक्ति अपने बारे में बढा चढा कर बात करता है तो लोग कह देते है। जरा आईने में अपनी शक्ल देख इसका अर्थ है कि अपना चरित्र और लायकी को देख। केवल बाहरी रूप से व्यक्ति की पहचान नहीं होती उसकी सच्ची पहचान उसके आचरण से होती है। इसलिये चरित्र ही सच्चा दर्पण कहलाता है।

सफल होने के लिये चरित्र आवश्यक होता है यह सत्य है लेकिन चरित्र परखने के लिये अवश्य देखे। १) क्या हमें अपने पिछले किये गये कर्मो का गर्व महसूस होता है ? २) क्या हमारा काम हमें पसन्द है ? ३) हम क्या हमारे कामों से सन्तुष्ट है ? ४) क्या हम जो कर रहे है वह सर्व प्रकार से उचित और सर्वमान्य है ? ५) हमारी कथनी और करणी में, आचरण और व्यवहार में ताल मेल है ? ६) हम क्या सिर्फ सत्य का आचरण करते है या केवल सत्य का प्रदर्शन ही करते है ? ७) हम अपना कर्म करते हुये स्वयं को अपराधी तो महसूस नहीं कर रहे है ? ८) हमारी कृति किसी के हित में बाधक तो नही ? ९) हम किसी को दिया हुआ वचन पालन करते है ? १०) हमारी दिनचर्या व्यवस्थित तो है न ? ११) क्या हमारी जीवन शैली लोगों को पसन्द है ?

चरित्र सच्चे अर्थों में लाभदायक होता है। प्रेम चरित्र की नींव है। लाभदायक है अर्थात धन, नाम, प्रतिष्ठा, सफलता, विद्या ही लाभ है लेकिन ये सब बातें लाभ के केवल साधन है। लाभ से सुख मिलता है पर वह सुख भी सन्तोष कायम रखनेवाला होना चाहिये। क्योकि अवैध मार्गों से भी धन, प्रतिष्ठा, सफलता आदि बातें प्राप्त की जा सकती है लेकिन सच्चा सन्तोष नहीं मिल पाता। सच्चा सन्तोष मन की शान्ति पर आधारित होता है। गलत मार्गों से प्राप्त सुख सच्चा सन्तोष नही देता इसलिये जगत जीवन और जगदीश्वर के विषय मे प्रेम और श्रेष्ठ चरित्र ही सच्चे लाभ है।

चारित्रिक दृढ़ता बेहद जरूरी है। आज के भोगवादी दौर में समाज में व्यक्तियों में चारित्रिक दृढ़ता का अभय स्पष्ट दिखाई पड रहा है इसके चलते आज अनैतिकता, कर्त्तव्य विमुखता, गद्दारी आदि घृणास्पद अवगुणों का समावेश मानव स्वभाव में पर्याप्त मात्रा हो चला है। नैतिकता और अपने प्रति ईमानदारी के कारण पहले बुरे पेशेवालों तक के सिद्धान्त हुआ करते थे। आज की तथा कथित ऊंची सोसायटी की महिलाओं से अधिक भरोसेमन्द एवं दृढ़ चरित्र वेश्याओं के हुआ करते थे जबकि आज बडे से बडे अधिकारी, मंत्री, डाक्टर, अध्यापक आदि नैतिकता एवं चारित्रिक दृढ़ता के अभाव में चरित्रहीन एवं पथ भ्रष्ट हो चले है। लोगों की आखों का शर्म का पानी मर गया है। प्रेमिका-प्रेमी बडे बडे वादों को भूला कर

बेशर्मी के साथ दूसरे के प्रति अपनी निष्ठा का प्रदर्शन कर देते है। वर्तमान दौर में प्यार का रूप बडा ही विकृत एवं गरिमाहीन हो चुका है। चरित्र बल पर ही मनुष्य दैनिक कार्य, प्रलोभन और परीक्षा के संसार में दृढ़तापूर्वक स्थिर रहते हैं और वास्तविक जीवन की क्रमिक क्षीणता को सहन करने योग्य होते हैं।

चरित्र परिवर्तित नहीं होता, विचार परिवर्तित होते हैं, किंतु चरित्र विकसित किया जा सकता है। हमारा चरित्र महान है। चरित्र ही सफलता अथवा असफलता का द्योतक है। चरित्र सफल है तो जीवन भी सफलता की ओर बढ़ेगा, किन्तु चरित्र असफलता की ओर अग्रसर है तो जीवन अवश्य पतनोन्मुख होगा। चरित्र निर्माण उससे होता है जिसके लिए आप दृढ़ता से खड़े होते हैं। सम्मान उससे जिसके लिए आप गिर पड़ते हैं।

संस्कारों से ही चरित्र का निर्माण होता है। जिसकी प्रथम पाठशाला हमारा परिवार है। संस्कारों के संबंध में कभी-कभी बच्चे ऐसे प्रश्न अपने अभिभावकों से पूछ बैठते है जिससे अभिभावक निरुत्तर हो जाते है। आध्यात्मिकता, मानवता, नैतिकता का बीजारोपण संस्कारों की ही भूमि पर होता है। संस्कारवान व्यक्ति ही चरित्रवान हो सकता है और चरित्र के बिना व्यक्तित्व का कोई अर्थ नही। संस्कार और चरित्र का दर्पण है व्यक्तित्व। मानव की पूँजी है चरित्र, जो हमे अमरता की ओर ले जाती है। व्यक्ति संसार और उसके संबंध छोड़कर चला जाता है किंतु उसका चरित्र ही स्मरण करता रहता है। चरित्र निर्माण में सबसे बड़ी बाधा हमारा स्वार्थ और अहंकार है, जिनका हमें परित्याग करना होगा।

संस्कार हमारे अंदर व्याप्त विकृतियों को परिष्कृत करते है अत: संस्कारों को हम जितनी गहराई तक आत्मसात करेंगे उतने ही हम विकृतियों से दूर रहेंगे। सुसंस्कारित व्यक्ति अपने आसपास के लोगों को भी अपने आचरण से प्रभावित करता है, जिस प्रकार अगरबत्ती की सुगंध हमारे कमरे के कोने-कोने को सुगंधित करती है उसी प्रकार संस्कारों के स्पर्श से चरित्र और व्यक्तित्व उत्कृष्ट होता है। चरित्र हमारी शाश्वत पूंजी है जिसे हमें अक्षुण्ण बनाए रखना है तभी हमारे जीवन की सार्थकता है। जीवन के अंतिम समय में हमारा सब कुछ यही रह जाना है, शेष रह जायेगी हमारी यादे। अत: हम क्यो न अपने जीवन को कुछ ऐसा बनाएं कि युगो-युगो तक लोगों की स्मृति में जीवित रहे। चरित्र से हम स्वयं के अतिरिक्त अपने परिवार, समाज और राष्ट्र को गौरवान्वित कर सकते है। साथ ही भौतिकता पर नहीं हमे अपने चरित्र पर गर्व होना चाहिए। इसी के आधार पर हमारा सर्वांगीण विकास संभव है। यदि हमारा चरित्र नष्ट हो गया तो समझो हमारा सब कुछ नष्ट हो गया। इसे हमें हर स्थिति में स्वच्छ और सुरक्षित रखना है। चरित्र से आत्मबल का निर्माण होता है। हमारा चरित्र हमारे कर्म को परिष्कृत करते है और यदि हमारे कर्म परिष्कृत होंगे तो निश्चित रूप से हमारा सुख, समृद्धि और शांति का मार्ग प्रशस्त होगा। उत्कृष्ट चरित्र से ही उत्कृष्ट चिंतन संभव है। चरित्र वह पूँजी है जिसे बनाने में तो समय लगता है और त्याग चाहता है किंतु नष्ट होने मे देर नही लगती। पारिवारिक सुख, समृद्धि का आधार है चरित्र। तमाम ऐसे भी परिवार देखने को मिलते है जिनके टूटने का एकमात्र कारण चारित्रिक पतन ही होता है। ऐसी स्थितियों से हमें स्वयं को और अपने परिवार को बचाना है। धन, वैभव तथा शारीरिक सुख-सुविधाओं के संसाधन तो प्रयास करके अनेक बार अर्जित किए जा सकते है किंतु चरित्र एक बार नष्ट हो जाने पर पुन: प्रतिष्ठित करना असंभव होता है। चरित्र निर्माण की दिशा में हमें अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करना चाहिये।

भूत-प्रेत, पिशाच

गीता और ग्रथों में लिखा है कि स्वाभाविक मौत होने पर आदमी जन्म-पुनर्जन्म के चक्र में चलता रहता है। नया जन्म मिलता रहता है। कर्म के अनुसार कर्मफल, सुख भोगता रहता है। किंतु इसके विपरीत आत्मघात, फांसी, दुर्घटना, जहर आदि से अकाल मृत्यु होने पर आदमी की गति नहीं होती है, मुक्ति नहीं होती है। उस स्थिति में उसकी आत्मा भटकती रहती है उसे प्रेतयोनि मिलती है, भूत प्रेत, कलवा-चुड़ैल, डायन पिशाच, ब्रह्मराक्षस के रूप में भटकती है और हजारों सालों तक ये कष्टपूर्ण नारकीय प्रेतयोनि भुगतनी पड़ती है। प्रेत योनि एक सजा है जो हजारों सालों तक चलती है। पूर्व में अकाल मृत्यु और आत्महत्या से मरने वाले लोगों की भटकती दुष्ट प्रेत आत्माएं इन्हें परेशान करती हैं। एक मिनट का भी चैन नहीं मिलता। मनुष्य का शरीर पांच तत्वों, अंतरिक्ष, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से बना होता है। अकाल मृत्यु होने पर शरीर का जल तत्व व पृथ्वी तत्व दाह-संस्कार या समाधि देने या गाड़ देने से नष्ट हो जाता है किंतु अकाल मृत्यु वाले के शरीर का वायु अग्नि अंतरिक्ष तत्व नष्ट नहीं होता। इसीलिए ये भटकती आत्मा सूक्ष्म शरीर से मिनटों में पृथ्वी के किसी भी कोने से कहीं भी आ-जा सकती हैं। आकाश में उड़ सकती हैं। धुंआ, अग्नि-अंगारे, आग की लपट के रूप में दिख सकती है। भौतिक देह की मृत्यु होने पर भी उनकी लालसा, पिपासा, वासना, हवस, कामना, लोभ, मोह नष्ट नहीं होता इसलिए ये अधिकांश अपने निवास के स्थान अथवा मृत्युस्थल के निकटतम रहने का प्रयास करती हैं। मृत्यु के समय इनकी इच्छाएं अतृप्त रह जाती हैं। इसी कारण इनकी मुक्ति नहीं हो पाती। रहने के लिए इनको किसी खंडहर, सुनसान मकान, सूने घर, पुराने महल में शरण लेनी होती है, नहीं मिलने पर श्मशान और कब्रिस्तान इनकी अंतिम शरणस्थली होता है किंतु वहां पर पहले से मौजूद हजारों साल पुराने भूत सताते हैं इसलिए यह और कहीं ठिकाना ढूंढते फिरते हैं। निवास स्थल नहीं मिलने पर इन्हें गंदी-गंदगी भरी सड़ांध भरी जगहों पर रहने को मजबूर होना पड़ता है।

इन्हें संत व शुद्ध पावन, ईश्वर भक्त व्यक्ति, गंगाजल, शुद्धजल, भगवान की पूजा स्नान से उतरे चरणामृत और पवित्र अग्नि, हवन की अग्नि, ईश्वर का नाम बजरंगबली, हनुमान या श्रीराम का नाम, गायत्री मंत्र, अम्ब देवी मां का नाम उच्चारण आदि से भयंकर भय लगता है। यज्ञोपवीत धारण करने वाले व्यक्ति को यह कोई कष्ट नहीं पहुंचा सकते। जबकि दरिद्री, अपवित्र, कई दिन से स्नान नहीं करने वाले, गंदे लोगों और उगरक्या लोग, यानी जिनका जन्म उल्टा, पैरों की ओर से हुआ, उन्हें ये आसानी से दिख सकते हैं और ऐसों को ही ये पीडित करने में सफल हो जाते हैं। प्रेत योनि की भूत आत्माएं शुद्ध जल नहीं पी सकतीं। समुद्र पी जाएं इतनी प्यास लगती है क्योंकि उनके शरीर में अग्नि तत्त्व होता है किंतु शुद्ध जल ये नहीं पी सकते। इन्हें मल-मूत्र पीना पड़ता है। आदमी पंच-भूतों का बना होता है। इसलिए आदमी में शक्ति ज्यादा होती है। सिर्फ भय के कारण आदमी इनसे डरता है, मंत्र शक्ति से संपन्न पंडित इन्हें मंत्र बल से गुलाम बना सकता हैं और मंत्र बल ही उसे प्रेत योनि से मुक्ति भी दिला सकता है। यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार या नगर में विधि विधान से यदि अपने कुल की भटकती आत्माओं, पूर्वजों, पितरों का अहवाहन करके पाटले या गमले में उन्हें स्थापित करके आसन देकर श्रीमद्भागवत कथा करवाता है तो उनके पितर पूर्वज प्रेतयोनि से मुक्त होकर देवलोक-गो-लोक में जा सकते हैं। ये सत्य है, शास्त्रोक्त भी है और अनुभूत सत्य भी है। कई बार लोगों को ऊपरी हवा लगा जाती है। अर्थात किसी पर किसी आत्मा का साया पड़ जाता है। यानि प्रेत लग जाता है। इसके दो कारण होते हैं। पहला यदि कोई व्यक्ति प्रेत आत्मा के निवास पर कोई गड़बड़ करता है। उसे परेशानी हो तो उसकी सजा देने के लिए वे आदमी की काया में पवन मार्ग से प्रवेश

कर उसे पागल कर देते हैं। दूसरा, पूर्व जन्म का बैर लेने के लिए भी ये आत्माएं किसी के शरीर में प्रवेश कर जाया करती हैं और कई बार तो आदमी की मृत्यु का कारण भी बनती हैं।

मंत्रज्ञ ब्राह्मण या हनुमान जी का चमत्कारी मंदिर स्थल ऐसे आदमी की जान बचा सकता है। राजस्थान और मध्य प्रदेश में प्रसिद्ध ऐसा पवित्र स्थल है मेहन्दीपुर बालाजी। यह पूर्वी राजस्थान में है जबकि श्री शौली हनुमान ही चित्तौड़ जिले की अरनोद तहसील में स्थित है। जहां आज तक हजारों भूत-बाधा से पीड़ितों को मुक्ति मिली है।

किसी भी गांव या नगर क्षेत्र के आसपास प्रेत आत्माओं की संख्या उस नगर की जनसंख्या के लगभग आधी होती है किंतु इनके ऊपर दिग्पाल, क्षेत्रपाल और भैरव का नियंत्रण होता है। उन्हीं के अनुशासन और नियम कानून में रहना पड़ता है। इसीलिए सनातन हिंदू धर्म के अनुसार हजारों साल से आज तक हर कुलवंश का एक कुल देवता, कुलदेवी और कुल भैरव का स्थान होता है। मसाणिया भैरव का स्थान प्रबल होता है।

इस दूसरी दुनिया में कुछ देवआत्माएं भी होती हैं। आजकल कई कुलवंशों में जिनके यहां घर के देवता किसी के शरीर में कभी नहीं आते थे, वहां से भी आने लगे हैं। किसी के पितर, किसी के पूर्वज, किसी की कुलदेवी, सती माता आदि देव शरीर में आने लगे हैं। पितर और पूर्वज शरीर में आकर कहते कि मुझे खेत-खलिहान, बाग-बगीचे में फलां स्थान पर मूर्ति स्थापित कर चबूतरे पर बिठाओ। इसका एक प्रमुख कारण यह कि मृत्यु के बाद की दूसरी दुनिया में भारी कष्ट, दु:ख, आतंक, तंत्रबल आदि चीजें बढ गई हैं। इसलिए वे मूर्ति के रूप में किसी स्थान पर बैठना सुरक्षित और श्रेष्ठ मानकर विधिपूर्वक बैठ जाते हैं। उनकी पूजा करनी चाहिए। इससे वे परिजनों-वंशजों की मनोकामना की पूर्ति करते हैं।

इनकी अनेक तरह की विपत्तियों, दुर्घटनाओं आदि से रक्षा करते हैं। बाधाओं को दूर करते हैं। तभी तो गांव-गांव और नगर-नगर में डगर-डगर पर देवताओं के छोटे-छोटे ओटले, चबूतरे होते हैं। कभी भी ऐसे स्थानों को भूलकर भी थूक, मल-मूत्र से अपवित्र नहीं करना चाहिए वरना प्राण संकट में पड़ सकते हैं।

कोई मानसिक रचना जिसे किसी मरे व्यक्तिके विचार या भाव किसी स्थान या मुहल्लेके वातावरणपर मुद्रित कर जाते है। यह रचना वहां घूमती रहती है या अपने-आपको दुहराती रहती है जबतक कि वह शेष नहीं हो जाती या किसी कारणसे विलीन नहीं हो जाती। कभी-कभी जो किसी हत्याके समयकी, उसके संबंध की या उसके पहलेकी घटनाओंके दृश्य किसी भुतहे घरमें बार-बार दिखायी देते रहते हैं उनकी, और इसी प्रकारके जो बहुत सारे अन्य व्यापार होते रहते हैं उनकी, व्याख्या भी यही है। निम्नतर प्राणिक लोककी कोई सत्ता जो किसी जीवित मनुष्यके माध्यमसे या किसी अन्य विधि या साधनसे पर्याप्त मूर्त आकार धारण कर लेती है और इस तरह प्रकट होती और कार्य करती है कि लोग देख सकें, इस तरह बोलती है कि लोग सुन सकें अथवा प्रकट हुए बिना वह स्थूल चीजोंको, जैसे मेज-कुर्सी आदिको, इधर-उधर हटाती है या चीजोंको स्थूल रूपमें प्रकट करती है या उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह हटा देती है। इससे वे बातें समझमें आ जाती हैं जिन्हें लोग कहते हैं- पेड़ोंपर रहनेवाले भूत, पत्थर बरसानेकी घटना, तंग करनेवाले और शोर करनेवाले शैतान और ऐसे ही बहुतसे अन्य जाने-सुने व्यापार। ऐसी छाया-मूर्तियां जो अपनी ही रचनाएं होती हैं और इन्द्रियोंको स्थूल रूपमें दिखायी देती हैं। कुछ समयके लिये उन प्राणिक सत्ताओंका लोगोंपर अधिकार कर लेना जो कभी-कभी उनके मरे हुए संबंधी आदि होनेका बहाना करती हैं। मृत्युके समय लोगोंद्वारा प्रक्षिप्त अपनी ही विचार-मूर्तियां जो उसी समय या कुछ घंटों बाद उनके मित्रों या संबंधियोंके सामने प्रकट होती है ये ही भूतप्रेत, पिशाच के रूप में समक्ष होते हैं।

मनुष्य-मानव, मानवता-महानता, महापुरुष-महान व्यक्ति, सत्पुरुष-सज्जन

दुनिया में अनन्त-अनन्त प्राणी हैं। विश्व का एक-एक कण, आकाश का एक-एक प्रदेश जीवों से भरा हुआ है। इतने जीव हैं, जिनकी गिनती नहीं की जा सकती, जिन्हें नापा नहीं जा सकता। असंख्य नहीं, अनंत-अनंत जीव हैं इस संसार में। इन सब जीवों में मनुष्य एक प्राणी है। उसकी अपनी मौलिक विशेषताएं हैं। जो विशेषताएं मनुष्य में हैं, वे दूसरे प्राणियों में नहीं है। अन्तरग्रहीय या अन्तर नक्षत्रीय किसी भी भूखण्ड में रहने वाले प्राणी में मनुष्य जितनी विशेषता नहीं हैं। मनुष्य की अपने तीन मौलिक विशेषताएं हैं- विचार, वचन और व्यवहार। विचार करने की क्षमता मनुष्य में है, वह किसी दूसरे प्राणी में नहीं है। वचन की जो शक्ति मनुष्य में है, वह किसी दूसरे प्राणी में नहीं है। व्यवहार की क्षमता भी जैसी मनुष्य में हैं, वैसी किसी प्राणी में नहीं है। ये तीन ऐसे गुण हैं, ये तीन ऐसी विशेषताएं हैं, जो मनुष्य को शेष सारे जगत के प्राणियों से अलग कर देती हैं। चिन्तन मनुष्य की अपनी विशेषता है। मनुष्य जितना सोचता है, चिन्तन करता है, वह विलक्षण है। अपने चिन्तन के बल पर उसने बहुत विकास किया है। उसने अपने चिन्तन से जगत को बदल दिया। वैज्ञानिक सभ्यता के इस युग में आदमी कहां से कहां पहुंच गया।

संसार में मानव को प्राप्त ज्ञान प्रभु की एक विशेष देन है। जिसकी मदद से वह प्रभु दर्शन कर सकता है जो किसी भी अन्य जन्म में संभव नही है। यही कारण है कि देवता भी मानव जीवन पसंद करते है तथा पृथ्वी पर मानव जन्म धारण करने हेतु सदैव लालायित रहते है। जिससे उन्हे मोक्ष प्राप्त हो सके। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है कि -बड़े भाग्य मानुष तन पावा, सुर, नर, मुनि सब ग्रन्थन गावा। कहा जाता है कि मनुष्य शरीर अनमोल है। क्योकि ज्ञान की प्राप्ति केवल इसी से संभव है। मानव शरीर प्राप्त होने पर ज्ञात होता है कि यह शरीर नश्वर एवं विश्व परिवर्तनशील है। इस प्रकार की धारणा बनाकर इंद्रियजन्य विषयों को त्याग कर तथा सत्य असत्य का विवेक कर ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। यदि हम शरीर को तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा करेंगे तो हम ईश्वर दर्शन से वंचित रहेंगे और यदि हम उसे मूल्यवान समझकर मोह करेंगे तो हम इंद्रिय सुखों की ओर बढ़ेंगे। अत: उचित तो यही है कि इस नश्वर शरीर की न तो उपेक्षा करें और न ही आसक्ति रखें। ईश्वर दर्शन एवं आत्म साक्षात्कार ही उद्देश्य होना चाहिए।

अनेक प्राणियों की उत्पत्ति करने के पश्चात भी ईश्वर को संतोष नहीं हुआ। कारण यह है कि कोई आदमी उसकी अलौकिक रचना एवं सृष्टि को समझने मे समर्थ न हो सका। इसी कारण उसने एक विशेष प्राणी अर्थात मानव की उत्पत्ति की और उसे ज्ञान का विशेष गुण प्रदान किया। जब ईश्वर ने देखा कि मानव उसकी लीला, अद्भुत रचनाओं तथा ज्ञान को समझने के योग्य सिद्ध हुआ। तब उन्हे हर्ष एवं संतोष हुआ। इसलिए मानव जन्म प्राप्त होना बड़े सौभाग्य की बात होती है। मानव जन्म अति दुर्लभ है। मानव जन्म का महत्व तब और बढ़ जाता है जब हमे सफलतापूर्वक प्रभु साक्षात्कार प्राप्त करने का एकमात्र उपाय किसी योग्य संत के चरणों की शीतल छाया मे मिले। जो प्रकाश हमे सूर्य से मिल सकता है वह संसार के सारे तारों से प्राप्त होना संभव नहीं है। उसी प्रकार हमें आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति संत से हो सकती है। आध्यात्मिक और मानसिक सुख केवल मानव जन्म पाकर ही संभव है। बिना मानव जन्म के यह सब नहीं मिल सकता।

मानव जन्म में भी जब संतो की कृपा मिले तभी संभव है। क्योकि अच्छे मनुष्य तभी आप बन सकेंगे जब आपकी सोच अच्छी होगी और सोच अच्छी सत्संगति से ही होती है। कहा जा सकता है कि मनुष्य ही सब कुछ पा सकता है। क्योकि अच्छा मनुष्य सेवा को ही अपना धर्म समझता है। सभी जीवों पर दया करता है।

इस संसार में भूचर, जलचर और नभचर-तीन प्रकार के जीवधारी पाए जाते हैं, परंतु ईश्वर ने इनमें से मनुष्य को ही सोचने-विचारने की शक्ति और बुद्धि दी है। इसके चलते ही वह समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में लिखा है- यह परम रहस्य की बात है कि संसार में मनुष्य से बढ़कर कुछ अन्य नहीं, अर्थात वह सर्वश्रेष्ठ हैं।

लेकिन मनुष्य योनि में जन्म लेने से ही कोई मनुष्य नहीं बन जाता, इसके लिए उसे शिक्षित एवं संस्कारित होना पड़ता है। केवल शिक्षा प्राप्त करने से ही कोई व्यक्ति मनुष्य नहीं बन सकता। मानवता पाने के लिए उसे अपनी मानसिक प्रवृत्तियों को परिष्कृत करना होता है। ईश्वर ने मनुष्य को कर्म करने के लिए तीन मुख्य साधन- मन, वाणी और शरीर दिए हैं। मनुष्य अपने मन में जो विचार करता है, वही वाणी से कहता है। वाणी से जो कहता है, वही शरीर से करता है।

शास्त्रों में सत्य को धर्म का पर्याय माना गया है। मनुष्य में समस्त जीव जगत के लिए प्रेम, सद्भाव, परोपकार, स्वावलंबन तथा कृतज्ञता की भावना का होना भी आवश्यक है। ये सब गुण ज्ञान और नम्रता के बिना प्राप्त करना संभव नहीं है। श्रद्धावान ही ज्ञान प्राप्त करता है। बड़ों के प्रति सत्कार और श्रद्धा से आयु, विद्या, यश एवं बल की प्राप्ति होती है।

मनुष्य-मानव - अच्छा बनने का निरंतर प्रयास ही हमें पशु से श्रेष्ठ बनाता है।

हम भले ही पशु-पक्षी से उन्नत हों, लेकिन मानसिक स्तर पर हर मनुष्य समान नहीं है। कुछ मनुष्य दुनियावी कर्म में परमपुरुष को नहीं देख पाते हैं। जब एकांत में साधना-भजन करते हैं, तब परमपुरुष को देखते हैं। कुछ मनुष्य दुनियावी और आध्यात्मिक, किसी भी काम में परमपुरुष को नहीं दिखते हैं। वे सोचते हैं कि परमपुरुष है तो मेरे सामने आए। कुछ मनुष्य जड़ जगत को ही सब कुछ मान लेते हैं। इसलिए इंसान में स्तर विन्यास है।

प्रारंभिक स्तर पर हर जीव पशु के समान है। सुशिक्षा और सत्संग से उनमें आध्यात्मिक बोध जागता है। जिसको सुशिक्षा या सत्संग नहीं मिलता, वह पशु समान रह जाता है। जब मनुष्य में आध्यात्मिक भूख आ जाती है, तब वह महसूस करते हैं कि उन्हें भी कुछ करना चाहिए। परमात्मा की कृपा तो मुझ पर अवश्य ही है और इसलिए मनुष्य का शरीर मिला है तो मुझे भी तो कुछ करना है। मनुष्य जब यह महसूस करते हैं तब वे पशुओं के समान नहीं रहते। उन्हें हम वीर कहते हैं। वीर अर्थात हिम्मत के साथ जो मनुष्य दुनियावी तथा मानसिक बाधाओं के खिलाफ लड़कर आगे बढ़ते हैं। जिनमें इस तरह की लड़ाई करने की हिम्मत है वे ही सच्चे वीर हैं।

आध्यात्मिक राह वीरों की राह है, कापुरुषों की नहीं। यह मनुष्य का दूसरा स्तर है। अंतत: यह जो वीरभाव है कि मैं हिम्मत के साथ संग्राम कर, बाधाओं के खिलाफ लड़ाई लड़कर आगे बढ़ूंगा और किसी भी तरह की बाधा से नहीं डरूंगा, जिसके मन में स्थायी रूप से यह बैठ जाता है, वह मनुष्य के तन में देवता बन जाता है। प्रारंभिक स्तर के पशु भाव में मनुष्य में तरह-तरह के दोष रहते हैं, मगर मनुष्य उन दोषों को सुधारने का प्रयास करते हैं। यह जो प्रयत्न है, यही उनकी बहादुरी है, यही उनकी श्रेष्ठता है। वे पशु से श्रेष्ठ हैं। पशु अच्छा बनने की कोशिश नहीं करते हैं, मगर मनुष्य करते हैं। मनुष्य का ही परिष्कृत स्वरूप मानव कहलाता है।

मनुष्य का चाल-चलन, रहन-सहन ठीक नहीं, मगर ये अच्छा बनने के लिए प्रयासशील हैं। मैं इसी को पश्वाचार

कहता हूं। यहां परमात्मा विद्या तथा बुद्धि के अनुसार विचार नहीं करते हैं। वे तराजू में तौलते हैं कि किन में कितनी मुहब्बत है। वह जो पश्वाचारी है, प्रथम स्तर के साधक, क्या वे परमपुरुष को प्यारे नहीं हैं? अवश्य प्यारे हैं क्योंकि वे भी तो परमपुरुष की संतान हैं, परमपुरुष की ही सृष्टि हैं। हे परमपुरुष, मैं पशु के समान हूं, मगर मैं तुमसे दूर नहीं हूं। मैं पशु हूं तो तुम पशुपति हो। मनुष्य जब धीरे-धीरे साधना करते-करते और परमपुरुष के लिए मुहब्बत बढ़ाते-बढ़ाते आगे बढ़ जाते हैं तब उनमें हिम्मत जग जाती है, लड़ने की शक्ति आ जाती है।

पुरुष देह धारी व्यक्ति को नर या मनुष्य कहते है। नित्य कर्म करनेवाला, सभी संस्कारों से पावन, देह, वर्णाश्रम से आचार सम्पन्न व्यक्ति को नर कहते है। नये धातु से नर शब्द बना है। इसमे नय यानि नीति सम्पन्न व्यक्ति या अपने शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि पर नेतृत्व की क्षमता रखनेवाला नेता यानी नर है। मनुष्य की परिभाषा करते हुये भी मत्वा कर्माली सीव्यान्ति इति मनुष्या: कहा गया है। जो व्यक्ति (मत्वा) मनन, विवेक पूर्ण कर्माणी क्रियाओं को (सीव्यान्ति) सीना है। जोडता है वह मनुष्य है अर्थात जिन व्यक्ति का चलन ज्ञान पर आधारित है, जो पहले समझदार करता है, तोल कर बोलता है, सोच कर कदम उठाता है वही मनुष्य है।

संसार में मनुष्य किसी पर्यटक की तरह है। पर्यटक अपना देश छोड कर परदेश में जाकर दर्शनीय स्थानों की यात्रा करता है। नई जानकारी लेकर ज्ञान प्राप्त करता है, नये-नये मित्र जोडता है मगर इन सबके बीच पुत्र, फोन इत्यादि द्वारा अपने स्वदेश से भी सम्पर्क करता है ठीक उसी प्रकार ईश्वर रूपी देश से मानव देह की गाडी में बैठकर जीव संसार रूपी विदेश में आता है। जगत से नाता जोडता है, जगत का ज्ञान प्राप्त करता है और कई रिश्ते बनाता है। कई लोग स्वदेश से सम्पर्क रखते है यानि ईश स्मरण करते है और पर्यटक की अपनी भूमिका बडी खूबी से निभाते है।

महाकवि कालिदास ने मूर्ख व्यक्तियों के लक्षण बताये। एक स्थान पर बैठकर भोजन करना मनुष्यों का नियम है। जो लोग राह चलते-चलते खाते है या राह मे खाते हुये बैठकर या जोर से हंस कर बात करना सभ्यता का नहीं बल्कि मूर्खता का प्रदर्शन है। नष्ट हो चुकी वस्तुयें, दूर गये हुये या मृत व्यक्तियों का शोक करते रहना, उसमें अपनी उपेक्षा करना बुद्धिमानी नहीं मूर्खता कहलाती है। किसी सत्कार्य का श्रेय लेना ठीक है फिर भी मैने किया मैने किया की रट लगाना मूर्खता है। दो लोग यदि आपस में बात कर रहे हो तो उनके बीच में बोलना मूर्खता है।

मनुष्य को भटके हुये भगवान की मिसाल दी जाती है। मनुष्य भगवान का दूसरा रूप है। पुराणों में कहा गया है कि सृष्टि निर्माण के समय मनुष्य से पहले ईश्वर ने अनेक प्राणी निर्माण किये, लेकिन वे प्राणी अपने-अपने विषय में ऐसे रम गये कि अपने निर्माता ईश्वर को ही भूल गये। उसके बाद ईश्वर ने अपने ही मुख्य अंश से मानव प्राणी उत्पन्न किये। उसे आत्म ज्योति और अनेक शक्तिया दी। उसके लिये रहने के लिये सुन्दर संसार बनाया। लेकिन यह दुर्भागी मनुष्य अपने निर्माण का उद्देश्य भुला कर जग की भूल भूलैया में खो गया। नर से नारायण बनने की शक्ति ईश्वर ने मानव में कूट कूट कर भरी है लेकिन उधर देखे बिना मनुष्य अनेक दु:ख दायी कटीले वनों में सुख का मार्ग ढुंढता है जो स्वयम् उसके अन्त:करण में है। इसलिये मनुष्य को भटके हुये भगवान का स्वरूप मानते है।

हर व्यक्ति के लिये सबसे महत्वपूर्ण है सच्चा इन्सान बनना। बहुत बडा धनवान या धरती का भगवान होने से भी अधिक यह महत्वपूर्ण है। पैसे का मोह उससे भलमनसाहत छीन लेता है और उसे हैवान या बुरा इन्सान बना देता है। सभी पढ़ते व सुनते है कि लालच बुरी बला है, लालच अभिशाप है। मगर बहुत कम लोग इस पर अमल करते है। ईश्वर की कृपा से

ऐसे व्यक्ति माया के दास नहीं होते। उनके आस पास के लोग उनकी जान पहचान के लोग, उनके सम्पर्क में आनेवाले लोग उन्हे भला व्यक्ति कहते है। उनकी भलमनसाहत का लाभ उठाते है। किसी व्यक्ति से उसके आसपास के लोग दु:खी हो, उसे बुरा करहते है या समझते हो तो उसे आत्ममंथन की जरूरत है। उसे अपना जीवन पथ बदलने की जरूरत है।

इस संसार में अज्ञानी और विद्वान दोनों होते है। आम लोगों को वे एक जैसे दिखते है। दोनों एक समान तरीके से कार्य करते है। लेकिन कार्य का उद्देश्य दोनों का अलग रहता है। अज्ञानी फल की आसक्ति से कर्म करता है। लेकिन विद्वान आसक्ति छोडकर कर्म करता है। विद्वान यानी शास्त्र रटनेवाला व्यक्ति नहीं है। उसे शब्द ज्ञानी या अधिकतर पंडित कहते है। इसलिये जिसके जीवन में ईश्वरी तत्व प्रकट हुआ है वही विद्वान है। विद्वान मनुष्य लोकसंग्रह के लिये कर्म करता है। लोकसंग्रह यानि गलत मार्गों पर जा चुके लोगों को सन्मार्ग दिखाना। यह काम केवल विद्वान कर सकता है। क्योंकि वह शक्ति से कृति, विचार से आचरण अधिक महत्वपूर्ण समझता है। सच्चा विद्वान लोगों को संगठित कर, उनका मार्गदर्शन करता है। आम व्यक्ति कर्म फल की लालसा से जितने उत्साह से काम करता है उससे ज्यादा उत्साह से नि:स्वार्थ बुद्धि से कार्य करता है।

पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड में मानव रूपी भगवान किसे कहा जाये यह लक्षणों सहित वर्णन किया गया है। आज इन लक्षणों के साथ मनुष्य मिलना कठिन है लेकिन देवता बनने के लिये मनुष्य को कौनसे गुण धारण करने चाहिये इसकी जानकारी में लिये पद्मपुराण मे लक्षणों का वर्णन किया है। १) जो व्यक्ति ब्राह्मण, ईश्वर, अतिथि, गुरु एवम् साधुओं की पूजा में लीन रहता है। २) धर्मनीति में स्थिर, क्षमाशील, सत्यवादी एवम् इन्द्रियों को जाननेवाला ३) मधुर बाते करनेवाला, लोकप्रिय, सभी कार्यों में सावधान रहनेवाला ४) क्रोध-मोह-लोभ न रखनेवाला, मांसाहार न करनेवाला ५) अतिथियों और पर्वकाल के समय दान करनेवाला ६) स्नान-दान आदि शुभ कर्मों, व्रत, यज्ञ, देवपूजन करनेवाला इन गुणों से युक्त मनुष्य भगवान के समान जानना चाहिये।

विरक्त किन्तु लोभी, योगी किन्तु इन्द्रियासक्त, व्युत्पन्न किन्तु क्रोधी ये सब मूर्ख है। वैसे ही ज्ञानी किन्तु वैराग्य हीन, भक्त लेकिन श्रद्धा हीन, परिवार प्रिय लेकिन निर्धन ये भी मूर्ख माने जाते है। मूर्खों के लक्षण निर्लज्ज, शठ, क्लीब, निर्घृण, व्यसनासक्त, अतिलोभी, अहंकारी, क्रूर, दुर्भाषण करनेवाला हठी, अच्छे बुरे का ज्ञान न रखनेवाला, ईश्वर का स्मरण न करनेवाला, अपने आपको बडा समझने वालो, औरतों को छुप कर देखने वाला, व्यर्थ बक बक करनेवाला, असत्य को सत्य माननेवाला इत्यादि यह सब मूर्ख व्यक्तियों के लक्षण है।

कठिनाईयां मनुष्य के पुरुषार्थ को जगाने के लिये आती है और आत्म निरीक्षण और आत्म निर्माण ही सबसे बडा पुरुषार्थ है। साधना न तो परावलम्बन है, न याचना। उसे आत्मविष्कार का सुनियोजित आधार मात्र ही माना गया है। मानव जीवन का परम पुरुषार्थ, अपनी निकृष्ट मानसिकता से त्राण पाना है अत: ऊंचा उठे, प्रसुप्त को जगाये और जो महान है उसका अवलम्बन करे।

जो उत्पन्न होता है वह काल के प्रवाह में पुराना होता है या नष्ट होता है लेकिन कुछ बाते नित्य नूतन नई लगती है। पंच तन्त्र के कर्त्ता ने बताया है प्रतिदिन का सूर्योदय नित्य नया लगता है, सूरज कभी बासी नहीं होता। जो भी व्यक्ति को नित नया आनन्द दे वह सब उसकी नजर में नित्य नूतन होता है। मानव स्वभाव नवीनता का प्रेमी होता है। इस प्रेम से वह नवीनता से भरी चीजें बनाता है।

मानवी जीवन परम पिता परमेश्वर की एक श्रेष्ठ एवम सुनियोजित व्यवस्था है। सन्त तुलसी दासजी ने कहा है कि, जो शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है वह मनुष्य को मिला है। मनुष्य में ही ऐसी कौनसी विशेषता है जिसके कारण उसे यह सर्वांग सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ ? आम तौर पर तुलनात्मक मनुष्य समान रूप से मौजूद है फिर भी मानवी शरीर ही सर्व श्रेष्ठ माना गया है। मनुष्य पक्षी के समान आकाश में उड नहीं सकता। अथवा बन्दर के जैसा एक पेड से दूसरे पेड पर छलांग नहीं लगा सकता। बैल की तरह वह भारी वस्तु ढो नहीं सकता। शारीरिक दृष्टि से भी वह कई प्राणियों की तुलना में कमजोर होता है। इसके बाबजूद उसमे ऐसी क्या विशेषता है जो वह सब प्राणियों मे श्रेष्ठ है। मनुष्य की सद्बुद्धि विवेक ही उसकी अन्यों की अपेक्षा विशेषता है।

कुछ लोग हमेशा परावलम्बी, आश्रित जीवन जीना चाहते है। इसके लिये उन्हे किसी प्रकार का पश्चाताप नहीं होता, लेकिन इसके विपरीत कुछ लोग समझदार होते है, लेकिन स्वार्थ सिद्धि के लिये ही जीते है। उनके पास योग्यता हुये भी वे लोभ, मोह एवम् अहंकार की पूर्ति हेतु ही अपनी योग्यता का इस्तेमाल करते है। चमकने वाले कांच को लेकर हीरा समझ ले बैठते है। अपना बहुमूल्य जीवन सामान्य उपभोग में व्यतीत करते है। आदर्श से उनका दूर का भी रिश्ता नहीं होता है। उच्च रहन सहन ही आदर्श जीवन प्रणाली नहीं है। भोगवादी जीना ही इनका आदर्श होता है। कृपणता एवम् डर के कारण यह पुण्य अथवा परमार्थ का विचार ही नहीं करते इसके विपरीत अवसर पाते ही अनुचित कार्य करने में भी नहीं हिचकिचाते। ऐसे लोग पशु समान ही होते है और वैसा ही अपना जीवन यापन करते है।

मनुष्य के चार प्रकार होते है। १) स्वार्थी :- स्वार्थी व्यक्ति मक्कार होता है। किसी के जलते हुये घर पर वह अपनी रोटी सेकना चाहता है। वह उसे जलाता नहीं है। २) न स्वार्थी न परार्थी :- लोग अपने या परायों का हित नहीं देखते। खूब पैसे कमाते है और किसी लत में फूंक देते है। किसी के भोजन में मक्खी मुंह में जाती है उस आदमी के उल्टी होने से मक्खी भी मरती है और स्वयं भी ऐसे ही तरह के यह लोग होते है। ३) स्वाथ और परार्थी :- लोग अपना और दूसरों का दोनों का हित साधते है। जैसे नाव खेने वाला अपने नाव में स्वयं भी पार हो जाता है और औरों को भी पार लगा देता है। ४) परार्थी:- ये लोग अपना हित परे रखकर औरों का कल्याण करते हे। वृक्ष अपने फल, नदी अपना पानी और गाय अपना दुध स्वयं उपयोग नहीं करते औरों को ही देते है। साधु संत इसी श्रेणी में है।

विद्वान बुद्धिशाली और मूर्ख व्यक्ति मन की विचार अवस्था से पहचाने जाते है। बुद्धिवान वही है जो अच्छे विचार पालता है। काव्य, शास्त्रों में वह समय बिताता है और मूर्ख कौन है ? जो व्यसन, निद्रा, प्रमाद या झगडों में अपना समय व्यतीत करता है। बुद्धिमान मनुष्य के अच्छे चिन्तन के कारण उसकी निरन्तर प्रगति होती रहती है औरों का भी मार्गदर्शन करता है। इस प्रकार के दस बुद्धिमान हजारो मूर्खों का हृदय परिवर्तन कर सकते है। इसके विपरीत मूर्ख व्यक्ति रात दिन गलत चिन्तन करते है जिससे उन्हे बुरी आदतें लगती है। आलस्य और निद्रा में उनका समय नष्ट होता है और समय न बीतता हो तो वे जान बूझकर कलह निर्माण कर, खुद को तथा औरों को अशांत करते है। इसलिये मन को सतत कुविचारों का खाद्य देना आवश्यक है।

उचित आस्था न रखने वाला मनुष्य ही मूर्ख है। जो अपना हित नहीं जानता या जिसे बुद्धि नहीं होती उसे मूर्ख कहा जाता है। मूर्खता की एक और व्याख्या है कि जिस व्यक्ति की कहीं आस्था नहीं है वह मूर्ख है। इस पर नास्तिक लोग कहते है कि हमें किसी धर्म पर या भगवान पर विश्वास नहीं है। तो आस्था रखने का प्रश्न ही नहीं उठता पर जरा सोचे

मनुष्य श्रद्धावान प्राणी है। कहीं न कहीं उसकी आस्था होती ही है। कुछ ईश्वर पर आस्था रखते है, कुछ गुरुओं पर, ग्रन्थों पर, धर्म या माता-पिता में आस्था रखते है। अपने देश, अपनी मातृभूमि पर आस्था न रखनेवालों को मूर्ख ही मानना चाहिये। अपने अच्छे कार्यों पर आस्था न रखनेवाला मूर्ख ही है। और स्वयं पर जो आस्था (आत्मविश्वास) नहीं रख सकता वह भी मूर्ख है।

राजा भर्तृहरी ने चार तरह के इन्सानों का वर्गीकरण किया है। उत्तम कोटि के मानव वे है जो दूसरों के हितों के लिये अपने हितों को कुर्बान कर देते है। ऐसे को देव पुरुष कहा जाता है। जो अपने हितों के लिये दूसरे के हितों की अनदेखी नही करते, ऐसे को मनुष्य कहते है। अपने हित के लिये जो दूसरों का अहित करना ही ठीक रास्ता मानते है, उन्हे तो राक्षस या दानव ही माना गया है। बिना किसी वजह से सिर्फ अपने मानसिक आनन्द के लिये दूसरों का अहित करना ही जिनका कर्म है, ऐसे दानव पतित के लिये शब्द कोश में भी कोई शब्द ही नहीं है। इन चारों तरह के लोगों में हमारा स्तर कौनसा होना चाहिये, इस पर चिन्तन मनन अवश्य करते रहना चाहिये, मनुष्य से देव पुरुष बनने की आकांक्षा हमेशा करते रहना चाहिये। यही वह रास्ता है जिस पर बेखौफ होकर बढ़ा जा सकता है। पाश्चात्य और भारतीय (पूर्व) विचारकों ने विचार करके ही कर्म करने की सलाह दी है। भावुकता, अन्धानुकरण, अन्धविश्वास, पाखंड, कुरीतियां में फंसकर कर स्वयं के लिये खतरा न बने। यह तभी सम्भव है, जब हमारी नजर में धार्मिकता, भौतिकता और नैतिकता का सन्तुलन हो। इसके लिये हमें विचार शक्ति को बल देते रहना चाहिये। महानता या सुधार शक्ति के लिये सकारात्मक सोच और कार्यशक्ति को बढ़ाते रहिये। यही वह सहज रास्ता है, जहां किसी तरह का संकट, अशुभ परिणाम नहीं देता है। इस बात पर हमेशा जरूर सोचना चाहिये कि जिस विचार या कार्य को हम व्यक्तित्व विकास के लिये वरदान समझ रहे है, कही वह विपरीत परिणाम तो नहीं देगा ? जो खुद के लिये खतरा बन जाता है वह दूसरों के लिये कभी हितकारी नहीं बन सकता।

मनुष्य के विकास और पिछडे पन को आंकने के लिये शिक्षा और सम्पत्ति के ही पैमाने लगाने का रिवाज है। कुछ हद तक वह सही भी है, लेकिन गहराई से देखा जाये तो मनुष्य की अन्तरात्मा पर ही उसका विकास जानना चाहिये। लोग बाहरी रंग रूप पर जाते है, लेकिन सच्चा निर्णय मन के स्तरों से होता है। किसी अन्धे व्यक्ति को सडक पार करनी है, कई पढे लिखे लोग उसे देख कर भी अनदेखा कर देते है लेकिन कोई अनपढ़ आदमी उसे रास्ता पार कराता है। यह उसके मानसिक विकास का आधार उसकी पढाई या शिक्षा नहीं बल्कि सौजन्य, प्रेम, दया, परोपकार, समाजहित आदि है। इन्ही पैमानों से मनुष्य के विकास को आंकना चाहिये।

दो व्यक्ति ऐसे होते है कि आपस में उनकी बोलचाल लेन देन अत्य अल्प होकर भी एक दूसरे के बारे में ऐसी आत्मियता होती है कि एक के सुख में दूसरे का सुख एवं दूसरे के दु:ख में पहले का दु:ख होता है। इसके विपरीत दो व्यक्ति ऐसे भी हो सकते है कि साथ में रह कर, जीकर भी एक दूसरे के लिये उनकी आत्मीयता ऊपरी होती है। किसी व्यक्ति के सहवास में खाली बैठना भी हमें सुखद लगता है भले ही उससे बातचीत वगैरह हो न हो। इसके विपरीत किसी व्यक्ति के साथ दो मिनट भी गुजारना सजा की तरह लगता है। इस सबका कारण है आत्मीय बन्ध एवं सम्बन्ध ही है। ये बन्धन किसी से जुडते है और किसी से नहीं।

जीवनमुक्त सर्वथा अलिप्त होता है। वह अपने कर्त्तव्य निष्ठा से परन्तु उदास (अलिप्त) रहता है। यह करते हुये उसे चिन्ता हर्ष उद्वेग और द्वेष नहीं होते। प्रसंगों के अनुसार ही उसका आचरण होता है। वह भक्तों से भक्त की तरह, चालकों

से चालकों की तरह और वृद्धों से वृद्धों की तरह व्यवहार करता है। यह करते हुये किसी भी कर्म का मन पर परिणाम नही होगा, इसका ख्याल वह रखता है। पानी और कीचड में रह कर जिस तरह कमल मैला नही होता, उसी तरह जीवनमुक्त संसार में रह कर भी उससे अछूता रहता है। किसी भी अच्छे बुरे प्रसंग में अपना कृतत्व होकर भी वह तटस्थता से देखता है। घटना, क्रिया या विचारों के बहाव में न बहते हुये, सर्वसाक्षी और अलिप्त रहता है।

व्यक्ति आमतौर पर अकेले रहना पसन्द नही करता इसलिये घर गृहस्थी बसाता है। पत्नी, सन्तान, मित्र इत्यादि एकत्रित करता है क्योंकि उसको किसी का साथ चाहिये होता है। ऐसे सभी साथ होकर भी व्यक्ति कभी कभी अकेलापन महसूस करता है, निराशा आती है, उदासी घेर लेती है। यह अकेलापन दूर करने के लिये लोग नाटक, फिल्म, उपन्यास आदि तरीके अपनाते है। पर खाली रिक्त समय में अकेलेपन का भूत फिर उनके सिर पर आ बैठता है। फिर उसे भुलाने की नशे की लत पड जाती है। इसका एक ही उपाय है उसे चाहिये सच्चा साथ और यह साथ मन से पक्का करना होता है। ईश्वर सदैव मेरे साथ है, वह मेरे अन्दर-बाहर व्याप्त है, वह मेरे आगे पीछे है। इस भावना को मन में पालने पर सभी समस्यायें अपने आप में हल हो जाती है। निराशा, हताशा दूर होती है, अकेलापन भाग जाता है। सच्चा साथ मिलता है जो अन्त तक निभाता है, जीवन में आनन्द, चेतना का आगमन होता है। मनुष्य को अपना सच्चा साथी ईश्वर को मानना चाहिये।

आदमी को अपनी संवेदनाएं जीवंत बनाए रखनी चाहिए। बात दिल से निकली है और दिल पूछता है- कहां गए वे लोग जिनके खड़े होने से जनमानस बदलता था, जिनकी रहनुमाई में कौमें आजाद होती थीं, जिनकी कलम से सरकारें डगमगाती थीं, जो गरीबों के मसीहा कहलाते थे और जिनकी खुद्दारी को देवता तक सलाम करते थे। कहां गए जवाहरलाल ? कहां गए लोहिया ? कहां हैं दुर्गादास, मुलगांवकर, चलापति राव और पराड़कर ? कहां गए दिनकर ? कहां गए फिराक जिन्होंने कलम के सिपाही को स्वाभिमान की ये ऊंचाइयां प्रदान कीं जो सदियों तक गूंजती रहेंगी- पैगम्बरे इश्क हूं, समझ मेरा मुकाम/सदियों में फिर सुनाई देगा ये पयाम। वो देख कि आफताब सिजदे में गिर/ वो देख, उठे देवता भी करने लगे सलाम। कहां गए वो कद्दावर लोग जो यह कहते हुए संसार से विदा हो गए- मैं अकेला ही चला था, जानिब-ए-मंजिल, मगर लोग आते गए, कारवां बनता गया। कहां हैं वे लोग जो बु लंदियों के इस तकिया कलाम पर कि जमाना क्या कहेगा ? बड़े स्वाभिमान से कह गए कि- ...जमाना हमसे है, हम जमाने से नहीं।

क्या ये लोग अपना घर खाली करके सदा के लिए दरवाजे बंद कर गए ? क्या उन ऊंचाइयों को छूनेवाले अब नहीं रहे? क्या जीवनक्रम के तार बदल गए ? क्या आदमी की संरचना बदल गई ? क्या मानव हृदय की संवेदनाएं, उसकी अथाह गहराइयां, उसके उन्मुक्त विवेक सब सुषुप्त हो गए ? क्या सूरज-चांद में परिवर्तन हुआ ? क्या समय का कालचक्र बदल गया ? नहीं, ऐसा तो नहीं। दुनिया वही है, पृथ्वी वही है, प्रकृति वही है, आदमी वही है, उसका विवेक वही है। सभी कुछ वही है, तो ऐसा क्यों हो कि टूटते और उखड़ते मानवीय मूल्यों की इस आपाधापी में हम आदमी के उस रूप की तलाश में भटकते रहें जिसने मानवीय शाश्वत मूल्यों की स्थापना की, हृदय को विशाल बनाया, चारित्रिक सुधार पर बल दिया और कठिनतम परिस्थितियों में स्वयं को खड़ा रखने का साहस दिया, वह कद प्रदान किया जिसके आधार पर गरीब और असहाय-जन की पहचान बनी। ऐसा नहीं कि हमने तरक्की नहीं की। भौतिक प्रगति का अनुमान लगाएं तो समस्त प्रकृति में आदमी का कोई मुकाबला नहीं। प्रस्तर युग से लेकर जैट, रॉकेट और

मिसाइल तक में वह सर्वव्यापी हो गया है। दुनिया को अपनी उंगली पर नचाने के लिए तैयार, लेकिन जमाने को पीछे छोड़ जाने की दौड़ में अपनी अंतर्आत्मा को भूला बैठा है।

दैनिक जीवन को जीते हुए यदि आपने अपने काम को अनाचार, ओछेपन, क्षुद्रता, स्वार्थ, लालच, धूर्तता और दंभ से परे रखने का जरा भी प्रयास किया है, तो आप में नि:संदेह वे सभी गुण मौजूद हैं जिन्हें हम याद करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि हममें से हर व्यक्ति अपने उसूलों के बल पर ही नेता बने। चारित्रिक बल, यश और संपन्नता का पासपोर्ट तो नहीं। अलबत्ता, सफल इन्सान का वह अहसास जरूर है जो उसे आत्मसंतोष, मानसिक सुख और आनंद प्रदान करता है। कहने को ये सभी बातें आज के भौतिकवादी युग में बेसिर-पैर की लफ्फाजी कही जाती हैं। तर्क सही है। जमाने के साथ चलना ही चाहिए, पर क्या यह भी सही नहीं कि आदमी अपनी संवेदनाओं और भावनाओं को सदा जीवंत बनाए रखने का प्रयास करे, ताकि प्रकृति प्रदत्त जीवों में वह सिरमौर का अपना स्थान अक्षुण्ण बनाए रखे, जो प्रकृति में उसके अस्तित्व का केंद्र बिंदु है ? ये बाते किताबी जरूर हैं, पर किसी विशेष परिस्थिति पर शर्त की मोहताज नहीं। मानव मन एक समान है। सभी में गुण-दोष हैं। आवश्यकता केवल नजरिये की है। सोचें तो कुछ भी नहीं। मीमांसा करें तो बहुत कुछ है। जीवन का सारा सुख जीवन मूल्यों में ही समाहित है।

मर्यादा केवल मनुष्यों की होती है क्योंकि मर्यादा हीन पशु होते है। वे जहां खाते है वही मलमूत्र विसर्जन करते है। जिस माता के उदर से जन्म लेते है उसी से समागम कर लेते है। धर्म शास्त्र और साधु सन्तों ने मनुष्य की मर्यादा निर्धारित न की होती तो मानव पशु बन गया होता। मर्यादा यानि मर्य और आदान अर्थात मरनेवाला प्राणी जो मृत्यु से डर कर अपनी मुक्ति के लिये उन नियमों को स्वीकार करे। पशु मर्यादा का पालन नही करते इसलिये शरीर से विशाल होकर भी वे आयु में कमतर होते है। लेकिन मनुष्य मर्यादा पालन कर पशुओं से छोटे होकर दीर्घायु प्राप्त करते है, इसीलिये मानव को मर्यादा पालन करना आवश्यक है।

बहुत साल जीने से ही केवल वरिष्ठता वृद्धता नहीं आती है। व्यक्ति बूढा होता है प्रकृति के कारण से लेकिन वह इच्छा शक्ति का त्याग करता है तब वह सच्चे अर्थों में बूढा होता है। जिसकी इच्छाशक्ति हमेशा जागृत होती है वह चिरयुवा होता है। आयु बढ़ने के बाद बुढापे के चिन्ह शरीर पर दिखते है। शरीर पर झुरियां प्रकट होती है। उसी तरह हीनता के कारण आत्मा पर झुरियां आती है। अर्थात आत्म निर्बलता आती है। चिन्ता, सन्देह, भय, निराशा इत्यादि विचार व्यक्ति को अध:पतन की और ले जाते है। पर जब मन सद्विचारों से स्वच्छ होता है, सदगुणों से प्रमुदित होता है और सत्संग से प्रबोधित होता है तब मनुष्य देवत्व की और बढ़ता है।

अनुदार व्यक्ति अपनी ही बात, अपनी रीति रिवाज, अपनी मान्यता ही सच है और बाकी लोग मूर्ख है, गलत है ऐसा माननेवाला व्यक्ति अनुदार व्यक्ति होता है। वैसे अनुदार प्रकृति का लक्षण है बुरी बाते ही स्वीकारना और अपने स्वार्थ में निहित रहना। अपने लाभ के लिये दुनिया में विनाश हो तो भी ऐसे लोगों की परवाह नहीं होती। वे केवल अपने सुख सुविधा का विचार करते है। वे लोग हर्ष, दुराग्राही, अहंकारी, स्वार्थी एवं संकुचित भावनावाले होते है। धन या सत्ता आने पर इनका रूबाब और बढ़ता है। परिणामतया कईयों के शाप और हया लग कर वे अपने पापकर्म के कारण नष्ट होते है।

अगर हम इसे जीवन के परिप्रेक्ष्य में ले तो भौतिकवाद का अर्थ उन साधनों की प्राप्ति है जो मानव के सुख व कल्याण में वृद्धि करता है। भौतिकवाद में साधनों को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि ये आखों से देखा जा सके, हाथों

से स्पर्श किया जा सके और जिन्हें मुद्रा के पैमाना से मापा जा सके तथा जिसके उपभोग से हमें संतुष्टि मिले। भौतिकवादियों का कहना है कि एक कल्याणकारी तथा सुखी जीवन के लिए भौतिक साधन आवश्यक है। मनुष्य के भौतिक कल्याण से अभिप्राय उस संतुष्टि से है जो उसको भौतिक वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त होती है। इन साधनों के लिए जाहिर है धन की आवश्यकता होगी, यह धन कहां से आएगा और किस तरह इस धन का उपयोग हम अपने सुख और समृद्धि में करें, यही आज के भौतिकवाद का मुख्य विषय बन गया है।

भौतिकवाद पर और आगे कहें तो हम यह सापेक्ष रूप से कह सकते हैं कि इसने मशीनीकरण को बढ़ावा दिया है। इन मशीनों ने मानव से मानव के बीच भौगोलिक दूरी को और कम कर दिया है, समाज को एक चौराहे पर ला कर खड़ा कर दिया है, देशों के बीच की दूरियां पर लाकर खड़ा कर दिया है, देशों के बीच की दूरियां मिटा दी और संपूर्ण विश्व को एक रूप दे दिया। लेकिन यह भौतिकता ही है, जिसने अपने आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मानव के जीवन में इतनी व्यस्तता भर दी। इसने समाज को आडम्बरयुक्त आधुनिकता दी, आज भौतिक सुख को प्राप्त करने की होड़ मची हुई है। इस भौतिकवाद ने मनुष्य के बीच एक ऐसी गलाघोंट प्रतियोगिता पैदा कर दी है, जिसने मनुष्य के मनुष्य बने रहने पर संदेह पैदा कर दिया है।

कहने को तो हमने बहुत प्रगति की है, लेकिन प्रगति यदि मानव से मानव के बीच दरार पैदा करे तो यह प्रगति आखिर किस काम की। मानवीय संबंधों को भूलकर यदि प्रगति की जाती है तो यह प्रगति झूठी है। पैसे के मोह में हम अपनी अस्मिता खो दें अपने सामने खड़े व्यक्ति को हम एक व्यक्ति समझने में संकोच करें, यदि सब भौतिकवाद का परिणाम है तो हमें यह भौतिकवाद नहीं चाहिए। एक सीमा के बाद आदमी धन का दुरुपयोग ही करता है। अत: एक व्यक्ति के लिए यही अच्छा है कि वह भौतिकवादी न होकर जीवन के यथार्थ को समझे। एक व्यक्ति धन रूपी सीढ़ी से भौतिकवाद के शिखर पर पहुंच तो सकता है, लेकिन उस शिखर पर सांस लेने के लिए प्राणवायु भी नहीं मिलेगा। हर तरफ धुंध होगी, सर्द हवा के झोके होंगे, जिनसे दम घुटने लगता है।

संस्कृतिवाद और भौतिकवाद जीवन के दो पहलू जरूर हैं, प्रगति इन्हीं सबके आस-पास हमारे साथ चलती रहती हैं। सांस्कृतिक यथार्थ तो हम संपूर्ण रूप से स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन भौतिकता को हम कम अपनाएं तो ज्यादा बेहतर होगा। चकाचौंध को देखकर हम उसके पीछे न भागें तो ही हमारा कल्याण हो सकता है। हमें अपनी आवश्यकताओं को हमें अपने सीमित संसाधनों से ही पूरा करने की कोशिश करनी चाहिए, लेकिन भौतिकवाद से नहीं, बल्कि सांस्कृतिकवाद से प्रेरित होना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य वास्तव में ईश्वर है, परन्तु मूर्खों जैसा अभिनय कर रहा है। प्रयत्नशील मनुष्यों के लिए सदा आशा है।

भगवान ने मनुष्य को अपने ही समान बनाया, पर दुर्भाग्य से मनुष्य ने भगवान को अपने जैसा बना डाला।

मनुष्य अपने आदर्शों के अनुरूप ही विश्व का निर्माण करता है। मनुष्य एक ऐसा शिकारी जानवर नहीं है जो सदैव अपने कमजोर पड़ोसियों को हड़प कर जाता है। मनुष्य की आदतें पैदाइशी नहीं होती हैं। वे अनेक तरह के अनुभवों से तैयार होती हैं। मनुष्य अपने को सुगमता से ईश्वर क्यों नहीं समझ लेता, इसका कारण पेट है। मनुष्य इसीलिए है कि वह पशु को भी मनुष्य बनावे। यह मनुष्य विकसित चेतना का आकार है। यह अपने आवरणों में बनाया हुआ एक विश्व है। मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।

मनुष्य उदार हो, तो फरिश्ता है और नीच हो, तो शैतान है। ये दोनों मानवीय वृत्तियों के ही नाम हैं। मनुष्य एक दृष्टिगोचर रहस्य है जो दो अनन्तों और दो अपरिमितियों के बीच घूमता है। मनुष्य की शक्ति का मूल उसके अहं की प्रतीति में है। मनुष्य जितना छोटा होता है, उसका अहंकार उतना ही बड़ा होता है। मनुष्य जिस मार्ग पर जाये, उस पर उसे फूल बिखराते हुए जाना चाहिए। वह मनुष्य जो अपने मन का दास बना रहता है, कभी भी प्रभावशाली नहीं हो सकता। हंसमुख, विनोदपूर्ण, आशापूर्ण और सन्तुष्ट मनुष्य हर जगह अपना रास्ता बना लेता है। सब उसका सम्मान करते हैं, सब उसकी प्रशंसा करते हैं। मनुष्य न तो कभी मरता है, न कभी जन्म लेता है। शरीर मरते हैं, पर वह कभी नहीं मरता। मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए उत्पन्न हुआ है, उसका अनुकरण करने के लिए नहीं।

मनुष्य सृष्टिकर्ता के प्रतिबिम्ब में ईश्वरतुल्य कार्य करने के लिए बनाया गया हैं। मनुष्य स्वभावत: विनोदशील है। मनुष्य स्वभावत: शांतिप्रिय होता है।

मुस्कान और आंसू के बीच मानव तू एक गतिशील यंत्र है।

यदि तुम पढ़ना जानते हो, तो प्रत्येक मनुष्य अपने आप में पूर्ण एक ग्रंथ है।

यह मनुष्य आकार चेतना का है विकसित, एक विश्व अपने आवरणों में है निर्मित।।

विश्व आश्चर्यजनक वस्तुओं से भरा पड़ा है, परन्तु मनुष्य से बड़ा कोई आश्चर्य नहीं है।

केवल मनुष्य ही रोता हुआ जन्मता है, शिकायतें करता हुआ जीता है और निराश मरता है।

साधारण आदमी भला इतना नहीं होता, जितना प्रिय।

मनुष्य के आनन्द का रहस्य इसी में है कि वह अपनी ताकत को सड़ने न दे।

जितना आदमी अनैतिक होता जाता है उतनी ही उसकी वर्जना सख्त होती जाती है।

जीवन के इस अंचल पट पर, मानव है दृढ़ता की पुकार। जो कभी खोल देता आंखें, फिर कभी बंद करता प्रसार।।

मानव का दानव होना उसकी हार है, मानव का महामानव होना उसका चमत्कार है और मनुष्य का मानव होना उसकी जीत है। मानव की परख तभी होती है जब रुपयों का मामला आकर पड़ता है। इसी जगह धोखा-धड़ी नहीं चलती। यहीं मानव का सच्चा स्वरूप दिखाई दे जाता है। संसार भर में दो ही व्यक्ति ऐसे हैं जो सही शब्दों में मानव हैं, एक जो मर चुका है, दूसरा जिसका अभी तक जन्म नहीं हुआ है। मानव चरित्र की एक विशेषता यह है कि हम बहुधा ऐसे काम कर डालते हैं जिन्हें करने की इच्छा नहीं होती। कोई गुप्त प्रेरणा हमें इच्छा के विरुद्ध ले जाती है।

मानव-चरित्र न बिल्कुल श्यामल होता है, न बिल्कुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगों का विचित्र सम्मिश्रण होता है, किन्तु स्थिति अनुकूल हुई तो वह ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम।

मानव की महत्ता उसमें नहीं है जिसे वह प्राप्त कर लेता है; अपितु उसमें है जिसे वह प्राप्त करने की आकांक्षा करता है। वस्तुत: महान वही है जो न तो किसी का शासन मानता है, और न किसी पर शासन करता है।

देव भी तीन बातों की इच्छा करते रहते हैं- मानव जीवन, आर्य, क्षेत्र में जन्म और कुल की प्राप्ति।

मानव-जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न वासनाओं का प्राबल्य रहता है, बचपन मिठाइयों का समय है, बुढ़ापा लोभ का। यौवन प्रेम और लालसाओं का समय है। इस अवस्था में मीना बाजार की सैर मन में विप्लव मचा देती है। जो दृढ़ हैं, लज्जाशील या भाव-शून्य हैं वे संभल जाते हैं। शेष फिसलते हैं और गिर पड़ते हैं।

कोई मनुष्य मानवता से बड़ा नहीं है।

जहां तक मानव-प्रकृति से सम्बन्ध है, यह नहीं कहा जा सकता कि वह कब बदल जाय, यहां तक कि मरते समय जो मति हो वैसी ही गति बतलाई जाती है। पुराने दिनों का स्मरण करके भविष्य में भी विश्वास खो बैठने का अर्थ है मानव प्रकृति में निहित शिवत्व की भावना में अविश्वास।

मनुष्य निर्दयी होते हैं, परन्तु मानव स्वभाव दयालु है।

आज समाज में अपने वादे से पलट जाने वाले बेईमान, धूर्त लोभी लोगों की बहुतायत हो गई है। मनुष्यता, ईमानदारी, बलिदान की भावनाएं लुप्त होती जा रही हैं। हमारी संस्कृति आत्मसम्मान की रक्षा को सर्वाधिक महत्व देने वाली रही है। मानव को अपने अवगुण त्याग सद्गुणों को अपनाना चाहिए। मनुष्य की सफलता का आधार उसके परिश्रम, अच्छाइयों और वचनबद्धता पर निर्भर है।

इंसान का अपना भी कोई धर्म होता है लेकिन जमाने की बदलती हवा कुछ इस तरह चल निकली है कि, आज आदमी ही आदमी को पस्त करने को बेताब है, उसे जरा-सी भी तसल्ली नहीं है। सभी अपने उधेड़बुन में लगे हैं। उनका हृदय अब पाषाण हो चला है। न किसी के प्रति ममता रही न संवेदना, सब कुछ आधुनिकता की ओर में बहता जा रहा है।

व्यक्ति ने अपने जीवन में कमाया, खाया और मरने के बाद वह सम्पत्ति समाज की है। जहां सम्पत्ति का समाजीकरण हो जाता है वहां सात पीढ़ी की चिंता को कोई अवकाश नहीं मिलता। साम्यवाद का व्यक्तिगत स्वामित्व के सीमांकन का यह सूत्र आर्थिक जीवन की जटिलता को समाप्त करने का हेतु बनता है। सापेक्षवाद के इन दो पहलुओं-आध्यात्मिक सापेक्षता और सामाजिक सापेक्षता का विस्तार किया जाए तो आशा की जा सकती है कि आर्थिक जीवन की जटिलताएं कम होंगी। यदि इन पर ध्यान नहीं दिया गया तो अपराध, शोषण, हिंसा, युद्ध आदि पर ध्यान देने की कोई सार्थक होगी, ऐसा नहीं लगता। या तो हम स्वामित्व की सीमा के सूत्रों को पकड़ें या इस चर्चा को छोड़ दें और जो कुछ हो रहा है उसे होने दें, किन्तु कोई भी समझदार व्यक्ति यथास्थिति नहीं चाहता। वह समाज का विकास और समृद्धि चाहता है, समाज को स्वस्थ बनाना चाहता है। इसके लिए व्यक्तिगत स्वामित्व के सीमांकन पर उसे विचार अवश्य करना होगा।

मनुष्य की दूसरी विशेषता है- वचन। पशु-पक्षी भी बोलते हैं किंतु उनकी कोई विशेष भाषा नहीं है। उनका शब्दकोश बहुत सीमित है। उनके शब्दकोश से एक पृष्ठ भी पूरा नहीं भर पाता। किसी की भाषा में छह शब्द हैं, किसी की भाषा में पांच शब्द हैं और किसी की भाषा में दस शब्द हैं। मनुष्य ने भाषा- कोश, शब्दकोश का इतना विस्तार किया कि लाखों शब्दों का कोष बन गया। अगर संयोगी शब्दों का संग्रह करें तो करोड़ों शब्दों का कोश बन जाए। एक ही भाषा का नहीं अपितु संस्कृत, प्राकृत, जर्मन, अंग्रेजी, रूसी आदि दुनिया की अनेक भाषाओं के बहुत विशाल शब्दकोश हैं। मनुष्य की वचन-शक्ति के कारण ये संभव बने हैं। उसने बोलने के तरीकों को विकास किया है। कैसे बोलना चाहिए ? कैसे गाना चाहिए ? इन सब में मनुष्य ने अपनी विशिष्टता और दक्षता का परिचय दिया है। मनुष्य की तीसरी विशेषता है- व्यवहार। एक भैंसा हजार वर्ष पहले जैसा व्यवहार करता था, आज भी वैसा ही व्यवहार करता है। हजारों वर्ष पहले भी वह गाड़ी में जुतता था, आज भी वह गाड़ी में जुतता है। व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। गुस्सा आता है तो गुस्से का प्रदर्शन करता है और किसी को मार डालता है। सांप हजार वर्ष पहले भी फुफकारता है। बिच्छू हजार वर्ष पहले भी डंक मारता था, आज भी मारता है। व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसने अपने व्यवहार में परिवर्तन किया है,

परिष्कार किया है। आज व्यवहार की कितनी शाखाएं बन गईं, व्यवहार के कितने शास्त्र बन गए, व्यवहार का मनोविज्ञान बन गया। व्यवहार के आधार पर विधि-निषेधों का एक अंबार खड़ा हो गया। क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, इन दो शब्दों-विधि और निषेध पर विशाल साहित्य रचा गया। विधिशास्त्र और निषेधशास्त्र का व्यापक विकास हुआ। सन्मति तर्क की टीका में एक सुन्दर प्रसंग आता है व्यवहार का। पूछा गया- व्यवहार क्या है? उत्तर दिया गया- व्यवहार त्रयात्मक होता है। उसके तीन अंग हैं- प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा। किसी कार्य में प्रवृत्ति, किसी कार्य से निवृत्ति और किसी कार्य की उपेक्षा- व्यवहार के ये तीन आधार हैं। मनुष्य ने अपने सारे व्यवहार को तीन भागों में विभक्त कर दिया। वह किसी कार्य में प्रवृत्त होता है, किसी कार्य से निवृत्त होता है और किसी कार्य की उपेक्षा करता है। जो अच्छा नहीं है, जिस राष्ट्र के पास अणुशस्त्रों का भंडार है वह अपने भण्डार को छोड़ना नहीं चाहता, कम करना नहीं चाहता और नई बात को लेना नहीं चाहता। कैसे विश्वशांति हो सकती है। जैसे ही छोड़ने की बात आई, समाप्ति का संकल्प हुआ कि अणुशस्त्रों के भण्डार को कम करना है। पहला कदम उठा और व्यवहार बदलना शुरू हो गया।

मनुष्य: अखंड शक्ति- मनुष्य का अर्थ, जो मनन करता है वह मनुष्य है। अनेक विद्याएं और कलाएं मनुष्य ने चिन्तन द्वारा प्राप्त की है। चिन्तन-शक्ति, एक बहुत बड़ी शक्ति है। उपयोग कैसे करते हैं, यह बड़ी बात है। उससे जीवन सफल भी बन सकता है और असफल भी। यदि हमारे विचार निर्मल-स्वच्छ है और वे आचार के रूप में झलकते हैं तो जीवन की सफलता निश्चित है। जिनके विचार श्रेष्ठ है, उनका आचार श्रेष्ठ है। जिनके विचारों में रुग्णता है, उनका आचार कभी श्रेष्ठ नहीं बन सकता। यह एक अखंड सत्य है। इस सत्य की सम्प्राप्ति ज्ञान के माध्यम से ही संभव है। ज्ञान से ही सत्य-असत्य का करणीय अकरणीय का विवेक प्राप्त होगा।

अगर हमारी योग्यता, प्रतिभा और दक्षता केवल अपने और अपने परिवार तक ही सीमित रह सकी तो कोई महत्व की बात नहीं। घर-परिवार की सीमाओं से आगे बढ़कर की गई समाज-सेवा मानव जीवन को सार्थक बनाती है। जिस तरह हमारे परिवार के सदस्यों या हमारे आश्रितों को हमसे अपेक्षाएं हैं उसी प्रकार समाज को भी हमसे अपेक्षाएं हैं। जो प्रेम और स्नेह हम अपने परिवार के सदस्यों को देते हैं यदि वही प्यार और स्नेह हम अपने परिवार के सदस्यों को देते हैं यदि वही प्यार और स्नेह हम समाज के उन लोगों को देने लगें जिनसे प्रत्यक्ष रूप से हमारा कोई संबंध न हो, तो देखेंगे कि उनसे शायद अपनों से अधिक ही स्नेह, आदर और निकटता मिलेगी। प्रेम मानव प्रकृति है, इसे चाहे जिस रूप में ढाल सकते हैं। मूल्यों के लिए जीना कोई कठिन कार्य नहीं, केवल मन बनाने की आवश्यकता है। आज की अत्यधिक आपाधापी वाली और अशांत जीवन शैली के चलते लोगों में मानव मूल्यों के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही है। इससे उबरना होगा।

विश्व पटल पर हमारी पहचान वसुधैव कुटुंम्बकम के आधार पर सदैव से रही है, इस भावना को आत्मसात करते हुए इसे विस्तार देना है। इसी से हमारा तथा हमारे देश का गौरव बढ़ना है। हमारी संस्कृति का आधार ही वसुधैव कुटुंबकम है। साथ ही संस्कृति से संस्कारों का निर्माण होता है, जो हमारे गौरव को बढ़ाते हैं। केवल स्वस्थ शरीर प्राप्त कर लेने और उसी की देखभाल एवं आवश्यकताओं की पूर्ति में संपूर्ण जीवन खपा देने मात्र से ही मानव होने का अर्थ पूरा नहीं हो जाता, बल्कि मानव शरीर का महत्व इस पर निर्भर है कि यह किसके कितने काम आया। व्यक्ति की महानता उसके कर्मों से होती है। कोई जन्म से महान नहीं होता। महत्वाकांक्षाओं को नियंत्रित रखते हुए निज स्वार्थ से ऊपर उठकर लोकहित में जो कार्य किए जाते हैं वे ही व्यक्तित्व को गौरवशाली बनाते हैं। इसके प्रति मनुष्य को हर क्षण सचेष्ट रहना चाहिए। हम कितने

ही प्रगतिशील क्यों न हो जाएं, हमें अपनी मूल पहचान नहीं खोनी है और वह है वसुधैव कुटुंबकम ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है मानव। उसे प्रभु ने आत्मा रूपी अपना अंश देकर बौद्धिक एवं शारीरिक शक्ति से संपन्न किया है। परमात्मा को भी अपने प्रिय मानव से अपेक्षाएं हैं, जिन्हें पूरा करना प्रत्येक मानव का प्रथम कर्त्तव्य है।

तीन प्रकार के मानव- यह दुनिया बड़ी विचित्र है। दुनिया में देह से मानव तो बहुत है परन्तु इन मानवों में हमें भिन्न प्रकृति के दर्शन होते हैं। स्वभाव की दृष्टि से समस्त मानव-जाति को हम तीन भागों में बांट सकते हैं-

१) कांटे जैसे लोग- ऐसे लोगों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वे निष्कारण दूसरों का विघ्न करते रहते हैं। भले ही आप उनका कुछ न बिगाड़े, उनसे सौ कोस दूर रहे, फिर भी वे लोग आपको हैरान किए बिना नहीं रहते हैं। आपके शुभ कार्य में विघ्न डाले बिना उन्हें शांति नहीं मिलती है। ऐसी प्रकृति के लोग चलते-फिरते किसी को हैरान करते ही रहते हैं। ये लोग दूसरों को जब दु:खी देखते हैं, तभी खुश होते हैं। वे दूसरों के हास्य, आनंद व प्रफुल्ल वातावरण को सहन नहीं कर सकते। उन्हें तो दूसरों का रोना ही अच्छा लगता है। कांटा स्वयं कठोर होता है और दूसरों को पीड़ा ही पहुँचाता है उसी प्रकार ये लोग दूसरों के लिए कांटे के समान पीड़ाकारी होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का आगमन भी शांत वातावरण में विषाद भर देता है। सचमुच, ऐसे व्यक्ति इस प्रकार की भयंकर प्रवृत्ति कर अंत में महादु:खी होते हैं। कर्म सत्ता उनके साथ न्याय करती है। ऐसे व्यक्ति अपने जीवन के संध्या-काल में महादु:खदायी स्थिति में से प्रसार होते हैं।

२) जैसे के साथ तैसा- इस प्रकृति के लोग भले के साथ भलाई का व बुरे के साथ बुराई का व्यवहार करनेवाले होते हैं- अर्थात् ये लोग मानते हैं कि अपने साथ जो व्यक्ति अच्छा व्यवहार करता है उसके साथ हमें भी अच्छा व्यवहार करना चाहिए। पशु भी अपने दुश्मन से बदला लेता हे। बैल को लकड़ी से पिटोगे तो वह सींग से मारने की कोशिश करेगा। इसी प्रकार जो व्यक्ति वैर का बदला बैर से व प्रेम का बदला प्रेम से चुकाने की बात करते हैं, ऐसे व्यक्तियों में बदले की भावना तीव्र होती है।

३) फूल जैसे- ऐसे इंसान दुनिया में इने-गिने होते हैं। ये लोग मानवीय देह में ऊपर उठे हुए होते हैं। मानव देह में भी उनके जीवन में दैविक गुणों के दर्शन होते हैं। उनकी जिंदगी, उनका व्यवहार फूल जैसा होता है। फूल को कोई तोड़े, कोई कुचल दे तो भी वह फूल अपनी सुगंध ही प्रदान करता है, इसी प्रकार वे अपने उपकारी व अपकारी दोनों के ऊपर सतत उपकार की ही वर्षा करनेवाले होते हैं। सचमुच, इस उत्तम प्रकृति के लोग ही इस पृथ्वी के अलंकार है। उनका अस्तित्व इस धरती पर से कभी मिटता नहीं है। वे मरकर भी सदा के लिए अमर बन जाते हैं।

मानव जीवन स्वर्णपात्र है। स्वर्णपात्र में धर्म आराधना का ही अमृत भरना चाहिए न कि शराब। स्वर्णपात्र में शराब भरनेवाला इंसान बेवकूफ होता है। अच्छे लोग ऐसी मूर्खता कभी नहीं करतें। उत्तम पात्र में उत्तम पदार्थ ही उत्कृष्ट दिखाई देते हैं। मानव जीवन अनमोल है, उसका सदुपयोग करें।

मानव का स्वभाव है कि वह दूसरों से अपने लिए सदैव ही अपेक्षाएं रखता है और अनेक अपेक्षाएं रखता है। उसे शासन से, समाज से, परिवार से, चिंतकों से, कलाकारों से और अनेकानेक संस्थानों से एक नहीं, अनेक अपेक्षाएं रहती हैं। अपेक्षाएं पूरी न हों तो मानव इन सबको कोसता रहता है, आलोचनाएं करता है और रोष प्रकट करता है। जिनसे हम अपेक्षाएं रखते हैं वे स्वयं भी तो हमसे भी अपेक्षाएं रखते हैं। तो क्या हम दूसरों की अपेक्षाओं को पूरा करने पर ध्यान देते हैं ? कुछ प्रयास करते हैं, कुछ विचार करते हैं, कुछ अपना योगदान करते हैं ? यदि नहीं, तो देखना चाहिए कि समाज में कैसे-कैसे व्यक्ति हो चुके हैं और आज भी हैं जिन्होंने दूसरों की अपेक्षाओं को पूरा करने में अपना तन, मन, धन सब कुछ अर्पित कर दिया।

अनेक लोगों ने दूसरों की अपेक्षाओं की पूर्ति में अनेक चिकित्सालयों की स्थापना की है, विद्यालय, धर्मशालाएं बनवाई हैं और इसी प्रकार के अनेक कार्य किये हैं जो जनजीवन को अनेक प्रकार से सुविधाजनक बनाने के प्रयास हैं। यही नहीं, ऐसी तमाम स्वयंसेवी संस्थाएं हैं जिनका मुख्य कार्य ही है कि वे समाज के लोगों की अपेक्षाओं का पता कर उन्हें पूरा करने का प्रयास करें। जो किसी कारण सक्रिय सहयोग नहीं दे सकते वे आर्थिक और वैचारिक ही योगदान करते हैं। किसी के लिए कुछ करने से जो खुशी होती है उसे शब्दों में बांध पाना कठिन है। ऐसा व्यक्ति अंदर से प्रफुल्लित और उल्लासित रहता है। उसे अनिर्वचनीय आनंद मिलता है। यदि हमें इस आंतरिक आल्हाद की अनुभूति करनी है तो अपने में खोजना होगा कि लोगों को हमसे क्या अपेक्षाएं हैं और हम उसे किस सीमा तक पूरा कर सकते हैं। फिर उस दिशा में हमें अपने योगदान सहित अग्रसर होना चाहिए। मानव का यह विकारी स्वभाव है कि वह हर बात को स्व और पर की तराजू पर तौलता रहता है। वह स्व का लाभ को तो अंगीकार कर लेता है और पर के लाभ की अवहेलना कर देता है। भूल जाता है कि जीवन का उत्थान पर के लाभ को दृष्टि-पथ में रखने और उसके अनुसार कार्य करने से होता है। जो पर की अपेक्षाओं की पूर्ति में तत्पर है उसकी अपेक्षाओं की पूर्ति अनायास ही होती रहती है और समाज उसे दयालु के रूप में स्थापित कर देता है। कोई महान व्यक्ति अवसर की शिकायत नहीं करता।

मनुष्यता को वेदों में मनुष्य का आभूषण माना गया है। जिस मनुष्य के अंदर मनुष्यता नहीं है उसे दो हाथ-पैरों वाला पशु कहा गया है। धर्म जीवन का अभिन्न अंग है। धर्म से रहित व्यक्ति को नास्तिक कहा गया है। सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना ही मनुष्यता है। जो व्यक्ति केवल भौतिक संपन्नता के लिए अधर्म का सहारा लेता है, वह व्यक्ति अधम कोटि का माना गया है।

पशु और मनुष्य में मूल अंतर इसी धर्म को अपनाने को लेकर ही है। अमूमन मत, संप्रदाय को ही धर्म कहा जाने लगा है। परंतु यह शास्त्रों की दृष्टि से सही नहीं है। मत या संप्रदाय व्यक्तियों द्वारा शुरू किए गए जबकि धर्म मनुष्य के साथ सृष्टि के समय से ही है।

मनुष्य क्षमा कर सकता है, देवता नहीं कर सकता। मनुष्य हृदय से लाचार है, देवता नियम का कठोर प्रवर्त्तक। मनुष्य नियम से विचलित हो सकता है, पर देवता की कुटिल भृकुटि नियम की निरंतर रखवाली के लिए तनी ही रहती है। मनुष्य इसलिए बड़ा है क्योंकि वह गलती कर सकता है और देवता इसलिए बड़ा होता है क्योंकि वह नियम का नियंता है।

इंसान तीन प्रकार के होते हैं। एक वे जो जीवन को कोसते हैं। दूसरे वे जो उसे आशीर्वाद देते हैं और तीसरे वे जो इस पर सोच-विचार करते हैं।

इस संसार में भेदभाव पैदा करने के लिए लोग क्या-क्या नहीं करते। शर्म की बात है। जिस भगवान के नाम को जपने में आदमी को शांति मिलनी चाहिए, जिस भगवान के नाम को याद करने से ही आदमी को अपनी मानवता का अहसास होना चाहिए, उसी भगवान के नाम पर लोग एक-दूसरे को मारने के लिए तैयार है, अपनी मानवता को छोड़ने के लिए तैयार हैं। क्या सचमुच में यह धर्म की प्रकृति है कि लोग एक-दूसरे से नफरत करें?

अजीब बात है, लोग उसी को धर्म कह रहे हैं जिसे करने से धर्म रोकना चाहता है जो धर्म के विरुद्ध है। जिससे बचाने के लिए संतों ने और ज्ञानियों ने हमें धर्म और पंथ की राह दिखाई है।

यह संसार एक रणभूमि है। यहां संघर्ष अनिवार्य हैं। यह संघर्ष जानकर उसके अनुसार अपना जीवन ढालने सभी प्राणी

मात्रों को मन की संवेदनशील शक्ति दी गई है। यह शक्ति वृक्षों में भी होती है। एक मनुष्य को छोड़कर अन्य प्राणियों में यह शक्ति सीमित रूप में प्रयोग की जाती है। कुछ चीजों पर प्राणियों ने मात की है फिर भी मानव मन जितनी प्रगति और कोई नहीं कर सका है। संसार की रणभूमि में दिन रात अनुकूल-प्रतिकूल का युद्ध चल रहा है। एक- दूसरे का दांव पलटाया जाता है। जिसका मन प्रगत एवं तीव्र है वह इस लड़ाई में जीतता है। जिन्हें यह संभव नहीं वे नामशेष हो गए और कुछ होने के मार्ग पर हैं। मानव ऐसा अजब प्राणी है, जो अभी तक संसार में बाकी है। इसका कारण है उसके मन की सूक्ष्मता, प्रगति और तीव्रता अन्यथा मानव जाति भी नष्ट हो जाती।

किसी मुहल्ले में जहाँ बहुत सारे धर्म-संप्रदाय के लोग एक साथ रहते हैं और अपने त्यौहार मिलजुल कर किसी संयुक्त परिवार की तरह मनाते हैं। आपको उस जज्बे की एक झलक वहां मिल सकती है। और नहीं तो तब जब आप किसी मुसीबत में घिरे होते हैं और अचानक आपकी मदद को कोई आगे आता है- जो कोई हिंदू, मुस्लिम, सिख या ईसाई नहीं होता, सिर्फ एक इंसान होता है- आपकी ही तरह।

बुद्धिमान पुरुष वही है जो वर्षा आदि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अन्न-फल आदि और पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले सुवर्ण-रत्न आदि, अकस्मात प्राप्त होने वाले द्रव्य-धन आदि सब कुछ भगवान के ही दिये हैं ऐसा समझकर, मानकर प्रारब्ध के अनुसार उनका भोग करे, अधिक संचय न करे, उसे साधू सेवा और अन्य शुभ कर्मों में लगा दे। वही सच्चा मानव है।

संसार में मानव शरीर की रचना और क्रियाशीलता अद्‌भुत है। हमें संसार यात्रा शरीर रूपी नाव से ही पूरी करनी होती है। शरीर को शास्त्रों में देवी नाव तथा धर्म का साधन कहा गया है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में कहा है- नहिं मनुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित अर्थात नर तन से उत्तम व श्रेष्ठ कोई नहीं है। यह नश्वर शरीर आत्मा का निवास स्थान है, जिसमें परमेश्वर का भी निवास होता है। ईंट-पत्थर से बने मंदिर को तो हम लोग स्वच्छ व सुगंधित रखते हैं, परंतु जागृत चेतन शरीर को हम विभिन्न प्रकार की बुराइयों से भर लेते हैं जबकि इसकी स्वच्छता और पवित्रता बनाए रखना आवश्यक है। तुलसीदास जी ने भी इस संबंध में लिखा है- बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर-दुर्लभ सद्‌ग्रन्थहिं गावा। जल, थल व नभ में अनेक जीव भोग चक्र में घूमते हैं। जीव उत्पन्न होते हैं और कुछ समय पश्चात मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अथर्ववेद के अनुसार अष्टाचक्र नव द्वारा देवाना पूरयोध्या अर्थात वह शरीर अयोध्या नगरी है जिसका अभिप्राय यह है कि इसे कोई पराजित नहीं कर सकता है। इसमें देवता निवास करते हैं। इसमें आठ चक्र और नव द्वार हैं। यह शरीर ईश्वर का मंदिर है। मानव देह अद्‌भुत शक्तियों का भंडार है। मनुस्मृति में कहा गया है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों विद्या और बुद्धि के विषयों को समझता जाता है त्यों-त्यों उसका ज्ञान भंडार समृद्ध होता जाता है और फिर उसे सूक्ष्म ज्ञान की बातें समझ में आने लगती है। ज्ञान का लाभ तभी है जब वह आचरण में अपनाया जाए। मनुष्य का शरीर मिलने पर भी छह प्रकार की विकृतियों से वह ग्रसित रहता है। यह विकृतियां काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य की हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि वह मोहयुक्त व्यवहार का परित्याग करे। क्रोध का त्याग कर कुमार्ग से बचे। मात्सर्य, डाह, जलन व कुढ़न के कुत्सित व्यवहार का परित्याग करे। अमर्यादित भोग का त्याग करे। अहंकार का परित्याग करे। लोभ का परित्याग करे। इन दुष्प्रवृत्तियों को कुचलने के लिए कठोरता की आवश्यकता होती है। यदि मनुष्य इन दुष्प्रवृत्तियों के प्रति आकर्षित होता है तो दुर्व्यसन डेरा जमा लेते हैं व मानवता की पराजय हो जाती है। हम इन अवगुणों का परित्याग कर ही सच्चे अर्थों में मानव बन सकते हैं।

सृष्टिकर्ता ने जब पृथ्वी बनाई होगी, तभी इसे सवारने और सहेजने के लिए मानव भी बनाया। मनुष्य ने अपने परिश्रम से इसकी सुंदरता में चार चांद भी लगाए। पर क्या आज का मानव भी धरती को सुंदर बना रहा है? हम जानते हैं कि प्रकृति का दोहन आवश्यकता के लिए होना चाहिए, लालच के लिए नहीं। पर सच्चाई यह है कि इंसान की लालची नजर प्राकृतिक संसाधनों पर गड़ गई है, जिस कारण प्रकृति विनाश की ओर बढ़ रही है। ज्यों-ज्यों हम तकनीकी रूप से उन्नत हो रहे हैं, हम प्रकृति को उतना ही घायल कर रहे हैं। अगर हमारी प्रवृत्ति ऐसी ही रही, तो, जब मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।

एक बार एक प्यासा आदमी एक दुकान पर गया और मालिक से बोला, सेठजी प्यास लगी है थोड़ा पानी पिला दो। सेठ ने कहा कि अभी उनके पास कोई आदमी नहीं है और फिर अपने मोबाइल पर लग गया। प्यासा आदमी पानी की तलाश में आसपास गया पर कहीं पानी नहीं मिला। कुछ देर बाद वह उसी दुकान पर लौट आया और दुकान के मालिक से बोला, सेठजी सचमुच बहुत प्यास लगी है, थोड़ा पानी पिला दों सेठजी ने कहा कि अभी बोला था न कि कोई आदमी नहीं है। प्यासे आदमी ने कहा, सेठजी थोड़ी देर के लिए आप ही आदमी बन जाइए न। इस दृष्टांत को कई बार पढ़ने का अवसर मिला। हर बार इस दृष्टांत ने मनुष्य होने पर सोचने को मजबूर किया। प्राचीन ग्रंथों में जगह-जगह लिखा है मनुर्भव, अर्थात मनुष्य बन। क्या हम सचमुच मनुष्य नहीं हैं? यदि हम मनुष्य नहीं हैं तो फिर मनुष्य बनने का क्या उपाय है?

मनुष्य वास्तव में अपने कर्मों अथवा कार्यों से जाना जाता है। जैसे कर्म वैसा मनुष्य। यह भी अनिवार्य है कि मनुष्य कर्म करे, अकर्मण्य न रहे। कर्म भी उपयोगी हो। कर्म निष्काम हो तो इससे तो अच्छी कोई बात ही नहीं। मनुष्य में जब इन विशेषताओं का ऱ्हास होता है तो उसकी मनुष्यता ही प्रभावित होती है।

हम प्राय: अपनी हैसियत के मुताबिक अपने कार्यों को निश्चित कर लेते हैं। हम किसी बड़े पद पर आसीन अथवा बहुत दौलतमंद हो जाते हैं तो सोचते हैं कि अब छोटे-मोटे कार्य करना हमारे लिए सम्मानजनक नहीं। लेकिन कुछ कार्य निश्चित रूप से ऐसे होते हैं जो बेशक छोटे दिखते हो लेकिन छोटे होते नहीं हैं। इन कार्यों को हमारे लिए अन्य कोई कर भी नहीं सकता। क्या हमारे बदले में हमारी जगह कोई किसी से प्रेम कर सकता है? संभव ही नहीं। वैसे भी विकास तो प्रेम करनेवाले का ही होता है।

अब पानी पिलाने की बात ही ले लीजिए। किसी को एक गिलास पानी दे देना कोई बड़ी बात नहीं लेकिन किसी प्यासे को पानी पिलाने से बड़ा धर्म ही नहीं। इस कार्य को करने से जो संतुष्टि मिलती है वो अद्वितीय होती है। यदि हम ये कार्य किसी और से करवाते हैं अथवा नहीं करते हैं तो हम उस आनंद से वंचित ही रह जाते हैं। जो भी अच्छे कार्य होते हैं अथवा जिनमें धार्मिक होने का भाव निहित रहता है वो वास्तव में मनुष्य के स्वयं के उत्थान के लिए होते हैं। हम उन कार्यों की उपेक्षा करके कहने को तो हम मनुष्यता से वंचित हो जाते हैं लेकिन वास्तव में अपने आध्यात्मिक विकास को ही अवरुद्ध कर लेते हैं। यदि हम काल्पनिक प्रतिष्ठा की कामना से रहित होकर फौरन किसी की मदद करने का संकल्प ले लें तो न केवल अधिक मानवीय हो सकेंगे अपितु हमारा वास्तविक आध्यात्मिक विकास भी संभव हो सकेगा।

मनुष्य प्रकृति की कठपुतली नहीं, अपना भाग्य निर्माता है। मानवीय विकास का वास्तविक स्वरूप निर्धारित करना हो, तो यह मानकर नहीं चला जा सकता कि मनुष्य शरीर पाने तक ही उसकी अंतिम परिधि है। उसे विकासोन्मुख होने के लिए शरीरगत जीवनयापन को भी सब कुछ न मानकर अपनी सत्ता चेतना के साथ जोड़नी पड़ेगी, जो इस ब्रह्मांड पर

अनुशासन करती और अंतराल को सुविकसित, स्वच्छ बना लेनेवालों पर अपनी उच्च स्तरीय अनुकंपा बरसाती है। साथ ही, मनुष्य को इस प्रकार का चिंतन अपनाने के लिए भी प्रोत्साहित करती है कि उसके अंतराल में अति महत्वपूर्ण क्षमताओं का भी भंडार भरा पड़ा है, जिन्हें थोड़ा विकसित कर लेने पर वह काया की दृष्टि से यथावत रहते हुए भी व्यक्तित्व की दृष्टि से महानतम बन सकता है। इस अध्यात्म विकास के तत्वज्ञान के अनुरूप चेतना को विकसित, परिष्कृत, समर्थ, विलक्षण बनाने के द्वार मनुष्य शरीर मिलने के उपरांत खुलता है। इससे पूर्व तो वह मात्र जीवधारी ही बनकर रहता है। साथ ही, प्रकृति का अनुशासन मानने के लिए बाधित रहता है। उसे प्रकृति पर अनुशासन करने, उसे अपने अनुकूल बनाने की विद्या का ज्ञान तक नहीं होता। विकास की मानवीय परत में उभरतें ही उसे आत्मबोध की एक नयी उपलब्धि हस्तगत होती है, वह अनुभव करता है कि काया-कलेवर उसका समग्र स्वरूप नहीं, वरन एक वाहन उपकरण आच्छादन मात्र है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। वह प्रकृति की कठपुतली मात्र नहीं। अन्य प्राणियों की तरह मात्र निवार्ह ही उसकी एकमात्र आवश्यकता नहीं है, वरन व्यक्तित्व का स्तर उठाकर जीवन सज्जा को अनेक उपलब्धियों- विभूतियों से अलंकृत करना भी एक विशिष्ट उद्देश्य है।

सागर के किनारे बैठने पर एक अजीब सी अनुभूति होती है। उसकी विराटता और आती जाती लहरों को संगीतमय ध्वनि और वेग से बहती हवा के वातावरण में मनुष्य का मन ठहर सा जाता है, शांत हो जाता है। मन में विचारों के द्वंद्व को विराम सा लग जाता है। भूत और भविष्य की आपाधापी भूलकर हमारा चित्त वर्तमान में केंद्रित हो जाता है।

सागर में लहरों का बनना, वेग और जोश से किनारे पर पहुंच कर समाप्त हो जाना, एक महत्वपूर्ण संदेश देता है, जीने की कला बताता है। लहर का बनना और मिट जाना, एक प्राकृतिक और अवश्वंभावी क्रिया है। यदि लहर अपने को सागर से पृथक माने तो उसका समाप्त होना निश्चित है यद्यपि लहर का उद्गम सागर से ही होता है। अपने अस्तित्व को बचाने के लिए यदि एक लहर अन्य लहरों के साथ तादात्म्य कर ले, तो भी किनारे पर आते-आते उसका एवं अन्य लहरों का मिट जाना तय है, चाहें लहरें कितनी ही बलशाली क्यों न हो।

यही स्थिति मनुष्य की है। मनुष्य सृष्टि के तत्वों से ही उभरता है परंतु जीवन पर्यंत अपने को सृष्टि से अलग समझता है। भविष्य की आशंकाओं से ग्रस्त और मृत्यु से भयभीत जीवन व्यतीत करता है और एक दिन उसी सृष्टि में विलीन हो जाता है, जिससे वह उत्पन्न हुआ था। पैसा, पद और ताकत की दौड़ भी शायद मनुष्य के भविष्य और मृत्यु के भय का परिणाम है। सांसारिक उपलब्धियां एवं विशिष्ट व्यक्तियों से संबंध बनाकर मनुष्य यह सोचता है कि वह मृत्यु को अपने से दूर रख पाएगा। यहीं पर भूल हो जाती है। मृत्यु एक दिन मनुष्य की यह जीवन लीला समाप्त कर ही देती है। यदि लहरे अपने को सागर का ही भाग समझे तो उसका सागर से अलग होना असंभव है। सागर से शुरू हुई, आगे बढ़ी और सागर में ही समा गई और पुन: एक नई लहर बनकर नए जोश के साथ जीवंत हो उठी।

समस्या तो तब उठती है जब लहर अपने को सागर से अलग समझती है। सृष्टि ने तो लहर को अमरता के साथ ही बनाया है। लहर की शक्ति और विशालता सागर के साथ एक हो जाने में है। सागर का अस्तित्व लहर के बिना हो सकता है परंतु लहर की सागर के बिना कोई हस्ती नहीं है। इसी प्रकार यदि मनुष्य स्वयं को इस सृष्टि का ही अभिन्न अंग समझे तो जीवन से भय उसी प्रकार हट जाएगा जैसे रोशनी के होने पर अंधेरा।

भय के हटते ही जीवन रूपांतरित हो जाएगा और सुख दुख में समभाव रखते हुए मनुष्य आनंद को प्राप्त होगा। हमें

अपनी सोच में परिवर्तन लाना है। अहंकार रूपी कैद से स्वयं को मुक्त करें और सृष्टि के साथ एक हो जाएं। भयरहित होकर इस देह के आवागमन की पीड़ा से मुक्ति ही जीवन का लक्ष्य है।

मानवता-महानता- किसी व्यक्ति की महानता केवल उसके कर्मों से नहीं, समाज के जन साधारण की नजर से आंकी जानी चाहिये। इसलिये चरित्र ही व्यक्ति के सफल जीवन की सच्ची कसौटी है। उसके लिये इन गुण-लक्षणों की आवश्यकता है। १) धैर्य २) क्षमा भावना ३) सहिष्णुता ४) निर्लोभ ५) शारिरिक-मानसिक पवित्रता ६) इन्द्रिय संयम, ७) आत्म चिन्तन और आत्म परीक्षण ८) ज्ञान लालसा ९) सत्य जानना, समझना, अपनाना और श्रद्धापूर्वक अभिव्यक्त करना १०) क्रोध उत्पन्न न होने देना। सफल बनने के लिये जिन्होने इन गुण-लक्षणों को स्वीकार किया वे लोग कीर्तिवान धनवान, गुणवान और आदर्श माने गये।

जो मानवता के लिये, मानव उद्धार के लिये अपना बलिदान देते है उनकी मृत्यु कभी नहीं होती। ईसी मसीह ऐसे ही उद्धारक थे जिन्हे ईश्वर का पुत्र ईश्वर का अवतार कहा गया है। ईसा ने संसार को मुक्ति व प्रेम का संदेश दिया। उनके सेवा कार्य और दावों के कारण उस समय के रोमन लोगों ने उन्हे सूली पर चढ़ा दिया और उनकी मृत्यु हो गई, और उनके शव को एक गुफा में रख दिया। ईसाई धर्म की मान्यता के अनुसार ईश्वर ने तीन दिनों के बाद ईसा मसीह को फिर से जीवन, उपदेशों और उनकी मृत्यु पर आधारित ईसाई धर्म विश्व का एक प्रमुख धर्म है। विश्व मे १.७ अरब से भी अधिक ईसाई है। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टीयन इनकी ही शाखाये है।

मनुष्य का सच्चा मूल्य है उसकी मानवता, मानवता के बिना मनुष्य अनुपयोगी और पशु समान है। बिना खुशबू के फूल किस काम का ? बिना धार की तलवार किस काम की ? बिना पानी के झील का क्या प्रयोजन ? बिना मिठास के आम किस काम का? इसी तरह शरीर मानव का होकर भी यदि उसमे मानवता न हो तो वह किस काम की ? इसलिये जिसने मानवता का मूल्य जाना वही सच्चा मानव है।

हृदयाकाश के विशाल प्रांगण मे एक ही छत के नीचे जहां किस भी प्रकार की दीवारे नहीं है, वहां हम सभी को, पूरी मानव जाति को विश्राम मिलना है। न जाति, न धर्म, न भाषा, न देश, न संस्कृति न रंग और न ही अन्य संकीर्ण विचार धाराओं को कोई स्थान है। सिर्फ एक बार हृदय के स्पन्दन को, हृदय की गति को, हृदय की चेतना को आत्मसात् करना है, अनुभूत करना है और तब होगा सभी समस्याओं का अन्त, क्योकि हृदय एक ऐसा स्थान है जहां से मानवता की राह प्रकाशित होती है, जहां विनम्रता है और एक समझ है जो कि सभी समस्याओं के निराकरण की क्षमता रखती है।

चिन्तन या कर्म यदि विपरीत दिशा में होगे तो अवश्य ही परिणाम अच्छे नहीं आयेंगे। परिणाम अच्छे न आने पर स्वयं में तो निराशा और तनाव आता ही है, दूसरों के जरिये निन्दा या आलोचना भी होती है। ऐसी स्थिति में जो आत्म निग्रही बन सोचना शुरू कर देता है, उसकी स्थिति सुधर जाती है। जो मनुष्य अपनी आलोचना सुनता है और खुद करता है वह उतना ही महान बनता चला जाता है। अन्तर की आवाज को सुनकर उस पर अमल करने वाले, बुद्धि और विवेक का इस्तेमाल संतुलित ढंग से अमल करने वाले और विचार शक्ति का भरपूर उपयोग करने वाले इन्सान की जिन्दगी सुख, शान्ति और विकास के रास्ते पर बढ़ती चली जाती है। बुद्धि और सहज ज्ञान को कर्म में उतारने वाले व्यक्ति में असहजता नहीं आती। असहजता विपरीत दिशा की ओर ले जाने वाली प्रवृति है। दूसरों की घटिया आलोचना, कटु व्यवहार, दोषपूर्ण निर्णय, अहंकार, आत्म प्रवंचना, स्वार्थ को ही सर्वोपरि समझना, दूसरों की उपेक्षा को अधिक तूल

देना तथा सत्य को झूठ और झूठ को सत्य बनाने में परहेज न करना, ये आदते स्वयं के लिये तो खतरा बनती ही है, साथ-साथ समाज को भी नुकसान पहुंचाती है।

आज मानव भुल चुका है की, उसकी तरह अन्य जीव भी उसी ईश्वर की देन है, एक सुंदर कलाकृति है और उनका भी योगदान उतना ही है जितना की मानव जाति का है। वह उसी निर्माता की औलाद है जिसका की मानव भी है। आज हम स्वयं के निर्मित कानून के दायरे में खड़े होकर भी सोचें समझे तो इनको यह मानना पडेगा की इस धरती के अन्य जीव भी उसी ईश्वर की संताने है। उनका भी इस धरती पर उतनाही हक बनता है जितना की आज सर्व शक्तिमान बने इस मानवजाति का बनता है। जिसे ईश्वर ने बुद्धिमान होने के कारण इस धरती का संरक्षक बनाया है और यह मालिक बन बैठा है। इसे मात्र अपनी मिल्कियत समझ रहा है। इस वक्त वह यह भी भूल रहा है की, ऐसा करके वह कुछ भी हासिल नहीं कर पायेगा। बस एक दिन इस धरती के साथ-साथ उसका अपना अस्तित्व भी मिट जायेगा। आज संपूर्ण मानव जाति को चाहिए की न मात्र उन पशु-पक्षी और पेड-पौधे के बारे में सोचे, बल्की सबसे प्रथम अपने स्वार्थ की सही सोच सोचे और सृष्टी चक्र को खंडित न कर अविरत अखंडित चलने दे। और अपना विकास करे साथ ही साथ अस्तित्व को भी बनाये रखे।

पाश्चात्य संस्कृति व असभ्य समाज के चंद ठेकेदारों ने मानवता के मायने ही बदल दिए हैं। मानवीय गुण को दूर करने में हमारा समाज ही एक मात्र दोषी नहीं है बल्कि कई प्रमुख पहलू ऐसे मौजूद हैं जो इस गुण को विस्तृत कराने में अपनी अहम भूमिका अदा करते हैं। परिवर्तित विचार धाराएं, स्वार्थ लिप्सा, भययुक्त वातावरण तेज भागती जिंदगी, भ्रष्टाचार, पुलिस व प्रशासन की ढुल-मुल नीति, ईर्ष्या में वृद्धि आदि कारक सिद्ध करते हैं कि मानवता जैसा अमूल्य गुण वर्तमान में मात्र ढकोसला है। मानवता से दूर होता समाज न जाने किस सोच के कारण उल्टी दिशा में जाने को उत्सुक हो रहा है। ऐसी परिस्थितियों में मानव व समाजसेवी संस्थाओं की क्या अहमियत रह जाती है ? मानवीयगुण को विलोप न होने दिया जाए, यह देश व समाज की प्रगति व शांति स्थापना में ही सहायक होगा।

देव सदा देव तथा दनुज दनुज हैं। जा सकते किन्तु दोनों ओर ही मनुज हैं।।

बरसाकर प्रेम सुधारस को, मजहब का जहर मिटाता है। समभाव सिखा सब जनता को, देशों के भेद भगाता है।।

जो दीन-हीन के दुखों पर, निज करुणा-स्रोत बहाता है। इस विश्व चराचर रचना में वह मनुज पुनीत कहाता है।।

श्रेय होगा सुष्टु-विकसित मनुज का वह काल, जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल।

श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध, मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध।

सहज शत्रु हैं, मनुज के, चिरनिद्रा तन रोग। ऋण लालच सन्ताप छल, क्रोध मदादिक भोग।।

ईमानदार मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। एक मनुष्य के लिए संसार बंजर है, नीरस है, व्यर्थ है, जब कि दूसरे मनुष्य के लिए संसार ऐश्वर्य, मनोरंजन और अर्थ से भरपूर रहता है। केवल मनुष्य ही ऐसा जीव है जो हास्य की शक्ति से सम्पन्न है। जिस तरह मजबूत खम्भों वाला मकान भी पुराना होने पर गिर जाता है, उसी तरह मनुष्य बुढ़ापे और मृत्यु के वश में फंस कर नष्ट हो जाते हैं। मनुष्यता बड़ी है परन्तु मनुष्य छोटा।

बस कि दुश्वार है हर काम का आसां होना, आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्सां होना।

खुदा तो मिलता है इन्सान ही नहीं मिलता। ये चीज वो है कि देखी कहीं-कहीं मैंने।

फरिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना, मगर इसमें पड़ती है मेहनत जियादा।

जो मनुष्य अपनों का पालन न कर सका, वह दूसरों की किस मुंह से मदद करेगा। जो मनुष्य अपने क्रोध को अपने ही ऊपर झेल लेता है, वही दूसरों के क्रोध से बच सकता है।

धन-सम्पत्ति और विद्या के साथ मनुष्यता का सम्बन्ध नाम मात्र का है। मनुष्यता एक और ही वस्तु है। आत्मा के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन्हें आत्मबल है, उन्हीं को मनुष्यता प्राप्त होती है। आत्मसंयम और आत्म-त्याग ये ही दो मनुष्यता के लिए प्रधान गुण हैं। नागरिकता मनुष्यता की भूमिका है।

मैं मनुष्यता का पुजारी हूं। मनुष्यत्व के आगे मैं जाति-पांत नहीं मानता। मैं मनुष्यता को सुख की जननी भी कह सकता हूं, किन्तु पतित को पशु कहना भी कभी नहीं सह सकता हूं। हिन्दू हो या मुसलमान हो, नीच रहेगा फिर भी नीच। मनुष्यत्व सबके ऊपर है, मान्य महीमण्डल के बीच।।

अपने आप को वश में रखने से ही मनुष्यत्व प्राप्त होता है। जिससे मनुष्यत्व का अपमान होता है वह किसी भी दशा में उन्नति का रास्ता नहीं हो सकता। मैं मनुष्यत्व को भातृ-प्रेम से उच्चतर समझता हूं। अभी तक कोई भी व्यक्ति वास्तव में महान नहीं हुआ जो साथ ही साथ गुणवान् न रहा हो। आदमी वह महान नहीं है जिसके पास बहुत सामान है, बल्कि महान वह है जिसके पास बहुत सहानुभूति है।

इस संसार में प्रत्येक वस्तु वट-वृक्ष के बीज के समान है, जो यद्यपि देखने में तो सरसों के दाने के समान लघु दीख पड़ता है तथापि अपने अन्दर विशाल वट-वृक्ष को छिपाए हुए है। सचमुच महान वही है जो यह बात परख कर प्रत्येक कार्य को महान् बनाने में सफलता प्राप्त कर दिखाये। महान ऋषियों का जन्म संसार को कोई विशेष संदेश देने के लिए होता है, न कि अपना नाम चलाने के लिए। महान त्याग के द्वारा ही महान कार्य सम्भव है।

कर्म में रहकर ही हम कर्म से महान हो सकते हैं। परित्याग करके या पलायन करके किसी प्रकार भी यह सम्भव नहीं है।

जो महान् होते हैं वे अपनी शरण में आए हुए नीच लोगों से भी वैसा ही अपनापन बनाए रहते हैं जैसा सज्जनों के साथ।

बिना सत्य के कोई भी वस्तु वास्तव में महान नहीं हो सकती। मनुष्य उतना ही महान होगा जितना वह अपनी आत्मा में सत्य, त्याग, दया, प्रेम और शक्ति का विकास करेगा। वह मनुष्य कभी महान नहीं हो सकता जो केवल अपनी वर्तमान शक्ति पर ही अवलम्बित रहता है और दैवी तत्त्व का ज्ञान नहीं प्राप्त करता। महानता की आकांक्षा करने से हमारी आत्मा की सर्वोत्कृष्ट शक्तियों का विकास होता है, वे जाग्रत हो जाती हैं। वह महान नहीं है, जो बहुत भला नहीं है। वही व्यक्ति महान् है जो शान्त चित्त होकर और धैर्यपूर्वक कार्य करता है। बहुत सारे विचारों वाला नहीं एक निश्चय वाला व्यक्ति महान बनता है। महान की महानता का पता इससे लगता है कि वह छोटे व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार करता है।

अहो नृजन्माखिल जन्म शोभनम्। (सभी जन्मों में मानव जन्म श्रेष्ठ है।)

कितना भी छोटा आदमी क्यों न हो, उसे कभी मनुष्य से हीन मत समझना। यही समझना कि वह महान् मानव जाति का एक घटक है। किसी विशिष्ट जाति, कौम, राष्ट्र या देश का है, ऐसा कभी मत सोचना।

जाति-पांति धर्मों में पथराई, क्षुद्र मनुजता को मिटना निश्चित।
रीति-नीतियों में खंडित भू को, नव मानवता में होना विकसित।।

मानवता का खेल प्रात:कालीन रवि के समान सुन्दर है। मानवता, मुक्त होने की इच्छा और महान पुरुषों का संग ये तीनों

भगवत् कृपा से प्राप्त होने वाली बड़ी ही दुर्लभ वस्तुयें हैं। मानवता का वास्तविक स्वरूप शान्तिमय हृदय में है, वाचाल मन में नहीं। मानवता प्रकाश की वह नदी है, जो सीमित से असीम की ओर बहती है।

यह भगवान गौतम बुद्ध, भगवान महावीर, महात्मा गांधी का देश है लेकिन आज इंसान और भाईचारा, समाप्त होने जा रहा है। इंसानियत व दयालुता खत्म हो चुकी है। भाई-भाई के खून का प्यासा हो गया है। आपसी सौहार्द्र नष्ट होता जा रहा है। इंसान बरबादी और विकास की अंधेरी गलियों में भटकने को मजबूर हो गया है। स्वार्थ, सांप्रदायिकता, लूटसखोट, रिश्वत, भ्रष्टाचार, अवसरवादी राजनीति ने देश को ग्रहण लगा दिया है।

व्यक्ति अपनी रुचि, श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास के आधार पर ही किसी दूसरे व्यक्ति को सही या गलत ठहराने की चेष्टा करता है। जैसे कबूतर को पृथ्वी से आकाश में छोड़ें तो वह कौवों के समूह में शामिल नहीं होगा। वह कबूतरों के समूह में ही मिलेगा। तोता-तोतों के व बाज-बाज के समूहों में ही मिलेगा। इसी तरह ईश्वर समान रुचियों, आदतों, श्रद्धा और वैधानिक लेखानिरीक्षक बनना सभी चाहते हैं। साथ-साथ धार्मिक व्यक्ति बनूं ऐसा किसी के मुँह से सुनने में नहीं आया। पैसा कमाने की भूख बढ़ रही है। पाप में परिणती हो रही है। अधिक पैसा यानी अधिक पाप। आपकी दुकानों में दरवाजे पर लाभ-शुभ लिखा रहता है। उसका अर्थ है आज के दिन मुझे जो लाभ होगा, वह शुभ कार्य में लगाऊंगा। रोज दुकान खोलते ही ये शब्द आपको आगाह करते हैं। सांसारिक प्रवृत्ति भी आत्म कल्याण का कारण बने।

हमारा समाज एक समृद्ध संस्कृति के लिए माना जाता है और इसी के चलते सभी एक-दूसरे के दु:ख-दर्द में साथ देते हैं। लेकिन जब इसी देश का प्रत्येक व्यक्ति अपने आपमें सिमटता जाए, उसकी मानसिकता संकुचित होती जाए तो सामाजिक समभाव की सभी बातें गौण हो जाती हैं और अनेक तरह की बुराइयां भी पनपने लगती हैं। आज देश में पांव पसारते भ्रष्टाचार, व्यभिचार और अनेक तरह की बुराइयों के लिए स्वस्वार्थ प्रमुख कारण है। यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वस्वार्थ के बजाए सभी के हित में अपना हित समझने लगे तो फिर से देश मानवता की मिसाल बन सकता है।

सामाजिक विसंगतियों, विकृतियों और स्वार्थों के चलते मानवीय संबंधो में कटुता बढ़ती जा रही है। जिंदगी को कमर से खीचकर लाने वाले व्यक्ति की कमर टूट रही है। शरीर बूढ़ा हो रहा है लेकिन चेतना अभी जवान है। किंतु वह अपने ही लोगों से उपेक्षित है। यह समस्या आज सामान्य परिवारों में प्राय: देखी जा रही है। इसके लिए सामाजिक परिवेश के साथ ही हम भी कही न कही उत्तरदायी है। सर्वप्रथम परिवर्तन हमें अपने विचारों में लाना पड़ेगा। विचार ही परिवर्तन की पृष्ठभूमि निर्मित करते है। जीवन के सत्य को जानना है तो पहले स्वयं को जानना होगा, कि हमारे इस मानव शरीर की उपयोगिता क्या है और हम कहाँ तक इसमे खरे उतरे। मोहजनित संबंधों के चलते नैतिकता और मानवता का ऱ्हास हो रहा है। हमे यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि परमात्मा की इस सृष्टि मे मानव ही उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। अत: मानव से अपेक्षाएं भी अधिक होना स्वाभाविक है। जहाँ कही भी नैतिकता, सिद्धांतो और आदर्शों की बात होगी साथ ही उनका अनुसरण किया जायेगा वहाँ प्रभु की कृपा से सुख, शांति, समृद्धि अवश्य मिलेगी। क्योकि परमात्मा भी मानव से यही अपेक्षा करता है कि मानव मानव के साथ मानवता का व्यवहार करे। यह सबसे बड़ी पूजा है और पूजा से हमारी चेतना स्पंदित होती है जो अनैतिकता व अराजकता को देखते ही हमारे अंत:करण को झकझोर देती है, मानवता छटपटाने लगती है।

धर्म के संस्कार ही मानव के अंदर मानवता को जन्म देते हैं। मानव के ऊपर यदि धर्म के संस्कार नहीं पड़ते तब तक उसके अंदर मानवता नहीं आती।

महाभारत में कहा गया है कि मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह बात इस ओर संकेत करती है कि हमें अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए निज कर्त्तव्यों का पालन सम्यक रीति से करना चाहिए। मनुष्य में मनुष्यता का निर्माण करना ही धर्म का उद्देश्य है। धर्म का मूल मर्म है कर्म। जो कर्म (मन, वचन और कर्म) निज के प्रतिकूल हों उसका आचरण हमें दूसरों के साथ कभी नहीं करना चाहिए। श्रेष्ठ व्यवहार वही है जो निज को और दूसरों को भी अच्छा लगता हो। आत्म-प्रतिकूल आचरण मनुष्यता की मूल भावना के खिलाफ है। दुनिया के सभी धर्मग्रंथों की मूल भावना भी यही है। आत्म-उन्नति (चेतना का विकास) के लिए किए गए सारे कार्य मनुष्यता की ही श्रेणी में आते हैं। हमारी चेतना का विस्तार तभी हो सकता है जब हम सद्कर्मों की राह पर बिना विकल्प के आगे बढ़ते रहें। सद्कर्मों का जो व्यक्ति विकल्प खोजता है वह पथभ्रष्ट हो कर पशुता को प्राप्त हो जाता है। इसलिए धर्म के मूल तत्वों की खोज और मनुष्यता की उपासना करना जीवन का मूल उद्देश्य होना चाहिए। इसी से चारों पुरुषार्थों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) का मार्ग खुलता है। पाप-पुण्य की अवधारणा भी धर्म के मर्म में शामिल है। वेदों में कहा गया है, जो धर्म सम्मत है वह पुण्य और जो धर्म के विपरीत है वह पाप कर्म है। इसीलिए हमें मन, वचन व कर्म से हमेशा धर्मयुक्त कार्यों के करने की इच्छा रखनी चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है, धर्म की बारीकियों को जानकर हमें धर्म के रास्ते को अपना कर, अपना और दूसरे की भलाई में अपनी शक्ति और समय लगाना चाहिए। यही मनुष्यता है और यही मनुष्य को करना चाहिए। धर्म को धारण करने वाला व्यक्ति यम-नियमों का पालन करता हुआ, मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए ऋषियों ने कहा है कि धर्म बिना जीवन की स्थिति प्राण बिना शरीर जैसी है। जो व्यक्ति सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझता है, वह किसी भी दुख से परेशान नहीं होता है। अनेक ऋषियों ने साफ तौर पर कहा है कि जो सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जीवन-मरण और यश-अपयश में धैर्य नहीं खोता, अहंकार नहीं करता तथा कुप्रवृत्तियों में नहीं फंसता है वही सच्चे अर्थों में धर्म का पालन करता है। जीवन जीने की सारी कला और शैलियां वेद-शास्त्रों में साफ तौर पर वर्णित की गई हैं। इसलिए वेद-शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना आर्यों (उत्तम पुरुषों) का परम धर्म बताया गया है। इस तरह कहा जा सकता है कि वेदों, शास्त्रों के मुताबिक जीवन बिताने वाला मनुष्य ही धर्म के मूल तत्व मनुष्यता को धारण करता है। जो व्यक्ति मनुष्यता की उपासना करता है, वह ईश्वर की भी उपासना करता है।

दु:ख में मनुष्य में से मानव का जन्म होता है। बिना दु:ख मानव का जन्म संभव नहीं।

मानव पशु-पक्षी के प्रति अभी भी ममता, प्रेम, करुणा व संवेदना रखता है। विश्व में अनेक धर्मों (हिंदू धर्म सहित) में पशु बलि की प्रथा प्राय: समाप्त हो गई है। यहां तक कि विश्व में अधिकाधिक लोग शाकाहारी बनते जा रहे हैं। कारण चाहे स्वास्थ्य का हो या मानवता। हमारे राष्ट्रपति पूर्णतया शाकाहारी हैं। धार्मिक प्रसंग तो वर्ष में एक या दो बार आते हैं, पर स्वाद के लिए प्राय: नित्य मूक पशु-पक्षियों की निर्मम हत्या की जा रही है। इसके लिए प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मांसाहार उत्तरदायी है। मांस भक्षण कर हम अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ तो कर ही रहे हैं, पशु-पक्षी की हत्या के भागीदार भी बन रहे हैं। खुदा यदि हमारी दुआएं कबूल नहीं करता है तो उसके पीछे कारण होता है। दुआ के बाद कर्मों की ओर ध्यान न देकर सिर्फ धार्मिक रिवाजों की ओर ध्यान देना। आज जब हम सभ्य होने का दंभ भरते हैं तो जीव हत्या बर्बरता है, अत्याचार है। विश्व के हर प्राणी को अपने तरीके से जीने का मौलिक अधिकार है। हम जीव हत्या करके/करवा कर

प्रकृति के विधान में खलल डालने का अपराध कर रहे हैं। हमें अपने चिंतन को बदलना पड़ेगा।

अब बदलाव का समय है। इस संसार में फिर दोबारा ऐसा समय आए कि मनुष्य को अपनी मानवता याद आए। मानवता यही है कि मैं तेरे खोट को नहीं देखूंगा, मैं तेरे अवगुण को नहीं देखूंगा मैं तेरी अच्छाई को देखूंगा। ऐसा नहीं कि तू किस धर्म को मानता है? बल्कि यह कि तू भगवान का बनाया हैं, मैं भी भगवान का बनाया हुआ हूं। जब तक हम इस संसार में हैं, आपस में मिलकर रहें। एक-दूसरे के प्रति दया जताएं। अगर इस संसार के अंदर एक बार फिर दोबारा थोड़ी-सी दया, मानवता, प्रेम और प्यार आ जाए।

जो चीज किसी से लिया है या किसी को देना है; उसे प्रेम से लौटा देना ही महानता व शालीनता है।

मानवता का सही अर्थ है दूसरों के दु:ख को बाट लेना और अपने सुख को बाट देना। आत्मीयता का विस्तार दूसरों के सहयोग, सहकार से होता है। आत्मसंतोष व आत्मिक आनंद तथा सुख दूसरों की सहायता करने मे ही निहित है। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना विकसित करने में एक दूसरे को सहयोग करने की इच्छा भी बलवती होती है। जिसकी आज के आपाधापी के समय में महती अवाश्यकता है। हमे निज स्वार्थ और संकीर्णता से ऊपर उठकर उदारता, सद्भाव, स्नेह, सेवा, सहनशीलता, ममता, दया, करुणा जैसे मानवीय अलंकरणों को अँगीकार करना है, यही सभ्यसमाज की आवश्यकता है। संकीर्ण स्वार्थपरता हमारा सबसे बड़ा दुर्गुण है जो हमे दूसरों से दूर करता है। इसे हमे मानवता की परिधि से दूर करता है। इसे हमें मानवता की परिधि से दूर ही रखना है। इसी मे हमारे साथ-साथ सभी का कल्याण निहित है। पारस्परिक निकटता, सहयोग, सद्भाव की प्रवृत्ति मानव से मानव में विश्वास उत्पन्न करती है और जहाँ विश्वास है वहाँ प्रेम एवं आनंद का सागर हिलोरे ले रहा होता है। मानवी प्रगति का आधार सहकारिता भी है, केवल बुद्धि अथवा ज्ञान को ही श्रेय देना उचित न होगा। वास्तविक रूप देखा जाये तो मनुष्य ने अब तक जितनी भी प्रगति की है केवल अकेले ही नहीं की, बल्कि उसके पीछे अन्य कई लोगों का हाथ रहा है, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या जीविकोपाज्न का, बिना दूसरे के सहयोग से बात बनने वाली नही है। सामूहिक सहयोग से बड़े से बड़े काम आसानी से सम्पन्न किये जा सकते है। परमार्थ का वास्तविक स्वरूप जरूरतमंदों की मदद करने में देखने को मिलता है। आध्यात्मिकता की पहचान भी यही है कि हम दूसरों के अधिकाधिक काम आये। मानव होने के लिए मनुष्य को सर्वप्रथम सेवाभावी, सहिष्णु, विनम्र, अनुशासित, सदाचारी और शिष्टाचारी होना आवश्यक है। ज्ञान अथवा शिक्षा की सार्थकता इसी में है कि हम उसे अपने आचरण या व्यवहार में अधिकाधिक लायें। सबके सहयोग से तमाम सामाजिक समस्याओं से भी निपटा जा सकता है। साथ ही रचनात्मक कार्यों की आशातीत सफलता के पीछे सामूहिकता का ही हाथ होता है। जैसे कोई मकान बनाने या नहर बनाने के लिए तमाम लोगों की आवश्यकता होती है, अकेले के बस की बात नहीं है।

इसके लिए अपने पास चाहे जितना धन क्यों न हो, बिना दूसरों का सहयोग लिए काम बनने वाला नहीं है। यह सिद्धान्त है कि जब आप दूसरों के काम आयेंगे तो दूसरे भी आपके काम आयेंगे। खासकर पडोस में तो सम्बन्ध मधुर बनाकर ही रखना चाहिए, पता नही कब किसी के सहयोग की आवश्यकता पड़ जाये। संयोग की भावना को सर्वप्रथम अपने स्वभाव का अंग बनाना चाहिए, इसके बाद अपने परिवार तथा मित्रों में यह भावना विकसित करना चाहिए। यह मानवता की पहली आवश्यकता है। इससे संकीर्णता घटती है और आत्मीयता का विस्तार होता है। क्योंकि संकीर्णता लोगों को हमसे

दूर करती है। सबके सुख में अपना सुख और सबके दु:ख में अपना दु:ख अनुभव करना।

इन्सानियत का जज्बा आज के वक्त में कुछ धूमिल सा पड़ गया है, पर मरा नहीं, क्योंकि जब भी कोई मुश्किल आती है, कोई न कोई मदद को आ ही जाता है। इंसानियत कभी धर्म या जाति नहीं देखती, वह हमेशा मदद को दौड़ कर आगे आती है, चाहे वह कोई प्राकृतिक आपदा हो या मानव निर्मित संकट। इंसानियत के सामने छल, कपट और विपदाएं प्राय: तुच्छ पड़ जाते हैं। अगर हम किसी की मदद करते हैं, तो कभी न कभी कोई हमारी मदद को भी तैयार मिलता है। हमारे रोजाना के जीवन में बहुत सी ऐसी घटनाएं होती रहती हैं। कई बार हम उस खूबसूरत जज्बे को पहचान लेते हैं और कई बार पहचान नहीं पाते। यह एक ऐसी मानवीय भावना है, जो कई दफा सो जाती है, पर इसकी कभी मृत्यु नहीं होती। यह एक ऐसा सितारा है जिसकी चमक कभी खत्म नहीं होती। इंसानियत का कोई धर्म, जाति या ईमान नहीं होता, इन सभी बातों से बहुत ऊपर वह एक इंसान को दूसरे इंसान की असली फितरत से परिचित कराती है।

आज ईमानदारी को नहीं, कैसे भी प्राप्त सफलता को एकमात्र मानवीय गुण माना जाता है। एक बड़ा अवगुण यह विकसित हो रहा है कि हम अपनी असफलता से उतने विचलित नहीं होते, जितने दूसरे की सफलता से। इससे नैतिक प्रयासों के सामने प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया है। आज सहज मानवीय गुणों से नई पीढ़ी को परिचित कराने की आवश्यकता है। इसकी अगुवाई का दायित्व कठमुल्लाओं और व्यवसायी नेताओं को नहीं दिया जाना चाहिए। हम अच्छाइयों का स्वर्ग जमीन पर नहीं उतार सकते पर बुराइयों के खिलाफ संघर्ष तो कर ही सकते हैं।

अलग-अलग प्रकार की लकड़ियों के रेशों की बनावट की तरह ही हर बच्चे के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की बनावट भी अलग और विशिष्ट होती है। हर बच्चे को एक जैसा तथाकथित बड़ा आदमी बनाना संभव नहीं, लेकिन हर बच्चे को किसी न किसी निश्चित आकार में ढालना तो संभव है ही। यही स्वीकार करने को हम तैयार नहीं होते और इसी से पैदा होती हैं ज्यादातर समस्याएं। हम किसी भी धातु, पत्थर या लकड़ी के टुकड़े को बेशकीमती कलाकृति में न परिवर्तित कर सकें, लेकिन यदि उसे एक उपयोगी आकार और स्थान ही उपलब्ध करवा दें तो यह कलात्मकता ही होगी। गीता में कहा गया अकारण नहीं है कि हम कर्म करें, फल की इच्छा नहीं। फल चाहे जो भी हो निष्काम कर्म के द्वारा हम जीवन में उत्कृष्टता ही पाते हैं।

आज का मनुष्य इंसानियत को भूलता जा रहा है। आम तौर पर लोगों के हृदय से दया, करुणा और सहानुभूति जैसी मानवीय प्रवृत्तियां निकल भागी हैं। आज का मनुष्य स्वार्थ की जीती जागती परिभाषा बनकर रह गया है। राह चलते सड़क पर अगर कोई असहाय मिल जाए तो उसे देखते ही लोग अपना मुंह मोड़ लेते हैं।

राजा भर्तृहरि ने वैराग्य शतक में कहा है, धैर्य जिनका पिता तथा क्षमा जननी है, चिरशांति जिनकी पत्नी है, सत्य पुत्र है, दया भगिनी है, मन का संयम भ्राता है, पृथ्वी ही जिनकी शैया है, दिशाएं वस्त्र हैं, ज्ञानामृत भोजन है, जिसके ये सब कुटुंबी हैं, ऐसे योगी जनों को किससे भय हो सकता है? आज हम सभी भयभीत हैं। समूची मानव जाति विश्वयुद्धकी आशंकाओं से घिरी है। देश गृहयुद्ध में फंसे लगते हैं। हर जगह हिंसा की तलवार लटकी हुई है। आतंकवाद की घटनाएं बढ़ रही है, न जाने कब तलवार गिर जाए और प्राण गंवाने पड़े। कोई भी किसी समय इसका शिकार बन सकता है।

ऐसे में मानवता को बचाने के लिए कौन आएगा, कौन काम करेगा? आतंकवाद को कौन खत्म करेगा? रोड रेज और

नक्सली हिंसा कैसे घटेगी? हमारी ऐसी समस्याओं का समाधान किसी लोकसभा में नहीं होनेवाला। इसका हल हमारे विशाल हृदय तथा उदार होने से ही संभव है।

समाज में मौजूद एक जरा से अहं ने एक ही देश के निवासियों को १९४७ में हिंदुस्तान और पाकिस्तान में बांट दिया और हम एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए। वही अहं आज प्रांतीयता के नाम पर झगड़ों को जन्म दे रहा है। यदि मध्य प्रदेश का पानी महाराष्ट्र में चला गया, कर्नाटक का पानी चेन्नई में चला गया तो क्या हुआ? क्या दूसरे क्षेत्र के लोग किसी दूसरे मामले में हमारे लिए कष्ट नहीं उठा रहे हैं?

यदि दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार पिता या भाई की तरह रहेगा, तो कोई हमसे घृणा नहीं करेगा? कोई भी किसी की शांति भंग नहीं करेगा।

हम यज्ञ करते हैं, पर मन में यज्ञ के भाव नहीं होते। यज्ञीय उदारता नहीं होती। जिस दिन से हमारे मन में यज्ञीय भावना का उदय होगा, उसी दिन से शांति आ जाएगी। समाज और देश का वातावरण बदलने की संभावना बढ़ेगी।

यज्ञ क्या है? वास्तव में यज्ञ है दूसरों के हित में किया गया उद्यम। हम किसी अभावग्रस्त रोगी, दु:खी या वृद्ध-वृद्धा की आंखों के मोतियाबिंद का ऑपरेशन करा देते हैं, तो वही यज्ञ है। हमारे छोटे से प्रयास से किसी की आंखों की ज्योति वापस आ जाती है तो हम यजमान बन जाते हैं। यही आहुति है- दूसरे के कल्याण के लिए हमारे श्रम की आहुति। किसी अभावग्रस्त के प्रति सहानुभूति का भाव, हमारे हृदय को विशाल बनाता है।

हमारे जीवन और हमारे समाज की बहुत सी समस्याओं का समाधान इंसानियत से हो सकता है, मानवीय व्यवहार से हो सकता है। वास्तव में यही यज्ञ का सिद्धांत है। राष्ट्रीयता के झगड़े, भाषा-प्रांत-जाति और सीमा के झगड़े इन सारी समस्याओं का हल इंसानियत के सहारे हो सकता है। समस्याएं हमारे संकीर्ण विचारों और व्यवहार के कारण पैदा हुई हैं।

मानवीय प्रगति का लक्ष्य अंत:करण को निर्मल बनाना है। मन शुद्ध नहीं हो तो, सतकर्म भी निष्फल हो जाते हैं। वह व्यक्ति भाग्यवान है, जिसने अपने मन को निर्मल बना लिया है। ऐसा ही व्यक्ति टिकाउ सुख का अधिकारी बन सकता हे। जब एक बार हम मनुष्य योनि में आ गए हैं तो मानवता हमारे स्वभाव में अपने आप जुड़ जाती है। जरूरत होती है उसे पहचानने की। सभी जन निरंतर एक-दूसरे के कल्याण की कामना करता रहें, यही मानव जीवन की सार्थकता है। आत्मवत सर्व भूतेषु य: पश्यति स:; पंडित: - जो सबको अपने ही समान समझे, वही ज्ञानवान है।

जिस दिन लोगों में उदारता, शांति की इच्छा, क्षमा, सत्यता के गुण आ जाएंगे, उसी दिन विश्व की मानवता शांति पा लेगी, लोग अमन-चैन की जिंदगी जी सकेंगे, उस समय धरती पर स्वर्ग होगा। प्रेम का संचार जड़ को चेतन में दुख को आनंद में बदल सकता है।

महापुरुष-महान व्यक्ति - कोई व्यक्ति बडा होता है तो यो ही नहीं बडा बन जाता। कई कष्ट, बाधाये, अपमान और संकट झेल कर वह तेयार होता है। सोना अन्य धातु की तरह ही होता है, मगर उसका मूल्य होता है क्योंकि चार तरह की कसौटियों से वह निकलता है। ये कसौटियां सोने की सत्व परीक्षा होती है। सोना कसौटी पर घिस कर, काट कर, तपा कर और ठोक कर उसे साबित किया जाता है। महान पुरुषों के साथ भी ऐसा ही होता है। उसे परिस्थिति की कसौटी पर घिसना पडता है। कई अपमानों-अपशब्दों से कटना पडता है। दु:ख की अग्नि मे तपना पडता है और

संकटों की हथौडी से होके जाना पडता है। इन सत्व परीक्षाओं से निकलने पर ही समाज उस व्यक्ति का मोल जान कर उसके सामने नत मस्तक होता है। उसे महात्मा का गौरव देता है।

संसार में अनेक महापुरुष होकर गये है। साधारण लोगों की तुलना में उनकी संख्या कम होती है। तर्क वादियों द्वारा ईश्वर के अस्तित्व एवम् कार्य पर किये जाने वाले सन्देहों का सटीक उत्तर है महापुरुष। वे चलते फिरते ईश्वर है। ईश्वर इस जगत में क्या करता है ? वह इन महापुरुषों के माध्यम से संसार पर नजर रखता है। जिसका मन सुगंधित एवम् प्रभावशाली है, जिसकी बुद्धि तेजस्वी है, उस व्यक्ति में ईश्वर प्रवेश करता है। वह संसार के दु:ख देखकर तडफता है। संसार का अज्ञान एवम् दु:ख दूर करने के लिये महापुरुषों के रूप के कर्म योग का आचरण करता है। भगवान बुद्ध, महावीर, श्री रामकृष्ण परम हंस, महात्मा गान्धी जैसे अनगिनत महापुरुष और उनका विश्व कल्याण का कार्य, ये ईश्वर का ही है। इस पर भी यदि कोई सन्देह करे तो क्या किया जा सकता है ?

महापुरुष हम सब के लिये आते है और हम सबका खयाल रखते है। जो महापुरुष है वे प्रभु से एकात्म है और वे सदा आनन्द की अवस्था में रहते है। जब हम उनके सत्संगों में जायें तो ग्रहणशील होकर बैठना चाहिये। यदि हम लेने वाले बने रहे तो वे देते रहेंगे। अगर हमने अपने लेने का प्राप्त ही उल्टा कर दिया तो हमें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जो हमारे लिये उचित हे वह सब मिलेगा। महापुरुष की दया दृष्टि से हमारे जीवन में परिवर्तन आ जाता है। महापुरुष सामाजिक स्तर पर बहुत से परिवर्तन करते रहते है।

महापुरुष संख्या में कम होते है। मनुष्याणां सहस्त्रेषु यानि हजारो में एक यह गीता मे बताया गया है। इसका कारण उनके पास कुछ श्रेष्ठ गुण होते है जो आम लोगों के पास नहीं होते १) विपत्ति में धैर्य :- जीवन के सुख दु:खों के प्रति विशेष दृष्टिकोण महापुरुषों के पास होता है। इसलिये वे विपत्ति में भी धैर्य नहीं छोडते। २) स्वयं अध्ययन :- वे ग्रन्थों की बजाय अपने जीवन रूपी पुस्तक का अध्ययन करते है। इसलिये वे जो बोलते है वह ग्रन्थ का विषय बनता है। उनकी कथनी और करनी एक होती है। ३) उदार एव क्षमाशील :- उनके अन्त:करण में समस्त संसार के लिये अपार प्रेम होता है। उनके लिये देश, धर्म या जाति का बन्धन नहीं होता। सबके प्रति समान प्यार के कारण उनकी प्रवृति उदार एवं क्षमाशील होती है।

सच्ची पूजा या सत्कार मनुष्य का करे। उसकी प्रतिष्ठा या पद का नहीं करे। समाज में व्यक्ति से अधिक उसके नाम प्रतिष्ठा का विचार किया जाता है। प्रसिद्धि से दूर रह कर समाज कार्य करनेवाले लोगों की दखल भी नहीं ली जाती, जबकि व्यक्तिगत जीवन में विकृत या विकारवश लेकिन प्रसिद्धि की रोशनी में रहनेवाले लोगों का सत्कार किया जाता है। सदगुणों की सच्ची आराधना करनेवालों का उपहास किया जाता है। केवल नाम के भूखे लोग किसी भी तरीके से चमकने का प्रयास करते है। इस कारण झूठे सिक्के चल जाते है और सच्चे सिक्के एक तरफ से रद्द हो जाते है। इसी कारण हर तरफ मोह, भेद और अज्ञान बढ़ता है। वास्तव में सच्चा सन्मान, पूजा सत्कार मानवता का, सदगुणों का करना चाहिये।

महापुरुषों की वाणी से शान्ति सम्भव है। महापुरुषों का संग नहीं मिलने पर आत्मा जन्म जन्मान्तर तक भटकती रहती है। धर्म और महापुरुषों के नाम पर होनेवाले विवादों को देख कर जो उनसे दूर हो जाता है, उस आत्मा की दशा पेड से टूटे हुये पत्ते के समान हो जाती है। मानव को हंस के व्यवहार से शिक्षा लेनी चाहिये जैसे वह दूध पी लेता है

और पानी छोड देता है, वैसे ही हम भी धर्म से आई विकृतियों को अनदेखा कर सार तत्व को ग्रहण करके आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

महापुरुषों की वाणी के अलावा विश्व की कोई भी ताकत आन्तरिक चेतना के विकसित नहीं कर सकती है। उनका चिन्तन ही स्थाई शान्ति और प्रेम के माहौल को निर्मित कर सकता है। आज के भौतिकवाद की चकाचौध में भटकती मानवता के लिये सत्संग सागरी में नाव के समान काम करता है। वैज्ञानिकों ने भी अनुसंधान द्वारा सिद्ध कर दिया है कि वीतराग वाणी का प्रभाव इन्सान के साथ, पशु-पेड पौधे व सम्पूर्ण प्रकृति पर पडता है। इसके माध्यम से आत्मा का पुनर्जन्म तक के ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। जन्म-जन्म के पापों को धोने की क्षमता इसमें विद्यमान है, इसी के प्रभाव से कलियुग कहलाने वाले काल में भी महान संत रत्नों का निर्माण हो रहा है। इसी के अलौकिक चमत्कार का लोहा विज्ञान भी मान रहा है।

आजादी के बाद जिन लोगों ने शासन संभाला, उन लोगों ने ऐसा कुछ नहीं किया, जिसका आज की पीढ़ी अनुसरण करती। वर्तमान पीढ़ी उतनी दोषी नहीं है, जितने कि आजादी के बाद वाले शासनकर्ता-राजनेता एवं अन्य क्षेत्रों के कर्णधार दोषी हैं। गांधी, सुभाष और सरदार पहले जैसी महान विभूतियां तो इस देश में सिर्फ एक ही बार पैदा हुई। इसी श्रृंखला में तिलक, मालवीय, भगत सिंह, सावरकर जैसे महापुरुषों के स्मरण मात्र से सीना गर्व से चौड़ा हो जाता है। एक समय था जब लोग अपने बच्चों के नाम इनके नाम पर रखने में गौरव का अनुभव करते थे, लेकिन आज हमने मुखौटे लगाए हुए छोटे खोटे लोगों को ही सिर पर बैठाया हुआ है। दूसरी तरफ आज की पीढ़ी के आराध्य देव चलचित्र, दूरदर्शन, कलाकार और क्रिकेटर हैं। उनके नाम पर बालकों के नाम रखने में गर्व का अनुभव किया जाता है। गणेश चतुर्थी, नवरात्रि जैसे त्यौहारों व अन्य उत्सवों की आगवानी असामाजिक तत्व लेते हैं। चरित्रवान, प्रमाणिक, निष्ठावान, अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने वालों को अवसर इसलिए नहीं मिलता, क्योंकि प्राय: उनकी जेबें खाली होती हैं। शहरों की इस जीवन शैली के विपरीत गांवों में तो आज भी मातृभूमि, धर्म, समाज के रक्षार्थ, अन्याय के खिलाफ जूझते-जूझते अपने प्राणों की आहुति देने वाले शूरवीरों-बहादुरों की समाधियों, पुतलियों पर श्रद्धासुमन अर्पित करने वाले लोग मिल जाएंगे। गावों के लोग शहरों के बाशिंदों के मुकाबले भले ही साधन संपन्न ना हों, उनकी जीवन शैली उच्च ना हो, साक्षरता का प्रतिशत भी कम हो, मगर लक्ष्मी के मुकाबले सरस्वती को अपना उचित स्थान देना वे आज भी नहीं भूले हैं। उनके लिए वे लोग ही महानायक हैं, जिन लोगों ने मातृभूमि की गरिमा और गौरव के खातिर अपना सर्वस्व लुटा दिया है।

दुनिया में विद्यमान कई विवादों में एक विवाद है- भगवान हैं या नहीं। लेकिन बेहतर यही होगा कि विवाद में पड़ने के बजाय आसपास दिखाई देनेवाले देवत्व की खोज करना और यथासंभव उसका अनुकरण करना। इन महान लोगों के कार्यों पर गौर करें तो पाएंगे कि इन महान लोगों के कार्यों में ही देवत्व के दर्शन होते हैं। कुष्ठ रोगियों की सेवा में समर्पित बाबा आमटे, देश को स्वाधीनता दिलाने वाले महात्मा गांधी और उनके अनेक अनुयायी एवं कार्यकर्ता, दलित वर्ग के लिए असाधारण कार्य करनेवाले डॉ. आंबेडकर जैसे नेता, गाडगेबाबा जैसे संत, भूदान का आंदोलन चलानेवाले एवं गीताई के लेखक आचार्य विनोबा भावे, सारगर्भित दोहों, भजनों के रचयिता कबीर, गुरुदेव रवींद्रनाथ टागोर से लेकर पु. ल. देशपांडे जैसे मानवतावादी साहित्यकार के कार्य में देवत्व के दर्शन होते हैं।

समाज में एक वर्ग है जो भगवान को नहीं मानता। ऐसे कई बुद्धिजीवी तथा शासक हैं जो भगवान के नाम से डरा-धमकाकर सामान्य जनता को दास बनाते हैं, उनका शोषण करते हैं, अंधश्रद्धा फैलाकर अपनी सत्ता चलाते हैं, अपना स्वार्थ पूरा करते हैं, इसलिए कई विद्वान भगवान का अस्तित्व ही नकारते हैं। इसमें तथ्य एवं सच्चाई है जिसको स्वीकार करना ही पड़ेगा। किन्तु मनुष्य के गलत मार्ग अपनाने के लिए परमेश्वर को दोषी मानना या उसका अस्तित्व नकारना उचित नहीं है।

मानव-मानव में धर्म या देवता पर झगड़े में मैं भगवान के बजाय मनुष्य में विद्यमान देवत्व पसंद करना ही ठीक है। इसे ढूंढने के लिए बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा। अपने आसपास भी नहीं स्वयं अपने में भी उसे पाओगे। जो अपने घर के आंगन में पंछियों के लिए पानी की कटोरी रखता है, रास्ते से जाते हुए किसी अंधे या विकलांग व्यक्ति को रास्ता पार करने में सहायता करता है, अपने छोटे बच्चों से बातें करने एवं बूढ़े माँ-बाप की सेवा करने हेतु समय निकालता है, वही उसके भीतर का देवत्व है। जब वह अपने देवत्व को प्राप्त करेगा, तब उसे पूजा-आराधना, अभिषेक, सत्यनारायण, उपवास करने की आवश्यकता नहीं होगी। जो नर स्वयं के पहले दूसरों के बारे में सोचता है, वह स्वयं नारायण है।

संत तुकाराम, रामदास ने यह जानकर कि सामान्यजन संसार का त्याग नहीं कर सकता इसलिए उन्होंने प्रतिपादन किया कि दुनियादारी निभाते हुए अच्छा आचरण मनुष्य कर सकता है। परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी का पालन करना, दु:ख सहना, आलस्य-झूठ-धोखाधड़ी-जलन-चोरी- अनैतिक संबंध से दूर रहना जरूरी है अन्यथा उसे पश्चात्ताप करना पड़ेगा, इसपर संतों ने बल दिया। सामान्य जन के संदर्भ में अध्यात्म,संन्यास, तप का उल्लेख भी नहीं है। सुखी जीवन का निचोड़ यही है।

धरती बादलों के पास नहीं जाती, बादल स्वयं आते हैं धरती पर और बरसते हैं। आकाश में बादलों की तरह सिद्ध पुरुषों की कमी नहीं है, जो बादलों की तरह बरसने के लिए सुपात्र की खोज करते रहते हैं। दिव्य आत्माओं की तलाश करते हैं। उसीप्रकार दिव्य पुरुष सन्त भी ऊपर से तलाश करते हैं कि इस धरती पर कौन महापुरुष है, जिसे भगवान गुरु, संत की कृपा, वरदान और आशीर्वाद की आवश्यकता है। वे देखते हैं, कौन दया का पात्र है। केवट और शबरी की भक्ति, श्रद्धा महान थी। श्रीराम स्वयं उनके पास चलकर गये और दर्शन दिये। केवट शबरी उनके पास नहीं गये। श्रीकृष्ण गोपियों के पास स्वयं गये तथा उन्हें प्रेम दिया, गोपियाँ नहीं गई थी। उसी प्रकार पात्रता देखकर गुरु शिष्य के पास आता है तथा उसे धन्य कर देता है। यदि किसीमें पात्रता हो तो सिद्धियाँ पाई जा सकती है, उसका कल्याण हो सकता है। महापुरुषों की जीवन घटनाएँ स्मृति के लिए नहीं होती अपितु जीवन का आदेश देती है।

महापुरुषों का जन्म- भारत में सनातन मान्यता है कि महापुरुष पूर्व संस्कार लेकर आते हैं तथा उनका जन्म (अवतरण) भी किसी खास उद्देश्य को लेकर होता है। राम और कृष्ण का अवतरण, अधर्म का विनाश करने हेतु, धर्म राज की स्थापना करने हेतु था। रामायण और गीता, दोनों इस बात की पुष्टि करती हैं कि जब-जब भी धर्म की हानि होती है, भगवान अवतार लेते हैं। जन्म उसी का सार्थक है जिसके जन्मसे कुल व देश की उन्नति हो।

जहरी जन्तु से जहरी मानव भयानक है। जो भूल न करे वह भगवान, जो भूल करके माफी मांगे वह इन्सान। जो भूल को भूल न माने वह बेईमान।।

मनन करे चिंतन करें, यही मनुज का धर्म। आंख मूंद पीछे चले, यह पशुओं का कर्म।।

महानता से बढ़कर और कोई सरलता नहीं वस्तुत: सरलता ही महानता की पथदर्शिका है।

ऐसे ब्राह्मण को महापुरुष कहते है, जो भूमि से उत्पन्न फल और कन्दमूल खाकर जीवन यापन करता है जो जोती न गई हो, जो सदैव ही वनवास प्रेमी हो, जो नित्य श्रद्धावान हो।

महापुरुषों का पदार्पण ही नहीं, पर्यावरण भी सुहाना होता है। महापुरुषों का उद्‌बोधन ही नहीं, उदयमान प्रकाश का स्तम्भ होता है। मनुष्य कितना भी श्रेष्ठ हो, शक्ति या धनका मद उसे उन्मत्त कर देता है और तब उससे मर्यादायें टूटने लगती हैं। महत्पुरुषोंकी अवमानना होती है। बुद्धिभ्रष्ट हो जाती है। महापुरुष सदैव सदाचार का विचार करता है, शुद्र व्यक्ति सुख का। महापुरुष शास्त्रज्ञा का विचार करता है और शुद्र व्यक्ति लाभ का।

सत्पुरुष-सज्जन- हमें इस संसार में सज्जन पुरुषों की आवश्यकता है सैनिकों की नहीं। क्या कोई सज्जन पुरुष लडना, दूसरों को मारना, मरना या युद्ध करना स्वीकार करेगा ? सज्जन होना कठिन हो सकता है। सबसे पहले तो मनुष्य दुर्जन न हो। क्योंकि दुर्जन न होना भी मनुष्य की बहुत बडी उपलब्धि है। सज्जन का अर्थ है सद-जन, सत्य जन। सज्जन जिसमे सदगुण हो। जिसका जन्म सत्य से हो वह सद्‌जन, सत्य जन। सत से जन्मा, सत्य से जन्मा यानि अमृत से जन्मा, अमृतस्य पुत्र:। अमृत का पुत्र। इस सत्य रूपी अमृत का पुत्र ही सतजन या सदजन यानि सज्जन हो सकता है। सदगुणों की जहां तक बात है मनुष्य सदगुणों को बाहर से पकडे हुये है। सत्य या अमृत से जैसे ही मनुष्य का जन्म होता है सब सदगुण तो उसमें अनिवार्य रूप से अपने आप ही विकसित हो जाते है। जैसे वर्षा होने पर धरती पर हरियाली फूट पडती है। बादल रूपी दुगर्णो के हटते ही आकाश स्वच्छ व निर्मल हो उठता है। सज्जन भी आकाश की तरह निर्मल और गहरे होते है।

सेना या सैनिक क्या है ये है हमारे भय के उत्पाद। हम जब भी राज्य, राष्ट्र की कल्पनाओं में जीते है तो यह डर हमारे भीतर सिर उठा लेता है तो हमें हमारी सुरक्षा के लिये इस व्यवस्था की जरूरत पडती है अन्यथा नहीं। हम जैसे ही इन सीमाओं को मिटा देते है तो पृथ्वी एक हो जाती है फिर न तो डर ही है और न सेना। तमाम युद्ध व सेनायें व्यर्थ और अव्यवहारिक है, अनावश्यक है। समूचे विश्व को अपनानेवाला सज्जन है, सैनिक नहीं है। न ही सैनिकों की आवश्यकता होनी चाहिये और न ही हथियारों की जिससे यह मानव विश्व समृद्धि के शिखर पर पहुँचेगा। हमें युद्धों, खून-खराबों सेनाओं और हथियारों से इस विश्व को मुक्त कराना चाहिये। सैनिक न बन कर सज्जन बने, सत जन हो। सत्य के पुत्र हो, अमृत पुत्र हो। यही हमारे मानव होने की एक मात्र सार्थकता है।

सत्पुरुषों का मन वायु की तरह अलिप्त होता है। वायु हर तरफ संचार करती है, लेकिन किसी चीज में लिप्त नहीं होती। सुगंध दुर्गन्ध दोनों का वहन वह समान रूप से करती है। सुगंध या दुर्गंध की वह न उपेक्षा करती है न उनका अभिमान करती है। साधारण व्यक्ति को ऐसे सत्पुरुष का मन समझना अत्यंत कठिन होता है। क्योंकि साधारण व्यक्ति का मन अपने संकुचित और स्वार्थी विचारों के कोष से बाहर निकलकर देखता तक नहीं है। कूपमंडूक की तरह उसका मन अपनी संकुचित दीवारों में रमता है। तथापि, सत्पुरुष का मन असीमित विश्व में विश्वरूप बनकर विहार करता है। महापुरुषों का चित्त संपत्तिशील होने पर कमल के समान कोमल होता है और विपत्तियों में विशाल पर्वत की शिलाओं के समान कठोर होता है।

प्राण

आदमी चाहता है कि श्वास का पता ही न चले। श्वास के प्रति भला ध्यान देने की क्या जरूरत है ? यह तो बेचारा ऐसा है कि बिना ध्यान दिए आता है और हमारी यह मनोवृत्ति है कि बिना ध्यान दिए आये उसकी उपेक्षा करना हमारा पहला धर्म है। हम उस व्यक्ति की सबसे ज्यादा उपेक्षा करते हैं जो उपेक्षा करने पर भी अपना काम करता चला जाता है।

श्वास की आप कितनी ही उपेक्षा करें किन्तु आता है तब तक आता ही रहेगा। चाहे आप सोये रहें, चाहे जागते रहें। चलते रहें, चाहे बैठे रहें, कुछ भी करें। यह एक ऐसा बेचारा है कि दुनिया में इससे बढ़कर कोई बेचारा नहीं है। यह हर स्थिति में आपका साथ देता है पर उतना खतरनाक भी है कि जिस दिन साथ देना छोड़ता है उस दिन बस सब कुछ समाप्त। फिर भी हम श्वास की बड़ी उपेक्षा करते हैं। आपको यह छोटी बात लगती होगी कि हम तो इतने बड़े हो चुके हैं। न जाने क्या-क्या कर चुके और इतने बड़े हो गए, पढ़े-लिखे भी हैं, इतना काम किया है और अब हमें बताया जा रहा है कि श्वास कैसे लें। बड़ी-छोटी-सी बात लगती है। अटपटी बात लगती होगी कि यह क्या ? क्या हम बच्चे हैं कि इस प्रकार की बातें बतलाई जाएं। सहज ही प्रश्न पैदा हो सकते हैं, पर मैं यह मानता हूं कि आज हिन्दुस्तान की लगभग १०० करोड़ जनता यदि सही ढंग से श्वास लेने लग जाए तो शायद एक नई पीढ़ी का निर्माण हो सकता है। नया चिन्तन, नया जीवन और जीवन की नई पद्धति के कारण इस प्रकार की मनोविकृतियां पैदा होती हैं कि आने वाली पीढ़ी भी उससे बच नहीं पाती। श्वास का इतना प्रभाव होता है हमारे जीवन पर। आवेगों पर तब तक नियंत्रण नहीं किया जा सकता, जब तक सही ढंग से श्वास नहीं लिया जाए। सही ढंग से श्वास लेना बड़ी अद्‌भुत बात है। श्वास लेते समय पेट फूलना चाहिए और छोड़ते समय सिकुड़ना चाहिए। कुछ विद्यार्थी कहते हैं कि हमें तो पुस्तकों में यही पढ़ाया जाता है कि सीना फूलना चाहिए, पेट फूलने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि हम श्वास लेते हैं तो श्वास फेफड़े से आगे नहीं जाता। पेट और फेफड़े के बीच में एक मांसपेशी होती है-डायाफ्राम। जिसे हिन्दी में तनुपट कहा जाता है। श्वास उसके नीचे नहीं जाता। ठीक बात है, श्वास उसके नीचे नहीं जाता किन्तु जब डायाफ्राम नहीं सरकता, जब तक मांसपेशी नीचे नहीं सरकतीं और पेट को अच्छा व्यायाम नहीं मिलता। बहुत सारी पेट की बीमारियां छोटे श्वास के कारण होती हैं। बहुत सारी मानसिक बीमारियां इस गलत श्वास के कारण होती हैं।

संतुलन मन का- आज का युग वैज्ञानिक शोधों का युग है। आज नई-नई बातें सामने आ रही हैं। हम सबसे ज्यादा उपेक्षा करते हैं या तो श्वास की या भोजन की। हम भोजन के बारे में बहुत लापरवाह है। इतना समझ रखा है कि पेट भर लेना। बात समाप्त हो गई। सन्तुलित भोजन और संतुलित मन से, दो स्थितियां होती है तो हमारी सारी गतिविधियां ठीक चलती हैं। पहले यह माना जाता था कि मानसिक रोग मानसिक कारणों से होते हैं किन्तु आज यह चिन्तन बदल गया। आज यह हो गया कि असंतुलित भोजन के कारण, कुपोषण के कारण बहुत सारी मानसिक बीमारियां होती हैं। जैसे भोजन का असंतुलन, वैसे ही मन का असंतुलन। ये दोनों आज समस्या बने हुए हैं। हम चाहते हैं कि आदमी बहुत अच्छा व्यवहार करे, बहुत अच्छा बने, पर नहीं बनता, इसके पीछे कारण है कि हमारा संतुलन किसी भी दिशा में नहीं होता है। मानसिक संतुलन के लिए श्वास का अभ्यास बहुत आवश्यक है।

कोरा आक्सीजन ही - श्वास में आप केवल प्राणवायु ही नहीं लेते, कोरा ऑक्सीजन ही नहीं लेते, उसके साथ अनेक तत्व आपके शरीर में जाते हैं। प्राणशक्ति भी इसके साथ शरीर में जाती है। हम जी रहे हैं। केवल इन न्यूरोन्स, विटामिन्स के आधार पर नहीं जी रहे हैं। जीवन का सबसे बड़ा आधार है हमारी प्राणशक्ति। प्राणशक्ति रहती है तो आदमी अच्छे ढंग से जीता है और प्राणशक्ति चूक जाती है तो हजार दवाइयां, हजार उपाय, हजार डॉक्टर मिल जाएं, किसी को दबाया नहीं जा सकता। जीने का मुख्य आधार है हमारी प्राणशक्ति। हम दीर्घ श्वास के अभ्यास के द्वारा प्राण का भी संग्रह करते हैं। प्राण को कहीं से खरीदना नहीं पड़ता, कहीं से लाना पहीं पड़ता। हमारे आसपास प्राण बहुत है। पूरा आकाश मंडल प्राण से भरा है। आजकल इतना प्रदूषण हो गया कि प्राणशक्ति भी कम होने लग गई। फिर भी अभी तक हिन्दुस्तान में यह सुरक्षा है कि इतना प्रदूषण नहीं है। अभी भी प्राणशक्ति काफी बची है। इस प्राणशक्ति को ले सकते हैं। जिस व्यक्ति ने दीर्घ श्वास का अभ्यास किया है, पूरा श्वास लेना सीखा है, वह प्राणशक्ति से कभी खाली नहीं हो सकता और प्राणशक्ति के अभाव में वह ग्रस्त नहीं हो सकता। बीमारियों से, मानसिक व्याधियों से।

दीर्घ श्वास का अभ्यास - दीर्घ श्वास का अभ्यास छोटी-सी बात लगती है, पर छोटी बात बहुत मूल्यवान होती है। हमारी आदत जो सबसे ज्यादा अनिवार्य है उसे भी हम सबसे ज्यादा कम मूल्य देते हैं। सूर्य का ताप भी हमारे लिए बहुत जरूरी है, उसे भी हम कोई मूल्य नहीं देते, क्योंकि वह बिना मूल्य ही मिलता है। एक अध्यापक ने विद्यार्थी से पूछा कि बताओ बिजली के प्रकाश में और सूर्य के प्रकाश में क्या अंतर होता है ? उसने कहा- यह तो बहुत सीधी बात है कि बिजली का प्रकाश पैसे से मिलता है और सूर्य का प्रकाश बिना पैसे से। कितनी सीधी बात ! जो सीधा मिलता है, जिसका मूल्य नहीं होता, उसके प्रति हमारा ध्यान नहीं जाता। श्वास, हवा बिना पैसे की मिलती है। इसलिए श्वास, हवा पर हमारा ध्यान केन्द्रित नहीं होता।

शरीर की स्थिति प्राण और अपान से ही है। नाभि से नीचे वस्ति प्रदेश में अपान वायु रहता है, नाभि से ऊपर हृदय देश में प्राण वायु रहता है। प्राण ऊपर को खींचता है, अपान नीचे को। इन दोनों के बीच में नाभि प्रदेश में समान वायु रहता है। वह दोनों के माप दण्ड को ठीक रखता है,उन्हीं से शरीर की स्थिति है। जहाँ समान वायु ने इनको छोड़ाप्राण अपान से पृथक हुए, वहीं जीवात्मा इस शरीर को छोड़ देता है। जो पापी पुरुष हैं जिनकी अधोगति होनेवाली है, मरते समय उनके प्राण मल-मूत्रों के अधो-द्वारों से निकलते हैं। जिनकी ऊर्ध्व गति होनेवाली होती है, उनके प्राण, आँख, नाक, मुख आदि द्वारों से निकलते हैं। जिन्होंने मन, प्राण तथा वीर्य और इन्द्रियों को वश में कर रखा है, उनके प्राण ब्रह्माण्ड को भेदकर दशम द्वार से निकलते हैं। ऐसे योगी पुरुष मृत्यु को जीत लेते हैं। साधारणतया प्राण और वीर्य की गति नीचे की ही ओर है। विषयों के सम्मुख होते ही यह नीचे को जाने लगते हैं, किन्तु योगियों के प्राण वश में होते हैं, वे जब चाहें प्राणों को स्वेच्छा से निकाल सकते हैं। प्राणों पर नियंत्रण योग ही प्राणायाम कहलाता है।

**** बेगानों से प्यार की गुंजाइश नहीं होती, मौत के बाद कोई ख्वाहिश नहीं होती।***
शायद कोई प्यार भरा दिल टूटा होगा, वर्ना बेमौसम में कभी बारिश नहीं होती।

संस्कार और संस्कृति, सभ्यता

हर देश की अपनी एक अलग ही पहचान होती है, कोई अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से जाना जाता है तो कोई सांस्कृतिक महानता की वजह से जाना जाता है, कोई सामरिक प्रभु सत्ता से सम्पन्न माना जाता है तो कोई अपनी विदिन्नता मिटाने सहायता की भीख मांगने में निपुणता के लिये जाना जाता है, कोई अपनी अत्यधिक आबादी के लिये जाना जाता है तो कोई परिवार नियोजन से त्रस्त देश अपनी आबादी बढ़ाने के लिये व्यक्तियों के आयात के लिये जाना जाता है तो कोई देश अपनी साम्प्रदायिक सोच के वशीभूत आतंकवाद का जनक जाना जाता है तो कोई अपनी धर्म निरपेक्षता से जाना जाता है, सभी देशों को अपनी अपनी विशेषताओं से पहचान है, अब देखना है कि हम भारतवासियों की और हमारे देश की पहचान क्या थी और वर्तमान में हमारी पहचान क्या बन कर उभर रही है? सदियों तक हमारा देश जगत गुरु रहा, संस्कृति, सहिष्णुता और वीरता के लिये जाना जाता था, इसने जगत गुरु बन कर अपने से दूर-दूर के देशों में सभ्यता, शिक्षा, स्वास्थ्य का प्रचार-प्रसार किया और समाज को मिल जुल कर रहने का गुर सिखाये। संस्कारों का बीजारोपण सिखाया और सहिष्णुता से भाईचारा, सदाचार सिखाया, मानवता का पाठ पढाया, आज वर्तमान में हमारे भारत की पहचान सुसंस्कारों की जगह कुसंस्कार, सहिष्णुता की जगह घृणा भरी अराजकता, सदाचार की जगह दुराचार, व्यभिचार, अनाचार व भ्रष्टाचार और मानवता की जगह अमानुष प्रवृति की बन कर रह गई है, इस तरह के आमूल चूल परिवर्तन व बदलाव के लिये हम स्वयं जिम्मेदार है।

पूरा देश प्रकाश पर्व मना रहा है यह हमारी संस्कृति है, हम प्रकाश की पूजा करते हैं सारी दुनिया से अन्धेरा मिटे इसकी कामना करते हैं। मगर यह सब परम्पराओं के साथ सिर्फ कल्पनायें रह गई है। अपने जीवन में कोई इसे उतारता नहीं है न ही अपने आचरण में लाता है।

विश्वप्रसिद्ध भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अपने ही देश के लोगों की उपेक्षा की वजह से खतरे में पड़ गई है। विगत कुछ वर्षों से पश्चिमी देशों की जो संस्कृति हमारे देश के युवा वर्ग द्वारा अपनाने की प्रवृत्ती बनती जा रही है। वह चिंता का विषय है। आज परिवार, समाज तथा देश में पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति जिस तीव्र गति से अपना अधिकार जमा रही है वह हमारे देश के लिए घातक सिद्ध होगी। पाश्चात्य देशों की हवा ने हमारे देश में जिस वर्गको सबसे अधिक प्रभावित किया है वह है आज का युवा वर्ग। युवा वर्ग चमक-दमक वाली संस्कृति को अपना रहा है और अपनी सभ्यता को भूलने का काम कर रहा है। आखिर आज हम अपनी सभ्यता और संस्कृति से दूर क्यों होते जा रहे हैं ? आखिर इसमें ऐसी कौनसी कमी है जो हम इसे अपनाने से कतराते है। जब डैडी को पिताश्री कहने में पिछड़ेपन का अनुभव होता हो तो हमें आधुनिक नहीं बनना चाहिए। भारतीय आदर्श वाक्यों में जो अपनापन झलकता है वह दूसरे देशों के शब्दों में नहीं मिलता है। अभी भी समय है कि हम अपनी सभ्यता व संस्कृति को न भूलें। यदि यही हाल रहा तो वह समय दूर नहीं जब हम व हमारी आनेवाली पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति की जाल में अपने आपको उलझा हुआ पाएगी।

संस्कृति- भारत देवता प्रधान संस्कृति का देश है जो देता है वह देवता है। इस न्याय से भारत ने प्राचीन समय से संसार को ज्ञान बांटा है। रखता है वह राक्षस इस प्रवृति से पश्चिमी असुरों ने भारतीय संस्कृति लूटने छीनने का प्रायस किया। पुराणों मे देवासुर संग्राम का उल्लेख मिलता है, आसुरिक शक्तियों ने अनेक बार देवताओं पर चढ़ाई की और पराजित

किया। भारत की आज की यही स्थिति है। हम अपनी दैवी सामर्थ्य भुला चुके है इसलिये आसुरिक शक्तियां हम पर आक्रमण करती है। यदि भारतीय गरुड जाग जाये तो काले नाग किसी बिल में जाकर छुप जायेंगे।

भारतीय संस्कृति में तीनों गुणों का अपूर्व संगम है। देव-दानव-मानव क्रमश: सत्व, तम और रज गुणों के प्रतीक है। इन तीनों का वास्तव्य भारत भूमि में काल धर्म के अनुसार हो रहा है। सत्व गुण सम्पन्न देवआतों ने राम कृष्णादि अवतार लेकर भारत को दिव्यता दिलवाई। शक्ति सम्पन्न दानव स्वर्ग पर चढ़ाई कर सम्पत्ति का प्रवाह यहां ले आये और मानवों ने ज्ञान, भक्ति के माध्यम से परिवर्तन किये। उसी से दिव्यता का प्रवाह, शक्ति और बुद्धि का प्रवाह भारत में आसेतु हिमाचल बहता रहा।

पराधीन जीवन की बजाय मृत्यु अच्छी है। भारतीय संस्कृति स्वाधीनता सीखाती है। औरों की स्वतन्त्रता की उपेक्षा न करना और अपनी स्वतन्त्रता का स्वाभिमान न गंवाना यह इस संस्कृति की रीत है। अपने विचार औरों को समझाये, लेकिन थोपने नहीं चाहिये और दूसरों के विचार जान ले मगर थोपने न दे। यह व्यवहार इस संस्कृति ने पालन किया इसलिये परस्पर विरोधी मत व्यक्त करने वाले शास्त्र यहां बने। गुण, कर्म और स्वरूपों से भिन्न देवता एक साथ रहे। नई बातों की खोज और स्वीकार भी इस संस्कृति की विशेषता है।

आज संस्कृति की क्या आवश्यकता है, यह सवाल कुछ उपभोग वादी करते है लेकिन भारत एक महान संस्कृति सम्पन्न देश है। इस देश को संस्कृति संवर्धन की नितान्त आवश्यकता है। वास्तव में संस्कृति किसी समाज या राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति होती है। संस्कृति के आधार पर ही सच्चरित्र व्यक्तित्व उभरता है। ऐसे लोगों का राष्ट्र अजेय रहता है। संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे का पोषण करते है। मनुष्य के अच्छे या बुरे विचार उसकी सभ्यता का परिचय कराते है। इस तरह संस्कृति और सभ्यता एक-दूसरे के संवर्धक होते है। इसलिये संस्कृति की आज भी आवश्यकता है।

मनुष्यों में सद्भावना विकसित करने पर भारतीय संस्कृति में जोर दिया गया है। जो बर्ताव हम अपने आपसे नहीं करना चाहते वैसा बर्ताव हमें औरों से भी नहीं करना चाहिये यह इस संस्कृति का मूल बोध वाक्य है। मनुष्य के विचारों का उसके आचरण पर गहरा असर होता है। इसलिये आचरण की श्रेष्ठता और पवित्रता कायम रखने के लिये सद्भावना विकसित करने पर अधिक जोर दिया जाता है। सबके दु:ख सुख में शामिल होना, अपना अन्न बांट कर खाना, पारमार्थिक जीवन जीना, सबके सुख की प्रार्थना करना और अपने जैसा व्यवहार करना ये भारतीय संस्कृति की विशेषतायें है।

भारतीय संस्कृति की विचारधारा संकुचित और स्वार्थी न होकर विशाल और व्यापक है। यह कहती है भोजन होने के बाद बचा हुआ अन्न न फैंक कर गरीबों को दे। उसी तरह ज्ञान प्राप्त कर अपने पास न रख कर औरों को बांट देना चाहिये। तैरनेवाले को डूबने वाले को सहारा देना चाहिये। उत्तम गुण पहले स्वयं में अपनाये बाद में उनका सर्वत्र प्रसार करे। शरीर से परोपकार करे। जो परोपकार में देह समर्पित करे वह श्रेष्ठ व्यक्ति है। पर दु:ख में दु:ख और परसुख में सुख मानना चाहिये। आलस्य छोड कर कर्त्तव्य निष्ठ बने। भाषण-वर्तन में विवेक रखे। दुर्जनों को सन्मार्ग दिखाये। संकट में धीरज न खोये और ईश्वर पर विश्वास करे। इस तरह से भारतीय संस्कृति अपने साथ साथ औरों की भी तारक है।

भारतीय संस्कृति और पश्चिमी संस्कृति में काफी अन्तर है कई जगह तो एक दूसरे के विपरीत ही है। भारतीय संस्कृति दुनिया की प्राचीन तम संस्कृति है, अटूट संस्कृति है। कई बाहरी धर्म संस्कृतियों के आक्रमण के बाद भी स्थिर टिकी हुई है। भारतीय संस्कृति आत्मवादी और प्रेमवादी संस्कृति है। विलास और उपभोग के बजाय आत्म विकास और परोपकार

की संस्कृति है। यह तप, संयम, साधना प्रधान संस्कृति है। अनके अवतारी पुरूषों की भूमि वाली संस्कृति, भावी समय में जगन्मास्था और आदर्शों वाली संस्कृति है जब कि पश्चिमी संस्कृति अर्वाचिन (नई हाल की) संस्कृति है। यह अपने आप में अस्तव्यस्त संस्कृति है। यूनानी, रोमन जैसी संस्कृति नष्ट हुई उन्ही आधार पर है। पश्चिमी संस्कृति बुद्धिवादी और धर्मवादी है, उपभोग वादी और मौज प्रिय संस्कृति है। किसी भी प्रकार के संयम से रहित और स्वार्थवादी संस्कृति है। अवतारी पुरुषों के अभाव वाली भूमि में आदर्शों से रहित संस्कृति हैं भावी समय में अंधकारमय होने वाली संस्कृति का डर बना है।

भारतीय संस्कृति एक स्वर्णिम संस्कृति है। आज के विकराल समय में यह संस्कृति पिसी जा रही है। पूरी भूमि आक्रन्दन कर रही है। सत्य, ज्ञान, दया लुप्त हो रहे है। भारतीय दर्शन अति-उच्च स्तर का होकर भी, कमल के तले कीचड खाने वाले मेढ़क की तरह लोगों की स्थिति हो गई है। मूल ज्ञान का भंडार विज्ञान का स्त्रोत भारत में होकर भी हम पश्चिम का अन्धानुकरण कर रहे है। यह परालम्बन छोड कर हमें अपनी शक्ति जाननी चाहिये। हम भारतीय शेर के जबडे में हाथ डालकर उसके दांत गिननेवाले सम्राट भरत के वंशज है। हम भेड के मेमने के नहीं शेर के बच्चे है इसलिये हमें फिर से सिंह गर्जना करनी चाहिये।

विशेष गुण दर्शाने के लिये भारत में विभिन्न वस्तुओं, व्यक्तियों, प्राणियों और पदार्थों को प्रतीक बनाया गया है उनमें से ५ मुख्यत: प्रतीक इस प्रकार है।

१) दीपक :- दीया ज्ञान का प्रतीक माना जाता है २) कमल :- कमल को पवित्रता एवम् जन्म स्थल का प्रतीक मानते है। ३) वटवृक्ष :- वटवृक्ष को उदारता और विस्तार का प्रतीक मानते है। ४) स्वस्तिक :- इसे कल्याण का प्रतीक मानते है। ५) ओंकार :- ॐ ध्वनि विश्व का उदगम् उत्पति स्थान माना जाता है। साथ ही तेज के सोलह प्रतीक है शेर, वाघ, सर्प, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, हाथी, तरस, सोमा, पानी, गाय, पुरुष, वृषभ (बैल), वायु, वर्षा और क्षत्रिय। इन प्रतीकों से विभिन्न गुण विशेषों का दर्शन होकर उनसे गुण ग्राहकता झलकती है।

भारतीय संस्कृति पूरे जगत में सबसे उदार संस्कृति है। पर हित साधना इस संस्कृति का परम ध्येय है, लेकिन अपने बारे में कठोर रहने का भी नियम है। राम और दम यानि इस इन्द्रियों का दमन और शमन करना मुख्य साधन माना जाता है। अतिथि देवो भव इस संस्कृति का आदर्श है। इसी कारण अतिथि बन कर आने वाले अंग्रेज यहां मालिक बन बैठे। तथापि इस देश में आनेवाले सभी बाहरी आक्रमणकारियों को इस भूमि ने अपनाया। अपनी उदार और परहित कारी प्रवृति के कारण भारत को कई विपत्तियों से गुजरना पडा, लेकिन यही संस्कृति भविष्य में संसार का आदर्श बनी। आग में तप कर सोना और निखरता है। उसी तरह भारतीय संस्कृति आगामी समय में सर्वश्रेष्ठ और महान संस्कृति के रूप में उभरेगी।

हम पर पाश्चात्य संस्कृति का रंग चढ़ गया है जो हमें अपनी भारतीय संस्कृति हिन्दू धर्म पद्धति, रीति रिवाजों से दूर कर रही है। पाश्चात्य सभ्यता हमारी संस्कृति सभ्यता कभी भी नहीं हो सकती है, हमारी संस्कृति विश्व का मार्गदर्शन करने की क्षमता रखती है। हमारा राष्ट्र विश्व गुरु का स्थान रखने में सक्षम है। हम पुन: अपनी संस्कृति सभ्यता, धर्म की प्रधानता एव रीति रिवाजों में भारतीयता की प्रधानता रक्खे। हमे अपने संस्कारों को कदाचित भी नहीं भूलना चाहिये। भारतीय तिथियों का पुनश्च: प्रचलन आरम्भ करे। वर्ष प्रतिपदा को नूतन वर्ष के रूप मे नूतन वर्षाभिनन्दन शुभ कामना संदेश, बधाई पत्र अपने इष्ट मित्रों परिवार जनों को भेजे एवं वर्ष प्रतिपदा का उत्सव मनायें।

भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता यही है कि इसमे इहलोक की अपेक्षा परलोक को और भौतिकवाद की अपेक्षा अध्यात्मवाद को महत्व दिया जाता है। इसलिये हमारी संस्कृति में न केवल जीवितों, बल्कि नदी, वृक्ष, पर्वत, धारा, आसमान, जल, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा जैसी अजीवित वस्तुओं को भी दैवीय प्रतिरूप मान कर इनकी पूजा अर्चना की जाती है और यह सत्य है कि प्रकृति के इन अवयवों की पूजा पूर्णत: सार्थक तथा सुपरिणामदेय सिद्ध होती है। जहां तक वनस्पतियों की महत्ता की बात है तो प्रमुख रूप से बरगद, पीपल, आंवला, तुलसी आदि की पूजा इस मान्यता के साथ की जाती है कि इन वृक्षों में ईश्वर का वास होता है। तुलसी का पौधा पूजनीय तो होता है ही साथ इसके पत्ते औषधिय गुणों से परिपूर्ण होने के कारण भी महत्वपूर्ण होते है।

जो देश अपनी संस्कृति से नाता तोड लेता है वह देश उस वृक्ष की तरह है जो अपनी जडों से नाता तोड कर सूखी लकडी बन कर रह जाता है। भारतीय संस्कृति, प्रेम, सत्य, न्याय, सहिष्णुता, संवेदन शीलता, पुरुषार्थ के गुणों को धारण करनेवाली है। पश्चिमी संस्कृति केवल उपभोग को बढ़ावा देती है। उस उपभोग से तंग आकर वे लोग भारतीय संस्कृति की और आकर्षित होते है, जब कि पश्चिमी संस्कृति के मायावी रूप से मोहित होकर कई भारतीय उधर आकर्षित होते है। हर तरह का विकास करना हो तो पश्चिमी संस्कृति का अन्ध-अनुकरण टाल कर भारतीय संस्कृति को स्वीकारना होगा।

संसार में प्रत्येक वस्तु संस्कार से ही अपने मूल्य को प्राप्त करती है। जैसे खान से निकला हुआ पाषाण यन्त्रों, अग्नि के माध्यम से सुसज्जित हो जाता है तब उसी में निहित स्वर्ण (कनक) गुण प्रकट हो जाता हे। सुसज्जित हुये इस कनक को व्यक्ति शरीर पर धारण कर उसे सुरक्षित रखते हैं। माता सुसंस्कारों से बालक को चाहे तो राजा अथवा साधु भी बना सकती है। एक पाषाण खण्ड मंत्र आदि संस्कार से सुसंस्कृत होकर वंदनीय हो जाता है। वर्तमान के विद्यार्थियों में प्राचीन महापुरुषों यथा महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस, गुरुनानक आदि के आदर्शों को सिखाये जाये तो वे भी महान बन सकते है। इससे प्रत्येक अभिभावक का कर्त्तव्य है कि वह अपने पाल्यों को सुसंस्कारित करे।

बात बात पर गुस्सा करना, अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिये झूठ का सहारा लेना पडे, बडे बुजुर्गों का अनादर करना, अपनी संस्कृति को छोड कर पाश्चात्य संस्कृति के रंग ढ़ंग को अपनाना आदि ऐसे कई कारण है जो युवा पीढी को अंधकार की ओर ले जा रहा है। इस स्थिति के लिये युवा वर्ग तो जिम्मेदार है ही साथ अभिभावक भी जो अपनी संतान के कार्य कलापों पर नजर नहीं रखते। अत: युवा पीढी को संस्कारित करने के लिये अभिभावकों को अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिये।

सभी जीवों में शाश्वत सत्य देख कर उसका एकता की भावना से स्वीकार करना केवल भारतीय संस्कृति में ही देखा जाता है। भारतीय देवी देवताओं में निम्न कोटि के माने गये पशु-पक्षी, प्राणियों को स्वीकार किया है। गणेशजी ने चूहे जैसा छोटा प्राणी वाहन के रूप मे स्वीकार किया है कि वह सूक्ष्मता खोजता है। शिवजी का वाहन नंदी के चार पांव धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रतीक है। भगवती दुर्गा ने शौर्य और क्रौर्य के प्रतीक शेर या बाघ को अपना रक्खा है तो गति के प्रतीक गरुड को विष्णु ने अपनाया हैं। मोर, हाथी, मगरमच्छ जैसे वाहन अपना कर विभिन्न देवी देवताओं ने समस्य प्राणियों की एकता स्थापित की है। उस एकता से भारतीय संस्कृति सुशोभित है।

संस्कृति का सन्देश वाहक, विजय सूचक का प्रतीक, अस्तित्व का चिन्ह और कल्याण स्वरूप ऐसा ध्वज माना जाता है। हर देश का अपना राष्ट्र, ध्वज होता है। उसके सम्मान के लिये अत्यन्त आस्था और आदर सबके मन में होते है

धार्मिक रूप से भी ध्वज अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ध्वजपर विशिष्ट सांकेतिक चिन्ह होते है। अर्जुन के रथ पर कपिध्वज था वह शक्तिशाली मारूति के चिन्ह से अंकित था। श्रीकृष्ण के रथ पर गरूड ध्वज का जो गतिमानता और भव्यता का सूचक था। इसके अलावा ध्वजपर सूर्य, चन्द्र, सिंह के भी चिन्ह अंकित होते है। भगवान बुद्ध का संदेश सर्वत्र पहुँचाने के लिये सम्राट अशोक ने बडे-बडे लाट स्तम्भ युक्त ध्वज बनवाये अर्थात सभी दिशाओं में कीर्ति और यश लहराने का प्रतीक ध्वज है।

भारत युगों युगों से संसार को जीने की उत्तम राह दिखाते आया है लेकिन स्वयं राह भटकते जा रहा है। आधुनिकता के नाम पर अश्लीलता का जहर पी रहा है, पश्चिम की अपसंस्कृति को धारण कर रहा है। इसके प्रसारण मे चल चित्र उद्योग व दूरदर्शन सबसे बडे दोषी है। अगर भारत अभी नहीं सम्भला तो पश्चिम का यह बढ़ती संस्कृति वही हाल कर देगी जो उसने पूर्व एशिया के कई अन्य देशों का किया है। इस अप संस्कृति के प्रवेश को रोकने का प्रयास हर स्तर पर करना चाहिये। पहला प्रयास परिवार के स्तर पर होना चाहिये। संस्कार सही होंगे तो दिशा भटकाव नहीं होगा और दूसरा प्रयास सरकारी होना चाहिये। समाज इस संस्कृति से पूरी तरह खोखला होते जा रहा है, आने वाली तबाही के संकेत मिल रहे है।

आधुनिक युग में जन संचार के माध्यम बहुत प्रभावी होते जा रहे है, जो कि सामाजिक व्यवहार के निर्धारण में वरदान और अभिशाप दोनो ही सिद्ध हो रहे है। दूरदर्शन व चलचित्रों के किशोर वर्ग पर पडने वाले कुपरिणामों की चर्चा आम हो रही है। अपराधी समूह भी इनका लाभ उठा रहे है। आधुनिकता के नाम पर प्राचीन परम्पराओं को हास्यपद बनाया जा रहा है। विज्ञापनों की रंगीन दुनिया उप-भोक्तावाद को बढ़ावा दे रही है। अश्लील विज्ञापन कुत्सित वासनाओं को उभार रहे है। इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि जन संचार माध्यमों के लिये एक ऐसी राष्ट्रीय नीति का निर्माण किया जाय जो प्रेम, सहयोग, सहकार, करूणा और सह-अस्तित्व के उच्च मानवीय मूल्यों का पोषण और प्रचार करे तभी हम संस्कृति पर होते प्रहारों से बच सकेंगे।

संसार में अभिवादन करने के लिये हजारों ढेर सारे तरीके है। कही हाथ मिला कर तो कही नाक से नाक रगड कर अभिवादन किया जाता है। भारतीय अभिवादन पद्धति आदर्श है। अन्य किसी को भी स्पर्श किये बिना दोनो हाथ जोड कर सीने से लगाकर राम-राम कहकर अभिवादन किया जाता है।

हाथ जोडना यह अर्थ है कि हम दोनो आत्म बन्धु है। हाथ सीने से लगाना यानि हार्दिक प्रेम जताना और राम-राम कहना यानि दोनों में स्थित एक ही आत्माराम को नमन करना। पश्चिमी विकृति के प्रवेश के कारण नमस्कार लुप्त होता जा रहा है। परन्तु भारतीय सभ्यता के संकेत, उसके सदविचार और सदाचरण फिर से जागृत किये जा सकते है।

भारतीय संस्कृति ने इक तरफा साम्प्रदायिक संकुचित विचार कभी स्वीकार नही किये थे। उसने व्यापक और जन कल्याण कारक दृष्टि कोण स्वीकार किया था। समन्वय करना भारतीय संस्कृति की मूल प्रवृति होने के कारण अनेक विचार धाराओं, व्यवहारों, आचारों और परम्पराओं को इस संस्कृति ने अपने में शामिल करा लिया। नदी जिस तरह झरनों, नालों को खुद में समा लेती है वैसे ही भारतीय संस्कृति ने सबको खुद में समा लिया है। राजनैतिक, जातीय, धार्मिक और भौगोलिक रूप से विभाजित होकर भी सांस्कृतिक समन्वय के कारण भारत अभी तक एक रहा है। एकता और समन्वय का संदेश देने वाली भारतीय संस्कृति भुलानी नहीं चाहिये; क्योकि जब तक संस्कृति जिन्दा है तभी तक देश जिन्दा रहता है।

भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण दुनिया में अन्य देशों की तुलना में भिन्न है। व्यापक उदार और सहिष्णु ऐसे त्रिगुणों से युक्त यह दृष्टिकोण है। व्यापक अर्थात भारतीय संस्कृति विश्व की आद्य संस्कृति है। यही संस्कृति दुनिया को व्याप्त कर चुकी है। विश्व की सभी संस्कृतियों का उदगम स्थान इसी मे है। हर संस्कृति के तात्विक भाग पर भारतीय दर्शन की छवि अंकित है। भारतीयता की छाया है। उदार अर्थात भारत में आने वाले कई विदेशी मतप्रवाहों को इसने अपने आप में समाविष्ट किया है। सहिष्णु अर्थात भारत में कभी किसी पर पहले आक्रमण नहीं किया, क्योकि आत्मज्ञान सम्पन्न होने के कारण यह संस्कृति सहिष्णु है।

भारतीय संस्कृति देव संस्कृति है। अर्थात ईश्वर स्थापित संस्कृति है। इसलिये ईश्वर पुरस्कृत तीन तत्वों को इस संस्कृति में मान्यता है। पहला तत्व है जैसी करनी वैसी भरनी। इस तत्व के अवलम्ब से दुष्कर्मों पर नियंत्रण आकर सत्कर्मों को गति मिलती है। भगवान का न्याय अवश्य मिलता है। इस तत्व पर विश्वास करने से कर्म व्यर्थ नही जाता यह पता चल कर, कर्म सिद्धान्त और कर्म योग साध्य होता है। ईश्वर समदृष्टि है यह तत्व स्वीकारने से ईश्वर की न्याय व्यवस्था पर विश्वास होता है। हर को अपने कर्म के अनुसार फल प्राप्त होता है इस पर विश्वास होता है। हर तरह कर्म, ज्ञान और उपासना का समन्वय होता है।

भारतीय संस्कृति इतनी प्राचीन है कि इसके उगम का समय कोई नहीं बता सकता इसलिये भारतीय संस्कृति को विश्व की आद्य संस्कृति माना जाता है। आधुनिक समय में इस संस्कृति में थोडी सी कालिमा आने के कई कारण हो गये। एक पश्चिमी विचारों का आक्रमण, दूसरा अपने आपको विद्वान विकृत समझ कर पश्चिमी संस्कृति का अन्धानुकरण कर अपनी संस्कृति की उपेक्षा करना। तीसरा एक और कारण है अपनी संस्कृति का महत्व जान कर भी उसके प्रसार के लिये प्रयास न करने वाले लोग। इन तीनों में से आखिरी दो कारण स्वदेश मे ही है। यदि सभी भारतीय यह निश्चित कर ले तो भारतीय संस्कृति का सूरज विश्व के क्षितिज पर जगमगाने में देर नही लगेगी।

भारतीय संस्कृति के तीन उद्दिष्ट है। सुसंस्कृत व्यक्तियों का निर्माण, शिष्टाचार और सदाचार का विकास, और सद्गुणों का विकास। सुसंस्कृत व्यक्तित्व के लिये ही प्राचीन समय में सोलह संस्कारों का महत्व था। सोने पर अग्नि के संस्कार कर कुशल कलाकार जैसे सुन्दर अलंकार बनाता है वैसे सोलह संस्कारों से व्यक्तित्व परिपूर्ण किया जाता था। इस संस्कृति में ऐसे शास्त्र बनाये गये थे जिनके पालन से मानव जीवन शिष्टाचार और सदाचार सम्पन्न होता है। प्रेम, स्नेह, दान, तप आदि सद्गुण प्राप्त कर मानव से महामानव बनने की सुविधा भारतीय संस्कृति में है।

समता, सभ्यता, सामंजस्य, सहिष्णुता और समाधान भारतीय संस्कृति के पांच घटक है। इन पांच घटकों मे ऐसा सामर्थ्य है कि उनके यथा विधि आचरण से भारत ही नहीं, अखिल मानव जाति सुखी और समृद्ध होगी। यह संस्कृति मूल रूप से सहिष्णु है, व्यापक है। सागर जैसे नदियों को अपने आप में समाविष्ट करता है, वैसे भारतीय संस्कृति ने जगत के अनेक धर्म, पन्थों, सम्प्रदायों को अपने आप में समाविष्ट किया है। इन पांच घटकों को जान समझ कर उनका मनपूर्वक आचरण किया जाये तो भारतीय संस्कृति अपना मूल दिव्य स्वरूप फिर से प्राप्त कर सकती है।

भारत में अनेक संस्कृतियों के होने का गलत प्रचार किया जाता है। भारत की संस्कृति एक है। भाषा, वर्ण, धर्म, पंथ भले ही अलग-अलग हो, पर संस्कृति तो एक ही है। भारतीय संस्कृति के बारे में भ्रम सर्वप्रथम फैलाया अग्रेजों ने क्योकि ये चाहते थे यहां के लोग हमेशा दास बन कर अपना जीवन यापन करे इसलिये इस संस्कृति पर लांछन लगा कर विभाजित

करने की कुटिल चाल, दांव पेच अंग्रेजों ने किये। भारतीय संस्कृति की महता संसार के सामने रखने का प्रयास स्वामी विवेकानन्द ने किया था, लेकिन तब तक अंग्रेजों के दुष्प्रचार का विष पूरे भारत में फैल चुका था। भारत यानि टुकडों में, हिस्सों में बटा हुआ देश, वह कभी एक संघ राष्ट्र, नहीं है यह गलत प्रचार किया गया था। अपनी संस्कृति की महिमा प्रकट करने का महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द का कार्य महात्मा गान्धी, लोकमान्य बाल गंगाधर टिलक, महर्षि अरविन्द, डॉ. हैडगेवार, पंडित मदन मोहन मालवीय जैसी विभूतियों ने जारी रक्खा। हमे आज भी यह नहीं भूलना चाहिये कि भारत की संस्कृति अखंड है और भारत एक राष्ट्र संघ और अखंड देश है।

भारतीय संस्कृति की सोच है सुसंस्कारी व्यक्ति, सभ्यता का विकास व श्रेष्ठताओं का वरण। सांस्कृतिक विकास के लिये स्वयं संस्कृति निष्ठ बनना अनिवार्य है। भारतीय संस्कृति अपने आप में भरा पूरा आदर्शों का भंडार है।

अपनी संस्कृति विकास के लिये आवश्यक है कि दूसरों का ध्यान रखते हुये अपने व्यवहारों का सही निर्धारण करना। यदि मनुष्य ने संस्कृति की अवहेलना की तो जीवन में पशुता बढ़ने लगेगी, उपेक्षाओं का शिकार होने लगेगा और कुठायें पनपेगी। सुसंस्कृत और परिस्कृत भावना का अर्थ है परस्पर सहयोग, जनकल्याण और निस्वार्थ।

इस अर्थ प्रधान युग मे हमारी राष्ट्रीयता विलुप्त सी होती जा रही है। प्रशासन व जनता की मानसिकता राष्ट्र, पर कुठरा घात करके आगे बढ़ती जा रही है। समझौते पर समझौते किये जा रहे है। चाहे वे राष्ट्र के हित में हो या नहीं उससे किसी को लेना देना नहीं है। आज के हालात ये है कि विदेशी संस्कृति हमारे देश पर हावी हो रही है। सारा देश इस बात से पूर्ण तया वाकिफ है कि आने वाले सौ सालों में भारत का नकशा क्या होगा? हमे देश हित में सोचते हुये अपनी संस्कृति को कभी भी त्यागना नहीं चाहिये। संस्कृति में ही देश की एकता और अखंडता निहित है।

इस दुनिया की जो देन है उससे मानव हृदय को भर देना उतना आसान नहीं है। मानव हृदय इतना विशाल है कि कितना आनन्द उसमें समा सकता है। केवल ईश्वर ही इसे तृप्त कर सकता है।

ये सारे काम आसान नहीं है बहुत मुश्किल है लेकिन इनका अभ्यास किये बिना सही मायने में आदमी नहीं बन सकता १) अपने किये पर पछताना और उसे ठीक ढंग से फिर से शुरु करना २) अपनी हंसी होने पर बुरा न मानना ३) अपनी तरह दूसरों का भी लिहाज रखना ४) अपनी कामयाबी और खुशहाली को लगातार बनाये रखना ५) अपने पर मुसीबते आने पर भी कोशिश करते रहना ६) अपनी गलतियों को समझ कर उससे फायदा उठाना ७) अपने को ईश्वर ने जो दिया है उसका बेहतरीन उपयोग करना ८) अपनी भूलों को गलतियों को मन से स्वीकार करना ९) अपने अन्दर उठने वाले बुरे विचारों को दूर रखना १०) अपनी आलोचनात्मक वाणी पर नियंत्रण रखना।

घर परिवार में ही नही समाज के सभी बडे बुजर्गों का सम्मान करना, उनकी आज्ञा का पालन करना, मर्यादित जीवन जीना, बुजुर्गों से आशीर्वाद लेने के लिये उनके चरण स्पर्श करना आदि परम्परायें भारतीय संस्कृति की प्रतीक रही है और इसी शालीनता के चलते इसकी विश्व में पहचान है। संस्कृति की रक्षा एवम् आदर्श जीवन के लिये सभी को भारतीय संस्कारों को अपनाना चाहिये।

भारतीय संस्कृति अर्थात अहंकार एव द्वेषभाव से रहित संस्कृति। भारतीय संस्कृति के सम्पर्क में अनेक संस्कृतियां आई, पर इसकी मुख्यधारा सदा ही पवित्र एवम् साधारण बनी रही। भारतीय संस्कृति ने कभी भी दूसरी संस्कृतियों से भेदभाव नहीं रखा। उसने हमेशा ही दूसरों के साथ अपने को मिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु इसका अर्थ यह कदापि

न लगावे कि वह ऐसा कर अपना अस्तित्व खोने के लिये सहमत है। भारतीय संस्कृति की यह आकांक्षा कभी भी नहीं रही कि वह विश्वविजेता बने, पर उसे अपनी स्वतन्त्रता भी प्रिय है। उसे दास्ता का जीवन कभी भी किसी भी कीमत पर स्वीकार्य नहीं है।

भारतीय संस्कृति आत्म विचार से सम्पन्न है। जबकि पश्चिमी संस्कृति इससे विपरीत है। भारत का आम आदमी कहता है मैं आत्मा हूं, शरीर नही। जबकि पश्चिमी संस्कृति का व्यक्ति कहता है मै शरीर हूँ, आत्मा होती भी है या नहीं इसका मुझे पता नहीं। भारत अनेक देवतावादी (भाग्यावादी) नहीं है। देवता कई माने गये है, वे विभिन्न गुण संग्रह के लिये जैसे अग्नि देवता तेजस्विता, इन्द्र पराक्रम, चन्द्र शीतलता, सूर्य ज्ञान प्रकाश आदि गुणों के लिये पूजे जाते है। साथ ही व्यक्ति के प्रत्येक इन्द्रियों के देवताये है जो उन इन्द्रियों की कर्म प्रेरक शक्ति है। इसलिये विभिन्न शक्तियां प्राप्त करने इन देवताओं की उपासना की जाती है।

भारतीय संस्कृति में माता पिता और गुरु को देवताओं का दर्जा दिया गया है। श्रीराम, श्रवणकुमार और भीष्म की पितृ भक्ति विश्व विख्यात है। परन्तु आधुनिक नौजवान पीढी अपनी सभ्यता को भूलती जा रही है। संयुक्त परिवार टूटते जा रहे है।

शहरीकरण और भौतिकता की अन्धी दौड ने मानव को संवेदनहीन बना दिया है। वृद्ध माता-पिता या दादा दादी आज सबसे उपेक्षित प्राणी है। रोडे कंकरीट के महलों और शीघ्र आहार संस्कृति ने वृद्धों की स्थिति को दयनीय बना दिया है। न तो वे अपने ढंग से रह सकते है न ही उनका पेट भर पाता है। आधुनिकता की मृग मरीचिका ने आत्मीय रिश्तों को छिन्न भिन्न कर दिया है। माता-पिता का अपमान करना, घर से निकाल देना आम बात हो गई है। आज की संस्कारहीन शिक्षा सामाजिक रिश्तों को धुन की तरह खाये जा रही है। समर्थ रहते इस मानवीय समस्या पर विचार करना चाहिये नहीं तो समाज में सभ्यता का नाम ही मिटते जायेगा।

हमारा देश समृद्ध, सांस्कृतिक, साहित्यिक व ललित कलाओं से ओतप्रोत विरासत का स्वामी रहा है। अतीत की इन धरोहरों का संरक्षण अति आवश्यक है। प्रबुद्ध नागरिक इनकी सम्भाल में योग दान दे सकते है। हमारे हर कस्बे, शहर व यहां तक कि गावों में भी पुरातन स्मारक मौजूद है। उनको पुस्तकालय, वाचनालय, या ऐसे ही किन्ही अन्य सांस्कृतिक गतिविधि के केन्द्र के रूप में विकसित किया जा सकता है। सरकार ऐसी गतिविधियों हेतु सहायता प्रदान कर इन्हे विनाश से बचा कर अच्छी आदतों व सांस्कृतिक विकास का माध्यम बना सकती है। ये केन्द्र पाश्चात्य प्रदूषित हवाओं से हमारी संस्कृति को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे और भारतीय संस्कृति का गौरव उत्तरोत्तर बढायेंगे।

सबसे बडी विडम्बना यह है कि संस्कृति की बात करना ही पिछडेपन का प्रतीक बन गया है। संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन में समाई हुई है तथा जिसकी रचना एवं विकास में सदियों के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं संस्कृति हमारा पीछा, जन्म जन्मान्तरों तक करती है। अपने यहां एक कहावत है जिसका जैसा संस्कार होता है वैसा ही उसका पुनर्जन्म होता है। संस्कार या संस्कृति वास्तव में शरीर का नही, आत्मा का गुण है। इन दिनों आदर्श, उसूल, स्नेह, सदाचार सभी की परिभाषाये बदल चुकी है। जहां कही पुरस्कार की बात चलती है तो सदाचार फैलने लगता है। कर्म को छीकें पर टांगकर, जमाने की दुहाई देते हुये मक्कारी ही आदर्श बन गई है। छदमताओं को आभा मंडल से ढक कर प्रदर्शन करके दाद बटोरने का प्रयत्न रहता है। किसी से झपटकर हासिल कर लेना और सफेद पोश बने रहना उसूल बन गये है। ऐसी होती जा रही है हमारी वर्तमान संस्कृति।

वस्त्रों को धारण करने के तौर तरीके से व्यक्ति की संस्कृति का पता चलता है। जिसका पहनावा जिस ढंग का है उसके मन में कहीं न कहीं उन्ही संस्कृति मूल्यों के प्रति आस्था छिपी होगी। पश्चिमी वेशभूषा का अन्धानुकरण, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति विवेक हीन आस्था को दर्शाता है। जिसके मन में अपनी संस्कृति के प्रति गौरव का भाव है उन्हे भला अपने देश का पहनावा अपनाने में कैसी हिचकिचाहट। जहां तक सम्भव हो, अपने देश, अपनी धरती एवं अपनी संस्कृति के अनुरूप ही पहनावा पहना जाये। हमारा पहनावा सभी को इस बात की सूचना दे सके कि हम राजनैतिक रूप से नहीं बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी स्वतन्त्र है और हमारी भारतीय जीवन मूल्यों में आस्था है। इस आस्था को दृढ करने के लिये हमें अपनी कल्पनाओं व विचारों को सही दिशा देना है।

विज्ञान के युग में हर व्यक्ति आधुनिकता की चकाचौंध में संस्कृति और सभ्यता को भूलता जा रहा है। युवा वर्ग स्वतन्त्रता सेनानियों और महापुरुषों को आदर्श मानने के बजाय अभिनेता और अभिनेत्रियों को आदर्श मान रहा है। लडकियां भी फैशन के दौर में बहुत आगे हो गई है। शायद उन्हे अपनी परम्परा और संस्कृति याद नहीं रही। इस प्रकार सभी अपनी सभ्यता, संस्कृति से दूर होते जा रहे है। इससे पश्चिमी संस्कृति को बढावा मिल रहा है जिससे समाज के लिये यह नयी प्रथा प्रणाली खतरनाक है।

अपने देश की संस्कृति को बचाओ नहीं तो आगे आने वाली पीढी कभी इसके अनुसार ही बर्ताव करने लगेगी। हमारी संस्कृति पर नित नये हमले हो रहे है। हमारे जैसे खानपान होगे वैसे विचार होंगे और वही व्यवहार में परिणित होगा। किसी भी अच्छे काम का श्रेय अपने सिर पर मत लो इससे अहंकार आजायेगा और यदि कोई गलती या अपराध बन जाये तो उसकी जिम्मेदारी अपने उपर ले लेना ही सम्यक दृष्टि है। मनुष्य में ही चारों वर्ण निहित है। व्यक्ति नहाने से पहले शूद्र होता है इसलिये कि वह शरीर की, मन की सफाई करता है। नहाने के बाद वह पूजा, प्रार्थना करता है इसलिये वह ब्राह्मण है, उसके पश्चात हिसाब किताब व्यापार करता है तब वह वैश्य है और इन्ही बात को लेकर लडता झगडता है तब वह क्षत्रिय हो जाता है। अपने आत्मकल्याण के लिये प्रार्थना जरूरी है। जिस तरह शरीर के लिये भोजन जरूरी है उसी तरह आत्मा के पोषण के लिये भजन जरूरी है। आत्मा की खुराक भजन और प्रार्थना होती है। भगवान के चरणों में दो दीपक तो कुदरती रूप से हमेशा जलते रहते है। एक दिन में सूरज तथा दूसरा दीपक रात में चन्द्रमा के रूप में जलता है।

आज का आदमी भ्रम में जी रहा है, गलत फहमियों में जी रहा है उसे यथार्थ में जीना चाहिये। आदमी का वजन अधिक नही रहता है लेकिन उसके अहंकार का वजन उसके वजन से कई गुना अधिक है। हमारे जीवन जीने की शैली मे भूखे को खिलाना हमारी संस्कृति है, भूख लगने पर खाना प्रकृति है और भूख न लगे और फिर भी खाना विकृति है। रात के भोजन का त्यागना कोई धर्म नहीं है यह सिर्फ स्वास्थ्य से जुडा हुआ है। पेट ने आदमी को मजबूर कर दिया है। साधना के लिये शरीर एक माध्यम निमित्त है। आप संसार छोडो समाज नहीं इसी कारण से आपको समाज की बारीकियों का पता होगा। जीवन को ऐसा बनाओ कि जिन्दगी हमेशा खुशहाल रहे।

विश्व के इतिहास में पहली बार उत्पन्न संस्कृति यानि भारतीय संस्कृति। इसमें व्यक्तित्व सम्पन्न कराने का सामर्थ्य है। यह संस्कृति नव निर्माण करने वाली और कलात्मक है। मानव परिश्रम शासन संस्था, नीति, धर्म, शास्त्र, दर्शन, वांगमय, कला इन आठ अंगों से भारतीय संस्कृति सम्पन्न है। इनमे नीति, धर्म शास्त्र, एवं दर्शन का विशेष विकास पश्चिमी देशों मे नही हुआ। लेकिन भारतीय संस्कृति परिपूर्ण है क्योंकि उसमें पंच प्राण मिले है। वे है सदविचार,

सद्भावना, उच्च आदर्श एवं कल्पना, विभिन्न कल्पनाये एवं धर्म युक्त नीति इनके कारण वह हजारों वर्षों से टिकी है। पुरुषार्थ कर परमात्मा प्राप्त करने के ५ ग्रन्थ इस संस्कृति को प्राप्त है वे है वेद, उपनिषद, गीता, रामायण एवं महाभारत। भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप जब तक भूला नहीं जाता तब तक उसमें बाधा नहीं आती। इस परम्परा को उज्ज्वल करना हर भारतीय का कर्त्तव्य है।

इस समय दुनिया को बाजार की शक्तियां हांक रही है। विश्व का बाजारीकरण होते जा रहा है। हर कोई किसी न किसी चीज का क्रेता विक्रेता बना हुआ है। इसी कारण देश में बाजारु संस्कृति का उद्भव हो रहा है जिसका न तो कोई आचार है और न ही कोई आधार। ठीक उसी तरह जैसे बंजर भूमि में किसी उपयोगी वस्तु का उपजाव नही होता इसी तरह बढती बाजारू अश्लील संस्कृति का कोई संस्कार नहीं होता। हम अपनी प्राचीन, सनातन पुरातन, अर्वाचिन, वैदिक संस्कृति से विमुख होकर बाजारु संस्कृति की तरफ उन्मुख होते जा रहे है। भोग और भोजन बाजारु हो गये है। इसी कारण पारिवारीक प्रेम में शून्यता बढती जा रही है। भारतीय संस्कृति विकलांग होती जा रही है। पनपती बाजारु संस्कृति एवं पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण का यह दुष्प्रभाव है जिसके कारण भारतीय मानव समाज खोखलेपन की तरफ बढ रहा है। देश मे बढती हुई बाजारु बिकाऊ संस्कृति पर रोक नही लगी तो वैदिक संस्कृति एवं भारतीय मानव समाज का कल्याण मुश्किल ही है।

भारतीय संस्कृति का चिरंतन चिन्तन शाकाहार ही सुखी जीवन का आधार है। शाकाहार सात्विक भोजन है जो कि शान्त, सरल और प्रगतिशील चिन्तन को जन्म देता है और व्यक्ति को सुमार्ग पर प्रेरित कर सुख, शान्ति का अनुभव कराता है।

भारतीय संस्कृति महान है। इस कथन का प्रमाण वे तीन देते हैं, जो इस संस्कृति ने जगत् को दी है- पहली देन है अध्यात्म विचार और उसका आचरण। दूसरी देन है वह युक्ति जिससे मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है।

व्यक्ति कितना ही साधारण और अद्वितीय बन सकता है यह दर्शन भारत ने सबको दिया। तीसरी देन है कई महान संतों, देशभक्तों, राष्ट्रपुरुषों और महामानवों की परंपरा। ये देनें भारतीय संस्कृति ने ही संसार को दी है।

आज जहां लोग अन्य देशों से आकर हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता को अपना रहे हैं, वहीं हमारा देश पाश्चात्य संस्कृति की ओर अग्रसित हो रहा है। आज के दौर में हमारे देश के लोग खासतौर से युवा वर्ग भारतीय संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति को अपना रहे हैं। आज के दौर की फिल्मों का इसमें मुख्य योगदान है। युवा वर्ग फिल्मों में दिखाए जाने वाले दृश्यों एवं वेशभूषा को अपने जीवन, चरित्र में समायोजित कर रहे हैं। फिल्में और धारावाहिक युवा वर्ग को भ्रमित कर रहे हैं। हमारी संस्कृति में नारी को देवी का दर्जा दिया गया है, पश्चिमी संस्कृति को अपनाकर इस देवी को अपने सिंहासन से न उतारें। पश्चिमी संस्कृति की धूल को अपने दिलो-दिमाग से साफ करके अपनी भारतीय संस्कृति को अपनाएं तथा अपनी गुम होती संस्कृति को सहेजकर रखें।

भारत में हमेशा मूल्यों की प्रधानता रही है जिसका जाने-अनजाने संबंध अध्यात्म से रहा है। पहले यही जीवन मूल्य समाज और व्यक्ति को संचालित करते थे। इसी से पूरा समाज अनुशासित और संयमित रहता था। वे मूल्य आज भी उतने ही खरे हैं। ईमानदारी, सच्चरित्रता, सेवा, साधना, नैतिकता, अस्तेय-आज का भी सच है। भारत की पूजा और इज्जत इसी कारण हो रही है। पश्चिम इसीलिए भारत की ओर भागा जा रहा है। औद्योगिक क्रांति से पैदा हुई जटिल अर्थव्यवस्था

ने निश्चित तौर पर मानवीय-मूल्यों को हाशिए की चीज बना दिया है। आज तो संकट यह हो गया है कि क्या ये मूल्य जिंदा रह पाएंगे ? अगर नहीं हो सके तो बचाव में क्या उपाय किए जा सकते हैं ? औद्योगिक कांति ने अगर विकास के द्वार खोले हैं तथा वैज्ञानिक उपादानों की भरमार लगाई है तो इसने स्वतंत्रता को भी बाधित किया हे। इसने स्वतंत्रता की नई परिभाषा का गठन किया है जो पूरी तरह से भौतिक और आर्थिक मुद्दों से जुड़ी हुई हैं। यह स्वतंत्रता मौज करने, भौतिक उपादानों के साथ जीने आदि की है जो दरअसल एक तरह की गुलामी है। आदमी इस युग में पैसे का दास हो गया है। उसकी पूर्ति के लिए वह अपना पूरा जीवन दांव पर लगा रहा है। उसकी आंखों से नींद गायब है और वह सरपट दौड़ा जा रहा है। उसे कहां जाना है, क्या करना है, खुद पता नहीं है। उसे चारों ओर एक बदहवासी छाई हुई है। यही फर्क है पश्चिम की विकास की अवधारणा तथा भारतीय अवधारणा में। भारतीय अवधारणा शांति, सह-अस्तित्व और सामाजिक संतुलन की है जो किसी विपरीत परिस्थिति में भी उद्देश्यविहीन नहीं है। वह मौलिक आजादी की पक्षधर है जो शरीर और मन के स्तर तक की होती है। वह आजादी उसके विवेक से निकलती है, किसी के द्वारा लादी नहीं जाती और न छीनी जा सकती है। भारत के पास मूल्यों का एक शाश्वत ढांचा है। उसे तैयार करने में मनीषियों, साधकों और समाज वैज्ञानियों की हजारों वर्ष की तपस्या लगी है। उस अनुभव से जो ढांचा तैयार हुआ है उसे चुनौती देना संभव नहीं है। यह अलग बात है कि सामयिक पूर्वाग्रहों के कारण उस ढांचे की यात्रा में अनेक कुप्रसंग और सिद्धांत जुड़ गए हैं जिसने समाज को कटघरों में खड़ा किया है। कुछ अफलातून लोग उसी का सहारा लेकर दिन-रात शाश्वत मूल्यों को कोसने में लगे हैं। वे तो यह आरोप भी लगा रहे हैं कि भारतीय मूल्यों और परम्पराओं ने आदमी को धर्म-सम्प्रदाय और जातियों में बांट दिया है। इस कारण यहां का पूरा का पूरा समाज अनेक गुटों-वर्गों में विभाजित है। उससे मनुष्यता का हनन भी हो रहा है। उसे जो आज का बाजारवाद स्थापित कर रहा है या उसे जो हमारी परम्परा में सुरक्षित है, बहस इस बात पर होनी चाहिए। अगर हम इससे कतराते रहे तो निश्चित तौर पर जिस तरह अंग्रेजी हमारे जीवन में समा गई है, उसकी वेशभूषा के बिना हम नहीं रह सकते। जैसे विदेशी सामानों से हमारा बाजार भरा हुआ है और वह हमारे घरों में स्वदेशी वस्तुओं को विस्थापित कर रहा है उसी तरह पश्चिमी विचारधारा भी हमारे मन-प्राण में समा जाएगी। हमारे अपने शाश्वत मूल्य कहीं फुटपाथों पर भीख मांगते मिलेंगे और हम भी उसे उपेक्षा की नजरों से देखने के आदी हो जाएंगे। हमें पश्चिम की आंधी और उसके धीमे जहर को काटने के लिए अपनी परंपरा की तरफ जाना होगा। उसके पन्ने पलटने होंगे। अगर कुछ अवैज्ञानिक है तो उसके बारे में बहस शुरू करनी चाहिये।

जिस संस्कृति में वृद्धों के लिए सम्मान है, बच्चों के मानसिक व शारीरिक विकास के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध हैं नारी की भावनाओं को पूर्ण सुरक्षा प्राप्त है, जो संस्कृति प्रेम, दया, करूणा, श्रद्धा, त्याग, सम्मान को उत्साहित करती है, जहां सभी को समान अधिकार प्राप्त हो, जहां अनाथ, रुग्ण, असहाय लोगों को उदारता, प्रेम व सहानुभूति की दृष्टि से देखा जाता है वह संस्कृति उतनी ही अधिक श्रेष्ठ है। जब हम जानते हैं कि हम इस प्रकार श्रेष्ठ बन सकते हैं तो क्यों न उन गिनी चुनी खामियों को समाप्त कर डालने का बीडा उठा लें। समस्त हिन्दूवादी समाजों को संयुक्त रूप से दहेज प्रथा, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष असमानता जैसी बुराइयों के खिलाफ अभियान छेड़ना चाहिए।

भारतीय संस्कृति का पतन हमारे समाज में हावी होती पश्चिमी संस्कृति के कारण हो रहा है, जो एक गम्भीर विषय बन गया है। आज भारतीय समाज के लोगों ने भारतीय संस्कृति को छोड़कर पश्चिमी संस्कृति को अपना लिया है।

कभी भी किसी ने इस बात पर विचार किया है कि वह पश्चिमी संस्कृति हम लोगों को फिर से गुलाम बना रही है और भारतीय समाज फिर से अंग्रेजों का गुलाम बनने को मोहताज हो रहा है ? अगर हम लोगों ने एक बार भी विचार किया होता है कि हमारे देश के महापुरुषों ने किस तरह से हम लोगों को आजादी दिलायी थी, तो कभी भी हमारे देश के लोग पश्चिमी संस्कृति को न अपनाते।

हमारी संस्कृति ने तो ऐसा नहीं सिखाया था, फिर हम ऐसे कैसे हो गये ? हमारी संस्कृति ने हमें उत्साह और उमंग के साथ जीना सिखाया था। मुश्किलों में भी हँसते रहना सिखाया था, लेकिन इस आधुनिकता ने हमसे हमारी हँसी छीन ली। एक बार अपने आपको इस संकोच और मान-प्रतिष्ठा के दायरे से बाहर निकालकर देखो ये उदासी और खालीपन का लबादा उतार फेंको बस हँसना सीख जाओ फिर देखना तुम्हारी जिन्दगी चहक उठेगी, हर कोई तुम्हारे साथ हँसेगा, ये जमीन हँसेगी, आसमान हँसेगा। हँसी आदमी और जानवर के बीच का सबसे बड़ा फर्क है।

हमारे देश में एक परंपरा है, संस्कृति है, जिसके मारे हम लोग अवगुणों के ढेर में एक नन्हा-सा सद्गुण खोज संतोष कर लेते हैं। हर नाप और गुण की कसौटियां हमारे पास हैं। यह नहीं तो दूसरी, और दूसरी नहीं, तो तीसरी कसौटी पर हम आदमी को पास कर देते हैं। भ्रष्ट स्त्रियों को सुंदरता की खातिर सम्मानित करना और बदशक्ल को सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र दे अपनी पलकों पर बिठाना, भारतीय मर्दों की पुरानी आदत है। जो दोनों से रहित है, उसके लिए कह देते हैं कि हाय। बिचारी मजबूर थी। अर्थात् कहीं न कहीं दिल को संतुष्ट करने का एक आधार हमें मिल जाता है। औरतों ने ऐसे-ऐसे पुरूषों को देवता माना है, जो जानवर कहलाने की पात्रता नहीं रखते थे। पर इसी का नाम भारत है। इस भारतीय स्वभाव का सर्वाधिक लाभ राजनैतिक पार्टियों और नेताओं को लगातार मिलता है।

विश्व भर में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को सम्मान की नजर से यूं ही नहीं देखां जाता। इस सम्मान का सबसे प्रमुख कारण है यहां के निवासियों की संवेदना शक्ति। जो मानवता की पहली शर्त है। भारतीयों के हृदय में सजीव प्राणियों के प्रति ही नहीं अपितु बेजान वस्तुओं, पहाड़ों, झरनों, नदियों, सागरों के प्रति भी गहरी संवेदना स्पंदित होती रही है। पाश्चात्य संस्कृति जहां स्वान्त: सुखाय में विश्वास करके जीवन जीने का बाहुल्य है वहीं भारत की संस्कृति का मूलमंत्र है बहुजन हिताय। इस युग में घाव करने वाले बहुत हैं, पर घावों पर मरहम लगाने वालों की भी कमी नहीं है। पाप कर्म करने वाले हैं तो पुण्य को जीवित रखने वाले भी उनसे अधिक हैं। पुण्य की इसी धुरी पर कायम है यह धरा, वरना कब की ये सृष्टि कब्र में दफन हो गयी होती। कर्म और उसके परिणाम में विश्वास करने वाली संस्कृति का संवाहक भारतीय जनमानस पुण्य कर्म करने का कोई भी अवसर चूकता नहीं है, इसीलिए विश्व में भारतीय होने का गौरव भी प्राप्त करता है।

आस्तिक भावना और ईश्वर में विश्वास भारतीय संस्कृति का मुख्य अंग है। उपासना, मत और ईश्वर सम्बन्धी विश्वास की स्वतन्त्रता भारतीय संस्कृति की परम्परा रही है। कोई भी संस्कृति जीवित नहीं रह सकती यदि वह अपने को अन्य से पृथक रखने का प्रयास करे। जो-जो धर्म-ग्रन्थ अपौरुषेय समझे गए हैं, उनमें समाविष्ट की गई संस्कृति भी स्वाभाविक रूप से अपरिवर्तनीय समझी जाती है। जो संस्कृति महान होती है, वह दूसरों की संस्कृति को भय नहीं देती, बल्कि उसे साथ लेकर पवित्रता देती है। भारत की एकता का मुख्य आधार है एक संस्कृति, जिसका उत्साह कभी नहीं टूटा। यही इसकी विशेषता है। भारतीय एकता अक्षुण्ण है, क्योंकि भारतीय संस्कृति की धारा निरन्तर बहती रही है और बहेगी।

मनुष्य की श्रेष्ठ साधनायें ही संस्कृति है। युग-युग के संचित संस्कार, ऋषि-मुनियों के उच्च विचार। धीरों-वीरों के व्यवहार, हैं निज संस्कृति के श्रृंगार।।

विश्व के सर्वोत्कृष्ट कथनों और विचारों का ज्ञान ही संस्कृति है। संस्कृति इस तरह मानव-जाति की वह रचना है जो एक को दूसरे के मेल में लाकर उनमें सौहार्द्र की भावना पैदा करती है। वह जोड़ती और मिलाती है। उसका परिणाम व्यक्ति में आत्मोपमता की भावना का विकास और समाज का सर्वोदय है। संस्कृति उस दृष्टिकोण को कहते हैं, जिससे कोई समुदाय-विशेष जीवन की समस्याओं पर दृष्टि-निक्षेप करता है।

हिन्दू संस्कृति आध्यात्मिकता की अमर आधारशिला पर आधारित है। हिन्दू संस्कृति या आर्य संस्कृति की यदि कोई विशेषता कही जा सकती है तो वह यही है कि उसने स्वार्थसिद्धि की अपेक्षा पर सेवा, समाज-सेवा और स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ पर अधिक जोर दिया है। धनवान धन के जोर से काम करा सकता है, संस्कृति नहीं खरीद सकता। आदमी या औरत उसकी संस्कृति का पता इस बात से लगता है कि व्यक्ति झगड़े के समय कैसा आचरण करता है।

आज हमारे समाज में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अंधानुकरण की होड़ लग गयी है। यही कारण है कि समाज में अश्लीलता बढ़ रही है। अंग प्रदर्शन एक शौक बन गया है। यह और कुछ नहीं बल्कि समाज में खुद को प्रगतिशील साबित करने और पैसे के लालच में किया जा रहा है जो समाज के लिए विष का काम कर रहा है। लोगों में तरह-तरह की कुप्रवृत्तियां जन्म ले रही हैं। इसमें हमारें संचार माध्यमों के अलावा दूरदर्शन और फिल्मों का बहुत बड़ा योगदान है। रही सही कसर बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने उत्पादों को बाजार में बेचने के लिए नारी देह का इस्तेमाल करके पूरा कर दे रही हैं। हमें इससे बचना चाहिये तभी हमारी सभ्यता और संस्कृति अक्षुण्ण बनी रह सकती है। इसके लिए आम जनता को आगे आना होगा तभी इस कुसंस्कृति से मुक्ति पायी जा सकती है।

अपने पति का नाम न लेना भारतीय नारी की संस्कृतिजन्य विशेषता है। लेकिन दूरदर्शन संस्कृति पैर पसार रही है और इसी के साथ फैल रहा है सांस्कृतिक प्रदूषण। धारा वाहिकों में न केवल पति का नाम लिया जाता है बल्कि उसके साथ आकारान्त संबोधन भी लगायें जाते हैं जैसे कह रहा था, जानेवाला था इत्यादि। फिर भी आम भारतीय नारी अपनी जगह कायम है। पति के लिये उसके सम्बोधनों में अभी भी गरिमा कायम है साथ ही वे सम्बोधन दिलचस्प भी होते हैं।

संस्कृति और संस्कार सामाजिक उपादानो का अन्योन्याश्रित संबंध है। संस्कृति शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से क्त प्रत्यय करने से निष्पन्न है, जिसका अर्थ पूरा किया हुआ, माँजकर चमकाया हुआ, सुधारा हुआ, सिद्ध, सुनिर्मित, अलंकृत आदि होता है। इसी संस्कृत शब्द की संज्ञा है संस्कृति। संस्कृति शब्द अत्यंत व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। संस्कृति मानवीय कृति होने के कारण मानव की ही भाँति प्रगतिशील भी है। संस्कृति ही मानव का समग्र परिष्कार करती है।

श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति भारत की दो प्राचीन प्रमुख संस्कृतियां है। ब्राह्मण संस्कृति को आज इस नाम से ही नहीं पुकारा जाता, बल्कि कुछ लोग इसे वैदिक परम्परा के नाम से पुकारते है। वैदिक परम्परा पौराणिम परम्परा थी।

श्रमण संस्कृति क्या है ? श्रम माने परिश्रम मेहनत। इस परम्परा में कही जरा सी भी ऐसी मान्यता नहीं है कि बिना श्रम के बिना परिश्रम के बिना पुरुषार्थ के बिना मेहनत के हमारा उद्धार हो जाएगा, किसी की हम पर कृपा हो जाएगी।

श्रमण संस्कृति की तीन विशेषताएं है। श्रमण परम्परा में कोई हमारा उद्धार करने वाला नहीं है। कोई पार लगाने वाला नहीं है। कोई तुम्हारा मालिक नहीं है। कोई तुम्हारी डूबती नैया को पार लगाने वाला नहीं है। यहां तो मेहनत करके, श्रम

करके, परिश्रम करके अभ्यास करके स्वयं तैरना होता है। स्वयं ही परिश्रम करना होता है। कोई दूसरा व्यक्ति अधिक से अधिक यह कर सकता है कि हमे भवसागर से पार उतरने का रास्ता बता सकता है, वह भी वही व्यक्ति बता सकता है, जो स्वयं उस भवसागर से पार हो चुका है। केवल ग्रंथ पढ़कर नहीं, किसी से सुनकर नहीं, किसी की मान्यता को मानकर नहीं, बल्कि अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर उसको पार उतरने के लिए मार्ग बता सकता है। मार्ग दाता बन सकता है। जब तक व्यक्ति स्वयं उस राह पर चल कर अनुभव नहीं करता तब तक औरों को भी उस राह पर चलने का उपदेश नहीं देता। अपने चले हुए रास्ते का अनुभव हमें बताता है, किंतु हमें चलना स्वयं पड़ता है।

यह दु:खद सत्य है कि आम भारत का युवा वर्ग अपनी सभ्यता-सस्कृति को भूलकर पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति को अपनाने में शर्म की जगह गर्व का अनुभव करता है। भोगवादी संस्कृति से ऊबकर अब पश्चिम के लोग ही शांति की तलाश में भारत की शरण में आ रहे हैं। वे इस बात को स्वीकार कर रहे हैं कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व की अनमोल सभ्यता और संस्कृति है। लेकिन हम भारतीय ही इसकी अनदेखी कर पाश्चात्य संस्कृति अपनाने के लिए होड़ मचाये हुए हैं। यह प्रवृत्ति भावी पीढ़ी के लिए खतरे से खाली नहीं है। दुनिया को सभ्यता का पाठ हमने पढ़ाया, फिर ऐसा क्यों हो रहा है ? पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव शिक्षा संस्थानों पर भी पड़ रहा है। शिक्षा एक कठोर साधना है, इसमें फैशन के लिए जगह नहीं है।

आज युवा वर्ग पाश्चात्य संस्कृति को तेजी से आत्मसात कर रहा है। आम लोगों के जीवन के हर स्तर पर पाश्चात्य शैली की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। फलत: भारतीय सभ्यता एवं सस्कृति प्रदूषित हो रही है। ऐसे में हमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पतन से बचाने के लिए विदेशी संस्कृति का बहिष्कार करना चाहिए।

वैश्विक का जमाना है। आधुनिकता की अंधी दौड़ है। पश्चिम की नकल पुरजोर है। युवा वर्ग पथभ्रष्ट हो रहा है। अधिक धन की चाहत है। अपनापन कहीं खो गया है। घर के बड़े-बुजुर्ग सेवा आश्रमों का सहारा ले रहे हैं। नैतिकता दम तोड़ रही है। रिश्ते दरकते, टूटते, सिसकते दम भर रहे हैं। देश की सभ्यता संस्कृति का ऱ्हास हो रहा है। इन सबका कारण बाजारवाद ही तो है। हमें इससे बचना है। आवश्यकता है दृढ़ इच्छा शक्ति और ठोस संकल्प की।

हमारी संस्कृति विश्व की अत्यंत प्राचीन संस्कृतियों में मानी जाती है। इसमें कोई मत भिन्नता नहीं हो सकती कि किसी भी देश को महान बनाने में उसकी संस्कृति का बहुत बड़ा योगदान अवश्य होता है। संस्कृति व संस्कार एक-दूसरे के पूरक होते हैं। हमारी संस्कृति उच्च आदर्शों व श्रेष्ठ मानवीय गुणों के मूल्यों पर टिकी हुई है। आदर्शों व संस्कारिक परिवेश के कारण ही भारतीय महिलाओं को दुनियाभर में श्रेष्ठ माना जाता है। लज्जा, शीलता, समर्पण और सच्चरित्र को कभी अनदेखा नहीं किया जा सकता। परंतु अत्यंत खेद का विषय है कि वर्तमान में हमारी संस्कृति पर पश्चिमी संस्कृति तेजी से हावी होती जा रही है। चिंतन-मनन, धैर्य व संतोषी जीवन पर आधारित हमारी संस्कृति लुप्त प्राय: होती जा रही है। इसी का परिणाम है कि आज सभी अपने स्वार्थ में मस्त हैं। मिल-बांटकर खाने व भूखे को भोजन की व्यवस्था अतीत की बातें बनती जा रही हैं। यदि ऐसा ही सब कुछ चलता रहा तो हम अवसाद के गहरे गर्त में गिरते चले जायेंगे।

हमारी संस्कृति और सभ्यता को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति माना गया है। इसकी नैतिकता, उदारता और ज्ञान की बदौलत हमारा देश लंबे समय तक विश्व गुरु रहा है। विदेशी व्यापारियों के आक्रमण के बाद भी इस संस्कृति को नुकसान नहीं पहुंचाया जा सका, लेकिन अंग्रेजों के देश छोड़ने के बाद जिस तरह से आधुनिकता के नाम पर भारतीय जनमानस

एवं संस्कृति से विमुख होता जा रहा है उससे समाज में विकृतियां पनपती ही जा रही हैं। ओछे कपड़े पहनना, बात-बात पर दिखावा करना और बड़े-बुजुर्गों को बिना किसी स्वार्थ के आदरभाव न देना इसके परिचायक हैं। संस्कारों के पतन से ही समाज में अश्लीलता बढ़ती जा रही है। अकेली महिला तो कहीं सुरक्षित नहीं है। सभी देशवासी सोचें कि क्या देश का वर्तमान स्वरूप एवं संस्कृति के अनुकूल है ? और क्या हम जिस समाज में जी रहे हैं वह भी।

किसी भी देश का संपूर्ण विकास वहां की भाषा तथा वहां की संस्कृति के संरक्षण पर निर्भर करता है। यदि देश की संस्कृति सुरक्षित है तो देश भी सुरक्षित रहेगा। हमारे भारत देश में आज उल्टा हो रहा है। फैशन तथा पश्चिमी सभ्यता की अंधी दौड़ में यहां का प्रत्येक वर्ग शामिल होने लगा है। दिखावा ही सभ्यता का परिचायक बन गया है। स्थिति आज यहां तक पहुंच चुकी है कि अपने रीति-रिवाज तथा खान-पान को भी लोग भूलते जा रहे हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह आधुनिकीकरण हमारे लिए घातक सिद्ध होगा।

यह दु:खद सत्य है कि आज भारत का युवा वर्ग अपनी सभ्यता-संस्कृति को भूलकर पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति को अपनाने में शर्म की जगह गर्व का अनुभव करता है। भोगवादी संस्कृति से ऊबकर अब पश्चिम के लोग ही शांति की तलाश में भारत की शरण में आ रहे हैं। वे इस बात को स्वीकार कर रहे हैं कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व की अनमोल संस्कृति है। लेकिन हम भारतीय ही इसकी अनदेखी कर पाश्चात्य संस्कृति अपनाने के लिए होड़ मचाये हुए हैं। यह प्रवृत्ति भावी पीढ़ी के लिए खतरे से खाली नहीं है। दुनिया को सभ्यता का पाठ हमने पढ़ाया, फिर भी यह हो रहा है। पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव शिक्षा संस्थानों पर भी पड़ रहा है। शिक्षा एक कठोर साधना है, इसमें फैशन के लिए जगह नहीं है।

भारतीय संस्कृति को पश्चिमी संस्कृति ने काले आंचल में ढक लिया है। विलासितापूर्ण समाज में सब-कुछ बदल गया है। शुद्ध वातावरण, पवित्र रहन-सहन, खाना-पीना प्रदूषित हो चुका है। हर चीज शीघ्र हो गई है। जल्दी खाना, जल्दी पीना, जल्दी चलना, जल्दी पहनना। युवा पीढ़ी इस कदर तेज है कि सही-गलत समझने की फुर्सत ही नहीं। लिहाजा खामियाजा भुगतना पड़ रहा है। लड़कियों के कपड़े छोटे-छोटे टुकड़ों में तब्दील हो गये हैं। एक-दूसरे से अच्छा दिखने की चाह में कॉलेज को रैंप का अड्डा बना दिया गया है। लड़कियों के तंग और छोटे पहनावे के कारण छेड़खानी की हरकतें तेज हो गई हैं। लड़कों में फर्राटा बाइक्स और हेयर स्टाइल की होड़ मची है।

अपने आदर्शों और मूल्यों के कारण भारतीय संस्कृति का विश्व में एक अलग स्थान है। इसी के दर्शन करने यहां पर हर साल विदेशी पर्यटक भारी संख्या में आते हैं। कुछ पर्यटक यहां के मूल्यों की परवाह किए बिना अश्लील आचरण करते हैं जिसका समाज पर बुरा असर पड़ता है। अत: पर्यटकों के ऐसे आचरण को रोका जाना चाहिए।

भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का निरंतर ऱ्हास हो रहा हैं। अंधानुकरण दौड़ में सभी लोग निरंतर दौड़ते जा रहे हैं। अपने प्राचीन मूल्य विस्मृत करते हुए आधुनिकता के रंग में सराबोर होते जा रहे हैं, प्रेम, सौहार्द्र, दया, सहयोग, ममता क्षमा, पवित्रता, इंद्रियोंपर नियंत्रण, सत्य, क्रोधरहित आदि गुणों से युक्त जीवन को व्यतीत करते हुए प्राचीन समय में हम शांतिप्रिय जीवन व्यतीत करते थे। वर्तमान में चोरी, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, असहयोग, क्रोध, झूठ, छल, कपट आदि दुर्गुणोंसे युक्त होकर जीवन को नष्ट कर रहे है। यदि हम भारतीय संस्कृति को पुन: संपूर्ण संसार में प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण जगत के सिरमौर बनना चाहते हैं तो हमें फिर भारतीय संस्कृति को अपनाकर उसके द्वारा निर्देशक गुणों का

अनुकरण करना चाहिए।

विश्व की सबसे बड़ी कोई वैज्ञानिक, व्यावहारिक और समतामूलक संस्कृति है तो वह वैदिक संस्कृति है। ऐसे ही अनुपम संस्कृति की विलक्षण विरासत है।

दु:ख में दु:खी होना एवं सुख में सुखी होना यह लोहे जैसे चित्त की पहचान है। दु:ख में सुखी, सुख में भी सुखी होना सोने जैसे चित्त की पहचान है, लेकिन सुख-दु:ख में सम रहना यह तो पारस जैसे चित्त की पहचान है। सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है। भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में सबसे महान है। इसकी जड़े बहुत गहरी और मजबूत है। यूनान, मिस्र और रोम की संस्कृतियां सबसे प्राचीन मानी जाती है, लेकिन इस सबका अस्तित्व आज केवल संग्रहालयों में ही देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति को तोड़ने के अनेक प्रयास किए गए। अयोध्या का नाम बदलकर फैजाबाद रखा गया, प्रयागराज का नाम बदल कर इलाहाबाद रख दिया है लेकिन आज भी करोड़ों श्रद्धालु कुंभ नगरी को हरिद्वार के ही नाम से जानते हैं। उन्होंने कहा कि भारतीय संस्कृति आज भी अपने आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शन करने में सक्षम है। जिसके पास कुछ नहीं होता, उसपर हंसती है दुनिया और जिसके पास सब कुछ होता है उससे जलती है।

आज राष्ट्र वेदना यही है कि आजादी के इतने सालों बाद भी हम अपना खोया हुआ गौरव प्राप्त नहीं कर सके हैं। आज जहां पाश्चात्य देश अपनी भौंडी संस्कृति को त्यागकर हमारी संस्कृति को अपना रहे हैं, वहीं हमारे देश का एक बड़ा वर्ग स्वच्छंदता के नाम पर उनकी घटिया विचार धारा को अंगीकार अपना रहा है। हमारी सभ्यता बताती है कि हमारे देश क्लबों, बारों, पबों, कैसिनों में नहीं बल्कि उद्योगों, शोध-संस्थानों में दिखाई देना चाहिए। अधिकांश युवाओं की ऊर्जा सिगरेट के धुएं अथवा मदिरालय की चौखट पर दम तोड़ती नजर आती है। वक्त की मांग है कि हमारे युवा जागें। खुद को जानकर गौरवान्वित होना चाहिए कि उनका रानी लक्ष्मीबाई, वीर सुभाष, भगत सिंह, का खून दौड़ रहा है। युवा इस पर विचार करें कि इतनी उत्कृष्ट है, हमारे पूर्वजों की इच्छा शक्ति तो हम कमजोर क्यों बने हुए हैं? हम सब मिल कर का निर्माण करने का संकल्प करें, तभी देश गौरवपूर्ण होगा।

आज विश्व में भारतीय संस्कृति को आदर्श मानकर इसे अपनाने की होड़ मची हुई है। पर दुर्भाग्य इस बात का है कि निरंतर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का हमारे देश में बढ़ता प्रभाव यहां की संस्कृति एवं सभ्यता के लिए खतरा बनने लगा है जिसकी झलक हमारे समाज में अचानक बदलाव लेकर आये पहनावें में देखी जा सकती है। अत: इस समय पुन: अध्यात्म एवं भारतीय संस्कृति के महत्व को प्रदर्शित करनेवाली शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

पश्चिम की संस्कृति बाह्योन्मुखी है जब कि पूर्व की संस्कृति अन्तर्मुखी है। जब हम समृद्ध में भी अहं भाव नहीं आने देंगे तभी शान्ति प्राप्त हो सकेगी। जहां कही पर, जिस किसी के जीवन में श्रेष्ठता दिखाई पडती है, वहां हम उसकी प्रशंसा करते है और उसका सम्मान भी करते है, यह हमारी संस्कृति की विशेषता रही है।

विश्व की तमाम संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का आदर और जीवंतता सिर्फ इसलिए कायम है कि यह संस्कृति आपसी सहमति, बंधुत्व-भाव और पारस्परिक सौहार्द्र से निर्मित है। ऋग्वेद कहता है कि भारतीय संस्कृति का आधारभूत तत्व विश्व का कल्याण है।

सभ्यता- ऋषि-मुनियों और देवी-देवताओं की पवित्र भूमि भारत में आज भी वह सामर्थ्य विद्यमान हैं, जो कभी हजारों

वर्ष पहले हुआ करती थी। इस शस्य श्यामला धरती पर भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है जो भारी विविधताओं से भरा और परिपूर्ण है। इतिहास में दर्ज है कि विश्व की तमाम सभ्यताओं का पतन हुआ लेकिन भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है जो आज भी अपनी सभ्यता और संस्कृति को अक्षुण्य बनाए हुए है। विदेशी आतताइयों ने हमारी संस्कृति को पददलित करने का भारी प्रयास किया पर वे उसमें सफल नहीं हो पाये। हमारी महान संस्कृति ने ही भारत को एक महान राष्ट्र बनाया है।

वर्तमान समय में हिंसा-रक्तपात ने सम्यक दृष्टि कोण के पुराधाओं को सभ्यता के बीच सार्थक सम्वाद, समझ बूझ और विचारों की अहमियत प्रतिपादित कराने हेतु प्रेरित किया है, ताकि मानवता और नैतिकता सर्व श्रेष्ठ मूल्यों के रूप में उभरे और पन्थों का संकीर्ण दायरा विस्तारित न हो। यह समय की आवश्यकता है कि पंथ का दायरा सीमित रहे और मानवता फलितार्थ हो, सम्यतागत टकराव के संदर्भ में एक अंतरराष्ट्रीय स्तर की संस्था अस्तित्व मे आई है।

कहने को तो ५७ साल पहले देश आजाद हो गया परन्तु पश्चिमी, विदेशी सभ्यता से हमने रहन-सहन, खान-पान, पढ़ाई-लिखाई, आदर-सम्मान, पहनावा, बातचीत व्यवहार इत्यादि बहुत कुछ ग्रहण किया है जिसके कारण वर्तमान समय में देश में कोई भी चीज पूर्णतया भारतीय नहीं रह गई है। हमारे जीवन से भारतीय सभ्यता एवम् संस्कृति काफी दूर होती जा रही है। भोजन, वस्त्र, शिक्षा, आचार-विचार इन सब पर पश्चिमी सभ्यता अपने अधिकारों के वशीभूत कर रक्खी है इन पर अधिक से अधिक हावी होते जा रही है।

भारतीय सभ्यता का गला पाश्चात्य सभ्यता दबा रही है। दूरदर्शन, चल चित्र जगत, प्रिंट ये सब माध्यम पाश्चात्य सभ्यता से ही प्रेरित है। भारतीय सभ्यता धीरे धीरे निष्प्राण होती जा रही है। महिलाओं की सहभागिता तो समाज को स्वीकार्य है किन्तु अर्ध नग्न लिवास सौन्दर्य प्रदर्शन के लिये धारण करना महिलाओं की महज भूल व निर्लज्जता है। महिलाओं को अंग प्रदर्शन से परहेज कर अपनी भारतीय संस्कृति को विश्व पटल पर रख कर अग्रणी ही रहना चाहिये। भारत विश्वगुरू रहा है। पाश्चात्य देशों को हमारा अनुसरण करना चाहिये न कि हम। हमें अपने देश, सभ्यता अपनी वेशभूषा, शिष्टाचार पर गर्व होना चाहिये। कलाकार अजीव वेशभूषा पहन कर आकर्षण का विषय बनते है लेकिन समाज को उनकी नकल कर विदूषक (जोकर) नहीं बनना चाहिये।

पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण, भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक आपको अलग अलग प्रान्त में भिन्न भिन्न पहनावे, धर्म, बोली भाषा, रहन-सहन के लोग मिलेंगे, लेकिन इन सबके होते हुये भी आप हृदय में अपनत्व की धारा महसूस करेंगे। यही एकत्व का सूत्र है जो सदियों से भारत की संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये हुये है और हमारी विरासत को संजोये हुये है। कितने ही आक्रमण कारी आये भारत को लूट-खसोट कर पददलित कर चले गये या गुलाम बना कर यही रह कर राज करने लगे, लेकिन भारतीयता को नष्ट नहीं कर सके। यह आज भी विद्यमान है। आवश्यकता है इसको उभार कर और उपर लाने की। जिस दिन यह सम्भव हो सका उस दिन भारत सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, विज्ञान सभी दृष्टियों में संसार का एक सर्वोत्तम राष्ट्र हो सकेगा।

भारत को छोड कर बाकी देशों में कुछ विशेष शब्दों या क्रियाओं का उपयोग कर नमन किया जाता है। पश्चिमी देशों में वह शिष्टता का अंग है और वहां पर वह एक रिवाज के तौर पर ही स्थित है। गुड मॉर्निंग और गुड इविनिंग इत्यादि शब्दों के उच्चारण और हाथ मिला कर अभिवादन किया जाता है। भारत मे अभिवादन की क्रिया विनम्रता की भावना आस्था या भक्तिभाव तथा सम्मान के रूप में की जाती है। हाथ मिलाना पश्चिमी पद्धति है लेकिन हाथ जोड कर नमस्कार करना

भारतीय संस्कारित श्रेष्ठ पद्धति है।

आज हमारी भारतीय मानव सभ्यता एवं संस्कृति पूर्व पाषाण युग जैसी हो गई है पहले के मानव अपने पास वस्तु एवं कपडा न होने पर भी अपना तन ढांकने के लिये जंगलों से बडे बडे वृक्षों के छालों तथा केलों के पत्तों से अपना तन ढकते थे और रूखा सूखा फल एवं जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट भरते थे। पूर्व पाषाण काल के मानव ने बिना विद्या ग्रहण किये ही अग्नि का चमत्कार एवं बडे बडे वस्तुओं का आविष्कार किया लेकिन आज का मानव पढे लिखे होकर भी कुछ कर नहीं पाते। कारण यह है कि मानव सभ्यता का दुरुपयोग करना जहां भी देखो बलात्कार, हिंसा, चोरी इत्यादि बढती ही जा रही है। किसी भी मानव में स्नेह एवं प्रेम की भावना है ही नहीं। आज के युग में फिल्मों में अश्लीलता दिखाना यह सब मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विरुद्ध है। हमारी सभ्यता एवं संस्कृति ही हम भारतीयों की पहचान है।

गाली-गलौज एवं झूठ बोलना इंसान की कमजोर मानसिकता तथा इच्छाशक्ति को दर्शाते हैं। अक्सर लोगों को छोटी-छोटी बातों के लिए झूठ बोलते देख अखरता है। सार्वजनिक वाहनों में कुछ लोगों को गाली-गलौच की भाषा बोलते देखकर भी शर्म आती है। नजदीकी संबंधों के साथ जुड़ी गालियां हमारे असभ्य तथा ओछे चरित्र की पोल खोल देती हैं। कुछ पढ़े लिखे लोगों को गंदी यौन भाषा का प्रयोग कर आनंदित होते देखा जा सकता है। कुछ लोग घरों में भी गालियों का प्रयोग करने में शान समझते हैं, जबकि वे स्वयं संकीर्ण मानसिकता तथा हीन-भावना के शिकार होते है। आसपास के परिवारों में गाली-गलौच का असर अन्य परिवारों के बच्चों पर एक लंबा कुप्रभाव छोड़ जाता है। अत: हमें गंदी तथा असभ्य गालियों को त्याग कर सभ्य तथा स्वस्थ मानसिकता के समाज की रचना हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

फैशन, श्रृंगार, ठाठ-बाट, जेवरी आदि के नाम पर अहंकार के प्रदर्शन का जो बचकानापन इन दिनों चल रहा हैं उससे विलासता, कामुकता आदि दुर्व्यसनों में वृद्धि ही हुई है। ईर्ष्या भड़की है और नकल करने की होड़ में कितनों ने ही गरीब रहते हुए भी अमीरी का झूठा प्रदर्शन किया है। बढ़े हुए खर्च की पूर्ति के लिए अनाचारी आमदनी भी राह बनाई है। प्रमाद बढ़ा है। इस प्रकार खर्च होनेवाली राशि अल्प बचत जैसा उपाय अपनाकर बैंक में जमा की गई होती या उत्पादन कार्य में लगाई होती तो सादगी के साथ जुड़ी सज्जनता बढ़ती और बचाई गई धनराशि से व्यक्ति तथा समाज की समृद्धि बढ़ने में योगदान मिलता। हमारे देशवासी पाश्चात्य सभ्यता की बिना सोचे-विचारे नकल करते जा रहे हैं। यदि इसे न रोका गया तो एक दिन ऐसा आएगा कि लड़के और लड़की की पहचान करना मुश्किल हो जाएगा। विदेशों में भारतीय नारियों की नकल की जा रही है। साड़ी पहनने की हमारी संस्कृति प्राचीन है। इसे पहनने से शारीरिक सौंदर्य तो बढ़ता ही है। साथ ही शालीनता भी नजर आती है।

हमारी सभ्यता का सबसे बडा अवगुण यह है कि यह अपने ज्ञान का ठीक उपयोग नहीं कर पाती। विज्ञान ने जैसा कि हम देख चुके हैं, हमको देवताओं के समान शक्ति दी है, किन्तु फिर भी हम उसका प्रयोग छोटे अज्ञान बच्चों की तरह करते हैं। उदाहरण के लिए हम यह नहीं जानते कि मशीनों का संचालन किस प्रकार किया जाए। मशीनें आदमी के दास के रूप में बनायी गयी थीं, किन्तु आदमी उन पर इतना अधिक निर्भर करने लगा है कि वे उसकी स्वामी बनती जा रही है।

मशीनें स्वयं और वह शक्ति जो मशीनों ने हमको दी है, सभ्यता नहीं है, किन्तु सभ्यता प्राप्ति में सहायक जरूरी है। एक रेलगाड़ी में ठीक प्रकार बैठ जाने में विशेष रूप से सभ्यता नहीं पाई जाती किन्तु प्रारंभ में लोग-बाग इस बात से सहमत थे

कि सभ्य होने का अर्थ सुंदर चीजों का सृजन करना और उनको पसंद करना, स्वतंत्र विचार करना, सही ढंग से रहना और मानव-मानव के बीच न्याय बनाए रखना है। आज मनुष्य के पास इन आदर्शों के सम्पादन के लिए अतीत की अपेक्षा अच्छा अवसर है, उसके पास अधिक समय, अधिक शक्ति, कम भय और लड़ाई लड़ने का कम अवसर है।

यदि वह इस समय और शक्ति को जो मशीनों ने उसे प्रदत्त की है अधिक सुंदर चीजों के सृजन करने में, विश्व के विषय में अधिक जानकारी करने में, राष्ट्रों के बीच लड़ाई के कारणों को समाप्त करने, दरिद्रता को रोकने में लगाता है निस्संदेह हमारी सभ्यता अतीत में पाई जानेवाली सभ्यताओं से महान एवं स्थायी होगी।

आज के दौर को आधुनिक कहा जाता है। इस दौर में फैशन प्रतिस्पर्धा का बोलबाला है। लेकिन ऐसा फैशन भी क्या जो अश्लीलता को प्रदर्शित करे और समाज को सोचने को मजबूर कर दे कि यही है देश की सभ्यता जिस पर भारतवासी गर्व कर सकते हैं। स्कूल, कालेजों में भी छात्र-छात्राओं में फैशन का पागलपन दिनों दिन बढ़ रहा है। कुछ विद्यार्थी अध्ययन पर ध्यान न देकर इस बात पर जोर देते हैं कि कल ऐसा क्या पहना जाए जिससे वे कालेज में चर्चा का विषय बने रहें। क्या ऐसी सोचवाले विद्यार्थी अपना भविष्य उज्ज्वल कर पाएंगे ? अधिकांश लोग पश्चिमी सभ्यता की आंधी में इस प्रकार से दौड़े जा रहे हैं जिसका अंत किसी को भी मालूम नहीं है। अब पश्चिमी सभ्यता के मोहपाश से निकलकर अपनी भारतीय सभ्यता का परचम पूरे विश्व में फहराना चाहिये।

आज अपनी सभ्यतामें हमारी अश्रद्धा और अनास्था तथा पश्चिमीय सभ्यतामें हमारी श्रद्धा और आस्था इतनी बढ़ गयी है कि हम आज वहाँके दोषोंको भी गुण समझकर ग्रहण करनेके लिये आतुर हैं। हमें अपने-आपपर इतनी घृणा हो गयी है कि हमारी प्रत्येक प्राचीन प्रथामें हमें तीव्र दुर्गन्ध आने लगी है, हम उससे नाक-भौंह सिकोड़ने लगे हैं और इधर हमारी मानसिक गुलामी इतनी बढ़ गयी है कि दूसरे लोग जिसको अपना दोष मानकर उससे मुक्त होनेके लिये छटपटा रहे हैं, हम उसीको गुण मानकर उसका आलिङ्गन करनेको लालायित हैं। इसीसे आजका प्रगतिशील भारतीय तरुण परदेशी सभ्यता निन्दा करता हुआ भी पर-पदानुगामी, परानुकरण-परायण, परभावापन्न और पर-मस्तिष्कके सामने नत-मस्तक होकर उन्नति और विकासके नामपर अपनेको महान् विनाशकारी आगमें झोंक रहा है। पाश्चात्य जगत्के मनीषीगण समाजका अध:पतन होता देखकर जिन चीजोंको समाजसे निकालना चाहते हैं, हमारे शिक्षित प्रगतिमान् भारतीय उसीको ग्रहण करनेके लिये व्याकुल हैं। कुछ समय पूर्व ईसाई-जगत्के धर्माचार्य रोमके पोपने कहा था- यूरोपमें तलाककी संख्या बहुत जोरोंसे बढ़ रही है, विद्यार्थियोंका ईश्वरविश्वास घट रहा है और अश्लील नाटकोंका प्रचार बढ़ रहा है। यह बहुत बुरी बात हैं सुधारवादियोंके नक्कारखानेके सामने बेचारे पोपकी यह तूतीकी क्षीण आवाज किसीके कानमें क्यों जाने लगी ?

भारतीय साहित्य ने अपने समाजको जो नैतिक और सांस्कृतिक संवर्धन दिया है, वह चिरकालाबाधित है। उसकी प्रगति-प्रेरणामें भी उच्छृङ्खलताको अवसर नहीं है। सदाचारकी मर्यादित मानभूमिपर प्रभावित होनेकी सम्पूर्ण स्वाधीनता अवश्य है। पश्चिमके प्रकाशमें प्राप्त प्रगतिके नामपर हमने जो पतनकी ओर पथ-क्रमण किया है, वह हमारी संस्कृतिकी समाधिमें ही सहायक बना है, समुन्नति में नहीं। पश्चिम में जिसे आज प्रगति ज्ञापितकर समाज-निर्माणके लिये सुधार सूचित किया जाता है, उसका नियन्त्रित रूप हमारे पुरातन साहित्यमें आरम्भसे ही नीति-निर्धारणके अवसरपर प्रतिष्ठित हो चुका है। समाजकी वेगवती गतिकी धारा और विकासकी सुविधाको लक्ष्यमें रखकर ही साहित्य-स्रष्टाओंने मनोविज्ञानपूर्वक

निर्णय किया है; परंतु पूर्वकी प्रगतिमें पश्चिमीय प्रतिबन्ध लगे रहनेके कारण समाजके अज्ञ सुधारप्रियोंने सभ्य-संस्कारोंको अनजाने जिस तरह उलाँघा है, उससे न तो वे पश्चिम के पार्श्व में पहुँच पाये हैं, न वे पूर्वके ही रह पाये हैं। पूर्वका विधान सदाचारकी नींवपर हुआ है और पश्चिम की सदाचारविषयक धारणाकी परम्परा ही पृथक् रही है। भारतीय सभ्यताकी आधारशिला संस्कृति-सदाचारपर अधिष्ठित रहनेके कारण उसकी सामाजिक स्थिति, समुन्नति, सर्वोपरि सुख-समाधान रहती आयी है। इसके विपरीत भौतिक भोग-कामनाके महत्त्वपर निर्मित पश्चिम ने सदाचारकी संयमसीमाको महत्त्व न देकर जिस सभ्यताको पोषित किया है, उसने जीवनके वास्तविक सामाजिक सौख्यकी विकास-साधना ही नहीं होने दी है। पश्चिम के इसी संस्कारके अनुकरणने भारतीय समाजकी अशान्तिको जन्म दिया है।

संस्कार- संस्कार का अभिप्राय है मनुष्य के गुणों को धारण करना। जब जीव नये युग में प्रवेश करता है तो संस्कार की प्रक्रिया शुरु होती है। शिशु के गर्भ में आते ही संस्कार शुरु हो जाते है। जीवन के क्रमिक विकास का आधार संस्कार ही है। मनुष्य के जीवन में १६ संस्कार होते है जिससे उसे परमगति प्राप्त होती है। संस्कार मनुष्यों के गुणों को निर्धारित करता है। शिशु के जन्म लेने के पश्चात संस्कारों में ढ़ाला जाता है। मुंडन, कर्ण छेदन और यज्ञोपवीत संस्कार इसलिये किये जाते है बालक आगे चल कर संस्कारवान बने। उसमें गुणों का विकास हो। इसके पश्चात उसे विद्या आरम्भ करने की अनुमति प्राप्त होती है। लेकिन अब समय बदलते जा रहा है। अब इन रूढ़िगत संस्कारों को लागू करना मुश्किल है।

बालक हो या बालिका उसे अच्छे संस्कारों से अवश्य मंडित करना चाहिये। जिससे उसके अन्दर अच्छे गुणों का समावेश हो। जब मनुष्य पंचतत्व में विलीन हो जाता है तो उसकी अत्येष्टि की जाती है। जीव के आगमन पर खुशियां प्रकट की जाती है। उसके जाने के समय उसका आदर क्यों नहीं करना चाहिये? उस आत्मा की मुक्ति कामना करना सबका कर्त्तव्य बनता हे। आत्मा अविनाशी है उसका कभी क्षय नहीं होता तो फिर उसके बिछडते समय उसे पूरा सम्मान देना चाहिये।

आधुनिक युग में संस्कार करने को कर्म काण्ड कहा जाता है। निश्चित ही कुछ संस्कार तो ढोंग के प्रतीक बन गये है। इन्हें बिलकुल ही व्यक्तिगत बना दिया गया है। इसके प्रयोजन पर सीमा रेखा खींच दी गई है। संस्कार सिर्फ कुछ वर्ण जाति विशेष के लिये ही नहीं होते। सभी जाति के लोगों में सद्गुणों का विकास हो, इसलिये संस्कार भी सभी के लिये हो। निर्विवाद रूप से गुणों के संवर्धन एवम् परिवर्धन में इन संस्कारों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। आज जब समाज में अनैतिकता, स्वार्थ एवम् भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है और भावी पीढ़ी संस्कार रहित होती जा रही है, ऐसे समय में इन संस्कारों का महत्व और भी बढ़ जाता है। जब तक समाज का बच्चा-बच्चा संस्कारवान नहीं होगा तब तक समाज के विकास की सम्भावनाये क्षीण बनी रहेगी।

साधारण रूप से संस्कारों के तीन प्रकार है - १) सुसंस्कार, २) कुसंस्कार, ३) धार्मिक संस्कार । संस्कार यानि सम्यक यानि सम्यक आकार। व्यक्ति के मन को सम्यक (सुयोग्य) आकार जो देता है वह संस्कार है।

सुसंस्कार समझबूझ कर लागू किये जाते है जैसे बचपन में बच्चों को समय पर उठने, पढाई करना, बुजुर्गों का सम्मान करना, सच बोलना इत्यादि पहले पहल संस्कार चार दीवारी मे किये जाते है लेकिन लोग घर से ज्यादा बाहर रहते है। बुरी संगत में सुसंस्कार व्यर्थ होते है। अपनी संतति को श्रीराम बनाने को पच्चीस साल तक पर्याप्त नहीं होते लेकिन कुसंगति में उसे रावण बनने में २५ दिन काफी होते है। यही कुसंस्कार है। कुसंस्कारों का प्रभाव अधिक होने से सुसंस्कार नष्ट न हो

इसलिये शास्त्रकारों ने धार्मिक संस्कार बताये है जैसे मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, ईश्वर पूजा, तीर्थ यात्रा, दान, तप, स्वाध्याय आदि। धार्मिक संस्कारों का प्रतिदिन नियमित पालन करने से सुसंस्कार बढते है और कीचड मे स्थित कमल की तरह कुसंस्कारों की बुराई से अलिप्त रह जाता है।

कोई भी व्यक्ति जन्म से शुद्ध या परिपूर्ण नहीं होता। उसे शुद्ध, ज्ञानी और पूर्ण बनाने में संस्कारों की आवश्यकता होती है। संस्कार तीन कारणों से किये जाते है। १) दोषमार्जन, २) गुणधान, ३) हीनता पूर्ति। जैसे सोने से रत्न जडित मुकुट बनाते समय उस पर ये तीनों संस्कार करने पडते है। सोना खान से निकाला जाता है तब अशुद्ध होता है, निस्तेज होता है। लेकिन अग्नि में तपाने के बाद शुद्ध और तेजोमय बन जाता है यानि उसका दोष दूर होता है। (दोष मार्जन)। उस सोने से कोई भी शोभायमान अलंकार या आभूषण बनाना इसे गुणाधान कहते है लेकिन मुकुट सभी अंगों से शोभित हो इसलिये उसमे रत्न जवाहरात जडने पर हीनता पूर्ति होती है। मनुष्य का भी ऐसा ही है। वह कोई गुण विकसित करता है और उस गुण से अपना और जगत का कल्याण करता है इसलिये मनुष्यों को संस्कारों की आवश्यकता होती है।

मनुष्य को संस्कारों से सम्पन्न करने वाले संस्कारों का आरम्भ कहां से हुआ? दुनिया में अनेक धर्म है, हर धर्म की आचार संस्कृति भिन्न है, फिर भी भारत और अन्य देशों में जातकर्म, नाम करण, विवाह और अन्त्य संस्कार हर धर्म में किये जाते है। अन्तर सिर्फ प्रणाली में है, तरीकों में है। भारत के प्राचीन ऋषि मुनियों ने ऐसे सोलह संस्कार खोज कर उन पर अवलम्ब किया। इससे सिद्ध होता है कि पहली मानव सभ्यता भारत में विकसित हुई और यहीं से सारी दुनिया में फैली। फिर उसमें विविधता आयी। आचार बदल गये। धर्म बदल गये, लेकिन मूल संस्कार भारतीय ही रहे इसलिये समस्त जगत की सभ्यता का जनक भारत है।

जो माता-पिता स्वयम् को संस्कार वान नहीं बना सकते वे बच्चों में कदापि शुभ संस्कार नहीं ढ़ाल सकते। हम स्वयं तो स्वच्छन्द रहे और बच्चों से अनुशासन की आशा करे तो यह नहीं हो सकता। बच्चे मां बाप की हर बात का अनुकरण करते है, उनकी गलत आदतों का प्रभाव बच्चों पर पडता है। यदि मां बाप चाहते है बच्चों का भविष्य उज्ज्वल हो तो सुधार की शुरुआत स्वयं करे। मां-बाप का श्रेष्ठ आचरण बच्चों के लिये उपदेश का काम करता है। ऐसा प्रयास करें कि बच्चों के स्वच्छ मन पर एक भी बुरा संस्कार अंकित न होने पाये।

हिन्दु धर्म के सोलह संस्कारों के महान उद्देश्य है। गर्भाधान संस्कार में बीज शुद्धि, और मनोवांछित सुसंतति प्राप्त करने का हेतु है। पुत्र की कामना हो तो गर्भवती स्त्री का पुंसवन संस्कार किया जाता है। गर्भ की शुद्धि के लिये सीमन्तोन्नयन संस्कार किया जाता है। जात, कर्म, संस्कार से माता-पिता के खान पान दोष दूर किये जाते है।

नामकरण संस्कार में आयु एवम् तेज की वृद्धि होती है तथा संसार में प्रसिद्धि पाने का कारण होता है। निष्क्रमण संस्कार में आयु और लक्ष्मी की वृद्धि के लिये, बालक को सर्वप्रथम सूर्य दर्शन कराया जाता है। अन्न प्राशन संस्कार से वे दोष दूर किये जाते है जो मां के गर्भ में माता के अन्न सेवन से उपजते है। बल, आयु और तेज बढ़ने के लिये चूडा कर्म संस्कार किया जाता है। उपनयन अथवा उपनयन संस्कार से बालक को द्विजत्व मिलता है। उसके बाद वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त होता है। विवाह संस्कार से पितृऋण और देवऋण से मुक्त होने का अवसर मिलता है। इस तरह सोलह संस्कारों से मनुष्य की पूरी प्रगति होकर पूर्णता साधी जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति को संस्कारों के कारण ही पहचाना जाता है। किन्तु आज के युग में संस्कारों का महत्व अब आंशिक ही रह गया है। मनुष्य आज स्वार्थी बनते जा रहा है। स्वार्थ के नशे में रिश्ते नाते, अपने पराये सब भूल कर अपना स्वार्थ बनने का प्रमाण दे रहा है। आज मनुष्य ऐशो आराम से जीना चाहता है। इसके लिये वह क्या नहीं कर जाता। नौकरी पाने के लिये रिश्वत देकर भी नौकरी पा सकता है तो रिश्वत लेगा भी। रिश्वत का सहारा लेकर पदोन्नति करवायेगा। व्यापारी काला धन, बेईमानी, चोरी, जमाखोरी करेगा। जब ये ऐसा करते है तो उनकी आनेवाली पीढी के तो नस नस में यह सब गुण मिलेंगे। भौतिकवाद के युग में भोगविलासिता की होड है। धर्म को केवल ईश्वर के भय के कारण धर्म का कुछ महत्व बना हुआ है। अगर ऐसी स्थिति ही बनी रही तो आने वाले युग में तो धर्म का नामोनिशान ही मिट जायेगा। मनुष्य का स्वभाव निर्दयी कठोर, पापी बनता जा रहा है। पाप के नाम से जैसै किसी को डर ही नहीं लगता। अत: अब समाज में गिरते संस्कारों पर चिन्ता करने का विषय नहीं रह गया है बल्कि संस्कारों की पुन: स्थापना में लगना चाहिये। किताबों में लिखा है, यह सब जानते है, मगर अपनाता कोई नहीं है। अब जरूरत है कि किताबों में जो लिखा है उसे अपने व्यवहार में अपनाने की। अपने आचार-विचार में लाने की, अहं भावना मिटा कर अपने आपको परोपकार में लग जाने की।

चरित्र संस्कारों की समष्टि है। संस्कारों से ही संस्कृति का जन्म होता है। जब किसी व्यक्ति में अच्छे संस्कार होते है तो कहा जाता है कि व्यक्ति अच्छे चरित्रवाला है और जब बुरे संस्कार अधिक होते है तो उसे दुष्ट चरित्रवाला कहा जाता है। हमारा प्रत्येक छोटा से छोटा कार्य और चिन्तन हमारे मन पर एक छाप छोड जाता है। इसीलिये जिम्मेदार माता-पिता निरन्तर यह ध्यान रखते है कि हमारे बालक पर गलत संस्कारों का असर न पडे। यदि जीवन में शुभ कर्मों का अभ्यास रहा तो चाहते हुये भी व्यक्ति गलत मार्ग की और नहीं बढ सकता। शुभ संस्कारों की शक्ति से गलत कार्य करने से रोक लेगी। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि यदि मनुष्य की पहचान करनी है तो उसके साधारण कार्यों से करो क्योकि आकस्मिक अवसर तो किसी भी मनुष्य को बडप्पन दे देते है परन्तु वास्तव में बडा तो वह है जिसका चरित्र सदैव और सभी अवस्थाओं में महान रहता है। महापुरुष जीवन में छोटी छोटी बातों का ध्यान रखते है। कोई भी बुरा संस्कार हमारी साधना को नष्ट कर सकता है इसलिये किसी भी बुराई को थोडा करके मत जानो। दूध को खराब करने के लिये नींबू की एक बूंद ही पर्याप्त होती है।

एक बुरा व्यक्ति भी यदि निरन्तर सत्कर्म करे और शुभ संस्कारों का संग्रह करे तो एक महान व्यक्ति बन सकता है और यदि एक महान व्यक्ति भी यदि अपनी साधना के प्रति लापरवाह हो जाये और बुरे संस्कारों से सावधान न रहे तो वह पुन: पतन की और चला जायेगा। ऐसी ही है यह संस्कारों की शक्ति।

भारतीय संस्कृति में माता-पिता एवं घर के अन्य पूज्यजनों को प्रात:काल प्रणाम करने की प्राचीन परम्परा है। आयु, ज्ञान, पद आदि में अपने से बड़ों को नित्य प्रति नमस्कार, प्रणाम, चरणस्पर्श करने से अहंकार भाव का विनाश होकर बालक व युवावर्ग में विनम्रता का भाव जाग्रत होता है। अग्रजों को नियमित व विनीत भाव से नमस्कार करने से घर में रहने वाले सदस्यों की पारस्परिक लड़ाई-झगड़े और वैमनस्यादि कुटिल भावनाओं का शमन होता है। नियमित नमन से बड़ों के मन में छोटों के प्रति सद्भावना का उदय होता है और वे उनकी भूलों को उदारता से अनदेखा करके उनके उज्ज्वल, मंगलमय और सुखद भविष्य की कामना करते हैं। बड़ों की मंगलकामना से आयु, विद्या, यश और बल की प्राप्ति होती है।

माता-पिता एवं पूज्यजनों के चरणस्पर्श करने में आत्मीय एवं मानसिक भावों का अद्‌भुत सामंजस्य होता हैं। कतिपय वैज्ञानिक प्रयोगों से यह प्रमाणित हो चुका है कि मानव शरीर से स्फुरणायें निकलती हैं और ये इनके सम्पर्क में आने वाले को प्रभावित करती है। चरणस्पर्श या प्रणाम करने पर आशीर्वाद के रूप में मस्तक पर हाथ रखने या किसी अन्य अंग के स्पर्श से ये स्फुरणायें नमस्कार करने वाले व्यक्ति को प्राप्त होती है जो जीवन में लाभदायक होती है।

जो बालक (व्यक्ति) बचपन से ही अपने अग्रजों माता-पिता व गुरुजनों को नमस्कार करते हैं वे अपेक्षाकृत जीवन में अधिक सफल और सामर्थ्यवान होते हैं किन्तु नमस्कार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिसे हम नमस्कार कर रहे हैं उनके प्रति हम श्रद्धावान हों, हमारे अंग-प्रत्यंग में विनम्रता का भाव हो क्योंकि नमस्कार करने पर पूज्यजन अपने अंत:करण से जो आशीर्वाद देते है उनसे निश्चित रुप से कल्याण होता है।

संस्कार हमें हमारी चेतना का आभास कराते है। जिसके आधार पर हमें अपने आचरण को परिष्कृत करने का अवसर मिलता है। संस्कारों से ही सद्‌गुणों का जन्म होता है, यदि हमें सही मायने मे प्रभु की शरण में जाना है तो संस्कारों और सद्‌गुणों का सहारा लेना चाहिये। सामाजिक ढाँचे को सुव्यवस्थित रखने के लिए, जीवन में आदर्श स्थापित करने के लिए, भाईचारा और आत्मीयता का विस्तार करने के लिए, मान-सम्मान पाने के लिए एवं दूसरों के हृदय में स्थान पाने के लिए संस्कारों को आत्मसात करना ही होगा। संस्कारवान मनुष्य विपत्तियों के आने पर कभी विचलित नहीं होता, वह अपने संस्कारों का संबल लेकर कर्त्तव्यपथ पर सतत प्रयत्नशील रहता है और उसके इस मार्ग पर तमाम लोगों की सद्‌भावनाएँ एवं सहानुभूतियाँ प्रेरणा स्वरूप उसे मिलती रहती है। सांसारिक, भौतिक एवं नश्वर वस्तुओं पर गर्व करना व्यर्थ है, सदैव संस्कारों और चरित्र पर गर्व करना चाहिए। जो हमारे जाने के बाद भी हमारे निर्मल आचरण को आगे बढ़ाते है। परिष्कृत व्यक्तित्व में अनेक उपलब्धियों को पाने की संभावनाएँ बनने लगती है। एक साधारण व्यक्ति जब किसी विशिष्ट व्यक्ति या किसी बड़े महापुरुष अथवा किसी ऐसे व्यक्तित्व के सान्निध्य में आता है जो समाज में सम्मान का पात्र हो, तो वह अपने को गौरवान्वित महसूस करता है। यह उस सम्माननीय व्यक्ति के प्रति सम्मान व्यक्त करने की अपने अंतस में उपजी एक प्रवृत्ति है जो संचित संस्कारों के द्वारा ही निर्मित होती है। संस्कारों की प्रथम पाठशाला हमारा घर-परिवार होता है, जिसके प्रथम शिक्षक हमारे माता-पिता ही होते है। यदि हम संस्कारित है तो हम अपने सुदृढ़ आत्मबल के आधार पर अपने बच्चों को भी सुसंस्कारित करने में निश्चित रूप से सफल होंगे। क्योकि जब कोई शिक्षा आचरण और अमल में लायी जाती है तो वह प्रभावशाली हो जाती है और अपनी कही बात का असर भी होता है अन्यथा यदि हमारा आत्मबल कमजोर है तो हमारी वाणी भी प्रभावशाली नहीं होगी और हमारी बात का हमारी संतानों पर भी असर नहीं होगा। अत: अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने लिए न सही, आगे आने वाली पीढ़ी के लिए ही इस दिशा में बदलाव करें और समाज में आदर्श एवं गौरव स्थापित करने में भागीदार बने।

यह इस देश की उर्वर माटी का ही कमाल है कि यहां पर परोपकार की खेती सबसे अधिक होती है। जन्म जन्मान्तरों के संस्कार इस देश की मिट्टी की महक से ही अंकुरित होने लगते हैं। उस पर हवा और पानी की युति भी हो तो संवेदना की फसल को लहलहाते देर नहीं लगती।

अहिंसा प्रधान देश भारत में बढ़ती हिंसा को रोकने के लिए स्कूल एवं शिक्षा संस्थाओं में नैतिकता के ऊपर उपयोगी

पाठ्यक्रम प्रारंभ हो ताकि लुप्त होती परंपरा एवं विलुप्त होते संस्कारों की पुनर्स्थापना हो। धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं शारीरिक दृष्टि से उपयोगी शिविरों का आयोजन हर त्रैमासिक प्रारंभ होना चाहिए। जिसमें नैतिकता, अहिंसा पथ अपनाने, दृढ़ संकल्प, संयम लेने से जो प्रभु की उन पर कृपा होगी इससे युवा वर्ग पाश्चात्य संस्कृति एवं उसकी सभ्यता की चकाचौंध में भ्रमित न होकर पूर्ण सफलता एवं अहिंसा का मार्ग अपना सकेंगे।

संस्कार शब्द संस्कृत भाषा की कृ धातु से निष्पन्न है। सम् उपसर्गपूर्वक घत्र् प्रत्यय के योग से संस्कार शब्द निर्मित हुआ है, जिसका सामान्य अर्थ है- पूर्ण करना संशोधन करना, सुधारना, संवारना या शुद्ध करना गुणान्तराधानं संस्कार- अर्थात् किसी व्यक्ति या वस्तु मे अन्य गुणों एवं योग्यताओं का आधान करना संस्कार है। संस्कार-सम्पन्नता मानव-हृदय को दया, करुणा, अहिंसा, मानवता, आदर्श आस्था, दान, सत्य, प्रेम, उदारता, त्याग, बंधुत्व आदि महनीय गुणों से सम्पृक्त करती है। संस्कारपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाला मनुष्य ही सही अर्थों में मानव बनता है; उसके दु:खों का हरण, चित्त की शुद्धि और मन की मलिनता को दूर कर मोक्ष तक पहुँचने वाला होता है। संस्कारों के अभाव में जीवन के गुणों की अभिवृद्धि, मूल्यों का संवर्द्धन, मानवता का बोध, परार्थ का भाव तथा पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को प्राप्त ही नहीं किया जा सकता है। संस्कार ही मानव-स्वभाव पर शासन करता है, और मानव-हृदय को मृदुल एवं पावन बनाता है। मानव-हृदय संस्कारों से ही विशाल और उदार बनता है। संस्कार व्यक्ति या वस्तु को पात्रता प्रदान करता है। इसी दृष्टि से संस्कार और संस्कृति का गहरा संबंध है। संस्कार-संपन्नता से गलत संस्कारों का शमन और श्रेष्ठ संस्कारों का जन्म होता है। संस्कारों की पूर्णता आध्यात्मिक जीवन के साथ ही वैज्ञानिक अवधारणा के रूप में विकसित जीवन-पद्धति सर्वस्वीकृत एक महत्वपूर्ण अनुष्ठानिक प्रक्रिया है। संस्कार व्यक्ति को संवारते है तो संस्कृति समाज को संवारती है; यदि एक का संबंध व्यष्टि से है तो दूसरे का संबंध समष्टि से है। उत्तम संस्कारों से ही श्रेष्ठ संस्कृति का स्वरूप निर्मित होता है। संस्कृति मानव का समग्र संस्कार कर उसे सुसंस्कृत करती है। मनुष्य उत्तम संस्कारों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए रखने की सामर्थ्य अर्जित कर सकता है।

अच्छे संस्कार ही मानव को समाज से इज्जत दिलवाते हैं, ये ही जीवन में खुशी लाते हैं। नम्रता अच्छे संस्कार का मूल पत्थर है। हमें दूसरों के प्रति नम्र रहना चाहिए। जब हम दूसरों से बात करते हैं तो हमें दयालुतापूर्वक बात करनी चाहिए। किसी भी दशा में हमें अपने मन की स्थिरता नहीं छोड़नी चाहिए। हमें अपने से बड़ों और गुरुओं का आदर करना चाहिए। अपने मित्रों से स्वयं को ऊंचा नहीं समझना चाहिए। जब हम किसी समूह में बैठे हैं तो हमें बोलना कम सुनना अधिक चाहिए। दूसरों की सोच पर चोट नहीं लगानी चाहिए। हमेशा सत्य बोलना चाहिए। यदि मनुष्य झूठ रूपी दलदल में फस जाता है तो उस झूठ से निकलने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

अच्छे संस्कार की कोई कीमत नहीं होती लेकिन वो हर किसी को जीतने की ताकत रखते हैं। अच्छे संस्कार न तो खरीदे जाते हैं और न ही किसी से नकल किए जाते हैं, हमें अच्छे संस्कार अपनाने के लिए अभ्यास करना चाहिए। अच्छे संस्कार माता-पिता गुरुजन ही दे सकते हैं।

आजकल संस्कारों के सुधार और अच्छे आचरण की बहुत चर्चा है। बताया जा रहा है कि दुनिया के किन शहरों के लोग सभ्य आचरण वाले हैं और कौन से शहर लोगों के साथ बुरा बर्ताव करते हैं। बात-बात पर मारपीट पर उतर आते हैं।

पर अच्छी बात है कि मानव सभ्यता अपने आचरण और व्यवहार पर बारीक नजर रख रही है। इससे एक स्वस्थ भविष्य की कल्पना साकार होती लग रही है।

हालांकि यह भी तो नहीं कहा जा सकता है कि परिस्थितियों का हमारे जीवन में दखल नहीं है और जीवन की सारी प्रेरणाएं हालात से पैदा होती हों- ऐसा भी नहीं है। कई बार समान परिस्थिति में असमान आचरण और व्यवहार देखने को मिलता है। यानी प्रेरणाओं का तत्व केवल परिस्थिति ही नहीं है, कोई दूसरा भी है। गहरे में उतरकर जिन्होंने खोज की, उन्हें पता चला कि व्यक्ति परिस्थितियों का उतना दास नहीं है, जितना अपनी संस्कार श्रृंखला से बंधा हुआ है।

मनुष्य भी संस्कारों की ऐसी ही अदृश्य खूंटी से बंधा हुआ है। परिस्थितियां उसके संस्कारों को प्रभावित करती हैं। पर उतनी मात्रा में, जितनी मात्रा में मन में संस्कार जमा हुआ है। मशहूर मनोचिकित्सक फ्रायड ने चेतना के विभिन्न स्तरों का पता लगाकर मानव मन की गुत्थियों को समझने का रास्ता खोल दिया। मनोविज्ञान के जरिए कर्मवाद को समझना बहुत सरल हो गया। अब संस्कार की व्याख्या भी आसानी से की जा सकती है। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि चेतन मन के स्तर पर जो घटनाएं घटती हैं, वे तो महज प्रतिबिंब हैं। वे जिसका प्रतिबिंब हैं, वह आधार यानी मूल बिंब हमारे स्थूल शरीर में नहीं है। बल्कि इस शरीर के भीतर जो दो शरीर हैं- सूक्ष्म और सूक्ष्मतर, उन्हीं में से सूक्ष्मतर शरीर में संस्कार का जन्म होता है। ये संस्कार भीतर ही भीतर पकते हैं। जब पककर तैयार हो जाते हैं, तब वे भाव तरंगों का रूप लेकर हमारे मस्तिष्क पर हावी होते हैं और बाहर प्रकट होते हैं।

पर जैसा कि हम जानते हैं कि हमारे आचरण संस्कार को जन्म देते हैं और संस्कार परिपक्व होकर आचरण को प्रभावित करते हैं। विद्वानों का मत है कि आचरण पर ध्यान देना पहली जरूरत है।

किसी भी क्षेत्र में अपनी एक अलग छाप छोड़नी है तो इसके लिए जरूरी है एक संस्कारवान व्यक्तित्व का होना। हम कितनी भी उच्च से उच्च शिक्षा ग्रहण कर लें और यदि अपने अंदर अच्छे संस्कार का निर्माण नहीं कर पाए तो शिक्षा प्राप्त करना ही व्यर्थ हो जाता है। शिक्षा हमें ज्ञान का बोध करा सकती है, धन अर्जित करने का साधन बन सकता है। संस्कार प्राप्त करने का रास्ता बता सकता है। संस्कार शिक्षा की तरह किसी विद्यालय से पाठ्यक्रम द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता, ना ही इसकी कहीं पढ़ाई होती है कि वहां जाकर पढ़ सकें। इसका पहला पाठ अपने घर में ही पढ़ने को मिलता है। दूसरा समाज और तीसरा स्कूल की आबोहवा में मिलता है।

संस्कार जब हम सुबह बिस्तर छोड़ते हैं और रात्रि में जब पुन: बिस्तर पर हम जाते हैं तब तक लगातार चलता रहता है। हम दिन भर कभी भी कहीं रहें संस्कार का पाठ्यक्रम चलता रहता है। हम संस्कार छोटे-बड़े सभी से सीख सकते हैं। आवश्यक अपने अंदर अच्छे विचार होने चाहिए।

हमारी भारतीय संस्कृति और परंपरा में संस्कार का विशेष महत्व है। हमारा पूरा समाज ही संस्कार की नींव पर मजबूती से टिका हुआ है। हम बड़े, बूढ़े बच्चे सभी से जो अच्छा-बुरा व्यवहार करते हैं वो हमारा संस्कार ही है। अगर हम किसी से दुर्व्यवहार करें तो सर्व प्रथम हम असंस्कारिक कहे जाएंगे और वहीं से उससे हमारा रिश्ता भी टूट जाएगा और वहां क्लेष, झगड़ा, या हिंसा का जन्म हो जाता है। जो किसी के लिए भी ठीक नहीं होता। संस्कार हम रास्ता चलते, उठते, बैठते, खाते, पीते भी ग्रहण कर सकते हैं। बस अपनी चेतना जागृत रखें।

आज हम उन संस्कारों की बात करें जो हमारे जीवन में प्रतिदिन लागू होती हैं जिसे हमारे ऋषि-मुनि एवं महान व्यक्तियों ने अपनाया और दूसरे को अपनाने की शिक्षा दी। इसे भगवान राम ने भी प्रति दिन पालन किया तभी तो वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहलाएं। आज हम भारतीय संस्कृति के बजाए पाश्चात्य संस्कृति में जी रहें हैं। इसलिए आप लोग घर में सुबह उठने के बाद कहते होंगे गुड मार्निंग मम्मी, गुड मॉर्निंग पापा। आपके मम्मी पापा भी यही जवाब देते हैं गुड मार्निंग माई सन, गुड मॉर्निंग माई डॉटर। यानि आपने एक फार्मेलिटि पूरी की, जिसका जवाब भी फार्मेलिटी में मिला। क्या आपको इस अंग्रेजी शब्द के कहने में कहीं आत्मीयता या आशीर्वाद मिलने की झलक दिखाई दी, कहीं पिता-पुत्र/पुत्री, मां-बेटा/बेटी के अनमोल रिश्ते की महक मिली। जवाब होगा, नहीं। जब आप चरण स्पर्श करते हैं तो मां या पिता के द्वारा चिरंजीवी या आयुष्मान भव जैसे शब्दों से आशीर्वाद मिलता है। जो आत्मा से निकली आवाज होती है। आपने झुक कर चरण स्पर्श किया, यह दर्शाता है कि आप अपने माता-पिता के ऋणी हैं जिन्होंने आपको मानव योनि में जन्म दिया, जिन्होंने आपका पालन-पोषण कर दुनिया में आपको जीने लायक बनाया। अच्छा इंसान बनाया। इसलिए आप उन्हें चरण स्पर्श से सम्मान दे रहे हैं। आप गुड मॉर्निंग की बजाय अगर चरण स्पर्श करें तो रोज माता-पिता का आशीर्वाद पा सकेंगे। कुछ और संस्कार की बातें हैं जैसे-स्कूल पहुंच कर अपने अध्यापक को प्रणाम करते हैं, अपने दोस्तों से अभिवादन करते हैं, रास्तें में किसी असहाय व्यक्ति की सहायता करते हैं। स्कूल में अपने साथ पढ़ने वाले सहपाठियों के साथ भाई-बहन का व्यवहार करते हैं। आप अपशब्द तो नहीं बोलते, समय पर पढ़ाई तो करते हैं, हाथ धोकर भोजन करते हैं। रात्रि में सोने से पहले एक बार पुन: माता-पिता का चरण स्पर्श करते हैं। सुबह-शाम भगवान का ध्यान करते हैं। यदि यह सब करते हैं तो आप अच्छे संस्कार वाले बच्चे कहे जाएंगे। यदि नहीं करते तो शुरू करे जिससे आगे चलकर एक अच्छा इंसान बन सकें। कोई लड़का या लड़की अपने घर में, मुहल्ले में, स्कूल में सब जगह सबकी आंखों का तारा होता है। उसे सभी लोग प्यार करते हैं। इसलिए कि वो पढ़ने के साथ-साथ संस्कारों से भरा रहता है। वह अपने अच्छे संस्कार के कारण लोगों का प्रिय बन जाता है। थोड़ा पढ़ने में अगर कमजोर है या अशिक्षित भी हैं और अच्छे संस्कार हैं तो हर जगह इज्जत और सम्मान मिलेगा। अगर आप पढ़ने में तेज हैं और दूसरों का सम्मान नहीं करते, अच्छा आचरण नहीं करते तो कोई आपको प्यार नहीं देगा। इसलिए ध्यान रखें कि आप कहीं हों, दूरदर्शन ही क्यों न देख रहे हों वहां जो अच्छी सीख मिले उसे ग्रहण कर लें और बुरी आदतें, बातों को त्याग दें। तब आप भी बन जाएंगे सबकी आखों का तारा।

जीवन में संपत्ति और शिक्षा से भी ज्यादा महत्व संस्कारों का है। संस्कार-शून्य संपत्ति एवं शिक्षा दोनों ही उन्मार्ग की ओर ले जाते हैं। पूर्व जन्मों का संस्कार, परिस्थितियों का प्रभाव एवं अभिभावकों का स्वभाव जिनके पिछले जन्म के संस्कार शुभ है। वे बुरे वातावरण में भी बुराई को अपने पर हावी नहीं होने देंगे। मस्तिष्क में दोनों प्रकार के संस्कार मौजूद है- अच्छे भी बुरे भी। जैसा वातावरण या परिस्थितियां मिलती है, वैसे ही संस्कार जाग जाते हैं। अत: मनुष्य को चाहिये कि वह सदैव अच्छे वातावरण में रहे।

संस्कार निर्माण- संस्कार जीवन की अमूल्य संपदा है। यह संपदा जिसे प्राप्त होती है वह मानव से महामानव बन जाता है। संस्कारों के अभाव में युवा पीढ़ी दु:खी और विपदाग्रस्त बनी हुई है। माता-पिता के अतिमोह, कुसंगति और दुर्व्यसनों के कारण आज व्यक्ति अधम व तुच्छ विचारों के कैंसर से ग्रस्त है। वर्तमान में माता-पिता आध्यात्मिक संस्कार देने के

प्रति जागरुक नहीं है। वे संतान को श्रृंगार देते हैं- संस्कार नहीं, सम्पत्ति देते हैं- शांति नहीं। साधन देते हैं- पर सदुपयोग का विवेक नहीं। हम उन्हें सर्वस्व देते हैं पर श्रेष्ठ जीवन देने में असमर्थ रहते हैं। हमारा स्वप्न होता है कि हमारा बेटा महान बनेगा, लेकिन जब वह व्यसनी-व्याभिचारी, अधर्मी बन जाता है तब हम सिर पीटते हैं, जबकि इसमें हमारा ही अविवेक व अनियंत्रण उपस्थित रहता है। नीम का बीज बोकर, आम्रफल की कामना करते हैं। इस परिस्थिकम से बचने का एक ही उपाय है- जो सत्य है, शिव है, सुन्दर है उसकी ओर अपनी संतान को बाल्यकाल से ही उन्मुख किया जाय। संतान में सुसंस्कारों का रोपण करने के लिए उसे धर्म की सौरभ से सुरभित करना आवश्यक है एवं इसके लिए स्वयं में धर्म का विकास (आचरण) अत्यावश्यक है। जैसे चन्दन के वृक्ष की सुगन्ध से आस-पास का वातावरण महक जाता है, उसी प्रकार धर्म की सुगंध से आस-पास के लोग सुगन्धित हुए बिना नहीं रह सकते। शर्त यह है कि धर्म का पुष्प (आचरण) असली हो, केवल कागजी नहीं।

जिसको विकार होता है उसीको संस्कारकी जरूरत पड़ती है। गर्भाशयकी शुद्धिपीठशुद्धि है, आधार-शुद्धि है। उसको गर्भाधान-संस्कार कहते हैं, जिससे कि माताके पेटमें रहनेकी जगह शुद्ध हो जाये। पुंसवन-संस्कारसे वीर पुरुष पैदा होते हैं। सीमन्तोन्ननय-संस्कारसे पतिका पत्नीके प्रति प्रेम प्रकट होता है। वह उसकी माँग सँवारता है, उसको सीमन्तोन्नयन करता है, जिससे पत्नीके मनमें यह आस्था होती है कि पति हमसे प्रेम करता है और उसकी इस आत्मतुष्टिसे बच्चेका पालन-पोषण होता है। फिर बच्चेके पैदा होनेपर उसका जातकर्म-संस्कार होता है। इन संस्कारोंसे बैजिक और गार्भिक अर्थात् पिताके वीर्य और माताके गर्भके दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है तथा बच्चे शुभ संस्कार-सम्पन्न होते हैं।

रज-वीर्य से शरीर बनता है। संस्कारों से अन्त:करण बनता है। गर्भाधान के समय माता-पिता के जैसे संस्कार होंगे सन्तान में भी बीज रूप से वैसे ही संस्कार होंगे। वे ही संस्कार जातिकरण, नामकरण आदि संस्कारों के द्वारा परिपुष्ट और दृढ़ बनाये जाते हैं। इसलिये वर्णाश्रम धर्म में संस्कार तथा रज-वीर्य की शुद्धि पर अत्यधिक बल दिया गया है। ऐसी कन्या के साथ विवाह करो, उसका कुल ऐसा हो, उस कुल में दुराचार न हो, शुद्ध कुल हो। अपना भी कुल शुद्ध हो। शुद्ध संस्कारों के द्वारा वेद-मन्त्रों से गर्भाधान करो, अमुक-अमुक तिथियों में अमुक काल में मत करो। इन सबका एकमात्र उद्देश्य है भावी सन्तान के शुद्ध संस्कार बनाना। जो पाप की सन्तान है, जिनका गर्भाधान अवैध-रीति से हुआ है, वे संतानें प्राय: पाप प्रवृत्तिवाली ही होंगी, क्योंकि माता-पिता दोनों के संस्कार पाप पूर्ण थे। उनकी परमार्थ कार्यों में रुचि न होगी। विषय सुखों को ही सर्वस्व समझकर धर्म से, अधर्म से उन्हें पाने के लिये जीवन पर्यन्त प्रयत्नशील होंगी। इसीलिये तो कलियुग में वेद, सत्शास्त्र, परमार्थ-पथ प्राय: लुप्त हो जाते हैं, क्योंकि सबकी प्रवृत्ति अधर्म में हो जाने से रज-वीर्य की शुद्धि पर ध्यान नहीं दिया जाता। गम्या-गमन का विचार नहीं, संस्कारों की पवित्रता नहीं, विषय भोगों का प्राबल्य होने से स्वेच्छाचार बढ़ जाता है।

कुछ संस्कार अत्यन्त साधारण होते हैं, आये चले गये। उनका सुख-दु:ख मानसिक होता है। कुछ ऐसे संस्कार विचार होते हैं, जिनका फल स्वप्न में ही भोग लिया जाता है क्योंकि सब संस्कारों को प्रतिक्षण जन्म लेता रहे, तो भी मनुष्य भोग नहीं सकता। अत: बहुत से कर्मों का मानिसक सुख-दु:ख के द्वारा, बहुतों को स्वप्न के द्वारा भोग होता है जो प्रबल संस्कार होते हैं, हृदय में जम जाते हैं। जिसके लिये प्राणी प्रबल प्रयत्न पुरुषार्थ करता है उसका फल प्रत्यक्ष भोगना पड़ता

है। जो हमें अत्यन्त ही प्यारा लगता है, जिसे देखे बिना हृदय में चैन नहीं पड़ता और साथ ही वह भी हमें उतना ही प्यार करता है, दूर रहने पर भी वह हमारे मन में बसा हुआ है।

संस्कार दो प्रकार के होते हैं, एक तो साधारण, दूसरे प्रबल। हमारा मार्ग में किसी उत्सव-पर्व के अवसर पर किसी से सम्मिलन हुआ। परस्पर प्रेम हो गया, दोनों एक-दो दिन साथ रहे। वे भी हमें भूल गये, हम भी उन्हें भूल गये। यह साधारण संस्कार है। दूसरा प्रबल संस्कार यह है कि जिनसे एक बार भेंट हुई, प्रेम हो गया, भुलाने से भी न भूलें, हमारे जीवन में घुल-मिल जायँ।

जन्म चाहें कहीं भी क्यों न हो, पूर्वजन्म के संस्कार बने ही रहते हैं। पूर्वजन्म में जिनके साथ शत्रुता मित्रता रहती है, उसका संस्कार दूसरे जन्मों में भी अवशिष्ट रहता है।

एक-एक ईंट मिलने से महल बन जाता है। एक-एक बूंद मिलने से सागर बन जाता है। संस्कार की ताकत दुनिया में सबसे अधिक है, एक-एक फूल मिलने से गले का हार बन जाता है।

यदि तुम एक साल की योजना बनाना चाहते हो तो उर्वर धरती पर बीजों की बुआई करो। यदि तुम दस साल की योजना बनाना चाहते हो तो एक पेड़ लगाओ और यदि तुम सौ साल की योजना बनाना चाहते हो तो एक पीढ़ी को संस्कारित करो।

हम कोरे पांवों के नहीं, संचार के पुजारी है। हम कोरे भावों के नहीं, संस्कार के पुजारी है। हम मात्र प्रचार नहीं, आचरण में उतरना जानते हैं, हम क्रोध-हिंसा के नहीं, प्यार के पुजारी है।

सुसंस्कार यानी सुख देनेवाले संस्कार सबको सुखी करने में सहायक होते हैं। इसीलिये संस्कार महत्वपूर्ण है। अच्छे संस्कारों का हमारे मन एवं अंतरंग में अच्छा प्रभाव पड़ता है। हमारे द्वारा सम्पन्न किए गये व चाहे गए समस्त कार्य सर्व जीवों को समान रूप से सुखी करने में सहायक होते हैं। मन हल्का, उल्लासपूर्ण व आनंदित रहता है। घृणा, द्वेष, क्रोध व उत्तेजना नहीं रहती। यही संस्कारों का मूल्य है।

सुसंस्कारी वातावरण मिलना सामान्य बात नहीं है, यह कई जन्मों की सुकृत कमाई का प्रतिफल है अत: इसका सदुपयोग करना ही विवेक है।

सैकड़ों जातियों और उपजातियों में विभक्त, अनेक प्रकार की भाषाओं में अपनी आशा-आकांक्षा को रूप देनेवाली सभ्यता को विभिन्न सीढ़ियों पर खड़ी इतिहास के स्रोत में बहते हुए संस्कारों को ढोती हुई यह विशाल जनता ही भारत का सबकुछ है। आज सम्पूर्ण जनता की समस्या ही हमारी समस्या है, यही संस्कारों को बनाने-बिगाड़ने वाली शक्ति है।

समाज को संस्कारों की जरूरत ज्यादा क्यों? आज के जमाने में हम आधुनिकता के पीछे भाग रहे हैं। वह गलत नहीं है। क्योंकि हम आधुनिक नहीं बनेंगे तो पीछे रह जायेंगे। पर ऐसा करते समय हमें अपने संस्कारों को नहीं छोड़ना चाहिए। आज यही हो रहा है।

पहले की शिक्षा आश्रम परंपरा से मिलती थी। आज की शिक्षा में पाश्चात्य जीवन का प्रभाव बढ़ा है। जिससे हमें आधुनिक शिक्षा मिल रही है। पर संस्कार नहीं। दुनिया सुधारने से अधिक व्यक्ति का सुधरना महत्वपूर्ण है। क्योंकि व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से देश और इससे विश्व बनता है। इसलिए व्यक्ति सुधरेगा तो दुनिया सुधरेगी।

शक्ति-बल, मनोबल, ऊर्जा

शक्ति- सृष्टि के सर्जक एवं संहारक एकमात्र परमात्मा ही है। उन्ही की शक्ति से सूर्य तपता है, मेघ बरसते है, धरती उपजती है, चन्द्रमा वनस्पतियों में पौष्टिकता देता है, ऋतुएं कालक्रम से बदलती है, दिन-रात अस्तित्व में आते है, सौर-मण्डल सक्रिय बना रहता है। परमात्मा की यह शक्ति प्रकृति कहलाती है जिससे जगत का अस्तित्व है। आज का विज्ञान जल से, अग्नि से, पवन से, सूर्यताप आदि एवं पृथ्वी से निकाले गए तरल पदार्थों से ऊर्जा उत्पन्न कर रहा है। ये सारे पदार्थ परमात्मा ने ही बनाये है, उनमें शक्ति डाली है और वैज्ञानिकों को बौद्धिक शक्ति प्रदान की है जिससे उनकी शक्तियों का मानव कल्याण के लिए सदुपयोग हो सके। अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक की कोई सीमा नही, वह अनंत हैं। जहाँ-जहाँ जो-जो भी शक्ति परिलक्षित होती है वह सारी शक्ति परमात्मा की है।

प्रत्येक मनुष्य में अलौकिक शक्तियों का भंडार है। मनुष्य के अन्तर्मन में निवास करने वाली संकल्प शक्ति ऐसी ही अलौकिक शक्ति है। अपनी प्रबल संकल्प शक्ति की सहायता से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, जो साधारणतया प्राप्त करना असम्भव है। संकल्प शक्ति को उद्बीप्त, प्रखर एवम् प्रभावशाली बनाने में आत्मबल, आत्मविश्वास, निष्ठा, आस्था, विचारशीलता, आत्मनिर्भरता, दृढ़ता, साहस इत्यादि आवश्यक है। यही सब संकल्प शक्ति के सहायक तत्व है। संकल्प शक्ति को विकसित करना और उसे किसी कार्य सिद्धि के लिये प्रयुक्त करना मनुष्य की स्वयम् की क्षमता पर ही निर्भर होता है। संकल्प शक्ति के सहारे वह असंभव कार्यों को भी सम्भव कर दिखाता है। उसके संकल्पों की दृढ़ता से प्राप्त होने वाली सफलता कभी कभी संकल्प कर्ता को भी आश्चर्यचकित कर देती है।

सभी लोगों के सम्पूर्ण विकास का मूल स्तोत्र शक्ति विकास में होता है व्यक्तिगत, सामाजिक इन दो स्तरों पर विकास करने के लिये तीन शक्तियों का विकास आवश्यक है -

१) ज्ञान शक्ति - क्रिया शक्ति - अर्थ शक्ति

२) ज्ञान शक्ति - प्रेम शक्ति - विज्ञान शक्ति

३) वेदान्त शक्ति - विज्ञान शक्ति- विश्वास शक्ति और

४) प्रभु शक्ति - मंत्र शक्ति - उत्साह शक्ति । इन्ही शक्तियों के बल पर राज्य संचालन भी सफल हो सकता है।

मानव शरीर में ७२ हजार नाडियां है और उनका संचार सर्वत्र है। इसमे १५ नाडियां मुख्य है जिनमें इडा, पिंगला और सुषमा ये तीन मुख्य नाडियां है। इन तीनों में से भी सुषम्मा नाडी श्रेष्ठ है। वह शरीर मे मूलाधार चक्र से मस्तष्क के सहस्त्र चक्र तक मध्य में सीधी खडी है। उसी में मानव शरीर की एक दिव्य शक्ति जागृत की जा सकती है उस दिव्य शक्ति का नाम है कुंडलिनी। कुंडलिनी शक्ति अनेक तरह से जागृत की जा सकती है। मंत्र जाप, योग क्रिया, ईश्वर भक्ति, तपश्चर्या, या गुरु कृपा के सहारे इसे जागृत किया जा सकता है। यह शक्ति होने पर मनुष्य का अन्तर्बाह्य परिवर्तन होता है उसे आत्म बोध होता है।

हिन्दु धर्म में भी यही माना जाता है कि शक्ति के दो रूप है। एक रूप स्त्री की तरह प्रकट होता है तो एक पुरुष की तरह। पुरुष में प्रचंडता है, सौम्यता नहीं है। स्त्री मे सौम्यता है। हमारे यहां राम और सीता, कृष्ण और राधा के युगल

स्वरूपों की पूजा होती है। बल्कि जब नाम लिया जाता है तो पहले सीता का, राधा का क्योकि स्त्री जननी है। सही मायने में देखा जाये तो स्त्री ही प्रथम है, पुरुष द्वितीय है। करुणा प्रथम है प्रचंडता द्वितीय है और जब करूणा में अविशिष्टत प्रचंडता होती है, तब उसका सौन्दर्य अपंरम्पार होता है। जब ममता में छिपी हुई ऊर्जा हो तो उसका वर्जन करना कठिन हो जाता है। जहां दो विपरीत स्वभाव मिलते है तो उनका वर्णन कठिन होता है। यदि सूर्य और चन्द्र दोनों मिल जाये तो उत्ताप भी होगा, शीतलता भी होगी। जब दोनों मिल जाये, एकीकृत हो जाये तो रूप पैदा होगा, वह परम होगा, उसका वर्णन भी कठिन होगा। जिन भक्तों ने अपने आराध्य के युगल स्वरूप के दर्शन किये है वे इतने विभोर हो गये है कि वे वर्णन नहीं कर सकते।

लोग कहा करते है कि मैं इतना सक्षम हूँ कि जो ठान लेता हूँ वह करके ही रहता हूँ। उन्हे अपनी शक्ति का अभिमान रहता है। अपने सामने वे किसी को कुछ भी नहीं समझते। मनोविज्ञान के शब्दों में उन्हे पर्याप्त आत्मबल और आत्मविश्वास रहता है। पर आध्यात्मिक शब्दों में कहा जा सकता है कि वे देहात्म-अभिमान से अभिभूत रहते है। हम उपनिषदों पर जब दृष्टि डालते है तो पाते है कि सारी शक्तियां आत्मा के होने से ही सक्रिय होती है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। गीता में उल्लेख है कि स्वयं भगवान ही आत्मा के रूप में सभी भूतों (प्राणियों) के हृदय में स्थित है। अत: समस्त क्रियात्मक शक्ति परमात्मा की ही है। अर्जुन के जीवन से इसका अच्छा उदाहरण मिलता है।

जिस गाण्डीव धनुष से उन्होने महाभारत युद्ध में बड़े-बड़े महारथियों का संहार कर डाला था, उसी गाण्डीव की प्रत्यंचा तक वे न चढ़ा सके जब वे अपनी संरक्षा में चल रही स्त्रियों को ले जा रहे थे और उनके देखते ही देखते भीलो ने उन स्त्रियों को लूट लिया। वे कुछ न कर सके। कारण यही था महाभारत-विजय में परमात्मा की ही शक्ति काम कर रही थी, अर्जुन केवल निमित्त-मात्र थे। पर भीलो के आक्रमण के समय परमात्मा ने अर्जुन को वह शक्ति नहीं दी। एक बार महाबली भीम को अपनी शक्ति पर अभिमान हो गया। भगवान् भक्तों में अभिमान नहीं रहने देते, लीला हुई। भीम के मार्ग में हनुमान जी एक विशालकाय रूप में लेट गए। मार्ग अवरुद्ध हो गया। रास्ता मांगने पर हनुमान जी ने कहा कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ, शक्ति नहीं रह गई, तुम पूँछ को खीच कर मार्ग खाली कर लो। भीम ने अपनी सारी शक्ति लगा डाली पर वे उसे टस से मस न कर सके। स्पष्टत: यह परमात्मा की ही शक्ति का खेल था।

शक्ति बिना शक्तिमान की शोभा नहीं शरीर में शक्ति न हो, तो मनुष्य पराधीन होता है। बालकों के शरीर में शक्ति नहीं होती वे दूसरों के सहारे चलते हैं, प्रत्येक बात में दूसरों की सहायता चाहते हैं। दुर्बल, आतुर, शक्तिहीन होने से परमुखापेक्षी बने रहते हैं। शक्तिहीन आत्मज्ञान को प्रज्ञप्त नहीं कर सकता। बल और वीर्य बढ़ते ही पुरुष शक्ति की, नारी की पत्नी की खोज करने लगता है, तभी वह यथार्थ पुरुष कहलाने का अधिकारी है।

जिसके पास अधिक शक्ति है, उसे उसका मृदुलता से उपयोग करना चाहिये। जो मनुष्य अपनी शक्ति का विचार न करके अज्ञानवश भयानक मार्ग पर चल पडता है, उसका जीवन उस मार्ग में ही समाप्त हो जाता है।

संतजनों के संगी-साथी (संतजनों के गुण) जब हृदय में समा गए, इन्द्रियों को वश में कर लिया और अपने तन को (शुद्ध) कर लिया तो यह जीवन मानो सफल हो गया।

पाशविक शक्ति का मुकाबला पाशविकता में ही किया जा सकता है। मानवी शक्ति से नहीं। दुनिया के उद्धार के लिए मानवी शक्ति को जागृत कीजिए। आग को बुझाने के लिए आग काम नहीं आएगी, पानी ही काम आएगा।

शस्त्र कौशल ही इसमें है कि व्यक्ति अपने विरोधी की शक्ति को स्वयं पर भारी न पड़ने दे; किंतु युद्ध में कई बार शरीर-शक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण हो उठती है।

दुनिया में सर्वत्र शक्ति की पूजा होती है। विडंबना यह है कि हर कोई विध्वंस को ही शक्ति मान रहा है, जबकि सबसे बड़ी शक्ति अध्यात्म है, आत्मा है। इंसान सबसे शक्तिशाली है। एक भी ऐसा प्राणी नहीं है जिसमें शक्ति न हो। यह सत्य भारत के अध्यात्म में ही उजागर हुआ है। सबकी शिकायत रहती है कि क्या करें, हममें शक्ति नहीं है। वे शक्ति संपन्न होते हुए भी अपने आपको कमजोर एवं दुर्बल अनुभव करते हैं। शक्ति का अनुभव और शक्ति का उपयोग ध्यान और साधना से संभव हो सकता है। मिल्टन ने कहा भी है कि शांति की अपनी विजयें होती हैं, जो युद्ध की अपेक्षा कम कीर्तिमयी नहीं होती।

भारत ने दुनिया को योग, ध्यान का सूत्र दिया है। ध्यान का अर्थ है अपनी शक्ति से परिचित होना, अपना सृजनात्मक निर्माण करना, अहिंसा को प्रतिष्ठापित करना। जो आदमी अपने भीतर गहराई से नहीं देखता, वह अपनी शक्ति से परिचित नहीं होता। जिसे अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं होता, जो अपनी शक्ति को नहीं जानता, उसकी सहायता भगवान भी नहीं कर सकते। अगर काम करने की उपयोगिता है और क्षमता भी है तो वह शक्ति सृजनात्मक हो जाती है और किसी को सताने या मारने की उपयोगिता है तो वह शक्ति ध्वंसात्मक हो जाती है।

शक्ति के दो रूप हैं- ध्वंसात्मक और सृजनात्मक। कोई आदमी अपनी शक्ति का उपयोग सृजन में करता है तो कोई ध्वंस में करता है। दुनिया में कई ऐसे हैं जो शक्तिशाली हैं, पर उनकी शक्ति का उपयोग केवल ध्वंस में होता है। वे निर्माण की बात जानते ही नहीं। वे जानते हैं- ध्वंस, ध्वंस और ध्वंस। इसी में सारी शक्ति खप जाती है। हमारी दुनिया में आतंकवादी, हिंसक एवं क्रूर लोगों की कमी नहीं है। इस दुनिया में हत्या, अपराध और विध्वंस करनेवालों की कमी नहीं है। ये चोरी, डकैती, हत्या करनेवाले, आतंक फैलानेवाले एवं युद्ध करनेवाले लोग शक्तिशाली है। बिना शक्ति के तो ये सारी बातें हो नहीं सकतीं।

बड़ा अपराध शक्तिशाली आदमी ही कर सकता है। उसमें शक्ति तो है, पर शक्ति का उपयोग केवल ध्वंस में हो रहा है, सृजनात्मक नहीं हो रहा है। दूसरी ओर हमारी दुनिया में न तो साधुओं की कमी है और न ही दानवीरों की। परोपकारी कम नहीं हैं तो सहनशील भी खूब हैं। ऐसे-ऐसे सहन करनेवाले लोग इस दुनिया में हुए हैं और आज भी हैं कि हर बात को सह लेते हैं और अपने पर ले लेते हैं, पर दूसरे को किंचित भी नुकसान नहीं पहुंचाना चाहते। इनकी शक्ति को भी कम करके नहीं आंका जाना चाहिए।

कमजोर होने का कारण है अपनी ही शक्ति को न जानना - दुनिया का बड़ा सत्य है कि हर इंसान शक्ति के साथ ही अपने अस्तित्व को बनाए रख सकता है। सच तो यह भी है कि इस दुनिया में शक्तिहीन होना बहुत बड़ा अभिशाप है। कायर, कमजोर, दब्बू एवं असहाय व्यक्ति के साथ शोषण और अन्याय होता है। उसकी कमजोरियों का नाजायज फायदा

उठाकर लोग अपने स्वार्थों को पूरा करते हैं। शक्ति संसार पर शासन करती है। इसलिए अपनी क्षमताओं को कभी नकारें नहीं। प्रत्येक आदमी शक्तिशाली है। फिर भी कुछ लोगों की शिकायत है और रहती है, क्या करें? हममें यह शक्ति नहीं है। अपने आपको अशक्त, अक्षम, कमजोर और दुर्बल अनुभव करते हैं। शक्ति के होने पर भी इतनी अशक्ति की बात अजीब ही कही जाएगी।

अध्यात्म के क्षेत्र में भी शक्ति की चर्चा होती है। अध्यात्म ही व्यक्ति को शक्तिशाली बनाता है। बहुत से लोग जो खुद को कमजोर, लाचार महसूस करते हैं, उसकी वजह यह है कि वे अपनी शक्ति से परिचित नहीं हैं और अपनी शक्ति का उपयोग करना नहीं जानते। इसीलिए शक्ति-संपन्न होते हुए भी अपने आपको दुर्बल अनुभव करते हैं। शक्ति का अनुभव और शक्ति का उपयोग करना अध्यात्म के द्वारा संभव हो सकता है।

जो आदमी अपने भीतर गहराई से नहीं देखता, वह अपनी शक्ति से परिचित नहीं होता। ऐसे व्यक्ति आत्मा का आनंद भी नहीं उठा पाते। आत्मा का आनंद उसकी शक्ति का परिचायक है। जिसे अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं होता, जो अपनी शक्ति को नहीं जानता, उसकी सहायता भगवान भी नहीं कर सकता। लेकिन जो अपनी ही शक्ति से अनजान है, वह उस पर भरोसा कैसे करे। तो सबसे बड़ी बात है शक्ति का अनुभव करना।

प्रत्येक व्यक्ति में शक्ति के ये दो रूप होते हैं- ध्वंसात्मक और सृजनात्मक। कोई व्यक्ति अपनी शक्ति का उपयोग सृजन में करता है और कोई ध्वंस में करता है। बहुत से लोग दुनिया में ऐसे हैं जो शक्तिशाली हैं, पर उनकी शक्ति का उपयोग केवल ध्वंस में होता है। वे निर्माण की बात जानते ही नहीं। हमारी दुनिया में चोरों, लुटेरों की कमी नहीं है। इस दुनिया में हत्या, अपराध, आतंक करनेवालों की कमी नहीं है। ये चोरी करनेवाले, डकैती करनेवाले और हत्या करनेवाले लोग क्या शक्तिशाली नहीं हैं? बड़ा अपराध शक्तिशाली आदमी ही कर सकता है। दूसरी ओर हमारी दुनिया में साधु पुरुषों की भी कमी नहीं है। अहिंसा का विकास, सत्य का विकास, शांति का विकास व्यक्ति के अंदर हो तो व्यक्ति शक्तिशाली बनता जाता है। ये जागृति के साथ पैदा होते हैं। मूर्छा का जाना अच्छा लगता है और जागृति का आना अच्छा लगता है। जीवन में जितनी कामनाएं होंगी, उतनी ही ध्वंसात्मक शक्ति होगी। निष्काम भाव जितना बढ़ेगा, उतनी ही सृजनात्मक शक्ति भी बढ़ेगी। दोनों का बराबर योग है। ऐसे में भगवान महावीर का यह कथन महत्वपूर्ण है कि जागा हुआ व्यक्ति अपनी ऊर्जा को, अपनी शक्ति को गलत दिशा में नहीं बहने देगा और न ही अपव्यय होने देगा। इसलिए जागना जरूरी है।

बल- सूर्य में, चन्द्रमा में, अग्नि में, चराचर विश्व में जो तेज है, सब श्यामसुंदर का है। उसी तेज से तेजस्वी होकर सदा दुर्गुणों को तापित करते रहना, यही तेज का उपभोग है। इसका उपयोग सदा करते रहना चाहिये, नहीं तो निस्तेज पुरुष को सभी दबा देते हैं। बल तीन प्रकार का है- शारीरिक बल, इन्द्रियों का बल और मन का बल। मन के बल को सह कहते हैं, इन्द्रिय बल का नाम ओज है और शरीर में जो बल शक्ति बढ़ जाती है उसे बल कहते हैं। प्राणायाम श्रेष्ठ बल है।

वीर अपनी वीरता से ही विश्व में विख्यात होते हैं। उनको कोई उपाधि देता नहीं, अपने कर्मों से ही वीरतापूर्ण नामों से प्रसिद्ध हो जाते हैं। वीरता जिसमें भी हो, उसी के सम्मुख सब आकार स्वार्थवश नत होते हैं। यह वसुन्धरा वीर भोग्या बताई गई है, स्वर्ग के देवता भी वसुन्धरा के वीरों की अपेक्षा रखते हैं, समय-समय पर इनसे सहायता प्राप्त करते हैं बहुत से पृथ्वी

के ऐसे शूर, वीर राजा हुए हैं। जिन्होंने देवताओं के शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये और देवताओं के हाथ के गये हुए स्वर्ग को पुन: दिला दिया है।

बल एक ही होता है। वह नित्य अखण्ड, निर्गुण, अद्वितीय होता है। बल के विभिन्न रूप या प्रकार विभिन्न मतानुयायियों ने बताये है। १) मैत्रायणी उपनिषद के अनुसार शब्द बल और निराकार बल, २) वेदान्त शास्त्र के अनुसार साकार और निराकार बल, ३) धवलगिरी के अनुसार :- उपभोक्ता, जीवात्मा और विश्व बल, ४) कपिलगीता के अनुसार :- तारक बल, दंडक बल, कुंडल बल, अर्ध कन्दुक बल और विन्दु संकाश बल, ५) ध्यान योग के अनुसार :- ॐ बल, गणपति बल, मन बल, आत्म बल और पदबल मकडी स्वयम् जाल बुन कर उसे निगल लेती है। उसी तरह यह बल स्वयम् विश्व की रचना कर उसे स्वयम् में विलीन करता है।

मनुष्य को बल की उपासना करनी चाहिये। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन रहता है। केवल शरीर में बल मिलने से सम्पूर्णता नहीं आती। मनुष्य को हर ओर से बल प्राप्त करना चाहिये। स्वास्थ्य बल प्रमुख शक्ति है लेकिन उसके साथ ही विद्या बल भी चाहिये। विद्या मनुष्य की तीसरी आंख है। साथ ही जीवन स्तर बनाये रखने के लिये धन, बल भी होना चाहिये। उसके बिना मनुष्य प्रभावहीन होता है। इसे स्नेह बल का साथ होना चाहिये। आदमी अच्छा या बुरा है, यह उसकी संगत से जाना जाता है। अच्छे दोस्तों का साथ भी उत्तम बल है। धन विद्या आदि बलों से कार्य कर मनुष्य को प्रतिष्ठा प्राप्त करनी चाहिये। चातुर्य बल और साहस बल से आदमी को जीवन में प्रगति करनी चाहिये। अन्त में आत्म बल से शान्ति और सन्तोष प्राप्त करना चाहिये। इस तरह सुख के लिये इन बलों की उपासना करनी चाहिये।

मनुष्य को जीवित रहने के लिये शक्ति आवश्यक है। यह शक्ति या बल पांच तरह का होता है। प्रभु बल, पीठ बल, प्रज्ञा बल, पुण्य बल व पिंड बल। मनुष्य बिना प्रभु बल के नास्तिक होता है, प्रज्ञाबल के बिना अज्ञानी, पीठ बल के बिना दु:खी होता है तो पिंड बल के बिना सत्कार्य करने की मन:शक्ति पूर्ण नहीं होती।

मनुष्यों में सदा पाँच प्रकार का बल होता है। जो बाहुबल नामक बल है, वह कनिष्ठ बल कहलाता है, मन्त्री का मिलना दूसरा बल है, मनीषी लोग धन के लोभ को तीसरा बल बताते हैं, जो बाप-दादों से प्राप्त हुआ मनुष्य का स्वाभाविक बल (कुटुम्ब का बल) है, वह अभिजात नामक चौथा बल है। जिससे इन सभी बलों का संग्रह हो जाता है तथा जो सब बलों में श्रेष्ठ बल है, वह पांचवां बुद्धि का बल कहलाता है।

मनोबल- चिंतन में उत्कृष्टता, चरित्र में आदर्शवादिता और व्यवहार में शालीनता का समावेश करने से मनोबल की अभिवृद्धि होती है। मन का शरीर पर पूरी तरह नियंत्रण है। संकल्प बल से स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों का उत्कर्ष होता है। यदि मनोबल गिरे या विकृत दिशा में चले, तो उसका परिणाम पतन और पराभव के रूप में सामने आयेगा। यह कथन आंशिक रूप से सही है कि शरीर बीमार होने पर मनोबल भी गिरता है। किंतु यह निष्कर्ष सही है कि मनोबल गिरेगा, तो शरीर विचित्र रोगों से घिरने लगेगा। यदि मनोबल दृढ़ हो, तो गांधी और विनोबा जैसे दुर्बल दिखनेवाले भी संकल्प बल के सहारे बड़े-बड़े संकल्प करते और अपनी मानसिक समर्थता के सहारे उन्हें पूर्ण करके महान बनकर दिखाते हैं। जिनका मनोबल गिर गया, वे साधारण कामों को भी पर्वत के समान भारी मानते हैं। वह उत्साह और साहस ही है, जिसके सहारे सामान्य लोग बड़े काम कर दिखाते हैं।

नेपोलियन भी शारीरिक दृष्टि से सामान्य मनुष्यों जैसा ही था, पर जिस भी काम को हाथ में लेता, उसे हर कीमत पर पूरा करके दिखाता था। मनोबल के धनी कुछ भी करने में समर्थ होते हैं। भीष्म का सारा शरीर बाणों से बिंध रहा था, फिर भी वे उत्तरायण सूर्य आने तक छह महीने उसी शरीर में प्राण धारण किये रहे और मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहे। राणा सांगा को साठ गहरे घाव लगे थे, तो भी वे लड़ाई के मैदान में पूर्ववत् अपना जौहर दिखाते रहे। आद्य शंकराचार्य भगंदर के फोड़े की व्यथा १६ वर्ष तक लगातार सहते हुए भी ग्रंथ लेखन और देशव्यापी भ्रमण करते रहे। विनोबा ने अल्सर के फोड़े की व्यथा सहते हुए भी बीस वर्ष उसी स्थिति में भूदान के निमित्त हजारों मील का परिभ्रमण जारी रखा। यह सब मनोबल का चमत्कार है। तप तितीक्षा उन्हीं में आते हैं। मनीषियों ने मनोबल बढ़ाने के कई उपाय बताये हैं जिनका हमें अभ्यास करना चाहिए।

ऊर्जा- ऊर्जा नीचे रहे तो वासना, ऊपर उठे तो बुद्धत्व की ओर ले जाती है। जीवन के प्रति बहिर्मुखी दृष्टिकोण के कारण कभी हमें खयाल भी नहीं आता कि हमारा यह शरीर किसी ब्रह्मांडीय व्यवस्था से कम जटिल और रहस्यमय नहीं है। हमें यह जिज्ञासा भी नहीं होती कि इसके भीतर जो ऊर्जा है, उसका केंद्र कहां है।

शरीर में ऊर्जा के सात तल हैं- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, हृदय या अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार। इन्हें चक्र कहा गया। सबसे नीचे का तल मूलाधार चक्र है जो गुदा मार्ग के पास या रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले छोर पर है। सहस्रार चक्र हमारी यौनिक गतिविधियों से जुड़ा है। यह एकमात्र चक्र है जिसे प्रकृति सक्रिय करती है। बाकी चक्रों को यदि सायास सक्रिय न किया जाए तो व्यक्ति अपनी ऊर्जा के अनंत भंडार से अनभिज्ञ ही रह जाता है।

प्रेम, भोजन अथवा अन्य स्रोत से व्यक्ति जो भी ऊर्जा ग्रहण करता है, वह मूलाधार चक्र पर आकर जमा हो जाती है। वही जमाव हमारी यौन सक्रियता का कारण बनता है। जो व्यक्ति जितना मूलाधार चक्र पर जिएगा, उसमें कामवासना उतनी ही प्रबल होगी। यही ऊर्जा जब काम बिंदु से ऊपर उठती है तो व्यक्ति की अन्य प्रतिभाएं सामने आती हैं। कुंडली जागरण या ध्यान के उच्चतर प्रयोग इस ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाने के ही प्रयास हैं। आपकी ऊर्जा जितने अधिक समय तक ऊपर के चक्रों पर रहेगी, वासना से मुक्त होना उतना आसान होगा।

भोजन, नींद और मैथुन की प्रवृत्ति तो अन्य प्राणियों में भी होती है, किंतु केवल मनुष्य है जिसकी चेतना का विकास हुआ है या होने की संभावना है। मन और चेतना से रहित व्यक्ति को बस ढांचा ही कहा जा सकता है। चेतना का विकास भी तभी होता है जब ऊर्जा उच्चतर केंद्रों की ओर उठती है। हम ऊर्जा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। केवल ऊर्जा है जो कभी नष्ट नहीं होती, सिर्फ रूपांतरित होती है। इसी अर्थ में, व्यक्ति के देहावसान को केवल शरीर या चोला बदलना कहा गया है क्योंकि ऊर्जा ब्रह्मांड में मौजूद ही रहती है। हमारा होना वास्तव में एक ऊर्जा क्षेत्र का होना है।

हमारा शरीर रक्त, अस्थित और मज्जा का योग मात्र नहीं है। शरीर के तरंगों की समझ हमारे भीतर जो प्राण या कॉस्मिक ऊर्जा है, उसके असंतुलन से हमें बचा सकती है। जैसे वैज्ञानिकों ने माना है कि गुरुत्वाकर्षण तरंगों के पता लगने से ब्रह्मांड के बारे में समझ का नया युग शुरू होगा, वैसे ही यदि हम अपने शरीर के भीतर के तरंगों की प्रति सचेत हो सकें तो न सिर्फ शरीर बल्कि जीवन के प्रति भी हमारी समझ का एक नया अध्याय शुरू हो सकता है। व्यक्ति का वास्तविक रूपांतरण किसी कृत्रिम अनुशासन से नहीं, बल्कि इसी समझ से संभव है। यह समझ केवल ध्यान और समाधि की गहराइयों को जानकर विकसित हो सकती है।

उमंग-उत्साह, श्रम-परिश्रम और साहस-संघर्ष

श्रम-परिश्रम- श्रम ही देश की उन्नति की सीढी है। आज के तेज रफतार में देश का विकास करने हेतु आधुनिक तकनीकी साधनों का इतना अधिक उपयोग हो गया है कि लोगों के दिल दिमाग में श्रम करने के प्रति उदासीनता छा गई है। संसार में सफलता केवल श्रम के बलपर ही हासिल की जा सकती है। श्रम की महिमा को स्थिर करके ही देश का विकास सम्भव है। विकास में श्रम का बडा ही योगदान और महत्व है। आधुनिक युग में मासूम बच्चों को श्रम के महत्व से परिचित भी नही कराया जाता जिससे देश का भविष्य अन्धेरे मे नजर आता है। श्रम की घटती हुई महिमा विस्फोट की तरह है। श्रम करके ही देश को विकास की ऊंचाई तक ले जाया जा सकता है।

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को उपदेश करते हुए इन्द्र कहते हैं - हे रोहित ! हम ऐसा सुनते हैं कि श्रम करने से जो नहीं थका है, ऐसे मनुष्य को श्री की अथवा ऐश्वर्य और वैभव की प्राप्ति होती है, बैठे हुए आलसी आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसका ही मित्र है, जो बराबर चलता रहता है। इसलिये चलते रहो। चलते रहो।

जो मनुष्य चलता रहता है, उसकी जांघों में फूल-फूलते हैं। उसकी आत्मा भूषित और शोभित होकर फल प्राप्त करती है। ऐसे चलने वाले परिश्रमी व्यक्ति के सारे पाप थककर सोये रहते हैं। इसलिये चलते रहो, चलते रहो।

बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है और खड़े होने वाले का सौभाग्य उठकर खड़ा हो जाता है। पड़े रहने वाले का सौभाग्य सोता है और उठकर चलने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिये चलते रहो। चलते रहो।

सोने वाले का नाम कलियुग है, अंगड़ाई लेने वाला द्वापर है, उठकर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला सतयुगी होता है। इसलिये चलते रहो। चलते रहो।

चलता हुआ मनुष्य ही मधु (अमृत) प्राप्त करता है। चलता हुआ मनुष्य ही स्वादिष्ट फलों को चखता है। सूर्य के परिश्रम को देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिये चलते रहो। चलते रहो।

परिश्रमी के घर पर क्षुधा देवी प्रवेश नहीं करती।

श्रम न करना अपने और समाज के प्रति अक्षम्य अपराध है।

एक बार राजा भोज ने एक सार्वजनिक भोज दिया। लोग तरह तरह की मिठाइयां और पकवान खाकर तृप्त हो गए। अपनी उदारता की चर्चा और प्रशंसा सुनकर राजा का सीना गर्व से फूल गया। शाम को एक लकड़हारा सिर पर लकड़ी का गट्ठर लिए उन्हें नगर के द्वार पर मिला। उन्होंने पूछा- क्या तुम्हें पता नहीं था कि राजा भोज ने आज भोज दिया है। पता होता तो तुम्हें यह श्रम न करना पड़ता। लकड़हारा बोला, नहीं; मुझे पता था। पर जो परिश्रम की कमाई खा सकता है, उसे राजा भोज के सार्वजनिक भोज से क्या लेना-देना? परिश्रम की सूखी रोटी का आनंद मुफ्त के पकवानों में कहां? श्रम और पसीने से मिली जीविका से जो आत्मगौरव जुड़ा है, उसका आनंद षटरस व्यंजनों से भी अधिक है।

लकड़हारे की स्वस्थ सोच काबिलेगौर है। आप कभी भी बड़े या छोटे धर्म स्थल पर देखेंगे कि कितने ही हट्टे-कट्टे लोग भिक्षा पाने या मंदिरों में बंटनेवाले भंडारे आदि का प्रसाद पाने के लिए वहां बैठते हैं। ऐसे लोग दूसरों पर इतने निर्भर हो चुके हैं कि उनसे किसी प्रकार का श्रम या परिश्रम नहीं हो पाता। ऐसे लोगों को बैठे-बिठाए कुछ खाने को मिल जाता है, वे फिर

श्रम क्यों करें। ऐसे लोगों के चेहरे देखें तो लगेगा कि वे घोर निराशा से घिरे हैं और अर्थहीन जीवन जी रहे हैं।

श्रम के प्रति उपेक्षा आज बहुत से लोगों में बढ़ती जा रही है। इससे अनेक विषमताएं और समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। श्रम के प्रति उपेक्षा के भाव से अभाव और गरीबी को पोषण मिलता है। सच यह है कि किसी भी उपार्जन और उत्पादन का आधार श्रम ही है। जिस समाज में श्रम के प्रति दिलचस्पी न होगी वहां उपार्जन कैसे बढ़ेगा? श्रम न करने से शारीरिक प्रणाली ही असंतुलित हो जाती है। इससे अस्वस्थता बढ़ने लगती है। श्रम के अभाव में मनुष्य जीवन के सहज संतोष, सुख और मानसिक शांति से अलग रह जाता है। गरीबी और दीनता का कारण पर्याप्त और सही ढंग से श्रम न करना ही है। सामने पड़ा हुआ काम जब श्रम का अंजाम चाहता है और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे सोचते रहते हैं तो उसके लाभ से अलग रह जाते हैं। प्रकृति का नियम है कि जो वस्तु उपयोग में नहीं आती, वह जल्द ही नष्ट हो जाती है। हमारा शरीर श्रम करने के लिए मिला है। लंबे लंबे हाथ पैर, बुद्धि और तमाम अवयव कोई न कोई काम करने के लिए मिले हैं। जब दूसरों पर निर्भर हो, शरीर तंत्र का कोई उपयोग नहीं किया जाता तो यह उसी तरह नष्ट होने के लिए बाध्य होता है, जिस तरह बेकार पड़ी मशीन जंग लग कर खराब हो जाती है। श्रम न करना, अपने प्रति और समाज के प्रति अक्षम्य अपराध है। श्रम से शरीर तंत्र सक्रिय रहता है।

जीवन में युद्ध न हो, तो वह जीवन, जीवन नहीं। प्राणी किसी से प्रेम भी करना चाहता है, किसी से लड़ना भी चाहता है। जैसे हम बिना प्रेम किये नहीं रह सकते, वैसे ही बिना लड़े भी नहीं रह सकते, जो शुद्ध सात्विक प्रकृति के ब्राह्मण है, वे सद्गुणों से प्रेम करते हैं और दुर्गुणों से निरन्तर युद्ध करते रहते हैं। जो राक्षसी क्षत्रिय हैं वे समान और अनुकूल राजाओं से प्रेम करते हैं तथा शत्रु राजाओं को परास्त करने के लिये उनसे युद्ध करते रहते हैं। जो राजा युद्ध का अवसर आने पर भी युद्ध नहीं करता वह राजा नहीं या तो निर्वीर्य है या व्यापारी वैश्य, नहीं तो अपने पदप्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये राजाओं का युद्ध आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है। युद्ध न हो तो पृथ्वी उर्वरा न हो, जनसंख्या बढ़ जाय, मनुष्यों में आलस्य प्रमाद छा जाय। शरीर के प्रति ममत्व हो जाय, वीरता नष्ट हो जाय, इस प्रकार राष्ट्र में बहुत से दुर्गुण आ जायँ। इसके विरुद्ध जो राजा निरन्तर युद्ध में ही लगे रहते हैं उनकी प्रजा भी सुखी नहीं रहती। अत: राजा को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने को तथा प्रजा के हित के ही लिये युद्ध करना चाहिये।

जब हमारे सामने इतना बड़ा कटु सत्य है ही कि जीने के लिए किसी न किसी तरह का परिश्रम करना है तो क्यों न हम परिश्रम को गुणात्मक और आनंददायक बनाते चलें। हमें कठिनाई और समस्याओं से जूझते हुए इनकी सहायता लेनी चाहिए। सबसे श्रेष्ठ तरीका यह है कि हम जो भी काम करते हैं, उसके प्रति लगाव रखे। काम के दौरान किए जानेवाले परिश्रम की महत्ता का ध्यान रखें। काम के बोझ के कारण या काम के बीच आनेवाली बाधाओं से खुद को दुखी करने के बजाय सोचे कि हमें अपने परिश्रम का सम्मान करना है। इससे काम से संबंधित बाधाएं तो समाप्त होंगी ही, बाधाओं के कारण उपजा अलगाव भी मिट जाएगा। कुछ दिनों तक यदि हम अपने कार्यों को इस भावना के साथ करेंगे तो निश्चित रूप में हमारे भीतर एक नई वैचारिक ऊर्जा प्रवाहित होने लगेगी। ऐसा प्रत्यावर्तन व्यक्ति को आध्यात्मिक चिंतन की ओर अग्रसर करता है।

अपने हाथों से किए गए श्रम या अपनी योग्यताओं, दक्षताओं और मानस से निरूपित अपनी कार्य योजनाओं का मूल्यांकन हम केवल प्रतिफल के रूप में ही न करें। हम यह भी देखें, समझें तथा अनुभव करें कि हमारे मानसिक-शारीरिक श्रम को प्रतिदान में केवल भौतिक पुरस्कार नहीं चाहिए। अपने श्रम को दिया गया हमारा मान-सम्मान हमारे लिए वह आत्मिक संयोजन निर्मित करता है, जो हमें जीवन-जगत का सर्वश्रेष्ठ सुख प्रदान करता है।

दुनिया में किसी व्यक्ति का सर्वनाश करना है तो उसके लिए हिंसा के सिवाय और क्या रास्ता है? इसका उत्तर है, उसे काहिल बना दो। उसे कुछ भी मुफ्त में पाने की लत लगा दो परिश्रम से उसे दूर कर दो, वह व्यक्ति खुद ब खुद अपना पतन कर लेगा। मुफ्तखोरी इकलौती ऐसी आदत है जो इंसान को अकेले गुलामी की दहलीज पर घसीट कर ले जाने की ताकत रखती है।

जीवन में जब कुछ भी मुफ्त मिलने की आहट सुनाई दे तो उसके शोर में उस आवाज को दोनों कान खड़े करके जरूर सुनना चाहिए जो आपकी दूसरी चीजों पर हाथ डाल रही हो। जब मिशनरी अफ्रीका आए तो उनके पास बाइबल थी, जो वह मुफ्त में बांट रहे थे और हमारे पास थी जमीन। उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे लिए मुफ्त में प्रार्थना करने आए हैं। हमने अपनी आंखें बंद कर लीं और जब खोलीं तो हमारे हाथ में बाइबल थी और उनके हाथ में हमारी जमीन। तो कई बार हमें पता ही नहीं होता कि हम मुफ्त के फेर में क्या गंवा रहे हैं।

कभी अपने जीवन में उस चीज को देखिए जो सबको बिलकुल मुफ्त मिली है और जिसकी कभी किसी को कोई कीमत नहीं देनी पड़ी, वह है धर्म। यह जो धर्म है यह हमारे जीवन में मुफ्त में आता है, इस मुफ्त के फेर में हम क्या-क्या गंवाते हैं। सबसे पहले तो स्वतंत्रता, खाने-पीने, रहने, चलने, उठने, जागने, विवाह, प्रेम, सबकी स्वतंत्रता गंवाकर हम मुफ्त में धर्म लेते हैं। यह बात लोगों को चुभ सकती है, क्योंकि यह चुभनेवाली व्यवस्था भी उन्होंने मुफ्त के फेर में ओढ़ ली है। यही नहीं अगर जीवन में हमें राजनीति या सामाजिक व्यवस्था के माध्यम से कुछ भी मुफ्त में मिल रहा है तो उसकी आड़ में, देनेवाले की कुछ न कुछ स्वार्थ ही है।

यह मुफ्त का बाजार हमें सबसे पहले काहिल बनाता है और काहिल बनते ही हमारे शरीर में जंग लगना शुरू हो जाता है। फिर हमारी आदत बनने लगती है कि शरीर को रत्ती भर हिलाना न पड़े और चीजें हमारे पास आ जाएं। हम पहले परिश्रम से भागते हैं फिर धीरे-धीरे कुछ भी हासिल करने का हौसला खो बैठते हैं और अंत में आत्मविश्वास दरक जाता है।

यह स्थिति शरीर और मन के लिए बहुत भयावह है। हम इसे मामूली समझ नजरअंदाज करते रहते हैं। जिस तरह हम अपने मन को तमाम बुराइयों से निकालकर विकसित करते हैं, उसी में यह मुफ्त पाने की आकांक्षा को भी नष्ट करना चाहिए। पृथ्वी पर हर उस व्यक्ति के पांव के निशान पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों ने देखे हैं, जिन्होंने अपने कठोर परिश्रम से चीजें हासिल की है।

साहस-संघर्ष- साधना के मार्ग पर बढ़ते हुये साहस अर्थात दृढ़ मनोबल की आवश्यकता होती है। परमात्मा की दिशा में कदम उठाना साधना का मार्ग है। दृढ़ मनोबल न हो तो कई लोग हल्की सी प्रतिकूल घटनाओं के कारण कदम वापिस खींच लेते है, हताश हो जाते है, निराश होते है इसलिये साहस होना परम आवश्यक है। कायर व्यक्ति साधना के मार्ग पर

चलकर महान कार्य नही कर सकता। तेज तलवार पर चलने जैसा कठिन कार्य है। इसलिये साधारण गृहस्थ लोग अध्यात्म साधना का साहस नहीं करते। वे अपनी ही छोटी सी दुनिया में रहकर खुश रहते है। साहस के साथ विवेकपूर्ण ज्ञान चाहिये। वह न हो तो साहस व्यक्ति का नाश करता है।

जब प्रकृति में विकृति होती है, तभी संघर्ष होता है। जिस जीवन में संघर्ष नहीं, विजय करने की भावना नहीं, उसमें उन्नति नहीं, गति नहीं, आगे बढ़ने की शक्ति नहीं। अत: संघर्ष ही जीवन है। संसार में एक-से-एक सुन्दर आकर्षक तथा सिद्धि देनेवाली वस्तुएँ हैं। यदि इन सबको हम भगवान की कृति समझें, और जो जहाँ है, वहीं उसका आदर करें तो संघर्ष न हो। जब एक वस्तु को अपनाने के निमित्त अनेक इच्छा करते हैं, एक उसे अपनी बनाना चाहता है, दूसरा उसे देना नहीं चाहता, तब संघर्ष होता है; युद्ध, रक्तपात और सर्वनाश होता है। समर्थ का क्रोध सफल होता है। क्रोध, क्रोध से बढ़ता है। शत्रु का समर के लिये सन्नद्ध देखकर उत्साह बढ़ता है। और वीरों के रोमांच हो जाते हैं। वीरों के लिये समर का शुभावसर प्राप्त हो तो वे अपना सौभाग्य समझते हैं। यदि शत्रु अपने समान बलशाली हुआ तो युद्ध में भी आनन्द आता है और जय पराजय दोनों में ही सन्तोष होता है। अपने से बड़े अथवा समान शत्रु को जीत लिया, तब तो संसार में यश होता है। यदि उससे लड़कर सन्मुख रण में मारे भी गये तो स्वर्ग प्राप्त होता है। यदि अपने से छोटे को जीत भी लिया तो कोई प्रशंसा नहीं, यदि दैवयोग से उससे पराजित हो गये तो संसार में अपकीर्ति फैल जाती है। संभावित पुरुष की अकीर्ति मरण से भी अधिक दु:खदायी है। अत: युद्ध समान बलवालों से करना ही श्रेयस्कर है।

हमारे जीवन में होनेवाले संघर्ष इसी पहलू पर ही आधारित है। हम वस्तु या व्यक्ति को तो पसंद करते हैं परंतु उसके कुछ ही गुणधर्मों को अपनाना चाहते हैं।

बेटे की अपेक्षा का पात्र कांच के जार जैसा है, तो बाप की अपेक्षा का पात्र मिट्टी के घड़े जैसा है। जार चाहता है, घड़ा मेरे अंदर समा जाये और घड़ा चाहता है जार मुझमें विलीन हो जाय। संघर्ष के सिवाय इसका और क्या परिणाम आ सकता है ?

राक्षस-विरोधी इस संघर्ष को, चिंतन के धरातल से, कर्म के धरातल पर उतार दिया है। संघर्ष केवल सिद्धांत के धरातल पर होता है तो प्रवृत्ति का विरोध कर हम व्यक्ति के साथ समझौता कर जी लेते हैं; किंतु संघर्ष के कर्म-धरातल पर उतरने के पश्चात कोई समझौता नही होता, समन्वय नहीं होता, सह-अस्तित्व नही होता।

ऐसा संभव नहीं है कि राक्षसों का आतंक और आपका मुक्त-क्षेत्र दोनों सह-अस्तित्व की स्थिति में रह सकें। इन दोनों में लंबा संघर्ष होगा, जब तक कि दोनों में से एक समाप्त न हो जाए। आपने आज से एक ऐसा संघर्ष आरंभ किया है, जिसमें या तो विजय है अथवा मृत्यु। मध्यम मार्ग आपके लिए नहीं है।

मुक्त केवल वही है, जो संघर्ष के लिए प्रस्तुत है। यह प्रकृति का नियम है। यदि आप संघर्ष से पीछे हटेंगे, तो मुक्ति भी आपके हाथ से निकल जाएगी।

कर्म के फल पर नजरें टिकाना श्रम के मान को कम करना है - इस दुनिया में संघर्षशील व्यक्ति के पास सबसे अच्छे अनुभव होते हैं। इसलिए संघर्ष परिश्रम से हमेशा लगाव रखना चाहिए। अपेक्षित प्रतिफल न मिलने की स्थिति में निराश और हतोत्साहित बिलकुल नहीं होना चाहिए। मानवीय जीवन का संतुष्टि का दायरा जितना बड़ा होगा, उतना ही

आत्मिक आनंद प्राप्त होगा। जो कुछ हमारे पास है या हो सकता है, उससे संतुष्ट होनें की प्रवृत्ति तभी बनती है, जब संघर्ष के दौरान हम कभी यह नहीं सोचेंगे या चाहेंगे कि हमें यह नहीं मिला या हमें वह मिलना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति को घर-बारह के अपने-अपने दायित्वों को श्रेष्ठ तरीके से निभाने के लिए ऐसे ही आध्यात्मिक प्रत्यावर्तन को आवश्यकता है। जीवन में वास्तविक संघर्ष कार्य के लिए नहीं बल्कि कार्य के दौरान आनंदमग्न रहने और परिश्रम को आत्मसम्मान देने के लिए होना चाहिए। इसी पावन प्रवृत्ति से मनुष्य के भीतर उसकी स्वानुभूत संवेदनाएं जागृत होती हैं, जो उसे मानसिक और आत्मिक रूप में सर्वथा एक नई जीवन दृष्टि प्रदान करती हैं।

जिस वक्त हम ठान लेते हैं कि कुछ नया करना है, मानसिक बंधन तोड़ने हैं और कुछ पाना है, तब जन्म लेता है साहस। यह एक मानसिक अवस्था है जिसमें दिमाग के हार्मोन प्रेरित करते हैं कि अपने उद्देश्य के लिए पूर्णत: जुट जाओ।

सच्चे प्रेमी आध्यात्मिकता की ऊंचाई छूकर अपने प्रेम का परिणाम तय करते हैं। कोलंबस अपनी सुविधाएं छोड़ दुस्साहसिक यात्रा पर निकल जाते हैं। व्हेनसांग और फाह्यान पैदल हिमालय के मुश्किल रास्तों से बाधाएं लांघते भारत पहुंचते हैं। वास्कोडिगामा एक नई धरती पर पहुंच जाते हैं। मजनू, लैला के लिए हद पार करते हैं तो शीरी फरहाद के लिए। दशरथ मांझी अपने ढंग से यह हद पार करते हैं।

प्लेटो ने कहा है कि साहस हमें भय से मुकाबला करना सिखाता है। जैसे-जैसे हम चुनौतियां स्वीकारते हैं, साहस बढ़ता जाता है। उतार चढ़ाव से जूझती प्रेमियों की जिंदगी सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ती है। जो प्रेमी अपने लक्ष्य को छोड़ देते हैं और हताश हो जाते हैं, उन्हें अपने प्रेम की शक्ति पर भरोसा नहीं होता। वसीम बरेलवी कहते हैं- मुहब्बत में बुरी नीयत से कुछ सोचा नहीं जाता।

विराट की अभिलाषा हो तो अहं को दांव पर लगाना ही पड़ता है

विख्यात साहित्यकार मार्क ट्वेन की प्रसिद्ध उक्ति है, आज से बीस साल बाद आप उन चीजों से ज्यादा मायूस होंगे जो आपने नहीं कीं, बजाय उन चीजों के जो आपने की हैं। इसलिए सारे सहारे फेंक दें, सुरक्षित किनारों को छोड़ दें, हवाओं के रूख के साथ खुद को बहने दें। चीजों को जानें। सपने देखें। खोजें।

अपने जीवन में जिन्होंने भी कुछ अद्भुत किया है- कुछ ऐसा जो वाकई नवीन और क्रांतिकारी हो- उन्होंने जोखिम लेने से कभी मुंह नहीं मोड़ा। खतरे मोल लेने का यह माद्दा ही एक व्यक्ति को दूसरे से अलग करता है। यह बात जितनी व्यक्तियों के बारे में सच है, उतनी ही संगठनों और राष्ट्रों के बारे में भी। दो व्यक्तियों के बीच का फर्क उनकी जोखिम लेने की क्षमताओं से ही आंका जा सकता है।

आप इतिहास में एक भी ऐसा बड़ा इंसान नहीं पाएंगे जिसने जिंदगी में बड़े जोखिम न लिए हों। दुनिया में आज बिल गेट्स को सबसे धनी व्यक्ति माना जाता है। लेकिन जीवन की इन बुलंदियों पर पहुंचने के लिए गेट्स ने कई साहसिक कदम उठाए, जिन्हें उठाने से साधारण व्यक्ति प्राय: बचा करते हैं। मसलन गेट्स ने माइक्रोसॉफ्ट के रूप में अपना सपना साकार करने के लिए हार्वर्ड जैसे नामी-गिरामी विश्वविद्यालय से पढ़ाई बीच में ही छोड़ने का खतरा मोल लिया। उन्हें पता था कि ऐसा करना उनके भवितव्य को नुकसान पहुंचा सकता है, लेकिन कुछ बड़ा हासिल करने के लिए उन्होंने जोखिम

उठाने का फैसला किया जिसका परिणाम आज पूरी दुनिया के सामने है। महात्मा गांधी ने तब कितना बड़ा जोखिम लिया जब उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत से टकराने का निर्णय किया, इसकी कल्पना करना भी अब मुश्किल है। एक साधारण-सा वकील उस ब्रिटिश सरकार से लड़ने निकल पड़ा, जिसके राज में सूरज कभी नहीं डूबता था। जोखिम लेने की इसी क्षमता ने उस व्यक्ति को आम इंसान से बापू बना दिया।

जीवन में इस तरह का खतरा मोल लेना एक दोधारी तलवार की तरह है। इसमें न सफलता पक्की होती है और न ही आम लोगों की तरह सामान्य-सा जीवन मिलना ही तय होता है। परिणाम यदि कल्पना के अनुसार न हुआ, तो लगनेवाला धक्का तेज और घाव गहरा होता है। लेकिन हीरो वही होता है जो सामान्य की चाह नहीं रखता, विराट को पाने की अभिलाषा करता है। इसके लिए चाहे अपना अहं और अस्तित्व ही दांव पर क्यों न लगाना पड़ जाए।

जोखिम उठाने का जज्बा वीर का साहस है, पागल का नहीं। जो बात इसे पागलपन से अलग करती है वह यह कि इसमें मोहक स्वप्न के साथ विवेक और समझ-बूझ का भी समन्वय होता है। अगर आप बड़े मुकाम हासिल करना चाहते हैं, तो जोखिम को जीवन में हिस्सेदारी देने में देरी न करें।

साहस का मतलब- साहस को अमूमन खास लोगों से जोड़कर देखा जाता है। इतिहास में वे लोग ही साहसी माने जाते रहे हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े कारनामे किए। तो असली साहसी आसपास ही मिल जाएंगे। ऐसे लोग, जिन्होंने प्रतिकूल हालात से समझौता नहीं किया और आगे बढ़ते रहे। वे, जो गलत होता हुए देख नहीं सकते और तुरंत प्रतिक्रिया देते हैं।

हम साहस का अर्थ हमेशा सतही तौर पर लेते हैं। साहस को बड़े कारनामे से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। यह हमारी जीवनशैली में शामिल होना चाहिए। यह मन और भावना के स्तर पर हो, तो अच्छा है। हर छोटे-बड़े काम को सही तरह से पूरा करना, साहसी होने का परिचायक है। एक बच्चा, जो रोजाना अपना होमवर्क सही तरीके से करता है, एक किसान जो धूप-बारिश में भी अपना काम बंद नहीं करता या फिर दशरथ मांझी, जो हर दिन थोड़ा-थोड़ा पत्थर तोड़ पहाड़ के बीच से रास्ता निकाल देते हैं, ये सब साहसी हैं। साहस बहुआयामी है। इसके कई रंग हैं। जैसे महात्मा गांधी अहिंसक होने को साहस का चरम मानते थे, तो सचिन तेंदुलकर के लिए साहसी होना हर गेंद को उसकी गुणवत्ता के आधार पर खेलना था। साहस का मतलब है, हर स्थिति में अपने आत्मबल को कायम रखना और अपने लक्ष्य के प्रति संकल्पित रहना। प्राचीन चीनी कवि लाउज साहस के एक और आयाम की बात करते हैं। वे साहस को प्यार से जोड़ते हैं। प्यार हमें नकारात्मक वृत्तियों से दूर रखता है और इस राह पर चलते हुए हम साहसी बनते जाते हैं।

जीवन में हम नई-नई चीजें देखते रहते हैं, सीखते रहते हैं लेकिन जब कुछ नया करने की हमारी बारी आती है तो हम घबरा जाते हैं। इस घबराहट के कारण हम आगे नहीं जा पाते जिससे हमारी सफलता में बाधा उत्पन्न हो जाती है। जीवन में कोई भी बड़ा काम करते समय मन में थोड़ी घबराहट होना स्वाभाविक है। लेकिन यदि हमारे भीतर हिम्मत है तो हम नई-नई चीजें सहजता से कर सकते हैं। इसलिए स्वयं पर विश्वास रखकर अपने डर पर काबू पाएं। स्वयं पर विश्वास रखने से आपके भीतर एक शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके बल पर आप कोई भी नया काम कर सकते हैं।

आज के युवाओं के पास अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की हिम्मत व इच्छाशक्ति है, साहस भी है। इन सबका उपयोग

अच्छे कार्यों में होना चाहिए। युवाओं में साझेदारी, सहानुभूति, दूसरों का ध्यान रखने की भावना होनी चाहिए क्योंकि नौकरी-व्यवसाय द्वारा आप पैसों से अमीर हो सकते हैं लेकिन आप ज्यादा अमीर तब होंगे, जब लोगों को अपने साथ लेकर चलें। मन की अमीरी ज्यादा मायने रखती है। व्यवसाय करते हुए सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमत्ता, कल्पनाशीलता, नई कल्पनाओं, नवीनता के शोध जैसी बातों को प्रमुखता दें। उपर्युक्त गुणों से युक्त लोगों को नौकरी पर रखेंगे तो आपको अपने व्यवसाय में फायदा ही होगा।

लोगों से दिल से जुड़ें। लोगों व उनके कामों पर निष्ठा रखें। आपको अपनी उन्नति के लिए इसका उपयोग जरूर होगा। हमारी पीढ़ी के लिए जो कुछ उपलब्ध था, उससे कहीं अधिक आज की पीढ़ी के लिए उपलब्ध है। उनके लिए विभिन्न प्लेमफॉर्म्स उपलब्ध हैं जिसका लाभ उन्हें अवश्य लेना चाहिए।

दुनिया का चाहे कोई भी काम हो, पहली बार करते समय मन में साहस होना जरूरी है। यदि आपके भीतर साहस नहीं है तो आपके सामने चाहे कितना भी बड़ा अवसर हो, कितने भी साधन हों, आप पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकते। इसलिए मन में साहस होना चाहिए, न हो तो उसका निर्माण करें।

उमंग-उत्साह- प्रत्येक कार्य की सिद्धि उत्साह के द्वारा होती है। मन में कार्य करने की दृढ़ उमंग उठना यही उत्साह कहलाता है। उत्साही पुरुष सब कुछ करने में समर्थ होता है, एक उत्साही पुरुष बहुत कायरों को भी वीर बना देता है। सद्गुणों से ही सौभाग्य उदित होता है। गुणहीन सौभाग्यशाली कैसे हो सकता है। अत: सौभाग्य कार्य है, सद्गुण कारण हैं। उत्साह बलवान होता है, उत्साह से बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुष के लिये जगत में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

जीव जब क्रोध में भर जाता है, अपने स्वार्थ पर आघात होते देखता है, अपने को बली शूरवीर साहसी समझता है और विपक्षी के अशिष्ट व्यवहार से क्षुभित हो जाता है, या अपनी शक्ति का सार्वजनिक प्रदर्शन करना चाहता है, तो वह लड़ने को उद्यत हो जाता है। लड़ना-भिड़ना कुछ अच्छी बात तो है नहीं, किन्तु प्राणी लड़े बिना रह नहीं सकता। जैसे बिना प्यार किये कोई नहीं रह सकता। वैसे ही बिना लड़ाई के रहना कठिन है। लड़ना जीव का स्वभाव है। जहाँ युद्ध नहीं वहाँ जीवन नहीं। जहाँ युद्ध नहीं वहाँ वृद्धि नहीं। जहाँ समर नहीं वहाँ साहस नहीं, जहाँ विपक्षी नहीं वहाँ सचेष्टता नहीं। जीवन एक युद्ध ही है। संसार एक युद्धस्थली है, इसमें निर्बलों का निर्वाह नहीं। जब बल ही न हो तो पराधीन रहो या दुख भोगो। सबल हो, वीर हो तो वसुन्धरा की सामग्रियों का सुखपूर्वक उपभोग करो। जीवन संग्राम में आगे बढ़ो या मरो। यही मूल मन्त्र है। अधिक लोग जब मिलकर उत्साह से किसी काम को करते हैं, तो अन्य लोगों का भी साहस बढ़ता है, वे भी प्रभाव में बहकर अपनी शक्ति के बाहर कार्य कर जाते हैं। जहाँ बहुत से लोग किसी संस्था को दान दे रहे हों तो देखा देखी कृपण भी कुछ दे देते हैं। जहाँ बहुत से भावुक भक्त भजन कीर्तन करते हों। वहाँ अन्य लोग भी उनकी देखा देखी उसमें सम्मिलित हो जाते हैं। इसी प्रकार वीर योद्धाओं को लड़ते देखकर तथा युद्ध के बाजे बजते देखकर कायरों की धमनियों में भी वीरता के रक्त का संचार होने लगता है। वे भी उत्साह में भरकर लड़ने लग जाते हैं। अपने पक्ष के लोगों को सैनिक और सेनापतियों को घनघोर युद्ध करते देखकर दोनों पक्षों के

सैनिक अपनी विजय के लिये सतत प्रयत्न करते हैं और यथाशक्ति कुछ उठा नहीं रखते।

चित्त में उत्साह बोएंगे तो उत्साहवर्धन होगा और निराशा बोएंगे तो निराशा ही उपजेगी। जीवन में सफलता के लिए आशा और उत्साह बनाए रखना बहुत जरूरी है।

यह तो स्वाभाविक है कि जब आप अच्छा महसूस करते हैं तो मुस्कराते हैं। इससे अंदर की खुशी जाहिर होती है। यह बरकरार रहे, इसके लिए उत्साह का होना जरूरी है। अपना उद्धार स्वयं करें इसके लिए अपने आपको जानना व पहचानना है।

उत्साह हमारे ही अंदर है। उसे प्राप्त करने का तरीका है स्व को जानना, स्व का चिंतन-मनन करना। समस्याओं का चिंतन न करके उनके समाधान के तरीके अपनाने चाहिए। इंसान के जीवन में उत्साह है तो समस्याएं अपने आप हल हो जाती हैं। फिर वहां निराशा के लिए जगह नहीं रहती। कर्मप्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा। अर्थात समस्याएं हमने ही बनाई हैं और उसका फल भी हमें भुगतना है।

जीवन उमंग, उत्साह और उद्देश्य से परिभाषित होता है, उम्र से नहीं - हर व्यक्ति अपने जीवन में उत्तरोत्तर प्रगति चाहता है। उसमें न केवल जिजीविषा है, बल्कि गौरव के साथ जीने की तत्वगत मौलिक आकांक्षा मौजूद है। जब व्यक्ति के गौरवपूर्ण जीवन के आवेश को व्यापक समर्थन प्राप्त हो जाता है, तब उसके अंदर एक खास तरह का आध्यात्मिक उत्साह जागता है। जिन शक्तियों से मनुष्य जीवन का निर्माण होता है, उत्साह उनमें प्रमुख है। इससे रचनात्मक प्रवृत्तियां जागती हैं और सफलता का मार्ग खुलता जाता है।

उत्साह से भरे लोग कम साधनों और बिगड़ी हुई परिस्थितियों में भी आत्मोन्नति का रास्ता निकाल लेते हैं। उनके लिए संसार में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। इसलिए कार्य कैसा भी क्यों न हो, उसे पूरा करने के लिए उत्साह अवश्य चाहिए। आप अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हैं तो आपको अपने उद्देश्य के प्रति उत्साही बनना पड़ेगा और अपनी संपूर्ण सामर्थ्य से उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना होगा। अरुचि और अनुत्साह से किए गए कार्य में कभी सफलता नहीं मिलती। इसके विपरीत यदि रुचि और साहस के साथ काम करेंगे तो कठिन कामों को पूरा करने के लिए भी एक सहज स्थिति प्राप्त हो जाएगी।

उत्साह में बड़ी शक्ति है तथा निराशा सबसे बड़ी कमजोरी है। जीवन को हमें उत्साह से भरना है या निराशा से यह हमारे ऊपर पूरी तरह से निर्भर है। व्यक्ति को उत्साहित बनाए रखने में परिस्थितियों से ज्यादा महत्वपूर्ण होती है मन:स्थिति की भूमिका। कुछ लोग अभाव में भी उत्साह से भरे होते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग जीवन में सब कुछ होते हुए भी निराशा से घिरे रहते हैं।

मन में उत्साह हो तो उम्र कभी कार्य के मार्ग में बाधा नहीं बनती। बाधा बनती है तो केवल हमारी सोच की संकीर्णता। यदि कार्य करना है तो किसी भी उम्र में किया जा सकता है। उसके करने के तरीके बदले जा सकते हैं और पहले की तुलना में अधिक अच्छे ढंग से कुशलतापूर्वक कार्य किया जा सकता है। अपने अनुभवों से दूसरों की मदद करनेवाले लोग ही अपने कार्यों की खुशबू से देश व समाज को महकाते हैं और मिसाल बनते हैं।

जीवन एक साहसपूर्ण अभियान है। उसका वास्तविक आनंद संघर्षों में है। निराशा और कुछ नहीं, मृत्यु है। परमात्मा ने हमें इसलिए जन्म नहीं दिया है कि हम पग-पग पर विवशताओं के आंसू बहाते फिरें। उत्साहपूर्वक जीने के महामंत्र को

यदि अच्छी प्रकार सीख लें तो धन-साधनों का अभाव अथवा अन्य कुछ भी आपको परेशान करनेवाले नहीं। यदि उत्साह का बल आप पा गए तो इस जीवन में आपको सुख ही सुख मिलेगा और आप सदैव प्रसन्नता में आत्मविभोर बने रहेंगे।

उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुष के लिए जगत में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। जीवन में उत्साह की जरूरत रोजमर्रा की जिंदगी में आसानी से देखी जा सकती है। अचानक किसी कार्य को करने की इच्छा प्रबल होती है और आप मिनटों में पूरी तत्परता के साथ उसे कुशलता से पूरा करते हैं। वहीं कई बार सभी प्रकार के संसाधनों के होते हुए भी काम नहीं होता। यही है उत्साह की महत्ता।

आइजैक रिच अपने गांव (केपकोड़), अमेरिका से जब निकला तो जेब में मात्र चार डॉलर थे। वह बोस्टन पहुंचा और पूरे उत्साह से जीवन-संघर्ष में जुट गया। यही आइजैक रिच बोस्टन विद्यापीठ के संस्थापकों में से एक था। धन की कमी या कोई विकृति/विकलांगता उत्साह के आड़े नहीं आती।

पैराओलिम्पिक्स में भाग लेते प्रतिभागियों को कभी देखिए। शारीरिक विकलांग होने की छायामात्र भी उनके उत्साह को नहीं ढक पाती।

सफलता लगन से ही मिलती है ये तो कई बार सुना गया है पर लगन और एकाग्रता उत्साह से ही उत्पन्न होते हैं। हेनरी फोर्ड ने एक बार कहा था, जब मैं उत्साही मन से किसी महत्वपूर्ण विषय पर वार्तालाप करता हूं, तो मुझे बाहरी संसार का बिल्कुल ध्यान नहीं रहता और मैं अपने सामने विषय में मग्न हो जाता हूं।

** समय की दस्तक पहचान कर जो चलते है समय के साथ यश,*
कीर्ति और मान प्रतिष्ठा सभी समय से मिलते है।
समय सभी का आता है, समय दूर भी जाता है,
समय के साथ जो नहीं चलता, अन्त में वही पछताता है।
** सौ सुख पाकर भी सुखी न हो पर एक गम का दुख मनाता है तभी तो कैसी करामात*
है कुदरत की लाश तो तैर जाती है पानी में पर जिंदा आदमी डूब जाता है।
** हर यार, यार नहीं होता, हर प्यार वफादार नहीं होता,*
ये तो दिल मिलने की बात है वरना सात फेरों में भी प्यार नहीं होता।
** एक रोटी नहीं दे सका कोई, उस मासूम को लेकिन,*
वो तस्वीर लाखों में बिक गयी जिसमें रोटी के बिना बच्चा रो रहा था।
** सो जाता है हर कोई अपने कल के लिए पर यह कोई नहीं सोचता कि*
आज जिसका दिल दुखाया वो सोया होगा कि नहीं।

स्वाध्याय

मनुष्य न तो जानवरों की भांति जुगाली कर सकता है, न बगैर उपाधि लिए पक्षियों की तरह तकनीकी घोसला बना सकता है, न चौपायों की तरह पैदा होते ही अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। फिर भी मनुष्य इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ है, विधाता की अनमोल कृति है। क्योंकि मनुष्य के पास ही ऐसे गुण हैं जो उसकी सारी कमियों को दूर करते हैं और ये गुण हैं उसकी बुद्धि, उसका मन। ये दोनों मन और बुद्धि ही मनुष्य को अन्य सारे जीवों से अलग किए हुए हैं। नर से नारायण या जीव से शिव बनने की समझ (बुद्धि) सिर्फ मनुष्य के पास ही है। मनुष्य जानता है कि उसका यह जीवन पानी के बुलबुले के समान है, क्षणभंगुर है। उसकी देह नश्वर है, फिर भी वह इन्हें सजाने-संवारने और भौतिक सुख-सुविधा के चक्कर में ऐसा उलझता है कि बुद्धिमान होते हुए भी वह बेवकूफों सी हरकतें करने लगता है। अपने मन और बुद्धि को टटोलता ही नहीं। दूसरों को सुखी देखकर दु:खी होने वाला मनुष्य कभी स्वयं को देखता ही नही। स्वयं को देखने का सबसे अच्छा साधन है स्वाध्याय। अपने जीवन की किताब खोलकर श्रुति और स्मृति के सहारे विचारों को जीवनस्पर्शी बनाने के लिए आत्मनिरीक्षण कर मनन-चिंतन करना और तृप्ति का अनुभव करना।

जब तक स्वाध्याय को आत्मसात् न किया जाय तब तक मनुष्यता को मनुष्य होने की गरिमा प्रदान करने के लिये मूलभूत मानवीय व्यवस्था को व्यवहार में नहीं लाया जा सकता।

आज भी यह जगत सपनों के पीछे भाग रहा है। पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों ने इस जगत को झूठे सपनों मे डुबो दिया है ये दोनो एक दूसरे की प्रतिक्रियायें है अत: दोनो सिर्फ जगत को संघर्षों व टकराव में झोकते है। भारत की अर्थव्यवस्था, समाज व्यवस्था और शासन व्यवस्था तीनों के मूल में स्वाध्याय ही होना चाहिये। यही स्वाभाविक व्यवस्था जानी जाती है। शेष विश्व इसे समझने में जानने में सदियां लगा देगा, लेकिन भारत के लिये यह प्रायोगिक और अनिवार्य प्रणाली है। पूंजीवाद और साम्यवाद दोनो मनुष्य को उपनिवेश, बाजार और परतन्त्रता के षडयन्त्रों के जाल में उलझा देते है। स्वाध्याय उन्हे मुक्त करता है। सहयोग-बन्धुत्व-आत्मनिर्भरता और इन तीनों के लिये स्वसहायता के द्वारा विकास के लिये सामर्थ्य पैदा करने की शक्ति मनुष्य को प्रदान करता है। जीवन जगत की यही सच्ची राह है, न कि पूंजीवाद-साम्यवाद और वैश्वीकरण। स्वाध्याय ही इन तीनों का मानवीय-विकल्प है।

जगत व जीवन के संचालन हेतु शक्ति की जगह प्रेम का नियम है इस जगत को प्रेम ही संचालित करता है- शक्ति नही। प्रेम शक्ति नही है। उसमे जो समर्पण से ऊर्जा पैदा होती है उससे शक्ति का आभास होता है इसी से भ्रम में लोग प्रेम को शक्ति कहते है। प्रेम शक्ति नहीं समर्पण है। वहाँ यदि शक्ति भी हो तो शक्ति का भी समर्पण है। स्वाध्याय जिस भक्ति को शक्ति बनाता है वह प्रेम के नियम से ही मानवता का संचालन है।

जगत में परमात्मा के सिवा कुछ भी नहीं है। दौडते रहो, भागते रहो, इन्तजार में व्यस्त रहो, कहाँ पाओगे परमात्मा को? परमात्मा तो वहां है जहां तुम नहीं हो। किसी ने उसे जल मे पाया, किसी ने अग्नि में देखा, किसी को वह हृदय में मिला तो किसी ने उसे पाषाण में पाया, तो वह सर्वत्र है। देखने के दिव्य चक्षु चाहिये। स्वाध्याय इसी दर्शन का प्रवेशद्वार है। बिना

स्वाध्याय के वे चक्षु, आँखें आपको प्राप्त नहीं हो सकती।

स्वाध्याय का अर्थ स्व का अध्ययन या शाब्दिक ही नही है। स्वाध्याय का अर्थ सिर्फ आर्थिक आत्म निर्भरता नहीं है। स्वाध्याय का अर्थ धार्मिक भी नहीं है। स्वाध्याय का अर्थ तो तब है जब आप अपना साक्षात्कार कर सके। जब हम यह जान ले कि हमें परमात्मा या भगवता को जगत जीवन की गरिमा को पाने के लिये बाहर भागना दौडना अनिवार्य नहीं है, जब हमारे बाहर भीतर एक परमात्मा ही सर्वत्र है। स्वाध्याय आपको अन्त:करण की यात्रा के लिये आमंत्रण करता है। स्वाध्याय से पूर्व जो संसार आपके अन्दर है चारों और आपके भीतर है वह संसार आपके भ्रमों का संसार है। आपकी जो महत्वकांक्षा, प्रतिस्पर्धा, टकराव, हिंसा, युद्ध, दंगे, घृणा, भेद भाव और परस्पर स्वार्थो के बीच संघर्षों को देखते है, आप उन्हे ही सच मान कर आप उन्ही में व्यस्त हो जाते है। आप इस संसार को दु:ख बना लेते है, आप इस संसार को नर्क बना रहे है। इस संसार को बांट रहे है। पाप मूल कह कर संज्ञा दे रहे है। निरर्थक बता रहे है। इससे आप भ्रमों का संसार बनाते है। उसी में कीडे मकोडे की तरह जीते है और उसी में मर खप जाते है, मरने से पूर्व अपनी संन्तानों के लिये भी नर्क पैदा कर देते है। यह संसार बाजार है, नर्क है, दु:ख है, पाप है व्यर्थता से भरा है। स्वाध्याय आपको आपके अन्दर की ओर मोडता है जो इस भ्रमों के संसार से आपको मुक्त कर सकता है। दर्शन या देखना मनुष्य के लिये सबसे बडा वरदान है प्रकृति या परमात्मा का। देख कर ही सत्य-असत्य का ज्ञान होता है। यह ज्ञान ही अन्दर के अंत:चक्षुओं को, भीतर की आँखों को खोलता है। बाहर का ज्ञान तब भीतर उतरता है तब मनुष्य पहली बार जग में आता है, होश में आता है तब उसे लगता है कि वह किन भ्रमों या सपनों में जी रहा है। तब संसार का सार उसे मिलता है। वह फिर संसार को देखता है एक अलग दृष्टिकोण से और तब यह संसार उसके लिये उत्सव बन जाता है, पर्व बन जाता है। उसके पश्चात ही वह सही अर्थों में जीना शुरू करता है उससे पूर्व उसका जीवन तो सपनों का जीवन होता है। अर्थात उसका जीवन तो सपने टूटने तक का ही है, जागने तक का ही है उसके बाद निरीक्षण करो। निरीक्षण ही उद्‌घाटन है। स्व को जानना पढना ही स्वाध्याय है। स्व का अध्ययन यह भटकन किस लिये ? यह संसार में अस्तव्यस्तता क्यो ? यह मनुष्य में दु:ख व निराशा किस लिये ? चरित्र की शुद्धि और अपने दोषों को दूर करने के लिये स्वाध्याय आवश्यक है।

प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। उसे प्रतिदिन शास्त्रों का कम से कम एक श्लोक, आधा श्लोक या थोडाही अंश अवश्य ही पढ़ना चाहिये। इससे व्यक्ति का कल्याण ही होता है। ऐसा न कर पाने की स्थिति में दान करके ही अपने दिन को सफल बनाये। दान से व्यक्ति के पाप कर्म कम होते है। दान की अवस्था न होनेपर व्यक्ति को परोपकार करना चाहिये इससे व्यक्ति को अच्छे फल की प्राप्ति होती है। मानव जीवन अमूल्य है, जीवन का प्रत्येक दिन महत्वपूर्ण होता है। अत: व्यक्ति को अपने सत्कर्मों से उन्हे उपयोगी बनाना चाहिये।

ज्ञान के अनेक क्षेत्र हैं। भौतिक पदार्थों का ज्ञान, अंतरिक्ष से संबंधित ज्ञान, शरीर की संरचना और जटिलताओं का ज्ञान, और यहां तक कि रसोई कला यानी पाक कला का ज्ञान। यह ज्ञान कहां से आता है ? इसके दो तरीके हैं। पहला, किसी जानकार या विद्वान के अनुभव को सुनकर उस विषय के बारे में जानना और दूसरा, किताबें और दूसरे महान ग्रंथ

पढ़कर कोई ज्ञान प्राप्त करना। निश्चय ही जानकार या गुरु के पास जाकर विद्या या ज्ञान हासिल करना ज्यादा आसान है। वह महत्वपूर्ण भी है, पर उससे ज्यादा महत्वपूर्ण है कुछ जानने के लिए खुद पढ़ना।

पढ़ना यानी स्वाध्याय करना। दाल-रोटी बनाने की कला पढ़कर भी जानी जाती है। यह स्वाध्याय कैसे हमारे जीवन में अंतर लाता है, इसकी एक मिसाल है। अगर कोई रसोइया पढ़ा-लिखा और अपने पेशे में कुशल है, तो बड़े होटलों में काम करके लाखों रुपये कमा सकता है। इसके बरक्स एक अनपढ़ और अशिक्षित रसोइया सड़क के किनारे किसी ढाबे में काम करके मुश्किल से ही अपनी जीविका कमा पाता है। हर कार्य में ज्ञान और जानकारी का महत्व बहुत ज्यादा है। फिर चाहे, वह कोई भी विषय हो। ऐसे विषय भौतिक हों या आध्यात्मिक, स्वाध्याय से उनमें कई अच्छी बातों का समावेश हो जाता है।

ज्ञानी जनों ने बताया है कि स्वाध्याय आत्मशुद्धि का बहुत महत्वपूर्ण साधन है। एकांत सुख तक पहुँचने की सीढ़ी है। स्वाध्याय और ध्यान, दो अलग-अलग चीजें हैं, पर दोनों का समन्वय हमारे जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हो सकता है। हम स्वाध्याय के जरिए सबसे पहले सच्चाई को जानते हैं। एक व्यक्ति अज्ञानी है। जरा सा भी स्वाध्याय नहीं करता, तो फिर वह कैसे जानेगा कि सच क्या है, झूठ क्या। लौकिक शिक्षा का मकसद हमारी जानकारी बढ़ाना है। अज्ञान दूर करना है।

स्वाध्याय को हम एक जागृत आंख कह सकते हैं। स्वाध्याय सच्चाई को देखने का प्रमुख साधन भी है। बहुत लोग अपने बारे में नहीं जानते कि मैं कौन हूँ ? अपना अस्तित्व, अपना व्यक्तित्व, अपनी मन:स्थिति- इन सबका ज्ञान करने के लिए भी शास्त्रों के अध्ययन की जरूरत है। एक कविता का भाव है- आंख सबको देखती है, पर खुद को कभी नहीं देखती।

आंख खुद को कब देखेगी ? इसके उत्तर में कहा गया है कि अपना रूप देखना है, तो प्रतिबिंब दिखाने वाले कांच यानी आइने के सामने जाकर खड़ा होना होगा। उसके सामने आंख अपने आपको भी देख लेगी। दूसरों को देखने वाले के लिए भी जरूरी है कि खुद को देखने के लिए वह दूसरों का सहारा ले। इसी तरह अपने आपको जानने के लिए भी दूसरों का सहारा चाहिए और वह सहारा है- शास्त्र। शास्त्र का सहारा कैसे लिया जाए ? इसका उपाय है स्वाध्याय। स्वाध्याय से आदमी यह जान लेता है कि वह खुद असल में क्या है। कहा गया है कि स्वाध्याय के समान तपस्या न तो हुई, न है और न होगी। हमारे जीवन में हर दिन छोटी-बड़ी समस्याएं आती रहती हैं। पर अगर हमारा ज्ञान स्पष्ट हो, हमें यह पता हो कि किसी समस्या से निपटने के लिए शास्त्रों में क्या रास्ता सुझाया गया है, समस्याएं ज्यादा नहीं आती। हों भी, तो उनसे कैसे निपटा जाए- यह मालूम रहता है। पर जानकारी के अभाव में आदमी उलझ जाता है। उसे उलझाने वाले ढेरों सवाल सामने खड़े हो जाते हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि व्यक्ति का ज्ञान बहुत सीमित है।

उपनिषदों में स्वाध्याय के लिए शिक्षा के दो प्रकार बताए गए हैं- अपरा और परा। अपरा लौकिक विद्या है, जो विद्यालयों या गुरुकुलों में पढ़ाई जाती है। जबकि परा अध्यात्म विद्या है। जो आत्मविद्या है, वही परा विद्या है। परा और अपरा- इन दोनों विद्याओं के लिए स्वाध्याय करना पड़ता है। स्वाध्याय से हम किसी कार्य विशेष में दक्षता हासिल कर

लेते हैं। यूं तो कहा जाता है कि कुछ लोगों का कौशल भगवान की देन होता है, यानी कोई क्षमता उन्हें नैसर्गिक रूप से हासिल है। पर नैसर्गिक दक्षता रखने वाले लोग बहुत कम होते हैं। दुनिया में अर्जित की गई दक्षता वाले लोग ज्यादा हैं। विशिष्टता हासिल करनी पड़ती है। यह विशिष्टता अध्ययन यानी स्वाध्याय से ही हासिल की जा सकती है।

पठन- चिंतन और मनन रहित वाचन ऐसा ही है, जैसा कि पाचन क्रिया से रहित खाया हुआ भोजन। पढ़ा जानेवाला विषय, आहार के समान है। उस पर चिंतन-मनन करना पाचन क्रिया कही जा सकती है। स्वाध्याय को इसीलिए तप की श्रेणी में रखा गया है। सर्वोत्तम फल देनेवाला तप, स्वाध्याय ही है।

स्वाध्याय- स्व + अध्ययन = स्वाध्याय। स्वयं को ही सही रूप में जानने का प्रयास स्वाध्याय है। वर्तमान में हम जो भी चिंतन करते हैं, उसमें स्वयं का कितना और पर का कितना। इस पर निश्चित तौर पर विचार करना चाहिए। यदि पर का ज्यादा हो रहा है तो स्व (आत्मा) के लिए प्रयास करें।

स्वाध्याय अर्थात खुदको जानना, अपने बारे में सोचना। दुनिया तो बहुत नाप ली, अब अपने आपको जानो। आत्मावलोकन आत्म कल्याण की ओर प्रेरित करता है। मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है आत्मज्ञान। अपने ऊपर विजय पाना संपूर्ण विश्व पर विजय पाने से अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वाध्याय अर्थात नामस्करण, वेदादि ग्रन्थों का अध्ययन, आत्मा को पहचानने जाने का प्रयत्न। जब मौन सफल होगा तभी स्वाध्याय होगा।

इन्द्रिय-विषयों तथा दोषों का निग्रह कर ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा जो आत्मा को भावित करता है, उसी से तपधर्म होता है। प्यास लगने पर जो प्यास बुझा दे, वह पानी है। जिज्ञासु को संशय होने पर जो शंका मिटा दे, वह ज्ञानी है। दान देकर जो मान-सम्मान की भूख ना रखे, वह दानी है। विकार वासित मन व इन्द्रियों का निग्रह करें, वह मुनि है। स्वाध्याय बिना घर सूना, मन सूना सद्ज्ञान बिना। घर-घर धर्मवाणी करो, स्वाध्याय करो-स्वाध्याय करो। स्वाध्याय आत्म-जागृति के लिए रामबाण औषधि है।

स्वाध्याय का मतलब स्वयं को पढ़ो, स्वयं का अध्ययन करो। जीवन को पढ़ना ही स्वाध्याय है। इसका मतलब यही है अपने जीवन को अपने आप पढ़ने का प्रयास करो।

स्वाध्याय का अर्थ पुस्तकों का अध्ययन नहीं है। उसका सच्चा अर्थ है, अपने आपको पढ़ना। सच्चा ज्ञान प्रकृति के रहस्यों को खोलने में नहीं है, अपितु अपने रहस्यों के विश्लेषण में, उनकी जांच करने में हैं।

एक ओर अंग और उपांगों सहित विस्तारपूर्वक चारो वेदों का स्वाध्याय हो और दूसरी ओर केवल सत्य भाषण हो तो वह निश्चय ही उससे बढ़कर है।

** एक किस्मत ही करवाती है कठपुतली का खेल वरना*
जिन्दगी के रंगमंच पर कोई भी कलाकार कमजोर नहीं होता।

** आलसी सुखी नहीं हो सकता, निद्रालु ज्ञानी नहीं हो सकता,*
ममत्व रखनेवाला वैराग्यवान नहीं हो सकता और हिंसक दयालु नहीं हो सकता।

पुनर्जन्म

वासना ही पुनर्जन्म का कारण होती है। वासना जब तक पूर्णत: खत्म नहीं होती, तब तक चौरासी लाख योनि में भटकते रहोगे।

जन्म और मृत्यु से जुड़ी मानव की यह जिज्ञासा स्वाभाविक ही है। लोग जानना चाहते हैं कि मृत्यु के उपरांत पंचभौतिक स्थूल शरीर के साथ क्या जीवनभर क्रियाशील चेतन जीवात्मा का भी अंत हो जाता है? यदि मृत्यु के पश्चात भी जीवात्मा का अस्तित्व है, तो क्या जीवन में उसके द्वारा किए गए कार्यों की समीक्षा होती है? यह समीक्षा तत्काल होती है अथवा मृत्यु के उपरांत कतिपय दिनों-वर्षों-युगों पश्चात किसी नियत तिथि को होती है? कर्मों का प्रतिफल अनंतकाल तक सुखमय या दु:खमय जीवन के रूप में मिलता है अथवा कर्मानुसार मानव, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जंगम-स्थावर इत्यादि किसी एक योनि से दूसरी योनि में बार-बार जन्म ग्रहण करता और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है? यह प्रतिफल इसी पृथ्वी पर आकर भोगना पड़ता है या दूसरे ग्रहों, दृश्य-अदृश्य लोकों में मिलता है? क्या जीवात्मा कर्मानुसार कभी पुरुष तो कभी स्त्री या नपुंसक देह धारण कर सकता है? जन्म-मृत्यु का यह क्रम चलता ही रहेगा या इसका कभी अंत भी होगा? अंत स्वत: होगा या किसी नियत विधि से? क्या मनुष्य अपने भावी पुनर्जन्म को नियंत्रित कर सकता है? इत्यादि। विश्व के दर्शनशास्त्रियों ने इस संदर्भ में तीन संभावनाएं व्यक्त की हैं। देह से पृथक आत्मा की अमरता और कर्मवाद में आस्था न रखनेवाले मानते हैं कि देह के साथ ही सब कुछ नष्ट हो जाता है- **भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कृत:**? भस्म हुए शरीर का पुनरागमन कहां होता है? किंतु जिन लोगों ने जीवनपर्यंत सदाचार का पालन किया, वह बिना परिणाम के सर्वथा लुप्त हो जाएगा? अत: बहुत कम लोग संपूर्ण नाश की बात करते हैं। अनंतकाल तक सुख-दु:ख भोगने का विचार भी संगत नहीं है क्योंकि जीवन तो सीमित है और उतनी ही अवधि में किए गए सत्कर्मों या दुष्कर्मों के लिए स्वर्ग या नरक में असीमित अनंतकाल तक निवास न्यायसंगत नहीं लगता। जो जीव गर्भमें अथवा शैशवावस्था में ही मर जाते हैं उन्हें किन कर्मों के आधार पर स्वर्ग या नरक दिया जाएगा? जन्म से ही कोई विकलांग, मंदबुद्धि, धनी-निर्धन, सदाचारी-दुराचारी कुल में क्यों आता है? ईश्वर पक्षपात तो करता नहीं। कुछेक कहते हैं कि वह परीक्षा लेने के लिए किसी को उक्त विषम परिस्थितियों से गुजार कर देखता है कि ईश्वर के प्रति वे कितने निष्ठावान हैं, किंतु परीक्षा, पाठ्यक्रम निर्धारित करने के उपरांत सार्वभौम नियमों के अंतर्गत ली जाती है। अभ्यास का अवसर ही नहीं मिला तो परीक्षा कैसी? अभी वह होश में ही नहीं आया तो परीक्षा कैसी?

अधिकांश भारतीय दर्शन सांख्ययोग, न्याय, वैशेषिक मीमांसा, वेदांत, जैन और बौद्ध आदि कर्म एवं कर्मानुसार पुनर्जन्म के रूप में तीसरे विकल्प को स्वीकार करते हैं, जिसके अनुसार इस जीवन में किए गए कर्म एवं आचरण मनुष्य के भावी जीवन का निर्माण करते हैं और वर्तमान जीवन मनुष्य द्वारा अतीत जीवन या जीवनों में किए गए आचरण का प्रतिफल है।

सृष्टि के समस्त जीवों का लेखा-जोखा परमात्मा के पास है। युगों पश्चात भी वह उसे ज्यों का त्यों प्रसारित करता है। यह जीव जिस तरह समझ सकता है, भगवान उसे उसी भाषा, उसी सम्बोधन और उसी वातावरण के विवरण देकर विधिवत समझाते है। यदि वे शिष्य बनाते तो सहस्त्रों विरक्त शिष्य हो जाते। घर में खन-खट हुई, कोई विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता या पारिवारिक ग्लानिवश कोई अनुसुइया के शान्त एकान्त नैसर्गिक सुषमा से अभिभूत होता। गुरु बताते है कि घर-परिवार, समाज में तो ऐसा होता ही रहता है, परिस्थितियां बदलती ही रहती हैं। समझा-बुझाकर उसे घर वापस भेज देते थे। फिर भी कोई नहीं जाता तो डांट-फटकार कर भगा देते, क्योंकि ज्योंही कोई गुरु के पास आता, उसका भूत, वर्तमान और भविष्य उन्हें

ज्ञात होता है। उन्हें विदित होता है कि इसमें साधुता के लक्षण हैं भी या नहीं। जिनके लिए भगवान से निर्देश मिला कि यह पुण्यात्मा है, पिछले कई जन्मों का पथिक है, इसका मार्गदर्शन करो- केवल उन्हीं को शिष्यरूप में स्वीकार किया।

महापुरुषों की दृष्टि में पुनर्जन्म बौद्धिक विषय नहीं है। उनके लिये यह अनुभव में प्रत्यक्ष दर्शन है। साधारण लोग तो मोहनिशा में अचेत हैं। उनके लिये न जन्म है और न पुनर्जन्म, कुछ है ही नहीं। वे अपनी बुद्धि के अनुसार उल्टा-सीधा कुछ-न-कुछ कहते ही रहते हैं। पुनर्जन्म में तुम फिर अपनी इच्छाओं की मांग करोगे। इसलिए आत्मज्ञान उत्पन्न करो।

अपनी पूर्वजन्म की रखी धरोहर को लेने के लिए। अपने पूर्वजन्म का ऋण चुकाने के लिए। पूर्वजन्म का वैर लेने के लिए। पूर्वजन्म में प्राप्त अपकार के बदले अपकार करने के लिए। पूर्वजन्म में प्राप्त सेवा-सुख के बदले में सेवा-सुख देने के लिए। पूर्वजन्म में प्राप्त उपकार के बदलेमें उपकार करने के लिए पुत्र बनकर आते है, वे कर्मानुसार अपना काम पूरा करके मर जाते हैं, या कर्मानुसार दीर्घकाल तक जीवित रहकर बदला लेते-देते है। केवल पुत्र ही नहीं- पत्नी, पति, भाई, बहिन, नौकर तथा गौ आदि पशु तक कर्म ऋण लेने या चुकाने के लिए पूर्वजन्मानुसार संबंध जीकर सीमित या दीर्घकाल के लिए प्राप्त होते हैं।

ये जीव परलोक में जाता है वहाँ जाकर सूक्ष्म शरीरसे ही कर्म करता है और सूक्ष्म शरीरसे ही फल भोगता है उसीसे उसको पुनर्जन्म की प्राप्ति होती है। पुनर्जन्म न तो जड़, मिट्टी, पानी, आग, वायुका होता है और न ही चेतन-आत्माका होता है। अज्ञानसे इसमें एक गाँठ पड़ गयी है। जीवको सूक्ष्म शरीरमें जो अहन्ता-ममता हो गयी है, उसीका पुनर्जन्म होता है। ज्ञान और कर्मेन्द्रियोंकी चेष्टासे पता चलता है कि चित्तमें क्या है तथा-वृत्तिसे पूर्वजन्मके कर्मका पता लगता है। मनुष्य जो चीज वर्तमान शरीरसे कभी भोगता नहीं, देखता नहीं, सुनता नहीं तो भी वह स्वप्नादिमें सामने दिखने लगती है। इसलिये कुछ ऐसे संस्कार एवं वासनाएँ जीवके भीतर छिपी हुई हैं, जो स्वप्नादिके द्वारा ही मालूम पड़ती है। जो निर्वासन पुरुष होता है उसके जीवन में कोई गति नहीं होती वह कहीं आता जाता नहीं। मनुष्यके मनकी स्थिति देखकर पता चलता है कि इसका पुनर्जन्म होगा या नहीं। यह नरक में जायेगा या स्वर्गमें। नरकसे आया या स्वर्गसे आया। चिड़चिड़ा आदमी हो तो समझ लेना कि नरक से आया है और प्रसन्न आदमी हो तो समझ लेना कि स्वर्गसे आया है। जीवनभर वह प्रसन्न रहे तो समझना कि वह मुक्त हो जायेगा। कभी-कभी जीव को पहले कभी देखी-सुनी नहीं गयीं ऐसी भी बात सामने आती है कि यह उसके पुनर्जन्म की बात समझनी चाहिए। जब मनुष्य सूक्ष्म शरीरकी विद्याको समझ जाता है तब उसे मालूम पड़ता है नरक क्या है, स्वर्ग, पुनर्जन्म क्या है।

किसी को देखते ही चित्त उसकी ओर स्वत: ही आकर्षित होने लगता है, हृदय उसे परम आत्मीयता के साथ स्वीकार कर लेता है। कोई वर्षों साथ रहते हैं, उनके प्रति तनिक भी आकर्षण नहीं होता। उनके प्रति मन सदा उदासीन ही बना रहता है। कुछ लोग अकारण ही बिना परिचय सम्बन्ध से ही द्वेष करने लगते हैं। इसका क्या कारण है? कोई तो क्षण भर में ही घुल-मिल जाते हैं, कोई जीवन भर साथ रहने पर भी मन से दूर बने रहते हैं। ये सब पूर्व जन्मों के संस्कारों का ही परिचय है। यह अटल सिद्धान्त है कि संसार में हमारा उन्हीं व्यक्तियों से सम्बन्ध होगा, जिनसे पूर्व जन्म में कुछ सम्बन्ध रहा हो, या आगामी जन्मों में जिनसे सम्बन्ध होने वाला हो। मनुष्य जो भी कुछ पाप-पुण्य की बात सोचें, तो आगामी जन्मों में अवश्य पूरी होगी, इसी भाँति पाप की बात भी। मन तो हर समय कुछ-न-कुछ संस्कार हृदय पर बनते ही रहेंगे। मनुष्य न चाहे तब भी उसके अच्छे-बुरे विचारों का फल होगा ही। जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, वह हमें अत्यधिक प्यार करता है, तो समझना चाहिये कि पूर्व जन्मों में हमारा इससे कोई घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा।

जब तक हम पुनर्जन्म के सिद्धांत को न मानेंगे तब तक विषमता की गुत्थियाँ सुलझती नहीं। हम देखते हैं एक बालक जन्म से ही सुन्दर है, दूसरा कुरूप है। एक जन्म से ही हिंसक और क्रूर है, दूसरा बालकाल्य से ही भगवद्भक्त, सुशील और धर्मात्मा है। एक जन्म से ही रोगी है दूसरा कुपथ्य करते रहने पर भी सदा स्वस्थ बना रहता है। एक जन्म से ही मोटा है, दूसरा घी बूरा खाते रहने पर भी दुबला ही बना रहता है। एक जन्म से ही बुद्धिमान और मेधावी है, दूसरा अनेक प्रयत्न करने पर भी वज्रमूर्ख ही बना रहता है। एक आदमी कुछ भी प्रयत्न नहीं करता मिट्टी छूता है सुवर्ण हो जाता है, दूसरा रात्रि दिन परिश्रम करता है, उसका पेट नहीं भरता। एक उच्चकुल में उत्पन्न है, फिर भी उसे कोई पूछता नहीं। दूसरा हेय कुल में उत्पन्न हुआ फिर भी राष्ट्रपति के पद पर प्रतिष्ठित है। इन सब बातों की संगति पूर्वजन्म के संस्कारों और प्रारब्ध कर्मों से ही बैठती है।

दो तपस्वी साथ-साथ तपस्या करते हैं, एक को हजारों वर्ष तपस्या करने पर भी भगवान के दर्शन नहीं होते, दूसरे को कुछ ही दिनों में हो जाते हैं। जड़ भरत राज्य पाट छोड़कर वन में चले गये। घोर तपस्या में लगे रहे। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली थी, जिह्वा से भगवन्नामों के अतिरिक्त दूसरा शब्द कभी स्वप्न में भी उच्चारण न करूँगा। निरन्तर तैल धारावत् भगवन्नामों का ही कीर्तन करते थे, किन्तु अन्त में उन्हें मृग बनना पड़ा। इसके विपरीत अजामिल ब्राह्मण होकर जीव हिंसा करता था, अखाद्य वस्तु खाता था, अपेय वस्तु पीता था, लोगों को लूटता था, सबकी हत्या करता था, चोरी जारी सभी पापकरता था। वेश्या का पति था, वृषली के साथ शैया भोजन आदि का सहवासी था, किन्तु मरते समय पुत्र का नाम नारायण कहकर परमपद का अधिकारी हो गया। इन सबसे यही निष्कर्ष निकलता है कि पूर्वजन्मों के शुभाशुभ उदित होकर हमारे कार्यों में सहायता और विघ्न करते हैं।

यह जीव पुर्वजन्मों के संस्कारों के कारण अवश होकर काम करने लगता है। ये संस्कार ही प्राणियों से कर्म कराते हैं और उन्हें चौरासी के चक्कर में घुमाते हैं। जो मनुष्य जैसी वासना लेकर मरता है, दूसरे जन्म में वह वैसा ही शरीर धारण करता है। शाप और अनुग्रह भी प्रारब्धवश ही प्राप्त होते हैं। कोई पूर्वजन्म का खोटा संस्कार होता है तो समर्थ पुरुष शाप दे देते हैं, कोई अच्छा संस्कार उदय हुआ तो सन्त पुरुष के हृदय में अनुग्रह करने की प्रेरणा हो जाती है। जीव वासना की पूर्ति के लिये ही पुन: पुन: जन्म धारण करता है और सुख-दु:ख भोगता है।

कौन किसकी निन्दा कर सकता है और कौन प्रशंसा। यह प्राणी सभी क्रियायें स्वकर्मसूत्र में बँधकर करता है। पूर्वजन्मों के संस्कार ही कहने करने को विवश करते हैं। जिससे पूर्वजन्म में हमने प्यार किया होगा, वह इस जन्म में हमसे स्वत: ही प्यार करेगा। जिससे पूर्वजन्म में मनोमालिन्य रहा होगा, वह बिना परिचय के देखते ही द्वेष करने लगेगा। जिसका हमने पूर्वजन्म में उपकार किया होगा वह इस जन्म में हमारा भी उपकार करेगा। जिसका जाने में अनजाने में हमसे कोई अपकार हो गया होगा वह इस जन्म में उसका बदला आकर लेगा ही। जीव चाहे जिस योनि में जाय, पूर्वकृत पाप-पुण्य उसके साथ ही सटे रहेंगे। बिना पुनर्जन्म को माने संसार की जन्म-जात विषमताओं का किसी प्रकार समाधान हो ही नहीं सकता। पूर्वजन्म में जिसे हमने दुख दिया होगा वही आकर-अकारण ही हमें पीड़ा पहुँचावेगा। संसार में कोई कार्य कारण के बिना नहीं होता, अकस्मात तो कुछ होता ही नहीं। संयोग भी दैवेच्छा से पूर्व जन्मकृत कर्मों के अनुसार ही होता है। पूर्वजन्म में हमारा जो कोई कुछ रहा होगा, वही इस जन्म में हमें इस रूप में सुख-दु:ख देने आया हुआ है।

पूर्वजन्मका बदला लेनेके लिये भी ऐसी सन्तान पैदा होती है। जो पुत्र कुसंगसे बिगड़ता है, वह सत्संगसे सुधर सकता है। परंतु जो पूर्वजन्मका बदला लेनेके लिये आता है, वह तो दु:ख ही देनेवाला होता है।

धैर्य-धीरज, सहनशीलता-सहिष्णुता व आत्मसंयम-नियम, संवेदना-संवेदनशीलता, उत्तेजना, उग्रता

तेज और सुरक्षित जीवन यात्रा के लिए जरूरी है संयम का ब्रेक- हर वाहन में ब्रेक क्यों होते हैं? आमतौर पर सभी का एक ही उत्तर होगा कि ब्रेक वाहन को रोकने, गति कम कर किसी भी आकस्मिक दुर्घटना से बचने के लिए होते हैं। परंतु यह उत्तर पूर्ण नहीं है। ब्रेक की उपयोगिता और अनिवार्यता को परिभाषित करनेवाला सबसे सटीक उत्तर है- ब्रेक होते हैं हमें वाहन को तेज गति से चलाने की अनुमति देने के लिए।

उपभोक्तावादी संस्कृति में गति ही जीवन का पर्याय बन गई है। समय बहुमूल्य है। जो बीत गया वह वापस नहीं आता। इसलिए हर कोई कम समय में अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहता है। सभी निर्दिष्ट तक पहुंचने, लक्ष्य को पाने के लिए लंबी-लंबी दूरियां भी कम समय में तीव्र गति से पूरा करना चाहते हैं। यह सब संभव हो पाता है इन्हीं ब्रेक के कारण। इन्हीं के भरोसे हम दुर्घटनाओं से खुद को और दूसरों को बचाते हुए तेज गति से दौड़ने का साहस जुटाते हैं।

हमारी जीवन-यात्रा में भी ब्रेक अनिवार्य है। हमारे अपने जो हमें प्यार करते हैं, हमारी गतिविधि, कार्य-व्यवहार, जीवन-पद्धति को लेकर हमें रोकते-टोकते हैं, नाना प्रकार के सवाल करते हैं, यह सब हमारी दिशा, हमारी गति और फैसले को नियंत्रित करनेवाले हमारी जीवन-यात्रा वाहन के ब्रेक ही तो हैं। इनके कारण ही हम न जाने कितनी बार अपनी डगर से न भटक कर संभावित अप्रिय प्रसंगों, दुर्घटनाओं से बच जाते हैं। इतना ही नहीं, हम आज जहां प्रतिष्ठित हैं, उनकी वजह से ही हैं।

हम बिना ब्रेक के किसी भी वाहन में छोटी से छोटी सी यात्रा भी करना पसंद नहीं करते। तब न जाने क्यों बाजारवाद से प्रभावित भौतिकवाद के प्रति प्रबल आकर्षण में हम सब सांसारिक ऐश्वर्य के अंतिम छोर की ओर अपनी जीवन-यात्रा के वाहन को बिना संयम और बिना ब्रेक के अंधाधुंध दौड़ा रहे हैं। यहां तक कि राह में आनेवाले उन स्पीड ब्रेकर्स की भी अनदेखी कर जाते हैं जो हमें यह संकेत देते हैं कि जैसे संभावित दुर्घटना क्षेत्र में बना गति रोधक कितना भी बड़ा हो, उसे धीमी गति से पार करने से न झटका लगेगा न दुर्घटना होगी। उसी तरह जीवन में समस्या कितनी भी बड़ी हो, शांतचित्त से विचार करने पर बिना झटका खाए हम उससे खुद को और दूसरों को भी सुरक्षित रख सकते हैं।

यही कारण है कि भारतीय संस्कृति ने भौतिक संपन्नता के लिए मृग मरीचिका की तरह माया-मोह व तृष्णा पर अंकुश लगाकर जीवन में दो इन बिल्ट ब्रेक्स यानी कि संयम और धैर्य द्वारा आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होने का संदेश दिया है। इच्छाओं की पूर्ति ही जीवन के असंतोष का एक मात्र कारण है। यात्रा चाहे सड़क मार्ग की हो या असीमित कामनाओं की, गंतव्य तक सकुशल और शीघ्र पहुंचने के लिए दोनों में इंद्रिय अंकुश धैर्य तथा संयम का ब्रेक और गति अवरोधक होना नितांत आवश्यक है।

धैर्य-धीरज- धैर्य का अर्थ इंतजार करने की क्षमता से है, काबिलियत से नहीं। धैर्य का अर्थ है कि हम किसी भी परिस्थिति में विचलित न हों, बल्कि हालातों को सकारात्मक रूख देने के लिए कर्मरत रहें और विश्वास रखें कि अंतत: सब ठीक हो जाएगा।

धैर्य परीक्षण के सौपान- प्रलोभन, पराजय, परीक्षा व देह पीड़ा- अगर इन चार परिस्थितियों में जीव का धैर्य बना रहता है तो वह धैर्यवान है। समुद्र के समान धीर चित्तवाले मनस्वी धन्य हैं जो असाधारण कार्य करके भी उसका उल्लेख नहीं करते। विकारों की सामग्रियाँ सम्मुख रहते हुए भी जिसके मन में धैर्य के कारण विकार उत्पन्न नहीं होते, उसे धीर पुरुष कहते हैं। धैर्यवान पुरुष के लिये संसार में असम्भव कोई भी बात नहीं है। वह पाताल को फोड़ सकता है, स्वर्ग और पाताल को एक करके जोड़ सकता है। मनुष्य जब धैर्य छोड़ देता है तभी दुखी होता है। बिना संयम नियम जीवन व्यर्थ है।

जब तक विषयों का इन्द्रियों से संसर्ग नहीं होता तब तक धैर्य की परीक्षा नहीं होती। इन्द्रियों में विकार उत्पन्न करने के हेतुभूत विषयों के सम्मुख उपस्थित रहने पर भी जिसके मन में विकार उत्पन्न नहीं होता, वही धीर पुरुष है। वस्तु के अभाव में संयम करना भी श्रेष्ठ हैं। अन्न के न रहने पर एकादशी व्रत करना उत्तम है, किन्तु सब कुछ उपस्थित होने पर भी मन को उधर से रोके रहना सर्वश्रेष्ठ है। विषय और इन्द्रियों का सम्बन्ध मनीषियों ने अग्नि और मक्खन के सदृश बताया है। अग्नि के समीप पहुँचने पर नवनीत पिघल ही जाता है, विषयों से संसर्ग होने पर चित्त में चंचलता होनी स्वाभाविक है, किन्तु उस समय जो मन को संयम में रखते है, उसके आधीन नहीं हो जाते, वे ही आदर्श पुरुष कहलाते हैं। उन्हीं का नाम चरित्रवान है। उनके स्मरण से हमारा हृदय पवित्र होता है, उनके अनुकरण से जीवन में महानता आती है।

जिव्हा और ज्ञानेंद्रिय पर विजय प्राप्त करना ही धैर्य है। धैर्य और परिश्रम से हम वह प्राप्त कर सकते हैं जो शक्ति और शीघ्रता से कभी नहीं।

जरा जरा सी बात पर तमतमा जाना और तीखी से तीखी प्रतिक्रिया देना जैसे उनकी पहचान बन गई है। पूछने पर वह यही कहते हैं कि क्या करूं, खुद को नियंत्रण ही नहीं कर पाता। हालांकि मैं जानता हूं कि इससे स्थिति और बिगड़ जाती है। ऐसी स्थिति से निपटा जा सकता है, जब आपने धैर्य को साध लिया हो। दरअसल, आपा खो देना बहुत ही आसान है, लेकिन धैर्य को बनाए रखना, उतना ही कठिन।

कई बार निर्देश, अनुरोध, डांट-फटकार से उतना काम नहीं बनता, जितना आपके थोड़े से धैर्य से बनता है। धैर्य खुद के लिए भी और आपसे जुड़े लोगों के लिए भी फायदेमंद होता है। नेल्सन मंडेला ने एक बार गांधी दर्शन के बारे में कहा था कि अहिंसा से जुड़ा उनका महान विचार धैर्य ही तो है। बगैर धीरज के आप एक गाल पर तमाचा खाने के बाद दूसरा गाल आगे नहीं कर सकते।

अपनी फिल्म लाइफ ऑफ पाई से दुनिया की नजरों में आए फिल्म निर्देशक आंग ली कहते हैं कि क्रिएटिव वर्ल्ड में धैर्य न हो, तो आप कुछ भी नहीं कर सकते। आपकी दर्जनों रचनाएं आलोचना झेलती हैं, आप इनसे खुद भी संतुष्ट नहीं होते, आखिर अपेक्षित कामयाबी मिलने तक आप अपने धैर्य से जूझते रहते हैं। खुद आंग ली ने लाइफ ऑफ पाई से पहले १२ फिल्में बनाई और उन सारी फिल्मों की कुल जोड़ कामयाबी लाइफ ऑफ पाई के सामने नहीं टिकती। दरअसल धैर्य का मतलब है कि आप किसी भी तरह दिल को अपने दिमाग पर हावी नहीं होने देते। आप अपनी असफलता के क्षणों में भी आगे की कोई राह तलाशते हैं। महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने धैर्य के बारे में कहा था कि मेरी ज्यादातर खोजों में ९९ प्रतिशत धैर्य और एक प्रतिशत प्रेरणा का योगदान रहा है। उन्होंने इस सोच कही गांठ बांध ली थी कि धैर्य के बिना सब कुछ बेकार है।

महान उपलब्धि तुरंत हासिल नहीं होती। प्रत्येक परिणाम का समय आता है। कबीर ने कहा है- माली भले ही पेड़ को सौ घड़ों से सींचे, फल तो मौसम आने पर लगेगा। बिल गेट्स कहते हैं कि धैर्य ही कामयाबी का राज है। महात्मा गांधी मानते थे कि धैर्य खोने का अर्थ है, लड़ाई हार जाना। मंजिल तभी मिलेगी जब हम इत्मीनान से बगैर रुके चलते रहेंगे, रफ्तार जितनी भी धीमी हो। जो धैर्य रखना सीख गया, वह सब कुछ पा लेगा। ऐसा नहीं कि धैर्यशील, संयमी व्यक्ति के जीवन में अवरोध और तूफान नहीं आते, किंतु इन क्षणों में वह हड़बड़ी नहीं मचाता। चूंकि वह जानता है कि तूफान चला जाएगा। वह क्षणिक परिस्थिति से डरकर निर्णय नहीं लेता। आक्रोश या भावावेश के क्षण में अधीर होने का मलाल आपको सौ दिनों तक सालता रह सकता है। लुइस कैरल ने कहा है, मैंने जब-जब जल्दी की, मैं पीछेवाला उस संतुष्टि से वंचित रहेगा जो शांति से कर्मरत व्यक्ति को सहज प्राप्त होती है। सब्र ऐसी सवारी है जो अपने सवार को कभी गिरने नहीं देती, न किसी के कदमों में और न किसी की नजरों में। हड़बड़ाहट में जीते लोग चित्त में जीवनभर उन पहाड़ों को ढोते रहते हैं, जिन्हें फतह किया जाना था। वे निर्धन हैं, जिन्हें धैर्य नहीं।

अथक, अनवरत प्रयास और पर्याप्त धैर्य के बूते जब कोई बुलंदियां छूता है तो अन्य व्यक्ति उससे पूछते हैं, यह तुमने कैसे हासिल कर डाला? धैर्ययुक्त जीवनशैली के मायने सदा विचारमग्न रहना नहीं है। आपातकाल में त्वरित कार्रवाई आवश्यक है, जैसे आग लगने पर। दूसरों की भूल चूक या सायास गलतियों पर उन्हें क्षमा करने या दया बरतने में तत्परता बरती जानी चाहिए, इससे अपना अंत:करण निर्मल, स्वस्थ और आनंदित रहेगा।

मन में धीरज न होगा तो विपरीत स्वभाव वाले एक-दूसरे से कभी नहीं मिल सकते। आर्थिक संकट में या कोई अन्य भय उपस्थित होने पर अपनी बुद्धि से दु:ख निवारण के उपाय का विचार करते हुये जो धीरज धारण करता है उसे कष्ट नहीं उठाना पडता है। जीवन में हर छोटी-छोटी बातों में विवाद खडा करने की बजाये शांति और धीरज के बदबूते पर बड़ी-बड़ी मुसीबतों से निपटा जा सकता है। व्यवहार ऐसा हो कि धीरज का पैमाना छलकने न पाये।

जीतने के लिये, सफलता प्राप्त करने के लिये, जीवन को सहेजने, संवारने और निखारने के लिये जिन महत्वपूर्ण गुणों की आवश्यकता है, उनमे धैर्य को सर्वोपरि माना गया है। सब्र का फल मीठा होता है। जीवन में धैर्य हमें कई बलाओं और दुर्घटनाओं और दु:ख चिन्ताओं से बचाये रखता है। इसके बाबजूद हम हरदम जल्दबाजी और हडबडी में रहते है। प्रकृति के चरण चिन्हों पर चलना सीखना चाहिये, उसका रहस्य है धैर्य। जिसने धैर्य धारण कर लिया उसने आधी लडाई तो यो ही जीत ली। जितने भी महापुरुष हुये है उन्होने धैर्य को किसी भी स्थिति में नही छोडा जबकि आज हालात हडबडी और जल्दबाजी के इर्द गिर्द चलते रहते है। संकेत व दिशा सूचक की लाल बती की अनदेखी कर लोग अपना वाहन निकालने से संकोच और परहेज नहीं करते। जल्दबाजी में जल्दी जल्दी खाते है और फिर चिकित्सकों, डाक्टरों के यहां चक्कर लगाते है। हर काम में ऐसी दिखाना कई बार परेशानी का कारण बन जाता है। वे लोग कितने निर्धन है जिनके पास धैर्य जैसी अमानत नहीं है। क्या कोई भी जख्म बिना धैर्य रखे ठीक हुआ है ? वास्तव में धैर्य ही हमारी आत्मा का धन है।

एक बीज को वृक्ष बनने के लिये हवा, पानी, प्रकाश, खाद के साथ-साथ धैर्य की परम आवश्यकता होती है। प्रकृति के सभी और सही कामों में धैर्य की अनिवार्यता परिलक्षित होती है। हमारी जल्दबाजी का हमें कितना बडा खामियाजा भुगतना पडता है कहते है एक लम्हें में वे उठकर चल दिये, मनाने में उनको जमाना लगा। अधैर्यता के कारण जब वाणी

में संयम नहीं होता, तब हम जो कह देते है उसकी चुभन एक लम्बे समय तक हमें अपने प्रिय के प्रति अपने व्यवहार की तल्खी महसूस कराती रहती है। अधैर्य, जल्दबाजी, हडबडाहट हमारे कामों को बिगाड देते है। तेज रफतार से दुर्घटना घट सकती है, चलती हुई और प्लेटफार्म छोडती हुई रेल में चढ़ने से जान जा सकती है। समझदारी और व्यावहारिकता यही है कि दूध को पीने योग्य होने दो। वाहन को नियंत्रित रफ्तार से ही चलाये। रेल पर सवार होने के लिये सही तरीके से आधा घंटे पहले ही प्लेटफार्म पर पहुँचे। बुजुर्ग लोग इसीलिये तो कहते है धीरे धीरे रे, मना धीरे सब कुछ होय, माली सीचें बाग को, ऋतु आये फल होय इसके बाबजूद भी हम तुरन्त फल चाहने लगते है। परीक्षा दी नही कि परीक्षा फल की चिन्ता आरम्भ। होटेल में खाने का ऑर्डर दिया नहीं कि खाने कि उतावली। सिनेमा का टिकट लिया नहीं कि सिनेमाघर में प्रवेश पाने की हडबडी। कहा गया है जल्द काम शैतान का तो क्या हम शैतान है ? यदि हम शैतान नहीं है तो हमें उस प्रेमी की तरह धैर्य रखना चाहिये जो अपनी प्रेयसी के आने की प्रतीक्षा तो कर रहा है लेकिन उसके आजाने से भी डरते रहता है। क्योंकि उसकी सोच इस तरह की होती है कही वो आकर मिटा न दे लुफ्त इन्तजार का, कही कबूल न हो जाये इल्तजा मेरी। इसलिये धैर्य आशा करने की कला है।

कहा जाता है कि जिस व्यक्ति में धैर्य का अभाव होता है वह प्रगति की सीढ़ियां चढ़ते चढ़ते रह जाता है। अधीरता कुंठा का कारण बनती है और अनेक जटलितायें जन्म ले लेती है। आज के समय में धैर्य का अभाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। एक संत ने अपने सहज तरीके से धैर्य का पाठ पढ़ाया। जीवन मे ऐसे कई अवसर आयेंगे जब अपने आपको लगेगा की आप की उपेक्षा हो रही है, आपको अपना अधिकार नहीं मिल रहा है ऐसे अवसर और समय पर अधीर मत होना, देर सबेर सफलता अवश्य हासिल होगी महाराणा प्रताप सर्वस्व हार चुके थे। सामने लडनेवाली बहुत बडी ताकत थी। उस समय धैर्य उनका साथी रहा। वर्षों सुअवसर की प्रतीक्षा करते रहे। उनका धैर्य जंगलों में भूखे भटकते हुये भी टूटा नहीं। भामाशाह का सहयोग मिला। नई सेना बनाई और पूरे विश्व को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया। राम वनवास में धैर्य के सहारे सारे कष्ट सह गये। वन में कुश-कांटे, ऊजड प्रदेश, राक्षसों का उपद्रव, कंकड-पत्थर सभी कुछ थे, पर धैर्य नहीं छोडा। सीता ने भी अशोक वाटिका में राम की विजय एवं स्वयं की मुक्ति का स्वप्न सजों रखा था। रावण की पराजय के बाद राम के साथ ससम्मान अयोध्या लौटी। भारत की आजादी की लडाई लम्बे समय तक चली। अंग्रेजों को भगाना दुष्कर कार्य था, पर जनता का यह विश्वास कि एक न एक दिन आजादी मिल कर रहेगी सफल रहा। पांडवों के जीवन में भी धीरज न होता और उन्हे कृष्ण व विदुर का सहयोग नहीं मिलता तो वे लाक्षागृह में मारे गये होते। राजनीति हो, विज्ञान हो, साहित्य हो, आध्यात्म हो, शिक्षा हो, जीवन के हर क्षेत्र में लोगों ने धैर्य के बल पर ऊंचाईयां हासिल की है और संसार को अनूठी देन दी है।

सफलता प्राप्त करने के कोई छोटे रास्ते या योजना नहीं हो सकती। आत्मीयजनों की मृत्यु के समय धैर्य धारण करने की बात सभी कहते है। परीक्षा में अनुतीर्ण होने पर छात्र को उत्साहित किया जाता है। भक्त जीवन भर प्रभु प्राप्ति के लिये समर्पित रहता है तभी उसे निजानन्द मिलता है। सच्ची श्रद्धा, संकल्प, समर्पण, आस्था, विश्वास ही जीवन में अमृत वर्षा करते है। धैर्य की लता पर सफलता के पुष्प और फल लगते है। धैर्य खोते ही सफलता संदिग्ध हो जाती है। धैर्य मनुष्य को संकल्पशील एवं मजबूत बनाता है। आज धैर्य की फसल नष्ट प्राय: हो रही है। बात बातपर झगड़ना, नाराज होना,

रूठना हो जाता है। हर कोई अधीर लगता है। हम अपने भाग्य को कोसने लगते है। अनहोने कार्य करने लगते है। परिणाम सामने है। जिधर देखो उधर ही अविश्वास, स्वार्थ और कुटिलता का साम्राज्य दिखाई देता है। समाज टूटने के कगार पर है। परिवार खंडित हो रहा है। बाप से बेटा अलग रह रहा है। सास बहू में झगडे चलते है। आज धीर वीरों की आवश्यकता है। बीज बोते ही फसल नहीं उग जाती। उसके पनपने व पकने तक किसान को धैर्य रखना पडता है।

दुनिया के उतार चढाव इन्सान की जिन्दगी में आते ही है। लेकिन इन्सान को धैर्य रखना चाहिये, घबराना नही चाहिये। हमारे अन्दर सोलह सूर्यों की रोशनी है और हम ऐसे जीते है जैसे अन्धेरे में बैठे हो। अगर दुनिया का अन्धेरा हमें घेर बैठा है तो हम अन्दर की और झांके, उस रोशनी के साथ जुडे और रोशनी के माध्यम से इस अन्धेरे विश्व को रोशन करे। अपनी जिन्दगी ऐसी बनाये, जो हंसी खुशी से भरपूर हो। हंसी खुशी तब आयेगी जब हमारी आत्मा का मेल परमात्मा से होगा। आत्मा अगर प्रभु से बिछडी हुई है तो हंसी खुशी आ ही नहीं सकती। सदा सदा के आनन्द व खुशी की अवस्था को प्राप्त करने के लिये धैर्य व संयम की आवश्यकता है।

आत्मसंयम- यह सर्वमान्य सत्य है कि संसार के समस्त जीवधारियों में मानव जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का परम लक्ष्य सुख प्राप्त करना ही होता है। सुख दो प्रकार का होता है लौकिक और पारलौकिक। लौकिक सुख सांसारिक वस्तुओं से प्राप्त अस्थायी सुख है, जबकि पारलौकिक सुख ईश्वरीय होने से स्थायी सुख होता है। प्रत्येक व्यक्ति के सुख प्राप्त करने के उद्देश्य और दृष्टिकोण में भिन्नता होना स्वाभाविक है। एक व्यक्ति अपने और अपने परिवार के लिए भरपेट भोजन जुटा लेने में ही सुख समझता है, तो वहीं कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिन्हें अधिक से अधिक धनार्जन करने की ललक बनी रहती है। कुछ व्यक्तियों को यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कठोर संघर्ष करते रहने में ही सुख की प्राप्ति होती है। जीवन के परम लक्ष्य-सुख को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संयम की आवश्यकता होती है। सामान्यत: व्यक्ति की गलत प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करने को संयम कहा जाता है। संयम केवल संत-महात्माओं तक ही सीमित नहीं होता, वरन् गृहस्थों, साधु-महात्माओं, स्त्री-पुरुषों, वृद्धजनों और युवकों को भी सुखमय जीवन के लिए संयम की अत्यंत आवश्यकता होती है। संत-महात्माओं का मानना है कि व्यक्ति को अपना जीवन सुखमय बनाने के लिए आध्यात्मिक और पारमार्थिक दोनों ही पक्ष दृढ़ होने चाहिए। व्यक्ति के पारमार्थिक पक्ष के उत्कर्ष और उन्नति के लिए उसके व्यावहारिक पक्ष का व्यवस्थित और संयमित होना अति आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक रूप से स्वस्थ और निरोगी बने रहने के साथ ही उसे सामाजिक और पारिवारिक मर्यादाओं के पालन में संयमित और संतुलित बनाए रखना परमावश्यक है। वस्तुत: संयम व्यक्ति के जीवन को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने का मूलमंत्र है। जीवन में संयम व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होता है- चाहे खान-पान में, परमात्मा द्वारा प्रदत्त अनुपम वरदान के रूप में, वाणी में, स्वार्थ सिद्धि में, अनंत कामनाओं की प्राप्ति में, विषय-भोगों में, व्यवहार और मैत्री संबंधों में संयम की ही महती भूमिका रहती है। संयम का निर्वाह करने से ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं के समाधान स्वत: प्राप्त हो जाते हैं।

जिसने अपने ऊपर संयम कर लिया है, उसे बाहर की किसी वस्तु द्वारा प्रभावित नहीं किया जा सकता, उसके लिए गुलामी फिर नहीं रह जाती। उसका मन मुक्त हो गया है। केवल ऐसा व्यक्ति ही संसार में आदर्श रूप से रहने योग्य है।

हम जितने ही शान्त होंगे, हमारे स्नायु उतने ही कम उत्तेजित होंगे, हम उतना ही अधिक प्रेम कर सकेंगे और हमारा कार्य उतना ही अच्छा होगा। तुम्हें स्वामी की भाँति कार्य करनाचाहिए न कि दास की तरह। अविराम कर्म करो पर दास की तरह नहीं।

धर्म के दस लक्षणों में तृतीय स्थान पर है दमं: अर्थात् संयम। मानव जीवन में संयम की सबसे अधिक आवश्यकता है। जिसके पास संयम नहीं है वो व्यक्ति पशु समान होता है। आहार, विहार, चिंतन, परिश्रम, विश्राम, स्नेह, मनोरंजन आदि प्रत्येक क्षेत्र में संयम पालन करके ही व्यक्ति उसका पूरा लाभ एवं आनंद प्राप्त कर सकता है। संयम केवल दूसरे को बताने के लिए नहीं अपितु आत्मसंयम ही वास्तव में संयम है।

आत्मसंयम में भी वाणी का संयम सर्वाधिक अपेक्षित है। शास्त्रों मे लिखा- जितात्मा सर्वार्थे: संजुज्येत।

जिसने अपने आप को जीत लिया और वाणी पर संयम कर लिया उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते है। संपूर्ण महाभारत का कारण ही द्रौपदी का वाक्संयम न होना विद्वान मानते है। द्रौपदी का कथन कि अंधे के पुत्र अंधे ही होते है दुर्योधन को तीर के सामान चुभ गया उसने इसे अपना बहुत बड़ा अपमान माना और इस अपमान का बदला लेने की ही परिणति महाभारत है।

जब कोई हमारी प्रशंसा करे, आरती उतारे तब तो हम वाणी पर संयम रखते हैं। विपरीत परिस्थितियों में और निंदा करने पर भी यदि हम वाणी पर संयम रखे तभी हम सही अर्थों में संयमी कहलाने के अधिकारी हैं।

चाणक्य नीति में लिखा है- इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत् पण्डितो नर:। देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्।।

बुद्धिमान पुरुष को यह गुण बगुले से सीखना चाहिए कि अपनी सारी इन्द्रियों को नियंत्रण में करके तथा स्थान, समय और अपनी शक्ति का अनुमान लगाकर कार्यसिद्धि के लिए जुट जाना चाहिए। यही आत्मसंयम कहलाता है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि जब तक तुम अपनी प्रवृतियों पर संयम नहीं रखोगे कभी सफल नहीं हो पाओगे और सदा ऊहापोह में लगे रहोगे।

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में महर्षि कण्व के द्वारा कहलाया है कि ऋषि संयम के धनी होते है। दूसरे शब्दों में कहे तो जिसके पास संयम का धन है वह ऋषि होता है। ऋषि होने का अर्थ है आर्षदृष्टा या दूरदृष्टा। सामान्य व्यक्ति एक-दो दस-बीस वर्ष की बात सोचता है परंतु ऋषि बहुत दूर तक की और वास्तविक बात सोचते है। क्षणिक लाभ के लिए सोचने वाला व्यक्ति सामान्य श्रेणी में आता है स्थायी और दूरगामी परिणाम का विचार करने वाले उत्तम श्रेणी के लोग होते है। यह सोच शास्त्रों के अध्ययन, सत्संगति, विचारविमर्श अथवा बड़ों की आज्ञा पालन से विकसित होती है। मनमानी करना, उद्दण्ड होना, अभिमान करना, किसी की बात न मानना, संयमी होने में बाधक तत्व है।

संयम के लिए कुछ नहीं करना पड़ता केवल स्वयं को देखना होता है। स्वयं को देखने का अर्थ है अपनी सामर्थ्य, सीमा और अवस्था को पहचानता। भ्रम में न रहकर, किसी बहकावे में न आकर, अपनी सामर्थ्य और सीमा में रहकर आगे बढ़ना आत्मसंयमी का लक्षण है। अपने मन, वचन, कर्म तीनों पर नियंत्रण एवं दृष्टि रखना विजय के साधन है। आद्य शंकराचार्य, विवेकानंद, रमण महर्षि, रामानुज जैसे महापुरुषों और विद्वानों ने आत्मसंयम का सहारा लेकर ही अपनी आत्मा को इतनी ऊंचाई तक पहुंचा दिया जहां पहुंचना लोगों के लिए स्वप्न है।

शास्त्रों में लिखा है कि परिश्रम का कोई विकल्प नहीं है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अभ्यास से ही तुम आत्मसंयम कर सकते हो।

उपनिषद का अर्थ है आचार्य के समीप बैठकर प्रश्नोत्तर के माध्यम से यथार्थ का ज्ञान करना। १०८ उपनिषदों में ऋषियों ने आत्मसंयम की बात बार-बार दोहरायी है। वर्तमान आपाधापी के युग में आत्मसंयम से बढ़कर शांति प्राप्ति का अन्य कोई साधन नहीं है। दूसरे को उपदेश देने की बजाय यदि हम स्वयं ही अपने पर संयम रखे तो उत्कृष्ट वातावरण के निर्माण में सहायक हो सकते है।

संयम यानी नियंत्रण, अपने मन, वचन, शरीर और इच्छा पर नियंत्रण रखना बहुत जरूरी है। संयम जीवन का आंतरिक सौंदर्य है। संयम के अभाव में बाह्य सौंदर्य व्यर्थ है। इंद्रियों पर विजय प्राप्त करना, जीवन को उच्च, पवित्र, समतामय और सुखमय बनानेके लिए संयमी होना जरूरी है।

जिसके जीवनमें संयम-नियम नहीं है, वह कैसे आशा रख सकता है कि उसकी सन्तान देवता बनेगी। जहाँ संयम की प्रवृत्ति है वहाँ संघर्ष होने का ही सवाल नहीं है। विपरीत परिस्थिति में संयम रख लिया तो वातावरण कभी अशांत, अप्रसन्न बन ही नहीं सकता। मन का संयम चिंतन को स्वस्थ बनाता है, वचन का संयम वाणी को पवित्र बनाता है, काया का संयम आचरण को पवित्र बनाता है।

सौम का अर्थ है रुकना या संयम करना। खास तौर पर आज के भाग-दौड़ भरे जीवन में थोड़ा ठहरकर, थोड़ी शांति से अपने अंदर की ओर देखना नए आयाम खोलता है। उपनिषद कहते हैं कि हम बहिर्मुखी हैं, क्योंकि हमारी इंद्रियां बाहर की ओर हैं। यही वजह है कि हम खुद से दूर हो जाते हैं और दुनिया की चमक-दमक के पीछे दौड़ते रहते हैं। लेकिन जिस पल हम रुककर अंदर की ओर देखते हैं, हकीकत खुद-ब-खुद हमारे सामने जाहिर होने लगती है। रूपांतरण की प्रक्रिया यहीं से शुरू होती है।

रोजा तभी सफल होता है, जब हम अपनी इंद्रियों पर संयम की लगाम लगाते हैं। असंयमित मन और इंद्रियां हमें भटका देती हैं, हमारी शक्तियों को क्षत-विक्षत कर देती हैं और हमारी सोचने-समझने की क्षमता को समाप्त कर देती हैं। संयम का अभाव हमारे अंतस पर अज्ञान की परतें चढ़ाता जाता है। इन परतों को भेदकर अंदर के नूर को सामने लाने का एक ही तरीका है- संयम को जीवन का अंग बना लेना।

सम्यक रूप से किया यह तप उस प्रत्येक वृत्ति का नाश कर देता है जो अंत:करण को दूषित करती है।

हमने अपना हृदय तरह-तरह की वृत्तियों से, तरह-तरह के संस्कारों की परतों से ढंक लिया है। जब तक संयम के तप से ये परतें नहीं पिघलेंगी, तब तक हम इस प्रकाश के भागीदार न हो सकेंगे।

संयम का सही अर्थ है- जो जरूरी है उसके साथ जीना और जो काटा जा सकता है, उसे काट देना। संयम ऐसा है जैसे टेलीग्राम। कम-से-कम शब्दों में कही बात, जो अर्थ स्पष्ट करे।

संयम सामाजिक जीवन व्यवस्थाओं का सजग प्रहरी है। समस्याओं के समाधान का प्रकाश स्तम्भ है आध्यात्मिकता की मूल भूमिका है, अहिंसा का प्राण है, संयम के बिना हिंसा की साधना और विकास नहीं हो सकता। अनीतिमय आचरणों के लिये अंकुश है। संयम शिष्ट जीवन के सभी पहलुओं के पुष्ट और अनुप्राणित करने वाला है, वह जीवन का

विराट आधार है, अपने विचारों और व्यवहारों पर नियंत्रण रखनेवाला व्यक्ति विभिन्न संकल्पों- विकल्पों के चक्रवात से मुक्त रह कर अच्छी मानसिक एकाग्रता को उपलब्ध कराता है। संसार शारीरिक अस्वास्थ्य, मानसिक व्यग्रता, पारिवारिक टकराव और आर्थिक अभाव आदि अनेक समस्याओं का समाधान अपने प्रकार से प्रस्तुत करता है।

बिना झिझक एवं विवाद के दूसरे लोगों के साथ बातचीत और लिखा पढी करने की योग्यता सभी सफल मनुष्यों का प्रमुख गुण होता है। यह कला धैर्य और परिश्रमपूर्वक आत्मसंयम का अभ्यास करने से उत्पन्न होती है। जिस मनुष्य में पूर्ण आत्मसंयम है वह स्थायी रूप से कभी परास्त नहीं हो सकता। ऐसे स्थिर संकल्प मनुष्य के मार्ग की सभी बाधायें अन्तरध्यान होती है।

सारे योगी-महात्मा कह गए हैं कि सुख-शांति, सम्मान व सद्गति का मार्ग है आत्मसंयम और आत्मरमण। आम मनुष्य भी ये बातें जानता है। फिर भी आदमी पदार्थों में सुख खोज रहा है। वह इंद्रिय विषयों की पूर्ति में आनंद को ढूंढ रहा है। उसे यही लगता है कि असल में वह सुख खोज रहा है पर उस सुख के लिए हाथ-पांव मारने के बाद अंतत: उसे दुख ही मिलता है। तब उसके मन में यह सवाल उठता है कि सुख की खोज का परिणाम दुख और निराशा में क्यों निकला?

जो चीज जहां है नहीं, उसे जीवन भर खोजने पर भी वह वहां मिलती नहीं। बल्कि निराशा ही हाथ लगती है। इसीलिए योगी-महात्मा आत्मसंयम के सिद्धांत का पालन करने की बात कहते हैं। आत्मसंयम की उपयोगिता किसी भी हाल में और किसी भी काल में कम नहीं होती।

यह सच है कि शुरू-शुरू में आत्मसंयम का मार्ग कठिन लगता है। आंवला खाते समय पहले वह बहुत खट्टा लगता है पर खाने के बाद पानी मीठा लगता है, स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसी तरह इंद्रिय विषयों का संयम बड़ा आरंभ में कठिन प्रतीत होता है परंतु इंद्रियों का संयम करनेवाला सदा सुखी रहता है। इस प्रकार पदार्थों की आसक्ति त्याग देनेवाले को संसार की कोई भी शक्ति दुखी बना नहीं सकती। असल में सुख विषय भोग करने या भौतिक सुख के साधनों को जुटाने में नहीं है, बल्कि आत्म रमण करने और अपनी चेतना को पवित्र बनाने में है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपने मन और इंद्रियां इस तरह खुला छोड़ रखा है कि वे चाहे जहां भटकें, वासनाओं का चाहे जितना कूड़ा कटोर कर लाएं, तो ऐसी स्थिति में उसकी आत्मा की पवित्रता की सुरक्षा कैसे हो सकती है? जब आत्मा सुखी नहीं रहेगी, तो व्यक्ति सुखी नहीं रहेगा।

सहनशीलता- सहिष्णुता- पारस्परिक प्रेम और सदभाव ही वैश्विक कल्याण का आधार हैं। जो समाज या देश सहिष्णुता, उदारता व दयालुता जैसे उदत्त मानवीय मूल्यों के प्रति जितना समर्पित होगा, वह असहिष्णु, अनुदार व धार्मिक कट्टरवादी सोचवाले देशों की बनिस्पत ज्यादा समृद्धिशाली व खुशहाल रहेगा।

भारत की संस्कृति व अध्यात्म हमेशा से सहिष्णुता, उदारता और धार्मिक स्वतंत्रता की पक्षधर रही है। ऋग्वेद में कहा है, भारतीय संस्कृति विश्व के कल्याण के प्रति संवेदनशील है और वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा में विश्वास रखती है। धर्मांधता एवं संकुचित मनोवृत्ति से ग्रसित समाज में पारस्परिक वैमनस्य व द्वेष की वजह से तरक्की के रास्ते बंद होने लगते हैं। असल में कोई भी व्यक्ति या समाज सहिष्णुता और उदारता अपनाकर ही विकास की संभावनाओं को विस्तृत आकार दे सकता है। संकुचित सोच, ईर्ष्या और डाह उसे एक संकीर्ण दायरे में समेटकर खोखला कर देती है।

सम्राट अशोक ने अपने बारहवें शिलालेख में कहा है, मनुष्य को दूसरे के धर्म की निंदा नहीं करनी चाहिए। दूसरों के धर्म के प्रति असहिष्णुता व दूसरों का अपहार करने की दुर्भावना निश्चित रूप से अपने ही वैभव व पुण्यों को क्षीण करती है। जो दूसरों के धर्म के प्रति असहिष्णुता प्रदर्शित करता है, वह अपने समाज की बहुत बड़ी हानि करता है।

सहिष्णुता एक पारसमणि है जिससे शांति और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। हमारे सम्मुख पारसमणि है और हमें इस बात का एहसास भी है कि इस पारसमणि के स्पर्श से ही हमारी आध्यात्मिक एवं भौतिक उन्नति संभव है, फिर भी इस समग्र विकास में जो बाधक तत्व हैं- धार्मिक कट्टरता, अड़ियल मान्यतावाद, नफरत से मुक्ति वगैरह, उन पर विमर्श बेहद जरूरी है। ये बाधक तत्व परिवेश व समाज में सहजता से उपलब्ध हो जाते हैं और कुछ असामाजिक लोगों द्वारा निहित स्वार्थों के लिए इन्हें संक्रामक भी बनाया जाता है। संवेदनहीनता के इस दौर में अफवाहों का भस्मासुर हर दिन अट्टहास करता है, प्रचार, प्रसार माध्यम का दुरुपयोग हर दिन असहिष्णुता को उकसाते हुए दिखाई देता है।

यदि हम अपने समाज में, परिवेश में और अपने देश में तरक्की चाहते हैं तो अहिंसा के प्रसार के लिए नित नए चिंतन की नितांत आवश्यकता है। यद्यपि हरेक समाज में सकारात्मक सोच रखनेवाले क्रिएटिव लोगों की संख्या कम हो सकती है, पर यह कम संख्या भी खासी महत्वपूर्ण होती है। इन कम लोगों के ही सहिष्णु व उदार दृष्टिकोण समाज को दिशा देने में अहम भूमिका निभाते हैं। इन्हीं की वजह से समाज में उन्नति दिखाई देती है। जिस समाज के लोगों के क्रिया-कलाप लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होते हैं, वहां शांति और समृद्धि स्वत: बढ़ने लगती है।

सहिष्णुता की शक्ति है, उसकी विजय सुनिश्चित है। हम सहिष्णुता में जीने की आदत बनाए। बैर से बैर बढ़ता है। हम बैर-द्वेष भाव की नहीं अपितु सौहार्द्र की अभिवृद्धि करें।

पृथ्वी सब कुछ सहती है। शास्त्रों में इसे सर्वसहा कहा गया है। मनुष्य ने सहने का गुण पृथ्वी से ही लिया है। पृथ्वी स्थिर है, इसलिए दुनिया चल रही है। तभी तो पृथ्वी को माता के रूप में स्मरण किया गया है। हर बीज उसकी संतान है। बड़े-बड़े घने जंगल उसकी सीमाओं के प्रहरी हैं। अलग-अलग वृक्षों के पत्ते, उनके बदलते रंग, फूल और फल-समूची प्रकृति विविध रंगों में सजे एक मेले की तरह दिखती है।

दुनिया का काम कभी भी सीधी रेखा पर नहीं चलता, उसमें वक्रता होती है, तो चोट भी मिलती है। हवा जब बांस के वन में चोट करती है, तो उस वन से मनोहर संगीत फूटता है। चाहे तबले की थाप हो या अन्य कोई वाद्य, मधुर आघात से मधुर संगीत पैदा होता है। प्रचंड इच्छाशक्ति के सामने भय निर्मूल हो जाता है। सहना संयम है, वह विनम्रता का पाठ पढ़ाता है। महाभारत में जब पांडवों ने यज्ञ में कृष्ण का जलाभिषेक किया, तो शिशुपाल उन्हें गालियां देकर उनका अपमान करने लगा। कृष्ण ने कहा- तुम्हारे निन्यानबे अपराध क्षमा करूंगा, पर सौवां नहीं। शिशुपाल की सौवीं भूल पर कृष्ण ने चक्र से उसका सिर काट डाला। एक महाकवि ने भी शिशुपाल-वध नामक महाकाव्य की रचना की है। हमारी भाषा, हमारे शब्द, हमारा व्यवहार- ये सब हमारे व्यक्तित्व को प्रकाशित करते हैं। इनका दुरुपयोग दूसरों को असहनशील बना देता है, जिसका परिणाम है अशांति और युद्ध इसलिए हमारे सहने की शक्ति ही मानव-समाज का तापक्रम निर्धारित करती है।

उत्तेजना मनुष्य की आंतरिक स्थिति को विक्षिप्त सी कर देती है - शरीर में उष्णता की मात्रा अधिक बढ़ जाना ज्वर कहलाता है और वह ज्वर अनेक दुष्परिणामों को उत्पन्न करता है। वैसे ही मानसिक ज्वर होने से उद्वेग, आवेश, उत्तेजना,

मदहोशी, आतुरता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। आवेश की प्रबलता मनुष्य के ज्ञान, विचार, विवेक को नष्ट कर डालती है। उस समय वह न सोचने लायक बातें सोचता है और जो कार्य पहले कुत्सित जान पड़ते थे, उन्हीं को करने लगता है। ऐसी स्थिति मानव जीवन के लिए सर्वथा अवांछनीय है। विपत्ति पड़ने पर अथवा किसी प्रकार का लड़ाई-झगड़ा हो जाने पर लोग चिंता, शोक, निराशा, भय, घबराहट, क्रोध आदि के वशीभूत होकर मानसिक शांति को खो बैठते हैं। इसी प्रकार कोई बड़ी सफलता मिल जाने पर, या संपत्ति प्राप्त होने पर मद, मत्सर, अति हर्ष, अति भोग आदि दोषों में फंस जाते हैं। इस तरह कोई भी उत्तेजना मनुष्य की आंतरिक स्थिति को विक्षिप्तों की सी कर देती है। इसके फल से मनुष्य को तरह-तरह के अनिष्ट परिणाम भोगने पड़ते हैं। जिन लोगों की प्रवृत्ति ऐसी उत्तेजित होनेवाली अथवा शीघ्र ही आवेश में आ जानेवाली होती है, वे प्राय: मानसिक निर्बलता के शिकार होते हैं। वे अपने मन को एकाग्र करके किसी एक काम में नहीं लगा सकते और इसलिए कोई बड़ी सफलता पाना भी उनके लिए असंभव हो जाता है। उनके अधिकांश विचार क्षणिक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार मानसिक असंतुलन मनुष्य की उन्नति में बाधा स्वरूप बनकर उसे पतन की ओर प्रेरित करने का कारण बन जाता है। मानसिक असंतुलन की अशांत दशा में कोई व्यक्ति न तो सांसारिक उन्नति कर सकता है, न आध्यात्मिक प्रगति संभव होती है। संयम और परिश्रम मनुष्य के दो सर्वोत्तम चिकित्सक हैं, परिश्रम से भूख तेज होती है और संयम अतिभोग से रोकता है।

संवेदना- संवेदनशीलता- एक शून्य से संपूर्ण सृष्टि की रचना होती है। शून्य से सृष्टि तक की इस यात्रा में लिप्त तत्व की प्रवृत्ति संवेदनशीलता ही होती है। संवेदनशीलता एक ऐसा स्वभाव है, जिसे सभी ने सराहा है। ग्रंथों में इसे मानव का प्रमुख लक्षण बताया गया है। संवेदनशीलता का अर्थ है दूसरे की पीड़ा के प्रति सजग होना। मानव जन्म लेने के बाद दूसरे की पीडा के प्रति जागरूक न हो पाए, तो यह जन्म मानव योनि का नहीं माना जाएगा। संवेदनशीलता को व्यर्थ का भाव मानने वालों को अपने जीवनकाल में कम से कम एक बार स्वयं से प्रश्न जरूर करना चाहिए कि मैंने अब तक किसी की पीड़ा की परवाह न करते हुए अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के जो कर्म किए हैं, वे मुझे किसके समान बनाते हैं ? यदि वह मनुष्य स्वयं से सच बोल सकेगा, तो निश्चय ही उत्तर मिलेगा- पशु। संवेदनशीलता के आधार पर ही मानव सृष्टि की सबसे उत्कृष्ट और श्रेठ कृति मानी जाती है। जिसमें जितनी संवेदनशीलता, वह मनुष्य उतना ही श्रेष्ठ और परमात्मा का प्रिय भी। येरूसलम जा रहे दो मित्रों में से एक दूसरे से इसीलिए तो श्रेष्ठ साबित हुआ।

दूसरे की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझ कर जीवन जीना एक ऐसा यज्ञ है, जिसमें अपने स्वार्थ की आहुतियां दी जाती हैं। इस आजीवन चलते यज्ञ का फल होता है परमात्मा की अनुकंपा। जो संवेदनशील हैं, वे अपने निकट उपस्थित ईश्वर को पहचान लेते हैं। इसीलिए वे निडर और निश्चिंत होते हैं। उन्हें हर पल अपने भविष्य या वर्तमान की चिंता नहीं होती। उनका मन किसी शिशु की तरह निर्मल और सदैव प्रसन्न रहने वाला होता है। उनके व्यक्तित्व में एक तेज होता है और वे लोकप्रिय होते हैं।

श्रीराम के आदर्श व्यक्तित्व में जो तत्व सबसे प्रधान था वह है संवेदनशीलता। फिर चाहे, वो शबरी के बेर की घटना हो या कि रावण के वध से पहले उससे क्षमा प्रार्थना जैसा आचरण हो। हर जगह उनमें दूसरे की पीड़ा के प्रति जागरूकता है,

इसीलिए वे मर्यादा पुरुषोत्तम और देव श्रेष्ठ कहलाते हैं। संवेदनशीलता का ही तत्व है, जो शांति और प्रसन्नता स्थापित करता है। अन्यथा रावण से महायुद्ध की स्थिति ही नहीं आती। संसार में रहकर सांसारिक उपायों से बुराई का अंत करना सांसारिक होने की विवशता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि बुराई खत्म करने के कर्त्तव्य पालन में हम निर्ममता को अपने हृदय में बसा लें।

कर्त्तव्य पालन तो करने ही होंगे। वे कर्त्तव्य क्रूर या निर्मम भी हो सकते हैं, लेकिन इसे तभी तक अपने हृदय में रखना चाहिए, जब तक कि कर्त्तव्यपालन की स्थिति हो। जैसा कि अर्जुन ने महाभारत में किया। अपनों पर प्रहार करना ही था। उसने वह कर्त्तव्य तो निभाया, लेकिन उस निर्ममता को अपना आजीवन साथी कभी नहीं बनाया। दूसरे की पीड़ा स्वयं अनुभव करने का अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति को कायर बन जाना चाहिए। कुछ स्थितियों में संवेदनशीलता का भी त्याग करना पडता है, लेकिन कुछ समय तक के लिए। श्रीराम की तरह युद्ध का कर्त्तव्य पालन करते हुए संवेदनशीलता का भी निर्वाह किया जा सकता है। संवेदनशीलता का अंकुर स्वयं में आने दें। मन कहीं अधिक शांत और प्रसन्न रहेगा और यह शांति आपके जीवन में सफलता सुख और लोकप्रियता का कारण बनेगी। यह लोकप्रियता आपके लिए समृद्धि का द्वार खोलेगी।

संवेदना ही धर्म की मंजिल है नींव है। संवेदनाहीन मानव पत्थर दिल और निष्ठुर हो जाता है। जिसे अपने आपका ही खयाल नहीं रहता तो वह दूसरों की क्या परवाह करेगा। इस प्रकार का मानव इन्सान न रहकर शैतान के रूप में परिवर्तित हो जाता है, उसे अपने आपको धार्मिक कहलाने का अधिकार नहीं रहता। संवेदना ही धर्म की मंजिल की नींव है जिस पर धार्मिकता का महल खडा किया जा सकता है। स्वार्थ, लोभ और मोह के वशीभूत होकर कोई संवेदनशील होता है तो उसे वास्तविक संवेदना नहीं कहा जा सकता जिसके पीछे अपेक्षाओं के भाव निहित है वह तो सौदेबाजी की तरह व्यापार ही माना जायेगा। दूसरों की पीडा उसे अपने आपका ही अपने उपर बोलता हुआ मानकर तत्काल उसको सहयोग पहुंचाने के लिये तत्पर हो जाये। समाज में फैली कुरीतियों को खत्म करना चाहिये तभी समाज को सही दिशा प्राप्त हो सकती है। इन्सान की बात तो छोडो पशु जगत में भी संवेदना विद्यमान है। राणा प्रताप के स्वामी भक्त घोडे चेतक ने संवेदना से ओतप्रोत होकर ही अपने प्राणों को हंसते-हंसते विसर्जन किया।

वर्तमान समय में हम मनुष्यों का स्वभाव गुण कुछ इस तरह का हो गया है कि यदि कोई हमें मान-सम्मान देता है या हमारी प्रशंसा करता है तो हम बड़े हर्ष व ध्यान से सुनते हैं, लेकिन इसके विपरीत यदि जरा सा कोई अपमान कर दे या हमारा दोष बता दे तो तुरंत ही क्रोधित होकर लड़ने को तैयार हो जाते हैं कि उसने मुझे गलत कैसे कहा। अपने लिए कही गयी गलत बात को जरा भी सहन नहीं कर सकते। ये सज्जन लोगों का गुण नहीं है। सज्जन लोगों का स्वभाव तो ऐसा होता है कि कोई दोष निकाले या अपमान करे तो उस पर विचार करते हैं। उन गलतियों को सुधारकर अपना व्यक्तित्व ऊंचा उठाने का प्रयत्न करते हैं।

सहनशीलता एक बहुत बड़ा गुण है। हमें मान और अपमान दोनों में एक से बने रहना चाहिए। मान मिले तो आसमान में नहीं पहुंचना चाहिए और अपमान मिले तो दुश्मनों पर नहीं उतरना चाहिए।

आलोचना, निन्दा, स्तुति, चापलूसी

अंतर्बोध और आत्मविश्वास का कवच ऐसे कपट से हमें बचाते हैं। स्तुति और निंदा, यश और अपयश दुनियावी मायाजाल के अस्त्र-शस्त्र हैं। उनके प्रति सतर्क रहकर सच्चाई के विवेकी पथ पर चलने में ही जीत है।

सकारात्मक सोच से ऊर्जा का प्रवाह सन्मार्ग की ओर होता है। किसी का आदर-सत्कार करने से पहले यह सोचना कि इसका आदर-सत्कार करूं या न करूं, अज्ञानता है। किसी का आदर-सत्कार करना मिट्टी में फूलों के बीज डालने जैसा ही है। एक बार मिट्टी में बीज चला गया तो हम चाहें या न चाहें प्रकृति उन बीजों को पल्लवित-पुष्पित करके ही दम लेते है। इसके लिए हमें विशेष कुछ नहीं करना पड़ता है, लेकिन प्रसन्नता अवश्य मिलती है। यह सहज है और इसके लिए अक्ल का घोड़ा दौड़ाने की जरूरत भी नहीं होती। इसके लिए सिर्फ एक भाव की जरूरत होती है कि मुझे सबका सन्मान करना है। इस भाव की प्रतिक्रिया को कोई अस्वीकार भी नहीं करता।

आलोचना- आलोचनाये शत्रुओं की संख्या बढाती है। जब हम किसी की आलोचना करते है तो वह हमारे सुझावों पर अमल नहीं करता, बल्कि हमारा शत्रु हो जाता है, हमारे विरुद्ध हो जाता है। कई बार घर-बाहर या कार्यस्थल की परिस्थितियां हमें उदिग्न कर देती है, हमें व्यथित बना देती है। हम खिन्नता और उदासियों से भर जाते है। ऐसा तब होता है जब हमें हमारी अपेक्षाओं के विपरीत वातावरण मिले, कोई हमारी बात न माने या हमारे उपकार के बदले उपकार मिले अथवा कोई हमारी सदाशयता पर आघात कर दे। तब हम सामान्य नहीं रह पाते, विचलित हो जाते है और हम सम्बधित व्यक्ति या विचार की आलोचना करने लग जाते है। इससे हमारा गमोगुबार तो निकल जाता है किन्तु वातावरण बिगड जाता है और वह व्यक्ति हमारा स्थायी शत्रु हो जाता है।

आलोचनाये हमें दो प्रकार से नुकसान पहुंचाती है एक आन्तरिक और दूसरी बाह्य। जबान पर आलोचनात्मक शब्द आने के पहले हमारे भीतर आलोचनात्मक भाव उत्पन्न होते है जो हमारे भीतर नकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न करते है तथा हमारे विचारों, शब्दों-वाक्यों को ही नहीं हमारी शैली को नकारात्मक प्रतिक्रिया वादी बना देता है। आलोचनायें हमें एकाकी बना देती है। ऐसे लोगों में कोई दोस्ती नहीं करता जो केवल आलोचनायें करते है। ऐसे लोग घर और बाहर दोनो जगह अलोकप्रिय होते है। उनके चेहरों पर मुस्कराहट नहीं होती। जीवन मे उमंग नहीं होती। वे हमेशा तनाव में रहते है चिडचिडे होते है और फिर हम किसी की आलोचना करके हम क्या साबित करना चाहते है ? स्वयं को योग्य और दूसरे को अयोग्य। संसार में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को योग्य समझता है। वह अपनी समझ, अनुभव, परिस्थिति के अनुरूप निर्णय लेता है। तब वह आपकी आलोचना क्यों सहेगा ? यदि आपको किसी का कार्य पसन्द नहीं आया, आप उसकी आलोचना करने जा रहे है तो पहले स्वयं को उस परिस्थिति में रखकर देखे। आपका विचार ही बदल जायेगा।

अधिकांश व्यक्ति, हम अपनी आलोचना सुनकर उत्तेजित हो जाते हैं और आलोचक से मुंह फेर लेते हैं जो ठीक नहीं है। यदि हम अपनी आलोचना पर सकारात्मक नजरिये से विचार करें और उससे सीख ले तो हम अपने व्यक्तित्व एवं कार्य क्षमता से संबंधित कमियों को दूर कर सकते है। एक स्वस्थ्य आलोचक हमारी गलतियों की ओर विनम्रतापूर्वक ध्यान आकर्षित करा कर उस गलती का बेहतर विकल्प पेश करता है जिससे हम अपने नए कार्य को और भी बेहतर

तरीके से कर सके। इसलिए किसी के द्वारा की गई आलोचना से क्षुब्ध न होकर हमको यह पता लगाना चाहिए कि हम कहां पर गलत थे। हमें आलोचकों से परहेज न करके उनके द्वारा की गई आलोचना को स्वस्थ्य नजरिये से लेना चाहिए, ऐसा करने से हमारे व्यक्तित्व में निखार ही आएगा।

यदि किसी की आलोचना की जाए, तो उन्हीं परिस्थितियों में स्वयं का भी आकलन करना चाहिए। एक प्रकरण के अनुसार आचार्य चाणक्य को अपने शिष्य चंद्रगुप्त पर क्रोध आ गया। वे चाहते थे कि साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित किए बिना चंद्रगुप्त अपने सम्राट बनने की खुशी के उत्सव का आयोजन न करें, किंतु मातुल ने उत्सव की घोषणा कर दी, जिसे चंद्रगुप्त ने स्वीकार कर लिया। इससे क्रोधित होकर चाणक्य ने चंद्रगुप्त के नाम एक कड़ा पत्र लिखा। पत्र लिखकर वे कुटीर के बाहर निकले और बड़ी देर तक उपवन में उछलते हिरण छोंनों को निहारते रहे। लौटकर पत्र चंद्रगुप्त को भेजने की बजाय अपनी ही पेटी में बंद कर दिया और पाटलिपुत्र की सीमाएं छोड़कर नालंदा आ गए। गुस्से और आलोचना का पत्र लिखकर न भेजने की दूसरी घटना पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के जीवन में भी मिलती है। उन्होंने एक पत्र अपने सेनापति मीड को लिखा था। लिंकन ने यह पत्र मीड को जीवन भर भेजा ही नहीं। पत्र उनके मरने के बाद उनकी फाइलों में मिला।

चाणक्य ने पत्र न भेजने का कारण लिखा है कि आलोचनाएं शत्रुओं की संख्या बढ़ाती हैं, बात अपनी जगह एकदम सही है। जैसा चाणक्य ने किया। उन्होंने महसूस किया कि उत्साही आमात्यों के आग्रह और मातुल के दबाव को टालना शायद चंद्रगुप्त के लिए संभव नहीं होगा। और संभवत: यही बात लिंकन ने सोची होगी। यदि ये दोनों महापुरुष अपने-अपने पत्र संबंधित लोगों तक पहुंचा देते तो आज इनकी महानताओं का जिक्र नहीं होता।

अधिकांश लोग अपनी आलोचना से उत्तेजित हो जाते हैं, यह गलत है। किसी भी तरह की आलोचना पर तत्काल कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करें, बल्कि एकांत में उस पर आत्म विश्लेषण करें फिर जरूरत के अनुसार अगला कदम उठाएं। किसी के अच्छे कामों को देखकर यदि हम प्रशंसा के दो बोल नहीं बोल सकते तो कम से कम कड़वी बातें करके या आलोचना करके सामनेवाले का दिल तोड़ने का गुनाह तो न करें। आपकी सोच एवं प्रयास सकारात्मक होने चाहिए। घर हो या बाहर अपने द्वारा किए गए काम के साथ-साथ आलोचना सुनने के लिए भी मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिए। प्यार, दया, क्षमा, सहानुभूति, सहनशीलता आदि प्रकृति से मिले वे उत्तम गुण हैं। जिनसे प्रेरित होकर आप सभी के लिए बेहतर कार्य करने को आगे बढ़ते हैं। अत: किसी की भी आलोचना करने पर आप अपने इन गुणों का त्याग न करें। अहं व आत्मसम्मान के बीच एक झीना परदा होता है। शायद यही वजह है कि कई बार लोग इन दोनों में फर्क नहीं कर पाते और गलतफहमी का शिकार होकर अपने ही आसपास रहनेवाले लोगों को भी दुखी कर बैठते हैं। आवश्यकता है पहले इन दोनों के फर्क को समझने की।

हमें हल्की लगनेवाली बातों का भी महत्व होता है। रोते हुए के आंसू पोंछना, हंसाना, सहायता करना, गिरे हुए को उठाना, टूटे दिल को ढांढस बंधाना, किसी उदास चेहरे को प्रसन्न करना भी हमारा ही काम है। हम एक-दूसरे के अवगुण ढूंढने में लगे हैं। इससे आनेवाली युवा पीढ़ी पर भी असर पड़ता है। हमें सिर्फ आलोचना नहीं समालोचना करनी चाहिए ताकि दूसरे लाभान्वित हो सकें। आलोचना ही करते होंगे तो गुण कैसे जान पायेंगे।

आलोचना एक दोधारी तलवार की तरह होती है। एक तरफ आप इसके आधार पर अपने झूठे अहं को दरकिनार कर गहरी समझ विकसित कर सकते हैं तो एक तरफ आप आलोचना को दिल पर ले संबंधित शख्स से अपने संबंध बिगाड़ सकते हैं। कह सकते हैं कि यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि वह आलोचना को किस तरह लेता है। उससे अपना विकास करता है या झूठे अहं में पड़ अपने को सही ही मानता रहता है।

बात को गंभीरता से लें- भले ही आलोचना कितनी ही चोट क्यों न पहुंचाए, लेकिन दूसरे को पूरे ध्यान व गंभीरता के साथ सुने। आलोचना रूपी सलाह को सिरे से खारिज करने के बेहतर होगा कि जो सही हो उसे आत्मसात करें। उसे स्वीकार कर स्वयं का विकास करें। इस क्रम में अपनी निर्णायक क्षमता का बेहतर इस्तेमाल कर वही बातें स्वीकार करें जो आप पर लागू होती है। ऐसा न हो कि आलोचना का वह हिस्सा भी मान ले जो आप पर लागू ही न होता हो।

दिमाग को खुला रखें- भले ही आप कितने ही सफल क्यों न हो जाएं। लेकिन यह ध्यान रखे कि सुधार की गुंजाइश हमेशा रहती है। इसे मान लेने से सकारात्मक आलोचना अपने हित में लेने की आदत हो जाती है। इसके लिए दिमाग हमेशा खुला रखने की जरूरत है। किसी ने कोई बात की, जो आलोचना है, तो तुरंत ही किसी निर्णय पर पहुंचने के बजाय उस बात पर गंभीरता से मनन करें। ईमानदारी से विचार करें कि कही गई बात में कहीं भी कोई रत्ती भर भी सच्चाई है ? आलोचनात्मक टिप्पणी की सारगर्भिता का सह आकलन परिपक्वता और विकास की दिशा में उठा पहला कदम होता है। बात भले आचार-व्यवहार, जीवनशैली में बदलाव की हो या फिर कार्यशैली में परिवर्तन की। हमें हमेशा जागरूक रहना होगा कि हम कैसे इन क्षेत्रों में अपनी ताकत बढ़ा सकते हैं।

अंतर समझे- आलोचना दो तरह की होती है। एक का मकसद आपकी कमियों को सामने ला उसे दूर करना होता है, जबकि एक महज ईर्ष्यावश या पूर्वाग्रह से ग्रसित होती है। जरूरत इस अंतर को समझने की है। कमियों को इंगित करती यानी सकारात्मक आलोचना को अंगीकार करने की जरूरत है तो नकारात्मक आलोचना और उसे करने वाले से दूरी बनाने में ही भलाई निहित है।

दिल की बात सुनें- जो शख्स आपकी किसी बात या काम की आलोचना कर रहा होता है उसका मूल आधार उसकी ही तार्किक क्षमता व बुद्धिमता होती है। ऐसे में अपने दिल की बात भी सुनें।

दूसरों का नजरिया जानें- अगली बार जब आपका सामना अपने किसी आलोचक से हो तो यह समझने की कोशिश करें कि आलोचना करना एक मानवीय प्रवृत्ति है। अत: जो आलोचना कर रहा है उसके नजरिए को भी समझने की कोशिश करें। हो सकता है कि वह अपनी जगह सही हो और चूंकि आप इस तरफ खड़े हैं इसलिए वह आलोचना आपको गलत लग रही हो। अत: गहराई तक जाकर विचार करें कि आखिर इस तरह प्रतिक्रिया व्यक्त करने के पीछे उसका आधार या नजरिया क्या है।

आलोचना को नजरअंदाज करने या कड़ी प्रतिक्रिया देने की प्रवृत्ति से बचे। इसकी वजह २ है। एक, इसका समय नहीं है। दूसरे, आपके संबंधों का विश्वास और समर्पण प्रभावित हो सकता है।

वादा करें- अपनी आलोचना करने वाले से वादा करें कि आप उसकी बातों को अमल में लाने की कोशिश करेंगे।

इसके साथ ही उसका धन्यवाद करना भी न भूलें। इस तरह न सिर्फ आप उसके क्षोभ को कम कर सकेंगे, बल्कि पूरी वार्ता शांतिपूर्ण ढंग से समाप्त भी कर सकेंगे।

आत्मालोचना से बड़ा उपचार कोई और नहीं है किन्तु जब यही बात सामाजिक धरातल पर निंदा के रूप में दिखाई देती है तो कुछ और प्रकार से विचार करना पड़ता है। क्योंकि सामाजिक जीवन, सार्वजनिक जीवन में काम करनेवाले लोग आलोचना तो सह सकते हैं, समालोचना का भी स्वागत कर सकते हे, किन्तु भावों में यदि मैलापन है, कषाययुक्त विचार पद्धति है, सायास अपमानित करने का योजनापूर्वक प्रयास है तो कोई भी स्वाभिमानी एवं शुद्ध चरित्र का व्यक्ति इसे सहन नहीं कर सकता।

जब निष्कपट व्यवहार को दरवाजे से बाहर ढकेल दिया जाता है तो चापलूसी बैठक में आ जाती है। संस्था में काम करते हुए कई ऐसे मौके आते हैं, जब आपको अपने साथ काम करनेवाले कर्मचारियों से संतुष्टि नहीं मिलती है। उनसे जो आशा होती है, वह पूर्ण नहीं होती है। इसका नतीजा यह होता है कि आपको गुस्सा आता है और आप अपने मातहतों की आलोचना करने पर मजबूर हो जाते हैं। एक अच्छे व्यवस्थापक को किसी की आलोचना कैसे करते हैं, इसके बारे में पता होना आवश्यक है। आलोचना करते हुए एक सिद्धांत का ध्यान रखना आवश्यक है कि आलोचना का उद्देश्य किसी को सजा देना या उसको बुरा महसूस कराना नहीं है। आलोचना का उद्देश्य तो कर्मचारी का ध्यान उसकी गलती पर आकर्षित कराना है। उसको समझाना है कि इस गलती को भविष्य में कैसे रोका जा सकता है और थोड़ा-सा उसको चिन्तित महसूस कराना है, ताकि वह भविष्य में बेहतर काम दे सकें। आलोचना करते हुए एक सिद्धांत का ध्यान रखना चाहिए आदमी को न देखा जाएं उसके उद्देश्य को देखा जाएं। यानी आलोचना मुद्दों पर होनी चाहिए, व्यक्तियों की नहीं। कई वक्त पर यह ठीक रहता है कि आलोचना करते हुए थोड़ी-सी तारीफ कर दी जाए। आलोचना को निगलना एक कर्मचारी के लिए बहुत मुश्किल होता है। इसलिए उसकी थोड़ी-बहुत तारीफ भी कर देना चाहिए। ताकि आपकी आलोचना का उद्देश्य भी पूरा हो और कर्मचारी को अनावश्यक मानसिक परेशानी भी ना हो। यदि परिस्थितियां ऐसी हो जाएं कि कर्मचारी की कड़ी आलोचना अतिआवश्यक है, तो उसकी आलोचना सबके सामने ना करें। उसे अकेले में बुलाएं और उसकी आलोचना बिना चिल्लाए व अपने दिमाग का संतुलन रखकर करें। उसे इस बात का अहसास करा दें कि आलोचना व्यक्तिगत नहीं है। उस कर्मचारी की जगह यदि कोई दूसरा भी होता और उसने इस तरह के कार्य किए होते, तो उसकी भी उतनी ही आलोचना होती। हम सब गलतियां करते हैं। इसलिए अपनी आलोचना को मुलायम करो। अपनी आलोचना का उपयोग दूसरो की सहायता करने में करो ना कि उसको सजा करने में।

दफ्तर में चाहे आप सोएं या दिन-रात काम करें, दूसरों से गप्पे लड़ाएं या फिर सिर्फ अपने में ही मस्त रहें, हर सूरत में आपको अपनी आलोचना से दो-चार होना पड़ता है। यह एक ऐसी चीज है, जिससे लाख चाहने के बावजूद आप बच नहीं सकते। ऐसे में जरूरी है इसकी वजहों को समझना और अपने आपको इससे बचाने के लिए सही नीति बनाना।

हम सभी की कुछ न कुछ हसरतें होती हैं। चाहे वह जिंदगी में आगे बढ़ने की हों या फिर दूसरों से अपेक्षाएं हों। लेकिन

जब ये पूरी नहीं होती, तो मन में असुरक्षा घर करने लगती है। ऐसे में अगर वही चीज किसी दूसरे को मिलती है, तो कहीं न कहीं वह ईर्ष्या का सबब बन जाती है। वैसे भी माना जाता है कि सफलता अपने साथ इतने दोस्त नहीं लाती, जितने कि दुश्मन। इन सबकी वजह से शुरू होता है एक-दूसरे की यहां-वहां आलोचना करने का खेल। अक्सर लोग दूसरों को नीचा दिखाने के लिए भी उनकी बुराई करते हैं। वैचारिक मतभेद के साथ-साथ फ्रस्ट्रेशन भी निंदा का कारण हो सकता है।

अगर कोई आपकी बुराई कर रहा है, तो परेशान होने की जगह उसकी बात को नजरंदाज कर दें। क्योंकि अक्सर लोग बातें बनाने के लिए दूसरों में कुछ न कुछ कमी ढूंढते रहते हैं।

आलोचना व्यर्थ होती है क्योंकि इससे दोषी प्राय: अपने को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगता है। आलोचना भयावह भी है क्योंकि वह मनुष्य के बहुमूल्य गर्व पर घाव करती है, उसकी महत्ता के भाव को पीड़ा पहुंचाती है और उसके क्रोध को भड़काती है। आलोचना वृक्ष की शाखा से फूल और कीड़े-दोनों को एक साथ अलग कर देती है।

समाज और बिरादरी में उस परिवार के पिता पुत्र के मेलजोल और सौहार्द्रपूर्ण संबंधों की मिसालें कही-सुनी जाती थीं। तभी अचानक एक मोड़ आ गया। नए बन रहे मकान में रसोईघर का द्वार किस दिशा में हो और कमरे व पूजाघर किस आकार के, इन बातों पर बुजुर्ग पिता-बेटे में ठन गई। पिता वास्तु के हिसाब से निर्माण चाहते थे, बेटे की निगाहें सुविधा और स्पेस के किफायती इस्तेमाल पर थीं। दोनों अपनी-अपनी जगह ठीक थे। कोई पक्ष दूसरे को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता, यह हर कोई ठोक कर कहता। तो भी दोनों के बीच पसरे विवाद को सुलझने व पहले जैसा प्यार भरा वातावरण बनने में महीना लग गया।

अहसमति का अर्थ अनिवार्यत: विरोध, शत्रुता या वैमनस्य नहीं है। आपके विचार या कृत्य का विरोध करते परिजन के भाव को समझें। क्या विरोध करना उसका स्वभाव है, जिस वजह से विरोध है उस क्षेत्र में सामने वाले की पैठ नहीं है, क्या विरोध से उसका निजी स्वार्थ सिद्ध होता है? यह भी विचारें, जब आप दूसरे की राय खारिज कर अपनी ही करते हैं, तब क्या वे आपको प्रश्रय देना बंद कर देते हैं? विरोध करनेवाले से वैमनस्य या उससे संवाद तोड़ना संकीर्ण सोच का परिचायक है।

आलोचना यदि बेतुकी या कदाशयता से प्रेरित है तो बगैर उसमें उलझे, उसे तुरत खारिज कर दें ताकि ऊर्जा निरर्थक कार्य में नष्ट न हो। पते की आलोचना फीडबैक बनकर हमारी सोच, व्यवहार और कार्य को निखारती है। खुशहाली और तरक्की की राह में मतांतर स्वाभाविक हैं बशर्ते उसके पीछे सदाशयता हो। फिजी के पूर्व राष्ट्रपति जोसेफा इलोइलो के अनुसार विकास की सुखद अवस्था वह होती है जब मतांतर और विविधताएं विभाजन और अविश्वास का नहीं बल्कि सशक्तता और प्रेरणा का स्त्रोत बने।

आलोचनाये शत्रुओं की संख्या बढाती है। जब हम किसी की आलोचना करते है तो वह हमारे सुझावों पर अमल नहीं करता, बल्कि हमारा शत्रु हो जाता है, हमारे विरुद्ध हो जाता है। कई बार घर-बाहर या कार्यस्थल को परिस्थितियां हमें उदिग्न कर देती है, हमें व्यथित बना देती है। हम खिन्नता और उदासियों से भर जाते है। ऐसा तब होता है जब हमें हमारी अपेक्षाओं के विपरीत वातावरण मिले, कोई हमारी बात न माने या हमारे उपकार के बदले उपकार मिले अथवा कोई हमारी

सदाशयता पर आघात कर दे। तब हम सामान्य नहीं रह पाते, विचलित हो जाते है और हम सम्बधित व्यक्ति या विचार की आलोचना करने लग जाते है। इससे हमारा गमोगुबार तो निकल जाता है किन्तु वातावरण बिगड जाता है और वह व्यक्ति हमारा स्थायी शत्रु हो जाता है।

आलोचनाये हमें दो प्रकार से नुकसान पहुंचाती है एक आन्तरिक और दूसरी बाह्य। जबान पर आलोचनात्मक शब्द आने के पहले हमारे भीतर आलोचनात्मक भाव उत्पन्न होते है जो हमारे भीतर नकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न करते है तथा हमारे विचारों, शब्दों-वाक्यों को ही नहीं हमारी शैली को नकारात्मक प्रतिक्रिया वादी बना देता है। आलोचनायें हमें एकाकी बना देती है। ऐसे लोगों से कोई दोस्ती नहीं करता जो केवल आलोचनायें करते है। ऐसे लोग घर और बाहर दोनो जगह अलोकप्रिय होते है। उनके चेहरों पर मुस्कराहट नहीं होती। जीवन में उमंग नहीं होती। वे हमेशा तनाव में रहते है चिडचिडे होते है और फिर हम किसी की आलोचना करके हम कुछ भी साबित नहीं कर सकते। हम स्वयं को योग्य और दूसरे को अयोग्य ठहराते है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को योग्य समझता है। वह अपनी समझ, अनुभव, परिस्थिति के अनुरूप निर्णय लेता है। तब वह आपकी आलोचना नहीं सहेगा। यदि आपको किसी का कार्य पसन्द नहीं आया, आप उसकी आलोचना करने जा रहे है तो पहले स्वयं को उस परिस्थिति में रखकर देखे। आपका विचार ही बदल जायेगा।

निन्दा- संसार अन्धा है। मनुष्य को परचर्चा, पर निन्दा करने में अत्यन्त ही सुख मिलता है। परचर्चा हमें मिश्री से भी अधिक मीठी और नवनीत से भी अधिक स्निग्ध प्रतीत होती है। तभी तो जिनसे अपना कोई प्रयोजन नहीं, उनके विषय में बातें करते-करते हम विश्राम नहीं लेते। विशेषकर बुराई में तो हमें मधु से भी अधिक मिठास आती है। सभी कामों में अच्छाई और बुराई दोनों का समावेश रहता है। गुण दोष समान भाव से सबमें सन्निहित हैं। बहुत-से पापों से हम लोकापवाद के भय से बच जाते हैं और बहुत-से पाप हमें लोकापवाद के भय से करने पड़ते हैं। यदि संसार इतना परापवाद प्रिय न हो, यदि अच्छे कामों की प्रशंसा और बुरे कामों की निन्दा होना बन्द हो जाय तो समाज की श्रृंखला ही टूट जाय। इसीलिये हम समाज में रहकर कभी अपने मन की बात को भी नहीं कर सकते और जिसे करना नहीं चाहते वह भी करनी पड़ती है।

जब हम किसी की प्रशंसा करने लगते हैं तो उसके सम्बन्ध के सभी अवगुण को भूल जाते हैं और उसके गुणों का ही बढ़ा-चढ़ाकर बखान करते हैं। इसके विपरीत जब हम किसी की निन्दा करने पर उतारू होते हैं तो उसके गुणों को एकदम भूल जाते हैं। उसके शरीर में, उसके परिवार में, उसकी जाति में, उसके सम्प्रदाय में, उसके देश में जो अवगुण होते हैं, उन्हें ही तिल का ताड़ बनाकर कहते हैं। नीच पुरुष झूठी भी निन्दा करते हैं, किन्तु साधारण लोग निन्दनीय बातों की निन्दा करके विपक्षी को चिड़ाते हैं। निन्दास्पद बात हो और वह सत्य हो तो इससे विपक्षी को लज्जा आती है और अपमान के कारण क्रोध भी आता है।

हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जहां पूर्णता का बोलबाला है। हममें से प्रत्येक किसी न किसी के प्रति किसी हद तक जवाबदेह हैं। ऐसे परिदृश्य में सबसे कठिन हो जाता है अपनी आलोचना को स्वीकार कर पाना। हालांकि यह भी सच है

कि कैसी भी आलोचना स्वीकारना मुश्किल ही होता है भले ही वह हमारी भलाई के लिए ही क्यों न हो। किसी की पीठ पीछे बुराई करना भी एक बहुत बड़ा गुनाह और पाप है।

नकारात्मक आलोचना का नाम ही निन्दा है। अपने बारे में कुछ भी नकारात्मक सुनकर लोग अक्सर बहुत जल्दी गुस्से में आ जाते हैं, लेकिन इससे बात बिगड़ती ही है। न तो ऐसे लोगों की बातों पर ध्यान देना चाहिए और न ही उनसे बहस करनी चाहिए। अगर कोई आपकी आलोचना करता है, तो आप जवाब जरूर दें, लेकिन बातों से नहीं, अपने काम से। आप इतना बेहतर करके दिखाएं कि आपके आलोचक खुद ही चुप हो जाएं और उन्हें पता चल जाए कि उनकी बातों का कोई आधार नहीं है। वैसे भी संयम से काम ले ने पर हम हालात को अच्छी तरह समझ पाते हैं। जरूरी नहीं कि आपके बारे में कही गई हर नकारात्मक बात गलत ही हो। अगर एक ही बात की लोग बुराई करते हैं, तो आपको उसे गंभीरता से लेना चाहिए। हो सकता है कि आप अपनी किसी गलत आदत को पकड़ न पा रहे हों। ऐसे स्थिति में जानकारी लेना अच्छा विकल्प हो सकता है। आप अपने बारे में दूसरों के विचारों और अपने आत्मविश्लेषण से पता लगा सकते हैं। मालूमात में अपनी गलतियों को जानने के बाद उन्हें खुले दिल से स्वीकारें और उनके लिए कोई बहाना न बनाएं। इससे आपकी इज्जत कम नहीं होगी। निंदा चाहे किसी भी तरह की क्यों न हो, यह आपको बहुत कुछ सीखने का मौका देती है। जिंदगी में कोई भी पूर्ण नहीं हेाता और सुधार की गुंजाइश सभी में होती है। इसलिए अपनी बुराई पर मुंह बनाने या परेशान होने के बजाय, इसे अपने को सुधारने का जरिया बनाएं। अगर किसी आदत या व्यवहार पर ज्यादा टिप्पणी की जाती है, तो आप उसे बदलने की कोशिश करें। यह पूरी तरह आप पर निर्भर करता है कि अपनी निंदा को आप कितना सकारात्मक बना सकते हैं।

यह जान लो कि किसी की अनुपस्थिति में उसकी निन्दा करना पाप है, तुम्हें पूरी तरह इससे बचना चाहिए। मन में सैकड़ों बातें आ सकती हैं, पर यदि तुम उसे व्यक्त करते हो तो फिर उससे तिल का ताड़ बन जाता है। यदि तुम क्षमा कर दो और भूल जाओ तो बात वहीं पर समाप्त हो जाती है। यदि तुमसे कोई व्यर्थ विवाद करने आए तो नम्रता के साथ अपने को अलग कर लो। तुम्हें सभी सम्प्रदाय के लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए। जब तुममें ये प्रधान गुण आ जाएंगे, तभी तुम प्रबल उत्साह के साथ कार्य कर सकोगे। किसी व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसके बारे में बुराई करना, यह ही निंदा है। किसीकी निंदा सुनना अपराध और पाप है।

किसी की निन्दा का प्रकरण हो तो उसे कितने चाव से सुनते हैं पता नहीं उस समय नींद कहाँ भाग जाती है, चित्त तन्मय हो जाता है। इच्छा होती है इसे इस प्रकार अनादिकाल तक सुनते रहें। अर्धरात्रि हो जाय पूर्णरात्रि समाप्त हो जाय किन्तु निन्दा सुनने से चित्त नहीं भरता। उसमें कुछ लेना देना नहीं, पल्ले कुछ नहीं पड़ता किन्तु मन का स्वभाव है लोकवार्ता में फँसे रहना। जो लोग सदैव दूसरों की निन्दा और छिद्रान्वेषण में लगे रहते है, उनसे बचना चाहिए, क्योंकि उनके पास रहने से अपना स्वभाव भी वैसा ही वनता है।

अक्सर लोगों की आदत है कि जहाँ गपशप चलती है वहाँ निन्दा शुरू हो जाती है। लोगों को निंदा सुनने में रस आता है। सुनने को भी मन करता है। निन्दक व्यक्ति आपके घर में कांटे बिखेर रहा है और निंदा सुननेवाला यह न सोचे कि मौन हो जाने से सावधान हो जाता है। ऐसे विषयों में मेरा कोई रस नहीं है, मेरी कोई रुचि नहीं है। दुनिया ऐसी है कि जो आप

करोगे उसी में दोष निकाल देगी। यह संभव नहीं है कि सबसे यश मिले। अत: साहस जुटा करके अपना काम करते रहे और निन्दक को बाधक न समझे। निन्दक तो आपको नीचे लाना चाहते हैं तो स्वीकार करे उसका परिष्कार कर लें और यदि हमें लगता है कि कही हुई बातें गलत हैं तो उन बातों को लेकर अपना मन खिन्न मत होने दे और अपने मार्ग में आगे बढ़ते रहे। निन्दक के साथ मिलकर अपना अमूल्य समय न गवाएं। अत: निंदा करना, निंदा सुनना और निन्दा में रस लेना ये सब प्रमाद के कारण है।

चापलूसी- खुशामदी और प्रशंसकों के घेरे में रहते वे अभागे हैं जो स्वयं को परिपूर्ण मानते हुए टीका-टिप्पणी नहीं सह पाते। वे नहीं सुधरेंगे क्योंकि उन्होंने बेहतरी का मार्ग ठप कर दिया है। राजनीति और नौकरशाही में ऐसों का वर्चस्व है जिनका चलना-फिरना, बोलना, सब कुछ वाहवाही करते चाटुकारों बगेर दुष्कर होता है। बड़ा-सा खोल पहने, विरोध सहने में अक्षम व्यक्ति भीतर खोखला होता है, उसकी सोच में भावों-विचारों की उन्मुक्त अभिव्यक्ति को स्थान नहीं।

स्वतंत्र सोचवालों को टोकने, झकझोरने वाले चाहिए। प्लूटार्क ने कहा, मुझे वह नहीं चाहिए जो मेरे साथ बदले। मैं मुंडी हिलाऊं तो वह भी हिलाए, ऐसा मेरी परछाई बखूबी करती है। विकसित वही होगा जो मतांतर का स्वागत करे। प्रतिमाएं और स्मारक महापुरुषों की स्मृति में ही नहीं, कापुरुषों और विरोधियों की भी स्थापित की जानी चाहिए, जिनकी मेहरबानी से हमने चौकस, सजग, धैर्यशील बनना सीखा।

शब्दकोश में चापलूसी के माने है बिना किसी किसी वजह के, उपरी मन से या जो-हुजुरी की ढंग से दूसरों की तारीफ करना या उनपर काबू पाना बहुत कठिन है, क्योंकि बहुत से लोगों को अपनी चापलूसी सुनना अच्छा लगता है और उससे खुश होकर चापलूसी करनेवालों को वे इनाम भी दिया करते है।

दूसरों की चापलूसी करके फायदा उठाने वाले स्वार्थी और महत्वकांक्षी लोगों को चापलूसी की आदत हो जाती है। यह आदत उन लोगों को बहुत ना पसन्द होती है जो नम्रता और सत्य के प्रेमी होते है।

चापलूसी करने वाले वफादार नहीं होते। उनकी नस नस में कपट समा जाता है। लेकिन वे अपने फन में माहिर होते है और इस तरह अपने स्वार्थ की पूर्ति करते है।

जहां तक दूसरों की तारीफ करने की बात है, उसमे दो तरह के लोगों से बचना चाहिये। एक तो वे जो कभी किसी की तारीफ करते ही नहीं। उनमे अहंकार और ईर्ष्या भरी रहती है और वे अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझते। दूसरे वे लोग है जो दूसरों की तारीफ दिल से नहीं करते, बल्कि अपने मतलब से या अपने फायदे के लिये करते है।

इन दो से अलग तीसरे वे लोग है जो तारीफ का काम होने पर तारीफ करते है। वे ऊंचे और बलवान चरित्र के लोग होते है जिनको छल, कपट जरा भी पसन्द नहीं होता।

चापलूसी करना आसान है, सच्ची तारीफ करना कहीं अधिक मुश्किल है। उत्साह वर्धन और चापलूसी में फर्क है। एक में ईमानदारी रहती है दूसरे में बेईमानी। चापलूसी से बहुत नुकसान होता है। आदमी धोखे में रहता है और असलियत जान नहीं पाता। शरीर और आत्मा की दृष्टि से किसी आदमी को प्रोत्साहन देने से उसके विकास में मदद मिलती है। उसकी चापलूसी करने से उसकी प्रगति या तो मंद पड जायेगी या एकदम ही रूक जायेगी। चापलूसी से दोनों का पतन होता है जिसकी की जाये और जो करे उसका भी।

दम्भ-पाखंड, छल-कपट, धूर्तता, विश्वासघात, धोखा

धार्मिक होना, धर्म कृत्य करना कभी भी अच्छा है, लेकिन धार्मिकता का प्रदर्शन करना, धर्म कृत्यों का दिखावा करना दांभिकता का लक्षण है। वह निंदनीय है। धर्म के आचरण से मिलने वाले सभी फायदे उसके कारण नहीं होते। दम्भ का एक और खराब प्रकार है। लोग धार्मिक नहीं होते। धर्म का आचरण भी नहीं करते, पर धार्मिकता का प्रदर्शन बढ़ चढ़ कर करते है। यह व्यक्तिगत रूप से बडा ही खतरनाक होता है। कुछ चालाक लोग घर में चुपचाप कर्म काण्ड, पूजा पाठ करते है पर बाहर उसका मजाक उडाते है। धार्मिकता का न प्रदर्शन होना चाहिये और न ही अहंकार। धर्म कृत्यों का ढिंढोरा नहीं पीटना चाहिये अन्यथा वह दम्भ हो जायेगा। पाखण्डी माने पापके खण्ड। दम्भ का अन्त सदैव नाश होता है और अहंकारी आत्मा सदैव पतित होती है। जो अपनी बुद्धि पर पर्दा डाल लेते है अपने ज्ञानपर आवरण डाल लेते है वही कपट है।

झूठ मूठ डरना दम्भ है। अकारण आँसू बहाते रहना दम्भ है। यहाँ-वहाँसे बलात् शोक मत इकट्ठा करो। हृदय में जब तक हिंसा के भाव हैं, तब तक उससे सभी भयभीत होते रहते हैं। हिंसा तो द्वेष से होती है। जिनके हृदय में द्वेष है उस पर कौन कृपा कर सकता है। हृदय से हिंसा हटी नहीं कि फिर सब ओर से कृपा की दृष्टि होने लगती है, सभी उसके सानुकूल हो जाते हैं,शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। बीराने भी अपने बन जाते हैं। उसके सभी अपराध भूला दिये जाते हैं, उसका सब ही सत्कार करते हैं।

धूर्त लोग वेष के द्वारा लोगों को ठग लेते है। वेष तो सज्जनों का-सा बनाते हैं, काम दुर्जनों के करते हैं। ऊपर से तो साधुओं का-सा बाना बना लेते हैं, भीतर असाधुता भरी रहती है। ऊपर से तो अपने को धर्मात्मा प्रकट करते हैं, किन्तु मन में अधर्म भरा रहता है। इसी को दम्भ, ढोंग, पाखण्ड, छल, छद्म, तथा बनावटी वेष कहते हैं। ऐसे धर्म का कवच पहिनने वाले अधार्मिक पुरुष ही पाप का प्रचार करते हैं। भीतर और बाहर यदि अधार्मिक अपना यथार्थ रूप रखकर अधर्म का प्रचार करें तो उनकी सुनेगा कौन, उसे मानेगा कौन? वे तो अधर्म का, धर्म का बाना पहिना, भोली-भाली जनता को बहकाते हैं। लोग उनके प्रबल तर्कों से उनके महात्मापने के वेष से भुलावे में आ जाते हैं और अधर्म को ही मानने लगते हैं। शास्त्र के वचनों का विपरीत अर्थ कर देना छल है।

विश्वासघात- घातों में बड़ा घात होता- विश्वासघात। इसलिए, स्पष्ट, साफ बात करना। कभी भी किसी के साथ, विश्वासघात मत करना। हमेशा तुम भगवान से डरो, न डरो, पर विश्वासघात से डरना। फिर तो स्वत: ही फूटेगा, सुख एवं शांति का निर्मल झरना। विश्वासघात से डरना, मेरे बन्धु। कभी विश्वासघात मत करना। विश्वासघात से बड़ा कोई पाप नहीं होता, जिसके अंतर्गत अनेक पापों का समावेश है।

** एक आंगन में दो आंगन हो जाते हैं, मत पूछा कर किस कारण हो जाते हैं,*
राम की बस्ती में जब दंगा होता है, हिंदू-मुस्लिम सब रावण हो जाते हैं।
** जब टूटने लगे होसला तो इतना याद रखना कि, बिना मेहनत के तख्त ओ ताज हासिल नहीं होते, ढूंढ़ लेते हैं जुगनू अंधेरों में भी मंजिल क्योंकि वो कभी रोशनी के मोहताज नहीं होते।*

विनय, विनम्रता

एक बार आंधी ने अकड कर बसन्त की सुहावनी शीतल हवा से कहा, देखा मुझमें कितनी शक्ति है, जब मैं चलती हूँ तो पहाड के पहाड हिल जाते है, धरधती कांप उठती है। बडी बडी गगनचुम्बी इमारते धूल में मिल जाती है और मनुष्य डर के मारे इधर-उधर छिपने लगते है मेरा बल अत्यन्त है। तेरे में तो जरा भी ताकत नहीं है। बसंती हवा ने आंधी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बल्कि विनम्रता से नमस्कार करके एक ओर चल दी। वह जहां जहां भी गई सबने उसका खुले दिल से स्वागत किया। मनुष्य ही नहीं फूल, पौधे, नदी, तालाब सभी खुश हो गये और पक्षी भी चहचहाने लगे। चारों ओर सुगन्ध और खुशहाली का वातावरण छा गया। नम्रता मुंह से बोलकर नहीं, कर्म करके दिखाई जाती है। यही शिष्टाचार है।

उद्धत स्वभाव ही दूसरों से मन में क्षोभ उत्पन्न करता है। जिसने अशिष्टता को त्यागकर विनय का पल्ला पकड़ लिया है, उस विनयी पुरुष के सम्मुख सभी मस्तक झुकाते हैं। विनय हमें स्वर्ग से भी ऊँची सीढ़ी पर चढ़ाकर मोक्ष तक पहुँचाती हैं, भगवती भक्ति के मन्दिर में प्रवेश करा देती है। अत: भक्तोंका सर्वश्रेष्ठ भूषण विनय ही है। जो दुश्शील है, शालीनता का जिन्होंने त्याग कर दिया है, वे इस लोक तथा परलोक में प्रतिष्ठित नहीं कहा सकते।

सिर झुकानेका अभ्यास अभिमान को मिटानेवाला है। दूसरेको गौरव देना स्वयं गौरव पानेका मार्ग है। जब समुद्रकी लहरोंमें स्नान करते हैं, उस समय जो कड़ा होकर खड़ा रहता है, उसे लहर पटक देती है। जो डुबकी लगाकर बैठ जाता या ऊपर उछल जाता है, उसपर लहरका प्रभाव नहीं पड़ता। अत: या तो संसारसे ऊपर उठ जाओ या संसारमें विनयसे काम लो। थोड़ा झुक जानेसे काम बनता हो तो अपना काम बिगाड़ देनेसे थोड़ा झुक जाना अच्छा है। मनुष्यके जीवनमें विनयकी आवश्यकता है। अभिमान दुर्गुण है और विनय सद्गुण। विनम्रता के गुण में सबको अपना बना रहने का राज छुपा होता है। विनम्रता के आईने में यश प्रतिष्ठा का प्रतिबिंब नजर आता है। अगर इस आईने में अहंकार की धूल जम जाएं तो प्रतिष्ठा की चमक धुंधली हो जाती है। जीवन के गगन में विनम्रता का अकेला सूरज ही अपनी अनगिनित किरणों में से समस्त गुणों को प्रसारित करने में सक्षम होता है। जिस प्रकार सौम्यता के कारण चंद्रमा, मधुरता के कारण अमृत संसार में प्रिय है ऐसे ही नम्रता के कारण मनुष्य संसार में प्रिय एवम् प्रतिष्ठित होता है। प्रतिष्ठा के भव्य भवन का निर्माण विनम्रता की बुनियाद पर निर्भर करता है। जिसके पास शोहरत की दौलत है और वे पलकें झपकाकर चलें तो दुनिया उन्हें पलकों पर बिठा लेती है और उनके स्वागत सम्मान में आँखें बिछा देती है। विनम्रता बहुत बडी सिद्धि है। अहंकार उन सिद्धियों को नष्ट करनेवाला है। अकडने वाला व्यक्ति किसी को साथ लेकर नहीं चल सकता। जिसमें विनम्रता होती है उसके साथ सैकडों हजारों व्यक्ति जुड जाते हैं, बडप्पन का लक्षण है विनम्रता। हमारी परंपरा में आचार्य सर्वोपरि होते हैं, पर दीक्षा पर्याय में कोई बडा साधु हो तो आचार्य पट्ट से उठकर वंदना (नमस्कार) करते हैं। भारतीय संस्कृति में एक शब्द बहुत महत्वपूर्ण है- णमो अर्थात नमस्कार। आर्य समाज में नमस्ते करते हैं। दिगंबर जैन परंपरा में एक विधि है- नमोत्थु। विशिष्ट व्यक्तियों को नमस्कार किया जाता है वहां णमोत्थुणं का प्रयोग किया जाता है। नमस्कार की अलग-अलग पद्धतियां हैं। हाथ जोडने की पद्धति भारत में प्रमुख रही है। इसका अर्थ है- दो का मिलना। दोनों साथ-साथ रह सकते है। साथ रहने का अर्थ है विनम्रता।

नम्र व्यवहार और बोलचाल से जिंदगी में इज्जत मिलती है। व्यवहार में कभी अहंकार न दर्शायें। आपके घमंडी होने से किसी का भोला हृदय आहत होकर हीनभावना से ग्रस्त हो सकता है। बडों को भी हमेशा छोटा बनकर रहना चाहिये, क्योंकि जो स्वयं को बडा मानता है वह छोटा हो जाता है और जो छोटा बनता है वही बड़ा पद पाता है। सफलता के शिखर पर पहुंचना नम्रता का नतीजा है।

सोच-विचार, वाद-विवाद, सम्वाद

सोच-विचार- विचार एक ऊर्जा है, जिससे मनुष्य का व्यक्तित्व प्रभावित होता है।

हम तो यही समझते थे कि हवा के झोकों की तरह कुछ बातें हमारे मन में उठती हैं और सागर की लहरों की तरह ही कहीं विलीन हो जाती हैं। इसीलिए अभी तक हम विचार को भाव समझते रहे हैं, कि जिसका कोई अर्थ नहीं माना जाता था। बहुत से लोग तो सागर की लहर को भी ऊर्जा नहीं मानते थे, लेकिन यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि सागर की लहर में अपार ऊर्जा है। उससे शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करनेवाला ऋणायन शक्ति भी पैदा होती है। हमारे मन में भी विचार की ऊर्जा पैदा होती है। स्पष्ट है विचार एक ऊर्जा है। जिस प्रकार क्रोध के वेग से मनुष्य का व्यक्तित्व प्रभावित होता है, उसी प्रकार विचार के वेग से मनुष्य का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होता है, लेकिन हमें उसका अनुभव नहीं होता है, क्योंकि ऐसी गहरी संवेदनशीलता अभी तक हमने पैदा नहीं की है। हमारा सेंस ऑर्गेन इतना संवेदनशील नहीं हुआ है कि विचार की उत्पत्ति के मूल स्रोत को जान सके, इसलिए हमें कभी पता नहीं चलता है कि मन में विचार कहां से उत्पन्न होता है? विज्ञान अब पूरी तरह मानने लगा है कि विचार एक शक्तिशाली ऊर्जा हैं। विचार का वेग तो इतना प्रबल है कि एक सेकेंड में पृथ्वी की तीन बार परिक्रमा कर ले। जिस विचार में इतना वेग हो, वह किसी भी वस्तु को आसानी से प्रभावित कर सकता है। पदार्थ एक स्थूल वस्तु है और विचार एक अतिसूक्ष्म ऊर्जा। वैज्ञानिकों ने माना है कि इस अदृश्य और सूक्ष्म ऊर्जा से पदार्थ को आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। हमारे वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि विचार के परमाणु पदार्थ के परमाणु को आसानी से प्रभावित कर देते हैं।

विचार की शक्ति ही मनन करने वालों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। विचार विश्व पर राज करते हैं। यह कथन विचारों की शक्ति एवं क्षमताओं का अहसास कराता है। यदि हम इतिहास के पन्ने पलट कर देखे तो पाते है कि मानव जाति का सम्पूर्ण इतिहास विचारों का इतिहास होता है। दुनिया भर में पैदा हुये उत्कृष्ट एवं महान विचारों की परिणति ही तो है। विचार परिवर्तनों के प्रणेता होते है। आज हम दुनिया में जो कुछ भी खोजे, उपलब्धियां और नित नये परिवर्तन देखते है उन सभी के मूल में कोई विचार ही है। और ये विचार ही जो सनातन एव शाश्वत होते है, वे समय के साथ लुप्त नहीं होते अपितु एक पीढी से दूसरी पीढी और यूँ ही निरन्तर पीढी दर पीढी आगे बढ़ते चले जाते है। खास बात यह है कि ये स्वयं को अपने शब्दों से पोषण देते है और विकास करते है। सेनाओं के आक्रमण का प्रतिरोध तो किया जा सकता है लेकिन विचार का प्रतिरोध नहीं किया जा सकता। प्रत्येक विचार उस नन्हें से बीज के समान होता है जिसमें एक महान वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति छिपी होती है।

हमारे विचार हमारी नियति और हमारे भाग्य को किस हद तक प्रभावित कर सकते है यह बात किसी विचारक के निम्न सुझाव द्वारा सहज ही स्पष्ट हो जाती है। वे सदैव कहते है कि अपने विचारों पर नजर रखे वे शब्द बन जायेंगे, अपने शब्दों पर नजर रखे वे कर्म बन जाते है, अपने कर्मों पर नजर रखे वे आपका चरित्र बन जायेगा, अपने चरित्र पर नजर रखे वही आपकी नियति, भविष्य और भाग्य बन जायेगा। उपनिषदों में भी कहा गया है कि आप वह है जैसे आपके विचार है, वैसी ही आपकी आकांक्षा होती है, जैसी आपकी आकांक्षा है वैसा ही आपका कार्य है, जैसा आपका कार्य है वैसा ही आपका

भाग्य है। तात्पर्य यह है कि हम सदैव उत्कृष्ट श्रेष्ठ एवं सकारात्मक विचारों को अपनाते रहे, उन पर चिन्तन करे, उन्हें अमल में लाये, क्योकि अच्छे विचार शक्ति के अजस्त्र स्त्रोत होते है जो हमें अपनी शक्ति और क्षमताओं का अहसास कराते है इनके साथ जीने वाले लोग इस शक्ति को श्वास के साथ अपनी रगों में प्रवाहित होता महसूस करते है। विचार मानवीय चिन्तन से उपजे अमूल्य मोती है। किसी ने कहा भी है कि अपने आपको खुशनुमा विचारों का नीड बनाये, क्योकि हम में से कोई नहीं जानता कि हम सुन्दर विचारों से परियों के से कैसे कैसे महल बना सकते है, जिन्हे कोई संकट मेट नहीं सकता। इन उत्कृष्ट एवं अनमोल विचारों के खजाने को कोई चिन्ता नहीं बिगाड सकती, न ही पीडा इन्हे धूमिल कर सकती है, न ही निर्धनता इन्हे हमसे छीन सकती है, ये ऐसे महल होते है जिन्हे हमारे हाथ नहीं बनाते पर जिनमें हमारी आत्मायें निवास करती है।

दुनिया व समय के साथ आगे बढ़ने के लिये यह श्रेयस्कर ही नहीं बल्कि अपरिहार्य भी है कि हम अच्छे एवं नवीन विचारों का स्वागत करे, हमारी सोच को बदले, हमारे विचारों को नित्य रखे इसी से हमारी चिर तरूणाई है।

शुभ सोचो, अशुभ नहीं- मानव का स्वभाव और प्रकृति ऐसी विचित्र है कि वह अशुभ की बात ज्यादा सोचता है। अशुभ के संकल्प उसमें जल्दी आ जाते हैं। मानव जब भी देखता है अपने भविष्य को तो उस पर अंधेरा छाया हुआ ही देखता है। वह केवल अपने ही लिए अशुभ सोचता हो ऐसा नहीं है किन्तु वह दूसरों के लिए भी अशुभ सोचता है। निरन्तर अशुभ के ही विचार करता है। ज्ञानियों ने कहा है- प्रात:शय्या से उठते ही, नयी जिन्दगी की शुरूआत करने से पहले, आंख खोलते ही क्या सोचेंगे ? जो भी पीड़ित है, जो दु:खी है उनके तन के दु:ख, उनके मन के दु:ख दूर होवे। सब प्राणी कल्याण, मंगल और आनन्द के दर्शन करे। कोई भी प्राणी दु:खी न हो, कोई प्राणी पीड़ा न पाये। यह सोचना शुभ है, पुण्य है, पवित्र है। ये लहरें ये पवित्रता की, जो हमारे मन पर पड़े घृणा-बैर के दाग धोती चली जाती है। अत: अपने लिए भी शुभ सोचो। लोग अधिकतर अपने सम्बन्ध में अशुभ सोचते हैं। सोचते हैं- आज का दिन तो निकला किसी न किसी तरह से, रात बीत रही है, अगला दिन न मालूम क्या होगा, कैसा होगा ? सोचते हैं कि बस दु:ख होगा व पीड़ा होगी। ज्ञानियों का कहना है- अपने लिए भी अशुभ सोचने से इन्कार करो और दूसरों के लिए भी अशुभ सोचने से इन्कार करो। जब व्यक्ति शुभ विचारों को अपने हृदय में स्थान देता है, जब सोचता है कि रात के बाद दिन आ रहा है तो पीड़ा की निशा के पीछे सुख का प्रभात भी खिलता है। उस सुनहले रंगीन प्रभात को भी देखो जो आ रहा है। हर पीठ को थपथपाओ-न अपने जीवन में अन्धेरे को, निराशा को स्थान दो और न दूसरे के जीवन में भी अशुभ के दर्शन करो। अपने बारे में भी कभी गलत बात मत सोचो और दूसरों के लिए भी मत सोचो कि ये अभागी है पामर है। हर पीठ को थपथपाओ। हर मुर्दे को जिन्दा करो। यह अनुभव करो कि अन्धेरा है, कोई बात नहीं। इस अन्धेरे के बाद प्रकाश का आगमन निश्चित है। आत्मा तो अनंत शक्ति है, जब जागरण होगा ये बन्धन रहेंगे नहीं। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में और अगले जन्म में नहीं तो उसके अगले जन्म में, लेकिन एक दिन निश्चित रूप से अनन्त आत्मज्योति प्रकट होगी। आज मिल रहा है तो वाह-वाह और अगर आज नहीं मिल रहा है तो भी वाह-वाह।

किसी व्यक्ति को सभ्य नागरिक बनाने में उसके विचारों का काफी योगदान होता है। हमारे मौजूदा विचारकों ने ही नहीं, बल्कि वेदों में भी इस संबंध में विस्तार से विचार-मंथन किया गया है। इसकी तसदीक महात्मा गांधी का यह

कथन करता ए मैन इज प्रॉडक्ट ऑफ हिज थॉट्स, व्हॉट ही थिंक्स, ही बिकम्स यानी विचार ही व्यक्ति के निर्माता हैं और व्यक्ति जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है। अपने विचारों पर नजर रखो, यही शब्दों का रूप धारण करते हैं। अपने शब्दों पर गौर करो, इसी से तुम्हारे क्रियाकलाप तय होते हैं। अपने क्रियाकलाप पर नजर रखो, यही आदतों का रूप लेते हैं। अपनी आदतों पर गौर करो, यही तुम्हारे आचरण का रूप लेती हैं और अपने आचरण पर नजर रखो, इसी से तुम्हारा भाग्य तय होता है।

इन दोनों ही कथनों का मूल वेदों में मिलता है। इन वाक्यों को हम न जाने कब से सुनते आ रहे हैं। पारंपरिक रूप में इस तरह के वाक्यों का रूप थोड़ा अलग भले ही है, पर लोगों को यह कहते हम सभी ने सुना है कि हमारी सोच ही हमारे व्यक्तित्व का निर्धारक तत्व होती है। यह भी कहा जाता है कि व्यक्ति अपने कार्यों से अपना परिचय देता है या फिर यह कि खानपान से व्यक्ति के चरित्र का पता चलता है। इन सब कथनों या उक्तियों के आधार वेद ही तो हैं।

इस कथन में जरा भी संशय नहीं है कि किसी भी व्यक्ति के भाग्य के बारे में उसके विचारों से जाना जा सकता है। निश्चय ही, महान बनने के लिए विचारवान होना जरूरी है। इसी तरह अपनी नियति या अपने भाग्य को बदलने के लिए अपने आचरण को बदलना आवश्यक है और आचरण को बदलने के लिए आदतों यानी स्वभाव में बदलाव लाना भी जरूरी है। अगर आदतें बदल जाती हैं, तो किसी काम को करने के हमारे अंदाज में अपने आप ही तब्दीली आ जाती है। काम को करने के तौर-तरीकों में बदलाव असल में हमारे विचारों में बदलावों को प्रकट करता है। हम वही करते हैं, जो सोचते हैं। हमारे क्रियाकलाप कुछ और नहीं, बल्कि विचारों के प्रतिफलन मात्र हैं।

दूसरे शब्दों में हम इसे इस तरह समझें कि अच्छा बनने के लिए सोच में सद्विचारों का समावेश जरूरी है। ऐसा तभी होगा, जब हमारा अंत:करण शुद्ध हो। विचारों को सकारात्मक बनाने के साथ-साथ सकारात्मक विचार पैदा करने का स्वभाव उत्पन्न करना भी जरूरी है। इसमें शक नहीं है कि भागदौड़ भरी आधुनिक जीवनशैली में तनाव और दूसरी समस्याएं कई बार हमारी नकारात्मक सोच को बढ़ा देती हैं, लेकिन कुछ उपाय करके ऐसी हालात से भी निबटा जा सकता है। इसके लिए हम योग, ध्यान आदि का सहारा ले सकते हैं। अपनी गलतियों को कागज पर उतारने या दूसरों के साथ उन पर चर्चा भी इस तरह की समस्या के हल का एक तरीका हो सकता है। यह सिद्धान्त कुछ और नहीं, बल्कि व्यक्ति के विचारों को बदलने की प्रक्रिया है। जो व्यक्ति यह कहता है कि गिलास आधा खाली है, इस सिद्धान्त के तहत उसे सिखाया जाता है कि वह गिलास को आधा भरा हुआ मानते हुए देखे। यह सही है कि दुनिया में घटित होने वाली एक ही घटना की व्याख्या कई प्रकार से की जा सकती है, लेकिन यहां अहम बात यह है कि हम उस व्याख्या को अपनाएं, जो हमारे लिए सबसे ज्यादा उपयोगी हो। नजरिए में बदलाव न लाना संकीर्ण मानसिकता का परिचायक है। कुछ लोग सड़क पर लड़के-लड़की को साथ देख अक्सर उनके बीच प्रेमप्रसंग की ही बात करते हैं, लेकिन कुछ लोग इसी बात को दूसरे रूप में (भाई-बहन के रूप में) भी सोचते हैं। यानी सारा मामला हमारी मानसिकता का है। इस बारे में दार्शनिक अरस्तू ने लिखा है- हमारे द्वारा बार-बार किए जाने वाले कार्य ही हमारी पहचान हैं। किसी विशेष कार्य को करते-करते व्यक्ति में विशेष प्रकार के गुण पैदा हो जाते हैं और उन्हीं से व्यक्ति की पहचान बनती है।

अगर विचार शुद्ध नहीं है, तो मन में किसी के लिए प्रेम, दया, करुणा कैसे उपजेगी ? कैसे हमारी कोई क्रिया शुद्ध हो सकती है। विचार के अनुसार भावना होगी, भावना के अनुसार क्रिया होगी। ध्यान रहे कि विचार, भावना और क्रिया- इन तीनों के मेल से व्यक्ति का चरित्र बनता है। इसलिए व्यक्ति को क्या बनना या बनाना है, इसके लिए तय करना होगा कि मन को कौन से विचार दिए जाएं।

हर वस्तु व्यवस्थित जगह सुचारू ढंग से रखी जाती है परन्तु अपने विचारों को व्यवस्थित ढंग से रखना नहीं आया तो जिंदगी निरर्थक है।

हम जो विचार करते हैं या बोलते हैं, वातावरण में स्थापित हो जाता है। वही विचार जब कोई भी अपनी चिंतन धारा को जगाता है तो उसकी ओर वह प्रवाहित होने लगता है। अत: विचारों की विशुद्धता बहुत ही जरूरी है। विचारों की विशुद्धि में क्षेत्र का भी प्रभाव होता है। व्यक्ति की अवस्थिति के लिए ऐसा परिसर हो जहाँ चारों ओर शांति तथा शुद्धता हो। आंतरिक पवित्रता होगी तो बाह्य जीवन भी आनंदकारी होगा। अंतर विशुद्धि से ही पर्यावरण भी शुद्धता पा सकता है। यही आज की आवश्यकता है। अधोमुखी चिंतन से हमें उर्ध्वमुखी चिंतन की ओर अग्रसर होना होगा।

चिन्ता अज्ञान (मूर्खता) से पैदा होता है और उससे अन्त:करण मैला होता है, नया विकास नहीं होता। परन्तु विचारसे बुद्धिका विकास होता है। अत: हरेक काम कैसे करना है, किस रीतिसे करना है आदि विचार तो करना चाहिये, पर चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिये। यदि चिन्तासे रहित होकर विचार किया जाय तो कोई-न-कोई उपाय जरूर मिल जाता है।

जब इन्सान में निराशा आती है तो वह उसकी क्षमता, ऊर्जा, सामर्थ्य बुद्धि बल को तोड देती है, उस समय विचारों के गुलदस्ते बहुत भारी काम करते है।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति दिवस पर आयोजित एक सभा में युवा पीढ़ी को जातिवाद और संप्रदायवाद के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने के लिए कहा था। जाति के नाम पर होनेवाले अमानवीय अत्याचारों पर प्रहार करते हुए उन्होंने इस संदर्भ में अत्यंत आदर के साथ गौतम बुद्ध और महावीर का स्मरण किया था। मौजूदा काल में गांधीजी के बाद जेपी ने भारत की नब्ज को पहचानते हुए विचार और मन के सभी स्तरों से कुरीतियों तथा कमजोरियों को समाप्त करने पर बल दिया। लेकिन आज के हालात को देखकर लगता है कि हम फिर एक बार बर्बर युग में लौट रहे हैं।

भगवान महावीर ने दास प्रथा, यज्ञों में पशु बलि, नारी की शोचनीय अवस्था की तरह जातिवाद पर भी कड़ा प्रहार किया था। उन्होंने उदात्त स्वर में उद्घोषित किया था कि मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है, जन्म से नहीं। यह प्रहार शब्दों तक सीमित नहीं था। अपितु हरिकेशबल, अर्जुनमाली जैसे कथित निम्न वर्गीय व्यक्तियों को अपने धर्म-शासन में प्रवज्या देकर उन्होंने जातिवाद की जड़ों को उनके अंतिम अवशेषों तक खोद डाला। इतिहास उनके इस युगांतरकारी कदम का सदैव कृतज्ञ-साक्षी रहेगा। महावीर ने परंपरा के विरुद्ध जाकर अपने भिक्षुकों से कहा कि जैसा उपदेश कुलीनों को देते हो, वैसा ही अकुलीनों को दो।

उन्होंने अपने धर्म-शासन में कुलीनों और अकुलीनों को समान अधिकार ही नहीं दिया बल्कि इस सिद्धांत को भविष्य के लिए स्थापित भी किया। कुलीनता पर गर्व करनेवालों पर इंगित कर कहा कि यह आत्मा अनेकश: श्रेष्ठ तथा हीन कुलों में

जन्म ले चुकी है। श्रेष्ठ कुलों में जन्म लेने से वह श्रेष्ठ नहीं हो जाती और हीन कुल में जन्म लेने से वह हीन नहीं हो जाती है। महावीर के जीवन को देखें तो वे हर समय और हर जगह जातिवाद का व्यूह तोड़ते हुए ही मिलेंगे। उनकी यह स्पष्ट घोषणा है कि मानव की एक ही जाति है। महावीर और बुद्ध के ढाई हजार वर्ष तो दूर की बात है, हम सब महात्मा गांधी, भीमराव आंबेडकर और जयप्रकाश नारायण की मान्यताओं और योगदान को भी याद नहीं कर पा रहे हैं। जाने-अनजाने मनुष्यता विरोधी जिन विचारों को हवा दी जा रही है, उससे समाज और देश को बचाने की जरूरत है।

आज हम पर नए सिरे से एक समतामूलक समाज बनाने की जिम्मेदारी आ गई है। उसके पहले यह देखने का भी समय है कि वे महापुरुष कहां खड़े थे और हम कहां हैं। आज हम उनके नाम पर विशाल संस्थान जगह-जगह खड़े कर रहे हैं, लेकिन उनके विचारों को जीवन में शामिल नहीं कर, सिर्फ किताबों और फाइलों की शोभा ही बढ़ा रहे हैं।

सकारात्मक सोच और सजगता से कुंठाएं भाप बनकर उड़ जाती हैं

सोच स्वभाव ही नहीं, शरीर को भी बनाता- बिगाड़ता है। मनोविश्लेषकों का मानना है कि शरीर में जितने भी घातक रोग होते हैं, उनका प्रमुख कारण मानसिक संघर्ष और जीवन के प्रति निराशाजनक दृष्टिकोण है। किंतु जीवट और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से कर्करोग जैसे घातक रोगों से भी छुटकारा पाया जा सकता है। जीवन के प्रति सकारात्मक सोच व दृढ़ इच्छाशक्ति व्यक्ति को किसी महान लक्ष्य के प्रति सजग कर देते हैं, इस स्थिति में व्यक्ति स्वयं को उत्साहित व स्वस्थ्य महसूस करता है। यह आंतरिक ऊर्जा जिसे यौगिक भाषा में प्राणिक ऊर्जा कहा जाता है, व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाती है तथा रोगग्रस्त मृत कोशिकाओं को सक्रिय कर देती है।

निरंतर सकारात्मक सोच के अभ्यास से मनुष्य की आंतरिक ऊर्जा और असीमित बुद्धिमत्ता चैतन्य होकर रोगग्रस्त कोशिकाओं को पुष्ट कर देती हैं। क्रिकेटर युवराज मानते हैं कि सकारात्मक विचार, दृढ़ इच्छाशक्ति और क्रिकेट खेलने के प्रति सजगता के कारण ही वह कर्करोग जैसे घातक रोग को शिकस्त देने में कामयाब रहे। स्पर्धा और दुनिया में पैसे की भागदौड़ की वजह से आज का मानव मानसिक उलझन और तनावों के बीच जीवनयापन कर रहा है। यह तनावपूर्ण जीवनशैली घातक रोगों की जननी है। वस्तुत: स्वस्थ व नीरोग जीवनशैली की धारा जिन दो किनारों के बीच बहती है, उसका एक छोर आत्मनिरीक्षण तो दूसरा सकारात्मक सोच है। जिनकी सोच रचनात्मक नहीं है, जो स्वयं के प्रति जागरूक नहीं हैं, बीमारी उनकी नियति बनकर रह जाती है।

चराचर जगत के प्राणियों में मानव शरीर अत्यंत दुर्लभ है और शरीर की साधना करना व्यक्ति का सबसे बड़ा धर्म है। अत: सजगता के साथ आत्मनिरीक्षण करते हुए निरंतर अपनी सोच को सकारात्मक बनाए रखने के लिए प्रयासरत रचना चाहिए।

आत्मनिरीक्षण व सकारात्मक सोच का उत्तरोत्तर विकास कैसे किया जाए? सकारात्मक सोच व सजगता को विकसित करने का प्रमुख माध्यम है- नियमित योगाभ्यास। जिस व्यक्ति का शरीर नीरोग नहीं है, उसका दृष्टिकोण कभी भी रचनात्मक नहीं हो सकता। प्राणायाम के द्वारा मन शांत व अन्त:करण निर्मल बनता है। तन-मन में स्फूर्ति, उमंग और उत्साह की अनुभूति होती है। प्राणायाम के सतत् अभ्यास से द्रष्टा भाव, सजगता व सकारात्मक दृष्टिकोण सहज उपलब्ध हो जाता है। अपने दैनिक क्रिया-कलापों के प्रति संपूर्ण सजगता व रचनात्मक दृष्टिकोण बनाए रखने से व्यक्ति की कुंठाएं

व पूर्वाग्रह बाष्प बनकर उड़ जाते हैं। उसकी चेतना हर दिशा में अपना विस्तार करती है। यह स्थिति उसके व्यक्तित्व को रूपांतरित करने में औषधि का काम करती है।

जिस व्यक्ति के विचार उसके अनुकूल हैं, वह सभी प्रकार के लोगों, परिस्थितियों और भाग्य को अपने अनुकूल पाता है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति के विचार प्रतिकूल होते हैं, उसे अपने चारों ओर शत्रु ही दिखाई पड़ते हैं।

कहते हैं कि मनुष्य के विचार ही मनुष्य को सुखी और दुखी बनाते हैं। जिस मनुष्य के विचार उसके नियंत्रण में हैं, वह सुखी है और जिसके विचार उसके नियंत्रण में नहीं रहते, वह सदा दुखी रहता है। ऐसा व्यक्ति अक्सर अपने दुख का कारण खुद को न मानकर किसी व्यक्ति, वस्तु या बाह्य पदार्थ को मानता है। इस प्रकार की क्रिया को आधुनिक मनोविज्ञान में आरोपण की क्रिया कहते हैं। विचारों की यह मलिनता के परिणामस्वरूप उसके आसपास का वातावरण भी दूषित हो जाता है और मित्र भी शत्रु बन जाते हैं तथा सफलता भी विफलता में परिणत हो जाती है।

ऐसा चिन्तन जिसका कोई उद्देश्य न हो, जिसे करने से कोई सार्थक परिणाम सामने न आए, सिवाय तनाव के, वही व्यर्थ चिंतन है और उसी का परिणाम चिंता, तनाव, अवसाद, रक्तचाप, सिरदर्द, बेचैनी, अनिद्रा आदि के रूप में सामने आता है। हमारे मन में विचार तरंगें निरंतर उठती ही रहती हैं, इसलिए उनकी उपेक्षा करना संभव नहीं है क्योंकि वह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। अत: हमें इस बात के प्रति पूरी तरह से सतर्क रहना चाहिए कि हमारे मन-मस्तिष्क में किस प्रकार के विचार आ जा रहे हैं। अन्यथा गंदे और निरुपयोगी विचार मन मस्तिष्क में उठकर वैसे ही गंदे, निरुपयोगी कामों में मनुष्य को कार्यरत कर देते हैं।

ऐसे विचारों को रोकने और निकाल फेंकने में प्रारंभ में तो हमें कठिनाई होती है, किंतु थोड़े से ही अभ्यास से यह कार्य सरल हो जाता है। आत्म-अभिमानी अवस्था में रहने, ध्यान का अभ्यास करने, दिनचर्या सुव्यवस्थित करने, विकारों से स्वयं को बचाकर रखने, बुरा न देखने, न सुनने, न बोलने से दुनिया के बाहरी वातावरण को देखते हुए भी न देखने के व्यर्थ चिंतन से हम खुद को बचा सकते हैं। हम यह न सोचें कि मुझे व्यर्थ को समाप्त करना है, बल्कि यह सोचें कि मुझे सदा शुभ व श्रेष्ठ विचारों की शक्ति से व्यर्थ अपने आप ही समाप्त हो जाता है।

एक ही परिस्थिति और घटना को दो व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से ग्रहण करते है। जिसकी सोच ऊंची और सकारात्मक होती है, वह अभाव को भी भाव तथा दुख को भी सुख में बदलने में सफल हो सकता है। जिसका विचार निषेधात्मक होता है, वह सुख को भी दुख में परिवर्तित कर देता है। हर व्यक्ति में गुण और अवगुण दोनों होते हैं। हमारा चिंतन गुणों की ओर केंद्रित रहना चाहिए। इसमें हमें शांति और प्रसन्नता का अनुभव होगा। निराशावादी और अवगुणवादी मनुष्य अपने चारों ओर अभावों और दोषों का दर्शन करते हैं। वे अपने जीवन में शांति और प्रसन्नता का अनुभव कभी नहीं कर सकते। जो अभाव को भाव तथा दुख को सुख में बदलने की कला जानता है, उसी का जीना सार्थक है, वही सच्चा धार्मिक है, विद्वान है। सफलता और सार्थक जीवन जीने के लिए सात्विक एवं ऊंची सोच बहुत जरूरी है। जिसकी सोच संकीर्ण होती है, वह सफलता का जीवन नहीं जी सकता। घड़ा बनने की जो प्रक्रिया है, वह खुदाई से लेकर आग में तपने तक की प्रक्रिया है। मिट्टी से सीधे ही घड़ा नहीं बन सकता। उसके लिए निर्धारित विधि का अनुसरण करना होगा। यही प्रक्रिया सोच को

व्यापक बनाने पर भी लागू होती है।

सोच के अनुसार ही आस-पास का वातावरण बनता है। अहिंसक व्यक्ति हिंसा के हर हालात से दूर रहता है, फिर चाहे वह भावनात्मक हो, शाब्दिक या शारीरिक हिंसा। ऐसा इंसान ज्यादा मिलनसार, विनम्र, सहिष्णु और विचारशील होता है। ऐसे लोग किसी को दुख नहीं पहुंचाते या इनसे किसी को कोई वैर-भाव नहीं होता। यहां सूक्ष्म बल कार्य करते हैं। जिसने अपने मन के हिंसक भावों, सोच और शब्दों से खुद को अलग कर लिया, वास्तव में ऐसे ही लोग शांत होते हैं। उनके इस शांत भाव से निकली सूक्ष्म तरंगे उनके आसपास के वातावरण और लोगों के व्यवहार को भी प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि ऐसे लोगों के आसपास के माहौल में भी शांति होती हैं। पूजा स्थल इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं, जो भले ही कितनी भी व्यस्त और भीड़ भरी जगह में हो, लेकिन आपको वहां सुकून का एहसास होता है। क्योंकि वहां लोग सकारात्मक सोच, शांत विचार और पावन भावना के साथ जाते हैं। मनुष्य की सोच के अनुसार ही उसके आसपास के वातावरण का निर्माण भी होता है, यही कारण है कि यहां परेशान, क्रोधी, क्षुब्ध या निराश प्रकृति के लोग होते हैं, वहां का वातावरण भी इसी प्रकार का होता है। कई बार आपकी मीठी बातें और मुस्कुराता हुआ चेहरा भी उस इंसान को प्रभावित कर पाने में नाकाम होता है, जिसके प्रति वास्तव में आपके मन में अच्छे विचार नहीं होते? क्योंकि आपके मन के नकारात्मक भाव उन तक संचरित हो रहे होते हैं।

विचार कितने ही सुंदर हों, वे बंधन ही होते हैं - अगर तुम सोच-विचार नहीं कर रहे हो, तो तुम असीम हो। विचार तुम्हें सीमा देता है। तुम हिंदू हो, यह एक सीमा है। हिंदू होना किसी विचार से, किसी व्यवस्था से, किसी ढंग-ढांचे से बंधा होना है। तुम ईसाई हो, यह भी एक सीमा है। धार्मिक आदमी कभी भी हिंदू या ईसाई नहीं हो सकता और अगर कोई आदमी हिंदू या ईसाई है, तो वह धार्मिक नहीं है। क्योंकि ये सब विचार हैं। धार्मिक आदमी का अर्थ है कि वह विचार से नहीं बंधा हो। वह किसी व्यवस्था से, किसी ढंग-ढांचे से नहीं बंधा हो। वह मन की सीमा में नहीं जीता हो, बल्कि असीम में जीता हो। तुम्हारा कोई विचार सुंदर हो सकता है, लेकिन फिर भी वह बंधन है। सुंदर कारागृह भी कारागृह ही है। विचार सदा पूर्वाग्रह से ग्रस्त होता है। विचार सदा पक्ष या विपक्ष में होता है। एक गरीब किसान था। वह मित्र समाज का सदस्य और क्वेकर था। क्वेकर लोग अहिंसक होते हैं। वे प्रेम और मैत्री में विश्वास करते हैं। वह अपनी खच्चर गाड़ी पर बैठकर शहर से गांव वापस आ रहा था। एक जगह खच्चर अचानक रुक गया और आगे बढ़ने से इनकार करने लगा। उसने खच्चर को ईसाई ढंग से, मैत्रीपूर्ण ढंग से, अहिंसक ढंग से फुसलाने की कोशिश की। वह क्वेकर था। इसलिए वह खच्चर को मार नहीं सकता था, उसे डांट-फटकार या गाली भी नहीं दे सकता था। लेकिन वह गुस्से से भरा था। तब उसने खच्चर से कहा- ठीक से आचरण करो। मैं क्वेकर हूं, इसलिए मैं तुम्हें मार नहीं सकता, लेकिन मैं तुम्हे किसी ऐसे आदमी के हाथ बेच तो सकता हूं, जो क्वेकर न हो। इस तरह विचार सीमा बनता है। अवरोध खड़े करता है और जो लोग पक्ष में नहीं है, उन्हें विरोधी मान लिया जाता है।

विवाद- बातचीत संपर्क कराती है। रिश्तों को जीवित रखने और नए रिश्ते जोड़ने के लिए यह जरूरी होती है। लेकिन यही बातचीत जब विवाद का रूप धारण कर लेती है, तो सब कुछ बिखरने का डर होने लगता है। दोनों पक्ष खुद को सही

मानेंगे तो विवाद बढ़ेगा और लड़ाई शुरू हो जाएगी।

कुछ लोगों को विवाद छेड़कर आंतरिक सुख मिलता है, जबकि कुछ इससे अपनी महानता साबित करना चाहते हैं।

अपने लिए स्वतंत्रता की लड़ाई लड़नेवाला दूसरे के अधिकारों के प्रति असहिष्णु होता है। इसकी शुरुआत परिवार से ही हो जाती है। माता-पिता पहले बच्चे का व्यक्तित्व विकसित करते हैं और फिर हर मुद्दे पर उसे टोकना शुरू कर देते हैं।

उन्हें सही लगता है कि वे हर बात पर उसे सलाह दें। पर बच्चा खुद को सक्षम समझकर, अपने निर्णय से असंतुष्ट होकर भी उनकी बात मानना नहीं चाहता। ऐसे में घर की खुशी उड़ जाती है। हर सदस्य दूसरे को दोषी और खुद को पीड़ित मानकर दुखी रहता है। यही विवाद जब समाज, देश या अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुंच जाए तो सोच सकते हैं। दूसरे के विचारों का विरोध और अपना मत देने की स्वतंत्रता तो हर किसी को है, पर दूसरे का मुंह बंद करने की नहीं। यदि दूसरा पक्ष जवाब देने के लिए आगे नहीं बढ़ेगा तो विवाद शांत हो जाएगा। विवाद उठानेवाले यह भूल जाते हैं कि किसी भी चीज पर प्रतिबंध उत्सुकता जगाता है। जिन लोगों ने किसी पुस्तक को पढ़ने के बारे में सोचा भी न हो, उस पर बैन लग जाने पर वे भी उसे पढ़ना चाहते हैं। ऐसे में कुछ लोग इतने विवाद-प्रेमी होते हैं कि समय से किसी पक्ष में खड़े ही नहीं होते। वे विवाद को और बढ़ावा देते हैं। हमारे देवी-देवता या धर्म, महान नेता या संस्कृति किसी का पक्ष या समर्थन पाने के मोहताज नहीं हैं। वे अपनी सहज महानता में हैं और बने रहेंगे। बाबा साहब ने लिखा, उसे याद रखना होगा- महान लोगों के प्रति कृतज्ञ होना गलत नहीं है, पर इसकी सीमा होनी चाहिए। राजनीति में भक्ति और हीरो वर्शिपिंग से निश्चित रूप से ऱ्हास और निरंकुशता की राह खुलेगी। बढ़ती असहिष्णुता से परेशान शंकर ने अपनी पत्रिका बंद करते समय लिखा था- पाठकों को आडंबरपूर्ण नेताओं या लोगों के अवगुणों, दोषों को दिखाकर हंसाना, कभी-कभी खुद पर हंसना पत्रिका का लक्ष्य था, पर दुनिया और भारत में सख्ती बढ़ती देखकर उसे बंद करना बेहतर लगा। लेकिन आज स्थिति और बिगड़ गई है।

संवाद- माहौल को खुशगवार और तनाव रहित बनाने के लिए परस्पर संवाद जरूरी है। इससे आपसी समझ और सहिष्णुता बढ़ाने में मदद मिलती है।

हम भी बच्चों की तरह हो जाएं तो दुनिया खूबसूरत हो जाए - घर में एक नन्हा मेहमान आया है। अभी कुछ ही महीनों का तो हुआ है। एकदम मासूम और सीधा-सादा। बहुत आकर्षित करता है। सब हर समय उसके पास ही बैठे रहना चाहते हैं। उसकी मासूमियत में जैसे डूब जाना चाहते हैं। इधर-उधर जाते भी हैं तो बार-बार उसके ही पास लौटकर आ जाते हैं। वह भी कहता है कि मेरे पास बैठो। मुझसे बातें करो। मुझे कुछ गाकर सुनाओ। थोड़ा नाचकर दिखाओ। अपने पास ही तो बिठाए रखता है अधिकांश समय।

सारे दिन पूरे परिवार ही को व्यस्त रखता है ये नन्हा सा जीव। आप कहेंगे कुछ महीने का बच्चा कैसे बोल सकता है? जब वो बोल नहीं सकता तो कोई कैसे कहता है अपने मन की बात?

वह बोलना नहीं जानता। वह हिंदी, अंग्रेजी या अन्य कोई भी भाषा नहीं जानता। रात को जब वह अपनी प्यारी मां के साथ सोने के लिए जाता है तो हमारे शुभ रात्रि या रूसी में स्पाकोयनाय नोच्यी कहने पर ऐसे मुस्कुराता है जैसे वह सब समझता है। हां, सचमुच वह सब बखूबी समझता है। यह वह भाषा है जिसको एक दूसरे की भाषा बिलकुल नहीं

जाननेवाले भी समझ सकते हैं। भाषा क्या है? संदेशों का आदान-प्रदान ही तो है। दुखद मन को अवसाद से भर देता है। हमारा नन्हा मेहमान जब मुस्कुराता है तो हम सबके मनों में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है।

यह संवाद ही तो है। संवाद है तो माध्यम भी होगा और भाषा भी होगी। भाषा भी है और सदियों-सहस्राब्दियों से भी पुरानी भाषा है। मनुष्य ही नहीं, पूरी प्रकृति की भाषा है। कबीर जानते थे इस भाषा को। तभी तो उन्होंने हर भाषा, हर विषय के ऊपर इसे तरजीह दी। ढाई आखर प्रेम का उनके लिए दुनिया के हर ज्ञान से ऊपर रहा। जो इस भाषा को जानता है वही पंडित है, ज्ञानवान है, संवाद कुशल है।

यही ढाई आखर हर पूजा-पाठ, हर इबादत से बढ़कर है। हर धर्म, हर भाषा बोलनेवाली मां यह भाषा जानती है। हम सब भी इस भाषा को जानें-समझें, इसी को व्यवहार में लाएं। न जाने किंतने लोग इस प्रतीक्षा में हैं कि कोई हमारी भाषा को समझे। यह तभी संभव है जब हम स्वयं एक नन्हे शिशु की तरह संवाद करना सीख जाएं और हर बच्चा हमें पसंद करने लग जाए। यदि बच्चे ही हमसे संवाद नहीं कर सकते तो हमारा सारा ज्ञान, सारी विद्वत्ता निरर्थक है। कितनी खूबसूरत हो जाए ये दुनिया अगर हम भी बच्चों की तरह संवाद करने लगें।

अपने विचार औरों को सुनाना यानि संवादक्षमता ! प्रकृति ने यह गुण सिर्फ मनुष्य को दिया है। मनुष्य के मन की बात वाणी से बाहर आती है और अपनी कही हर बात का असर मनुष्य के मन पर होता है। दुनिया को चलन में शामिल लोगों को उसे आवश्यक बातें तो करनी ही पड़ती हैं। मगर जरूरी बातें होने के बाद और अन्य समय पर मुंह बंद ही रखना पड़ता है। ऐसे समय पर वाणी का कार्य, अच्छी बातों के चिंतन के रूप में करना चाहिए। यही चिंतन मन में पैठ बनाता है और वही शब्दों का रूप लेकर प्रकट होता है। व्यक्ति की बात के ढंग से उसके विचारों का पता चलता है। संवाद दिल का आईना है। जो व्यंजन खाये हैं वैसे ही डकार आते हैं, उसी तरह मन जो सोचता है वही शब्द बनते हैं। इसलिए मन की प्रार्थना में कहा है, तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु।

अगर आप दोनों अपना खाली वक्त एक दूसरे के साथ गुजारना पसंद करते हैं तो समझिए कि आपका रिश्ता बिल्कुल सुरक्षित दायरे में हैं। अक्सर लोग अपने खाली वक्त में अकेले कहीं जाना पसंद करते हैं या उन चीजों को करने के बारे में सोचते हैं जो लंबे समय से अटकी पड़ी है। तब जीवनसाथी को मिलनेवाला वक्त और भी कम हो जाता है। ऐसे में आपसी उलझनों को सुलझाने का समय ही नहीं मिलता है। संवाद से सारी चीजों का हल निकाला जा सकता है मगर तब क्या होगा जब इस संवाद के लिए समय ही न हो। साथ बिताया जानेवाला समय भले ही ज्यादा न हो लेकिन जितना हो वह शानदार ढंग से बीते तो रिश्ता बेहतर होता है।

हमारी सोच की गुणवत्ता ही परिणामों की गुणवत्ता तय करती है। हमारी सोच में खुद को सच करने की ताकत होती है क्योंकि यही हमारे शारीरिक तथा मानसिक रूप को तय करती है। दूसरों के विचार तथा टिप्पणियां भी केवल हमारी सोच के माध्यम से ही हमें नुकसान पहुंचा सकती हैं परंतु केवल उसी सीमा तक जहां तक हमारी सोच इसकी इजाजत देती है। ऐसा कोई पल नहीं है जब आप कुछ सोच न रहे हों तथा दुनिया में जो कुछ भी घटित होता है उसके पीछे एक सोच ही होती है।

अपनी सोच पर स्वतंत्र रूप से गौर करना शुरू करें। उनसे किसी तरह का संबंध न रखते हुए इन पर गौर करें। आपके विचार आपको बहका भी सकते हैं परंतु शुरुआत में ऐसा होना स्वाभाविक है और महत्वपूर्ण है कि इसका एहसास होते ही खुद को सम्भाल कर वापस अपने विचारों पर गौर करें। अपने विचारों से प्रभावित न हों, न ही उनकी आलोचना करें तथा उन्हें यथोचित ठहराएं। उन्हें नियंत्रित भी न करें। केवल उन पर गौर करें। कुछ समय बाद आपको पता चलने लगेगा कि आपके नकारात्मक विचार किस बारे में हैं।

खतरनाक विचार जो आपको मारते हैं - अगर आप हमेशा अपने दिमाग में सबसे पहले न की भावना लाते हैं तो आप भी कहीं न कहीं नकारात्मकता का शिकार हैं, जो आपको खूद से दूर कर रहा है। इसलिए जरूरी है कि इस तरह के विचारों को आज ही अपने दिमाग से निकाल दें, क्योंकि आपकी नकारात्मकता आपकी तरक्की के रास्ते भी बंद कर देती है।

दो तरह के विचार- सभी के भीतर दो तरह के विचार होते हैं। एक सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक। जो भी विचार व्यक्ति में हावी हो जाता है व्यक्ति उस तरह के विचारोंवाला बन जाता है। ऐसे में जरूरी है कि व्यक्ति अपने जेहन में लाएं। सभी रोजाना कुछ न कुछ नकारात्मक विचार अपने भीतर लाते हैं जिन्हें पहचान कर उन्हें दूर करना जरूरी है।

अपने आपको हमेशा दूसरों से नीचे मानना- इस तरह के विचार हर उस व्यक्ति में देखने को मिलता है जिनकी सोच में नकारात्मकता का स्तर बहुत ज्यादा होता है। ऐसे लोगों में अपने आपको बाकियों से बहुत ज्यादा कमजोर और कमतर समझने लगते हैं, जिसके कारण वह अपने जीवन में कभी आगे नहीं बढ़ पाते हैं। यदि आप भी ऐसी ही सोच रखते हैं तो इस तरह की सोच को आज ही अपने दिमाग से निकाल दें, क्योंकि इस तरह की सोच के साथ आप कभी भी आगे नहीं बढ़ पाएंगे।

बिना कोशिश के हार मान जाना- बहुत से ऐसे लोग होते हैं जो किसी काम को किए बिना ही अपने मन से ही हार मान लेते हैं। ऐसा उन लोगों के साथ होता है जिसनमें आत्मविश्वास की कमी होती है। ऐसे लोग अपनी जिम्मेदारियों से भागते हैं। इस कारण जीवन में आनेवाले सुनहरे मौकों को ठीक से पहचान नहीं पाते हैं और आगे नहीं बढ़ पाते हैं। यदि आप भी इस तरह के नकारात्मक विचार के साथ जीवन बिता रहे हैं और आगे नहीं बढ़ पाते हैं। आज ही इस विचार को अपने जीवन और दिमाग दोनों से निकाल दें।

यह सोचना कि अपने सपनों के लिए आपके पास समय नहीं है। सभी के अपने-अपने कुछ सपने होते हैं, कुछ न कुछ लक्ष्य होते हैं। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनके पास सपने तो होते हैं, लेकिन उन्हें पूरा करने के लिए समय नहीं होता है। वह अपने सपने के पूरे न होने पाने के पीछे समय को दोष देते हैं। वह इस बात को लेकर हमेशा बोलते हैं कि उनके पास अपने सपनों को पूरा करने समय नहीं मिला। यह भी एक नकारात्मक विचारधारा है, जिसे आपको छोड़ देना चाहिए।

यह सोचना कि दूसरों की जिन्दगी आपसे बेहतर है। यह सभी के साथ होता है। अपने दु:ख से कम और दूसरों के सुख से ज्यादा दुखी होते हैं। काफी लोग इस इस बात को लेकर हमेशा दुखी रहते हैं कि जो हमारे सामने वाले के पास है वह हमारे पास नहीं है। इस कारण अपने काम पर ध्यान नहीं लगा पाते और जिसकी वजह से कभी भी आगे नहीं बढ़ पाते हैं। अगर आप भी इस तरह के विचारों को लेकर जी रहे हैं तो इस विचार को आज ही त्याग दें।

समस्या, समझौता व समाधान, सामंजस्य

कहीं जमी तो कही आसमां नहीं मिलता। सामंजस्य का सूत्र ही जीवन के सुख का सार है। संवेदनाओं के समाप्त होते इस दौर में अशान्ति और असन्तोष पैदा होना कोई असाधारण बात नहीं है। देखा जाये तो यह इस समय की स्वाभाविक स्थितियां ही है। हर और कसी हुई बन्द मुट्ठियां और तनी हुई भृकुटियां दिखाई दे रही है उनका कारण न तो आदर्श, उसूलों की लडाई है और न ही किन्ही गम्भीर मुद्दों की टकराहट है।

फिर भी लोगों के दिल और दिमाग में तनाव एक संस्कार की तरह बैठ गया है तो यह न मानने का कोई कारण नहीं है कि हमारे जीवन व्यवहार से सद्भावना, सहनशीलता, सामंजस्य की वृति बिल्कुल काफर हो गई है। इसीलिये हम हर छोटी, तुच्छ उपेक्षणीय बात पर भी बरबस उलझ पडते है, दूसरों पर दोषारोपण करते है, बात बढते बढते गम्भीर रूप धारण कर लेती है, प्राण लेने देने तक की नौबत आजाती है।

किसको यहां मन मुराद की जिन्दगी या मुकम्मिल जहां मिलता है ? सबको जीवन में अनेक कठिनाइयों, विवशताओं, विषमताओं का सामना करना पडता है चाहे वे परिवार, परिवेश, कार्यक्षेत्र कहीं का भी हो। नगण्य ही सौभाग्यशाली जन होते है जिनकी अन्त: बाह्य सब परिस्थितियों, सर्वथा, अनुकूल होती है। तब क्या कुंठा, असन्तोष, हताशावश हमें हार मान लेनी चाहिये या नाकारत्मक, आत्मघाती भूमिका अपना कर जीवन को नष्ट कर देना चाहिये ?

अनेक कारणों से जीवन से, जमाने से आज पूरी तरह सन्तुष्ट कोई नहीं है, सबको कोई न कोई शिकायत है। और जिन्हे हम, अपनी तुलना में सुखी, सन्तुष्ट मान लेते है, उन्होने सूझबूझ, समझदारी से काम लेकर हालात से समझौता कर लिया है। कटुता, अशान्ति, तनाव से दग्ध होते रहने, जमाने को हर समय कोसते रहने के बजाय विपरीत वातावरण से तालमेल बिठाया है। हम देखते है कि अधिकांश संघर्षो, युद्धों का जब भी अन्त हुआ है, बैठ कर वार्ता, समझौते के माध्यम से ही हुआ है। वहां हमेशा आदान-प्रदान कुछ तुम झुको, कुछ हम झुके की सामंजस्य वृति प्रधान रहती है। हमको भी अहं, कुंठा, पूर्वाग्रह, आत्म केन्द्रता वृति द्वारा पारस्परिक जीवन की शान्ति, सरसता, सौहार्द्र को नहीं समाप्त होने देना चाहिये। आत्म केन्द्रित व्यक्ति प्राय: संकीर्णमना, स्वार्थी और असामाजिक होते है, जब कि भावना शील, समझौते, समर्पण को अपेक्षाकृत शीघ्र प्रस्तुत हो जाते है। वे बखूबी समझते है कि समझौते, सामंजस्य की राह अपनाने से ही जीवन तनाव मुक्त, तन, मन हल्का होता है।

समष्टि में हमारे समूचे जीवन में भीषण गत्यावरोध, ठहराव आजायेगा। जीना भी दूभर हो जायेगा। वह दाहक तनाव के सलीव पर टंगे रहने को अभिशप्त हो जायेगा, अगर हमने आपसी और दुनियावी सम्बन्धों में सामंजस्य से काम न लिया। जीवन में विरोध, विषमताये, प्रतिपक्षी तो सदैव बने रहेंगे, उनके बीच जीना ही हम सबकी नियति है। यह विवेक और व्यावहारिकता का भी तकाजा है कि हम प्रतिकूलताओं में सामंजस्य सूत्र रखेंगे।

सामंजस्य का सूत्र ही जीवन के सुख का सार है। संवेदनाओं के समाप्त होते इस दौर में अशांति और असंतोष पैदा होना कोई असाधारण बात नहीं है। देखा जाए तो यह इस समय की स्वाभाविक स्थितियां ही हैं। हर ओर जो कसी हुई मुट्ठियां और तनी हुई भृकुटियां दिखाई दे रही हैं उनका कारण न तो आदर्श, उसूलों की लड़ाई है और न ही किन्ही गंभीर मुद्दों की टकराहट है।

फिर भी यदि लोगों के दिल और दिमाग में तनाव एक संस्कार की तरह बैठ गया है तो यह न मानने का कोई कारण नहीं है कि हमारे जीवन व्यवहार से सद्भावना, सहनशीलता, सामंजस्य की वृत्ति बिल्कुल काफर हो गई है। इसीलिए हम हर

छोटी, तुच्छ उपेक्षणीय बात पर भी बरबस उलझ पड़ते हैं, दूसरों पर दोषारोपण करते हैं, बात बढ़ते-बढ़ते गंभीर रूप धारण कर लेती है, प्राण लेने-देने तक की नौबत आ जाती है।

पर क्यों ? समझने की बात है किसको यहां मनमुराद की जिंदगी या मुकम्मिल जहां मिलता है ? सबको जीवन में अनेक कठिनाइयों, विवशताओं, विषमताओं का सामना करना पड़ता है चाहे वे परिवार, परिवेश, कार्यक्षेत्र कहीं का हो। नगण्य ही सौभाग्यशाली जन होते हैं जिनकी अंत: बाह्य सब परिस्थितियां, सर्वथा अनुकूल होती हैं। तब क्या कुंठा, असंतोष, हताशावश हमें हार मान लेनी चाहिए या नकारात्मक, आत्मघाती भूमिका अपनाकर जीवन को नष्ट कर देना चाहिए ?

अनेक कारणों से जीवन से, जमाने से आज पूरी तरह संतुष्ट कोई नहीं है, सबको कोई न कोई शिकायत है। और जिन्हें हम, अपनी तुलना में सुखी, संतुष्ट मान लेते हैं। उन्होंने सूझबूझ, समझदारी से काम लेकर हालात से समझौता किया है। कटुता, अशांति, तनाव से दग्ध होते रहने, जमाने को हर समय कोसते रहने के बजाय विपरीत वातावरण से तालमेल बिठाया है। हम देखते हैं कि अधिकांश संघर्षों, युद्धों का जब भी अंत हुआ है आमने-सामने वार्ता समझौते के माध्यम से ही हुआ है। वहां हमेशा आदान-प्रदान कुछ तुम झुको, कुछ हम झुके की सामंजस्य वृत्ति प्रधान रहती है। हमको भी अहं, कुंठा, पूर्वाग्रह, आत्मकेंद्री वृत्ति द्वारा पारस्परिक जीवन की शांति, समरसता सौहार्द्र को नहीं नष्ट कर देना चाहिए। आत्मकेंद्रित व्यक्ति प्राय: संकीर्णमना, स्वार्थी और असामाजिक होते हैं, जबकि भावनाशील, समझौते, समर्पण को अपेक्षाकृत शीघ्र प्रस्तुत हो जाते हैं। वे बखूबी समझते हैं कि समझौते, सामंजस्य की राह अपनाने से ही जीवन तनावमुक्त, तन, मन हल्का होता है। समष्टि में हमारे समूचे जीवन में भीषण गत्यावरोध, ठहराव आ जाएगा, जीना भी दूभर हो जाएगा। वह दाहक तनाव के सलीब पर टंगे रहने को अभिशप्त हो जाएगा। अगर हमने आपसी और दुनियावी संबंधों में सामंजस्य, समझ से काम न लिया। जीवन में विरोध, विषमताएं, प्रतिपक्षी तो सदैव बने रहेंगे, उनके बीच जीना ही हम सबकी नियति है। यह विवेक और व्यावहारिकता का भी तकाजा है कि हम प्रतिकूलताओं में सामंजस्य सूत्र खोजें- सामंजस्य ही सुखमय जीवन का सार, राज है। हम समस्याओं से भाग नहीं सकते। केवल थोड़े समय के लिए समस्याओं को टाला जा सकता है। मगर कुछ समय बाद वह मुंह बाए सामने खड़ी हो जाएगी। शायद और गंभीर होकर कि उस समस्या को संभालना और उसका समाधान ढूंढना और कठिन हो जाता है। जीवन समस्याओं का पुलिंदा है। कुछ गंभीर है, कुछ मामूली। कुछ का जीवन पर जानलेवा प्रभाव पड़ता है, तो कुछ छूती हुई निकल जाती है। आवश्यक है कि समस्या को सुलझाने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाएं। इसके लिए आवश्यक है कि पहले तो समस्या के कारण को समझा जाए। इसके विभिन्न पहलुओं को जानने की कोशिश की जाए और पता किया जाए कि कौन-कौन से व्यक्ति इससे संबंधित है। सब से बात कर समस्या की जड़ तक पहुंचना चाहिए। बात करने का लाभ यह होगा कि समस्या के आंतरिक कारणों का पता लग जाएगा कि विभिन्न लोग इस समस्या को किस प्रकार से समझते हैं।

इसके बाद आता है समस्या से जूझना। इसके लिए यह पता करना आवश्यक है कि समस्या से संबंधित व्यक्ति इसको किस प्रकार से सुलझाना चाहेंगे। इस संबंध में उन लोगों से बात करना बहुत सहायक होगा। क्योंकि आपको विभिन्न समाधान सुनने को मिलेंगे। कुछ तो एक दूसरे के विरोधी होंगे। परंतु आपको अनेक उपचार मिल जाएंगे। जिनसे आपको निर्णय लेने में सहायता मिलेगी। अंत में आपको विभिन्न समाधानों का अंकन करके स्थिति का पूरा जायजा लेना होगा। अब आपको अंतिम फैसला लेना है कि समस्या को किस प्रकार से संभाला जाएगा। समाधान को किस प्रकार कार्यान्वित करना है। आप समस्या को किस प्रकार सुलझाते हैं यह भी आपके व्यक्तित्व को दर्शाता है।

सफल व्यक्ति ही व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राज्य या राष्ट्रीय विकास में भागीदार बन सकता है। सफलता एक ऐसा शिखर है जो व्यक्ति से कुछ शर्ते मांगती है, जिसका निर्वहन कोई भी व्यक्ति कर सकता है। सर्वप्रथम मनुष्य में यदि दृढ़ विश्वास और समझौतावादी प्रवृत्ति ईर्ष्या द्वेष रहित हो तो असफलता कोसों दूर रहती है। समझौता और आत्मविश्वास के साथ-साथ स्वास्थ्य भी सामंजस्य, समन्वय का परस्पर मेल होता है। प्रत्येक उस व्यक्ति को समझौता परक होना चाहिए, जो सफलता में विश्वास रखता है। क्योंकि जो व्यक्ति समाज के व्यापक परिवर्तनों से समझौता करके निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं वह सफल हो जाते हैं और जो परिवर्तनों से सामंजस्य नहीं बैठा पाते वह उनमें खो जाते है और असफल होते हैं। समझौतावश के साथ-साथ समन्वयक स्वास्थ्य यदि व्यक्ति में अंतर्निहित होता है तो व्यक्ति में हमेशा स्फूर्ति रहती है और वह हमेशा सफलता प्राप्ति हेतु तत्पर रहता है। इन सभी तथ्यों के अतिरिक्त आत्मविश्वास भी हो तो वह व्यक्ति में विकास की संभावनाओं में प्राण संचार कार्य करता रहता है।

संघर्ष द्वारा कदाचित कभी-कभार समस्या को दबाया जा सकता है, परंतु समस्या के कारण को ही समाप्त करने के लिए समाधान वृत्ति जैसा कोई सशक्त व स्नेहमय शस्त्र नहीं।

यदि हम प्रेरणा, महत्वाकांक्षा और तृष्णा से मुक्त हैं, तो हमारी रफ्तार धीमी होगी। तृष्णा मिट गई तो आदमी आपाधापी छोड़ देगा। सामान्य समझ कहती है कि समस्या बाहर की है तो समाधान भी बाहर ही खोजा जाना चाहिए। यदि समस्या भीतर की है तो समाधान बाहर खोजने से नहीं मिलेगा।

आचार्य महाप्रज्ञ ने थोड़ी अलग बात कही है। उन्होंने कहा है कि बाहर की समस्या को तो भीतर से सुलझाया जा सकता है, किंतु भीतर की समस्या को बाहर से नहीं सुलझाया जा सकता। आपको अभाव महसूस होता है तो यह आपके भीतर की समस्या है। संतोष की चेतना जाग जाए तो पास में कुछ न होने पर भी आप स्वयं को कुबेरपति अनुभव करेंगे। यह भीतर और बाहर की समस्या आदमी को हर क्षण बेचैन किए रहती है।

फैसले की अहम कसौटी है यह सवाल कि कितनों का लाभ होगा

किर्कगाड जर्मन व्यक्ति से एक स्त्री बहुत प्रेम करती थी और विवाह करना चाहती थी। किर्कगाड भी उससे प्रेम करता था, मगर विवाह को लेकर वह समय रहते कुछ तय नहीं कर पाया। कहते हैं, जब वह अस्सी वर्ष का हुआ, तब उसने पाया कि वह स्त्री सचमुच ही उससे विवाह के योग्य है। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। न तो उसकी उम्र शादी की रह गई थी और न ही उसकी प्रेमिका ने उसका इतना इंतजार किया। बाद में, किर्कगाड ने एक बहुचर्चित किताब लिखी- आईदर ऑर। ओशो ने अपनी दस सबसे पसंदीदा किताब में इसे शुमार किया है। किर्कगाड लिखता है, सारी दुनिया मेरा ही लघु संस्करण है।

हम सब अनिश्चय में जीते हैं। जीवन में कई बार ऐसी स्थिति आती है जब हम अनिश्चय अथवा संशय से गुजरते हैं और उस स्थिति से पार होने की उधेड़बुन में कई बार स्थिति और जटिल होती जाती है। जब तक आप अपनी समस्या के समाधान के लिए किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच जाते, समस्या परेशान करती रहती है। संशय की स्थिति पैदा ही तब होती है जब हमारे पास एक से अधिक विकल्प हों। लेकिन जीवन में अगर तीन बातों का ध्यान रखा जाए तो निश्चय करना असान हो सकता है।

पहली बात, अपनी प्रज्ञा को जगने दें। अमूमन, अहले सुबह जो पहला निर्णय बनता है, वह ठीक होता है। कभी किसी

कठिन परिस्थिति में, इसे आजमा कर देखें। पुरुष विलंब से निर्णय कर पाते हैं क्योंकि पुरुष दो अतियों पर जीता है। महिलाओं की अंतर्दृष्टि अधिक शीघ्रता से काम करती है, इसलिए वे अक्सर पुरुषों के मुकाबले शीघ्रता से निर्णय लेती है। लिहाजा, अगर अधिक तर्कजाल में उलझ गए हों तो बेहतर है कि स्वयं निर्णय के झंझट में न पड़ें और फैसला महिलाओं को करने दें। अगर महिलाओं के हस्तक्षेप के बावजूद किसी निर्णय पर न पहुंच पा रहे हों तो निर्णय इस पैमाने पर करें कि किस फैसले से अधिक लोगों को लाभ होने की संभावना है। महात्मा गांधी कहते थे कि उन्होंने सारे निर्णय बहुजनसुखाय की कसौटी पर लिए। अगर फिर भी बात न बने तो कौशल-चक्र का सूत्र आजमाएं। पांच पारिवारिक मित्रों को बिठाएं और उनसे ही पूछें कि समस्या का सर्वसम्मत समाधान क्या हो। इस प्रक्रिया में स्वयं को, पत्नी और बच्चे यदि वयस्क हों तो उन्हें भी शामिल करें। यह चक्र आपको बिल्कुल सही और व्यापक परिणाम वाला निर्णय लेने में सहायता देगा। यह निर्णय बहुतम वाला नहीं, बल्कि सर्वसम्मति वाला हो। आप देखेंगे कि जैसे ही पंच आपको निर्णय लेने में मदद करता है, आपके सारे संशय व अनिश्चय विदा हो जाते हैं।

घर से विदा लेते हुए लड़के की सास ने लड़की की मां से सहसा ही पूछ लिया, आपके चाय के कप बेहद खूबसूरत थे, कहां से खरीदे थे आपने? घर की सबसे नन्ही सदस्य अति उत्साह में बीच में बोल पड़ी, मैं बगल वाली आंटी से पूछ कर आती हूं, ये कप उन्हीं के तो हैं। इस बात पर परिवार के सभी लोग शरमा गये। उन्होंने तुरंत बात संभाली और बच्ची को चुप करा के वहां से भगा दिया। बहुत बार हम लोगों के करीब आने के लिए और संबंधों को मजबूत बनाने के लिए झूठ बोलते हैं। जो हम नहीं हैं, उसे दिखाने की कोशिश करते हैं और जो हम हैं, उसे छिपाते हैं। वर पक्ष, वधू पक्ष को लड़के का गलत वेतन बताता है। गलत पद बताता है। वधू पक्ष वाले कहते हैं कि ये पेंटिंग मेरी बेटी ने बनायी है, ये समोसे उसी ने बनाये हैं।

बात पक्की भी हो जाती है, लेकिन पोल तब खुल जाती है। जब शादी के बाद दोनों साथ-साथ रहने लगते हैं। कई बार हम खुद पर गर्व करते हैं कि हम झूठ बोलने में इतने माहिर हैं कि कोई हमें पकड़ नहीं सकता। हमें लगता है कि इस झूठ से कोई फर्क नहीं पड़ेगा, लेकिन ऐसा नहीं हैं। दरअसल, झूठ बोलकर हम लोगों के सामने एक दीवार बना लेते हैं। फिर लोग दीवार को ही सच मानते हैं, उसे ही जानते हैं, प्यार करते हैं, अपनाते हैं देर-सवेर वह दीवार टूट जाती है। तब सामनेवाले का दिल भी टूट जाता है और हम भी दुखी हो जाते हैं। जितना हो सके अपने बारे में सामनेवाले से सच ही कहें। आप जो हैं, लोगों को उसी से मिलवाएं, ताकि लोग आपसे और आपकी असली छवि से प्यार करें।

समस्याओं के बीच भी हम सुकून से रह सकते हैं। हममें से हर किसी में अनेक इच्छाएं रहती हैं। उन्हें पूरा करने की हम जिंदगी भर कोशिश करते रहते हैं। फिर भी हमारी इच्छाएं कभी पूरी नहीं हो पातीं। दरअसल इच्छाएं पूरा करने के फेर में अनेक समस्याएं पैदा होने लगती है। धीरे-धीरे समस्याओं का चक्रव्यूह तैयार होता जाता है और हम उसमें फंसते चले जाते हैं। यह वैसा ही है जैसे कि मकड़ी खुद जाला बुनाती है दूसरों को फंसाने के लिए, लेकिन फिर खुद ही उसमें फंसकर जान गंवा देती है। तो अनंत कामनाओं की पूर्ति के कारण अनंत समस्याओं के चक्रव्यूह में मनुष्य जकड़ा और छटपटाता रहता है। इस चक्रव्यूह से बाहर आने के लिए कोशिश में लगा मनुष्य अपने कष्ट के लिए ईश्वर को दोष देता है, लेकिन एक भी समस्या ऐसी नहीं है जिसके लिए वह दोषी हो। फिर इन समस्याओं का हल कैसे हो?

हमारे चाहने पर तुरंत किसी समस्या का हल नहीं हो जाता। हो भी जाए तो दूसरी समस्या तैयार हो जाती है। जीवन का

सच यह है कि मनुष्य है तो उसके सामने समस्याएं भी रहेंगी ही। समस्याओं के साथ उसका चोली-दामन का रिश्ता है। आज के भागमभाग भरे समय में ज्यादातर लोग समस्याओं में घिरे होने के कारण खुद को अशांत और बेचैन महसूस करते रहते हैं। वह यह भूल ही जाते हैं कि समस्याओं के बीच रहते हुए भी सुकून से रहा जा सकता है। आज जगह जगह समस्याएं दूर करने के लिए दुकानें सजी हुई हैं। वहां अलग अलग तरह की समस्याओं का निदान करने का दावा किया जाता है। समस्याओं के निवारण के लिए कोई ज्योतिषी के पास जाता है तो कोई जादू-टोना करनेवालों के पास, कोई मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे या चर्च जा रहा है तो कोई किसी कर्मकांड में लगा है। अंधविश्वास के कारण लोग ऐसा लोग कर रहे हैं। भटकने से समस्याओं का निदान नहीं हो सकता। वह तो हृदय में स्थित परमात्मा को जान कर उसका चिंतन करने में होगा। वह कभी नहीं कहता कि हाथ पर हाथ धरे बैठे रहो। तुलसीदास जी कह गए हैं- कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा।

अंदर की शांति ही परेशानियों में राहत देती है। जिस तरह कमल कीचड़ में रहते हुए भी उसे स्पर्श नहीं करता और अपनी सुंदरता बनाए रखता है, उसी प्रकार समस्याओं के दलदल में रहते हुए भी मनुष्य खुश रह सकता है। लेकिन तभी जब वह भीतर की शांति को हासिल कर ले। ऐसा करके वह खुद को समस्याओं से मुक्त रख सकता है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता तो फिर उसकी हालत अपने ही बनाए जाले में फंसी मकड़ी जैसी हो जाती है। हम आसपास जितने कम जाले बनाएंगे, उतने सुखी रह सकेंगे।

जीवन में संघर्ष से ऊबिए नहीं। वास्तव में यह तो जीवन को रसीला और जाग्रत बनाए रखने के लिए है। आपने देखा, कई बार अति शांति में भी लोग ऊब जाते हैं, अति सुख आदमी को मदहोश बना देता है। इसलिए अति संपत्ति, विपत्ति का दूसरा नाम है। दुख हमें जगाए रहता है, विपत्ति या प्रतिकूलताएं जो जीवन में आती हैं, हमें जागृत रखती हैं, वरना सुख और अनुकूलता, सुविधाएं बहुत संभव है कि हमें सुला दें, इसलिए सुख की निरंतरता में जागते रहना मुश्किल काम है।

जिस प्रकार से गुलाब के साथ कांटे प्रकृति द्वारा गुलाब के लिए की गई सुरक्षा व्यवस्था है, उसी प्रकार से जीवन में आनेवाली प्रतिकूलताएं विपत्ति, दुख, वास्तव में हमारे खुद की सुरक्षा के लिए परमात्मा के द्वारा की गई व्यवस्था है। इसलिए शिकायत मत करो। हवा का रुख चाहे जैसा हो, लेकिन नौका को तो हम उसी दिशा में ले जाएंगे जिस दिशा में हम जाना चाहते है। जो हमारा गंतव्य है, ये कला है। आप परिस्थितियों को बदल नहीं सकते, आप गर्मी को आने से रोक नहीं सकते। पर उसके लिए आप पंखे लगा सकते हो, आप एसी लगा सकते हो। आप वर्षा को आने से रोक नहीं सकते। आप छाता लेकर बाहर निकल सकते हो, आप रेनकोट पहन सकते हो। आप पूरी धरती को कांटों से रहित नहीं कर सकते। जूते पहनकर निकल सकते हो। समस्या है तो उसका समाधान भी है। भूख बाद में लगती है, अन्न पहले से तैयार है। प्यास को शांत करने के लिए परमात्मा ने पानी दिया है।

प्रत्येक समस्या सगर्भा होती है और वह अपने गर्भ में समाधान को लिए रहती है, बस थोड़ा धैर्य रखो। देखना उस समस्या के ही उदर से समाधान मिलेगा। हम समस्या के लिए शिकायत तो बहुत करते हैं, किंतु समाधान के स्वीकार के लिए तैयार नहीं दिखते। समस्या ही समाधान देगी, समस्या पर ठीक से चिंतन करो, चिंता से मत भर जाओ। थोड़े से खुले मन, थोड़े से धैर्य, थोड़े से समर्पण, थोड़ा सा त्याग करने के लिए तैयार रहने की आवश्यकता है। केवल दैववादी बनकर बैठे रहोगे तो वह भी उपाय नहीं है। भगवान ने बुद्धि दी है, हृदय जैसी चीज दी है। उसका सदुपयोग करो। अगर

आप सही रास्ते पर हो तो परमात्मा भी आपके साथ है। परंतु पुरुषार्थ तो करना ही पड़ेगा। जिन लोगों ने ऊंचाइयां छुई हैं, उसके पीछे उनकी मेहनत, उनका पुरुषार्थ है। मिले साधनों का सदुपयोग करो।

गुलाब के साथ कांटे को समस्या के रूप में मत देखो। देखने का अपना नजरिया बदलो। देखो कि कांटों के बीच गुलाब कैसा मुस्कुरा रहा है। परमात्मा की इस अद्भुत कृति से इंसान हंसना और मुस्कुराना सीख सकता है, लेकिन यह सब हम पर निर्भर करता है।

समाधान सुझाने से पहले समस्या को समझना जरूरी - समाधान सुझाने से पहले समस्या को समझना एक ऐसा सिद्धांत है जो जीवन के बहुत से क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से सही दिखाई देता है। यह सभी सच्चे पेशेवर की पहचान है। चिकित्सक के लिए ये बहुत महत्वपूर्ण है। जब तक आपको ये विश्वास न हो कि चिकित्सक ने समस्या समझ ली है, तब तक आपको उसकी दवाओं पर विश्वास नहीं होगा। यह सिद्धांत विक्री में भी सही है। प्रभावकारी विक्रेता सबसे पहले ग्राहक की आवश्यकताओं, चिंताओं और स्थिति को समझने की कोशिश करता है। नौसीखिया विक्रेता उत्पाद बेचता है, पेशेवर विक्रेता उत्पाद बेचता है, पेशेवर विक्रेता आवश्यकताओं और समस्याओं के समाधान बेचता है। अगर उसे लगता है कि उसके उत्पाद या सेवा से ग्राहक को लाभ नहीं होगा तो उसमें यह कहने की ईमानदारी होती है कि मेरा उत्पाद या सेवा आपकी इस आवश्यकता को पूरा नहीं करेगा। पेशेवर वकील स्थिति समझने के लिए तथ्य इकट्ठे करता है। एक अच्छा अभियांत्रिक पुल का नक्शा बनाने से पहले काम कर रही शक्तियों और दबावों को समझेगा। अच्छा शिक्षक पढ़ाने से पहले कक्षा का मूल्यांकन करेगा। एक अच्छा विद्यार्थी अमल करने से पहले समझेगा। अच्छे निर्णय की कुंजी समझना है। जो पहले ही निर्णय ले लेता है वह बाद में समझता है। पहले समझने की कोशिश करना ऐसा सिद्धांत है जिसकी सच्चाई जीवन के हर क्षेत्रों में दिखाई देती है।

समय के साथ बहनके बजाय उसका सामना करना ज्यादा चुनौतीपूर्ण है। हवाओं का रूख भी बदला या मोडा नही जा सकता लेकिन इस कहावत का निहितार्थ यह कि निराशा के कारण जिधर हवा चले, उसी के साथ-साथ बहने चलने से कभी कभी लक्ष्य भ्रष्ट हो जाने का खतरा भी बना रहता है। बहरहाल पारिवारिक, देशज समस्याओं से हर व्यक्ति परेशान रहते आया है। आत्म दया व हीन भाव और ज्यादा निराशा के भंवर मे धकेलते है। मनुष्य अपनी जिजीविषा, विवेक और गन्तव्य की और बढने की ललक से ही समस्याओं से निजात पा सकता है, दैन्य और कुंठाग्रस्त व्यक्ति गलत दिशाओं मे ले जाती हवाओं के साथ हो जाता है अक्सर।

यथा स्थिति की शिला का भार ढोने के जिम्मेदार हम ही है। दीये को एक बार जलाये, बुझता है, दुबारा जलाइये। वक्त की आंधी है कि हर बार उसे बुझा देती है। रात आती है जाने के लिये। सुबह का इन्तजार रोशनी का इन्तजार है। बेचैनी और व्यग्रता से नियत समय के पूर्व सूर्योदय नहीं होता। प्रतीक्षा का सुख भी मीठा है। बीज से अंकुर बनने की प्रक्रिया भी तकलीफ दायक होती है लेकिन अनवरत मौन तपस्या अतत: फलीभूत होती है। देशज चिन्तायें होना बाजिब है, क्योकि हम सामाजिक है। नागरिक बोध सर्वोपरि है। वह विवेकसे ही पल्लवित होता है। बाजार के आक्रमण, भूमंडलीकरण, या भाषा के बिकते स्वरूप से खिन्न होना भी स्वाभाविक हे। तो फिर क्या आने वाले संकटो व समस्याओं से आंखे बच सकती है ?

यज्ञ, होम, हवन

हिंदू धर्म ही नहीं सभी धर्मों में अग्नि का अत्यधिक महत्व है। संसार पंच महाभूतों से बना है जिन्हें क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा कहा जाता है। अग्नि पहला तत्व है जिसके हम दर्शन कर सकते हैं। यज्ञ इसी अग्निदेव की पूजा है। विद्या को सरस्वती, धन-संपदा को लक्ष्मी, सांसारिक कार्यों में सफलता के लिए मंगलमूर्ति गणेश, भोजन पकाने की आंच को अग्निदेव, हवा को पवनदेव आदि की उपमाएं दी गई हैं ताकि जीवन के हर मोड़ पर हम इन सांसारिक संचयों को प्रभु का प्रसाद समझें। यहां तक कि मिथुन को भी कामदेव की संज्ञा दी गई है। यज्ञ के पीछे एक गहन दार्शनिक महत्व है, जिसे सब भूल चुके हैं। गोबर या ईट से बने कुंड में अग्नि प्रज्वलित करने के लिए समिधा रखी जाती है। कुंड के चारों ओर पंडित मंत्रों से स्वस्तिवाचन करते हैं और यजमान व अन्य आगंतुक यज्ञ मंडप में उपस्थित रहते हैं। सारे ईधन की समाप्ति के पूर्व जब-जब आहुतियां स्वाहा: के उच्चारण से दी जाती हैं तो मानो अग्निदेव ऊंची आंच के रूप में प्रकट होकर आशीर्वाद देते हैं।

यज्ञ की शेष भस्म विभूति के रूप में ललाट पर त्रिपुंड की तरह लगाते हैं जिससे साधक तन, मन व बुद्धि के बंधनों को या तामसिक, राजसिक व सात्विक गुणों को पार कर ब्रह्मं तक तक पहुंचने की क्रिया जताते हैं। आप सिपाही या डॉक्टर बनकर अपना पेट भर सकते हैं अथवा देश व समाज की सेवा कर सकते हैं। काम वही होगा, कमाई वही होगी, केवल मनोवृत्ति का अंतर होने से कामनाएं घटती हैं। अपने-अपने कार्यों को सामाजिक कुंड में आहुति के रूप में समर्पित कर सेवा व त्याग के प्रकाश में अग्निदेव को प्रसन्न करने से व स्वार्थों प्रवृत्तियों की तिलांजलि से यह सिद्धि प्राप्त होती है। कुंड किसी भी कार्य के क्षेत्र का प्रतीक है। कुंड में आहुति का तात्पर्य है अपने-अपने क्षेत्र में सार्वजनिक कल्याण हेतु अपनी क्षमता को समर्पित करना। मानव अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर अपने अंदर दिव्य आध्यात्म को धीरे-धीरे पाने लगता है। इसके विपरीत सांसारिक कार्यकलाप व्यक्ति को आसक्तियों में बांधकर उसकी वासनाओं की वृद्धि कर उसे जन्म-मृत्यु जरा-व्याधि के अटूट चक्कर में फिराता रहेगा। प्रत्येक कर्मकांड के पीछे निहित विशुद्ध सार-तत्व को पकड़ें।

आसक्ति रहित जीवन यज्ञमय बन जाता है। यज्ञ कई प्रकार के होते हे- स्वाध्याय यज्ञ, जप यज्ञ, योग यज्ञ, द्रव्य यज्ञ, विद्या पढ़ना ब्रह्मयज्ञ है, माता-पिता को तृप्त रखना पितृमेघ यज्ञ है, हवन होम करना देव यज्ञ है, प्राणियों के लिए अन्न का समर्पण भूत यज्ञ है। अतिथि सत्कार नर यज्ञ है।

प्राचीन काल में महत्ता प्रदर्शन करने का साधन यज्ञों का विस्तार था। जो जितने अधिक यज्ञ करे, जो जितना बड़ा समृद्धशाली चिरकालीन यज्ञ करे, वह उतना ही बड़ा समझा जाता था। कलिकाल में बड़प्पन यज्ञों से न रहेगा। उस समय जो जितना अधिक विलासी हो। विषया-भोगों में और नास्तिक विधर्मी विदेशी तथाराज्याधिकारियों की चापलूसी में; जो जितना अधिक धन अपव्यय करेगा, जिसके नाम के आगे जितनी ही बनावटी उपाधियाँ लगी रहेंगी, वह उतना ही अधिक श्रेष्ठ समझा जायेगा।

यज्ञों के अनेक भेद हैं। फिर भी सबका समावेश ६ यज्ञों में हो जाता है। एक तो जो नित्य का अग्निहोत्र है नित्य अग्नि की उपासना है, वह प्रथम और प्रधान यज्ञ है। दूसरा यज्ञ पितरों के निमित्त प्रत्येक अमावस्या को होता है। पितरों को

अमावस्या अत्यन्त प्रिय है अत: पितरों के उद्देश्य से अमावस्या को जो यज्ञ किया जाता उसे दर्शयज्ञ कहते हैं, इसके करने से अक्षय फल होता है। उस दिन अधिक न हो तो पितरों के निमित्त कुछ अन्नदान ही कर देना चाहिये। प्रत्येक मास की पूर्णिमा को जो यज्ञ किया जाता है उसे पौर्णमास यज्ञ कहते हैं। चौथा यज्ञ चातुर्मास्य कहलाता है। वर्षात के चार महीने एक स्थान पर रहकर जो विशेष नियम संयम के सहित व्रत उपवास आदि किये जाते हैं वे सब चातुर्मास्य यज्ञ के अंग है। वर्णाश्रमी के लिये चातुर्मास्य यज्ञ आवश्यक है। ये चार तो समय-समय पर सदा करने ही चाहिये। इनके अतिरिक्त जो बड़े-बड़े यज्ञ होते हैं उनमें एक पशु यज्ञ, दूसरा सोम यज्ञ कहलाता है। वे यज्ञ और क्रतु भेद से दो प्रकार के हैं। जिन यज्ञों में पशु बाँधने का खम्भा होता है वे तो सामान्यतया यज्ञ कहलाते हैं जिसमें यह नहीं होता वे क्रतु कहलाते हैं। उनमें भी प्रकृति और विकृति रूप से दो भेद है। जिनमें यज्ञ के सम्पूर्ण अंगों का विधान हो ऐसे सांगोपांग यज्ञों की संज्ञा प्रकृति है। जिनमें न्यूनाधिक्य रूप से अंगों का विधान हो वे विकृत कहलाते हैं। यजमान यज्ञों को होता (ऋग्वेदीय) अध्वर्यु (यजुर्वेदीय) उद्गाता (सामवेद गान करने वाला) और ब्रह्मा (अथर्ववेदीय) इन चार ऋत्विजों की सहायता से श्रद्धापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। सदस्य यज्ञ में उपस्थित रहकर उसका अवलोकन करते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न यज्ञों का अंग और क्रियाओं के सहित अनुष्ठान किया जाता है। जो यज्ञ जिस देवता के नाम से किया जाताहै उस देवता का उस यज्ञ में प्राधान्य होता है, शेष सब देवताओं का सामान्य रूप से पूजन होता है। जो यज्ञ जिस कामना से किया जाता है वह उसी के फल को उत्पन्न करता है और मृत्यु के अनन्तर यज्ञकर्ता अपनी भावना के अनुसार उन-उन लोकों में जाकर उनके फलों का उपभोग करता है।

यज्ञादि कर्म विधि के अधीन है। विधिहीन यज्ञ निष्फल ही हो जाय, सो बात नहीं। विधिहीन यज्ञ का कर्ता भी शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाता है। जो यज्ञ विष्णु प्रीत्यर्थ किये जाते हैं, उनमें भगवान विष्णु का विशुद्ध सस्वर मन्त्रों से विधि विधानपूर्वक आहवाहन किया जाता है। यदि मन्त्र में स्वर से, मात्रा से या वर्ण से या उच्चारण से कोई त्रुटि रह जाती है, तो फिर भगवान् नहीं आते। यज्ञ में कोई अशुद्धि हो गयी, किसी क्रिया का लोप हो गया, कोई आगे-पीछे हो गयी तो भी भगवान् नहीं आते।

यदि यज्ञ में मन्त्र, तन्त्र, देश, काल, अथवा अर्थ में कोई त्रुटि भी रह जाय और भगवान के नामों का कीर्तन कर दिया जाय तो वे सब त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं। वेद, यज्ञादि समस्त क्रियाओं की न्यूनता भगवान के नामस्मरण से दूर हो जाती हैं। इसलिये यज्ञों में वैदिक तान्त्रिक मन्त्रों का कीर्तन होता था।

** जिन्दगी कठिन समय में जो नाच नचाती है*
तो उसे अपनेवाले ही दुनिया के बजार में उसका ढोल-बजाते है।
** ऊपरवाला न कागज रखता है, न किताब रखता है,*
फिर भी वो पूरी दुनिया का हिसाब रखता है।
** हालात के कदमों पर कलन्दर नहीं गिरता, टूटे तारे जमीं पर नहीं गिरते।*
गिरते है बड़े शौक से समन्दर में दरिया पर कोई समन्दर दरिया में नहीं गिरता।

राग-द्वेष

रागका विलोम द्वेष है। मनमें जिसके प्रति द्वेषका भाव होता है, उससे हम वैरभाव पाल लेते हैं। उसके अनिष्टके उपाय सोचने लगते हैं। यदि किसीने हमें हानि पहुँचायी तो उससे बदला लेने और कहीं अधिक हानि पहुँचानेका विचार मनमें आने लगता है। इस क्रिया-प्रतिक्रियाके क्रमसे शत्रुका ही नहीं हमारा स्वयंका भी अहित होता है। कर्मवादका सिद्धान्त यहाँ हमारी सहायता कर सकता है, प्रतिहिंसासे जलते हुए मनको शान्ति दे सकता है।

यह राग जबतक भोगोंमें है तबतक यह राग चोरका रूप रखकरके तमाम सद्गुणोंका हरण करता है। तमाम शान्तिका, आनन्दका हरण करता रहता है। अर्थात् विषयरागी मनुष्य यह चाहे कि हमको शान्ति मिल जाय यह कभी सम्भव नहीं। जबतक यह राग भोगोंमें है तबतक यह राग चोर हैं यह राग निरन्तर स्वात्म धनको, आनन्द धनको, प्रेम धनको निरन्तर लूटता रहता है। विषय रागी मनुष्य, विषय राग रखते हुये, विषयोंकी प्रचुर प्राप्तिमें और अप्राप्तिमें कभी भी वह सुख-शान्ति और आनन्दकी उपलब्धि नहीं कर सकता। यह विषय, राग, उसका हरण करते रहते हैं निरन्तर। शांतिको पास आने नहीं देते। इसलिये चिन्ता, दु:ख, विषाद, भय उनके नित्य संगी रहते हैं।

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार। राग न रोष न दोष दु:ख दास भए भव पार।।

राग और द्वेष का संबंध चोर-चोर मौसेरे भाई की तरह है। दूसरे शब्दों में चोली-दामन की तरह हैं राग-द्वेष ! यदि किसी से राग है तो कभी भी द्वेष होना है। इससे बचा नहीं जा सकता है। इसलिए अति राग से बचना चाहिए। राग-द्वेष लुटेरे हैं! क्या लूट लेते हैं ? आपका आनंद, चैन, सुख लूट लेते हैं। संत-महात्मा कहते हैं राग द्वेष से बचना है तो संतोंकी संगत करनी चाहिए और सत्संग को सुनकर उस पर अमल करना चाहिए ! गोस्वामी जी ने कहा- बिनु सत्संग विवेक न होई ! सत्संग से विवेक जागृत होता है और एक ऐसी समझ मिलती है कि राग-द्वेष रूपी लुटेरों से बचा सकते हैं अपने आपको! राग-द्वेष मनुष्य के अच्छे स्वभाव को लूट लेता है और उसे कंगाल कर देता है। स्वभाव जिसका अच्छा है उसे आदर मिलता है और उसे स्वभाव का धनी कहा जाता है लेकिन जब यही अच्छा स्वभाव लुट जाता है तो कंगाल कहते हैं। इसीलिए राग-द्वेष से अपनी रक्षा करने का मूलस्त्रोत है सत्संग। रुक्मिणी जी राग से श्रीकृष्ण का चिन्तन करती थीं, कंस द्वेष से। दोनों को ही श्रीकृष्ण की प्राप्ति हुई। जिस वस्तु में आसक्ति अनुरक्ति न होगी उससे हम द्वेष क्यों करेंगे? जिसे हम चाहते हैं जो हमें किसी भी कारण से प्राप्त नहीं होती तो हम ईर्ष्यावश उससे द्वेष करते हैं, बुराई करके ही उसके प्रति अपनी अनुरक्ति व्यक्त करते हैं। राग से जिसका उपभोग नहीं कर सकते द्वेषवश उसी की बुराई करते हैं।

इस जीव ने अनेक योनियों में भ्रमण किया है सभी योनियों में माता, पिता, भाई, संगी सुहृद रहे हैं उनमें से किसी के प्रति राग किया है किसी के प्रति द्वेष संस्कार सहज में तो मिट नहीं जाते। उन्हीं के वशीभूत होकर जीव का प्रारब्धवश जिससे संग हो जाता है उससे भी राग द्वेष करने लगता है। अपने प्रतिकूल आचरण करनेवालों से प्राय: द्वेष होता है। अनुकूल व्यवहार करनेवालों से राग। इस राग द्वेष के कारण ही जीव बार-बार मरता और जीता है। जिन वस्तुओं से हमारा संसर्ग होता है, उनमें से किसी के प्रति राग हो जाता है, किसी के प्रति द्वेष। राग से आसक्ति होती है, द्वेष से घृणा। आसक्ति और द्वेष से चित्त में विषमता होती है। राग-युक्त वस्तु के तो नाश का भय बना रहता है और द्वेष-युक्त वस्तु में आक्रमण का भय। उससे कहीं शान्ति नहीं मिलती। जब मनुष्य सभी को समान भाव से देखता है, न किसी से राग करता है, न द्वेष, तब उस समदर्शी पुरुष के लिए सभी दिशाएँ सुखमयी बन जाती हैं।

आत्मविश्वास, आत्मचिंतन

आत्मविश्वास- काम करते हुए कई बार आत्मविश्वास डगमगा जाता है। किसी खास दबाव के कारण ऐसा हुआ हो, तो इसे कोई गंभीर बात माना भी नहीं जाता। हम सभी कभी न कभी ऐसी स्थिति का सामना करते हैं। लेकिन हालत गंभीर तब मानी जाती है, जब यह प्रवृत्ति व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाए। कोई मामूली काम करते या अपनी बात कहते भी व्यक्ति लड़खड़ाने लगे। उसका अपने ऊपर से भरोसा पूरी तरह से उठ जाए। कई बार तो बात फोबिया तक जा पहुंचती है। वह लिफ्ट में, भीड़ में या अन्य किसी बंद स्थान पर घबराता है और कहीं अकेले जाने में भी डरने लगता है। ऐसी मानसिक समस्या लंबे समय तक चले, तो गंभीर रोग में परिवर्तित हो सकती है।

आत्मविश्वास की कमी के कारण और भी तमाम तरह की समस्याएं उठ खड़ी होती हैं, जैसे शरीर का कंपकंपाना, अज्ञान आशंकाओं से भयभीत रहना, हकलाना, चक्कर आना, विभिन्न प्रकार के डर (फोबिया), एंग्जाइटी, यौन संबंधी कुंठाएं, वहम, किसी से बात करते हुए आंखें मिला कर बात न कर पाना, बुद्धिमान होते हुए भी बच्चों का पढ़ाई में मन न लगना, भूल जाना, हीनभावना से ग्रस्त होना आदि।

हमारे समाज में लोग शुरू में तो मानसिक रोग को रोग ही नहीं मानते और जब वह गंभीर रूप ले ले, तो बड़ी सहजता से रोगी को पागल करार कर देते हैं। मनोचिकित्सकों को पागलों के चिकित्सक, उनके पास जाने वालों को पागल मान लेते हैं। सच तो यह है कि मानसिक रोग भी शारीरिक रोग की तरह ही होते हैं। जैसे हमारा शरीर कई बार रोग के कीटाणुओं का सामना नहीं कर पाता और बीमार हो जाता है, ऐसे ही कई बार हमारी मनस्थिति किसी खास व्यवहार, परिस्थिति या घटना का सामना नहीं कर पाती और हमारा व्यवहार असामान्य हो जाता है। जैसे बहुत बार शारीरिक रोग खुद-ब-खुद ठीक हो जाते हैं, वैसे ही मानसिक अवस्था भी कुछ दिनों में ठीक हो सकती है और कई बार चिकित्सक की मदद भी लेनी पड़ती है। ऐसे में मनोचिकित्सक की सलाह से आसानी से मानसिक रोग से छुटकारा पाया जा सकता है। जरूरी यह है कि व्यवहार में असामान्यता देखते ही मनोचिकित्सक से मिला जाए, ताकि रोग का आरंभिक अवस्था में ही इलाज किया जा सके।

इसमें रोगी से विस्तार से बात की जाती है। मनोचिकित्सक पता लगाने का प्रयास करता है कि वाकई वे कौन से कारण हैं, जिनकी वजह से व्यक्ति विशेष इस हालत में पहुंच गया है। उसके साथ दूसरों का व्यवहार, उसकी कोई शारीरिक कमी या बचपन की कोई विशेष घटना-कोई भी वजह व्यक्ति का आत्मविश्वास डगमगा सकती है। इसके अनुरूप ही रोगी का दृष्टिकोण बदलने का प्रयास किया जाता है। अगर जरूरत हो, तो मनोचिकित्सक उसके परिवार के सदस्यों से भी बात करता है। वह घर के वातावरण तथा घर के अन्य सदस्यों के आपसी व्यवहार को भी सुधारने की सलाह देता है। रोगी से बार-बार बात की जाती है और उसे एहसास कराया जाता है, जो बात उसके अवचेतन में अटक कर उसके व्यवहार को प्रभावित कर रही है, वह इतनी बड़ी नहीं है, जितनी वह समझ रहा है। परिवार और मित्रों का व्यवहार भी रोगी को ठीक होने में मदद करता है।

आत्मविश्वास एक ऐसी प्रेरणा है जो व्यक्ति को कदम-कदम पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। किसी भी कार्य को करने के लिए मन में दृढ़ संकल्प करना पड़ता है। इससे मनुष्य कार्य को निर्धारित समय में पूर्ण कर लेता है।

आत्मविश्वास से शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय क्रियाशील बनती है। उसमें एकाग्रता की शक्ति उभरती है। इससे वह हर वक्त अपने कार्य के ही बारे में सोचता रहता है। लगन, परिश्रम और कार्य को पूरा करने की प्रतिज्ञा मनुष्य को सफलता के शिखर पर पहुंचा देती है।

कुछ लोगों के पास अच्छी काबिलियत होने के बावजूद वे हमेशा हीन भावना से ग्रस्त रहते हैं। अपनी कोई भी छोटी से छोटी कमी को वे बड़ा कर सोचते हैं। कोई भी निर्णय लेने के पहले वे असमंजस की स्थिति में रहते हैं। यह सब होता है क्योंकि उनमें आत्मविश्वास की कमी रहती है।

आत्मविश्वास शानदार व्यक्तित्व की चाबी होता है।

१) हमेशा खुद को दोषी न मानें- किसी के भी चेहरे पर उभरने वाले अच्छे, बुरे या हास्यास्पद भावों को देखकर यह न सोचें कि लोग आपको देखकर ही हंस रहे हैं या फिर आपकी ही किसी गलती से सामने वाला नाराज हो रहा है। ऐसा सोचने से आपका आत्मविश्वास खतरे में पड जाता है। यदि मालिक किसी और को डांट रहे हों तो, बैठे-बैठे यह अंदाजा मत लगाते रहिए कि अब आपको भी डांट पड़ने वाली है। कहने का मतलब है हर बात को निजी तौर पर न लें। इससे आप यदि कुछ अच्छा भी सोच रहे हों तो उस पर विपरित असर पड़ता है। हमेशा आने वाले नकारात्मक विचार आपके आत्मविश्वास में कमी ला देते हैं। दूसरे के बिगड़े मूड़ को देखकर अपने आपको कमजोर न बनाएं। न ही किसी प्रकार की आत्मग्लानि महसूस करें। आप यह क्यों सोचते हैं कि किसी का मूड आपकी वजह से ही बिगड़ा होगा।

२) निंदक नियरे राखिए- निंदक अर्थात अपनी बुराई बताने वाले को हमेशा पास में रहना चाहिए। निंदा व्यक्ति के विकास में बड़ी अहम भूमिका निभाती है। जो लोग अपनी निंदा सुनकर उसकी समीक्षा करते हैं वे आत्मविश्वास से भरे रहते है। इसका यह मतलब नहीं है कि आप अपनी बुराई सुनते ही जाएं। बल्कि पहले देखें कि आपकी खामियां बताने वाले व्यक्ति का आशय क्या है और वह किस स्वभाव का है। खुद की खामियों पर की गई समीक्षा आपको ज्यादा आत्मविश्वासी बनाती है। समय-समय पर अपना आत्मविश्लेषण करते रहिए। हमेशा अपने मन में यह भावना रहने दें, चंद गलतियों के बावजूद आप श्रेष्ठ हैं।

अपनी खामियों पर ओवर रिएक्ट भी मत करिए। यह आपके आत्मविश्वास को कमजोर बना देता है। क्योंकि जब आप अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, तो या तो चीखते हैं या गुस्से से तमतमाया हुआ लाल चेहरा लिए चुप बैठ जाते हैं।

आज के युग में आत्मविश्वास का सबसे बड़ा महत्व है। जिस व्यक्ति के अन्दर आत्मविश्वास नहीं होता वह व्यक्ति कभी भी किसी काम में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। किसी काम को करते समय सबसे पहली सीढ़ी आत्मविश्वास की होती है।

अगर व्यक्ति के अन्दर आत्मविश्वास है तो वह कठिन से कठिन काम करने में सक्षम है। एक उदाहरण है कि जब श्रीराम ने रावण के ऊपर चढ़ाई की और लंका को जाने लगे, तब समुद्र को पार करना कठिन हो गया। आत्मविश्वास के बल पर ही वह सागर सेतुबंधन एवं लंका तथा लंकेश पर विजय सदृश असंभव प्राय: कार्य करने में समर्थ हुए।

यह कथानक प्रमाणित करता है कि आत्मविश्वास जिसके हृदय में होता है वह व्यक्ति अपने कार्य को पूरा करके ही छोड़ता है।

मध्यकाल में पान का बीड़ा उठाने की परम्परा प्रचलित थी। जब कोई कठिन अवसर उपस्थित होता था तब वीर एवं साहसी लोगों की सभा बुलाई जाती थी और केन्द्र स्थल पर पान का बीड़ा रख दिया जाता था। जिस व्यक्ति का

आत्मविश्वास प्रबल होता था वह अपने स्थान से उठकर उस बीड़े को उठा लिया करता था। उसका यह कृत्य अघोषित घोषणा माना जाता था कि वह इस कार्य को करके ही रहेगा जिसके नाम पर बीड़ा उठाया है।

एक वैज्ञानिक ने ठीक ही लिखा था कि महान कार्यों के लिए पहली आवश्यकता है आत्मविश्वास की। आत्मविश्वास के अभाव में कोई भी व्यक्ति किसी काम को अपने हाथ में ले सकता है पर उसको सम्पन्न करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। जो आत्मविश्वासी नहीं होगा उसके पांव चलने से पहले ही लड़खड़ा जायेंगे और वह हाथ पर हाथ रखकर बैठ जायेगा। आज हर व्यक्ति को आत्मविश्वास रखना चाहिए। आत्मविश्वास ही आदमी का सबसे पहला धन माना जाता है। अगर व्यक्ति के अन्दर आत्मविश्वास नहीं है तो समझो उसके पास किसी प्रकार का धन या किसी प्रकार की सम्पत्ति नहीं होती क्योंकि यह सब प्राप्त करने के लिए आत्मविश्वास होना बहुत जरूरी है। अगर व्यक्ति आत्मविश्वासी है तो वह कठिनाई और बाधाओं को चुनौती के रूप में स्वीकार करता है और उसकी तह तक जाकर उसके निराकरण की सम्भावनाओं पर विचार करता है।

किसी ने ठीक ही कहा था कि ऐसी कौन सी मुश्किल है जो आसान नहीं। यदि ऐसा न होता तो हमारे समाज में प्रचलित अनेकानेक प्रेम कहानियों के नायक अपनी प्रेमिकाओं की अभिलाषा पूर्ति हेतु सामान्य जन की दृष्टि से असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य कदापि सम्पन्न नहीं कर सकते थे।

आत्मविश्वास के धनी लोकमान्य गंगाधर तिलक ने यह घोषणा की थी स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।

स्वतन्त्रता सेनानियों के आत्मविश्वास का ही कमाल था जिसके बल पर निहत्थे सत्याग्रहियों ने यह नारा लगाया कि हम चरखे से ले लेव सुराज हमारा कोई का करिबो तथा अन्तत: विश्व की सर्वश्रेष्ठ सत्ता पर विजय प्राप्त की। अंग्रेजी के महाकवि टेनीसन ने जीवन को परम शक्ति सम्पन्न करने के लिए जिन तीन शक्तियों का परिगणन किया है उनमें आत्मज्ञान और आत्मसंयम से पहले आत्मविश्वास को ही रखा है।

आत्मविश्वास व्यक्ति के रास्ते का कार्य करता है। अगर व्यक्ति ने रास्ते को नहीं देखा है तो वह वहां तक नहीं जा सकता है। उसी प्रकार व्यक्ति के अन्दर अगर आत्मविश्वास नहीं है तो वह किसी कार्य करने में डरता रहेगा और उसे सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि उसमें आत्मविश्वास नहीं है।

आत्मविश्वास के अभाव में व्यक्ति छोटे से छोटा कार्य करते हुए डरता है परन्तु जब उसका मन यह कहने लगता है कि वह चुनौती को स्वीकार करना चाहता है तो उसको कार्य पूरा करने के उपाय भी सूझ जाते हैं।

आत्मविश्वास बढ़ाने का ढंग यह है कि तुम वह कार्य करो जिसे करते हुए तुम डरते हो। इस तरह ज्यों ज्यों तुम्हें कामयाबी मिलती जायेगी, तुम्हारा आत्मविश्वास बढ़ता जायेगा। जिस व्यक्ति में आत्मविश्वास नहीं होता, वह शक्तिमान होते हुए भी कायर होता है और पण्डित होते हुए भी मूर्ख है। आत्मविश्वास ही वह रसायन है जो मनुष्य की प्रवृत्तियों को उद्वेलित करता है और उनको निखारता है।

स्वामी विवेकानन्द ने ठीक ही कहा था कि आत्मविश्वास के समान दूसरा कोई मित्र नहीं है। आत्मविश्वास वह मित्र है जो कि हर परिस्थिति में साथ देता है। यह सच्चा मित्र माना जाता है। कोई मित्र कठिन परिस्थिति में साथ छोड़ सकता है और छोड़ भी देता है लेकिन व्यक्ति के अन्दर आत्मविश्वास ऐसा मित्र है जो कठिन परिस्थिति में भी साथ नहीं छोड़ता। सुभाष चन्द्र बोस को आत्मविश्वास था कि हम अपना देश अंग्रेजों से स्वतन्त्र करायेंगे। उनके हर काम में आत्मविश्वास

ही साथ देता था। व्यक्ति में आत्मविश्वास का होना अति आवश्यक है।

आत्मविश्वासी व्यक्ति वह कभी नहीं सोचता कि अन्य व्यक्ति उनके बारे में क्या सोचते है और क्या कहते हैं। उसको हमेशा विश्वास रहता है कि उसका मन कभी कोई गलत काम नहीं कर सकता है। हमेशा वह अपनी इच्छानुसार कार्य का चयन कर लेता है और उसको पूरा भी करता है। दूसरे की सोच को प्रेरणा बनाने का तात्पर्य ही यह होता है कि हमारे पास आत्मज्ञान और आत्मविश्वास दोनों की कमी है और हम वैसाखी के सहारे चलना चाहते हैं।

आत्मविश्वास ही वह अनुपम, अद्‌भुत और अदृश्य शक्ति है जिसके बल पर आप अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते जाते हैं। वही आपकी आत्मा है। वही आत्मबल है और वही आपका पथ प्रदर्शक है। स्वामी विवेकानन्द का यह उद्‌बोधन स्मरणीय है- सर्वप्रथम आत्मविश्वास करना सीखो।

हे ईश्वर। अगर इस बार मैं पास हो गया तो एक सौ एक रुपये का प्रसाद चढ़ाऊंगा। बेटे की नौकरी लग जाएगी तो सोलह-सोमवार का व्रत करूंगी।

आपरेशन सफल रहा तो वैष्णो देवी दर्शन करने अवश्य जाऊंगी। बच्ची जल्दी ठीक हो जाए तो घुटनों के बल मन्दिर तक यात्रा करूंगी। ऐसी कितनी ही मनौतियां है, जिसे लोग हर रोज माना करते हैं। मनौती का एक ही उद्देश्य होता है- किसी कार्य के सफल रूप में सम्पन्न हो जाने पर अपनी जेब हल्की करना।

आज के समय में बहुत ही कम लोग ऐसे होंगे जो संकट के समय में धैर्य रखते हुए मनौती न मांगते हों। मनौती के जरिए वे अपना कमजोर आत्मविश्वास और बीमार मानसिकता को ही प्रदर्शित करते है। दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय वाली उक्ति को चरितार्थ करते हुए लोग संकट के समय में अनेक प्रकार की मनौतियों की मांग कर डालते हैं किन्तु ठीक स्थिति में वे ईश्वर का कितना ध्यान करते हैं, यह जानने की आवश्यकता है।

ऐसी मनौतियों की शिकार अधिकतर महिलाएं ही होती हैं जो जरा-सी विषम स्थिति आते ही घबराकर मनौतियां मानने लग जाती हैं। ये महिलाएं या ऐसे लोग जो कमजोर इच्छाशक्ति वाले होते हैं, बात-बात पर मनौती मान लेते हैं। फिर भले ही उसे पूरा करें या न करों। कार्य पूरा होने पर ऐसे लोग मनौती को श्रेय अवश्य देते हैं और कार्य को पूरा न होने पर किस्मत को दोषी ठहराते हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है- कार्य करो परन्तु फल की इच्छा मत रखो। (कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन) हमारी मानसिकता होती है- फल प्राप्ति के बाद ही मनौती रूपी कार्य करेंगे।

दरअसल हरेक कार्य के दो पहलू होते हैं। सकारात्मक या नकारात्मक अर्थात् सफलता या असफलता। अक्सर आधे काम स्वयं ही सफल हो जाते हैं या परिणाम मन मुताबिक हुआ करते हैं। नतीजतन इस कार्य का सारा श्रेय मनौती के हिस्से में चला जाता है। असफलता की स्थिति को विधि का विधान कहकर टाल दिया जाता है। कार्य की सिद्धि में अगर मेहनत और लगन है, तो उसे सफल होना ही है। फिर मनौती की आवश्यकता क्यों ?

एक विज्ञान का छात्र परीक्षा भवन में जाने से पहले मन्दिर में जाता है और हाथ जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना करता है कि प्रश्नपत्र ठीक हो गया तो सवा पांच रुपये का प्रसाद चढ़ाऊंगा। अब अगर उसने साल भर पढ़ाई ठीक से नहीं की है तो क्या ईश्वर परीक्षा भवन में उसके स्थान पर बैठकर परीक्षा के प्रश्नों को हल कर देंगे ? ईश्वर प्रेरणा-शक्ति है। उनसे प्रेरणा पाकर सही मेहनत करके सफलता प्राप्त करना ही ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा रखना होता है।

मनौतियों के पीछे मुख्य वजहें हैं- आत्मविश्वास का कमजोर होना, इच्छाशक्ति का कमजोर होना, संघर्षों से जूझने से डरना, संकल्प शक्ति का कम होना, संकट से घबराना तथा पालनवादी मनोप्रवृत्ति का होना। आत्मविश्वास एवं इच्छाशक्ति

को दृढ़ बनाकर किया जाने वाला कार्य लगभग सफल ही होता है। इन दोनों के कमजोर होने पर कोई भी ईश्वरीय शक्ति मनौतियों के माध्यम से कार्य पूरा नहीं करा सकती।

अधिकांशत: औरतों में मनौती की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। आत्मविश्वास एवं इच्छाशक्ति के अभाव में वे ईश्वर को मनौती रूपी लालच देकर किसी कार्य विशेष को कराना चाहती हैं। ऐसा नहीं है कि पुरुष ऐसी धारणाओं से वंचित हैं। वे भी मनौती मानकर अपनी निष्क्रियता को प्रदर्शित करने में पीछे नहीं रहते हैं। यह जान लेना आवश्यक है कि ईश्वर भी उसी की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करने लायक होता है। मनौती मानकर निश्चित हो जाना आत्मविश्वास की कमी को परिलक्षित करता है।

इसलिए यह बेहतर है कि मनौती मानकर ईश्वर की परीक्षा लेने या उसे छलने की बजाय दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ कार्य सिद्धि के प्रयासों में लगा जाए। मनौती मानकर उसे पूरा न करना ईश्वर को छलने के समान ही होता है। हम मांगे या न मांगे, ईश्वर हमें उतना देगा ही जितने हमने कर्म किये है।

विवेकानंद ने कहा कि नास्तिक वो नहीं जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, नास्तिक वो है जो स्वयं पर विश्वास नहीं करता। यदि आप में आत्मविश्वास है तो आप वास्तव में आस्तिक हैं, बेशक आप पूजा-अर्चना जैसे बाहरी तत्वों से विमुख रहते हों। तो क्या हम आत्मविश्वास आ जाने पर ईश्वर पर विश्वास करना छोड़ सकते हैं? नहीं, ऐसा भी नहीं है। वस्तुत: आस्तिकता और आत्मविश्वास उत्पन्न करने का साधन अथवा मार्ग है। ईश्वर में विश्वास अथवा आस्तिकता द्वारा हम स्वयं में विश्वास पैदा करते हैं। यह अपनी ही शक्ति के जागरण का एक तरीका है। हमारा ईश्वर हमेशा हमारी आकांक्षाओं के ही अनुरूप होता है।

मनुष्य की क्षमता अपरिमित है और उसके विकास के लिए, उसको जानने, खोजने और समुचित उपयोग करने के लिए आत्मविश्वास रूपी माध्यम जरूरी है। आत्मविश्वास से ही सभी साधन जुट पाते हैं। आत्मविश्वास हो तो शारीरिक बल की कमी ही नहीं, विकलांगता भी सफलता में बाधा नहीं बनती। इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

हमारे विकास में सबसे बड़ी बाधा है आत्मविश्वास का अभाव, न कि शारीरिक बल की कमी और विकलांगता या आर्थिक अभाव। मन-मस्तिष्क को कभी विकलांग मत होने दीजिए। आपका उत्कट आत्मविश्वास असंभव को संभव बना देगा। वैसे भी यदि आप स्वयं अपने पर विश्वास नहीं करेंगे तो और कौन आप पर विश्वास करेगा?

व्यक्ति के आत्मविश्वास का सबसे अच्छा पैमाना है उसकी जोखिम उठाने की इच्छा।

अमिताभ बच्चन के आत्मविश्वास से ही उसे सर्वश्रेष्ठ अभिनय कला का पुरस्कार मिला और वह उम्र के ७० वे वर्ष के पड़ाव में भी सदी का महानायक बना रहा। यह कलाकार युवा समकालीनों को चुनौती दे रहा है। विपरीत परिस्थितियों में भी आत्मविश्वास किसी व्यक्ति का बरकरार है तो उसने आधी सफलता तो हासिल कर ही ली। आत्मविश्वास न केवल व्यक्ति को बल्कि उसके परिवार को, समाज को और पूरे देश को विकास पर ले जाता है। किसी की भी हार और जीत उसके स्वयं के हाथ में होती है। संघर्षों के दौरान किसी भी व्यक्ति का अंदर का आत्मविश्वास ही उसे कठिनाइयों से उबरने की प्रेरणा देता है। अगर उस व्यक्ति का खुद पर से भरोसा उठ जाए तो भविष्य में उसकी जीत की संभावना कम हो जाती है। आत्मविश्वास का एक बेहतरीन उदाहरण क्रिकेटर सचिन तेंडुलकर है। सफलता ऐसे ही नहीं मिलती लेकिन आत्मविश्वास सर्वाधिक जरूरी है, वरना कुछ भी हाथ नहीं लगता। धीरूभाई अंबानी, नारायण मूर्ति ऐसे कई नाम है जिन्होंने जीवन के तमाम उतार-चढ़ावों के बावजूद खुद पर से विश्वास नहीं खोया और देर से ही सही अपनी मंजिल तय

कर ली। प्रतिस्पर्धा के दौरान युवा अगर आत्मविश्वास बनाए रखें तो उसके लिए कोई मुश्किल नहीं होगी।

मानव की सर्वोत्तम दक्षता/विशेषज्ञता है। इससे सफलता प्राप्ति हेतु अधिक परिश्रम करने की अतिरिक्त प्रेरणा मिलती है। आत्म-सम्मान का अभाव अत्यधिक हानिकर है। आत्मसम्मान ही तो वह प्रेरणा है, जो हमें अन्याय व बुराई से लड़ने की शक्ति प्रदान करती है।

उम्मीद का दामन छूट जाने पर हम इतना दुखी हो जाएं और आत्मविश्वास को इतना गिरा लें कि जिंदगी की अगली सकारात्मक योजनाओं का हिस्सा ही न बन सकें? जिंदगी में कई बार ऐसे मोड़ आते हैं, जब हमें लगता है कि अब हम कुछ कर ही नहीं सकते। हमारा आत्मविश्वास भी हमारा साथ छोड़ने को आतुर होता है। तो ऐसे पल में क्या हम हताशा और कुंठाओं के आगे घुटने टेक दें?

मन का हो तो अच्छा, ना हो तो और भी अच्छा। इन शब्दों को सुनना जितना आसान लगता है उतना ही कठिन है इस पर अमल करना। लेकिन छोटी-सी जिंदगी में ख्वाहिशों का टूटना और पूरा होना तो लगा ही रहता है।

दूसरों से मिलनेवाली सराहना को सहृदय स्वीकार करें। खासकर जब कोई नया और अच्छा काम आप खुद से पूरा करें तो खुद की सराहना करना कभी ना भूलें। उन चीजों के बारे में तय करें जो आपको सही लगे। सफलता के लिए जल्दबाजी घातक हो सकती है। इसलिए एक ऊंची छलांग के बजाये धीरे-धीरे सफलता की ओर अपने कदम बढ़ाएं। जीवन के लिए अपनी क्षमताओं का आकलन कर यथार्थवादी उद्देश रेखांकित करें। यथार्थ से परे उद्देश्यों के पीछे भागते रहने से आपका आत्मविश्वास डगमगाना तय है।

इस दुनिया में पूरी तरह से कोई भी पूर्ण नहीं है। इसलिए इस पूर्णता की अपेक्षा करना आत्मविश्वासको कम कर सकता है। दोस्तों के चयन करने के मामले में काफी सतर्क रहें। उनके साथ रहना ज्यादा अच्छा है, जो आपको सहयोग देते हों और जीवन के प्रति जिनका रुख सकारात्मक हो। हर दिन कुछ घंटे वो काम करें जो आपके दिल को अच्छा लगे। ये कुछ भी हो सकता है जैसे किताब पढ़ने से लेकर घर सजाने और बगीचे में फूल लगाने तक। दूसरों की अपेक्षा खुद को कभी कमतर नहीं आंके। आपकी क्षमताओं और कार्यों पर किए गये नकारात्मक टिप्पणियों को ज्यादा गंभीरता से लें।

माना जाता है व्यक्ति में अगर आत्मविश्वास होगा तो वह कोई भी काम बेहतर ढंग से कर सकेगा। सफलता के लिए आत्मविश्वास को आवश्यक बताया जाता है। वैसे आत्मविश्वास एक स्वाभाविक गुण है, लेकिन अब इसे अर्जित करने पर ज्यादा जोर दिया जाता है। आजकल इसे एक व्यावहारिक गुणवत्ता की तरह देखा जा रहा है। लेकिन हम आत्मविश्वास को भी टुकड़ों में काटकर देखते हैं और उसे उसी रूप में हासिल करने की कोशिश भी करते हैं। जैसे कई बार कोई व्यक्ति नौकरी या व्यापार में तो बड़ा आत्मविश्वास दिखाता है, पर अपनी सामाजिक-पारिवारिक जिम्मेदारी निभाने में उसका आत्मविश्वास नजर नहीं आता। वैसे ज्ञानीजन कहते हैं कि ज्यों-ज्यों ज्ञान बढ़ता जाता है, आत्मविश्वास कम होता जाता है क्योंकि ज्ञान की व्यापकता और अपनी सीमाओं का पता चलने लगता है। इसलिए हमें यह जांच करनी चाहिए कि कहीं हमारा आत्मविश्वास एकतरफा तो नहीं है। कहीं वह हमें आत्मकेंद्रित तो नहीं बना रहा?

अगर हमें विश्वास है कि हम कोई काम कर सकते हैं अथवा हमें यह विश्वास है कि हम वह काम नहीं कर सकते तो इन दोनों से जो भी विश्वास दृढ़तर होगा वही सच साबित होगा। हमारे पास कुछ करने की सारी योग्यता होने पर भी यदि हम यह सोचते हैं कि हम यह नहीं कर सकते, तो वह काम अमल में लानेवाले मस्तिष्क के सारे मार्ग बंद कर देते हैं। उसी तरह यदि हमें विश्वास है कि हम वह काम कर सकते हैं, तो उस काम को संभव बनाने के लिए आवश्यक सभी

रास्ते हम स्वयं ही खोल देते हैं।

आत्मविश्वास वह ताकत है जो हर काम को सहज बना देती है। जीवन निर्माण कठिन प्रक्रिया है। बच्चे ही नहीं, बड़े भी संस्कारी वातावरण न मिलने से बिगड़ जाते हैं। हर व्यक्ति में अच्छाई और बुराई होती हैं। वैज्ञानिकों ने खोज की है कि मनुष्य के सिर में बेर जितनी दो ग्रंथियां हैं- अच्छाई की और बुराई की। योग साधना और अन्य साधनों से अच्छाई की ग्रंथि सक्रिय हो जाए तो हजारों कोशिश करने पर भी आदमी बुरा नहीं होगा। कठिनाई है कि दोनों ग्रंथियां साथ-साथ जुड़ी हुई हैं। कहीं भूल से अच्छाई के स्थान पर बुराई की ग्रंथि सक्रिय हो जाए तो फिर बुराई की ही अनुभूति होने लगेगी। फिर भी अच्छाई की संरचना के लिए प्रयास एवं प्रयोग तो करने ही होंगे। इसीलिए दलाई लामा ने कहा है कि मनुष्य अपनी क्षमता और आत्मविश्वास के दम पर एक बेहतर दुनिया का निर्माण कर सकता है।

आदत कभी नहीं बदल सकती। पर यह अज्ञानता है या एक भ्रम की स्थिति है- यह गलत है। यदि आदत न बदले तो तपस्या, ध्यान की क्या उपयोगिता है? साधना से आदत बदलती है। बुरे काम करनेवाले के मन में भावना जग जाए कि यह मुझे नहीं करना है तो वह छोड़ सकता है। यहां आत्मविश्वास की जरूरत है। स्वेट मार्डेन का कथन है कि जो आत्मविश्वास से सुरक्षित है, वह उन चिंताओं, आशंकाओं से मुक्त रहता है, जिनसे दूसरे लोग दबे रहते हैं।

अनुशासन में रहना सबके लिए आसान नहीं है, लेकिन अनुशासन में रहनेवालों के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। कई बार प्रतिभा रहने और प्रशिक्षण मिलने के बावजूद कामयाबी नहीं मिलती, क्योंकि इच्छाशक्ति नहीं होती। अपनी इच्छाशक्ति को बिखरने न दें, एक समय में अपनी ऊर्जा एक ही काम में लगाएं।

आज की कड़ी प्रतिस्पर्धा के दौर में पहला तो मुश्किल काम है सफल होना। सफल होना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं है। सवाल यह है कि आप सफलता की कौन सी सीढ़ी पर खड़े हैं। आपके दफ्तर में हर व्यक्ति अपने आप में सफल ही तो है लेकिन उनमें से सबसे ज्यादा सफल कौन है। दरअसल हर जगह समान काम में सभी व्यक्तियों को समान अवसर मिलते हैं, उनमें से हम और बेहतर अवसर कैसे पैदा कर सकते हैं, यह निर्भर करता हमारी सोच और मानसिकता पर। सफलता पानी है और वो भी सबसे बड़ी तो मान कर चलिए कि उसके लिए प्रयास भी बड़े ही करने पड़ेंगे और बड़े प्रयासों को उत्तेजित करेगा आपका आत्मविश्वास। आत्मविश्वास अद्‌भुत शक्ति है।

आत्म के बल से व्यक्ति तमाम विपत्तियों तथा शत्रुओं का सामना कर लेता है। संसार के अभी तक के बड़े से बड़े कार्य आत्मविश्वास के बलबूते ही हुए हैं और हो रहे हैं तथा होते रहेंगे। आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए जरूरी है कि हमारी सोच सकारात्मक हो। सबसे पहले आपको चाहिए कि आप हमेशा सकारात्मक चिंतन करें। सकारात्मक विचारों वाले लोगों के साथ ही रहें। जैसी संगति, वैसी उन्नति। कई बार बहुत से लोग सोच लेते हैं कि वे इस विशेष कार्य को नहीं कर सकते हैं जबकि अगर वो साहस से काम करें तो बहुत अच्छे परिणाम सामने आ सकते हैं। सबसे ज्यादा जरूरत इस बात की है कि अपने भीतर की योग्यता को पहचाना जाए। अगर आप अपनी योग्यता को पहचान लेते हैं तो आत्मविश्वास बढ़ जाता है। आत्मविश्वास के कई सारे फायदे होते हैं। इससे जहां व्यक्ति बेहतर करने की ऊर्जा मिलती है वहीं इससे साहस भी बढ़ता है और कई बार व्यक्ति ऐसा धोखा उठा लेता है जिसे वह बिना आत्मविश्वास के नहीं कर सकता है।

अपने आपको विश्वास दिलाएं कि मैं सक्षम हूं। मैं यह कार्य कर सकता हूं। मुझे इसमें कोई दिक्कत नहीं आएगी। यस आई कैन। इस बात को लगातार दोहराएं रहें। कुछ ही दिनों में आप खुद पाएंगे कि आपके भीतर वो शक्ति आती जा रही है जिससे आप खुद-ब-खुद महसूस करेंगे कि जिस काम से आप डर रहे थे, वो आप करते जा रहे हैं। अगर आप कभी

असफल हो जाते हैं तो घबराएं नहीं, उसे स्वीकार कीजिए। असफलता को स्वीकार करना आत्मविश्वास की कुंजी है। जीवन में जो अच्छी चीजें मिली हैं, उनका ध्यान रखें, अच्छे काम के लिए खुद को शाबाशी दें। इसके साथ ही यदि परिस्थितियां जटिल लग रही हैं तो किसी नई स्किल को सीखें। कुछ भी नया सीखना आपके आत्मविश्वास और उत्साह को बढ़ाता है। इसके अलावा आपकी जानकारी बढ़ती है। साथ ही कुछ नया सीखना एक ही तरह के काम से उत्पन्न एकरसता और बोरियत को भी कम करता है। आत्मविश्वास बढ़ाने में यह तरकीब भी काम करेगी कि आप अपने व्यक्तित्व विकास पर ध्यान दें। सक्रिय रहें और स्वास्थ्य पर ध्यान दें।

आप जहां भी हैं, वहीं एक समुदाय पा सकते हैं। लेकिन वह समुदाय आप तभी पा सकते हैं। जब आपमें आत्मविश्वास हो। समस्या यह है कि आप में आत्मविश्वास ही नहीं है। आप में आत्मविश्वास क्यों नहीं है? एक व्यक्ति जो कोई परिणाम को उपलब्ध करना चाहता है, वह सब प्राप्त करता है, जो वह पाना चाहता है। एक व्यापारी, एक वकील, एक पुलिस या जनरल ये लोग आत्मविश्वास से भरे हैं, आत्मविश्वास से पूर्ण होते हैं। लेकिन यहीं आपमें आत्मविश्वास नहीं हैं, एक साधारण सा कारण है कि आपने प्रयोग नहीं किया है, आपने जो भी समझा है, उसे व्यवहार में नहीं लाये हैं। जब आप इसे प्रयोग में लायेंगे, तब आपके पास आत्मविश्वास होगा। दुनिया में कोई भी व्यक्ति आपको आत्मविश्वास नहीं दे सकता, न कोई किताब, ना कोई शिक्षक आपको आत्मविश्वास से भर सकते हैं। प्रोत्साहन आत्मविश्वास नहीं होता। प्रोत्साहन अत्यंत सतही, बचकाना, अपरिपक्व चीज है। आत्मविश्वास आता है, जब आप प्रयोग में उतरते हैं। बुद्धि तो बहुत छोटी चीज है, तो जब भी आप प्रयोग में हो, व्यावहारिक हों। आपमें आत्मविश्वास होता है, क्योंकि आपका मन तेज द्रुतगामी और लचीला होता है। तब आप जहां भी होंगे वहीं आश्रम होगा, आप खुद ही एक समुदाय की स्थापना कर सकेंगे। यह स्पष्ट है। आप किसी भी समुदाय से अधिक महत्वपूर्ण हैं। यदि आप किसी समुदाय की सदस्यता ग्रहण करें, तो आप वही रहेंगे जो कि आप हैं- कोई आपका वरिष्ठ होगा, आपके लिए नियम-कानून होंगे, अनुशासन होंगे, जिसमें आप उस बेकार के समुदाय में श्रीमान होंगे।

आत्मचिन्तन- आत्म चिंतन द्वारा अपने ही अंदर सुख-शांति की तलाश करके उसे प्राप्त करना है, जो हमारे लिए कोई मुश्किल काम नहीं है बशर्ते यह निर्णय करें। युवा नरेंद्र का जीवन इतिहास हमारे सामने है। क्यों नहीं ऐसे महान कर्मयोगी, युगपुरुष को अपना मार्गदर्शक बनाते हैं ? किस प्रकार युवा नरेंद्र अध्यात्म के बल पर स्वामी विवेकानंद हुए। महाजनों येन गत: स पन्था:- महापुरुष जिस राह से गुजरें वही सच्चा मार्ग है- इस पंक्ति को जीवन में उतारना चाहिए। भारत तो विश्व का गुरु है, जिस पर युवाओं द्वारा अध्यात्म की अवहेलना तर्क संगत नहीं है।

ईश्वर के प्रति विश्वास हमें अपार क्षमताओं से भर देता है। इसी विश्वास के कारण हम पूजा-पाठ अथवा प्रार्थना करते हैं। और सफलता की कामना भी। यदि हममें ईश्वर के प्रति विश्वास है, हम आस्तिक हैं, तो हम जीवन में सफल और सुखी हो सकेंगे। यदि हम ईश्वर पर तो विश्वास करते हैं, लेकिन स्वयं अपने पर नहीं, तो क्या ऐसी अवस्था में भी जीवन में सफलता प्राप्त कर सकेंगे? यदि कहें कि मैं तो इस कार्य को हर्गिज नहीं कर सकता, ईश्वर ही कर सकते है, तो क्या ऐसी अवस्था में भी कार्य सम्पन्न हो जाएगा?

शायद नहीं। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए जरूरी है विश्वास, लेकिन स्वयं पर। अपनी क्षमताओं पर। विश्वास व्यक्ति की अपनी मनोदशा है- चाहे वह स्वयं पर करे अथवा अन्य पर। दूसरे पर किया गया विश्वास भी करनेवाले के मन में ही घटित होता है, चाहे वह किसी व्यक्ति पर हो अथवा ईश्वर पर।

हिंसा-अहिंसा, क्रूरता-अक्रूरता

अपनी भावना एवं विचार को पवित्र रखने के लिए जो आचारपूर्वक कार्य होता है, उसे अहिंसा कहते हैं।

हिंसा-अहिंसा- घरेलू हिंसा को मोटे तौर पर पांच श्रेणियों में बांटा गया है- शारीरिक हिंसा, प्रियजनों का दुर्व्यवहार, मानसिक और मनोवैज्ञानिक हिंसा, क्रूरता और यंत्रणा, सास-ससुर आदि का दुर्व्यवहार।

शारीरिक हिंसा में पीटना, थप्पड़ मारना, सामान फेंक कर मारना, जहर देना, मार डालने का प्रयास, यौन हिंसा यानी सहवास के लिए बाध्य करना शामिल है। गर्भावस्था में हिंसा और जबरन गर्भपात कराना भी शारीरिक हिंसा है। प्रियजनों के दुर्व्यवहार की हिंसा में शिकार स्त्री के शिकायत करने पर उसके बच्चों व संबंधियों के साथ शारीरिक-मानसिक क्रूरता, दुर्व्यवहार, उसके बच्चों को मारना-पीटना, उसके परिवार के सदस्यों को नीचा दिखाना शामिल है। इसके बाद आती है मानसिक व मनोवैज्ञानिक हिंसा। इसमें किसी भी तरह की धमकी, मौखिक दुर्व्यवहार, अपमानजनक भाषा का प्रयोग, यह प्रमाणित करने का प्रयास करना कि वह पागल है, उस पर थूकना, नौकरानियों जैसा व्यवहार करना, सबके सामने नीचा दिखाने का प्रयास शामिल है। क्रूरता और यंत्रणा में पत्नी को किसी से न मिलने देना, बांधकर रखना, घर से बाहर न निकलने देना, घिनौनी वस्तु खाने को मजबूर करना, उसके गहने हथियाना, उसका सामान तोडना, घर से निकाल देना आता है।

अभय अहिंसा का पर्यायवाची शब्द है। जो दोनों ओर अ अर्थ की धार देकर अहिंसा को पूर्णता देता है। न स्वयं डरो तथा न दूसरों को डराओ। दूसरों को डराना क्रूरता है और स्वयं डरना दीनता है। जैसे क्रूरता में अहिंसा नहीं है वैसेही दीनता में भी अहिंसा नहीं है। मनुष्य का शत्रु और कोई नहीं है, बल्कि उसकी स्वयं की हिंसा ही है। कोई कितना क्रूर हो सकता है ? जरा देखें तो यह क्रूरता कहां है ?

हिंसा है क्या ? यह मूलभूत मुद्दा है, जिस पर सारी दुनिया में बात होनी चाहिए। शिक्षा दी जानी चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए धन-संपत्ति का मूल्य क्या है ? कैसे ज्यादा से ज्यादा शोषण करके, हिंसा करके धन-संपत्ति एकत्र करें, एकत्र किया है तो बढ़ाएं... और बढ़ाएं। यही प्रवृत्ति सबकी होती जा रही है। जिनके पास नहीं है, वे तोचाहेंगे ही। जिनके पास पर्याप्त है, बहुत है, वे भी और ज्यादा चाहतेहैं। ये लोग स्वयं अपने दुश्मन हैं, क्योंकि वे बेवजह दूसरों का शोषण करके दूसरों को भी अपना दुश्मन बना लेते हैं। फिर असुरक्षित हो जाते हैं और समाज व सत्ता से सुरक्षा मांगते हैं। जिनके पास नहीं है, उनका तो हक है कि वे धन संपत्ति पर्याप्त या आवश्यक मात्रा में रखें, लेकिन जिनके पास ज्यादा है, उन्हें चाहिए कि कम से कम और लालच तो न करे। इतना भी ऐसे लोगों ने किया तो दुनिया भर के वंचितों, अभावग्रस्तों, गरीबों व बेकारों के लिए बड़ी संख्या में अभाव या गरीबी से मुक्त होने के लिए अवसर उपलब्ध हो जाएंगे। लेकिन इसके लिए लालच पर नियंत्रण का अंकुश रख पाना अब धनिकों या शोषकों के लिए आसान नहीं रह गया है। वे स्वयं सेही पीड़ित हैं।

हिंसा है क्या ? आप पाते हैं कि बच्चे भी लड़-झगड़ लेते हैं। मारपीट हो जाती है। कभी-कभी खून भी बहने लगता है। कोई बच्चा जख्मी हो जाता है। लेकिन हम उन्हें हिंसा नहीं कहते-ऐसी घटनाओं को हम हिंसा नहीं समझते। क्यों? क्योंकि अभी वह बच्चा है। जान-बूझकर कुछ करता नहीं। इधर मन में विचार आया, उधर वह कार्य में परिणित। बच्चे षड्यंत्र नहीं रचते। साजिश नहीं करते।

लेकिन जब जान-बूझकर बड़े योजनाबद्ध ढंग से हिंसा करते हैं, तो हम उन्हें हिंसा से मुक्त नहीं करते। मतलब क्या है? हिंसा करने के लिए सोच-समझ चाहिए, लेकिन कैसी सोच-समझ ?

हम दो तलों पर जीते हैं, एक तल है बाह्य जगत् से संबंधित। यह हमारे मन का उथला तल है। दूसरा है गहराई में स्थित तल जो आंतरिक जगत् से संबंधित है। जब हम बाह्य जगत् से संबंधित होते हैं, तो हमारा मन उथले ढंग से कार्य करता है। इसे हम सामान्य प्रतिक्रियावादी मन कह सकते हैं। यही मन महत्वाकांक्षा, प्रतिस्पर्धा, धन, संपत्ति, पद-प्रसिद्धि आदि को लेकर ईर्ष्या-द्वेष या रोग-मोह पैदा करता है। यही मन हिंसक है, नकारात्मक है। यही मन अमीरों, सत्ताधारियों, नेताओं, व्यापारियों व आम लोगों में काम करता है। सुखों के पीछे दौड़ता है। साधनों को अधिक से अधिक एकत्र करने के लिए उकसाता है। यही मन जब अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण नहीं कर पाता तो या तो आत्महिंसा करता है या परहिंसा। दूसरों को दु:ख पहुंचाता है, या खुद को। या तो आत्महत्या कर लेता है या प्रतिस्पर्धी की हत्या कर देता है।

दूसरी बात है धन-संपत्ति की, पद-प्रतिष्ठा की। स्वार्थपूर्ण भवितव्य की। यह न देखें कि आपकी हथेली पर जो रुपया है- वह रुपया ही है। उसे रुपया माना गया है। इसीलिए वह रुपया है। जैसे ही आप इस मान्यता का परदा हटाते हैं, वह रुपया मात्र कागज का एक टुकड़ा भर रह जाता है। उसका कोई मूल्य है तो है, बस इतनी सी बात है। लेकिन अब आप पाते हैं कि वह न तो मेरा है, न तेरा है, न ही आप उससे मोहित हो पाते हैं। अब आप एक नए सुखद एहसास से भर जाते हैं।

अर्थात आप जिस धन-संपत्ति, पद, प्रतिष्ठा, भवितव्य आदि के लिए भयंकर प्रतिस्पर्धा करते हैं, दूसरों की हत्या तक कर देते हैं, वे हकीकत में मात्र एक भ्रम है। ज्यादा से ज्यादा कहें वे तटस्थ हैं। उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे मेरे हैं या आपके या किसी और के। अब आप पलभर में हिंसा से मुक्त हो सकते हैं दूसरा रास्ता नहीं है। जो स्वयं हिंसा करता है हिंसा करनेवालों का अनुमोदन करता है, वह विश्व में अपने लिये बैर को बढाता है।

जैन धर्म में अहिंसा संबंधी सिद्धांत अत्यंत कठोर है। इन सिद्धांतों के मुताबिक मन, वचन तथा कर्म से किसी के प्रति किया गया असंयत व्यवहार हिंसा है। यहां तक कि मन में किसी को मारने या हानि पहुंचाने का विचार उत्पन्न होना भी हिंसा है। इसी तरह मनोरंजन के नाम पर जीवों की हत्या करना हिंसा तो है ही, पैदल चलते वक्त या भोजन करते समय जाने-अनजाने कीट-पतंगों की हत्या भी हिंसा ही है, जो नहीं होनी चाहिए। जैन धर्म की मान्यताओं के तहत जैन भिक्षुओं को कठोर नियमों का पालन करना पड़ता है। उन्हें सभी सांसारिक चीजों का परित्याग करना होता है। एक जैन भिक्षु केवल दिन में ही चल सकता है, ताकि चलते समय रास्ते में आने वाले छोटे से छोटा जीव दिखाई पड़ जाए और उसकी किसी भी प्रकार से हत्या न हो सके। वैसे तो जैन धर्म का अहिंसावादी सिद्धांत बहुत कठोर और अव्यावहारिक लगता है, पर उत्तम भावना रहते हुए अगर कोई हिंसा हो जाती है, तो वह क्षम्य है। जैसे कि ऑपरेशन करते वक्त अगर डॉक्टर की कोशिशों के बावजूद किसी रोगी की मौत हो जाती है, तो वह हिंसा नहीं कहलाती क्योंकि ऑपरेशन तो रोगी की रक्षा के लिये किया जा रहा था। इसी तरह अदालत में जज द्वारा किसी अभियुक्त को फांसी दिया जाना हिंसा नहीं है। सैनिकों द्वारा देश की रक्षा के लिए शत्रु को मारना हिंसा नहीं है। बौद्ध धर्म में अहिंसा के मामले में जैन धर्म के मुकाबले ज्यादा उदार है। महात्मा बुद्ध ने अहिंसा के मुकाबले सभी प्राणियों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करने पर ज्यादा बल दिया।

बौद्ध धर्म मानता है कि अहिंसा का पालन करके ही सभी प्राणियों के प्रति प्रेम दर्शाया जा सकता है। बौद्ध मत में अहिंसा का सिद्धांत ज्यादा बेहतर ढंग से समझा गया है, हालांकि इसे उतनी महत्ता नहीं दी गई, जितनी जैन मत में दी गई है। अलबत्ता, महात्मा बुद्ध ने पशु बलि का विरोध किया। उन्होंने कहा कि देवताओं को बलि चढ़ाने से हम अपने पाप नहीं धो सकते। इसी तरह पुजारी के पूजा करने से किसी प्राणी को लाभ नहीं होता है। यद्यपि बौद्ध धर्म जीव हत्या से मना करता है, लेकिन उसने अपने अनुयायियों को मांस खाने से कभी नहीं रोका। शर्त यही है कि जिस जानवर का वह मांस हो, उस जानवर

को किसी गैरबौद्ध कसाई ने काटा हो। फिर भी बुद्ध ने पशुओं की हत्या नहीं करने पर जोर दिया है। एक प्राचीन बौद्ध ग्रंथ में कहा गया कि पशुओं की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि वे माता-पिता और संबंधियों की तरह हमारे मित्र हैं और कृषि उन पर निर्भर है।

अहिंसा के बारे में दोनों धर्मों के सिद्धांतो में जो अंतर है, इसी कारण इन धर्मों को अपनाने वालों में भी थोड़ा विभाजन दिखता है। बौद्ध धर्म में अहिंसा को लेकर जो लचीला रुख अपनाया गया, उससे किसानों और ग्रामीणों में बौद्ध धर्म ज्यादा लोकप्रिय हुआ। चूंकि बौद्ध धर्म ने अपने सिद्धांतों में कृषि की तत्कालीन जरूरतों को ध्यान में रखा, इसलिए बहुत से लोगों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। इसके विपरीत जैन धर्म में अहिंसा के सिद्धांत की कठोरता के कारण वह किसानों के बीच लोकप्रिय नहीं हो सकता। चूंकि खेती में कई बार फसल को बचाने के लिए कीड़े-मकोड़ों को मारने की भी जरूरत पड़ती है, सो अहिंसा पर ज्यादा जोर देने से उनका खात्मा मुश्किल हो जाता था।

एक बार राजेन्द्र बाबू चरखा काटते समय सामने तश्तरी में रखी किशमिश के दाने खा रहे थे। तभी कहीं से कोई चींटा आकर उस तश्तरी पर चढ़ गया। राजेन्द्र बाबू ने उसे हटाने के लिए अपनी अंगुली से छिटक दिया। चींटा थोड़ी दूर जाकर गिरा और छटपटा कर मर गया। राजेन्द्र बाबू बहुत दुखी हुए। उन्होंने किशमिश खानी छोड़ दी और चरखा भी बंद कर दिया।

राजेन्द्र बाबू ने महात्मा गांधी जी से इस घटना का उल्लेख किया और पूछा कि क्या मुझ से यह हिंसा हो गई है।

बापू ने कुछ देर सोचकर कहा- तुमने मात्र चींटी को हटाने के लिए ही अंगुली से छिटका था। तुम्हारा उसे मारने का कोई इरादा नहीं था। इसलिए तुमने कोई हिसां नहीं की। तुमको उसकी मृत्यु का दुख है, यही इसका प्रमाण है।

गांधीजी का मत था कि हिंसा मन से शुरू होती है, वाणी उसे प्रकट करती है और शरीर उसे कार्य रूप देता है। इस चींटा की मृत्यु में न मन साथ था न वाणी और कर्म भी हिंसा के उद्देश्य से नहीं था। शारीरिक शक्ति ही नहीं, मन और वचन भी हिंसा के साधन हैं। ठीक इसके विपरीत अहिंसा भी मन, वचन और कर्म से अपना प्रभाव डालती है। मन, वचन, कर्म- तीनों शुद्ध और पवित्र हों, हिंसा शून्य हों, तभी वह पूर्ण अहिंसा है। जैसे हिंसा का मूल मन है, उसी प्रकार अहिंसा का मूल भी मन है। मन ही आत्मा है। मानसिक बल ही आत्मिक बल है।

अहिंसा का अर्थ केवल मानव के प्रति ही अहिंसा का भाव नहीं, अपितु संपूर्ण प्राणी जगत के प्रति मैत्री, करुणा, दया, क्षमा और अहिंसा का भाव रखना है। छोटे से छोटे जीवाणु को भी कष्ट न हो, यह आत्मीय भाव रखना ही अहिंसा का दिव्य, लोकोत्तर रूप है। इसी को महर्षि व्यास ने आत्मवत सर्वभूतेषु कहा है।

इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जब शारीरिक हिंसा ने मन या आत्मिक शक्ति के सामने अपनी पराजय स्वीकार की। हिंसा जहां शारीरिक शक्ति का प्रतीक है, वहां अहिंसा आध्यात्मिक शक्ति की।

मनुष्य प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, परंतु उसे एक खतरा भी है। उसका जीवन भर मनुष्य बने रहना निश्चित नहीं है। पशु-पक्षियों को ऐसा कोई भय नहीं है। वे जिस रूप में जन्मते हैं, मरने तक उसी रूप में बने रहते हैं। पर मनुष्य के साथ ऐसा नहीं है। यदि वह पुरुषार्थ कर ले तो नर से नारायण बनने की राह पर चल सकता है, पर यदि अधर्म और पाप के मार्ग पर कदम बढ़ा ले तो इसी चोले में रहते हुए उसे दानव या पशु बनते भी देर नहीं लगती।

अहिंसा मानसिक पवित्रता का नाम है। दार्शनिक परिभाषा में चित्त का स्थिर बने रहना अहिंसा है। जीव का अपने साम्यभाव में रहना अहिंसा है। क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित पवित्र विचार और सद्-संकल्प अहिंसा है। उसके व्यापक क्षेत्र में सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सभी सद्गुण समा जाते हैं, इसलिए अहिंसा को परम धर्म कहा गया है।

इस सृष्टि में अति सूक्ष्म जीव भी हम अपनी आँखों से नहीं देख सकते। सबकी जीवन जीने की इच्छा होती है। मृत्यु कोई

भी नही चाहता। समस्त मनुष्य धर्मों में अहिंसा को महत्व दिया गया है। धर्मों की जननी ही अहिंसा है अत: किसी भी जीव पर हिंसा नहीं करें।

जियो और जीने दो के सिद्धांत पर चलते हुए हिंसा को रोकना चाहिए। किसी के प्रति हमारे हृदय में कपट नहीं रहे। कपट और माया दुर्गति देनेवाली हैं। नाग का विष उतर जाता है किन्तु माया रूपी नागिन का विष कभी नहीं उतरना। अपना मन दूसरे के लिए सदैव स्वच्छ रखें अहिंसा का पालन करें। मर्यादा में रहें। गरीबों की मदद करें। प्रेम से जिएं। चिंतन करें। आपका जीवन अवश्य मंगलमय बनेगा।

अहिंसा की हार इसी में होती रही है कि वह व्यक्तिगत दायरे में अपना सन्तोष और मोक्ष खोजती है।

मन वाणी शरीर से किसी भी प्रकार की हिंसा मत करो। किसी को कष्ट मत दो। शरीर से किसी पर प्रहार मत करो। वाणी से कटु वचन मत बोलो। कड़वे वचन बोलकर किसी का मन मत दुखाओ। ऐसी वाणी मत बोलो जिससे किसी के हृदय में चोट लगे, किसी का हृदय दु:ख जाये, यहां तक कि मन से भी किसी का बुरा मत चाहो न मन से बुरा सोचो। नहीं तो तुम योगी नहीं, कुयोगी बन जावोगे।

जो जीवों की हिंसा करता है वह आर्य नही होता, सभी जीवों के प्रति अहिंसा का भाव रखने वाला ही आर्य कहलाता है। स्वरूप दृष्टि से सबका चैतन्य एक समान है। यह अद्वैत भावना ही अहिंसा का मूलाधार है।

अपने शत्रु से भी प्रेम करना सीखो। जो तुम्हे सताये उसके लिये भी दिल से दुआये करो। अहिंसा परमधर्म है। अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम ज्ञान है और अहिंसा ही मानवता और परमपद है।

अंतरंग में अनंत करुणा का उदय कैसे हो, उसी का सतत चिंतन करना परम पुरुषार्थ है। राग-द्वेषादि दोषों से स्वभाव की रक्षा करना अहिंसा है। राग-द्वेष, मोह का सर्वथा अभाव हो जाना ही आत्मधर्म की प्राप्ति है। अपने अंतरंग में हो रही हिंसा को शांत कर लेना ही परम अहिंसा है।

सबके साथ मैत्री और प्रेम ही अहिंसा का आधार है। वस्तु का स्वभाव धर्म है। मौन ही आत्म-स्वीकृति है। सच्चा समर्पण है। अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये जो हिंसा का सहारा लेते है, वे धर्म का पालन नहीं कर रहे। धर्म का पालन वे कर रहे है जो अहिंसाद्वारा दूसरों को रास्ता दिखा रहे है।

सताना प्रेमपूर्ण हो तो ऊंचे स्थानवाला सुरक्षित हो जाता है

दुनिया से हिंसा मिटती नहीं, क्योंकि हमने हिंसा के बहुत से अहिंसक चेहरे खोज निकाले हैं। सबसे पहली हिंसा, दूसरे को दूसरा मानने से शुरू होती है। जैसे ही मैं कहता हूं आप दूसरे हैं, मैं आपके प्रति हिंसक हो गया। असल में दूसरे के प्रति अहिंसक होना असंभव है। हम सिर्फ अपने प्रति ही अहिंसक हो सकते हैं, ऐसा ही हमारा स्वभाव है।

अगर मैं किसी को किसी क्षण में अपना समझता हूं, तो उसी क्षण में मेरे और उसके बीच जो धारा बहती है वह अहिंसा की है; हिंसा की नहीं रह जाती। किसी क्षण में दूसरे को अपना समझने का क्षण ही प्रेम का क्षण है। लेकिन जिसको हम अपना समझते हैं वह भी गहरे में दूसरा ही बना रहता है। किसी को अपना कहना भी सिर्फ इस बात की स्वीकृति है कि तुम हो तो दूसरे, लेकिन हम तुम्हें अपना मानते हैं। इसलिए जिसे हम प्रेम कहते हैं, उसकी भी गहराई में हिंसा मौजूद रहती है। इसलिए वह जो प्रेम की ज्योति है, कभी कम कभी ज्यादा होती रहती है। कभी वह दूसरा हो जाता है, कभी अपना हो जाता है। जब वह जरा दूर निकल जाता है और दूसरा दिखाई पड़ने लगता है, तब हिंसा बीच में आ जाती है। जब वह जरा करीब आ जाता है और अपना दिखाई पड़ने लगता है, तब हिंसा थोड़ी कम हो जाती है। लेकिन जिसे हम अपना कहते हैं, वह भी

दूसरा है। पत्नी भी दूसरी है, चाहे कितनी ही अपनी हो। अपना कहने में भी दूसरे का भाव सदा मौजूद है। इसलिए प्रेम भी पूरी तरह अहिंसक नहीं हो पाता।

प्रेम अपने ढंग से हिंसा करता है। पत्नी, पति को प्रेमपूर्ण ढंग से सताती है। पति, पत्नी को प्रेमपूर्ण ढंग से सताता है और जब सताना प्रेमपूर्ण हो तो बड़ा सुरक्षित हो जाता है। फिर सताने में बड़ी सुविधा मिल जाती है, क्योंकि हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ़ लिया। शिक्षक विद्यार्थी को सताता है और कहता है, तुम्हारे हित के लिए ही सता रहा हूं। जब हम किसी के हित के लिए सताते हैं, तब सताना बड़ा आसान है। वह गौरवान्वित, पुण्यकारी हो जाता है। दूसरे को सताने में हमारे चेहरे सदा साफ होते हैं। अपनों को सताने में नहीं। इसलिए दुनिया में जो बड़ी-से-बड़ी हिंसा चलती है वह दूसरे के साथ नहीं, वह अपनों के साथ चलती है। किसी को भी शत्रु बनाने के पहले मित्र बनाना अनिवार्य शर्त है। किसी को मित्र बनाने के लिए शत्रु बनाना अनिवार्य शर्त नहीं है। मित्रता सदा शत्रुता के पहले चलती है। अपनों के साथ जो हिंसा है, वह अहिंसा का गहरे से गहरा चेहरा है। इसलिए जिस व्यक्ति को हिंसा के प्रति जागना हो, उसे पहले अपनों के प्रति जो हिंसा है, उसके प्रति जागना होगा।

वैज्ञानिक न्यूटन ने अपने नियम में बताया है कि प्रत्येक क्रिया अथवा कार्य के फलस्वरूप समान और विपरीत प्रतिक्रिया होती है। अर्थात आधुनिक विज्ञान ने भी यह माना है कि प्रत्येक क्रिया की समजातीय प्रतिक्रिया होती है। इसीलिए शास्त्रों का आदेश है कि किसी भी जीव के साथ किसी तरह की हिंसा नहीं करनी चाहिए क्योंकि हिंसा से किसी का भला नहीं हो सकता। किसी को मारना ही हिंसा नहीं है, बल्कि किसी भी प्राणी को तंग करना, परेशान करना भी जीव हिंसा ही है। जीव-हिंसा से कोई फायदा नहीं होता। दूसरे प्राणियों की हिंसा करने से अभी शायद कुछ फायदा नजर आए, किंतु अंत में पछताना ही पड़ता है। इसीलिए वेद-शास्त्र कहते हैं, मा हिंस्यात् सर्वाणि भूतानि। हिंसा से बचने का एकमात्र उपाय है आपसी संबंध का ज्ञान। इस ज्ञान को प्राप्त करने का तरीका है जिज्ञासा।

सभ्यता की इस हिमालयी ऊंचाई का एकमात्र कारण अहिंसा ही है

भगवान महावीर की जब भी बात होती है तो वहां अहिंसा अपने आप अनिवार्य रूप से उपस्थित हो जाती है। लेकिन उसके साथ ये सवाल भी तैरने लगते हैं कि क्या अहिंसा नकारात्मक है या इसका सकारात्मक स्वरूप भी है? अहिंसा के शब्दार्थ में जाएं तो उसका नकारात्मक स्वरूप सामने आता है। अहिंसा यानी किसी की हिंसा नहीं करना, किसी को दुख नहीं देना, किसी पर आक्रमण नहीं करना, किसी का हक नहीं मारना। इसे जीवन केसाथ जोड़ते हुए कहा गया, मांसाहार नहीं करना, अनछाना पानी नहीं पीना आदि।

हिंसा से आदमी का बहुत पुराना परिचय है। मानव प्रगति की पुरातत्वीय अवधारणा आदिम जीवन से जुड़ी हुई है। तब नरभक्षी होने के सबूत मिले थे। लेकिन जावा-मानव तक आते आते हृदय में अहिंसा के अंकुर फूटने लगे। लगभग आठ हजार वर्ष पूर्व के मानव में अहिंसा का और विकास हो जाता है। वह पारिवारिक जीवन जीता है, पांच हजार वर्ष पूर्व धातुयुगीन सभ्यता में आदमी सामाजिक जीवन जीना सीख लेता है। असीरिया और बेबीलोनिया, मिस्र और भारत के तत्कालीन शिलालेख उस युग के विकसित जीवन का स्पष्ट चित्र देते हैं।

ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर और बुद्ध ने व्यापक परिवेश में अहिंसा को प्रतिष्ठा दी। सामाजिक जीवन में जहां अहिंसा को इन्होंने गुलाम न बनाना, हुकूमत न करना तक पहुंचाया, मानसिक स्तर पर हर प्राणी की स्वतंत्र अस्मिता को मान्यता दिलवाई। इनकी प्रभावशाली आवाज का ही परिणाम था कि यज्ञों में होनेवाली बलि बंद हुई और सामाजिक क्षेत्र में दास-प्रथा का अंत हुआ। कहा जा सकता है कि मानव जाति के संपूर्ण इतिहास में अहिंसा की क्रांतिकारी प्रतिष्ठा का

वह स्वर्ण-युग था। महावीर अहिंसा को गहरे तक ले गए और कहा, सभी प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है, सब सुख चाहते हैं, दुख कोई नहीं चाहता। अपना वध किसी को भी प्रिय नहीं है।

महावीर पहले इतिहास-पुरुष हैं जो अहिंसा को पदार्थ जगत तक ले गए। हालांकि पदार्थ अपने में अचेतन है, इसलिए इसमें क्या हिंसा और क्या अहिंसा? लेकिन सवाल हिंसा या अहिंसा का नहीं, अपनी चित्त की संवेदना का था। महावीर का कहना था, इस वस्तु जगत के प्रति अगर हमारे मन में उपेक्षा, लापरवाही, अनादर है तो वह प्रमाद है। जहां प्रमाद हैं वहां हिंसा है। हर वस्तु का अपना जीवन होता है। उसका सम्मान करना अहिंसा है और अनादर करना हिंसा। सभ्यता की इस हिमालयी ऊंचाई का एक मात्र कारण अहिंसा ही है। इसके ध्वस्त होने का यदि खतरा है तो वह एकमात्र हिंसा से ही है।

यदि चित्त में हिंसा है तो बाहर अहिंसक होते हुए भी हम हिंसक हैं। इसे आज हो रही घटनाओं और विवादों-बहसों के संदर्भ में देखें तो स्पष्ट हो जाएगा। आदमी पहले मन के स्तर पर किसी से नफरत करता है, फिर उसे घेर कर गिराने की साजिश रचता है। जब उससे भी बात नहीं बनती है तो आक्रामक रुख अपना लेता है। यही वजह है कि आज आदमी एक-दूसरे को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है। यही वह वृत्ति है जो समाज का न केवल माहौल खराब कर रही है बल्कि उसे बांट भी रही है। वैचारिक आक्रामकता हो या शारीरिक, पहले वह खुद को चपेट में लेती है फिर दूसरों को निशाना बनाती है। हम यह सोचकर खुश होते हैं कि उसे मजा चखा दिया, लेकिन यह भूल जाते हैं कि इसमें हमारा कितना नुकसान हुआ। हमने अपना विवेक और धैर्य खोया, मन की शांति और चेतना खोई, संबंध और विश्वास खोया। सबसे बड़ी बात यह कि हमने मनुष्यता खोई।

इसलिए महावीर मनुष्यता को स्वभाव बनाने का संकेत देते हैं। वे तो यहां तक कहते हैं कि जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है। जिसे तू संताप-परिताप देना चाहता है, वह तू ही है। जिसके तू प्राण लेना चाहता है वह तू ही है। जिस दिन इसे हमने समझ लिया, गलत काम करने से बच जाएंगे अन्यथा कु-प्रवृत्ति के शिकार हो जाएंगे।

पारस मणि होती है अहिंसा आत्मज्ञान है हिंसा का इलाज

एक बच्चा टीवी या सिनेमा देखने बैठा। वह उन सारी घटनाओं को रूपहले पर्दे पर देखता है जो हिंसा व उत्तेजना को बढ़ावा देनेवाली हैं। यह सब देखने और अपनी क्षमता के मुताबिक समझ पाने के बाद क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि उस बच्चे के मन में अहिंसा का विकास होगा? उसके कच्चे दिमाग पर निश्चित ही इतना प्रभाव पड़ता है कि वह जाने-अनजाने हिंसा की ओर उन्मुख हो जाता है। आज हमारे समाज का यह एक प्रमुख प्रश्न है कि अपराध में या हिंसा में इतनी बढ़ोत्तरी क्यों हो रही है। कारण पूरी तरह से स्पष्ट है कि मनुष्य को जितनी हिंसा की घटनाएं, चर्चाएं सुनने व पढ़ने को मिलती हैं, उसकी तुलना में अहिंसा का एक अंश भी देखने-सुनने को नहीं मिलता। इसका मतलब यह नहीं कि समाज में अहिंसा नहीं है। दरअसल, जो वातावरण या परिवेश समाज में सहजता से उपलब्ध हो रहा है, वह हिंसा को बढ़ानेवाला है। क्या आवश्यकता है कि बुरी बातों और बुरी घटनाओं को संक्रामक बनाया जाए? अपने परिवेश पर, अपने वातावरण पर। हमने अपने चारों ओर किस प्रकार के वातावरण का निर्माण कर रखा है? वह जब तक नहीं बदलेगा, हिंसा को उत्तेजना देनेवाली जो घटनाएं और निमित्त हैं, उभरेंगे और हिंसा उभरेगी।

ऐसा नहीं है कि परिवेश बदलने से सब कुछ बदल जाएगा। साधक व बाधक तत्वों पर विमर्श करना होगा। आज हिंसा के साधक तत्व ज्यादा हैं। काम, क्रोध, लोभ, भय अविश्वास और संदेह- ये सब हिंसा के साधक तत्व हैं। हिंसा का

एकमात्र बाधक तत्व है- अध्यात्म, आत्मज्ञान। उस पर हमारा ध्यान बहुत कम जाता है। हम जानते हैं कि अहिंसा एक पारसमणि है, जिसके द्वारा समाज में शांति व अमन चैन की स्थापना की जा सकती है। हमारे सामने पारसमणि है, पर बाधक तत्व इतना काम कर रहे हैं कि उस पारसमणि से अहिंसा रूपी स्वर्ण धातु का निर्माण नहीं हो रहा है।

गंभीरता से विचार करना है कि परिवेश को तो बदलना है ही, किन्तु परिवेश के साथ-साथ मौलिक मनोवृत्ति को भी बदलना है। मनोवैज्ञानिक मौलिक मनोवृत्ति को बदलने की बात नहीं मानते। पर ऋषियों ने, दार्शनिकों ने इस बात को माना है कि मनोवृत्ति को परिवर्तित किया जा सकता है। नहीं तो साधना और तपस्या सारे व्यर्थ हो जाते हैं। बदलने की परिभाषा क्या है? हिंसा के संस्कार को कैसे बदला जा सकता है? हिंसा की जड़ को काटनेवाले जितने भी तत्व हैं, उनमें शिरोमणि है ध्यान। हिंसा को न्यूनतम स्तर पर ले जाने और अहिंसा को पोषित करने के लिए हमें परिवेश बदलना होगा। और उसे बदलने के लिए ध्यान सर्वश्रेष्ठ माध्यम है।

शेक्सपीयर ने कहा भी है कि दुनिया में सिर्फ दो संपूर्ण व्यक्ति हैं- एक मर चुका है, दूसरा अभी पैदा नहीं हुआ है। प्रसिद्धि व धन उस समुद्री जल के समान है, जिसे जितना ज्यादा हम पीते हैं, उतने ही प्यासे हो जाते हैं। हम जानते हैं कि हम क्या हैं, पर ये नहीं जानते कि हम क्या बन सकते हैं।

समाज की पीड़ा पर ध्यान रहेगा तो अहिंसा की धारा मजबूत होगी

दुनिया के किसी भी हिस्से में चले जाएं, शायद ही ऐसा कोई मिलेगा जिसकी आस्था हिंसा में हो। हिंसा की सत्ता किसी को भी स्वीकार्य नहीं है। हिंसा चाहे छोटी हो या बड़ी, चाहे दिमाग के स्तर पर पनपी हो या जमीन पर, वह समाज में डर पैदा करती है, अविश्वास का माहौल बनाती है। खास तौर पर भारत के संदर्भ में तो यह बहस का विषय बन जाती है कि अहिंसक क्रांति के प्रतीक-पुरुष महावीर, बुद्ध और गांधी को क्या लोगों ने भूला दिया? आज चिंता यही है कि अहिंसा कहीं सत्वहीन न हो जाए।

हिंसा जिस तरह आज अलग-अलग खेमों का विषय बन गई है, उससे मुक्ति पाना निहायत जरूरी हो गया है। यह तभी संभव है जब इस मानसिकता को नकारने के साथ-साथ हम अपने अपने अहं को खाली करने का मन बना लें। एक दूसरे को पराजित करने का विचार ही दुश्मनी को प्रश्रय देता है। यहां बुद्ध के समाज दर्शन को याद करना आवश्यक है। यह एक सम्यक दर्शन है। इसके मूल में है प्रज्ञा, शील, मैत्री और करुणा। इन्हीं चारों मूल्यों में मनुष्य और समाज का वैचारिक और भावनात्मक पक्ष समाहित है। यह मन, कर्म और वचन को न केवल संतुलित करता है बल्कि हमें जिम्मेदार भी बनाता हे। यही मनुष्य को मनुष्यता का बोध भी कराता है।

महावीर भी जब प्राणी मात्र के प्रति दया भाव और पीड़ितों की सेवा की बात कहते हैं तो उनका आशय यही है कि अपने अंदर मनुष्यता का भाव पैदा करो। मैत्री और करुणा को जगह दो। दीन-दुखियों का स्मरण करो और उनकी सेवा करो। यही प्रभु सेवा है। गांधी का रास्ता भी यही है। यह जो सेवा की भावना है, समाज में परस्पर विश्वास को स्थापित करती है और हर किसी को मजबूत डोर में बांधती है। इस डोर का जितना विस्तार होगा, अशांति और हिंसा की धारा उतनी ही कमजोर होगी। अहिंसा उतनी ही ताकतवर बनने लगेगी। बस, अपनी आंखों में हम समाज की व्यथा और पीड़ा को ध्यान की मुद्रा में देखने की कोशिश करें। हम यह मानें कि हम ही बुद्ध हैं और हम ही महावीर और महात्मा गांधी हैं। उसके बाद आप अपने भीतर होनेवाले परिवर्तन का अनुभव करें।

अगर हमारे जेहन में भूख, गरीबी, अशिक्षा जैसे ज्वलंत प्रश्न आ जाएं तो ऊंच-नीच, मॉब लिंचिंग, मारो-काटो जैसे शब्दों का अस्तित्व ही शेष नहीं रह जाएगा। इससे मुक्ति चाहिए तो स्पष्ट कार्यक्रम हाथ में लेने होंगे और हर किसी को अपने जीवन में अहिंसा के प्रति निष्ठा दिखानी होगी। हमें हिंसा के प्रति आक्रोश व्यक्त करने के साथ-साथ उसकी गतिविधियों और उसके बढ़ते प्रभाव के कारणों की भी पड़ताल करनी चाहिए।

अहिंसा मनुष्य की सबसे बड़ी जिम्मेदारी होती है

महाभारत में अहिंसा एक मनुष्य की सबसे बड़ी जिम्मेदारी मानी गयी है। अहिंसा का संकल्प लेते ही यह आपकी बातों और व्यवहार में भी झलकने लगता है। एक अहिंसक व्यक्ति हिंसा के हर हालात से दूर रहता है। फिर चाहे वह भावनात्मक हो, शाब्दिक हो या शारीरिक हिंसा हो। अन्य लोगों की तुलना में ऐसा इंसान व्यवहार में ज्यादा मिलनसार, विनम्र, सहिष्णु और विचारशील होता है। ऐसे लोग किसी को दुख नहीं पहुंचाते या इनसे किसी को कोई वैर-भाव नहीं होता। लेकिन एक इंसान जो इस पर विश्वास नहीं करता, हो सकता है कि कभी वह अपने बचाव के लिए ही बंदूक रखता हो, लेकिन यह उसको हिंसक व्यवहार के लिए उकसाता है। ऐसे लोग अक्सर आपको अहिंसक व्यवहार पर बहस करते मिल जायेंगे कि अच्छे लोगों के साथ अच्छा ही हो, यह जरूरी नहीं है। यहां सूक्ष्म बल कार्य करते हैं। जिसने अपने मन के हिंसक भावों, सोच और शब्दों से खुद को अलग कर लिया; वास्तव में ऐसे ही लोग शांत होते हैं। उनके इस शांत भाव से निकली सूक्ष्म तरंगें उनके आसपास के वातावरण और लोगों के व्यवहार को भी प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि ऐसे लोगों के आसपास के माहौल में भी शांति होती है और लोग भी शांत व्यवहार के होते हैं। पूजा स्थल इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं, वहां भीड़भाड़ होने के बावजूद आपको शांति और सुकून का एहसास होता है। क्योंकि वहां लोग सकारात्मक सोच, शांत विचार और पावन भावना के साथ जाते हैं। मनुष्य की सोच के अनुसार ही उसके आसपास के वातावरण का निर्माण भी होता है। यही कारण है कि जहां परेशान, क्रोधी, क्षुब्ध या निराश प्रकृति के लोग होते हैं, वहां का वातावरण भी कुछ ऐसा ही होता है।

मनुष्य धार्मिक कहलाए या नहीं, आत्मा-परमात्मा में विश्वास करे या नहीं, पूर्वजन्म औरा पुनर्जन्म को माने या नहीं, अपनी किसी भी समस्या के समाधान में जहां तक संभव हो, अहिंसा का सहारा ले। हिंसा से किसी भी समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता। हिंसा से समाधान चाहनेवालों ने समस्या को अधिक उभारा है। इस तथ्य को सामने रखकर जनता अहिंसा की शक्ति के प्रति आस्थावान बने और गहरी आस्था के साथ उसका प्रयोग भी करे। नैतिकताविहीन धर्म, चरित्रविहीन उपासना और वर्तमान जीवन की शुद्धि बिना परलोक सुधार की कल्पना एक हवाई उड़ान हे। धार्मिक वही हो सकता है, जो नैतिक है। उपासना का अधिक लाभ उसी को मिलना चाहिए, जो चरित्रवान है। परलोक सुधारने की भूलभुलैया में प्रवेश करने से पहले इस जीवन की शुद्धि पर ध्यान केंद्रित होना चाहिए। धर्म की दिशा में प्रस्थान करने के लिए यही रास्ता सही है।

देश के धर्मगुरुओं को विनम्र सुझाव है कि वे अपने दायित्व को गंभीरता से निभाएं। आज हमारे सामने सबसे बड़ा संकट है मूल्यों का। हम अपने अनुयायियों को नैतिक मूल्यों की दिशा में अग्रसर करें। उन्हें हिंसा और सांप्रदायिकता से बचाएं। पारस्परिक सौहार्द्र और सद्भावना बढ़ाने की प्रेरणा दें। इंसानियत को सुरक्षित रखने का प्रयास करें।

अहिंसा समाज के लिए सत्वहीन क्यों होती जा रही है

अहिंसा को परम धर्म माननेवाले भारत में जब हिंसा का माहौल पनपता है तो चिंता स्वाभाविक होती है। हिंसा छोटी हो या बड़ी, उसमें अराजकता की छाया दिखाई देती है। वह समाज में डर पैदा करती है।

महावीर, बुद्ध और गांधी के देश को दुनिया के लोग कहीं शक और टेढ़ी निगाह से न देखने लगें। अहिंसा की पवित्र धरा को कहीं खून से लथपथ न दिखाया जाने लगे।

हिंसा के सामने अहिंसा को ढाल की तरह आगे कर देना भी क्या अतिक्रमण नहीं है। नकार पर खड़ी अहिंसा क्रमश: व्यक्तिपरक होती जाती है। यह अहिंसा समाज के लिए आदरणीय हो सकती है, आचरणीय नहीं।

अहिंसा-परंपरा के आदि प्रवर्तक हैं भगवान ऋषभदेव और अंतिम तीर्थंकर हैं महावीर। अपने-अपने युग में इन महापुरुषों ने अपने अहिंसा-दीप्त धर्म-चक्र-प्रवर्तन से हिंसा-पीड़ित अराजक मानव समाज को एक युगांतरकारी मोड़ दिया था। ऋषभदेव समाज रचना के सूत्रधार हैं। उन्होंने असि, मसि और कृषि-व्यवस्था के द्वारा सामूहिक दायित्व का प्रवर्तन किया। समाज संरचना की संपूर्ण परिकल्पना के पीछे उनका विराट अहिंसा दर्शन छुपा हुआ है। उनका सारा चिंतन एवं अभिक्रम समाज-सम्मुख है, विमुख नहीं।

भगवान महावीर की अहिंसा भी संपूर्ण तेजस्विता से समाज की भूमिका पर अवतरित हुई थी। व्यक्तिगत जीवन में तो वे अहिंसा-पुरुष थे ही, किंतु जहां कहीं भी वे हिंसा देखते, अहिंसा और अनुकंपा का सावन आंखों में लिए वहां पहुंच जाते। हिंसा, दास-प्रथा, जाति-दंभ, नारी उत्पीड़न जैसी तत्कालीन असाध्य सामाजिक बीमारियों का इलाज वे अहिंसा के मार्ग से ही सफलतापूर्वक करते। यही काम महात्मा गांधी ने भी किया। गांधी के बाद जान जोखिम में डालने का साहस किसी ने भी नहीं किया। आज तो हिंसा को अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करने की होड़ प्राय: हर जगह लगी हुई है।

महावीर ने स्वतंत्रता तथा समानता के मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए एक सफल अहिंसात्मक क्रांति का सूत्रपात किया। उदाहरण पावापुरी का है, जहां सोमिल धनपति की ओर से विराट यज्ञ आयोजित किया गया था। चारों दिशाओं से अपार जन-समुदाय उसमें शामिल होने आया था। उन दिनों पशु बलि का आम प्रचलन था। कहीं-कहीं नर बलि की भी प्रथा थी। महावीर को अहिंसा के सिंहनाद का यह एक सुनहरा मौका मिला था। वे वहां पहुंचे और निर्भय होकर अमृत वाणी से महायज्ञ का नेतृत्व करनेवाले इंद्रभूति गौतम आदि ग्यारह महापंडितों का हृदय परिवर्तन किया। फिर उन्हीं पंडितों ने महावीर की अहिंसा-क्रांति की कमान को संभाला।

क्रूरता- अक्रूरता- मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है क्रूरता। क्रूरता के कारण ही आर्थिक कठिनाइयां पैदा हो रही हैं। क्या क्रूरता के बिना कोई आदमी किसी को धोखा दे सकता है? किसी को लूट सकता है? मिलावट कर सकता है? रिश्वत ले सकता है? एक क्रूरता ऐसी प्रभावी हो गई कि सब कुछ खाओ तो भी हजम हो जाता है। सब बुराइयां हजम हो रही हैं। कभी सोचने का अवसर ही नहीं मिलता कि ऐसा नहीं होना चाहिए।

एक व्यवसायी पशुओं को बिना मौत मार सकता है। चारे में ऐसी मिलावट करता है कि चारा खाते ही पशु मरने लग जाते हैं। क्या क्रूरता के बिना ऐसा संभव है? क्या आटे में मिलावट, मसालों में मिलावट, दाल में मिलावट क्रूरता के बिना संभव है? कभी संभव नहीं है। यह सारी आर्थिक भ्रष्टाचार की कहानी, क्रूरता की कहानी है। इसी कारण मनुष्य इंसान नहीं बन पा रहा है। दलाई लामा ने इसीलिए कहा है कि यदि आप दूसरों को खुश देखना चाहते हैं तो करुणा का भाव रखें। यदि आप स्वयं खुश होना चाहते हैं तो भी करुणा का भाव रखें।

भाव-भावना

भावना मनुष्य की सबसे बड़ी संपत्ति है यह उसकी सर्वोच्च शक्ति हे। भव-भय से मुक्त करने का अपार सामर्थ्य होने के कारण भावना मनुष्य की परम हितैषी कही जा सकती है। भावना अपार शक्ति-पुंज है जो मनुष्य को चिरशांति और अनंत सुख सुलभ करा सकती है, मोक्ष प्रदान करती है। भावना का ही आगामी सोपान ध्यान व समाधि है। शुभ भावनाएं मनुष्य को सज्जन, धर्मप्रिय और सदाचारी बनाती है, तो अशुभ भावनाएं दुर्जन, अन्यायी और दुराचारी बना देती है। संसार में कोई भी कार्य भाव के बिना संपन्न नहीं हो पाता।

भाव- भाव अद्‌भुत शक्तिशाली तत्व है जिसमें बाह्य वस्तुओं पर स्वानुकूल प्रभाव डालने की अपार समर्थता रहती है। भावना का प्रभाव भावक पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। जिसके मन में भय की भावना रहती है, वह भयभीत, कायर पुरुष बन जाता है, जिसमें उत्साह का भाव है वह वीर पुरुष बनेगा ही। यह अटल सत्य है।

व्यक्ति को सदैव शुभ भावना करनी चाहिये। पता नहीं कौन से शुभ मुहुर्तमें शुभ कर्म का उदय हो और शुभ भावना मिलने पर सब कुछ शुभ फलित होना प्रारंभ हो जाये।

अनुभाव उसे कहते हैं, जो चित्त के भाव बाहर क्रियाओं में प्रकट हो जायँ जैसे प्रेम में नाच उठना, कुछ-का-कुछ बक देना हँसते-हँसते या रोते-रोते लोट-पोट हो जाना, गीत गाना, चिल्ला उठना, अँगड़ाई लेना, हुँङ्कार मारना। विभाव हृदय की अनुभाव की वस्तु है। वे ही भाव जब शरीर में प्रकट हो जायँ, उन्हीं भावों में भावित होकर क्रिया करने लगें वे ही अनुभाव हैं। अब तक गोपिकायें श्रीकृष्ण के भाव में विभोर थीं। उनकी एक-एक बात को याद कर करके दुखी हो रही थीं। अब आकर वे अपने भावों को गीत बनाकर गाने लगीं यह उनकी अनुभावकी दशा है। तीसरा सात्विक भाव है। इसमें प्यारे की स्मृति में स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्र, प्रलय आदि अनेक चेष्टायें होती हैं।

स्थाई भाव उसे कहते हैं, जो किसी भी भाव के उदय होने पर न हटे, स्थाई बना रहे। जैसे श्रीकृष्ण विषयकि रति। चाहें जैसी दशा हो जाय, श्रीकृष्ण प्रेम सदा बना रहेगा।

जो भी भाव हो, यदि उसका सम्बन्ध संसारी सुख से है तो वह निन्द्य है और यदि उसका सम्बन्ध भगवान से ही है तो सभी भाव सराहनीय हैं।

स्वाद वस्तुओं में नहीं होता, प्रेम में होता है। बिना प्रेम के अमृत भी पिलाया जाय तो वह नीरस है स्वाद रहित है, यदि प्रेम सहित विष भी दिया जाय तो वह सरस है सुस्वादु है। कहीं-कहीं तो देने पर आग्रह करने पर भी खाने को चित्त नहीं करता, चाहें वे कितनी भी सुन्दर वस्तुएँ हों। दुर्योधन ने भगवान की सेवा के लिये कितने पदार्थों का प्रबन्ध किया था, कितनी तैयारियाँ की थीं। कितना आग्रह किया और कराया था, किन्तु भगवान् ने उसमें से एक दाना भी नहीं उठाया। इसके विपरीत विदुर के घर में स्वयं जाकर स्वयं माँगकर केले के छिलके खाये। यह संसार भावमय है। वस्तुएँ न कोई बुरी हैं न अच्छी। जिनके प्रति जैसा भाव बन जाता है, वे वैसे ही दीखने लगती हैं। माता, बहिन, पत्नी, पुत्री, बुआ, भाभी सब एक-सी स्त्रियाँ हैं। भावना से ही भेद है। किसी वस्तु को देखकर एक को वमन हो जाती है तो दूसरा उसे ही रुचि के साथ अत्यन्त स्वाद के साथ खाता है। भगवान को वस्तुओं की आवश्यकता नहीं। जिनकी स्वयं साक्षात् लक्ष्मी दासी हैं, उन्हें किसी वस्तु की कमी हो ही कैसे सकती है। किन्तु भगवान भाव के सदा भूखे बने रहते हैं। प्रेम भाव से जो कोई उन्हें नीम

का पत्ता भी देना चाहे तो उसे दौड़कर छीनकर आग्रहपूर्वक लेते हैं। इसीलिये शास्त्रकारों ने कहा है- भाव ग्राही जनार्दन: भगवान भाव को ग्रहण करनेवाले हैं। प्रसन्नता का माप दण्ड वस्तु की लघुता, गुरुता अथवा छोटी बड़ी से नहीं है।

मनुष्य क्या है, भावों का एक थैला है। इसके भीतर सद्भाव और दुर्भाव ठूँसकर भरे हैं। कोई भी ऐसा नहीं जिसके भीतर सद्भाव, दुर्भाव दोनों न हों। सज्जनों के सद्भाव ही प्रकट होते हैं, दुर्भाव दबे रहते हैं। उसी प्रकार दुर्जनों के सद्भाव दबे रहते हैं। दुर्भाव प्रकट रहते हैं। हृदय के भाव मुख पर स्पष्ट झलकने लगते हैं। जैसी वस्तु सम्मुख आ जायगी मन उसी के भाव में भावित हो जायगा और उसकी झलक मुखमण्डल पर छा जायगी। जो ईर्ष्यालु होते हैं, वे दूसरों की उन्नति देखकर जलने लगते हैं। उस समय वे बड़े ही वीभत्स बन जाते हैं उसके अङ्ग-अङ्ग से घृणा, द्वेष, हिंसा, क्रूरता निकलने लगती है उस समय उनके भीतर जितना द्वेष भरा रहता है, उसे वाणी द्वारा व्यक्त कर देते हैं। यह प्राणी भावों द्वारा ही जीवित है। मृतक संज्ञा उसी की है, जिसके मुख पर भावों का आना जाना बन्द हो जाय।

दुर्दिनों में मन के कोमल भावों का सर्वनाश हो जाता है और उसकी जगह कठोर एवं पाश्विक भाव जाग्रत हो जाते है। जिस वस्तु का जिस भाव से चिन्तन किया जाता है, वह वस्तु उसी प्रकार से अनुभव में आने लगती है।

जिनकी जैसी भावना होती है उसी भाव से प्रभु उसे प्राप्त होते है। कोई भी चीज स्वयं में न भली होती है न बुरी, समझने से वैसी हो जाती हे। मन्त्र तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषि, औषध, गुरू में जैसी भावना होती है वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।

भावना से कर्त्तव्य बडा है, भावना में बहकर कभी भी अपना कर्त्तव्य नहीं छोडना चाहिये। हम परस्पर सद्भाव रखे, पर परिस्थितियों के अनुरूप कर्त्तव्य पालन में प्रमाद न करे। दूसरों के प्रति हमारी बुरी भावना होने से उनका बुरा होगा या नही होगा यह तो निश्चित नहीं है पर हमारा अन्त:करण तो मैला हो ही जायेगा।

भावनाओं में फंस जाएं तो हम कर्त्तव्यों से दूर होने लगते हैं। दूध उबलता है और उसके साथ ही कुछ लोग भी उबल पड़ते हैं। जैसे दूध उबल कर बर्तन से बाहर आता है, वैसे ही मन में दबे भावनात्मक नाटक भी बाहर आते हैं। चीखना, चिल्लाना, हाय-तौबा मचाना। वैसे सबको पता होता है कि करना क्या है। चूल्हा बंद करके दूध का बर्तन उतारकर सफाई ही तो करनी है। यही तो किया ही जाना था तो यह भावनात्मक नाटक क्यों?

एक लड़के की महिला मित्र बनी। वह उसके साथ अच्छा समय गुजारना चाहता था। उसकी ख्वाहिश थी कि एक बाइक हो जिस पर वह अपनी मित्र को शहर भर में घुमाए। कुछ दिन में नई बाइक आ गई और वह उसे बैठाकर पूरा शहर घुमाने निकल गया। पूरा दिन घूमने के बाद दोनों घर लौटे और दिनभर की चहलकदमियों पर हंसी ठहाके लगने लगे।

कुछ देर बाद बाहर निकले तो देखा कि बाइक तो चोरी हो गई। लड़की ने रोना-पीटना शुरू कर दिया। मायूसी और हताशा ने उसे जकड़ लिया। तब लड़के ने समझाया दोस्त, बाइक चोरी पर तुम खूब रो भी सकती हो और चाहो तो इसे सहज भाव से ले लो।

इत्तेफाक से बाइक हफ्ता भर बाद बरामद हो गई। बाइक लेकर लड़का सीधे अपनी मित्र के पास आ रहा था कि वह एक ट्रक से टकरा गया। दुर्घटना में वह तो बच गया, मगर बाइक बुरी तरह टूट गई। घर पहुंचते ही वह बुरी तरह मायूस हो गया। तब लड़की ने उसे समझाया दोस्त, बाइक के टूटने पर तुम खूब रो भी सकते हो और चाहो तो इसे सहज भाव से ले लो। अब जो टूटना था, वह टूट चुका है। उस पर यूं निराश होगे तो यह टूटन तुम्हारे अंदर तक जा धंसेगी।

हम चाहे जितना भावनात्मक नाटक कर लें, अंत में हमें वही करना है जो करना चाहिए। पुनर्निर्माण में लगना हो तो

जरूरी है, बाकी तो सब होता ही रहता है। किसी का बच्चा फेल हो जाता है तो वह या तो बच्चे से उलझ पड़ता है या खुद को मायूस करके सजा देने लगता है। जबकि हो सकता है बच्चे को कोचिंग की जरूरत हो। यही तो किया जाना चाहिए। फिर यह चिल्लाहट चीख-पुकार का भावनात्मक नाटक क्यों?

व्यापार असफल होना, नौकरी से निकाला जाना, प्रेम संबंधों का टूटना या हमारे किसी करीबी का अचानक गुजर जाना, इन सब घटनाओं में पूरे भावनात्मक नाटक के बाद आखिरकार हमें इनसे उबरना होता है। ऐसा नहीं कि हम भावनात्मक न हों। गम में अफसोस जरूर करें, मगर नाटक से बचें। भावनात्मक परिपक्वता भावनाओं से भागने में भी नहीं है और न ही भावनात्मक नाटकों से है। अंतत: हमें घटनाओं से उबरना होता है। फिर चाहे हम चीखकर उबरें या चुप रहकर। क्योंकि इसके बाद बाकी सब तो नाटक है। इन नाटकों से पार ही तो शांति है, निर्माण है और खुला आकाश है।

प्यार और अपनापन बांटने से ही मिलता है भावनात्मक संतोष। एक गरीब लड़के को मंदिर जाते समय किसी ने अपमानित करके भगा दिया। नाराज होकर वह मंदिरों को ही तोड़ने पर आमादा हो गया। काला पहाड़ के नाम से कुख्यात इस अपराधी को इस समाज ने जन्म दिया और इसी समाज को उसकी करतूतों का दंश झेलना पड़ा।

इंसान सब कुछ सह लेता है, लेकिन वह भावनात्मक आघात या विश्वासघात कभी नहीं सहन कर पाता। इससे उसके अचेतन में मनोग्रंथियां पनपने लगती हैं। उनसे वह खुद पीड़ित रहता है, दूसरों को भी पीड़ित करता है। इंसान गलतियों का पुतला है। लेकिन अगर उसे माफ कर दिया जाए और उसकी विवशता का गहराई से निरीक्षण किया जाए, तो हो सकता है वह ऐसी गलती दोबारा न करे। गलतियां सबसे होती हैं और हर गलती करनेवाला दूसरों से माफी की उम्मीद करता है। लेकिन अक्सर लोग माफ करते नहीं हैं। हम अपने लिए क्षमा चाहते हैं, पर दूसरों को परेशान करते हैं। गलतियों पर पीड़ित करने से व्यक्ति अंदर से टूट जाता है। टूआ हुआ इंसान अपने और दूसरों के लिए बड़ा घातक होता है। यही कारण है कि समाज में अपराधियों की संख्या बढ़ती जा रही है। अंगुलिमाल को उंगली दिखा कर उस पर तीखा व्यंग्य किया जाता था। उसे बताया जाता था कि वह कितना बड़ा अपराधी है और उसे क्यों सभ्य समाज के बीच नहीं आना चाहिए।

जिस दिन उसकी सहनशीलता का पैमाना छलक गया, उसी दिन से उसने लोगों की उंगलियों को काट कर माला में पिरोकर पहनना शुरू कर दिया। बच्चों और किशारों में भावनात्मक संवेदनशीलता बहुत ज्यादा होती है। उनमें प्रपंच आदि बड़े होने पर ही पनपते हैं। बच्चा मन और बुद्धि लेकर पैदा नहीं होता, बल्कि वह चित्त लेकर जन्म लेता है। मन और बुद्धि तो उसमें बाद में विकसित होते हैं। इसी कारण बच्चों को भगवान का रूप माना जाता है। लेकिन बच्चा कभी रोता है या अपने मन से कुछ करने लगता है तो उसे डांट दिया जाता है। ऐसे में उसकी कोमल भावनाओं पर बुरा असर पड़ता है। किशोर ऐसे में या तो अपराध की दलदल में धंस जाते हैं या फिर आत्महत्या कर बैठते हैं। समाज में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि गलती करनेवाले को गलती का अहसास हो। ऐसे में संवेदनशील समाज में अपराधी पैदा नहीं होंगे। हर अंगुलिमाल को सुधरने का अवसर मिलेगा। गलती करनेवालों के प्रति अपार स्नेह दर्शाने की आवश्यकता है। इसके लिए भावनाओं और संवेदनाओं के स्तर पर भारी प्रयास करने पड़ेंगे।

भावनात्मक तृप्ति प्यार और अपनापन बांटने से मिलती है। महात्मा बुद्ध से ऐसा ही प्रेम पाकर अंगुलिमाल तृप्त होकर सही राह पर चल पड़ा।

भाव ही भव का कारण है। मनुष्य जैसे भाव से भावित हो जाता है वैसे ही कार्य करने लगता है। शुद्ध भाव होने से स्वभावत: शुद्ध कार्य होते हैं और अशुद्ध भाव होने से अशुद्ध कार्य होते हैं। सात्विक भावों का जब प्राबल्य होता है तब सात्विक कार्य होते हैं, तमोगुण की प्रबलता में तामसी कार्य इसीलिये मुनियों ने भाव शुद्धि पर अत्यधिक बल दिया है। अन्य शरीरों में अन्य जाति के प्राणियों का आवेश हो जाता है। मनुष्य के शरीर में भूत, प्रेत, पिशाच, वैताल, ब्रह्मराक्षस आदि घुस जाते हैं, तब उसका शरीर तो वैसा ही रहता है, चेष्टा सब उन आवेश वाले प्राणियों की-सी हो जाती हैं। जिसने जीवन में कभी सुरापान न किया हो, यदि उसके शरीर में कोई सुरापी जीव घुस जाता है, तो वह यथेष्ट सुरापान कर लेता है। उस समय वह जो कार्य करता है, स्वयं नहीं करता। उसके शरीर में जिसका आवेश होता है, वही सब करता है।

अपने इष्ट को भली-भाँति भक्त ही समझ सकता है। जिसने जिसे अपने अनन्य प्रेम से, भक्ति भाव से प्रकट किया है वह उसके यथार्थ रहस्य को नहीं जानता है। पिता कितना भी कुपित हो फिरभी पिता ही है। सिंह सब पर क्रोध करता है, किन्तु अपने बच्चे को हृदय से चिपटाता है। सिंह से सभी डरते हैं। किन्तु सिंह का बच्चा उससे तनिक भी भयभीत नहीं होता। बिल्ली चूहों को मुँह में ले जाती है, उसी तरह उसी मुख में अपने बच्चों को भी उठाकर ले जाती है। चूहे उसके मुँह में पड़ते ही तड़फड़ाने लते हैं, भयभीत होकर थर-थर काँपने लगते हैं, किन्तु उसके बच्चों को कोई चिन्ता नहीं, कोई दु:ख नहीं, शोक नहीं, भय नहीं। कारण यही है कि बच्चों को विश्वास है यह हमारी माता है, इससे हमारा अनिष्ट कभी हो नहीं सकता। इसके विपरीत चूहे उसे अपनी घात करनेवाली समझते हैं, उनकी दृढ़ धारणा है हमें मार डालेगी, खा जायगी। भावना ही फलवती होती है, जनार्दन प्रभु भावग्राही हैं। जाकी जैसी भावना होती है ताको तैसी ही सिद्धि प्राप्त होती हैं।

जो पहिले से ही बनावटी वेष बनाकर गया है उसकी बनावट तभी तक रहती है, जब तक कार्य सिद्ध नहीं होता। जहाँ कार्य सिद्ध हुआ, कि वह अपने यथार्थ रूप में प्रकट हो जाता है। मनुष्य की आकृति उसके भावों का प्रतीक है, जैसे भाव होंगे वैसे ही आकृति बन जायगी। छद्म वेष अधिक समय तक टिक नहीं सकता, उसका भण्डा फोड़ हो ही जाता है।

मनुष्य का मन भावनामय होता है। वह सतत् कोई न कोई भावना पालता है। मन की भावनाओं के अनुरूप ही इच्छाये जन्म लेती है। और उन इच्छाओं की पूर्ति के विचार सतत् मन में उठते रहते है। वे विचार जितने पक्के बनने लगते है उतना निश्चय पक्का बनने लगता है। पक्के निश्चय के साथ क्रिया शक्ति भी बढती है। इस क्रिया शक्ति को ज्ञान शक्ति और इच्छा शक्ति प्रबल करते है जिस कारण उसे गति भी मिलती है। लेकिन इन तीनों का संचालन मन की भावना शक्ति करती है। तब कर्म प्रवृति जागृत होकर मन व्यक्ति को प्रत्यक्ष कर्म करने को बाध्य करता है। साथ ही अभिमान या अहंकार उस पर बार-बार जोर डालता है। उस कारण कर्म होता है और कर्म के अनुसार फल मिलता है। फल अन्तिम रूप है लेकिन मूल रूप मन की भावना ही है।

अमूर्त का अर्थ है, वह जिसका कोई रूप नहीं है और जिसे व्यक्त न किया जा सके; वह जिसे देखा नहीं जा सकता। मूर्ति वह है, जिसका कोई रूप है और जिसे देखा जा सकता है और दक्ष मतलब कुशलता और सामर्थ्य। तो जब दिव्यता को व्यक्त नहीं किया जा सकता, तब उसे एक कुशलता से व्यक्त किया जा सकता है और तब उसे दक्षिणा कहते हैं। हम अपने अंदर की सभी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते। कितनी बार, हम अपने अंदर भी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए एक फूल भेंट करते हैं। फूल चढ़ाने के इस कृत्य के द्वारा हम अपनी भावनाओं को दिखाने का प्रयास करते हैं। हम ऐसा कुछ नहीं दे सकते, जिससे हम अपने अंदर छिपी संवेदनाओं को पूरी तरह से स्पष्ट कर पायें, लेकिन फिर भी हम कुछ

देने का प्रयास करते हैं। इसे कहते हैं, दक्षिणा। दक्षिणामूर्ति वह है, जिसे देखा तो नहीं जा सकता, लेकिन फिर भी जो व्यक्त हो रहा है वह जो अभिव्यक्ति के परे हैं, लेकिन फिर भी एक रूप के माध्यम से जिसे अभिव्यक्त किया जा रहा है। वह अदृश्य है, लेकिन फिर भी दिख रहा है और सब कुछ उसी से बना है। वह अनंत है और जिसे न तो अभिव्यक्त किया जा सकता है और न ही व्यक्त किया जा सकता है- जब उसे इतनी कुशलता के साथ एक रूप के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है, तब उसे दक्षिणामूर्ति कहते हैं। सूर्य इतना बड़ा होता है और हमसे कितनी दूर है, लेकिन यदि आप सूरज को एक छोटे से शीशे में देखते हैं, तो आप सूरज के प्रतिबिंब को उस कांच के छोटे से टुकड़े में देख सकते हैं।

सभी प्रकार की भावनाएं ऊर्जा के विभिन्न रूप-रूपांतर हैं, विविधता इस विश्व का आधार है। इस सृष्टि की उत्पत्ति एक नहीं, दो तत्वों से हुई है। यदि दिन है, तो रात भी है। यदि गर्मी है, तो सर्दी भी है। इसलिए यह कहना कि मैं जीवन में कभी किसी नकारात्मकता का अनुभव नहीं करूंगा, सच्चाई से अपना मुंह मोड़ना है। बेशक, हम सभी ईर्ष्या, क्रोध एवं घृणा से मुक्त होना चाहते हैं और उदार, धीर एवं करुणामय बनना चाहते हैं। हमें हमेशा अपने उत्थान के लिए प्रयत्न करना चाहिए, किंतु हमें यह भी समझना चाहिए कि हमारी संरचना प्रकृति के तीन गुणों-सत्व, रजस और तमस के संयोजन से हुई है, जो हमारे स्वभाव और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। जहां प्रेम है, वहां घृणा भी है। प्रत्येक स्थान पर हम इन द्वंद्वों को पायेंगे। कुछ लोगों में दूसरों की अपेक्षा अधिक ईर्ष्या है, कुछ में दूसरों की अपेक्षा अधिक घृणा अथवा अपराध-बोध की भावना है। कुछ लोग करुणामय होते हैं, उनमें ईर्ष्या की भावना नहीं के बराबर होती है। राजसिक और तामसिक प्रवृत्तियां होते हुए भी उनमें सत्व गुण जाग्रत है। अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण या अपनी मौलिक संरचना की वजह से वे अपने सत्वगुण को अभिव्यक्त कर पाते हैं। नहीं लगता कि कोई ऐसा व्यक्ति भी होगा, जिसमें ईर्ष्या या द्वेष की भावना बिल्कुल न हो। कुछ व्यक्ति जानते हैं कि उनमें ईर्ष्या की भावना है और इसलिए उनका इस भावना पर बेहतर नियंत्रण होता है।

भावनात्मक बुद्धिमत्ता स्वयं की दूसरों की भावनाएं पहचानने व उनका व्यवस्थापन करने की एक कला है।

हमारे जीवन में भावनाओं का बहुत महत्व हैं। प्रिय से मिलने पर हम आनंदित होते हैं, सफलता मिलने पर गौरवान्वित महसूस करते हैं, संकट आने पर भय महसूस करते हैं। इस तरह हमारी भावनाएं कभी हमें कुछ करने के लिए प्रोत्साहित भी करती हैं और कुछ न करने के लिए हतोत्साहित भी करती हैं।

भावना व भावनात्मक बुद्धिमत्ता की अवधारणा का संबंध अरस्तू के समय से ही लोगों को ज्ञात हैं। जिन बातों पर क्रोध आना अपेक्षित है, उनपर क्रोध न करनेवाला व्यक्ति मूर्ख कहलाता है, साथ ही उचित समय उचित भावना को प्रकट न करनेवाला व्यक्ति भी इसी श्रेणी में आता है। ऐसे व्यक्ति किसी भी घटना का भावनात्मक अनुभव नहीं कर सकतें, किसी घटना से विचलित नहीं होते और न समय आने पर अपना बचाव कर सकते हैं। अत: स्पष्ट है कि उचित समय पर उचित तरीके से प्रतिकार करना जरूरी है। मनुष्य व भावना एकदूसरे से बंधे हुए हैं।

भावनाओं की पहचान, अनुभव आंकलन व उसका प्रदर्शन मनुष्य के लिए जरूरी भी है और सही भी। भावनात्मक बुद्धिमत्ता एक तरह की क्षमता है। यह स्वयं की दूसरों की भावनाएं पहचानने व उनका व्यवस्थापन करने की कला है। इसमें तीन बातें आपस में जुड़ी हुई है। पहली- अपनी व दूसरों की भावनाओं के प्रति भावनात्मक सजगता, दूसरी उनका आपस में तालमेल स्थापित कर विचारों के बल पर समस्या को सुलझाने की क्षमता व तीसरी उन भावनाओं को प्रबंध करने की क्षमता। अपनी भावनाओं को योग्य दिशा में मोड़ने व भिन्न-भिन्न भावनाओं का उचित अर्थ लगाने, उत्तेजित व नाराज व्यक्ति को शांत करने की क्षमता भी भावनात्मक बुद्धिमत्त का एक अहम पहलू है जो अभ्यास के द्वारा सीखा जा सकता है।

स्वभाव, आदत

स्वभाव और आदत- स्वभाव सहज होता है। आदत डाली जाती है। स्वभाव छूटता नहीं, आदत छोड़ी जा सकती है। स्वभाव चिरकाल तक एक जैसा रह सकता है, आदत परिवर्तित होती रहती है। स्वभाव संयोग अथवा परिस्थितिवश बदलता भी है, पर कुछ ही समय के लिये। जैसे पानी अग्नि के संयोग से गर्म हो भी गया तो भी अग्नि के हटने पर वह पुन: ठण्डा हो जाएगा। ठंडापन पानी का स्वभाव है। अत: बिना संयोग के वह चिरकाल तक ठंडा रह सकता है। आत्मा स्वभाव से वीतराग है। अत: उस अवस्था में वह अनन्तकाल रह सकती हैं किन्तु राग-द्वेष की स्थितियाँ बदलती रहती है। हम चाहे तो अपनी आदतों को सुधार कर स्वभाव में आनन्दपूर्वक स्थित हो सकते हैं। किसी मनुष्य का स्वभाव उसे विश्वसनीय बनाता है न कि उसकी संपत्ति। मनुष्य का स्वभाव है कि वह किसी भी प्रकार प्रसिद्ध होना चाहता है।

आत्मा कर्म तो करती है परंतु मनुष्य के स्वभाव, संस्कार, गुण, योग्यता उन कर्मों को दिशा देते हैं। स्वभाव संस्कारों का दूसरा नाम है और वे गुण निर्माण में सहायक हो जाते हैं। फिर गुण, स्वभाव के निर्माण में सहायक हो जाते हैं। गुण और स्वभाव इन्द्रियां और मन विषय हैं और इन पर बुद्धि का नियंत्रण रहता है।

जो सुस्वभाव बन गया है, उस पर विजय ही वीरता है।

मनुष्य के स्वभाव के लिए दवाई नहीं है जिसे लेते ही मनुष्य का स्वभाव मनचाहा हो जाए। हर व्यक्ति का अपना स्वभाव होता है, जो व्यक्ति के संस्कार, परिवेश तथा सोच-विचार के आधार पर बन जाता है। एक बार जैसा स्वभाव बन जाता है, फिर उसे बदलना असंभव न सही पर मुश्किल जरूर होता है। कई लोग अपने खराब स्वभाव के लिए कुख्यात होते हैं। वे स्वयं भी जानते हैं कि उन्हें अपना स्वभाव बदलने की जरूरत है। कुछ लोग बदलने का प्रयास भी करते हैं, कुछ सफल भी हो जाते हैं परंतु अक्सर लोगों को अपने स्थायी स्वभाव के साथ ही जीना पड़ता है। यदि स्वभाव अच्छा है तो बदलने का प्रश्न भी नहीं होता।

हमारे आसपास अनेकानेक किस्म के स्वभाववाले व्यक्तित्व पाए जाते हैं।

विनोदी- ऐसे स्वभाववाले व्यक्ति हमेशा हंसने-हंसाने में मशगूल रहते हैं। गमगीन या उदास रहना इनकी फितरत नहीं होता बल्कि उदास माहौल में भी ये अपने विनोदी स्वभाव को मुश्किल से वश में कर पाते हैं।

मितभाषी- ऐसे लोग आवश्यकतानुरूप या इससे भी कम बोलने के लिए मशहूर होते हैं। यदि इनसे बातचीत न की जाए तो ये घंटों तक मौन भी रह सकते हैं। ऐसे लोग किसी राज की बात को आसानी से छुपा लेते हैं। बल्कि इनके मुंह से कुछ उगलवाना टेढ़ी खीर होती है।

बड़बोले- ऐसे लोगों का मुंह कम ही बंद रहता है। यदि कभी ज्यादा देर चुप रहना पड़ जाए तो इन्हें घबराहट होने लगती है। बेचैनी सी होती है। निरंतन कुछ न कुछ बोलते रहना इनकी आदत में शुमार होता है। ऐसे में कई बार इनके मुंह से ऐसी बातें निकल जाती है जो नहीं निकलनी चाहिए थीं।

संकोची- ऐसे व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में संकोची आवरण ओढे रहते हैं। अपने इस स्वभाव के कारण वे दुनिया की भीड़ में बहुत पीछे रह जाते हैं। अति संकोची व्यक्ति तो अपने परिवारवालों यहां तक कि पति/पत्नी से भी बातचीत में संकोच करते हैं।

जिंदादिल- ऐसे लोग हमेशा वर्तमान में जीते हैं। आनेवाले या गुजरे हुए कल की चिंता में जीवन गुजारना इन्हें नहीं सुहाता। इनकी फिक्र दूसरे करते हैं। ये तो अपनी मस्ती में मस्त रहते हैं।

उपदेशी- ऐसे व्यक्ति कभी भी, किसी को भी, किसी भी बात पर उपदेश देने के लिए तैयार रहते हैं। अपनी तमाम व्यस्तताओं में भी उपदेश देने का समय निकाल लेते हैं। ऐसे लोगों से सब दूर भागते हैं। पता नहीं कब, कहां, किस बात पर शुरू हो जाएं।

बचकाना- ऐसे लोग उम्र में कितने ही बड़े हो जाएं, स्वभाव से बच्चे ही रहते हैं। इसी स्वभाव के लिए इन्हें कभी-कभी अपने बच्चों तक के सामने शर्मिंदा होना पड़ता है।

स्वार्थी- ऐसे स्वभाव के लोग हमेशा अपनी स्वार्थ सिद्धि में ही लगे रहते हैं। स्वार्थ ही इनका पहला और आखिरी उद्देश्य होता है। जहां इन्हें स्वार्थ दिखाई न दे वहां ये झांकते भी नहीं।

क्रोधी- बात-बात पर या बिना बात के गुस्से में लाल-पीले रहना इनकी आदत होती है। बार-बार आनेवाले इस क्रोध का असर औरों पर कम ही होता है।

संत- लंबी, दाढ़ी, भगवा वस्त्र, कमंडल, माला के बगैर केवल स्वभाव के संत व्यक्तित्व भी होते हैं। जो निर्लिप्त भाव से, शांत और संयमित रहते हैं। सांसारिक मोह-माया में रहकर भी संत स्वभाव के स्वामी होते हैं। निर्विकार भाव से अपने कर्त्तव्यों में लगे रहते हैं।

सुकृति पुरुष जिसे अपना लेते हैं उसका परिपालन भी करते हैं। अपने हाथ से विष के वृक्षों को भी लगा लेते हैं, तो स्वयं उसे काटने में संकोच होता है, सभी अपने स्वभावानुसार बर्ताव करते हैं। साधु साधुता करने के लिये विवश हैं और दुष्ट लोग दुष्टता किये बिना नहीं रह सकते इसीलिये स्वभाव को संसार में दुस्त्यज बताया है। मुनिगण हिंसक क्रूर प्राणियों के साथ भी दया का बर्ताव करते हैं।

यदि स्वभाव दुस्त्यज न होता, तो दुष्ट लोग उपकारी के साथ भी दुर्व्यवहार क्यों करते। संत लोग दुष्टों के द्वारा अपमानित, तिरस्कृत और दण्डित होने परभी उनकी मंगल कामना क्यों करते? इन सब बातों से प्रतीत होता है, कि उत्तम पुरुष उत्तम कार्य करने के लिये और अधम पुरुष अधम कार्य करने को विवश हो जाते हैं। सभी जानते हैं जुआरियों को जुए में कुछ मिलता नहीं, कभी एक पाते हैं, तो फिर दस गवाँ देते हैं। सुरापी भी समझते हैं, सुरापान बुरा व्यसन है। इससे हानि ही हानि है, किन्तु वे स्वभाव से विवश हैं, इसी प्रकार जिनके हृदय में जन्म से ही भगवद्भक्ति है वे बिना भगवत्परिचर्या के रह नहीं सकते। परोपकार करने में परोपकारियों को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं। निन्दा सुनते हैं, विरोध सहन करते हैं, लाठी डण्डा सहन करते हैं, चले जाते हैं, यहाँ तक कि हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाते हैं, किन्तु परोपकार को किसी भय के कारण किसी भी प्रकार से नहीं छोड़ते। निर्भय होकर उसी कार्य को करते-रहते हैं। धर्म में परोपकार में बड़ा साहस होता है, धर्मात्मा लोगों का प्रतिपक्षी कितना भी बली क्यों न हो, वे अपने साहस तथा आत्मबल के सम्मुख उनसे भयभीत नहीं होते। भृत्य के अपराध का दोष स्वामी का समझा जाता है और शिष्यों की उद्दंडता का उत्तरदायित्व गुरु पर है। सामान्यतया लड़के भली बुरी बातें अपने अध्यापकों से सीखते हैं। इसीलिये गुरु उपदेश देते

हुए कहा करते हैं- भैया देखो, हमारे जो सुचरित हों, उन्हीं को ग्रहण करना। इतना बुरे चरित्र हम में देखो, तो उन्हें मत ग्रहण करना। सामान्यतया हम बड़ों के गुणों की अपेक्षा दोषों को ही शीघ्र ग्रहण करते हैं, क्योंकि विषयों में जीवों की स्वाभाविकी प्रवृत्ति है। कभी-कभी इसके विपरीत भी देखा गया है। बिना सिखाये पढ़ाये अभक्तों में भक्त पैदा हो जाते हैं। दुष्टों के संसर्ग में रहने पर भी बालक साधु बन जाते हैं, उन पर सङ्ग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपनी भिन्न प्रकृति और भिन्न स्वभाव को ही लेकर उत्पन्न होते हैं। इसे स्वाभाविकी या जन्मजात विद्या कहते हैं।

हर प्राणी अपने स्वभाव से वश है। प्रकृति और क्या? स्वभावजन्य दुष्टता। सर्प क्यों किसी को दंशित करता है? बिच्छू क्यों किसी को डंक मारता है? शाखामृग (वानर) फलों को खाता है सो खाता है, शाखाओं को भी क्यों नष्ट करता है? संसार-भर की सरिताओं के मीठे जल को अपने अन्दर समेटकर भी सागर क्यों हमें खारा, अपेय जल प्रदान करता है?

भगवान ने जैसी जिसकी प्रकृति बना दी है, जिसे जिस काम को करने को नियुक्त किया है वह करेगा यदि अहंकार के वशीभूत होकर वह उससे भागना चाहे भी तो भाग नहीं सकता। प्रकृति उसे सर्वत्र से पकड़कर ले आवेगी और उसे उस काम में नियुक्त करके छोड़ेगी। देखो यह प्राणी कितना परवश है, फिर भी यह जीव कितना अभिमान करता है, कि मैं यह करूँगा वह करूँगा। सब उन जगन्नियन्ता श्रीहरि के खिलौने हैं।

बिना सिखाये जो जन्म से ही गुण आवें उन्हें स्वभाव या प्रकृति कहते हैं। नैसर्गिक अथवा जो स्वाभाविक गुण हैं, उनका त्याग देना अत्यन्त ही कठिन है। गौ का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है, नीम का फल स्वभाव से ही कड़वा होता है। हरीतिका स्वभाव से ही रोचक होती है। जो जिस वर्ण का होता है उसमें उस वर्ण के गुण स्वभाव से ही होते हैं।

अच्छी आदतों को अपनाना मुश्किल है, लेकिन उनके साथ जीना आसान है। बुरी आदतें अपनाना आसान है, लेकिन उनके साथ जीना मुश्किल है।

यह सच है कि अच्छाई को सक्रिय करने से बुराई दब जाती है। आज कल यह प्रचलन में है कि ब्रेन वॉशिंग से हर व्यक्ति की सोच का परिवर्तन किया जा सकता है। इससे न केवल बच्चों, बल्कि उम्रदराज लोगों के स्वभाव एवं आदतों को बदला जा सकता है। दवा लेने से आनेवाला गुस्सा बंद हो जाता है। जो काम साधना से होता था, अब वह इन दवाओं से होने लगा है। चिकित्सा विज्ञान में इस प्रयोग की व्यवस्था विकसित हो चुकी है।

धर्म का अर्थ ही है- स्वभाव बदलना। यह मानना बड़ी भूल है कि स्वभाव बदला नहीं जा सकता। कई बार बहुत कुछ नया करने का विचार मन में आता है, पर महत्वपूर्ण क्षणों में हम फैसला लेने का साहस नहीं बटोर पाते। नए फैसलों के साथ आनेवाले बदलावों के बारे में सोचकर कदम पीछे कर लेते हैं। नतीजा पुरानी स्थितियों से ही समझौता करने लगते हैं। बीज होना सुरक्षित होता है, लेकिन बल अंकुर के पास अधिक होता है। अंकुर अपने रास्ते में आनेवाले पत्थर और मिट्टी को धीरे-धीरे हटाकर आगे बढ़ता है। इसलिए अच्छाई के अंकुर पनपने जरूरी है।

**** अच्छा हृदय और अच्छा स्वभाव दोनों जरूरी हैं, क्योंकि***
अच्छे हृदय से कई रिश्ते बनेंगे और अच्छे स्वभाव से, ये रिश्ते जीवन भर निभेंगे।

आपत्ति-विपत्ति

मानव-जीवन समतल सड़क नहीं है, यह सागर की लहरों के समान है। जिस प्रकार लहरें ऊँची-नीची होती रहती है, उसी प्रकार मानव-जीवन में भी कभी विपत्ति तो कभी संपत्ति आती रहती है। मानव सुख-दु:ख के झूले में झूलता रहता है कभी उसे हर्ष होता है तो कभी शोक। किसी मनुष्य का बचपन तकलीफों, दु:खों और कष्टों में बीतता है तो किसी की जवानी और किसी का बुढ़ापा। संपूर्ण जीवन किसी का भी सुख में व्यतीत नहीं होता। किसी को दस-पाँच महिने की विपदा आती है तो किसी को दस-पांच वर्ष की और किसी को दस-पाँच दिन की। अब समझदार मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह विपत्ति से घबराए नहीं। विपत्ति में धैर्य ही प्रमुख सहायक होता है। कभी-कभी आप बादाम खाते हैं। यह पौष्टिक वस्तु हैं। संपूर्ण शरीर और मस्तिष्क को ताकत देता है। इसीलिए खाते हैं। दस-बीस खाते तो मुँह का स्वाद अच्छा हुआ। लेकिन एक कड़वा आ गया तो स्वाद बिगड़ गया। आप उसे थूक देते हो, क्योंकि उसने पहले खाए हुए बादामों का भी स्वाद बिगाड़ दिया। यदि कोई गुणी और समझदार आदमी आपके पास बैठा है तो वह बताता है- इसे थूंको मत। यह मीठे बादामों से भी अधिक गुणकारी है। आप उसकी बात मानकर उसे थूंकते नहीं। उसके उपर दो-चार बादाम और खा लेते है, इस प्रकार अपना स्वाद अच्छा बना लेते हैं। कड़वा बादाम मनुष्य के जीवन में आई हुई विपत्ति की तरह है। उससे घबराना नहीं चाहिए और न उसे थूंककर दूर करना चाहिए। यानी विपत्ति से दूर नहीं भागना चाहिए। उसका उपाय सोचना चाहिए। यद्यपि यह सत्य है कि विपत्ति को कोई चाहता नहीं, फिर भी यह बिना बुलाए मेहमान की तरह आ ही जाती है और जब आ ही जाय तो धैर्यपूर्वक तथा समभाव रखते हुए इसका सामना करना चाहिए। विपत्ति में जिसके हृदय में सद्ज्ञान उत्पन्न न हो वह सूखा वृक्ष है, जो पानी पाकर पनपता नहीं, बल्कि सड़ जाता है।

प्रतिकूल परिस्थितियों और विपदाओं का भी जीवन में अपना महत्व है। जैसे किसान कांटों और झाड़-झंखाड़ों का भी सदुपयोग करके अपने खेत की रक्षा करता है। वह उनकी मदद से बाड़ बना लेता है, ताकि उसके खेत में मवेशी नहीं आ सकें। वैसे ही विपत्तियों, कष्टों और परेशानियों से भी मनुष्य लाभ उठा सकता है। हम में से ज्यादातर लोग विपदाओं को हानिकर मानते हैं। उनसे डर जाते हैं। उनसे दुखी हो जाते हैं। स्थितियों के विपरीत होते ही अपना साहस छोड़ बैठते हैं। वे उस कड़वी घूंट का महत्व नहीं समझते। विपत्तियों का सामना करने से मनुष्य की सूझबूझ बढ़ती है। उसकी शक्तियां विकसित होती हैं। जैसे कमजोर व्यक्ति भी अखाड़े में अपने से बड़े पहलवान से लड़ते-लड़ते मजबूत बन जाता है, वैसे ही विपत्तियों के खरल में कूट-पिसाकर आदमी अधिक सबल एवं सामर्थ्यवान बनता है।

जीवन में प्राय: वो लोग सफल होते हैं, जो शुरू से ही विपत्तियों से लोहा लेते हैं। उनसे सबक सीखते हैं। जिन कष्टों से बचा नहीं जा सकता, उनके बारे में यह देखना चाहिए कि कैसे उनका अच्छा से अच्छा उपयोग हो सकता है। और कुछ नहीं तो उन्हें अभ्यास का अवसर ही समझ लें। जिसने दु:ख का कड़वा स्वाद नहीं चखा, वह आनंद के मीठेपन का आनंद भी नहीं समझ सकता। अनुकूलता-प्रतिकूलता जीवन में धूप और छाया की तरह हैं। उनमें सुखी-दुखी होना बचपना है। मैं दुखी हूं, मैं परेशान हूं। यह सोच तो बड़ी हानिकारक है। जो कष्टों से गुजरता है वह मजबूत बनता है, फिर जीवन की परीक्षाओं में वह हार नहीं सकता। विपरीत परिस्थितियां मनुष्य के सोए हुए मनोबल को जगाती हैं और उसकी दृढ़ता में बढ़ोतरी करती हैं। जो विपत्तियों से घबराता है, वह निर्बल है। वह चीख-चिल्लाकर रह जाता है। पर अपनी कमजोरी दूर नहीं करता। आप ऐसे दुर्बल दीन-हीन न बनिए। विपत्तियाँ हमें सावधान करती हैं, सजग बनाती हैं।

वाणी, शब्द, मौन

वाणी तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल, हिये तराजु तौलकर, तब मुख बाहर खोल ।।

वाणी का धन सबसे बड़ा, इससे बड़ा न कोय - मधुर और सुंदर वाणी से मनुष्य सबका दिल जीत लेता है। उसके उत्थान में मधुर वाणी सीढ़ी का काम करती है। सफलता के शिखर तक पहुंचने में इसकी बहुत अहम् भूमिका होती है।

मनुष्य के स्वभाव का उसके भावी जीवन पर बहुत अहम् प्रभाव पड़ता है। सुंदर स्वभाव से तात्पर्य उसके बोलचाल, उठने-बैठने व आनेवाले का किस प्रकार अभिवादन करता है आदि। इसमें अहंकार रहित जीवन शैली इत्यादि सम्मिलित है। स्वभाव में ज्यादा योगदान वाणी का होता हे। आदमी की मधुर वाणी, विनम्रता, आदर भाव, सहज व सरल कार्यशैली, सलीके से बोलने की निपुणता, अच्छे कार्य की खुले दिल से प्रशंसा इत्यादि का मनुष्य के भावी जीवन के उत्थान व पतन में भारी योगदान होता है। अगर आप घर, परिवार, पत्नी, मां-भाई किसी भी सदस्य या जिससे भी आपका रोजमर्रा की जिन्दगी में काम पड़ता है, उनसे धीरे से, सलीके से किसी बात को बोलोगे तो आपकी बात का आदर भी होगा और आप में अपनी सही बात को मनवाने का सामर्थ्य भी पैदा होगा। अगर आप किसी भी परिवार के सदस्य व मित्र इत्यादि की बात से असहमत हैं, तो भी एक तो कठोर, कड़ी भाषा का न प्रयोग करें और दूसरा विकल्प उसी बात की मीठे शब्दों में असहमति जताएं तो अगला व्यक्ति बात को माने या न माने, परंतु आपके उससे संबंध भी खराब नहीं होंगे व आपका आदर भी उनकी निगाह में बना रहेगा। इसी बात को प्राचीन महापुरुषों ने कहा है कि सदगुणी अपना आदर हर जगह करवा लेता है। उसको किसी दूसरे व्यक्ति के सहारे की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अगर आपके स्वयं के छोटे बच्चे से भी कोई निजी काम कराना हो, तो बड़े प्यार से व प्रेम से बच्चे को बुलाकर कहें कि बेटा तू बहुत अच्छा लड़का है और तुरंत यह काम करके आ, तो वह भगा-भगा जाएगा और उत्साह व प्रसन्नता से आपका काम करेगा और फिर उसे मीठे शब्दों में धन्यवाद दें, तो वो आपके काम को कभी मना नहीं करेगा। आज हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा है, चाहे नौकरी का क्षेत्र हो या निजी व्यापार का हो, आपका हर रोज सैकड़ों व्यक्तियों से पाला पड़ता है। आपकी निपुणता इसी से भी साबित हो जाएगी व आपके पास आकर जानेवाला प्रसन्नता से जाएगा व दस व्यक्तियों से आपकी प्रशंसा भी करेगा कि फलां व्यक्ति का स्वभाव तो बहुत अच्छा है, नेक दिल इन्सान है। इसीको आपकी सच्ची पूंजी कह सकते हैं और मरते दम तक आपका अच्छा स्वभाव आपकी मदद करता रहेगा व समाज में सम्मान भी दिलवाएगा। अच्छे स्वभाव के इतने फायदे हैं कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इसी ही बात की पुष्टि इन दोनों के माध्यम से करी जाती है।

शीलवंत सबसे बड़ा सब रत्नों की खान, तीन लोक की सम्पदा रही शील में आन।

कागा किसका धन हरे कोयल किसको देत, मीठी वाणी बोल कर सबका मन हर लेत।

वाणी का धन सबसे बड़ा इससे बड़ा न कोय, कुछ भी खरचा है नहीं लाभ अनेकों होय।

वाणी - संसार में अनन्त-अनन्त प्राणी ऐसे हैं; जिनके पास केवल एक काया तो है किन्तु वाणी नहीं है। दु:ख है, पीड़ा है, कष्ट है, किन्तु अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति देने के लिए और किसी प्रकार से उस दु:ख दर्द को बताने के लिए उनके

पास वाणी नहीं है और ऐसी वाणी का भी क्या अर्थ जो कि अपना ही दु:ख दर्द व्यक्त न कर सके। ऐसी वाणी न पृथ्वी में है, न जल मैं है, न अग्नि-वायु-वनस्पति में है। एकेंन्द्रिय प्राणी अनंत-अनंत है लेकिन उनके पास वह शक्ति नहीं है। बहुत बड़ी उपलब्धि होती है आत्मा की जब वह वाणी प्राप्त करती है। लेकिन वह वाणी भी प्राप्त कर ली, तो उस वाणी से क्या होता है ? मक्खी भनभनाती रहती है, मच्छर भूनभून करते हैं इधर-उधर। और भी असंख्य-असंख्य प्राणी है। उनको वचन तो मिल गया है, वाणी तो इंसान की है। यह वाणी इंसान की ऐसी वाणी है जो एक बहुत बड़ी शक्ति है। यह वाणी पृथ्वी पर अन्य किसी प्राणी को प्राप्त नहीं है। वचन की यह अद्‌भुत शक्ति, जो दूसरे प्राणियों के पास नहीं है, वह शक्ति मनुष्य ने पा तो ली, परन्तु उस वाणी का उपयोग कैसे करना, यह विचारणीय प्रश्न। बोल तो रहे हैं, बोलते ही जाते हैं। वाणी का जितना उपयोग हो रहा है, संभव है उतना उपयोग और किसी चीज का न हो रहा हो। वह क्रोध से भरी हुई वाणी स्वयं बोलता है, क्रोध में तपता है तो क्रोध में तप्त वाणी दूसरों को भी तपा देती है। दूसरों के मन में भी क्रोध पैदा कर देती है। आग से आग जल उटती है आगे की ओर। और उसमें से फिर घृणा, वैर-विरोध बढ़ते हैं। उस वाणी का जो एक अद्‌भुत बल है, शक्ति है उसका उपयोग करके क्या पाया ? अपेक्षा है वाणी का सही उपयोग किया जाए। अनेक लोगों की वाणी में अहंकार से, जाति का अहंकार, खानदान का अहंकार, धन का अहंकार, रूप का अहंकार और किसी वाणी में हम बहुत अच्छे, पढ़े-लिखे हैं, ज्ञानी है इसका अहंकार बोलता है। लेकिन इस अहंकार से लिप्त वाणी से प्राप्त क्या होता है ? कुछ होता नहीं है। शास्त्र पढ़े भी हो तो शास्त्र पढ़ने से क्या हो जाता है ? उस शास्त्र में से कितना मर्म तुम्हारा अपना बन पाया है? शास्त्रों को पढ़कर भी लोग मूर्ख रह जाते हैं। वे उस ज्ञान को जीवन में उतार नहीं पाते हैं। इसलिए बहुत आवश्यक है कि जब भी बोलना हो सोच-समझकर बोलो। सोचो कि क्या परिणाम होगा इसका ? जरा-सी भी भूल या अज्ञानता के क्षणों में जो बोला जाता है वह भयंकर अनर्थ को पैदा कर देता है। जब आप इतिहास पढ़ते हैं तो मालूम पड़ता है कि बहुत छोटी-सी बात है लेकिन ऐसे क्षणों में कही जाती है वह बिना सोचे-बिना विचारे तो उसके परिणाम भयंकर होते हैं। यह वाणी महत्वपूर्ण वाणी है। इसका उपयोग तुम दूसरों के मन को घायल करने के लिए मत करना। तुमसे हो सके तो दूसरों के घावों को भरने के लिए इसका उपयोग करना। बोलो हित की बात पर प्रिय बोलो, मीठा बोलो। हम बहुत सोच -विचार कर बोलें। सत्य बोलना चाहिए लेकिन सत्य हितकर होना चाहिए। और हितकर भी प्रिय होना चाहिए। सत्य हो, हित हो, यह वाणी सरस्वती की वाणी है।

आज तो हर क्षेत्र में अराजकता का वातावरण दिखाई देता है, उसका मूल कारण है- बोलने की असावधानी। मनुष्य बोलते समय विचार नहीं करता है कि इन शब्दों का सुननेवाले पर क्या प्रभाव पडेगा ? उसका कितना दिल दुखेगा ? उसे कितना बुरा लगेगा ? आप किसी सभा में गए। वहाँ कोई बात अवसर के विपरीत कह दी तो सब लोगों को बुरी लग गई और सब आपका विरोध करने लगे। कहने का अभिप्राय यह है कि आप वचन-विवेक रखो, चतुराई से बोलो और न्यायपूर्ण शब्द बोलो। अन्याय की बात का साथ मत दो अन्यायपूर्ण कार्य में कभी हाँ मत मिलाओ। नीति की बात कहो। ऐसा करते हुए भी यदि आपका विरोध होता हो तो उस समय आपको दृढ़तापूर्वक अपने न्याय-नीतिपूर्ण विचार पर जमे रहना चाहिए। अपना पौरुष और जौहर दिखाना चाहिए। लेकिन कुछ लोग प्रशंसा पाने के लिए, समाज में सम्मानित बनने

के लिए अथवा दूसरों की नजरों में ऊँचे उठने के लिए मीठी-मीठी बातें बनाते हैं, चाहे उन बातों में सत्य का अंश न हो। यह सब वे यश पाने की कामना से करते हैं। यह नहीं है कि आपको यश की रुचि नहीं रखनी चाहिए, अवश्य रखनी चाहिए। लेकिन यश की प्राप्ति मधुर किंतु थोड़े शब्दों से नहीं होती। यश तो त्याग से मिलता है। जो जितना बड़ा त्यागी, उसका उतना ही अधिक यश संसार में फैलता है, वह उतना ही अधिक यश पाता है।

सत्यवचन- हे मानव, तू हमेशा यह बात याद रखना- हमेशा हित, मित, मधुर और सत्य वचन बोलना। सत्य-वचन ही सज्जन पुरुषों का भूषण है। जिनके क्रोधादि कषायों की आग शांत हो गई है उनके वचन मधुर और सत्य ही होते हैं। ऐसे वचन बोलनेवाला व्यक्ति सबका प्रिय बनता है, सबका मित्र बनता है। ऐसे व्यक्ति के वचन सबके लिए आदरणीय एवं आचरणीय होते हैं। कठोर वचन पारिवारिक सम्बन्धों को भी पलभर में छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, मित्र-मित्र, गुरु-शिष्य, मालिक-नौकर (स्वामी-सेवक) के बरसों पुराने सम्बन्धों को क्षणभर में तोड़ने की ताकत है कठोर वचन में असत्य तथा कर्कश वचन बोलनेवाला व्यक्ति किसी के प्रेम और विश्वास का भाजन नहीं हो सकता। हमारी वाणी, हमारी भाषा, हमारी मनोदशा की परछाई है। तुम्हारी बोलने की रीति, पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो सुननेवाले को प्रिय, हितकारी एवं आनन्ददायिनी लगे।

विचार बदलो-विचारों में बहुत बड़ी विलक्षण शक्ति है। तुम्हारा भला या बुरा करने की बहुत बड़ी ताकत विचारों में है। इसीलिए विचार बदलो, तकदीर अपने आप बदल जायेगी।

पर्यावरण प्रदूषण आज एक गंभीर समस्या है किंतु इसके अलावा एक और गंभीर प्रदूषण फैल गया है। वह है वाक् प्रदूषण जिसका जहर समाज को अंदर ही अंदर खोखला कर रहा है। पारिवारिक माहौल से लेकर देश के नेताओं तक को इसने अपने शिकंजे में कस रखा है। आज के नेता वाक् प्रदूषण से ग्रसित हैं जिसके कारण वे अनाप-शनाप बयान दे देते हैं। इससे देश की छवि गिरती है। इस समस्या से निदान पाने के लिए हमें राजनेता की पदवी उन्हीं को देनी चाहिए जो शालीन, अनुभवी व सौम्य व्यक्तित्व के हों।

सबके साथ सहानुभूति और नम्रता युक्त मित्रता का बर्ताव करना चाहिए। कोई बुरा बर्ताव करे, तो भी उसके साथ अच्छा बर्ताव करें। असत्य, निंदा, चुगली और कठोरता ये वाणी के पाप हैं। आदेशात्मक लहजे में, चिल्लाते हुए, अश्लील और कटु बोलना संभाषण के चार दोष हैं। शांत, मधुर और प्रिय भाषण वाणी के गुण हैं। सबसे विनय पूर्ण मीठी वाणी बोलना चाहिए। किसी के सामने किसी भी दूसरे की कही हुई ऐसी बात को नहीं कहना चाहिए, जिससे सुननेवाले के मन में उसके प्रति द्वेष पैदा हो। प्रेम बढ़ाने, द्वेष मिटानेवाली बात ही बोलनी चाहिए। कठोर वाणी से किसी का दिल नहीं दुखाना चाहिए। किसी को ताना नहीं मारना चाहिए। किसी को शाप नहीं देना चाहिए। अपने को भी बुरा-भला नहीं कहना चाहिए। जहां तक हो सके, पर चर्चा और जंग चर्चा से बचना चाहिए। ऐसी ही बात सोचनी, कहनी चाहिए, जिससे किसी का हित हो। मीठी वाणी दूसरों को आनंद, शांति देती है। ऐसी वाणी में भगवान का आशीर्वाद होता है और इससे अपना तथा सबका कल्याण होता है।

मन और वाणी का गहरा संबंध है। मन में बनने वाले विचार वाणी से शब्द का रूप लेकर निकलते हैं। मन और वाणी

शुद्ध हो तो विचार शुद्ध होते हैं और आचार भी। लेकिन उसके लिए मन और वाणी का बचाव करना पड़ता है। कोई बुरा विचार पहले मन में प्रवेश करता है। वहां वह पलता, बढ़ता है। उस विचार पर मन मनन करता है और उस विचार के अनुकूल प्रसंगों में वाणी के रूप में बाहर आता है। वह शब्द खराब हो तो कइयों का मन दुखाता है, कई शत्रु बनते हैं। इसलिए ईर्ष्या, द्रोह, द्वेष, मत्सर आदि शत्रुओं का प्रवेश मन में होने नहीं देना चाहिए। मन के इर्द-गिर्द सद्विचारों की संरक्षक दीवार खडी करनी चाहिए।

ऊंचा बोलनेवाला आदमी हमेशा शेखी बघारता है, और जो गंभीर है वह शांत और विनम्रतापूर्वक बोलता है। कभी सोने की अंगूठी पीतल के घंटे की तरह आवाज करेगी ?

वाणी का बड़ा महत्व है शुभ वाणी से ही स्नेह बढ़ता है, अशुभ क्रूर वचनों से ही वैरभाव हो जाता है। नाम के साथ ही उसका भाव रहता है, वाणी के संग ही उसका अभिप्राय चलता है। तभी तो वाणी के निग्रह पर शास्त्रकारों ने अत्यधिक बल दिया है। तुम जान में अनजान में कैसे भी शुभ शब्दों का उच्चारण करो। तुम्हारा अन्त:करण पवित्र होगा, तुम सबके प्रिय बन जाओगे। इसीलिये शास्त्रकार बार-बार कहते है वाणी से भूलकर भी कभी अशुभ शब्द उच्चारण न करो। जो बोलो शुभ बोलो, भगवान के नामों का ही उच्चारण करो क्योंकि वे ही सबसे शुभ नाम हैं।

हर रिश्ते का बने रहना इसी बात पर निर्भर करता है कि आपकी बात दूसरे को बुरी न लगे। नए रिश्तों में मृदु भाषा और भी महत्वपूर्ण होती है। आपकी भाषा में जितनी मिठास होगी, आपसे बातें करनेवाले का आपसे बातें करने का उतना ही मन करेगा। चिल्लाकर बात करने से, गुस्से से बात कहने से, छोटी सी बात लड़ाई में परिवर्तित हो जाया करती है।

मीठे बोल मन की सुंदरता का प्रतीक होते हैं। अपनी मीठी भाषा से आप अपने घर और समाज, दोनों में सम्मानित होंगे। व्यक्तित्व बिगड़ते देर नहीं लगती लेकिन व्यक्तित्व निखारने में बहुत समय लगता है। किसी भी प्रकार की बात को अगर शांत व मीठे शब्दों से किया जाये तो उस बात का प्रभाव कुछ अनोखा ही होता है। कभी-कभी आपको ऐसा लगता होगा कि किसी ने किस तरीके से आपसे बात कही या इस प्रकार जोर से क्यूं कहा। यह बात तो धीमे स्वर में भी कही जा सकती थी। आपका ऐसा महसूस करना सही है, आपसे बात करते-करते कहीं उसमें यह बदलाव आया हो अर्थात आपकी ऊंची आवाज से उसे गुस्सा आया हो और उसने फिर आपसे हर बात जोर से कही हो। इसलिए यह बात ध्यान में रखें कि आपकी भाषा का रूखापन आपसे बात करनेवाले पर पड़ता है। अगर आपकी भाषा में मिठास होगी तो आपसे बात करनेवाले की भाषा भी आपकी भाषा में ढल जायेगी तथा आपका और उसका बात करने का ढंग एक ही हो जायेगा। हर बात को कहने का ढंग अलग जरूर होता है परन्तु जब वह मीठे स्वर में कही जाये तो बात प्रभावशाली बन जाती है। मीठी भाषा का अर्थ यह नहीं कि आप किसी की बुराई या निंदा मीठी-मीठी बातों से करें। मृदु भाषा आपके व्यक्तित्व को निखारती है, इसका मतलब यह नहीं कि आप किसीकी बुराई किये जा रहे हैं और सुननेवाले को भाषा में कोई रुचि है। बुराइयों से दूर रहकर ही आप अपनी भाषा को अच्छे ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं अन्यथा शेष लोग आपकी बुराइयां भी आपके पीछे करेंगे। मीठी मीठी बातें करती है लेकिन बुराइयां ज्यादा करती है।

जहां पर स्व-बचाव या स्वहित के लिए आक्रमण की प्रवृत्ति हो और इसलिए वाणी का खुलकर प्रयोग किया जा रहा हो, वहां तो न प्रेम बना रह सकता है और न मैत्री के टिकने की कोई शाश्वति है। ऐसे वातावरण में मन की प्रसन्नता भी

असंभव है।

पेट में दिया जानेवाला जहर सिर्फ खानेवाले को ही मारता है, परन्तु वाणी का जहर जो कानों में उंडेला जाता है, वह कई घरों को बरबाद करता है।

दुनिया में हर वस्तु जीर्ण होती है। शरीर को भी बुढ़ापा आता है। हर एक इंद्रिय शिथिल होता जाता है। आँखों से कम दिखता, कान से कम सुनना, हाथ-पांव कमजोर होने लग जाते हैं पाचनक्रिया कमजोर होने लगती है परन्तु सिर्फ जबान (जीभ) कभी कमजोर नहीं होती। मृत्यु शय्या पर भी जबान अपनी करतबें दिखाना कम नहीं करती। जबान की चंचलता की वजह से उसके पहरेदार (दांत) भी धीरे-धीरे हटने लग जाते हैं, परन्तु वह थकती नहीं। उसे कभी बुढापा आता ही नहीं है।

ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जो वाणी किसी के भी हृदय को चोट पहुँचानेवाला हथौड़ा न बने। वाणी किसी की भी बात काटनेवाली कैंची न बनें। वाणी किसी को भी मार देनेवाली जहर न बनें। वाणी किसी को भी चुभा देनेवाला कांटा न बनें। वाणी किसी को भी चीरनेवाला तीर न बनें।

सबसे अच्छी बात है तुम घर के बनो, घर से बढ़कर तुम पर के बनो, अपरिग्रह का संदेश देने वाले भगवान ने, कभी यह नहीं कहा कि तुम दर-दर के बनो।

कभी मत बोलो- १) असत्य वाणी, २) अश्लील वाणी, ३) अप्रिय वाणी, ४) भयप्रद वाणी, ५) गर्व-पूर्ण वाणी, ६) निरर्थक वाणी, ७) संदेहयुक्त वाणी।

छ: तरह के वचन नहीं बोलने चाहिए- असत्य वचन, तिरस्कार वचन, झकड़ते हुए वचन, कठोर वचन, अविचार पूर्ण वचन, शान्त हुए कलह को फिर से उभारने वाले वचन।

यदि कोई पूछे तो अपने लिए अथवा अन्य के अथवा दोनों के लिए स्वप्रयोजन अथवा निष्प्रयोजन, पापकारी एवं निरर्थक वचन नहीं बोलना चाहिए। न ही मर्म-भेदी वचन ही बोलना चाहिए।

हिंसा केवल शरीर से नहीं, हमारी वाणी से भी होती है

व्यक्ति का आचरण एक दर्पण के समान होता है। उसमें हर व्यक्ति अपना प्रतिबिंब दिखाता है। यदि नेता की सोच परिपक्व नहीं है, विवेक दृष्टि धूमिल है तो वह अपने पीछे चलनेवाले लोगों को गुमराह ही करेगा। प्रजातंत्र में किसी तरह यदि वह पद पा भी जाता है तो आचरण की कसौटी पर कुछ ही दिन में उसकी पात्रता-अपात्रता सिद्ध हो जाती है।

दरअसल, वाणी मनुष्य के व्यक्तित्व का पुर्जा-पुर्जा खोल कर दिखा देती है। हिंसा केवल शरीर से नहीं होती, वाणी से भी होती है। इस वाचिक हिंसा से नेताओं को बचने की आवश्यकता है। विवेकहीन मनुष्य पर जब सत्ता का मद सवार हो जाता है तो वह मदोन्मत्त हाथी सा, जो भी सामने पड़ता है उसे रौंदता चला जाता है। साधारण जनता की गुहार की सुनवाई नहीं होती और वह उच्छृंखल होकर अगला शिकार खोजने चल देता है।

राजनेता पारे के समान होते हैं। उन पर अंगुली रखने की कोशिश करो तो उसके नीचे कुछ नहीं मिलता। अधिकारियों के लिए एक आचार संहिता जरूरी है। निर्वाचन आयोग किसी भी प्रत्याशी के नामांकन से पहले उसकी मानसिकता, दृढ़ता, सार्वजनिक कल्याण की भावना आदि विशेषताओं की दृष्टि से एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण अनिवार्य करे।

रामराज्य की स्थापना ऐसे नेता ही कर सकते हैं जो निष्कलंक हो। तुलसीदास ने कहा- सब ते कठिन राजपद भाई।

क्योंकि अधिकार पाते ही- सहस बाहु, सुरनाथ, त्रिशंकू। केहिन राजमद दीन्ह कलंकू। यह सब शासक होने के मद से बच नहीं पाए और कलंकित हुए। इसलिए नसीहत है कि- नीति न तजिय राज पद पाए।

गांधीजी का सपना ऐसे रामराज्य का था, जहां पूर्ण प्रजातंत्र हो। जहां अधिकार, वर्ग, वर्ण, धर्म, लिंग पर आश्रित असमानताएं तिरोहित हो जाती हैं।

जीभ तो आपकी अपनी है और इस पर नियंत्रण भी आपको ही रखना पड़ेगा। हमारी एक जीभ की रक्षा ३२ पहरेदार करते हैं लेकिन जीभ का अगर गलत उपयोग कर लिया तो ३२ पहरेदार (दांत) भी संकट में पड़ जाएंगे। इसलिए गलत टिप्पणी न करें और न ही व्यंग्य में अपनी बात को पेश करें। किसी को आप खाने में ४ मिठाई भले ही न खिला सकें लेकिन आपके ४ मीठे बोल खाने को जायकेदार बना देंगे।

मधुर वचन - मीठे बोल मिश्री से भी मीठे होते हैं। सदा ही परस्पर मधुर वचनों का ही वार्तालाप करें, कडवे बोल पशुओं तक को अप्रिय लगते हैं। मेहमान के आगमन पर आतिथ्य सत्कार में तमाम मिठाई-फल और व्यवस्था रखी और मधुर शब्दों में संवाद नहीं किया तो सत्कार अधूरा होगा। कभी-कभी हंसी-मजाक में भी कहे कडवे वचन भावुक हृदय में जिंदगी भर के लिये कांटे से चुभ जाते हैं जिन्हें भूलना मुश्किल हो जाता है। किसी अस्वस्थ व्यक्ति का हालचाल मधुर नम्र शब्दों से पूछने से बीमार व्यक्ति में जीने का नया उत्साह और प्रेम जागृत हो जाता है।

मधुर वाणी से ही मनुष्य सहज भाषा बोल सकता है

आप कहीं सफर कर रहे हैं, सफर लंबा है और आपका सहयात्री जुबान बंद किए बैठा है, तब आपकी चुप्पी ध्यान में बदल जाती है। जब तक हम चुप रहते हैं, तभी तक लोगों के लिए रहस्यमय होते हैं, मुंह खोलते ही हमारे व्यक्तित्व का सच जाहिर हो जाता है। बोलते तो सभी हैं, पर अपनी बात को सही ढंग से दूसरे तक पहुंचाना, चंद शब्दों में ही अपनी बात समझा देना एक कठिन काम है। अक्सर लोग लंबे विशेषण लगाते हैं, संबोधन में समय खर्च करते हैं, पर यह नहीं बता पाते कि वह कहना क्या चाहते हैं।

प्रेम और विवाद की बातों का जल्दी अंत नहीं होता। महाकवि भवभूति ने उत्तर-रामचरितम में पर्णकुटी में विश्राम करते राम और सीता की मीठी बातों का संकेत किया है। दोनों बातें करते हैं और रात से सुबह हो जाती हैं। किमपि किमति मन्दं मासति योगात्। यशोदा भी कृष्ण को पालने में झुलाती हैं, तो कुछ - कुछ गाती रहती हैं- जोई सोई कछु गावे। ऐसा नहीं है कि बतरस केवल पढ़े-लिखे लोगों का ही काम है। कभी-कभी कोई गंवार देहाती अनुभव की ऐसी छौंक देता है कि आप दंग रह जाते हैं।

किसी आलोचक ने लिखा है कि नाटककार को यह बताने की जरूरत नहीं है कि अमुक पात्र झगड़ालू है, बस उसे रंगमंच पर खड़े होकर बकने-झकने दो। बात हमारे व्यक्तित्व की पहचान होती है। सिर्फ हां में हां मिलाना, या जी हुजूरी करना हमें खोखला बनाता है- पांडे जी तुम्हे गांव में रहना, हांजी हांजी कहते रहना। हमारी बोली में सच्चाई होनी चाहिए। हम प्रिय बोलें, हमारी वाणी में मधु हो। हवाएं माधुर्य टपकाएं, समुद्र भी मिठास बांटें। कृष्ण के मधुराष्टक में यह माधुर्य बिखरा पड़ा है। कृष्ण का चलना, बोलना, हंसना सब मधुर है। वह माधुर्य के अधिपति हैं। हमारी वाणी में जब यह माधुर्य उतरता है, तो हम मनुष्यता की सहज भाषा बोलते हैं। तब कोई पराया नहीं होता, सभी स्वजन हो जाते हैं।

मौन- मौन वाणी का ब्रह्मचर्य है। मौन से मानसिक पाप नहीं होता। मौन के कारण झूठ नहीं बोलोगे, असत्य भाषण नहीं होगा। मौन से भीतर की शक्ति बढ़ती है मौन से मन स्थिर होता है और माया के बन्धन से छूट जाते है। मौन का सबसे बड़ा लाभ कोई दुश्मन नहीं होगा। शत्रुता होती है बोलने से। असत्य और कटु बोलने से मौन श्रेयस्कर है।

जिसके पास जो पूँजी होती है, वह वही तो दूसरोंको देता है। सूर्य प्रकाश बाँटता है। चन्द्रमा चाँदनी बिखेरता है। तुम संसारको कड़वाहट देते हो? ऐसी वाणी बोलो कि उससे सर्वत्र मधुकी-अमृतकी वर्षा हो। वाणी सत्य, प्रिय और हितकारी होनी चाहिए। कटु सत्य भी मत कहो। तुम उसके कोई ठेकेदार हो? लेकिन प्रिय लगनेके लिए झूठ बनाकर भी मत बोलो। सच बोलो पर प्रिय बोलो। अप्रिय सत्य मत बोलो पर प्रिय झूठ भी मत बोलो, यह सनातन धर्म है। अनावश्यक मत बोलो, अवसरोचित बोलो। जैसे भोजनके समय जुलाबका वर्णन मत करो। भोजन के समय अशुभ समाचार मत कहो। दूसरेको उद्विग्न करनेके लिए मत बोलो। आत्मा एक ही है। जिसे हम दूसरा समझकर बोलते हैं, वह भी हम ही हैं। अत: हम जो देते हैं, वही लौटकर हमारे पास आता है। बोलनेसे पहले गाली मनमें आयेगी तब तो दूसरेको देंगे। अब गाली पहले किसे मिली?

मौन अभ्यास का विषय है। जीवन में कुछ समय मौन रखना चाहिए। उससे चिन्तन करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। रातको आखिरी शब्द प्रार्थना का और सुबह पहला शब्द प्रार्थना का है। इस बीच चिन्तन करना, ध्यान करना, अध्ययन करना, लेकिन बोलना नहीं, तब उसका चित्त पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे बहुत लाभ है। इससे रोज मरण का अभ्यास होता है। मनुष्य का रात का आखिरी समय मृत्यु का समय है। निद्रा यानी मृत्यु का एक छोटा-सा रूप है। जैसे नाटक का पूर्वप्रयोग होता है, वैसे ही निद्रा मृत्यु का पूर्वप्रयोग है। दिन की समाप्ति हो गयी, काम समाप्त हुआ, भगवान को समर्पण कर दिया, चिन्ता मुक्त हो गये, मौन ले लिया और भगवान का नाम-स्मरण करते-करते सो गये। वाणी की सार्थकता इसी में है कि वह आकाश में सीढ़ी बांधकर मनुष्य को उस स्थान पर चढ़ा दे जहां से वाणी का उद्‌गम हुआ है।

मौन एक व्रत है जो क्रोध, दुख, चिंता एवं अहंकार को मिटाता है। मौन जीवन में शक्ति संचय का श्रेष्ठ अनुष्ठान है। इसमें अपेक्षाकृत अधिक सत्य होता है। अधिक और अनर्थ बोलने से संघर्ष की संभावनाएं बढ़ जाती है। अत्यधिक कोलाहल में निर्वाक मौन व्याख्यान ही काम करता है। मौन अनेक प्रकार की समस्याओं का सरल समाधान है। यह एक अनुपम अस्त्र का काम करता है। मौन का दूसरा नाम है शांति। वैचारिक द्वंद्व और द्वेष मौन से सहजतापूर्वक शांत हो जाते हैं। मौन से व्यक्ति में सहनशीलता जाग्रत होती है जिससे क्रोध शांत होता है। मान-मंथन में मौन प्रभावकारी भूमिका का निर्वहन करता है। इससे अंतर्यात्रा में सहयोग तो प्राप्त होता ही है, यह आत्मानुभूति की संभावना भी बढ़ाता है। यही भविष्य में जनमानस में सदाचरण को जन्म देता है जो अंत में मंगलाचरण का प्रवर्तन करते हैं।

सूक्ष्म सत्य को पकड़ने की शक्ति भी मौन उत्पन्न करता है। इससे प्रज्ञापटुता बढ़ती ही है, कल्पना शक्ति भी विकसित होती है जिससे मनोबल का संवर्द्धन होता है। हमारा मन पारे की तरह चंचल होता है। एकाग्रता चंचलता को स्थिर करती है। इसमें मन की आंखें अपनी भाषा में बोलती हैं। इतना ही नहीं, प्रेम की अभिव्यक्ति में मौन अद्वितीय है। वाणी से कुछ भी न बोलने के बावजूद मौन अभिव्यक्ति किसी बड़े व्याख्यान से कम नहीं है। इसमें भाषा का शुभ संस्कार उत्पन्न होते हैं।

जिनके जीवन का लक्ष्य आत्मिक विकास करना होता है, मौन व्रत से उनके बड़े संघर्ष शून्य हो जाते हैं। इससे

मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। मौन में वह शक्ति निहित है जो बड़े से बड़े अहंकार को धूल में मिला देती है। यदि किसी मनुष्य द्वारा जाने-अनजाने एक निर्बल के प्रति कटु शब्द का प्रयोग हो तो निर्बल का मौन रहना कठोर वाणी से भी अधिक प्रभाव डालता है। यदि क्रोध, दु:ख, चिंता एवं अहंकार से दूर रहना हो तो संयम से काम लें और मौन हो जाएं। अपनी वाणी को विश्राम देना, सिर्फ मस्तिष्क से काम लेना और किसी से कुछ न कहना मौन का ही लक्षण है। बहुत सी इच्छाएं हमारे मन में आती हैं, परंतु कितने की पूर्ति होती है? अगर हम इन इच्छाओं को सभी के सामने प्रकट करते रहें तो दूसरे उनका मजाक बनाएंगे।

इच्छाएं दु:ख और सुख दोनों का कारण हैं। वस्तुओं और दूसरे जीवों से तभी सुख मिलता है जब उसकी इच्छा फलीभूत होती है। यदि हम किसी वस्तु की कामना नहीं करेंगे तो प्राप्ति का सुख कैसे मिलेगा। यदि व्यक्ति प्यासा है तो उसे पानी की इच्छा करनी होगी। यह इच्छा उसके अंतर्मन में उठेगी। पहले वह मौन होगा फिर समय पर इच्छित वस्तु की मांग वाणी द्वारा करेगा और उसे उसकी प्राप्ति होगी। यह मौन और इच्छा का संयोग है जो आंतरिक शक्ति है। दोनों के मिलन से ही सुख प्राप्त होता है।

मौन से व्यक्ति का स्वभाव कुछ इस तरह रूपांतरित होता है कि किसी की पीड़ा देखकर उसका हृदय द्रवित हो जाता है, किंतु विपत्ति आने पर उसमें चट्टान की भांति दृढ़ता भी बरकरार रहती है। मौन से मन को अपूर्व शांति और आनंद प्राप्त होता है। किंतु मौन साधने में हमारी कुछ स्वाभाविक आदतें बाधा उत्पन्न करती हैं। सबसे बड़ी बाधा उत्पन्न करती है- ज्यादा बोलने की आदत। हम कितना अनावश्यक बोलते हैं, हमारी आधे से ज्यादा शक्ति जुबान से बोले गए शब्द ले जाते हैं। मौन साधने के लिए जरूरी है, अकारण किसी से वार्तालाप न करें, अकारण जिज्ञासा प्रकट न करें, व्यर्थ के सवाल न उठाएं।

मौन साधना से अभिप्राय है कि जितना आवश्यक है, उतना ही बोलें। इस प्रकार के अभ्यास से आध्यात्मिक ऊर्जा का संग्रहण एवं संवर्धन होने लगता है और आप अनावश्यक आदतों से छुटकारा भी पा लेते हैं। मौन हमें स्वयं से जोड़ने की कला है, मौन हमारी आंतरिक शक्ति को जागृत करके हमें उत्तम स्वास्थ्य व आरोग्य प्रदान करने में भी मददगार साबित होता है, तनाव, क्रोध और अशांति में हीलिंग टच देकर अमृत की भांति कार्य करता है।

मौन और शांति का आध्यात्मिकता से गहरा संबंध है। वाचालता और अशांति से कहीं ज्यादा बातें मौन अपने आप ही करता है। यह मौन ही है जो हर तरह के वातावरण को अप्रतिम बनाते हुए उसे सुकूनभरी शांति से भर देता है। वैसे भी सांसारिक व्यक्ति हो या संन्यासी, हरेक का लक्ष्य और गंतव्य शांति प्राप्त करना ही है।

गौतम बुद्ध को जब आत्मबोध हुआ तो वह मौन हो गए और एक सप्ताह तक मौन रहे। लोगों ने तथागत से याचना की, प्रार्थना की। उनसे निवेदन किया कि जो उन्हें साधना की गहराई में उतरकर अनुभूति हुई है, उसे अभिव्यक्त करके हमें कृतार्थ करें। तब बुद्ध अपना मौन तोड़कर बोले- जो जानते हैं, वे मेरे कहने के बिना भी जानते हैं और जो नहीं जानते वे मेरे कहने पर भी नहीं जानेंगे। वस्तुत: मौन जीवन को सार्थक बनाने का मौलिक तत्व है। मौन अंतर्चेतना से जुड़ने का उपाय है।

आमतौर पर यह भी देखने में आता है कि कई लोग मौन से डरते हैं। असलियत में वे भीतर से इतने उद्वेलित होते हैं,

उनके अंदर इतना अंतर्द्वंद्व चलता रहता है कि यदि वे मुखरित ना हों तो उन्हें घबराहट होने लगती है। ऐसे व्यक्ति अपनी चेतना के बजाय अपने मन के विचारों से जुड़े हुए होते हैं। विचारों की हलचल उन्हें स्वबोध से जुड़ने नहीं देती। जबकि बुद्ध कहते हैं, जब शब्दों या विचारों का अंत होता है तब सत्य का बोध होता है। तथागत इस बात पर विशेष बल देते हैं कि जब आप मन के शोर को, मन में क्षण-प्रतिक्षण उठनेवाले संकल्पों-विकल्पों को, विचारों की श्रृंखला को होशपूर्ण होकर देखने लगते हैं, तो आपके भीतर मौन का सृजन होने लगता है।

जीवन में मौन का महत्वपूर्ण स्थान है। साधना में मौन, संसार में कोई परेशानी आयी तो इस मौन के चलते साधनाये निर्बाध रूप से चलती है जीवन सुखमय होता है। भगवान महावीर का मौन सर्वोत्तम था उनके जैसा मौनी साधक विश्व में कोई नहीं हुआ। उनकी इस एकाग्र साधना से ही उन्हे पूर्ण कैवल्यज्ञान प्रकट हो गया। १२ वर्षों तक मौन रह कर यह ज्ञान प्रकट हुआ।

मौन से जीवन में लाभ है, अनर्गल बातें नहीं होती है। सीता वनवास जाते समय मौन रही अगर कैकयी के सामने कुछ बोल जाती तो रामायण ही नहीं होती और द्रौपदी राजसूय यज्ञ में दुर्योधन के फिसल कर गिरने पर यह हृदय विदारक वाणी नहीं बोलती कि **अन्धे का पुत्र अन्धा** तो महाभारत नहीं होती।

चुप रहना समझदारी है, पर मौन रहकर अन्याय सहना अपराध है

एक चुप सौ को हराए, एक चुप सौ को सुख दे जाए। और इसीलिए हम कई बार चुप रहते हैं, मौन रह जाते हैं क्योंकि यह सच भी है कि एक मूर्ख व्यक्ति के सामने मौन रहने से अच्छा उत्तर और कुछ भी नहीं हो सकता। परंतु जीवन में सदैव चुप रहना उचित नहीं होता है। गीता में कहा गया है- जहां पाप का बल बढ़ रहा हो, जहां छल-कपट हो रहा हो वहां पर मौन रहने से अधिक गंभीर अपराध और कुछ नहीं हो सकता।

कभी-कभी हम सबके जीवन में एक समस्या अवश्य आती है कि हम किसी ताकतवर के समक्ष मौन हो जाते हैं। प्राय: उसकी ताकत से बचने के लिए हम मौन रह जाते हैं। मानते हैं कि ऐसा करने से हम एक विवाद से बच जाते हैं। हो सकता है कि एक संघर्ष से भी बच जाते हों। परंतु ऐसा बचाव देर-सबेर एक बड़े संघर्ष को जन्म दे देता है। हमारा मौन रहना अनजाने में उस व्यक्ति का समर्थन बन जाता है और वह अपने आपको और अधिक शक्तिशाली अनुभव करने लगता है। यहीं से हमारा दमन प्रारंभ हो जाता है। एक के बाद एक, हम अन्याय में अनचाहे रूप से सम्मिलित होते चले जाते हैं जो आगे चलकर बड़े टकराव का कारण बनता है।

यह समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि ऐसी कौन सी बात है जो विरोध करने से रोकती है। यह सामनेवाले की शक्ति तो नहीं है जो हमें मौन रहने को विवश करती है। क्या हम मन से डर को निकालकर अन्याय का विरोध नहीं कर सकते? आखिर वह हमारा क्या और कितना बिगाड़ सकता है? ऐसा करने से हमारा मन कितना मुक्त, कितना हल्का अनुभव करेगा। गीता में भी कहा गया है, अन्याय सहना अन्याय करने से ज्यादा बड़ा पाप है।

आज समाज में यही तो हो रहा है, जहां विरोध करना चाहिए वहां कोई बोलता नहीं। कोई बलशाली व्यक्ति कुछ भी गलत बोल दे तो उसके सामने विरोध करने की किसी की हिम्मत नहीं होती। उसके समक्ष हम कमजोर पड़ जाते हैं।

दूसरी ओर हम बोले चले जा रहे हैं, जहां बोलने की कोई आवश्यकता ही नहीं। और अन्याय होता देख चुप रह कर बच निकलते हैं।

इतिहास साक्षी है कि पापियों की उद्दंडता ने संसार को उतनी हानि नहीं पहुंचाई जितनी कि सज्जनों के मौन ने पहुंचाई। यदि कोई मूर्ख बोल रहा है तो मौन रहना उचित है, परंतु यदि कहीं छल हो रहा है, अपराध हो रहा है तो उसके विरोध में आवाज उठानी चाहिए, क्योंकि आपके लिए न सही आनेवाली पीढ़ी के लिए यह मौन घातक सिद्ध हो सकता है।

मौन से हमारा आशय मन का शांत होना है। मन के शांत होते ही हमारे विचार भी थम जाते हैं। मस्तिष्क शांत हो जाता है और हमें एक दिव्य अनुभूति होने लगती है। मौन के द्वारा हम अपनी ऊर्जा कम होने से रोक सकते हैं और अपनी मानसिक शक्तियों का विकास कर सकते हैं। एक साधक के लिए मौन रहना एक अनिवार्य स्थिति है, क्योंकि साधक की साधना में मौन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसीलिए कहा गया है कि साधक को मौन जप करना चाहिए, ताकि उसे फल प्राप्त हो सकें। जप का संबंध जीभ से कम और मन से अधिक होता है। मौन की स्थिति में ही मंत्र का जप करने से मंत्र सिद्ध होता है और साधक अपने श्रेष्ठ पथ की ओर अग्रसर होता है। मंत्र जप का प्रभाव या असर नहीं दिखाता है तो उसके पीछे यह कारण है। चाहे कितनी भी संख्या में जप किया जाए, परंतु यदि वाणी पर नियंत्रण नहीं होगा तो वह जप प्रभावशाली नहीं होगा। मौन का मतलब चुप रहना नहीं है बल्कि अपने मस्तिष्क को अनर्गल विचारों से मुक्त करना है। अक्सर मनुष्य अधिक बोलकर अपनी मानसिक ऊर्जा का क्षय करते हैं, जो ठीक नहीं है, परंतु इसका मतलब यह भी नहीं कि वे चुप ही रहें और मन की व्यथा को सहते रहें। यानी बोलना चाहते हैं और बोलते नहीं हैं। इससे तो अच्छा है कि आवश्यकतानुसार बोलकर अपने मन को हल्का कर लिया जाए, जिससे आप मानसिक रूप से कुंठित न हों। मौन में मन शांत, सरल एवं विकासशील रहता है और अच्छे विचारों को आसानी से ग्रहण कर पाता है।

मरने वाले को जीवन दान देने वाली औषधि है संजीवनी। पर वह कहीं भी मिलती नहीं। वह एक सिर्फ कल्पना है। सम्यक जीवन जीना ही संजीवनी है। सम्यक जीवन यानि संयमित जीवन। मन और इन्द्रियों का संयम साथ ही वाणी का संयम। मौन वाणी का संयम है। इसी को संजीवनी कहा गया है। मौन प्रकृति है और अति भाषण विकृति है। प्राणी जागृतवस्था में अनेक क्रियायें करने के बाद निद्राधीन हो जाता है। वहां भी मौन ही होता है। मौन स्वाभाविक स्थिति है। शब्द में गति उत्पन्न होती है। वह कहीं न कहीं रोकनी पडती है। जग आज प्रगति कर रहा है लेकिन वह विनाश की खाई की ओर अग्रसर है तब जग की स्थिति भी मौन ही होगी। मौन में बडी शक्ति समाई होती है। शक्ति प्राप्त करने के लिये अतिभाषण करने की बजाय मौन रहना अधिक बेहतर है। मौन आत्मिक शान्ति प्रदान करता है जो शारीरिक स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक है। बिना आत्मिक शान्ति के शारीरिक शान्ति की कल्पना करना भी व्यर्थ है। इसलिये आयुर्वेदाचार्य ने आत्मा, इन्द्रिय, मन को प्रसन्नता का स्वास्थ्य का द्योतक कहा है - प्रसन्नत्मेन्द्रिय मन: स्वस्थ इत्यभिधीयते (चरक)। अधिक बोलने से मानसिक शान्ति खंडित होती है, काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि मनोभावों पर नियन्त्रण कम हो जाता है। हमारे ऋषि- मुनियों ने मौन की महिमा को बखूबी पहचाना था और आत्मसात किया था। मौन अवस्था में ही हम अपनी ईश्वर प्रदत्त शक्तियों को पहचानते हैं।

मौन अनन्त की भाषा है। आपद में मौन रहना अधिक श्रेयस्कर है। किसी के प्रश्न किए बिना न बोले तथा कोई व्यक्ति अन्याय से कोई प्रश्न करता हो तब भी न बोले। मेधावी विद्वान पुरुष मूर्ख पुरुष के समान व्यवहार करे। क्रोध को जीतने में मौन जितना सहायक होता है, उतनी और कोई भी वस्तु नहीं। बोलना एक कला है, मौन उससे भी ऊंची कला है।

जहां नदी गहरी होती है वहां जल-प्रवाह शांत तथा गंभीर होता है तो नदी मौन ही रहती है। चीटीं से अच्छा कोई उपदेश नहीं देता, और वह मौन रहती है। जैसे घोंसला सोती हुई चिड़ियों को आश्रय देता है, वैसे ही मौन तुम्हारी वाणी को आश्रय देगा। नारी का मौन मनुष्य की वाणी के समान होता है, इससे कौन इन्कार कर सकता है ? नारी में मौन सर्वोत्तम आभूषण होता है। भय से उत्पन्न मौन पशुता और संयम से उत्पन्न मौन साधुता है।

मौन का अर्थ कर्म का अभाव, जड़, अकर्मण्यता, आलस भाव नहीं है। वह विचार या वितर्क से खाली रहना नहीं है। वह विधेयात्मक, भाव पदार्थ है। वह परा शांति है। मौन निद्रा के समान है। यह ज्ञान में नई स्फूर्ति पैदा करता है। मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक्शक्ति होती है। मौन रहो और अपनी सुरक्षा करो। मौन कभी तुम्हारे साथ विश्वासघात नहीं करेगा। मौन सम्मतिलक्षणम्। (मौन सम्मत्ति का चिन्ह है।) मौन सर्वोत्तम भाषण है। अगर बोलना ही हो, तो कम से कम बोलो।

वाणी का वर्चस्व रजत है, किन्तु मौन कंचन है। विधाता ने मौन अर्थात् चुप रहने को ही अज्ञानता का ढक्कन बनाया है। यह मनुष्य के अधीन है तथा इसमें और भी अनेक गुण है। यही ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों का आभूषण है। मौन हमारे पवित्रतम् विचारों का देवालय है। मौन निद्रा के समान है। वह विवेक को ताजा करता है। मौन और एकान्त आत्मा के सर्वोत्तम मित्र हैं।

नहीं बोलने के नौ गुण- १) नहीं बोलने से मर्यादा का पालन होता है। बड़ों के सामने नहीं बोलना, बड़े कोई शिक्षा देवें तो मौन भाव से सहर्ष स्वीकार करना। २) जो मनुष्य नहीं बोलता है उसको पश्चाताप नहीं करना पडता है। ज्यादा बोलने से पश्चाताप करने का मौका आता है। ३) नहीं बोलने से वादविवाद नहीं बढ़ता है, बोलने से बढ़ता है। ४) कम बोलने से बैर विरोध नहीं होता है। ५) असत्य वचन नहीं निकलता, शिष्टाचार का पालन होता है। ६) क्रोध नहीं आता। ७) क्लेश नहीं बढ़ता। ८) भाषा संबंधी कर्म बंधन रुक जाता है। ९) विलक्षण है, समझदार है, उसकी छाप पड़ती है।

मौन साधना का रहस्य- मौन वाणी को पवित्र करता है। मौन ही वाणी को संशोधित करने की परम उच्च साधना है। वाणी और शब्दों के दुरूपयोग से हमारी वाणी नष्ट हो जाती है। वाणी के संयम के लिए मौन व्रत की साधना का विधान है। मौन सर्वोत्तम भाषण है। कम से कम बोलने का प्रयत्न करो। यदि एक शब्द से बात बन जाए तो दो शब्द मत बोलो क्योंकि बोलने से शक्ति नष्ट होती है। मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक्शक्ति होती है। हर व्यक्ति जानता है कि संसार का सबसे महत्वपूर्ण कार्य भी मौन के साथ ही होता है- वह है मनुष्य की विदाई। आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिये तो मौन आवश्यक है ही, व्यावहारिक जीवन में भी मौन उतना ही आवश्यक है। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि मौन अनर्थ को जन्म लेने से रोकता है। मौन कभी भी किसी को भी हानि नही पहुंचा सकता, क्योंकि परिवार में, समाज में, देश में विश्व कलह, लड़ाई आदि का प्रारम्भ वाणी से ही होता है। एक दूसरे को भला-बुरा कहने पर ही संघर्ष की शुरूआत होती है तथा लोग उत्तेजित होकर ही अकृत्य करते हैं। परन्तु जब मौन का

आलम्बन मिल जाता है तो मुख से न गलत शब्दों का प्रयोग होता है, न संघर्ष की स्थिति पैदा होती है। मौन द्वारा ही हम होने वाले अर्थ के अनर्थ, वचन के अनर्थ, क्रिया और प्रतिक्रियाओं के अनर्थ से बच सकते हैं। मौन में भी एक संकेत है, जिससे हम दूसरों को पढ़ सकते हैं, क्योंकि मौन ही ज्ञान का लक्षण है। मौन ही महामानव होने का प्रमाण है। अधिक बोलना, अधिक आलाप, अधिक वाचालता मूर्खता की पहचान माने गये हैं तथा ये अशांति और क्लेश के कारण है। मौन से शक्ति और शांति का सर्जन होता है तथा अशान्ति के विकल्पों का विसर्जन होता है। मौन अर्थात (मौ) मोह नहीं करना, किसका मोह न करना ? मैं का मोह, अहम का मोह होता है वही व्यक्ति मुख को खोलता है, क्योंकि मैं का मोह प्रतिकूल प्रसंग को देखकर प्रतिकूल बात को सुनकर मौन को भंग किये बिना नहीं रह सकता। अत: मौन सूत्र हमें प्रेरणा देता है कि मैं का मोह छोड़ो। मैं का मोह मोक्ष का भी बाधक है, अवरोधक है। मौनिन: कलहो नास्ति:- मौन से कलह, क्लेश, लड़ाई, झगड़ा, तू-तू-मैं मैं नहीं होता, यह नितान्त सत्य है। मौन में शक्ति है, ऊर्जा है। नहीं होने वाला कार्य भी हो सकता है। पर शर्त है मौन। केवल वचन का मौन हीं नहीं अपितु मन का मौन और काया का मौन भी आवश्यक है। जब ये तीनों मौन एक साथ होते हैं तभी सफलता पांव चूमने लगती है। संसार की वासना को तिलांजलि देकर आत्म उपासना में संलग्न होने के लिये बाह्य व आंतरिक स्वाध्याय मौन, तपस्या, सेवा, ध्यान, विनय और तप को आलम्बन रूप माना गया है। अल्प व मितभाषी अप्रमत व्यक्ति ही अपने समय व संयम को सुरक्षित रख सकता हैं। जो मौन के महत्व को समझ लेता है, वह दूसरों के द्वारा नमनीय बन जाता है, क्योंकि मौन का विपरीत नमो ही बनता है।

मौन मानवजाति के लिए कल्याणकारी है। मौन सतत वाणी है, कार्य का परम शक्तिशाली रूप है। मौन भाषा का नित्य प्रवाह है, जिसमें शब्द बाधा उत्पन्न करते हैं। मौन वह अवस्था है जो वाणी एवं संकल्प से परे है। मौन सर्वोपरि उपदेश है। मौन ही गुरु है, शिष्य है, साधक है। मौन वाणी तथा कार्यों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। मौन सर्वोत्तम एवं परम शक्तिशाली दीक्षा है। गुरु का मौन सर्वोच्च स्वर में दिया गया उपदेश है। मौन ही उत्कृष्टतम उपलब्धि है।

शब्द- शब्द ब्रह्म है, ऊर्जा है, शक्ति है। शब्द नित्य है, शब्द नाश नहीं होता, वह आकाश मंडल में बिखर जाता है, किसी यन्त्र विशेष से शब्द को बिखरने दें तो चाहे जहाँ से चाहे जहाँ की बातें सुन सकते हैं। इस प्रकार भाव नित्य है, हम अपने मन में जैसी भावना करते, ऊहापोह करते हैं, वैसे ही वहाँ का वायुमण्डल बन जाता है। हमारे विचार ही प्रभु की प्रार्थना हैं, हम निरन्तर जैसे विचार करते रहेंगे, वैसे ही भावना बनेगी। तद्नुरूप ही फल प्राप्त होगा। तभी तो बार-बार कहा गया है- आचार विचार सदा शुद्ध रखो। बुरी बात मन से भी मत सोचो। तुम जैसी ही बातें सोचोगे, अपने आस-पास का विचार मण्डल भी वैसा ही बना लोगे। कार्य जितना ही उत्कृष्ट होगा, उसके भाव भी उतने ही स्थायी होंगे। बड़े-बड़े तीर्थों में महापुरुष रहते थे, नित्य ही सत्संग होता रहता था। वेदाध्ययन, शाक्त विचार, सदाचार पर वाद-विवाद भाँति-भाँति के यज्ञ याग होते रहते थे। उनकी शुद्ध भावना अब तक विद्यमान हैं। अब तक वहाँ जाने से चित्त शांत होता है, मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। इसलिये जिस प्रकार काल का और पात्र का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार देश का भी प्रभाव पड़ता है।

हृदय अगर स्नेह से भरा हो तो मुंह से निकलनेवाले शब्द अमृत की तरह लगते हैं परंतु हृदय में अगर अहंकार की ज्वाला

धधक रही हो तो मुंह से निकलनेवाले शब्द चिंगारी की तरह निकलते हैं।

शब्दों को नियंत्रण में रखने से समय भी नियंत्रण में रहता है - शब्दों की उत्पत्ति दैविक और इनका स्वरूप आध्यात्मिक समझा जाता रहा है। एक मान्यता के अनुसार भगवान शिव के डमरू से उत्पन्न ध्वनियों को एक-एक कर सांकेतिक रूप से लिपिबद्ध किया गया और इस तरह से अक्षर बने। पाणिने के व्याकरण अष्टाध्यायी के १४ मूल सूत्र भी डमरू के स्वरों की ही देन माने गए हैं। अंग्रेजी में शब्द के समानार्थी वर्ड के मायने यीशु और बाइबल का संदेश भी होता है। ईसाई धारणा है कि शब्द दिल से उपजते हैं, कयामत के दिन हर किसी को अपने बोले शब्दों का हिसाब देना पड़ता है और उसे सद्गति या अधोगति मिलती है।

शीर्ष वैज्ञानिक ग्राहम बेल की शब्दों के अविनाशी स्वरूप में अटूट आस्था थी। इसका उल्लेख सुविदित लेखक नेपोलियन हिल ने अपनी पुस्तक दि लॉ ऑफ सक्सेस में किया है। उनकी राय में आज तक वैज्ञानिकों-विद्वानों ने जो भी कहा, सोचा और प्रतिपादित किया, वह ब्रह्माण्ड में कंप्यूटर चिप की भांति स्थायी तौर पर बरकरार रहता है। उचित पद्धति अपनाते हुए ब्रह्मांड में भरे उस ज्ञान का आह्वान संभव है। यों भी, विज्ञान के अनुसार सुने गए शब्द यानी ध्वनि कभी नष्ट न हो सकनेवाली ऊर्जा का एक रूप है।

लोकजीवन में शब्द के मायने भावों, विचारों के संप्रेषण का माध्यम है, किंतु विज्ञान और अध्यात्म दोनों की दृष्टि में शब्द गरिमामय, चिरस्थायी, आराध्य अस्मिता हैं। अत: इनका निरादर प्राकृतिक विधान की अवहेलना है और इसीलिए दंडनीय है। शब्द को विचार का वाहन या इसका मूर्त रूप भी मान सकते हैं। खलील जिब्रान ने कहा कि विचार यानी शब्द का अमूर्त रूप इहलोक की अस्मिता नहीं बल्कि अंतरिक्ष का पक्षी है। इसलिए यह अथाह सामर्थ्य से परिपूर्ण है। शब्दों में बिगड़ी हुई बात को बनाने, बीमार को स्वस्थ करने, मृतप्राय व्यक्ति में प्राण फूंकने, आत्महत्या की ठाने व्यक्ति को बचा डालने, टूट चुके परिवार को जोड़ने की प्रचंड शक्ति है। वहीं, नकारात्मक स्वरूप में शब्द उलटवार करते हैं। इनका दुष्प्रयोग चाकू-तलवार से ज्यादा गहरा जख्म करता है। यह बड़ी आसानी से नफरत और गलतफहमियां फैला देता है। हमेशा के लिए वैमनस्य उत्पन्न कर देता है।

क्षणिक तुष्टि के लिए या दूसरों पर हावी रहने की चाह में शब्दों के अनुचित, अत्यधिक या अनर्गल प्रयोग से न केवल हम ऐन वक्त पर इनसे लाभ पाने से वंचित रहते हैं बल्कि अपनी प्रतिष्ठा भी खोते हैं। शब्द जीवंत अस्मिताएं हैं और हमारे मस्तिष्क की कार्यप्रणाली की झलक पेश करते हैं। जो जैसा बोलता रहता है वही बन जाता है। शब्दों को नियंत्रण में रखकर बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है, भविष्य को संवारा जा सकता है। शब्दों का समादर करेंगे तो आपका कहा-लिखा भी दूसरों के सिर-आंखों पर रह सकता है।

हर बात सोचने की तो होती है, पर हर बात कहने की नहीं होती। इसलिए व्यवहार को प्रभावी बनाने के लिए शब्दों का चयन हमेशा सावधानी से करें। बुद्धिमान सोचकर बोलता है और बुद्धू बोलकर सोचता है और इससे अधिक फर्क नहीं है, बुद्धिमान और बुद्धू में। इसलिए बोलने में अपने शब्दों का चयन सावधानी से करें। सतर्कतापूर्वक करें और सोच-समझ कर बोलें।

चुगलखोरी-पैशुन, निंदा, गिले-शिकवें-शिकायत

चुगलखोरी-पैशुन - जाने या अनजाने में पड़ चुकी चुगलखोरी की लत आदमी को कहीं का नहीं छोड़ती। यों औरतों पर तो चुगलखोरी का लांछन लगाया ही जाता है। मगर पुरुष भी अपनी कलाकारी दिखाने में पीछे नहीं रहते। दूसरों की छिछोलेदार बातों में उसे आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है लेकिन ये क्षणिक सुख गर्व और आनंद चुगलखोर को एक ऐसे मोड पर ला खड़ा करते हैं कि वह सबके लिए अविश्वास का पात्र बन जाता है। सब उससे बचना, कन्नी काटकर चलना चाहते हैं और देखते-ही-देखते वह अलोकप्रियता के गर्त में डूब जाता या डूब जाती है।

चुगलखोरी एक ऐसी लत है जो आसानी से पिंड नहीं छोड़ती है। अत: अच्छा हो इस इल्लत से शुरू से ही बचें। किसी की बात इधर से उधर पास करने से पहले जरा सोचें। यदि कोई आपके बारे में ऐसा करें तो कैसा लगेगा ? किसी की कमजोर नस पर हाथ रखने से पूर्व अपनी भी कमजोरियों और उनके सार्वजनिक होने से पहुंचनेवाली पीड़ा का अहसास कर लें तो शायद चुगलखोरी से दूसरों को पहुंची पीड़ा की अनुभूति हो सके।

आपकी एक चुगलखोरी किसी का घर तोड़ सकती है। किसी की सामाजिक प्रतिष्ठा को दाग लगा सकती है, किसी के लिए अपमान का सबब बन सकती है, किसी पर अश्लील लांछन लगा सकती।

मजाक में ही सही पर अक्सर यह कहा जाता है कि यदि कोई बात हमको किसी क्षेत्र में फैलानी हो तो उसे किसी महिला के कान में डाल दीजिए। बस बात ही बात में यह बात सबको मालूम हो जाएगी। क्योंकि यह माना जाता है कि कितनी ही गोपनीय बात हो, महिलाएं अधिक समय तक उसे अपने मन में नहीं रख सकती हैं और किसी न किसी से उसकी चर्चा अवश्य कर बैठती हैं। बहुत समय चुगलखोरी से असंगत, अविश्वसनीय, अतार्किक बातें सुनकर हृदय को कलुषित कर देती है। हालांकि ऐसा सब महिलाओं के लिए सच नहीं है। अधिकतर महिलाएं गंभीर प्रकृति की होती हैं और अपने तथा दूसरों के भेद केवल अपने तक ही सीमित रखना भली-भांति जानती हैं। जिससे दूसरों की निगाहों में उनकी छवि एक गरिमामय महिला की अंकित रहती है।

कुछ महिलाओं का सचमुच तब तक खाना हजम नहीं होता है जब तक कि वे एक-दूसरे की बातें इधर-उधर बतला नहीं देती हैं। इससे प्राय: एक-दूसरे के प्रति मतभेद भी उत्पन्न हो जाते हैं।

अगर आप दूसरों की विश्वसनीय बनी रहना चाहती हैं, तो कुछ गुणों को अपने में समावेश करना चाहिए। न किसी की बुराई करने में रुचि लें और न ही किसी की बुराई सुनने में। यदि किसी ने अपनी कोई गोपनीय बात बताई है तो उसे अपने तक ही सीमित रखें। यदि आप अपनी कोई गोपनीय बात किसी को बताने जा रही हैं तो यह विचार कर लें कि आप की सखी किसी बात को इधर-उधर फैलाने के लिए तो नहीं जानी जाती है और वो गोपनीय और प्रामाणिक है ना। शालीनता का दामन न छोड़ें। यह एक महान गुण है, जो आपको एक गरिमामय महिला की छवि प्रदान करेगा।

इधर-उधर करनेवाली महिलाओं की उपेक्षा करना ही ठीक है। उनसे बस मतलब की बात ही करें और अपने काम से काम रखें। उनसे ज्यादा घुले-मिले न। किसी की सुनी-सुनाई बातों पर यकीन करके किसी के बारे में कोई राय न बनाएं, जब तक कि उसके व्यवहार से खुद परिचित न हो जाएं। चुगली खाना एक बहुत बुरी आदत है। इससे बडे-बडे फितर और फसाद पैदा होते है। मामूली सी चुगली कभी-कभी दो इन्सानों के बीच इतनी तल्खी पैदा कर देती है कि वह एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। इसी चुगलखोरी से बहुत से खानदान बर्बाद हो जाते हैं।

चुगलखोरी करनेवाले शख्स को हर कोई हिकारत की नजर से देखता है और जलील समझता है। याद रखें जैसे झूठ के पांव नहीं होते इसी तरह चुगलखोरी की भी कोई हैसियत नहीं होती। एक वक्त वह दो इंसानों को लड़ाने में कामयाब हो सकती है, मगर जब वह दोनों मिल जाते हैं और दिल साफ कर लेते हैं तो चुगलखोर का भरम खुल जाता है और हमेशा के लिए दोनों की नजरों में गिर जाता है। अगर कोई शख्स तुमसे किसी की बुराई करे तो उसे रोक दो। साफ कह दो कि मैं सुनना नहीं चाहता। इस तरह तुम खुद भी और उस शख्स को भी दोजख की आग से बचा लोगे। हमारी वृत्ति, व्यवहार ऐसा हो कि हम निन्दक नहीं प्रशंसक बने। जीवन के विकास के लिये गुणों की प्रशंसा सीखना जरूरी है।

गिले-शिकवे-शिकायतें- अभी आंख पूरी तरह से खुली भी नहीं थी कि सभी से शिकायतों का आदान-प्रदान शुरू हो गया। अचानक मन में ख्याल आया, क्यों हम मनुष्यों में न पक्षियों की भांति चहचहाना है, न हवा की भांति लहराना, न प्रकृति की भांति गुनगुनाना है। केवल शिकायत, शिकायत और शिकायत। साधारण से साधारण वार्तालाप में भी मनुष्य हर दूसरे मिनट किसी-न-किसी की शिकायत करता है। हमें खुशी मिलती है, शिकायत करने में।

हम शिकायत करते हैं इस अपेक्षा से कि हमें सहानुभूति मिलेगी, लोग हमारे दर्द को समझेंगे, लेकिन होता इसका विपरीत है। सामनेवाला कुछ सुनता ही नहीं और पलटवार में अपनी शिकायतों का पिटारा खोल लेता है। वह सिद्ध करता है कि उसपर जो मुसीबतों का पहाड़ टूटा है, वह आपपर पड़ रहे कष्टों से अधिक भारी है।

हम शिकायत करते हैं क्योंकि ऐसा करने से हमें तृप्ति मिलती है, एहसास होता है अपने श्रेष्ठ होने का। अपनी कमी पर तो ध्यान जाता नहीं है, क्योंकि हम दूसरों के अवगुणों का अवलोकन करने में व्यस्त रहते हैं। अगर किसी ने कुछ अच्छा काम किया, तो तारीफ करने की बजाए हम उसकी निंदा करने लगते हैं और अगर कोई कुछ गलत कर दे तो राई का पहाड़ बनाने से भी नहीं चूकते। लगातार शिकायत भाव में रहने से हमारा बहुत नुकसान होता है। हमारे दिमाग का वह हिस्सा, जो सोचने-समझने का काम करता है, धीरे-धीरे निष्क्रिय होता जाता है। अगर कोई कठिनाई आती है तो उसको हल करने की बजाय हम दूसरे को इसकी वजह ठहराने लगते हैं, उसको भला-बुरा कहते हैं। जैसे कि किसी पर दोषारोपण करने मात्र से समस्या का समाधान हो जाएगा। स्वयं का कर्म करना छोड़ भाग्य पर ही निर्भर रह जाते हैं।

इस तरह की शिकायती प्रवृत्ति में जीने से नकारात्मक सोच उत्पन्न होती है जिससे दिल और दिमाग परेशान रहते हैं, क्षत-विक्षत होते हैं। धीरे-धीरे इसका असर हमारे शारीरिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। हम कई तरह की बीमारियों से ग्रस्त हो सकते हैं, क्योंकि शिकायत करने से मस्तिष्क की ही क्षति नहीं होती, वरन शरीर स्टेरॉइड एवं एड्रीनेलिन जैसे तनाव जनित हार्मोन जारी करता है जो हमारे रक्तचाप, रक्तशर्करा और मोटापे को बढ़ाने के लिए काफी हैं। इस कारण बीमार पड़ जाते हैं, तो आरोप लगाते हैं दूसरों पर कि लोग जलते हैं, नजर लगा देते हैं, इत्यादि-इत्यादि।

लगातार शिकायत करते रहने से किसी से भी हमारे संबंध मधुर नहीं रह पाते। अब भला हर वक्त शिकायत करनेवाले व्यक्ति से कौन बातचीत करना चाहेगा? सब दूर से ही निकल जाते हैं। किसी को रोना रोने की आदत है तो आप घंटों उसके साथ बैठकर रो तो नहीं सकते।

अगर हम शिकायती मनोवृत्ति से और शिकायतकर्ताओं से दूरी बना लें, उमंग-उत्साह को जवान रखें और अपेक्षाओं को कम से कम कर दें तो जीवन काफी सरल, सहज और प्रफुल्लता से ओतप्रोत हो जाएगा।

एक खूबसूरत गजल की दो पंक्तियां है- गिले शिकवे न दिल से लगा लेना, कभी मान जाना तो कभी मना लेना। क्या हम अपने संबंधों को लेकर ऐसा करते हैं? ज्यादातर लोग नहीं। जो करते हैं, यकीनन उनकी जिंदगी ज्यादा खुशनुमा होती

है। हमारा स्वभाव ऐसा है कि हम गिले शिकवे को जिंदा रखते हैं। कई बार तो यह सिलसिला दुश्मनी की हद तक पहुंच जाता है। हम किसी के प्रति अपनी शिकायतों को खींचने में माहिर होते हैं। इसे महीनों-बरसों नहीं, दशकों तक खींचा जा सकता है। इस मामले में दुनिया के सारे जीव जंतु हमसे बेहतर हैं। उनके पास भी मानव-सा मस्तिष्क होता है, तो विवाद के बीज हमेशा अंकुरित रहते हैं और वे शायद ही मुक्त जीवन जी पाते। आप किसी भी दो जीव की लड़ाई देखें। लड़ने के बाद उनका व्यवहार पूर्ववत हो जाता है। जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। अतीत की बातें अपने आप में परेशानी का सबब नहीं होतीं। वह अतीत ही है, जिसकी गलतियों से हम सबक हासिल करते हैं। यह परेशानी का सबब तब बनती है, जब यह बोझ बन जाए और हमारा व्यक्तित्व अतीत ही है, जिसकी गलतियों से हम सबक हासिल करते हैं। यह परेशानी का सबब तब बनता है, जब यह बोझ बन जाए और हमारा व्यक्तित्व अतीत से निर्धारित होने लगे। अक्सर लोग ढेर सारी बेकार की बातें दिमाग में इकट्ठा किए होते हैं। उन पर असफलता, गुस्सा, दुश्मनी, पछतावा, अतृप्ति, अपराध बोध आदि का मुलम्मा चढ़ा होता है। यह सोच ही धीरे-धीरे मैं और स्व बन जाती है और हमारा व्यक्तित्व हमारा नहीं रह जाता, बल्कि यह इन सोचों से संचालित होने लगता है। दुनिया के कई न्यूरो साइंटिस्ट बुरी यादों को दिमाग से हटाने की मुहिम में जुटे हैं, लेकिन इससे शायद ही सही दिशा मिले। मस्तिष्क को किसी इलाज की नहीं, शांति व तनावरहित रखने की जरूरत है। इसके लिए जरूरी है कि हम वर्तमान में रहें।

निंदा- ईर्ष्या से भी बडी कुप्रवृति है निन्दा। जो व्यक्ति ईर्ष्यालु होता है वही बुरे किस्म का निन्दक भी होता है। लोग दूसरों की निन्दा इसलिये करते है कि वह बुरे किस्म का निन्दक भी होता है। वह समाज की निगाह में गिर जाये और उससे जो स्थान रिक्त होगा उसे सम्भवत: वह खुद पाजाये, किन्तु ऐसा कभी स्थायी रूप से हुआ नही है। कोई भी मनुष्य दूसरों की निन्दा करने से कभी स्वयं की उन्नति नहीं कर सकता। उन्नति तो तभी हो सकेगी जब अपने चरित्र को निर्मल बना कर अपने अन्दर सद्‌गुणों का विकास करे।

निंदा करनेवाला व्यक्ति अधिकांशत: अशांत, व्याकुल और परेशान रहता है। चिन्ता की रेखाएं उसके चेहरे एवं व्यवहार में झलकती हैं क्योंकि वह खाता तो स्वयं के घर का है पर चिन्ता उसे दूसरों की सताती है। जबकि प्रशंसा करने से हम जनप्रिय बनते हैं, लोकप्रिय बनते हैं, शुभ चिन्तन के दर्जे को प्राप्त करके प्रमोद, उत्साह और शांति के भावों में रमण करते हैं। प्रशंसा करनेवाला गुणग्राही व्यक्ति अधिकाधिक हंसमुख प्रमोदित और खुश रहता है। उसके मन में वात्सल्यता, आत्मीयता और प्रेम की भावनाएं तीव्रता से पनपती हैं तथा वह शुभ विचारों में रमण करता है और औरों के लिए आशाओं के दीप जलाता है। निन्दा करनेवाला व्यक्ति दूसरों का तो कुछ नहीं बिगाड़ता है, अपितु स्वयं के समय, व्यवहार व जीवन को बिगाड़ लेता है। निंदा के स्वभाव से स्वयं के जीवन में गुणों का ऱ्हास और दुगुर्णों का प्रवेश प्रारंभ होता है। इन्हीं कारणों से व्यक्ति अपने आप को अशांत आकुल-व्याकुल और अकेला पाता है। गुणग्राही व गुणवान व्यक्ति उत्साह, प्रमोद, शांति से परिपूर्ण होकर एक समय में अनेक कार्य लक्ष्य साध लेता है। सौ निंदक मिलकर भी एक गुणवान एवं गुणग्राही व्यक्ति का कोई नुकसान नहीं कर सकते हैं क्योंकि गुणग्राही व्यक्ति के पास होती है- सद्‌गुणों को ग्रहण करने की पात्रता, गुणों को बढ़ाने का बल और अपने जीवन व्यवहार प्रवृत्तियों की पृथक आदर्श छाप और पहचान। अंतत: निवेदन यही है कि-

चुम्बक से लेकर प्रेरणा, गुणग्राही बन जाए, हंस-बगुले के सम हम भी, गुण सार अपनाएं।
दुर्लभ मानव जीवन पाया, चिन्तन-ममन बढ़ाएं, निंदा से नहीं मिलता कुछ भी, गुणग्राही बन जाए।
बार-बार नहीं मिलता अवसर, ज्ञानी गुरु फरमाए, गुणग्राही स्वभाव बनाकर, जीवन सफल बनाए।

धन-दौलत, ऐश्वर्य, वैभव, सम्पत्ति

धन-दौलत- यदि अपने पास धन इकट्ठा हो जाए, तो वह पाले हुए शत्रु के समान है क्योंकि उसे छोड़ना भी कठिन हो जाता है। वर्तमान में धन ही सुख का पर्याय बन गया है। जिसके पास अपार धन-दौलत हैं वही सुखी है, धनवान व्यक्ति को ही समाज में बड़े सम्मान से देखा जाता है। धनवान व्यक्ति के बड़ी संख्या में मित्र होते हैं एवं लोग उनसे मित्रता करने को आतुर रहते हैं। धनवानों के मित्रों का हाल यह होता है कि वे अपने चहेतों के तनिक भी कष्ट में होते ही उन्हें देखने दौड़ पड़ते है लेकिन वास्तविकता यह है कि मित्र ही नहीं नाते-रिश्तेदार, सगे-संबंधी भी सुख (धन) के साथी होते हैं। जब तक धन है आपके पास भीड़ भी लगी रहेगी जिस दिन धन समाप्त हो जाएगा उसी दिन भीड़ घटना शुरू हो जाएगी, क्योंकि सुख के साथी आपको दुख में देखकर भाग खड़े होंगे। दुख में अपने भी पराए हो जाते है, इसलिए सच्चे मित्र एवं शुभचिंतकों की पहचान आवश्यक है।

कभी धनवान चरित्रवान हुआ करते थे। आज स्थिति विपरीत है। आज जो जितना धनवान होता है, उतना ही वो चरित्रहीन होता है। आज हम दौलत के गुलाम हो गए हैं। क्योंकि चरित्रहीन व्यक्ति कभी भी मालिक नहीं होता हैं। अपने मन का ही मालिक नहीं, वो अपनी कमाई हुई मिलकत का भला कैसे मालिक हो सकता है। जब जब हमारी जेब गरम होती है, तब तब हमारा दिमाग भी गरम हो जाता है। धन का उपयोग इतना ही है, कि वो सद्कार्य अर्थ व्यय किया जाए। धन आने से कहीं हमारा व्यवहार, दूर्व्यवहार तो नहीं हो गया- इसकी जांच-पड़ताल करनी चाहिए। मगर हम धन को इतनी महत्ता देने लगते है कि वो फिर हमारे सर पर चढकर बोलने लगता है। तब आप दौलत के गुलाम हो गए। आपने अपनी मालकियत खो दी। जो जितना धन कमाया जाय, उसके साथ-साथ सद्व्यवहार भी अर्जित किया जाए। जितनी हमारी सफलता, उतनी फिर विनम्रता भी। तब हमने साथ-साथ धनवान बनकर के धन की उपादेयता समझी।

धन व्यक्ति को अवश्य संग्रह करना चाहिये परन्तु उसका नैतिक आधार होना चाहिये। धन लाभ के नैतिक आधार धर्म संमत इस प्रकार होने चाहिये। १) परम्परागत यानि कि पूर्वजों से उत्तराधिकार व विरासत में मिला हुआ धन। २) कहीं निधि मिलना या अचानक अनपेक्षित धनलाभ होना। ३) वस्तु के लेन देन, क्रय-विक्रय इत्यादि में व्यापारिक लाभ होना। ४) विजय प्राप्त कर, प्रतियोगिता जीत कर, अच्छा प्रदर्शन कर प्राप्त किया गया धन। ५) सरकारी परियोजनायों में धन लगा कर, निवेश कर निश्चित कालावधि में प्राप्तकी गई राशि। ६) खेती से प्राप्त धन ७) शास्त्र सम्मत दान से प्राप्त जैसे योग्य व्यक्ति द्वारा अच्छे मार्ग से कमाया और दान किया गया धन इत्यादि।

स्वार्थ की अतिशयता एवम् नैतिकता के घोर अभाव के चलते आज हर एक रिश्ता, सम्बन्ध, नाता, पैसे के आधार पर ही महत्व पाता है। धन विहीन पिता, पति, प्रेमी आदि महत्वहीन हो जाते है, फिर वे चाहे कितने ही पुरुषार्थी, सद्गुणी, चरित्रवान, समाज हितैषी, देशप्रेमी, सत्यवादी, कर्त्तव्य निष्ठ हो, पैसे के बिना उन्हें प्रत्येक पल तिरस्कृत होते रहना उनकी नियति हो जाती है। आज के दौर में स्वार्थी, अवगुणी, चरित्रहीन, झूठे, हरामखोर, समाज के दुश्मन, देश द्रोही आदि पैसे के बल पर जगह-जगह सम्मान पाते दिखाई देते है। धन की महिमा को रेखांकित करते हुये धारावाहिक एवं चल चित्र भी समाज से सद्गुणों को खदेडने में प्रयासरत दिखाई देते है। हर तरफ धन की पूजा हो रही है। जिस्म, ईमान, देश सब कुछ

बेच कर लोग धन जुटाने में लगे हुये है। पैसे के लिये प्रेमिकायें एवम् पत्नियां अपने सद्गुणी प्रेमियों व पतियों का पूरी निर्लज्जता के साथ त्याग कर देती है। पैसे के बल पर एक दुर्गुणी आज हर प्रकार का सुख एवम् सम्मान पाने में कामयाब हो जाता है। आज पैसा ही सब कुछ है।

धनवान होकर भी जो कंजूस है उसे सबसे दयनीय व्यक्ति समझना चाहिये। निर्धनता अगर अभिशाप है तो धनवान होना वरदान मानना चाहिये। जो निर्धन होते है वे स्वयं न कुछ लेते है और नही किसी को कुछ दे सकते है। शायद उन्हें इसका दु:ख भी होता हो, लेकिन सौभाग्य से जिन्हे विरासत से सम्पत्ति मिली हो अथवा जिसने परिश्रम से धन कमाया हो ऐसे व्यक्तियों को अपने धन का सही उपयोग करना चाहिये। कुछ लोग धन का उपयोग उपभोग के लिये करते है तो कुछ मक्खीचूस बन कर उसे बचाये रखते है। वे औरों को भी उस धन का लाभ उठाने नहीं देते ऐसे व्यक्ति को दयनीय ही समझना चाहिये।

आर्थिक समस्या आज के मानव की बडी समस्या है। अर्थस्य पुरुषों दास: यानि व्यक्ति धन का दास होता है यह महाभारत का वचन है। धनवान हो या निर्धन, समस्या दोनों को ही है। धनवान को चिन्ता होती है सम्पत्ति के विनियोग की जबकि निर्धन को चिन्ता होती है धन मिलने की। आर्थिक संकट केवल निर्धनता के कारण आता हो ऐसा नही है। कष्ट किये बिना पैसा कमाने की इच्छा गलत कारणों से खर्चा करना, झूठी प्रतिष्ठा दिखाने में धन खर्च करना, अनावश्यक वस्तुओं के संग्रहण में धन व्यय करना तथा अपने आपको हमेशा हीन समझना, दरिद्र समझना, धनार्जन का सही प्रयत्न न करना आदि कारणों से आर्थिक संकट आता है।

संसार में कई अजीबों गरीब बातों का संयोग होता है लेकिन कुछ चीजें एकत्र होना दुर्लभ माना जाता है। उसे विलक्षण संयोग कहना गलत नहीं होगा। जैसे ज्ञानी परन्तु नम्र :- अधिकांश ज्ञानी व्यक्तियों को अपने ज्ञान का अहंकार होता है। एक सीमा तक वह अभिमान करे पर अपने आपको सर्वज्ञानी मान कर औरों को मूर्ख मानने वाले अहंकारी ज्ञानी अधिक संख्या में है। ज्ञान और नम्रता का संगम इस प्रकार का धन होना ईश्वर की ही देन है। धन के साथ उदारता होना यह भी किसी के पास यदि काफी धन सम्पति हो और फिर वह दान करे। लेकिन वे लोग स्वार्थी होते है जो श्रमिकों को अच्छा, पूरा वेतन देने की क्षमता होकर भी कम से कम वेतन में उसने काम करवाने के इच्छुक रहते है। सम्पत्ति और उदारता एक साथ होना ईश्वर की देन है।

जो धन किसी श्रेष्ठ कार्य के लिये दिया जाता है अथवा श्रेष्ठ व्यक्ति को दिया जाता है या उसका राष्ट्र योग किया जाता है उसे श्रेष्ठ धन कहना चाहिये। अन्यथा हम उस धन के केवल रखवाले बन जाते है। धन दान किये बिना जमीन में गाढ़ कर रखने वाले लोग अगले जन्म में सांप बन कर उस धन का संरक्षण करते है। इससे समझना चाहिये कि धन कमा कर केवल पास रखने की वस्तु नहीं है उसका सही विनियोग किया जाना चाहिये तो वही श्रेष्ठ धन है।

एक कहावत है प्रपंची चाहिये स्वर्ण यानि प्रपंच चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है। यह सच है लेकिन धन की अति लालसा मानव का सब सुख हर लेता है। धन का संचय करने पर भी उसका सही ढंग से विनियोग नहीं होने पर कई अनर्थ हो सकते है। धन प्राप्त करना ही पूर्णत्व नहीं है, धन सही तरीके से व्यय करने की कला अवगत होने पर धन

संग्रह की कला अवगत होती है। धन को मनमाने तरीके से खर्च करने से अनैतिक मार्ग का लोभ भी पैदा हो सकता है, यहीं से नैतिक अध:पतन का प्रारम्भ हो जाता है। जैसा अन्न वैसी बुद्धि अथवा जैसा अन्न वैसा मन, यह सूत्र समझने पर मालूम होगा कि मन की निर्मिती करनेवाला अन्न अगर अनैतिक मार्ग से ऊर्जित धन से खाया हुआ है तो मन का भी अध:पतन होगा और नैतिक मार्ग से प्राप्त धन से अन्न खाने से मन शुद्ध होता है इसलिये मानव को धनार्जन और व्यय के बारे में पर्याप्त जागरूकता आवश्यक है।

उचित योजना में निवेश पर धन शक्ति बनता है। धन कमाना जितना कठिन है, उससे भी कठिन है खर्च करना। विचारपूर्वक अच्छे कार्यों में धन लगाना इतना आसान नहीं है। जब तक कागजी नोटों या धातु के सिक्कों के रूप में धन हमारे पास पडा है तब तक वह केवल कागज के टुकडे या लोहा ही है, लेकिन जब धन अच्छे कार्यों में लगाया जाता है, जिन योजनाओं से वह बोये हुये अनाज की तरह कई गुना बढ़ कर निकलता है तब वह धन शक्ति रूप होता है। वह धन और धन दिलाता है और इस तरह धनशक्ति से धनशक्ति सतत बढ़ती जाती है।

धन की गति तीन है :- १) दान :- धनवान व्यक्ति दुनिया में प्रतिष्ठित माना जाता है लेकिन उसको सच्चा प्रतिष्ठा स्थापित होने के लिये उसे अपने धन का कुछ हिस्सा दान करना चाहिये। केवल धन का संग्रह करनेवाला व्यक्ति उपेक्षित होता है। २) भोग :- धन कमा कर उसका उपभोग करना चाहिये। दान करने से धन शुद्ध होता है। बाकी बचे हुये धन का उपभोग करना चाहिये। लेकिन कंजूसी के कारण उपभोग न करे तो वह धन व्यर्थ होता है। ३) नाश :- धन को दान या भोग इन दोनों से जाने देना चाहिये। यदि वह धन जो दान भी नहीं किया गया और उपभोग भी नहीं किया गया तो वह धन तो नष्ट ही हो जाता है, उसे या तो चोर डाकू लूटेरे लूट लेते है, या फिर सरकार प्रशासन का अधिकार उस पर हो जाता है या वह गैरों का हो जाता है।

पैसा खुदा तो नहीं पर खुदा की कसम, खुदा से कम भी नहीं है। पैसा भगवान नही है लेकिन इस दुनिया ने पैसे को भगवान बना रक्खा है। सारी दुनिया पैसे के लिये हाय हाय कर रही है। पैसा कमाना और कमाये पैसे से जीवन चलाना एक बात है लेकिन पैसे को ही माई-बाप मानना दूसरी बात। इस दुनिया में कई तरह के लोग है पहले वे जिनके पास ईश्वर कृपा से खूब पैसा है। इनमें भी दो तरह के पैसे वाले है। एक वे जिन्होंने खुद पैसा कमाया है और दूसरे वे जिन्हें अपने पुरखों व पूर्वजों का कमाया पैसा मिला है, विरासत में मिला है। ऐसे भी लोग है जिनके पास पैसा ही नहीं है और ऐसे भी लोग है जिनके पास पैसा तो है लेकिन अधिक पैसे की प्यास सतत लगातार बनी रहती है। ऐसे भी लोग है जो पैसे को गुलाम मानते है तो ऐसे भी है जो पैसे के गुलाम है। ऐसे लोगों की भी कमी कोई नहीं जिनके हाथों मे कितना ही पैसा दे दो वे तुरन्त खर्च कर डालेंगे। और ऐसे लोग भी है जिनकी जान एक थैला भर खर्च करने में ही निकल जाती है।

अब पैसा ही सब कुछ हो गया है। पैसे के लिये आदमी अपना धर्म-ईमान, इज्जत आबरू, आदमीयत सब कुछ बेच देता है, छोड देता है इसलिये कहा गया है पैसा ही रंग, पैसा ही रूप है, पैसा ही माल है, पैसा न हो तो आदमी बेकार है, जिसके पैसा नही पास उसका मन रहे सदा उदास। यह पैसा ही तो है जिसके लिये आदमी सुबह से शाम तक हाय हाय में लगा रहता है। सुबह घर से रोटी बांध कर निकलता है और शाम को ही घर वापिस लौटता है। दिन भर पैसे कमाने की

उधेड बुन मे लगा रहता है। लेकिन पैसा भी बिना परिश्रम किये नहीं मिलता है। लेकिन जिनके पास प्रचुर पैसा है फिर भी पैसे के लिये हाय हाय किये जाते है पैसा-पैसा-पैसा।

पैसा चीज ही ऐसी है। इन्सान का जी हुस्न से भर सकता है, ईश्क से जी भर जाता है। खाने-पीने से जी भर जाता है। कुछ लोग तो ऐसे है जितना अपने बीबी, बच्चों, नायिका, प्रेमिका यहां तक की जीने से भी जी भर जाता है पर पैसा ऐसी चीज है इससे कभी जी नहीं भरता। अपने आप में इससे सन्तोष नहीं होता। इन्सान पूरी जिन्दगी हाय हाय पैसा करके चिल्लाता रहता है। मरणासन्न व्यक्ति भी अन्त तक पैसे के मोह मे चिपका रहता है। यह बात पूर्ण रूप से निश्चित है कि कलियुग में धन पैसा ही प्राबल्य है। ढोल बजाने पर भी धन-धन की आवाज निकलती है।

भारतीय संस्कृति में अर्थ को छठा इन्द्रिय कहा गया है। शरीर के पांच इन्द्रियों के साथ ही छठा इन्द्रिय यानि अर्थ की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अर्थ के स्तर से व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठा मिलती है। इसे ध्यान में रखकर और एक पवित्र शक्ति के रूप में अर्थ को चार पुरुषार्थों में शामिल किया गया है। अर्थ यानि धन सम्पत्ति, लेकिन उसे प्रामाणिकता से कमा कर सजगता से खर्च करने का विचार भारतीय परम्परा में है। भारत में चार आश्रमों का रिवाज है। ब्रह्मचर्य-वानप्रस्थ-सन्यास एवम चौथा गृहस्थाश्रम। इनमे से गृहस्थाश्रम पर बाकी तीन आश्रम निर्भर है। इसलिये अर्थ संग्रह (धन कमाना) प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता है। इसके साथ, पंच महायज्ञ गृहस्थाश्रम का ही अंग होने के कारण अपने कर्त्तव्य के निर्वाह के लिये गृहस्थ व्यक्ति को अर्थ साधना आवश्यक है, यह नियम भारतीय संस्कृति ने बनाया है।

मनु स्मृति में कहा गया है कि सर्वेषामेव शौचानाम् अर्थ शौचम् परम् स्मृतम् अर्थात सभी तरह की पवित्रताओं में धन की पवित्रता सर्व श्रेष्ठ है। मिट्टी या पानी से केवल देह शुद्ध हो सकती है लेकिन कर्म शुद्धता या जीवन शुद्धता के लिये जो हम धन संग्रह करते है, वह पवित्र होना आवश्यक है अर्थात ईमानदारी से कमाया गया धन ही जीवन में पवित्रता लाता है। यह सूक्ष्म विचार रखने का कारण यह है कि बेईमानी या औरों की मेहनत से अथवा गलत मार्गों से कमाया हुआ धन अपवित्र होता है। वह सुख का आभास उत्पन्न करता है, लेकिन उसके अन्दर दु:ख का बीज होता है। यह कभी न कभी अपना फल दिये बिना नहीं रहता। इसलिये ऐसे व्यक्ति को भावी समय में अनेक रोग व्याधियों का सामना करना पडता है। कई आपतियां झेलनी पडती है। जीवन का लौकिक सुख केवल पवित्र धन पर ही निर्भर होता है।

पैसा क्यों कमाया जाता है? पैसा संग्रह करने के लिये, पूजने के लिये या उपभोग कर आनन्द लेने के लिये? कोई आदमी आपके सामने हाथ फैला कर अपना पेट दिखा कर भीख मांगता है और आप उसे हिराकत भरी दृष्टि से देखते है। उसका हाथ आपके सामने फैला हुआ है और आपके भीतर का आदमी तत्क्षण मर जाता है। पैसा आदमी के उस फैले हाथ से महत्वपूर्ण हो जाता है। हम उन्हें भिखारी कहते है जिनके पास कुछ नहीं यानि पैसा या सुविधाये नहीं है जो गली गली सडक पर भीख मांग रहे है। वे भिखारी होगे मगर उनसे बडे भिखारी तो वे है जो उन्हे अपने पास होकर भीख तक देना नहीं चाहते। कही ऐन केन प्रकारेण लाख-दो लाख मिले तो चील की तरह झपट्टा मारने को तैयार है, ये बडे भिखारी है।

धन का मौज-शौक में कभी उपयोग नहीं करना चाहिए। रावण ने मौज-शौक किया था, लेकिन राजा जनक ने सेवा की थी। धन हमेशा रहेगा भी नहीं, इसलिए जितने दिन पास में हैं उसका उपयोग सेवा के लिए करना चाहिए। धन शक्ति है।

इस शक्ति के नशे में किसी के साथ अन्याय हो जाना संभव है। हमारे धार्मिक ग्रंथों में लक्ष्मी को चंचला कहा गया है, इसीलिए ऋषि-मुनियों ने धन संचय के साथ ही उसके सदुपयोग तथा परमार्थ के कार्यों में लगाने का उपदेश दिया था। उनका कहना था कि जो धन का दुरूपयोग करता है उससे लक्ष्मी रूठकर चली जाती है। महात्मा गांधी भी कहते थे कि हमारे उद्योगपति, व्यवसायी स्वयं को संपदा का स्वामी समझने की बजाय अपने को उसका विश्वस्त समझकर उसका सदुपयोग करें, तभी समाज में समरसता बढ़ेगी और संपन्नता आएगी।

जीवनयापन के लिए पैसा जरूरी है, परंतु पैसे के प्रति अधिक आसक्ति अहितकर है। उच्च प्रतिभा संपन्न लोग विभिन्न पदों पर आसीन होकर जब पैसे की खातिर अपना ईमान बेच देते हैं तो आम लोगों के मन में भी यही संकेत जाता है कि बिन पैसा सब सून। वर्तमान में पैसे के कारण रोज न जाने कितनी दु:खद घटनाएं घटती हैं। दरअसल जरूरत से ज्यादा धनलिप्सा नुकसानदेह है। इसका अंत तो होता है परंतु अपूरणीय क्षति के साथ। अत: इस विषय में सार्थक मनन, चिंतन और तद्नुसार आचरण श्रेष्ठ होता है।

सचमुच आज के दौर में जिनके पास पर्याप्त पैसा एवं पहुंच है, उनका काम बड़े सहज ढंग से हो जाता है। आज हर फसाद की जड़ पैसे को ठहराया जा रहा है, क्योंकि पेट की आग बुझाने एवं जीवनयापन के लिए पैसे की जरूरत होती है। आज जल्दबाजी में अमीर बनने के चक्कर में लोग राह से भटक रहे हैं। पैसे एवं प्यार के सामने हर कोई नतमस्तक हो जाता है। पैसे के अभाव में शादी रुक जाती है, नौकरी नहीं लगती, स्कूलों में प्रवेश नहीं होता, पति-पत्नी में तकरार होती है। रिश्तों में खटास आ जाती है। लेकिन यह विचारणीय है कि विवेकशील मानव के लिए पैसा ही सब कुछ क्यों बन गया है ? क्या यह मानव के पतन का द्योतक नहीं हैं ?

मानव जीवन का उद्देश्य केवल धन कमाना ही नहीं है। मनुष्य को मानव जाति के हित में परोपकार के दूसरे काम भी करते रहना चाहिए। धन तो कमायें, लेकिन एक सीमा तक ही। जिसके पास ज्यादा धन होता है, वे परिवार और समाज से तो क्या अपने आप से भी कट जाते हैं। भला, ऐसे जीवन का क्या फायदा ? फिर भी समाज में बहुत से लोग पैसे के पीछे भाग रहे हैं। ऐसे लोगों का संतुष्ट होना मुश्किल होता है।

भारत में आजादी के बाद से धन संग्रह करने की अंधी स्पर्धा ने रफ्तार पकड़ ली है। बेईमानी से धन कमाने की प्रवृत्ति अनादिकाल से है परंतु उस बेईमानी में भी ईमानदारी थी, उसमें लूट नहीं थी। सेहत, समाज और राष्ट्र को हानि पहुंचाने वाली वस्तु का क्रय-विक्रय नहीं था। अलबत्ता तौल में भले ही डंडी मारते हों। इन अवगुणों के बावजूद भी धर्म-कर्म में उनकी आस्था थी। बेईमानी से कमाये हुए धन को धर्म-कर्म के मार्ग में पुन: समाज को लौटाने की चेष्टा करते थे। पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय सम्मान पर उनकी वजह से कोई भी आंच न आये इतनी सोच उस वक्त हर हृदय में विद्यमान थी, इसलिए विवादों को सुलझाने की परंपरा का भी उन्होंने आविष्कार किया और मंदिर या चबूतरे पर पंचायत से निपटारा होता था। उस वक्त पाठशालाएं अक्सर मंदिरों के अहाते में चलती थीं। उस वक्त पढ़ाई का पर्यावरण उच्च और शुद्ध भाव से भरा था इसलिए हर कोई अपने चरित्र पर आंच न आये इस भाव से सतर्क रहता था। यह भाव, भावना और भक्ति का लोप आजादी के बाद शनै: - शनै: खत्म होता गया।

कीचड़ में हाथ डालने और धोने की अपेक्षा कीचड़ में हाथ ही न डालें। नरक रूपी धन लेकर पाप को फिर दान रूपी पानी से धोने की अपेक्षा धन रूपी कीचड़ में हाथ ही क्यों डालें ? जो गुणों से सम्पन्न है वही सच्चा धनी है।

सम्पदा तो एक बुरे सेवकों के समान है जो सदैव चलती रहती हैं और एक स्वामी के साथ अधिक नहीं ठहरती।

कुछ लोग कहते हैं- शरीर सुखाना तो क्लेश उठाना है। जिस कर्म से यहाँ क्लेश है उससे परलोक में क्या सुख मिलेगा। अत: अपने ऐश्वर्य को बढ़ाओ। सब पर शासन करो प्रभावशाली बनो। दण्डनीतिकारों ने ऐश्वर्य को ही मुख्य माना है और उन्होंने अपने शास्त्रों में साम, दाम तथा दण्ड नीति आदि का विस्तार के साथ वर्णन किया है। शत्रु को इस प्रकार नीचा दिखावे ऐसे उसे जीते ऐसे-ऐसे अपना ऐश्वर्य स्थापित करे। संसार में ऐश्वर्यशाली होना यही सबसे श्रेष्ठ सुख है। ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये ही प्रयत्न करते रहना चाहिये। जिसका जितना ही ऐश्वर्य होगा, वह उतना ही बड़ा होगा।

जीवन में जब धन स्वामी हो जाए तो विवेक की चेतना खत्म होती है - धन को सब बहुत बुरा मानते हैं, फिर भी हर कोई इसका ख्वाहिशमंद है। हर कोई येन-केन-प्रकारेण धन हथियाना चाहता है। इसमें शक नहीं कि जीवन निर्वाह के लिए यह जरूरी है, मगर यह भी सच है कि इसी से भाई-भाई में तकरार पैदा होती है। बाप-बेटे, पति-पत्नी के रिश्तों को यह मटियामेट कर देता है।

जीवन निर्वाह के लिए धन के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण का विकास होना आवश्यक है। कहते हैं कि धन एक अच्छा सेवक है, पर खतरनाक स्वामी है। जहां धन स्वामी बन जाता है, वहां मानव की विवेक चेतना लुप्त हो जाती है। बहुत से लोग इसके नशे में पागल होकर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की भी उपेक्षा करते हैं। उनकी दिनचर्या अव्यवस्थित और अनियमित हो जाती है। उनका पारिवारिक जीवन अशांत और असंतुलित हो जाता है। उनके लिए धन ही सर्वस्व होता है। ऐसे लोगों को सलाह देते हुए टाल्सटॉय ने कहा है, किसी चीज को पाकर खुश हो जाना ही अच्छा नहीं है। यह भी जानना जरूरी है कि उसे पाया किस तरह गया है? शुद्ध साध्य के लिए शुद्ध साधन अपनाने की बात इसलिए जरूरी है कि प्राप्त धन का प्रयोग सही दिशा में हो। धन जीवन-निर्वाह का साधन है। भोजन, पानी, आवास व औषधि आदि जरूरी वस्तुओं की पूर्ति उसके माध्यम से होती है। पर हर व्यक्ति में अर्थ के प्रति विवेकपूर्ण नजरिया जरूरी है। मनुष्य अर्थ का स्वामी बने, अच्छी बात है लेकिन वह अर्थ का दास न बने। जिनकी विवेक चेतना लुप्त होती है, वे अर्थ को सर्वस्व मानते हैं। उनके चिंतन में अर्थ का मूल्य मानवता से भी अधिक होता है। इसी अविवेकी सोच ने अर्थ को एक समस्या बना दिया है।

भारतीय चिंतन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये चार पुरुषार्थ बताए गए हैं। अर्थ और काम धर्म और मोक्ष तत्व से अनुशासित होने चाहिए। उसके बिना वे द्वंद्व और अशांति के कारण बन जाते हैं। धन की तुलना में धर्म का स्थान ऊंचा है। धन और धर्म तथा भक्ति और आसक्ति का संघर्ष हर व्यक्ति के जीवन में प्रतिदिन होता है। जहां धन तथा आसक्ति पर निर्भरता बढ़ जाती है, वहां आजीविका की शुद्धि और पवित्रता का आदर्श सुरक्षित नहीं रह पाता। आज हर व्यक्ति का ध्यान सत्ता, उत्थान, सम्मान, खुशी, स्थिति- इन पांचों पर केंद्रित है, लेकिन इनके साथ पवित्रता का होना भी जरूरी है, तभी हम अर्थ को समस्या नहीं, समाधान बना सकेंगे। भले ही हमारे पास कार, कोठी एवं कुर्सी न हो, मगर चारित्रिक गुणों

की काबिलियत अवश्य हो। श्रेष्ठताओं का ऊंचा कद हो, तब व्यक्ति स्वयं सम्मान पा जाएगा, अन्यथा अर्थ को जीवन से अधिक महत्व देना हास्यास्पद ही है। पदार्थ एवं सुविधाओं का यदि संयम है तो पैसों से जुड़कर भी वह आदमी को सुख, शांति एवं समाधि दे सकता है।

ऐश्वर्य, वैभव, सम्पत्ति - ऐश्वर्य शब्द का अर्थ केवल सम्पत्ति की प्राप्ति ही नहीं है। यह शब्द विस्तृत अर्थ में लेना पडता है। ईश्वर के जो छै गुण बताये है इसमें भी ऐश्वर्य का गुण आता है। लोगों के लिये ऐश्वर्य शब्द में निम्न बातों का समावेश होता है। ऐश्वर्य का निश्चित अर्थ अपनी स्वयम् की सुन्दर वास्तु होना, अपना वाहन होना, घर में विपुल धन, अनाज होना, घर में नौकर चाकर होना, यह सब एक समय में उपलब्ध होना इसे ऐश्वर्य कहते है। ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये प्रयास आवश्यक है। उसके लिये उद्यम करने की तैयारी चाहिये उतना ही मानसिक साहस चाहिये। मनोबल, शरीर बल और बुद्धिबल चाहिये तब ऐश्वर्य मनुष्य के कदम चूमता है।

प्रगति के लिये वृद्ध के गुण देखना चाहिये। वृक्ष एक ही स्थान पर स्थिर रहता है लेकिन अपनी सैकडों शाखाओं से सभी तरफ से बढ़ता है, प्रगति के आकाश में फैलता है। हमें भी ऐसा ही फैलना चाहिये। घर, परिवार, समाज, देश और विश्व प्रेम करना चाहिये। आदर और सद्भाव भर देना चाहिये। वृक्ष की किसी को सहारे की छांव देनी चाहिये। अपनी वैयक्तिक संकुचितता छोड कर विश्व बंधुता का नाता विशाल बनाने का प्रयास किया तो सभी और से लाभ अपने आप चला आता है। हमारा ऐश्वर्य, वैभव इस पर निर्भर है कि बाहरी जगत में हम प्रेम और स्नेह के रूप में खुद को कितना फैलाते है।

अपने को सबसे मंगल के लिए लुटा देना ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

आपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों की पीड़ा हर लेना ही सत्पुरुषों की सम्पत्ति का अच्छा फल है। सम्पत्तिवान होकर भी मानव यदि विपत्ति-ग्रस्तों के काम न आया, तो उसकी सम्पत्ति किस काम की ? उत्तम मनुष्यों की सम्पत्ति का मुख्य प्रयोजन यही है कि औरों की विपत्ति का नाश हो।

जहां सुमति तहँ सम्पत्ति नाना।

तौ लहि सोग बिछोह का, भोजन भरा न पेट। पुनि विसरन या सुमिरना, जब संपत्ति भइ भेट।।

दूसरों को मर्मघाती चोट पहुंचाये बिना, अत्यन्त क्रूर कर्म किये बिना तथा मछेरों की भांति बहुतों के प्राण लिए बिना कोई भी मनुष्य बड़ी सम्पत्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

पवित्रता वह संपत्ति है जो प्रेम के बाहुल्य से पैदा होती है।

मनुष्यों में उत्साह भरने की अपनी योग्यता को ही मैं अपनी सबसे बड़ी संपत्ति मानता हूं और मानव के भीतर जो कुछ सर्वोत्तम है उसका विकास, प्रशंसा एवं प्रोत्साहन द्वारा ही किया जा सकता है।

मुझ मोक्षदायक को प्रसन्न करके जो केवल सामान्य संपत्ति की इच्छा करता है, वह सचमुच मन्दभाग्य है।

सत्पुरुषों की सम्पत्ति का यही फल है कि विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों के दु:खों को दूर करे।

सम्पत्ति भरम गंवाइ के, हाथ रहत कछु नाहिं। ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहि माहिं।।

हर एक को खाने-पीने के लिए भरपूर मिलना चाहिए, यही संपत्ति का समान वितरण है।

श्राद्ध-तर्पण

यह श्राद्ध तर्पण की विधि सबसे पहले अत्रे ऋषि ने अपने पौत्र के आकस्मिक निधन पर उसकी स्मृति में यह विधि शुरु की। याज्ञवल्क्य-स्मृति के अनुसार पितृपक्ष (भाद्रपद पूर्णिमा से आश्विन अमावस्या तक १६ कनागतों) का समय पितरों के श्राद्ध, तर्पण आदि के लिए निर्धारित है, क्योंकि उत्तरायण में देवताओं व दक्षिणायन में पितरों का प्रभुत्व होता है। आश्विन कृष्ण पक्ष में दक्षिणायन का मध्य भाग होता है, उस समय पितर सर्वाधिक सक्रिय होते हैं। प्रत्येक मास में दो पक्ष (शुक्ल व कृष्ण) होते हैं। इनमें शुक्ल पक्ष देवताओं व कृष्ण पक्ष पितरों का होता है। अत: पूर्णिमा को देवताओं का पूजन व अमावस्या को पितरों का श्राद्ध किया जाता है। कन्या राशिगत सूर्य में आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में मृत्युतिथि के दिन श्राद्ध करने से पितर संतुष्ट होते हैं।

विधि- श्राद्ध के मुख्य रूप से तीन कार्य-पिंडदान, तर्पण व ब्राह्मण भोजन होते हैं। आजकल ब्राह्मण भोजन की परंपरा तो प्रचलित है, किन्तु पिंडदान व तर्पण लुप्त प्राय हैं। इनमें से पिंडदान अपराह्न (मध्याह्नोत्तर) में, जबकि तर्पण प्रात:काल या पिंडदान के बाद किसी भी समय किया जा सकता है। इसके बाद ब्राह्मण भोजन कराने से पितर तृप्त होते हैं।

श्राद्ध के अधिकारी - श्राद्ध में तर्पण व ब्राह्मण भोजन करने/कराने का क्रम इस प्रकार है- मृतक का ज्येष्ठ पुत्र, उसके जीवित न होने पर कनिष्ठ पुत्र, यदि सभी पुत्र जीवित हों व अलग-अलग रहते हों तो सभी पुत्र, पुत्र जीवित न हो तो पौत्र, पौत्र जीवित न हो तो प्रपौत्र, प्रपौत्र जीवित न हो तो भाई, भतीजे या उसका पुत्र यदि वे जीवित न हों, तो दौहित्र (लड़की का पुत्र) आदि।

श्राद्ध पाखंड नहीं - हिंदू संस्कृति में पितृ योनि की स्वीकृति व आस्था की वजह से श्राद्ध का प्रचलन है। कुछ तथाकथित आधुनिक इसे ढोंग, पाखंड व ढकोसला कहते हैं जबकि आज पश्चिमी देशों के वैज्ञानिक भी भूत, प्रेत व पितरों के अस्तित्व को समझने में लगे हुए हैं। फ्रांस के डॉ. इयुजेन ओस्टली व केमीले फ्लेमरियोन, इटली और सीझट लोम्ब्रोस्वे तथा ब्रिटेन के सर आर्थर कानन डायल व सर विलियम बैरेंट जैसे विद्वानों/वैज्ञानिकों का भूत, प्रेत में पूर्ण विश्वास है।

उन्होंने पितरों के सूक्ष्म शरीर को एक्टोप्लाज्मा की संज्ञा दी है। स्वामी अभयानंद ने अपनी पुस्तक लाइफ बियांड डेथ में मृतात्माओं के चित्र भी दिए हैं। इसके बावजूद हजारों सालों से प्रचलित श्राद्ध की परम्परा पर अविश्वास करना एक आश्चर्य है।

धर्मग्रन्थों की यह निश्चित मान्यता है कि संकल्प पूर्वक श्रद्धा और विश्वास व विधि-विधान के साथ किये गये श्राद्ध का सूक्ष्मांश उस जीवात्मा तक अवश्य पहुंचता है, जिसके निमित्त श्राद्ध-कर्म किया गया है फिर वो किसी भी लोक मे या किसी भी योनि में हो। यदि पितृगण स्वर्ग में है तो श्राद्ध का अन्न-जल अमृत के रूप में परिणत होकर उन्हे मिलता है और यदि वे गन्धर्व बन गये है तो नाना भोगों के रूप में प्राप्त होता है। पशु-पक्षी की योनि में तृणादि अभीष्ट भोजन के रूप में प्राप्त होता है। इसी तरह नाग योनि में वह हव्य-कव्य वायु-रूप में, राक्षस-योनि में आमिष-रूप से, यक्ष योनि में पान-रूप में, दानव योनि में मांस व रुधिर रूप में, पितृलोक में स्वधा रूप से मनुष्य बन जाने पर विविध प्रकार के भोग्य पदार्थों के रूप में तथा अन्य योनियों मे वह अभीष्ट तृप्तिकारक खाद्य-रूप में परिणत होकर निर्दिष्ट जीव के पास पहुंच जाता है।

मत्स्यपुराण के अनुसार श्राद्ध कर्ता तर्पण एवं श्राद्ध के समय भावुक होकर इस प्रकार कहे- जो भी असहाय जीव मेरे कुल के हो, जो मेरे इस जन्म के बन्धु-बान्धव हो या उस जन्म के या जो कोई भी बन्धु-बान्धवों से रहित हो या जो कोई

किसी भी लोक में या नरकादि में यातनाग्रस्त हो, वे मेरे द्वारा किये गये इस श्राद्ध के पिण्ड या तिल युक्त जल के तर्पण से पूर्णत: दुख से मुक्त होकर संतृप्त हो जाये।

वायुपुराण के मत से श्राद्ध कर्ता आर्द्र हृदय से यह भी कहें- ब्रह्मा सहित समस्त देवता पितृगण, मनुष्य, कीट-पतंग, सार द्वीप के निवासी, ब्रह्मलोक से लेकर भूलोक तक के सभी प्राणी मेरे इस सद्भावपूर्ण श्राद्ध तर्पण से पूर्ण तृप्त एवं सुखी हो जाये। इस प्रकार सर्वत्र ब्रह्म-दर्शन की भावना से किये गये पिण्डदान एवं तर्पण से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप्यायित होकर तृप्त हो जाता है। चतुवर्ग चिन्तामणि में लिखा है-

एवं विधानत: श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानव: ।।

जो व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार शास्त्र में बतायी गई विधि से श्राद्ध करता है, वह सारे संसार को संतृप्त कर देता है।

वाराहपुराण का कथन है कि श्राद्ध कर्ता के द्वारा किये गये श्राद्ध- कर्म से जगत् के सभी पूज्यों की पूजा भी हो जाती है-

तेषां त्रय: पूजिताश्च भविष्यन्ति तथाग्नय:। पूजिताश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा: ।।

श्राद्ध से तीनो देवता ब्रह्मा- विष्णु- महेश, तीनो अग्नि एवं तीनो लोक पूजित हो जाते है।

आप स्वयं विचार कीजिये कि जो श्राद्ध संपूर्ण ब्रह्माण्ड को तृप्त कर सकता है और जिसके माध्यम से समस्त देवताओं की स्वत: पूजा हो जाती है, वह भला अपने अनुष्ठाता की उपेक्षा कैसे कर सकता है ? श्राद्ध-कर्म का पुण्य श्राद्धकर्ता को अवश्य फलीभूत होता है। गरुड़पुराण और यम-स्मृति का निम्न श्लोक इस संदर्भ में पर्याप्त प्रकाश डालता है-

आयु: पुत्रान् यश: स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्। पशुन् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात् ।।

पितृ-पूजन (श्राद्ध-कर्म) से संतुष्ट होकर पितृगण श्राद्धकर्ता को दीर्घायु, पुत्र, यश, स्वर्ण कीर्ति, पुष्टि, बल, वैभव, पशु, सुख, धन-धान्य प्रदान करते है।

मार्कण्डेयपुराण श्राद्ध करने पर पितरों के प्रसार-स्वरूप मिलने वाले फल का गुण-गान करते हुये कहता है-

आयु: प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानिच। प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितर: श्राद्धतर्पिता: ।।

श्राद्ध से तृप्त होकर पितृगण श्राद्धकर्ता को दीर्घायु, संतति, धन विद्या, सुख राज्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करते है।

विष्णुपुराण में आया है कि पितृपक्ष में भक्ति और विनम्र चित्त से सुपात्र ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन कराये और इससे असमर्थ होने पर अन्न, घी, नमक, फलादि दक्षिणा सहित सुयोग्य ब्राह्मण को देने पर भी श्राद्ध-कर्म संपन्न हो जायेगा। यदि यह भी न कर सके तो केवल आठ तिलों से जलांजलि देकर श्रद्धापूर्वक गौ को हरी घास या चारा खिला दे। सभी वस्तुओं के अभाव में एकान्त में श्री सूर्य आदि दिक्पालों से हाथ उठाकर उच्चस्वर में प्रार्थना करते हुये कहे कि मेरे पास श्राद्ध-कर्म के योग्य न वित्त है, न और कोई सामग्री है अत: मैं अपने पितृगण को नमस्कार करता हूं, वे मेरी भक्ति से ही तृप्ति-लाभ करे। मात्र इतने से भी निर्धन के द्वारा पितरों का श्राद्ध हो जायेगा।

ऋषियों का स्पष्ट रूप से कथन है कि पितृपक्ष में पितृगण श्राद्ध न पाने पर निराश होकर दीर्घ श्वास त्याग करते हुए गृहस्थ को दारुण दुख पाने का शाप देकर पितृलोक वापस चले जाते है। पितरों को अतृप्त भेजने वाले को वर्ष पर्यन्त अनेक कष्टों को भोगना पड़ता है। पितृकोप से अभिशप्त परिवार के सदस्यों को रोग-शोक, दुख-दुर्गति का भागी बनते देखा गया है। महर्षि समुन्तु कहते है-

लोकान्तरेषु ते तोयं लभन्ते नान्नमेव च। दत्तं न वंशजैर्येषां ते व्यथां यान्ति दारुणाम ।।

श्राद्ध न करने पर पितरों को पितृलोक में अन्न-जल के अभाव की पीड़ा होती है तथा श्राद्ध न करने वाले वंशजों को

भीषण समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ज्योतिष के ग्रंथों में इसे पितृदोष कहा गया है। पितृदोष से पीड़ित व्यक्ति को अशुभ ग्रहों की दशा में तो मरणतुल्य कष्ट भोगना ही पड़ता है पर साथ ही शुभ ग्रहों की दशा में अपेक्षित शुभ फलों की भी प्राप्ति नहीं होती है।

ब्रह्मपुराण के अनुसार सविधि श्राद्ध करने पर पितृगण तृप्त होकर प्रसन्न हो जाते है। ये देवताओं से भी अधिक कृपालु होते है और वंशजो पर अतिशीघ्र द्रवित होकर अभीष्ट प्रदान कर देते है। श्राद्ध का मूल तत्व वस्तुत: इस कर्म में निहित पितृगणों के निमित्त श्रद्धा की भावना से है। श्राद्ध-कर्म के माध्यम से हम अपने पितरों को श्रद्धांजलि देकर भौतिक पक्ष-पदार्थों से ज्यादा महत्वपूर्ण है परंतु सामर्थ्यवान को इस पितृ-यज्ञ में कृपणता नहीं दिखानी चाहिए।

इस मृत्युलोक में पितरों के निमित्त किया गया पिण्डदान, श्राद्ध आदि उन्हें कैसे मिलता है? मृत्युलोक में श्राद्ध का भोजन करके ब्राह्मण तृप्त होता है, आहुतियों का अंश राख हो जाता है। मृतात्मा अपने कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनि में जाता है। पितरों को वसुगण, पितामहों को रुद्रगण तथा प्रपितामह को आदित्यगण कहते हैं- ऐसी वैदिकी श्रुति है। पितरों के नाम और गोत्र हव्य-कव्य को पहुँचानेवाले हैं। वह पितृगण यदि शुभ कर्मों के प्रभाव से देव योनि में उत्पन्न हुये हों तो उन्हें अमृत रूप में मिलता है। यदि सर्प योनि में है तो वायु रूप में, यदि प्रेत योनि में है तो रुधिर रूप में मिलता है। पितृदेव प्रसन्न होकर श्राद्धकर्ता परिवार को आशीर्वाद देते हैं।

पितरों की तृप्ति श्राद्ध और तर्पण से होती है। पहिले पितरों के साथ अग्नि भाग नहीं लेते थे, जब पितरों को खाते-खाते अजीर्ण हो गया, तब उन्होंने सहायता ली। क्योंकि अग्नि दीप्त हो जाने पर अजीर्ण आदि अग्निदेव के रोग सब शान्त हो जाते हैं।

माता पिता को तीर्थ कहा गया है। उनकी प्रसन्नता पर ही देवता प्रसन्न होते है। संसार में उन्हीका अभ्युदय होता है जो उनकी तिथि का विशेष ध्यान रखकर उनके निमित्त एकोद्दिस्ट श्राद्ध करना और पर्व तिथि पर पार्वण श्राद्ध करते है। स्वाभीष्ट चाहनेवाले पुरुषों को तत्तत् नक्षत्रों में श्राद्ध करना चाहिए।

स्वर्ग सुख चाहनेवाला कृत्तिका नक्षत्र में श्राद्ध करें। सन्तान चाहनेवाला रोहिणी में श्राद्ध करें। मृगशिरा में श्राद्ध करनेवाला तेजस्वी होता है। आद्रा में शौर्य तथा पुनर्वसु में सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होती है। पुष्य में अक्षय धन, आश्लेषा में पूर्ण आयु, मघा में सन्तान और स्वास्थ्य लाभ तथा फाल्गुनी में सौभाग्य की प्राप्ति होती है। हस्त नक्षत्र में शास्त्रज्ञान में प्रवीण होता है। चित्रा में रूप, तेज और सन्तति मिलती है। स्वाती में श्राद्ध से व्यापार में लाभ होता है। विशाखा में पुत्र की अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। अनुराधा में चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है ज्येष्ठा में मनुष्यों का प्रभुत्व प्राप्त करता है। मूल में उत्तम आरोग्य लाभ करता है। सूर्य के कन्या राशि पर रहते जिन-जिन कामनाओं का चिन्तन कर श्राद्ध करते हैं वे सब पूर्ण हो जाती है। वृश्चिक राशि के बीत जानेपर भी जब कोई श्राद्ध नहीं करता तो पितर लोग दु:सह शाप देकर खेदपूर्वक लम्बी-लम्बी साँस लेते हुए अपनी पुरी को लौट जाते हैं। पितर दो प्रकार के होते हैं अमूर्त और मूर्तिमान। नान्दी मुख नाम वाले पितर अमूर्त होते हैं और पार्वण श्राद्ध वाले मूर्तिमान होते हैं। एकोद्दिष्ट श्राद्ध ग्रहण करनेवाले पितरों की संज्ञा प्रेम होती है। इस प्रकार पितरों के तीन भेद बताये गये हैं। विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला प्राणी सबको तृप्त करता है। जैसे-

मनुष्य जो पृथ्वी पर अन्न बिखेरते हैं उससे पिशाच योनि में पड़े हुए पितरों की तृप्ति होती है। स्नान के वस्त्र से जो जल पृथ्वी पर टपकता है उससे वृक्षयोनि में पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। नहाने पर अपने शरीर से जो जल के कण पृथ्वी पर गिरते हैं। उनसे उन पितरों की तृप्ति होती है जो देवभाव को प्राप्त हो रहे हैं पिण्डों के उठाने पर जो अन्न के कण पृथ्वी पर गिरते हैं उनसे पशु-पक्षी की योनि में पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। जो बालक कुल में श्राद्धकर्म के योग्य होने पर भी संस्कार से

वंचित रह गये हैं या जलकर मर गये हैं वे बिखरे हुए अन्न या सम्मार्जन के जल से सद्गति को प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण लोग भोजन करके जब हाथ मुँह धोते हैं और चरणों का प्रक्षालन करते हैं उस जल से भी अन्यान्य पितर जो किसी भी निकृष्ट योनि में हैं तृप्त होकर स्वर्ग में चले जाते हैं। अन्यायोपार्जित धन से भी यदि श्राद्ध किया जाता है तो उससे चाण्डाल आदि योनियों में पड़े हुए पितर तृप्त हो जाते हैं इसलिए पुत्र को उचित है कि पिता माता को तिथि पर एकोद्दिष्ट और यथासमय पार्वण श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। अन्यथा वह पुत्र कहलाने योग्य नहीं।

गया, काशी, ब्रह्मकपाली, बदरिकाश्रम आदि स्थानों में पिण्ड देने से वह मुक्त हो जाता है।

अत: मुक्तात्मा प्राणी के लिये भी श्राद्ध करने का विधान है हमलोग जो भी पितरों के लिये पिण्ड दानादि करते हैं वह पहले दिव्य पितरों को प्राप्त होता है। हमारे दिव्य पितर भीष्म सनकादिक हैं वे अपनी दिव्य दृटि से देखते हैं कि वह प्राणी कहाँ गया। जहाँ भी जिस योनि में वह होता है और जो भी वस्तु उसे प्रिय होती है वह उसी रूप में उनके आशीर्वाद से कई गुणित होकर उसके पास पहुँचा दी जाती है। यद कदाचित् वह प्राणी मुक्त हो गया तो उसे तो आवश्यकता है नहीं ऐसी स्थिति में हमारे परम पूज्य दिव्य पितर उसे अपने आशीर्वाद से शतगुणित अधिक करके उसके परिवारवालों को प्रच्छन्नरूप से भेज दी जाती है जिससे उसका पूरा परिवार धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादि से समृद्ध होकर चिरकाल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। उसके परिवार में किसी की अपमृत्यु नहीं होती। वह पूर्णायु प्राप्त करता है। उसके परिवार में सब उदार होते हैं कोई कृपण नहीं होता। अत: हर अवस्था में प्रत्येक को श्राद्ध करना चाहिये।

जीवित दशा में पिता की आज्ञा पालन करता है, मृततिथि पर खूब ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराता है तभी वह पुत्र कहलाने योग्य होता है। मन की बात जानकर बिना कहे जो काम करे वह उत्तम पुत्र का लक्षण है जो कहने पर करे वह मध्यम श्रेणी का जो अश्रद्धा से करे वह अधम श्रेणी का और जो कहने पर भी न करें वह पिता के मल के समान त्याज्य है पुत्र नहीं। अत: खूब सोच-विचारकर पुत्र को श्राद्ध करना चाहिये, उपेक्षा नहीं।

जो भिक्षुक है भिक्षा से ही अपना पेट पालता है। श्राद्ध के लिये कोई साधन नहीं है, वह एकान्त जंगल में जाकर दोनों हाथ ऊपर उठाकर पितरों से दीनतापूर्वक विनती प्रार्थना करें। हे मेरे पितर मेरे पास श्राद्ध करने को कुछ नहीं है मैं विवश हूँ मुझे क्षमा करे इतना कहकर दो आँसू भी बहा देता है। पितर उसपर प्रसन्न हो आशीर्वाद देकर चले जाते हैं जन्मान्तर में वह धनधान्य से परिपूर्ण हो जाता है। यह शास्त्रीय व्यवस्था है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

सात्त्विक भोजन, दूध, दही, खीर, पूड़ी, मोदक, हलुआ, मालपुआ, फल, मेवा, दहीबड़ा, चटनी आदि श्राद्ध में देना चाहिये। विशेष चटपटे, खट्टे, तीखे राजसी तामसी पदार्थ नहीं यह राक्षसों का भोजन है। खीर में मेवा के साथ थोड़ा मधु घृत अवश्य डालें। पितरों को चाँदी अत्यन्त प्रिय है, इसलिये यथाशक्ति चाँदी का कुछ दान अवश्य करना चाहिए। श्राद्ध में सत्पात्र कर्मनिष्ठ वैदिक ब्राह्मण को जो यथासमय सन्ध्योपासन तथा गायत्री जप करनेवाले हों उन्हें भोजन कराना चाहिये। जिस कन्या का विवाह गौरी अष्ट वर्ष की अवस्था में हुआ हो उससे उत्पन्न पुत्र, योगी और गयाश्राद्धी इन तीनों को भोजन कराने से पितर अनन्तकाल तक तृप्त रहते हैं।

दौहित्र, जामाता, भानजा, मामा, गुरुभक्त, शिष्य सम्बन्धी ये सभी श्राद्ध में उत्तम माने गये हैं। इन्हें निमन्त्रित करना चाहिये। श्राद्ध का निमन्त्रण एक दिन पहले ही देना चाहिये। उस समय से श्राद्धकर्ता और ब्राह्मणों को संयम से रहना चाहिये। दोनों ही स्त्री सहवास न करें अन्यथा उनके रज वीर्य में पितरों को शयन करना पड़ता है।

यदि कदाचित् संन्यासी आ जायँ तो उसे भी प्रेमपूर्वक बैठाकर अलग भोजन करायें। ब्राह्मणों के साथ में नहीं।

श्राद्ध में मांस का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये अन्यथा उस प्राणी की बड़ी दुर्गति होती है। लहसुन, प्याज, लौकी, गाजर, मूली, बैंगन, शलगम, सत्तू इनका उपयोग न करें।

श्राद्ध में मांस न दें और न स्वयं खायें ही। सात्त्विक अन्न से जो तृप्ति होती है वह पशुहिंसा से नहीं। ऐसे लोग कुत्ता, बिल्ली, भेड़िया, गीदड़ आदि निकृष्ट योनि में जाते हैं। मांस राक्षसों का भोजन है मनुष्योंका नहीं। जिनकी मांस खाने में प्रवृत्ति है वे स्वयं दूसरे जन्म में भेड़, बकरे बनेंगे और उसी तरह तड़पातड़पाकर मारे जायेंगे। यमराज के आदेश से ये निकृन्तन नामक नरक में डाले जाते हैं वहाँ यमदूत तीक्ष्ण कुठारों से इनकी बोटी-बोटी काटते हैं तब इन्हें मांस खाने का फल मिलता है। मांस खानेवालों की तामसी वृत्ति हो जाती है जिससे देश में अशान्ति फैलती है और ये ही लोग मार-काटकर जनता को कष्ट देते हैं, ऐसे लोगों का संग भी वर्जित है। जो मद्य-मांस, मदिरा का सेवन नहीं करते वे बड़े ही पुण्यात्मा है। वे सुन्दर विमानों में बैठकर धर्मराज के नगर में सुखपूर्वक यात्रा करते हैं उनकी सेवा में सिद्ध गन्धर्व विद्याधर खड़े रहते हैं। जो एक हजार गौओं का दान करता और जो कभी मांस भक्षण नहीं करता वे दोनों समान फल के भागी होते हैं। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने का जो पुण्य मिलता है और सम्पूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही पुण्य और फल की प्राप्ति मांस न खानेवाले पुण्यात्मा को होती है।

यदि परलोक में सुख प्राप्त करना चाहते हैं। आश्चर्य है दूध, रबड़ी, मलाई, मक्खन, घी तथा सुस्वादु फलों मेवा के रहते उदर के अन्दर विष्ठा मूत्र से संसिक्त घृणित मांस को खाते हैं ऐसे नराकार पशुओं को धिक्कार है। ये प्राणी नरक यातना भोगकर पुन: भेड़, बकरोंकी योनि में जन्म लेते हैं। फिर वे ही बकरे जिनका मांस इन्होंने खाया है वे मनुष्य बनकर इनका मांस खाते हैं। इनकी यही परम्परा जारी रहती है कभी भी इनकी सद्गति नहीं होती।

बुजुर्गों के प्रति, पितरों के प्रति श्रद्धा ही श्राद्ध है। भाद्रपद की पूर्णिमा से प्रारंभ होकर अश्विनी मास के कृष्णपक्ष तक कुल सोलह दिनों की अवधि पितृपक्ष कहलाती है। इसे कनागत भी कहते हैं। इस समय सूर्य कन्या राशि में चला जाता है इसीलिए इसे कन्यार्कगत या कनागत कहा जाता है। ब्रह्म पुराणानुसार अश्विन मास के कृष्णपक्ष में यमराज सभी पितरों को अपने यहां से स्वतंत्र कर देते हैं, ताकि वे अपनी संतान से पिण्डदान के लिए पृथ्वी पर आ सकें।

कर्मपुराण के अनुसार पितर पृथ्वी तल पर यमलोक से यह जानने के लिए इन दिनों विचरण करते हैं कि उनके कुल के लोग उन्हें याद भी करते हैं या नहीं। यदि श्राद्ध के माध्यम से उन्हें स्मरणांजलि अर्पण नहीं की जाती तो उन्हें दु:ख होता है। श्राद्ध न करनेवाले ऐसे लोगों को पितर श्राप देकर यमलोक चले जाते हैं। इसके विपरीत श्राद्ध करनेवाले व्यक्तियों को पितर दीर्घ आयु, धन, संतान, विद्या तथा विभिन्न प्रकार के सांसारिक सुखों का आशीर्वाद देकर प्रसन्नता पूर्वक अपने लोक में लौट जाते हैं।

यमराज का सभी पितरों को अपने यहां से स्वतंत्र करना यह बात तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि गीता अध्याय दो, (श्लोक २२) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है। जब नया शरीर धारण कर लेते हैं तो यमलोक में न होकर जीवात्मा नए शरीर में पुन: पृथ्वीलोक पर ही रहती है।

पूर्वजों को आत्मिक तुष्टि प्रदान करने का भाव है तर्पण- श्राद्ध शब्द की उत्पत्ति श्रद्धा से हुई है। पितृपक्ष में श्रद्धा भाव से

पितरों और पूर्वजों को दिया गया पिंडदान उन्हें असीम तुष्टि देता है। इसे ही तर्पण कहते हैं जिसके मूल में पूर्वजों को आत्मिक तुष्टि प्रदान करने की भावना निहित है। वैसे भी, तर्पण के पीछे पूर्वजों एवं पितरों को मुक्ति प्राप्त होने की प्रार्थना निहित है। इसमें तृप्ति एवं मुक्ति संयुक्त हैं।

पितृ शब्द से पितर की उत्पत्ति हुई है और संतान के प्रति मोह नैसर्गिक है। मृत्यु उपरांत भी मोह के बंधन छूटते नहीं हैं। ब्रह्मपुराण के अनुसार यमराज श्राद्धपक्ष में पितरों को मुक्त कर देते हैं जिससे वे अपने वंशजों के समीप आकर पिंडदान ग्रहण करें और तृप्त होवें। पर पितर तो सूक्ष्म शरीर हैं और आत्मा निर्विकार है, फिर माया का मोह जाल उसे कैसे भ्रमित कर सकता है? यह समझने के लिए मनुष्य के मन में स्थित मूलभूत इच्छा को समझना होगा। शास्त्र कहते हैं कि आत्मा सर्वमय है और जिस प्रकार के कर्म में आत्मा प्रवृत्त होती है, उस अनुरूप ही उसका स्वभाव हो जाता है, पुण्य कर्म करने पर उसे पुण्यात्मा और पापकर्म करने पर पापात्मा शब्दों से परिभाषित किया जाता है।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि स्वजनों के प्रति प्रेम-पाश में बंधकर ही हम जीवन पर्यंत सही-गलत कार्य करते हैं और इसे उत्तरदायित्व निर्वाह का नाम देते है। ऐसा करते हुए हमें आत्मिक संतुष्टि प्राप्त होती है, जिस कारण कई बार हम पाप-पुण्य के बीच का भेद भी धूमिल कर देते हैं। जीवन में जन्म-मरण का चक्र अपनी गति से चलता रहता है, पर मोह के धागे तो मरणोपरांत भी बांधे रखते हैं। श्राद्धपक्ष में दिवंगत आत्माएं अपने वंशजों के द्वारा अभिव्यक्त किए गए श्रद्धा पुष्प को ग्रहण करने के लिए प्रतीक्षारत रहती हैं, जो उन्हें असीम संतुष्टि देते हैं।

पिंडदान में जल और अन्न का अर्पण पितरों के सूक्ष्म शरीर को संतुष्ट करता है। पर वास्तविक भाव श्रद्धा है जो उन पितरों की अतृप्त कामनाओं को पूर्ण कर देता है, जिससे उनका आशीर्वाद कुटुंब पर बसता है। कामनाओं की तृप्ति एक क्रांतिकारी क्षण है। यम नचिकेता संवाद में यह कहते हैं कि- जिस क्षण कामनाएं पूर्ण होती हैं उस क्षण मरण धर्मा यात्री सहसा अमरत्व को प्राप्त कर लेता है और ब्रह्म में लीन हो जाता है। इसे ही मुक्ति कहते हैं और इस हेतु ही तर्पण किया जाता है। कामनाएं तो जीवन से जुड़ी हैं? प्रत्येक माता-पिता को अपनी संतान से श्रद्धा और प्रेम की कामना है, फिर इनकी पूर्ति हेतु तर्पण की प्रतीक्षा क्यों? माता-पिता एवं श्रेष्ठ जनों के साथ जीवन की भागदौड़ से समय निकालकर व्यतीत करें, जिससे उनकी कामनाएं पूर्ण हो सकें।

जीते जी अपने माता-पिता की अवहेलना, अनादर, प्रताड़ना और मृत्युपरांत श्राद्ध कर्म करके तर्पण, यह कोई मायने नहीं रखता। जिस मां-बाप ने उंगली पकड़कर चलना सिखाया, पढ़ना सिखाया और पूरा जीवन निर्माण किया, उसी मां-बाप की वृद्धावस्था में बदहाली, गैरत भरी जिंदगी जीने को मजबूर करना क्या श्राद्ध के नाम पर ढोंग नहीं है ऐसे पुत्र के लिए? अच्छा होगा जीते जी बुजुर्गों को सम्मान और प्रेम दें। तब जो श्रद्धा होगी वही श्राद्ध का असल रूपक होगी- जीते जी खुश करके बुजुर्गों का आशीर्वाद प्राप्त करना। श्राद्ध से सीधा तात्पर्य है- पितरों को याद करना, श्रद्धांजलि अर्पित करके उनके अहसानों को याद करना और जीते जी कभी भी दुखित न करना।

आज की स्वार्थ भरी दुनिया में बुजुर्गों का आदर घटता जा रहा है और मृत्युपरांत श्राद्ध करके यह बताने का प्रयास किया जाता है कि हम कितने पितर-भक्त हैं। यह तो श्राद्ध की तौहीन है। यदि तहेदिल से जीते-जागते मां-बाप व बुजुर्गों की सेवा की जाए तो मृत्युपरांत अपने मृत परिजनों को स्मरणांजलि प्रस्तुत करना श्राद्ध के माध्यम से सार्थक है। श्राद्ध का औचित्य, उसकी सार्थकता इसी में है कि बुजुर्गों की जीते जी सम्मान मिले।

आस्तिक-नास्तिक

प्रत्येक कार्य में छिछोरापन कराना, कार्य के फलाफल को बिना जाने उसमें प्रवृत्त होना, यह बुद्धि की अस्थिरता के लक्षण हैं। जो प्रत्येक कार्य को भली-भाँति समझ-सोचकर गम्भीरता के साथ करते हैं और निश्चय किये हुए कार्य को स्थिरता के साथ करते हैं, वे संसार में विपुल कीर्ति और देव दुर्लभ मान-सम्मान प्राप्त करते हैं। ये सब गुण नास्तिकोंमें हरि-भक्ति विहीन पुरुषों में कभी नहीं आ सकते। अत: इन सब सद्गुणों की जननी है- आस्तिकता। आस्तिक पुरुष से कभी पाप कर्मों को सम्भावना ही नहीं हो सकती क्योंकि वह तो सर्वत्र अपने श्रेष्ठ स्वामी को देख रहा है। बड़ों के सम्मुख पाप कर्म करने का साहस हो ही नहीं सकता। आस्तिक पुरुष को अपना निजी अहंकार भी नहीं होता। वह स्वयं निरहंकारी बनकर अपने स्वामी को सर्वत्र देखता है।

बढ़ती जा रही है निरंतर, संवेदना की शून्यताएं। न आत्मा रह गई है न उसके अस्तित्व की चेतना।।
फिरभी तुम्हारे अस्तित्व के शब्द मात्र को मानकर, खुद को आस्तिक कहते हैं।।

हमारे जीवन की सभी क्रियाएं ईश्वर की शक्तियां चला रही हैं। उसी की इच्छा से हमारा जन्म हुआ, हमारी मृत्यु भी उसी की इच्छा से होगी। इसलिए मन और बुद्धि हमेशा स्वस्थ, सतर्क और कार्यक्षम रखें। कुछ इच्छाएं मन में अनपेक्षित रूप से प्रवेश करेंगी, उन्हें टटोलकर देखें। वे अनुचित न रहें तो उनके अनुसार वर्तन करें। कुछ विचार कहीं से हमारे मन में उतरकर हमें कार्यप्रवण करते हैं। मन की इच्छाएं और बुद्धि के विचार पर अमल करने आत्मा हमें आदेश देगी। उसके अनुसार कर्ता-कारक हमसे कार्य करवायेगा। इस तरह से आस्तिक व्यक्ति विचार करता है।

जो लोक देवता, पितर, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व आदि योनियों को मानते नहीं वे नास्तिक है। आस्तिक परलोक, शास्त्र, देवता सभी को मानते हैं।

आस्तिकता कभी चर्चा से तृप्त नहीं होती, आस्तिकता को अनुभूति चाहिये। शरीर को ही सब कुछ समझकर, ईश्वर की सत्ता न मानना, किसी को नमन न करना, मैं मेरी में ही फँसे रहना, इसी का नाम नास्तिकता है। इस नश्वर शरीर से पृथक आत्मा है, उसी अचिन्त्य शक्ति की सदा शरण ग्रहण करते रहना, हृदय, वाणी और शरीर से उन्हें निरन्तर नमो नम:, नमो नम: करके नमन करते रहना, सब कुछ उन्हीं का समझना इसी का नाम आस्तिकता है। आस्तिकता के विपरीत भाव को नास्तिकता कहते हैं, मम मम यही नास्तिकता है। न मम न मम- नमो नम: नमो नम: यही आस्तिकता है। संसार के विषय सुख जन्य पदार्थ प्रारब्ध कर्मानुसार नास्तिकों को प्राप्त हो जाते हैं और आस्तिक भी संसारी वस्तुओं के अभाव में दु:खी देखे गये हैं, किन्तु मानसिक शान्ति विषयी नास्तिकों को कभी प्राप्त नहीं हो सकती। इसके विपरीत धनहीन आस्तिकों पर संसारी सामग्रियाँ न रहने पर भी उन्हें मानसिक सन्तोष देखा गया है। अत: सुख दु:ख का सम्बन्ध वस्तुओं से होकर मन से है तो भगवान को प्रणाम करने में ही है। जो ऐश्वर्य के मद में भरकर ऐसा नहीं करते अन्त में उनकी दुर्गति ही है।

संसार में जितने भी वाद हैं सब भगवान को ही तो लेकर हैं। कोई कहता है भगवान हैं, कोई कहता है भगवान नहीं है। जो कहता है भगवान हैं वह भी भगवान के गुण गाता है। जो कहता है भगवान नहीं है, वह भी भगवान के ही सम्बन्ध में चर्चा करता है। एक उन्हें आस्ति रूप से मानता है, दूसरा उन्हें नास्तिक रूप से मानता है। उनकी सत्ता स्वीकार किये बिना

आस्ति, नास्ति कुछ कहना बनता ही नहीं। जो कहते हैं आस्ति उनमें भी बड़े वाद हैं। कोई कहता है वे शिव रूप हैं, कोई विष्णु रूप बताता है। कोई दुर्गा, सूर्य, गणेश, कर्म, ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत आदि-आदि अनेक प्रकार से उनकी मीमांसा करते हैं। इस प्रकार जितने वाद-विवाद हैं उन्हीं को लेकर ही पक्षी आकाश के भीतर ही उड़ेगा। वह सोचे- इस आकाश ने तो हमें बन्धन में बाँध रखा है। अब हम इसे मानेंगे ही नहीं। पक्षी माने, चाहे न माने, उड़ना उसे आकाश में ही होगा। आकाश छोड़कर वह कहीं जा नहीं सकता। इसी प्रकार कुछ लोग कहते हैं- संसार में जितने संकट हैं ईश्वर को ही लेकर हैं, अत: ईश्वर का ही बहिष्कार करो। ईश्वर को ही मानना छोड़ दो। भले ही छोड़ दो, किन्तु ईश्वर के बिना रह नहीं सकते। जो भी कल्पना करोगे, जो भी वाद खड़ा करोगे उसका आधार तो ईश्वर ही होगा। मीमांसक लोग कर्म को ही ईश्वर मानते हैं। जो जैसा कर्म करेगा वह वैसा फल पावेगा। कर्म के अतिरिक्त वे किसी अन्य ईश्वर को नहीं मानते, अत: उन्हें कोई-कोई नास्तिक भी कहते हैं, किन्तु कहने से क्या हुआ नास्तिक भी हो तो उसका भी मूल आधार तो भगवान ही हैं। भगवान को ही लेकर तो उनका वाद आरम्भ होता है, भगवान ने कुछ ऐसी मोहिनी माया फैला रखी है कि सभी अपने-अपने वाद को सत्य मानते हैं। ऐसे ही आस्तिक, नास्तिक दक्षिणमार्गी वाम मार्गी, शैव, शक्त, गणपत्य सौर तथा वैष्णव सभी इसी में फँसे हुए है।

किसी-किसी का मत है कि न स्वर्ग है न नरक। परमात्मा परब्रह्म किसी ने देखा नहीं। जो कुछ है सो यह शरीर ही है। शरीर के जल नष्ट हो जाने के अनन्तर कुछ भी नहीं रहता। मृतक पुरुष के निमित्त तर्पण करना श्राद्ध करके ब्राह्मणों को भोजन कराना यह सब मिथ्या है, ढोंग है। कुछ भाण्ड, धूर्त निशाचर पुरुषों ने अपने पेट को बढ़ाने के लिये वेद पुराणों को बना लिया है, उनमें बात-बात पर ब्राह्मण भोजन है, छींको तो ब्राह्मण भोजन कराओ, पैदा हो तो ब्राह्मण को खिलाओ, मरे तो ब्राह्मणों को खिलाओ। यदि ब्राह्मण के खिलाने से परलोक में बैठे प्रेत का पेट भर जाता हो, तो यात्रा में हम आटा दाल, चावल, लड्डू सकलपारे बाँधकर क्यों ले जाया करें। ब्राह्मण को यहाँ खिला दिया करें, यात्रा में हमारा पेट भर जाया करे, किन्तु ऐसा होता नहीं। जब घर पर खिलाने से यात्रा में हमें नहीं मिल सकता तो परलोक में प्रेत को तो कैसे मिल जायगा। तर्पण से पितर तृप्त हो जायँ तो दोपहरी में खेतों में काम करनेवालों को जल बाँधकर ले जाने की क्या आवश्यकता है। सब लोग खेत पर काम करते रहें, एक आदमी ब्राह्मण का मुख फाड़कर उसमें ठण्डा जल भरता रहे। ऐसा करने से जब खेत वालों की ही प्यास नहीं बुझती तो फिर परलोकगत पितरों की प्यास क्या बुझेगी। परलोक, वेद, यज्ञ, याग, कुछ नहीं। परम पुरुषार्थ यही है कि जैसे हो तैसे इस शरीर को सुखी रखे। परलोक किसी ने देखा नहीं। वह आकाश का पुष्प शशक का श्रृङ्ग, बन्ध्या का पुत्र गूलर का फूल, ईख का फल तथा चन्दन की अर्द्ध स्फुटित कलिका के सदृश है इसलिये परलोक की चिन्ता छोड़कर सर्व प्रयत्नों द्वारा इस शरीर को परिपुष्ट करो। पाप नामक कोई वस्तु ही नहीं। पेट को न भरना ही पाप है किसी उपाय से उसे सजाना बजाना हृष्ट-पुष्ट बनाना यही पुण्य है। जो मर गया, वह फिर लौटकर नहीं आता। अत: शरीर को सुखी बनाना अपने साथियों को खिलाना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य है।

कुछ लोगों का कथन है- नहीं भाई, परलोक एक है, वह शरीर के पोषणमात्र से ही नहीं मिल सकता। अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास्य, चातुर्मास्य, पशुयज्ञ तथा सोमयज्ञ आदि यज्ञ यागों को करना चाहिये जन्माष्टमी, रामनवमी, एकादशी आदि के व्रत करने चाहिये, कृच्छ, चान्द्रायणादि तप करने चाहिये, दान देना चाहिये, यम नियमों का भली-भाँति पालन करना चाहिये। यह सब करनेवाला आस्तिक है।

सेवा-सुश्रुषा

सेवा वही कर सकता है जो अपने लिए कभी कुछ नहीं चाहता। सेवा करने की चाह भी कामना है और जहां कामना हों वहां सेवा कहां ? लोग कहते हैं कि सेवा तो धनादि वस्तुओं से ही की जा सकती है। इस पर घनश्याम दासजी बिड़ला ने एक जगह लिखा है कि सच्ची सेवा तो हवा करती है। उसके पास कौन-सी स्थूल वस्तु है, सेवा करने के लिए ? भौतिक वस्तुओं से सेवा करना तो बहुत ही स्थूल बात है। वास्तव में तो सेवा एक भाव है, कर्म नहीं। कर्म से बंधन और सेवा से मुक्ति मिलती है। सेवा का भाव मन में होने से अपने पास जो वस्तुएं हैं वे स्वत: सेवा में लग जाती हैं। वास्तव में सेवा भाव से होती है, वस्तुओं से नहीं। वस्तुओं से कर्म होते हैं, सेवा नहीं। जरूरतमंदों को धन या वस्तुएं दे देना दान भले ही हो, पर सेवा तो कदापि नहीं। मान-बड़ाई पाने के लिए गरीब-दुखियों को दवाइयां कंबल आदि बंटवा देना सेवा नहीं है। कोई अनाथ दर्द से छटपटा रहा है, उसके हाथ-पैर दबाकर उसे राहत पहुंचा देना सेवा भाव है। ऐसे में हम जिसकी सेवा करते हैं उसमें भी सेवाभाव जागृत होता है। दीन-दुखियों की सेवा करने से लोग मुझे अच्छा कहे, पत्र-पत्रिकाओं में मेरे फोटो छपें, ऐसा भाव आते ही मन में अभिमान आ जाता है। संसार के लिए ही है। संसार में कुछ प्राणी दुखी हैं और कुछ सुखी। दुखी को देखकर अन्त:करण से दुखी होना और सुखी को देखकर सुखी हो जाना भी सेवा है। जो दूसरों के दुख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होते हैं, वही सच्चे सेवा भावी सज्जन हैं। गोस्वामीजी ने भी मानस में लिख दिया है- विषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख-दुख सुख सुख देखे पर। जीव से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। सेवा-धर्म का वास्तविक अनुष्ठान करने से संसार का बंधन सुगमता से कट जाता है। सेवा करने से हृदय शुद्ध होता है, अहंभाव दूर होता है सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करने के अभ्यास से शान्ति प्राप्त होती है।

सेवा ऐसा मंत्र है, जो मानव समाज की संरचना में सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। सच्ची सेवा सबसे बड़ा सद्कर्म है। सच्ची सेवा में ही प्रभु का वास होता है। सेवा वही कर सकता है जो संकेत समझता हो। घरमें अतिथि आया। पतिने पत्नीकी ओर देखा तो पत्नी समझ गयी कि अतिथिको जलपान कराना है। प्रेमसे, उल्लाससे सेवा होती है। सेवाकी पद्धति है कि जिसकी सेवा की जाय, उसकी शान्ति बनी रहे। सेवाहीन प्रेम सूखा है। जो शुष्क हैं वह प्रेम ही नहीं है। जहांतक बन सके सेवा करो। दीनोंपर दया करो। वैष्णवकी सेवा करो। जो सेवा किसीकी करते हो और सहारा किसी का लेते हो उनमें प्रेम नही होता।

सेवा के बिना संसार में न कोई सिद्धि प्राप्त कर सकता है न सेवा किये बिना कोई रह ही सकता है। अन्तर इतना ही है कि क्षुद्र हृदय के पुरुष क्षुद्र की सेवा करते हैं। संसारी विषयों में आसक्त प्राणी विषयी तथा भौतिक धन के धनी पुरुषों की उपासना करते हैं, उन्हें प्रसन्न रखने के लिये विविध प्रकार की क्रियायें करते हैं। जो स्वर्गीय सुखों को, देवलोक की अप्सराओं की अमृत तथा नन्दन के पुष्प की वांछा करते हैं, वे देवताओं की भक्ति करते हैं, किन्तु जो भुक्ति मुक्ति अनुरक्ति तथा भक्ति सब कुछ चाहते हैं, वे सर्वेश्वर की सेवा करते हैं। अन्य सब तो ऐसे हैं कि जो प्रसन्न होनेपर एक आध वस्तु दे सकते हैं, किन्तु श्रीहरि तो ऐसे हैं जिन्हें प्रसन्न कर लेने पर कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रह जाती, सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

जिसकी जो वस्तु है, यदि वह उसके काम नहीं आती तो वह उसे लिये निरर्थक है। जो जिस कार्य के लिये है और वह उस कार्य को नहीं करता तो वह चोर है। भगवान् के बनाये हुए शरीर का प्रत्येक अंग उनकी चल अथवा अचल किसी भी मूर्ति की सेवा में लगे यही उन अंगों की, उन इन्द्रियों की सार्थकता है। केवल भोजन खाकर मांस को बढ़ाते रहे और विषय

वासना में लिप्त होकर पापों को बढ़ाते गये तो यह तो अमूल्य मनुष्य जन्म का दुरुपयोग है। यह तो मणि देकर काँच लेना है। यह बुद्धिमत्ता नहीं। मनुष्य जीवन की सार्थकता तो सेवा में है। सेवा ही परम धर्म है, सेवा ही सर्वश्रेष्ठ साधन है, सेवा ही स्वर्ग है, कहाँ तक कहें सेवा ही सब कुछ है। जो सेवा करना नहीं जानता वह कुछ नहीं जानता। सेवा दो प्रकार की है, एक चल सेवा एक अचल सेवा। माता-पिता गुरु, भगवद्भक्त अतिथि तथा प्राणिमात्र को भगवान का स्वरूप समझकर भगवद् बुद्धि से उनकी यथाशक्ति सेवा करते रहना यह चल सेवा है और भगवान के अर्चा विग्रह मूर्ति आदि में भगवान की श्रद्धा सहित सेवा करना यह अचल सेवा है। जो दोनों ही करते हैं वे ही सच्चे भगवद् भक्त हैं। कोई ऐसा है कि दिन भर तो घण्टी हिलाता है, भगवान की प्रतिमा की पूजा करता है, किन्तु माता, पिता, गुरु, साधु, वैष्णव तथा अन्य सभी प्राणियों से द्वेष करता है, वह पूजक नहीं वञ्चक है। इसी प्रकार जो जन सेवक बनने का तो मन में अहंकार करता है, किन्तु भगवद् भक्तों को देखकर जल जाता है, मूर्ति पूजा और धार्मिक कृत्यों को ढोंग, दम्भ बताता है। वह भी यथार्थ में जन सेवक नहीं। वह एक प्रकार का व्यवसायी है। यथार्थ में ये दोनों एक ही हैं। जो अचल प्रतिमा अर्चाविग्रह में विराजमान हैं वे ही प्राणिमात्र में रम रहे हैं यही सेवा का सर्वोत्तम सिद्धान्त है।

स्नान, पाद्य, अर्घ्यादि से भगवान की तथा भगवद्भक्तों की सेवा सुश्रूषा करने से भी भक्ति बढ़ती है। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जो सेवा द्वारा न हो जाता हो। सेवा से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। शबरी सेवा से ही जगत् पूज्या बन गयी। सेवा से पाषाण पिघल जाते हैं, फिर सहृदय पुरुषों के तथा भगवान् के सम्बन्ध तो सर्वश्रेष्ठ है।

स्तुति तथा गुण कर्म कीर्तन-स्तोत्रों द्वारा भगवान तथा भगवद्भक्तों की विनीत भाव से स्तुति करना। भगवान के गुणों का उनके कमनीय कर्मों का तथा श्रुतमधुर सुन्दर नामों का नित्य नियम से कीर्तन करना यह भी भक्ति बढ़ाने के लिये सर्वश्रेष्ठ साधन है। जिनके गुणों का हम कीर्तन करेंगे उनके संस्कार हमारे हृदय में आवेंगे। जिनके कर्मों का चिन्तन और अनुकरण हम करेंगे उन कर्मों के प्रति हमारे हृदय में सहज अनुराग हो जायगा।

भगवद् कथाओं में श्रद्धा- भगवान की कथाओं के प्रति श्रद्धा रखना यह भक्ति का सर्वप्रथम और सबसे अन्तिम उपाय हैं। सन्तों के दर्शन के अनन्तर सर्वप्रथम भगवत् कथाएँ सुनने को मिलती हैं और कथा सुनते-सुनते ही भक्तों के शरीर का अन्त होता है। भगवत् ध्यान- मेरे भगवत स्वरूप का नख से लेकर शिखा तक तथा शिखा से लेकर नख पर्यन्त सम्पूर्ण अङ्गों का ध्यान करना चाहिये। ध्यान उन्हीं का आता है, जिनके कुछ-न-कुछ सम्बन्ध हो। भगवान से कैसे भी सम्बन्ध हो जाय, किसी भाव से सही, उनका ध्यान हो जाय, तो फिर पार करने को वे विवश हो जाते हैं। यह हो ही नहीं सकता कि जिसका हम निरन्तर ध्यान करें और वह हमारी ओर आकर्षित न हो।

सर्वलाभोपहरण- अपने को जो भी कुछ प्राप्त हो, सब मेरे अर्पण कर दे। अपना कुछ माने ही नहीं। बिना मेरे अर्पण किये जल भी ग्रहण न करे। जो सब कुछ भगवान के अर्पण कर देता है, उसे कर्मों का बन्धन नहीं होता।

दास्यभाव से आत्म समर्पण- शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर पाँच भाव कहे गये हैं इन सबमें दास्यभाव ओत प्रोत है। शान्तभाव में तो संसार को सच्चिदानन्द रूप देखते हैं। देखनेवाला तो पृथक हुआ ही। दास्यभाव में तो अपने को सेवक और इष्ट को स्वामी मानते ही हैं। दास्यभाव ही मधुर रस की अभिवृद्धि करता है, अत: दास्यभाव से आत्म समर्पण करना सर्वोत्कृष्ट साधन है।

मेरे जन्म कर्मों का कथन- परस्पर में चर्चा करनी हो तो मेरे जन्म कर्मों की ही करे। जिन नामों में मेरे जन्म कर्मों की स्मृति हो उनका उच्चारण करे। जैसे नन्द-नन्दन, यशुमतितनय, देवकीनन्दन, वासुदेव, मुरलीधर, गिरधारी,

केशिहा, कंसारि मधुसूदन, गोविन्द, मुरारी तथा अन्यान्य भी नामों का उच्चारण करे। अपने लड़के लड़कियों के भी ऐसे ही नाम रक्खे।

ममपर्वानुमोदन- रामनवमी, नृसिंहचतुर्दशी, जन्माष्टमी, बलदेव छटि, परशुरामजयन्ती, वामन द्वादशी तथा अन्यान्य पर्वों पर व्रत रखें। सबको इन्हें मनाने की प्रेरणा करे।

धार्मिक उत्सव- मेरे सम्बन्ध से भक्त समाज को एकत्रित करके उत्सव मनावे। इस प्रकार उत्सव मनाने से लोगों में धार्मिक भावों का संचार होता है। शनै: शनै: चित्त पर प्रभाव पड़ने लगता है और इस संसार के कार्यों से उपराम होकर चित्त भगवत् सेवा सम्बन्धी कार्यों में लग जाता है।

वार्षिकी पर्वयात्रा- मेरे धामों पर जो वार्षिक पर्वोत्सव होता है, जैसे रामनवमी पर श्री अवध में, जन्माष्टमी पर श्री व्रज में इसी प्रकार अन्य पर्व तिथियों पर मेरे स्थानों की यात्रा होती है वहाँ अपने सम्बन्धियों सहित जाएं, पूजा अर्चा करें, उन स्थानों की परिक्रमा करें तथा और भी जो वहाँ के लौकिक वैदिक कृत्य हों उन्हें करावें।

दीक्षा- मेरे सम्बन्ध की दीक्षा ग्रहण करे। दीक्षा दो प्रकार की हैं, एक तो वैदिक मन्त्रों की दूसरी तांत्रिक मन्त्रों की। जैसा अपना अधिकार हो, जैसी योग्यता हो, जैसी गुरुदेव की आज्ञा हो, जिसे शास्त्र मन्त्र देने की दृष्टि से अधिकार हो ऐसे सद्गुरु से मन्त्र दीक्षा ले। दीक्षा लेकर मन्त्र जपने से मन्त्र की शुद्धि होती है। दीक्षित होने से दृढ़ विश्वास हो जाता है। जैसे घर में किसी सजातीय कुमारी को रख लो, उससे सन्तानें भी हों, किन्तु उसे पत्नी कोई नहीं कहेगा, सभी रखैली कहेंगे। उसी के साथ पण्डित बुलाकर विधिवत् विवाह कर लो, तो वह पत्नी हो जायगी। दोनों के ये संस्कार दृढ़ हो जायँगे कि हम परस्पर में पति-पत्नी हैं। इसीलिये वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा का विधान है। दीक्षा होना पुनर्जन्म है। जिसे मंत्र दीक्षा लेगा दीक्षित उसी का हो जायगा।

व्रत धारण- जो भी व्रत नियम धारण करे, मेरे ही निमित्त धारण करे। मेरे पर्वों पर व्रत रखे। मेरी प्राप्ति के लिये विशेष व्रत लेवें। अमुक समय तक या जीवन पर्यन्त यह न खाऊँगा, यह कर्म न करूँगा, इस वस्तु का उपयोग न करूँगा। ऐसे व्रत करने से सर्वथा मेरी स्मृति बनी रहती है।

श्रीविग्रह श्रद्धा- मेरे मन्दिरों का जितना ही प्रचार प्रसार होगा, उतना ही संसार में मेरा यश फैलेगा, मेरी भक्ति का विस्तार होगा। अत: जो मेरा मन्दिर बनाना चाहता हो मेरी प्रतिमा स्थापित कराना चाहता हो, उसे उस काम में सहायता पहुँचाना कोई प्रतिमा-प्रतिष्ठा होती हो, तो वहाँ जाकर दर्शन करना, यथाशक्ति सहायता पहुँचाना।

मन्दिर निर्माणोद्योग- मेरे मन्दिर जहाँ जीर्ण हो गये हों, उनका जीर्णोद्धार करना। नये-नये मन्दिरों को बनाने का उद्योग करना। यदि इतना रुपया न हो तो इधर-उधर से लोगों को प्रेरित करके धन एकत्रित करावे। उसी सार्वजनिक धन से मेरे मन्दिर तथा वन उपवनों को बनवाने, लोगों को इन कार्यों में नियोजित करे।

मन्दिर सेवा- मेरे मन्दिरों में जाकर अभिमान छोड़कर छोटी-से-छोटी सेवा करे। भगवान के लिये किये जानेवाले सभी कार्यों को समान समझे। मेरे निमित्त जो भी कार्य किया जाय वही बड़ा है। अत: समस्त सेवाओं को यथाशक्ति यथासामर्थ्य स्वयं ही करे, मन में सङ्कोच या लज्जा न करे, जैसे मन्दिर को लीपना, पोतना, जल छिड़कना, झारूबुहारी देना, पौंछना। पार्षद मलना चौक पूरना, सर्वतो भद्र बनाना। और भी जो मन्दिर सम्बन्धी सेवायें हो उन्हें करना।

निर्मानता तथा निष्कपटता- मान होता है अभिमान से और कपट होता है दम्भ से। दम्भ वही करेगा जो क्षुद्र होगा। जो वास्तव में तो साधु है नहीं, किन्तु साधु का सा वेष बना लेता है। झूठी-झूठी बातें करके लोगों के मन को अपनी ओर खींच

लेता है, उसका सभी व्यवहार कपटपूर्ण होता है। वह बातें तो परमार्थ की करेगा, किन्तु उसके मन में स्वार्थ भरा रहेगा। इधर-उधर की बातें बनाकर लोगों से धन ठग लें, किसी तरह इन्हें मूड़ लें। ऐसे दम्भी पुरुष मेरी भक्ति के अधिकारी नहीं हो सकते। मेरे भक्त को तो मानवी इच्छा रहती ही नहीं। जब वह सम्पूर्ण जगत को मेरा स्वरूप समझता है, तो फिर वह मान की इच्छा किससे करेगा। वह स्वयं चराचर जगत् का मान करेगा। उसके लिये छिपाने की कोई बात ही नहीं है, वह तो कपट करके क्या करेगा, कपट करे भी तो किससे करे। उसका तो दृढ़ विश्वास है कि मेरे स्वामी मेरी सब बातें देख रहे हैं। वे घट-घट की जाननेवाले हैं। अत: मेरा निर्मान और निष्कपट होता है।

आत्म प्रशंसा अभाव- साधारण मनुष्यों का यह स्वभाव होता है कि जो अपने से शुभ काम बन जाता है, तो उसको सबसे कहते फिरते हैं। अपने आप अपने कर्मों की प्रशंसा करने में बड़ा आनन्द आता है, किन्तु आत्म प्रशंसा करने से पुण्य क्षीण होता है। अपने किये हुए भजन, पूजन, तप तथा अन्यान्य शुभ कर्मों को कभी किसी से भूलकर भी न कहे।

मुझे जो वस्तु दीपक आदि अर्पित्त की जाय, उसे अपने काम में कभी न लावे। मेरे निमित्त जो दीपक जलाया गया हो उसे अपने काम न लावे। अन्धकार दूर करने तथा पुस्तक आदि पढ़ने के लिये दूसरा दीपक जला ले, अथवा उसी दीपक में दो बत्तियाँ जला दें। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं को भी समझें। जो भी वस्तु मुझे अर्पित की जाय, तो फिर उसमें सभी का अधिकार हो जाता है। जो-जो वस्तुएँ संसार में अपने को अधिक प्रिय लगती हों उन्हीं को मेरे अर्पण कर दे। मेरे अर्पण करने से वह वस्तु अनन्त और अक्षय हो जायगी।

मम हित यात्रा करै देव मन्दिर बनवावै। स्वयं शक्ति नहिँ होहि यत्न करिकें करवावै।।
उपवन अरु उद्यान सभाथल शाला सुन्दर। ह्वैकें निश्छल नित्य करै लेपन मम मन्दिर।।
करी निवेदित वस्तु जो, लेइ न अपने काममहँ। करै समरपित वस्तु प्रिय, होहि प्रेम मम नाममहँ।।

पहले सेवा मूक होती थी वह परमेश्वर के निमित्त होती थी, उसमें यश प्राप्ति का भाव नहीं होता था। आज की सेवा तो कैमरे से फोटो उतरने तक ही सम्भव होती है, तत्पश्चात सेवा अदृश्य हो जाती है। सेवा ही वास्तविक सन्यास है। सन्यासी केवल अपनी मुक्ति का इच्छुक होता है। सेवा व्रतधारी अपने को परमार्थ की वेदी पर बलि दे देता है।

मनुष्य वही है जो किसी को भी दुख में देख द्रवित हो जाता है - भगवान महावीर के प्रथम गणधर थे इंद्रभूति गौतम। एक दिन उन्होंने भगवान महावीर से पूछा- आपका एक भक्त रात-दिन आपकी पूजा करता रहता है तथा दूसरा भक्त दीन दुखियों कीसेवा में इस तरह लगा रहता है कि आपके दर्शन तक नहीं कर पाता है तो दोनों में श्रेष्ठ किसे मानेंगे? महावीर ने कहा, जो दीन दुखियोंकी सेवा करता है, वह श्रेष्ठ है और वही मेरे धन्यवाद का पात्र है। गौतम विचार में पड़ गए कि यह क्या? भगवान की सेवा के सम्मुख दुखियों की सेवा का क्या महत्व? धन्यवाद तो उसे कहना चाहिए जो साक्षात प्रभु की सेवा करता है।

महावीर ने गौतम की दुविधा को शांत करते हुए कहा, मेरी सेवा, मेरी आज्ञा के पालन में ही तो है। मेरी आज्ञा है- प्राणिमात्र के प्रति दया भाव और पीड़ितों की सेवा। अत: दीन दुखियों की सेवा करनेवाला धन्य है, यही प्रभु की सेवा है। गौतम और महावीर का यह संवाद भव्य आदर्श का उदाहरण है। अनुकंपा की भावधारा में रोगग्रस्त, वृद्ध, थके हुए, बालक, मुनि, त्यागी व्रती की सेवा अंतत: जनहित ही का कार्य है, इससे आत्मोन्नति एवं आत्मशुद्धि की साधना संपन्न होती है। तीर्थंकर महावीर और उत्तरकालीन महान श्रुतधर आचार्यों ने आत्मसाधना के एक अभिन्न अंग के रूप में सेवा का निरुपण किया है। केवल स्वाध्याय करनेवाला स्वयं की ही आत्मोन्नति कर सकता है जबकि सेवा करनेवाला स्वयं और अन्य, दोनों को उन्नत करता है।

यही कारण है कि जैन परंपरा में जब व्यक्ति गुरु चरणों में तप, स्वाध्याय आदि साधना करने की आज्ञा लेने आता है तो गुरु सर्वप्रथम उसे संघ के रोगियों की सेवा का आदेश देते हैं। संघ में यदि कोई अस्वस्थ हो तो उस दिन उपवासादि तप को गौण करके सेवा प्रधान चर्या को महत्व देते हैं। हम यह मानें कि जैसे मेरा अस्तित्व है, वैसे ही सब का है। जैसे मुझे सुख प्रिय है, वैसे ही सबको प्रिय है। हर किसी को अपना जीवन प्रिय है। इसलिए मुझे सबके साथ वही व्यवहार करना चाहिए जो हम अपने लिए चाहते हैं। मनुष्य वही है जो किसी को कष्ट में देखकर द्रवित हो जाता है। उसके मन-प्राण आंदोलित हो उठते हैं और वह कष्ट निवारण के लिए तत्काल सेवा आदि उपायों में जुट जाता है। सेवा से चिंतन और भावों में सर्वभूतहितं की व्यापकता आती है। जीवन, धर्म और दर्शन के शब्द संसार में सेवा ऐसा शब्द है जो उदात्त भावों का ज्ञापक है। यह प्राणिमात्र से संबंधित अपनत्व का सारगर्भित सूत्र है। मनुष्य को महान बनानेवाले रचनात्मक धर्म का पावन रूप है। इसलिए हमारी जिम्मेदारी है कि जिस सेवा का हम उपदेश देते हैं, उसका हम खुद भी पालन कर एक उदाहरण प्रस्तुत करें। सेवा, शिक्षा और साधना, तीनों साथ चल सकते हैं।

मनुष्य इस दुनिया में आए हैं कुछ करने के लिए। वे अधिक दिनों तक जीवित रहना चाहते हैं तो वह भी कर्म करने के लिए। अगर हम कर्म करना नहीं चाहेंगे, दुनिया की सेवा करना नहीं चाहेंगे तो दुनिया के लिए बोझ बनकर रह जाएंगे। तब हमारी इस दुनिया में रहने की इच्छा ही खत्म हो जाएगी। यही मनाने लगेंगे कि दुनिया से जल्द से जल्द चले जाएं।

इसलिए हमें इस बात का अहसास हो या न हो, पर सच्चाई यही है कि मनुष्य इस दुनिया में कर्म करने आया है और कर्म ही करने के लिए वह ज्यादा से ज्यादा समय तक जीवित रहना चाहता है। इस बात को मन में हमेशा बनाए रखना चाहिए कि मैं इस संसार में अपने मिशन को पूरा करने के लिए ही जीवित हूं। इसीलिए मैं खा रहा हूं, मैं पोशाक पहन रहा हूं, मैं सो रहा हूं। इसको छोड़कर मेरे लिए सब व्यर्थ है।

यदि बिना किसी लक्ष्य के, बिना ध्येय के, कोई जीवन जीता है तो उस अवस्था में कोई भी प्रयत्न मानसिक क्षेत्र में सफलता नहीं ला सकता। मानसिक क्षेत्र के ऊपर आध्यात्मिक क्षेत्र है। आध्यात्मिक जगत में अपने लक्ष्य के विषय में चिंतन करना ही पर्याप्त नहीं है। लक्ष्य का उद्देश्य है बाहरी जगत में सेवा करना। बाह्य जगत में किसी का कोई भी लक्ष्य क्यों न हो, मूल रूप से उसके लक्ष्य का उद्देश्य होता है जगत के कल्याण को बढ़ावा देना। किंतु गति जब भीतर की ओर होती है, अर्थात् गति जब मन से आत्मा की ओर होती है तब लक्ष्य का कोई महत्व नहीं होता। तब हम अपने संपूर्ण अस्तित्व को परमपुरुष में विसर्जित करने जा रहे होते हैं। फिर भी जगदिहताय च हम व्रत लेते हैं। मनुष्य जीवन क्यों है, किसलिए है, आत्ममोक्षार्थम जगत हिताय च यानि आत्मा के मोक्ष के साथ समाज सेवा। जगत के हित का व्रत जरूर लें लेकिन उसके साथ-साथ यह भी बोलना पड़ेगा कि आत्ममोक्षार्थम् यानी अपनी मुक्ति के लिए। आत्ममोक्षार्थम के लिए जो प्रयास नहीं करते हैं, साधना नहीं करते हैं, उनसे जगत का कल्याण भी नहीं करते है, उनसे जगत का कल्याण भी नहीं होता है। यदि हम अपने लक्ष्य का कार्य करने की शपथ लेते हैं तो अपने इस संकल्प के जरिए दुनिया का भला करने की कोशिश कर सकते हैं, मगर उन कोशिशों से अपनी आत्मा के मोक्ष की उम्मीद नहीं कर सकते। आध्यात्मिक क्षेत्र में हमारी प्रगति केवल हमारे बाहरी लक्ष्य पर निर्भर नहीं है। इसके लिए हमें अपने बाहरी मिशन को आगे बढ़ाने के साथ-साथ साधना पर भी ध्यान देना चाहिए। अपनी साधना और समाज की सेवा दोनों दो चीजें भले दिखें, लेकिन दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। मानव अस्तित्व का महत्व इसमें है कि उसे संसार की सेवा करनी है और स्वयं के लिए साधना करनी है। इसी में उसकी सर्वांगीण मुक्ति है।

तप-तपस्या, जप

कर्मेन्द्रियों को कुमार्ग पर न जाने देना उनके इच्छित संसारी सुख भोगों को उन्हें न देने का नाम तप है।

एक बार बाहरी त्याग करना आसान है परंतु आंतरिक त्याग करना मामूली नहीं है। घर छोड़ना सहज है लेकिन घर का मोह छोड़ना कठिन है। घर छोड़ दिए परंतु घर का मोह बना रहा तो क्या मतलब ?

तप में आनंद है। तप में आत्मरस का स्वाद है। अर्थात इस दौरान उपवास, एकासन, रसत्याग ऐसे कुछ न कुछ तप करना चाहिए। यह हुआ बाह्य तप। आंतरिक तप में क्रोध, मान, माया-मोह-लोभ ये चार शत्रुओं का दमन होता है, इससे स्वभाव में जब तक क्षमाभाव-दयाभाव नहीं आता तब तक कितनें भी उपवास रखें सब निरर्थक है। हमारे आचार्यों ने विभिन्न माध्यमों से संसार व त्याग का सुंदर वर्णन किया है। हाथी जितने बार भी नदी में स्नान करता है उतनी बार अपने शरीर में मिट्टी धूल लपेट लेता है। यही दशा मनुष्यों की भी है। मंदिरों में, पूजा अर्चना में, सत्संग में रहते हैं तब तक हमारा मन स्वच्छ रहता है लेकिन जैसे ही हम घर पहुंचते हैं वैसे ही ये सारी चीजों को भूलकर अपने संसारों की धूल को आत्मसात कर लेते हैं। संसारी मनुष्यों का ध्यान बको ध्यान की तरह है, जैसे ही मोहजनित कोई वस्तु दिखाई दी उनके संयम के धर्म ध्यान का बांध टूट जाता है। इच्छाओं का त्याग करना ही तप है।

तप को भगवान का हृदय बताया है। जो निष्कपट निरहंकार होकर तपस्या करता है, वह श्रीहरि के हृदय में समा जाता है। श्रीहरि उसे अपने हृदय का हार बनाकर सदा कण्ठ में धारण किये रहते हैं। तप का सबसे बड़ा विघ्न है अहङ्कार। जहाँ तप में अहंकार ने प्रवेश किया, वहीं सब सत्यानाश हो जाता है। तप में बड़ा आकर्षण है, त्याग में बड़ी शक्ति है, जहाँ हमने विषयों का त्याग किया, तहाँ वे विषय जिनके लिये पहिले लालायित रहते थे, हाथ जोड़े सम्मुख खड़े रहते हैं, उनका भी निरहङ्कार भाव से जो त्याग कर देते हैं और अपने तप का त्याग या क्षय नहीं करते, वे ही तपस्वी हैं। जो काम, क्रोध और लोभ इन तीनों शत्रुओं से सदा सावधान होकर अपने लक्ष्य की ही ओर ध्यान रखते हैं वे अपनी इष्ट वस्तु को प्राप्त करने में अवश्य ही सफल होते हैं। इस आदर्श को भगवान ने नर-नारायणावतार में प्रत्यक्ष करके दिखा दिया।

तप के बिना शुद्धि नहीं। जीव के साथ अनादि कर्म वासनाओं का संयोग हो गया है, विशुद्ध से वह अशुद्ध-सा बन गया है। मल, विक्षेप तथा आवरण से अन्त:करण ऐसा ढक गयाहै कि उसे अपने सत्स्वरूप की विस्मृति हो गयी है। तप द्वारा जब मल पृथक् हो जाता है, तब शुद्ध स्वरूप में श्यामसुन्दर की झलक दिखायी देती है। तप कहते हैं शरीर तपाने क्लेश देने को। यह शरीर स्वभाव से सुख चाहता है। सुन्दर विषय वासना युक्त कामोद्दीपक संगीत सुनने से, अपनी स्तुति प्रशंसा सुनने से मनोहर चित्ताकर्षक, रमणीय रूप देखने से, स्वादिष्ट हृदय मधुर कुटकुरे, भुरभुरे, लुचलुचे, रसीले मृदुल सुस्वादु पदार्थों का रसना से स्वाद लेने से, अच्छी सुगन्धित वस्तुओं के सूँघने से, मुलायम सुन्दर, सुखद, कोमल, सुकुमार शरीरों तथा गद्दा तकिया के स्पर्श तथा सेवनादि से चित्त स्वत: प्रसन्न होता है। इनका त्याग कर देना शरीर निर्वाह के ही निमित्त ही वस्तुओं का सेवन करना यही तप कहलाता है। कृच्छ चान्द्रायणादि व्रत भी तप के अन्तर्गत है। यथार्थ परम तप तो काम वासनाओं का, भोगों का मन से त्याग देना ही है।

तपस्या- तपस्या के प्रभाव से दुर्लभ वस्तु भी सुलभ हो जाती है। असम्भव भी सम्भव बन जाती है इसीलिये मन्दराचल

पर्वत पर जाकर तपस्या करनी चाहिये। तप कभी व्यर्थ नहीं जाता, तप का फल अवश्य होता है, किन्तु जो तप देह को ही आत्मा समझकर देह की अजरता, अमरता तथा लौकिक ऐश्वर्य के निमित्त किया जाता है, वह राजस् तामस तप है। जो तप भगवत् प्राप्ति के लिये किया जाता है, यथार्थ में तो वही तप है। असुर भी तप करते हैं और भक्त भी तप करते हैं। दोनों पर ही तप के प्रभाव से इष्ट प्रसन्न होते हैं। असुर माँगते हैं- हमारा शरीर सदा बना रहे हमें कोई जीत न सके, जिसके सिर पर भी हम हाथ रख दें वही मर जाय, इत्यादि-इत्यादि किन्तु भक्तगण इष्ट के प्रसन्न होने पर कहते हैं- हमें धन नहीं चाहिये, वैभव की हमें वांच्छा नहीं। हमें प्रसन्न होकर प्रखर प्रतिभा दें इसके लिये भी हमारा आग्रह नहीं। हमें परिवार, पुत्र, पत्नी तथा प्रिय परिजनों की प्राप्ति हो, इसकी भी अभिलाषा नहीं।

जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय हितकर और यथार्थ भाषण है तथा जो वेद शास्त्र के पठन एवं परमेश्वर के नाम जप का अभ्यास है वही वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

मनुष्य सांसारिक सुख की ही कामना करता रहा है - हम लोग जगत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न वस्तुओं या व्यष्टियों को, लोगों का रक्षक समझते हैं। किंतु जिस किसी को भी हम रक्षक समझते हैं, वह परमपुरुष को ही अपना रक्षक समझाता है। मनुष्य कितना भी सावधान क्यों न रहे, परमपुरुष की सहायता के बिना उसकी कोई भी निरापत्ता सिद्ध नहीं होती है। मनुष्य जोर देकर कभी कहीं कह सकता है कि इस दवा से यह बीमारी ठीक हो ही जायेगी। जो चिकित्सक जिस बीमारी का विशेषज्ञ है, हो सकता है उसी बीमारी से उसकी मृत्यु हो जाये। मनुष्य किसी अस्त्र का अविष्कार करके सोचता है कि यह दूसरे अस्त्र को प्रतिहत करेगा। परंतु ऐसा नहीं होता है। मनुष्य अनेक समय अत्यंत सावधानी से चलता है। बांग्ला कहावत है। सावधान को मार नहीं अर्थात सावधान रहने से विपद नहीं आता है। इसलिए तंत्र यही शिक्षा देता है कि मनुष्य अपने मन को हजार दिशाओं में न फैलाकर एक ही ओर ले जाये। यदि किसी के नाम का जप करना ही है, तो परमपुरुष के नाम का ही जप करेंगे। जप क्या है? प्रत्येक शब्द का एक विशेष अर्थ होता है। उस विशेष अर्थ को समझकर उस अर्थवाही शब्द को बार बार मन ही मन आवृत्ति करना। अर्थ समझकर आवृत्ति करने के फलस्वरूप मन में चिर-स्थायी रूप से जाती है और परिणामस्वरूप मन में एक आमूल परिवर्तन होगा। मन की बहिर्मुखी वृत्ति क्रमश: अंतर्मुखी होती है। जप का काम इतना ही है। यदि किसी के नाम का जप करना ही है, तो परमपुरुष के नाम का जप करना होगा। मनुष्य सामान्यत: जागतिक सुख स्वच्छंदता का ही जप करता है, अपने शत्रु के नाम का जप करता है, परंतु उससे लाभ क्या है? जप करना परमपुरुष के नाम का, क्योंकि अंतत: उन्हीं के पास जाना होगा।

**** सच के जूते बहुत काटते हैं, जूते झूठ के हों तो तलवे चाटते हैं।***

**** जिस समाज में प्रतिरोध की शक्ति समाप्त हो जाती है उसका पतन निश्चित है।***

**** जिंदगी तो सभी के लिए वो ही है, फर्क तो बस इतना है कि,***
कोई दिल से जी रहा है और कोई दिल रखने के लिए जी रहा है।

लक्ष्य, उद्देश्य, ध्येय

आज की युवा पीढ़ी में भटकाव-सा आने लगा है। यह भटकाव अक्सर उन युवाओं में देखने को मिलता है जो पढ़ाई के साथ-साथ अपनी मंजिल तय नहीं करते हैं कि उन्हें किस क्षेत्र में अपना कैरियर बनाना है।

सामान्यत: जब बच्चा स्कूल जाता है तो उसे कैरियर के बारे में विशेष ज्ञान नहीं होता है और वह पढ़ाई सिर्फ इसलिए करता है कि परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सके। बच्चे को उसके माता-पिता या अध्यापक उसकी रुचि का पता लगाकर उसकी मंजिल निर्धारित करने में मदद कर सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर ऐसा देखने में आता है कि जब छात्र इंटर कॉलेज से पढ़ाई करने के बाद उच्च शिक्षा हेतु घर से बाहर निकलकर महाविद्यालय में प्रवेश करता है तो उसे महाविद्यालय के वातावरण में कैरियर शब्द सुनाई देता है। किंतु महाविद्यालय में पहुंचने तक बहुत देर हो चुकी होती हैं। इस कारण छात्र अपनी मंजिल को निर्धारित कर उसे प्राप्त करने में असफल रह जाते हैं।

छठीं की कक्षा में अध्यापक ने कक्षा के सभी छात्रों से एक प्रश्न किया कि वे बड़ा होकर क्या बनना चाहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर सभी छात्रों ने अपने-अपने तरीके से दिया। किसी ने कहा कि वह इंजीनियर बनना चाहता है, किसी ने डाक्टर, किसी ने वकील तथा किसी ने कलाकार बनने की इच्छा जताई।

किंतु एक छात्र ने उत्तर दिया कि सर मैंने अभी इसके बारे में सोचा ही नहीं है कि मुझे क्या बनना है ? उसके इस उत्तर पर अध्यापक ने उसके गाल पर जोर से एक चांटा मारा और कहा कि बेटे अभी तक तुमने यह भी नहीं सोचा कि आगे जाकर तुम क्या बनना चाहते हो ?

यह अपनी मंजिल से भटके उन युवाओं के लिए एक उदाहरण मात्र है, क्योंकि बिना लक्ष्य अथवा मंजिल निर्धारण के जीवन में अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जब महाविद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर छात्र कैरियर बनाने हेतु आगे पग बढ़ाता है तो उसे चारों ओर मृग मरीचिका दिखाई देती है और वह तय नहीं कर पाता है कि उसे किस क्षेत्र में अपना कैरियर बनाना है।

अपनी मंजिल तय करते समय छात्रों को अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि, आर्थिक स्थिति तथा अपना बौद्धिक स्तर भी अवश्य ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि यदि मेडिकल या इंजीनियरिंग की तैयारी हेतु किसी अच्छे कोचिंग संस्थान से कोचिंग ली जाए। इसके लिए आपका आर्थिक रूप से मजबूत होना ही पहली प्राथमिकता है। अमूमन बड़े व स्तरीय कोचिंग संस्थानों का शुल्क भी अधिक होता है। यदि छात्र की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तो वह अच्छे कोचिंग संस्थानों से कोचिंग लेने से वंचित रह जाता है। इसके अलावा छात्र का बौद्धिक स्तर भी महत्वपूर्ण है। इसमें आपको यह देखना होगा कि आपके अंदर विषय को पकड़ने की क्षमता कितनी अधिक है ? यदि आपका बौद्धिक स्तर अपेक्षाकृत कम है तो व्यर्थ समय गंवाने से कोई फायदा नहीं है।

इसके अलावा आप अन्य विकल्प अपना सकते हैं। सिर्फ दूसरे प्रतियोगी से दिखावे के लिए प्रतिस्पर्धा न करें। इससे आपका समय व धन दोनों की बरबादी है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि कई छात्र इंटरमीडिएट करने के बाद कोचिंग करने जाते हैं तथा दो-तीन वर्ष बीतने के बाद भी जब वे सफल नहीं हो पाते हैं तो उसके बाद वे ग्रेजुएशन करने की सोचते हैं।

इस प्रकार उनका बहुमूल्य समय नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के गलत कदम उठाने से पूर्व अपनी क्षमता का भलीभांति आकलन कर लेना चाहिए। मंजिल तक पहुंचने के लिए कठिन रास्तों से होकर गुजरना पड़ता है। इस दौरान आपको कई बाधाओं का सामना भी करना पड़ सकता है। इन बाधाओं से घबराने की बजाय उनका डटकर मुकाबला करना चाहिए। बाधाओं से घबराने वाले व्यक्ति कभी भी अपनी मंजिल तक नहीं पहुंच सकता है। फलस्वरूप वह जीवन में असफल रह जाता है। आप अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहें। संगणकीकरण की इस दुनिया में बहुत तेजी से चल ने की जरूरत है। कछुआ चाल से चलने वाला पिछड़ जाता है। आपको यदि जीवन में कुछ नया कर गुजरने की तमन्ना है तो आप आज ही से डट जाइए।

जीवन में पाना कुछ भी असंभव नहीं है। यदि अपने से बड़ों से प्रेरणा लें व उनसे अपनी मंजिल के बारे में तर्क वितर्क करें जिससे आपका साहस निखर जाएगा और आप दोगुने उत्साह के साथ काम करेंगे। एक प्रकार से आज की पीढ़ी को संगणकीकरण की पीढ़ी कहा जा सकता है। प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों के भविष्य के लिए कभी भी समझौता नहीं करते हैं। उनकी यही इच्छा रहती है कि पहले बच्चों की पढ़ाई उसके बाद अन्य कार्य किए जाएं। आप जो भी कार्य करें उसमें आपकी इच्छाशक्ति, दृढ़ निश्चय व लगन अवश्य झलकना चाहिए। इससे आप अधिक व्यावहारिक तौर पर ज्ञान अर्जित कर सकते हैं तथा आप अपने कार्य में सफलता भी प्राप्त कर सकते हैं। छात्रों को अपनी मंजिल तय करते समय अच्छी तरह सोच विचार कर कदम उठाना चाहिए। वैसे आप अपने अभिभावकों एवं अनुभवी व्यक्तियों से इसके बारे में विचार-विमर्श अवश्य करें। आज जहां एक ओर प्रतियोगिता का दौर है, वहीं दूसरी ओर प्रतियोगिता में भाग लेने वाले प्रतियोगियों की संख्या भी तेजी से बढ़ती जा रही है।

एक उचित ध्येय ही व्यक्ति के जीवन को कोई अर्थ देता है। इतिहास उन्हें ही याद रखता है जो अपने लिए असंभव लक्ष्य निर्धारित करते हैं और उन्हें प्राप्त करते हैं। अत: हर व्यक्ति के मन में लक्ष्य निर्धारित करने व उसे प्राप्त करने की कामना होती है। लेकिन यह देखने में आता है कि प्राय: हम अपने निर्धारित लक्ष्यों से भटक जाते हैं तो अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमें क्या करना चाहिए।

लक्ष्य पहचानें- अपने जीवन अथवा किसी कार्य विशेष से आप क्या प्राप्त करना चाहते हैं, अगर एक बार आपके सामने यह बात स्पष्ट हो जाए तो आपका लक्ष्य स्वयमेव ही स्पष्ट हो जाएगा। लक्ष्य को हमेशा याद रखें। अगर एक बार लक्ष्य निर्धारित हो जाए तो हमेशा उसे याद करते रहें ताकि वह आपकी कार्यसूची में उपयुक्त स्थान पाता रहे। रुपरेखा तैयार करें- लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किन-किन बातों की आवश्यकता होगी, इसकी एक रूपरेखा तैयार कर लें। इसके लिए आप अधिकाधिक जानकारी एकत्र करें ताकि रूपरेखा में कोई खामी न रहे।

योजनाबद्ध तरीके से कार्य करें- लक्ष्य प्राप्ति के लिए उठाया गया हर कदम सुनियोजित और व्यवस्थित होना चाहिए ताकि आप अपने लक्ष्य जल्द से जल्द प्राप्त कर पाएँ। इसके लिए आप एक योजना बनाएँ व उसके अनुरूप कार्य करना आरंभ करें। हर काम को छोटे-छोटे हिस्सों में बाँट लें तथा हर हिस्से पर स्वतंत्र रूप से एक के बाद एक काम करें। ऐसा करने से कठिन से कठिन कार्य आसान प्रतीत होगा। कार्यों का मूल्याँकन करें- अपने प्रत्येक कार्य पर विचार करें और इस

बात का मूल्याँकन करने का प्रयास करें कि इसमें आप कितने सफल हुए हैं खुद की सराहना करें- अपनी हर उपलब्धि पर, चाहे वह छोटी से छोटी क्यों न हो, खुद की सराहना अवश्य करें। इससे आपके अंदर आत्म विश्वास का संचार होगा और आप अगला कार्य ज्यादा बेहतर ढंग से कर पाएंगे। इन बातों के अलावा खुद को हमेशा यह समझाते रहें कि सफलता प्राप्त करना कठिन जरूर है लेकिन असंभव नहीं। जीवन में उतार-चढ़ाव आते-जाते रहते हैं परंतु वे हर बार कुछ-न-कुछ सीख देते हैं। याद रखें, असफलता ही सफलता की दहलीज है।

प्रवाह के विरोध में तैरनेवाला अपना ध्येय प्राप्त करता है। ध्येय व्यक्ति की कल्पना में होता है। मानव मन के दर्पण में अनेक प्रतिबिंब होते हैं। जैसे विद्या, धन, मन, आयु: आदि, लेकिन उन्हें प्राप्त करने से पहले थोड़ा सा रुककर, प्रवाह के विपरीत तैरने का प्रयास करना पड़ता है।

विश्वमान्य हुए सभी लोगों, विभूतियों ने अपने ध्येय प्राप्त करने के लिए कठिन तप का आचरण किया है। कंटिले मार्ग पर चले हैं। ध्येय की आड़ आनेवाले संकटों से धैर्यपूर्वक संघर्ष किया है। इसी से उन्होंने अपनी सफलता की डगर ध्येय के शिखर तक पहुंचाई है।

हर आदमी जिंदगी में सफलता प्राप्त करना चाहता है। वक्त के साथ सफलता के पैमाने भी बदल जाते हैं और उन्हें प्राप्त करने के तरीके भी। लेकिन आत्मनिरीक्षण एक ऐसा मंत्र है जो हर युग में सफलता के लिए जरूरी है। जब भी हम कोई काम करते हैं तो अपनी सफलताओं और असफलताओं के बारे में अपना एक नजरिया जरूर रखते हैं। लेकिन कई बार हम अपनी क्षमताओं और उपलब्धियों के बारे में गलत आंकलन कर बैठते हैं। इसके कारण हमको अपने लक्ष्य को पाने में कठिनाइयों का सामना ही नहीं करना पड़ता है, बल्कि कई बार हम अपने लक्ष्य से भटक भी जाते हैं। ऐसी ही स्थिति में हमें किसी आलोचक की जरूरत पड़ती है। जो हमारी गलतियों और कमियों के बारे में हमें बता सके, शायद इसीलिए कहा गया है कि निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय। दूसरों द्वारा की गई आलोचना से हो सकता है आपको दुख पहुंचे। लेकिन आलोचनाएं आपको अपने आप पर सोचने को मजबूर कर देती हैं। सब लोग इतने भाग्यशाली तो होते नहीं कि उन्हें ऐसा आलोचक मिल जाए जो उनका शुभचिंतक भी हो। फिर हम खुद ही तटस्थ होकर यानी दूसरों की नजरों से अपनी मेहनत का आकलन करने की कोशिश करें। इससे हमें अपनी कमियों को जानने का मौका तो मिलेगा ही हम अपने लक्ष्य को पाने के लिए एक नया रास्ता ढूंढ सकेंगे। खुद में बदलाव करने के लिए अपनी अतीत की उपलब्धियों को याद करना बहुत ही जरूरी है, इससे अपनी क्षमताओं और स्वयं के प्रति आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। लेकिन कई बार अपनी उपलब्धियों की याद हमें आत्ममुग्ध भी कर देती हैं। अगर अपनी सफलताओं को दूसरों की नजरों से देखा जाए तो हमें अपनी क्षमताओं के प्रति विश्वास तो बढ़ेगा ही आगे बढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

यदि मनुष्य अपनी कल्पना शक्ति से उचित काम ले तो जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त की जा सकती है। जीवन में अपना निश्चित मुख्य उद्देश्य चुनने और इसे वास्तविकता में परिणित करने के लिए कल्पना आवश्यक है। पहले विचार आते हैं फिर वह संगठित होकर धारणा और युक्ति का रूप धारण कर लेते हैं। तब वे युक्तियां वास्तविक रूप में परिणित हो जाती हैं। आरंभ अपनी कल्पना में होता है। कल्पना एक प्रकांड शक्ति है। यदि हम इसे समझ लें तो इसे

दरिद्रता, विपत्ति, अन्याय, उत्पीड़न और अत्याचार मिटाने का साधन बनाया जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में लक्ष्य निर्धारित करने की अत्यंत आवश्यकता है। विद्वान मनीषियों का कहना है कि जब कोई व्यक्ति किसी लक्ष्य को निर्धारित करके उस पर गहन रूप से अध्ययन करता है तो सफलता निश्चित रूप से वरण करती है। वास्तव में यह बात सौ प्रतिशत सत्य है कि कर्म ही पूंजी है प्रत्येक कर्म चाहे वह अच्छा हो या बुरा, उसकी कुछ सीमाएं होती हैं जिनको यदि क्रमबद्ध तरीके से लागू किया जाय तो सफलता निश्चित रूप से कदम चूमती है। बिना फल की इच्छा किए जो गहन परिश्रम करके अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है उसे सफलता अवश्य मिलती है। लक्ष्य निर्धारण के पीछे कर्म को प्रगतिशील करने की कामना होती है।

अपने जीवन का एक लक्ष्य बनाइए और इसके बाद अपने पूरे शारीरिक और मानसिक बल को अपने काम में लगा दीजिए जो ईश्वर ने आपको दिया है।

आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य है।

उन्नत होना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।

ओंकार ही धनुष है, आत्मा ही वाण है, और परब्रह्म परमात्मा ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमादहीन मनुष्य द्वारा ही बेधा जाने योग्य है। उसे बेधकर बाण की भांति उसमें तन्मय हो जाना चाहिए।

जो अपने लक्ष्य के प्रति पागल हो गया है, उसे ही प्रकाश के दर्शन होते हैं। जो थोड़ा इधर, थोड़ा उधर हाथ मारते हैं, वे कोई लक्ष्य पूर्ण नहीं कर पाते। वह कुछ क्षणों के लिए बड़ा जोश दिखाते हैं, किन्तु वह शीघ्र ठंडा हो जाता है। लक्ष्य को ही अपना जीवन-कार्य समझो। हर समय उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो। उसी के सहारे जीवित रहो।

उठो, जागो और तब तक न रुको, जब तक लक्ष्य प्राप्ति न हो।

आए हैं जमाने में कुछ करके हमें दिखाना है जिंदगी के हर मोड़ पर संभल कर कदम बढ़ाना है।

कर के छोटी सी भी गलती नहीं दोहराना है, नई हैं राहें नए हैं इरादे बुलंदियों को पाना है।

नाकामी के पहाड़ को अपने आगे झुकाना है, वक्त की ताकत को अपनी ताकत दिखाना है।

तूफां में इस कश्ती को अपने दम पर ले जाना है

किस्मत के बंदर को अपने आगे नचाना है, मिलती है देर से मंजिल पर नहीं घबराना है।

बन के सूरज की रोशनी इस दुनिया पे छा जाना है।

सागर की कश्ती की तरह लहरों से टकराना है, निशाने पर है मंजिल उसे अपना घर बनाना है।

भारतीय मनीषियों ने मनुष्य जीवन को केवल उत्तम सुख सुविधाये एकत्र कर सुख से जीने को ही पर्याप्त नहीं माना है। और न इन सुख साधनों को दूसरों को सहायतार्थ देने को परम धर्म माना है। भारतीय दर्शन ने मानव जीवन को बहुत दुर्लभ एवं परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने का साधन बताया गया है। क्योकि बिना परमात्म ज्ञान के मनुष्य शाश्वत सुख एवं शांति नहीं पा सकता। परन्तु परमात्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए सही दिशा मिलनी चाहिए। क्योकि उल्टी दिशा में चलकर गंतव्य पर पहुँचना असम्भव है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार स्वर्ग से उत्तम मनुष्य के लिये कुछ है ही नहीं। इसमें उनका कोई

दोष भी नही है क्योकि हमारे अवचेतन मन मे इन्ही से पाने की दमित वासनाये होने से हमको यही सच और अच्छा लगता है। और इस प्रकार हम परमात्म ज्ञान की प्राप्ति की दिशा से भटक जाते है। परमात्म ज्ञान तो ब्रह्म जिज्ञासा ब्रह्म सूत्र के अनुसार जब सब तरफ से संतोष हो तभी ब्रह्म की जिज्ञासा सार्थक होती है। तभी उस दिशा में पहल होती है। आत्मज्ञान के लिये बिना किसी प्रलोभन या भ्रम के विवेक एवं विचार पूर्वक अनवरत प्रयास करना चाहिये।

किसी भी क्षेत्र में भवितव्य की योजना बनाते समय कुछ बातों का ध्यान रखना बेहद जरूरी होता है। यदि आप चरणबद्ध ढंग से इन बातों पर अमल करते हैं तो वांछित लक्ष्य तक आसानी से पहुंच सकते हैं।

क्षमता पहचानें- भवितव्य की योजना बनाते समय अपनी क्षमताओं का ध्यान रखना सबसे जरूरी होता है। अक्सर देखने में आता है कि युवा अपनी कमजोरियों, क्षमताओं, रुचियों और सीमाओं से अनजान रहते हैं। ऐसे में भटकाव की संभावना बढ़ जाती है। चूंकि मित्रों ने फलां भवितव्य चुना है इसलिए मैं भी उसे ही चुनूंगा, जैसी बचकानी सोच घातक हो सकती है। इसलिए जरूरी है कि भटकाव से बचते हुए इस संवेदनशील मुद्दे पर अच्छी तरह से आत्म विश्लेषण करके ही कोई निर्णय लें। अपने आप से ही कुछ प्रश्न पूछिए, जैसे कि मेरी रुचियां किस प्रकार की है ? मेरे अंदर किस तरह की योग्यताएं हैं ? मेरे मजबूत बिंदु क्या-क्या हैं, उनका उपयोग किन-किन क्षेत्रों में किया जा सकता है ? इस तरह के सवालों से खुद को बेहतर तरीके से जानने-समझने में मदद मिलेगी और भवितव्य संबंधी निर्णय लेने में भी आसानी होगी।

अवसर तलाशें- भवितव्य संबंधी अवसरों की खोज शुरू करने के कई तरीके हो सकते हैं। पढ़ने की आदत विकसित करें। यह ऐसी कला है जिसे अपनाकर आप अपने ज्ञान को असीमित विस्तार दे सकते हैं। इंटरनेट के जमाने में खुद को अपडेट रखना और भी आसान हो गया है इसलिए इसके प्रयोग से हिचके नहीं। नित नए-नए लोगों से मिलना-जुलना व्यक्तित्व को बहुआयामी स्वरूप प्रदान करता है। संबंधों का दायरा बढ़ाते समय इस बात का हमेशा खयाल रखें कि जिनसे मिलें, उनसे कुछ न कुछ सीख सकें। अवसर की तलाश में कुछ स्वार्थी बनकर काफी कुछ हासिल किया जा सकता है। यार-दोस्तों से परे रहकर स्वयं की क्षमताओं के आधार पर फैसले लेने की हिम्मत जुटाएं। क्षमता विकसित करें।

योग्यता बढ़ाएं - लक्ष्य निर्धारित कर लेने के बाद सबसे महत्वपूर्ण चुनौती उसके लिए अपेक्षित योग्यता विकसित करने की होती है। इसके लिए जिस क्षेत्र में जाना चाहते हैं उससे संबंधित संस्थानों आदि से संपर्क करके जरूरी योग्यताओं की जानकारी हासिल करें। इस दिशा में सर्टिफिकेट, डिप्लोमा, या अन्य तरह का कोर्स भी करना या फिर किसी परीक्षा में शामिल होना पड़ सकती है। चूंकि यह समय लेनेवाली प्रक्रिया है, इसलिए इस चरण के लिए मानसिक रूप से तैयार रहना पड़ेगा।

जिज्ञासु रहें- कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं होता। सुधार की संभावनाएं सभी में रहती हैं। नौकरी पाना एक लक्ष्य होना चाहिए पर अंतिम लक्ष्य नहीं। इस सफलता को पाने के बाद भी रूकें नहीं, बल्कि अपनी जिज्ञासा बनाएं रखें। यदि सीखने की प्रक्रिया रुक गई तो फिर आपका विकास भी रुक सकता है। आत्मविश्वास बनाए रखें पर कभी भी यह धारणा न पालें कि आप सब कुछ जानते हैं। इन सब बातों का पालन करने पर आप निश्चित रूप से सफलता के मार्ग पर लगातार अग्रसर होते रहेंगे। लक्ष्य के प्रति हमेशा सचेत रहें। कभी भी योजना बनाते समय जल्दबाजी न करें। हमेशा सोच-विचार कर ही कदम आगे बढ़ाएं। इसका फायदा आपके अंदर ही एक ऐसी क्षमता विकसित होगी जो कि आपको मंजिल तक ले

जाएगी। आपको हमेशा यही सोच रखना है कि लक्ष्य सर्वप्रथम है। यह तो सर्वविदित है कि एक ही दिशा में लगातार प्रयास से मनचाहा जॉब मिलना संभव है। परीक्षा की तैयारी के लिए उक्त अपेक्षित योग्यताओं की प्राप्ति का प्रयास किया जा सकता है और आवश्यकताओं की सूची बनाई जा सकती है। व्यक्तित्व मूल्यांकन पर भी सतर्कता बरती जानी चाहिए। व्यक्तित्व सबसे अहम भूमिका निभाता है सफलता में। आपकी सकारात्मक सोच का भी असर आपके कार्यों पर पड़ता है। सफलता के लिए प्रयास तो बहुत जरूरी है। प्रयास के बिना कुछ भी मिलना संभव नहीं है।

अगर दृढ़ निश्चय हो तो कुछ भी असंभव नहीं है। चाहे कितनी ही दुरुह कार्य क्यों न हो ? मन में हौसला, जोश और एक ही लक्ष्य हो तो मंजिल तक पहुंचने का रास्ता स्वयं ही मिल जाता है। दुनिया में असंभव कही जानेवाली कोई वस्तु है ही नहीं अगर कुछ कर दिखाने को जुनून हो।

यदि व्यक्ति एक बार असफल भी हो जाए तो उसे हार नहीं माननी चाहिए, बल्कि दोगुनी ऊर्जा और जोश के साथ लक्ष्य प्राप्ति को जुट जाना चाहिए। जब तक व्यक्ति को अंदर से प्ररेणा नहीं मिलेगी वह कुछ नहीं कर सकता। हमें निरंतर आगे बढ़ता ही रहना चाहिए।

अब तक के लिखित इतिहास में एक भी ऐसा अर्थशास्त्री नहीं रहा है, जिसे यह चिंता करनी पड़ी हो कि अगली बार उसे कहां से भोजन मिलेगा। अपने लिए लक्ष्य निर्धारित कर कोई प्रन्बधन तभी काम करता है, जब वह सिर्फ उस लक्ष्य के मुताबिक सोचता है। दुर्भाग्य से १०० में से ९० बार हम ऐसा नहीं करते। हम यह नहीं समझ सके हैं कि प्रबन्धन का अर्थ है- ठीक से काम करना जबकि नेतृत्व का अर्थ ठीक चीजें करना है। योजनाएं अच्छे इरादे से अधिक कुछ नहीं होतीं, जब तक कि उन पर तुरंत मेहनत से काम न शुरू किया जाए। बहुत ज्यादा प्रबन्धन लोगों के लिए काम करना मुश्किल बना सकता है। सबसे जरूरी बात इस तथ्य को समझना है कि जिस काम को नहीं किया जाना चाहिए यानी जिस काम की कोई उपयोगिता नहीं, उसे ही बहुत बढ़िया ढंग से करने जैसी बेकार चीज कोई नहीं है।

हम अपने उद्देश्य के प्रति स्पष्ट हो और साथ ही यह समझने में समर्थ हो कि उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये हमारी कार्य योजना क्या होनी चाहिये ? दृढ़ इच्छा शक्ति सफल लोगों का एक अनिवार्य गुण रहा है। अपने उद्देश्य के प्रति जागरूक और प्रतिबद्ध रहकर ही इसे पाया जाता है।

अधिकांश विद्यार्थी पढ़ाई को केवल उपाधि लेने के लिए करते हैं। जीवन के प्रति क्या लक्ष्य निर्धारित करना है इसे बहुत कम विद्यार्थी ही सामने रखकर पढ़ाई करते हैं। यह सही है कि बुद्धि प्रकृति प्रदत्त होती है, लेकिन कड़े अभ्यास से इसे पैना किया जा सकता है। प्रारंभ की शिक्षा जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। यही भविष्य में सफलता के लिए सीढ़ी का काम करती है, लेकिन आज के अधिकांश विद्यार्थी थोड़ी-सी असफलता मिलने पर ही तनाव का शिकार हो जाते हैं, जबकि जीवन में खुश रहने का बहुत महत्व है। केवल धन से ही खुशी नहीं मिल सकती। लक्ष्य प्राप्ति के बाद जो खुशी मिलती है वह अनमोल होती है। हाईस्कूल की पढ़ाई से ही अपना लक्ष्य निर्धारित करें और इसे पाने के लिए प्राण-प्रण से जुट जायें। सफलता निश्चित रूप से आपके कदम चूमेगी।

कोई भी काम बीच में आधा छोड़ देने की आदत छोड़ दें। आपको अपने लक्ष्य पर बने रहने का दृढ़ निश्चय करना

चाहिये। भले ही फिर आपको दूसरों से ज्यादा समय लगता हो। किसी भी काम को बीच में छोड़ देना आपकी कमजोरी व अस्थिरता को दिखाता है।

अपने हाथ पर एक बिंदु केंद्रित करें। जब भी आप उसे देखें गहरी-गहरी सांस लें और अपने प्रण को जोर से दोहराएं कि मैं इसे पूरा करके रहूंगा। दिन में १५-२० बार इसे दोहराएं। यह आपके अवचेतन मन में आपको इस बात की सतत याद दिलाता रहेगा कि आपको अपने लक्ष्य पर लौटना व उसे पूरा करना है।

ऊंची सोच के साथ बड़े लक्ष्य को कामयाब करना ही पुरुषार्थ है। लक्ष्य व्यक्ति के अपने जीवन का हो सकता है, परिवार का हो सकता है, समाज के संबंध में हो सकता हैं, देश-दुनिया के बारे में हो सकता है, संस्था और संगठन के विषय का हो सकता है। चिंतन की कसौटी पर जांच-परख करने के बाद जो बिंदु निर्धारित किये जाते है, वे लक्ष्य की श्रेणी में आ जाते हैं। लक्ष्य की लक्ष्मण रेखा खींच जाने के बाद कदमों को पीछे खींचना ठीक नहीं होता। यहां से तो सही मायने में कर्म की यात्रा प्रारंभ होती है।

धुन का धनी और श्रम का पुजारी कभी थकता नहीं। कोई भी काम जब हमारे हाथ में आता है तो उसे पूरा करने के लिए पहली शर्त होती है उत्साह। अगर मन में उत्साह नहीं है और आपने यह सोचा कि काम को जैसे-तैसे करना है- तो काम करने का असली मजा नहीं आएगा। दूसरी शर्त है-विश्वास। मन में निश्चय होना चाहिए कि हम काम को कर सकेंगे, सही रूप में करेंगे और सफल होंगे। मन में यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम निष्ठा के साथ करेंगे।

इक्कीसवीं शताब्दी को हम प्रबंधन का युग भी कह सकते हैं। आजकल किसी भी काम को हाथ में लेने से पहले उसकी संगोपांग समीक्षा की जाती है। काम कितना करना है, और किन हितों के लिए करना है, यह तय किया जाता है। संपूर्ण प्रक्रिया लक्ष्य पर केंद्रित होकर पूरी करनी होती है। अपना लक्ष्य थोड़ा ऊंचा बनाना चाहिए। किसी व्यक्ति ने एक छोटे-से बच्चे से पूछा कि यदि तुम्हें देश का प्रधानमंत्री बना दिया जाए तो तुम क्या करोगे? बच्चे ने कहा कि सबसे पहले लालकिले पर चढ़कर पतंग उड़ाऊंगा। सोच छोटी होती है तो लक्ष्य भी छोटा होता है। लक्ष्य-निर्धारण में हमेशा चिंतनशील व्यक्तियों का परामर्श लेना चाहिए और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमेशा श्रमशील व्यक्तियों का सहयोग लेना चाहिए। फिर आपने जितनी कार्ययोजना सोची है, तैयार की है, वह पूरी होगी और अवश्य सफलता मिलेगी।

लक्ष्य की महानता ही हमारी कोशिशों को वेग और उत्साह प्रदान करती है। जितना बडा लक्ष्य उतना ही अधिक उत्साह व लगन। यदि जिन्दगी मे वास्तविक आनन्द, उत्साह व उमंग हासिल करना चाहते हो तो परम सत्ता रूपी महानतम मकसद ही चुनो।

**** अपनों को हमेशा अपना होने का अहसास दिलाओ***
वरना वक्त आपके अपनों को आपके बिना जीना सिखा देगा।
**** बोलने से पहले शब्द मनुष्य के वश में होते है,***
परन्तु बोलने के बाद मनुष्य शब्दों के वश में हो जाता है।

संग्रह-परिग्रह-निष्परिग्रह

संग्रह ही दु:ख का हेतु है, अधिक संग्रह करने से ही अधिक चिन्ता बढ़ती है। संसार में जितना भी ऐश्वर्य है उसी नंदनंदन का है। आवश्यकता से अधिक संग्रह मत करो, जितनी जरूरत हो उतनी ही वस्तु लेने की नियत रखो। अगर कोई ज्यादा दे भी तो मत लो, नहीं तो तुम लोभी कहलावोगे। जितनी आवश्यकता हो उतनी ही वस्तुओं का संग्रह करो।

हम संग्रह करते हैं लोभ और अविश्वास के वशीभूत होकर यह वस्तु रही आवेगी तो काम आवेगी, सम्भव है फिर न मिले। इस अविश्वास के कारण हम दूसरे के भाग को छिपाकर रखते हैं। उसे उसके उपभोग से वञ्चित कर देते हैं। अपनी सुख सुविधा के पीछे दूसरों की सुविधाओं का अपहरण करते हैं।

स्वार्थी के प्रति, संग्रही के प्रति लोगों की सहानुभूति नहीं होती। जो संग्रही के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं, वे केवल स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। जिसके पास जितना ही अधिक संग्रह है वह उतना ही अधिक कृपण है, अशांत है तथा लोगों की सहानुभूति से वंचित है। जो जितना ही त्यागी है, उसका उतना ही अधिक लोगों के हृदय में सम्मान है। उसे सभी की सहानुभूति प्राप्त होती है, इससे वह सदा शांत बना रहता है। अशांति का कारण संग्रह है। जो संग्रह करता है वह तो उतनी ही वस्तु को अपनी कह सकता है। जो जान बूझकर संग्रह नहीं करता उसके लिये सभी अपना है। हम लोग धन को या अन्य भोग वस्तुओं को संग्रह करते हैं तो समझते हैं, हम केवल धन का या वस्तुओं का ही संग्रह कर रहे हैं। किन्तु वास्तविक बात यह है कि वस्तुओं के संग्रह के साथ हम आपत्तियों का भी संग्रह करते हैं। हमारे पास जो वस्तु है और दूसरों के समीप नहीं है तो मन-ही-मन उस वस्तु को देखकर जलते हैं। इसीलिये संग्रही के पड़ोसी उसके शत्रु बन जाते हैं। यदि निर्बल पुरुष हुए तो मन-ही-मन बुरा मानकर रह जाते हैं, यदि सबल हुए तो वे आक्रमण करते हैं, सभी प्रकार के उपायों से छीनने का प्रयत्न करते हैं। मनुष्यों को जो-जो वस्तुएँ अधिक प्यारी हों, जिन-जिन में अधिकाधिक ममत्व हो, उनका सञ्चय करना ही दु:ख का कारण है। वैर-भाव सदा वस्तुओं के संग्रह में होगा। जो जितना ही अधिक धनी होगा उसके उतने ही अधिक शत्रु होंगे। धनिक को सभी चींथना चाहते हैं, निर्धन लोग धनी से मन-ही-मन द्वेष करते हैं। जिसने अधिक प्रतिष्ठा संग्रह कर ली है उससे मन-ही-मन कम प्रतिष्ठा वाले द्वेष रखते हैं। इस प्रकार वैर का कारण है संग्रह। जो जितना ही अधिक संग्रही होगा, वह उतना ही अधिक हृदयहीन होगा। धन का संग्रह करने वाला कभी सुहृदय नहीं हो सकता।

परिग्रह पाप-बन्ध का कारण है। परिग्रह-क्रोध, मान, माया और लोभ इन पापानुबन्ध चतुष्टय का जनक हैं। समस्त पाप परिग्रह से ही उत्पन्न होते हैं। अर्थात् जो सन्तोष के पथ पर चलता है, वही व्यक्ति पूजा-प्रतिष्ठा के योग्य होता है।

अपरिग्रह के भीतर ही जीवन का सबसे बडा सुख है। जहां-जहां परिग्रह है, वहां आप निश्चित मानिये आज नहीं तो कल वह पीड़ा प्रदान करेगा।

मन कभी परिग्रह और कभी अपरिग्रह करता है। **चाहिये और नहीं चाहिये** में उलझा रहता है। आमतौर पर लालसा या अतिलोभ को परिग्रह कहते है। क्षमता न होने पर आवश्यकता न होने पर अतिलालसा करने से मन अस्वस्थ होता है जैसे कोई मनुष्य गरीब हो लेकिन इच्छा करोडपति बनने की रखता हो, करोडपति तो एक दिन में बन नही सकता। तब गलत मार्ग से वह इच्छा पूरी करने का प्रयास करता है। मन के इस स्वभाव को परिग्रह कहते है। कई उपद्रव कारी घटनाओं का मूल कारण परिग्रही मन होता है। वास्तव में धन कमाना चाहिये लेकिन प्रयत्न और सन्मार्ग से। इसका चिन्तन जो करता है वह अपरिग्रही मन होता है। अपरिग्रह से आवश्यकतायें सीमित रहती है और मन शान्त।

संयोग-वियोग-अवसर

संसार में सदा कौन मिला रहता है, जो मिलता है, वह बिछुड़ता है। मिलना बिछुड़ने के ही लिये तो है। आकाश में मेघ एक दूसरे से आकर मिल जाते हैं, जहाँ प्रबल वायु चली तुरन्त छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, कहीं-के-कहीं हो जाते हैं। खेत में न जाने कहाँ-कहाँ के बीज आकर उत्पन्न होते हैं। पकने पर कोई बीज किसी के पेट में चला जाता है, कोई किसी के। सब इधर-उधर हो जाते हैं। गुरुकुलों में पाठशालाओं में कहाँ-कहाँ के छात्र पढ़ने आते हैं, सब कितने प्रेम से हिलमिल कर पढ़ते हैं। पढ़ने के पश्चात सबके प्रारब्ध उन्हें पृथक-पृथक पटक देते हैं। सब कहीं-के-कहीं हो जाते हैं। नदी के वेग में कितने तिनके बहते हैं। कुछ बहते-बहते आपस में मिल जाते हैं, कुछ दूर तक साथ-साथ बहते हैं। फिर कोई प्रारब्धवश ऐसी तीव्र लहर आती है कि बारह बाट हो जाते हैं। कोई कहीं बह जाता है कोई कहीं। आँधी में कितने पत्ते एकत्रित हो जाते हैं। फिर एक आँधी का प्रबल झोंका आया सब तितर-बितर हो गये। मरुभूमि में बालू के कैसे टीले बन जाते हैं। कहाँ-कहाँ के कण एकत्रित होकर परस्पर में सट जाते हैं, दूसरे दिन वायु चली फिर उन बालू के टीलों का नाम भी नहीं रहता। बालू के कण कहीं-के-कहीं उड़ जाते हैं। एक साथ आकर दूर-दूर के पशु जङ्गलों में घास चरते हैं। सायंकाल हुआ कोई कहीं चला गया, कोई कहीं। नौका में कहाँ-कहाँ के लोग आकर साथ बैठ जाते हैं। नदी के साथी बन जाते हैं। जहाँ पार हुए, कोई कहीं चला गया, कोई कहीं। आग की बौंड़ी में रुई के बबूले साथ बढ़ते हैं। जहाँ बौंड़ी पकी तहाँ वे बबूले वायु में उड़ने लगते हैं कोई कहीं उड़ जाता है कोई कहीं। फिर वे कभी एक बौंड़ी में आकर एकत्रित नहीं होते। फूल एक साथ वाटिका में खिलते हैं। खिलने पर माली तोड़ता है। कोई देवता पर चढ़ते हैं, कोई कामिनी के कंठ का हार बनते हैं। कोई मसले जाते हैं, कोई पीसे जाते हैं, कोई परदेश भेज दिये जाते हैं। बेलों पर फल साथ पैदा होते हैं। टूटने पर प्रारब्धवश कहीं-के-कहीं हो जाते हैं। इसी प्रकार संयोग वियोग का चक्र चलता रहता है।

हमारा प्रेमी हमारे साथ रहे तो नित्य साथ रहने से उसका महत्व मालूम नहीं पड़ता, वह हमें साधारण व्यक्ति ही प्रतीत होता है। उससे जब वियोग हो जाता है तो पीठ पीछे उसके गुणों का स्मरण होता है। उसकी स्मृति में हृदय रोता है। स्नेह का स्रोत उमड़ने लगता है। मिलन की उत्कट इच्छा होती है। मिलने पर प्रथम कैसे मिलेंगे क्या-क्या बातें कहेंगे, किस प्रकार उलाहने देंगे, कैसे उससे हृदय-से-हृदय सटाकर मिलेंगे इसी प्रकार की धुनाबुनी होती है। मिलने पर वे सभी बातें भूल जाते हैं। मुख से वाणी नहीं निकलती, अंग शिथिल हो जाते हैं, केवल हृदय से घनीभूत भाव पिघलकर जल बनकर नयनों के द्वारा बहने लगता है। यदि उससे सदा के लिये वियोग हो जाय, तब तो साहस छूट जाता है। धैर्य का सुदृढ़ सेतु टूट जाता है। जिसके मिलन में जितना ही अधिक सुख होता है, उससे बिछुरन में उतना ही दु:ख होता है। इस संयोग वियोग की श्रृङ्खला के ही कारण संसार चक्र घूम रहा है। संयोग से सुख में राग और वियोग के दु:ख में द्वेष न हों तो सभी मुक्त ही न हो जायँ, फिर संसार के आवागमन में फँसकर प्राणी पग-पग पर त्रास का सामना क्यों करें। क्यों ये फिर-फिर जन्म लें, फिर जन्म लें, फिर-फिर काल के कवल बनें। स्त्री पुरुष सम्मिलन की इच्छा से ही मिथुनधर्म में अनुरक्ति होने के कारण ही संसृति है, क्लेश है, आवागमन जन्म मरण का दु:ख है।

संयोग-वियोग-वियोग प्रेम को और उज्ज्वल बनाकर चमका देता है। वियोग न हो, तो संयोग सुख का आस्वादन ही न हो सके। वियोग जीवन में एक नूतनता का प्रवेश करता है। नित्य मिलने से स्नेह बँटता रहता है, किन्तु वियोग में वह

जन्म ही जाता है और फिर संयोग की सम्भावना होते ही फिर उमड़ पड़ता है। तभी तो जिसकी जितनी ही अधिक उत्कंठा से प्रतीक्षा की जाती है, उसके मिलने में उतना ही अधिक आनन्द आता है। हमारा हृदय अधीर हो उठता है, इसीलिये हृदय के प्रेम को व्यक्त करने के लिये अपने मन से वाणी से तथा कर्मों से उसे स्वागत सत्कार करके व्यक्त करते हैं।

वियोग में समीपता और बढ़ जाती है। विरह में अपना प्रियतम और भी निकट आ जाता है। विरह को स्वेच्छा से कौन चाहेगा? पर भले ही न चाहे किन्तु जो प्रेम करेगा उसे विरह-वेदना सहनी ही पड़ेगी। संयोग, वियोग के ही लिये है। गर्भ धारणा करने पर प्रसव-पीड़ा न उठानी पड़े यह असम्भव है। काजल की कोठरी में प्रवेश करने पर कुछ कालिमा तो लगेगी ही। इसलिये प्रेम के पन्थ को छुरे की धार के समान बताया है। मोम के तुरङ्ग पर चढ़कर अनल में होकर जाने के समान है। नवों रसों में करुणरस ही तो प्रधान है। उसी रस से तो अन्य रस जीवन स्फूर्ति पाते हैं। करुणरस का प्राकट्य दु:ख में वियोग में होता है।

वियोग के अनेक भेद हैं, किन्तु मुख्य दो भेद हैं। एक सम्भावित वियोग, दूसरा असम्भावित वियोग। सम्भावित वियोग तो वह है, जैसे चकवा चकवी का होता है। दिन में मिल जाते, किन्तु रात्रि में साथ-साथ नहीं रह सकते। सायंकाल हुआ कमलों को संकुचित करते अरविन्दैकबन्धु भगवान भुवनभास्कर ने जहाँ अस्ताचल की ओर प्रस्थान किया, तहाँ चकवी उस पार चली जाती है, चकवा इस पार पड़ा रह जाता है। इसमें किसी का कुछ वश नहीं, ऐसा होना ही है, दूसरा असम्भावित विरह है। जैसे सारसी का। सारस सारसी सदा ही साथ रहते हैं। वे पलभर को भी एक दूसरे से पृथक नहीं होते। सहसा कोई लुब्धक बहेलिया आया उसने चुपके से आकर सारस को विष मुझे बाण से मार दिया। अब सारसी अकेली तड़फड़ाती रहती है। उसे सम्भावना नहीं थी, मैं कभी अपने प्रियतम से पृथक् हो जाऊँगी, किन्तु सम्भावना न होने पर भी दैव उसके प्रतिकूल हो गया। उसने उसके पति को उसकी दृष्टि से ओझल कर दिया। सम्भावित विरह से असम्भावित विरह अत्यन्त ही दुखदायी होता है।

वियोग के बिना संयोग की मिठास बढ़ती नहीं, उसमें नूतनता आती ही नहीं। प्रेम का स्वरूप है नित्य नूतन होना। वियोग से संयोग की प्यास और बढ़ती है। जैसे पिपासा रोग में ठहर-ठहरकर जितना ही जल पिया जाता है उतनी ही जल की तृषा और बढ़ती हो अत: देखा जाय, तो वियोग कोई बुरी वस्तु नहीं। जिसको जितना ही अधिक स्नेह होगा, उसे उतना ही अधिक वियोगजन्य दु:ख होगा।

वियोग होता है संयोग के अनन्तर। प्यारे से भेंट हो गयी। उनके साथ कमनीय क्रीड़ायें भी कीं। संयोग सुख का अनुभव किया। तदनन्तर सहसा वे हमसे पृथक् हो गये हैं। इसी का नाम वियोग है वियोग के अनन्तर जो सहयोग होता है उसमें और भी अधिक मिठास बढ़ जाती है। संयोग के अनन्तर जो बिछोह होता है, उसमें बड़ी मर्मान्तक पीड़ा होती है। निरन्तर संयोग सुख की स्मृति बनी रहती है। सम्मुख चाहे स्मरण न भी हो उनके पीठ के पीछे वे सभी बातें याद आती हैं। उन बातों को याद करके बड़ा भारी सन्ताप होता है। शरीर कृश हो जाता है। निद्रा या तो कम हो जाती है या आती ही नहीं। तनिक झपकी लगी कि उसी की बातें याद आने लगती हैं। आलम्ब शून्यता का अनुभव होने लगता है। हाय, उनके बिना हम कैसे जीवेंगे। उनके दर्शनों के बिना इस संसार में किसके आश्रय से जीवन बितावेंगे। किनका मुख देखकर धैर्य धारण करेंगे। धैर्य का सुदृढ़ बाँध टूट जाता है। शरीर में जड़ता आ जाती है। किसी काम में मन नहीं लगता। शरीर रोगग्रस्त-सा

हो जाता है। घरवाले वैद्य बुलाते हैं। वैद्य वात, पित्त और कफ का निर्णय करता है, किन्तु वह व्याधि त्रिदोषजन्य नहीं होती। विरह में उन्माद, मूर्छा और यहाँ तक कि मृतक सदृश अवस्था हो जाती है। उसी का निरन्तर ध्यान रहता है, जिह्वा उसी के नाम का सतत उच्चारण करती है, नेत्र उसी के लिये जल बहाते रहते हैं।

मिलन चाहे दिव्य हो अथवा प्राकृत, जिसने सम्मिलन सुख का अनुभव किया है उसे वियोगजन्य दु:ख उठाना ही पड़ेगा। जैसे जन्म लेनेवाले की मृत्यु निश्चित है, जैसे उदय होनेवाले का अन्त होना ध्रुव है, जैसे उत्थान के अनन्तर पतन अनिवार्य है, वैसे ही संयोग के अनन्तर वियोग ध्रुव है। संयोग तो वियोग के ही निमित्त होताहै। वियोग की बात बतानी नहीं पड़ती उसके लक्षण पहिले से ही दिखाई देने लगते हैं। जैसे एक ऋतु के अनन्तर दूसरी ऋतु के आने के लक्षण पहिले से ही प्रकट होने लगते हैं, वैसे ही संयोग में ही भावी वियोग का आभास मिलने लगता है। संयोग में जितना ही अधिक सुख होगा, वियोग में उतना ही बड़ा दु:ख होगा। वियोग की अनुभूति सबको एक-सी नहीं होती। जो शत्रु हैं अथवा उदासीन हैं उन्हें तो वियोग का दु:ख होता ही नहीं, यही नहीं शत्रुओं को तो सुख होता है। वियोगजन्य दु:ख सम्बन्धियों को होता है। सम्बन्ध जितना ही दृढ़ होगा वियोग का दु:ख भी उतना ही अधिक होगा। वियोगजन्य दु:ख में भी एक प्रकार का सुख है उसका अनुभव उत्कृष्ट प्रेमी ही कर सकते हैं।

प्रेम सम्बन्ध पूर्वजन्म के प्रभाव से दो हृदयों में एक साथ उठता है और प्रारब्ध उन दोनों को एकत्रित कर देता है। जब तक जिसका जिसके साथ सम्बन्ध लिखा है, तब तक वह उसके साथ रहता है। समय समाप्त होने पर चला जाता है। न तो कोई समय के पहिले किसी से मिल सकता है, न समय से अधिक कोई किसी के साथ रह ही सकता है। सबका समय निश्चित है। जब जिसके मिलने का समय आवेगा तब उसे चाहें सात तालों के भीतर बन्द कर दो, तो भी वह अपने प्रेमी से मिल जायगा। समय न होने पर एक घर में एक साथ रहने पर भी नहीं मिल सकते। संयोग वियोग ये सब पूर्वजन्म के संस्कारों के ऊपर निर्भर है। दान का प्रत्येक कार्य स्वर्ग-पथ पर गतिशील होने का एक चरण है।

हाय, हाय, इस संसार का कैसा वीभत्स व्यापार है। बच्चा उत्पन्न होता है, किसलिये? मरने के लिये। फल पकता है, गिरने के लिये। शरीर बढ़ता है, छोटा होने के लिये। सूर्यनारायण ऊपर चढ़ते हैं डूबने के लिये। इसी प्रकार संयोग होता है वियोग के लिये। सुख होता है दु:ख के लिये। अपना प्रेमी, अपना सुहृद्, अपना सखा, अपना स्नेही मिल जाता है, तो शरीर का रोम-रोम खिल जाता है, हृदय सरोवर में प्रेम की हिलोरें मारने लगती हैं, मुखकमल विकसित हो जाता है। उन्हीं के विषय में जब सुनते हैं कि वे कल चले जायँगे, तो हृदय कैसा हो जाता है उसका वर्णन करना मानसिक स्थिति के बाहर की बात है। जो अत्यन्त प्यारा होता है वह अत्यन्त निष्ठुर भी तो होता है। जिस बत्ती में जितना ही स्नेह- चिकनापन होगा वह उतने ही अधिक काल तक जलेगी। इसी प्रकार संसार में दु:ख का कारण है मोह, ममता, आसक्ति, अनुराग तथा अपनापन। जिसमें जितना ही अधिक अनुराग होगा, उसके वियोग में उतना ही अधिक कष्ट होगा। इसलिये सीता ने रावण के हर ले जाने पर लंका में श्रीराम के वियोग में विलाप करते हुए बड़े ही मर्मस्पर्शी कारुणिक वचन कहे हैं। उन्होंने कहा- वे वनवासी त्यागी, तपस्वी, वीतरागी महात्मा ही धन्य हैं, जिनका न कोई प्रिय है, न अप्रिय। जिन्हें प्रिय के संयोग में कोई विशेष हर्ष नहीं, वियोग में कोई विषाद नहीं। यही दशा अप्रिय के मिलन में भी हो अर्थात् उनके लिये प्रिय अप्रिय का भेदभाव ही नहीं। हम व्यक्ति या वस्तु के वियोग या संयोग के कारण दुखी-सुखी नहीं होते, उसमें जो एक प्रकार का राग

हो जाता है, दु:ख-सुख का कारण यही है।

वियोग न हो तो संयोग सुख की पूर्ण अनुभूति न हो। यह संसार द्वन्द पर अवस्थित है, उत्थान पतन, सुख-दु:ख, जीवन-मरण तथा यश-अपयश आदि एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं अनुभूति नहीं। यही बात संयोग-वियोग के विषय में है। जिससे संयोग हुआ है, उससे वियोग भी अवश्य होगा। संयोग-वियोग श्रृंखला की दो कड़ियाँ हैं, जो एक दूसरे को जकड़े हुए हैं। संयोग में जैसा सुख होता है, वियोग में वैसा ही दु:ख भी होता है। यदि पुनर्मिलन की आशा न हो तो वियोगजनित दु:ख को सहकर कौन जीवित रह सकता है। प्रिय वियोग की सम्भावना से ही हृदय की कैसी दशा हो जाती है वह अकथनीय है। यदि वह वियोग प्रत्यक्ष साक्षात् रूप से सम्मुख समुपस्थित हो जाय, तब तो फिर कुछ कहा ही नहीं जाता किन्तु प्रियवियोग में भी एक ऐसा मीठा-मीठा सुख छिपा रहता है कि वह दु:ख भी अच्छा लगता है, उन आँसुओं में भी शीतलता होती और उस हृदय की धड़कन में भी प्रिय की अनन्त स्मृतियाँ सन्निहित रहती हैं।

जिस प्रकार वासवृक्ष पर समागम के पश्चात पक्षी पृथक-पृथक दिशाओं में चले जाते है उसी प्रकार प्राणियों के समागम का अन्त वियोग है।

अवसर- अवसर व्यक्ति को महान नहीं बनाता, किंतु व्यक्ति अवसर को महान बनाता है। साधारण मनुष्य अवसर की खोज में रहते हैं। कभी ऐसा अवसर मिले कि हम भी कुछ करके दिखाए। इस प्रकार प्रतीक्षा में सारा जीवन गुजर जाता है परन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिलता।

अवसर कभी दस्तक नहीं देता प्रेरणा लेकर आगे बढ़ना सीखें - कुछ लोग अक्सर यह कहते हुए दिखाई देते हैं कि माहौल बहुत खतरनाक हो चुका है और जीवन जीना मुश्किल होता जा रहा है। यह कोई आज की नहीं, हमेशा की आशंका है, जो प्रवृत्ति का रूप ले चुकी है। वह अपनी सत्ता को बचाने की लड़ाई में समाज पर डर थोपती है और लोगों में असुरक्षा की भावना बनाए रखना श्रेयस्कर समझती है। डरे हुए लोग यह समझने की कोशिश नहीं करते कि ऐसे माहौल को सृजित करने का काम हममें से ही कुछ लोग करते हैं। इसे बदला जा सकता है, बशर्ते हम अपनी ताकत की पहचान कर लें। इससे न केवल वर्तमान को संवारा जा सकता है, भविष्य की आशंका को भी निर्मूल किया जा सकता है।

सपनों में विश्वास कीजिए, आघातों में नहीं। निराशा के अनुभव को अपने भविष्य को आकार देने की अनुमति न दें। वस्तुत: निराशा खुद के प्रति अविश्वास है जो अस्थिर और अशांत करती है। सकारात्मक बनने नहीं देती है।

आपके मन में जिद और संवेदना होनी चाहिए। इसके लिए समय का इंतजार नहीं करना होता है। कहा ही जाता है कि अवसर दस्तक नहीं देता है, जब आप दरवाजे को पीटते हैं, तभी वह खुद को प्रस्तुत कर देता है। अपना नजरिया बदलें। देखेंगे कि आपके आसपास का माहौल वह नहीं है, जो आपके मन में है।

हर क्षण और हर अवसर का यह महत्व जिसने भी नजरंदाज किया, उसने उपलब्धि को दूर कर दिया। नियति एक बार एक ही क्षण देती है और दूसरा क्षण देने से पहले उसे वापस ले लेती है।

सन्देह अथवा संशय दो प्रकारका होता है- एक अज्ञानकृत संशय दूसरा प्रेमकृत संशय। अनिष्टाशंका प्रेमजन्य हैं, अज्ञानजन्य नहीं।

अन्धेरा, प्रकाश

अंधकार कितना भी हो, एक दीए से मिट जाता है, वैसे ही एक पुरुष विश्व को राह दिखानेवाला प्रकाशपुंज बन सकता है। प्रकाश किसी भी स्रोत से आए, शुभ होता है। वर्तमान से भविष्य को आलोकित किया जा सकता है। मनुष्य का असल स्वरूप चमड़ी में लिपटे सितारे की भांति है, जिस प्रकाश को हम इधर-उधर ढूंढ़ते हैं, वह हमारे भीतर है, उसे प्रज्वलित रखना है। यही बड़ा दायित्व है और इसी से हमारे जीवन को गुणवत्ता भी मिलती है। आध्यात्मिक उन्नति की राह भी इसी प्रकाश से रोशन होती है।

प्रकाश देनेवाले को खुद जलना पड़ेगा। अन्ध:कार कोई अस्तित्व नहीं होता प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है।

अज्ञान के अंधेरे से निकलना है तो ज्ञान की ज्योति जलाते रहें

किसी भी पंथ का छोटा-बड़ा अनुष्ठान दीप प्रज्वलन बगैर संपन्न नहीं होता। अग्नितत्व की आराधना स्वरूप दीप प्रज्ज्वलन से परलौकिक अनिष्टों-बाधाओं के निराकरण तथा नए कार्य के मंगलमय होने का विश्वास मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है। आदि समुदायों में रात्रि वेला में अग्नि के दायरे में सामूहिक नृत्य-गायन के माध्यम से हृदय के उद्‌गार साझा करने में यही भाव था।

जन्मदिन, नामकरण, विवाह या दीक्षांत समारोह आदि की रस्मों में सदा दीप प्रज्ज्वलित किए जाते हैं, किंतु दीप के मायने धार्मिक या सांस्कृतिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं। रिहायशी, कार्यालयी या औद्योगिक भवनों के शिलान्यास के अलावा विभिन्न स्तरों की शासकीय, राजनैतिक, वैज्ञानिक व अन्य सम्मेलनों-बैठकों, कार्यक्रमों आदि का श्रीगणेश अनिवार्य रूप से दीप प्रज्ज्वलन से होता है।

सभी धार्मिक रस्मों में वातावरण को अग्नि या अन्य विधि से प्रकाशमय किया जाता है। हिंदुओं के प्रत्येक शुभकार्य में दीया-बाती होती है। ईसाचरित को सदा लैंप के आलोक में पढ़ा जाता है। प्रकाश को दैविक उपस्थिति मानते हुए ईसाई नवनिर्मित गिरजाघर में पहले प्रार्थनास्थल में तेल के दीए जलाते हैं। अंत्येष्टि में अपनी मोमबत्ती भी इस आशय से बुझाते हैं कि एक दिन हर किसी को प्रभु के समक्ष समर्पण करना है। पारसियों में अग्नि नैतिक औचित्य का स्तंभ है, तो यहूदियों में प्रकाशपुंज आस्था का प्रतीक है। मुस्लिम मानते हैं कि जन्नत और धरती में विद्यमान प्रकाश सर्वज्ञ खुदा ही है।

वैसे तो प्रकाश का, अपना अस्तित्व नहीं है। यह एक क्षणभंगुर, भौतिक अस्मिता है जिसका वजूद बाहरी स्रोत पर निर्भर है।इसके विपरीत अंधकार मृत्यु के समान परमसत्य, चिरस्थायी, अस्मिता है। जीवन को भी अंतत: उसी के गर्त में समा जाना है। संसार चलता रहे, लोग संघर्षरत रहें, जनमानस में जीवंतता, उल्लास का भाव बना रहे इसीलिए प्रभु ने माया रची। सभी समुदायों-पंथों, सत्साहित्य और प्रवचनों में प्रकाश की ओर सायास बढ़ते रहने का आह्वान है और इसे आनंद, दिव्यता, ज्ञान, बुद्धि, समृद्धि तथा जीवनदायी शक्ति का प्रतीक माना जाता है। वैदिक उद्‌बोधन है, तमसो मा ज्योतिर्गमय यानी हे प्रभु, हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो।

**** प्रकृति अपरिमित ज्ञान का भंडार है, पत्ते-पत्ते में शिक्षापूर्ण पाठ हैं,***
परंतु उससे लाभ उठाने के लिए अनुभव आवश्यक है।

शंका-संशय, सन्देह, भ्रम, भ्रांति

जिस तरह एक म्यान में दो तलवार, एक मर्द के दो बीवियां, एक कुर्सी पर दो अफसर, एक गली में दो कुत्ते चैन से नहीं रह सकते उसी तरह भ्रांति और शांति का परस्पर मेल तेल और पानी जैसा होता है। शांति सतयुग की चीज है तो भ्रांति कलियुग की वस्तु। आज शांति का नहीं भ्रांति का युग है। भ्रांति में ही शांति है। कैसे ? ऐसे। आपने खानाबदोशों की गाड़ी तो देखी होगी। उसके नीचे लालटेन लटकती रहती है और एक कुत्ता चल रहा होता है। अक्सर कुत्ते को भ्रम रहता है कि बैलगाडी वही चला रहा है। यही हाल सरकार का भी होता है। अक्सर कुछ लोगों को भ्रम हो जाता है कि प्रशासन और सरकार के खेवनहार वही है यह भ्रांति है। ऐसे भ्रांत पुरुषों का ब्रह्मा भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। एक जमाने में लालजी को भ्रम हो गया था कि वे ही इस देश के लौहपुरुष हैं। स्वयं सदैव धोती-कुर्ता पहनते हैं। लेकिन उन्होंने सूटबूटधारी विज्ञापन को देख कर देश को एक नया नारा दिया- फील गुड यानी खुशफहमी। अब पांच साल सत्ता सुन्दरी के संग-साथ के कारण उन्हें सुख का अनुभव हो गया परन्तु गांव ढाणी में बसने वाले गरीब गुरबों को ऐसा कोई अनुभव नहीं हुआ। वे राम बनाम रोम की बात करते रहे और जनता ने रोम से ब्याह कर आयी युवती को न केवल अपने घर की बहू स्वीकार कर लिया वरन् तिजोरी की चाबियां तक सौंप दीं।

भ्रांति होने का यह सबसे बड़ा उदाहरण है। ठीक इसी तरह एक जमाने में इंदिरा गांधी को भी भ्रांति हो गई थी। उनके एक चमचेनुमा नेता ने इंदिरा इज इंडिया का तुकबंदीपूर्ण नारा दिया। वस्तुत: यह एक भ्रांत नारा था जिससे वे भ्रांति में पड़ गई। उन्होंने देश में आपातकाल लगा कर उफनते आक्रोश पर शांति चाही लेकिन यह शांति भ्रांति ही साबित हुई। हमारे इन उदाहरणों से चाहे शांति बड़ी नजर आए लेकिन वर्चस्व भ्रांति का ही रहता है। राजा दशरथ की रानियां कौशल्या और कैकेयी शांति और भ्रांति का जोरदार प्रतीक हैं। कौशल्या जानती थीं कि उनका बूढ़ा पति युवा कैकयी की बातें ज्यादा मानता है इसलिए वे बड़ी होते हुए भी शांत रहती थीं। कैकयी को भ्रांति थी कि पति की तरह पुत्र भी उसके कब्जे में है। पर यह उनकी भ्रांति थी। पति ने तो कैकेयी की बात मान ली लेकिन बेटे भरत ने नहीं मानी। लेकिन इस कलियुग में भ्रांति एक बड़ा सहारा है। बेचारा आम आदमी नेताओं की तो छोड़ो फिल्मों की भ्रांति को देख हृदय की शांति खरीद लेता है। उसे लगता है कि पर्दे पर बुराई से लड़ने वाला एंग्री यंगमैन उसके जीवन को भी खुशहाल और शांत बना देगा। अब जैसे पिछले कुछ दिनों से हमें भ्रम हो गया है कि हम सतजुगी वेदव्यास के कलयुगी अवतार हैं। उन्होंने द्वापर में महाभारत लिखी हम कलियुगी महाभारत लिख रहे हैं। बस यही भ्रांति हमारे लिए शिलाजीत बन गई है। यह भ्रांति हमें नवीन शक्ति प्रदान करती है। एक नवीन ताकत देती है। इसलिए भ्रांति के युग में शांति की तलाश बेमानी है।

शंका से शंका बढती है और विश्वास से विश्वास। हमारी शंकाये हमारे साथ ही विश्वासघात करती है और हमें उन अच्छाईयों से वंचित रखती है जिन्हें हम प्रयास से पा जाते है। भ्रम कहते हैं उल्टी समझको।

किसी शङ्कासम्भव बात को देखकर शंकित होना स्वाभाविक बात ही है। जीव सर्वज्ञ तो है ही नहीं, वे अनुमान के बल पर ही बहुत-सी बातों को स्थिर करते हैं, जीवों की विषय भोगों की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति है। एकान्त में कोई भाई अपनी सगी युवती बहिन से हँसकर बातें कर रहा हो, तो देखनेवालों की सर्वप्रथम दृष्टि अवैध सम्बन्ध की ही ओर जायगी। उनमें से जो नीच प्रकृति के खेल होंगे वे तो उसी समय निश्चय कर लेंगे कि यह व्यक्ति सदाचारहीन है, उसी समय वे निन्दा करने लगेंगे। खल पुरुष तो तनिक-सा छिद्र पाते ही झूठा अनुमान लगाकर सर्वत्र बुराई करनी आरम्भ

कर देते हैं, किन्तु जो गम्भीर पुरुष हैं, धर्म से, भगवान से डरते हैं, वे तो दूसरों के विषय में शंका होने पर कोई बात निश्चय नहीं करते, किसी के सामने उसे प्रकट भी नहीं करते। जिसके सम्बन्ध में शंका उत्पन्न हुई है, यदि वह ऐसे ही सामान्य पुरुष है, जिससे अपना कोई सम्बन्ध नहीं तब तो उस शङ्का को पी जाते हैं। सोच लेते हैं, कुछ भी हो, हमें इससे क्या प्रयोजन और यदि शंका अपने किसी घनिष्ट सम्बन्धी आत्मीय पुरुष के सम्बन्ध में हुई है, तो अवसर पाकर प्रेमपूर्वक उसी पर उसे प्रकट करते हैं। शंका को प्रकट इसलिये करते हैं कि शंका बनी रहने पर पूर्ण प्रेम होता नहीं। यह अत्यन्त आत्मीयता का चिन्ह है। जब उसके द्वारा शंका का समाधान हो गया, तो फिर सज्जन पुरुषों को पश्चात्ताप होता है, हाय। इतने पवित्र विशुद्ध बन्धु पर हमने ऐसी व्यर्थ की शङ्का क्यों की? किन्तु शंका का समाधान होना अच्छा ही है। जब तक चित्त में तनिक भी शङ्का बनी रहती हैं, तब तक हार्दिक प्रेम होता नहीं। स्वार्थी लोगों की दूसरी बात है। स्वार्थी तो किसी से प्रेम कर ही नहीं सकते। उन्हें तो अपने स्वार्थ से प्रयोजन? जब तक जिससे अपना स्वार्थ निकलता है, वह अच्छा हो बुरा हो अपना स्वार्थ सिद्ध करना। स्वार्थ न निकला तुम अपने घर हम अपने घर, शंका वास्तव में प्रेम में ही होती है, समाधान होने पर प्रेम और बढ़ता ही है।

शंका के मूल में श्रद्धा का अभाव रहता है। दही में जितना भी दूध डालिए, दही होता जाएगा। शंकाशील हृदयों में प्रेम की वाणी भी शंका उत्पन्न करती है। अपने दोषों के कारण ही मनुष्य शंकित होता है। गंभीरता से शंका करनेवाला मन सजीव मन है। शंका का अंत शांति का प्रारंभ है।

यदि हमें अँधेरे में भूत का भ्रम हो जाय, तो मन भूत के सभी अङ्गों की कल्पना अपने आप करने लगेगा। भूत की बड़ी-बड़ी दाढ़ें न होने पर भी दीखने लगेंगी। भूत के उलटें बड़े-बड़े पैर हमारी आँखों के सम्मुख नृत्य करने लगेंगे और उसका फटा हुआ विकराल मुख हमें अँधेरे में अपनी ओर बढ़ता हुआ दिखाई देगा, उसी समय कोई महा प्रकाश लेकर आ जाय, तो न वहाँ भूत रहता है न भूत की परछाईं। प्रकाश को देखकर भूत भाग गया हो, सो बात नहीं है, भूत वहाँ था ही नहीं वह तो मिथ्या भ्रम था। इसी प्रकार प्रपञ्च में जो द्वैत दिखाई देता है, वह ज्ञान होने पर नष्ट हो जाता हो, सो बात नहीं। द्वैत का अस्तित्व ही नहीं। भ्रमवश उसकी प्रतीति होती है। ज्ञान होने पर प्रतीति नहीं होती।

त्रुटियां विषयगामी बनाती हैं, भ्रमों से विपत्तियां उत्पन्न होती हैं। ये भ्रम तीखी सुरा के समान प्रमत्त करते हैं, परंतु वे शीघ्र ही विलीन हो जाते हैं और तुम्हें रुग्ण और अवसाद से युक्त कर जाते हैं।

सत्य की निगाह तक पहुंचने के लिये शक की निगाह से भी गुजरना पड़ता है ऐसे में कुछ शक को भेद कर सत्य तक पहुंच जाते है और कुछ शक की बुनियाद पर किसी के चरित्र पर प्रश्न चिन्ह लगाते है।

अनाग्रह से सत्य का स्पर्श व उसके स्पर्श से समस्याओं का समाधान

एक किसान ने अपनी पत्नी से कहा- मैं भैंस ला रहा हूं। वह बोली-भले लाओ, पर दूध की मलाई अपनी मां को खिलाऊंगी। किसान बोला- यह कैसे हो सकता है? भैंस मैं लाऊं और मलाई खाए तुम्हारी मां। विवाद बढ़ गया। दोनों लड़ पड़े। पड़ोसी आया। लाठी को घुमा घड़े फोड़ ढाले। किसान भुनभुनाया तो वह बोला- तेरी भैंस मेरा खेत चर गई। किसान ने कहा- भैंस है ही नहीं, फिर तुम्हारा खेत कहां से चर गई? पड़ोसी बोली- भैंस ही नहीं है तो अब मलाई की लड़ाई कैसी?

संशय, आग्रह और क्रोध, जीवन-विकास के सबसे बड़े अवरोधक हैं। किसी वस्तु या स्थिति के न होने पर भी उसके होने की आशंका से हर व्यक्ति पीड़ित एवं भयभीत है। यह एक प्रकार से मनुष्य जीवन का विकार है, काल्पनिक भावना है। संशय वह है जो अस्तित्वहीन होने पर भी मानव के पूरे जीवन को प्रभावित कर देता है। संशय का मनोविज्ञान कहता

है कि मनुष्य इस कल्पना का निर्माण कर लेता है और भयातुर, क्रोधित और हिंसक होकर कांपने लगता है।

बाबा फरीद से एक युवक ने पूछा- बाबा, संशय और क्रोध जैसे विकारों को कैसे जीता जाए? बाबा ने उत्तर दिया- बेटा, समस्या संशय और क्रोध को जीतने की नहीं, उन्हें जानने की है। हमारा अज्ञान ही हमें बार-बार हराता रहता है। जब हमारे अंदर क्रोध प्रबल होता है, संशय की स्थिति होती है। इस बेहोशी में हमसे जो कुछ होता है, वह बस एक यांत्रित प्रतिक्रिया होता है। जब होश आता है, तब केवल पछतावा बचता है। पर यह सब बेकार जाता है, क्योंकि जो पछता रहा है वह फिर से संशय का तूफान और क्रोध की आंधी उठने पर दोबारा सो जाएगा।

युवक ने पूछा- बाबा, हम इस स्थिति से कैसे उबर सकते हैं? बाबा ने कहा- हमें अपनी चैतन्यता को बरकरार रखना होगा। ऐसा होने पर ही हमें पता चलेगा कि न तो क्रोध शेष है और न संशय से उत्पन्न कल्पनाएं। यांत्रिकता टूट जाने पर जीत-हार का खेल ही खत्म हो जाता है। युवक बोला- बाबा, मैं समझा नहीं। बाबा बोले- अंधेरे में पड़ी रस्सी सांप जैसी नजर आती है। कुछ लोग भागने लगते हैं और कुछ उससे लड़ने की ठान लेते हैं। लेकिन गलती वे दोनों ही करते हैं। ठीक से देखने पर पता चलता है कि सांप तो है ही नहीं। हम सापेक्ष सत्यों के जगत में जीते हैं, इसीलिए उनकी व्याख्या अधिक मूल्यवान है। समस्याओं का स्रोत है- आग्रह का संरोहण। वह असत्य को जन्म देता है और असत्य समस्याओं को। सापेक्ष दृष्टि का प्रतिपादन महावीर की बहुत बड़ी देन है इससे अनाग्रह का विकास होता है। अनाग्रह से सत्य का स्पर्श और सत्य के स्पर्श से समस्याओं का समाधान होता है।

एक दिन एक राजनेता अपने सचिव पर उबल पड़ा। उसने कहा, मैंने तुम्हें पंद्रह मिनट का भाषण तैयार करने के लिए कहा था और तुमने एक घंटे का भाषण तैयार कर डाला। मैं उसे सुनाते-सुनाते थक गया। श्रोताओं ने मुझे टोका। तुमने ध्यान नहीं दिया। तुम सचिव रहने योग्य नहीं हो। सचिव ने कहा, आप मेरी भी सुनें।

मैंने केवल पंद्रह मिनट का भाषण तैयार किया था। उसकी चार प्रतियां की गई थीं। आप चारों साथ ले गये और एक के बाद एक पढ़ते रहे। हम स्वयं को न देखकर दूसरों को देखते हैं। यह बात हर क्षेत्र में लागू होती नजर आ रही है। लेकिन अगर हम खुद को ही देखते रहेंगे तो बहुत पिछड़ जाएंगे और केवल बाहर को देखते रहेंगे तो टूट जाएंगे। स्वयं का भी विकास और समाज का भी विकास, यही समष्टिवाद है और यही धर्म है। परशुराम ने यही बात भगवान कृष्ण को सुदर्शन चक्र देते हुए कही थी कि वासुदेव कृष्ण, तुम बहुत माखन खा चुके, बहुत लीलाएं कर चुके, अब वह करो जिसके लिए तुम धरती पर आये हो। परशुराम के ये शब्द जीवन की अपेक्षा को न केवल सामने करते हैं, बल्कि जीवन की सच्चाइयों को परत-दर-परत खोलकर रख देते हैं।

एक बार अंधेरी रात में एक आदमी नाव पर चढ़ा। उसने नाव को खेना शुरू किया। वह नाव खेता रहा। कुछ उजाला हुआ। उसने सोचा, दूसरा तट आ गया। वह नीचे उतरा। देखो, यह तो वही तट है जहां से नौका पर चढ़ा था। रात भर नाव खेता रहा, पर पहुंचा कहीं नहीं। उसने ध्यान से देखा तो पता चला कि नौका एक रस्सी से बंधी है। वह उसी रस्सी को खोलना ही भूल गया। जहां था वहीं का वहीं रह गया।

हम चिंतन के हर मोड़ पर इसी तरह के भ्रम पाल लेते हैं। कभी नजदीक और कभी दूर के बीच सच को खोजते रहते हैं। इस असमंजस में सबसे अधिक प्रभावित होती है, वह है हमारी युग के साथ आगे बढ़ने की गति। राजनीति में यह स्वीकृत तथ्य है कि पैर का कांटा निकालने तक ठहरने से ही पिछड़ जाते हैं।

सन्देह मन का एक शत्रु है। अति सन्देह घातक होता है। जिज्ञासा और सन्देह मे अन्तर है। किसी वस्तु का असली

स्वरूप अच्छे उद्देश्य से जानना, उसे जिज्ञासा कहते है। जिज्ञासा मन आविष्कारी होता है जबकि संदेही मन हमेशा गलत बातों पर विचार करता रहता है। वह वस्तु, व्यक्ति, घटनाओं का असली रूप देखे बिना उसमें विकृति, विकार, खामियां, कमी, हीनता देखता है। ऐसा मन सन्देह के कारण कलुषित होता है और फिर मामूली कारणों से वाद-विवाद उपजते है। कभी-कभी सन्देह प्रवृति का भूत मन को छलता है और ऐसे कार्यों की तरफ धकेलता है जो नहीं करने चाहिये। जिज्ञासा प्रवृति भी मनुष्य को कृति करने बाध्य करती है लेकिन उसमे खोज खबर लेने का प्रयास होता है। सन्देही मन की जुगार व्यर्थ होकर कार्य का नाश होता है। इसलिये सन्देही प्रवृति से जिज्ञासु प्रवृति श्रेष्ठ है।

सन्देह उत्पन्न होना मानव मन की प्राचीन समय से चली आ रही विशेषता है। अनेको शास्त्रों उपदेशकों के होने पर भी, मन का संदेह का स्वभाव उसी प्रकार है। पूरी तरह से सन्देह रहित मन ढूंढ पाना मुश्किल है। वास्तव मे यह मन का एक बडा दोष है। वैसे उसका एक लाभ भी है। मानव मन सन्देही नहीं होता तो आज तक कोई आविष्कार नहीं हुआ होता। यह तो होते रहता है इस तरह के सिद्धान्त पर मन ही प्रश्न करता है लेकिन ऐसा क्यों होता है जैसे सूर्य पूरब में ही उगता है क्यो? इसी से मनुष्य ने भूगोल विज्ञान की बाकी जानकारी कर पाई। मन सन्देही हो पर हेकडी चलानेवाला न हो अत्यन्त आवश्यक है।

आपको पता है कि आपका संदेह हमेशा अच्छी बात पर होता है? आप सच पर संदेह करते हो, झूठ पर कभी संदेह नहीं करते। आप खुशी पर संदेह करते हैं। अवसाद पर नहीं। अगर आप अवसाद में हों और आपसे कोई पूछे, क्या आप अवसाद में हो? आपको विश्वास होता है कि आप दुखी हो। आप यह नहीं कहते, शायद, जब आप खुश होते हैं तो कहते हैं, मुझे पक्का पता नहीं है कि मैं खुश हूं या नहीं। हम प्रेम पर संदेह करते हैं। जब कोई कहता है, मैं तुमसे नफरत करता हूं। आप कभी नहीं पूछते सच हमारा संदेह हमेशा किसी सकारात्मक बात पर होता है। संदेह तो आते है, जाते है और संदेह करो। यह नहीं है कि संदेह मत करो, पर संदेह अपने आप छूट जाता है। संदेह टिक नहीं सकता एक गुरु तो शिष्य को संदेह करने के लिए प्रोत्साहित करेगा। गुरू संदेह को नहीं मिटायेगा। गुरु का काम है संदेह को बढ़ाना ताकि आप खूब पककर एकदम ठोस हो जाओ। क्योंकि, आज नहीं तो कल आपको संदेह होगा ही, तो बेहतर है कि आज ही संदेह कर लो। जितना हो सके संदेह करो। एक ही संदेह बार-बार नहीं आता। अलग-अलग संदेह उठते हैं। जब संदेह आये तो उससे डरो मत। उसके साथ रहो। एक समय आयेगा, जब आप बिलकुल ठोस हो जाओंगे। इसस आप पहले से ज्यादा मजबूत, शक्तिवान, केंद्रित और जिम्मेदार बनोगे। यदि गुरु के बारे में संदेह हुआ है, आने दो। उस संदेह के साथ पको। संदेह एक ऐसा ईंधन है, जो मन को पका सकता है।

शक शांति खत्म करनेवाली एक बीमारी है। नादान व मूर्ख ढोल की तरह होता है, आवाज बुलंद होती है मगर अंदर से खोखला होता है। अगर चाहते हो कि तुम्हारा नाम बाकी रहे, तो अपने बच्चों को अच्छे आचरण सिखाओ। अपने से अच्छे को तलाश करो, अपने जैसों के साथ से तो सिर्फ उम्र जाया होगी। पहले तो किसी का राज तलाश मत करो, अगर नजर आ जाये तो फाश मत करो। शक एक ऐसी बीमारी है जो इंसान की शांति खत्म कर देती है।

साधना में बाधा ही नहीं, श्रद्धा तक पहुंचने की सीढ़ी भी होता है संदेह - जिसे तुम धर्म कहते हो, आम तौर से उसमें श्रद्धा पहला कदम है और संदेह की तो कोई जगह ही नहीं है। इसलिए बहुत बुद्धिमान लोगों को मजबूरी में अधार्मिक रहना पड़ता है, क्योंकि यह बात उनकी पकड़ में ही नहीं आती। अगर परमात्मा ने दिया है संदेह तो उसे काटकर कैसे फेंक दें? उसका कोई उपयोग होना चाहिए। बुद्ध ने अनूठी बात कही। बुद्ध ने कहा, संदेह का उपयोग हो सकता है। संदेह को श्रद्धा

की सेवा में लगाया जा सकता है। संदेह के ही सहारे श्रद्धा खोजी जा सकती है। यही तो विज्ञान करता है। और वैज्ञानिक जब एक निष्पत्ति पर पहुंचता है तो संदेह का कारण ही नहीं रह जाता। सब परीक्षण कर लिए, अवलोकन कर लिया, सब तरह से जांच-परख कर ली, ऐसा पाया। तथ्य। धारणा नहीं, तथ्य।

बुद्ध का एक नाम है तथागत। उसका अर्थ होता है, जिसने जगत में तथ्य को लाया, जिसके द्वारा जगत में तथ्य आया। इसके पहले कल्पनाएं थीं, धारणाएं थीं, विश्वास था। तथागत प्यारा शब्द है। उसके बहुत अर्थ होते हैं। एक अर्थ में आगत का अर्थ होता है, आया और तथा का अर्थ होता है, तथ्य। जिसके द्वारा तथज्ञ, तथ्य जगत में उतरा। जिसने सत्य को तथ्य के माध्यम से खोजने के लिए कहा, जिसने श्रद्धा का शोध संदेह के द्वारा करने को कहा। बुद्ध ने संदेह को शुद्धि के लिए उपयोग कर लिया।

विज्ञान कहता है- निरपेक्ष रहो, कोई अपेक्षा लेकर सत्य के पास मत जाओ। आंखें खाली हों, ताकि तुम वही देख सको जो है। यथावत। तथावत। तुम अगर पहले से ही कुछ मानकर चल पड़े हो तो वही देख लोगे। तुम्हारी कल्पना का प्रक्षेपण को जाएगा। जब तुम्हारी धारणा हो कि फलां आदमी चोर, तो तुम्हें चोर दिखाई पड़ने लगेगा। जब तुम्हारी धारणा हो कि फलां आदमी साधु, तुम्हें साधु दिखाई पड़ने लगेगा। यह सत्य को खोजने का ढंग नहीं। धारणा अगर पहले ही बना ली तो तुमने तो असत्य में जीने की कसम खा ली। तो बुद्ध ने कहा, कोई धारणा नहीं। कोई शास्त्र लेकर सत्य के पास मत जाना। सत्य के पास तो जाना निर्वस्त्र और नग्न, शून्य। दर्पण की भांति जाना सत्य के पास। तो जो हो, वही झलके। तो ही जान पाओगे।

विज्ञान से भी कठिन काम बुद्ध ने किया। क्योंकि विज्ञान तो कहता है, वस्तुओं के प्रति निरपेक्ष भाव रखना। वस्तुओं के प्रति निरपेक्ष भाव रखना तो बहुत सरल है, लेकिन स्वयं के प्रति निरपेक्ष भाव रखना बहुत कठिन है। बुद्ध ने वही कहा। विज्ञान तो बहिर्मुखी है, बुद्ध का विज्ञान अंतर्मुखी है। धर्म का अर्थ होता है, अंतर्मुखी विज्ञान। बुद्ध ने कहा, जैसे दूसरे को देखते हो बिना किसी धारणा के, ऐसे ही अपने को भी देखना बिना किसी धारणा के।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जब बार-बार आपको यह महसूस होने लगे कि आप आए दिन शक करने लगे हैं तो तुरंत मनचिकित्सक से मिलें क्योंकि शक मानसिक बीमारी का एक रूप है जो आज के तनावग्रस्त जिंदगी में तेजी से फैलती जा रही है। कुछ लोग बेवजह शक करने लगते हैं। इससे उनका जीवन तनावग्रस्त रहने लगता है। शक की ऐसी चरम स्थिति को पैरानोइया कहते हैं। पैरानोइया होने के कई कारण हो सकते हैं, लेकिन आनुवंशिक कारण, पैरानॉयड डिस्आर्डर और तनाव इसके प्रमुख कारण हैं।

शक्की व्यक्ति हर समय बेहद सजग रहता है। वह अपनी दूरदर्शिता और तार्किक सोच पर गर्व करता है। वह स्वभाव से जिद्दी और अपनी गलती को न माननेवाला होता है। ईर्ष्या और गलतफहमी भी शक को जन्म देती है। कभी-कभी पति-पत्नी में शक का एक बहुत बड़ा कारण होता है सुंदरता। अगर पति सुंदर और स्मार्ट है तो पत्नी हर वक्त उसे शक भरी नजरों से देखती है। अगर पत्नी अधिक सुंदर है तो पति को लगता है कि सारे लोग उसकी पत्नी को ही देख रहे हैं।

जब भी अपने अंदर शक की भावना जगने लगे तो सकारात्मक विचार को अपने अंदर लाना चाहिए। अपने साथी, रिश्तेदारों या दोस्तों के साथ खुलकर बातें करनी चाहिए। शक दूर करने का सबसे बेहतरीन इलाज है अपने साथी को विश्वास में लेकर उसके साथ समय बितायें, उससे बातें करें। फिर भी बात संभलती नजर न आए तो तुरंत मनोचिकित्सक से सलाह लें।

ध्यान, धारणा, समाधि

जीवन में सारा खेल ध्यान का है, ध्यान से काम ना करो तो काम बिगड़ जाता।

रिश्तों में ध्यान ना दो तो टूट जाते हैं, सेहत पर ध्यान न दो तो खराब हो जाती है।

खेल में ध्यान न दो तो हार जाते हैं, पढ़ने में ध्यान न दो तो समझ नहीं आती है।

जीवन एक उत्सव है। यह उत्सव हमेशा होते रहना चाहिए। योग की एक सरल पद्धति है अष्टांग योग। साधना के इस मार्ग पर चलकर घर-गृहस्थीवाले लोग भी योग की उच्च अवस्था को हासिल कर सकते हैं। अष्टांग योग के आठ अंग हैं। ये हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

हठयोग साधना शरीर, इंद्रियों, मन और प्राण को बनाए रखने की एक वैज्ञानिक पद्धति है। इसके लगातार अभ्यास से शरीर की प्राण ऊर्जा का विकास होता है, जिससे साधक तमाम बीमारियों से बचा रहता है।

हठयोग की साधना के सात अंग हैं। ये हैं- षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। शरीर को स्वस्थ बनाए रखने की शक्ति हमारे में ही होती है। जरूरत है, उस शक्ति को जानकर उसे संतुलित और व्यवस्थित करने की। आहार, निद्रा और दिनचर्या- ये मनुष्य जीवन के तीन आधार स्तंभ है। इनमें आहार एक महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

सुख की इच्छा ध्यान है। जो मनुष्य ध्यान करता है उसके जीवन में कलह नहीं होता। जो मनुष्य धर्ममार्ग पर चलता है उसको उसकी मंजिल मिल जाती है। आत्मा शुद्ध करनी चाहिए और अशुभ विचारों का त्याग करके ध्यान साधना करनी चाहिए जिससे परमात्मा को पाया जायेगा। मन में बाहिरी विषय का चिन्तन हो तो उसे बलपूर्वक रोक देना चाहिये योगशास्त्र में इसका नाम प्रत्याहार कहा है। ध्यान की ही बढ़ी हुई अवस्था का नाम समाधि है। जब ध्यान परपक्व हो जाता है, तो उसे धारणा कहते हैं और धारणा ही समाधि में परिणत हो जाती है। ध्यान, धारणा और समाधि इन तीनों का इकट्ठा हो जाना ही संयम कहलाता है। यम नियम तो बाहरी साधन है, इनकी आवश्यकता तो सर्वत्र है, इनके बिना परमार्थ के किसी भी मार्ग में प्राणी नहीं बढ़ सकता। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये मध्यम साधन हैं। विविक्त देश में बैठकर किये जाते हैं। ध्यान धारणा औरसमाधि ये अन्तिम साधन हैं। ये अनेक जन्मों के अभ्यास से शुद्ध चित्त वाले साधक को बडी कठिनता से भगवत् कृपा से ही प्राप्त हो सकते हैं। सब साधनों के लक्ष्य ध्येय वस्तु का ध्यान करना ही है।

संसार भावमय हैं, जो जैसी भावना करेगा, वह वैसा ही हो जायगा। भगवान का ध्यान कोई भाग्यशाली ही कर सकते हैं, विषपासक्त मनसे भगवान का ध्यान हो ही नहीं सकता। जिस मन में काम व्याप्त है, उसमें राम आ ही कैसे सकते हैं, यदि मन में राम आकर बैठ जायँ तो फिर काम वहाँ फटक भी नहीं सकता। अनेकों जन्मों के ऐसे संस्कार पड़ गये हैं कि विषयवार्ता तो अमृत से भी प्यारी लगती है। बड़े परिश्रम से यत्नपूर्वक भगवद्विग्रह का ध्यान करे तो स्वप्न में भी वह दिखाई नहीं देती, इसके विपरीत किसी कमनीया कामिनी को एक बार भी देख लेते हैं तो मन उसमें फँस जाता है। स्वप्न में भी दिखायी देती है। क्योंकि जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारानुसार उधर मन की स्वाभाविक रूचि है। पानी ढालू पृथ्वी में तो आपसे आप बह जाता है। ऊँचे ले जाने का प्रयत्न करना पड़ता है। जिन्होंने हजारों जन्मों में निरन्तर तपस्या, यज्ञ, दान आदि सत्कर्म किये हैं, इन शुभ कर्मों को करते-करते जिनके मनमें मलविक्षेप आदि आवरण नष्टहो गये हैं, ऐसे क्षीण पाप पुरुष ही भगवद् ध्यान के अधिकारी होते हैं। पूर्वजन्मों के अभ्यास के कारण उनकी स्वाभाविक ही भगवद्ध्यान में प्रीति होती है।

प्रीति वहीं होती हैं, जहाँ तृप्ति होती है। ज्ञान जब रसीला होकर नाचता है, तब उसको प्रीति कहते हैं। उल्लसित, उल्लासात्मक ज्ञानका नाम ही प्रीति है। शान्त ज्ञानका नाम समाधि है।

शारीरिक सम्मिलन सुख क्षणिक होता है अस्थायी होता है। मानसिक मिलन नित्य निरंतर होता रहता है उसे कोई नाश नहीं कर सकता, उसी को ध्यान धारणा समाधि किसी भी नाम से पुकारो। सब ओर से चित्तवृत्ति हटकर प्रियतम में ही निरन्तर अविच्छिन्न तेल धारवत लगी रहे यही प्रेम की परागति है यही पराकाष्ठा है।

सात्विक प्रकृति का मनुष्य आधी रात को अपने बिस्तर पर ध्यान करता है ताकि लोग उसे देख न सके। कर्म केवल मन की शुद्धि होती है, तत्व वस्तु प्राप्त नही हो सकती। उसका मुख्य उपाय है ध्यान।

तुम्हें स्वयं चेष्टा करनी होगी। तथागत तो मात्र शिक्षक है। जो ध्यानी व्यक्ति मार्ग में प्रवेश करते हैं, वे मार के पाशों से मुक्त हो जाते हैं।

ध्यान सिर्फ एक वाहन है। बहिर्मुखी व्यक्ति अगर ध्यान में उतरे तो वह ब्रह्म की यात्रा पर, अंतरिक्षी यात्रा पर निकल जाएगा- जहां सारा अखण्ड जगत् उसे अपना ही स्वरूप मालूम होने लगेगा। अगर अंतर्मुखी व्यक्ति ध्यान के वाहन पर सवार हो तो अंतर यात्रा पर निकल जाएगा, शून्य में और शून्य में, और महाशून्य में जहां सब बबूले फूट कर मिट जाते हैं और महासागर अस्तित्व का, शून्य का ही शेष रह जाता है।

गलत संस्कारों को काटने का शिरोमणि तत्व है- ध्यान। ध्यानाभ्यास द्वारा हम अपने विशुद्ध चैतन्य स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। ध्यान भीतर की ज्योति को जागृत करने की एक कारगर प्रक्रिया है। ध्यानाभ्यास के द्वारा हम अपने अस्तित्व, अपने चैतन्य स्वरूप से जुड़ाव की अनुभूति कर सकते हैं। ध्यान-साधना के माध्यम से हम देहाभिमान से ऊपर उठकर स्वयं को आत्मा के रूप में देख पाते हैं। भीतर का दीया जलते ही सन्मार्ग मिल जाता है।

अंतर्मन में डुबकी लगाने से ही ज्ञान और योग की प्राप्ति होती है

संत अपने ठिकाने की परवाह नहीं करता। गुरु घासीदास कहते हैं, सुन्य गगन बीच बासा हो, निरमल ग्यान के प्रकासा हो, सत्यनाम के निवासा हो। भीतर का जो अंतर आकाश है, मेरा वास उसी अंतर्गुफा में है और भीतर की वह गुफा निर्मल ज्ञान से प्रकाशित है। संत निराकार को निर्मल ज्ञान से प्रकाशित है। संत निराकार को निर्मल कहते हैं। उस निराकार, शून्य गगन में ओंकार का अमृत है, ओंकार का आलोक है।

ये निराकार ही गोविंद का पलंग है। इसी पलंग पर ओंकार रूपी प्रभु सोता है। यह जो निराकार है, निर्गुण है, यहीं पर सेज बिछाने से प्रभु का आगमन होगा, यहीं जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होगा अर्थात यहीं समाधि घटित होगी। जो साधक समाधि में, इस शून्य गगन में रहता है, उसे दया और धर्म करना नहीं पड़ता, बल्कि दया और धर्म उसके चंवर डुलाते हैं। वहां का दृश्य इतना सुंदर है कि वहां का सौंदर्य खुद ही सौंदर्य पर मोहित हो जाता है।

इस शून्य गगन के लोक में अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु, प्रकाश इन पांच तत्वों का प्रवेश नहीं है। वहां सांसों का भी प्रवेश नहीं है। संत वहीं घर बनाता है, अपने गोविंद, अपने साहिब के पास। वह वहीं परम-विश्राम को उपलब्ध होता है। वहां छत्तीस राग रागनियां बज रही हैं- अनहद राग छत्तीसों बाजे। यह उपमा की बात है, क्योंकि संगीत में छत्तीस राग-रागिनियां बताई गई हैं।

समाधि में बाहर की ओर सब दरवाजे बंद हो जाते हैं। इंद्रियों की बहिर्मुखता बंद हो जाती है, क्योंकि साधक भीतर से जागा और बाहर से सोया होता है। बाहर से इंद्रियों के मरते ही भीतर परम-जागरण घटित होता है। समाधि की यह अवस्था परम-संगीत, परम-नृत्य, परम-रास जैसी है- मानो इंद्रलोक में परियां नाच रही हों। समाधि में द्वैत का भेद मिट जाता है और एक ही बचता है। समाधि के इस विज्ञान को आप जान लें और समाधि घटित होने लगे आपके साथ तो ये जो जन्म-मृत्यु का चौरासी लाख योनियों का चक्र है, इससे आप मुक्त हो जाते हैं, आपकी परमगति हो जाती है।

इसलिए, बाहर के स्नान-ध्यान से प्यास नहीं बुझेगी, क्योंकि असली ज्ञान-गंगा तो भीतर बह रही है, ज्ञान के गंगा घट भीतर में, काहे भय पियासा हो। भीतर की गंगा में डुबकी लगाओ। उसी से प्यास बुझेगी। पानी में लोग रह रहे हैं और फिर भी प्यासे हैं। ऐसे ही नाम के गोविंद के बीच में हम रहते हैं, फिर भी गोविंद को खोजते हैं। किसी कामिल मुर्शिद से जुड़कर अपने घट के भीतर नाम की गंगा में स्नान करने की कला जानना ही सहज योग है।

आत्मा को स्वस्थ और संतुलन रखने के लिए ध्यान साधना जरूरी

अधिक पाने की लालसा, आपाधापी और विलासिता के कारण जीवन असंतुष्टि की ओर बढ़ रहा है। संतुष्टि का मात्र एक ही साधन है- ध्यान। ईश्वर का ध्यान सभी करते है, लेकिन ईश्वर काल्पनिक नहीं, बल्कि जीवंत है, हमेशा हमारे साथ मौजूद है। ईश्वर की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करनी जरूरी है, तभी ध्यान की विधि सरल व सार्थक होगी। जब हम सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ईश्वर का ध्यान करते हैं, तब हमारा चित्त इधर-उधर भटकता है। फिर ध्यान कैसे करें? जैसे हम अनेक विद्याओं के लिए गुरु के पास जाते हैं, उसी प्रकार ध्यान भी बिना गुरु के नहीं सीख सकते। हालांकि कई लोग ध्यान की विधि सिखाते हैं, जिसे योग, मेडिटेशन भी कहते हैं, लेकिन जब ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होगा, तब ध्यान किसका करते हैं? जैसे एक कुंवारी कन्या अपने भावी पति को प्रत्यक्ष देख न ले, तब तक उसका ध्यान कैसे करेगी?

ध्यान का दूसरा अर्थ है याद करना। महसूस करना कि वह चीज प्रत्यक्ष है, जिसे देखा है। कल्पना या धारणा द्वारा किया गया ध्यान सरासर झूठा है। कई लोग ईश्वर का ध्यान सीखने में अपनी तौहीन समझते हैं। उन्हें अभिमान है कि हम जो कर रहे हैं, वही सही है। लेकिन कुछ लोग, जिन्हें ईश्वर प्राप्ति की सच्ची लगन है, वे सच्चे गुरु की खोज करते हैं। योगिराज श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं सबकी आत्मा में निवास करता हूं और तत्वदर्शी महापुरुष के सान्निध्य में मुझे पहचाना जा सकता है। चूंकि आत्मा ही परमात्मा है इसलिए सर्वप्रथम अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करना है।

हमारी वृत्ति बाहर की ओर भाग रही है इसलिए कुछ समय के लिए आंख, कान, मुख बंद करके अंदर की ओर प्रवेश करना है। यह पढ़ने-लिखने या सुनने से नहीं होगा, बल्कि सदगुरु के सान्निध्य में बैठकर प्रत्यक्ष सीखना होगा। तभी हम उस सरल, सुगम व सहज विद्या को सीख सकते हैं, जिसे ध्यान कहते हैं।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण जिसे राजविद्या कहते हैं, ऐसा ध्यान अंतकाल में भी संभव है। अंतिम समय में सारी इंद्रिया शिथिल हो जाती हैं फिर भी हम ईश्वर का ध्यान कर सकते हैं। शर्त यही है कि हमने सचेत होकर ध्यान का अभ्यास किया है। ऐसा ध्यान जो मात्र बैठकर ही नहीं, बल्कि हर समय हो सकता है। जैसे-एक प्रेमिका अपने प्रेमी का ध्यान करती है। एक भक्त भी अपने प्रभु का ध्यान उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय करता है, क्योंकि उसने अपने प्रभु को पहचान लिया है। ध्यान से लाभ पर एक मनोवैज्ञानिक का कहना है कि मेडिशन और मेडिटेशन, दोनों शब्दों की उत्पत्ति में एक ही

भावार्थ है- अर्थात दवा करना और ध्यान करना। दवा से शरीर के अवयव ठीक होते हैं, ध्यान से आत्मा के। अर्थात् दवा शरीर के लिए है तो ध्यान आत्मा के लिए। और दोनों का स्वस्थ होना बहुत जरूरी है।

अपने मन को कहीं अटकन न दें तभी मन ध्यान में टिक सकेगा

यदि चाहते हो कि ध्यान जीवन में घटे, तो मन को वो सब छोड़ना होगा जो उसने बाहर से पकड़ा हुआ हे। वहां से मन को अपनी पकड़ ढीली करनी होगी, क्योंकि बाहर की चीजों को पकड़कर मन अब उस चीज का आदी बन गया है और इतना आदी हो गया है कि जब भी वो खाली होता है, उसी चीज के बारे में सोचने लगता है। जैसे यदि दुकानदार ने हर समय दुकान के बारे में सोचकर मन में अपनी दुकान पक्की कर ली है, तब तो जब वो ध्यान करेगा तो उसको ग्राहक ही ग्राहक दिखाई देंगे।

ऐसे ही ध्यान में प्रेमी को प्रेमिका ही दिखाई देगी और आधी-अधूरी पड़ी वासनाएं कल्पनाओं में पूरी होते दिखाई देने लगेंगी। भूखे को रोटी, कुंवारे को शादी, बेरोजगार को नौकरी, बुड्ढे या रोगी को मौत ये ही सब मन में चलता रहेगा। ध्यान में ही नहीं, बल्कि सपने में भी वही आएंगे। ध्यान में बैठने पर भी वही ख्याल चलने शुरू हो जाएंगे, जिनका चिंतन दिन भर मन में चलता रहता है। हो सकता है निरंतर अभ्यास से कुछ समय के लिए ध्यान लग भी जाए, लेकिन फिर जो फिल्म मन में दिनभर चलती रहती है, ध्यान में वही आप देखने लगेंगे।

ध्यान को जीवन में उतारना हो तो अपने राग-द्वेष और अन्य विकारों को कम करते जाना ही होगा। अन्यथा ध्यान में मन नहीं लगेगा। जैसे आप दूध को आग पर रखकर ध्यान करने लगें तो ध्यान तो दूध में रहेगा कि कहीं उबल न जाए।

लेकिन यदि दूध उबालकर ध्यान करने बैठोगे तो कम-से कम उसका ख्याल तो नहीं आएगा। इसी प्रकार अपने आधे-अधूरे कार्यों को पूरा करते रहो, मन को कहीं अटकने न दो और हल्का रखो, तब मन ध्यान में टिकने में सफल हो सकेगा।

ध्यान का लग जाना इसलिए सरल नहीं होता क्योंकि ध्यान में वो सब छूट जाता है, जिसके पीछे हम भागते रहते हैं। जिसको मन ने अपना माना है, या यूं कहें कि ध्यान को पाने के लिए संसार का सब कुछ बाहर ही छोड़ना पड़ता है। क्योंकि इन सब चीजों में जब तक हमारा मन अटका पड़ा रहेगा तब तक हम ध्यान को प्राप्त ही नहीं कर पाएंगे। यही कारण है कि ध्यान के समय मन में संसार घूमने लगता है।

व्यक्ति ध्यान में बैठता तो है, लेकिन मन अपने उन ख्यालों से खाली नहीं हो पाता। फिर लोग प्रश्न करते हैं कि न चाहते हुए भी ध्यान के समय मन भागता क्यों रहता है? इसका उत्तर बड़ा सीधा है कि जो दृश्य हमने खुली आंखों से पक्का किया हुआ है वही दृश्य ध्यान में बैठने पर आएगा। अत: कुछ भी पक्का न करो।

जीवन का हिस्सा बने ध्यान- जब हमारे जीवन में ऊंचे लक्ष्य होतेहैं तो उससे तनाव और बेचैनी होती है, जो सिर्फ कुछ मिनटों के ध्यान और आत्मनिरीक्षण से निकल सकती है। ध्यान आपको गहरा विश्राम देता है। जितना गहरा विश्राम होगा, उतना ही आपका कार्य प्रभावी होगा। ध्यान क्या है?

व्याकुलता रहित मन, ध्यान है। मन का वर्तमान क्षण में होना ध्यान है। ऐसा मन जिसमें कोई झिझक, कोई प्रत्याशा नहीं है वह ध्यान है। मन जो घर लौटकर अपने स्त्रोत तक पहुंच गया है जो कि शांति और आनंदित है वह ध्यान है।

मन की एक अवस्था ऐसी भी होनी चाहिये जिसमे हम शक्ति, स्वास्थ्य, तेज बुद्धि प्राप्त हो। इसके लिये ध्यान धारणा

आवश्यक है। मन आत्मानंद में शान्त और स्तब्ध रखने का नित्य अभ्यास ही ध्यान है। ध्यान में अन्तर्मुख होकर अपने अन्दर के ईश्वर के अस्तित्व की तलाश की जाती है। चित्त क्षण-क्षण प्रवाहित होने के कारण दुर्बल होता है। वह शक्ति एकाग्रता से फिर से प्राप्त कर मन को शक्ति, उत्साह, स्फूर्ति से सम्पन्न करना चाहिये यानी ध्यान धारणा चाहिये। सुविचारों का चिन्तन भी ध्यान है।

ध्यान चित्त की शुद्धता का राजमार्ग है। अन्य कठिन मार्गों के स्थान पर कोई भी व्यक्ति ध्यान के राजमार्ग का प्रयोग कर सकता है। इस बारे में कई विषय मन के समक्ष विकल्प के रूप में आते है। कभी वे अच्छे होते है तो कभी बुरे होते है। उनमें से सही विकल्प बुद्धि को चुनना होता है और मन को ध्यान लगाना होता है। ध्यान से मन परिवर्तित होता है यह अनेक लोगों का अनुभव है। किसी भी चीज के बारे में सतत सोचना यानि ध्यान है। इसी के बल पर कोई रंक से राजा बना तो कोई मूर्ख से विद्वान बना। उत्तम सदविचारी का ध्यान करने से उसके संस्कार चित्त पर प्रतिबिंबित होते है। चित्र तदाकार होता है और शुद्ध होता है तथा ध्येय प्राप्त करता है।

ध्यान हमारी सारी शक्तियों को वहां केंद्रित करता है, जिसे हम इंट्यूशन कहते हैं और जो अभी तो कभी कभार ही जागृत होती है लेकिन ध्यान के माध्यम से, हर समय हमारा मार्गदर्शन कर सकता है।

हमारा मन शरीर से बंधा रहता है पर ध्यान में उससे ऊपर उठना होता है। दफ्तर से घर जाने के लिए निकले। कार में बैठे। पार्किंग से सड़क पर निकले और ट्रैफिक जाम में फंस गए। घों-घों, पों-पों शुरू हो गई। कुछ ऐसा ही होता है, जब आप ध्यान करने के लिए बैठते हैं। आंखें बंद करते हैं और पता चलता है कि ट्रैफिक जाम में फंस गए।

ध्यान अंतर्यात्रा है। भीतर प्रवेश करने के लिए बैठे नहीं कि विचारों की भीड़ इकट्ठी होने लगती है। शोर-शराबा शुरू हो जाता है। ध्यान करने बैठिए, तो कुछ ऐसा ही अक्सर होता है। आदमी अपने लक्ष्य से भटक जाता है।

ध्यान का मतलब है- मन के पार जाना और मनुष्य का मन नारी तन के पीछे दौड़ता है। संत मत में पांच प्रकार के शरीर की चर्चा है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य। परम पुरुष की स्तुति के लिए सभी शरीरों के पार जाना होता है। इन सब शरीर से ऊपर उठना पड़ता है। यहां शरीर से ऊपर उठने के संदेश दिए गए हैं। महर्षि भी अपने संदेश में यही कहते थे। यह संदेश इसलिए भी दिए गए हैं कि हमारी मूल मान्यता और हमारा मूल भाव है कि हम शरीर नहीं हैं। शरीर से ऊपर हमारा अस्तित्व है। इसलिए सब क्षेत्र क्षर हैं। क्षर माने नाशवान, अपरा यानी निम्न कोटि की प्रकृति, जिसे जड़ और पदार्थ कहते हैं। परा यानी उच्च कोटि की प्रकृति, माने चेतना। कॉन्शसनेस।

पर यानी जो सीमा से बाहर हो। और अक्षर यानी अविनाशी अर्थात चेतन प्रकृति। पार में यानी बाहर, परे, श्रेष्ठ। निर्गुण यानी सत्व, रज, तम- तीनों गुण रहित, चेतन प्रकृति। सगुण यानी तीनों गुण सहित निम्न कोटि की जड़ प्रकृति के पार में। बाहर में। सत यानी चेतन प्रकृति, जो परिवर्तन रहित और असत यानी परिवर्तनशील जड़ प्रकृति के पार में है। उसके भी बाहर है।

ध्यान में शरीर से ऊपर उठना होता है और आदमी का मन शरीर से बंधा है। शरीर के पीछे दौड़ता है। वह शरीर नारी देह भी है और पुरुष देह भी। पुरुष के लिए नारी देह का आकर्षण है और नारी के लिए पुरुष देह का आकर्षण बना रहता है। संपूर्ण जीवन इसी के इर्द-गिर्द घूमता है। लोग अपने तन को आकर्षित बनाने के लिए तरह-तरह के उपाय करते हैं। मगर ध्यान इस आकर्षण से ऊपर उठने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

ॐ प्रणव, ओंकार

मुनिवर पराशर ने मैत्रेय मुनि से कहा- ॐ यह अविनाशी एकाक्षर ही ब्रह्म हैं। यह बृहत् और व्यापक है, इसलिए ब्रह्म कहा जाता है। ब्रह्म भूलोक, भूवर्लोक और स्वर्लोक- तीनों प्रणवरूप ब्रह्म में ही स्थित हैं तथा प्रणव ही ऋक्, यजु:, साम और अथर्व रूप है। तीन बड़ी शक्तियाँ हैं जो एक अक्षर ॐ में रहती हैं, उस अमृत से सब अनिष्ट दूर होते और मृत्यु का भी भय नहीं रहता है। एक अक्षर ओ में अ-उ-म् रूपी तीन महाशक्तियां निहित हैं। ये अकार, उकार व मकार रूपी तीन शक्तियां हैं। ये तीन अक्षर यज्ञोपवीत के तीन सूत्र समझने चाहिए। इन तीनों के संयोग से ओंकार रूपी महानाद उत्पन्न होता है। ये तीन अक्षर तीन अवस्थाओं जागृत, स्वप्न व सुसुप्ति के प्रतीक है जो मानव जीवन में व्याप्त हैं। ओंकार नाद से आनंद की अनुभूति करनी चाहिए और मन की बढ़ानी चाहिए। स्थिर बुद्धि से किए गए पुरुषार्थ अनिष्ट से बचाते हैं और मृत्यु भय नहीं देते हैं। जो प्रणव का अध्ययन करता है वह सबका अध्ययन करता है।

अनहद नाद का अनुभव वासनाओं के रहते नहीं हो सकता। नाद दो प्रकार का होता है- आहत नाद और अनहद नाद। धवनि जब दो चीजों के टकराने से पैदा होती है तब उसे आहत नाद कहते हैं। जैसे ताली बजाने से आवाज होती है, तबला बजाने से आवाज होगी। कोई भी चीज टकराएगी या घर्षण करेगी तो आवाज होगी। यहां नाद तो पैदा हो रहा है, लेकिन ये स्थूल है। इसे सुना जा सकता है।

ये आहत नाद धरती पर ही नहीं, ब्रह्मांड में भी तारों के टकराने और उनकी गति से होनेवाले घर्षण से होता रहता है। इसे हम विशेष यंत्रों से सुन सकते हैं।

एक और ऐसी ध्वनि होती है जो उत्पन्न नहीं की जाती, स्वत: गूंजती रहती है। इसे स्थूल कानों से नहीं सुना जा सकता। ये ध्वनि ब्रह्मांड में हर समय गूंजती रहती है। इसके अनुभव के लिए हमारे ऋषियों ने अनेक अनुसंधान किएं वे गुफाओं में बैठकर प्रयोग कर यह जानने की कोशिश करते रहे कि आखिर ये ध्वनि सुनने में कैसी लगती हे। क्या हम इसे बोल सकते हैं। अपने भीतर यह अनुसंधान किया तब पाया कि भीतर भी वही ध्वनि गूंज रही है। उसे बोलने की कोशिश की गई तो पाया कि अ उ म को मिश्रित करके जब ॐ बोला जाता है तो काफी हद तक उस ब्रह्मांडीय गूंज जैसी ये आवाज होती है। जब इस ध्वनि का उच्चारण लीन होकर किया जाता है, तब यह हमारी फ्रीक्वेंसी उस ब्रह्मांडीय ध्वनि से मिलने लगती है और व्यक्ति का मन शांत हो जाता है। इसीलिए ॐ का कुछ क्षण जाप करने से मन शांत हो जाता है। यह ध्वनि सबसे पवित्र मानी जाती है। यह परमात्मा का नाम है। ॐ भी ऐसा ही परमात्मा का नाम है जो जपनेवाले को भी पवित्र कर देता है।

यह नाद हम सुनना चाहें तो पहले हमें अपनी इंद्रियों, मन, प्राण, बुद्धि और चित्त को शांत कर भीतर के साथ जुड़ कर बैठ जाना होता है। जब तक संसार की आवाजें मन में चलती रहेंगी, इच्छाओं व वासनाओं का उपद्रव भीतर चलता रहेगा। तब तक अनहद नाद का अनुभव नहीं हो सकता। योग शास्त्रों में इस साधना का नाम नादानुसंधान कहा गया है। इसमें ध्यान द्वारा मन शांत करने का अभ्यास होता है। जब भीतर सफाई हो जाती है, तब भीतर अनहद नाद सुनाई देने लगता है।

उस समय अपने भीतर अनेक आवाजें सुनाई देती हैं। जैसे चिड़िया के बच्चे की आवाज, शंख, बीन, ताल, बांसुरही, मृदंग, बादल गर्जन, भ्रमर, वीणा और घंटियों की आवाज। साधक इन ध्वनियों में अटकता नहीं क्योंकि ये चित्त की वृत्तियों का नाश करनेवाली होती है। अनहद नाद मन को केंद्रित करने का सर्वोत्तम उपाय है। यह भीतरी संगीत है जो साधक का मन लय कर देता है। यह साधना व्यक्ति को जीते-जी मुक्त कर देती है।

नमस्ते दो रूप में होती है। एक सामनेवाले को नमस्ते करना दूसरा अपने को ही नमस्ते करना। अपने को नमस्ते करना एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। इसके लिए साधक अनेक अभ्यासों से आत्मतत्व को नमन करता रहता है। कभी वो प्राणों से और कभी मन से और कभी श्रद्धा से आत्मा को प्रणाम करता है।

वैसे भी परमात्मा का एक नाम प्रणव भी है जिसको ॐ कहा जाता है। जो प्राणों के माध्यम से परमात्मा तक आपका प्रणाम पहुंचा दे, उसे प्रणव कहते हैं। अत: हम जितना आत्म तत्व के प्रति श्रद्धा रखते हुए नतमस्तक होते जाते हैं, उतना अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ते जाते हैं।

ओंकार - जिस दिन व्यक्ति अपने को विश्व के साथ एक अनुभव करता है उस दिन जो ध्वनि बरसती है वह है ओंकार। जिस दिन व्यक्ति का आकार से बंधा हुआ आकाश निराकार आकाश में गिरता है, जिस दिन व्यक्ति की छोटी-सी सीमित लहर असीम सागर में खो जाती है, उस दिन जो संगीत का, ध्वनि का, मूल-मंत्र का अनुभव होता है, उसी का नाम ओंकार है। ओंकार जगत की परम शांति में गूंजनेवाला संगीत है।

एक संगीत जिसे पैदा करने के लिए हमें ध्वनि पैदा करनी पड़ती है। ध्वनि पैदा करने का अर्थ है कि कहीं कोई चीज घर्षण करेगी। जैसे मैं अपनी ताली बजाऊं तो आवाज पैदा होगी।

तो हमारा जो संगीत है, वह संघर्ष का संगीत है। चाहे होंठ से होंठ टकराते हों, चाहे कंठ के भीतर की मांस-पेशियां टकराती हों, लेकिन हमारी सभी ध्वनियां टकराहट से पैदा होती हैं। ओंकार उस ध्वनि का नाम है, जब सब व्याघात खो जाते हैं। सारा जगत विराट शांति में लीन हो जाता है, तब भी उस सन्नाटे में एक ध्वनि सुनाई पड़ती है। वह शून्य का स्वर है। उस क्षण सन्नाटे में जो ध्वनि गूंजती है, उसी का नाम ओंकार है।

ओंकार अकेली ध्वनि है जो पैदा की हुई नहीं है। यह जगत का स्वभाव है। इस ओंकार को कृष्ण कहते हैं, यह अंतिम भी मैं हूं।

जिस दिन सब खो जाएगा, जिस दिन कोई स्वर नहीं उठेगा, जिस दिन कोई अशांति की तरंग नहीं रहेगी, जिस दिन जरा-सा भी कंपन नहीं होगा। सब शून्य होगा, उस दिन जिसे तू सुनेगा, वह ध्वनि भी मैं ही हूं। सब के खो जाने पर भी जो शेष रह जाता है। जब कुछ भी नहीं बचता, तब भी मैं बच जाता हूं।

मेरे खोने का कोई उपाय नहीं है। मैं मिट नहीं सकता क्योंकि मुझे कभी बनाया नहीं गया है। जो बनता है, वह मिट जाता है। लेकिन जो सदा बना रहता है, इसकी जो ध्वनि है, इसका जो संगीत है, उसका नाम ओंकार है। इसलिए यह मत सोचना कि आप बैठकर ओम-ओम का उच्चार करते रहें, तो आपको ओंकार का पता चल रहा है।

जिस ओम का आप उच्चार कर रहे हैं, वह उच्चार ही है। वह तो आपके द्वारा पैदा की गई ध्वनि है। इसलिए धीरे-धीरे

होंठ को बंद करना पड़ेगा। फिर बिना होंठ के भीतर ही ओम का उच्चार करना। लेकिन वह भी असली ओंकार नहीं है क्योंकि अभी भी भीतर मांस-पेशियां और हड्डियां काम में लाई जा रही हैं। उन्हें भी छोड़ देना पड़ेगा। तब एक उच्चार सुनाई पड़ना शुरू होगा जो आपका किया हुआ नहीं है। जिसके आप साक्षी होते हैं, कर्ता नहीं। जिसको आप बनाते नहीं, फिर भी जो होता है और जिसे आप सिर्फ जानते हैं।

ओम है जीवन हमारा- ओम प्राणाधार है। ओम है कर्ता विधाना- ओम पालनहार है। ओम है दु:ख का विनाशक- ओम सर्वाधार है। ओम है बल तेजधारी- ओम करुणानन्द है। ओम सब का पूज्य है- हम ओम का पूजन करें। ओम के ही ध्यान से- हम शुद्ध अपना मन करें। ओम के गुरु मन्त्र जपने से रहेगा शुद्ध मन। दिन-प्रतिदिन बुद्धि बढ़ेगी धर्म में होगी लगन। ओम के जप से हमारा ज्ञान बढ़ता जाएगा। अंत में यह ओम को मुक्ति तक पहुंचाएगा।

ओम् (ॐ) का जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। गीता में भी ऊँकार के जाप का विधान है। इसके हजारों अर्थ है। उसमें एक यह है- परमात्मा का आह्वान करना। यह वेदों का बीज भूत महामंत्र है, साक्षात ब्रह्म है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी ॐ ॐ ऐसा उच्चारण करने मात्र से प्राणों की उर्ध्वगति स्वयंमेव होने लगती है। इसमें प्राणों की उर्ध्वगति करने की अद्‌भुत क्षमता है। इसको साक्षात् ब्रह्म माना गया है। इसीलिये आपने देखा होगा कि कई चित्रकारों ने ॐ के भीतर ही भगवान को चित्रित किया है।

ॐकार बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिन: । कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ।।
श्वास-श्वास पर ओम् कह, वृथा जन्म मत खोय।
क्या जाने इस श्वास का, आवन होय न होय।।
ओम् हरि ओम् हरि, ओम् हरि ओम्। नारद ऋषि की वाणी है, देवों ने पहचानी है।। ॐ ।।
मूल मंत्र नारायण का, कष्ट हरेगा तन मन का। उलझा गोरख धन्धे में, सार समझा ले जीवन का।
बाल भक्त ध्रुव ज्ञानी था, परम ब्रह्म का ध्यानी था।। ॐ ।।
हरि ॐ शब्द अनूठा है, इसका मजा वो ही लूटा है। चिन्तन कर परमेश्वर का, भव बन्धन से छूटा है।
नींद से जागो चेत करो, नारायण से हेत करो।। ॐ ।।
अजर अमर अविनाशी है, निर्भय सर्व प्रकाशी है। शेषासन पर सोया है, क्षीर सिन्धु का वासी है।
अलख निरंजन स्वामी है, पूरण अन्तर्यामी है।। ॐ ।।
ज्योतिर्रूप विधाता है, सब देवों से नाता है। श्याम बहादुर शिव का तो, वो ही भाग्य विधाता है।
दीनबन्धु दु:खहारी है, केशव कुंज बिहारी है।। ॐ ।।

** जिंदगी के मिजाज हरपल हर वक्त बदलते रहते हैं और*
एक हम है जो दूसरों को खुश करने में ही लगे रहते हैं।
** कभी-कभी खून के रिश्तों में जज्बात नहीं मिलते और*
कभी सच्चे जज्बातों में भी रिश्ते नहीं मिलते।

रूप-स्वरूप, कुरुप, सौन्दर्य

सुंदरता किसे पसंद नहीं होती। हर कोई सुंदर वस्तु से प्रेम करता है। हर कोई सुंदर दिखना चाहता है, क्या हमने कभी सुंदरता को जानने का प्रयत्न किया है। हम केवल बाहरी आकर्षण को ही महत्त्व देते हैं और उसे पाने का प्रयत्न करते हैं, जो कि गलत है। जरूरत है कि जो हमें दिख रहा है उस पर विश्वास न करते हुए जो हमें नहीं दिख रहा उसको जानने का प्रयत्न करें क्योंकि हर चमकती हुई चीज जिस तरह सोना नहीं होती, उसी तरह अच्छी दिखनेवाली वस्तु हमारे काम आए ऐसा भी नहीं हो सकता। शारीरिक सुंदरता समय बीतने पर नष्ट हो जाएगी, पर रुहानी सुंदरता हर समय जीवित रहेगी।

यह जीवन का अटल सत्य है। लोगों के गुणों को तो अपनाइये पर दुर्गुणों से बचें। सच्चा एवं सही खोजी बनें। पारखी नजरें रखें, ताकि बाद में आपको पछताना न पड़े।

क्या सौंदर्य सिर्फ स्त्रियों का गुण है ? नहीं, सौंदर्य सिर्फ एक गुण है, उसका स्त्री-पुरुष किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। बल्कि सौंदर्य आपेक्षिता से संबंध ही नहीं रखता। सौंदर्य किसी तादात्म्य से संबंधित नहीं है। सौंदर्य तादात्म्य से, सम्बन्ध से परे है। ऐसा सौंदर्य ही सौंदर्य है, जिसे आपेक्षिता के आधार पर, तादात्म्यता के आधार पर न देखा जाए। नहीं तो वह सौंदर्य सौंदर्य नहीं रह जाता। ऐश्वर्या रॉय सुंदर है, जैसे ही यह विचार हमें आता है, ऐश्वर्या रॉय के सौंदर्य व उसके अनुभव के बीच एक दीवार आ खड़ी होती है। यह कहते ही सौंदर्य की प्रतीति गुम हो जाती है। एक तादात्म्य की दीवार आ खड़ी है होती है, विचार से निर्मित। इसलिए सौंदर्य की प्रतीति तत्काल विलुप्त हो जाती है और हम ईश्वर के एक वरदान से वंचित हो जाते हैं। सौंदर्य के विशुद्ध अनुभव के वर दान से।

सौंदर्य की किसी भी तरह कोई परिभाषा या व्याख्या हो सकती है। सिर्फ हम इतना ही कह सकते है कि सौंदर्य व्यवस्था है, जीवन व्यवस्था है। यह संपूर्ण जगत् अस्तित्व व्यवस्था है। ईश्वर परम व्यवस्था ही है और हम इसे प्रत्यक्ष देखते हैं। किसी तरह एक फूल अपनी संपूर्ण व्यवस्था के साथ खिल रहा है ? किस तरह सूरज, चांद, सितारे, पृथ्वी आदि ग्रह व्यवस्था में हैं। किस तरह नदी बह रही है, झरने झर रहे हैं। पलकें झपक रहीं हैं, सांसें आ जा रही हैं। बच्चे हंस रहे हैं। किस तरह विराट जीवन चल रहा है, किस तरह हम शून्य से विराट के जन्म को रोज देख रहे हैं।

ये सब क्या है ? ये सब उस परम व्यवस्था में हैं, जिसे हम परमात्मा या अस्तित्व या चेतना कुछ भी कहें। हम पाते हैं कि यह समग्र व्यवस्था या अस्तित्व, यह विराट अत्यंत सुंदर है। इसके सौंदर्य की कोई सीमा नहीं है। कोई शब्द इस सौंदर्य को प्रकट करने के लिए नहीं है। चूंकि प्रत्येक व्यक्ति इसी सौंदर्य की ईकाई है, इसी से आया है, इसी में उसकी चेतना सन्निहित है, अत: प्रत्येक व्यक्ति का सौंदर्य शब्दों से, विचारों से परे हैं, जब हम विचारों सें, शब्दों से परे होते हैं- परम-मौन में तब हम सौंदर्य का वास्तव में अनुभव कर पाते हैं। यही कारण है कि भक्त उस परम सौंदर्य में निमग्न है, क्योंकि उसके अस्तित्व में से वह सब हट गया है, आईने के दागों की तरह साफ हो गया है, जो बाधा पैदा कर रहा था। स्त्री-सौंदर्य को लेकर दुनिया भर में जितने विचार हैं, वे केवल इसलिए हैं कि पुरुष के केंद्र में स्त्री है। आज भी आप पाते हैं कि हर तरह के विज्ञापनों में, दूरदर्शन, फिल्म, मॉडलिंग या जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री के सौंदर्य को तरह-तरह से प्रदर्शित किया जा रहा है। इसमें स्वयं स्त्री भी शामिल है, मगर इसका कारण यही है कि पुरुष स्त्री के सौंदर्य पर

इतना अधिक मोहित है, कि वह स्वयं के सौंदर्य को, सौंदर्य की विशुद्धता को, तादात्म्य से परे होने की उसकी विशेषता को भूल चुका है। यही कारण है कि स्त्री सौंदर्य को लेकर पुरुष ने गीतों, काव्यों, साहित्यों से दुनिया भर के पुस्तकालयों को भर दिया है। एक तरह से पुरुष का संपूर्ण जीवन ही स्त्री के सौंदर्य से केंद्रीय रूप से प्रभावित है। यही कारण है कि स्त्री पुरुष के केंद्र में है। हम भले ही पुरुष प्रधान समाज को लेकर कितनी भी चर्चा करें, पुरुष के चित्त में तो स्त्री है। पुरुष स्त्री से संचालित हो रहा है।

सौंदर्य जगत् की सर्वोत्तम उपलब्धि है। उसका स्त्रीलिंग या पुल्लिंग से संबंध नहीं है। हम पहले सत्यम् कहते हैं, फिर शिवम् कहते हैं, फिर सुंदरम् कहते हैं। स्पष्ट है कि सौंदर्य अंतिम निष्पत्ति है। इसीलिए हम अपने अवतारों को देवी-देवताओं को अत्यंत सुंदर चित्रित करते हैं।

सौंदर्य मनुष्य की गहनतम अनुभूति है। सौंदर्य की अनुभूति मात्र हमें शांत कर देती है। हमारे भीतर जीवन-रस को संचरित कर देती है। हमें एक तरह के अनुपम संकोच से भर देती है। हम सौंदर्य का अनुभव कर सकें। समस्त प्रकार की घृणा, हिंसा, दु:ख, वैमनस्य-ईर्ष्या-राग, विकृतियां अपने आप विदा हो जाएंगी। सौंदर्य मनुष्य की वह गहनतम प्रतीति है, जिसे हम परमात्म तत्व कह सकते हैं। ईश्वरत्व कह सकते हैं। स्वत्व या स्वभाव कह सकते हैं।

सौंदर्य ही जगत को बचाएगा। सौंदर्य के लिए जगत पागल है, क्योंकि सौंदर्य ही जीवन का सार, लक्ष्य है।

सुंदरतम व्यक्ति में भी असुंदर हिस्से हैं। असुंदरतम् व्यक्ति में भी सौंदर्य छिपा है। जीवन बनता ही है विरोध से, जीवन की सारी व्यवस्था ही विरोध पर खड़ी होती है। काले बादलों में ही बिजली नहीं छिपी होती, हर बिजली की चमक के पीछे काला बादल भी होता है, और हर अंधेरी रात के बाद ही सुबह पैदा नहीं होती, हर सुबह के बाद काली रात आ जाती है। हर दु:ख में खुशी ही छिपी है, हर खुशी के भीतर से दुख का अंकुर भी निकलेगा। जीवन ऐसे ही बहता है जैसे नदी दो किनारों के बीच बहती है और एक किनारे के साथ नहीं बढ़ सकती। भला दूसरा किनारा आपको न दिखाई पड़ता हो, या आप न देखना चाहते हों, लेकिन जब इस किनारे से ऊब जायेंगे तो दूसरा किनारा ही आपका डेरा बनेगा।

असली रूप तो अपने गुणों से ही झलकता है। अपनी छाप गुणवान होकर डालनी चाहिये, रूपवान होकर नहीं।

सौन्दर्य प्राय: मद्य से भी अधिक भयानक होता है। यह सौन्दर्यवान और सौन्दर्यदर्शक दोनों को मदहोश बना देता है।

तुम्हारा शरीर सुन्दर है या नहीं। हमारा हृदय सुन्दर होना चाहिए। शरीरका सौन्दर्य काम नहीं आयेगा, सौन्दर्य हृदय का काम नहीं देता है। चमड़ीका रंग ही सब कुछ नहीं होता। जिसके हृदयमें कोमलता, सुशीलता, प्रेम, पवित्रता, मधुरता है, उसका शरीर सुन्दर न भी हो तो भी सद्गुणोंका मूल्य बहुत अधिक है। अपने शरीरको सुन्दर बनाये रखनेका प्रयत्न मत करो। वह सत्संगी नहीं है। उसका तो जीवन ही व्यर्थ गया, जिसने अपने हृदय को नहीं सजाया, जिसके हृदयमें सद्गुण नहीं आये। दूसरोंके दुर्गुणोंका चिन्तन न करो। दूसरेके दुर्गुणोंका चिंतन करने पर उसका हृदय दुर्गुणाकार हो जाता है। दुर्गुण दूसरेमें नहीं, दुर्गुण अपने हृदयमें रहते हैं। अपना हृदय बिगाड लेना ही हृदयकी कुरुपता है।

पुरुष तो सौन्दर्य का भूखा होता है, उसे स्त्री से अनुराग नहीं वह तो सौन्दर्य चाहता है। सौन्दर्य जहाँ भी उसे दिखाई देता है उसके पीछे वह अपने कहलानेवाले सभी पदार्थों की बलि चढ़ा सकता है।

सौंदर्य संसार में सौन्दर्य ऐसा आकर्षक पदार्थ है कि एक नारायण ऋषि को छोड़कर कोई भी इससे बच नहीं सका है। हृदय के स्थान पर जिसके पत्थर रखा हो और आँखों में ज्योति न हो, स्पर्श इन्द्रिय जिसकी शून्य हो गई हो, उस जड़ प्राणी की बात नहीं; नहीं तो इस संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जो सौंदर्य से आकर्षित न होता हो। संसार में यह आकर्षण न हो तो इस जगत का प्रवाह एक दिन भी न चले। यह संसार सौंदर्य के आकर्षण से ही रुका है। प्राणी एक दूसरे के सौंदर्य को देखकर आकर्षित होते हैं और परस्पर बँध जाते हैं। यदि आकर्षण न हो तो बन्धन भी न हो। विश्व ब्रह्माण्ड, बालखिल्य, कार्तिकेय, वसिष्ठ, अगस्त्य, व्यास तथा और सबका प्राकट्य सौंदर्याकर्षण के ही द्वारा हुआ है।

रूपासक्ति ऐसा असाध्य रोग है, जिसकी कोई चिकित्सा ही नहीं। भगवान् की कृपा से ही प्राणी इससे बच सकता है। सभी लोग कहते हैं, सुन्दरता में ऐसा आकर्षण है, कि सभी इसमे फँस जाते हैं, किन्तु सुन्दरता की परिभाषा आज तक किसी ने करके नहीं दी, यह सुन्दरता है यह असुन्दरता है।

एक शास्त्र आपके हृदय में भी है। अगर भगवान का कुछ कहा हुआ है तो वहां भी लिखा हुआ है और उसे पढ़ने के लिए आपको पढ़ा-लिखा होने की जरूरत नहीं है। उसे पढ़ने के लिए आपको सिर्फ श्रद्धा की जरूरत है। मार्गदर्शक हो तो सिर्फ ऐसा होना चाहिए, जिसका संबंध आपको आपकी मंजिल तक पहुंचाने से होना चाहिए। आपकी मंजिल आपके अंदर है और आप बाहर खोए हुए हैं। संत-महात्माओं ने कहा है कि जैसा तीर्थ स्नान आपके अंदर है, वैसा बाहर कहीं नहीं है। सारे वेद-शास्त्रों का निचोड़ बिना शब्दों के आपके अंदर है। अगर आपकी तुलना चिड़िया से की जाए तो उड़ना मत भूलना, क्योंकि उड़ने में ही चिड़िया की स्वतंत्रता है। अगर आप फूल हैं तो खिलना मत भूलना क्योंकि खिलने में ही फूल की सुंदरता है। आप रचयिता के आंगन के एक फूल है, इस वजह से आप अति सुंदर हैं। अगर आप खिल न पाए तो जिस बाग में आप लगे हुए हैं, उस बाग की शान आप नहीं बढ़ा पाएंगे।

सुंदरता व्यक्ति के बाहरी आकार में नहीं, उसके गुणों से होती है। यदि आप अपने अहं की गतिविधियों, क्रिया-कार्य-कलापों को नहीं समझते, तो आपका ध्यान आपको आत्मवंचना और विक्षिप्तता की ओर ले जायेगा। आपको अपने अहं के क्रिया-कार्य-कलापों-गतिविधियों को समझना होगा। आपके अहं या स्व के पास हजारों सांसारिक संवेदनाएं, अहसास, बौद्धिक अनुभव हैं, पर यह इन सबसे उदासीन हो चुका है, क्योंकि इन सबका कोई अर्थ नहीं है। वृहत, अधिक विशाल, पराशक्तियों के अनुभवों से समृद्ध करने की इच्छा भी आपके अहं का ही एक हिस्सा है। क्या खूबसूरती रंग है, आकार है, चेहरे की हड्डियां है, आंखों की स्पष्टता है, त्वचा या केश है, या खूबसूरत आदमी या औरत की अभिव्यक्ति में है? या खूबसूरती का कुछ और ही गुण है, जो इस खूबसूरती का अतिक्रमण करता है, जो जिंदगी में होने पर आकार, चेहरे और सब तरह की खूबसूरती अस्तित्व में आती है। अगर उस गुण को ही नहीं जाना-समझा जाता, तभी बाहरी अभिव्यक्तियां सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती हैं। आप जब कभी नीले आकाश की पृष्ठभूमि में किसी शानदार पर्वत को देखते हैं, उसका जीवंत होना, चमक, धवलता, अप्रदूषित बर्फ, उसकी महिमा दिव्यपन आपको क्षुद्र विचारों, सरोकारों, समस्याओं को कहीं और ही धकेल देता है। आप पूर्णत: शांत स्तब्ध हो जाते हैं, जिसका मतलब है आप अपने आपको पूरी तरह भूल जाते हैं। आपका अहं कुछ क्षणों के लिए खो जाता है।

मनुष्य सबसे अधिक सत्य को ही प्यार करता है। सौंदर्य क्या है, इसका उत्तर देना कठिन है। सुंदर वस्तुओं के सामान्य धर्म को सौंदर्य कहा जाता है। विषयगत सौंदर्य चर्चा में सुंदर और उदात्त का भी भेद किया गया है। उत्तुंग श्रृंगमय पर्वत, महासागर, विस्तृत कान्तार, भयंकर विस्फोट और विशाल भवन उदात्त के उदाहरण हैं, जबकि वृत्त पर खिला हुआ पुष्प, शरद निशा में मुस्कुराता हुआ चंद्रमा और कामिनी का मुख आदि सुंदर कहे जाते हैं।

सुंदर में प्रियता का भाव अधिक है। इसलिए हमारे यहां माधुर्यगुण को सुंदर कलाओं की सृष्टि में अधिक महत्व दिया गया है। सुंदर वस्तु वह है, जिसमें रमणीयता के साथ-साथ माधुर्य भी होगा। रमणीयता का अर्थ है क्षण-क्षण में उत्पन्न होनेवाली नवीनता, माधुर्य का अर्थ है चित्त को द्रवित करनेवाला आल्हाद। रमणीय वस्तुओं में उदात्त को भी सम्मिलित किया जा सकता है, परंतु माधुर्य और नवीनता के संयोग से सुंदर की सृष्टि होती है। देश, काल और पात्र के भेद के कारण विषयीगत सौंदर्य की सत्ता माननी पड़ती है- सौंदर्य एक मानसिक अनुभूति या प्रतीति मात्र है, जिसे हम किसी विशेष परिस्थिति में अनुभव करते हैं। इसलिए किसी क्षण में कोई वस्तु और किसी क्षण में कोई अन्य वस्तु सुंदर लगती है।

सौंदर्य का संबंध प्राय: लोग मानते हैं, परतु सत्य की व्याख्याएं अनेक हैं। हमारे यहां सत्य केवल ब्रह्म को माना गया है, जगत को मिथ्या कहा गया है, परंतु कुछ दार्शनिक ब्रह्म व जगत, दोनों को सत्य मानते हैं। ऐसे दार्शनिकों ने जगत के सौंदर्य के आनंद में ही सच्चिदानंद की खोज की है और ब्रह्म को भी सुंदर रूप देकर धरती पर उतारा है।

मनुष्य सबसे अधिक सत्य को ही प्यार करता है। भक्ति साहित्य में सत्य और सौंदर्य अभिन्न हैं। अत: तीनों का समन्वय साहित्य और कला में मिलता है।

** बहुत दूर तक जाना पड़ता है सिर्फ यह जानने के लिए कि अपना नजदीकी कौन है?*

** जिन्दगी में किसी का साथ काफी है कंधे पर किसी का हाथ काफी है,*
दूर हो या पास फर्क नहीं पड़ता सच्चे रिश्तों का तो बस एहसास काफी है।

** खूबसूरती हमेशा देखनेवाले के मन में और नजरों में होती है वरना,*
गलती निकालने वालों को तो ताजमहल में भी कमी नजर आती है।

** जीवन की राह में कौन किसका साथ देता है,*
परछाई भी दामन छोड़ देती है जब अंधेरा होता है।

** सुंदर जीवन की इमारत विश्वास पर ही टिकी है। संसार का आधार भी विश्वास और प्रेम ही है। इस आधार का कमजोर होना पूरी जीवन व्यवस्था के लिए खतरनाक है।*

** बिना प्रेम और सौंदर्यबोध के किसी प्रकार की*
सच्ची नैतिकता का अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

उत्थान-पतन, उत्कर्ष, उन्नति-अवनति और तरक्की

उन्नति- उन्नति की क्षमतावालों पर ही विपत्तियां आती हैं। बीज की तरह उगें और बेल की तरह निरन्तर बढते और उंचे उठते ही रहे। वही उन्नति कर सकता है जो स्वयं को उपदेश देता है।

जिस क्षेत्र में हम कार्य कर रहे हैं उसमें हमारा पतन न हो, हम दिन-प्रतिदिन ऊपर उठते जायँ और सफलता प्राप्त करके उन्नत होते जायँ उसीको उन्नति कहते हैं। उन्नति का पुत्र है दर्प।

मनुष्य करता है उन्नति के लिये, किन्तु उन्नति के साथ अवनति भी बिना बुलाये चली आती है। इसीलिये तो इसका नाम जगत् है, संसार चक्र है। रथ के पहिये की भाँति घूमता रहता है। उन्नति के पश्चात् अवनति, अवनति के पश्चात् उन्नति। अवनति सदा उन्नति का वेष बनाकर आती है। अपने रूप में आवे, तो उसे कौन स्वीकार करे। कलियुग में वही उन्नत विचार का समझा जायगा, जो जहाँ चाहे जिनके हाथ का खा ले। चाहे जिससे वैध-अवैध सम्बन्ध कर ले। कुल गोत्र का, नियम मर्यादा, धर्म कर्म का कुछ विचार न करे। इन सब कार्यों को साहसी लोग उन्नति और उत्थान के नाम से करेंगे। जो जितना ही भौतिक वस्तुओं के आश्रित होगा वह उतना ही असभ्य होते जाएगा। प्राचीन काल में आदि सतयुग में सभी को स्वाभाविक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। भूख लगी, वृक्षों से फल तोड़ लिए, खा लिए। उस समय न कोई वस्तु अपनी थी, न पराई। न किसी को सरदी सताती थी, न गर्मी दु:ख देती थी। सब स्वच्छन्द होकर जहाँ चाहते विचरते, जहाँ चाहते सो जाते। सभी अपना ही था। जब शनै:-शनै: समय के प्रभाव से वह शक्ति नष्ट होने लगी तो लोगों को अपने योगक्षेम की चिन्ता होने लगी। कुछ वृक्षों की परिधि बाँध ली उनमें अपनापन किया, पानी देने लगे, उसके फल बढ़ाने का उद्योग करने लगे। फलों से काम न चला तो औषधियों की खोज करने लगे। जब समय पर कभी न मिलीं तो उनके बीज रखने लगे। फिर उन्हें खेतों में बोने लगे कृषि करने लगे।

पहिले कोई वस्त्र नहीं पहनते थे, आवश्यकता ही नहीं थी, सरदी गरमी सहने की स्वाभाविक शक्ति थी। वह शक्ति समय की गति से नष्ट होने लगी। लोग सरदी-गरमी सहन करने में समर्थ न हुए। वृक्षों के वल्कल उतारकर पहिनने लगे। उनसे भी काम न चला तो कपास का पेड़ देखकर उसके बीज बोने लगे। रुई निकालकर उसके वस्त्र बनाने लगे। एक ऊपर का एक नीचे का सब दो वस्त्र पहिनते थे। धीरे-धीरे इतने से भी काम न चला, फिर तो क्रमश: भाँति-भाँति के वस्त्र बनने लगे।

पहिले नदियों में से जहाँ से चाहते थे लोग पानी पी लेते थे। कुछ लोग नदियों से दूर रहने लगे। बराबर वहाँ जाने में आलस्य करने लगे। पास में ही कुआ बनाने लगे। मिट्टी के घड़े बनाकर उसे पकाने लगे, उसमें पानी रखने लगे; वे जब फूट जाते तब अन्य धातुओं के घडे बनाने लगे। इतने से भी कार्य न चला तो लोहे की नलिका लगाकर घर-घर में जल-वाहक स्रोत लगाने लगे। एक स्थान पर जल-संग्रह करके यन्त्रों द्वारा घर-घर पहुँचाने का प्रयत्न किया।

पहिले लोग जब चाहते स्वर्ग चले जाते, फिर जब चाहते पृथ्वी पर लौट आते। शनै: शनै: देवताओं ने ईर्ष्यावश मनुष्यों की यह शक्ति नष्ट कर दी। तब लोग मरकर ही स्वर्ग जाने लगे। स्वर्ग जाना तो बन्द हो गया, किन्तु जहाँ चाहते वायुवेग से पैदल चले जाते। जब लोग निर्बल हो गये, इतने दूर चलने में असमर्थ हुए तो घोड़ों पर, ऊँटों और हाथियों पर दौड़कर जाने

लगे। उन पर भी कष्ट प्रतीत हुआ तो रथ बनाये। विविध वाहन बनाये। फिरसजीव वाहनों से भी काम न चला तो निर्जीव बाष्प आदि की सहायता से बड़े-बड़े वाहन बनाये गये। यह मनुष्य की उन्नति का द्योतक नहीं है, उसकी निर्बलता और पराधीनता का द्योतक है।

पहिले लोग संकल्प से समुद्रों को पार कर जाते थे। जब यह शक्ति नष्ट हो गई तो घड़ों की घरनी बाँधकर पार होने लगे, उसमें भी काम न चला तो लकड़ी की नौकायें बनाने लगे। फिर लोहे के पोत बनाने लगे, वायु के अनुकूल होने से पाल के द्वारा चलने लगे। जब और भी जल्दी पड़ी तो बाष्प के यंत्रों द्वारा दौड़ाये जाने लगे।

पहिले विवाह आदि की प्रथा नहीं थी। जो चाहे जिससे सन्तान उत्पन्न करा ले। जब आपस में एक स्त्री-पुरुष के पीछे लड़ाई-झगड़ा होने लगा तो लोगों ने नियम बना लिया, एक पुरुष की एक ही स्त्री हो। विवाह-प्रथा चालू हुई, फिर इसमें भी लोग ऊधम करने लगे। तब और कड़े-कड़े नियम बने और भी विधान बने। फिर तो स्त्री-पुरुषों में भी झगडे आरम्भ हुए। स्त्रियाँ अपना अलग अस्तित्व जताने लगीं। वे अर्धांगिनी न होकर विवाह का सौदा करने लगी। अब परित्याग विधान बनने लगे। स्त्री अपने पति का परित्याग करके अन्य पतियों का वरण करने लगीं। उससे भी न पटी तो तीसरे से साँठ-गाँठ जोड़ ली। उससे भी मनमुटाव हुआ तो न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देकर किसी अन्य का द्वार खटखटाया। इस प्रकार अनेक पत्तलों की जूठन खाते फिरना, नित्य नये-नये पतियों की चिन्ता करते रहना, यह उन्नति नहीं अवनति है। उत्थान नहीं पतन है। सभ्यता नहीं असभ्यता है।

पहिले वर्णाश्रम धर्म नहीं था, सब एक ही वर्ण के लोग थे। सभी हंस के सदृश निर्मल चित्त वाले थे। जब परस्पर मैं छोटा तू बड़ा, यह काम मेरा है, यह तू नहीं कर सकता, यह बात हुई तो वर्णों की कल्पना हुई। पहिले चार वर्ण बने, फिर उनके संयोग से संकरता होने पर अपवर्ण बने। फिर एक अन्तिम अन्त्यज वर्ण हुआ। ऐसे फिर अनेक वर्ण बने सबकी वृत्ति निश्चित हुई। लोगों में झगड़ा हुआ। एक दूसरे पर आक्षेप करने लगे, इसे प्रकार यह विषमता यहाँ तक फैली कि एक दूसरे को मारने-पीटने दूसरे का धर्म नष्ट करने उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे। यह कलह उन्नति नहीं अवनति है।

पहिले लोग स्वाभाविक शक्ति से जहाँ चाहे उड़ जाते थे। जब यह शक्ति नष्ट हुई तो लोग देवताओं की आराधना से विमान प्राप्त करके उड़ने लगे। जब देवताओं को प्रसन्न करने में भी असमर्थ हुए तो पारद आदि धातुओं को फूँककर उनसे विमान बनाने लगे। उसके फूँकने में भी असुविधा प्रतीत हुई तो बाष्प स्निग्धता आदि के संयोग से उड़न विमान बनाने लगे।

समय तो निरवधि है, उसे तो न कोई कम कर सकता है न अधिक। देखना यह है कि इन उपायों से सद्वृत्तियों का विकास हुआ या संकोच। पहिले यात्राओं में कितने अनुभव होते थे, कितनी शूरता-वीरता आती थी, अपने प्रेमियों को रोज कितनी उत्कण्ठा बढ़ती थी। चिरकाल की प्रतीक्षा के पश्चात् मिलने से हृदय में कितना आह्लाद आनन्द होता था। अब वह कुछ नहीं। साधारण बातें हो गईं। लोगों के सद्गुणों का इन आविष्कारों से दिन-दिन ऱ्हास हो रहा है। भगवान का विश्वास कम होता जा रहा है, लोग शुष्क, हृदयहीन स्वार्थी, परपीड़क, इन्द्रिय-लोलुप होते जा रहे है। उन्नति का सम्बन्ध इन बाह्य वस्तुओं से नहीं है। घोर उन्नति की ओर अवनति की, परमज्ञानी की, महामूर्ख की बाहर से देखने में एक-सी स्थिति होती है, किन्तु उसके अन्तस्थल में बहुत भेद है कि एक ज्ञानी भी मूर्खों की भाँति रहता

है जहाँ चाहे खाता पीता है और इच्छानुसार बर्ताव करता है, एक महामूर्ख भी ऐसा ही करता है दोनों की बाहर से एक-सी दशा दीखने पर भी भीतर से भारी भेदभाव है। एक आत्मतृप्त है दूसरा अज्ञान से अशान्त है। कलियुगी लोग अवनति को ही उन्नति कहेंगे। जब तक हम जिस वस्तु को अच्छा न समझें तब तक उसमें प्रवृत्ति ही नहीं होगी। कलियुगी लोग विवाह बन्धन, धर्म, कर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था इन सबको ढोंग कहेंगे। ज्ञान से नहीं, अज्ञान से, कर्म से नहीं अधर्म से, सत्वगुण की पराकाष्ठा के कारण नहीं, तमोगुण के वशीभूत होकर ऐसा व्यवहार करेंगे। उसे धर्म मानकर प्रचार करेंगे। वास्तव में लोग जिसे उन्नति कहते हैं, वह हमारी निर्बलता का चिन्ह है। आँखों में शीशा चढ़ाकर हम यह सिद्ध करना चाहते हैं, हम पढ़े लिखे हैं, किन्तु यह पता नहीं कि आँखों पर शीशा चढ़ाना दृष्टि की न्यूनता, ज्योति की क्षीणता, ब्रह्मचर्य के अभाव का द्योतक है। हमारी शक्ति का ऱ्हास है।

समय के साथ स्वभाव, आकृति, प्रकृति, रूप, रंग, रहन, सहन, शील, सदाचार सभी बदल जाता हैं। इन गत पचास वर्षों में ही कितना भारी परिवर्तन हुआ है। ५० वर्ष पहिले जितने लम्बे-चौड़े, हृष्टपुष्ट पुरुष होते थे; उतने अब नहीं होते हैं। पचास वर्ष पहिले जैसी लोगों की पाचन शक्ति और सहन शक्ति थी, वह अब देखने को भी नहीं मिलती। जैसी धर्म भावना आज से १० वर्ष पूर्व थी वैसी अब नहीं। तमोगुणी लोग उसे उन्नति कहते हैं, विकास बताते हैं। साधु स्वभाव के सतोगुणी पुरुष इसे अवनति कहते है, ऱ्हास बताते हैं। वास्तव में यह विकास नहीं ऱ्हास ही है किन्तु अविद्या माया- का स्वभाव ही है, असत् में सत् बुद्धि और अधर्म में धर्म बुद्धि मानना। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, भोग लालसा, भोग सामग्रियों की प्रचुरता होती है, भौतिक वाद बढ़ता जाता है, सत्य धर्म परमार्थ और बल पौरुष क्षीण होता जाता है। जब यह अवनति पराकाष्ठा को पहुँच जायेगी, तो फिर एक साथ उन्नति हो जायगी। यही संसार चक्र है। जरा तो शनैः शनैः अवश्य आती है, किन्तु नूतनता सहसा आ जाती है। यह उत्थान पतन का क्रम अनादि है, अनन्त काल तक बना रहेगा।

पूनम से अमावस्या में १५ दिन का अंतर होता है, परन्तु हे मानव, उत्थान से पतन-पतन से उत्थान में एक पल का भी अंतर नहीं है। क्या उम्मीद करें अमावस्या के दलालों की, जो बात करते हैं उठने से पहले बैठने की, जागने से पूर्व सोने की तथा प्रारंभ से पूर्व समाप्ति की।

**** जब तक रास्ते समझ में आते हैं, तब तक लौटने का वक्त हो जाता है। यही जिंदगी है।***

**** जिस विचार का सही समय आ जाता है, उसकी ताकत के आगे कोई सेना नहीं ठहर सकती।***

**** मुश्किलें सिर्फ अच्छे लोगों के ही हिस्से में आती है कारण की***
वे ही लोग उसे बेहतरीन तरीके से अंजाम दे सकते है।

**** कुछ सवालों का जवाब न ही मिले तो बेहतर है।***
कारण कभी-कभी बड़े लोग भी छोटे लोगों के सवालों का जवाब नहीं दे पाते।

**** यदि सरोवर का पानी खारा हो, तब भी हंस उसको नहीं छोड़ता,***
क्योंकि गढ़े-तलैया में घूमते रहने पर उसे कोई भला नहीं कहता।

पूर्णता-अपूर्णता, स्थिरता-अस्थिरता, समता

जहां पूर्णविराम है और आगे की मांग नहीं, वहीं त्याग है। जहां पूर्ण विराम है और सम्मान की आकांक्षा नहीं, वहीं विनम्रता है। प्राणी मात्र में उसी प्रभु की सत्ता का अनुभव करना- इसको समता कहते हैं। जिसकी बुद्धि समता में स्थिर हो गई है उसे शोक मोह कभी होता ही नहीं।

सांसारिक व्यक्ति अपने में अपूर्णता का अनुभव करता है, पर वही, उन्ही परिस्थितियों में, बल्कि उससे भी कठिन परिस्थितियों में रहनेवाला आध्यात्मिक व्यक्ति अपने में पूर्णता का अनुभव करता है। पूर्णता और अपूर्णता की अनुभूति एक आंतरिक मनोभूमि है। इसका अनुभव नितांत व्यक्तिगत होता है और सद्विचारों पर आधारित होता है। जब हम शरीर-भाव में रहते है, तो इंद्रियों के कहने में रहते है और उन्ही की संतुष्टि में निमग्न रहते है। हमारे सभी क्रियाकलापों का केंद्र शरीर-संतुष्टि बना रहता है। पर जब हम अपनी आत्मा की ओर उन्मुख होते है तो पाते है कि आत्मा अपने-आप मे ही संतुष्ट है, क्योकि उसे कुछ नहीं चाहिए। संसार अनवरत परिवर्तनशील है, अत: समायोजन कभी पूर्णता नहीं प्राप्त कर पाता। हर-एक अपने जीवन में अभाव का अनुभव करता रहता है। सृष्टि हर-एक अपने जीवन में अभाव का अनुभव करती रहती है। सृष्टि एक-एक के जीवन में सब-कुछ देकर किसी एक चीज का अभाव कर देती है। कोई धनहीन है, कोई संतानहीन है, कोई आजीविका विहीन है, कोई सम्पत्ति विहीन है, कोई अमर्यादित है तो कोई अपमानित, तिरस्कृत एवं बहिष्कृत है, कोई असाध्य रोग-पीड़ित है तो कोई परिवार विहीन है, तो किसी-किसी घर मे नित्य कलह है। परिस्थितियाँ यही है तो हम किस प्रकार शांति का अनुभव कर सकते है ? कैसे अपूर्णता में भी पूर्णता की अनुभूति कर सकते है ? इसके लिए एकमात्र प्रभु-शरणागति ही उपाय है। जो है, वह तो है ही। जो न भर पाने वाला अभाव है, वह तो यदि विधि का यही विधान है तो, रहेगा ही। निराकरण का उपाय तो करना ही चाहिए, पर ईश्वर का विधान मान कर आत्मा से ही संतुष्ट रहने का प्रयास करना चाहिए। वास्तविकता यह है कि जो दु:ख, कष्ट या अभाव प्राप्त होते है, वे इस या पूर्व-जन्म में अपने ही किये गये कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होते है। अत: किसी और का दोषी ठहराना उचित नहीं।

धैर्यपूर्वक सहन करना ही अभीष्ट है। ईश्वर की खुशी मे ही अपनी खुशी मान कर संतुष्ट रहने का प्रयास करना चाहिए। अपने संतोष के लिए अच्छा हो कि हम संसार के और लोगों को देखे, सबके जीवन पर दृष्टिपात करे। पायेंगे कि और लो तो हमसे भी अधिक दु:ख में है। प्रभु को धन्यवाद है कि हमारा दु:ख तो बहुत थोड़ा है। दु:खों से छुटकारे का उपाय है- भगवान की शरणागति। यह राजमार्ग है। इसमें कोई बाधा नहीं। सभी भगवान की शरण ग्रहण करने में स्वतंत्र है। शरण ग्रहण करते ही पापों का अन्त हो जाता है। फिर तो जब हम सभी पापों से मुक्त हो गये तो फिर उनके कुफल से भी हम मुक्त हो जायेंगे और हमारा अभावजन्य कष्ट, कष्ट नहीं दे पायेगा। इस प्रकार हम जो अपने को अपूर्ण अनुभव कर रहे है यह अनुभूति पूर्णता में बदल जायेगी। छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। सामान्यत: जीवनमें जो प्यास होती है, वह सविषयक होती है, किसीके लिए होती है। अपने लिए अपने हृदयमें प्यास नहीं होती है, प्यास दूसरोंके लिए होती है। वस्तुत: यह प्यास पूर्णताके लिए हैं जब तक पूर्णता अप्राप्त प्रतीत होगी, तब तक प्यास रहेगी। सभी कार्यों को नियमानुसार शरीर द्वारा किया जाना चाहिए। कर्मों के प्रति मन में संशय न रखकर आसक्ति का त्याग कर राम नाम का ही मन से सुमिरन करते रहना चाहिए। यही सद्मार्ग है तथा इसी पर चलकर ही मनुष्य पूर्णता को प्राप्त कर पाता है। मुक्ति शून्यता में नहीं पूर्णता में है। पूर्णता सृजन करती है, ध्वंस नहीं करती जिसके पास बुद्धि है, उसीके पास बल है। बुद्धिहीन मे बल नहीं होता।

दान की महिमा

संसार में जितने भी अन्नदान, सुवर्णदान, गोदान, रत्नदान, कन्यादान आदि बड़े-बड़े दान हैं, उन सभी दानों से श्रेष्ठ अभयदान ही शास्त्रकारों ने बताया है।

सबसे अच्छी भीख वह है जिसे दायां हाथ दे और बायां हाथ न जाने। सबसे अच्छा धर्मयुद्ध वह है जिसे अपने आपको जीतने के लिए किया जाय। जहन्नुम खुशियों में और जन्नत परिश्रम और कष्टों में छिपा रहता है। सारे काम उनके पीछे छिपी नीयत से परखे जाते हैं। संसार के प्रति आसक्ति ही सारी बुराइयों की जड है। भीख देने से अल्लाह का रोष प्रशमित होता है। जन्नत में न तो घमंडी घुस सकता है और न कठोर वाणी वाला। संसार की चीजों की बहुतायत से धन नहीं मिलता, वह तो संतुष्ट मन से प्राप्त होता है। धन के बोझ से झुके आदमी के लिए ईश्वरीय आनंद तक पहुंचाने वाले दुर्गम रास्ते पर चलना कठिन होता है। सब को अभय देना ही दान है। सम्मान करनेवाला ही दानी है।

दान सबसे श्रेष्ठ धर्म है, दान के सहारे ही पृथ्वी अवस्थित है। जिस समाज में दानियों का अभाव हो जाता है सभी स्वार्थी और विषयलोलुप हो जाते हैं। पर पीड़ा को अनुभव करके जिनमें अपने स्वार्थ त्याग की भावना नहीं, वे तो पशुओं से भी गये बीते हैं। अन्नदान, जलदान तथा अभयदान इसके सभी अधिकारी हैं। जो भूखा हो और अपने सम्मुख अन्न की याचना करे, वह श्वपच चांडाल यहाँ तक कि यवन आदि अनार्य ही क्यों न हो यथाशक्ति अन्न देना चाहिये। भूखे की पूजा करना ही भगवान की श्रेष्ठ पूजा है। जो पिपासित हो पानी की इच्छा कर रहा हो, उसे पानी और जो आर्त होकर किसी भय के कारण चिल्ला रहा हो, शक्ति रहते उसके भय को दूर करना यही सर्वोत्कृष्ट धर्म है, जो इन धर्मों का कर्त्तव्य समझकर श्रद्धापूर्वक पालन करता है, वही श्रेष्ठ पुरुष है वही पुण्यश्लोक है, वही सब कुछ करने में समर्थ है। स्वर्ग का द्वार उसके लिये सदा खुला है, मोक्ष को उसने अपने अधीन कर लिया है, भगवान उसे स्वयं अपने लोक में लेने के लिये आते हैं।

दाता एक राम, भिखारी सारी दुनियाँ। राम एक देवता, दुखियारी सारी दुनियाँ।।
निर्धन तो मांगे हीं मांगे, मांगे साहूकार। हाथ जोड़ कर मांगे कोई, दोनों हाथ पसार।।
दाता एक राम, भिखारी सारी दुनियाँ।।

जो कोई दान नहीं देता। वह अगले जन्म में दरिद्री बनता है और फिर पैसे के अभाव में, गरीबी में पाप करता है, चोरी करता है और फिर पाप के प्रभाव से उसको नरक में जाना पड़ता है। नरक से फिर जब वह वापिस आता है तो वह दरिद्री बनता है, फिर पापी के घर पैदा होता है, फिर पाप करता है, फिर नरक में जाता है, फिर पाप करता है, फिर दरिद्री बनता है, इसी चक्कर में रहता है- दरिद्री, नरक, फिर दरिद्री, फिर नरक। दान देनेसे धनी बनता है। धनी बनता है तो फिर वह पुण्य करता है, पुण्य के प्रभाव से फिर वह स्वर्ग में जाता है, फिर स्वर्ग से लौटता है तो धनी के यहाँ पैदा होता है, फिर वहाँ दान करता है, तो वह फिर स्वर्ग में जाता है, फिर धनी के यहाँ पैदा होता है।

सत्पात्र में दान करनेवाला मनुष्य इस लोक में धनाढ्य होता है। धनाढ्य होने पर वह पुण्य करता है, पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाता है। वहाँ नाना प्रकार के दिव्यभोगों का उपभोग कर फिर धनाढ्य के घर में जन्म लेता है। इस प्रकार वह बराबर धनाढ्य व पुण्यात्मा होता रहता है। अत: प्रत्येक प्राणी को कुछ न कुछ थोड़ा बहुत यथाशक्ति दान अवश्य करना चाहिए और कलियुग में तो विशेषकर दानकी ही प्रधानता दी गयी है। कुछ श्रीमदान्ध लोगों का स्वभाव है कि

वे याचक को देखते ही जल-भुन जाते हैं। वे यह विचार नहीं कर पाते कि ये याचक बने कैसे? जो मनुष्य कभी दान नहीं करता वही याचक बन घर-घर मारा-मारा फिरता है? याचक माँगने नहीं आते, वे तो आपको शिक्षा देने आते हैं कि सबको प्रतिदिन यथाशक्ति दान करना चाहिए जो दान नहीं करते उनकी गति ऐसी ही होती है। वे हमारी तरह इधर-उधर एक-एक दाने के लिए हाथ फैलाते फिरते हैं।

यह सोचना बिल्कुल गलत है कि जब सामनेवालेको जरूरत होगी, तब हम दान करेंगे। दान अपनी जरूरतसे दिया जाता है। जब दिये बिना दिल नहीं मानता तब दान होता है। यह नहीं कि कोई आदमी गरीब है, दरिद्र है तब हम उसको दान दें। हृदयमें जो पीड़ा होती है, उसको मिटानेके लिए दान होता है। सेठ-साहूकार लोग अपनेको पैसेवाला तो मानते ही हैं, साथ-साथ बड़ा भारी धर्मज्ञ भी मानते हैं। परन्तु धर्मकी छाया तो बहुत दूर निवास करती हैं, वह गुरुगम्य है, सम्प्रदाय-गम्य है। दान दी हुई वस्तु लौटाई नहीं जा सकती है।

अपात्र को दिया दान निष्फल ही नहीं जाता, देनेवाले को दोष भी लगता है दूसरे जन्म में वह धनहीन होता है। धन न होने से उसकी पाप में प्रवृत्ति होती है। पाप करने से फिर-फिर दरिद्री होता है, फिर-फिर पाप करता है। अत: दान के लिये सत्पात्र की अत्यन्त आवश्यकता है। देवता, यज्ञ, ब्राह्मण, गौ, इनके लिये जो दिया जाता है वह परलोकसुख-साधन के लिये होता है और उसी को संविद् दान अर्थात् अवश्य देना चाहिये इस बुद्धि से दिया हुआ कहते हैं।

दान की परंपरा सभी धर्म-शास्त्रों और समाजों में रही है। आज भी लोग इसका पालन कर रहे हैं। लेकिन दान को लेकर इधर जो एक नई धारणा बनी है, वह उसकी छवि को आघात पहुंचा रही है। वह धारणा है कि समाज को लूटो और उस पाप को धोने के लिए देवस्थानों में चढ़ावा चढ़ा दो। उससे सारे पाप धुलकर पुण्य में बदल जाएंगे। पाप-पुण्य की परिभाषा को हमने भाषा में सीमित कर आसान कर दिया है, जबकि वह मन और विचार का एक भाव है। यह गलत और सही की पहचान कराता है। इस मायने में देखें तो गांव में आज भी इस भाव को महसूस किया जा सकता है। खेतिहर अपनी फसल से कुछ हिस्सा निकालकर समाज के उन लोगों में बांटते हैं जो मजबूर है या उनकी मदद की जिन्हें जरूरत रहती है। आज भी बहुत से लोग समाज के अनाज के धन-धान्य से अपने निवास की मुंडेर पर चहचहाते हुये पक्षियों को दाना चुगाते है। इस तरह किसी न किसी रूप में लोग सहयोग कर रहे हैं। दान का असली रूप यह है।

दान का संबंध मन और हाथ से है। मन जो कहता है, हाथ उसके अनुसार दान के लिए आगे आ जाता है। हाथ में भले आप सोने का कड़ा, महंगी घड़ी या कंगन पहन लें, लेकिन लोकोत्तर दृष्टि में वे हाथ ही पूजनीय हैं, जो निष्काम और नि:स्वार्थ भाव से दान देना जानते हैं। यह भी देखा जाता है कि वह दान सही हाथ में गया या नहीं। महावीर ने मोक्ष के जो चार मार्ग बताए हैं, उनमें पहला स्थान दान का ही है।

दान की महिमा के अनेक कारण हैं। सबसे पहला कारण है, दान से धन-माया के प्रति आसक्ति टूटती हैं, संग्रह-वृत्ति क्षीण होती है, परस्पर सहयोग का भाव जगता है। व्यक्ति की संवेदना जो स्व तक सिमटी हुई होती है, दान में उसका विस्तार होता है। अपना परिवार ही नहीं, समाज, राष्ट्र और पूर्ण प्राणी जगत भी मेरा है। इसलिए मेरी संपत्ति केवल मेरे परिवार के ही नहीं समाज के काम आए, समाज का कोई भी आदमी भूखा न सोए, इस विचार का विकास ही दान है। इसलिए संत कबीर कहते हैं, नाव मे पानी भर गया है और घर यदि धन-संपत्ति से भर गया है तो दोनों हाथों से उलीचकर उन्हें बाहर कर दें। अगर नहीं उलीचा तो बढ़ा हुआ पानी नाव को खतरा उत्पन्न कर देगा और बढ़ी हुई धन-माया घर की

सुख-शांति में खतरा पैदा कर देगी। यही धन-संपत्ति आज सबसे ज्यादा विवाद में है। कुछ लोग अपना घर भरने के लिए सामाजिक जीवन मूल्यों को ताक पर रखने में परहेज नहीं कर रहे हैं। वे भूल जाते हैं कि यह रास्ता हमेशा भटकाता ही है। आप दुनिया से भाग सकते हैं, लेकिन खुद से नहीं। वह आपको एक दिन ग्लानि में डालेगा।

दान का महत्व- दान का मतलब मात्र किसी को पैसे या वस्तुएं देना नहीं है, इसके पीछे मुख्य भाव यह है कि समाज में जो कमजोर या अभावग्रस्त तबका है, वो भी धीरे-धीरे मुख्यधारा में शामिल हो सके। दान से तात्पर्य किसी को दो रोटी देना नहीं, बल्कि उसे दो रोटी कमाने लायक बना देना है और इसके लिए धन के साथ-साथ ज्ञानदान, विद्यादान तथा श्रमदान जैसी क्रियाओं की भी जरूरत होती है। दान किसी व्यक्ति को न देकर जनकल्याण में लगी किसी संस्था को भी दिया जा सकता है।

यह जरूरी है कि किसी भूखे व्यक्ति को सबसे पहले पेट भर भोजन कराया जाए तथा बाद में उसे रोजगार की ओर प्रेरित किया जाए। लेकिन किसी धार्मिक अनुष्ठान के रूप में दान-दक्षिणा देना, लेने वालों को आलसी, अकर्मण्य और निठल्ला बनाता है। यह दान की सही भावना के उलट है। दान देने से अधिक महत्व है दान देने की भावना का। खलील जिब्रान कहते हैं कि कई लोग हैं जो बहुत कुछ पास होते हुए भी उसका थोड़ा सा अंश ही दान करते हैं और वह भी यश पाने की कामना से। उनकी यही परोक्ष कामना उनके दान को छोटा बना देती है। इसको सकाम कर्म कहते हैं और ये कर्म हमें मुक्त करने की बजाय बांधते हैं। दान के पीछे जो भावना है, उसी के अनुसार हम दान को तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं- सात्विक, राजसिक और तामसिक। जो दान अहंकार उत्पन्न कर, वह तामसिक श्रेणी का है। जो दान यश की इच्छा से किया जाए, वह राजसिक दान है। और जब निष्काम कर्म के रूप में बिना व्यक्तिगत लाभ-हानि का आकलन किए कुछ दिया जाता है, तो वह सात्विक श्रेणी का दान बन जाता है।

गीता के सत्रहवें अध्याय में कृष्ण कहते हैं- जो दान कर्त्तव्य समझ कर, बिना किसी प्रत्युपकार की आशा के, उचित काल तथा स्थान में और योग्य व्यक्ति को दिया जाता है वह सात्विक माना जाता है। लेकिन जो दान कर्मफल की इच्छा से या अनिच्छापूर्वक किया जाता है, वह रजोगुण या राजस दान कहलाता है।

ऐसे भी लोग हैं, जिनके पास बहुत थोड़ा है और वे सारा का सारा दे डालते हैं। ये जीवन में आस्था रखनेवाले लोग होते हैं। इनका भंडार कभी खाली नहीं होता। कुछ लोग प्रसन्न होकर दान करते हैं। यही प्रसन्नता उनका पुरस्कार है। दूसरे लोग हैं, जो कष्ट से दान करते हैं और यही उनका ईमान है। ऐसे लोग भी हैं, जो दान करते हैं और उन्हें दान करते कष्ट नहीं होता, न उन्हें प्रसन्नता होती है, न इच्छा होती है पुण्य की। मात्र यश पाने के लिए किया गया कार्य उत्तम कोटि का नहीं माना जा सकता, लेकिन उत्तम कार्य करने पर यश तो मिलेगा ही। इसमें बुराई क्या है? लेकिन यह भी तभी सार्थक है, जब वह हमारे जीवन में उत्प्रेरक तत्व की भूमिका निभाए। कृष्ण के अनुसार जो दान किसी अपवित्र स्थान में, अनुचित समय में, किसी अयोग्य व्यक्ति को या बिना आदर दिया जाता है, वह तामसी दान कहलाता है।

तुम कहते हो, मैं दान करूंगा, किंतु केवल उसे ही, जो दान का अधिकारी हो। तुम्हारे उद्यान के वृक्ष तो ऐसा नहीं कहते, न ही तुम्हारे चरागाहों के पशु। वे देते हैं, क्योंकि वे दे सकते हैं। एक अत्याचारी व निर्दयी व्यक्ति भूख-प्यास से तड़पता हुआ भीख की झोली फैलाए खड़ा है, तो क्या उस समय आप रोटी-पानी देने के लिए किसी शरीफ भिखारी की प्रतीक्षा करेंगे? यदि ऐसा करते हैं तो आप दान कहां दे रहे हैं, आप तो बदले की भावना से कार्य कर रहे हैं।

धर्म का मूल दया है और पाप का मूल संताप। जहां क्षमा होती है, वहां धर्म होता है और जहां धर्म का निवास हो,

वहां परमेश्वर का निवास होता है। हमारे मन में सवाल उठता है कि कौनसा दान अधिक श्रेष्ठ है? जमीन, सोना, गाय अन्न इनका दान बड़ा महत्वपूर्ण है। किन्तु सबसे बड़ा दान, महादान अगर कोई है, तो वह अभयदान है। अभयदान ही दूसरे शब्दों में जीवनदान कहलाता है। किसी को रक्तदान से जीवनदान मिलता है तो अंध व्यक्ति नेत्रदान द्वारा दुनिया देख सकता है। इसीलिए दान की भावना को सामाजिक आंदोलन में बदलते हुए हम देख रहे हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का साधन है हमारा शरीर। इसलिए किसी को जीवनदान, स्वास्थ्यदान देने से एक साथ इन चारों पुरूषार्थों का वहन होता है।

विधाता ने जीवों के शरीर की संरचना एक दक्ष इंजीनियर की भांति की है- त्रुटिहीन। परंतु कभी-कभी उससे भी चूक हो जाती है। इस देह की फैक्ट्री में कब कौन सा पुर्जा हाथ खड़े कर देगा, कोई नहीं जानता। कभी आंखें, कभी दिल, कभी जिगर कभी पैंक्रियाज- अचानक अलविदा कहने को तैयार कर लेते हैं।

ऐसे में सुननेवालों की पहली प्रतिक्रिया सहानुभूति से भरी होती है। जिस अंग को बदलने से जीवनदान मिल सकता है, उसे प्रस्तुत करनेवालों की कतार लग जाती है। मगर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अक्ल का शैतान हावी हो जाता है, आसपास के लोग कतराने लगते हैं। मरीज और उसका परिवार अकेला रह जाता है। कई बार बेहद अंतरंग संबंधी भी हामी भरने के बाद, चुपके से डॉक्टर से कोई तकनीकी वजह बता देने का अनुरोध कर बैठते हैं, यह कहते हुए कि उनके छोटे-छोटे बच्चे हैं। तब बेचारा मरीज एक-एक सांस के लिए मोहताज हो जाता है। ऐसे में जीवन भर की पूंजी हाथ में लेकर परिवार अंग खरीदने निकल पड़ता है। इसी समय वह अंग व्यापारियों के चंगुल में फंसता है।

हमारे देश में प्रति वर्ष हजारों लोगों के गुर्दे खराब होते हैं, लेकिन केवल तीन हजार लोगों को डोनर मिल पाते हैं। ऐसी हालत में १०० करोड़ से ऊपर आबादी वाले देश में किसी की मृत्यु के बाद कानूनन उसे डोनर मान लिया जाए तो इस अंतर को पाटा जा सकता है। ब्राजील आदि कई देशों में जब तक कोई अस्वीकृति न दे या कोई बेहद गंभीर बीमारी में न मरे तब तक सभी स्वाभाविक रूप से डोनर माने जाते हैं।

दुर्घटनाओं के शिकार या गंभीर रूप से बीमार लोगों को अंग-प्रत्यारोपण की जरूरत बनी रहती है। इनमें से कितनों के बच्चे बेसहारा होने से बच सकते हैं। ऋषि दधीचि हम सबमें बसते हैं। उसी भावना को जगाकर हम अपने शरीर का दान कर सकें तो यह नश्वर शरीर जिंदा रह सकता है। अंत में इस काया को या तो जला दिया जाता है या दबा दिया जाता है। मृत शरीर में से सूक्ष्म तत्व निकाल कर विराट में लीन हो जाता है। अंग-प्रत्यारोपण के विषय में कुछ अंधविश्वास भी फैले हुए हैं, जैसे- नेत्रदान, अंगदान करनेवाला व्यक्ति दूसरे जन्म में विकृत शरीर लेकर पैदा होगा। आत्मा को अजर-अमर और शरीर को नश्वर माननेवाला यह देश ऐसे निर्मूल तर्कों में फंसे यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है। कुरान के अनुसार प्रार्थना हमें ईश्वर की तरफ आधे रास्ते तक ले जाती है, उपवास भी मात्र द्वार तक पहुंचाता है, सिर्फ दान ही ऐसा साधन है जो ईश्वर तक पहुंचाता है। यदि अंगदान कर किसी की जिंदगी बचा ली जाए तो अपना भी जीवन सार्थक हो जाए।

हिंदू धर्म में दान का बहुत महत्व है। करीब-करीब प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी श्रद्धा अनुसार गऊशाला, मंदिर व सामाजिक संस्थाओं में दान देता है, यह धन यदि गरीब, अनाथ, भूखे व अनपढ़ बच्चों को पढ़ाने-लिखाने एवं उन्हें दो जून की रोटी खिलाने तथा उनके लिए विद्यालय बनाने आदि कार्यों पर लगाया जाए तो भारत की तसवीर कुछ अलग ही होगी व दान का सदुपयोग भी होगा।

परिवर्तन, परिस्थिति

बीसवीं सदी का परिवर्तन हर दिन दुगुना होता रहा है- एक से दो, दो से चार, चार से आठ, इस तरह दिन दूना और रात चौगुना यह परिवर्तन अपनी गति अब दिन से नहीं घंटों से बढ़ा रहा है। इसी तरह जगत की गति भी रही है। भाग रही है वह भी। उतनी ही त्वरा से पुरानी बातें समाप्त हो रही हैं। इतिहास में से, स्मृति से दूर हो रही है। लेकिन एक चीज नहीं बदली है- वह है अन्दर का मनुष्य।

परिवर्तन प्रगति सूचक है। परिवर्तन सत्य है, परिवर्तन आशा है, परिवर्तन प्रकाश है। परिवर्तन अटल है, परिवर्तन कामना है, परिवर्तन नियम है। परिवर्तन जीवन है, परिवर्तन भाग्य है, परिवर्तन अनेक है। परिवर्तन जरूरी है, परिवर्तन आवश्यक है, परिवर्तन आस्था है। परिवर्तन विश्वास है, परिवर्तन जीत है, परिवर्तन मित्र है। परिवर्तन कल्याण है, परिवर्तन निश्चित है, परिवर्तन ज्योत है।

परिवर्तन एक अटल नियम है। इसे कभी नहीं टाला जा सकता। सब बदलते हैं। हमारे विचार बदलते हैं। वे भी शाश्वत कहां हैं ? दोनों का विरोधाभास-विचार और शाश्वत दोनों का योग ही कहां ? विचार का अर्थ होता है चलने वाला। चलने वाला शाश्वत कैसे होगा ? कभी शाश्वत नहीं हो सकता। चल और अचल का योग तो हो सकता है। एक द्रव्य में चलांश भी होता है और अचलांश भी होता है, दोनों अंश मिल सकते हैं, किंतु जो अचल है वह चल नहीं हो सकता और जो चल है वह अचल नहीं हो सकता। जो ध्रुव है वह परिवर्तनशील नहीं हो सकता और जो परिवर्तनशील है वह कभी ध्रुव नहीं हो सकता। प्रत्येक द्रव्य में दोनों प्रकार के धर्म मिलते हैं- ध्रौव्यांश और चलांश। परिवर्तनशीलता और अपरिवर्तन शीलता। विचार सदा परिवर्तनशील होता है। कहते हैं आज इस आदमी का विचार बदल गया। विचार यदि न बदले तो उसमें आश्चर्य होना चाहिए। विचार बदले उसमें कौन सा आश्चर्य है ? विचार का काम ही है बदल जाना। कल जो विचार था वह आज नहीं होगा और आज जो विचार है वह आनेवाले कल में नहीं होगा। अगर एक ही विचार पूरे जीवनकाल में टिक जाए तो मानना चाहिए बड़ा रूढ़िवादी आदमी है। इतने लंबे समय तक एक विचार टिक गया। विचार का काम है- सतत प्रवाह, गतिशीलता बदलते जाना। जो पकड़कर बैठ जाते हैं कि मैंने तो एक विचार पकड़ लिया है, अब छोडूंगा नहीं। वह बड़ा अहंकार और गर्व का अनुभव करता है, सोचता है कि मैं बड़ा मजबूत आदमी हूं कि पकड़ी हुई बात को छोड़ता नहीं। अरे, कौन सी बड़ी बात कर दी तुमने ? यह तो मूर्खता की बात है। बात है मूर्खता की और मान लेता है गर्व की बात। गर्व से कहता है कि मैं कितना दृढ़ आदमी हूं। पत्थर बहुत मजबूत होता है। हड्डी बहुत मजबूत हो जाती है तो बहुत खतरा होता है। हड्डियां लचीली रहती हैं तो आदमी स्वस्थ रहता है। बीमारी का पहला लक्षण है हड्डियों का कठोर हो जाना। हड्डी अकड़ गई, कड़ी पड़ गई तो मान लें, स्वास्थ्य चला गया। इसलिए एक बात पर डट जाना, कोई विशेषता की बात नहीं है, परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आदमी मूर्खता की बात को भी विशेषता की बात मान लेता है। यही विचार का अंतर है। सम्यक् विचार और सम्यक चिंतन नहीं होता है तो लोग गलत बात को सही मान लेते हैं और मूर्खता को समझदारी मान लेते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि उन्हें यह भान भी नहीं होता कि वे मूर्खता कर रहे हैं। बहुत लोग ऐसे होते हैं जिन्हें अपनी मूर्खता का कभी पता ही नहीं चलता।

स्वयं को बदलो- यदि आप अपने में बदलाव लायेंगे तो आपका तनाव भी कम होगा। आप विभिन्न बीमारियों से बचे रहेंगे। आपका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। आप वह सब कुछ पा सकते हैं जो अड़ियल रुख के कारण आप खो सकते हैं।

मनुष्य के जन्म के साथ यही है, पता भी नहीं चलता है कि जब आपने जन्म लिया था, कितना परिवर्तन हुआ है ? जन्म के साथ अगर आपका चित्र लिया होता और आज आपको दिखाया होता, संभव है आप उसे खुद न पहचानते। इतना अंतर, इतना परिवर्तन होता है। प्रकृति हर क्षण परिवर्तनशील है। उस परिवर्तन को इंसान देख सके, इस परिवर्तन को स्वीकार कर सके, इस परिवर्तन के अनंत आयाम को जान सके, इस परिवर्तन को स्वीकार करने की क्षमता अगर मनुष्य में आ जाये तो बहुत सारी जीवन की समस्याओं का समाधान होगा। दुर्भाग्य यह है कि प्रकृति के इस परिवर्तन को इन्सान देख नहीं पाता। देख लेता तो स्वीकार नहीं कर पाता और विद्रोह करता है, विरोध करता है। और उस विद्रोह और विरोध के कारण ही अशांति पैदा होती है।

संपूर्ण जीवन की परिक्रमा, संपूर्ण जीवन की यात्राएं इन सबका अगर हिसाब-किताब निकाला जाए, क्या है, क्यूं है ? मनुष्य क्यों इस दुनिया में इस तरह से घूमता रहता है, परिश्रम करता है, समेटना चाहता है सारी दुनिया को, किस बात के लिए ? एक ही बात है- वह है शांति। और वह शांति दुनिया को समेट कर पाना चाहता है, लेकिन नहीं मिल पाती। उसका कारण है भीतर की अशांति और इस अशांति का मूल कारण है - स्वीकृति नहीं है। उस होते हुए परिवर्तन को स्वीकार करने की बुद्धि नहीं है। इसी कारण आज तनाव है चारों तरफ। परिवार एक छोटी-सी ईकाई है मनुष्य जाति की। उस परिवार में दो-चार पांच व्यक्ति रहते हैं, एक मुहल्ला है, एक नगर है, नगरों का समूह देश है और देशों का समूह पृथ्वी है। और इस पृथ्वी को, जिसकी कोई सीमा नहीं है, हम बांटते चले गये। क्या नहीं बांटा ? समुद्र बांटा, धरती बांटी, आसमान बांटा। और तो और, ईश्वर तक को बांटा, शास्त्रों को बांटा। भाईयों को बांटा। परिवार के सदस्य इसलिये विरोध में खड़े हुए कि हम अलग है। और इस अलग होने का कारण, बहुत गइराई में मनुष्य के मन को देखा जाए तो मुझे लगता है, एक ही बात मेरी समझ में आयी है कि मनुष्य दूसरों की बातें स्वीकार नहीं करता। इसलिए परिवर्तन स्वीकार नहीं कर पाता। इसी से सारी अशांति है।

मनुष्य अपनी परिस्थितियों को बदलता है और वातावरण को भी बदलता है। वातावरण को ऐसे ही नहीं छोड देता। परिस्थिति को, जो जैसे है, वैसे ही नहीं छोड़ देता, उसे बदलने का प्रयत्न करता है। मनुष्य का पूरा पुरुषार्थ और पूरा प्रयत्न बदलने में लगा है और वह आगे बढ़ा है। यदि बाहरी परिस्थिति को न बदला जाये तो काफी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। मनुष्य ने बाहरी परिस्थिति को बदलने का भी उपक्रम क्रिया है, बाहर के वातावरण को भी बदलने की चेष्टा की है। यदि अंधकार को नहीं बदला जाता तो प्रकाश उपलब्ध नहीं होता। प्रकाश से रात में भी दिन हो जाता है। रात में भी दिन होता है मनुष्य के पुरुषार्थ द्वारा और बदलने के द्वारा। मनुष्य ने कितने प्रयत्न किए हैं। कभी पत्थरों से आग जलाई, कभी अरणी की लकड़ी से आग जलाई और कभी बिजली जलाई। साधनों के परिवर्तनों के द्वारा वह अंधकार को भी प्रकाश में बदल देता है। अंधकार एक परिस्थिति है। उस परिस्थिति को बदलने का प्रयास किया, प्रकाश उपलब्ध हो गया। बाहरी वातावरण को बदलने का प्रयत्न हुआ है। इसलिए आदमी गर्मी में सर्दी की स्थिति पैदा कर सकता है। ये सारे पंखे, कूलर इसीलिए तो बने कि सर्दी की परिस्थिति को बदल दिया जाये। यह हीटर इसीलिए तो

बना कि सर्दी की परिस्थिति को बदल दिया जाये। गर्मी में सर्दी और सर्दी में गर्मी। मौसम की एकरूपता बना दी जाये। यह सारा विकास बदलने का विकास है। मनुष्य ने बाहरी परिस्थिति को बदलने में काफी प्रयत्न किया है। उसने उसे बदला है और बहुत हद तक सफल भी हुआ है। जिसकी संभावना और कल्पना नहीं थी, उस स्थिति को भी वह बदल चुका है और आगे बढ़ रहा है।

रेत से पहाड़ बनते हैं, पलों से वर्ष बनते हैं और छोटी चीजों से ही जीवन बना है। कितनी बार हम कई छोटे-छोटे कामों को छोटा समझकर उनकी उपेक्षा करते हैं, उसे कार्यरूप में परिणत करने में पीछे हट जाते हैं, यह सोचकर कि इस छोटे-से काम को करने से क्या फर्क पड़ता है। परंतु हम यह भूल जाते हैं कि ये छोटे-छोटे काम एक दिन बड़े परिवर्तन को दिखलाते हैं।

बेडेल फिलिप के अनुसार जो छोटी चीजों को नकार देगा, वह बेहद छोटी चीजों को समझ नहीं सकेगा। यह व्यक्ति का ओछापन ही है कि वह छोटी चीजों की महानता नहीं देख पाता अत: जो छोटे-छोटे कामों को छोटा जानकर अनदेखा करेगा, उसे ही कभी न कभी इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा।

यह सोचना कि इस छोटे-से फर्क से क्या फर्क पड़ेगा तथा मैं ही इसकी पहल क्यों करूं मुझे इससे क्या लाभ मिलेगा, संकीर्ण मानसिकता का परिचायक है। समाज में लाए गए छोटे-छोटे परिवर्तन एक दिन बड़े परिवर्तन में परिवर्तित होते हैं और उस परिवर्तन से व्यक्ति विशेष ही नहीं सारा समाज, सारी सृष्टि प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होती है।

विचारक इमर्सन का मत है कि हजारों पेड़ों की रचना एक छोटे-से बीज से होती है। ऐसा लगता है कि सबसे छोटा बीज सबसे बडी फसल ही प्रकृति का सबसे बड़ा नियम है। डार्विन लगातार अनगिनत तथ्यों का सावधानीपूर्वक संग्रह करते गए। ये संग्रहीत तथ्य अलग से देखने पर बड़े मामूली थे, लेकिन जब उन्हें एक दूसरे के साथ जोड़कर देखा गया और वे तथ्यों की एक श्रृंखला में गए तो उन्होंने उत्पत्ति के सिद्धांत को जन्म दिया। अत: किसी भी काम को छोटा न मानें। प्रकृति में कोई काम छोटा नहीं होता। भले ही हमें उसके परिणाम तुरंत देखने को न मिलें, परंतु यह कभी न कभी बड़े की नींव बनते है।

प्रकृति में जो हो रहा है वह सब परिवर्तन है। जो पैदा होता दिख रहा है वही नष्ट होता नजर आता है। जिसका सर्जन होता दिखता है वही विसर्जन की ओर जाता नजर आता है। पेड़-पौधे हों या पशु-पक्षी, झोंपडे हों या अट्टालिकाएँ, नगर हों या जंगल, पहाड़ हों या खाइयाँ, सागर हो या मरुस्थल, सब परिवर्तनरूपी सरिता में बहे जा रहे हैं। जहाँ नगर थे वहाँ वीरान हो गये, जहाँ बस्तियाँ थीं वहाँ आज उल्लू बोल रहे हैं और जहाँ उल्लू बोल रहे थे वहाँ बस्तियाँ खड़ी हैं, जहाँ मरूस्थल थे वहाँ आज महासागर हिलोरें ले रहे हैं और जहाँ महासागर थे वहाँ मरुस्थल खड़े हैं। बड़े-बड़े खड्डों की जगह पहाड़ खड़े हो गये और जहाँ पहाड़ थे वहाँ आज घाटियाँ, खाइयाँ बनी हुई हैं। जहाँ बड़े-बड़े वन थे वह भूमि बंजर और पथरीली हो गयी और जो बंजर थी, पथरीली थी वहाँ आज वन और बाग-बगीचों के रूप में हरियाली फैली हुई है।

परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है। स्थिर होना मृत्यु है।

संसार परिवर्तनशील है। प्रकृति में प्रत्येक क्षण परिवर्तन हो रहा है। इसके साथ यदि हम स्वयं को भी परिवर्तन के लिए तैयार कर लेते हैं तो ठीक है, अन्यथा हम विनाश को प्राप्त हो जाएंगे। धनुष लचीला होता है, इसलिए तीर ऊपर जाती है। यदि धनुष लचीला न हो, तो तीर दूर तक नहीं पहुंचता। वह खींचने पर टूट जाता है।

समय के अनुसार हममें भी परिवर्तन आया। बाल्यावस्था से युवावस्था में आए। युवावस्था से वृद्धावस्था में आए। यह बदलाव जान-बूझकर नहीं किया, यह समय के अनुसार स्वत: होता गया। उसे रोकना अथवा टालना हमारे वश में नहीं है। जो लोग परिवर्तन से पहले स्वयं को उसके लिए तैयार कर लेते हैं, वे ज्ञानी हैं, परिवर्तन जिन्हें तैयार करता है वे सामान्य व्यक्ति हैं और परिवर्तन होने के बाद भी जो स्वयं को परिवर्तन के अनुकूल बदलते नहीं है, वे मूर्ख हैं।

जैसे सर्दी का मौसम आनेवाला है। हम पहले ही गरम कपड़े, रजाई, कंबल आदि तैयार कर लेते हैं, क्योंकि जानते हैं कि मौसम में परिवर्तन होनेवाला है। हमने परिवर्तन आने से पहले ही स्वयं को उसके लिए तैयार कर लिया।

इसी प्रकार शारीरिक स्तर पर भी परिवर्तन आता है। अब हम १६ साल के जवान नहीं रहे। पहले की तरह झट से सीढ़ियां नहीं चढ़ सकते। हम स्वयं को उस परिवर्तन के लिए तैयार नहीं करेंगे तो दुखी होते जाएंगे। भौतिक और शारीरिक स्तर के परिवर्तन तो सामान्य हैं, पर समस्या आती है भावनात्मक स्तर पर समस्या आती है भावनात्मक स्तर पर परिवर्तन में। भावनात्मक स्तर पर जो परिवर्तन आता है उसे हम देख ही नहीं पाते।

भावनात्मक परिवर्तन का मुख्य बिंदु परिवार होता है। हमारी मान्यताएं, जो ४० साल पहले थीं, वे अब नई पीढ़ी के आने के बाद बदल गई हैं। आज से ४० साल पहले जो बुरा माना जाता था, आज वह मान्य हो गया है। इस तथ्य को समझें और नाराजगी तथा दोषदर्शिता का शिकार न बनें।

जानवर अपनी वंशगत परम्परा के अनुसार जीवन जीता है। शरीर के अधिकतर कार्य वह बचपन में ही सीख लेता है। मनुष्य का बचपन बहुत अबोध होता है। परंतु उम्र बढ़ने के साथ ही स्वयं को परिस्थिति के अनुकूल ढालकर वह आश्चर्यजनक शक्तियों का स्वामी बन जाता है।

संसार में परिवर्तन लाने वाले दो तरह के व्यक्ति होते हैं- एक विद्रोही तथा दूसरे ऋषि। विद्रोही कहता है, मैं समाज के बनाए नियमों को नहीं मानता, मैं इन्हें बदलना चाहता हूं। वह समाज के प्रति गुस्से से प्रेरित होकर परिवर्तन लाता है। लेकिन ऋषि गुस्से से प्रेरित होकर परिवर्तन नहीं लाते, कल्याण की भावना से लाते हैं।

हजारों वर्ष पूर्व शास्त्रों का ज्ञान साधारण आदमी को नहीं दिया जाता था। पंडित कहते थे, स्त्रियों को शास्त्र ज्ञान मत देना, जाति और वर्ण व्यवस्था को भी ध्यानमें रखकर देना चाहिए। लेकिन कुछ संतों ने आनेवाले परिवर्तन का अनुभव किया और वे शास्त्रों का ज्ञान सार्वजनिक प्रवचनों के माध्यम से आम आदमी को देने लग गये। इसका बड़ा विरोध हुआ, पर वह बदलाव तो आना ही था।

विपत्तियों से डरना नहीं चाहिए, बल्कि पुरुषार्थ और भगवद् आश्रय से साहस पूर्वक उनका सामना करना चाहिए। हर स्थिति पर पूर्ण विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य आप में भरा है। भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिकूलताओं से घबराइए नहीं। केवल मन के दुर्बल होने पर ही वे मनुष्य को विचलित करती हैं। आप में शक्ति का अक्षय भंडार भरा है। अगर जीवन में आत्मबल, धैर्य, साहस, पुरुषार्थ, विवेक और ईश्वर आश्रय हो तो हरेक परिस्थिति में विजय प्राप्त कर निरंतर प्रगति के पथ पर बढ़ा जा सकता है। वास्तव में सफल वही है जो विषय परिस्थितियों और अड़चनों में भी प्रसन्न रहे, स्वस्थ रहे। जीवन का संतुलन न खोए और अपने आदर्शों को न छोड़े। इसलिए दृढ़ संकल्पवान बनो। इस जीवन में आत्मा का विकास ही वास्तविक विकास है।

८० के दशक में जब संगणक का विचार आया तो बहुत विरोध हुआ था। परंतु हम समय पर नहीं बदले होते, तो आज भारत इस क्षेत्र में वैश्विकरण नहीं बन पाता। हमने और देशों से पहले परिवर्तन की हवा को देख लिया। हम नहीं बदलेंगे तो संसार हमें बदल देगा। संसार के बदलने से भी यदि नहीं बदलेंगे, तो हम विनाश को प्राप्त हो जाएंगे। हमें अपनी सोच में सकारात्मक परिवर्तन लाना ही होगा।

इस मरणधर्मा जगत् में हर चीज क्षणस्थायी होती है? सुख भी और दु:ख भी? या कि परिवर्तन ही इस विश्व का शाश्वत नियम है? सुबह के साथ संध्या, दिन के साथ रात, पतझड़ के साथ वसंत, ये सब क्या यों ही हैं? नहीं, सभी एक ही सत्य का ढिंढोरा पीट-पीटकर प्रचार कर रहे हैं- चक्र की तरह चलायमान है यहाँ सबकुछ। तुमने प्रकाश भोगा है तो अन्धकार का भी सामना तुम्हें ही करना होगा, तुमने सुख लूटा है तो दु:ख भी दरवाजे पर ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, तुम हँसते हो तो रोना भी तुम्हें ही पड़ेगा और अन्तत: जन्म तुमने लिया तो मरोगे तुम ही या उसको उलटकर कहें तो मर रहे हो तुम तो एक नया जीवन भी तुम्हारे स्वागत को ही आतुर है।

यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है। सूरज नित्य पूरब में उगकर पश्चिम में डूबता है और फिर पूरब में ही उगता है। सृष्टि के आरंभ से ही यह व्यक्ति को यही सन्देश दे रहा है कि किसीको सदा के लिए नहीं मान लो- सम्पत्ति को भी, विपत्ति को भी, सुख को भी, दु:ख को भी, सौभाग्य को भी, दुर्भाग्य को भी। जो आ गया वह जानेवाला भी है और जो नहीं आया है वह प्रतीक्षा में है। पर कौन ले पाता है यह सन्देश? सुखी सुख में भूल जाता है तो दुखी दु:ख को शाश्वत समझ उसके दंश को और दारुण कर लेता है। कितना भोला, कितना अनभिज्ञ और कितना अनुभव-शून्य मनुष्य। अपना नहीं तो दूसरों के भी- युगों-युगों की पीढ़ियों के अनुभव से भी वह कुछ नहीं सीखता। सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर आज तक कितने जल-प्लावन हुए, कितने भूकम्प हुए, कितने समर और महासमर हुए, पर सृष्टि का पौधा ग्रीष्म में झुलसा तो बरसात में फिर दूने वेग से लहलहा आया। अगर यह सन्देश मनुष्य ग्रहण कर ले तो सुख-दु:खजनित द्वन्द्व से क्या सहज ही मुक्ति नहीं मिल जाय? पर कहाँ होता है यह? सुख सभी को असन्तुलित कर देता है, दु:ख सभी को अप्रिय है।

कभी-कभी ऐसी अघटित घटना घट जाती है जिसकी हम स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते, जिसके सम्बन्ध में पहिले कभी सोचा भी नहीं था, सहसा, देश, काल की परिस्थिति से ऐसा संयोग जुट जाता है कि अनहोनी बात हो जाती है। साधारण पुरुषों की बात तो पृथक् रही, बड़े-बड़े अवतारी पुरुषों के द्वारा ऐसे कार्य हो जाते हैं, जिनका होना लौकिक दृष्टि से शुभ नहीं माना जाता, किन्तु परिस्थिति विवश कर देती है। इन सब बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि भवितव्यता अत्यन्त ही बलवान है। उसका किसी प्रकार निवारण ही नहीं किया जा सकता।

परिवर्तन संसार का नियम है। जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वही तो जीवन है। एक क्षण में तुम करोड़ों के स्वामी बन जाते हो, दूसरे क्षण में तुम दरिद्र हो जाते हो। मेरा-तेरा, छोटा-बड़ा, अपना-पराया, मन से मिटा दो, विचार से हटा दो, फिर सब तुम्हारा है, तुम सबके हो।

सामनेवाले व्यक्ति में इच्छित परिवर्तन लाने में हमें सफलता न मिले यह बात तो फिर भी समझी जा सकती है, परन्तु तुम्हें यह मालूम है कि हमारे खुद के जीवन में भी हमें परिवर्तन लाने में सफलता नहीं मिलती।

हे मानव, जब फूलों ने कांटों से, सूरज ने बादलों से, दीपक ने आंधी से, सागर ने किनारा से, नौका ने तूफान से समझौता

करना सीख लिया है तो तुझे भी परिस्थिति से समझौता करना सीखना चाहिए।

आपने आज तक सिर्फ धन का वारिसदार बनाने की कला सिखाई परन्तु धरम का वारिसदार बनाने की कला न सोची, न सिखाई। आपने आज तक कई वेश बदले, मकान बदले, खाना बदला लेकिन जीवन बदलना-पलटना नहीं आया।

आग लगती है तो मोम को पिघलना होगा। रात बीतती है तो सूरज को निकलना होगा। केवल थोथी बातों से परिवर्तन नहीं होगा। परिवर्तन चाहिए तो खुद को बदलना होगा।

कांटों की बाड़ पर कोयल बैठकर, मीठा-मीठा गा सकती है। अमावस की रात में आकाश के अंदर, तारे टिमटिमा सकते हैं। वृक्ष पत्ते झड़ने पर भी पतझड़ के अंदर, अपना अस्तित्व टिका सकता है। उछलती लहरों के अंदर भी वाहनचालक, लहरों से टकराकर वाहन चला सकता है। मानव एक ऐसा समझदार प्राणी है जो प्रतिकूल परिस्थिति में भी प्रसन्न रह सकता है।

मृत्यु के पश्चात स्वर्ग में जाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि इस जीवन में ही आचरण के रंगमंच पर स्वर्ग को उतारना। यदि अगले जीवन में अपने मन के अनुकूल कुछ परिवर्तन चाहते हो तो पहले यहाँ इस जीवन में परिवर्तन करो।

बदलाव प्रकृति का नियम है। परिवर्तन सृजन का भी नियम है। बिना बदलाव के सृजन नामुमकिन है। दुनिया की सबसे स्थायी चीज अगर कोई है वह है परिवर्तन।

कोई भी बड़ा बदलाव समाज या देश में सिर्फ एक व्यक्ति को प्रभावित नहीं करता यानि सभी को परिवर्तन का सामना करना ही पडता है चाहे उसे पसन्द हो या नहीं। इससे डरना नहीं चाहिये।

बदले हालात के लिये दूसरों को दोष देने से कोई लाभ नहीं। बदलाव टल जायेगा और पुरानी स्थिति बरकरार हो जायेगी इस इन्तजार में सिर्फ मूर्ख ही बैठते है।

परिवर्तन को अस्वीकार कर देना समस्या का समाधान नहीं। इससे समस्यायें कम होने के बजाय बढ़ सकती है। हालात के साथ नहीं बदले तो नुकसान उठाना तय है। हालात असल में तब बिगडते है जब हम उनसे जुझने के लिए कुछ नहीं करते। डर हालात को और खराब कर देता है। निडर होकर आगे बढ़ना चाहिये और नई दिशा मे गमन करे।

परिवर्तन के लिये खुद को तैयार करने और जल्द से जल्द बदलने का सबसे अच्छा रास्ता है खुद की मूर्खता पर हंसना तभी हम अतीत को पीछे छोडकर तेजी से आगे बढ़ सकते है।

कोई भी बदलाव अन्तिम नहीं होता इसलिये अगले बदलाव के लिये खुद को तैयार रखे। हर शुरुआत का अन्त है और हर अन्त एक नई शुरुआत।

परिवर्तन को स्वीकार करने की अहम शर्त है स्थापित विश्वासों को बदलना। सोच बदल लेने से कई काम अपने आप बन जाते है।

जो लोग यह सोचते है कि कोई बदलाव भले के लिये है और वे नई मंजिल की तलाश में निकल पडते है तो इस दौरान छोटी-मोटी सफलताये न केवल उन्हे और आगे जाने के लिये प्रेरित करती है बल्कि उनके नकारात्मक नजरियों को साकारात्मक दृष्टिकोण में भी बदल देती है और ये सफलताये नई ऊर्जा और शक्ति प्रदान करती है।

सृष्टि चक्र का संबंध जीवनचक्र के साथ है। कुदरत के विविध चक्र है दिन और रात का चक्र, ऋतुओं का चक्र, जन्म-

पुनर्जन्म का चक्र, जल चक्र, काल चक्र। यह सारे चक्र कुदरत के अपने है इसे कोई मनुष्य ने नहीं बनाए है। दिन और रात के चक्र की चार अवस्थाएं है ऐसे ही ऋतु चक्र के या जन्म-पुनर्जन्म की चार अवस्था है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग यह सृष्टि चक्र के चार युगों की अवस्थायें है। इस चक्र में हर सेकण्ड कुछ नया घटित होता है। इसलिए परिवर्तन संसार का नियम है यह कहा गया। जो सेकण्ड बीता वह वापस नहीं आ सकता। इस संसार में कोई भी चीज स्थायी रूप में नही रह सकती। हर चीज के रंग, रूप, गुण में परिवर्तन होता रहता है। ऐसे ही आत्मा की अवस्था सदा एकरस नहीं रहती वह सतो, रजो, तमो में परिवर्तित होती है। हर एक चक्र ही अवधि होती है। दिन और रात के चक्र की अवधि २४ घंटे, साल के चक्र की अवधि ३६५ दिन, कालचक्र की अवधि ५००० वर्ष है।

मनुष्य के अंदर सभी प्रकार की शक्ति है, विज्ञान के आधार से सब कुछ हासिल कर रहा है पर इस कुदरत के चक्र का वह निर्माण नहीं कर सकता। ना वह दिन ला सकता है ना वह रात को निर्माण कर सकता है। मनुष्य को भी इन कुदरत के नियमानुसार चलना पड़ता है। मनुष्य को सारे संसार का ज्ञान हो गया है पर सृष्टि चक्र का ज्ञान देने के लिए स्वयं ईश्वर को ही इस धरती पर आकर बताना पड़ता है।

जीवन मे वो ही व्यक्ति सफल होता है जो दृढ़ निश्चयी हो। ऐसे लोग जीवन की कठिन परिस्थितियों के बीच भी मार्ग खोज लेते है। परिस्थितियां भी उन्हे अपना दास नहीं बना पाती।

परिस्थितियां कभी व्यक्तियों की सहायता नहीं करती। जिन लोगों ने विजय के लिये घोर संघर्ष किया, अपने मार्ग में आई बाधाओं से लडाई लडी वही सफलता के द्वार तक पहुंच पाये।

निराशावादी और कुछ प्रयास न करनेवाले ही लोग नास्तिक जैसी बातें करते है जबकि कर्मठ लोग अपने उद्देश्य के लिये परिस्थितियों को अनुकूल बनाते चलते है। वे परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न बाधाओं से विचलित नहीं होते। ईश्वर भी ऐसे ही लोगों की सहायता करता है।

जब कोई विचार अपना प्रभाव छोड़ता है तो परिवर्तन की लहर दौड़ जाती है। इसमें अच्छे बुरे का भेद समाप्त हो जाता है और समरस भावनाएँ प्रभावित होकर समाज को नयी दिशा देती है।

विषमता में जीवन का लावण्य है, समता से नीरसता आ जाती है

ईश्वर के बनाए इस संसार में हर तरफ विषमता ही विषमता है। इस स्थावर-जंगम में न तो सबके शरीर और रूप एक समान हैं, न बुद्धि, न बल। न ही स्वभाव और न ही गुणों में समानता है। अपने अपने स्वरूप, अपने अपने शरीर, अपने अपने स्वभाव, गुण तथा बुद्धि व बल के सामर्थ्य के अनुसार ही हर किसी का व्यवहार होता है। एक घर में यदि चार लोग रहते हैं तो चारों का ही व्यवहार एक-दूसरे से भिन्न होता है। हर किसी की अपनी सोच होती है। काम करने का तरीका भी अलग अलग होता है।

हम हमेशा दूसरों से अपेक्षा रखते हैं कि वह हमारी तरह ही काम करे। हम जैसा चाहते हैं, वह वैसा ही करे। दफ्तर में भी और घर में भी। यदि सब मनुष्य एक जैसा व्यवहार करने लगे, एक ही तरह से सोचने लगे, एक जैसी बातें करने लगे अर्थात कोई भिन्नता ही न हो, सब आपकी तरह ही बन जाए तो जीवन में कोई नवीनता ही नहीं रहेगी। ऐसा होने से जीवन बिल्कुल नीरस हो जाएगा न? ईश्वर ने सबको अलग बनाया है। इसी विभिन्नता में ही तो जीवन का लावण्य है। हमें यह

मानना होगा कि न हर शख्स हमारी पसंद का हो सकता है, न ही हर परिस्थिति हमारे मुताबिक हो सकती है। जो जैसा है, अगर आप उसे उसी तरह स्वीकार कर लें तो समझ जाइए कि आपने अपनी ज्यादातर दिक्कतों पर पार पा लिया।

कोई चीज जो किसी एक के लिए गलत है, वह दूसरे के लिए सही हो सकती है। मसलन मांसाहार किसी के लिए जीव हत्या हो सकता है, तो किसी के लिए प्राकृतिक तालमेल को बनाए रखने का तरीका। इस तरह सही-गलत के बजाय खुश रहने पर ध्यान देना जरूरी है। खुद खुश रहेंगे तो दूसरों की खुशी के बारे में भी सोच पाएंगे। जो काम आपके लिए गलत है, वह आपका अपना नजरिया है, दूसरे के नजरिए से वही काम सही हो सकता है।

ऐसे में किसी भी स्थिति में परेशान और बेचैन होने के बजाय स्वीकार करने के बाद आप उस परिस्थिति को जितना मुमकिन है, उससे निकलने की भी कोशिश कर पाएंगे। स्वीकार ही नहीं करेंगे तो बदलने के लिए भी कुछ नहीं कर पाएंगे। आप सिर्फ एक ही व्यक्ति से उम्मीद रख सकते हैं और वह व्यक्ति है, खुद आप। जो लोग हमारी उम्मीदों के अनुसार नहीं होते, वे हमें बेवकूफ दिखाई देते हैं। आप इस बात को मत भूलिए कि इसी कारण से आपको भी बेवकूफ के रूप में देखने वाले सौ लोग होंगे। अपनी खुशी या गम के लिए उन्हें जिम्मेदार न ठहराएं, क्योंकि असल में वे जवाबदेह नहीं हैं।

हृदय से निकली बात सभी को प्रसन्नता दिलानेवाली होती है। आदमी अपने आपको नहीं जानता, अपने आपको नहीं देखता, यह दुनिया में सबसे बड़ा आश्चर्य है। दूसरों को जाननेवाला आदमी अपने आपको नहीं जानता, दूसरों को देखने वाला स्वयं को नहीं देखता, क्या यह कम आश्चर्य है? प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि अपनी बुद्धि से साधु होना अच्छा, लेकिन पराई बुद्धि से राजा होना भी अच्छा नहीं है। हजारों मील की दूरी पर होनेवाली घटनाओं और परिवर्तनों को जाननेवाला आदमी अपने भीतर घटित होनेवाली घटनाओं और परिवर्तनों को जाननेवाला आदमी अपने भीतर घटित होनेवाली घटनाओं और परिवर्तनों को नहीं जानता, क्या यह कम आश्चर्य है? यदि बात तुम्हारे हृदय से उत्पन्न नहीं हुई है तो तुम दूसरों के हृदय को कदापि प्रसन्न नहीं कर सकते।

दुनिया में सबसे कठिन काम है, दिशा परिवर्तन। आदमी एक ही दिशा में चलते-चलते थक जाता है, ऊब जाता है। जबकि दिशा बदले बिना परिवर्तन घटित नहीं होता। वे विजयी हो सकते हैं, जिन्हें जीतने पर विश्वास है। जीवन की दिशा वे ही बदल सकते हैं जो बदलने की चाहत रखते हैं। जीवन की दिशा बदलती है अपने आपको जानने और देखने से। स्वयं से स्वयं के संवाद न होने के कारण ही बुराइयों का चक्र चलता रहता है। वह कभी नहीं रुकता। आदमी बुराई करता है, पाप का आचरण करता है। श्रीकृष्ण ने कहा है, आदमी को पाप में धकेलने वाले शत्रु हैं- काम और क्रोध। क्रोध ज्ञान पर पर्दा डालता है, ऐसी माया पैदा करता है कि आदमी समझ ही नहीं पाता कि वह पाप कर रहा है। तब वह जानता हुआ भी नहीं जानता, देखता हुआ भी नहीं देखता। उसमें बुरे और भले का विवेक ही समाप्त हो जाता है और वह न करने योग्य कार्य भी कर लेता है। पड़ोसी अपनी आंखों से देखता नहीं, तो भी चिल्लाता है। हर बात दूसरों पर आरोपित करना बुराई से छुटकारा पाने का सरल उपाय है।

जब तक अंतर्दृष्टि नहीं जागती, भीतर में देखने की मनोवृत्ति नहीं जागती, जब हम अपने आपको जानने का प्रयोग करते हैं, तब तक हृदय की आवाज हमारे लिए अच्छी कसौटी साबित होती है। इस आवाज को सुनने से हमारी दिशा बदल

जाती है। दिशा बदलना साधना के पथ पर प्रगति की पहली शर्त है। इसीलिए ईंट-पत्थर के सब मंदिरों के ऊपर हृदय का मंदिर है। जब तक दिशा नहीं बदलती, चाहे नाम बदल जाए, रूप बदल जाए, कुछ भी बदल जाए, किन्तु व्यक्ति नहीं बदलता, दृष्टि नहीं बदलती।

हमारी सोचने की प्रक्रिया कई चीजों से प्रभावित होती है। परिस्थितियों में हम खुद को जैसा ढालते हैं, सोचने की हमारी आदत पर वैसा ही असर पड़ता है। आमतौर पर अधिकांश लोग तंगी व तनाव में हाथ-पैर, विचार-भावना सब छोड़ देते हैं। खुद को परिस्थिति के हवाले कर देते हैं। इसके बाद हम जो कुछ भी सोचते हैं, उसमें हमारे दिमाग और दिल का अनुभव नहीं होता। हम बाह्य जगत के भाव विचार से अपनी जिंदगी के काम और लक्ष्य तय करने लगते हैं।

इस प्रकार के जीवन में मौलिकता नहीं रहती। स्वभाव अगर नवीनता, सकारात्मकता का है और आवरण भेड़चाल व नकारात्मकता का ओढ़ लिया जाए तो मानवता का पतन तय है। समस्या यही है कि आज ज्यादातर लोग सोच-विचार व भाव-अभाव की स्वभावगत क्रिया-प्रतिक्रिया से अवज्ञ हैं। अच्छी बातों, ऊंचे विचारों और सकारात्मक मनोभावों का समावेश व्यक्ति में तभी हो पाता है जब वह स्वयं को अनावश्यक व बुरे सामाजिक चाल-चलन से दूर रखे। जिस प्रकार जीवन में भोजन, पानी, शारीरिक व्यायाम आदि दिनचर्याओं का नियमन होता है, उसी प्रकार सकारात्मक विचार भी, व्यक्तित्व की उन्नति के लिए किया जानेवाला एक निरंतर अभ्यास अवश्य होना चाहिए।

निस्संदेह हमारा वर्तमान सामाजिक जीवन अनेक नकारात्मक चुनौतियों से भरा हुआ है। इनसे पार पाने के लिए अच्छाइयां ही स्वीकार करना पड़ता है। जीवन में हम परस्पर कल्याण की भावना से संचालित हों अथवा हमारा जीवन विध्वंसक होड़ व हवस से पीड़ित हो, दोनों परिस्थितियों में मार्ग का निर्णय हमारे ही हाथ में होगा। परिस्थितियां कैसी भी हों, हमें उत्थान की राह ही चुननी होगी। कहते भी हैं कि परिस्थितियों का दास नहीं बनना चाहिए, बल्कि उन्हें अपने अनुकूल ढालना चाहिए।

यह तो तय है कि परिस्थितियां आधुनिक काल में ज्यादातर प्रतिकूल ही रहेनवाली हैं। आवश्यकता उन्हें आत्मविश्वास के सहारे मानवता के अनुकूल बनाने की है। ज्ञान की वास्तविक परीक्षा तभी होती है जब मानव कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य से उन पर विजय प्राप्त करे। शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, धर्म-अध्यात्म तथा व्यक्तित्व विकास का सही अर्थ यही है कि व्यक्ति अपने जीवन का सदुपयोग सार्वजनिक सभ्यता, शुचिता बढ़ाने के लिए करे। यदि हमारा आत्मचिंतन इस दिशा में निर्धारित होगा तो निश्चित रूप से हम मनुष्य जीवन की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा धार्मिक मत-विभिन्नताओं से उभरने वाली परिस्थितियों पर नियंत्रण पा सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को यह विचार अवश्य करना चाहिए कि उसका जन्म प्रतिकूल परिस्थितियों का दासत्व स्वीकार करने के लिए नहीं, अपितु परिस्थितियों को मानवता के श्रेष्ठ मानकों के अनुकूल ढालने के लिए ही हुआ है।

पीड़ा से बचने का उपाय है दूसरों को उससे बचाने का संकल्प

समय के साथ-साथ परिस्थितियों का बदलना स्वाभाविक है। बदली हुई परिस्थितियों से तादात्म्य स्थापित कर लेनेवाले आगे निकल जाते हैं और ऐसा न कर पानेवाले निराशा के गहरे भंवर में फंस जाते हैं। घोर निराशा में डालनेवाली ऐसी परिस्थितियों पर विचार करें तो साफ हो जाता है कि किसी आत्मीय की मृत्यु इनमें सबसे भयावह होती है। इस दुनिया में

जो भी आया है उसे एक न एक दिन अवश्य ही जाना है। लेकिन अपनों की कम आयु में अकाल मृत्यु हमें झकझोर देती है। क्या ऐसी भयंकर पीड़ा और उससे उत्पन्न निराशा से बचना संभव है?

पिछले दिनों एक समाचार पढ़ा कि एक व्यक्ति के पुत्र की मृत्यु सड़क पर एक गड्ढे में गिरने से हो गई। इसके बाद उस व्यक्ति ने सड़कों पर बने गड्ढे भरना ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। उन्हें जब अपने साथ हुई इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना जैसी अन्य दुर्घटनाओं की खबरें सुनने को मिलती तो वह बेचैन हो जाते। उन्हीं क्षणों में उन्होंने एक दिन फैसला लिया कि आगे से सड़कों पर बने गड्ढों के कारण किसी को नहीं मरने देंगे। उन्होंने अपने बेटे को श्रद्धांजलि के रूप में गड्ढे भरने का काम स्वयं करना शुरू कर दिया। अब वह हफ्ते के ५ दिन सब्जी बेचने का काम करते हैं और शेष दो दिन सड़कों के गड्ढे भरते हैं। इस काम से उनके मन में यह संतुष्टि रहती है कि अब किसी और को उनकी तरह अपने परिवार का सदस्य नहीं खोना पड़ेगा। जब जीवन में किसी भी कारण से कुछ संतुष्टि मिलती है तो अंदर के घाव भी भरने लगते हैं।

ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जहां लोगों ने अपने प्रियजनों की किसी भयंकर बीमारी से मृत्यु हो जाने के बाद उस बीमारी से जूझ रहे बाकी लोगों को बचाने के मिशन में अपना पूरा जीवन और शक्ति लगा दी। बहुत से लोगों ने अपने प्रियजनों की असमय मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में चैरिटेबल अस्पताल खुलवाए हैं। वास्तव में इससे उन्हें अपने प्रियजन से बिछोह की पीड़ा से उत्पन्न निराशा को कम करने में सहायता मिलती है। समाज सेवा के साथ-साथ उनका अपना उपचार होना भी प्रारंभ हो जाता है। वास्तव में हमारा ध्यान जहां लगा होता है हम वही होते हैं। दुख पर ध्यान लगे रहने का अर्थ है दुखी होना और रचनात्मकता में ध्यान लगाने का मतलब है नई उम्मीदों से जुड़ना। जैसे ही हम अपना पूरा ध्यान किसी रचनात्मक अथवा लोकोपयोगी कार्य में लगा देते हैं हम निराशा के घेरे से बाहर निकलने लगते हैं। इससे हमें जीवन में आगे बढ़ने का एक मकसद मिल जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो बदली परिस्थितियों को स्वीकार करने की प्रक्रिया अपने आप शुरू हो जाती है। साथ ही परिस्थितियों को अपने हिसाब से प्रभावित करने यानी अन्य संभावित पीड़ितों को उस पीड़ा से बचाने का संकल्प भी असर दिखाने लगता है।

परिवर्तन संसार का नियम है। हम सब समय के साथ परिवर्तित होने का दंभ भरते हैं और आर्थिक रूप से संपन्न भी हो जाते हैं। परंतु वास्तव में क्या यही परिवर्तन है? नहीं। घर में या जीवनशैली में या खानपान में परिवर्तन तो अस्थाई है। यदि कुछ महत्वपूर्ण है तो वह है सोच का परिवर्तन। समय के साथ-साथ अपनी सोच को भी बदल लेना चाहिए।

गीता में कहा गया है कि जिस प्रकार केवल वस्त्र बदल लेना स्नान नहीं माना जाता, उसी प्रकार दिखावे का परिवर्तन समाज को शुद्ध नहीं करता। शुद्धि के लिए आवश्यक है मन का परिवर्तन। क्योंकि जो गतिमान है, वही मनुष्य है। जो स्थिर हो गया, वह पाषाण है। और जो समय के साथ अपनी सोच न बदले, वह श्मशान है। शास्त्रों में बिलकुल सही कहा गया है कि खुद सुधरोगे, जग सुधरेगा।

वर्तमान समय मनुष्यता के इतिहास का एक संक्रमण काल है। लोग दिमागी तौर पर काफी विकसित हो गए हैं। हर एक चीज को स्याह-सफेद के तराजू में तौल कर देखते हैं। तर्कशक्ति का भी विकास हो रहा है तो कुतर्कशक्ति भी चरमसीमा पर है। अपने आपको सर्वश्रेष्ठ साबित करने की होड़ सी लगी हुई है। दिन प्रतिदिन लोग विकसित की नई ऊंचाई प्राप्त कर रहे हैं और इतिहास के इस कालखंड के मानव को सबसे विकसित मानव की संज्ञा दे रहे हैं।

हम जब सिक्के के दूसरे पहलू को देखते हैं तो स्थिति कुछ और ही बयान करती है। तेजी से समाज में विघटन हो रहा है। आलोचनाओं का बाजार भी गरम है। स्वार्थी और विघटनकारी तत्वों का बोलबाला हो रहा है। प्रेम, सौहार्द्र और उत्तरदायित्व की भावना का ऱ्हास हो रहा है। महापुरुषों के बताए हुए रास्तों को तोड़-मरोड़ कर लोग अपने स्वार्थ के अनुसार अपना अलग-अलग रास्ता बना रहे हैं। अनुसरण करने लायक नेता, समाजसेवी या महापुरुषों की संख्या काफी कम हो चुकी है। या जो हैं भी, लोग उन पर विश्वास करने में हिचकिचाते हैं। हम सभी का एक ही हाल है। भौतिकवादी संस्कृति अध्यात्म पर हावी है।

समाज का विकास तो हो रहा है, पर साथ साथ नैतिकता विलुप्त होती जा रही है। हम सत्य बोलने से इतना अधिक डरते हैं, जैसे एक छोटा बच्चा घने अंधेरे में जाने से डरता है। हमें समझना चाहिए कि सच बोलने से डरनेवाला मन ईश्वर से दूर होता चला जाता है।

हर घड़ी, हर पल बदल रहा है। यह तो सृष्टि का चक्र है कि जीवन हमेशा एक-सा नहीं रहता। परंतु इसके साथ ताल-मेल रखने के लिए हमें समय के साथ निरंतर बदलाव लाना है। हमारी सोच और हमारे संकल्प से ही सृष्टि बनती है, न कि सृष्टि से संकल्प। अत: संकल्प की शुभता ही श्रेयस्कर है। सोच अच्छी, तो सृष्टि अच्छी।

एक बार अपने आत्म स्वरूप में आ जाएं तो फिर वही बने रहें

आज का इंसान रोज नई से नई समस्याओं का सामना करने पर मजबूर है। छोटे मुद्दों को लेकर जानलेवा हमले, अपशब्द, लूटखसोट और शारीरिक उत्पीड़न जैसी अपसंस्कृति भी अपनी जड़ें जमाए जा रही है। इसी कारण जीवन और सोच में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हो रही है।

इसका मुख्य कारण है कि हम सब एक डिजायनर पीस हैं। हमारा हर चीज को देखने, सोचने का नजरिया अलग होता है। ऐसे में जब हम एक दूसरे को अपने हिसाब से ढालने, बदलने की कोशिश करते हैं तो आपस में टकराव होना स्वाभाविक है। यह तभी संभव है जब हम दुनिया को अपने हिसाब से बदलने के बजाय अपने विचारों को सकारात्मक दिशा दें। ऋतु बदलती है तो नव सृजन होता है। हम भी अगर खुद में परिवर्तन लाएं तो बहुत कुछ नया कर सकते हैं। लेकिन परिवर्तन ऐसा नहीं, जैसा पानी में होता है। पानी को फ्रिज में रख दो तो बर्फ बन जाता है। जहां फ्रिज से संपर्क टूटा तो फिर अपने पुराने स्वरूप में आकर पानी बन जाता है। उसे गर्म करो तो भाप का आकार ले लेता है। भाप हवा से संपर्क होते ही कुछ समय बाद फिर से पानी बन जाती है।

ठीक इसी पानी की तरह हम भी अपने आपको बहुत जल्दी बदल लेते हैं। जब कभी हम श्मशान में होते हैं, हमारा मन वैरागी हो जाता है। किसी धर्म-स्थान में अपने को परमात्मा में ढाल लेते हैं। लेकिन जैसे ही बाहर आते हैं, हम तुरंत सांसारिक हो जाते हैं। जैसे पानी का रूप परिवर्तन खुद का नहीं, फ्रिज, आग और वायु के संसर्ग से आया परिवर्तन है, जेसे ही श्मशान या धर्म स्थान में हम जो क्षणिक परिवर्तन अनुभव करते हैं, वह हमारा परिवर्तन अपने आप नहीं होता। वह हममें वातावरण के प्रभाव से आता है।

हमें वह परिवर्तन लाना है जो दूध में होता है। दूध में थोड़ा सा भी जामन डालने पर दही बन जाता है। उसे उबाल कर मथो तो मक्खन बन जाता है। मक्खन को पिघलाओ तो घी बन जाता है। इतने रूप धरने के बाद उसे किसी भी प्रक्रिया

से गुजारो, लेकिन वह कभी फिर दूध नहीं बनेगा। यह है स्थायी बदलाव। हमें अपने में ऐसा ही परिवर्तन करना चाहिए। हम अगर एक बार अपने आत्मस्वरूप में आ जाएं तो चाहे जैसी भी परिस्थिति हो, किसी भी कसौटी पर परखे जाएं, कुछ भी बदले पर हम अपने संस्कार में कोई बदलाव न लाएं। अपनी मर्यादा और सीमा रेखा को न लांघें। नकली जीवन की अंधी लालसा के मोहपाश में न फंसे।

एक छोटे से बीज से फूटा पौधा हो या नवजात शिशु, हमारे मन को खुशी से भर देता है। दरअसल ये नवजीवन के प्रतीक होते हैं। हर दिन बढ़ते जाते हैं। समय के साथ स्थिति बदलती रहती है, पौधे के हरे-भरे पत्ते पीले पड़ने लगते हैं। फिर पीले पत्तों की जगह नये लहलहाते पत्ते ले लेते हैं। उसी तरह दु:ख-दर्द, सुख और खुशी के बीच बच्चा बढ़ता जाता है। यह परिवर्तन हमें सुखद आश्चर्य और खुशी से भरता है। लेकिन कुछ बदलाव ऐसे भी होते हैं जो हमें बिल्कुल अच्छे नहीं लगते। जैसे यौवन से बुढ़ापे की ओर बढ़ना या कोई बीमारी हो जाना। शक्ति या संपत्ति का घटना। ये सब हमें मानसिक कष्ट देते हैं। हम बदलाव भी अपने मन के अनुसार चाहते हैं। बल्कि कह सकते हैं कि केवल अपनी बढ़ोत्तरी के लिए चाहते हैं। यह सहज संभव नहीं है। जीवन में स्थितियों का मिला-जुला रूप मिलता है। केवल अनुकूल स्थितियों की इच्छा दुख का कारण होती है।

बदलाव जीवन का अनिवार्य अंग है। जैसे रात का अंधेरा दिन की उजास के आगे हार जाता है, वैसे ही यह चक्र निरंतर चलता रहता है। सुख के लिए इसे स्वीकार करना जरूरी होता है। हम एक तरह के जीवन के आदी होकर उसी में बंधे रह जाते हैं। हमें वही सही लगने लगता है, उसमें परिवर्तन हमें पसंद नहीं। लेकिन वह सिवाय परेशानी के और कुछ नहीं देता। जो स्थिति हमारे सामने हो, उसके साथ समझौता कर लेने में ही जीना आसान बना रहता है। जीवन में आनेवलाी विपरीत परिस्थिति हमारे मन में नकारात्मक भाव भर देती है। उससे बाहर निकल पाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

बदलाव तो हर पल आना ही है। कुछ स्थितियां सुखद तो कुछ दुखद होंगी ही। ऐसे में हर स्थिति को स्वीकार कर आगे बढ़ने की कोशिश करते रहना ही जीवन का सही रास्ता बन सकता है।

आपके प्रेम को, आपके आनंद को और आपके जीवन को सब तरह से नष्ट करने के काम में संलग्न रहे हैं और ईश्वर के बारे में, स्वर्ग-नरक के बारे में, पुनर्जन्म और न जाने कैसी-कैसी व्यर्थ बातों के विषय में वे आपके मस्तिष्क में मनमोहक भ्रम और भ्रांत धारणाओं का कूड़ा-करकट भरते रहे हैं। मूल बात है प्रवाह, परिवर्तन, गति... क्योंकि यही जीवन का स्वभाव है। यह जीवन केवल एक स्थायी चीज को जानता है और वह है, सतत परिवर्तन। परिवर्तन ही कभी परिवर्तित नहीं होता, अन्यथा हर चीज बदल जाती है। कभी पतझड़ आ जाता है और वृक्ष नंगे हो जाते हैं। नीले आकाश में बांहें फैला, नग्न खड़े वृक्षों का एक अपना ही सौंदर्य है। उनके हृदय में एक गहन आशा और आस्था अवश्य होती होगी क्योंकि वे जानते हैं कि जब पुरानी पत्तियां झड़ती हैं तो नई आती ही होंगी। जिस क्षण आप अपने अस्तित्व के ठीक केंद्र पर पहुंच जाते हो, उस क्षण सौंदर्य का, आनंद का, शांति का और आलोक का विस्फोट होता है। आप एक सर्वथा भिन्न व्यक्ति होने लगते हो।

बहुत खूबसूरत है जिंदगी, सिर्फ उसे समझने की जरूरत है

जीवन को लेकर हमेशा तरह-तरह के सवाल खड़े किए जाते हैं, जिनमें ज्यादातर निराशा से जुड़े होते हैं। ऐसे कम ही लोग हैं जो खुशी या सकारात्मक भाव का इजहार करते हैं। जीवन के प्रति जो यह उदासीनता है, वह अंतत: आदमी को

पहले दुविधा-अनिश्चितता की ओर धकेलती है और फिर पराजय को नियति मानने के लिए बाध्य कर देती है।

राजा जनक के दरबार में राम शिव-धनुष को प्रत्यंचा पर चढ़ा रहे है। उपस्थित जनसमूह राम को उस समय अपने अपने ढंग से देखता है। कोई उन्हें धीर-वीर युवा के रूप में देखता है तो कोई उनका मजाक उड़ाता है। धनुष तोड़ने में विफल हुए राजा-महाराजा ईर्ष्या-भाव से देख रहे होते हैं, लेकिन सीता उम्मीदों से भरी हुई हैं। उनके सामने राम एक खूबसूरत भविष्य की तरह दिखाई देते हैं। तुलसीदास के शब्दों में कहें तो जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी। इसी को भगवान महावीर सम्यक-दर्शन कहते हैं। यानी सही दृष्टि हो तो ज्ञान भी सही होगा।

हर पल लोग खुद को देखने की बजाय दुनिया को देखने और उस पर दोष मढ़ने की कोशिश में रहते हैं। उन्हें समझाना कठिन होता है कि जगत जैसा है, वैसा ही रहेगा। उसमें कोई फर्क नहीं आनेवाला हे। जगत को जानने के पहले हमें यह जानना चाहिए कि कैसी है हमारी दृष्टि? यही स्थिति जीवन की है। यह जिंदगी वैसे तो बहुत ही खूबसूरत है, पर इसको जरा ठीक से समझने की जरूरत है। अगर नहीं समझे तो है यह शैतान का मंदिर, समझ गये तो यही बस भगवान की मूरत है। यह हम पर है कि हम इसको किसका मंदिर बनाते हैं। हमारे भीतर राम भी है और रावण भी, कृष्ण भी है और कंस भी, महावीर है तो गोशालक भी, जीसस और जुड़ास भी। किसको जगाना है, यह हमारी दृष्टि पर निर्भर है।

हमारी स्थिति यह है कि हम पड़ोसी, समाज, सरकार और व्यवस्था को बदलना चाहते हैं, अपने को नहीं। जबकि यह भी साफ है कि हमारे चाहने या कोसने से समाज या व्यवस्था बदलने वाली नहीं है। अगर हम सचमुच चाहते हैं कि औरों में बदलाव आए तो उसका सीधा-सा उपाय है कि औरों को बदलने के लिए खुद को बदलना सीखें, शंकर बनना हो तो विष-घूंट निगलना सीखें, उजाले की परिभाषा न मिलेगी किताबों में तुम्हें, उसे पाने के लिए खुद दीपक बन जलना सीखें। उसके बाद सब कुछ अपने आप बदलने लगेगा। तब हर चीज का संदर्भ और अर्थ बदल जाएगा। सवाल हमारे फैसले का है कि हम भगवान को जगाना चाहते हैं कि शैतान को? जिंदगी को खूबसूरत देखना चाहते हैं या गमजदा?

अनेक समस्याएं और बहुत सी कठिनाइयां हमारे लिये आये दिन त्रास और संकट भरी परिस्थितियां उत्पन्न कर देती हैं। जो कठिनाइयों से जूझ सकता है और प्रगति की दिशा में बढ़ चलने के साधन जुटा सकता है, उसी को प्रतिभावान कहते हैं। औचित्य कहां है, क्योंकि इसकी विवेचना बुद्धि इनमें नहीं के बराबर होती हैं। ऐसे लोग साधनों के लिए, मार्गदर्शन के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं। उनके उत्थान-पतन का निमित्त कारण दूसरे ही बने रहते हैं। एक वर्ग वह है, जो समझदार होते हुए भी संकीर्ण स्वार्थपरता से घिरा रहता है। योग्यता और तत्परता जैसी विशेषताएं होते हुए भी वे उन्हें मात्र लोभ, मोह, अहंकार की पूर्ति के लिए ही नियोजित किये रहते हैं एक तरफ व्यापक अवांछनीयताओं से जूझने और उन्हें परास्त करने का दबाव है, तो वहीं दूसरी तरफ नवयुग की सृजन व्यवस्था को कार्यान्वित करने की समर्थता का दबाव है। निजी और छोटे क्षेत्र में भी यह दोनों कार्य अति कठिन जान पड़ते हैं। प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए तदनुरूप योग्यता एवं कर्मनिष्ठा उत्पन्न करनी पड़ती है। इनके बिना सामान्य स्थिति में रहते हुए किसी प्रकार दिन काटते ही बन पड़ता है। एक और वर्ग प्रतिभाशालियों का है। वे भौतिक क्षेत्र में कार्यरत हैं, तो अनेक व्यवस्थाएं बनाते हैं। आड़े समय में उच्च स्तरीय प्रतिभाओं की ही आवश्यकता होती है।

वर्तमान समय में एक ओर महाविनाश का तूफान अपनी प्रचंडता का परिचय दे रहा है, तो वहीं दूसरी ओर सतयुगी नवनिर्माण की उमंगे भी उछाले मार रही है। विनाश और विकास एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी हैं, तो भी उनके एक ही समय में अपनी-अपनी दिशा में चलना संभव है।

जीवन सतत् गतिशील है, स्थिर रहना स्वाभाविक नहीं है। गति में ही जीवन है। परिवर्तन गति से ही होता है। हमें अपने विचारों और आचरण में आत्मीयता को विस्तार देना होगा। भाईचारा, प्रेम-व्यवहार जीवन को सरस करता है। जीवन में अनुकूल और प्रतिकूल दोनो ही परिस्थितियाँ आती है, हमें इनका दृढ़तापूर्वक निर्वहन करना है, क्योकि परिस्थितियाँ तो आकर चली जानी है और हमें इसी समाज में रहना है। अत: हम संबंधो में कटुता क्यो लाएँ। मानव हृदय प्रेम के लिए है, कटुता के लिए नहीं। स्वाभाविक रूप से मानव हृदय दु:ख में द्रवित और सुख में संतोष का अनुभव करता है। यही स्वभाव यदि हम दूसरों के लिए भी बनाये रखे तो निश्चित रूप से दूसरों का सहयोग और सहानुभूति हमे अवश्य मिलेगी, जो हमारी शाश्वत पूँजी होगी। सिद्धान्त की बात है कि कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। पात्रता अर्जित करने के लिए कुछ त्यागना पड़ता है। दूसरे के हृदय में स्थान पाना है तो अपने ही समान उसे साथ व्यवहार करना होगा। स्वस्थ सामाजिक ढाँचा तभी बरकरार रह सकता है जब हम दूसरों के सुख-दु:ख को अपना समझें। वास्तविक रूप में हम तभी सुखी रह सकते है जब पड़ोसी भी सुखी रहे। यह मानव प्रकृति है कि हम अन्य व्यक्ति को कष्ट में देखकर स्वयं कष्ट का अनुभव करते है।

कटुता मधुरता में आखिर बदल जाती है। दरअसल दृष्टि बदली तो घटनाओं का संदर्भ बदल गया। उसके साथ ही अर्थ बदल गया। अर्थ बदला कि पूरा वातावरण बदल गया। पूरा जीवन और जगत बदल गया। अगर हम बदलें तो सब कुछ अपने आप बदल जाएगा। हमारे बदलते ही हर चीज का संदर्भ परिवर्तित हो जाएगा। लेकिन हमारी स्थिति यह है कि हम पड़ोसी को, समाज को, सरकार को बदलना चाहते हैं, खुद को बदलना नहीं चाहते। समाज और सरकार को कोई अकेले नहीं बदल सकता जबकि खुद को अकेले बदलना संभव है। जो हमारे बस में है, उसी पर कोई मेहनत नहीं करता। मैं अपने एक मुक्तक में हमेशा कहता हूं- औरों को बदलने के लिए खुद को बदलना सीखें, शंकर बनना हो अगर विष-घूंट निगलना सीखें, उजाले की परिभाषा न मिलेगी किताबों में उसे पाने के लिए खुद दीपक बन जलना सीखें।

हमें समझना चाहिए कि किस रास्ते पर चलें या फिर परमहंस जी जैसा कोई मिले जो उंगली पकड़कर बता सके कि कौनसी दृष्टि कहां ले जाती है? यह जिंदगी शैतान का मंदिर भी हो सकती है और भगवान का भी। जब अंदर का शैतान जागता है तो रावण, कंस, जुडास, गौशालक उठ खड़ा होता है। भगवान जागता है तो राम, कृष्ण, जीसस, महावीर अपनी दिव्यता के साथ हमारी ऊंगली थाम लेते हैं। जगाना किसे है यह हमारी दृष्टि पर निर्भर है। हमारी दृष्टि सही हो, इसी से ज्ञान भी सही हो सकेगा।

दूध में बहुत सारा पानी भी होता है, पर दिखाई नहीं देता है। जब दूध दही बन जाता है तो पानी साफ दिखाई देता है। उस दूध को दही बनाने के लिए उसमें थोड़ा जावन डालना पड़ता है। एक गति दूध की है तो दूसरी गति दही की है। अगर दही को बिलोया जाए तो मक्खन निकलेगा। अगर मक्खन को गरम किया जाए तो घी बन जाएगा। अगर घी बन जाएगा तो

उसमें बहुत सारे पकवान बना सकते हैं

उसी प्रकार मनुष्य इस संसार के अंदर दूध के समान है। उसमें बहुत सारी संभावनाएं हैं। हर एक मनुष्य के अंदर जानने और समझने की गुंजाइश है, परंतु उसमें जो पानी मिला हुआ है, उसको निकालने के लिए कुछ न कुछ करना पड़ता है। जब मनुष्य सत्संग रूपी मटके में दही के रूप में जमता है तो उसका पानी अलग हो जाता है। जब गुरु ज्ञान रूपी मथनी से उसे बिलोते हैं तो सारी चीजों को छोड़कर मक्खन ऊपर आ जाता है। जब वह सत्संग और साधना की गर्मी में पकता है, तब वह घी बनता है।

जैसे दूध घी के रूप में परिवर्तित होकर शुद्ध हो जाता है, वैसे ही मनुष्य शुद्ध बनता है। यह गुरु की क्षमता है कि वह मनुष्यरूपी दूध को घी बना सकते हैं। उनके पास सत्संग रूपी मटका है, उसमें तुम जम सकते हो। जब दही के रूप में जम जाओगे तो वे ज्ञान रूपी मथनी से बिलोना शुरू करेंगे। जब बिलोना शुरू करेंगे, तब मक्खन ऊपर आ जाएगा। उनकी कृपा और सत्संग रूपी गर्मी से, जब यह जीवन रूपी मक्खन घी बन जाएगा, उसके बाद आनंद की कोई सीमा नहीं रहेगी। अगर आपके जीवन में खालीपन है तो इसका मतलब यह है कि आपने भगवान से कभी ठीक चीज की याचना नहीं की। आप भगवान से क्या मांगते हैं? भगवान से आप आंतरिक सुख और शांति नहीं मांगते हैं, बल्कि सांसारिक चीजें मांगते हैं।

प्रेम की नजर से दुनिया देखें तो हर संकट का समाधान मिलेगा। एक सुखी संपन्न सज्जन मिलने आए। लेकिन उनके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। आते ही बिफर पड़े, ऐसा मुश्किल समय मैं अपने जीवन में पहली बार देख रहा हूं। एक डर समा गया है कि भविष्य क्या होगा? इसलिए आपके पास आया हूं। कोई रास्ता बताइए। मैंने जब उनसे जानना चाहा कि यह मुश्किल समय सिर्फ आपके हिस्से ही है या और भी किसी के सामने है? उन्होंने जो जवाब दिया, वह चौंकनेवाला था। कहा, सबके सामने है, लेकिन मुझे बाकी किसी से क्या मतलब?

इस तरह के विचार सिर्फ उनके ही नहीं हैं। हर आदमी अकेले-अकेले उसी तरह की सोच के साथ चल रहा है। वह बस रटता रहता है कि उसके जैसा दुखी कोई और नहीं और उसका साथ देनेवाला भी कोई नहीं है। मतलब, उसे खुशी चाहिए तो सिर्फ अपने लिए। यही मानसिकता है जो हमें सामूहिकता से काटती है और बेहतर आदमी बनने से रोकती है। इसका असर पूरे समाज पर होता है। अगर सबकी समस्या एक तरह की है तो अलग-अलग समाधान क्यों चाहिए? साथ मिलकर उसका निराकरण तो किया ही जा सकता है।

यह मुश्किल समय हमेशा से रहा है। हर पल इसे कोसा जाता है। रामायण काल हो या महाभारत का, उस समय बड़े युद्ध हुए। राम को भी संकट से गुजरना पड़ा। कृष्ण को भी कुरुक्षेत्र के मैदान में उतरना पड़ा। उस समय को किसी रूप में याद किया जाना चाहिए? राम और कृष्ण कहीं रोने के बजाय उस परिस्थिति को बदलने के लिए सामने आ गए। बुद्ध, महावीर और गांधी भी समाज को स्वस्थ करने, उसकी आंखें खोलने तथा मनुष्यता पर छाए संकटों का निराकरण करने के लिए निकल पड़े। अपने साथ लोगों को जोड़ा और समझाने का प्रयास किया कि कोई भी बदलाव पहले खुद से ही शुरू करना पड़ता है। जिस दिन आपको समाज का दुख अपना लगने लगेगा, उसी दिन से आपके अंदर एक मनुष्य का जन्म होने लगेगा। तब आप अपने लिए नहीं, सबके लिए जीना शुरू कर देंगे। तब दूसरों का सुख भी ईर्ष्याग्रस्त नहीं करेगा। इसे आजमाना चाहिए।

सच्चिदानंद स्वरूप गुरु को लोगों के हृदय परिवर्तन के लिए ज्यादा उपदेश नहीं देने पड़ते। उसकी उपस्थिति मात्र से व्यक्तित्व का रूपांतरण हो जाता है। उसकी छोटी सी प्रेरणा हृदय परिवर्तन करने में सक्षम होती है। गौतम बुद्ध को पाटलिपुत्र की नगरवधू आम्रपाली व मगध साम्राज्य में आतंक का पर्याय बन चुके अंगुलिमाल राक्षस का हृदय परिवर्तन करने में ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ी, दोनों के लिए ज्यादा उपदेशपरक शिक्षाएं खर्च नहीं करनी पड़ीं।

आम्रपाली का आतिथ्य स्वीकार करने के उपरांत जब तथागत भोजन ग्रहण करने आम्रपाली के द्वार पर पहुंचे तो उनके आभामंडल के प्रभाव से वह अपना विलासितापूर्ण महल त्याग कर बौद्ध भिक्षुणी बन गई। अंगुलिमाल से गौतम बुद्ध ने कहा, पेड़ की शाखा से तोड़े गए दस पत्तों को तुम यथास्थिति में वापस नहीं जोड़ सकते, फिर भी अपने आपको ताकतवर समझते हो। निर्दोष लोगों की हत्याएं करके अपने आप को बलशाली मानते हो। इतना सुनते ही अंगुलिमाल के हाथ से तलवार छूटकर जमीन पर गिर पड़ी। यही वह अद्भुत क्षण था जब अंगुलिमाल के हृदय का रूपांतरण हुआ। आध्यात्मिक मार्ग हो या सांसारिक जीवन सद्गुरू की कृपा से प्रगति सुनिश्चित है।

खुदा का शुक्र है कि हमारे साथ सिर्फ जुल्म हो रहा है। ईश्वर ने हमारे हाथों को दूसरे के साथ जुल्म न होने देने के लिए बनाया है। यह एक साधारण परिवार की महिला के बोल हैं, जो उस समय की ब्रिटिश हुकूमत के जुल्म में भी मुस्कुरा रही थी। जंजीरें पैरों को जकड़े थीं और दिमाग आजाद था। इन शब्दों को जीवन में उतारना जल्दबाज लोगों के लिए मुमकिन नहीं है।

जब हमारे साथ जुल्म होता है, हमारे कपड़े फाड़े जाते हैं, हमारे सिर काटे जाते हैं, हमारे बच्चों को मारा जाता है, तब भी क्या हम ऐसे विचार पर टिक सकते हैं? यकीनन टिक सकते हैं, क्योंकि हमारा दिमाग इस तरह बना हुआ है कि हर तकलीफ में भी वह ताजगी लाकर दर्द में डूबे विचारों को हौसला देता है।

जब लक्ष्मण मूर्छित थे और राम मायूस, तब एक जड़ी-बूटी ने दोनों भाइयों के शरीर में इतनी ऊर्जा भरी कि दुश्मन भरभरा कर बिखर गया। यह जड़ी-बूटी आत्मविश्वास की थी, जो कभी जामवंत ने हनुमान में अंकुरित की थी। यह याद रखना इसलिए जरूरी है, क्योंकि जब आप दिल से कुछ बदलने चलते हैं तो आपको कमजोर नहीं होना होता है। यह हृदय और मस्तिष्क सबसे पहले भी हारता है और सबसे अंत में भी हारता है। जिनका पहले हारता है, वह मिट जाते हैं। मगर जिसका सबसे अंत तक जूझता है, समाज उसके सामने सर झुकाकर उसे अपना नायक मान लेता है।

जब आप किसी से भी जूझिए तो सबसे पहले अपने दिल को अनैतिक होने से बचाइए। खुद को गुनाह से रोकिए। लोग आपको गालियां देंगे, मगर वे गालियां दिल से निकाल दीजिए। बुरी बातों को अपने दिमाग से साफ कर दीजिए। आपके साथ जो भी बुरा हुआ है उसे भूल जाइए, ताकि नए तरीके से आप बेहतर विचार प्रसारित कर सकें। अगर ईसा अपने साथ हुए जुल्म के ही किस्से सुनाते तो कभी नए विचार न दे पाते। बुद्ध अगर सिर्फ दर्द की बात करते तो जमीन पर खूबसूरत दर्शन न फैलता। मोहम्मद साहब सिर्फ अपने साथ हुए जुल्म की दास्तानें कहते तो जमीन पर रौनक ना आती।

हर एक ने अपने दर्द को भुलाकर, सबको माफ करके लोगों के दिल में अपनी जगह बनाई है। यह बहुत आसान भी नहीं और बेहद मुश्किल भी नहीं। मुश्किल इसलिए नहीं क्योंकि ऊपर जिसका जिक्र एक बेहद साधारण पारिवारिक औरत ने किया, उन्होंने उसे जीकर दिखाया। वह निशातुन्निसा थीं, हसरत मोहानी की पत्नी। उनकी मानवता, त्याग, समर्पण और

प्रेम की चाशनी में ब्रिटिश साम्राज्य डूब गया। बिना अंग्रेजों की तरह जुल्म किए वह जीत गई। हम भी हर कठिन वक्त पर अपने आत्मविश्वास के साथ बिना कोई बुराई ग्रहण किए अगर बढ़ेंगे तो हमारे विचार भी अंकुरित होकर ऐसे पौधे बनेंगे, जो आनेवाली नस्लों के लिए बीज और फल देंगे।

हर आदमी बदलना चाहता है। बदलने की आधी-अधूरी इच्छा सार्थक परिणाम नहीं लाती। असल में मन घिस-घिस कर पुराना पड़ जाता है, पूर्वाग्रह व स्वार्थ से जड़ बन जाता है और बुराइयों से टूट-टूट कर जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। ऐसे बूढ़े मन को भी यौवन दिया जा सकता है, उसे भी संकल्प द्वारा बदला जा सकता है। रॉबर्ट ब्राउनिंग ने इसलिए कहा है- जो स्थिति आपके दिमाग की है, वही आपकी खोज की है। आप जिस चीज की इच्छा करेंगे, वह पा लेंगे। लेकिन उसे पाने के लिए आपकी मानसिक तैयारी जरूरी है।

यदि दिशा परिवर्तन नहीं होता तो कितने ही संकल्प लिए जाएं, कितनी ही साधना की जाए, आदमी वैसा का वैसा बना रहता है। दृष्टि बदलनी चाहिए, चिंतन और विचार बदलना चाहिए। जीवन का कार्यक्रम और आचार-संहिता बदलनी चाहिए। बुराई से अच्छाई की ओर प्रस्थान का अर्थ है- बदलने की प्रक्रिया, दिशा और स्वभाव का परिवर्तन। यह बदलाव नहीं होता, चाहे मंदिर की सीढ़ियां चढ़ लें, ध्यान कर लें, तपस्या कर लें- बदलाव का बिंदु पकड़ में नहीं आएगा। जिस पल कोई व्यक्ति खुद को पूरी तरह समर्पित कर देता है, ईश्वर भी साथ चलता है।

दूसरों की बनाई राह पर चलना बहुत आसान होता है। हमें यह पता होता है कि उन्होंने किन अवरोधों और कठिनाइयों का सामना किया। लेकिन यह हमें परिपूर्णता की अनुभूति नहीं कराता। इसीलिए हमें हमेशा नई अनजान राहों पर चलने और उन कामों को करने से परहेज नहीं करना चाहिए जिन्हें कोई भी करने के लिए तैयार नहीं होता।

हम सफल व्यक्तियों को अनुकरणीय उदाहरण मानकर उनकी ओर देखते हैं। हम अपने पिता-माता, भाई-बहन, दोस्त, बॉस, शिक्षक और प्रसिद्ध लेखक, कलाकार, नेता, व्यापारी आदि से किसी-न-किसी रूप में प्रभावित होते हैं, उनके जैसा बनना चाहते हैं। दूसरों से सीखना जीवन में उन्नति करने का सबसे अच्छा उपाय है। लेकिन इसमें एक समस्या है- हम वे सभी व्यक्ति नहीं है। उनका जीवन और उनकी सफलता उनकी अपनी है। वह हमारा जीवन नहीं हो सकता। ऐसे में एक ही चीज बचती है, वह यह कि हम अपनी राह स्वयं बनाएं।

जीने के तीन आयाम हैं- अतीत, भविष्य, वर्तमान। अतीतजीवी बनकर हम क्यों के चंगुल में फंसकर दु:ख को न्यौता देते हैं। भविष्य में जीना मन:स्थिति को संभावनाओं के बारे में चिंताग्रस्त रख डर-डर कर जीना है। सुखद जीवन का एक ही वास्तविक आयाम बचता है- वर्तमान। तो फिर वर्तमान में क्यों नहीं जीते? अतीत और भविष्य के चंगुल से निकालकर वर्तमान में जीवन जीने की प्रेरणा देनेवाला विचार यह है कि जीवन हमेशा आगे बढ़ता है। इसीलिए उन बातों पर समय नष्ट नहीं करना चाहिए जिन पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं है। अरस्तू ने कहा है- हम वही बन जाते हैं जो हम करते रहते हैं। उत्कृष्टता कोई कर्म नहीं बल्कि स्वभाव ही है। अपनी भावनाओं को हाशिए पर रखकर थोड़ा व्यावहारिक होकर सोचें। जीवन में परिस्थितियों के वश में घटनेवाली घटनाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाने का कोई औचित्य नहीं है। हम हर परिस्थिति में केवल आगे ही बढ़ सकते हैं।

जीवन बहुत ही कभी-कभार चीज है। हमारा जन्म किसी और घर में, इस देश में ही क्यों हुआ? हम किसी दूसरे स्कूल में क्यों नहीं पढ़ सके? हममें से किसी के पास इन प्रश्नों के कोई उत्तर नहीं हैं। यह सब संयोग की बात है। यह सोचने के बजाय कि ऐसा होता तो अच्छा होता, वैसा होता तो अच्छा होता, हम अपने जीवन की परिस्थितियों को स्वीकार कर लें।

अचानक घटित हो जानेवाली बातों पर झुंझलाना नहीं। खुशियां स्वीकृति में ही पनप सकती हैं। घर से निकलते ही यदि बारिश होने लगे तो हमें परेशान नहीं होना है। हम ऐसा बनें कि छाता हाथ में होने पर भीग जाएं तो अपना मूड़ ऑफ नहीं होने दें। किसी मोड़ पर जब जीवन हमसे कुछ करने के लिए कोई निर्णय लेने की अपेक्षा करे तो कर्म करें। जीवन से मुंह न मोड़ें। किसी और को अपने जीवन के फैसले न लेने दें।

मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं, परिस्थितियाँ मनुष्य की दास है। परिस्थितियों का बनना और बिगड़ना विचारों पर निर्भर करता है। परिस्थितियाँ वैचारिक खेल है और हमारे द्वारा निर्मित व्यवस्था रूप है, जिसका हम सामना करते हैं। प्राय: समाज के अधिकांश व्यक्ति इस बात को समझ नहीं पाते हैं और बिना सोचे-समझे छोटी-छोटी परिस्थितियों में आकुल और व्याकुल हो जाते हैं, किन्तु ज्ञानी-गुरु-भगवंत तो बार-बार यही फरमाते हैं-

तू जो चाहे धरती को अम्बर से जोड़ दे, तू जो चाहे पर्वत-पहाड़ों को फोड़ दे।
मिला, तुझको वरदान, मेरी मुट्ठियों में बंद तूफान है रे,
मनुष्य तू बड़ा महान है, भूल मत, मनुष्य तू बड़ा महान है।

अत: अपनी प्रतिभा, योग्यता और बल-बुद्धि-सामर्थ्य को गौण करते हुए अपने आप को भाग्य के भरोसे छोड़ देना समझदारी है। सच्चा साधक वही है, जो दु:खों में से भी सुखों को खोज निकाले, बुराइयों में से भी अच्छाई को बाहर लेकर आ जाएं, अर्थात हम समय के आने और भाग्य के जागने व किसी निमित्त के मिलने की प्रतीक्षा में बैठने की बजाय सतत परिश्रम और पुरुषार्थ करते रहे तो सहज ही स्वयं के हाथों से स्वयं का भाग्य निर्माण किया जा सकता है। हमारी साधना-आराधना, धर्म-ध्यान, त्याग-तप एवं व्रत-प्रत्याखान सब कुछ हम पर ही निर्भर करते हैं। हम इसके बारे में जिस तरह का मनोबल और विचार बनाते हैं, उसी तरह की परिस्थितियां हमारे लिए निर्माण हो जाती है। हमारा सदैव यही चिन्तन होना चाहिऐ कि मैं सब कुछ कर सकता हूं, मेरी आत्मा में अनंत शक्ति है। मैं किसी का गुलाम नहीं। मैं किसी के अधीन नहीं हूँ। वस्तुत: यह विचार है दृढ़ता का, जागृति का और लक्ष्य सिद्धि हेतु संघर्ष का। ज्ञानी गुरु भगवंत तो यही फरमाते हैं कि-

लहरों से डरकर नौका पार नहीं होती, हिम्मत करनेवालों की, कभी हार नहीं होती।

अर्थात् हमारा जीवन व्यवहार, व्यक्तित्व व साधना-उपासना की स्थितियों-परिस्थितियों सभी का निर्माण हमारे स्वयं के हाथों में है। हमें सदा यही चिन्तन करना है कि मैं परिस्थितियों का दास नहीं, परिस्थितियां मेरी दास है। जब इस उत्कृष्ट श्रेणी का चिन्तन हमारा बनने लगेगा तो हम सहज ही कर्मों की निर्जरा करते हुए सच्चे सुख-शांति को प्राप्त कर पाएंगे, जिसकी तलाश में हम दर-बदर भटक रहे हैं।

चाहे सुख हो या दु:ख, हर परिस्थिति विचारों से हैं, कर्मों का बंधन और क्षय; घटते-बढ़ते विचारों से हैं।

हम स्वयं है सब परिस्थितियों के निर्माता, स्वयं कर्मों के कर्ता और स्वयं ही कर्मों के भोगता।

समझे हम स्वभाव दशा को, विभाव दशा को त्यागें, सब परिस्थितियां मन से है बनती, निज जीवन को सुधारें।

अमृत-विष

सुनते हैं अमृत स्वर्ग में हैं, उसका पान स्वर्गीय लोग ही करते हैं। फिर भी पृथ्वी पर कुछ वस्तुओं को अमृत कहा जाता है। दूध, दही, घृत, शर्करा, और मधु इन पांचों को पञ्चामृत कहते हैं। गंगाजल तो श्रीहरि का चरणामृत प्रसिद्ध ही है। कान्ता के अधरामृत की बात भी काव्यों में पढ़ी है उसे अनुभवी ही जानें। जाड़े के दिन में अग्नि को भी अमृत कहा है। सुनते हैं शरद पूर्णिमा के दिन की चन्द्रमा से अमृत झरता है, खीर को चाँदनी में रख दो तो उसमें अमृत उतर आता है। ये सब सत्य ही होंगे, किन्तु प्रिय दर्शन रूप जो अमृत है, वह तो रोम-रोम में जीवन का संचार कर देता है अपने प्रेमी के प्रेमियों से भी मिलने में बड़ा सुख होता है।

प्रेम के रस से तैयार किया भोजन अमृत बनकर मन को ऊर्जा देता है

जैसा अन्न-वैसा मन, जैसा मन-वैसा विचार और जैसा विचार-वैसा कर्म। हमारे सारे क्रिया व्यापार का आधार अन्न या भोजन ही है। गीता में सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार के भोजन की चर्चा है। प्रेम, मैत्री, प्रसन्नता, शक्ति उत्पन्न करनेवाला भोजन सात्विक है। ईर्ष्या-द्वेष, मद, तृष्णा बढ़ानेवाला राजसिक तामसिक कहा गया है। आज सभी जान गए हैं कि शाकाहारी की अपेक्षा मांसाहारी व्यक्ति को रोग जल्दी पकड़ते हैं। कटता हुआ पशु जिस भय, बेबसी और बदले की भावना का अनुभव करता है, उसका मांस खानेवाले तक यह भाव पहुंचते ही हैं।

अन्न को ब्रह्म कहा गया है। इसका निरादर देवता का अपमान है। इसलिए अन्न को भोजन के रूप में तैयार करने की प्रक्रिया भी पूजा-अर्चना से कम नहीं है। अन्न के खेतों से थाली तक पहुंचने की यात्रा में कई पड़ाव हैं। कमाने, पकाने, परोसने और खानेवाले व्यक्तियों की मानसिकता अन्न के पोषक तत्वों को प्रभावित करती है। रसोई बनानेवाला इस प्रसंग का सूत्रधार है। खाना बनाते समय उसकी मानसिकता क्या है, खानेवाले के प्रति उसकी भावनाएं अच्छी हैं या नहीं इन सबका प्रभाव भोजन पर होता है। अगर उसे भोजन बनाने का काम मुसीबत नजर आता है, अगर उसे भरपेट भोजन नहीं मिलता है तो निश्चित रूप से भोजन में नकारात्मक तरंगें पैदा होंगी। अच्छे से अच्छा व्यंजन भी अपाच्य बन जाएगा। घर में नौकर रखने का रिवाज या जरूरत आजकल बढ़ गई है। घर भर के सदस्य जो कुछ खाते हैं, वही भोजन सेवकों तक भी पहुंचना चाहिए। यदि दुर्भाव होता है, तो सात्विक होते हुए भी वह भोजन मन को अशांत और रोगी बना देगा। हम अपनी दादी-नानी को याद करें तो पहले रोटी बनाते समय सिर पर दुपट्टा या पल्लू रखी छवि सामने आ जाती है। प्रेम के रस से बनाया और परोसा भोजन अमृत बनकर मन को ऊर्जा देता है। भोजन करते समय हमारे साथ यदि सज्जन और हितैषी हैं, तो मन उल्लास से भर उठता है। कौर मुंह में हो और आंखें दूरदर्शन पर मारधाड़ वाले दृश्यों पर टिकी हों तो पेट में वात, कफ, पित्त और मन में हिंसा की भावनाएं पनपती हैं। अन्न और मन के इस रिश्ते को स्वस्थ रखने के लिए एक और कसौटी है- अन्न धर्मार्जित धन से प्राप्त किया जाए। दुष्ट का अन्न ग्रहण करने से दुष्टता आएगी। कृष्ण ने दुर्योधन का राजसी भोजन छोड़कर विदुर के यहां साग-रोटी खाई थी। गुरु नानक ने धनी सेठ का निमंत्रण ठुकराकर भाई लालो के हाथ की बनी कोदरा की सूखी मिस्सी रोटी खाई। अमीर की रोटी में गरीब का खून था और गरीब की रोटी में दूध। वह उसकी मेहनत की कमाई से बनी थी। इस प्रकार धर्म से अर्जित अन्न अंत में ईश्वर को अर्पित करके ग्रहण करने से प्रसाद बन जाता है।

द्वन्द्व-निर्द्वन्द्व

संसार में सभी वस्तुओं में द्वन्द्व है। जीवन मरण, हानि, लाभ, यश, अपयश, जय, पराजय, सुख, दु:ख, अच्छा, बुरा, मीठा, कड़वा, अनुकूल, प्रतिकूल इन द्वन्द्वों का ही नाम संसार है। जो इन द्वन्द्वों से रहित होकर ऊपर उठ गया, वही निर्द्वन्द्व है, वह संसारी नहीं संसार का स्वामी है, वह जीव नहीं ब्रह्म है, वह जगत् का प्राणी नहीं जगतपति है। परिवर्तन सदा द्वन्द्व में ही सम्भव है। निर्द्वन्द्व तो सदा निर्विकार निर्लेप और अपरिवर्तनशील रहता है।

बिना निर्द्वन्द्व हुए, सुख नहीं, सच्ची शान्ति नहीं, संस्कृति का अन्त नहीं और संसार का सर्वदा नाश नहीं हो सकता। दिन के पश्चात् जैसे रात्रि का होना अवश्यम्भावी है, जैस जन्म लेने वाले प्राणियों का मरण निश्चित है, उसी प्रकार धर्म के पश्चात् अधर्म का प्रचार होना सनातन नियम है। सत्ययुग के पश्चात् त्रेता, त्रेता के बाद द्वापर और द्वापर के पश्चात् कलियुग का आना अपरिहार्य है। उसे कोई प्रयत्न करके हटा नहीं सकता, टाल नहीं सकता, अन्यथा नहीं कर सकता। प्रवाह को सर्वथा कोई नहीं रोक सकता। आप यन्त्रों के द्वारा थोड़ी दूर तक रोक ले जायँगे, जहाँ उन प्रयत्नों में शिथिलता हुई, वहाँ फिर प्रवाह नीचे की ही ओर अपनी स्वाभाविक गति से बहने लगेगा।

संसार में कभी प्रिय घटनायें सम्मुख आती हैं कभी अप्रिय। द्वन्द से ही संसार चल रहा है, दो पंखों से पक्षी आकाश में उड़ सकता है, दो पहियों से ही रथ चलता है द्वैत में ही सृष्टि है, जो इस अद्वैत में सदा एक अद्वैत को देखता है, वह प्रिय में, अप्रिय में, सुख-दु:ख में, मान में, अपमान में, लाभ में, हानि में, जय में, पराजय में तथा सभी अनुकूल प्रतिकूल घटना में समभाव से अवस्थित रहता है। लोक व्यवहार में वह सुखी दु:खी-सा प्रतीत होता है, किन्तु वह सदा सर्वदा एक अखंड आनन्द में निमग्न रहता है।

द्वन्द का ही नाम जगत् है, निर्द्वन्द ही ब्रह्मा का स्वरूप है। द्वन्द नहीं, जगत् नहीं, उत्पत्ति नहीं, सृष्टि नहीं, संसार नहीं। संयोग के साथ वियोग लगा है, सुख के साथ दु:ख, जीवन के साथ मरण, पाप के साथ पुण्य, धर्म के साथ अधर्म- इसी प्रकार सब में द्वन्द्व लगा है। जो इस द्वन्द्व के रहस्य को समझते हैं, वे की दु:खी नहीं होते, वे अमर हो जाते हैं। जो द्वन्द्व को सत्य समझकर उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं वे इस संसार में ही घूमते रहते हैं, जन्म-मरण के चक्कर से छूटते नहीं।

जो यथा लाभ से सन्तुष्ट रहता है, जो सुख-दु:ख द्वन्दों से मुक्त हो गया है और जो द्वेष रहित हो गया है, जो सफलता-असफलता में तटस्थ है, वही कर्म करते हुये भी बन्धन में नहीं पडता।

सुखके साथ दु:ख, जन्मके साथ मृत्यु, संयोगके साथ वियोग, प्रकाशके साथ छायाके समान लगे हैं। इन द्वन्द्वोंमें एकको पकड़ते ही दूसरेको भोगना अनिवार्य हो जाता है। यही जगत का नियम है। जगन्नियन्ता भी जब जगत में आते हैं, इस नियम की मर्यादा मानकर ही वे भी चलते हैं।

विज्ञान ने अनेक साधन उपलब्ध किये है, पर वह इतना असमर्थ है कि उसने द्वन्दों से उपर उठने के लिये किसी यन्त्र का आविष्कार नहीं किया है। द्वन्दों से ऊपर तो स्वयं अपने आप ही उठना पडेगा।

चुनौती, प्रतिस्पर्धा

सब क्षेत्रों में स्पर्धा से ही वृद्धि और सृष्टि है। धनवान, धनवान से, विद्वान, विद्वान से, विद्यार्थी से, स्पर्धा करके ही बढ़ते हैं। स्पर्धा से कलह की भी वृद्धि होती है, उन्नति भी होती है और दु:ख की वृद्धि भी होती है। जहाँ स्पर्धा नहीं वहाँ अशान्ति नहीं, सृष्टि नहीं, व्यापार नहीं, कलह नहीं, क्षय नहीं, नाश नहीं, उन्नति नहीं, अवनति नहीं। वहाँ तो परिपूर्ण निर्विकार, निरंजन, निर्लेप ब्रह्म-ही-ब्रह्म है। पृथ्वी में ही नहीं ब्रह्मलोक तक यह स्पर्धा फैली हुई है। स्पर्धा से ही सृष्टि चक्र चल रहा है। स्पर्धा होती है बहुतों में। जो अकेला है, वह किससे स्पर्धा करेगा। अद्वैत में स्पर्धा की सम्भावना ही नहीं। अकेला पुरुषशक्ति के बिना सृष्टि नहीं कर सकता।

मुकाबला यानी जो काम आप कर रहे हैं उसमें आपकी रुचि नहीं। बहुत से मां-बाप को लगता है कि बिना प्रतिस्पर्धा की भावना के बच्चों में आगे बढ़ने की प्रेरणा ज्यादा देर तक कायम नहीं रखी जा सकती। मुकाबले का मतलब है कि आप जो कुछ भी कर रहे हैं, उसमें आपकी रुचि नहीं है। यानी आप जो कर रहे हैं, आपको उसकी परवाह नहीं हैं। मतलब इस बात से है कि आप किसी तरह दूसरों से एक कदम आगे रहें। अगर जीवन के प्रति यही रवैया रहा, तो इंसान जरूरी काम कभी नहीं कर पाएगा।

अपरिपक्व दिमाग ही कुछ करने के लिए किसी की फटकार या बाहरी दबाव का इंतजार करता है। हम अपने बच्चों को एक ऐसी परवरिश दें कि वे आगे चलकर जो भी करें, इसलिए करें कि उन्हें उसे करने में कुछ अर्थ नजर आए। इसलिए नहीं कि कोई दूसरा भी ऐसा कर रहा है और वे बस उससे बेहतर करना चाहते हैं।

हम समझदार इंसान पैदा करना चाहते हैं जो जीवन को सावधानी से परखें और ऐसे काम करें जो दूसरों के लिए भी उत्तम हों। कोई इंसान कुछ बन पाता है, तो वह सिर्फ इसलिए नहीं कि वह वैसा बनना चाहता था बल्कि इसलिए क्योंकि उसने अपने अंदर ऐसी काबिलियत पैदा की है। किसी काम को अच्छी तरह से करने के लिए उसमें जरूरी क्षमता और स्पष्टता जरूरी है।

इंसान कभी प्रतिस्पर्धा की वजह से काम को बेहतर नहीं करता। सीमित समय में बहुत ज्यादा काम कर डालने के लिए भी मुकाबले की जरूरत पड़ती है, लेकिन कुछ सीमित क्षेत्रों में ही। अगर मुकाबले की मानसिकता आपको रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बन जाती है, तो आप एक बीमार मानसिकता वाले इंसान बन जाएंगे।

यह तो तय है कि जैसे ही आप मुकाबले में शामिल होते हैं, अपनी काबिलियत को दूसरे लोगों के स्तर तक नीचे गिरा लेते हैं। ऐसा करके आप मानवता की बुनियादी भावना खो देते हैं और इससे आपके जीवन के दूसरे पहलू भी पूरी तरह से ढक जाते हैं। आपका मकसद दूसरों से बेहतर होना ही है, तो इसी में आपका सारा जीवन स्वाहा हो जाएगा। मुकाबले में आप जीतते हैं, तो आप एक दयनीय इंसान होंगे और अगर हारते हैं तब स्वाभाविक रूप से आपकी हालत दयनीय होगी। जीतनेवाले को एक पल की खुशी मिलती है। लेकिन अगले ही पल वह इस बात से डरने लगता है कि कल मुझसे बेहतर कोई आकर मेरी जगह ले सकता है। इसलिए बच्चों को सबसे आगे निकलने

को प्रेरित करने के बजाय, यह सीख दें कि वे जो भी करें उसमें अपना उत्तम दें।

चुनौती का भाव हमें एक दूसरे से होड़ के लिए उकसाता है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में चीन के महामनीषी लाओत्से ने एक बार अपने देश के सभी पहलवानों को मल्ल-युद्ध के लिए चुनौती दे डाली। लोग इस बात पर हंसते, लेकिन उनकी मेधा के प्रति नतमस्तक भी थे वे जानते थे कि इस चुनौती में कोई न कोई रहस्य अवश्य होगा। आखिर में उन्होंने लाओत्से से पूछ ही लिया कि शरीर से इतने दुर्बल हैं आप कि राह चलता कोई भी व्यक्ति आपको नीचे गिरा दे, फिर नामी-गिरामी पहलवानों को चुनौती क्यों दे दी? लाओत्से ने हंसते हुए कहा कि उनको कोई अवसर देगा, तभी तो वे मुझे चित्त करेंगे। मैं पहले ही चित्त लेट जाऊंगा। फिर मुझे कौन पछाड़ेगा।

लाओत्से के इस संकेत को समझा जाना चाहिए। जहां चुनौती है, वहीं जय और पराजय का भाव है। यह भाव ही हमें एक-दूसरे को पटकने, धकेलने और पीछे छोड़ने के लिए उकसाता है। यानी प्रतिद्वंदिता को जन्म देता है और यहीं से दुश्मनी शुरू होती है। जहां चुनौती ही समाप्त है, वहां कैसी होड़ और मुकाबला? वहां हर कदम के साथ स्वयं मंजिल जुड़ी है। आज अगर हम खुद को देख पाने से बचते हैं तो अपने आस-पास और देश-दुनिया को देखें तो समझ में आ जाएगा कि एक दूसरे को गिरा कर आगे बढ़ने की कोशिश या रणनीति किस हाल में पहुंच गई है। किसी गिरते को उठाने की चिंता लुप्त जैसी हो गयी है। हम दर्शक के रूप में भी जब खेल के मैदान में होते हैं तो खेल का आनंद लेने की बजाय पक्षकार हो जाते हैं। किसी के लिए जमकर तालियां बजाते हैं और किसी को हारते हुए देखना चाहते हैं। अनेक ऐसी घटनाएं सामने हैं जब मैदान खेल से ज्यादा युद्ध का हो गया है।

खुशी और आनंद की परिभाषा ही हमने बदल डाली है। दूसरों की सफलता हमें खुश करने से ज्यादा डराने लगी है। हमारे दिमाग में आ गया है कि वह आगे जा रहा है, हम पीछे छूट रहे हैं।

यहीं महावीर कहते हैं कि तुम अपनी जीत की चिंता छोड़ो। चिंतन यह करो कि कोई तुमसे पिछड़ तो नहीं रहा है। यह साथ चलने की अवधारणा है जिसके पीछे पारस्परिक सहयोग और प्रेम का भाव है। प्रेम-भीना हर पग मंजिल से ज्यादा आनंद देनेवाला होता है। इसलिए कहा गया है, परस्परोग्रहो जीवानाम- जीव का लक्षण है परस्पर उपग्रह, परस्पर प्रेमपूर्ण सहयोग। जीवन का ही नहीं, जीवन का भी यही लक्षण है।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं, तुम देवताओं का पोषण करो और देव तुम्हारा पोषण करें। परस्पर एक दूसरे का पोषण करते हुए तुम परम श्रेयश को प्राप्त करो। हमारे शास्त्र कहते रहे हैं कि सभी सुखी हों, सभी निरामय हों। सभी का कल्याण हो। किसी को दुख न मिले। यानी हम भी फलें-फूलें और दूसरे भी हमारी तरह से रहें। जियो और जीने दो।

स्पर्धी होना हमारे लिए सामान्य सी बात है। हम किसी भी क्षेत्र में काम करते रहे हों, स्पर्धा को साथ लिए चलते हैं। ज्यादातर लोग इसे अनिवार्य सा मानते हैं और यह तर्क देते हैं कि इसके बगैर आप अपनी गुणवत्ता में निखार नहीं ला सकते। आखिर हमें स्पर्धा होने की क्या जरूरत? अगर कोई बेहतरीन काम कर रहा है, तो उससे स्पर्धा की बजाय हमें उसे अपना दोस्त बना लेना चाहिए। उसके पास रहने के रास्ते तलाशने चाहिए क्योंकि ऐसे में हम उसके गुणों को बेहतर तरीके से पा सकते हैं।

और उसे अपने गुण के साथ मिलाकर खुद को बेहतर विकसित कर सकते हैं। दुनिया इतनी विशाल है कि हमारे और सामने वाले, दोनों के विकसित होने के लिए पर्याप्त संभावनाएं व जगह मौजूद हैं। एक और एक मिलकर ग्यारह होने की जो बात कही जाती है, यह कुछ वैसा ही है। आप एक हैं और सामने वाला एक है, तो उससे स्पर्धा करके आप ज्यादा से दो या तीन हो पाएंगे, ग्यारह नहीं। स्पर्धी होना आपको एकाकी बनाता है और आप संकुचित होते हैं, विस्तार नहीं पाते। रचनात्मक क्षेत्रों में इसलिए स्पर्धा को ज्यादा तरजीह नहीं दी जाती।

आदमी बना ही इसलिए है कि आसपास वसे ग्रहण करे और उसका गठजोड़ कर देसी चीज की रचना करे, जिसे पहले किसी ने देखा न हो। उसे दूसरों से बस इतना मतलब होना चाहिए कि उसमें नया क्या है और उससे हम क्या नया रच सकते हैं? वह कहते थे कि स्पर्धा हमें कमजोर करती है और कुछ नहीं। यह उसके जैसे होने को भी हमें प्रेरित करती है, जिसका कोई मतलब नहीं।

नया अवसर देती हैं चुनौतियां - संकट की घड़ी में अगर व्यक्ति हौसला न छोड़े तो वह मौत क्या जीवन के हर रास्ते पर सफल हो सकता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिए साहस व हौसला जरूरी है। जब हम हौसला छोड़ देते हैं तो जीतने व सफल होने की उम्मीद भी छोड़ देते हैं। जीतने के लिए, सफल होने के लिए हौसला जरूरी है। अगर हमारे हौसले बुलंद हैं, मन से हम सकारात्मक सोच रहे हैं तो बड़ी से बड़ी चुनौतियों से निपट कर सफलता की पगडंडी पर चल सकते हैं। इसलिए हौसला रखो।

सकारात्मक दृष्टिकोण- जीवन में मिलनेवाली चुनौतियों को लेकर सकारात्मक दृष्टिकोण रखिए। अगर हमारा नजरिया सकारात्मक है तो चुनौती को अवसर बनने में समय नहीं लगेगा। जब भी, जहां से भी चुनौतियां मिल रही हैं, उन्हें स्वीकार कीजिए। चुनौतियां हमें आगे बढ़ने का रास्ता दिखाती हैं। उत्साह भरती हैं। चुनौतियों से मत घबराइए। उन्हें एक नया अवसर समझिए। नई नई चुनौतियां हमे हर बार कुछ नया सिखाती है।

साहस व हौसला- जब हम मन से मान लेते हैं कि हार गए हैं, असफल हो रहे हैं तो निश्चित रूप से असफल होते हैं। जब हम हौसले के साथ मन से सोच लेते हैं कि हमें साहस के साथ मिलनेवाली हर चुनौती का मुकाबला करना है तो हम हर हाल में सफल होते हैं। सफलता व असफलता दोनों ही मन की स्थितियां हैं। साहस करेंगे तो सफलता जरूर मिलेगी। भवितव्य में भी धैर्य, कड़ी मेहनत के साथ हर चुनौती का मुकाबला कर सफल हो सकते हैं बशर्ते साहस व हौसले को बनाए रखें।

चुनौतियां स्वीकार करनेवाले ही अवसर पाते हैं - हममें से अधिकतर लोग यह चाहते हैं कि हम अपने लक्ष्यों को आसानी से पूरा कर पाएं। हमें किसी कार्य को करने के लिए आसान और कठिन के दो विकल्प दिए जाएं तो हम आसान तरीके को ही चुनना चाहेंगे। आसान तरीकों से कार्यसिद्धि हमें तात्कालिक संतुष्टि तो देती है, पर हम आसान रास्तों के आदी होकर बड़ी चुनौतियों के लिए भी उन्हीं तरीकों को आजमाना चाहते हैं और जब इन तरीकों से हमें सफलता नहीं मिलती तो अक्सर हम छोटी और गैर-महत्वपूर्ण बातों में ही संतुष्टि खोजना शुरू कर देते हैं।

जीवन की ये खूबसूरती है कि ये हर परिस्थिति में हमें चुनाव की स्वतंत्रता देता है। जीवन में आगे बढ़ते जाना हमारी

नियति है, पर चुनाव हमें करना है कि हम अपनी शर्तों पर आगे बढ़ें या परिस्थितियों के गुलाम बनकर बिना पतवार की नाव की तरह दिशाहीन होकर बहें। परिस्थितियों को चुनना हमारे वश में नहीं, पर कौन सा कदम हमें उठाना है, यह निर्णय हमारे ही हाथ में है।

मानव अपनी बुद्धि से अपने कार्यों का इस तरह से चुनाव करता है कि जिस परिणाम की कल्पना उसने की है वह संभव हो पाए और इसी हेतु से वह कर्म करता है। कई बार ऐसे कर्मों को करने के लिए हमें विवश होना पड़ता है, जिनको करने का औचित्य हम नहीं समझ पाते। इसलिए हम इसे विवशता का नाम दे देते हैं और इस नकारात्मक मनोदशा के कारण विवशता में किए गए कार्यों का ना तो संपादन उचित तरीके से करते हैं ना ही उनके सकारात्मक परिणामों की कल्पना ही कर पाते हैं।

स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि यह विश्व एक व्यायामशाला है जहां हम खुद को मजबूत बनाने के लिए आते हैं। संसार में रहकर यदि हम केवल इच्छित कार्य ही करना चाहें तो हम पाएंगे कि कार्यों को करने के लिए जो सामर्थ्य अपेक्षित है, उसे हमने अभी तक अर्जित ही नहीं किया है। इसके लिए सबसे पहले जरूरत है बल की। चुनौतियां हमारे बल को परखती भी हैं और हमें लगातार मजबूती के लिए प्रयास करते रहने की प्रेरणा भी देती हैं। विवेकानंद कहते हैं, बल ही जीवन हैं और दुर्बलता मृत्यु। चुनौतियों का सामना भी तभी किया जा सकता है जब हम जीवन के लिए उनकी सार्थकता को स्वीकारें। शांतिकाल में भी सेनाएं युद्धाभ्यास करती हैं, चाहे भविष्य में युद्ध की कोई संभावना नजर न आती हो। उसी प्रकार यदि एक पूर्ण रूप से स्वस्थ व्यक्ति भी नियमित रूप से कसरत करता है, तभी आपात स्थिति में उसकी प्रतिरोध कर पाने की क्षमता कायम रहती है। चुनौतियों का हम सामना करेंगे, वे निश्चित तौर पर बड़े अवसरों के द्वार हमारे लिए खोलती हैं भले हमें वे आज दिखाई न पड़ें। जो लोग अवसरों के न मिलने की शिकायत करते हैं, ऐसे लोगों को ही अवसरों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। वर्तमान चुनौतियों को स्वीकार कर कार्य में प्रवृत्त होनेवालों के जीवन में अवसर स्वयं ही उत्पन्न होने लगते हैं। जीवन में कुछ भी व्यर्थ नहीं होता। जीवन में केवल वही कार्य करने योग्य नहीं है जो हमारे मनोनुकूल हैं। जो भी कार्य सामने है, उसी को वांछित मानकर कार्य करना मनुष्य को ऊंचाइयों की ओर ले जानेवाला मार्ग है।

**** जिन्दगी ने सवालात बदल डाले वक्त ने हालात बदल डाले,***
हम तो आज भी वही हैं जो कल थे... बस लोगों ने अपने ख्यालात बदल डालें।

**** किस से सीखू मैं खुदा की बंदगी, सब लोग खुदा के बंटवारे किए बैठे हैं,***
जो लोग कहते हैं खुदा कण-कण में है, वही मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे लिए बैठे हैं।

**** जीवन को संतुलित रूप से चलाने के लिए कुछ नियम आवश्यक होते है। पर यदि आप स्वयं अपने लिए नियम नहीं बनाते तो आपको दूसरों के नियमों पर चलना पड़ता है।***

यादें, स्मृति, याद्दाश्त, विस्मृति

स्मृतियां यादों की वह सम्पदा है जो जीवन के प्रति आस्था जागृत करती है। स्मृतियां जीवन का एक आईना होती है। नितान्त निजी क्षणों में हौले से आकर वे उंगलिया थामे सर्पनीली पगडंडियों पर दौडती है और यदि इन्हें सुनने के लिये श्रोता उपस्थित है तो समझना चाहिये कि यह क्रम लम्बा चलेगा। स्मृतियों की सबसे अच्छी बात यही है, ये मुखर होकर बीती गलतियों का अवलोकन कराती है, दुलार कर उन मुलायम लम्हों को फिर से जीवंत कर देती है जो लौट नहीं सकते। उन्हें आने के लिये आज्ञा नहीं लेनी पडती न ही बुलाने के लिये उन्हें आमंत्रित करना पडता है। वे तो सदैव तत्पर रहती है। मन के दरवाजों पर। जब थोडी सी जगह मिली, वे निर्बांध झरने की तरह कल कल बहती दौड पडती है।

स्मृतियों से बेहतर दोस्त नहीं, क्योंकि वे कभी आपका साथ नहीं छोडेगी। दिल के किसी कोने में हमेशा उनकी मधुर रागिनी बसी रहती है। जब भी वक्त हो, इस तान को छेड दे। अपने ठहाकों से गुंजाती हुई वे गाहे-बगाहे नीरवता को तोडती रहती है। स्मृतियां सही मायनों में जीवन के प्रति आस्था जगाये रखती है। वे स्मृतियां ही है, जो वर्तमान का मूल्य समझती है। ये अमूल्य स्मृति कलश जब भी छलकता है इसकी अमृत बूंद राहत की फुहार बन कर बरस जाती है। कोई भले ही इसे अतीत का राग कहे, पर सच तो यह है कि यदि यादें न हो तो वर्तमान का कोई मोल नहीं रहता। यह अतीतानुराग ही तो प्रेम को अंकुर देता है। जो अतीत में हुआ वह भविष्य में न हो।

स्मृतियां वह स्मित रेखा भी देती है, तो भागम भाग के बीच हम भुला बैठे है। स्मृतियां जीवन की वह पूंजी है जिसे सहजने के लिये मन का बस एक कोना हो। स्मृतियों में खाली जीवन के रंग है, रिश्तों की गल्प है और है अमूल्य वे क्षण जिन्हे हमने जिया है। स्मृति वाचाल मित्र की तरह बोलने का एक भी अवसर नही गंवाती। न वह विचारों की श्रृंखला को टूटना देना चाहती है। स्मृतियां चौपाल पर बैठे वृद्धों की तरह घंटों बातें कर सकती है, दोस्तों की भी और दुश्मनों की भी। वे कभी नहीं थकती और न कहती है बस अब नहीं बाकी कल। आप जब चाहे निष्ठुरता से उनका पिटारा बन्द कर उन्हें चुप करा सकते है। फिर जब जरूरत हो, उन्हें हौले से फिर बुला सकते है। थोडी देर पहले का व्यवहार भूल कर वे दोगुनी खुशी से चली आयेगी एकदम आज्ञाकारी सेवक की तरह। स्मृतियां उस बादल के टुकडे की तरह है, जो सूर्य की तपन से छांव का अहसास देता है। आवश्यकता पर वह बदली बन जाता है जो बरस कर तपन से राहत देती है। स्मृतियां विस्मृत होने से डरती है इसलिये अपनी रुन-झुन झनकार से अवचेतन मन तक दौड लगाती रहती है। उस नव वधू की तरह, जिसे ध्यानाकर्षण का कोई दूसरा तरीका नहीं सूझता, उस नन्हें बालक की तरह जो घुंघरूओं की आवाज सुनने के लिये ही व्यर्थ घर का कोना-कोना नाप लेता है।

स्मृतियां तो हवा का झोंका है, वे तो आती ही रहेगी। उन्हे रोकने के बजाय उन्हें सहेजने का प्रयत्न करना चाहिये। यादों की आज की यह सम्पदा कल विरासत बनेगी। फिर किसी की स्मृतियों में आप हमेशा जीवित रहेंगे।

यादें जिंदगी का अहम् हिस्सा होती हैं। कई बार ये ही यादें जीने का सफर बन जाती हैं। यादों के समुद्र में गोता लगाने वाला ही उनकी कीमत जानता है। यादें जहां व्यक्ति की प्रेरणास्रोत बनती है वहीं किसी के लिए अमूल्य धरोहर बनकर रह

जाती है। यादों का झरोखा जितना देखा जाए उतना ही कम है। इसका है न कोई आदि न अंत। हमारे देश भारत का इतिहास भी कई तरह की यादों को अपने में समेटने के कारण अब भी जीवित है। आज भी देश की आजादी में कुर्बानी देनेवाले वीरों का गुणगान करता है। देश में जो भी ऐतिहासिक इमारते हैं। वह भी कहीं न कहीं किसी न किसी यादों के पलों से जुड़ी हैं। संसार में जिस भी व्यक्ति ने जन्म लिया है उसे यादों से जुड़ना ही पड़ेगा। हम भी अपने जीवन की हर एक घटना को यादों के सागर में डूबो कर रखें। आखिर ये यादें ही है जो जीने के साथ और जीवन के बाद रहती है।

दुनिया में बहुत से ऐसे लोग हुए हैं, जो अपनी विचित्र प्रतिभा के बल पर संसार को आश्चर्यचकित करते रहे हैं। याददाश्त के धनी लोग भी ऐसे ही हैं, जिनकी विलक्षण प्रतिभा का लोहा दुनिया ने माना है और जिनकी बराबरी आज तक कोई नहीं कर सका।

इजिप्ट के बादशाह नासर के पास २० हजार गुलाम थे। बादशाह को सभी गुलामों के नाम, जन्म स्थान, जाति, आयु और पकड़े जाने की तारीख सभी कुछ जुबानी याद था। वह यह भी बता सकता था कि कौन सा गुलाम कितने में खरीदा गया था।

बंगलौर के महादेवन ने ८९९ अंकों की संख्या को दो घंटे ४० मिनट में हल कर दिया था।

डेनमार्क के एक बैंक क्लर्क ने लगभग तीन हजार जमाकर्ताओं के बही खाते जल जाने के बाद मुंहजबानी ही उनके नाम, स्थान, धनराशि आदि का हिसाब सही-सही बता दिया था। शतरंज का जादूगर अमेरिकी खिलाड़ी हैरी नेल्सन एक साथ बीस शतरंज के खिलाड़ियों की चालें याद रखता था।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट के सेक्रेटरी जेंस ए फिरली को लगभग २० हजार महत्वपूर्ण लोगों के नाम, पते, पद आदि सभी जुबानी याद थे।

ब्रिटिश संग्रहालय के अध्यक्ष रिचर्ड मारग्रेट में विचित्र क्षमता थी कि वह कुरसी पर बैठे-बैठे ही संग्रहालय में रखी लाखों पुस्तकों का नाम, पता और उनकी विषय वस्तु आदि बता देता था।

राजा भोज के दरबारी श्रुतिधर में यह गुण था कि वह ४५ मिनट तक सुने हुए प्रसंग को पुन: ज्यों का त्यों शब्दश: सुना सकता था।

स्मृति तो परोक्षकी होती है, अतीतकी होती है, दूरकी होती है, प्रकृष्टकी होती है। जहाँ स्मृति होती है वहाँ साक्षात अपरोक्ष अनुभव नहीं होता।

भूलने को इंसान की सबसे बड़ी कमजोरियों में गिना जाता है। पढ़ा हुआ भूल जाएं, रास्ते भूल जाएं, कौन कब मिला था- यह भूल जाएं, तो ऐसी बातों से यही लगता है कि याददाश्त के कच्चे लोग सच में किसी काम के नहीं। इस दुनिया में उन लोगों की संख्या कहीं ज्यादा है जो याद रखते हैं। वे अच्छी बातें याद रखें तो कोई हर्ज नहीं, पर वे उन बातों को भी याद रखते हैं जिनसे कष्ट पहुंचते हैं। ऐसे लोगों को अपने प्रति दूसरों का किया अपकार याद रहता है। यह याद रहता है कि फलां ने ऐसा क्या किया था जिसका कसकर बदला लेना है। वह कौन सा घाटा पहुंचाया था जिसकी भरपाई अगले को उससे भी तगड़ा नुकसान पहुंचाने पर होगी। काश, दुनिया में ऐसे लोगों की तादाद बढ़ती जो दूसरों के अपकार और अपने

द्वारा किसी पर किए गए अहसान को भूलना जानते। उन्हें यह याद रहता कि हमारे किस आचरण से किसको क्या कष्ट हुआ था, लेकिन यह भूलने में वे तनिक भी देरी नहीं करते कि किसी दूसरे ने उन्हें कोई क्षति पहुंचाई थी।

प्राय: लोगों की शिकायत रहती है कि उन्हे कुछ याद नही रहता। वे लोगों के नाम भूल जाते है। अपनी पढ़ी हुई बातें भूल जाते है। रास्ते भूल जाते है। किसी को देखकर सोचते रहते है कि इन्हे कहीं पर देखा है। आखिर ऐसा होता क्यो है ? हम अपने जीवन में नानाप्रकार के कपडे, व्यक्ति, खेल, चित्र, पुस्तके आदि देखते है उनमे से हमें कुछ ही वस्तुये क्यों याद रहती है ? सब बाते हमे क्यों याद नहीं रहती ?

भूलने का पहला कारण जो सामने आता है वह है, रुचि की कमी। यदि हम किसी वस्तु विशेष में रुचि रखते है तो वह वस्तु दीर्घकाल के लिये याद हो जाती है। मिसाल के तौर पर जिस व्यक्ति की विज्ञान में रुचि है वह वैज्ञानिक बातों को अधिक समय तक याद रख सकता है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति की विज्ञान में रुचि नही, वह वैज्ञानिक बातें बहुत शीघ्र भूल जाता है। बालक, वृद्ध, युवक, युवतियां सभी भूलते है परन्तु उन सबके भूलने में कुछ भिन्नता रहती है।

हमारा भूलने का कारण होता है किसी विशेष व्यक्ति अथवा वस्तु के स्वभाव तथा गुण। यदि वस्तु आकर्षक, अर्थपूर्ण, अच्छे स्वभाव की तथा नवीन होगी तो अधिक समय तक याद रहेगी। अन्यथा उसे भूल जायेंगे। किसी वस्तु या व्यक्ति को यदि हम समझाले तो उसे याद करने की आधी समस्या तो अपने आप हल हो जाती है। यह सही है कि किसी व्यक्ति या बात को समझने में समय लगता है, पर इसमे सन्देह नहीं कि फिर उसकी याद भी काफी समय तक रहती है। किसी सीखी हुई चीज को फिर कभी न दोहराने से भी हम इसे भूल जाते है। इस कारण उसके साथ हमारे मानसिक सम्बन्ध शिथिल हो जाते है और हम उसे भूल जाते है। याद करने के बाद ही तुरन्त भूलने की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। मनुष्य १२ घंटे से २४ घंटे मे ६५ प्रतिशत बातें तो भूल जाता है। यदि किसी विशेष व्यक्ति या वस्तु के विषय में अथवा अन्य कोई बात याद रखना चाहते है तो इन संकेतों को आजमा कर देखा जा सकता है।

दूसरी बात है वस्तु की स्वाभाविक विशेषता। आप जिस वस्तु को याद रखना चाहे, उसके स्वभाव में कोई आकर्षण ढूंढिये और नवीन पन भी। एक प्रकार की दो बाते सीखते समय बीच में थोडा सा अवकाश अवश्य करे, जिससे याद रखने में सरलता होती है। जिस व्यक्ति, वस्तु अथवा विषय के सम्बन्ध में आप कोई बात याद करना चाहे, उसे बार बार दोहराकर साहचर्य सम्बन्ध दृढ़ करे ताकि आप उसे जल्दी भूल न सके।

प्रत्येक वस्तु अथवा अध्ययन का प्रबन्ध इस प्रकार करे कि आप उन्हें कई बार तथा सही दृष्टिकोण से देख सके। जिस बात को आप याद करना चाहे उसे अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये क्योकि समझ लेने से उसे याद करने की आपकी आधी समस्या तो अपने आप ही हल हो जायेगी। जिस वस्तु अथवा बात को आप याद करना चाहे उस पर ध्यान दे ताकि आप उसे अधिक समय तक याद रख सके।

**** मौत सबसे बड़ी हकीकत है जिसको हर शख्स भुला बैठा है और***
जिंदगी सबसे बड़ा धोखा है जिसके पीछे हर शख्स भाग रहा है।

बेईमानी, ईमानदारी, भ्रष्टाचार

ईमान से न हटना ही ईमानदारी है। यह विकल्प का तर्क प्रस्तुत नहीं करती। समय के अनुसार इसकी परिभाषा नहीं बदलती है, न ही मनमानी व्याख्या का अवसर देती है। लोगों का यह समझना कि अब ईमानदारी का मूल्य नहीं रह गया बिल्कुल नकारात्मक दृष्टिकोण है। इसका सकारात्मक परिणाम संभव नहीं होता। सच सदैव सच के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए ईमानदारी को ईमानदारी के साथ प्रयोग करना सबसे बड़ा सद्कर्म है पर ईमानदारी के अन्य स्वरूप भी हो सकते हैं। बेईमानी से ईमानदारी की ओर चलना, यह भी ईमानदारी को समर्थन और बेईमानी का विरोध, यह ईमानदारी के ही प्रतिरूप का क्षेत्र माना जाएगा। यह स्वभावत: होना चाहिए। ईमान को सुरक्षित रखना, उसे संरक्षित करना सर्वोपरि मानव कर्त्तव्य है। जैसे कि शरीर में जल का रासायनिक महत्व है वैसे ही मन-बुद्धि कर्म में ईमान का भौतिक स्थान है, लेकिन इसका आध्यात्मिक स्वरूप ही वास्तविक है। भौतिक और अधिभौतिक जगत में ईमानदारी को सत्य के अनुसरण का यंत्र मानिए। इसका मंत्र है आचरण में शुद्धता, जिसे सदाचार कहा जाता है। ईमानदारी के बिना आचरण की शुद्धता बेमानी है।

यदि संसार को संस्कारयुक्त, भयमुक्त और उन्नतशील बनाना है तो ईमान की पहल आवश्यक है। विश्वकल्याण के लिए यह सर्वोत्तम प्रयोग है। ईमानदारी की पहल से सभी लड़ाई-झगड़े, विवाद और तनाव की स्थितियां समाप्त हो सकती हैं। पृथ्वी पर स्वर्ग उतारना है तो ईमान को धारण किया जाए। आत्मोद्धार का सबसे सहज साधन है ईमान। धर्म-कर्म के प्रति ईमान ही तो व्यापक होकर मनुष्य को तिनके से भगवत्व प्रदान करता है। नाशवान प्राणी से अमरत्व का स्तर मिलता है। जब ईमान का योग जीवन में इतना अधिक हो सकता है तो फिर अन्य जटिलताओं में न उलझकर केवल ईमान की ओर बढ़ना चाहिए। ईमानदारी की पहल प्रत्येक व्यक्ति को अपनी दिनचर्या में अपनानी चाहिये। पग-पग पर ईमान का ध्यान ठीक उसी तरह है जैसे कि ईश्वर की आराधना हो। मानव का कल्याण करने के लिए अनेकानेक उपक्रम किए जाते हैं, लेकिन ईमानदारी से बड़ा कोई उपाय नहीं है।

भारत में ईमानदारी की महत्ता भगवान राम से लेकर महात्मा गांधी तक ने बताई, लेकिन व्यक्तित्व में ईमानदारी का महत्व अब पश्चिम के देशों में भी समझा जाने लगा है। इसका सबूत है कई देशों में मनाया जाने वाला ऑनेस्टी डे। किसी भी रोजगार नियोक्ता की पहली मांग भी कर्मचारी में काम के प्रति ईमानदारी ही होती है।

ईमानदारी का मतलब सिर्फ बेईमानी से दूर रहना ही नहीं है। इसका मतलब अपने काम के प्रति समर्पित रहना और उसे बेहतर बनाने की सतत कोशिश करते रहना भी है। अगर कोई रोजगार नियोक्ता अपने कर्मचारी में ईमानदारी चाहता है, तो उसका मतलब इन्हीं गुणों से होता है। अमेरिका में होनेस्टी डे इस दिवस पर अब दो पूर्व राष्ट्रपतियों जॉर्ज वाशिंगटन और अब्राहम लिंकन के सम्मान में कई कार्यक्रम होते हैं, जो अपनी ईमानदारी के लिए मशहूर थे।

इस दिन देश के नागरिकों के व्यवहार में अपने काम के प्रति ईमानदारी लाने के विभिन्न संगठन पहल करते हैं। इटली में नवंबर के दूसरे मंगलवार को ऑनेस्टी डे मनाया जाता है। इसके अलावा फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन समेत अन्य कई देशों

में अप्रैल माह के अंतिम दिन ऑनेस्टी डे का आयोजन किया जाता है। ईमानदार कर्मचारी किसी भी संस्थान में अपनी अलग जगह बना लेते हैं।

हर काल में हमेशा- समय और काल भले ही बदलते रहें लेकिन इन्सान के नैतिक गुण वही रहते हैं जिनमें से एक गुण है ईमानदार होना। अपने दायित्वों का पूरी नैतिकता और सच्चाई के साथ पालन करना ही ईमानदारी है जिसमें छल-कपट के लिए कोई जगह नहीं होती। सिर्फ नि:स्वार्थ भाव से अपने कर्त्तव्यों का बिना छल किए निर्वहन करना ही ईमानदारी है। चाहे सम्बन्धों की बात हो या व्यापार की या फिर दुनिया के भले की, ईमानदारी हर जगह हर समय होना अति आवश्यक है। आज के समय में ये माना जाने लगा है कि ईमानदारी कोई गुण नहीं है बल्कि एक ऐसा अवगुण हैं जो इन्सान को आगे नहीं बढ़ने देता, तरक्की नहीं करने देता और अभावों भरे जीवन की ओर धकेलता है लेकिन ये सच्चाई नहीं है।

ईमानदार आदमी- ईमानदारी का गुण रखनेवाला व्यक्ति अपने परिवार और अपने से जुड़े हर रिश्ते को पूरी ईमानदारी और सच्चाई रखने से ही रिश्ते मजबूत बनते हैं और परिवारजन और मित्रों के साथ सम्बन्धों में पारदर्शिता आती हैं। जब जीवन का मूल उद्देश्य खुशी पाना ही है तो क्यों ना ईमानदारी के जरिये ही खुशी को हसिल किया जाए। आप अपने घर का राशन और आवश्यकता का सामान किन दुकानों से लाना पसंद करते हैं? जो दुकानें ईमानदारी से हिसाब करती हैं या फिर उन दुकानों से जहाँ दुकानदार आप से बेहिसाब रुपये ऐंठना चाहता है। इसका जवाब यही है कि हम सभी ऐसे लोगों का साथ चाहते है जो ईमानदार हो। फिर चाहे बात व्यापार करने की हो या किसी से आवश्यकता की चीजें खरीदने की हो। व्यापार करते समय अगर ईमानदारी बरती जाती है तो परिणाम हमेशा अच्छे ही मिलते हैं जबकि थोड़े से लालच या जल्दी लाभ कमाने की नीति अपनाने का विचार रखने पर शुरू में भले ही धन की बारिश होने लगे लेकिन जल्द ही ईमानदारी रहित उस व्यापार का पतन भी शुरू हो जाता है क्योंकि जिस व्यापारी में ईमानदारी जैसे नैतिक मूल्य का ही अभाव हो, उसके साथ कोई भी व्यापार करने से कतराएगा, इसके साथ साथ स्वयं को असंतोष और ग्लानि भी महसूस होगी। कुछ ऐसा ही नौकरी के सन्दर्भ में भी होता है। भले ही आप किसी के अधीन कार्य करते हो लेकिन अपने हर कार्य को पूरी ईमानदारी से करना आपका दायित्व है।

समाज में सम्मान- प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसे समाज में सम्मान मिले लेकिन सम्मान का हकदार वही व्यक्ति होता है जो ईमानदार हो और समाज के प्रति अपने दायित्वों का पूरी ईमानदारी के साथ निर्वहन करता हो। इसके अलावा ऐसा व्यक्ति उस समाज के लिए प्रेरणा भी बनता है जिसका वो अभिन्न अंग है और इस तरह अपने इस गुण के कारण जाने अनजाने में ईमानदार व्यक्ति एक बेहतर समाज के निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभा ही देता है। अपने देश और दुनिया के लिए अगर आप कुछ ऐसा योगदान देना चाहते हैं जिससे इस दुनिया में सद्भावना बढ़े, आपके देश में सम्पन्नता बढ़े, आपके समाज में नैतिकता बढ़े और आपके परिवार में इन नैतिक मूल्यों के प्रति आदर भाव विकसित हो तो ईमानदारी के इस गुण को अपने व्यक्तित्व का एक विशेष गुण बनाए रखिए। ऐसा करके आप खुद के लिए भी आनंद और तरक्की की राह खोल लेंगे क्योंकि एक ईमानदार परिवारजन को परिवार का साथ मिलता है। ईमानदार मित्र को दोस्तों से बदले में ईमानदारी मिलती है, ईमानदार व्यापारी को अपने व्यापार में बरकत मिलती है। ईमानदार कर्मचारी को अपने

कार्य में तरक्की मिलती है, ईमानदार नागरिक को समाज और देश से सम्मान मिलता है और एक ईमानदार व्यक्ति के लिए इससे अमूल्य पुरस्कार और कोई नहीं हो सकता।

भ्रष्टाचार- भ्रष्टाचार की समस्या का एक अच्छा रास्ता यह है कि बड़े कहे जाने वाले लोग अपनी जीवनशैली को संयमप्रधान बनाएं। बड़े व्यापारी, उद्योगपति, सांसद, विधायक, सामाजिक नेता के जीवन में संयम आ जाए तो नीचे तबके के लोग स्वयं प्रेरित होंगे। जिनके पास जरूरत भर के लिए भी नहीं है, उन्हें संयम का उपदेश कोई किस मुंह से दे।

चाणक्य भारतीय राजनीति के लिए एक दिव्य प्रेरणा हैं। अपना कार्य करते समय वह राज्य प्रदत्त दीये को बुझा देते और अपना व्यक्तिगत दीया जला लेते थे। आज के मंत्रियों और राज्यकर्मियों के लिए तो यह स्वप्नवत है। व्यक्तिगत जीवन की यह उत्कृष्ट शुचिता अपना उदाहरण छोड़कर शायद चाणक्य के साथ ही चली गई।

हमारे देश में अधिकतर भ्रष्टाचार फैला हुआ है। इस पर अंकुश लगा पाना भी बहुत मुश्किल हो रहा है, क्योंकि इसकी जड़ें काफी मजबूत हैं। जिस तरह कानून बनाया है उस पद पर विराजमान होने के बाद इस तरह अपने पद का दुरुपयोग करते हुए जिस तरह अधिकारी व नेता लाखों-करोड़ों की संपत्ति कमा रहे हैं, इससे साफ हो जाता है कि समाज में भ्रष्टाचार किस कदर व्याप्त है। इस तरह के कानून का गलत तरीके से उसका इस्तेमाल किया जाता है। सरकार को चाहिए कि इस तरह के भ्रष्टाचार पर सख्ती से अंकुश लगाए।

जब आजादी मिली तब कई संकल्प लिए थे- जैसे गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा का समूल रूप से मिटाकर फिर से भारत को विश्व फलक पर सोने की चिड़िया के रूप में स्थापित किया जायेगा। लेकिन अफसोस हम आज भी उन्हीं सब परेशानियों व मुद्दों से जूझ रहे हैं। रोटी, कपड़ा और मकान आज भी देश की आधी आबादी के लिए सपना बना हुआ है।

हर क्षेत्र में महंगाई अपने चरम पर है। अन्य वैभवी वस्तुओं की बात रहने दें और यदि सिर्फ पेट भरने के लिए दाल-रोटी के बारे में भी सोचें तो गरीब तो क्या मध्यम वर्ग की जेबों के पैसे भी काफी कम पड़ रहे हैं। आम आदमी हतप्रभ है कि देश विकास के नित नये पायदान चढ़ रहा है, तो उस तक उचित मूल्यों में भरपेट भोजन क्यों नहीं पहुंच पा रहा है। शिक्षा की अलख गाँव-गाँव पहुचांने के सरकारी वायदे थोथे प्रतीत साबित हो रहे हैं। शिक्षा इतनी महंगी कि आम आदमी अपने बच्चों के लिए स्वप्न ही देखता रह जाता है।

आज जरूरत है देश की कर्णधारों को, सरकारों को, मनीषियों को, बुद्धिजीवियों को, राजनेताओं को, अपने मूल में भूल को तलाश कर, भ्रष्ट व सड़ चुके तंत्र में आमूल चूल परिवर्तन लाने की। आचरण में तह तक बैठ चुके भ्रष्टाचार को निकाल कर जनहितार्थ कार्य करने की। जिससे भारतवासी आजादी के जश्न में संतुष्टि व सुख के साथ आजाद होने का नया अहसास पा सकें।

हमारा देश अभी एक बेहद कठिन दौर से गुजर रहा है। हर सुबह किसी न किसी हिस्से से घोटाले की खबर जरूर आती है। समय गुजरने के साथ घोटालों की धनराशि में कई गुना बढ़ोतरी हुई है। ऐसा लगता है कि हमारे सालाना बजट का एक बड़ा हिस्सा घोटाले की भेंट चढ़ रहा है। पैसे से ज्यादा इससे इंसान के सम्मान का सवाल जुड़ा है। आज दफ्तरों में बिना पैसे दिए कोई काम नहीं होता। जो पैसे नहीं देता उसे अपमानित किया जाता है, धमकी दी जाती है। आज भ्रष्टाचार रोकने

के लिए कानूनों की कमी है। कानून हैं भी तो उनका पालन नहीं होता। इसका कारण भ्रष्टों को प्रोत्साहन मिलता है। आखिर क्या वजह है कि सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के तमाम सबूतों के बावजूद कोई जेल नहीं जाता है? इसकी बड़ी वजह यह लगती है कि हमारी भ्रष्टाचार निरोधक व्यवस्था सुस्त है। यह अपने ढांचे में अपर्याप्त भी है। भ्रष्टाचार के आरोप साबित हो जाने के बावजूद संबंधित व्यक्ति की काली कमाई को जब्त करने का कोई प्रभावी कानूनी प्रावधान नहीं है। इसलिए भ्रष्टाचार निरोधक कानूनों में बदलाव की जरूरत है। भ्रष्टाचार के खिलाफ कड़े कदम नहीं उठाए गए, तो भ्रष्टाचारी देश को खोखला कर देंगे।

भारत की सबसे बड़ी समस्या है खराब प्रशासन। चाहे पटवारी- गिरदावर की बात करें या थानेदार की, पुलिस मैन की चाहे प्रशासनिक अधिकारी की, खराब प्रशासन हर जगह बोलता है। भारत की प्रगति में यह सबसे बड़ी बाधा है। यह न केवल विकास की रफ्तार कम करता है बल्कि उसकी दिशा भी गलत और विकृत कर देता है। भ्रष्टाचार भी खराब प्रशासन का एक बड़ा कारण है। सही और जनपयोगी निर्णय न लेने की इच्छा इसका दूसरा कारण है। भारत में ऊपर से नीचे तक चारों तरफ भ्रष्टाचार फैला है। भ्रष्टाचार ने भारत की सारी व्यवस्थाओं को खोखला कर दिया है। रक्षा सौदों में सड़कों-इमारतों के निर्माण में, पुलिस में अदालतों में और जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का इतना बोलबाला है कि भारत का आम आदमी भूल गया है कि ईमानदारी नाम की कोई चीज होती है, कोई मूल्य होता है। २ जी स्पेक्ट्रम और कॉमनवेल्थ घोटालों की कल्पना भी भारत की आजादी के वक्त नहीं की जा सकती थी। राजनैतिक पार्टियां ही जब भ्रष्टाचार के अड्डे बन जायें तो लोकतंत्र में देश को भ्रष्टाचार से बचाने की कोई संभावना नहीं रहती। सरकार भी कर्मचारियों, पत्रकारों व न्यायाधीशों आदि को तरह-तरह के प्रलोभन सस्ते मकान, सस्ती जमीन आदि देकर भ्रष्ट बनाने, भ्रष्टाचार बढ़ाने का अभियान चलाती है। रखवाले ही जब बाड को खा रहे हों तो रखवाली कौन कर सकता है।

भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे चलता है और जब ऊपर वाला भ्रष्ट होता है तो नीचे वाले को न केवल भ्रष्टाचार के लिए प्रोत्साहित करता है, उसे निडर भी बनाता है। यह वह देश है जहां सिविल सर्विस और राजनीतिज्ञ एक दूसरे की निगरानी नहीं करते किंतु जनता को लूटने के लिए हाथ मिलाते हैं। इसीलिए इंदिरा गांधी ने कभी भ्रष्टाचार को समस्या नहीं माना तथा इसे विश्वभर में फैला कहकर कन्नी काट ली। भारत का नौकरशाह इसलिये भी सब अपराधों, दोषों व नाकामयाबियों से बचा रहा है क्योंकि सजा की प्रक्रिया भारत में बहुत धीमी है तथा अनेक उलझनों से भरी हुई है। शायद कानूनी प्रक्रिया का मकसद भ्रष्ट को सजा देना नहीं, उसे बचाने की हर कोशिश करना है। भारत की आर्थिक व्यवस्था भी इसका शिकार रही है। समाजवाद के नारे को गुमराह करने के लिए ही प्रयुक्त नहीं किया गया, आर्थिक उन्नति में अवरोध पैदा करने के लिए भी प्रयुक्त किया गया। सरकार के तरीके परस्पर विरोधी, अनार्थिक, उलझन भरे और चुस्तता रहित हैं। दोषी सजा नहीं पाता। काम न करनेवाला या धीमे काम करनेवाला या काम में बाधा डालनेवाला इस प्रक्रिया में कभी पकड़ नहीं जाता और पकड़ा जाये तो उसके विरुद्ध कुछ भी प्रमाणित नहीं होता। ईमानदार या चुस्त होना या अपने काम को सही तरीके से करनेवाले को सभी साथ काम करनेवालों का कोप-भाजन बनना पड़ा है और ऊपर के अफसर के दुराग्रह का शिकार भी बनना पड़ता है।

ग्रहण

अक्टूबर २००५ में १५ दिन में २ ग्रहण, चंद्रग्रहण हर वर्ष नहीं होता। सूर्यग्रहण हर वर्ष कम से कम दो होते हैं। एक वर्ष में चंद्रग्रहण अधिकतम तीन हो सकते है। एक वर्ष में सूर्यग्रहण अधिकतम चार हो सकते हैं। एक वर्ष में सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण दोनों मिलाकर कम से कम दो और अधिकतम सात हो सकते हैं। सन् १९५१ से २०५० तक कुल ७ ग्रहण सिर्फ सन् १९८२ में हुए थे। सन् १९५१ से २००० तक सन् १९६४ और २००० में कुल ६-६ ग्रहण हुए थे। सन् २००१ से २०५० तक ६ ग्रहण, सन् २०२९ और २०४७ में होंगे।

आकाशीय चमत्कारों में चंद्र और सूर्य का ग्रहण होना सबसे ज्यादा अद्‌भुत, विचित्र, व्यापक और प्रभावशाली घटना होती है। ब्रह्मांड में जबसे सूर्य, पृथ्वी और चंद्र हैं, तबसे ग्रहण हो रहे हैं और अनंत काल तक होते रहेंगे। इनका होना तब बंद होगा, जब इन तीनों में से कोई एक अपने स्थान से हट जाएगा। आधुनिक खगोल वैज्ञानिक यह मानते हैं कि चंद्रमा पृथ्वी से जरा-जरा सा दूर हटता जा रहा है। अगले १५ करोड़ वर्षों में यह पृथ्वी से इतना दूर हो जाएगा कि सूर्य की किरणों से बनने वाली पृथ्वी की छाया से काला नहीं हो सकेगा। परिणामस्वरूप चंद्रग्रहण बंद हो जाएंगे। दूसरी तरफ पृथ्वी से बहुत अधिक दूर होने के कारण चंद्रमा आजकल की तरह हमारी आखों के आड़े आकर सूर्य को नहीं ढक सकेगा। उस समय जब चंद्रमा सूर्य के आगे से गुजरेगा तो चंद्रमा सूर्य को एक तिल जितना ढकेगा।

हिंदू पुराणों के अनुसार इस कल्प का आरंभ विक्रम संवत् २०६२ के प्रथम दिन से एक अरब सत्तानबे करोड़ उनतीस लाख उनचास हजार एक सौ पांच वर्ष पहले हुआ था। इतने समय से सूर्य, चंद्र और पृथ्वी का अस्तित्व है और ग्रहण हो रहे हैं। मानव का जन्म कल्प के आरंभ से एक करोड़ ७० लाख ६४ हजार वर्ष बाद हुआ था, तबसे हमारी मानव जाति ग्रहणों का आकाशीय चमत्कार देख रही हैं। किसी एक वर्ष में ग्रहणों की कुल संख्या का अर्थ यह है कि इतने ग्रहण पृथ्वी पर होंगे, लेकिन पृथ्वी के हर स्थान से ये ग्रहण दिखाई दें, ऐसा जरूरी नहीं। किसी वर्ष पृथ्वी के किसी स्थान पर एक भी ग्रहण दिखाई नहीं देता, बावजूद इसके कि पृथ्वी पर ग्रहण होते हैं और अन्य स्थानों से दिखाई भी देते हैं।

चंद्रग्रहण सिर्फ पूर्णिमा को और सूर्यग्रहण सिर्फ अमावस्या को होना संभव है। पूर्णिमा को चंद्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच न होकर पृथ्वी और सूर्य से १८० डिग्री के अंतर पर होता है। इस स्थिति में पूर्ण प्रकाशित चंद्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने पर चंद्रमा काला दिखाई देता है, जिसे चंद्रग्रहण कहते हैं। अमावस्या को चंद्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच ० डिग्री के कोण पर होता है। ऐसी स्थिति में पृथ्वीवासियों की आंखों के आगे से गुजरते समय चंद्रमा सूर्य को ढंक लेता है। चंद्रग्रहण की कुल अवधि का आधा भाग पूर्णिमा की समाप्ति से पहले और आधा भाग पूर्णिमा की समाप्ति के बाद व्यतीत होता है।

हर पूर्णिया या अमावस्या को ग्रहण होना संभव नहीं होता। इसका कारण यह है कि चंद्रमा पृथ्वी की भ्रमणरेखा के समानांतर न घूमकर ५ अंश ८ कला के कोण पर घूमता है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, जबकि चंद्रमा पृथ्वी के। चंद्रमा का भ्रमण मार्ग जब पृथ्वी की भ्रमण रेखा से गुजरता है तब सूर्य, चंद्र और पृथ्वी तीनों एक रेखा में होते हैं। इस स्थिति में ग्रहण की संभावना बनती है। सूर्यग्रहण- चार प्रकार के होते हैं- १) आंशिक, २) खग्रास, ३) आंशिक कंकणाकृति, ४) पूर्ण कंकणाकृति। सूर्यबिंब पूरा काला न होने पर आंशिक और पूरा काला होने पर सूर्यग्रहण खग्रास कहलाता है। कंकणाकृति का अर्थ है कि सूर्य बीच में से पूरा काला हो जाए, लेकिन उसके गोले के आखिरी किनारे प्रकाशमान दिखाई देते रहें। चंद्रग्रहण सिर्फ २ प्रकार के होते हैं- १) आंशिक, २) खग्रास। चंद्रमा का एक अन्य प्रकार

का ग्रहण भी होता है, जिसे मांद्य चंद्रग्रहण कहते हैं। इसमें चंद्रमा काला नहीं पड़ता, लेकिन उसके प्रकाश की सफेदी में कमी आ जाती है, यानी धुंधलापन आ जाता है।

पूर्ण सूर्यग्रहण में २ आकर्षक दृश्य दिखाई देते हैं। १) चंद्रमा के गोले के किनारों की घाटियों से छनकर आने वाला सूर्य का प्रकाश चंद्रमा के चारों तरफ जगह-जगह चमकते मोतियों सा प्रकाश देता है। ऐसा लगता है जैसे चंद्रमा ने अपने गोले के चारों तरफ मोतियों की माला लपेट रखी है। २) सूर्यग्रहण की पूर्णता समाप्त होते ही ऊपर बताई गई माला के मोती सूर्य के प्रकाश में अदृश्य हो जाते हैं, लेकिन सूर्य का जो हिस्सा उस समय भी चांद से ढंका रहता है, वहां चांद के आखिरी सिरे की किसी घाटी से छनकर आने वाला प्रकाश हीरे की अंगूठी जैसा चमकता है।

पृथ्वी और चंद्रमा पूर्ण गोलाकार मार्ग पर न घूमकर अंडाकार मार्ग पर घूमते हैं। इससे इनकी आपसी दूरी घटती-बढ़ती रहती है। जब यह दूरी कम रहती है तो ग्रहण की अवधि अधिक और जब दूरी अधिक होती है तो ग्रहण की अवधि कम होती है। खग्रास सूर्यग्रहण एक सेकेंड से भी कम समय से लेकर ७ मिनट ३१ सेकेंड तक दिख सकता है। खग्रास चंद्रग्रहण १ घंटे ४२ मिनट तक दिखना संभव है। कंकणाकृति सूर्यग्रहण अधिकतम १२ मिनट ९ सेकेंड तक दिखाई दे सकता है। चंद्रग्रहण की अधिकतम अवधि ३ घंटे ५६ मिनट और सूर्यग्रहण की ५ घंटे से कुछ अधिक तक हो सकती है।

चंद्रग्रहण लगभग आधी पृथ्वी से एक साथ दिखाई देता है, जबकि सूर्यग्रहण अधिक से अधिक २७० कि.मी. की चौड़ाई में दिखता है। १८ वर्ष ११ दिन बाद सूर्य या चंद्रग्रहण दुबारा उसी क्रम में होने लगते हैं। इस अवधि में ४२ सूर्यग्रहण और २८ चंद्रग्रहण होते हैं। चंद्रग्रहण २८ के बजाय २९ भी हो सकते हैं। पृथ्वी के किसी भी स्थान से इस अवधि में अधिक से अधिक ७ सूर्यग्रहण और १८ चंद्रग्रहण दिखाई दे सकते हैं। सूर्य या चंद्रग्रहण का किसी एक स्थान से संपूर्ण अवधि तक दिखाई देना भूमध्य रेखा या उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में ही संभव है। भारत भूमध्य रेखा के निकट है। इसका विस्तार बहुत अधिक है, इसलिए सभी प्रकार के ग्रहण अच्छी संख्या में दिखाई देते हैं। पृथ्वी गोल है, इसलिए ग्रहण एक गोलार्ध में दिखाई देते हैं, दूसरे में नहीं। अमावस्या के दिन जिस गोलार्ध में सूर्यग्रहण होता है, उसके पिछले गोलार्ध में उस समय रात होती है। पूर्णिमा की रात को जिस गोलार्ध में चंद्रग्रहण होता है, उसके पिछले गोलार्ध में उस समय दिन होता है।

ग्रहणों के संबंध में २ शब्दों का प्रयोग और होता है- १) ग्रस्तोदित २) ग्रस्तास्त- ग्रस्तोदित का अर्थ है सूर्य या चंद्र का ग्रहण आरंभ होने के बाद उगना यानी उगते समय आंशिक या पूर्ण रूप से काला होना। ग्रस्तास्त का अर्थ है ग्रहण समाप्त होने से पहले ही सूर्य या चंद्र का अस्त हो जाना। ऐसा क्यों होता है, कारण पृथ्वी गोल है और अपनी धुरी पर घूमती रहती है। चंद्र या सूर्यग्रहण कई घंटे लंबे होते हैं। ग्रहण चालू रहने की स्थिति में पृथ्वी के घूमते रहने के कारण पृथ्वी के कुछ भागों से ग्रहण का दिखाई देना बंद हो जाता है, जबकि नए भागों में दिखाई देना आरंभ हो जाता है। जिस जगह सूर्योदय या चंद्रोदय ग्रहण के आरंभ काल के बाद होता है, वहां चंद्र या सूर्य उदय के समय ही ग्रहण लगे हुए दिखाई देते हैं। इसी प्रकार जिस जगह सूर्यास्त या चंद्रास्त ग्रहण की समाप्ति से पहले हो जाता है, वहां सूर्य या चंद्र छिपते समय आंशिक या पूर्ण रूप से काले ही रहते हैं।

एक ग्रहण घटित होने के बाद दूसरा ग्रहण १५ दिन बाद प्राय: घटित होता है। अगर अमावस्या को सूर्यग्रहण हुआ है तो अगली पूर्णिमा को चंद्रग्रहण की पूरी संभावना रहती है। इसी प्रकार पूर्णिमा को चंद्रग्रहण होने पर अगली अमावस्या को सूर्यग्रहण प्राय: होता है। १५ दिनों के अंतर से घटित होने वाले दो ग्रहण पृथ्वी के हर स्थान से दिखाई दे, यह आवश्यक नहीं है। जब एक स्थान से किसी पखवाड़े में दो ग्रहण दिखाई देते हैं तो उस पक्ष को ग्रहण पक्ष माना जाता है। इस पक्ष में जनेऊ, विवाह आदि संस्कार और गृहप्रवेश, मूर्तिप्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य नहीं किए जाते।

क्षोभ, पश्चात्ताप, प्रायश्चित, आँसू

जीवन में जब उमड़कर भावनाओं का नीर प्रस्फुटित होना चाहे, आंखें छलछलाने को और पलकें भीगने को आतुर हों तो सच्चा साहस इसी में है कि मर्म के उद्‌गार को सच्चे स्वरूप में प्रकट होने दें। कलियों के झड़ने से ही समीर सुरभित होता है, खुशबू दूर-दूर तक फैलती है।

पश्चाताप के आंसू मन का मैल धो देते हैं। पाप करने के पश्चात जो मन में एक प्रकार का ताप होता है- पछतावा होता है, उसे पश्चाताप कहते हैं। पाप करके उसका किसी प्रकार किसी उपाय से शोधन किया जाय उसे प्रायिश्चत कहते हैं। इन बाहरी प्रायश्चित्तों से पाप का मूल तो प्राय: नष्ट होता नहीं, किंतु पापों के फल भोगने में कमी हो जाती है। सच्चा पश्चात्ताप हृदय में हो जाय तो फिर ऐसा कोई पाप नहीं है, जिसका कभी नाश न हो सके।

पाप के शोधन का नाम प्रायश्चित है। जैसे वस्त्र है, यदि वह निर्धूलि स्थान में रखा रहे तो मलिन न होगा, किन्तु धूलि का संसर्ग होते ही शनै: शनै: मलिन हो जायगा। किन्तु कीचड़ में डुबो दें तो तत्क्षण महान मलिन होगा। इसी प्रकार चित्त को सांसारिक वासनाओं से दूर रखें तो यह विशुद्ध बना रहेगा। किन्तु ऐसा न करें और संसार के व्यवहार में लगाये रखें और श्रुति स्मृति विहित सन्ध्या तर्पण, अग्निहोत्र, उपवास जप, पंच महायज्ञ आदि न करें तो कुछ काल में तम के ढक जाने से प्रकाशहीन मलिन हो जायगा। यदि इनको करते हुए भी ब्रह्महत्या, सुरापान, परस्त्री गमन आदि महापातक कर डालें तो मन तत्क्षण मलिन होगा। ऐसे महापापों के स्मृतियों में अनेकों प्रायश्चित्त बताये हैं। कुछ पापों का तो शरीर का अन्त कर देना ही प्रायश्चित्त कहा गया है।

प्रायश्चित कर्म करने से पाप निवृत्त होता है, परन्तु यह पाप से मूल निवृत्त नहीं होता क्योंकि उसका अधिकारी विद्वान नहीं है, इससे विचार करना ही प्रायश्चित है। तप, ब्रह्मचर्य, शम, दम, दान, सत्य, शौच, यम नियम से धीर और धर्मज्ञाताजन किये हुए पापों को भी इस प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे दावानल वृक्षों को भस्म कर देता है। नारायण से विमुख रहकर कोई यह चाहे कि प्रायश्चित कर पवित्र हो जाऊंगा तो उसको प्रायश्चित भी पवित्र नहीं कर सकते। समझसे सच्चे पश्चात्तापसे बढ़कर और कोई प्रायश्चित्त नहीं है। पश्चात्तापहीन दण्ड या प्रायश्चित्त पापकी जड़ नहीं काट सकता।

पाप करके जिसे पश्चात्ताप नहीं होता है, उसके सब प्रायश्चित्त व्यर्थ हैं पाप करने के पीछे जो मन में पछतावा, ग्लानि- संताप- होता है, उसे ही पश्चात्ताप कहते हैं। जिनका पाप करने का स्वभाव होता है। पुरुष हो, स्त्री स्वैरिणी व्यभिचारिणी हो, उन्हें नित्य पाप करके भी पश्चात्ताप नहीं होता। पाप की पश्चाताप से बढ़कर दूसरी कोई ओषधि नहीं। यदि अपने कुकृत्य पर हृदय से सच्चा पश्चात्ताप हो जाय, तो व्यक्ति भवसागर पार हो जाय।

अपराध करना- भूल करना- यह जीव का स्वभाव है। जो अपने बनावटी स्वभाव से ऊपर के चाकचिक्य से अपने को दूध का धुला सिद्ध करते हैं। जो अपने पापों को छिपाने को झूठ बोलकर पाप के ऊपर पाप करते हैं। अपनी भूल को घुमा फिराकर सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, उनका उद्धार होना अत्यन्त कठिन है। सुधार का श्रीगणेश पाप की स्वीकृति में है। संसार में पाप किससे नहीं होता। जो पाप पुण्य से रहित प्रभु हैं, उनकी बात तो छोड़ दो, वे तो कुछ करते ही नहीं। किन्तु जिसने कर्मानुसार शरीर धारण किया है, उससे पाप भी होंगे, पाप करके जो उन्हें अनेक प्रकार के दम्भ करके छिपाते हैं, मानों वे पापों को कृपण के धन की भाँति एकत्रित करते हैं। आगे सर्प होकर वे पापों की रक्षा करेंगे और नरक

की यातनायें सहेंगे। भूल से या प्रमाद से पाप हो गया और करने के अनन्तर उसके लिये हृदय से पश्चात्ताप हो, तो यह आशा की जाती है कि पश्चाताप की अग्नि से पापों के पुञ्ज अवश्य ही भस्म हो जायँगे।

पश्चात्ताप से भीतर का जितना कूड़ा करकट होता है वह सब जलकर भस्म हो जाता है, हृदय विशुद्ध बन जाता है। इसलिये पाप हो जाना यह कोई उतनी बुरी बात नहीं है सबसे बुरी बात तो यह है कि पाप को छिपाये रखना और ऊपर से ऐसी चेष्टा करना मानों हमने तो कुछ किया ही नहीं। समझ लो कि इनकी पाप में आसक्ति हो गई है। अत: हृदय में पश्चात्ताप होना यह भगवान की बड़ी कृपा है। यह बिना भक्तों के सम्पर्क के-बिना सत्संग के नहीं होता।

आँसू - आंखों में भरे आंसू कमजोरी नहीं हमारे आत्मबल की पहचान हैं। आंसू नेत्रों की ढाल हैं, तो नयनों के श्रृंगार। भाव का सागर हैं, तो मन का दर्पण। पर जब से आदमी सुसभ्य हुआ है, सामाजिक मान-मर्यादा और परंपरा की डोर में बंधा है, समाज ने न जाने क्यों आंसुओं को निर्बलता का सूचक मान लिया है।

दुनिया के किसी भी देश, समाज अथवा जाति में पुरुष के नयनों से आंसू गिरने पर न सिर्फ सीधी रोकटोक है, बल्कि इसे भारी तिरस्कार की नजर से देखा जाता है। परिस्थितिवश यदि किसी पुरुष की आंखें जरा सी नम हुई नहीं कि आत्म-सम्मान, प्रतिष्ठा, गौरव सभी दांव पर लग जाते हैं। लक्ष्मण रेखा पुरुष प्रधान मानव समाज ने पुरुष के सामने ही खींची है। स्त्री इस कर्त्तव्य-बोध से मुक्त है। उसके लिए आंसू नयनों के श्रृंगार हैं। जैव-वैज्ञानिक नजरिए से देखें तो पुरुष पर लगाया गया मान-मर्यादा का यह सामाजिक प्रतिबंध सरासर अनुचित है, अन्यायपूर्ण है। अश्रुग्रंथियां रचते समय जब प्रकृति ने स्त्री-पुरुष के बीच कोई भेदभाव नहीं रखा तो समाज की ओर से यह लक्ष्मण-रेखा क्यों? स्त्री हो या पुरुष, आंसू भावनाओं के मोती हैं, अव्यक्त भावों के जीते-जागते रूप। उनसे धुलकर ही हम पूरी तरह से पवित्र होते हैं, हमारी आत्मा को ताकत मिलती है। आंसुओं को आंतरिक दुर्बलता का लक्षण मानना, स्त्रीत्व होने का प्रमाण समझना और आंखें भर आने पर भी आंसुओं को भीतर ही भीतर पी जाना न तो बहादुरी का लक्षण है, न पुरुषार्थ का प्रतीक। रोने के लिए न सिर्फ भीतर संवेदनशील हृदय होना जरूरी है, बल्कि इसके लिए तीव्र आत्मबल होना भी अनिवार्य है। जिसके मन में सरलता, सहृदयता, कोमलता, निश्छलता का ठिकाना है, जिसका मन दुराव-छिपाव, आडंबर, छल-कपट, अहंकार के दागों से सना नहीं, उसके नयनों से ही अश्रु अमृत बन गिरते हैं।

आंसू सुख से सूखे जीवन में रिमझिम बरसती बरखा हैं, जिससे घनीभूत पीड़ा कण हैं, भक्ति, श्रद्धा और अहिंसा के फूल। स्नेह, वियोग के आंसू, प्रेमी-प्रेयसी के बीच मिलने-बिछुड़ने के आंसू, औरों के दुख में रोती करुणामयी आंखों से निकलते हीरों से भी अधिक चमक रखनेवाले आंसू-भला इनमें से कौन से आंसू कमजोरी के सूचक हैं। सभी में वह गरिमा है, जिसका कोई सानी नहीं। नादान लोग आंसू को नमकीन पानी कहते हैं। मगर ये वो पानी है जिसे कभी-कभी आंखों से निकलते रहना चाहिए। क्योंकि अगर वे अंदर ही अंदर जमा होते रहें तो थोड़ी सी ठेस पहुंचने पर ये ज्वालामुखी पहाड़ की तरह बह निकलते हैं और रुकने का नाम नहीं लेते। अगर कभी किसी के दिल पर कोई चोट लगी हो तो उसके बोझ को हल्का करने के लिए आंसुओं की बहुत अधिक जरूरत होती है। आंसू सिर्फ नमकीन पानी ही नहीं होते बल्कि गमों को कम करने का जरिया भी होते हैं। आंख हमेशा बिछड़ने के गम से भीग जाती है, मगर भीगी हुई आंख गम को ही जाहिर नहीं करती, बल्कि खुशी भी आंसू की शक्ल में जाहिर होती है। जब कोई बहुत पुराना हमदम, साथी बरसों बाद होठों पर मुस्कुराहट और आंखों में सर्द नमी के साथ मिले तो यह जरूर महसूस होगा कि बिछड़ने का गम ज्यादा था या मिलने की खुशी।

संगीत

जीवन की अंधेरी रातों में संगीत दूधिया चांदनी जैसा है।

युद्धों में परोक्ष रूप से ध्वनि के प्रभाव से जितने व्यक्ति मरे हैं उतने बम की मार से नहीं।

भारतीय संस्कृति की कई एक विधाओं को विज्ञान ने न केवल स्वीकारा है, अपितु उनका दैनंदिन जीवन में सार्थक समावेश भी किया है। ध्यान एवं योग, ज्योतिष एवं खगोल विज्ञान, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक उपचार, परामनोविज्ञान आदि की तरह संगीत एवं स्वर विज्ञान को भी विज्ञानविदों ने सत्य की कसौटी पर खरा पाया है।

प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति में संगीत का बहुत महत्व रहा है शिवशंकर व डमरू, सरस्वती व वीणा, श्रीकृष्ण व मुरली, विष्णु व पांचजन्य मानो एक-दूसरे के परिचायक से हो गए हैं। वैदिक काल में सामवेद की ऋचाएं संगीत में गाई थीं। उपनिषदकाल में दुदंभी, भेरी, शंख, वीणा आदि वाद्य-यंत्र प्रचलन में थें। कंठ माधुर्य के लिए सोमरस पान करने का उल्लेख भी उपनिषद में मिलता है, वाल्मीकि, रामायण, महाभारत, हरिवंश, जातक कथाओं, अनेक जैन एवं पाली ग्रंथों में संस्कृत के नाटकों में भी संगीत के विषय में अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

संगीत शास्त्रों के अनुसार श्री राग क्षय रोग निवारण में, भैरवी राग प्रजा की सुख-शांतिवर्धन में एवं शकरा राग युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाले सैनिकों में अदम्य शौर्य एवं साहस भर देने के लिए उपयोगी है। अध्यात्म में नादब्रह्म के रूप में संगीत की गहरी चर्चा हैं। इस साधना के पारंगत मेघ मल्हार गाकर वर्षा कराते हैं और दीपक राग गाकर बुझी हुई ज्योति जलाते रहे हैं। यह प्रत्यक्ष भी हो सकता है एवं आलंकारिक भी। संगीत से शुष्क एवं नीरस मन में सरसता बरस सकती है और बुझे हुए उत्साह में स्फूर्ति की ज्योति की पुनरोदय भी हो सकती है।

प्राणी और पादप जगत भी है मंत्रमुग्ध- चिली के चिड़ियाघरों में संगीत के प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया। वैज्ञानिकों ने कटघरों के बाहर विविध प्रकार के संगीत के टेप बजाए। देखा गया कि पशु-पक्षी अपने सामान्य कार्यों को छोड़कर संगीत के स्त्रोत के निकट आकर मंत्र-मुग्ध से बैठ गए। बंदर जैसे चंचल और उपद्रवी जीव आपस में चें-चें करना छोड़ चुपचाप बैठे रहे, परंतु आक्रोश, उत्तेजना भरे एवं डरावने टेप ने उन्हें उत्तेजित कर दिया और आक्रोश में वे एक-दूसरे पर हमला करने लगे एवं तोड़-फोड़ पर उतारु हो गए। पक्षियों में घबराहट फैल गई। जलचरों पर भी संगीत का ऐसा ही प्रभाव देखा गया। संगीत के द्वारा पशु-पक्षियों में भाव-संचार का यह प्रत्यक्ष प्रभाव देखा गया।

वनस्पतियां भी संगीत के प्रभाव से अछूती नहीं हैं। सोवियत वैज्ञानिकों के एक दल ने गेहूं पर कर्णातीत ध्वनि का प्रतिदिन दस मिनट के लिए प्रयोग कई दिनों तक किया। परिणामस्वरूप गेहूं में पालरोधक क्षमता का विकास हुआ एवं खाद-पानी आदि समान परिस्थितियों के बावजूद संगीत के प्रयोगवाले गेहूं की पैदावार बढ़ी हुई पाई गई।

नृत्य में सङ्गीत के गायन, वाद्य और अङ्गों द्वारा भाव भृङ्गी प्रदर्शित्त करना ये तीनों अङ्ग आ जाते हैं। इसीलिये सभी का नृत्य से मनोरञ्जन होता है।

साहित्य और सङ्गीत संसार में दो ही रस अभिव्यक्ति के साधन है। जो इनसे हीन हैं वे पशु सदृश हैं। पशुओं पर साहित्य का कुछ प्रभाव पड़ता है या नहीं यह कहना तो कठिन है, किन्तु सङ्गीत का प्रभाव तो पशुओं पर अवश्य पड़ता है। गान्धार में गाने से सब गौएँ एकत्रित हो जाती हैं और कान खड़े करके गान सुनने लगती है। हिरन गान के लोभ से ही प्रान गँवाते हैं। व्याध मीठे स्वर से बीन बजाते हैं। हिरन उस गान को सुनकर आत्म विस्मृत हो जाते हैं उस दशा में व्याध उनका वध

कर देते हैं, पकड़ लेते हैं। सर्प आंखों से ही सुनता है, उसके कान नहीं होते, फिर भी सङ्गीत सुनकर वह झूमने लगता है। इसी प्रकार संसार के समस्त प्राणी प्रकृति के इस मनमोहक सङ्गीत के चक्कर में ऐसे फँसे हुए हैं, कि अपने आपको भूल गये हैं। जिस सङ्गीत से आत्मविस्मृति न हो- अपना आपा भुलाया न जा सकता हो- वह सङ्गीत नहीं, बेसुरा रुदन है। रुदन भी तो सुस्वर हो। कोई भी देवता सङ्गीत के बिना नहीं रह सकता। सङ्गीत शास्त्रों में बड़े विस्तार के साथ वर्णन आता है कि कौन देव किस स्वर में गाते हैं। लिखा है अग्नि षड्ज स्वर में गाते हैं। ब्रह्माजी रिषभ में गाते हैं, चन्द्रमा गान्धार में और विष्णु मध्यम में। पञ्चम में नारद और धैवत और निषाध में तुम्बुरु गन्धर्व गाते हैं। कोई ऐसा देवता न होगा जिसका कोई-न-कोई विशेष वाद्य न हो सरस्वती सदा वीणा लिये रहती हैं, भोले बाबा डमरू बजाते हैं। विष्णु भगवान अपने पाञ्चजन्य शङ्ख को कभी हाथ से छोड़ते ही नहीं। नारद की वीणा विश्व में प्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण की मुरली के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जाता। भगवान की प्राप्ति करने के दो ही साधन हैं। ध्यान और गान। जो ध्यान गान दोनों में से एक भी नहीं जानता उसका इस लोक में और परलोक में सर्वत्र अपमान होता है। यह सम्पूर्ण विश्व में ही व्याप्त है।

नाचना गाना और बजाना इन तीनों का ही नाम सङ्गीत है। तीनों मिलकर ही सङ्गीत कहाते हैं। भली भाँति जो गाया जाय उसी का नाम सङ्गीत है। संसार सङ्गीत के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। सभी अपना-अपना नाच, नाच रहे हैं। सभी अपनी-अपनी पृथक् ढपली पृथक् राग लेकर अपने-अपने पृथक् गीत गा रहे हैं। सम्पूर्ण मानसिक संकल्प को उस पर सीमित कर दो, तो यह सम्पूर्ण विश्व एक दिव्य नृत्य करता हुआ दिखायी देगा।

सर्वप्रथम शब्द ब्रह्म प्रणव की उत्पत्ति हुई है। उसी का नाम अनहद है। उस ओंकार शब्द से ही समस्त वेद शास्त्रों का विस्तार हुआ। जीव उसी की संज्ञा है जो प्राणों को धारण करे। प्राणों में स्पन्दन राग से होता है, तभी तो राग सबको प्रिय है। राग कहते हैं आसक्ति को। जिसमें मन तल्लीन हो जाय वही समझो राग है। यह होता है सङ्ग से। संसार में मन का रंजित हो जाना, वह राग कहलाता है, वही राग भगवान में हो जाय, तो उसकी प्रेम संज्ञा है। राग में और प्रेम में तात्विक कोई भेद नहीं; राग ही रस को प्रकट करता है। सर्वरसों में श्रृङ्गार रस सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिये दो ही मन को तल्लीन करनेवाले आनन्द हैं, विषयानन्द और ब्रह्मानन्द। संसारी श्रृङ्गार में राग होगा तो मन संसार विषयों में रँग जायगा। वही राग श्रीराधा-कृष्ण के श्रृङ्गार रस में रँग जायगा तो वह नित्य रास का अधिकारी होगा। राग बिना रूप के होता नहीं। जहाँ राग और रूप दोनों मिल जाते हैं वहीं रास आरम्भ हो जाता है। संसार में श्रीकृष्ण और गोपियों से बढ़कर कोई रूपवान नहीं। उनका-सा राग-अनुराग-संसार में कहीं नहीं। राग का यथार्थ मर्म विरही ही जान सकता है। जिसके हृदय में कसक नहीं, टीस नहीं, वह राग क्या समझेगा।

सात-सात स्वरों का एक सप्तक होता है षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाध और धैवत ये सात स्तर हैं। इक्कीस मूर्च्छना हैं। प्रत्येक ग्राम की सात-सात मूर्च्छना बताई हैं।

मयूर सदा षड्ज स्वर में कूकता है, गौ सदा वृषभ स्वर में रम्हाती हैं। बकरी गान्धार में मिमियाती है, क्रौंच पक्षी मध्यम स्वर में बोलता है, वसन्त ऋतु में कोकिला पञ्चम स्वर में कुहू-कुहू करती है, घोड़ा धैवत स्वर में हिनहिनाता है और हाथी निषाद स्वर में बोलता है। इन सब स्वरों की पृथक्-पृथक् जाति हैं, वर्ण हैं। सङ्गीत शास्त्रों में स्वरों का विशेष विस्तार किया गया है। शुद्ध संगीत से रस की उत्पत्ति होती है और रस ही ब्रह्म का एकमात्र रूप है।

गायन के साथ वाद्य आवश्यक है। संसार में सहस्त्रों भाँति के बाजे हैं, उन सबको शास्त्रकारों ने चार भागों में विभक्त करके उनकी चार संज्ञायें बना दी हैं। संस्कृत में इनकी तत, सुषिर, घन और अनवद्ध ये संज्ञायें हैं। जो तार से बजने

वाले बाजे हैं जैसे वीणा, तानपूरा, सारंगी। इनमें भी दो भेद हैं, एक तो ठोकर से बजनेवाले जैसे सितार, तानपूरा, वीणा आदि। दूसरे गज से बजनेवाले जैसे सारंगी, मोरबीन आदि। सुषिर वे बाजे कहलाते हैं जो फूँक से बजते हैं, जैसे वंशी, मुरली, वेणु, अलगोजा तथा बीन आदि। घन उन बाजों का नाम है जो ताल देते हैं। काँसे आदि के मजीरा, करताल आदि। अनवद्ध वे बाजे कहलाते हैं जो खाल के मढ़े हुए होते हैं और हाथ से बजाये जाते हैं जैसे पखावज, मृदंग, तबला, ढोलक तथा नगाड़े आदि।

गायन में स्वर, ताल और लय तीनों नियमानुसार मिलनी चाहिये। अमुक गीत किन-किन स्वरों में गाया जायगा, उसका ठाठ बनाकर उसे मुख से उच्चारण करना उसे अलाप कहते हैं। बाजों में जो स्वर कहे जायँ वे ज्यों-के-त्यों निकाले जायँ उन्हें गमक कहते हैं। बाजे बजाने की चातुरी यही है कि स्वरों के गमक स्पष्ट प्रकट किये जायँ। पहिले सभी बाजे मिलाये जाते हैं। जब स्वर, ताल और लय एक हो जाय, तब संगीत में रस आता है। तालों के बीच के काल का नाम लय है। लय तीन प्रकार का होता है। द्रुत, मध्य और विलम्बित। जैसे १६ मात्रा हैं, उन्हें ही ३२ मात्रा के समय में शीघ्र ही बजा देना यह मध्य हुआ। उसे ही ६४ मात्रा के समय में बजा देना द्रुत हुआ। इस प्रकार कंठ और बाजों का स्वर ताल और लय एक हो जाने से जो बोल मुख से निकले, वे ही स्पष्ट बाजे से भी सुनायी दें। उन्हीं को भावों के द्वारा व्यक्त करें तो उसका नाम नृत्य है।

दूसरों के कृत्यों का अनुकरण करने का नाम नाटक है। उसी के संस्कार को नृत्य कहते हैं। नृत्य में मन के सभी भाव चेष्टा द्वारा प्रकट किये जाते हैं। नवों रसों को बिना बोले केवल अङ्ग विक्षेपों द्वारा ही व्यक्त किया जाता है। यह शास्त्र भी बड़ा गहन है। नृत्य दो प्रकार का होता है। एक नाट्य नृत्य, दूसरा लास्य नृत्य। नाट्य नृत्य नाटक अभिनयों में किया जाता है। उसके लिये रङ्गमंच की आवश्यकता होती है। वह रङ्गमंच-नाट्यमंडप में ही होता है। लास्य नृत्य जहाँ भी चाहें किया जा सकता है। जो नृत्य भाव और रस से समन्वित हो, उस ताल-काव्य और गीत के अनुसार चलनेवाला हो वही सुखप्रद नृत्य रस की वृद्धि में हेतु बताया गया है। नृत्य की भावभङ्गी के बहुत-से भेद हैं।

संगीत साधना फिर चाहे गायन हो, वादन हो, कलाकार को एक ही मुद्रा में घंटों बैठे रहना पड़ता है। उसी तरह से योग में भी एक अवस्था में बैठना आवश्यक है।

संगीत को ईश्वर का दर्जा प्राप्त है, इसीलिए इस विद्या में शुद्धता और शास्त्रीयता का विशेष महत्त्व है। सात शुद्ध और पांच कोमल स्वरों के माध्यम से मन को साधने का उपाय है संगीत। एक तरफ जहां योग से मनुष्य शरीर, मन और मस्तिक को साधता है, वहीं संगीत हमारी आत्मा को शुद्ध करता है।

संगीत का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है, आधुनिक एवं मीडिया में बने रहने के इच्छुक संगीतज्ञों को छोड़ दिया जाए तो हर तरह का संगीत शुद्धता व पवित्रता पर जोर देता है। स्वरों की उपासना, रियाज, शास्त्र शुद्ध पद्धति द्वारा नाद ब्रह्म की आराधना कर अंतर्मन में गहराई तक उतारना संगीत का मुख्य लक्ष्य है। इसलिए संगीत शास्त्र व आध्यात्मिक एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, क्योंकि दोनों का उद्देश्य समान है आत्मसाक्षात्कार।

मानव जीवन की आवश्यकताओं में पहला सुख निरोगी काया माना गया है। निरोगी शरीर व मस्तिष्क हर किसी के लिए आवश्यक है। आत्म साक्षात्कार हेतु प्रयासरत कई साधक बीमार शरीर के कारण प्रगति नहीं कर पाते हैं। जिस प्रकार संगीत एक उपासना का तरीका है उसी प्रकार का योग शास्त्र जीवन का मित्र है। यदि शरीर स्वस्थ रहे तो हम जीवन का

आनंद ले सकते हैं। संगीत में रियाज के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है। योग शास्त्र हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक है। मन की, मस्तिष्क की एकाग्रता, प्रसन्नचित्त व्यक्तित्व योग शास्त्र की देन है। संगीत में स्वरों की शुद्धता पर जोर दिया जाता है, पर योग शास्त्र में आसन व मुद्राओं पर जोर दिया जाता है। दोनों में ही स्वर व मुद्रा की श्रेष्ठता से आनंद और स्वास्थ्य पाया जा सकता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो दोनों शास्त्र एक-दूसरे के पूरक हैं।

संगीत साधना फिर चाहे गायन हो, वादन हो, कलाकार को एक ही मुद्रा में घंटों बैठे रहना पड़ता है। उसी तरह से योग में भी एक अवस्था में बैठना आवश्यक है। संगीत में एक ही स्थान पर साधना करने के लिए शरीर, मन व मस्तिष्क पूर्ण स्वस्थ होना चाहिए और इसके लिए योग सर्वश्रेष्ठ है। योग से शरीर, मन, मस्तिष्क स्वस्थ रहता है। मनुष्य एकाग्र रहता है व प्रसन्न मन से काम करता है। विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि संगीत साधना व योग साधना दोनों से मनुष्य के जीवन में शक्ति का विकास होता है। अत: कहा जा सकता है कि शरीर तथा मन को स्वस्थ्य, प्रफुल्लित रखने के लिए योग शास्त्र व संगीत शास्त्र दोनों समान रूप से आवश्यक है। दोनों से शरीर, मन, मस्तिष्क स्वस्थ रहता है, एकाग्रता रहती है। योग की तरह ही संगीत से तनाव भी दूर होता है।

संगीत का असली आनंद सड़क पर, बगीचे में, बरामदे में, छत पर सुबह, शाम घूमते हुए उठाना चाहिए। रात में सोने से २ घंटे पहले सुपाच्य भोजन करना चाहिए और दिन में कम से कम एक बार दिल खोलकर हंसना चाहिए।

राग, रूह और रब का रिश्ता मन को अद्वैत की मस्ती में भिगोता है

समूचे भारतीय उपमहाद्वीप और उसके आसपास के इलाकों में सदियों से संगीत की रागों और उनकी धुनों के जरिये अपने ईश्वर की इबादत करने की बेमिसाल परंपरा रही है। यहां की आबोहवा में हर देश काल के दरमियान राग, रूह और रब का रिश्ता मन को उस असल मस्ती की बौछारों में भिगोकर तरबतर करता रहा है जो दुनियादारी की गुलामी छोड़कर अद्वैत की मौज भरी सल्तनत पाने का एक रास्ता है।

इस समूची सरजमीं पर जिंदगी के मुकम्मल मकसद को समझाते पैगामों, प्रार्थनाओं, कलमों में रागों की दस्तक साफ-साफ सुनाई देती है। रागों को यहां के हुक्मरानों से लेकर आम लोगों ने मालिक की रजा में राजी होने के बड़े माध्यम के रूप में चुना। कई तो अपनी हस्ती को मिटाकर उसमें एकरूप हो गए।

नाच गाने के माध्यम से अपने खुदा की बंदगी करने का ये नायाब तरीका समय और समाज को खूब भाया। मठों, खानखानों, दरगाहों, इबादतगाहों, डेरों और गुरुओं के द्वारों में सच्चे दिलों से निकली अनगिनत पुकारें उस एक तक पहुंची। बंदों के दुख-दर्द दूर भी हुए। बहुत बड़े स्तर पर संगीत ने रूहानियत की भाव भरी ऊंची लहर उठाई, जिनके रागों की मौजों पर सवार होकर कितनी ही किश्तियां भवसागर पार करने की ओर बढ़ीं। कहा जाता है कि फारस के जलालुद्दीन रूमी के मार्फत सूफी संगीत अफगानिस्तान, बलूच, सिंध से थार के रेगिस्तान को पार करके एक ओर दक्खन और दूसरी ओर समूजे बंगाल में फैल गया।

सिंध में शाह लतीफ, शाह इनायत, सचल सरमस्त, रोहन फकीर, बादल फकीर, चैनराम सामी, स्वामी मेंघराज, यूसुफ बेदिल, शाह अब्दुल करीम जैसे कई रहस्यवादी संत फकीर हुए। इन्होंने सिंधी, उर्दू, सराइकी, पंजाबी, फारसी, अरबी जुबानों में अपने अपने कलामों को खूब सजाया। इन्हें सारंगी, तबले, अल्गोजों, करतालों और तंबूरों की जबदरस्त संगत मिली। रागियों के जत्थे घूम-घूमकर इन वाणियों के मर्म को आमजन में साझा करते रहे, जिससे लोक भाषा में जीवन को

परिभाषित करती वास्तविक शिक्षा भी सलीके से प्रसारित हुई। मन, माया, नाम, शब्द, आशिकी, विरह, विनती, सतगुरु, इश्क जैसे अनेक पेचीदा विषयों का सरलीकरण करके रागियों ने संगीतमय प्रस्तुतियों द्वारा अपने परमात्मा रूपी प्रियतम की खोज के सुगम मार्ग को दर्शाया है।

सूफी संगीत की अविरल धारा ने रूहानी विकास की चारों अवस्थाओं- शरीयत, तरीकत, मार्फत और हकीकत तक पहुंचना सिखाया है और उसमें मिलकर उस जैसा बन जाना सिखाया है। इसका आधार इस जमीं पर पहले से रचे बसे नाथ, जोगी, जंगम और बैरागियों जैसे संप्रदायों की वाचिक परंपराओं में साफ दिखाई देता है। गोरखवाणी, भृतहरि और अनेक किस्म की गुरु वाणियों में भी उसकी अनुगूंज सुनाई देती है।

समूचे भारतीय उपमहाद्वीप और उसके आसपास के इलाकों में सदियों से संगीत की रागों और उनकी धुनों की मार्फत अपने ईश्वर की इबादत करने की बेमिसाल परंपरा रही है। यहां की आबोहवा में हर देश काल के दरमियान राग, रूह और रब का रिश्ता मन को उस असल मस्ती की बौछारों में भिगोकर तरबतर करता रहा है जो दुनियादारी की गुलामी छोड़कर अद्वैत की मौज भरी सल्तनत पाने का एक रास्ता है।

इस समूची सरजमीं पर जिंदगी के सही मकसद को समझाते पैगामों, प्रार्थनाओं, कलमों में रागों की दस्तक साफ-साफ सुनाई देती है। रागों को यहां के हुक्मरानों से लेकर आम लोगों ने मालिक की रजा में राजी होने के बड़े माध्यम के रूप में चुना। कई तो अपनी हस्ती को मिटाकर उसमें एकरूप हो गए।

नाच गाने के माध्यम से अपने खुदा की बंदगी करने का ये नायाब तरीका समय और समाज को खूब भाया। मठों, खानखानों, दरगाहों, इबादतगाहों, डेरों और गुरुओं के द्वारों में सच्चे दिलों से निकली अनगिनत पुकारें उस एक तक पहुंची। बंदों के दुख-दर्द दूर भी हुए। बहुत बड़े स्तर पर संगीत ने रूहानियत की भाव भरी ऊंची लहर उठाई, जिनके रागों की मौजों पर सवार होकर कितनी ही किश्तियां भवसागर पार करने की ओर बढ़ीं। कहा जाता है कि फारस के जलालुद्दीन रूमी के मार्फत सूफी संगीत अफगानिस्तान, बलूच, सिंध से थार के रेगिस्तान को पार करके एक ओर दक्खन और दूसरी ओर पूरे बंगाल में फैल गया।

सिंध में शाह लतीफ, शाह इनायत, सचल सरमस्त, रोहन फकीर, बादल फकीर, चैनराम सामी, स्वामी मेंघराज, यूसुफ बेदिल, शाह अब्दुल करीम जैसे कई रहस्यवादी संत फकीर हुए। इन्होंने सिंधी, उर्दू, सराइकी, पंजाबी, फारसी, अरबी भाषाओं में अपने अपने कलामों को खूब सजाया। इन्हें सारंगी, तबले, अल्गोजों, करतालों और तंबूरों की जबदरस्त संगत मिली। रागियों के जत्थे घूम-घूमकर इन वाणियों के मर्म को आमजन में साझा करते रहे, जिससे लोक भाषा में जीवन को परिभाषित करती वास्तविक शिक्षा भी सलिके से प्रसारित हुई। मन, माया, नाम, शब्द, आशिकी, विरह, विनती, सतगुरु, इश्क जैसे अनेक पेचीदा विषयों का सरलीकरण करके रागियों ने संगीतमय प्रस्तुतियों द्वारा अपने परमात्मा रूपी पृियतम की खोज के सुगम मार्ग को दर्शाया है।

सूफी संगीत की अविरल धारा ने रूहानी विकास की चारों अवस्थाओं- शरीयत, तरीकत, मार्फत और हकीकत तक पहुंचना सिखाया है और उसमें मिलकर उस जैसा बन जाना सिखाया है। इसका आधार इस जमीं पर पहले से रचे बसे नाथ, जोगी, जंगम और बैरागियों जैसे संप्रदायों की वाचिक परंपराओं में साफ दिखाई देता है। गोरखवाणी, भृतहरि और अनेक किस्म की गुरु वाणियों में भी उसकी अनुगूंज सुनाई देती है।

सफलता-असफलता, जय-पराजय, जीत-हार

किसी को कार्य का आरंभ करते ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है और किसी का परम प्रयत्न भी निष्फल हो जाता है।

उद्यमी व्यक्ति योग्य न हो तो भी सफलता प्राप्त कर लेता है।

सफलता उम्र की मोहताज नहीं होती, क्योंकि ऐसे लोगों की एक लम्बी सूची है, जिन्होंने कम उम्र में ही सफलता का स्वाद चख लिया है। बहुत से लोगों का ऐसा मानना है कि जीवन में पाने को बहुत कुछ है। जीवन में कभी भी थोड़ा पाकर संतुष्ट नहीं होना चाहिए, इससे विकास के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं।

हर व्यक्ति जीवन में सफल होना चाहता है। लेकिन हर बार वह सफल हो, यह जरूरी भी नहीं। सफलता की कोई कसौटी नहीं। कोई सफलता पाने के बाद भी वह छोटी लग सकती है और व्यक्ति उससे बड़ी सफलता पाने प्रयास में जुट जाता है। जब उसे वह बड़ी सफलता नहीं मिलती, तो वह निराश होता है। ऐसे में निराश होना बेईमानी है। आपको हर कदम पर सचेत और जागरूक रहने की जरूरत है, जिससे आप हमेशा फूंक कर कदम रखें और आशातीत सफलता को हासिल कर सकें।

स्पष्ट हो दृष्टिकोण- ऐसे कई लोग हैं, जो सफलता के लिए कठोर परिश्रम करते हैं, लेकिन सफलता कुछ गिने-चुने लोगों को ही मिलती है। हम इसे तकदीर का खेल कहते हैं। पर यदि हम इसे विश्लेषणात्मक नजरिए से देखें, तो पाएंगे कि सफल एवं विफल व्यक्तियों में एक बड़ा अंतर है। हालांकि कठोर परिश्रम दोनों करते हैं, लेकिन सफल व्यक्तियों के पास एक स्पष्ट दृष्टिकोण होता है। उन्हें प्रस्तुत समस्या की समझ होती है और उसके पास निदान की तर्कपरक, व्यावहारिक योजना भी होती है।

लगन और उत्साह- सफलता के मार्ग पर व्यक्ति तभी दौड़ सकता है, जब उसमें लगन एवं उत्साह की ऊर्जा हो। समर्पण और चाहत की मदद से लगन और उत्साह को आगे बढ़ाया जा सकता है। जो लोग लगन और उत्साह से समय के साथ चलते हैं, उन्हें सफलता जरूर मिलती है। सफलता पाने से ज्यादा कठिन इसके अहसास को बनाए रखना भी है।

जब विपत्तियां या मार्ग में रोड़े आए तो उनसे पीछा नहीं छुड़ाना चाहिए, अपितु उनका मुकाबला करना चाहिए। जीवन में सफलता प्राप्त करने का यही मंत्र है।

चलना ही जीवन है। जहाँ अटका, वहीं मृत्यु है। यदि जीवन में सफलता प्राप्त करनी है तो विश्वास, प्रेम और बुद्धि को साथ लेकर चलो। यही सफलता का मूलमंत्र है।

जीवन में सफलता पाना प्रतिभा और अवसर की अपेक्षा एकाग्रता और निरन्तर प्रयास पर कहीं अधिक अवलंबित है। सफलता कोई रहस्य नहीं है, वह केवल अति परिश्रम चाहती है।

सफलता का कोई गुप्त छोटा रास्ता नहीं होता है। सफलता का तो एक ही रास्ता है, पूरी तैयारी, कडी मेहनत व यदा कदा मिलनेवाली असफलताओं से मिली हुई प्रेरणा।

सफलता का ५० प्रतिशत श्रेय इस पर निर्भर है कि आप क्या जानते है और बाकी ५० प्रतिशत जो आप जानते है उसे किस तरह बता पाते है।

सफलता का अर्थ है अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे मिलनेवाली सफलताओं के बीच तालमेल बिठाना। आप व्यापार में सफल नहीं माने जा सकते अगर आपकी निजी जिन्दगी में तूफान आया हुआ हो। सफलता अपने में बडी चीज है लेकिन वह सब कुछ नहीं है। बडी चीज है कि आप उसे पाने की प्रक्रिया का कितना लुत्फ उठाते है। सफलता पाने के लिये हजार बार आगे बढ़ो और यदि हजार बार असफल हो जाओ तो फिर एक बार प्रयास अवश्य करो, सफलता जरूर मिलेगी। हम विषाद करते रहते है कि साधनों की कमी है तो सफलता किस तरह मिलेगी। वस्तुओं की अपेक्षा आत्मविश्वास, आत्मबल बढ़ाईये। सफलता आपके निकट आयेगी।

व्यवसाय में सफलता के लिये यह जानना बेहद जरूरी है कि सफलता के पीछे पूरे सहयोगी दल का हाथ होता है और पूरे सहयोगी दल को उस सफलता का श्रेय मिलना चाहिये।

सिर्फ दूरदृष्टि होने से सफलता नहीं मिलती। सफलता के लिये श्रम करना पडता है। जैसे सिर्फ सीढ़ी की तरफ टकटकी लगाकर देखने से कोई ऊपर नही चढ़ पाता उसे ऊपर जाने के लिये सीढ़ियां चढ़नी पड़ती है।

बड़प्पन इस बात में नहीं है कि आप कभी असफल नहीं हुए, बल्कि बड़प्पन इस बात में है कि असफलता के बावजूद आपने उठने की हिम्मत दिखाई।

मेहनत कभी बेकार नहीं जाती। यह विश्वास ही हमें आगे बढ़ने एवं निरंतर प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है। हमारा हर प्रयास हमें एक कदम आगे बढ़ाता है और हम जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे हमारे लिए सफलता के रास्ते खुलते जाते हैं। जो व्यक्ति विश्वास नहीं करता वो ज्यादा देर तक प्रयास नहीं कर पाता और जब वह प्रयास नहीं करता तो दूर से उसे आगे के सभी रास्ते बंद नजर आते हैं, क्योंकि सफलता के रास्ते हमारे लिए तभी खुलते हैं, जब हम उसके बिल्कुल करीब पहुंच जाते हैं।

परिश्रम व प्रयास- किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिए लगातार परिश्रम व प्रयास करते रहना जरूरी है। परिश्रम के अभाव में सफलता नहीं मिलती। असल में सफलता के लिए संकल्प, कर्म के साथ उद्यम यानी परिश्रम की भावना के तय पैमानों को अपनाए बिना कामयाबी की मंजिल को छूना व उस पर कायम रहना मुश्किल है।

संयम- महात्मा विदुर के अनुसार, सफलता के लिए संयम भी बहुत जरूरी है। छोटी सी सफलता मिलने पर ही लोग मन पर संयम नहीं रख पाते और बड़ी बड़ी बातें करने लगते हैं। इस उतावलेपन में वह अपना ही नुकसान कर बैठते हैं।

दक्षता- सफलता के लिए दक्षता यानी काम में कुशलता होना जरूरी है। कुछ लोग जल्दी सफलता पाने के लिए दक्षता के बिना ही प्रयास शुरू कर देते हैं, लेकिन वह लक्ष्य तक पहुंच ही नहीं पाते। अत: सफलता पाने के लिए किसी भी कार्य या कला में महारत होना बहुत ही जरूरी है।

धैर्य- महात्मा विदुर के अनुसार, सफलता पाने के लिए मन में धैर्य होना चाहिए। जल्दबाजी में की गई छोटी-गलती आपका सपना तोड़ सकती है। तमाम कोशिशों के बाद भी मनचाहे परिणाम न मिलने या अपेक्षा पूरा न होने पर लक्ष्य से न भटकें। मजबूत संकल्प और दोगुनी मेहनत के साथ जुट जाएं।

स्मृति- स्मृति यानी याददाश्त। सफलता पाने के लिए स्मृति यानी याददाश्त का तेज होना भी जरूरी है। ये गुण भी सभी लोगों में नहीं होता। आपका दिमाग जितना तेज होगा, याददाश्त भी उतनी पैनी होगी और सफलता भी आपके कदम

चूमेगी। सोच-विचार कर कार्यारम्भ करना- कोई भी काम शुरू करने से पहले उसके विषय में पूरी तरह से सोच-विचार अवश्य करना चाहिए। बिना सोच-विचार शुरू किए गए कार्य में सफलता मिलने में संदेह रहता है या आगे जाकर परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है।

आदमी के दिमाग में अपार शक्ति है। मनुष्य के विचार का उसके जीवन पर गहरा प्रमाण पड़ता है। जो व्यक्ति दृढ़ इच्छा के साथ अपना कदम बढ़ाता है उसे मंजिल जरूर मिलती है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो करने के लिए तो बहुत कुछ सोचते हैं। लेकिन वे कुछ भी नहीं कर पाते। वे कुछ कर पाने में इसलिए भी समर्थ नहीं होते, क्योंकि उनके पास दृढ़ इच्छा की कमी है। जीवन में मंजिल पाने के लिए लोगों को खुद के अंदर दृढ़ इच्छा का विकास करना चाहिए। कई बार लोगों के मन में अशुभ विचार पनपने रहते हैं। इससे भी लोगों को सफलता मिलने में कठिनाई होती है। यदि मन में नकारात्मक विचार लानेवाले सकारात्मक तरीके से विचार करना शुरू कर दें, तो उन्हें मंजिल जरूर मिलेगी।

छोटे छोटे लक्ष्य बनाकर चलें, अपने कार्य की क्षमता बढ़ाएं और आगे बढ़ते जाएं। बेकार की बातों पर ध्यान न दें। सफल होने के लिए अगर आप प्रेरणा तलाश रहे हैं तो अपनी उम्र से थोड़े ज्यादा बडे और सफल लोगों के संग में रहें।

जरूरी नहीं कि पहले प्रयास में ही कामयाबी मिल जाए। हो सकता है कि आपको लगातार असफलता ही मिले, लेकिन जो लोग बिना रुके, बिना थके आगे बढ़ने की दिशा में लगातार प्रयासरत रहते हैं, कामयाबी अंतत: उन्हीं को मिलती है।

ओलंपिक खेलों के इतिहास में सबसे ज्यादा पदक जीतने का रिकॉर्ड बनानेवाले २७ साल के अमेरिकी तैराक माइकल फेल्प्स को शुरू से ही कामयाबी नहीं मिलने लगी थी। बहनों के प्रोत्साहन पर महज सात वर्ष की उम्र में तैराकी सीखने की शुरुआत करनेवाले फेल्प्स ने बेशक तीन साल बाद ही अपने आयु वर्ग में राष्ट्रीय रिकॉर्ड बना लिया था और १५ साल की उम्र में वर्ष २००० के ओलंपिक में चुने जानेवाले सबसे युवा अमेरिकी तैराक भी बने। लेकिन उस ओलंपिक में वह कोई मेडल नहीं जीत सके। हालांकि इस शुरुआती असफलता ने उनके प्रयासों को कम नहीं होने दिया। वह पूरी शिद्दत से अभ्यास करते रहे और ठीक नौ महीने बाद सबसे कम उम्र में तैराकी की वर्ल्ड चैंपियन में भाग लेकर वर्ल्ड रिकॉर्ड बनाते हुए दुनिया को चकित कर दिया।

दुनिया में ऐसे और भी कई उदाहरण हैं, जब शुरुआती नाकामी को दरकिनार करते हुए लोगों ने अपनी हिम्मत और जज्बे के बल पर कामयाबी की इमारत खड़ी की। उन्होंने खिल्ली उड़ाने या राह में रोड़ा बननेवालों की कभी परवाह नहीं की। उनके भीतर कुछ करने का जुनून था, जिसे उन्होंने साबित करके दम लिया।

प्रतिस्पर्धा, चुनौतियां और प्रतिकूल परिस्थितियों का डटकर सामना करनेवाले ही विजेता कहलाते हैं। संसाधनों की कमी और अभावों के बावजूद वे सही दिशा में अपनी कोशिशों में कमी नहीं आने देते। वे लगातार आगे बढ़ते रहते हैं। उन्हें असफलता से डर नहीं लगता। यही कारण है कि शुरुआत में बार-बार नाकामयाबी मिलने के बावजूद वे हिम्मत नहीं हारते। उन्हें पूरा विश्वास होता है कि एक न एक दिन उन्हें कामयाबी जरूर मिलेगी। उनके सामने चींटी का उदाहरण भी होता है, जो बार बार गिरने के बावजूद दीवार पर चढ़ना जारी रखती है और एक समय वह ऊपर पहुंच जाती है।

हो सकता है आपने जो पढ़ाई की हो, उसके आधार पर बहुत प्रयास करने के बाद भी आपको कोई नौकरी नहीं मिल पा रही हो। ऐसे में आप हताश होकर यह न सोचें कि आपने बहुत विचार करके यह कोर्स किया था। लेकिन अब लगता है

कि इसके आधार पर कोई नौकरी नहीं मिल पाएगी। ऐसी सोच को खुद पर कभी भी हावी न होने दें। हो सकता है कि आपने अब तक जो पढ़ा है, वह बाजार की मांग के अनुसार व्यावहारिक न रह गया हो। ऐसे में हो सकता है कि आपको अपनी स्किल अपडेट करनी पड़े। ऐसी स्थिति में समय गंवाने की बजाय तत्काल सही दिशा में कदम बढ़ाएं और सही संस्थान से कोई ऐसा कोर्स कर लें जो बाजार में आपकी कीमत बढ़ाने में मददगार साबित हो सके। इस प्रक्रिया में कहीं कोई पेशा मिलता है, तो उसे ज्वाइन करने से भी पीछे न हटें। भले ही वह नौकरी आपके लिए बहुत संतोषजनक न हो। इससे आपको आत्मनिर्भरता का विश्वास बढ़ेगा। नौकरी के लोभ में कहीं स्किल का अपडेशन छूट न जाए, क्योंकि इसी के बल पर तो आप अपनी मनपसंद जॉब पाने की राह पर आगे बढ़ पायेंगे।

यह बात ज्यादा मायने नहीं रखती कि आप अपने काम को लेकर कितने उत्साही हैं, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि आपका वह उत्साह सही दिशा में है या नहीं, क्योंकि आपके जीवन में बहुत-सी बातें होती हैं जो लक्ष्य पर केंद्रित नहीं होती। आप अगर जरा-जरा सी बातों पर अंमल करें, तो संभव है आपको लक्ष्य पाना आसान लगे।

ऐसे लेख या किताबें पढ़ें, जो आपको वास्तव में प्रेरणा दें। मसलन यदि आप किसी व्यक्ति से प्रभावित हैं तो उनके बारे में पढ़ें। उनका संघर्ष आप में भी जोश भर देगा। आप पढ़ने के शौकीन हों, तो ऐसी प्रेरणादायी कैसेट सुन सकते हैं। दीवारों पर सूक्तियां या सूत्र वाक्य लिखना भी बहुत कारगर होता है। वहां से गुजरते हुए जब भी आप इन्हें देखेंगे, आपको अपना लक्ष्य याद आ जाएगा, पढ़ने या सुनने के अलावा उस दिशा में काम भी करना है।

जीवन में हर महत्वपूर्ण बात को साकार होने में वक्त लगता है। यह आपको तय करना है कि किसी लक्ष्य को कितने वक्त में पूरा करना है। जब भी आप लक्ष्य तय करें, जैसे-लक्ष्य का एक भाग इतने दिन में पूरा हो जाना चाहिए। इससे आप जल्दबाजी में नही रहेंगे और एक भाग पूरा हो जाने पर आमसंतुष्ट महसूस करेंगे। समय सीमा तय करने के बाद आपको एक और महत्वपूर्ण काम करना है और वह है कड़ी मेहनत। अगर आप उन कामों पर नजर डालेंगे, जिनका परिणाम सुखद नहीं रहा, तो आप पाएंगे कि इसके पीछे आपका नजरिया गलत था। जब तक आप अपना नजरिया सकारात्मक नहीं रखेंगे दिक्कतें आती रहेंगी। इसका सबसे अच्छा तरीका है मुश्किलें आने पर भी सकारात्मक सोच न छोड़ें, क्योंकि जितना अच्छा आप सोचते हैं, उसका कुछ प्रतिशत अच्छा कर पाते हैं।

हममें से अधिकांश लोग समाधान के बजाए समस्याओं पर बातें करते हैं। जैसे- गाड़ी की सर्विसिंग करनी है, चिट्ठियां डाक में डालनी है, किताबें खरीदनी हैं, बच्चों के अध्यापक से मिलना है और न जाने क्या-क्या। ऐसा नहीं है कि यह बहुत बड़े-बड़े काम हैं, लेकिन हम इन्हें पूरा करने की कोशिश ही नहीं करते। काम के बारे में सोचने के बजाय उसे करना शुरू कर दिया जाए, तो आप अपने लक्ष्य को आसानी से पा सकते हैं। फिर भले ही वे घर के काम हों या दफ्तर के।

यह है सबसे महत्वपूर्ण बिंदु, जो ज्यादातर लोगों को परेशान करता है। बहुत कोशिशों के बाद यदि कुछ शुरू भी कर दिया जाए, तो हम उसे खत्म करना भूल जाते हैं। नतीजतन आपके पास अधूरे कामों का अंबार लग जाता है। ज्यादा महत्वपूर्ण को सबसे पहले चुनें। उसे पूरा करने के बाद ही दूसरा काम शुरू करें, इससे आपके सारे अधूरे काम पूरे हो जाएंगे, बल्कि नए काम आप बेहतर तरीके से कर पाएंगे। शुरू कीजिए इन्हें आज से ही और आनंद लीजिए व्यवस्थित जीवन का। असफलता हताश होनेवालों के लिए है, लक्ष्य प्राप्ति के उत्सुक लोगों के लिए यह प्रेरणा स्रोत है।

बोरियत को स्वयं से दूर रखने का उपाय यह है कि आप सफल व आशावादी लोगों की संगति में रहें। सफलता भी संक्रामक होती है।

हम सभी, समय-समय पर अपने कार्य, मित्रों, निकटजन व यहां तक कि अपने जीवन से भी ऊब जाते हैं। नीरसरता ऐसी मन:स्थिति है, जब हम आसपास की घटनाओं से तंग आ जाते हैं या यह हमारे खाली बैठने के कारण भी हो सकता है। बोर होने के कारण काम को टालने की प्रवृत्ति, अनिर्णय की भावना व कुछ न कर पाने की भावना को प्रश्रय मिलता है। इससे बचने का एक उपाय यह हो सकता है कि आप स्वयं से कुछ प्रश्न पूछें। यदि एक सप्ताह तक भी ऐसा किया तो मन:स्थिति का कारण जान लेंगे। यह निम्नलिखित में से एक या सभी हो सकते हैं। किसी निश्चित लक्ष्य का अभाव, महत्वपूर्ण कार्य की उपेक्षा या सामाजिक जीवन की अनुपस्थिति से बोरियत हो सकती है। अनुमानत: संसार की केवल ३ प्रतिशत जनसंख्या ही अपने तयशुदा लक्ष्यों तक जा पाती है। हमें भी अपना नाम उन ३ प्रतिशत की सूची में लाना है, जो जानते हैं कि अपने मनवांछित लक्ष्य तक कैसे जाना है। दिनचर्या से थकान व नीरसता होना स्वाभाविक ही है। हमें जीवन के विविध पहलू चाहिए, ताकि हमारा अस्तित्व आकर्षक व रोचक बना रहे। यदि बोरियत से बचना चाहते हैं तो जीवन में कोई लक्ष्य चुनें। अस्तित्व के प्रत्येक दिन के लिए हमारे पास लक्ष्य होना चाहिए। यह बोरियत को मिटाने के लिए आवश्यक है।

मैं तो किए जानेवाले कार्यों की सूची के साथ ही दिन का आरंभ करता हूं, ये काम अगले बारह घंटों में किए जानेवाले होते हैं, इनका दीर्घकालीन लक्ष्यों से कोई संबंध नहीं होता। इस तरह मुझे पहले से अनुमान होता है कि मैं किस तरह की गतिविधि को कितना समय देते हुए, दिन के अंत में कितने लक्ष्य पूरे कर सकूंगा। यदि आप जानते ही नहीं कि आप क्या पाना चाहते हैं तो आप उसे कभी नहीं पा सकते। समय प्रबंधन के अनुसार जीवन को संगठित करने से मुझे अल्पकालीन व दीर्घकालीन लक्ष्य पूरे करने में मदद मिलती है तथा बोरियत भी नहीं होती। खाली बैठे रहने से ही सारी समस्याएं व बुराई आरंभ होती है। कई बार कुछ नापसंद काम भी करने पड़ जाते हैं, उन्हें भी पूरे मनोयोग से करें। उस समय हमें यही सोचना चाहिए कि इस नापसंद काम के सकारात्मक परिणाम हमारे लिए कितने लाभदायक हो सकते हैं।

रवैया ही हमारा परिणाम नियत करेगा। समस्याएं तो सभी के जीवन में हैं, उचित मन:स्थिति व प्रवृत्तिवाले व्यक्ति को कोई भी उसका लक्ष्य पाने से रोक नहीं सकता। नकारात्मक व अवसादग्रस्त मानसिक रवैयेवाले व्यक्ति को कोई सहायता नहीं कर सकता। कोई भी काम आसान होने से पहले मुश्किल ही होता है तो हमें निर्भीक भाव से उस कार्य में जुट जाना चाहिए, जिसे हम करना चाहते हैं। सफलता व उपलब्धि की भावना बोरियत के लिए रामबाण औषधि है। **सारी कठिनाइयों व असुविधाओं के बावजूद कामों को प्रभावी तरीके से करते हुए नतीजे पाना ही सफलता कहलाती है।**

बलिदान की बुनियाद पर टिकी होती हैं सफलता की बुलंदियां। हर व्यक्ति सफल होना चाहता है। सफलता भाग्य की फसल और पुरुषार्थ की निष्पत्ति है। हर किसी को वह नसीब नहीं होती। यह सतत जागरूकता, जीवन के प्रति सकारात्मकता एवं अच्छाई की ग्रहणशीलता से संभव है। कुछ अलग पहचान बनाने या सफलता को हासिल करने के लिए जीवन में ग्रहणशीलता जरूरी है। जब भी और जहां भी कोई भी अच्छी चीज दिखे, किसी भी चेहरे पर कोई

विशेषता देखें, उसे आदर से ग्रहण करना सीखें। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है अच्छा बनना, महान बनना, सफल होना। हमें उन भूलों को लगाम देनी होगी, जिनकी स्वच्छंदता आत्मविकास में बाधक बनती है। जो बिना सोचे-समझे जल्दबाजी में जीवन का निर्णय लिया करते है, वे जीवन की सार्थकता पर भी प्रश्नचिह्न लगाते हैं।

सफलता आरोपित नहीं होती, उसे जीतकर हासिल करना होता है। जो व्यक्ति एक-एक पल को कीमती समझकर उसका सही उपयोग करता है, समय को बिल्कुल नष्ट नहीं करता, वह अपने सौभाग्य का निर्माण कर सकता है। इसीलिए भगवान महावीर ने कहा- क्षणभर भी प्रमाद मत करो, अर्थात एक पल भी व्यर्थ मत करो। मैं अपने जीवन को एक पेशा नहीं मानता। मैं कर्म में विश्वास रखता हूं। परिस्थितियों से शिक्षा लेता हूं। यह पेशा या नौकरी नहीं है- यह तो जीवन का सार है।

हर कार्य का परिणाम आना चाहिए, प्रतिफल मिलना चाहिए। यह तभी संभव है जब हम काम को काम नहीं, पूजा मानें। उसकी कद्र करना जानें। तभी हम ऊंचाइयों को छू सकते हैं, उच्चता के शिखर तक पहुंच सकते हैं और सफलता का वरण कर सकते है।

सोना आग की आंच में तप्त होकर शुद्ध बनता है। हीरा तराशने पर चमकता है, हथौड़े की मार सहकर पत्थर प्रतिमा का रूप लेता है। बीज का समर्पण ही उसे वृक्ष का विस्तार देता है। निरोगता के आकांक्षी को कटु दवा का सेवन करना जरूरी है। सफलता की ऊंचाइयां बलिदान की बुनियाद पर हैं। साहस और दृढ़ निश्चय जादुई तावीज हैं जिनके आगे कठिनाइयां दूर हो जाती हैं और बाधाएं उड़न-छू हो जाती हैं।

सफल बनने की अदम्य आकांक्षा रखनेवाले व्यक्ति को दीपक बनकर जलना होता है, फूल बनकर खिलना होता है। हर बात में धीरज रखें, विशेषकर अपने आप से। अपनी कमियों को लेकर धैर्य न खाएं अपितु तुरंत उनका समाधान करना शुरू करें। हर दिन कर्म की नई शुरुआत है। सफलता की यही कसौटी है।

जब मुश्किलें रास्ता बनती हैं तो सफलता चूमती है कदम

आप कभी किसी बहती हुई नदी को देखेंगे तो पाएंगे कि वह निरंतर आगे बढ़ती रहती है, जबतक कि वह सागर से न मिल जाए। रास्ते में बहुत-सी रुकावटों को पार करना पड़ता है, तब कहीं जाकर समुद्र से एकत्व प्राप्त होता है। जीवन में आगे बढ़ने का मूल-मंत्र भी यही है- यदि सफलता के समुद्र से मिलना हो तो बाधाओं से टकराकर आगे बढ़ते रहने का हौसला होना चाहिए। हमें ऐसा मनोभाव अपने अंदर बनाए रखना चाहिए जहां कठिनाइयों को सफलता का सोपान समझा जाए। आजकल मनोविज्ञान की भाषा में इसे ग्रोथ माइंडसेट के नाम से पुकारा जाता है। यह एक ऐसी मनोदशा है जिसमें हर मुश्किल को आगे बढ़ने के माध्यम की तरह देखा जाता है।

कोई सफल और कोई विफल क्यों होता है? वह क्या गुण है जो सफलता के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है? इनमें पाया गया कि जीवन में आगे बढ़ने के लिए सबसे आवश्यक यही ग्रोथ माइंडसेट है। जब बात कामयाबी की हो तो प्रतिभा की बहुत सी बातें की जाती हैं, लेकिन विशेषज्ञों की मानें तो महानता के पथ में प्रतिभा का स्थान बहुत छोटा है। ठीक यही बात पृष्ठभूमि के संबंध में भी कही जा सकती है। सफल होने के लिए सर्वाधिक आवश्यक है वह मनोदशा, जहां हर चुनौती को एक मौके के तौर पर देखा जाता है- खुद को साबित करने का मौका, बाधाओं पर विजय पाने का मौका, जीवन यात्रा

का आनंद उठाने का मौका। जो लोग स्वयं के भीतर इस तरह की मनोदशा पैदा करने में कामयाब हो जाते हैं, जीवन के हर क्षेत्र में सफलता उनके कदम चूमने लगती है।

स्टीव जॉब्स को संगणक व तकनीक के क्षेत्र का सबसे सफल व रचनात्मक व्यक्ति माना जाता है। जॉब्स की कहानी भी बड़ी रोचक है- सन १९७६ में गैरेज से एप्पल की शुरुआत, ८५ में उसी कंपनी से बेदखल किया जाना, ९७ में वापसी कर फिर उसी कंपनी को कंगाल होने से बचाना और २०११ में अपनी मृत्यु तक कंपनी को दुनिया की सबसे धनी कंपनी बनाना। इस यात्रा में उन्होंने सात उद्योगों को बुनियादी तौर पर बदलकर रख दिया- पर्सनल कंप्यूटिंग, फोन, एनिमेशन, संगीत, टेबलेट कंप्यूटिंग, रीटेल और डिजिटल प्रकाशन। जॉब्स के जीवनीकार वॉल्टर आइजेक्सन के अनुसार उनकी सबसे बड़ी खूबी थी चुनौतियों का मजा लेना और उनके रचनात्मक हल निकालना। मुश्किलों को रास्ता बनानेवाले यही करते हैं। जॉब्स ने हर मुश्किल को आगे बढ़ने के माध्यम की तरह लिया। अपने चारों ओर देखें, तो भी यही पाएंगे कि जितना बड़ा व्यक्ति है, उसने उतनी ही बड़ी बाधाओं को पार किया है। इसलिए अगर जीवन में बड़ा बनना हो, तो अपना नजरिया बदलकर इस ग्रोथ माइंडसेट को अपनाना ही सबसे प्रभावी तरीका है।

एक दुखी आदमी रोज घर से मंदिर के लिए निकलता और बिना भगवान के दर्शन किए सीढ़ियों पर से ही लौट जाता। घर से प्रस्थान करने के समय चेहरे पर उदासी होती, लेकिन लौटते हुए वह उत्साह और उम्मीद से भरा होता था। एक दिन पुजारी से रहा नहीं गया। पूछ लिया कि हर कोई यहां भगवान से मांगने आता है, लेकिन आप बिना मांगे लौट जाते हैं, वह भी खुशी-खुशी। उस आदमी ने जवाब दिया, अभी मैं मुश्किल दौर से लड़ रहा हूं। जब सफलता का स्वाद चखने का मौका मिल जाएगा, तब ईश्वर को धन्यवाद देने अंदर जाऊंगा। यह जवाब किसी को भी हैरान कर सकता है। लेकिन इस जवाब में उसके आत्मविश्वास की झलक मिलती है। उसे लगता है कि मांगनेवाला आदमी हमेशा कमजोर होता है।

यह सच है कि सफलता और मुश्किलों के बीच हमेशा छत्तीस का आंकड़ा रहता है। लेकिन इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि बिना मुश्किलों के सफलता के दरवाजे हम नहीं खटखटा सकते। जीवन में सब कुछ आसानी से मिलता होता तो मांगने की जरूरत ही नहीं पड़ती। हम मांगते तभी हैं जब असहाय हो जाते हैं। जब हमारा संघर्ष कमजोर पड़ जाता है, आत्मविश्वास डगमगा जाता है और हम गिरने के भय से ग्रस्त हो जाते हैं। अनुभव बताता है कि मुश्किलें नहीं होती तो आगे का रास्ता खोजना आसान नहीं होता। रॉबर्ट एच. खुलर ने तो इससे भी आगे जाकर कहा है, मुश्किलें हमेशा हारती हैं, संघर्ष करनेवाले हमेशा जीतते हैं। यह संघर्ष ही है जो हमें उठ खड़े होने के लिए तैयार करता है। तब यह महत्व नहीं रखता कि कोई कितनी बार गिरता है, महत्व इस बात का होता है कि वह कितनी बार ऊपर उठ सकता है। लेकिन हममें से ज्यादातर लोगों की समस्या यह है कि हम अस्थायी असफलता से इतना परेशान हो जाते हैं कि हमारी हिम्मत भी जवाब देने लगती है। एक बार टॉमस अल्वा एडिसन के दो सहयोगियों ने निराशा भरे स्वर में कहा कि हमलोग अभी तक कुल सात सौ प्रयोग कर चुके हैं, लेकिन असफलता ही हाथ लगी है। एडिसन ने जवाब दिया, हम असफल नहीं हुए हैं, सच्चाई यह है कि हम इस विषय में बाकी लोगों के मुकाबले सात सौ गुना अधिक जानते हैं।

यह जो सकारात्मकता और आत्मविश्वास है उसका हमारे अंदर भी होना जरूरी है। यह खुद के प्रति आस्था का भाव पैदा करता है और मन को ऊहापोह से मुक्त करता है। अगर आप चौतरफा डर से ग्रस्त हैं तो आपको सिर्फ एक डर को मन

से निकालना है और वह है असफलता का डर। यह डर आपको मनोवैज्ञानिक तौर पर असुरक्षित कर देता है और आप रास्ता नहीं ढूंढ पाते हैं। इस डर से बाहर होते ही आप खुद को स्वतंत्र और मजबूत स्थिति में पाएंगे।

वक्त का सबसे सही उपयोग ही सफलता का मूल मंत्र है

वैश्विकरण के इस दौर में दुनिया तेजी से आगे बढ़ रही है। आगे निकलने की अंधी प्रतिस्पर्धा में जनसाधारण हो या स्कूल का विद्यार्थी, शॉर्टकट अपनाकर सफलता के शीर्ष पर पहुंचना चाहता है। जबकि सफलता प्राप्ति के यही तो दो सबसे बड़े अवरोधक हैं। पहला- शॉर्टकट खोजना और दूसरा- तुरंत फल पाने की लालसा।

विद्यार्थी को जीवन में किसी न किसी मोड़ पर असफलता का सामना करना ही पड़ता है। तब जरूरत होती है अपने भीतर एक किलर इंस्टिंक्ट पैदा करने की। वह किलर इंस्टिंक्ट, जो सोलह साल के सचिन तेंडुलकर ने अपने पहले टेस्ट मैच में वकार यूनुस के बाउंसर से लहूलुहान होने के बाद भी बरकरार रखी और क्रीज पर डटे रहे। अगर उस समय सचिन बाउंसर से डरकर मैदान छोड़ देते तो आज विश्व के महानतम बल्लेबाजी में उनकी गिनती न होती।

सफलता की इबारत लिखनेवाले व्यक्ति दीर्घकालिक चिंतक होते हैं। वह जीवन में आनेवाली हरेक चुनौती को सहर्ष स्वीकार करते हैं। उदाहरण के तौर पर माउंट एवरेस्ट को फतह करनेवाली पहली विकलांग महिला अरुणिमा सिन्हा। एक ट्रेन दुर्घटना में पैर कटने के बावजूद अरुणिमा ने जिंदगी से हार नहीं मानी। अपने भीतर दृढ़ इच्छाशक्ति जाग्रत करते हुए विश्व के सर्वोच्च शिखर पर चढ़कर विश्व-कीर्तिमान स्थापित किया। किंतु जो विद्यार्थी, जीवन-यात्रा में आनेवाले उतार-चढ़ावों को अपनी नियति व भाग्य समझ लेते हैं, उनके लिए कोई भी परीक्षा या प्रतिस्पर्धा ही नहीं बल्कि जिंदगी की हरेक चुनौती एक भय बन जाती है।

संचार-क्रांति के युग में विद्यार्थियों को हर चीज आसानी से मिल जाती है। संचार माध्यमों की बेतहाशा वृद्धि और सोशल मीडिया के आभासी संसार ने एकाग्रता भंग करने में विशेष भूमिका अदा की है। सोशल मीडिया की लत ने विद्यार्थियों के समय प्रबंधन को बुरी तरह प्रभावित किया है। समय प्रबंधन का अव्यवस्थित होना परीक्षा फोबिया का सबसे बड़ा कारण है। हम सबके पास एक दिन में जो २४ घंटे होते हैं, इन्हें हम किस प्रकार उपयोगी व सार्थक बनाकर सफलता प्राप्त कर सकते हैं, यह हमारे समय-प्रबंधन पर निर्भर करता है।

समय-प्रबंधन के साथ-साथ समय की गुणवत्ता का ध्यान रखना बेहद जरूरी है। गेटे ने कहा है, सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य को सबसे महत्वहीन चीजों की दया पर कभी नहीं छोड़ना चाहिए। अक्सर हम इस बात को नजरअंदाज कर देते हैं कि समय की मात्रा और गुणवत्ता में कोई सीधा संबंध नहीं होता। किंतु समय की मात्रा की बजाय उसकी गुणवत्ता ज्यादा महत्वपूर्ण है। अत: विद्यार्थी हो या आम आदमी, सभी के लिए जरूरी है कि वह अपनी प्राथमिकताओं का ध्यान रखते हुए यह आत्मविश्लेषण करे कि- वह समय का सबसे गुणवत्तायुक्त उपयोग क्या कर सकता है। यही सफलता का मूलमंत्र है।

मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार जो भी कार्य करता है, यही सोचकर करता है कि उसमें वह अवश्य सफल होगा, जबकि जीवन के हर क्षेत्र में दो विपरीत ध्रुव हैं जिनके बीच सभी जी रहे हैं। दिन-रात, सुख-दुख, अमीरी-गरीबी, हानि-लाभ तथा जीवन-मरण इन सबके दोनों पक्ष हमारे सामने आते हैं। हम हमेशा ऊंचाई पर बैठे सफल व्यक्तियों को देखते हैं, लेकिन इस बात को नजरअंदाज कर देते हैं कि उस सफलता तक पहुंचने के लिए उन्होंने किस तरह

परिश्रम किया और कितनी बार वे असफल हुए। जब किसी को कोई लक्ष्य निर्धारित करना हो तो वह उस क्षेत्र में सफल व्यक्तियों की असफलताओं और उनके संघर्ष के बारे में भी जान ले। किसी को भी कार्य प्रारंभ करते ही सफलता नहीं मिल जाती।

कुछ लोगों को जरा सी असफलता भी तोड़ देती है। उससे होता क्या है कि जो लक्ष्य वे चुनते हैं, उसके प्रति उनका उत्साह, लगन, साहस, परिश्रम और आशा के भाव क्षीण हो जाते हैं। असफल होने पर मनुष्य को यह चिंतन तथा विश्लेषण करना चाहिए कि मैं असफल क्यों हुआ? अगर दूसरा व्यक्ति सफल हुआ है तो उसका कार्य करने का ढंग, परिश्रम, लगन एवं उत्साह अवश्य ही श्रेष्ठ रहा होगा।

जब मकड़ी जाला बुनती है और किसी कीट को उसमें फंसाती है तो कई बार उसका जाला टूट जाता है। लेकिन जाला टूटने पर वह अपना प्रयत्न रोक नहीं देती। चींटी जो संसार की सबसे छोटी प्राणी है, जब अपनी पीठ पर बोझ लेकर चलती है तो बार-बार बोझ गिरता है। फिर भी वह हार नहीं मानती और उसे उठाकर ही चलती है। इसी प्रकार मधुमक्खी फूलों से पराग लेने के लिए सतत प्रयत्नशील रहती है। जब ये छोटे-छोटे प्राणी असफलताओं से हार नहीं मानते तो मनुष्य तो परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। ऐसे में वह असफलताओं के आगे घुटने टेक दे, यह उसे शोभा नहीं देता।

असफलता एक ऐसी सीढ़ी है जो हमें सफलता के सर्वोत्तम पायदान पर ले जाने की सामर्थ्य रखती है। चाहे भौतिक सफलता की बात हो या आध्यात्मिक सफलता की, दोनों क्षेत्रों में मनुष्य को धैर्य और साहस से काम लेना चाहिए। अगर हम जीत की तरह हार को भी सहजता से स्वीकार करना सीख जाएं तो हमारी उन्नति का मार्ग स्वत: प्रशस्त होता जाएगा। असफल होने पर हम असहज हो जाते हैं। अपने लक्ष्य के प्रति हमारी सोच नकारात्मक हो जाती है। अतएव जिंदगी के हर पहलू को हमें सहजता से लेना चाहिए।

कई बार ऐसा होता है कि कम परिश्रम करने वाले को बहुत शीघ्र अत्यधिक शुभ परिणाम मिल जाता है और अथक परिश्रम करनेवाले को कम मिलता है। लेकिन जब हम हर तथ्य को सहजता से लेते हैं तो हमारा जैसा भाव सफलता प्राप्त करने के लिए होता है, वैसा ही असफलता मिलने पर भी रहता है।

हार-जीत- कोशिश में कोई कमी न हो तो हार का महत्व जीत से कम नहीं। जीतने में ही नहीं, ठीक से दौड़ने में भी गर्व होता है। ऐसे लोग जो उत्साहपूर्वक पूर्ण क्षमता के साथ दौड़ते हैं, उनका महत्व जीतनेवालों से कदापि कम नहीं होता है। वे ही एक स्वस्थ स्पर्धा का वातावरण उत्पन्न करते हैं और जीतने वालों को उनकी क्षमता में सुधार करने का अवसर देते हैं। जीवन की दौड़ में भी कभी हम जीतते हैं, कभी हारते हैं। हम जीत के क्षणों का तो स्वागत करते हैं, किंतु हार के पल को कोई महत्व नहीं देते।

अगर सभी जीतने की अपेक्षा करने लगें तो हारने के लिए कौन बचेगा? जीवन का रस ही हार-जीत में है। जैसे एक रंग से कोई आकर्षक चित्र नहीं बन सकता है। वैसे ही हार और जीत, सुख और दुख दोनों के रंग से ही जीवन आकर्षक बनता है। बहुधा हम जीत के रंग से उत्पन्न अभिमान की वजह से राह भटकने लगते हैं। पराजय का दुख हमें विक्षिप्त और अव्यावहारिक तक बना देता है।

अनवरत जीत हमें विश्व का एक ही रूप दिखाती है, जबकि हार चित्र के दूसरे रूप को भी स्पष्ट करती है। विषम

परिस्थितियां ही महान सफलता का कारण बनी हैं। असफलता वह मसाला है जो सफलता का स्वाद देता है। अत: मानसिक और शारीरिक संतुलन बना रहे इसके लिए हार और जीत, दुख और सुख का सामना धैर्य एवं शालीनता से किया जाए। दुख या पराजय के क्षणों में हमारा आतंरिक बल प्रकट होता है जो इन क्षणों में हमें टूटने से बचाता है। उस समय में स्वयं के प्रयासों और भगवान में विश्वास रखा जाए तो हर उलझन के सुलझने के मार्ग मिल जाता है। ईश्वर कोई जादू नहीं करता। वह किसी न किसी रूप में साहस, विश्वास आदि देकर हमें सफल होने के लिए प्रेरित करता है। वह सामर्थ्य और सहायता देता है, जो कभी हमारे किसी मित्र की ओर से आती है, तो कभी प्रकृति हमारे प्रति अनुकूल वातावरण बना देती है। जीवन के प्रत्येक क्षण हार या जीत सभी का अपना महत्व है।

जीत पर अहंकार के मद में न फूलना, अपनी विजयश्री के पुष्प की सुगंध अपने आसपास फैलाना हमारे हृदय की विशालता और हमारे संस्कारों का परिचायक होती है। लेकिन इस रहस्य को वही लोग जान पाते हैं, जो जीवन की दौड़ पूर्ण परिश्रम एवं शालीनता से दौड़ते हैं। उनका सारा ध्यान दौड़ पर ही केंद्रित रहता है। उन्हें इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि दौड़ में उनकी जीत होती है या हार होती है। ऐसे निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करने वालों के लिए जीत तो जीत है ही, हारनेवालों के लिए हार ही आदर और सम्मान का माध्यम बन जाती है। उस जीत से हार श्रेयस्कर होती है जिस जीत से हमारे अंदर अहंकार आता हो। जीत की तरह ही हार को भी गले लगाना सीख लें तो उन्नति तय है।

जब हम हारते हैं, तब जीत के और करीब आ जाते हैं। जरूरत इस बात की है कि हार-जीत के इस अभियान में आप हरेक हार से सबक लेकर कितनी प्रतिबद्धता से आगे बढ़ रहे हैं। दृढ़ संकल्प वह चमत्कारिक गुणधर्म व भावप्रधान संबल है जिसको आत्मसात करने से मनुष्य का कायाकल्प हो जाताहै। आमतौर पर जीत को रोशनी से जोड़ा जाता है और पराजय को अंधेरे से, किंतु सबसे इन दोनों मान्यताओं से बड़ा सच है कि अंधेरे और दुर्गम रास्तों पर चले बिना हमें रोशनी की अहमियत महसूस नहीं होती। हमें अपनी हर छोटी-बड़ी बात को हार से नहीं जोड़ना चाहिए। थकावट, हताशा, शारीरिक पीड़ा, पारिवारिक समस्या, घरेलू परिस्थिति, कमजोर आर्थिक स्थिति जैसे हालात को अपनी हार से जोड़कर देखना, मैदान छोड़कर भागने जैसा है।

जीत के सपने देखना ही पर्याप्त नहीं है। अपने सपनों को बाहर निकालकर इन्हें धूप-छांव, बारिश और झंझावात से रूबरू कराना पड़ता है। सपनों व हकीकत के बीच तालमेल व तारतम्य बैठाना पड़ता है। दरअसल, हममें से अधिकतर लोग हार-जीत के अभियान के चलते अपने सपनों को सही ढंग से जी नहीं पाते, क्योंकि वे अपने सपनों की बजाय हार के डर के बारे में ही सोच रहे होते हैं। इसलिए ऐसे लोग अपने सपनों को हकीकत के धरातल पर उतारने की तकनीक से वंचित ही रह जाते हैं। अंतत: हार ही उनके अभियान का हिस्सा बनती है।

दुनिया में जितने भी विजेता हुए हैं, उन्हें कई बार जिंदगी में हार का मुंह देखना पड़ा है, किंतु प्रत्येक हार के सामने उन्होंने हथियार डालने की बजाय उसे चुनौती के रूप में स्वीकार किया। उनके अभियान में क्या-क्या कमियां रहीं, उनमें सुधार किया एवं अपनी संकल्प शक्ति के बल पर विजेता बने। अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव जीतकर दिखाएंगे। इसके बाद उन्होंने गर्म पानी के सोतों में नहाकर व कठिन व्यायाम करके अपने लकवाग्रस्त अंगों को ठीक कर लिया और आखिरकार राष्ट्रपति का चुनाव भी जीत लिया।

प्रवृत्ति-निवृत्ति

जिसके हृदयमें राग है, उसके लिए प्रवृत्ति धर्म है और जिसके हृदयमें वैराग्य है, उसके लिए निवृत्ति धर्म है। प्रवृत्ति मार्ग में जाना अपने को प्रभु से दूर हटाना ही है। जीवों की अनादि काल की कर्म वासनायें बलपूर्वक इस मार्ग में प्रवृत्त कराती है। फिर भी जो धर्म का आश्रय नहीं छोड़ेंगे वे प्रवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होने पर भी नीचे नही गिरेंगे और परमपद की प्राप्ति कर सकेंगे। यदि निभ पाये तो निवृत्ति मार्ग सर्वश्रेष्ठ है किन्तु वह निभता नहीं। जीव पूर्व वासनाओं के अधीन होकर विषयोंमे फँस जाते हैं। प्रवृत्ति मार्ग यदि धर्मपूर्वक चला जाए जिसके उपदेशक मनु इत्यादि है और निवृत्ति मार्ग के उपदेशक नारद, सनन्दन, सनक, सनातन, सनतकुमार है तो जीव का कल्याण होता है। प्रवृत्ति मार्ग कनिष्ट होनेपर भी यदि धर्म के साथ निभाया जाय तो सरल, सुगम, बिना बाधा के राजमार्ग के समान होगा।

हमारे सनातन धर्म में ऐसा वर्णन है कि हर मनुष्य दो में से किसी एक मार्ग का अवलंबन करता है। ये दो मार्ग हैं- प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग। गृहस्थ आश्रम प्रवृत्ति मार्ग में आता है।

मार्ग दो प्रकार के हैं- प्रवृत्तिमार्ग एवं निवृत्तिमार्ग। प्रवृत्तिमार्ग से संसार की और निवृत्तिमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति होती है। वापी-कूद आदि का निर्माण बलि-वैश्यदेव और पशु-याग आदि प्रवृत्ति-कर्म हैं। इनके द्वारा लोक-पर-लोक की प्राप्ति होती है अत: इन्द्रियों को मन में, मन को वाणी में, वाणी को वर्ण-समुदाय में, वर्ण-समुदाय को ओंकार में, ओंकार को नाद में और नाद को प्राण में न्यस्त कर देना चाहिये फिर निवृत्तिमार्ग में चला जाना चाहिये। इस मार्ग को जो शास्त्र-दृष्टि से जान लेता है, वह देह में रहते हुए भी कभी मुग्ध नहीं होता।

अनादि काल से दो मार्ग चले आये हैं, एक प्रवृत्ति मार्ग दूसरा निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग का आचरण करनेवाला पुरुष चाहे स्वर्गादि लोकों को भले ही प्राप्त कर ले, किन्तु वह संसार के आवागमन से सदा के लिये मुक्त नहीं हो सकता। उसकी पार्थिव विषयों में या दिव्य विषयों में कुछ-न-कुछ आसक्ति बनी ही रहती है, उसकी आसक्ति के कारण पुण्य क्षीण होने पर उसे पुन: जन्म धारण करना पड़ता है। जिन्होंने निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन ले रखा है, उनका शरीर जब तक है, तब तक वे प्रारब्ध कर्मों को अनासक्त भाव से भोगते हैं। प्रारब्ध क्षीण हो जाने पर उन्हें परमपद की प्राप्ति हो जाती है। वे सत् स्वरूप हो जाते हैं। जो प्रवृत्ति मार्ग को निवृत्ति मार्ग का साधन समझकर वासनाओं को क्षय करने के लिये अन्त:करण को निर्मल बनाने के निमित्त स्वीकार करते हैं, उनकी सांसारिक वासनायें जहाँ शान्त हुईं वहीं वे सब कुछ छोड़कर श्रीहरि की आराधना में तत्पर हो जाते हैं। ऐसे लोगों को प्रवृत्ति मार्ग बन्धन न होकर निवृत्ति मार्ग का सहायक हो जाता है।

**** असीमित अपेक्षाएं पालना मनुष्य की प्रवृत्ति है।***

**** खुशियां वहीं परवान चढ़ती हैं, जहां भरोसा किया जाता है।***

**** इतिहास के पन्ने पर लिखा है कामयाबी बड़ी नहीं पानेवाले बड़े हैं, दरार बड़ी नहीं भरने वाले बड़े हैं। दोस्ती बड़ी नहीं निभानेवाले हमेशा बड़े होते हैं।***

भूत, भविष्य, वर्तमान

भूतकाल व भविष्यकाल के विचारों से चिंताग्रस्त होने से अच्छा है कि आनंद प्राप्त करने के लिये वर्तमान काल में जीना सीखें। भविष्य में क्या होगा? हमारे पास जो है वह नष्ट तो नहीं होगा। इस डर से जो चिंता निर्माण होती है भविष्य के डर से वर्तमान भी नष्ट हो जाता है। इसलिए जिस पल में हम जी रहे है उसी पल को जीवन मानकर आनेवाले पल की वह भविष्य की योजना का विचार न करते हुए वर्तमान में आनन्द से जीना चाहिए। विज्ञान व तकनीकी वजह से भौतिक विज्ञान का विकास हुआ लेकिन दो व्यक्तियों की बीच की दूरी बढ़ती गयी। मन में चिंता व डर का निर्माण हुआ। इनका मुकाबला करने के लिए आध्यात्मिक मार्ग से धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिए।

मनुष्य ज्यादातर अतीत या भविष्य के बारे में सोचकर वर्तमान को यूं ही खो जाने देता है, जबकि ज्ञानी कहते हैं कि आज में जीना चाहिए, क्योंकि कल तो हर दिन आता है, आज सिर्फ आज ही रहता है। अतीत की सुंदर यादें तो मन को खुशी से भरती हैं, पर भविष्य की चिंता आज को काटना मुश्किल कर देती है। अक्सर हम दुखों और परेशानियों से घबराकर ज्योतिषी आदि की शरण में जाते हैं, उनसे छूटने का उपाय मांगते हैं, पर यह कोशिश बेकार होती है। गीता में लिखा है कि प्रभु हर मनुष्य में है और वह मनुष्यों को अपनी जादुई क्षमता से कठपुतलियों के तरह नचाते हैं। लगभग यही बात ऐसे भी कही जाती है कि मनुष्य का दिल अपने रास्ते की योजना बनाता है, पर भगवान उसके पैरों को दिशा देते हैं। भविष्य की रहस्यात्मकता का अपना कौतूहल होता है। अगर हर परीक्षा का परिणाम पहले से पता हो, तो फिर परीक्षा की घबराहट और नतीजे की उत्सुकता का कुछ अर्थ नहीं रह जाएगा। हर मनुष्य भविष्य को अपने अनुसार बदलने की चेष्टा करेगा। इससे भी बड़ी एक बात यह है कि भविष्य कभी-कभी भयानक स्थितियों को छिपाए रहता है। समय से पहले उन्हें जानकर मनुष्य शायद ही उसे सह पाएगा। अच्छी बातें मन में खुशी भर देंगी, तो बुरी बातें हिम्मत तोड़ देंगी। इसलिए सारी चिंताओं के बावजूद भविष्य को छिपे रहने देना चाहिए। भगवान दुनिया के साथ पासा खेलता है। सारे प्रमाण इशारा करते हैं कि वह पक्का जुआरी है, जो हर संभव स्थिति में पासा खेलता है। भगवान अपने पास कुछ चालें छिपाए रहता है। शायद इसीलिए जीवन चलते-चलते सहसा ऐसा घूम जाता है, जिससे मनुष्य के जीवन में उथल-पुथल मच जाती है। इसका हल एक ही सोच में है- वही होगा जो मंजूरे खुदा होगा।

जिसका भूतकाल लंबा होता है और भविष्यकाल छोटा होता है, उस व्यक्ति के लिये अपना स्वभाव बदलना जितना मुश्किल होता है, उसकी तुलना में जिस व्यक्ति का भूतकाल छोटा होता है उस व्यक्ति के लिये अपना स्वभाव बदलना भी आसान होता है और सामनेवाले व्यक्ति के स्वभाव को निभा लेना भी आसान होता है।

हमारा चिंतन हमेशा या तो भूत काल की बातों में अटका रहता है या फिर भविष्य के बारे में जानने की जिज्ञासा में रहता है। इसीलिए हर आदमी संग्रह में इस कदर लगा है कि उसे नैतिकता की सीमाएं लांघने में भी कोई हिचक नहीं होती। वह भूल गया है कि धन किसी का सगा नहीं होता। समझना जरूरी है कि चिंतन हमारा आज का हो। आज के हर क्षण में हो। उस परमात्मा की असीम कृपा का और तब जो आनंद मिलता है वह सुख देता है।

भूत-भविष्य हमारे हाथ में नहीं हैं, बल्कि आज हमारे हाथ में है क्योंकि हम जीवित हैं और जीवित होने का सुख चैन

अवश्य परम आनंद देता है। अफसोस है कि आज का हर मनुष्य यह भूल ही गया है कि वह जीवित है। वह मशीन के समान रहने लगा है। चिंता के चक्रव्यूह से निकलकर आज में चाहिये।

हमारा अतीत उस भयानक पिशाच के समान है, जिसके डरावने साए में हम अपने वर्तमान को भी स्याह कर बैठते हैं। बीते दिनों हुई त्रुटियों का अपराध बोध, किसी ऐसे या वैसे करने का पछतावा, दूसरों से ठगे जाने की कड़वाहट, नाराजगी और द्वेष यदि सदैव मन-मस्तिष्क पर हावी रहें, तो हमारी इस प्राण वीणा से दूसरों के सुख को समर्पित मधुर राग कदाचित झंकृत नहीं हो सकते। उससे तो अपहानि, अपकार, अहित, आघात के तीखे स्वर ही उत्पन्न हो सकते हैं।

इसी प्रकार भविष्य के मोह जाल में आत्मलिप्त होकर जीने का भी कोई अर्थ नहीं। सदा यह सोचते रहने के कि आनेवाले दिनों में क्या-क्या परेशानियां, क्या क्या विपत्तियां आने वाली हैं, या धन-संपत्ति पद-प्रतिष्ठा की दौड़ में बेतहाशा भागते रहने और दूसरों के विरुद्ध साजिश और षडयंत्र रचते रहना किसी काम का नहीं। इसमें मात्र अनैतिकता, अशांति, चिंता, तनाव और भय के खोटे और अशुभ स्वर ही उपज सकते हैं। न तो अंतरात्मा कभी जीवन के निर्मल सुख को ग्रहण कर पाती है, न ही हमारे भीतर जल रही जीवन-ज्योति कभी परमात्मा की असीम ज्योत में लीन होने का सुख प्राप्त कर सकती है।

धर्म जगत ने धर्म को केवल परलोक के साथ जोड़कर भारी भूल की है। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म का असली प्रयोजन तिरोहित हो गया। वह स्वर्ग-सुखों के प्रलोभन और नरक-दुख के भय से जुड़ गया। हर धर्म-प्रवर्तक ने धर्म को जीवन से जोड़ा, किंतु धर्म-परंपराओं ने उसे स्वर्ग और नरक से जोड़ दिया। धर्म का मूल केंद्र वर्तमान है न कि भूत और भविष्य। हम वर्तमान क्षण को कैसे जियें, धर्म का सारा दर्शन इसी पर टिका हुआ है। वर्तमान विषम है तो भविष्य भी विषम होगा। यदि वर्तमान सम और सुखमय है तो भविष्य भी सम और सुखमय ही होगा। धर्म का असली प्रयोजन वर्तमान को सजाने-संवारने का है।

उस केंद्रीय विचार से भटक जाने के कारण धर्म भूत और भविष्य में उलझ गया। वर्तमान को उसने बिल्कुल ही भुला दिया। इसलिए लोगों ने वर्तमान को केवल अतीत का परिणाम मान लिया। इससे भाग्यवाद की विचारधारा का जन्म हुआ। भाग्य को बदला नहीं जा सकता, इसलिए वे वर्तमान से विमुख हो गए और भविष्य की चिंता में पड़ गए। जिसके पास कोठी, महंगी कार और विदेशों में छुट्टी मनाने के साधन हैं, वे अतीत के परिणाम हैं। जो वैभव-संपन्न नहीं हैं, वे जप-तप में इसलिए लगे हैं ताकि भविष्य में भी साधन-संपन्न बन सकें। धर्म का पूरा उद्देश्य ही बदल गया। जो आत्मकेंद्रित था, वह वस्तु-केंद्रित हो गया। जो वस्तु-विमुख था, वह वस्तु-सम्मुख बन गया। इसी विचार के फलस्वरूप धर्म के नाम पर व्यापार और सौदेबाजी चलने लगी। जहां भी प्रलोभन और भय है वहां धर्म नहीं है। धर्म है आत्म उज्ज्वलता का साधन। धर्म है सोई हुई शक्तियों के पुनर्जागरण का उपादान। यह है आत्म-स्वभाव में रमण। धर्म ही है आत्म शांति और विश्व शांति का एकमात्र साधन। वर्तमान जीवन को आनंदपूर्ण बनाने का गुर। भगवान महावीर ने कहा है- आत्मा ही नरक है, आत्मा में ही स्वर्ग है, आत्मा में ही बंधन है, आत्मा में ही मोक्ष है। जिसके भीतर नरक नहीं, उसके लिए बाहर कहीं भी नरक नहीं। जिसके भीतर स्वर्ग नहीं, उसके लिए बाहर कहीं भी स्वर्ग नहीं। महावीर ने भीतर पर जोर दिया जबकि हम बाहर पर जोर दे रहे हैं। बाहर के स्वर्ग और नरक की चिंता में उलझे हैं।

इसी चिंतन का दुष्परिणाम यह हुआ कि बाहर से जप-तप, पूजा-पाठ चल रहे हैं, लेकिन दूसरी तरफ छल-कपट, शोषण, राग-द्वेष, नफरत भी पल रहे हैं। यानी धर्म करते हुए भी जीवन में कोई परिवर्तन नहीं है, कोई क्रांति नहीं है। इसी वजह से जीवन की शांति गायब हो गई। शांति वर्तमान में ही घटित हो सकती है। इसलिए हम अपने को वर्तमान से जोड़ें।

वर्तमान में मौजूद चीजों में मगन रहें फिर डर के लिए जगह नहीं बचेगी

आपका डर हमेशा भविष्य को लेकर होता है। उस बात को लेकर, जो अभी हुई नहीं है बल्कि हो सकती है। लेकिन उसके होने की कोई गारंटी नहीं है। इसका मतलब है कि फिलहाल इसका कोई अस्तित्व नहीं है। डरने का मतलब है कि आप ऐसी चीज से परेशान हो रहे हैं, जिसका वजूद नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आप हकीकत में रहने के बजाय एक ख्याली दुनिया में जी रहे हैं। आप वास्तव में भविष्य के बारे में कुछ नहीं जानते।

आप भविष्य की योजना बना सकते हैं, लेकिन उसमें जी नहीं सकते। लेकिन आजकल लोग भविष्य में जी रहे हैं। इससे बचने का एक ही तरीका है कि आप वास्तविकता के धरातल पर उतरें। अगर आप बेकार की कल्पना करने के बजाय इस पल में जिएं, वर्तमान में मौजूद चीजों में मगन रहें और उनसे कुशलतापूर्वक निपटें। फिर डर के लिए कोई जगह ही नहीं बचेगी।

जो लोग अपने भविष्य के बारे में बहुत ज्यादा सोचते हैं, बैठे-बिठाये चिंता करते रहते हैं, वे सिर्फ भविष्य के बारे में सोचते रह जाते हैं। आपको भविष्य के बारे में सोचने की जरूरत नहीं है। अपने वर्तमान पर ध्यान दीजिए, भविष्य अपने आप अच्छा हो जायेगा। अगर आप भविष्य के बारे में बहुत अधिक सोचेंगे, तो वह आगे बढ़ता जायेगा और फिर अंतिम भविष्य आ जायेगा, जो है अंतिम संस्कार। अभी जीवन का आपका अनुभव बहुत कम है और जीवन से सामना बहुत सीमित रूप में हुआ है, इसलिए फिलहाल आपको कोई निर्णय करने की जरूरत नहीं है। आपको बस खुद को तैयार करना चाहिए- अपने शरीर और दिमाग को खूब मजबूत बनाएं और ग्रहण करने की अपनी क्षमता को अधिक से अधिक बढ़ाएं। किसी भी परेशानी से जूझने की हिम्मत पैदा करें। क्योंकि हममें से कोई भी यह नहीं जानता कि आगे हमारे सामने क्या स्थिति आनेवाली है और जरूरी नहीं है कि कोई चीज हमारे सामने आये। हो सकता है कि हम कुछ ऐसा करें, जो पहले किसी ने नहीं किया। अगर आप अभी यह सोचने लगेंगे, भविष्य में मुझे क्या करना चाहिए? तो आप वही मूर्खतापूर्ण चीजें करेंगे, जो लोग पहले ही कर चुके हैं। भविष्य के बारे में लोगों का अक्सर विचार होता है, मैं चिकित्सक बनूंगा, मैं अभियांत्रिक बनूंगा। यह सिर्फ अच्छी तरह रोजी-रोटी कमाने का एक जरिया है। आजकल अधिकांश शैक्षिक संस्थान छात्रों की किसी भी तरह की जबर्दस्त क्षमता के प्रति असंवेदनशील या बेखबर होते हैं।

जिस दिन आप भविष्य की चिंता करना बंद कर देंगे, वह आपके नए जीवन का पहला दिन होगा।

जीवन में कुछ लोग आते हैं और कुछ लोग बिछड़ जाते हैं। कुछ प्रेम में पड़ते हैं और कुछ प्रेम की राह छोड़ देते हैं। कुछ लोगों को उपहार मिलते हैं तो कुछ लोगों को नई चुनौतियों का सामना करने को मिलता है। कोई दिन बेहतर जाता है तो कोई बेहद खराब। पर हर दिन की नई शुरुआत करनी चाहिए- नई सोच, नई ऊर्जा, नए विचारों, नए लक्ष्यों और नए संकल्पों के साथ। बीते अनुभव से सीख लें और आगे बढ़ जाएं।

सती, पतिव्रता नारी, पत्नी

संसार में दो ही सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं- सती और सन्त। ये दोनों ही दिव्य-धाम के अधिकारी समझे जाते हैं। जो पद भगवद् भक्त सन्त का है, वही नहीं किन्तु उससे भी ऊँचा पद पतिप्राणा सती-पत्नी का समझा जाता है। सन्त से तो भगवान चिरकाल के अनन्तर बातें करते हैं, बातें भी करते हैं तो अत्यन्त स्नेह के साथ-प्रेमपूर्ण वाणी से। किन्तु सती को तो प्रतिक्षण अपने पति के रुख को देखकर चलना पड़ता है, उसकी डाँट-फटकार सहनी पड़ती है, उसके मन में अपना मन मिलाना पड़ता है और उसके प्राणों में प्राण मिलाकर उसीकी इच्छानुसार आचरण करना पड़ता है। पति ही परमेश्वर है- यह कितना उच्चभाव है, कितनी कठिन साधना है। इस साधना को इस पुण्य-भूमि की ललनायें ही करती हैं। तभी तो सतियों की आज्ञा के सामने देवताओं को सिर झुकाना पड़ता है। सूर्य-चन्द्र उनका रुख देखकर चलते हैं। देवताओं की तो बात ही क्या है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उनके सामने अपने को पराजित-सा समझते हैं।

पतिव्रता तो अपने को स्वयं, साक्षात् सजीव अपने प्राणनाथ पति में लगाकर योनियों से भी श्रेष्ठ सामर्थ्य और सिद्धियों को प्राप्त कर लेती है। वह स्वयं तो तर ही जाती है, साथ ही अपने पापी पति को भी तार लेती है। जिस प्रकार लक्ष्मीजी भगवान की सेवा करती है, उसी प्रकार जो स्त्री अपने पति को हरि-भगवान से भजती है, वह वैकुण्ठलोक में विष्णु सायुज्य प्राप्त करके अपने पति के साथ उसी प्रकार मुदित होती है जिस प्रकार लक्ष्मी, विष्णु भगवान के साथ मुदित होती है।

नारी प्रकृति की बेटी है। उस पर क्रोध न करो। उसका हृदय कोमल होता है, उस पर विश्वास करो। नारी का अनुमान भी पुरुष के पूर्ण निश्चय से कहीं सत्य (उचित) होता है। स्त्रियां महान आघातों को क्षमा कर देती हैं, किंतु तुच्छ चोटों को नहीं भूलतीं। पत्नी सदा मार्ग की बाधा ही नहीं होती। वह सह-यात्री है- मार्ग की सहायिका भी हो सकती है। सोच-समझकर ही सह-यात्री चुना जाए तो सहायक होता है, बिन सोचे-समझे चुना जाए तो स्थायी सिरदर्द। पति-पत्नी का लक्ष्य एक हो; और वे लोग अपनी सम्मिलित शक्ति से जीवन को लक्ष्य की ओर ले चलें। व्यक्तिगत प्रतिबद्धता से पारिवारिक प्रतिबद्धता ओर अधिक सक्षम होती है। घर परिवार ही उनकी दुनिया होती थी और उसी के लिए अपने को होम कर देना उनकी जिन्दगी की सार्थकता। इस घर-परिवार से यदि उन्हें सुख-सुविधाएँ मिलती तो वे निहाल... पर यदि यहाँ से दु:ख, असह्य कष्ट, तरह-तरह की यातनाएँ मिलतीं तो उसे भी अपनी नियति समझ कर वे सहज भाव से स्वीकार कर लेती थी। स्त्री जीवन का आधार ही उसका ममतामयी स्वरूप और वात्सल्य प्रेम है। वात्सल्य उसके जीवन का परम लक्ष्य है। यह वात्सल्य बच्चों के प्रति बड़ों के प्रति और जीव-जंतुओं के प्रति उत्सर्ग होता है। गृहलक्ष्मी का ममतामयी रूप प्राचीन-काल से ही उदात्तमय है। प्रतिमा के रूप में भारतीय परिवार में स्त्री का सात्विक रूप है। उसकी आज्ञा, उसके विचार, उसके आदेश परिवार में सर्वोपरि माना जाता है। स्त्री की पूर्णता व्यक्तित्व का विकास उसका पूरा सौन्दर्य उसके ममतामयी स्वभाव में निहित है। स्त्री चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित, सम्पन्न हो या निर्धन ममता की भावना प्राय: सभी स्त्रियों के अन्दर होती हैं। स्त्रियाँ सदा पुरुषों की अनुचरी और उनकी संपत्ति रही हैं। प्राचीन से वर्तमान काल तक सभी सभ्यताओं और देशों में स्त्रियों का अपहरण करके उनको दासी बनाना और उनके साथ बलात्कार करना सामान्य बात रही है।

परिवार के पहिये बिना चरमराए, सुविधा और आराम से चलते रहें, स्त्रियां अधिक से अधिक नमनीय, आज्ञाकारिणी और त्यागिनी बनती जाएँ, इसके लिए पुरुष प्रधान समाज बालिकाओं को बचपन से ही सिखाता है कि अपने पिताओं, पतियों और पुत्रों के लिए जीना उनका धर्म है।

विरह

मन को अनुभूत होनेवाले जो अनेकानेक भाव हैं उनमें प्राणीमात्र को विशेष रूप से प्रभावित करनेवाले सुख व दु:ख के भाव ही मुख्य हैं और उनमें भी दु:ख का करुण रस का भाव ही अधिक हृदयस्पर्शी है। इसलिये काव्य, नाटक व दृश्य आदि देखने, सुनने व पढने में जहाँ कहीं भी विरह-करुण रस का भाव आता है, भावुक हृदय वाले व्यक्ति उस रस-प्रवाह में बह जाते हैं। उनके नेत्रों से अश्रुपात होता है, रोमाञ्च खड़े होते हैं और कंठ गद्‌गद् हो जाता है। कवि भवभूति का उत्तम राम चरित्र ग्रंथ इसका ज्वलंत प्रमाण है।

जिनके प्रति अनन्य प्रेम, उत्कट श्रद्धा, अनुराग, गुण विशेष के प्रति आकर्षण और ममत्व हो जाता है उस व्यक्ति के वियोग में, हृदय में जो एक वेदना या टीस का अनुभव होता है, उस अन्तर्व्यथा के भाव को विरह कहते हैं। परमात्मा-भगवान एवं वीतरागी महापुरुष-संत महात्मा के पक्ष में विरह प्रशंसनीय व उपादेय है।

विरह- व्याधि का जो अनुभव ले चुका वास्तव में उसका जीवन कृतार्थ हो गया। कितने ही संत-महात्मा इस विरह सिंधु में डूबे, रोये, तड़पे, बिलखे और वास्तव में उन्होंने ही एक अपूर्व सुख का आस्वादन किया और अपने मानव-जन्म को कृतार्थ कर लिया।

प्रेम और विरह का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसने प्रेम के क्षेत्र में पैर रखा उसे विरह की अग्नि में जलना ही होगा। आत्यंतिक ममत्व ही प्रेम है। जिस पर प्रेम होता है वह अपना ही बना रहे हृदय की यही चाहना हुआ करती है। इस चाहना की पूर्ति तक व्याकुल होकर रोना, सिसकना और तड़पना ही एक मात्र विरही साधक की साधना होती है। अपने प्यारे से मिलन होना ही संयोग है और बिछड़ना ही वियोग है। वियोग की स्थिति ही विरह है।

विरह भाव जैसे-जैसे बढ़ता जाता है त्यों मन का अहंकार नष्ट होता जाता है और इस प्रकार हृदय सर्वथा निष्कपट व सरल होकर भक्त अपना सर्वस्व अपने प्रियतम को समर्पण कर देता है। वह अपना सब कुछ देकर अपने प्यारे को सुखी देखना चाहता है। वह देता ही जाता है अथवा वह देना ही जानता है। लेना तो कभी चाहता ही नहीं। वह स्वयं ही उनका बन जाता है और तब उसके प्रियतम को भी उसका होना ही पड़ता है।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं। प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं।।

विरह वास्तव में स्वयंभू रस है। किसी से सीखा नहीं जाता। जिसके हृदय में अटूट लगन है, प्रियतम के दर्शन की आतुर उत्कंठा का उफान है, जिसके नेत्रों की निरंतर जल बरसाने की क्षमता है और जो आत्म बलिदान के लिये सर्वदा तत्पर है, वही विरही कहलाने का अधिकारी है।

उर में दाह प्रवाह दृग, रह रह निकले आह। मर मिटने की चाह हो, यही विरह की राह।।

अपने प्यारे के विरह में चाहे कितने ही तड़पते रहने पर भी, उनकी प्रतीक्षा करने में व उनके मिलन की आशा में जो एक प्रकार का सुख प्राप्त होता है वह उनके प्रत्यक्ष मिलन में नहीं क्योंकि मिलन के समय पुन: उनसे बिछड़न की आशंका हृदय को निश्चिन्त नहीं बना सकती।

मिलन और विरह के विकल्प में प्रिय की विरह ही श्रेष्ठ है, मिलन उतना नहीं क्योंकि मिलन में तो वह एक ही दृष्टिगत होता है किन्तु विरह में तो त्रिभुवन ही तन्मय प्रतीत होता है और भी-

प्रेम पाश जो बँध गये, फिर नहिं टूटत तार। तड़पत सिसकत है तऊँ सुमिरत बारंबार।।

विरह में दूर होते हुए भी आत्मिक दृष्टि से तो दोनों की एकता सधी हुई रहती है। उनका प्रेम तो अखंड होता है क्योंकि दोनों के ही हृदय प्रेम-पाश में आबद्ध हो चुके हैं और घायल हैं।

विरह किसी सच्चे प्रेमी के हृदय में ही प्रकट होता है अथवा यों कहा जाय कि प्रभु कृपा से ही किसी प्रेमी-भक्त विशेष पर यह उनकी देन है, तभी कहा है,

जिस पर तुम हो रीझते, क्या देते जदुवीर। रोना धोना सिसकना, आहों की जागीर।।

विरह में मधुर वेदना और मधुर स्मृति की एक ऐसी सृष्टि का निर्माण हुआ करता है कि जिसमें प्रेम का शुद्ध व वास्तविक स्वरूप झलकने लगता है और उस छटपटाहट में एक विलक्षण व अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव होता है। तड़पते व रोते हुए हृदय में भी एक सात्विक संतोष का भाव छाये रहता है क्योंकि किसे कभी भुलाया नहीं जा सकता वह और कोई नहीं अपना ही है चाहे जितनी दूर ही क्यों न बसता हो। संक्षेप में यही कि विरह में ही प्रेम अधिकाधिक उज्ज्वल होता जाता है और विरह में ही प्रेम की रक्षा होती है।

देवी मीराबाई का सारा जीवन अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के विरह में ही व्यतीत हुआ था। उनकी जीवन-साधना का मुख्य अंग विरह ही था यही नहीं, अपने प्यारे से एकरूपता को पाने अथाव श्री द्वारिकाधीश के श्री विग्रह में समाजाने पर्यन्त के उसके जीवन में उसे, प्रेम-विरह की सभी अवस्थाओं का अनुभव हो चुका था, जो उनकी वाणी वा पदों पर से जाना जा सकता है।

प्रेमतत्व का मूल आधार विरह है। बिना विरह के प्रेम, बिना प्राण के शरीर के समान शून्य है। विरह में ही प्रेम का वास्तविक रसास्वादन होता है।

अपना प्रियतम भविष्य में अपने को छोड़कर चला जायगा इससे हृदय में जो एक प्रकार की व्यथा हुआ करती है यह भावी विरह। मिलनावस्था में भी भावी प्रिय-वियोग की आशंका बनी रहती है। जैसे जैसे दिन-रात्रि व घड़ी-पल व्यतीत होते हैं वैसे वैसे यह भाव तीव्र होता जाकर हृदय को रह रह कर बेचैन बना डालता है।

अपना प्रियतम अभी जा रहा है उस समय में हृदय के भीतर जो व्यथा होने लगती है वह वर्तमान विरह प्रियम के सान्निध्य में भला आनन्द का कोई पार है। समय कैसा आनन्द से व्यतीत हुआ। आनन्द के दिन कैसे शीघ्रता से सरक गये। उनके मन मोहक दर्शन, उनके मधुर स्पर्श और आनन्द भरे मिलन के सुधा रसास्वादन में संसार का अस्तित्व ही मिट जाता था। आज ही जाने को तत्पर हैं। अपना सर्वस्व और स्वयं को भी जब उन्हें न्यौछावर कर दिया तब वे हमारे होकर भी हमसे पृथक् हो रहे हैं, अभी आँखों से ओझल हुए जा रहे है, हाय। अब क्या होगा। मन में इस प्रकार के विचार उमड़ कर हृदय धड़कने लगता है, रोम रोम में मानो बिच्छू डंक मार रहे हैं या कलेजे के कोई टुकड़े कर रहा है अथवा हृदय के दो टुकड़े कर एक को बरबस कोई अपने साथ खींच ले जा रहा है ऐसी भीतर ही भीतर निरन्तर तड़पन होती है जो असह्य हो उठती है।

अपने प्रियतम को प्रत्यक्ष देखे बिना मन मानता नहीं, धैर्य छूट जाता है फिर भी उस निराशा में भी प्रेमी आशा के झूले पर झूलने लगता है कि कभी तो वे आवेंगे ही। और कुछ नहीं तो दूर से ही कभी उनके दर्शन हो जायँ। इस परिस्थिति में न मरना होता है न जीना ही। इस प्रकार हृदय की व्यथा बढ़ते-बढ़ते भिन्न-भिन्न अवस्था को प्राप्त होती जाती है। चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मूर्च्छा, मृत्यु।

विरह प्रेम के फल हैं। जिस प्रेम में विरह नहीं वह प्रेम अधूरा है प्रेम सर्वाङ्ग भाव से विरह में ही प्रस्फुटित होता है। विरह

से रहित प्रेम पूर्ण नहीं। संयोग में तो कभी विस्मृति भी हो जाती है, किन्तु विरह में सदा सम्मिलन-ही-सम्मिलन है विरही एक क्षण के लिये भी अपने प्रेमास्पद से पृथक् नहीं होता।

प्रिय विरह में जड़ चेतन का बोध रहता ही नहीं। जिस विरह में शरीर की सुधि है, वह विरह, विरह ही नहीं। विरह में तो प्राणी अपनेपन को भूल जाता है, वह लोक-लाज कुलकानि का विचार नहीं करता। उसे शरीर की सुधि बुधि नहीं, उसके शरीर में समस्त सात्विक भावों का स्वत: ही उदय हो जाता है। वह सर्वत्र अपने प्रिय को निहारता है। प्रिय की जहाँ किसी वस्तु में समानता दिखाई दी, वहीं वह उसमें प्रियतम की खोज करने लगता है, उससे उनका पता पूछता है। लोग उसके विषय में क्या विचार करते हैं, क्या सोचते हैं इन सब बातों पर विचार करने का उसे अवकाश ही नहीं। लोग चाहे जो कहें जिह्वा उनके घर की है, आकाश वायु सर्वत्र है वाणी से बोलने में वे स्वतन्त्र हैं। वे विरही के सम्बन्ध में कुछ सोचते हैं, सोचते रहें। विरही विश्व को भूल जाता है अपने प्रिय की स्मृति जिससे अधिकाधिक हो वे ही सब चेष्टायें निरन्तर करता है। जिनके हृदय में ऐसा विरह उत्पन्न हो गया है, वे कृतार्थ हो गये हैं और जिन्हें ऐसे विरहियों के दर्शन हो गये हैं वे धन्य बन गये हैं।

तन्मयता की परीक्षा विरहावस्था में ही होती है। जो जितना ही अधिक प्रिय होगा, उसके विरह में उतनी ही अधिक तन्मयता और उत्कष्ठा बढ़ेगी। विरही लोक-परलोक, शरीर, आदि-सब सुधि भूल जाता है। उसके लिये संसार शून्य हो जाता है। उसका एक ही कार्य रहता है अपने प्रिय की खोज करना। सांसारिक सब प्रपंच रहते हुए भी उसके सामने से विलीन हो जाते हैं। वह सर्वत्र अपने प्यारे की ही छटा निहारता है, जड़-चेतन का भेद-भाव भूल जाता है, लोक-परलोक दोनों के ही सुखों को समान समझता है, छोटे-बड़े का भेदभाव भुला देता है। उसका प्यारा उसके साथ रहे, फिर चाहे उसे नरक में रहना हो या स्वर्ग में, राजा बनकर रहना हो या भिक्षुक बनकर। यदि उसका प्रिय साथ नहीं है तो उसके लिये स्वर्ग नरक से भी बढ़कर है और यदि प्रिय साथ है तो नरक भी सहस्त्रों स्वर्गों से श्रेष्ठ है। प्रेम या वैर एक जन्म में सहसा नहीं हो जाता। इनका बीज पहिले से ही निहित रहता है। जब इनके प्रकाश होने का समय आता है, तब ये प्रकट होकर अपना चमत्कार दिखाते हैं। जो जितने ही बड़े होते हैं, उनका प्रेम या क्रोध भी उतना ही अधिक होता है। न कोई किसी को असमय में मार सकता है, न जिला ही सकता है। जब बहुतों के प्रारब्ध एक से हो जाते हैं, तब उनके नाश का एक-सा ही कारण उपस्थित हो जाता है। जो नौका डूबने को होती है, उस पर चारों ओर से एकत्रित होकर ऐसे ही आदमी आकर बैठ जाते हैं, जिनका प्रारब्ध जल में उसी समय उसी नौका से डूबने का होता है। मनुष्य ऊपरी घटनाओं को ही देखकर कारण खोजता है। उसे यह पता नहीं कि भीतर प्रकृति में बहुत पहिले इसकी पृष्ठभूमिका तैयार हो जाती है।

धान न भावै नींद न, विरह सतावै मोय। घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाऐ कोय।।
दिवस तो खाय गमाईयो रे, रैण गमाई सोय। प्राण गमाया झूरताँ रे, नैण गमाया रोय।।
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीति कियाँ दुख होय। नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय।।
पंथ निहाररू डगर बुहारूँ, उभी मारग जोय। मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय।।
हे री मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दरद न जाणै कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस विध होय। गगन मंडल पर सेज पिया की किस विध मिलणा होय।।
घायल की गति घायल जाणै जो कोइ घायल होय। जौहरी की गति जौहरी जाणै दूजा न जाणै कोय।।
दरद की मारी बन-बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं काये। मीराँ के प्रभु पीर मिटे जद बैद साँवलिया होय।।

विरह एक जादू है, जो सिरपर सवार होकर बोलता है। विरह एक नशा है, जो नेत्रोंद्वारा दूसरेके हृदयमें प्रवेश कर जाता है। विरह परमात्माकी एक दैन है, जो किसी विशिष्ट कृपापात्रपर ही उतरती है। वह श्यामसुन्दर जिसपर विशेष प्रसन्न होता है, उसीको अपना विरह-पुरस्कार प्रदान करता है।

वास्तवमें विरह एक अलौकिक जागीर है, जो किसी भाग्यवान्‌के भाग्यमें बदी होती है। सच्चा विरही अपने प्रेमपात्रको पाकर उतना संतुष्ट नहीं होता, जितना उसके विरहमें व्याकुल होता हुआ रो-रोकर।

विरह एक जंजीर है, जो अपने प्रियतमके कण्ठमें पड़कर अपने हृदयकी खूँटीसे बँधी रहती है। यह जंजीर ज्यों-ज्यों खिंचती है, त्यों-त्यों ही उस अलौकिक वेदनाकी हूलें उठा करती हैं।

तड़प-तड़पकर प्राण देना ही तो विरहीका ध्येय होता है। उसे इस तड़पमें ही मजा मिलता है। वह मौजी इस मजेकी आगमें जलकर खाक हो जानेमें ही सब कुछ भर पाता है।

विरही तो विरहानलमें इतना जल जाता है कि उसे मौत भी नहीं ढूँढ़ पाती।

विरह किसी पोथीके पढ़नेसे नहीं प्राप्त हो सकता। विरहयोगका दाता कोई गुरु भी नहीं है। विरह कोई विश्वविद्यालयोंमें सीखने-सिखानेका विषय भी नहीं है। विरह तो अपना शिक्षक, अपना गुरु और अपना शास्त्र आप ही है। विरहका अर्थ है- अपने प्रियतमके प्रेमपर मर मिटनेकी लगन।

एक विरह ही ऐसा योग है कि जिससे अहंकार कोसों दूर रहता है और जहाँ अहंकार नहीं है, वहीं वह प्यारा यार बसता है।

चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, मोह और मृत्यु- ये विरहकी दस दशाएँ हैं।

जिसपर तुम हो रीझते, क्या देते यदुवीर। रोना-धोना सिसकना, आहों की जागीर॥

सचमुच विरह तो एक अनोखी जागीर है, जो किसी भाग्यशालीको ही नसीब होती है। सच्चा प्रेमी अपने प्रेमास्पदको पाकर उतना संतुष्ट नहीं होता, जितना उसके वियोग-विछोहमें आँसू बहाकर होता है।

विशुद्ध भगवत्प्रेमकी विरहाग्निमें तो सारे जप-तप ईंधन बनकर राख हो जाते हैं। विरही उस विरहानलमें जलकर ऐसा राख बन जाता है कि उसे मौत भी नहीं ढूँढ़ पाती।

बिरह अगिन तनमें तपै, अंग सबै अकुलाय। घट सूना जिय पीव महँ, मौत ढूँढ़ फिरि जाय॥

स्नेह का परिणाम विरह ही है सूखी प्रकृति के लोगों को विरहजन्य दु:ख नहीं सताता। उन्हें विरह होता भी है तो क्षणभर में समाप्त हो जाता है।

विरह- विरह प्रेम को निर्बल बना देता है। वियोग में जिसे जितना ही दु:ख होगा, सम्मिलन में उसे उतना ही सुख होगा। विरह में जितनी ही अधिक उत्कंठा होगी, संयोग में उसे उतना ही सुखानुभव होगा। जिस प्रेम में विरह नहीं वह अधूरा है, अपूर्ण विरह प्रेम के स्वारस्य अभिवृद्धि का कारण है। प्रेम में सदा सन्देह बना रहता है। प्रतीक्षा के पल बहुत बड़े बन जाते हैं।

प्यारे से विच्छेद हो जाना- प्राप्त संग से पृथक हो जाना- यही वियोग है। प्रेम जितना ही उत्कट होगा, वियोग उतना ही असह्य होगा।

मान वियोग का पूर्व रूप है। जिसको लेकर मन में मान हो, अहंकार आ जाय, समझो वह हमसे पृथक् होने वाला है। धन का मान, रूप का मान, ऐश्वर्य का मान, सुन्दरता का मान तथा और भी गुणों का मान, उस गुण की न्यूनता प्रकाशित करने के ही निमित्त होता है, किन्तु प्रेम मार्ग में यह बात नहीं। प्रेम की तो मान से और वृद्धि होती है, प्रेम तो मान से

और निखरता है। यद्यपि यहाँ मी मान के अनन्तर विरह होता है और विरहजन्य दु:ख भी सहन करना पड़ता है किन्तु वह विरह दु:ख, कोटि सुखों से भी अधिक सुखकर है। उस विरह में निरन्तर प्यारे की स्मृति बनी रहती है। प्रेम मार्ग में शरीर सम्मिलन को उतना महत्व नहीं दिया गया है। शरीर का मिलन तो तुच्छ है, यथार्थ मिलन तो मन का है। मन से जिससे सदा मिले रहें, जिसकी स्मृति निरन्तर बनी रहे, सोते-जागते, उठते-बैठते जिसकी मधुर नयनों के आगे नाचती रहे, वही नित्यसंयोग है। विरह में हृदय द्रवीभूत हो जाता है। हृदय में दीनता आ जाती है, प्यारे की एक-एक बात एकान्त में याद आने लगती है।

इन विरहियों का साहस भी धन्य है। भगवान जिसे जितना बड़ा दु:ख देते हैं, उसे उतनी ही दुख सहने की शक्ति भी दे देते हैं। जिनके दर्शनों को आँखें सदा प्यासी बनी रहती हैं। चित्त चाहता रहता है इनकी मधुरिमा को अपलक भाव से पान ही करते रहें। आंखें चाहती हैं इन्हें पुतलियों की भाँति सदा पलकों के भीतर छिपाये रहे। जिनका एक पल भर का वियोग भी कोटि कल्पों के सदृश प्रतीत होता है ऐसे प्रियतम के बिना इतनी लंबी-लंबी अँधेरी रात्रियां बिना सोये करवट बदलते आह भरते बिता दी जाती है, सचमुच विरहिनियों के हृदय को भगवान अश्मसार का बना देते हैं। इसीलिये वह न फटता है न टूटता। संसार में सबसे बड़ा सुख क्या है? प्रियदर्शन, जिस समय प्यारे से साक्षात्कार हो जाय, मानों स्वर्ग, अपवर्ग वैकुण्ठ सब कुछ यहीं मिल गया। संसार में दु:ख क्या है? प्यारे का वियोग। जो क्षण प्यारे के बिना बिताये जायँ, वे क्षण नहीं, स्वासों को पूरा करना है, प्रारब्ध के भोगों को भोगना है।

संगीत और साहित्य में से करुणरस निकाल दिया जाय तो फिर उसमें कुछ भी शेष न रह जायगा। क्योंकि रसशास्त्र कोविदों का कहना है कि करुण ही एकमात्र रस है शेष श्रृङ्गार, हास्यादि तो उसके पोषक हैं। करुण रस की उत्पत्ति विरह से है। हमारे समस्त सद्काव्यों का विरह पर्यवसान में ही हुआ है। प्रेमरूपी पादप का विरह ही अत्यन्त मधुर परिपक्व फल है। विरहविहीन प्रेम उस पादप के सदृश है जो हरा-भरा तो बहुत है, सुन्दर भी है सघन भी है किन्तु फल से रहित है।

विरहा विरहा मत कहो, विरहा है सुलतान। जिहि घट विरह न ऊपजै, वह घट जान मसान।।

यथार्थ में वह हृदय स्मशान के तुल्य है जहाँ विरह उत्पन्न न हो। प्रेम का तो निकेतन विरह है। विरह में ही प्रेम रहता है। विरह के बिना प्रेम की सत्ता नहीं। विरह परोक्ष में होता है। प्रियतम अपनी आँखों से ओझल हो जायँ, तब वे दूसरा रूप रखकर विरह बनकर आते हैं। स्थूल शरीर के मिलने के लिये तो नेत्र, हस्त, हृदय, मुख आदि की आवश्यकता होती है, किन्तु विरह के मिलने को तो इनकी भी अपेक्षा नहीं। बाह्य मिलन में तो विछोह की भी शंका रहती है। किन्तु विरह के मिलने में तो विछोह की सम्भावना ही नहीं। हृदय से निरन्तर मिले रहते हैं, सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते सदा प्रियतम से सटे ही रहते हैं, सदा हृदय से उनमें ही तन्मय रहते हैं।

शरीर से पृथक् रहने पर ही विरह होता है, वह भी आवश्यक नहीं। स्थूल शरीर पास में ही हो तो भी वियोग सुख की अनुभूति होती है। श्रीवृषभानुनन्दिनी को ऐसा विरह प्राय: होता था। एक समय नित्य निकुञ्ज में राधा श्यामसुन्दर के अंक में विराजमान थी। वे प्रियतम के वदनारविन्द को जोह रही थीं। श्यामसुन्दर की चकोरी बनीं आँखें राधा के वदनारविन्द पर गड़ी हुई थीं। सहसा भावजगत में राधा को ऐसा भान हुआ कि प्यारे मुझे छोड़कर चले गये। राधा निद्रा में हों सो भी बात नहीं। उनके नयन खुले थे। सहसा वे चिल्लाने लगीं- प्यारे, तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये?

वे नयनों से निरन्तर बहाती हैं, अव्यक्त भाषा में बड़बड़ाती हैं प्रियतम के अंक में बार-बार करवटें बदलती हैं, हाथ पैर पीटती हैं, हाय-हाय करके चीत्कार करती हैं। उष्ण-उष्ण उच्छवास छोड़ती हैं। श्यामसुन्दर उन्हें जितना ही धीर बँधाते

हैं, वे उतनी ही अधीर होती हैं। इसका नाम है प्राप्त संयोग में भी विरहानुभूति। यह बहुत ही ऊँची स्थिति की बात है। सामान्यतया विरह होता है वियोग में। दोनों ही ओर से विरहानुभूति होती है। वेदना की तीव्रता जितनी ही अधिक होगी, विरह का आनन्द भी उतना ही उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा। वियोग की आर्ति सबको नहीं होती। किसी भाग्यशाली को ही विरह मिलता है। जैसे अपनी ऐकांतिक भक्तों को ही कृपा कर उसे प्रदान करते हैं।

विरह के लिये सरस हृदय चाहिये। साधारण प्रेम में भी विरह नहीं होता। हृदय प्रेम से सर्वथा परिपूर्ण हो, प्रेम उसमें से छल-छल करके छलकता रहता हो उसी हृदय में विरह होगा। स्त्रियों का हृदय स्वभाव से सरस और कोमल होता है उसमें विरह टिकता है। उद्धव ने विरह व्यथा में व्यथित उन बावरी ब्रजाङ्गनाओं की जो दशा देखी उसे देखकर उनका समस्त ज्ञान चूर-चूर हो गया। गये थे एक दिन के लिये, किन्तु रह गये पूरे छै महीने। श्यामसुन्दर की लौटने की आज्ञा न होती तो सम्भव है, वे कभी लौटते भी नहीं।

शरीर से मिलना स्थाई नहीं। एक शरीर दूसरे शरीर से न जाने कब पृथक हो जाय। यथार्थ मिलना तो मन का मिलना है। हमारे प्रेमी का शरीर कहीं हो, हमारा कहीं हो। यदि हम मन से मिले हैं, निरन्तर उसका स्मरण करते रहते हैं, तो वास्तव में यही मिलन सच्चा है। विरह में मानसिक संयोग होता है। उस समय सोते, जागते, उठते, बैठते, खाते, पीते तथा समस्त क्रियायें करते अपना प्यारा ही दीखता है। दूसरों से बातें करनी अच्छी नहीं लगतीं। नाच-गान राग-रङ्ग नहीं सुहाते। चित्त यही चाहता रहता है। एकान्त में पड़कर उसी की याद करते रहें। प्रियतम की स्मृति में ऐसी मीठी-मीठी वेदना होती है। विरह में बड़ी विकलता होती है, किन्तु उस विकलता में भी एक अनिर्वचनीय सुख होता है। विरह को ही विशेष योग अर्थात वियोग कहते हैं। वियोग जितना ही तत्कालिक होता है, उतना ही अधिक दुखद होता है। पुराना होने से सहन शक्ति बढ़ जाती है, उसमें गम्भीरता आ जाती है। जिसका हृदय जितना ही कोमल होगा विरह दु:ख उसे उतना ही अधिक अधीर करेगा। स्त्रियों का हृदय अत्यन्त कोमल होता है अत: उन्हें विरह भी अधिक व्यापता है। बालकों का भी हृदय सरल और मृदुल होता है। वे भी विरह में बहुत रोते हैं। बूढ़ों को भी विरह वेदना होती है, किन्तु वे अपनी गम्भीरता से उसे व्यक्त नहीं होने देते।

जिनके साथ में सुख की घड़ियाँ बिताई हैं। शून्य आकाश में एकान्त में बैठकर रात्रि भर तारे गिने हैं, जिनकी जङ्घाओं का तकिया लगाकर सोये हैं, जिनके साथ घुलघुल कर बातें की हैं, जिनके अङ्गों को सुख से सुहलाया है, बालों को सुलझाया है। जिन्हें स्वयं खिलाया है, जिनके हाथ से खाया है। जिनके साथ-साथ स्वर-में-स्वर मिलाकर गाना गया है, जिनकी ताल-में-ताल मिलाकर बाजा बजाया है, जिन्हें स्नेह से कन्धे पर उठाया है। अनेकों बार जिनका स्नेहभरित हृदय से आलिङ्गन किया है, प्रेम में भरी हुई बहुत व्यर्थ की बातें की हैं, अपने और उनके अङ्ग में अणुमात्र का भी कभी अन्तर नहीं समझा है, जिनके मधुर मुख को निहारकर, अंग-अंग में एक अनिर्वचनीय स्फूर्ति का सदा अनुभव किया है, जिनको देखते-देखते कभी तृप्ति ही नहीं हुई है। जिनके अङ्गों में अपने अङ्गों को सटाकर एक सुखद सरसता का स्वारस्य लिया है, वे ही भाग्यवश अपने से विलग हो जाय, तो कैसी मर्मान्तिक पीड़ा होती होगी। लेखनी उसका उल्लेख कैसे कर सकती है। यह विषय कहने सुनने और लिखने पढ़ने का नहीं अनुभवगम्य है। सबसे बुरी वस्तु है प्यार किन्तु प्यार किये बिना रहा नहीं जाता, प्यार से भी बुरी वस्तु है विरह किन्तु प्रेम में विरह अनिवार्य है। विरह से भी बुरी वस्तु है उसका कथन किन्तु बिना कथन किये चैन पड़ती ही नहीं।

वेद-वेदान्त, शास्त्र, उपनिषद, पुराण, श्रुति

भारत की प्राचीन ग्रन्थ परम्पारा उज्ज्वल है इसमें मुख्यत: १० उपनिषद, ६ शास्त्र, ४ वेद, १८ पुराणों और रामायण, महाभारत इत्यादि का समावेश है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, साथ ही सामाजिक उन्नति के लिये मनुष्य ने धर्मयापन का मार्ग चुना हुआ है। धर्म जीवन जीने की एक शैली है और प्रकृति इसका पोषण करती है। प्रकृति के साथ जीवन चलता रहे उस प्रकृति को सनातन कहते है। वह जीवनशैली जो प्रकृति से टकराव मोल न ले, सनातन धर्म कहलाती है। हमारा धर्म सनातन है इसका एक अर्थ यह भी है कि मनुष्य के उद्विकास से शुरू होकर यह निरन्तर चला आ रहा है और चलता रहेगा। इसके नैरंतर्य के कुछ मूल आधार भी है और उन्ही आधारों में प्रकृति को समझने के प्रयास भी शामिल है। भारत भूमि पर हमारे पूर्वजों द्वारा इन प्राकृतिक रहस्यों को समझ करके जिस साहित्य में संजोया गया है उन्हे वेद साहित्य कहा गया है। वेद शब्द की व्युत्पत्ति वद् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है बोलना अर्थात पूर्व में जब लिपि का विकास नहीं हुआ था, इन रहस्यों को बोल कर ही एक दूसरे को बताया जाता था। लोगों ने सुन कर के इसको याद रखा यही ज्ञान श्रुति कहलाये। यह वेद साहित्य हमारे सनातन धर्म के मूल ग्रन्थ कहलाते है। इनमें जीवन के सभी विषयों का प्रतिपादन किया गया है और ये हर युग मे मार्गदर्शक के रूप में स्थापित होते आये है।

चारों वेदों में ही इस सृष्टि का रहस्य जीव, जगत और ईश्वर रूपी तीन तत्वों के रूप में छिपा है। वेदों में इन तीनों महातत्वों का निरूपण कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के एक लाख मंत्रों के रूप में है। इन मंत्रों को समझना आसान नहीं है। इसे वे ही समझ सकते हैं जो इसकी योग्यता रखते हों। ऐसे लोग जिन्हें छह वेदांगों-शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छंद, व्याकरण और ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त हो वे इसे आसानी से समझ सकते हैं। इनमें से ज्योतिष को सभी वेदांगों में श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि इसी में क्षमता है काल के उन तीन आश्चर्यजनक रूपों में झांकने की जिन्हें हम भूत, वर्तमान और भविष्य के नाम से जानते हैं।

हम कौन हैं ? कहां से आए हैं और इस धरा पर क्या कर रहे हैं ? किसने बनाया है यह ब्रह्मांड, ये तारे, सितारे, ग्रह, उपग्रह, राहु-केतु और धुमकेतु ? किसने बनाया है इस रहस्यमय अग्नियुक्त सूर्य को, जो करोड़ों वर्षों से इस सौरमंडल में जल रहा है ? कौन है इस शीतल व सुंदर चंद्रमा का निर्माता, जो हर रात अपना आकार बदलता है ? किसने बनाए हैं दिन-रात, सर्दी-गर्मी, बसंत-बरसात, पेड पौधे, जीव जंतु विषाणु ? किसने बनाया है इस सशक्त मानव मस्तिष्क को जिसने विज्ञान के क्षेत्र में तो आज अपरिमित तरक्की कर ली है, लेकिन जीवन मृत्यु, सुख-दु:ख, भाग्य-दुर्भाग्य के रहस्य को अब तक नहीं जान सका है। क्यों हम किसी खास परिवार, स्थान व काल में जन्म लेते हैं ? हर कोई क्यों नहीं सम्पन्न परिवारों में जन्म लेता ? क्यों कुछ लोग अधिक भाग्यशाली होते हैं और जीवन में अधिक सुख भोगते हैं, जबकि कुछ लोग जन्म से मृत्यु तक केवल दुख ही दुख भोगते हैं ? मानव होते हुए भी हम एक दूसरे से भिन्न क्यों हैं ? क्यों हम सबके नैन नक्श, लंबाई-चौड़ाई, शारीरिक बनावट और त्वचा के रंग अलग-अलग हैं ? यहां तक कि सोचने-समझने की क्षमताएं भी अलग-अलग हैं।

वेद-वेदान्त- सृष्टि संचालन के नियमों का नाम ही वेद है। जो ब्रह्मा के मुख से निसृत हुये, गायत्री वेदों की जननी है। वेदव्यासजी ने वेदों को विस्तार किया और उन्हे चार भागों में विभाजित किया। १) ऋग्वेद वेद, २) अथर्व वेद, ३) यजुर्वेद, ४) साम वेद। ऋग वेद संसार का प्राचीन तम एवम् अपौरूषेय वाङ्मय माना जाता है। किसी एक लेखक या समूह ने इसका प्रतिपादन या प्रयत्नपूर्वक लेखन नही किया। वैदिक काल में वाम देव, विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्री, भरद्वाज जैसे कई ऋषियों ने उसमें समय-समय पर नये सूक्त या मन्त्र जोडे। ऋगवेद में कुल १०२९ सूक्त है उनमे १०५५२ मन्त्र है। उनकी रचना १०-१० के गुटों (मंडलो) या ९-९ के गुटों यानि अष्टकों में की गई है। वैदिक जीवन शैली, मान्यतायें, आहार-विहार नीति नियम, ईश्वर कल्पना एवम् दर्शन की जानकारी उससे होती है। उस समय का समाज, सामूहिक जीवन शैली का पालन करता था उसके लिये आवश्यक सहजीवन, सहकार्य, बन्धुता, समता सामंजस्य उस समय थे। लोग वैदिक प्रार्थना आज भी मन:पूर्वक करते है कि लोग एक दूसरे के विरूद्ध विद्रोह कर एक दूसरे की जान न ले। हे इन्द्र हम जिसकी स्तुति करते है, वह विश्व विधाता हमारे नाश के लिये उद्यत न हो। ऋग वेद में स्तुतियाँ और प्रार्थनाओं का समावेश है। कर्मकाण्ड की जानकारी है।

वेदों मे राष्ट्र विचार :- १) ऋगवेद : वरूण राष्ट्र को अविचल करता है। बृहस्पति ज्ञान स्थिर कर, राष्ट्र का कल्याण करता है। इन्द्र राष्ट्र का उत्थान करता है। अग्नि देव राष्ट्र के दोषों का शमन करे। राष्ट्र धन धान्य से परिपूर्ण, प्रबुद्धवान, पाप-अनाचार-भ्रष्टाचार मुक्त और सुरक्षित हो। २) यजुर्वेद :- हमारे राष्ट्र में प्रजारक्षक वीर, धनुर्धारी, लक्ष्य भेदी, महारथी, वीर उत्पन्न हो। राष्ट्र सभी तरह से शक्ति सम्पन्न बने। ३) अथर्ववेद :- राष्ट्र बनानेवाला राजा और नेता हो। वे संयमी और तपस्वी हो सबके अन्त:करण में राष्ट्र भक्ति की ज्योति जलती रहे। मातृ भूमि की रक्षा के लिये और उसके संवर्धन के लिये सर्वस्व करने की सबको प्रेरणा मिले।

वैदिक ऋषियों ने शिव का आवाहन अपने कामी कुत्ते के वाहन से किया था, इसलिये दत्तात्रेय (आदि गुरू) के साथ चार कुत्ते बताये जाते है क्योकि कलियुग में सभी कामी कुत्ते बन जाते है तो इन कामी कुत्तों को रामी और एक नामी बनाने अर्थ दत्तात्रेय का ब्रह्मा के गुप्त रूप में अवतरण होता है। यही ब्रह्मा जब सम्बद्ध या सम्पूर्ण बनता है तब उसे स्वयं के दत्तात्रेय (शिव) होने की प्रतिभिज्ञा होती है। जब ब्रह्मा का पंचतत्व का पार्थिव शरीर छूट जाता है तो वो अव्यक्त वा सूक्ष्म व तन में दत्तात्रेय के रूप में प्रकट होते है। तो वे अब वहां से अपना रहा सहा आर्य जाति बनाने का प्रकार्य आगे बढ़ा रहे है। एक ब्रह्मा कुमारी के शरीर में प्रवेश करके प्रथम वेद का शनै: शनै: जयघोष करके ऋत का प्रतिपादन करके। इसीलिये प्रथम वेद को ऋगवेद कहा गया है। सरस्वती जो ब्रह्मा की अर्धांगिनी है उससे वे सोमरस द्वारा गान विद्या का प्रतिपादन करते है, इसीलिये द्वितीय वेद को साम वेद कहा गया है। जो दत्तात्रेय का वाहन गाय बताते है। उसी प्रकार सरस्वती का वाहन हंस, लक्ष्मी का वाहन उल्लू और गणेश का वाहन चूहा बताते है। विष्णु (जिसने अपने विष को अणु बनाया) के अवतार का वाहन इसलिये कोई न कोई पशु ही होगा जैसे कि विश्वकर्मा का वाहन कौआ, वारही देवी का सुअर (वराह) मच्छेन्द्र का मच्छी, गंगा का मगर, शीतलादेवी का गधा। नृसिंह भगवान का सिंह और विष्णु का वाहन गरूड बताते है एवं कश्यंप का कच्छुआ इत्यादि।

तीसरा है यजुर्वेद अर्थात यजमान बनने की महा कला। चूकिं ब्रह्म कुमारियाँ ही सतयुग का श्री गणेश करती है। इसलिये आज तक यह परम्परा बनी हुई है कि नारी जितना यजमानों की खातिरदारी (मेहमानगिरी) करती है उतना पुरुष नहीं कर सकता। चौथा है अथर्व वेद। चूकि शास्त्र का शास्ता लिखनेवाला गणेश है। इसलिये जब कल्पान्त मे पुन: वेद विद्या सिखाई जाती है तब केवल गणेश ही उस समय के शास्त्र का वास्तविक अर्थ करने में कुशल होते है। तो अथर्व वेद का वास्तविक स्वरूप उसी की बुद्धि से स्पष्ट होता है। शास्त्र का यथावत अर्थ जो करता है। वेदों का अन्त कर वेदान्ती भी वही बनता है इसलिये उसकी सर्वप्रथम पूजा होती है। बिना वेदान्ती के जीवन में सम्पूर्ण संक्रान्ति नहीं हो सकती, जब तक माया की बुद्धि से स्पष्ट होता है। संसार का स्वप्न कोई न कोई रूप में छिपा ही रहेगा। देवता भी स्वप्न से मुक्त नहीं होते है। केवल वेदान्ती ही क्रान्ति कर माया की सम्भ्राति से बाहर हो पाते है। वेदान्ती ही सम्बुद्ध होते है। वेद की ऋचाये उन ब्रह्मकुमारों को ही उतरी जो सरल ऋचा या ऋजु थे। नक्षत्र में अब भी सप्त ऋषियों का या तारा देवी मंडल यादगार रूप में विद्यमान है।

वेदों ने ही हमें अहिंसा और प्रेम का पाठ पढाया है। वेदों में कहा है पशुन पाहि,, मां मा हिं सी: अजां मा हि सी: आव मा हि सी: इमं मा हि सी छिपादं पशूम्।। अर्थात पशुओं को बचाओं, गाय बकरियों को मत मारो, भेडों को मत मारो, दो पांववाले मनुष्यों व पंछियों को मत मारो। घोडा गाय, गधा या पशु को भी मत मारो। हिंसा करना अधर्म है।

यन्नूमम् पश्यां गति मित्रस्य यायां यथा। अस्य प्रियस्य शर्मण्याहिंसानस्य साश्चेरे।। अर्थात हम मित्रों के दिखाये मार्ग का अनुसरण करे। हमारे मित्र अहिंसक बने उनके द्वारा हम कल्याण साध्य करे।

वेदों में क्या है ? यह प्रश्न जिज्ञासुओं के लिये उत्कण्ठा का है। वितण्डावादियों के लिये निरर्थक विवाद का है या आलोचना का है। व्यंग का या नास्तिकता का है लेकिन मुमुक्षु के लिये यह प्रश्न सनातन धर्म से सक्रिय जुडने का है। वेद वह कैवल्य दर्पण है जिसमें जिस युग में जिस जिस ने सक्षम होकर झांक कर देखा तो सामायिक सत्य को प्राप्त किया। यह गुण वेदों को भी सनातन होना प्रमाणित करता है। रचना के बाद हर युग में इनकी युगानुसार व्याख्या की गई है। सातवी सदी में जगत गुरु शंकराचार्य ने इनकी सम सामायिक व्याख्या करके पुन: समाज में प्रतिष्ठित किया तथा ४ पीठ यथा बद्रिका पीठ, पुरी पीठ, श्रंगेरी पीठ और द्वारका पीठ स्थापित किये जो भारत की भौगोलिक एकता के साथ-साथ धार्मिक एकता के भी स्तम्भ प्रमाणित हुये।

युग परिवर्तन के साथ भाषा और समझ के आयाम भी बदल जाते है। सम सामायिक ज्ञान के सापेक्ष वेदों की व्याख्या हर युग में अनिवार्य हो जाती है। चूंकि इस समय विज्ञान का अधिक बोलबाला है, वेदों को वैज्ञानिक पद्धति के सापेक्ष पुनर्स्थापित कराना तथा उस समृद्ध ज्ञान को आम-समझ के स्तर तक लाना सनातन धर्म के लिये आवश्यक हो गया है। वेदों पर भाष्य लिखने का साहस तो दैवज्ञ ही कर पाते है लेकिन जिसने वेद को जिस रूप में देखा अपने वर्णन करने को वह स्वतन्त्र है। इस अधिकार के आधार पर हालांकि वेदों की आलोचनाये ही ज्यादा हो रही है परन्तु वेदों को जोडनेवाली दृष्टि से जिन्होने देखा, वे व्यक्ति भी इनको वैज्ञानिक पद्धति के सापेक्ष प्रतिष्ठित कर पाने में भी अभी सफल नहीं हो पाये है। यहां असफलता का कारण लोगों में वेदों के प्रति अज्ञानता ही है। वेदों में

प्रकृति के रहस्य को समझने के लिये प्रकृति को मूलरूप से दो शक्तियों में बांटा जा सकता है, जिन्हे हम पदार्थ और ऊर्जा कह सकते है और गीता में जिन्हे क्षर और अक्षर कहा है और सन्तों ने जिन्हे जगत और ब्रह्म कहा है। ऋगवेद में पुरुष-सूक्त में इसी ब्रह्म का वर्णन किया हुआ है, जिसमें मुख्य रूप से ईश्वर को निराकार, निर्मल, अनन्त तथा स्वयंभू के गुणों से विभूषित किया गया है। ये सभी गुण उर्जा के है।

इस युग के प्रचलित वैज्ञानिक सूत्र $E=MC^{2}$ के आधार पर परमाणु बम बनाये गये है, इसका अर्थ है पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है, जिससे एक अर्थ यह स्थापित होता है कि यह चेतन पदार्थ जगत है व प्रलय के बाद ऊर्जा में समाहित हो जायेगा। ऊर्जा अनन्त है, ऊर्जा सदैव है और उसका केवल रूप-परिवर्तन हो सकता है, वह निराकार है और एक गुण-विशेष है, वह है स्वयंभू। स्वयंभू का अर्थ है ऊर्जा से पदार्थ की उत्पत्ति। जिस प्रकार पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है उसी प्रकार ऊर्जा भी अपने आप पदार्थ में बदल जाती है। जिसे हमारे वेद साहित्य में सृष्टि की रचना कहा है।

विख्यात चारों वेद मानों चार सुख के सार हैं, चारों दिशाओं में हमारे वे जयध्वज चार है।

वे ज्ञान-गरिमागार हैं, विज्ञान के भण्डार हैं, वे पुण्य-पारावार हैं आचार के आधार हैं।

भारत को वेदान्त भुलाने की आवश्यकता है और पश्चिम को वेदान्त सीखने की जरूरत है।

वेदान्त का उद्देश्य संसार को दु:ख, सुख, भाग्य, मोहादि से विमुक्त करना है। वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने पर मनुष्य शोक, भय और चिन्ता से विमुक्त हो जाता है। वेदान्त के अनुसार नितान्त कर्म ही विश्राम है।

वेदान्त हिंदू सभ्यता एवं संस्कृति की पराकाष्ठा है अपने जीवन को सर्वोच्च और सर्वोत्तम प्रकार से बिताने के विज्ञान और कला को वेदान्त कहते हैं। वेदान्त कहता है तुम यह नश्वर शरीर नहीं हो, वरन् तुम सबमें व्याप्त अमर आत्मा हो।

आपुहि मीच जियन पुनि आपुहि, आपुहि तन मन सोय। आपुहि आप करै जो चाहै, कहां सो दूसरा कोय।।

सायण के अनुसार जो अनिष्ट का परिहार करे और ईष्ट यानी प्राप्त करने योग्य की उपलब्धि कराए उसे वेद कहते हैं। हिंदू धर्म में चार पुस्तकों को वेद के नाम से जाना गया है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। मूल रूप से सिर्फ इन्हीं चार ग्रंथों के साथ वेद शब्द का प्रयोग किया गया है।

वेद शब्द का मतलब है जानना यानी ज्ञान। जो मनुष्य को सत्य के ज्ञान की ओर प्रवृत्त करे, वह वेद है। वेद शब्द वेदन, संवेदन और अनुभव के अर्थ का वाहक है। अनुभव ज्ञान का आधार है। वेदों का वर्गीकरण दो तरह से किया गया है- त्रिविध और चतुर्विध। पहले में संपूर्ण वेदमंत्रों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है- ऋक, यजु: और साम। इन्हीं तीनों का संयुक्त नाम त्रयी है। ऋक् का अर्थ है प्रार्थना अथवा स्तुति। यजु: का अर्थ है यज्ञ-यज्ञ का विधान। और साम का अर्थ है शांति अथवा मंगल गान।

वेद से जो वाङ्मय विकसित हुआ उसके चार भाग हैं- संहिता में वैदिक स्तुतियां है। ब्राह्मण में मंत्रों की व्याख्या है। आरण्यक में वानप्रस्थियों के उपयोग के लिए अरण्य गान और विधि-विधान है। तथा उपनिषदों में दार्शनिक व्याख्याएं मिलती हैं। वेद का चतुर्विध विभाजन यज्ञ को ध्यान में रख कर किया गया है। यज्ञ के लिए चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है- होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा। होता का अर्थ है आह्वान करने वाला। होता यज्ञ के अवसर पर

अपने विशिष्ट देवता के लिए प्रशंसात्मक मंत्रों का उच्चारण कर उसका आह्वान करता है। ऐसे मंत्रों का संग्रह जिस संहिता में है उसी का नाम ऋग्वेद है।

अध्वर्यु का काम यज्ञ का संपादन है। उसके लिए आवश्यक मंत्रों का संकलन जिस संहिता में है, उसका नाम यजुर्वेद है। उदगाता का अर्थ है उच्च स्वर से गानेवाला। इसके उपयोग के लिए मंत्रों का संग्रह जिस संहिता में है उसका नाम सामवेद है। ब्रह्मा का काम यज्ञ की अध्यक्षता करना है। वह चारों वेदों का ज्ञाता होता है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है हमें अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद प्राप्त हुए।

ईश्वर की जाग्रत अवस्था सृष्टि है और निद्रावस्था प्रलय। वेद में जो भगवान की एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेज इच्छा व्यक्त की गई है, वह एक से अनेक की ओर उन्मुख होकर प्रजासृष्टि की ही इच्छा है। इस इच्छा को भी वेद कहा गया है। जैन आगम वेदन-सम्वेदन-अनुभूति के अर्थ में वेद शब्द का प्रयोग करते हैं। बाद में स्त्री की काम इच्छा को स्त्रीवेद, पुरुष की काम भावना को पुरुष वेद और दोनों की मिश्रित कामदशा को नपुंसकवेद भी कहा गया है।

वेदों में ऋषि, छंद और देवता का उल्लेख मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस ऋषि के द्वारा जो मंत्र प्रकाशित हुआ, वह उस मंत्र का ऋषि है। जिन छंदों में वे मंत्र कहे गए हैं, वे उन मंत्रों के छंद हैं। जिस मंत्र से भगवान के जिस रूप की उपासना की जाती है, वह उस मंत्र का देवता कहा गया है।

वेद परंपरा से सुने गए हैं। इसीलिए इन्हें श्रुति कहते हैं। जिस ऋषि का नाम वेद के सूक्तों से संबद्ध है वे द्रष्टा: यानी देखनेवाले कहे गए हैं, उन्हें कर्तार: या रचयिता नहीं कहा गया है। वेदों के अध्ययन में सहायक छह अंगों को वेदांग कहा गया है- शिक्षा अर्थात उच्चारण विज्ञान, छंदस यानी छंद शास्त्र, व्याकरण, निरूक्त यानी वेद के कठिन पदों की व्याख्या।

ज्योतिष को पांचवां वेदांग और कल्प यानी कर्मकांड को छठा वेदांग माना गया है। लेकिन पांचवां वेद होने का दावा अन्य ग्रंथों के बारे में भी करते हैं जैसे भरत मुनि के नाट्यशास्त्र या चरक संहिता के बारे में।

कोई व्यक्ति जीवन में किस प्रकार हमेशा प्रसन्न रह सकता है? हर व्यक्ति का अपना खुशी का मानदंड अलग-अलग है। किसी को केवल भौतिक सुखों से मतलब है, किसी को आध्यात्मिक सुख भी चाहिए और किसी को स्वास्थ्य का सुख चाहिए।

स्वामी दयानंद ने गृहस्थ आश्रम को ज्येष्ठ आश्रम कहा है। उनका मानना था कि जो व्यक्ति संसार के सुख की इच्छा करता है और इस संसार को भी सुखी रखना चाहता है, वह गृहस्थ आश्रम को धारण करे। इसके बिना ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम भी पूरे नहीं हो सकते थे।

गृहस्थाश्रम में जब स्त्री-पुरुष दोनों एक-दूसरे को प्रसन्नता देते हैं, परस्पर मिल कर दूसरों को भी प्रसन्नता देते हैं, जीवन में पुरुषार्थ करते हैं और सब प्रकार से कुशल व्यवहार करते हैं, तो अपने आसपास वे प्रसन्नता का एक वातावरण निर्मित करते हैं।

दयानंद जी कहते थे कि दांपत्य में विश्वास होगा तो जीवन में प्रसन्नता बनी रहेगी। परिवार बिखरेंगे नहीं। इसीलिए जीवन को संतुलित और व्यवस्थित बनाए रखने के लिए ऋषियों ने ऐसी आश्रम व्यवस्था बनाई, जिससे वह लोक और परलोक के अपने सभी कर्त्तव्यों को निभा सके। यह आश्रम व्यवस्था व्यक्ति को क्रमिक रूप से आगे बढ़ाती है और जीवन

के अंतिम लक्ष्य- मोक्ष की ओर अग्रसर करती है। इसमें भोग व मोक्ष, भौतिकता व आध्यात्मिकता का सुंदर समन्वय है।

महर्षि दयानंद ने अपनी प्रसिद्ध रचना सत्यार्थ प्रकाश में यही समझाने का प्रयास किया है कि जीवन में सदा सत्य को स्वीकार करने और असत्य का त्याग करने का आग्रह रखो।

वे मनुष्य की चिंतन-मनन करने की क्षमता को बहुत महत्व देते थे। वे कहते थे कि मनुष्य जब मनन करना छोड़ देता है, तो वह मनुष्य नहीं रह जाता। लेकिन मनुष्य मननशील होकर क्या करे? स्वामी जी ने समझाया, मननशील होकर वह अन्यों के सुख-दु:ख और हानि-लाभ को ठीक उसी प्रकार समझे, जैसे अपने सुख-दुख और हानि-लाभ को समझता है। यदि वह मनन कर सकता है तो अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल के निर्णय का भी आदर करे। स्वामी दयानंद की वेदों में गहरी आस्था थी। वे उसे मनुष्यता की प्राचीनतम धरोहर मानते थे और आधुनिक समाज को उसके निकट ले जाना चाहते थे। उन्होंने जो कुछ भी बताया, उसका आधार वेद, वैदिक साहित्य, स्मृति, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ ही थे।

वे मानते थे कि वैदिक धर्म में परमात्मा, मानव धर्म और सृष्टि धर्म के बारे में अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से चिंतन-मनन किया गया है। इसमें प्राणिमात्र के कल्याण और उनके सुख-शांति की कामना है। वैदिक धर्म के सिद्धांत- वैज्ञानिक, सृष्टिक्रम के अनुकूल तथा उपयोगी है। जो सिद्धांत या जीवनमूल्य सत्य पर आधारित होते हैं, वही स्थायी व स्थिर रहते हैं।

उनकी मान्यता थी कि परमेश्वर की इस सृष्टि में मनुष्य कर्ता भी है और भोक्ता भी, इसीलिए वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसके जीवन में भोग और मोक्ष ही प्रमुख प्राप्तव्य है। धर्म और अर्थ इसके लिए साधन मात्र है। इसलिए वह जीवन में खुशी पाने के लिए वेदों को प्रमाण मान कर सत्य सामने रखे। उन्होंने वहां से वसुधैव कुटुम्बकम् (यह सारा संसार एक परिवार है), सर्व आशा मम मित्रं भवन्तु (सभी दिशाएं मेरे मित्र बना जाएं) और सर्वे भवन्तु सुखिन: (प्राणिमात्र सुखी हों, सभी का कल्याण हो) जैसे सूत्र उठाए और उनकी भावना का प्रचार किया।

इस संसार का ज्ञान नियमों पर आधारित है। गणित, रसायन शास्त्र, भौतिक विज्ञान, समाज शास्त्र नियमों पर आधारित है। हमारा शरीर भी नियमों पर आधारित है। पूरा संसार नियमों पर चलता है। ये नियम दो प्रकार के हैं- कुछ परिवर्तनीय हैं जो समय के साथ-साथ बदलते रहते हैं। कुछ अपरिवर्तनीय है जिन पर देश, काल, परिस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इन अपरिवर्तनीय नियमों को ही सनातन धर्म कहा जाता है। सनातन से अभिप्राय है जो अनादि काल से चला आ रहा है। और धर्म से अभिप्राय है नियम। इस सनातन धर्म का ही दूसरा नाम वेदांत है।

वेदांत शब्द संस्कृत के दो शब्दों से मिलकर बना है- वेद और अंत। हमारे वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन चारों वेदों के चार-चार भाग हैं। आखिरी भाग उपनिषद हैं। उपनिषद ही वेदांत है। वेदों के अंत में होने से वे वेदांत कहलाए। वेदांत भावनाओं को महत्व नहीं देता। जैसे गणित तर्क पर आधारित है, वह हमारी कल्पना अथवा मन की भावना से नहीं चलता, उसी प्रकार वेदांत भी नियमों पर आधारित है। वेदांत के नियमों का पालन जीवन को सुखी बनाने के लिए जरूरी है। इन नियमों का उद्देश्य है अपने मन का विश्लेषण।

वेदांत का प्रमुख नियम है, जितना हम आध्यात्मिक स्तर पर ऊपर उठेंगे उतनी हमारी संसार पर निर्भरता कम होगी। जो

व्यक्ति संसार पर जितना अधिक निर्भर है, वह उतना ही कम आध्यात्मिक है।

पहले एक वेद लिखा गया था चार भागोंमे। उसको वेदव्यास ने चार भागोंमें विस्तार किया इसलिये उनका नाम व्यास हुआ। व्यास का नाम कृष्ण द्वैपायन है पर वेदोंका विस्तार करनेसे उनका नाम वेदव्यास हुआ। इन्होंने अपने चार शिष्योंको दिया- जेमिनी, वैशम्पायन, पेल साम ऐसे चार ऋषि हुए जिनके वेद बांटे गये। इसके चार उपवेद हुए है- स्थापत्य, गान्धर्व, आयुर्वेद, धनुर्वेद। स्थापत्य वेद- शिल्पकला को कहते है जिसके अधिष्ठाता विश्वकर्मा और मय दानव। देवोंका इंजिनियर विश्वकर्मा, राक्षसोंका- मय दानव। गान्धर्व वेद- संगीतशास्त्र। संगीत के उपकरण- ढोल, मजिरा, छमछम, नगाड़े, वीणा यह सब तरह के। इनके बारेमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ वो गान्धर्ववेद से। इसके अधिष्ठाता बनें हाहा, तम्बरू और गन्धर्व नारद। तीसरा बना- धनुर्वेद- धनुष विद्या। पहले यह थे अस्त्र, शस्त्र विद्या, लक्ष्यभेदन। अग्नेय अस्त्र, ब्रह्मास्त्रेय, पशुपातास्त्र। इस तरह से यह चार वेद। आयुर्वेद- यह चिकित्सा विज्ञान। जड़ी-बूटियों से- पेड़ोंसे, वनस्पतियोंसे निकाला हुआ द्रव्य। उससे जो वेद बना, उससे जो आपका उपचार, इलाज होता है। क्योंकि यह धीमी प्रक्रिया है वनस्पतियोंका इलाज। दवाइयां बनती है इन्हीं सभीसे। किस मात्रामें कितनी मिलाई जावे यह आपके आयुर्वेद में दिया है। इसके प्रवर्तक धन्वतरी, भास्कर, चरक ये उनके शिष्य। जो मुख्य है चार- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। ऋग्वेद- सभी स्तुतियों का, प्रार्थनाओंका, दुनिया का विवरण का है। यजुर्वेद- आयुर्वेद की एक शाखा। आयुर्वेद उसमेंसे निकला हुआ है। सामवेद- संगीतका शास्त्र। अथर्ववेद- अर्थशास्त्र। पूरी अर्थव्यवस्था सृष्टिकी कैसे चलेगी इसके बारेमें यह वेद। ऋग्वेदमें पूरा यज्ञविधि दी है, यज्ञ कैसे कराया जाए, खीर और घी की हवन दी जाती है उससे चारु प्रकट किया जाता है। जिससे संतति भी उत्पन्न करने के एक माध्यम दिया है ऋग्वेद में। जिस किसी गृहस्थ को संतति नहीं हो और सही ढंग से यज्ञ किया गया हो उसमें से जो चारू और पुरोडष किया जाता है वो खिलानेसे गर्भ स्थापना की जाती है। यह करानेवाले कौन? इसके ये चार ऋत्विज होते है। ब्रह्मा, पंडित जो इसके जानकार है वेदोंके वो यह यज्ञ करवा सकते है। पंडितोंको जो कराते है उनको ऋत्विज कहा गया है। वो कौन करा सकते है ब्रह्मा, होता, उद्‌गाता ऐसे चार ऋतुज है। ब्रह्मा पूरे यज्ञ की देखरेख करता है, विधि करता है, चारों का अधिष्ठाता रहता है। होता- सब क्रियाकर्म करानेवाला। उद्‌गाता- सामवेद की ऋचाएं गाता है। ऐसे चार ऋत्विज उस यज्ञका संपादन करते है तभी यज्ञ पूरा होता है। यह हमारे वेदोंकी विधि है यह चलते आयी है। वैशम्पायन, पैल, जेमिनी, साम जिन्होंने चार वेदोंको लिया।

वेद कर्म परक हैं। जब तक जीते रहो शुभ कर्म करते रहो। वेद के मन्त्रों से भावनानुसार यज्ञ यागादि करने से स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है। स्वर्ग सुख भोगकर फिर पृथ्वी पर सत्कुल में जन्म होता है। फिर यज्ञ करो, फिर स्वर्ग को प्राप्त करो, यही वेद को अभीष्ट है, यही सुख है, यही चर्म लक्ष्य है। वेद में जो ज्ञान परक वाक्य हैं, वे तो स्तुतिपरक हैं। अत: वेद में बताये यज्ञादि कर्मों के ही द्वारा चरम सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। वेद विहित कर्मों के द्वारा अन्त:करण की शुद्धि होती है। वेद विहित यज्ञकी कर्म मोक्ष में परम्परागत कारण है। अर्थात कर्मों से अन्त:करण की शुद्धि, शुद्ध अन्त:करण में मोक्ष की इच्छा होना, उससे ज्ञान की प्राप्ति और ज्ञान से मुक्ति। वेद तो कर्म परक ही हैं। समस्त वेदों में कर्मकाण्ड का ही विस्तार है। उसमें जहाँ देखो वहीं कर्म की प्रशंसा है, यज्ञ यागादिकों का ही विस्तार से वर्णन है। वेद का मुख्य तात्पर्य

अपने स्वरूप भूत आत्मलोक को दिखाने में है।

शास्त्र- जीवन सुखमय बनाने का ज्ञान ही शास्त्रों में होता है लेकिन यह ज्ञान प्राप्त करने की भी योग्यता होनी चाहिये। जो मूलत: अध्ययन करते है और उसके अनुसार आचरण करते है उन्हें शास्त्र जानने का अधिकार हैं। जिन्हे आस्था तो है मगर उसके अनुसार आचरण नहीं कर सकते, वे भी शास्त्र जान सकते है। लेकिन इनसे भी अलग एक समूह है। कुछ लोग आधे-अधूरे ज्ञानी होते है, वे अपना ही मत सच्चा मान कर हमेशा शास्त्र मत का खंडन करते है या अपने स्वार्थ के अनुसार उसे मरोडते है, या सुविधा देख कर अर्थ निकालते है उन्हे शास्त्र जानने का अधिकार नहीं है। ये लोग कभी सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। अध जल गगरी छलकत जाय की तरह इनकी स्थिति होती है। इसलिये अपने और दुनिया के कल्याण के लिये आवश्यक ज्ञान देने वाला शास्त्र जानने के लिये वैसी ही योग्यता जरूरी है। शास्त्र में अनेक नियम होते है जो बताते है कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं। इसमें सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये जा सकते। कुछ शास्त्र वचनों का आध्यात्मिक या वैज्ञानिक आधार होता है। ऐसे दोनो कारण शास्त्र वचनों में पाये जा सकते है उदाहरण के लिये १) उत्तर दिशा में सिर करके नहीं सोना चाहिये। २) सूर्योदय के समय सूर्य नमस्कार करना चाहिये। ३) पितरेश्वरों का श्राद्ध करना चाहिय। ४) पूजा ध्यान आदि आसन पर बैठ कर करना चाहिये इत्यादि।

श्रुति - वेद की ऋचा को श्रृत ज्ञान भी कहते है इसी से श्रृति शब्द ना है। श्रृति उन श्रमणों (ब्राह्मणों) को सुनायी पडी जो श्रम (सन्यास) करने वाले सच्चे ब्रमण या ब्राह्मण थे। इसलिये यह विधान बना है कि ब्राह्मण ही ब्रह्म ज्ञान के अधिकारी है। हिन्दु संस्कृति का मूल १) ऋण २) यर्जु ३) साम, ४) अथर्व इन ४ वेदों पर आधारित है। हिन्दू संस्कृति-सभ्यता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास चार आश्रमों में विभक्त है। पुरुषार्थ भी धर्म, अर्थ, कर्म, मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ चातुरस्य कहे गये है।

दिशाये भी चार है। अत: चारों दिशाओं के अनुपात से पूर्व में जगन्नाथ, पश्चिम में द्वारका, दक्षिण में रामेश्वरम् और उत्तर में बद्रीनाथ धाम स्थापित है। इसमें भगवान बद्री नारायण यजुर्वेद के प्रतीक, रामेश्वर जी ऋग्वेद के प्रतीक, भगवान द्वारकेश सामवेद तथा भगवान जगन्नाथ ऋगवेद के प्रतीक माने गये है।

चित्त के लिये तो कुछ चिन्तनीय वस्तु चाहिये, वह बिना विचारे बैठ नहीं सकता। अत: जो व्यर्थ की बातों का विचार न करके मन को शास्त्रीय विषयों में बहलाये रहते हैं, उसे श्रुति कहते हैं।

पुराण- पुराण जो पुराना इतिहास हो चुका है उस ज्ञान की आख्यान को पुराण कहा गया है। अर्थात जो पहले का है। सृष्टिनिर्माण के समय लोकपितामह ब्रह्मा ने समस्त शास्त्रों में सर्वप्रथम पुराण का ही स्मरण किया था। इसके बाद उनके मुखों से वेद प्रादुर्भूत हुए। प्राचीनकाल में प्रणीत होने के कारण यह पुराण कहा जाता है। जो इसकी व्याख्या जानता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

पुराणों में साधारण लोगों का वर्णन नहीं होता, या तो नित्य, मुक्त और भगवद् भक्तों का वर्णन होता है या भगवान और उनके अंश, कला आदि अवतारों का वर्णन होता है। पुराणों में जिन ऋषियों का, राजर्षियों का वंश वर्णन किया गया है, उसके पढ़ने-सुनने से पुण्य होता है, अन्त:करण पवित्र होता है और इस सीमित पृथ्वी को ही जो सब कुछ

माने बैठे है वह भ्रम दूर होता है। ये महर्षि, राजर्षि अपने-अपने अधिकारों का भोग करके, अधिकारों से पृथक होने पर भी स्वर्गादिक ऊपर के लोकों में निवास करते हैं। इस मन्वन्तर में जो इन्द्र है दूसरे में मनु हो सकता है, तीसरे में मनु पुत्र। इस मन्वन्तर में जो सप्तर्षि है, वे दूसरे मन्वन्तर में सामान्य ऋषि हो जाते है। सभी पुराणों में विस्तार के साथ मनु पुत्र और सप्तर्षि का वर्णन आता है।

ब्रह्म के ही रूप हैं पुराण जिनके नाम और विग्रह के रूप इस प्रकार हैं। ब्रह्मपुराण- भगवान का मस्तक, पद्मपुराण- हृदय, विष्णुपुराण- दाहिनी भुजा, शिवपुराण- बाईं भुजा, भागवतपुराण- ऊरुयुगल, नारदीयपुराण- नाभि, मार्कंडेयपुराण- दाहिना चरण, अग्निपुराण- बायां चरण, भविष्यपुराण- दाहिना घुटना, ब्रह्मवैवर्तपुराण- बायां घुटना, लिंगपुराण- दाहिनी एड़ी, वराहपुराण- बाईं एड़ी, स्कंदपुराण- रोएं, वामनपुराण- त्वचा, कूर्मपुराण- पीठ, मत्स्यपुराण- मेदा, गरुडपुराण- मज्जा, ब्रह्माण्डपुराण- अस्थि।

वेद, उपनिषदों के बाद भारत में पुराणों की रचना की गई। वे पुराण इस तरह है, ब्रह्म पुराण, पदम पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, वराह पुराण, एकन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड पुराण, ब्रह्मांड पुराण। ये प्रमुख अठारह पुराण है जिनमें कुल मिला कर लगभग चार लाख श्लोक है। इन पुराणों में भगवान की लीलाये व मनोरंजक कथाये ही है यह सोच कर कई लोग उन्हे उपेक्षित कर देते है लेकिन वास्तव में भारतीय प्राचीन संस्कृति का सच्चा स्वरूप इन पुराणों में छिपा है। उसमें आधुनिक विज्ञान तन्त्र छिपा है। इन्ही पुराणों का परिशीलन कर पश्चिमी लोगों ने नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार इजाद किये। पुराण संग्रह हमारे देश का अनमोल ज्ञान संग्रह है। इनके अध्ययन से विज्ञान के सिद्धान्त निर्धारित किये जाते है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, साथ ही सामाजिक उन्नति के लिए मनुष्य ने धर्मयापन का मार्ग चुना हुआ है। धर्म जीवन की एक शैली है और प्रकृति इसका पोषण करती है। प्रकृति के साथ जीवन चलता रहे, उस स्थिति को सनातनता कहते हैं। वह जीवनशैली जो प्रकृति से टकराव मोल न ले, सनातन-धर्म कहलाती है। हमारा धर्म सनातन है; इसका एक अर्थ यह भी है कि मनुष्य के उद्विकास से शुरू होकर यह निरन्तर चलता आ रहा है और चलता रहेगा। इसके नैरंतर्य के कुछ मूल आधार भी हैं और उन्हीं आधारों में प्रकृति को समझने के प्रयास भी शामिल हैं। भारत भूमि पर हमारे पूर्वजों द्वारा इन प्राकृतिक रहस्यों को समझ करके जिस साहित्य में संजोया गया है उन्हें वेद साहित्य कहा गया है। वेद शब्द की व्युत्पत्ति वद् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है बोलना; अर्थात् पूर्व में जब लिपि का विकास नहीं हुआ था, इन रहस्यों को बोलकर ही एक-दूसरे को बताया जाता था, लोगों ने सुनकर के इसको याद रखा, यही ज्ञान श्रुति कहलाये। यह वेद-साहित्य हमारे सनातन धर्म के मूल-ग्रन्थ कहलाते हैं इनमें जीवन के सभी विषयों का प्रतिपादन किया गया है और ये हर युग में मार्गदर्शक के रूप में स्थापित होते आए हैं।

पुराण और इतिहास में यद्यपि अन्तर नहीं है क्योंकि पुराणों का आधार भी इतिहास ही होता है किन्तु पुराणकारों की यह विशेषता होती है कि वे अतिशयोक्तियों और रूपकों का सहारा लेकर ऐतिहासिक गाथा को सामान्य जन के मध्य लोकप्रिय बनाने का प्रयास करते हैं। साथ ही जो पुराण जिस व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित होता है, उसी को वह सर्वोपरि

मानता है और उसे ईश्वर तक पहुँचाने का प्रयास करता है। ऐसी स्थिति में अगर पुराणों को अतिशयोक्तियों और अनावश्यक रूपकों से मुक्त कर दिया जाए तो पौराणिक आख्यान भी इतिहास की प्रामाणिकता प्राप्त कर सकते हैं और पौराणिक उपन्यास भी ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में आ सकते हैं। सारे विद्वानों ने महाभारत-युद्धकी ऐतिहासिकता को स्वीकारा है और माना कि वह आज से प्राय: पाँच हजार वर्ष पूर्व लड़ा गया।

भगवान के वचनों को ही वेद कहते हैं। जिसमें भगवान के अवतार चरित्रों का वर्णन हो वे ही पुराण कहलाते हैं। वैसे तो पुराण के दस लक्षण बताये हैं, किन्तु मुख्य लक्षण यही हैं, जिसमें पुराण पुरुष की पुण्यमयी महिमा का वर्णन हो उसे पुराण कहते हैं। वही मनुष्यों को सुनने योग्य है, उसी से अज्ञान दूर होगा, उसी से मुख्य तत्व का ज्ञान होगा। समस्त पुराणों का उपदेश भगवान ने ही ब्रह्मा को दिया है। यही सबसे प्राचीन ज्ञान है, इसीसे इन्हें पुराण कहते हैं। प्राचीन होने पर भी जो नित्य नई ही दिखाई दें, जो निरन्तर सुनने पर भी कभी पुरानी न हो वे ही पुराण हैं।

आर्य शास्त्रों में पूर्ण वर्णन करने की प्रथा है, जिस वर्णन को करेंगे, उसका पूर्ण परब्रह्म से सम्बन्ध स्थापित करके अन्त में पूर्ण में ही उसका अवसान कर देंगे। जैसे अग्नि से ही विस्फुलिङ्ग चिरगारियाँ उत्पन्न होती हैं और अन्त में अग्नि में ही विलीन हो जाती हैं। कोई बड़ी चिनगारियाँ होती हैं कोई छोटी। कोई पतली होती हैं कोई मोटी। कोई अधिक काल प्रकाश करती है, कोई उत्पन्न होते ही बुझ जाती है। वे सब ही अग्नि का स्वरूप ही हैं। अग्नि से पृथक उनकी कोई सत्ता नहीं, अस्तित्व नहीं, इसी प्रकार ये प्रजापति, मनु, मनुपुत्र, देवता, इन्द्र तथा चराचर जगत् उन्हीं विश्वम्भर की लीला का विलासमात्र है। किसी के एक दिन में कई जन्म होते हैं, कीड़े पतंगे दिन में कई बार मरते जीते हैं। कोई पक्षभर जीते हैं, किसी की आयु महीनों की है, कोई वर्ष भर जीते हैं। कोई अपने को शतायु कहते हैं। बहुत से दिव्य वर्षों से १०० वर्ष जी हैं, कोई मन्वन्तर पर्यन्त, कोई कल्पपर्यंत और कोई महाकल्प पर्यंत। जीव सब एक हैं एक से ही अन्तर इतना है, जो भगवद्भक्त हैं, प्रभु कृपापात्र हैं, वे प्रभुमय बन जाते हैं। उनके चरित्र श्रवण करने से भगवद्भक्ति का उदय होता है। परमार्थ का पथ परिष्कृत होता है। अत: पुण्यलोक पवित्र कीर्ति पुरुष के पावन चरित्र का प्रतिदिन परायण करना चाहिये। उन्हीं के श्रवण मनन चिन्तन में समय लगाना चाहिये। यही समय की सार्थकता है।

सर्व शास्त्रों का सार है, ज्ञान रूपी समुद्र को मथकर वह स्तुति रूपी अमृत निकाला गया है। वह भक्ति रूप दुग्ध की मधुर मनहर मलाई है।

उपनिषद- उपनिषदों से हमें आत्मज्ञान के पडाव मिलते है। १) आत्म बल :- हमे आत्मज्ञान प्राप्त करना है यह दृढ़निश्चय करना ही आत्मबल बढ़ाना है। २) उत्थान :- इच्छा की प्रबलता के बाद प्रत्यक्ष करना यानी उत्थान करना, ३) ब्रह्मचर्य :- शारीरिक क्षमता एवं बौद्धिक क्षमता बढाने का कायिक-वायिक मानसिक नियमन करना। ४) गुरुसेवा :- आत्मज्ञान सम्पन्न गुरु ढूंढकर पूरे मनोभाव से उसकी सेवा करना ५) गुरुसानिध्य :- अधिक से अधिक समय गुरु के साथ बिताना ६) जीवन निरीक्षण :- आत्म प्राप्ति का ध्येय प्राप्त करते हुये खुद का निरीक्षण एवं परीक्षण करना ७) श्रवण :- सतत गुरु बोध, शास्त्र चर्चा श्रवण करना ८) आचरण :- गुरु बोध का प्रयत्न पूर्वक पालन करना, ९) अवबोधन :- श्रवण से प्राप्त बोध मन में रखना १०) अधात्मज्ञान :- यह सब पडाव जानने के बाद निश्चय ही आत्मज्ञान हो जाता है।

सपना

सपनों के बारे में विज्ञान भी ज्यादा नहीं जानता। पर ये सच है कि सपने हम सभी देखते हैं, लेकिन अधिकतर सपने हम भूल जाते हैं। फिर भी सपने हमारे जीवन में भावनाएं जरूर पैदा करते हैं। सपने हमें खुश करते हैं और कभी हमें डराते भी हैं। सपने वो कहानियाँ तथा दृश्य हैं जो सोते हुए हमारे मस्तिष्क में घूमते हैं। कभी-कभी ये आपको भ्रमित कर देते हैं और कभी-कभी ये एकदम तार्किक भी होते हैं। हम सपने क्यों देखते हैं, लेकिन कोई भी स्पष्ट रूप से इस बारे में कुछ नहीं कहता। इन सपनों का कोई उद्देश्य नहीं होता है। हमारी जिंदगी में सपने जरूरी भी हैं। ये हमें मानसिक और भावनात्मक रूप से मजबूत बनाते हैं। सपने नहीं देखनेवाले लोग अधिक तनाव में रहते हैं। उन्हें अवसाद भी होता है और उनकी एकाग्रता में भी कमी रहती है।

हमें सपने याद क्यों नहीं रहते। अगर सपने हमें याद रहने लगें तो समय के साथ हम असली घटनाओं की याद और सपनों में अंतर नहीं कर पायेंगे। इसलिए कई बार हमें वही सपने याद रहते हैं और जो जागने के ठीक पहले के होते हैं। क्योंकि उस समय तक हमारे दिमाग में कुछ हलचल शुरू हो जाती है।

हम सपने गहरी नींद में देखते हैं। उस वक्त हमारे मस्तिष्क का याददाश्त से जुड़ा हिस्सा भी सोया रहता है। सुबह के सपने याद रखने का एक ही तरीका है कि उठते ही सपने की जो भी बात आपको याद हो, उसे कागज पर उतार लो।

सपने में जिसे देखा बहुत है, मुकद्दर नींद का चमका बहोत है। सपनों के दौर का इन्सान हर इक बाजार में बिकता बहुत है। कहते हैं सपने वो नहीं होते जो हम नींद में देखते हैं, सपने तो वो होते हैं जो हमें सोने नहीं देते। हर देश, हर क्षेत्र में सोते समय अपने-अपने तरह से सुहाने सपनों की दुआ की जाती है। नींद जरूरी है, लेकिन यह माना जाता है कि वह सपनों के बिना अधूरी है। सपने हमेशा ही आदमी की नींद का अभिन्न अंग रहे हैं। बेशक, सपने हमेशा याद नहीं रहते और कई बार तो भयानक या डरावने भी होते हैं। जीवन की बुरी बातों या घटनाओं को किसी बुरे सपने की तरह भुला देने की बात भी अक्सर कही जाती है। सपनों के बारे में अच्छी बातों के बाद एक बुरी खबर भी है। वैज्ञानिकों ने अपने विश्लेषण में पाया है कि हमारी नींद, हमारी रातों के सपने लगातार कम हो रहे हैं। इसके ज्यादातर कारण वही हैं, जो आजकल हमें ठीक से सोने नहीं देते। यानी तेज रोशनीवाले शहर, कानफोडू संगीत , बिस्तर में आपके साथ ही पहुंच गया दिनभर के कामकाज का तनाव, मोबाइल फोन जैसे वे उपकरण जो पूरी-पूरी रात आपके सिरहाने बैठकर तरह-तरह की हरकतें करते रहते हैं। कुछ लोग जो अपनी नींद को अच्छा बनाए रखने के लिए इन दिनों फिटनेस और स्लीप ट्रैकर इस्तेमाल करते हैं, यह भी सपनों के कम हो जाने का बड़ा कारण बनता जा रहा है। सपनों को समझना है तो हमें नींद को समझना चाहिए। सपने हम रातभर नहीं देखते। सबसे ज्यादा सपने हम नींद के उस हिस्से में देखते हैं, जिसे साधारण भाषा में गहरी नींद कहा जाता है। वैज्ञानिक नींद के इस हिस्से को रैपिड आई मूवमेंट या रैम स्लीप कहते हैं। नींद के इस हिस्से में इन्सान की आंखें बंद पलकों के बीच काफी तेजी से घूमती हैं। आंखों की गति जितनी तेजी से बढ़ती है, नींद उतनी ही गहरी होती जाती है। यह सिर्फ नींद और सपनों का समय ही नहीं होता, इस वक्त हमारे शरीर की मांसपेशियां भी सबसे ज्यादा आराम करती हैं। नींद का यह दौर बहुत लम्बा नहीं होता, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण जरूर होता है।

हमारे माहौल, हमारे तनाव और हमारी अनिद्रा का सबसे ज्यादा असर नींद के उस हिस्से पर पड़ा है। इससे गहरी नींद कम हो रही है तो सपने भी कम हो रहे हैं। नींद जितनी लंबी होगी और उसकी बाधाएं जितनी ही कम होंगी, हमारी रैम स्लीप भी उतनी ही लंबी होगी। इस गहरी नींद में कमी के कारण वैज्ञानिकों ने सपनों के महत्व को नए सिरे से समझाना शुरू कर दिया है। वैज्ञानिकों ने अपने शोध में पाया है कि जिनकी नींद ठीक से पूरी नहीं होती, जागते समय उनकी कार्यक्षमता तो कम होती ही है, इसका सबसे ज्यादा असर उनकी रचनात्मक और उनकी याददाश्त पर भी पड़ता है। यह भी देखा गया है कि हर रोज सात घंटे की नींद पूरी नहीं होने से शरीर की बाकी बहुत सारी प्रक्रियाएं भी गड़बड़ाने लगती हैं और कई तरह के ऐसे रोग भी हो सकते हैं, जिन्हें हम सीधे तौर पर नींद से जोड़कर नहीं देखते। वैज्ञानिक अब इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि सपनों वाली गहरी नींद का काम सिर्फ हमारे शरीर और हमारे मस्तिष्क को आराम देना भर नहीं है। वह हमारी बुद्धि, हमारी याददाश्त और हमारी रचनात्मकता के बीच तारतम्य बिठाने का काम भी करती है। शायद इसीलिए ये कहा जाता है कि आदमी के जीवन में सबसे बुरा होता है उसके सपनों का मर जाना। नींद में सपने कब व क्यों आते हैं? सुबह के सपने याद रहते हैं कि देर रात को देखे गए सपने याद रहते हैं।

सपने मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ते-अच्छे भी, बुरे भी। वैसे तो यह पूरा संसार ही सतरंगी सपनों का मायाजाल है किन्तु कुछ सपने हैं जो आजीवन व्यक्ति के पीछे ही पड़े रहते हैं। सपने ही जीवन हैं। कम-से-कम जीने का बहाना। आशा, आकांक्षा और महत्वाकांक्षा का नाम ही स्वप्न है। आशाओं की रंगीन डोरी से प्रत्याशा में व्यक्ति आज के भयावह दिन को जी लेता है। हर प्रात: प्राची के क्षितिज की लालिमा एक नया संदेश, एक नए सुनहले लोक का निमन्त्रण लेकर आती है और व्यक्ति नए सिरे से अपने अधूरे सपनों को पूरा करने के प्रयास में लग जाता है। उगते सूरज की लाली जिन सपनों को अपने सुनहले रंग में रँग जाती है, डूबते सूरज की लाली उनमें कितनों पर सफलता का गुलाल मल जाती है और कितनों को असमय ही अवसान के रक्त में स्नान करा जाती है। लालिमा एक ही है पर वह खिलते-मुसकराते गुलाब की भी हो सकती है और मुरझाते, पुंखड़ियाँ समेटते रक्त-कमल की भी। अब यह अपना-अपना भाग्य है कि किसके पल्ले क्या पड़ता है?

स्वप्न की कोई निश्चित किस्म नहीं होती यह तो अजब गजब किस्म के आते है। कभी हाथी तो कभी घोड़ा, कभी उड़ते हुए आकाश में विचरण करते देखना तो कभी पेड़ से गिरना, कभी कभी हम सोचते ही रह जाते हैं कि ऐसे स्वप्न का अर्थ क्या है ? दरअसल ये सब हमें आने वाले सुख-दु:ख का संकेत देते हैं। स्वप्न में हाथी दिखाई दे तो व्यवसाय में उन्नति होती है। आकाश में स्वयं को उड़ान भरते देखें तो निकट भविष्य में उन्नति होगी। यदि भोजन पकाते देखें तो शुभ समाचार मिलेगा। मीठा खाना तरक्की होने का संकेत है। मछली को देखें तो धन के साथ स्त्री सुख मिलेगा। मयूर को देखना खुशी मिलने की संभावना होती है। मधुमक्खी दिखाई दे तो व्यापार में वृद्धि होगी। मंदिर के दर्शन हो तो मनोकामना की पूर्ति होगी। सगाई दिखे तो विवाह में देरी हो। यात्रा करते दिखे तो यात्रा द्वारा धन लाभ होगा। महात्मा का दिखना धन की प्राप्ति होगी। होम करते देखे तो सौभाग्य सूचक है। युद्ध को देखना सफलता का संकेत है। रोटी खाते देखना इच्छा की पूर्ति होगी। स्वयं को रोते देखना प्रसन्नता मिलेगी। राख का स्वप्न में दिखना सफलता की प्राप्ति होगी। रिश्वत लेते देखना

अपमान सहना पड़ेगा। लकड़ी उठाना या देखना अकारण वादविवाद का सामना करना पड़ सकता है। लहंगा या पेटीकोट का देखना, दांपत्य सुख मिलेगा। सांप का दिखना या मारना शत्रु पर विजय मिलेगी। समुद्र का दिखना धन में वृद्धि हो। सुंदर स्त्री के दर्शन हो तो धन का आगमन हो। यदि साइकल चलाते देखे तो कार्य में सिद्धि मिले। रेलवे स्टेशन का दिखना यात्रा शुभ होगी। नहाते देखना व्यवसाय में लाभ होगा। हवालात देखना मान सम्मान बढ़ेगा। हंसते हुए दिखाई देना खुशी की प्राप्ति होगी। हरी बागवानी देखना धन जन की वृद्धि होगी। बर्फ गिरते देखें तो धन मिलेगा। त्रिशूल का देखना सफलता पाना समझें। किसी युवती का चुम्बन लेना सफलता की निशानी है। पशु दिखाई दे तो व्यापार में लाभ मिले। सिर में कंघी करना इच्छापूर्ति हो। कबूतर दिखाई दे तो शुभ समाचार मिलेगा।

काला सांप दिखाई दे तो समझो राज्य से सम्मान हो। स्वप्न में यदि कन्या दिखाई दे तो समझे तीर्थयात्रा हो। कोयल देखें तो शुभ समाचार मिलेगा। कब्रिस्तान का दिखाई देना प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी। खिलौना दिखाई दे तो सुख-शांति मिले। स्वप्न में खरबूजा दिखाई दे तो धन मिले। खरगोश को देखना स्त्री संपर्क करे। गुरु को देखना कार्य में सफलता मिले। स्वप्न में गंगा नदी दिखाई दे तो शेष जीवन सुख से गुजरेगा। गुलाब का दिखाई देना मनोकामना पूर्ण रहेगी। गरीबी हालत दिखाई दे तो सुख-समृद्धि बढ़े। स्वप्न में पान खाएँ तो प्रियतमा से मिलन हो।

परीक्षा देते देखना असफलता की निशानी है। अपने पूर्वज दिखें तो समझो शुभ परिणाम मिलेगा। पानी बरसता दिखाई दे तो शुभ हो। पक्षी को पिंजरे में देखना सुख पड़े। पगड़ी का दिखना प्रतिष्ठा बढ़े। स्त्री आलिंगन दिखाई दे तो दांपत्य सुख में वृद्धि हो। बकरी का दिखना शुभ कार्य से यात्रा लाभ मिले। बाग बगीचे दिखें तो सुख मिलेगा। बाजार का दिखाई देना दरिद्रता दूर हो। बर्फ का देखना प्रियतमा से मिलन हो। देखा आपने कि किन किन चीजों को देखने के क्या प्रभाव होते हैं। अब आप स्वप्न में जो भी देखेंगे उससे अंदाज तो लगा ही सकते हैं कि भविष्य में क्या होनेवाला है।

स्व एक त्रुटि, एक भ्रान्ति और एक स्वप्न है। अपने आंखे खोलो और जागो वस्तुओं को उनके यथार्थ रूप में देखो और इससे तुम्हें सुख मिलेगा।

स्वप्न प्रत्येक मनुष्य देखता है। प्राचीन काल से ही यह जिज्ञासा के विषय रहे हैं। सपनों को सच में बदलते देखकर इन पर व्यापक अनुसंधान किया गया और अनेक ग्रंथों की रचना भी की गई है। स्वप्न का संसार आज भी मनोवैज्ञानिक और शोधकर्ताओं के लिए अनुसंधान का विषय बना हुआ है।

प्रत्येक व्यक्ति ने अपने जीवन में कोई-न-कोई स्वप्न अवश्य ही देखा होगा, जो कुछ समय बाद सत्य रूप में अवश्य ही सामने आया होगा। मनुष्य के दो रूप हैं। एक चेतन और दूसर अचेतन। चेतन रूप जागृतावस्था का प्रतीक है और जब हम निद्रामग्न हो जाते हैं तो हमारा अचेतन रूप क्रियात्मक हो उठता है।

इस अचेतन रूप के कारण ही हम नाना प्रकार के स्वप्न देखते हैं। स्वप्नों को कोई एक निश्चित रूप या इनकी कोई विशेष परिभाषा नहीं है। कभी-कभी हम नाना प्रकार के ऊल-जुलूल या उल्टे-सीधे स्वप्न भी देखते हैं।

स्वप्नों पर व्यापक रूप से अनुसंधान करके इनको मुख्यत: चार श्रेणियों में बांटा गया है।

ऐसे स्वप्न जो हमारी निद्रा टूटते ही हमारी याद से निकल जाते हैं। ऐसा मालूम होता है कि हमने स्वप्न तो देखा, पर क्या देखा यह याद नहीं रहता। ऐसे स्वप्न जो चेतनावस्था में आने के बाद भी हमें याद रह जाते हैं।

कुछ अस्पष्ट या आधे-अधूरे स्वप्न जिनमें से कुछ याद रह जाते हैं और कुछ भूल जाते हैं। कुछ स्वप्न इस प्रकार के होते हैं, जिनको देखकर स्वप्न पूरा होने या अधूरा रहने पर ही हमारी नींद एकाएक टूट जाती है।

हमारा अंतर्मन कुछ बातों घटनाओं का पूर्वाभास पा जाता है। इसे हमारी छठी इन्द्रिय का कमाल माना गया है। जिस प्रकार कुछ पशु-पक्षियों को किसी घटना का पूर्वाभास हो जाता है, उसी प्रकार हमारी छठी इन्द्रिय भी हमें स्वप्नों द्वारा इसी प्रकार के पूर्वाभास दे जाया करती है। देखा गया है कि आंधी, तूफान, भूकंप आने का पूर्वाभास पशु-पक्षियों को हो जाता है। उसी प्रकार का कुछ आभास हमारी सुप्त छठी इन्द्रिय द्वारा हमें स्वप्न के माध्यम से हो जाया करता है। यह सत्य अब स्वीकार कर लिया गया है।

इसी आधार पर स्वप्न फलों का विवेचन-विवरण अनेक ग्रंथों शकुन शास्त्रों से संकलित किया गया है।

रुग्णावस्था में देखा गया स्वप्न व्यर्थ होता है। मादक द्रव्यों का सेवन कर निद्रा में स्वप्न देखना व्यर्थ होता है। दोपहर में देखे गए स्वप्नों के कई फल अलग-अलग होते है।

स्वप्न हजारों प्रकार के होते हैं। जिन स्वप्नों को देखकर निद्रा तत्काल टूट जाए, उनका कोई फल नहीं होता है। आधे-अधूरे स्वप्नों पर भी विचार करना, उनका फल देखना व्यर्थ है। प्रात:काल निद्रा टूटने पर जो स्वप्न याद रहे उसका ही उचित फल मिलता है। स्वप्न में चौंक जाना, बड़बड़ाना भी स्वप्न भंग कर देते हैं। कोई पास बैठा व्यक्ति यह कहे कि वह रात में बड़बड़ा रहा था तो इस प्रकार स्वप्न देखना निरर्थक होता है। देखे गए स्वप्न की चर्चा किसी से नहीं करनी चाहिए। चुपचाप उसका फल देख लेना ठीक कहा गया है।

सपनों के अशुभ फल से बचने सभी प्रकार की सावधानी बरतनी चाहिए, ताकि वह कम-से-कम हानि कर सकें। इस प्रकार स्वप्न द्वारा पूर्वाभास होने पर आप स्वयं को हानि या नाना प्रकार के संकटों से बचा सकते हैं। सपने भविष्य का संकेत हैं। इस प्रकार स्वप्न फल जानकर व पूर्ण सतर्कता बरतकर आप अपना जीवन निरापद कर सकते हैं।

जाग्रत अवस्था में हमारे मस्तिष्क के द्वारा शरीर और मन का नियंत्रण होता है। जबकि सुषुप्तावस्था में सुषुम्ना का गेमेटर ही मस्तिष्क के समान कार्य करने लगता है। उस स्थिति में यह उपेक्षित नहीं है कि मस्तिष्क इन सूचनाओं से अवगत रहें।

उदाहरण के लिए, यदि किसी जागते हुए व्यक्ति के ऊपर आप बैठ जाएं तो वो आपको तुरंत हटा देगा और आप यदि गहरी नींद में हो तब आपके ऊपर मक्खी बैठ जाए। ऐसे में मक्खी हटाने का कार्य सुषुम्ना द्वारा किया जाएगा।

सुषुम्ना- प्राचीन वेदाचार्य के मतानुसार मानव शरीर में ७२ हजार से भी अधिक नाड़ियां होती हैं। लेकिन तीन नाड़ियां प्रमुख मानी गई हैं। जो कि क्रमश: इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना है। इन तीनों में सुषुम्ना का महत्व अधिक है। आध्यात्मिक रूप से भी यह महत्वपूर्ण होती है। सुषुम्ना को वैज्ञानिक भी स्वीकार करता है।

सुषुम्ना का रहस्य- दरअसल सुषुम्ना आकाश की तरह अनंत लेकिन प्रकाशमयी होती है। यह प्रकाशमयी नाड़ी को ही सूर्यात्मक आकाश और ब्रह्माण्ड के रहस्य से मन का संबंध जोड़ने और उसे व्यापक बनाने का कार्य करती है जोकि हमें अच्छे और बुरे सपने दिखाई देते हैं

जब हम सपने देख रहे होते हैं तब हमारी चेतना विराट क्षेत्र में प्रवाहित होती रहती है। यही कारण है कि मनुष्य को सपने में नदी, पहाड़, वन और भी अनेकानेक वस्तुएं जीवित अवस्था में दिखाई देती है।

प्रतिशोध, बैर, बदला

प्रतिशोध की भावना से प्रतिहिंसा जागती है, प्रतिहिंसा पुन: प्रतिहिंसा को उत्पन्न करती है। किन्तु किया क्या जाय। प्राणी अपने अपमान को सहज ही हनन नहीं कर सकता। अपमान को या तो सर्वथा जड़ पशु ही सहन कर सकता है या पूर्ण ब्रह्मज्ञानी ही ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि पशुओं ने भी आदमियों से बदला लिया है। बदला लेने की भावना स्वाभाविक न हो तो फिर पुनर्जन्म ही न हो। मनुष्य पुत्र बनकर, सगा-सम्बन्धी बनकर, दूसरे जन्म के कार्यों का बदला लेता है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों तक में ऐसे भाव देखे गये हैं नीतिकारों का वचन भी है, जो पुत्र पिता के उपकार या अपकार का बदला नहीं चुकाता, वह सत्पुत्र नहीं है, किन्तु परमार्थ में बदला लेने की भावना अत्यन्त हेय मानी गई है। भगवान तो सर्वसमर्थ हैं। उनका कोई न तो शत्रु है, न मित्र; उनके लिये सब समान हैं। अत: वे जो भी करते हैं, जगत के हित के निमित्त ही, बदला लेने की भावना से नहीं।

प्रतिशोध की भावना प्राणियों में स्वाभाविक है। एक चींटी को आप उँगली से दबावें तो वह भी तुरन्त काट लेगी। वह भी बदला लेने को तत्पर हो जायगी। इसीलिये तो नीतिकारों ने कहा है- मारने आनेवाले को मार देने में कोई दोष नहीं है। जितने बड़े-बड़े पुरुष हुए हैं, भगवान के अवतार हुए हैं, सभी ने अपकारी से बदला लिया है। जो अपकार करनेवाले से बदला नहीं लेते, उसे हृदय से क्षमा कर देते हैं, वे संत हैं, वे ही वन्दनीय हैं। नहीं तो सभी को अपने प्रति अपकार करनेवाले पर क्रोध आता है, शक्तिभर उसके अनिष्ट के लिये प्रयत्न करते रहते हैं। यदि स्वयं बदला न ले सके तो पुत्रों से कह जाते हैं। इनसे उपकार का अथवा अपकार का बदला अवश्य लेना।

बदला लेने की भावना ठीक नहीं इससे हम सभी को बचना चाहिए

जीवन में कभी कभी ऐसा मौका आता है कि इंसान बहुत परेशान हो जाता है। किसी ने कुछ कह दिया, किसी ने कुछ बुरा कर दिया तो वह बदला लेने की सोचता है। मौका ढूंढता है कि कब अपमान का बदला लूं। महाभारत काल में द्रौपदी ने कह दिया कि अंधे का पुत्र अंधा ही होता है, तो दुर्योधन ने बदला लेने की ठान ली। उसका यह बदला लेना बड़े विनाश का कारण बना। दरअसल, हर इंसान की अक्ल और शक्ल अलग होती है। इस दुनिया के कुछ लोग तो परमात्मा को भी कुछ न कुछ कहते रहते हैं। गुस्से में आकर एक व्यक्ति ने अपनी बीवी को यह तक कह दिया कि मैं राम नहीं हूं जो दुश्मन के पास रह चुकी अपनी पत्नी को अपना लूं।

कहना बहुत आसान होता है। कहते हैं, मारनेवाले का हाथ पकड़ा जा सकता है पर बोलने वाले की जुबान नहीं। यदि आपको कभी किसी ने कुछ कह दिया तो गुस्से से न भर जाएं। किसी सुलझे इंसान की सलाह लें। यदि सलाह बुरे इंसान की मिली तो वह और भी उकसाएगा- उसने तेरी बेइज्जती की है, अब तू भी बदला ले। वह अर्थ का अनर्थ कर देगा। अच्छा इंसान अच्छी सलाह देकर अच्छा रास्ता बताएगा।

पेड़ देते हैं, इसलिये वे देवता कहलाते हैं। हम धरती पर थूकते हैं, कूड़ा करकट फेंकते हैं, तो भी धरती बदले में हमें अनाज देती है। लेकिन इंसान छोटी छोटी बातों को लेकर इतना मनमुटाव पैदा कर लेता है कि फिर जिंदगी भारी हो जाती है। जब कुदरत गुस्सा नहीं करती तो इंसान क्यों करे।

व्यक्तित्व

महिलाएं अपना व्यक्तित्व निखारने के लिए बाह्य चीजों श्रृंगार, प्रसाधन, सुंदर परिधान का सहारा लेती है लेकिन यह सब बातें गौण है। केवल उपरी लीपापोती से व्यक्तित्व नहीं झलकता केवल चेहरे का आकर्षण बढ़ सकता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता है जब उसका व्यवहार मनभावन हो, सबको मोहनेवाला हो, उसीमें तीव्र आकर्षण है। अपनी पहचान बनाने के लिये फॅशन के अत्याधुनिक तौर तरीके कतई जरूरी नहीं है। सादगी, पारंपरिक परिधानों की अपनी गरिमा और आकर्षण है। आपके आचरण, आपके विचारों की सौम्यता, आपकी बातचीत, बात करने के ढंग, हावभाव से प्रकट होती है। इसके विपरीत अपरिमार्जित (क्रूर), तीखी बेबाक भाषा, दूसरों को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति, अपने बारे में अपनी डींगे मारना, खुद मियां मिट्ठू बनना आपके व्यक्तित्व को श्रीहीन करके रख देता है। ऐसे व्यक्तियों से लोग दूर ही रहना पसंद करते है चाहे वह कितने ही कीमती आभूषण व परिधान धारण किये हो। वे सब बेअसर हो जाते है। आज महिलाओं में अच्छे संस्कारों की बहुत कमी पायी जाती है। लड़कियां पाश्चात्य सभ्यताओं को देखकर बुरी आदतें जल्द ही गृहण कर लेती है। बच्चे दूरदर्शन, चलचित्र जगत, शिक्षण संस्थानों में जाकर सहपाठियों से अधिक सीखते है। नपे तुले ढंग से साफ सही उच्चारण में की गई बात ही हर किसी को ज्यादा आकर्षित करती है, ज्यादा प्रभावित करती है। उठने बैठने का सलीका, तौर तरीका अपने व्यक्तित्व को आकर्षित करता है। अच्छे रखरखाव में कोई बुराई नहीं लेकिन यह बस शालीनता की सीमा में हो अति न हो।

हृष्ट-पुष्ट दिखना ही स्वास्थ्य की निशानी नहीं होता। पूर्ण स्वास्थ्य के लिए मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक व आध्यात्मिक रूप से भी स्वस्थ होना जरूरी है। ऐसे ही केवल पैसा होना धनी होना नहीं है और फिर पैसे को आधार बनाकर अमीर लोगों की विश्व व देश स्तर की सूची बनाई जाती है। जैसे जिम में व्यक्ति केवल अपनी छाती तो अच्छी बना ले, बाकी शरीर पर ध्यान न दे, तो उसको अच्छे स्वास्थ्य वाला नहीं कहेंगे। वैसे ही जो लक्ष्मी के आठों आयामों पर पूरा नहीं उतर पाता, वह धनी नहीं हो सकता। इसलिए अष्टलक्ष्मी का वर्णन है, जिसमें व्यक्ति को लक्ष्मी के सभी अंगों में मजबूत होना जरूरी है। अष्टलक्ष्मी में आदि लक्ष्मी, धन लक्ष्मी, धान्य, गज, धैर्य, संतान, वीर, विजय और विद्या लक्ष्मी आती है।

आदिलक्ष्मी- मैं, शरीर नहीं, आत्मा हूं, और मैं आदि से हूं, इस फलक के लिए व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक गुरु होना आवश्यक है। धनलक्ष्मी- पैसा हो, पैसे के लिए संतोष हो और किसी के आगे पैसा मांगने का भाव न हो। साथ ही प्रेम धन भी हो। धान्यलक्ष्मी- पैसे का प्रकटीकरण हो। खाने व अपने लिए पैसा लगाने में कंजूस न हो। गज लक्ष्मी- व्यक्तित्व में आकर्षण, मन में ठहराव और उसका व्यक्तित्व सभा में अपनी उपस्थिति का अहसास करानेवाला हो। संतान लक्ष्मी- परिवार में प्रेम हो और संतान, दुख का कारण न हो। गुरु से लिया ज्ञान जिज्ञासुओं तक पहुंचाने में तत्पर हो। वीर लक्ष्मी- व्यक्ति में बल, प्रसन्नता, उत्साह और स्वास्थ्य हो। साथ ही आलस्य, इच्छाओं व विकारों को दूर करने के लिए वीरता का भाव हो। विजय लक्ष्मी- जब भी विपरीत परिस्थितियां या मन में नकारात्मकता आए तब उस पर विजय प्राप्त करने की कला हो। विद्या लक्ष्मी- साहित्य, संगीत, कला, सतशास्त्र, सत्संग, सत-वार्ता और आत्मज्ञान को जीवन में धारण किया हो।

इस प्रकार अष्टलक्ष्मी से परिपूर्ण व्यक्ति ही जीवन का आनंद ले सकता हे। सोच सकते हैं कि केवल पैसा आने से ही व्यक्ति में रौनक आ जाती है और यदि सातों अन्य अंग भी आ जाए तो व्यक्ति जीते जी ही मुक्त हो जाएगा। ऐसे व्यक्ति को अष्टलक्ष्मी से ओतप्रोत व्यक्तियों से ही मित्रता करनी चाहिए।

अत: व्यक्ति में केवल पैसे कमाने का भाव न हो, बल्कि हमें अष्टलक्ष्मी का समान रूप से विकास करते रहना चाहिए। यदि अष्टलक्ष्मी को ध्यान में रखकर अमीरों की सूची बनाई जाए, तब उस सूची का अभी के अमीरों की सूची से दूर दूर तक का कोई संबंध नहीं होगा, क्योंकि जो जीवन में केवल पैसा कमा रहे हैं, वो लक्ष्मी के अन्य पक्षों में कमजोर रह जाते हैं। हो सकता है किसी के पास पैसा कम हो, लेकिन बाकी सातों लक्ष्मी भरपूर हों, तब वह अष्टलक्ष्मी की सूची में आ जाएगा। अष्टलक्ष्मी को ध्यान में रखकर ही हमें जीना है और अपना मूल्यांकन करते रहना है कि मेरे पास अष्टलक्ष्मी है या नहीं।

एक बार एक मित्र ने पूछा, कोई ऐसा प्रभावशाली उपाय या सूत्र बतलाइए जिससे जीवन में हर प्रकार की गुणवत्ता में वृद्धि संभव हो सके। काश ऐसा कोई तैयार सूत्र हम सबके हाथ लग जाए जिससे हमारा जीवन बेहतर हो जाए। दूसरा मित्र बोला- करना कुछ नहीं है, बस झूठ बोलना। चोरी करना और जो भी मिले उसे धोखा देना शुरू कर दो। जीवन में सफलता और समृद्धि का द्वार खुल जाएगा। मित्र गंभीर हो गए और बोले, ये कैसा उपाय हुआ? झूठ बोलना, चोरी करना और लोगों को धोखा देना तो सरासर गलत व अनैतिक है। यदि झूठ बोलना, चोरी करना और लोगों को धोखा देना तो सरासर गलत व अनैतिक है। तो फिर सही क्या है? उन्होंने कहा, झूठ न बोलना, चोरी न करना और लोगों को धोखा न देना ही सही है।

हम सब अच्छे बनना चाहते हैं। इसके लिए अच्छी शिक्षा प्राप्त करते हैं। अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ते हैं। धर्म, अध्यात्म और नीति विषयक ग्रंथों का अध्ययन करते हैं। किसी सिद्ध पुरुष को खोजकर उसे गुरु बनाते हैं। दीक्षा लेते हैं। नियमित सत्संग में जाते हैं। जीवन की गुणवत्ता को सुधारने के लिए आजकल अनेक प्रेरक सेमिनार और वर्कशाप भी होते हैं। लेकिन हमें केवल अच्छी पुस्तकें पढ़ना, गुरु बनाना, दीक्षा लेना, सत्संग करना, प्रेरक सेमिनार व वर्कशाप करना सब छोड़ना चाहिए। हमें अच्छी बातों के बारे में जानने की बजाय अच्छी बातें करनी होंगी। सच बोलने या ईमानदारी पर कितनी किताबें पढ़ेंगे? कितने सेमिनार करेंगे? कितने सत्संग करेंगे? कोई अंत नहीं है। व्यवहार में परिवर्तन करना होगा, अच्छी आदतों को अपने व्यवहार में लाना होगा। तभी ज्ञान सार्थक हो सकेगा।

बुरी बातों की तरह ही अच्छी बातों की भी तो सीमा नहीं होती। केवल एक अच्छी बात, भाव या आदत चुनकर जीवन में उतार लीजिए। सच बोलना है तो सच को जीवन में उतार लीजिए। सच बोलेंगे तो झूठ नहीं बोलेंगे। सच बोलेंगे तो बेईमानी भी नहीं करेंगे, दूसरों को धोखा देना भी संभव नहीं होगा। एक अच्छी आदत दूसरी सभी अच्छी आदतों का विकास कर देती है और एक बुरी आदत असंख्य बुरी आदतों का। सही आदत या आदतों के चयन में ही निहित है हमारा वास्तविक विकास। जीवन में सच को या अन्य किसी एक सकारात्मक बात, भाव या आदत को साध लीजिए। बाकी सब अपने आप सधते चले जाएंगे।

मनुष्य की शारीरिक बनावट उसके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है, इसमें संदेह नहीं। लोग कहते हैं कि लंबे कदवाले व्यक्ति शारीरिक रूप से भी अपेक्षाकृत सुदृढ़ व आत्मविश्वास से भरे होते हैं और छोटे कदवाले कभी-कभी हीन भावना से ग्रस्त होने की बात कहते हैं। छोटे कदवाले अपना कद बढ़ाने का प्रयास भी करते हैं। इसके लिए खानपान में बदलाव करते हैं, व्यायाम करते हैं, जरूरत के हिसाब से दवा भी लेते हैं। इसमें सफलता मिलती है या नहीं, यह अलग बात है। लेकिन वास्तव में कद क्या है और किस कद को बढ़ाना है, इस पर विचार होना चाहिए।

हमारा कद हमारे बाह्य व्यक्तित्व का हिस्सा है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि बाह्य व्यक्तित्व हमारे समग्र व्यक्तित्व का बहुत छोटा हिस्सा होता है जो मुश्किल से उसके दसवे हिस्से के बराबर होता है। हमारा वास्तविक कद हमारे आंतरिक व्यक्तित्व पर निर्भर करता है जो हमारे समग्र व्यक्तित्व का नब्बे प्रतिशत से भी अधिक होता है। हमारे आंतरिक व्यक्तित्व के वे कौन से तत्व हैं जो हमारा वास्तविक कद निर्धारित करते हैं? हमारी आदतें और व्यवहार ही वे तत्त्व हैं जो हमारे वास्तविक कद को निर्धारित करते हैं

यदि हममें अच्छी आदतें हैं तो स्वाभाविक रूप से लोग हमें पसंद करेंगे और लोग हमें पसंद करेंगे तो हमारा कद ऊंचा होगा। इतिहास में ऐसे अनेक महान व्यक्ति हुए हैं जिनका न तो बाह्य व्यक्तित्व ही बहुत अधिक आकर्षक था और न ही शारीरिक लंबाई अधिक थी। लेकिन हम उन्हें उनके बाह्य व्यक्तित्व अथवा कद के कारण नहीं, उनके कार्यों के कारण जानते हैं और उनके प्रति सम्मान व श्रद्धा रखते हैं। महात्मा गांधी, लाल बहादुर शास्त्री जैसे अनेक ऐसे महान व्यक्तित्व हुए जिनका वास्तविक कद इतना अधिक था कि लोगों को उनके शारीरिक कद के बारे में विचार करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

हम सबके जीवन में यह होता है कि हम अपने बाह्य कद को लेकर तो चिंतित रहते हैं, पर वास्तविक कद को लेकर नहीं। बहुत छोटी-छोटी बातें होती हैं जिनसे हमारा समग्र व्यक्तित्व विकसित होकर हमारे वास्तविक कद को बहुत बड़ा बना देता है। इसमें हमारा दृष्टिकोण बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हम अपने लिए नहीं बल्कि समाज और राष्ट्र के लिए क्या करते हैं और हमारा आचरण कैसा है, इससे हमारा वास्तविक कद निर्धारित होता है। हमारे व्यवहार में शिष्टाचार का बहुत अधिक महत्व होता है। यदि हम लोगों का सम्मान करना और रखना जानते हैं तो सचमुच हमारा कद बहुत ऊंचा हो जाता है। जब भी कोई व्यक्ति किसी के सम्मान में खड़ा हो जाता है तो उसका अपना कद सचमुच बड़ा हो जाता है। यकीन न हो तो बैठे हुए और किसी के सम्मान में खड़े हुए व्यक्ति का कद मापकर देख लीजिए, अंतर स्पष्ट हो जाएगा।

मानस का पाठ कराना केवल साधन है राम को याद करने का। धर्म का अर्थ है- अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति या नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए पद, वैभव, यहां तक कि अपनों के मोह तक को त्याग देना। यदि विष्णु चाहते तो ऐसा घटनाक्रम भी नियति में लिख सकते थे कि अयोध्या में रहते ही उनका रावण से युद्ध हो जाता और लंका की सेना को अयोध्या की सेना हरा देती। लेकिन तब उनके पैरों के छाले मानव को संघर्ष, त्याग और तपश्चर्या का महत्व कैसे सिखाते। वो साधनहीन होकर लड़े ताकि यह सिखा सकें कि विलासिता का त्याग व्यक्तित्व निर्माण की पहली जरूरत है। किसी अन्यायी को जीतने के लिए संगठन की, संगठन के लिए नेतृत्व की क्षमता की आवश्यकता होती है, जो दीन हीन

व्यक्तियों के साहचर्य और उनके प्रति संवेदनशीलता द्वारा ही संभव है। गांधी जी ने भगवान राम की शिक्षाओं को आत्मसात करके ही अपनी संकल्प शक्ति को मजबूत किया था।

बाहरी विकास की नींव पर टिकी है आंतरिक विकास की इमारत

कुछ लोग प्राय: बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौंदर्य के विकास की बात करते हैं। हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व का नब्बे प्रतिशत भाग आंतरिक है और मात्र दस प्रतिशत बाह्य है। यदि हमारा आंतरिक व्यक्तित्व सही से विकसित हो जाता है तो बाह्य व्यक्तित्व का विकास गौण हो जाता है। आंतरिक व्यक्तित्व का विकास सूक्ष्म होता है जबकि बाह्य व्यक्तित्व का विकास स्थूल होता है। आंतरिक व्यक्तित्व का विकास आत्मपरक होता है जबकि बाह्य व्यक्तित्व का विकास वस्तुपरक होता है। लिहाजा, जो अपने बाह्य व्यक्तित्व को नियंत्रित नहीं कर सकता, वह आंतरिक व्यक्तित्व को भी नियंत्रित नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति स्थूल जगत की वस्तुओं का निर्माण नहीं कर सकता, वह सूक्ष्म जगत तक कैसे पहुंचेगा? बाह्य विकास सरल है जबकि आंतरिक विकास कठिन। सीखने की प्रक्रिया में हम हमेशा सरल से कठिन की ओर चलते हैं। इसलिए पहले अपनी बाह्य रूपाकृति, व्यवहार और आदतों को बदलना अनिवार्य है। हमारा सलीका हमारी बाह्य रूपाकृति बदल देता है। यदि हमारे वस्त्र ढंग से सिले हुए हैं और हमने उन्हें ठीक से पहना हुआ है, हमने बाल भी व्यवस्थित किए हैं तो इससे हमारा आंतरिक सौंदर्य कम नहीं हो जाएगा। सादगी का भी एक सौंदर्यशास्त्र होता है।

कुछ लोग बाह्य व्यक्तित्व के विकास को संपूर्ण विकास मानकर वहीं रुक जाते हैं और आंतरिक विकास की ओर ध्यान ही नहीं देते। यह वैसा ही है जैसे नींव डालकर इमारत बनने का काम पूरा मान लिया जाए। वास्तव में बाह्य व्यक्तित्व का विकास आंतरिक व्यक्तित्व के विकास का आधार है। नींव कमजोर होगी तो इमारत टिकाऊ नहीं होगी। पर नींव इमारत का आधार जरूर हो उसका विकल्प नहीं हो सकती। ठीक वैसे ही, भले हम भौतिक वस्तुओं के आकर्षण से ऊपर उठ जाएं, हमें रहना इसी संसार में होता है। यदि हमारे वस्त्र मैले-कुचैले हैं, हमारे मुख से दुर्गंध आती रहती है तो ऐसे में कौन हमारे पास आएगा? कौन हमारा अनुसरण करेगा? कितना ही अच्छा भोजन क्यों न हो, उसे एक गंदे पात्र में रखकर देना कभी स्वीकार्य नहीं हो सकता।

एक मकान बनाने से पहले हम न केवल मजबूत बुनियाद डालते हैं, अपितु भूखंड की गंदगी को साफ करके उसे हमवार बनाते हैं। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो वहां काम शुरू करना ही संभव नहीं होगा। मकान बनकर तैयार हो जाने के बाद भी उसके आसपास के परिवेश को स्वच्छ व सुंदर बनाना जरूरी होता है, अन्यथा उसकी कीमत कम हो जाएगी। व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए बाह्य स्वच्छता, अच्छे वस्त्र व उचित केशविन्यास तथा सामान्य व्यवहार कुशलता भी परमावश्यक है। हमारा आंतरिक व्यक्तित्व इनसे भी झलकता है। यदि हम सृष्टि के विकास की बात करें तो बाह्य सौंदर्य के अभाव में सृष्टि का विकास ही अवरुद्ध हो जाएगा।

देखने से व्यक्ति का बाहरी व्यक्तित्व तो ओजपूर्ण सा लगता है, लेकिन अंतर्निहित व्यक्तित्व कितना निस्तेज है, यह उसके व्यवहार से पता चलता है। इसका कारण एक में कई व्यक्तियों का होना है। व्यक्तित्व का एक ही धुरी पर रहना

श्रेयस्कर है, क्योंकि दो धुरियों पर संतुलन बनाना असंभव हो जाता है।

जब-जब इंसान ने स्वयं का सही परिचय देना चाहा, शब्दों ने मौन रहकर व्यक्तित्व के विकास की कहानी क्रियात्मक रूप में कहनी शुरू कर दी, क्योंकि कोई छिपाव नहीं था। मन, बुद्धि, चित्त और चेतना का एक जैसा ही स्वच्छ वातावरण था। कहीं कुछ ऐसा नहीं कि व्यक्तित्व सत्य के धरातल से क्षणभर को अलग हो सके।

जीवन एक वरदान है। इसको वैसे ही सजाना चाहिए जैसे प्रकृति ने जड़-चेतन को सजा रखा है। पुष्प पर तितली बैठ ही जाती है। उससे पुष्प की मादकता कहां कम हो जाती है? यदि पृथ्वी ने अभिमान किया होता, तो पृथ्वी पर हरियाली न होती, पोषण के लिए अन्न न उपजता। यही तो प्रकृति के अनुशासन का ओज-तेज पूर्ण सृष्टिक्रम है जिसने स्वयं के होने का अहसास अभिमान से कभी न कराया। यह है अभिमान रहित व्यक्तित्व, जहां आत्मिक सौंदर्य स्वयं निखरता चलता है। कोई भी विकार उत्पन्न नहीं होता।

पृथ्वी पर जल तब तक ही टिक पाता है, जब तक वह अपनी प्यास कम करके रखती है। स्वयं की पिपासा शांत होगी तभी तो प्रदान करने की क्षमता आएगी। व्यक्तित्व का विकास तभी होता है, जब गहराई में जीवन जीने की कला आती हो। यानी विचार की गंभीरता ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को सजाती है। उसे अलंकृत करती है। जहां विचारों के आकलन की गहराई में गुणों की प्रखरता को प्राथमिकता है, वहीं संपूर्ण विकास है। सही दिशा वही बता सकता है जिसको सही दिशा का ज्ञान होगा। सही दिशा में जाने से ही मानव की दशा सही होगी। आज युवा इसी मार्गदर्शन के अभाव में भटक रहा है। कैसे व्यक्तित्व का विकास हो? किस विधा में जीवन जिया जाए कि वह धीर, वीर, गंभीर हो सके?

आज यह थोड़ा विपरीत सा लगता है कि समुद्र से विस्तृत स्वभाव वाला व्यक्ति बताता चलता है कि वह बहुत ही गंभीर है, लेकिन ऐसा नहीं। या यों कहिए कि समुद्र कितना भी गहरा हो जाए, सतह पर आकर तो उथला ही हो जाता है। उसकी लहरें क्या-क्या नहीं कर डालतीं। भले ही समुद्र संपूर्ण रूप से बलवती प्रदत्तत्ता को प्रकट करता चलता है, लेकिन खारा है। अर्थात वह अभिमान को ही सर्वोपरि मानता है, ऐसा अनुभव होता है। सच में ये अहंकार ही संपूर्ण व्यक्तित्व विकास की सबसे बड़ी बाधा है।

अगर आप में यह गुण होंगे तो निश्चित ही आप समाज में सम्मानित स्थान पायेंगे व दूसरों के लिए अनुकरणीय बनकर प्रशंसा के पात्र होंगे।

विनम्रता व दूसरों के अच्छे गुणों की प्रशंसा करने की आदत। ईमानदारी व स्वच्छ छवि। दूसरों को सम्मान देना व दूसरों की कही बातों को ध्यान से सुनकर व कम से कम बोलना। अपनी अपने मुख से कभी बड़ाई न करना व दूसरों की सच्ची प्रशंसा में कंजूसी न बरतना। लेन देन में खरा होना अगर किसी से कुछ लिया तो मांगने से पहले देने की आदत डालना। छोटी मोटी बातों में क्रोधित न होना व अनायास बिना मतलब की बहसों से बचना। अपना काम जो भी हो पूरे मनोयोग व निष्ठा से करें। काम को टालने की आदत से बचना। किसी से मिलने का समय दो तो सही समय पर उपस्थित हो। उसी काम को करने की हां करना जिसको आप कर सकते हैं अन्यथा स्पष्ट शब्दों में ना कर देना। छोटे-छोटे बालकों की बात की अनदेखी न कर बल्कि उनको प्यार व आदर से सुनना।

दोस्तों से अपेक्षा मत करना उन्हें कभी धोखा नहीं देना चाहिए। परिवार में सभी को साथ लेकर, एक दूसरे के सुख-दुख में आगे होकर भागीदारी निभाना। समाज सेवाओं के लिए भी समय निकालना।

अपनी कमाई का कुछ हिस्सा दीन दुखियों की मदद व समाज पर खर्च करना। हंसमुख चेहरे से आनेवाले मिलनेवाले का स्वागत करना। ईश्वर में विश्वास व स्वयं में विश्वास रखना। अगर आपने इस चीजों को गम्भीरता से अपने जीवन में समाहित कर लिया तो आप एक नेक इन्सान व आदरणीय स्थान पाकर खुशहाली का जीवन बिताने में समर्थ होंगे व दूसरों के लिए अनुकरणीय होंगे। वो फिर सब अपेक्षाएं पूरी होंगी जिनकी आपको चाहते है।

कहते हैं खुशी मानसिक अवस्था है। तभी तो सब कुछ मिल जाने के बाद भी लोग खुश नहीं रह पाते। जब भी मन खूब रोया रोया सा हो, तब अपने आसपास नजरें भगाइए कई मिलेंगे जो दु:खी होंगे। आपसे कहीं ज्यादा दु:खी। फिर सोचिए कि आपके रोने की नौबत ही क्यों आई?

अपने हर काम की जिम्मेदारी खुद लीजिए अब तक नहीं ली तो लेना सीखिए। सभी दु:खी प्राणियों में एक बात आम होती है कि उन्हें लगता है कि वे परिस्थितियों के शिकार हैं। वैसे तो दूध के धुले हैं। समस्या इसी सोच में है। इस सोच को भगा दें। फैसले खुद लें और उसके परिणाम की जिम्मेदारी भी।

रिश्ते बनाएं और निभाएं भी पूरे दिल से। लेकिन रिश्ता चाहे कितना भी करीबी हो, उस पर दिलोदिमाग से निर्भर न हो जाएं। जब यह भावनात्मक सहारा किसी कारण से कम होता है या नहीं रहता तब आप बिखरने लगते हैं। अपना स्व बचाकर रखें। रिश्तों में भी खूबसूरती बची रहेगी।

अपनी बात कह डालें। कहना नहीं आता तो धीरे-धीरे सीख लें। ऐसे भी न कहें कि अगले के कान पर जूं न रेंगे और ऐसे भी नहीं कि सामनेवाले पर चढ़ाई करनी हो। मन की मन में रखने से कुढ़न होती है, चाहे घर हो या फिर दफ्तर।

आपका व्यक्तित्व- अगर आप चाहते हैं कि आप दफ्तर में ऊंचे पद पर पहुंचे तो उसके लिए खुद ही प्रयास करने होंगे। क्योंकि कोई भी ऐसे व्यक्ति के साथ कभी काम नहीं करना चाहेगा, जो बुझा-बुझा सा और निरुत्साहित हो। अपनी भाषा पर नियंत्रण रखें- भाषा में अशुद्धता और गलत जगह गलत शब्दों का प्रयोग आपके लिए खतरनाक हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि आपके सहयोगी आपके अनुभवों को दरकिनार कर दें और आपके अल्पज्ञान की खिल्ली उड़ाएं। ऐसा कोई शब्दकोश नहीं कि जिसे देखकर आप अपना ज्ञान बढ़ा सकें। जिन लोगों के पास बेहतर संवादशीलता होती है उनकी स्थिति दफ्तर में काफी सुदृढ़ होती है। आपके काम में स्वाभाविकता होनी चाहिए- आपके सुझाव बिल्कुल नए और स्वाभाविक होने चाहिए।

नया, सुलझा व्यक्तित्व स्थापित करें। अगर हम पुराने व्यक्तित्व को लेकर जीते रहेंगे तो कभी नये व्यक्तित्व को जन्म नहीं दे पायेंगे। बुरे असर से हमेशा दूर रहें। जीवन की उपलब्धियों को याद रखें।

अच्छे ढंग से दिन की शुरुआत करें। अगर आप हर सुबह यह निश्चित कर लें कि अपना दिन प्रसन्नता से बिताएंगे तो यकीनन आपका दिन अच्छा बीतेगा।

अपने अंदर कुछ नया करने की भावना को जन्म दें तथा जीवन में नवीनता लाने का प्रयास करें।

अंत में जो काम जरूरी हैं उन्हें पसंद करना सीखें। हर कार्य एक चुनौती को प्राप्त कर उसकी सफलता की खुशी मनाएं तथा ऐसे हार को स्वीकार कर उसे देर सबेर जीत में बदल कर खुद पर गर्व महसूस करें।

कठिन परिस्थितियों में भी अपने जीवन में आनेवाली छोटी से छोटी खुशियों को याद करें यकीनन आपके चेहरे पर मुस्कुराहट आएगी। साथ ही, ध्यान, खरीददारी और अपनी दूसरी रुचियों को बढ़ावा देकर भी आप खुश रह सकते हैं। इसके अलावा आप अपनी कुछ आदतों और तरीकों में बदलाव लाकर भी अपने दुख और परेशानी को दूर कर सकते हैं। मदद लें- जब भी आपको यह लगे कि एक ही समय में आपकी जरूरत दो जगह पर है तो ऐसी परिस्थिति में कतई निराश न हों बल्कि ऐसे समय में अपने किसी दोस्त व परिवार वाले की मदद ले सकते हैं।

रिश्तों में ताजगी लाएं- अकसर लोगों को यह लगता है कि प्यार जताने की जरूरत नहीं होती है मगर हकीकत में समय-समय पर अपने चाहनेवालों को यह बताते रहना चाहिए कि आप उनसे कितना प्यार करते हैं। आपके जीवन में उनका क्या महत्व है। इससे आपकी डगमग होती गाड़ी भी वापस पहिए पर चलने लगेगी। प्यार आपको खुशी का अहसास देता है और जब आप अपने प्यार का इजहार करते हैं तो सामनेवाला भी खुश होता है और आप भी।

अपनी क्षमता पहचानने वालों से कभी दूर नहीं रहती कामयाबी

सोच और विचार सम्यक रहें तो हमारा जीवन, हमारा व्यवहार और हमारे कार्य बेहतर हो जाते हैं। अगर हमें पता चले कि दुश्मन में भी कोई खास रहस्य या गुण छिपा हुआ है तो हमारी सकारात्मकता इसी में है कि हम उस गुण को अपने जीवन में उतार लें, हमारी शक्ति में वृद्धि होगी। हमारी उन्नत विचार-दिशा हमारा उत्थान करती है, इसी दिशा में चलकर ही हम परमात्मा के नजदीक पहुंचते हैं। इस उद्देश्य से हम विचारों का प्रबंधन करें। कल्पना में ना उलझें, वर्तमान को उपयोगी बनाने के लिए अपनी सामर्थ्य और सपनों को जांचें-परखें। जो सत्य है उसे स्वीकारें। अपने कार्यों के हम स्वयं उत्तरदायी हैं। हम ही अपने को जोड़ने और तोड़नेवाले हैं।

पतित करनेवाली विचारधारा हमें पतन की ओर ले जाती है। अत: नकारात्मकता से निकल कर सकारात्मकता से जुड़ें। स्वभाव को बदलें। बात-बात पर हस्तक्षेप, विवाद और अभद्र भाषा का प्रयोग करना उचित नहीं। लड़ने-झगड़ने से न तो सफलता मिलती है न ही सामाजिक जीवन जीने के स्तर का प्रबंधन होता है। अगर मन में लड़ने की आकांक्षा ही है तो शतरंज खेल कर राजा, रानी, प्यादों को लड़ाएं। आपस में क्या लड़ना, झगड़ना।

हमारा प्रयास रहे कि हम किसी के द्वारा किए अपमान का भी बुरा ना मानें। क्योंकि उसके पास जो था, उसने हमें वही दिया। हम उसका प्रतिकार, सम्मान देकर करें जो हमारे पास है। यह विचार न आए कि हम इतने बड़े हो गए कि हमारा सम्मान किया जा रहा है। सम्मान पाने की आकांक्षा से अहंकार का पोषण होता है। अहंकार परमात्मा से दूरी बढ़ाता है।

दूसरों पर कम से कम निर्भरता रखें। कोई काम छोटा नहीं होता। हमारी सोच ही कामों को छोटा और बड़ा बना देती है। जिस प्रकार शाश्वत फल पाने के लिए ईश्वर की पूजा-अर्चना हम स्वयं ही करते हैं। ऐसे ही अपने सभी कार्यों को इतने व्यवस्थित ढंग से संपादित करें कि प्रत्येक कार्य स्वयं ही प्रार्थना बन जाए।

आज गोरी-चिट्टी बेजान गुडिया को कोई पसन्द न करे लेकिन सांवली, शालीन व आकर्षक व्यक्तित्व वाली लडकी

सबसे आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। यही बात पुरुषों पर भी लागू होती है। एक समय था जब गोरा रंग, काले लम्बे घने केश, बडी बडी आंखे, तीखे नैन-नक्स सौन्दर्य के माप दंड हुआ करते थे, किन्तु बदलते युग के साथ साथ सौन्दर्य के भी मापदंड बदल गये है।

आज वह दौर है जब सुन्दरता से ज्यादा फिटनेस तथा स्मार्टनेस लोगों को ज्यादा प्रभावित करता है। स्त्री हो या पुरुष, आपका आत्मविश्वास, चाल ढाल बात करने का तरीका तथा नम्रता तथा शिष्ट व्यवहार आपको भीड से अलग रखने के लिये बैहद जरूरी है। फैशन की जानकारी होना आवश्यक है किन्तु देखा देखी करना कभी भी उचित नही है। आप पर कब और क्या जचेंगा यह आप पर तय करता है। इस और गौर करने के बाद ही अपने परिधान का चुनाव तथा श्रृंगार करें क्योकि जो परिधान आप किसी समारोह में पहन सकते है वही अगर आप स्कूल या डाक्टर आदि के पास जाते समय पहनेंगे तो आप हंसी का पात्र बन जायेगें। कही पर भी जोर जोर से हंसना या बोलना असभ्यता ही माना जायेगा। इससे आप शिष्ट लोगों की श्रेणी में नहीं आ सकती।

आज का युग तीव्र गति से भाग रहा है इसमे आपको अपनी पहचान बनाने के लिये युग के साथ चलना जरूरी है। देश विदेश के बारे में जानकारी रखना अति आवश्यक है, इसके अलावा आप खेल, राजनीति, दूरदर्शन कार्यक्रम, फिल्मे आदि में भी दिलचस्पी रखे। आज भी वह हर स्त्री या पुरुष सुन्दर कहला सकता है जो जागरूक है। अन्य रुढियों को दर किनार करने मे संकोच न करे, लेकिन अति आधुनिक बनने के चक्कर में अपने संस्कारों से दूर न हो। आधुनिक बने, किन्तु उतना ही जितना कि आपके परिवेश को फबता हो। अपने विचारों और क्रिया कलापों पर नजर रखे जो भी गलत लगे उसे अपने आपसे अलग कर दे। बडे बुजुर्गों, हम उम्र लोगों तथा बच्चों के साथ ताल-मेल रखने की कोशिश करे। अपने आपको व्यवहार कुशल बनाये। खुद के स्वास्थ्य का पूरी तरह से सम्भाल करे। दूसरों के सुख-दु:ख मे शामिल होना अपना पहला कर्त्तव्य समझे।

आज वह हर स्त्री पुरुष आकर्षण का केन्द्र बन सकता है जो जागरूक, व्यवहार कुशल तथा अपने आप और अपने समाज के प्रति सजग है। सुन्दर दिखना या दूसरों को लगना आज भगवान की देन नही मानी जाती। आपके हाथ में है कि आप कैसा लगना चाहते है। अत: अपने आप पर नजर डाले तथा जो भी कमी आप महसूस करे उसे परिष्कृत कर सुन्दर बने।

मनुष्य अनुकरण प्रिय है। श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्ग पर चले उसी राह से बाकी लोग गुजरना चाहते है। इसको अनुकरण कहा जाता है। औरों की अच्छी बातों का अनुकरण करना ठीक है लेकिन अनुकरण में ही जीवन बिताना उचित नहीं। अपने स्वयं के भी गुण प्रकट होने चाहिये। औरों से सीखने का क्या कारण है ? हर व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होता है। कोई भी औरों की तरह नही होता। इसलिये अपना व्यक्तित्व निखारने औरों का अनुकरण जरूर करे लेकिन वह नकली न होकर असली होना चाहिये। अंधानुकरण से मनुष्य के विकास की बजाय संकोच होता है। अपने असली गुणों का विकास होने तक ही अनुकरण करे।

❊ कौन कहता है की ईश्वर दिखाई नहीं देता,
एक वोही दिखता है जब कोई दिखाई नहीं देता।

सकारात्मक-नकारात्मक

सदैव साकारात्म सोच के कारण तनाव से बचा सकता है। स्कूल से बच्चा देरी से आया है या परिवार का कोई सदस्य घर आने मे देरी हो रही है तो चिन्तन सदैव गलत विचारों का होने लगता है कि क्या कोई दुर्घटना हो गयी ऐसा सोच होने लगता है जो कि सर्वथा गलत है। ऐसे समय में यह सोचना चाहिये कि हो सकता है कोई मित्र मिल गया हो या फिर स्कूल, कार्यालय में कुछ देरी हो सकती है तथा ईश्वर का चिन्तन भी करके गलत धारणाओं से बच सकते है। सकारात्मक सोच से राहत मिलेगी और नकारात्मक सोच से तनाव होगा, बेचैनी, अकुलाहट, बौखलाहट बढेगी। आधा गिलास पानी है तो इसके दो उत्तर मिलते है पहला आधा गिलास खाली है और दूसरा आधा भरा है। सकारात्मक सोच न केवल सुखद होती है बल्कि प्रगति की दशा व दिशा को भी समझने में सहायक होती है। सकारात्मक सोच से लक्ष्य प्राप्ति में भी सहूलियत होती है। हममें से हर व्यक्ति हमेशा जीत की ही बात करता है। जीवन में सफलता को ही महत्व देता है और अपने आप को हमेशा आगे बढ़ते देखना चाहता है और ये होना भी चाहिये क्योंकि यही सृष्टि का नियम है। डार्विन के Survival for fittest का सिद्धांत भी सफलता की ओर ही इंगित करता है, लेकिन जिस तरह नमक का स्वाद चखे बिना मीठे का स्वाद नहीं मिल सकता, उसी तरह जो जिंदगी में हारता नहीं वो सफलता का स्वाद नहीं चख सकता।

आपने गैस से भरे गुब्बारे को ऊपर आकाश में उड़ते देखा है ? वो ऊपर उड़ता है, क्योंकि उसमें हीलियम गैस भरा होता है। बस यही बात जिंदगी पर भी लागू होती है। वह चीज जो हमें ऊपर की ओर ले जाती है वह है हमारा नजरिया।

हार को जीत में बदलकर देखें- अपनी सोच बदलें व अपने अंदर अच्छाई खोजें। इसका मतलब ये नहीं कि गल्तियों को नजर अंदाज कर दें, पर उन्हें सकारात्मक नजरिये से देखें।

जीवन के उतार-चढ़ाव के लिये तैयार रहें। व्यक्ति जीवन के हर हालात में प्रसन्न नहीं रह सकता, परंतु यह यकीन कि आप बुरे समय से अच्छे समय में जरूर प्रवेश करेंगे। आपको बुरे समय का सामना करने की शक्ति प्रदान करेगा।

बदलाव से मित्रता करें। अगर आप अपने जीवन में बदलाव की महत्ता समझ सकेंगे। तो स्वयं के दृष्टिकोण को सकारात्मक बना सकेंगे।

अच्छे ख्यालों को हमेशा डायरी में नोट करें तथा बुरे समय में उनको पढ़ें। जीवन में अच्छे-बुरे क्षणों को हमेशा याद रखिये तो आपका बुरा समय कितनी जल्दी व्यतीत होता है।

हर काम तुरंत करने की आदत डालें। कोई भी काम पूरा होने पर खुशहाली और हौंसला देता है तो आधा-अधूरा काम आपकी हिम्मत को खत्म कर देता है। जैसे टैंक में कोई छेद टैंक को खत्म कर देता है।

लगातार ज्ञान हासिल करने की आदत डालें। बौद्धिक शिक्षा जहां आपके दिमाग पर असर करती है, वहीं मूल्यों पर आधारित शिक्षा आपके दिल पर। अच्छे स्वाभिमान का निर्माण करें। जब हम स्वाभिमानी होते हैं तो हम बेहतर काम करते हैं और घर और दफ्तर में लोगों के साथ हमारे संबंध अच्छे हो जाते हैं। इसी प्रकार चेहरे पर मुस्कान रखना भी सकारात्मक दृष्टिकोण की ओर एक आवश्यक कदम है।

कभी-कभी जो हम सोचते है वह होता नहीं, और जो होता है वह हम सोचते नहीं। भाग्य और पुरुषार्थ की रस्साकसी

चलती रहती है। जीवन अनंत संभावनाओं का पुंज है। हमारे हिस्से में केवल कर्म है, यदि हम फल की अनुकूलता के लिए ही कर्म करते है तो निराशा ही हाथ लगेगी। हमें किसी भी कर्मफल के सकारात्मक और नकारात्मक दोनो ही पक्षों को स्वीकार करना होगा। हम आशाओं के सहारे अपने कर्मपथ पर आगे बढ़ते है, यदि हमने कोई भी कार्य प्रारम्भ करने के पहले ही उसके परिणाम का आंकलन कर लिया तो कार्य करने की गति में शिथिलता आ जायेगी जो, हमे असफलता या परिणाम की प्रतिकूलता की ओर ले जा सकती है। जैसे प्रत्येक विद्यार्थी को परीक्षा में यह सोचकर शामिल होना चाहिए कि वह निश्चित रूप से प्रथम श्रेणी में पास होगा और पूरी ऊर्जा के साथ तब तक यह मानसिकता उसे बनाये रखना चाहिए जब तक कि परिणाम न निकल जाये। इससे उसके मस्तिष्क में सकारात्मक चिंतन की मनोभूमि निर्मित होगी जो उसे सफलता की ओर ले जा सकती है। अनुकूल परिस्थितियों के सृजन के लिए सकारात्मक सोच विकसित करना अति आवश्यक है, यहाँ संदेह की कतई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। निराशा हमारे आत्मबल को कमजोर करती है। जो हमारी प्रगति में बाधक है। यदि हम किसी कार्य को प्रारम्भ करने के पहले ही परिणाम को लेकर अनिश्चितता या संदेह में पड़ गये तो प्रारम्भ में ही हमारी आधी हार हो जाती है। अत: हमें निराशा, प्रतिकूलता और नकारात्मक सोच से सदैव दूर रहकर सकारात्मक चिंतन के आधार पर कार्य करने की शक्ति, मनोबल, आत्मबल और ऊर्जा एकत्र करनी चाहिए। असफलता की पर्याय है निराशा इससे सदैव बचना चाहिए। इससे बचने का एक ही सबसे सशक्त उपाय है कि हमें अपने अंदर सकारात्मक सोच विकसित करनी चाहिए, वही हमारी सफलता का मार्ग प्रशस्त करेगा। आलोचनाओं से भी अपने उद्देश्य में परिवर्तन नहीं करना चाहिए। इससे हमारे कार्य में तथा जीवन शैली में उत्कृष्टता का समावेश होता है साथ ही आत्मबल का निर्माण होता है। ऐसा कोई मनुष्य नही हुआ जिसे जीवन में प्रतिकूल परिस्थितियाँ न आयी हो, यह अवश्य होता है कि किसी के हिस्से मे अधिक और किसी के हिस्से मे कम। चुनौतियाँ व्यक्तित्व में परिपक्वता लाती है, जिससे जीवन में कठिन से कठिन कार्य सम्पन्न करने की शक्ति अर्जित होती है। अनुकूलता तो सभी चाहते है, किन्तु उसी अनुपात में प्रतिकूलताएँ भी होती है, फिर उन्हे कौन अंगीकार करेगा ? हमें अपने आत्मबल से प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलना चाहिए। क्योकि सृष्टि की संरचना में परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव ही है, अत: परमात्मा को भी उससे पर्याप्त अपेक्षाएँ है।

सूर्योदय से पहले उठें, घूमने जाएं, हल्का व्यायाम या योग करें।

प्रात:काल व सोते समय १५ मिनट ईश्वर का ध्यान करें। स्वयं को जानें, अपनी प्रतिभा, क्षमता व सीमाओं को पहचानें। हमेशा सकारात्मक चिंतन करें। नकारात्मक सोच से ऊर्जा नष्ट होती है। जो है, उस पर संतोष करें व कर्म करने में पूर्ण विश्वास रखें। उत्साह एवं आत्मविश्वास के साथ काम करें। व्यवस्थित दिनचर्या की आदत डालें।

आज मनुष्य के पास स्वयं के अलावा किसी के बारे में न सोचने की फुरसत है न ही संवेदनाओं को समझने का समय। इसी भागमभाग भरी जिन्दगी में उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण लोगों में हताशा के विचार तथा आत्महत्याएं भी बढ़ी हैं। लोगों को यह समझने की जरूरत है कि आत्महत्या किसी समस्या का हल नहीं हैं, मानव का दायित्व है कि वह असफलताओं से धैर्य सीखें व अपने पूरे साहस व सामर्थ्य के साथ उनका सामना करें। आशावादी सोच व निरंतर अपने

ध्येय को पाने के लिए प्रयासरत रहनेवाले को ही सफलता प्राप्त होती है। आत्महत्या करने के बजाय मानव को अविचलित हो कार्य करना चाहिए। ऐसी कोई रात नहीं, जिसके बाद सवेरा व उजाला न आए यह सोचकर प्रत्येक मानव को अपना श्रेष्ठतम समाज को देने की चेष्ठा करनी चाहिए, ऐसा करने पर जहां आप सफलता व प्रतिष्ठा के अधिकारी होंगे वहीं समाज उत्तरोत्तर विकसित व सभ्य होगा।

सफलता प्राप्त करने की कोई निश्चित पद्धति नहीं होती ना ही कोई छोटा रास्ता होता है, लेकिन एक बात निश्चित है कि सकारात्मक सोच सफलता हासिल करने में हर व्यक्ति के लिए किसी न किसी रूप में अवश्य सहायक होती है। शुद्ध सकारात्मक चिंतन मनुष्य के अंदर आध्यात्मिक बल का विकास करता है। यह ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को सहजता से सफलता की दहलीज तक ले जाने में सहायक सिद्ध होती है। जहां सकारात्मक चिंतन मन को स्वस्थ और व्यक्तित्व को प्रखर व प्रकाशवान बनाता है वहीं नकारात्मक चिंतन मन को दूषित बनाकर असफलता की ओर ढकेलता है। नकारात्मक सोच के व्यक्ति हमेशा असफलता की ही सोचते हैं। उन्हें हर कार्य मुश्किल लगता है, जबकि सकारात्मक सोचवाले व्यक्ति को कोई भी कार्य मुश्किल नहीं लगता और वह सफलता की सीढ़ी चढ़ता जाता है। नकारात्मक सोच से ही हीनभावना व अवसाद का प्रादुर्भाव होता है। लोगों को चाहिए कि वे आशावादी बनें, निराशावादी नहीं।

हर दिन की शुरुआत एक सकारात्मक सोच के साथ करें। जब शरीर आराम की स्थिति में होता है और मन आरामदायक होता है तो हमारा अंतर्मन ज्यादा गहरे तक चीजों को सोख पाता है। उस वक्त दिमाग में भी सकारात्मक विचार बैठाया जाएगा, वह दिन भर आपके साथ चलेगा। आप सोच रहे होंगे कि सकारात्मक कैसे सोचें तो इसके लिए आपको अपने मन को तैयार करना होगा। सकारात्मक सोचने के लिए खुद को लगातार याद दिलाएं। अपने आपको खुद ही सलाह दें। किसी भी चीज में खामी देखने के बजाय उसकी सकारात्मक पक्ष को देखें। हर चीज का अच्छा और बुरा हिस्सा हो सकता है।

आपका यह प्रण कि आप कुछ नकारात्मक नहीं सोचेंगे और अपने आसपास फैली नकारात्मकता पर विजयी होंगे, जिंदगी देखने के आपके नजरिए को एक नयी दिशा देता है। लोग हमेशा दूसरों को अपनी जिंदगी चलाने का मौका देकर सबसे बड़ी गलती करते हैं। अपने जीवन से जुड़े सारे महत्वपूर्ण फैसले खुद लेने चाहिए।

वैज्ञानिक मानते हैं कि ध्यान के वक्त, जब दिमाग किसी विशेष विचार की ओर केन्द्रित रहता है तो उससे ऊर्जा बिखरती है। यह ऊर्जा इंसान के अंदर मजबूती लाती है जिससे वह आम जीवन में कठिन परिस्थितियों का मुकाबला करने में सक्षम होता है। हर दिन कम से कम १० मिनट तक ध्यान लगाने की कोशिश करें। दिमाग को स्वच्छ रखना सीखें।

सकारात्मक विचारधारावाले व्यक्तियों से मिलने से आपकी सोच और उद्देश्य सकारात्मक तरीके से आगे बढ़ेंगे। नकारात्मक सोच रखनेवाले लोग जिंदगी से सकारात्मकता को निकाल देते हैं। ऐसे लोगों से दूर रहना ही बेहतर है।

अपना लक्ष्य अपनी दिली अभिलाषा के अनुसार ही चुनें। उस पर हमेशा टिके रहें, चाहे वह कितना ही मुश्किल क्यों न दिखे। उन पर विश्वास करना और उनको पाने के लिए मेहनत करना सीखें। दुनिया को आपको देने के लिए कई नए दृष्टिकोण हैं। इनको अगर आप खुले दिमाग और आशावादी सोच रखते हुए अपनाएंगे तो जिंदगी बदल जायेगी। कड़ी

मेहनत करें और लक्ष्य की तरफ रोज एक कदम आगे बढ़ाएं।

किसी भी बदलाव का प्रतिरोध करना मनुष्य की फितरत में शामिल होता है। पर जब आप अपने आप पर सवाल उठाएंगे कि आखिर इस प्रतिरोध का मकसद क्या है, आपको अपने आप मुश्किल इतनी बड़ी नहीं दिखेगी जितना आपने सोच रखा था। किसी भी परिस्थिति में आपकी प्रतिक्रिया कैसी होती है, यह सोचने की शक्ति में अंतर ला सकता है। किसी कठिन परिस्थिति में सकारात्मक प्रतिक्रिया देना, उस परिस्थिति को आसान बना देता है। जबकि नकारात्मक विचारधारा से मुश्किल जरूरत से ज्यादा बड़ी दिखती है। आपके सोचने के तरीके में बदलाव से आप दुनिया को नए नजरिए से देख पाएंगे।

हमने बहुत लोगों को अशांत और आंसू बहाते हुए देखा है। कारण सिर्फ एक ही है- नकारात्मक सोच, सामंजस्य का अभाव, गृह क्लेश और उससे उपजा मानसिक तनाव। ऐसे लोग अपनी हालत के लिए स्वयं उत्तरदायी हैं। लौकिक विद्या का गहरा ज्ञान प्राप्त किया, व्यवसाय चलाने के सारे गुर सीखे, प्रबंध कौशल सीखा, लेकिन कभी अपने को जानने और समझने की जरूरत नहीं समझी।

जो लोग सुख और शांति की खोज में हैं और पता लगाना चाहते हैं कि सुख और शांति है कहां, उन्हें अपनी सोच पर दृष्टिपात करना चाहिए। सोच में संतुष्टि है तो आदमी सुखी होगा। हमारी कठिनाई यह है कि हम अपनी भावनाओं एवं विचारों पर ध्यान नहीं देते। हमारी सबसे बड़ी त्रुटि सोच की है। हमने सुविधा को सुख मानने की भूल कर दी। सुविधा होने पर भी आदमी सुखी नहीं हो सकता। सुविधा में अगर सुख देने का सामर्थ्य होता तो दुनिया की एक बड़ी आबादी सुख भोग रही होती। इस भौतिकवादी सोच को बदल कर ही हम समस्यामुक्त जीवन जी सकते हैं। इस बात को समझ लेने की भी जरूरत है कि बाहर की दुनिया में न सुख है, न दुख है, न शांति है, न अशांति है। जो कुछ सकारात्मक और नकारात्मक है, वह हमारे भीतर है। यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम किसे चुनते हैं?

किसी भी तरह की मानसिक बाधा की स्थिति खतरनाक होती है। खुद को स्वतंत्र कीजिए। बाधाओं के पत्थरों को अपनी सफलता के किले की दीवारों में लगाने का काम कीजिए। सोच को सकारात्मक बनाइए। जहां भी सोच-विचार में विकृति पनपे, वह जगह छोड़ दीजिए। हर किसी को मालूम है कि सकारात्मक विचार में अच्छाई की असंख्य संभावनाएं छिपी रहती हैं, सिर्फ उसे जगाने और विकसित करने की आवश्यकता है। हालांकि इसे जगाने में बहुत सारे लोग लगे हुए हैं और वे सफल भी हो रहे हैं।

अक्सर देखा जाता है कि, हममें से कई लोग चाहे वो विद्यार्थी हों या नौकरीपेशा या अन्य क्षेत्र से हों काम या पढ़ाई की अधिकता को देखकर कहने लगते हैं कि ये हमसे नहीं होगा या मैं ये नहीं कर सकता। यही नकारात्मक विचार उन्हें आगे बढ़ने से रोकते हैं। यदि हम ना की जगह ये कहें कि हम कोशिश करते हैं हम ये कर सकते हैं तो परिस्थिति सकारात्मक संदेश का वातावरण निर्मित करती है। जिस तरह हम जब रास्ते में चलते हैं तो पत्थर या काटों पर पैर नहीं रखते उससे बचकर निकल जाते हैं उसी प्रकार हमें अपने नकारात्मक विचारों से भी बचना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार एक पेड़ से माचिस की लाख से भी ज्यादा तीलियां बनती है किन्तु लाख पेड़ को जलाने के लिए सिर्फ एक तीली ही काफी होती है।

उसी प्रकार एक नकारात्मक विचार हमारे हजारों सपनों को जला सकता है।

असफलता, अयोग्यता, असमर्थता जैसे नकारात्मक विचार एक जेल की तरह हैं जो हमारी उन्नति को कैद कर लेते हैं। सफलता के लिए जरूरी है कि ऐसे विचारों को दिलो-दिमाग से उखाड़ फेंका जाए।

केवल चाहने भर से कोई मंजिल नहीं मिल जाती, इसके लिए जरूरत होती है मकसद को मन में बिठाने की और फिर उस पर लगातार मेहनत करने की। कामयाबी का यह सीधा और सच्चा सूत्र है। लेकिन सीधा और सच्चा होने का मतलब यह कतई नहीं कि यह आसान है। जिंदगी में हम लगातार ऐसी परिस्थितियों से दो चार होते रहते हैं जो हमारा ध्यान हमारे लक्ष्य से भटका देती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हमें जाना तो कहीं और होता है और हम पहुंच कहीं और जाते हैं। इससे बचने के लिए यह जरूरी है कि हम जब जिंदगी का कोई मकसद बनाएं तो सबसे पहले अपने लिए ईमानदार बनें। अपनी क्षमताओं का विश्लेषण करें तथा पता लगाएं कि लक्ष्य को हासिल करने के लिए हमें अपने आप में क्या-क्या बदलाव लाने की जरूरत है। एक बार जब यह तय हो जाए तो उसके बाद व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएं।

डर इंसान को आगे बढ़ाने से रोकने की कोशिश करता है। असफलता, अयोग्यता, असमर्थता, असम्मान जैसे नकारात्मक विचार एक जेल की तरह हैं जो हमारी उन्नति को कैद कर लेते हैं। इसलिए सफलता के लिए पहला कदम यही होगा कि ऐसे विचारों को दिलो-दिमाग से उखाड़ फेंका जाए।

नकारात्मक विचारों को मन से निकालने के साथ यह भी जरूरी है कि इससे पैदा हुई खाली जगह को सकारात्मक विचारों से भरा जाए। यह काम आसान नहीं है और इसे एक आदत के रूप में विकसित करना होगा।

एक बार जब यह आदत बन जाएगी तो सकारात्मकता हमारे व्यक्तित्व का स्थाई हिस्सा हो जाएगी।

अपने आसपास मौजूद नकारात्मक ऊर्जा को रोकना मुश्किल है, लेकिन यदि सकारात्मक बन जाएं तो नकारात्मक ऊर्जा को आसानी से खत्म कर सकते हैं। किसी से अधिक अपेक्षा न रखें- मन मुताबिक दूसरों से काम की अपेक्षा रखना आपको निराश ही करेगा इसलिए लोगों से न्यूनतम अपेक्षाएं रखें। छोटी-छोटी सफलताओं की खुशियां मनाएं- दिनभर में जो छोटी सफलताएं आपने प्राप्त की हैं उनका जश्न मनाएं। दूसरों के प्रति भी अधिक आलोचना भरा नजरिया न रखें और उनके छोटे-छोटे प्रयासों की सराहना करें।

आलोचना से बनाएं दूरी- नकारात्मक टिप्पणियों, आलोचनात्मक दृष्टिकोण को व्यक्तिगत रूप से न लें। दूसरों की हताशा का असर खुद पर न पड़ने दें। दूसरों की हताशा और गुस्से पर अगर आप कोई प्रतिक्रिया नहीं देंगे तो उसका फायदा आपको अपने व्यक्तित्व में दिखाई देगा।

रहें छींटाकशी से दूर- अगर आप किसी ऐसी जगह हैं जहां लोग नकारात्मक टिप्पणियों या छींटाकशी में रस ले रहे हों या फिर दूसरों का उपहास कर रहे हों तो ऐसी जगह और स्थिति से खुद को बाहर निकालना ही ठीक है।

न हों प्रतिक्रियाओं पर गंभीर- नकारात्मक प्रतिक्रियाओं को आपकी राह की बाधा न बनने दें। हमेशा ऐसे लोगों की बातों को भुलाने के लिए खुद को किसी सकारात्मक गतिविधि के साथ जोड़ें।

अगर आप रिश्तों में बुरे दौर से गुजर रहे हैं, तो भविष्य के बारे में सोचना आपके रिश्ते में गरमाहट ला सकता है। क्योंकि यह उलझनों से उबरने में मदद करता है और जीवन में सकारात्मकता लाता है।

जब आपका साथी पैसे, जलन या आपसी मुद्दों पर बहस करता है, तो वह उस वक्त अपनी भावनाओं का इस्तेमाल बहस को तीखा करने के लिए करता है। ऐसे में जब वह अपने रिश्ते को लेकर भविष्य के बारे में सोचना शुरू करता है, तो उनका ध्यान झगड़े से हट जाता है। लोग बेवफाई के मुद्दों पर अधिक बेहतर तरीके से सोचने में सक्षम होते हैं, जब उनसे तीसरे व्यक्ति के रूप में पहलू पर सोचने के लिए कहा जाता है। रिश्तों के संघर्ष के संदर्भ में भविष्य आधारित अवधारणा को अपनाने से मनोवैज्ञानिक तौर पर खुशी व संबंध अच्छे होते हैं। भविष्य के बारे में सोचना रोजाना के जीवन में सामने आनेवाले विभिन्न प्रकार के संघर्षों से निपटने में लाभदायक साबित हो सकता है।

एक समय वह भी था जब लोग कम पैसे कमाकर भी खुश रहते थे, वहीं भागदौड़ और प्रतियोगिता के इस दौर में अब लाखों-करोड़ों कमाने के बाद भी लोगों के चेहरे पर वह खुशी नहीं होती जो पहले हुआ करती थी। लोग अपने काम से नाखुश हैं, अवसाद का शिकार हो रहे हैं। उनकी सोच सकारात्मक के बजाय नकारात्मक होती जा रही है मगर कुछ बातें अपनाकर हम अपने अंदर से नकारात्मक सोच विचार निकाल सकते हैं।

सकारात्मक संदेश- अपने अंदर से नकारात्मक सोच निकाल कर विचारों में सकारात्मकता लानी चाहिए। हमें किसी भी परिस्थिति में हार नहीं माननी चाहिए। अपने दिमाग को सकारात्मक संदेश देते रहना चाहिए। इससे हमारे जीवन में आनेवाली बड़ी से बड़ी कठिनाई भी हमें छोटी नजर आएगी।

अपने पास एक डायरी रखें जिस पर अपने विचारों को लिख सकें। दिन भर के दौरान जो कुछ होता है उसे इसमें लिखा जा सकता है। इस दौरान आपकी सोच सकारात्मक, सटीक तथा पर्याप्त थी या यह भ्रमित, निरर्थक एवं नकारात्मक थी? क्या आपने किसी घटना तथा उस पर अपनी प्रतिक्रिया के मध्य अंतराल पर गौर किया? क्या इस दौरान आप अपनी नकारात्मक सोच को पहले ही भांप सकते हैं? यदि नहीं तो आप इस अंतराल को देखने के लिए क्या कर सकते हैं? क्या आपकी सोच तथा शब्दों में तालमेल की कमी थी? यदि हां तो क्या यह यथोचित थी? क्या आपके द्वारा कहे गए शब्द कहने जरूरी थे? इन सभी बातों को अपनी डायरी पर नोट करें। याद रखें कि डायरी पर इन सभी बातों को लिखने का मकसद शुरुआत में आपकी सहायता करना तथा आपको अपने नकारात्मक विचारों को पहचानने में समर्थ बनाना है। महत्वपूर्ण है कि इस तरह की सोच के पनपने ही उसकी पहचान हो जाए।

आत्मविश्वास बढ़ाने का सबसे सीधा मार्ग है सकारात्मक सोच। ज्यादातर देखा गया है कि जो लोग बहुत नकारात्मक सोचते हैं, वे अपने आप पर विश्वास भी बहुत कम करते हैं। अल्प आत्मविश्वासी नकारात्मक ज्यादा सोचते हैं। अत: सर्वप्रथम अपनी सोच को बदलें और हमेशा सकारात्मक सोचें। आत्मविश्वास सफलता की कुंजी है और यह मानव का आत्मविश्वास ही था कि उसने चाँद को छू लिया, पर्वतों के सीने चीर दिए और समुद्र के तूफानी वेग को रोक दिया। आत्मविश्वास के तिनकों से ही सफलता का घरौंदा तैयार होता है। किंतु कई बार तो व्यक्ति को यही पता नहीं होता है कि उनमें आत्मविश्वास की कमी है और असफलता का दोष वह तकदीर को देता है।

हालांकि अति आत्मविश्वास और अल्प आत्मविश्वास दोनों ही मानसिकताएं बुरी हैं। आत्मविश्वास की कमी ज्यादा घातक है, मगर अफसोस कि कई बार लोग चाहते हुए भी यह नहीं जानते कि आत्मविश्वास बढ़ाया कैसे जाए?

साक्षात्कार देते हुए, किसी से बात करते हुए, कोई काम करते हुए, भाषण देते हुए लोग यही सोचते हैं कि कैसे बात करेंगे, कैसे मिलेंगे, कैसे जवाब देंगे, अगर काम पूरा या सही नहीं हुआ तो क्या होगा? इत्यादि ये सब नकारात्मक सोच का ही परिणाम है, जिससे व्यक्ति हड़बड़ाहट, घबराहट में बनता काम बिगाड़ देता है। अत: अपने शब्दकोष से मैं नहीं कर सकता या कर सकती ये वाक्य हटा दीजिए। हम सब कुछ कर सकते हैं, हर काम मेरे बस का हैं, मुझे हर चीज व्यवस्थित रूप से आती है, यही सकारात्मक सोच है और आत्मविश्वास के द्वार खोलती है। वास्तव में हम अपनी कमियों को ज्यादा जानते हैं। बनिस्बत अपनी अच्छाइयों और खूबियों के। अत: अपनी खूबियों को ढूंढ़े, उन्हें उजागर करें, आत्मविश्वास कैसे आता है? साथ ही न केवल अच्छा सोचें बल्कि सकारात्मक सोचवाले व्यक्तियों की संगत में भी रहें। आपके आसपास जो नकारात्मक रूख रखते हैं, उनके साथ रहते हुए आपकी सोच भी धीरे-धीरे वैसी ही हो जाती है, क्योंकि बुरी चीज का प्रभाव जल्दी व ज्यादा होता है। आप अपने मन में यह भी नहीं आने दें कि आपमें आत्मविश्वास की कमी है। क्योंकि ऐसा सोचना भी निराशाजनक ही है। अत: आत्मविश्वासपूर्ण भावनाएं मन में रखें। आप पाएंगे आपमें गजब का आत्मविश्वास है। सकारात्मक सोच का अर्थ अति-आत्मविश्वास नहीं है। सकारात्मक सोच का अर्थ है अपनी छुपी, सीमित क्षमताओं को बढ़ाना, अपनी योग्यता को जानना, अपने आपको प्रेरित करना, प्रेरणा देना, सक्षम बनाना।

जिसके मन में करुणा और संवेदनशीलता है, वह किसी भी हालत में दूसरे को कभी दुखी नहीं कर सकता। उससे अनैतिक आचरण होगा ही नहीं। अनैतिकता दूर करने या मिटाने के लिए हर हालत में अध्यात्म की चेतना को जगाना होगा। व्यक्ति में करुणा की चेतना हो तो वह दूसरों का अहित नहीं करेगा।

सामनेवाले ने जो लकीर खींची है, उसे छोटा करने के दो ही उपाय हैं। एक आप उसकी लकीर मिटाएं। यह नकारात्मक प्रवृत्तिवाला काम है। दूसरा आप उसके सामने उससे बड़ी लकीर खींच कर रख दें। यह सकारात्मक प्रवृतिवाले व्यक्ति की पहचान है। अपनी दुर्बलताओं को दूर करने का एक मंत्र बार-बार याद आता है कि जरूरी नहीं कि आप दुनिया का हर काम कर सकें। जो नहीं कर सकते उसके लिए मना कर दजिए और जो व्यक्ति इस कार्य के लिए उपयुक्त है, उसे करने दीजिए।

मनोविज्ञानियों की सलाह है- आप अपने स्वभाव में बदलाव लाइए, आज ही से, अभी से। यह सोचना बंद कीजिए कि जो आप सोच रहे हैं वही सही है और जो दूसरा सोच रहा है वह गलत है। आप क्षण भर के लिए कल्पना कीजिए कि आप गलती कर रहे हैं और दूसरे हमें हमारी गलती बता रहे हैं और हम उसे मान रहे हैं। कितना सुख है इसमें आपको भी और बतानेवाले को भी।

**** महात्वाकांक्षा की तलवार व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य से विमुख कर महत्व प्राप्ति के लिए उचित-अनुचित हर कार्य में प्रवृत्त कर देती है।***

आशा निराशा

निराशा से ही उठती है महत्वकांक्षा। निराशा से ही उठता है साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद। निराश व्यक्ति ही युद्ध के लिये तत्पर रहता है। हिंसा करता है। लडता है वह अपनी निराशा को जीतना चाहता है, वह स्वयं को प्रभावित करना चाहता है। आप देखेगें की स्त्री-पुरुष से निराश होती चीखेगी। पुरुष निराश हो तो पुरुष चीखेगा, चिल्लायेगा। यदि कभी उपर से दिखाई न दे कि चीख उठी है तो भीतर से उठती है।

बात बडी स्वभाविक है जहाँ निराशा है, वहां शान्ति, संयम, उत्साह प्रेम आदि तो हो ही नहीं सकते। इसलिये वहां कुछ तो रहेगा जैसे घोर अशान्ति, बडी अस्तव्यस्तता, बडा दु:ख, असह्य पीडा। वहां उर्जा का प्रवाह बदल जाता है। दिशा बदली हुई रहती है। निराशा में हमारे भीतर की उर्जा नीचे बहने लगती है। हम फिसलते है। गिरते है। निराशा गिरावट है। पतन है। निराश व्यक्ति ही अपराध करता है। पतित होता है। यह शुरुवात है नरक की। इससे नरक खोजने की आवश्यकता नहीं है। निराशा ही उसका मुख्य द्वार है और इतनी सुलभ है कि अक्सर पाई जाती है। इस संसार में मनुष्य ने निराशा में जितने विशाल नरक की रचना की है उतना बडा नर्क तो युद्धों ने भी नहीं बनाया और युद्ध इसलिये अनिवार्य है कि व्यक्ति निराश है। निराश व्यक्ति युद्ध को आमंत्रित करता है। आज कोई निराश है तो समझ लो कि वह कल युद्ध की तैयारी कर रहा होगा। निराश-विश्वास के साथ है। दोनों सिर्फ भ्रम की सन्ताने है। जब कोई विश्वास करता है तो उसे निराश होना पडेगा। विश्वास पहला छोर है और निराश होना आखिरी छोर। विश्वास निराशा को छोडकर कही नही ले जाता क्योंकि विश्वास का अर्थ ही है न जाना हुआ। नहीं जाना गया है इसलिये ही उस पर विश्वास किया गया। जीवन मे ऐसे अनुभवों से भी गुजरना पडता है कि कितना भी यत्न, प्रयत्न करो, कितनी भी कोशिश और मेहनत करो, कितना भी पैसा खर्च करलो फिर भी काम नहीं बनते। उस समय तकदीर का, भाग्य का अनुभव होता है।

निराशा के बादल भले ही गहरे हो मगर आशा का दामन न छोडे। निराशा आत्मबल को क्षीण करती है और आत्मबल क्षीण होनेपर आन्तरिक ऊर्जा नहीं मिल पाती जिससे कार्य का निष्पादन सम्भव नहीं होता ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व का ऱ्हास शुरू हो जाता है।

आशावादी मनुष्य भविष्य कालीन अवसरों के बारे में सोचता है। अपनी सफलता का दृढ़ विश्वास होता है। प्रबल इच्छा शक्ति के कारण प्रयत्न करते रहता है। वह यह कहता है कि दो दिनों के बीच एक रात है उसे दो दिन दिखते है। प्रसन्न मन व उत्साह भरा रहता है। इसके विपरीत निराशावादी सदैव भूतकाल में हुई गलतियों पर पछताते रहता है। अपनी सफलता पर सन्देह करता है। इच्छाशक्ति प्रबल न होने के कारण निष्क्रिय हो जाता है। वह यह कहता है दो रातों के बीच एक दिन है उसे दो राते दिखती है। मायूस व दु:खी रहता है।

अनेक व्यक्ति अनुकूल सहायता, अनुकूल प्रेरणा और अनुकूल वातावरण मिलने पर भी आगे नही बढ़ पाते। देखने में ये लोग स्वस्थ है, परन्तु श्रेष्ठ कार्यों जैसी कोई बात उनके निकट भी नहीं आपाती है और न ही वे इस और प्रयत्नशील दिखाई देते है। किसी भी दु:खद या भयानक परिस्थिति का वे ठीक से मुकाबला नहीं कर सकते है। दूसरी और कुछ व्यक्तित्व ऐसे भी होते है जो देखने में भले ही स्वस्थ न दिखाई दे परन्तु परिणाम से ज्ञात होता है कि वे भयानक तूफान में भी चट्टान की तरह अडिग रहते है। ऐसी कौनसी शक्ति है जो उन्हे पराजय, असफलता और दु:ख के क्षणों में भी सहर्ष मुस्कराते हुये आगे बढ़ने को कहती है ? वह है उसका आशावादी मन।

इस मन मे जब तक जीत का पैगाम रहेगा, कठिन डगर भी आसान होती जायेगी किन्तु यदि मन में हार की धारणा घर कर गई तो एक आसान डगर भी कांटों भरी लगेगी। आशावादिता आपको अधिक प्रसन्न, स्वस्थ व सफल होने में सहयोग प्रदान करती है। इसके विपरीत निराशा बीमारी और असफलता के साथ-साथ विषाद, अकेलापन, अन्तर्मुखी व्यवहार का आपके मन में घर करवा देती है। यह पूर्णत: सत्य है कि योग्यता होना अत्यन्त आवश्यक है, फिर भी यदि निराशा की अधिकता रही तो वह सारी योग्यता पर पानी फेर सकती है। एक और प्रवृति जो निराशावादियों में पाई जाती है, वह यह कि वे प्रत्येक कार्य की शुरुआत उसके ऋणात्मक पहलू पर विचार कर करते है और लम्बे समय तक उसे करने, न करने के पशोपेश में पडकर काफी समय बरबाद कर देते है। इसके अलावा यदि उन्होंने कार्य प्रारम्भ भी कर दिया तो अक्सर उस कार्य में आनेवाली प्रारम्भिक कठिनाईयों से घबराकर ही उसे अधूरा छोड देते है। दूसरी और आशावादियों के साथ यह स्थिति नहीं है। वे कठिन से कठिन कार्य में भी सकारात्मक पहलू पर ज्यादा सोचते है। छोटी-मोटी परेशानियों से घबराने के स्थान पर उनसे सीखते है, उस कार्य को पूरा करके ही छोडते है।

आशावान होना अर्थात मन में जीत का भाव होना, बीमारियों में भी अपना असर दिखाता है। वास्तव मे आशा से युक्त व्यक्ति परिस्थितियों के विषय मे वास्तविकता से अधिक अच्छी तरह सोचते-समझते है और यही भावना उन्हें बडी से बडी बीमारियों में जीवन्त बनाये रखती है। आशावादिता असाध्य रोगों को ठीक तो नहीं कर सकती है, पर यह उस बीमारी को आगे बढ़ने से टाल जरूर सकती है। हम जब महापुरुषों के जीवन चरित्र पढते है तो हमें ज्ञात होता है कि इन व्यक्तियों में भी आशा जैसी असाधारण भावना शक्ति विद्यमान थी। कुल मिलाकर आशा ही मानव जीवन का संचार सूत्र है।

अक्सर लोगों की शिकायते होती है कि उनकी जिन्दगी बेकार है, कोई उन्हे प्यार नहीं करता लेकिन अगर गौर से देखे तो उन्हे मालूम होगा कि इसमे काफी हद तक दोष उनके दृष्टिकोण का ही है। हम अपने निराशावादी दृष्टिकोण को बदल सकते है? ऐसा भी है और नहीं भी। बहिर्मुखी नये अनुभव को स्वीकारने की स्थिति में होना, सामंजस्य, विवेक और मनोरोगी व्यक्तित्व के परीक्षण से इसका पता लगाया जा सकता है। निराशा से भरे लोगों की यह विशेषता होती है कि वे चिन्ता, निराशा और नकारात्मक भाव से भरे होते है। एक मनोरोग चिकित्सक के अनुसार हमारा व्यवहार और स्वभाव इस बात पर निर्भर करता है कि मां के गर्भ से हमारे मस्तिष्क के तार कैसे जुडे हुये है, हमारे जन्म के बाद के अनुभव हमारे इन मूल गुणों को कम करने या बढ़ाने में सहायक होते है। हमारा व्यक्तित्व हमारे दृष्टिकोणों और प्रतिक्रियाओं का एक जटिल संयम है और यह जटिलता, हमारी क्रियाओं, इच्छाओं और विचारों को रूप देती है। हमारा व्यक्तित्व और भी जटिल होता जाता है इसलिये सबसे पहली बात तो यह है कि अपने व्यक्तित्व की अच्छाई या बुराई को समझना चाहिये। हो सकता है कि निराशावादी लोग बार-बार अपनी निराशाओं की ओर ही लोट जाते हो, लेकिन प्रयास से वे निराशा से काफी बाहर निकल सकते है।

गलत दृष्टिकोण के कारण कई व्यक्तियों को लगता है कि सडक पर चलते समय उनके दोस्त ने उनकी अनदेखी कर दी तो उसे यह नही सोचना चाहिये कि उसका दोस्त उसे नहीं चाहता है और इसलिये वह अनदेखी कर गया। किसी खास व्यक्तित्व की खास विशेषता यह होती है कि वह किसी विशेष परिस्थिति में किस तरह का व्यवहार करेगा, उसे सही अनुभव देकर उसके व्यक्तित्व की खराबी को दूर किया जा सकता है और गलत अनुभव होने से आदमी का व्यवहार ओर अधिक खराब भी हो सकता है। यदि आपके माता पिता में से कोई एक निराशावादी रहा हो या बहुत आलोचना करता रहा हो तो या अपने जीवन से असन्तुष्ट रहा हो तो बडे होकर आप भी इस भावना से ग्रस्त हो सकते है। आपको चाहिये कि अपनी प्रतिदिन की भावनाओं ओर बदलते मूड को एक डायरी में लिखे, आपको मालूम पडेगा कि आप कैसे बदल रहे है।

साथ ही अपने जीवन कि स्थितियों, लोगों और उनके व्यवहार की पहचान करे, ऐसी बातों को समझने की कोशिश करे जिसमें आपको खुशी हासिल होती है और साथ-साथ में उस व्यवहार को भी जानिये जिससे आपको कष्ट मिलता है, उसे अधिक से अधिक अपनाने की कोशिश करें और जो परेशानी पैदा करें उनसे दूर रहे। जीवन में कुछ परेशानिया तो आती ही है उनसे बचा नहीं जा सकता। उन्हे वास्तविक समस्याओं को मान कर चले और इसके लिये स्वयं को तैयार करे कि उनसे आप अच्छी तरह कैसे निपट सकते है।

अगर आप हर छोटी-मोटी बात से तनावग्रस्त हो जाते हैं तो निराशा मन में घर कर लेती है। इससे आपका स्वास्थ्य बिगड़ सकता है। किसी भी स्थिति में हल ढूंढने के बजाय चिंतित होने से गुस्सा, खीझ लाचारी बढ़ती है जो केवल तनाव को ही जन्म देती है। अगर आप तनावों से धिरने के बावजूद उनसे जल्दी उबर भी जाते हैं तो स्थिति इतनी बुरी नहीं हैं। आप इसकी आदी हो चुके हैं। ऐसे में आप परिस्थिति से डटकर मुकाबला करते हैं। आशावादी होने पर तनाव से शीघ्र छुटकारा पा जाते हैं। यह मानकर चलें कि विपरीत समय ही अंत नहीं है, न ही यह पूर्ण सत्य है।

एक बार अरस्तू के पास एक व्यक्ति आया। वह बहुत दुखी व निराश था। उसने अरस्तू से कहा, वह जीवन से निराश है और मरना चाहता है। यह कहकर वह रो पड़ा। उसका विचार था कि अरस्तू उसकी समस्या का समाधान करेंगे। मगर अरस्तू ने कहा, ऐसी स्थिति में तो तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है। जो लोग निराशा में जिया करते हैं, उनका जीवन मौत से भी बदतर है। अरस्तू बोले, आशावादी मनुष्य का ही जीवन सार्थक होता है। आशावाद ही मनुष्य का मानसिक सूर्योदय है। इससे जीवन का निर्माण होता है। अगर तुम आशावादी नहीं बन सकते तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ है।

वास्तव में खुशी और निराशा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कभी कभी हमें अकारण ही मानसिक उदासी के दौर से दो चार होना पड़ता हैं। इसमें निराशा जीवन के लिए अभिशाप बन जाती है। बहुत से लोग जीवन-संग्राम की कंटीली राहों पर चलने से पूर्व ही अपने हथियार डाल देते हैं। ऐसे लोग घोर निराशावादी होते हैं, जो चलने से पूर्व ही रूक जाते हैं और अपनी हार स्वीकार कर लेते हैं। जो अपनी क्षमता प्रदर्शन से पूर्व ही खुद को पराजित महसूस करते हैं, उन्हें दुनिया की कोई ताकत विजयी नहीं बना सकती।

निराशा को परिभाषित करते हुये स्वेट मार्डेन लिखते हैं कि, अगर कोई यह समझता है कि खुशियां मेरे नसीब में ही नहीं, प्यार मुझे मिलता ही नहीं या इस निराशा का शिकार है कि हंसी में मेरा कोई हिस्सा ही नहीं, तो ऐसे इंसान की तुलना उस किसान से की जा सकती है जो इस आशंका में अपना खेत नहीं जोतता कि इस साल बारिश नहीं होगी, सूखा पड़ना तय है। निराशा के अतिरेक की लहरें हमारे जीवन के उत्साह के संग ही जीवन की खुशियों को भी बहा ले जाती हैं।

यदि आप सोचते हो कि मैं पराजित हो जाऊंगा तो तुम पराजित हो चुके हो। यदि तुम सोचते हो कि मैं जीतने के लिए यह कार्य कर रहा हूं, पर जीतूंगा नहीं तो हार चुके हो। जिंदगी की जंग में अधिक बलवान व्यक्ति ही विजयी नहीं होता। जो आशावादी विचारों के साथ यह सोच लेता है कि मुझे विजयी होना है, वही विजयी होता है। हर चीज के विषय में निराश होने की अपेक्षा आशावान होना अच्छा है। इसलिए जीवन में सफल होने के लिए निराशा छोड़कर आशावान बनो। उदासी व निराशा जीवन के प्रतीक नहीं हैं। मुंशी प्रेमचंद कहते हैं कि, जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं जब निराशा में भी आशा होती है। निराशा पर विजय प्राप्त करके जीवन को उसके वास्तविक लक्ष्य की तरफ अग्रसर कीजिए। जीवन का वास्तविक लक्ष्य परोपकार और उससे मिलनेवाला आनंद ही है। हम अगर निराशा से घिरे हुए होंगे तो न तो खुद को सुख दे पाएंगे और न ही दूसरों को।

दोस्त-दोस्ती, रिश्ते-रिश्तेदारी

ये दिल ही है जो जानता है हमारी मोहब्बत का आलम, जीने के लिए सांसों की नहीं, दोस्तों की जरूरत होती है।

जब दो जीव भावनात्मक व्यावहारिक तथा वैचारिक रूप से एकाकार होते है तब दोस्ती शब्द का निर्माण होता है। दोस्ती बालक के मुस्कान जैसी, फूलों की महक जैसी, मां के दुलार जैसी और बहन की राखी जैसी पवित्र होती है। यह दो भाइयों के रिश्ते से भी गहरी और निष्कलंक होती है। भाइयों में बंटवारा तो होता है लेकिन दोस्तों में नही। यह इतनी विश्वसनीय होती है कि कोई भी किसी से भी दोस्ती करके उसकी पीठ में खंजर तक भौक सकता है।

संसार में जो भी आता है उसकी विदाई भी निश्चित है। मौत की सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता। फिर क्यों न बीच का समय हम खुश रह कर बिताने की कोशिश करें। इसके लिए जरूरी है कि हम जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं उनसे रिश्ते अच्छे हों।

मगर बगैर प्यार एवं अपनत्व के रिश्ते बोझ बन जाते हैं जो किसी के भी हक में उचित नहीं। रिश्तों में दोस्ती के रिश्ते को सबसे खूबसूरत और करीबी माना जाता है अगर इसमें ईमानदारी और सच्चाई हो। जो हमारे अपने हैं वे कितने मूल्यवान हैं, कई बार उन्हें खोने के पश्चात यह अहसास जागता है।

समय-समय पर हमें अपने अंतर्मन में झांकते रहना चाहिए। हम अपने रुपए-पैसे, बैंक बैलेंस का हिसाब रखने में जरा भी लापरवाही नहीं करते मगर रिश्तों की जांच-पड़ताल में जरा भी वक्त नहीं लगाते और अगर देखते भी हैं तो सिर्फ आलोचनात्मक रवैया रख कर ही।

इस सच्चाई को स्वीकारते हुए हमें रिश्तों को उनकी कमजोरियों के साथ स्वीकार करना चाहिए कि कोई भी पूर्ण नहीं होता। हम यह न भूलें कि कमियां हमारे अंदर भी हैं।

जमीन से जुड़े- आप कितने भी ऊंचे ओहदे पर कार्यरत हों पर जमीन से जुड़े रहें। जीवन में जो लोग सफल कहे जाते हैं वे जमीन से जुड़े लोग ही होते हैं। आप चाहें जो भी हों, आपके सुख का मूल लोगों से आपके रिश्तों में ही निहित है। ऊपर पर पहुंच कर तो वैसे भी व्यक्ति बेहद अकेला हो जाता है। ऐसे में तो आपको अपनों की और भी ज्यादा जरूरत होती है इसलिए स्वयं को अपनों की पहुंच के बाहर न बना लें। भृकुटि ताने घमंड में चूर व्यक्ति से कोई भी बात करना पसंद नहीं करेगा जबकि खुशमिजाज, चेहरे से सहज, सरल लगनेवाला व्यक्ति सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

ज्यादा अपेक्षाएं न रखें- स्वयं पर भरोसा रखते हुए दूसरों से ज्यादा अपेक्षाएं न रखें। नाप-तोल करके किया हुआ भलाई का काम बाद में तकलीफ भी दे सकता है इसलिए शक्ति से ज्यादा यह सोच कर न करें कि बाद में वसूल लेंगे।

अभी हमारे देश में टाइम डॉलर कमाने जैसी स्थिति नहीं आई है। जहां समय के हिसाब से ही अजनबी एक-दूसरे के काम आते हैं।

आज बुजुर्गों को अपनी संतानों की कृतघ्नता को लेकर जितना मानसिक क्लेश होने लगा है, सब जानते हैं इसलिए पुरानी पीढ़ी को चाहिए कि समय रहते अपने को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बना लें। बच्चों पर बगैर सोचे-समझे अपनी सम्पत्ति न लुटाएं, उनकी बातों में आकर सब कुछ उन्हें देकर स्वयं खाली हाथ न हो जाएं यह उम्मीद लेकर कि बेटे बुढ़ापे

में उनकी वैसी ही देखभाल करेंगे जैसी उन्होंने उनकी उनके बचपन में की थी।

अहम् समस्या से बचें- जीवन में ज्यादातर झगड़े अहम को लेकर ही होते है। यह ठीक नहीं। इससे जीवन कठिन हो जाता है। आत्मसम्मान से जरूर जिये मगर आत्मसम्मान और घमंड में भेद समझें। अहम सभी में होता है और उसको कोई ठेस पहुंचाए तो बड़ा कष्ट होता है लेकिन अहम समस्या बने ही क्यों। आप ऐसी नौबत ही न आने दें। सामान्य बातचीत के दौरान कोई अपनी बात ऊपर रख कर खुश होता है तो होने दीजिए उसे खुश। आप बात काट कर फिजूल बहस में उलझने से बचें।

किसी की जरा-सी मदद करके, किसी के काम आने पर, उसकी कुछ भलाई करने पर अहसान न जताएं। इससे आपके अहम् को संतुष्टि मिल सकती है पर आप दूसरे के अहम् को चोट भी पहुंचाते हैं। कोई स्वयं अहसान माने, वह अलग हैं। अतीत का बोझ जिंदगी को बोझिल बना देता है। पुराने गमों के साये में जिंदगी बिताकर अपने वर्तमान को अधिक दुखदायी बना देने में किसी प्रकार की समझदारी नहीं है। जिंदगी का मजा तभी है, जब इसे आज में जिया जाये। यह बात रिश्तों पर भी बखूबी लागू होती है। पुराने रिश्तों के गमों से उबरकर नये रिश्ते में स्वयं को जोड़ने का फैसला ही आपको खुशी दे सकेगा, इसके लिये आपको पूरी तरह से पुराने रिश्ते के साये से बाहर आना होगा। यानी आपको नये सिरे से शुरुआत करनी होगी। कुछ बातों को अपना कर इस मुश्किल को आसान कर सकते हैं।

व्यावहारिक बनें- यह सच स्वीकार कर लें कि आपका साथी अब आपके साथ नहीं है। यह स्वीकार करने में किसी को कम तो किसी को अधिक समय लग सकता है। लेकिन जो भी हो, यह सच्चाई है कि यह सच जितनी जल्दी स्वीकार कर लेंगे, नयी शुरुआत करने में उतनी ही आसानी होगी।

पुराने बोझ उतार दें- जो रिश्ता टूट गया, उसे लेकर मन में गुस्सा या दिल में दर्द रखने का कोई औचित्य नहीं है। यह नये रिश्ते की राह में रोड़ा बनेगा। अगर आपके नये रिश्ते पर अतीत का साया पड़ा, तो इसका असर अच्छा नहीं होगा और इस रिश्ते में भी कड़वाहट आयेगी। मसलन आप नये साथी के बर्ताव को पुराने साथी के बर्ताव के साथ जोड़कर देखेंगे, तो आपका तालमेल सही नहीं बैठेगा और इसकी कीमत आपको रिश्तों में खटास के रूप में चुकानी होगी।

बेहतर यही है कि जब आप नये रिश्ते की शुरुआत करें, तो पुराने अहसास को भूलकर नयी शुरुआत करने की ठान लें। अपनी भूलों को सुधारें- पुराना रिश्ता निभाने में जरा-सी भी भूल हुई हो, उससे आगे के लिए सबक लें। ऐसी गलतियां दुहराने से बचें। इस तरह आप नये रिश्ते के लिए एक सुरक्षा कवच तैयार कर सकेंगे और जिंदगी का ज्यादा मजा ले सकेंगे।

साथी से छिपायें नहीं- नये साथी से पुराने साथी के बारे में बात करने का ख्याल भी बुरा नहीं है, लेकिन इसमें बड़ी सावधानी रखने की जरूरत है। यह बातचीत सिर्फ इसलिए जरूरी है, ताकि आपका नया साथी आपको समझ सके। यह इसलिए भी जरूरी है, ताकि आपका नया साथी आपके अतीत को जान ले और आगे चलकर आप पर कुछ छिपाने का आरोप नहीं लगे। इस मकसद से पुराने साथी के बारे में की गयी बातचीत नये रिश्ते को मजबूत ही बनाती है।

पुराने दोस्तों के साथ संबंध- आमतौर पर लोग मानते है कि रिश्ते टूट जाने के बाद भी पुराने साथी से दोस्ती तो रखी ही

जा सकती है। पर ऐसी राय आशावादी लोग ही रखते हैं। जिंदगी को व्यावहारिक तरीके से देखनेवाले लोग ऐसी राय के खिलाफ हैं। उनका मानना है कि अक्सर कोई न कोई ऐसी बात होती है, जिसके चलते पुराने साथी कभी न कभी असामान्य व्यवहार कर सकते हैं। उनका यह व्यवहार नये रिश्ते के लिए खतरनाक हो सकता है। अत: पुराने साथी को फोन करना या मिलना-जुलना बंद करने में ही भलाई है। विशेषज्ञ भी मानते हैं कि पुराने साथी से करीबी रखकर नये रिश्ते को खतरे में डालने में कोई समझदारी नहीं है।

तुलना करने से बचें- नये रिश्ते की सफलता के लिए यह जरूरी है कि भूल से भी अपने नये साथी की तुलना पुराने साथी से न की जाये। जहां तक संभव हो, नये साथी की खूबियों को सराहने और उनमें अच्छाई देखने से रिश्तों की गाड़ी अच्छी रफ्तार पकड़ेगी और आप जिंदगी में नयी मंजिल तक पहुंच सकेंगे।

परखना मत परखने में कोई अपना नहीं रहता- किसी भी आईने में देर तक चेहरा नहीं रहता। प्रेम और मित्रता की अहमियत, उनकी जरूरत और शर्त को परिभाषित करने के लिए बशीर बद्र की ये पंक्तियां काफी हैं। दुनिया में कोई रिश्ता अगर पूरी तरह प्रेम पर आधारित है तो वह है मित्रता। एक यही ऐसा संबंध है जिसके लिए रक्त संबंध का कोई अर्थ नहीं है। यही ऐसा रिश्ता है जिसके लिए सामाजिक हैसियत की समानता भी जरूरी नहीं होती है, जबकि व्यवहार हर जगह बराबरी का होता है। वह चाहे भारत में प्रागैतिहासिक काल में कृष्ण और सुदामा के बीच की बात रही हो या फिर पश्चिम में आधुनिक काल में शेक्सपीयर की सर्वाधिक लोकप्रिय सुखांत कृति मर्चेंट ऑफ वेनिस के चरित्रों अंटोनियो और बसानियो की। हो सकता है कि संकट के समय सभी रिश्तेदार साथ छोड़ दें, पर जो साथ छोड़ दे वह और कुछ भी हो मित्र नहीं हो सकता। क्योंकि संकट के समय में साथ छोड़कर रिश्तेदार तो बने रहा जा सकता है, पर मित्र नहीं।

आधार है प्रेम- मित्रता ही एक ऐसा संबंध है जो परखने और परखे जाने के दायरे से बाहर है। यह अगर है तो है और नहीं है तो नहीं है। क्योंकि इसके मूल में कुछ और नहीं है, सिर्फ प्रेम है और प्रेम जब तक है तब तक विश्वास की कमी तो हो ही नहीं सकती है। यही वजह है कि दुनिया का सबसे नाजुक और सबसे मजबूत रिश्ता भी यही है। शायद यही वजह है कि अमेरिकी लेखक एलबर्ट हब्बर्ड कहते हैं, दोस्त वह है जो आपके बारे में सब कुछ जानता है और फिर भी आपको प्यार करता है। हब्बर्ड का आशय असल में यही है कि जो आपकी खूबियों और कमियों दोनों को जानता है और फिर भी आपको प्यार करता है, वही आपको प्यार करता है। इस तरह प्रेम का मतलब है किसी को उसकी संपूर्णता में चाहना। सिर्फ गुणों या दोषों को चाहना प्रेम नहीं हो सकता है। गुण और दोषों का जोड- ऐसा इसलिए भी है कि मनुष्य वास्तव में गुणों और दोषों का जोड ही है। मानव सभ्यता ने इस बात को बहुत पहले समझ लिया था कि जैसे गुणों के बिना मनुष्य के लिए अस्तित्व बनाए रखना मुश्किल है, ठीक उसी तरह कुछ दोष भी जीवन के लिए अपरिहार्य हैं। इसीलिए हसीदी सभ्यता में कहा जाता है कि जो ऐसे मित्र की तलाश करता है जिसमें कोई दोष न हो, उसका कभी कोई मित्र नहीं बन पाता है। लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं है कि मित्र को दोषों के बारे में सतर्क न किया जाए या उनसे मुक्त करने की कोशिश न की जाए। क्योंकि कुछ दोष ऐसे भी हो सकते हैं जो आपके मित्र के लिए बेहद खतरनाक हों। ऐसे में उसे सतर्क न करना विश्वासघात जैसी बात है जिससे बड़ा पाप दूसरा नहीं हो सकता।

प्रभावी हैं स्वार्थ- यह अलग बात है कि अब कई लोगों की मित्रता के मूल में कोई न कोई दोष ही कारण होता है, लेकिन वास्तव में यह वह बात है नहीं जिसे मित्रता कहा जा सके। क्योंकि ऐसे मामलों में स्वार्थप्रभावी होते हैं। यही नहीं, मित्रता उस स्थिति में भी अधूरी ही कही जाएगी जबकि वह गुणों के लिए ही की जाए। क्योंकि इस स्थिति में भी स्वार्थ ही प्रभावी होंगे। इसका यह आशय भी नहीं है कि मित्रता में स्वार्थों की साधना की ही नहीं जा सकती है। असली बात यह है कि मित्रता में दूसरा व्यक्ति महत्वपूर्ण होता है। उसका हित प्रमुख होता है, आपका स्वार्थ गौण हो जाता है। ठीक यही बात प्रेम में भी होती है।

व्यापक हुए अर्थ- नए दौर में मित्रता का आशय जहां कुछ मामलों में संकीर्ण हुआ है, वहीं कई संदर्भों में यह व्यापक हुआ है। लगभग आधी शताब्दी पहले तक जहां स्त्री-पुरुष के बीच मित्रता लगभग वर्जित और असंभव समझी जाती थी, वहीं अब यह आम बात है। इससे जहां एक तरफ लोगों की सोच में व्यापक परिवर्तन आए हैं, वहीं दूसरी तरफ इसके कुछ दुखद परिणाम सामने आए हैं। पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित कुछ लोगों ने मित्रता की मर्यादाएं तोड़नी शुरू कर दी हैं। वे मित्रता की आड़ में यौन लंपटता को तरजीह देने लगे हैं। पश्चिम के देशों में परिवार संस्था का टूटना बहुत हद तक इसका ही नतीजा है। इसका असर छिटपुट तौर पर भारत में भी दिखने लगा है। वहीं यह भी देखा जा रहा है कि नई पीढ़ी के लिए जहां मित्रता और प्रेम के संदर्भ में जाति-धर्म और क्षेत्र जैसे बंधन टूटे हैं, वहीं दूसरी तरफ वर्ग के स्तर पर उसका दायरा सीमित होता जा रहा है। आर्थिक हैसियत की दृष्टि से देखें तो अलग-अलग तरह के लोगों के बीच मित्रता अब बहुत कम दिखती है। इसका बड़ा कारण शायद लोगों में बढ़ती लोभ और लाभ-हानि की गणित करने की प्रवृत्ति है। इससे बहुत लोग सतर्क होना जरूरी समझने लगे हैं। इन सभी स्थितियों और कारणों के बावजूद मित्रता अभी भी अपने आदर्श रूप में देखी जा रही है और देखी जाती रहेगी।

हमारे पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों को तो स्त्री मित्र बनाने की छूट है, लेकिन स्त्री को पुरुष मित्र बनाने पर सख्त प्रतिबंध है। यदि किसी स्त्री के किसी पुरुष से दोस्ताना संबंध हैं तो समाज में संकुचित विचारधारा वाले लोग उनके संबंधों को अनैतिकता से जोड़ते हुए चरित्रहनन पर उतारू हो जायेंगे। वे लोग शायद यह भूल जाते हैं कि बाल्यकाल से लेकर युवावस्था तक हर व्यक्ति अपना सुख-दु:ख बांटनेवाले सहयोगी से दोस्ती का रिश्ता कायम करना पसंद करता है। पुरुष मित्र बनाना गलत नहीं है। परंतु मित्रता को मर्यादा के दायरे में रखना चाहिए। यदि आपका पुरुष मित्र विवाहित हो तो भी आप उससे एकांत में मुलाकात, बात करने के बजाय अपने परिवार के सदस्यों एवं अन्य व्यक्तियों के साथ बैठकर करें। परपुरुष से मित्रता करते समय यह भी ध्यान रखें कि दोस्ती एकाधिकार से भरी वासनाजनित न होकर पवित्र व वासनारहित होनी चाहिए।

दोस्ती की आड़ में कभी भी मर्यादाओं की सीमा नहीं लांघनी चाहिए। जिस दोस्त पर परिवार के सदस्यों को एतराज हो, उससे भी दोस्ती नहीं करनी चाहिए।

रिश्ता भावों के आदान-प्रदान से गहराता है, भ्रम में टूट जाता है। रिश्ता शब्द बेहद व्यापक और गहरा अर्थ रखता है। इसके दायरे में हर संबंध गिना जा सकता है। रिश्ते तीन तरह के हैं- जन्मजात, अर्जित और जरूरत के। जन्मजात रिश्ते

वे होते हैं जो खून के कहे जाते हैं, इन्हें सबसे ज्यादा करीबी और टिकाऊ माना जाता है, पर वक्त के साथ यह स्थिति भी बदल जाती है।

अब तक परिवार के सदस्यों में आर्थिक असमानता होते हुए भी किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता था, पर ज्यों-ज्यों भौतिक समृद्धि महत्वपूर्ण होने लगी, आपसी व्यवहार में भी फर्क आने लगा। पहले तयशुदा माने जानेवाले रिश्तों की निश्चित भूमिका होती थी। घनिष्ठ बंधन मनोवैज्ञानिक ज्यादा होते थे। संपूर्ण विश्व में यह तथ्य स्वीकारा जा रहा है कि व्यक्ति अब परिवार से संबंध को जरूरी नहीं मानता। समाज भी इस बारे में दबाव नहीं डाल पा रहा है। यही स्थिति अर्जित और जरूरत के रिश्तों की है। अर्जित रिश्तों को मनुष्य खुद चुनता है, इन्हें वह अपनी भावनाओं से पुष्ट और जीवित कर सकता है, पर इच्छा से तोड़ भी देता है। जरूरत के लिए जोड़ा गया संबंध कई बार जरूरत के बाद भी रह जाता है। सोचा जाए तो रिश्ते वही कहलाएंगे जो आत्मा को शीतलता और मन को संतोष दे। इसमें व्यक्ति अपने अहं को अलग रख साथ में हंसता-रोता है। ऐसे रिश्ते में अपेक्षा नहीं होती है। केवल अपनी कहने और चलाने की जगह व्यक्ति दूसरे की बात सुनने, समझने की कोशिश करता है। भावों के आदान-प्रदान से रिश्ता गहरा होता है।

आदान-प्रदान समानुभूति पैदा करता है। भारतीय दृष्टि हर मनोभाव का विश्लेषण करती रही है। धर्मग्रंथों, कथा पुराणों में से दैनिक जीवन की व्यावहारिकता के लिए दिए गए सुझाव स्वीकार्य होते हैं। रिश्तों को बनाए रखने के लिए सबसे बड़ी जरूरत है कि इनके बीच गलतफहमियों को न आने दें। इसका संकेत महाभारत युद्ध के समय नकुल और पितामह की बातचीत से मिलता है। नकुल के पितामह से यह पूछने पर कि युद्ध का कारण क्या होता है, उन्होंने उत्तर दिया, पारस्परिकता की अवनति ही युद्ध का सबसे बड़ा कारण है। इससे पता चलता है कि संबंधों में आनेवाली गलतफहमियों को दूर करने की कोशिश न की जाए, तो रिश्ता बिगड़ जाता है।

एक रिश्ता जो सौभाग्य से जुड़ता है वह उस प्रभु से जुड़ने का है। प्रभु सिर्फ देते हैं, किसी से अपेक्षा नहीं रखते। जो जुड़ता है उसे उनकी निरंतर उपस्थिति का विश्वास होता है। इस रिश्ते से पिता का भरोसा, मां जैसा निश्छल प्यार मिल सकता है। बस मानने की जरूरत होती है। ऐसा नहीं है कि उससे डर मिट जाता है, दर्द पास नहीं फटकता, पर इतना अवश्य है कि बिना आश्वासन के भी किसी भी स्थिति से जूझने की ताकत बन जाती है।

रिश्तेदारी निभाने का दायित्व मुख्यत: स्त्री पर ही होता है। उसकी सूझ बूझ और विनम्रता से रिश्तों की मिठास बनी रह सकती है। रिश्तों के इस गुलदस्ते की महक आप भी बरकरार रखें।

परिवार, मित्रों और रिश्तेदारों में किसका जन्मदिन है, किसकी विवाह वर्षगांठ है, किसका रिजल्ट निकला है, कौन इन दिनों मुश्किल में है, यह सबसे ज्यादा आपको याद रहता है। जब कोई सदस्य किसी को जन्मदिन की मुबारक बाद दे रहा हो, कोई किसी के लिए उपहार खरीद रहा हो या कोई किसी की बीमारी में उससे मिलने गया हो, तो अदृश्य रूप से आप भी वहां मौजूद रहते हैं। यह आपके याद दिलाने का ही नतीजा है कि कोई किसी से मिल रहा है, कोई किसी के साथ जन्मदिन मनाने गया है और कोई किसी को उपहार दे रहा है। अपने ही नहीं पति के परिवार के सदस्य भी खुद को आपके ज्यादा करीब पाते हैं। आपके सास और ससुर अक्सर जब कोई पेचीदा बाद अपने बेटे तक पहुंचाना चाहते हैं, तो आपकी

ही मदद लेते हैं।

किस से मित्रता रखनी है, रिश्ते बनाने हैं, वहां संभल कर रहना है, वहां कितना मेलजोल रखना है, ये फैसले आपको लेने होते हैं, जिन्हें आप सबके हित में तय भी करते हैं और उन्हें निभाने का प्रयास भी करते हैं तथा रिश्तों की दुनिया को कुछ और बेहतर बनाने में मदद करती हैं। रिश्तों की तुलना पौधों से की जाती है। जरा लापरवाही हुई नहीं कि हम पौधे को हमेशा के लिए खो बैठते हैं। ऐसे में आपकी सतर्कता ही काम आती है। सदस्यों से नियमित संवाद जरूरी होता है।

रिश्ता चाहे कोई भी हो भाई-बहन, माता-पिता, चाचा, मामा, मित्र या पति-पत्नी हर रिश्ते की अपनी एक गरिमा होती है साथ ही माँग भी। जब कोई प्यारा सा रिश्ता हमारी अनजानी गलतियों की वजह से टूट जाता है तब हमें अहसास होता है कि शायद कहीं कोई कमी रह गई थी। रिश्ते को बनाए रखने के लिए इस बात को समझना जरूरी है कि किस रिश्ते को हम किस नजरिए से देखते हैं। हर रिश्ते की प्राथमिकता व महत्व अलग-अलग होते हैं। अत: प्रत्येक रिश्ते का महत्व समझकर उसे उसी श्रेणी में रखा जाना आवश्यक है।

युवकों को यह बात हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि हमारे माता-पिता के प्रति भी हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं, जो हमें निभाने हैं। वहीं दूसरी ओर परिस्थितियाँ इसके विपरीत भी होती हैं।

कुछ युवक माता-पिता की सेवा करते हुए पत्नी की ओर से उदासीन हो जाते हैं। यह भी गलत है। आवश्यकता है संतुलन बनाए रखने की, सही तालमेल की।

सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कौन है, यह आप निर्धारित कीजिए किंतु अन्य रिश्तों को भी आवश्यकता अनुरूप समय दें, सम्मान दें ताकि हर रिश्ते की गरिमा बनी रहे।

रिश्तों में हमेशा तालमेल बनाकर रखें। दो रिश्तों के बीच हमेशा सेतु बनने का प्रयास करें, उन्हें बिगाड़ने का नहीं।

रिश्तों में संवाद बहुत आवश्यक है। अत: हमेशा अपने करीबियों से बातचीत बनाए रखें।

आप किसी से पूछिए कि क्या तुम जीवन से खुश हो, शायद ही कोई हामी भरे। हर कोई कुछ न कुछ असंतोष जाहिर कर ही देगा। जीवन को दैन्य रूप में देखना हमारी आदत बन चुकी है। हम जैसे हैं, वैसे दिखना नहीं चाहते। यह हमारा खुद का बुना मकड़जाल है जिससे बाहर निकलना हमें मंजूर नहीं है। हर किसी को लगता है कि उसका खुश रहना दूसरों को अगर चुभ गया तो वह भी खुश होने की चुनौती स्वीकार लेगा। तब एक प्रतियोगिता शुरू हो जाएगी। उसमें वह जीतेगा ही, इसका कोई आश्वासन नहीं है।

यह जो हार का डर है, मन को अशांत करता है। आपकी खुशी भी छिन जाती है। इसलिए पहली कोशिश होनी चाहिए कि आप खुद के साथ मित्रता करें। जिस दिन आप अपने मित्र बन गए तो निश्चित मानिए कि आप सबके मित्र बन जाएंगे। तब आपको न तो किसी के सुख से ईर्ष्या होगी और न किसी की खुशी परेशान करेगी। मैत्री में स्व और पर की पृथक सत्ताएं नहीं होती हैं। सारी भेद रेखाएं विभाव में ही दिखाई देती हैं। स्वभाव तो अभेद और एकत्व से सतत संयुक्त है। वह जो हम नहीं हैं, उसी में हमारे होने के भ्रम से सारे भेद खड़े होते हैं। वहीं से सारे संघर्षों का जन्म और अमैत्री का भी उद्भव होता है।

हम सब कुछ जानने के बाद भी भूल जाते हैं कि तुम और वह जहां खत्म होता है, वहीं से अपनापन शुरू होता है। यह चेतना की स्थिति है। इस अवस्था को अगर गौर से देखें तो भेद की सारी सीमाएं समाप्त नजर आएंगी। इस सीमा को जान लेना भी असीम में प्रवेश है और यही स्व का साक्षात्कार है। यही प्रेम और मैत्री है। दूसरों के साथ हमारी मैत्री को स्थायी आधार तभी मिल सकता है जब हमारी अपने साथ मैत्री सुप्रतिष्ठित हो चुकी हो। जो अपना मित्र नहीं है, वह किसी का मित्र हो ही नहीं सकता।

आत्मज्ञान और मैत्री परस्परावलंबी है, युगपत है। जब तक जीवमात्र के प्रति मैत्री की संवेदना से हमारा चित्त भावित नहीं हो जाता, हम आत्म तत्व का साक्षात्कार नहीं कर सकते। आज के समय की ईमानदारी से समीक्षा करेंगे तो समझ में आएगा कि घर, बाजार, सोशल मीडिया पर जो नफरत का माहौल बन गया है, वह अपने ही अविश्वास का प्रतिरूप है। आखिर क्यों लोग जाति, धर्म, पंथ, राजनीतिक गुटों में विभाजित हो रहे हैं? विचार के साथ चलने का संकल्प क्यों पीछे छूटता जा रहा है? एक दिन यही समाज विभाजन का कारण बन जाएगा। इसलिए आज हमें अपने में ही अपने प्रति मैत्री का उत्सव खोजना होगा। हम खोज लेंगे तो हम अपने और सबके मित्र होंगे, अन्यथा किसी के कुछ भी नहीं हो पाएंगे।

जिसको अपना दोस्त बनाओ, उसके बारे में कभी दूसरों से न पूछो।

जो प्राणी अंतरात्मा की दृष्टि से मनुष्य को नहीं देख सकता उन्हें सच्चा मित्र मिलना मुश्किल ही नहीं असंभव है। क्योंकि आत्मा हर प्राणी के अंदर विराजमान है। फिर भी प्राणी उस दृष्टि का प्रयोग नहीं कर पाता है। यही कारण है कि लोगों को सच्चे मित्रों की तलाश है वह शायद यह नहीं जानते कि सच्ची मित्रता अमीरों में कम गरीबों में अधिक पाई जाती है। जब तक मनुष्य अमीरी का कवच नहीं उतारेगा उसको सच्चाई दिखाई नहीं देगी। अमीरी से सच्चाई को दबाया जा सकता है। दौलत का चश्मा पहने मनुष्य गरीबी को भी नहीं देख सकता है। क्योंकि सच्चाई को देखने का एकमात्र एकांत भी है जो शायद दौलत के रंगों के सामने दिखाई न दे। दौलत से केवल तन का सुख मिलता है। मानसिक शांति व एकांत नहीं मिलता और एकांत में ही सच्चा आनंद निहित है। जो लोग अथाह दौलत व शौहरत हासिल कर लेते हैं उनमें से अधिकांश लोग सच्चे प्रेमी व मित्रता से वंचित रह जाते हैं।

दोस्ती में कुछ तो है इससे नफरत न करो। दोस्ती एक नशा है जो हमे दोस्त में दिखता है। दोस्ती कभी भी हो सकती है, दोस्ती एक दवा है।

अपने रिश्तेदार जो पडोस में रह रहे हो उनसे दोहरी जिम्मेदारी निभानी पडती है क्योंकि पडोसियों से मिलना या न मिलना या कितना मिलना अपनी मर्जी पर निर्भर है पर रिश्तेदार अगर पडोसी है तो उनसे मिलना एक जबाबदारी है।

दोस्ती कितना अच्छा लफ्ज है, दिल में उतर जानेवाला, दिल व दिमाग को ठण्डक पहुंचाने वाला मगर। दोस्त वही अच्छे और प्यारे होते हैं, जो दोस्त के दिल की गहराइयों में झांककर उसकी जात (व्यक्तित्व) को मुकम्मल तौर पर पहचान सकें। मुखलिस (नि:स्वार्थी) दोस्त यकीनन हमारे लिए वही अच्छे होते हैं, जिनको हम सोचते और महसूस करते हैं, जो सिर्फ और सिर्फ खुलूस और प्यार की राह बताते हैं।

सच्चा मित्र संजीवनी की तरह है जिसे मिला मानो खजाना मिल गया। हम सभी के परिचित और दोस्त होते हैं। भले ही

बचपन के, स्कूल, कॉलेज, दफ्तर या आसपास कॉलोनी में रहनेवाले हों, मित्र तो सभी के होते हैं। सच्चा मित्र बनना और बनाना हर इंसान की इच्छा होती है। लेकिन सच्चे मित्र बहुत कम मिल पाते हैं। ऐसा मित्र, जिस पर हम भरोसा कर सकें, जिसके साथ अपनी हर बातें साझा कर सकें, धर्मशास्त्रों में सच्चा मित्र उसे कहा गया है, जो सुख-दुख में साथ दे। ऐसे दोस्त से कभी भी डर नहीं लगता। ये सही रास्ते पर चलने में हमारे मददगार होते हैं। सच्ची दोस्ती प्रेम, विश्वास व भरोसा, एक दूसरे का ख्याल रखने और चिंताओं पर ही आधारित होती है।

कोई मित्र अवसरवादी होता है, वह विपत्ति में साथ नहीं देगा। कोई मित्र शत्रु बन जाता है और अलगाव का दोष भी हमें ही देता है। कोई मित्र हमारे यहां खाता-पिता है, किंतु विपत्ति के वक्त दिखाई नहीं देता। समृद्धि के दिनों में वह हमारा अंतरंग बन कर रौब जमाता है, किंतु दुर्दिन आते ही शत्रु बनकर मुंह फेर लेता है। परीक्षा लेने के बाद किसी को मित्र बना लो, लेकिन उस पर तुरंत विश्वास मत करो। अपमान, अहंकार और विश्वासघात के कारण मित्रता टूट जाती है। कभी ऐसा भी होता है, जिस दोस्त पर हम सबसे ज्यादा विश्वास व भरोसा करते हैं, वही विश्वासघात करता है और हृदय पर चोट लगने पर मित्रता टूट जाती है।

अगर, हम संकट और दरिद्रता में मित्र का साथ दें तो उसकी समृद्धि और विरासत के साझेदार बन सकते हैं। सच्चा दोस्त जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उससे घर-परिवार व समाज में पहचान बनती है। सच्चा मित्र प्रबल सहायक है। जिसे मिल जाता है, समझो उसे खजाना मिल गया। ऐसे मित्र की कीमत धन से नहीं चुकाई जा सकती। सच्चा मित्र असल में संजीवनी है। वह जैसा है, उसका मित्र भी वैसा होगा।

झूठ बोलकर कभी नहीं बनाए नए रिश्ते- दिखावा करने से बचें। लोगों के सामने दीवार खड़ी न करें, अपनी सारी खिड़कियां खोल दें। उन्हें अपने असली रूप से मिलवाएं। तभी आप लोगों के करीब पहुंच सकेंगे। सच्चे रिश्ते झूठ बोलकर कभी नहीं बनाये जा सकते। आखिर कितने सालों तक आप झूठ बोलेंगे। इस बनावटी जिंदगी से आपका भी दम घुटेगा।

एक निम्न वर्ग के परिवार में लड़की को देखने लड़केवाले पहुंचे। लड़कीवाले चाहते थे कि लड़कों पर उनके परिवार का अच्छा प्रभाव पड़े, इसलिए उन्होंने पड़ोसी के घर से चाय के खूबसूरत और महंगे कप मंगा लिये। लड़के वाले आये और बातचीत शुरू होने के थोड़ी ही देर बाद उन्हें चाय सर्व की गयी। लड़के को लड़की पसंद आ गयी। मुंह मीठा हो गया।

घर से विदा लेते हुए लड़के की सास ने लड़की की मां से सहसा ही पूछ लिया, आपके चाय के कप बेहद खूबसूरत थे, कहां से खरीदे थे आपने? घर की सबसे नन्ही सदस्य अति उत्साह में बीच में बोल पड़ी, मैं बगल वाली आंटी से पूछ कर आती हूं, ये कप उन्हीं के तो हैं। इस बात पर परिवार के सभी लोग शरमा गये। उन्होंने तुरंत बात संभाली और बच्ची को चुप करा के वहां से भगा दिया। बहुत बार हम लोगों के करीब आने के लिए और संबंधों को मजबूत बनाने के लिए झूठ बोलते हैं। जो हम नहीं हैं, उसे दिखाने की कोशिश करते हैं और जो हम हैं, उसे छिपाते हैं। वर पक्ष, वधू पक्ष को लड़के की गलत वेतन बताता है। गलत पद बताता है। वधू पक्ष वाले कहते हैं कि ये पेंटिंग मेरी बेटी ने बनायी है, ये समोसे उसी ने बनाये हैं।

बात पक्की भी हो जाती है, लेकिन पोल तब खुल जाती है। जब शादी के बाद दोनों साथ-साथ रहने लगते हैं। कई बार हम खुद पर गर्व करते हैं कि हम झूठ बोलने में इतने माहिर हैं कि कोई हमें पकड़ नहीं सकता। हमें लगता है कि इस झूठ से कोई फर्क नहीं पड़ेगा, लेकिन ऐसा नहीं हैं। दरअसल, झूठ बोलकर हम लोगों के सामने एक दीवार बना लेते हैं। फिर लोग दीवार को ही सच मानते हैं, उसे ही जानते हैं, प्यार करते हैं, अपनाते हैं देर-सवेर वह दीवार टूट जाती है। तब सामनेवाले का दिल भी टूट जाता है और हम भी दुखी हो जाते हैं। जितना हो सके अपने बारे में सामनेवाले से सच ही कहें। आप जो हैं, लोगों को उसी से मिलवाएं, ताकि लोग आपसे और आपकी असली छवि से प्यार करें।

खुद में झांकने पर ही जान सकेंगे अपनी करनी का प्रतिफल मिलता है। संबंध चाहे परिवार से हो या कार्यस्थल से, क्रमश: एक रिश्ता बन ही जाता है। उन्हीं के सहारे व्यक्ति जीवन में खुश रहता है। कुछ रिश्ते कड़वाहट भरे भी होते हैं, जिनसे जल्दी से जल्दी दूर निकल जाना चाहिए। वे जीवन में नकारात्मकता भरते हैं।

पर प्यार के रिश्ते सकारात्मक होने के कारण खुशी देते हैं। भरोसे के बूते पर बने रिश्तों में कोई छिपाव या दुराव नहीं होता। ये अपनेपन से भरे होते हैं। इनके लिए खून का रिश्ता होना या एक छत के नीचे बड़ा होना जरूरी नहीं होता।

जे. कृष्णामूर्ति ने कहा है, द्वंद्व को समझने के लिए रिश्तों को समझो, रिश्तों की समझ यादों पर नहीं, अभ्यास पर निर्भर करती है। क्या होता रहा है या क्या होना चाहिए? यह हर पल चुनावरहित जानकारी पर निर्भर रहती है। गहराई से देखोगे तो जानोगे कि इस जानकारी में वसूली की भावना बिल्कुल नहीं होती। अक्सर कहा जाता है- खून के रिश्तों से ज्यादा दोस्ती के रिश्ते टिकाऊ और अच्छे होते हैं। दोस्त बेहतर होते कैसे हैं? उनमें अपेक्षाएं कम होती हैं। दूसरे वे रिश्ते हमारे व्यवहार, मूल्य और उन तक पहुंचने के ढंग पर निर्भर करते हैं। जबकि परिवार में दोनों पक्षों की उम्मीदें होती हैं। कुछ अच्छा करते ही हम तत्काल प्रतिदान या प्रशंसा चाहते हैं। वे अपने हैं, इसलिए उन्हें अपने तक लाने के लिए चेष्टा नहीं करते, बल्कि अपनी उदासीनता के बावजूद उनसे उत्साह और प्रेम चाहते हैं। लेकिन दोस्त के नाराज होने पर कारण जानना चाहते हैं और मनाने की कोशिश करते हैं। हर समस्या का हल होता है, जिसे दोस्त के साथ साझा किया जाता है। पर रिश्तेदार से उलाहना सुनना भी गवारा नहीं होता। अपने प्रति हम जिनका समर्पण चाहते हैं, उनको कुछ भी देने में कंजूसी करते हैं। चाहने वाला खुद में झांके तो जान सकेगा कि उसे करनी का ही प्रतिफल मिलता है। जो खुद शुद्ध प्यार नहीं देते वे प्यार ढूंढते हैं, अत: वह उन्हें कभी नहीं मिलता। जो सिर्फ प्यार देते हैं, उन्हें उसे तलाशना नहीं पड़ता।

इंसान जिस समाज और परिवेश में रहता है, वहां से सब कुछ पाना अपना हक समझता है। पर उतना ही खुलकर देना भी होता है। जो ईमानदारी चाहते हैं, उन्हें ईमानदारी देनी भी होगी। तभी रिश्ता बेहतरी की तरफ बढ़ता है। जिससे प्रेम करें, उसके पूरे प्रेम पर हमारा ही हक हो, यह सोच संतान तक के साथ के रिश्ते में दूरी ला देती है।

रिश्ता सुंदर और स्थायी बनाने के लिए धैर्य, समय और ध्यान देने की जरूरत है। तभी रिश्ते हमें ताकत दे सकते हैं। जैसे सवाल का सही हल निकालने के लिए हर चरण देखभाल कर रखना पड़ता है, वैसे ही रिश्तों की नजाकत देखते हुए हमें अपने जीवन में हर कदम बढ़ाना चाहिए।

कृष्ण ऐसे भगवान हैं जो कालकोठरी में पैदा हुए थे। बहुत विपरीत परिस्थितियों में उनका जन्म हुआ था। पैदा हुए नहीं

और उन्हें मारने की योजनाएं पहले बनाकर रख ली गईं। लेकिन जब वे पैदा हुए तो सारी योजनाएं धरी रह गईं। वे तो भगवान थे। चाहते तो परिस्थितियां अनुकूल कर लेते। खूब ऐशो-आराम की पैदाइश से कोई बड़ी बात नहीं बनती। श्रेष्ठ कर्म के लिए विपरीत परिस्थितियों का होना जरूरी है। राम जी आराम के माहौल में पले-बढ़े, लेकिन उन्हें श्रेष्ठ कर्म करना था इसलिए १४ वर्ष का वनवास उन्होंने स्वीकार कर लिया।

आज भी एक संकट काल चल रहा है। मानवता पर इतना बड़ा संकट पहले शायद ही किसी युग में आया हो। आज नफे-नुकसान का हिसाब कुछ ज्यादा हो गया है। हम सब अपने ही बारे में सोचे जा रहे हैं और जरूरतें ऐसी कि पूरी ही नहीं हो पातीं। दरअसल, आज का इंसान भी एक वस्तु की तरह हो गया है। हममें अपनी चिंता करने की प्रवृत्ति चरम पर है। दूसरों की चिंता हमें होती नहीं। दूसरों के बारे में सोचना हमने छोड़ दिया है। कभी हम खुद में इतना खो जाते हैं कि रिश्तों की मर्यादा तक भूल जाते हैं। अपने स्वार्थ में इतने अंधे हो जाते हैं कि ये भी नहीं सोचते कि हमारे इन कामों का किसी और के जीवन पर क्या विपरीत प्रभाव हो सकता है। कभी हम इतने आगे निकल जाते हैं कि दूसरों का जीवन संकट में पड़ जाता है। निजी इच्छा को किसी भी तरीके से पूरा करना ही कंसत्व है। दूसरों के लिए जीना, दूसरों की चिंता करना कृष्णत्व है। हर रिश्ते की अपनी एक अलग मर्यादा है। आज की तेज रफ्तार जीवन शैली ने कहीं न कहीं इन्हें धूमिल किया है। रिश्तों की वास्तविकता और पवित्रता से, समय-समय पर कुछ न कुछ छेड़छाड़ होती रहती है। इनकी अखंडता से होते खिलवाड़ के जिम्मेदार हम स्वयं हैं। क्योंकि हम लोगों में से ही कोई न कोई किसी स्वार्थवश या अपनी किसी आकांक्षा-महत्वाकांक्षा के वश में होकर कुछ ऐसा कर जाते हैं जिसका बोझ उठाना हमारी सामर्थ्य से परे होता है।

अपनी इस जीवन शैली से बाहर आना चाहिए। विचार करें कि ये रिश्ते ही हमारे समाज की अखंडता के आधार हैं। ये मानना होगा और अपने अंतर्मन में इस बात को बिठाना चाहिए कि रिश्तों को संवारना इनको निखारना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। अपनी जरूरत पूरी करने के साथ-साथ थोड़ी दूसरों की जरूरत का भी ध्यान रखें। यही आज के युग का कृष्णत्व है।

अच्छे दोस्त अनमोल रत्न की तरह होते हैं, जो किस्मतवालों को ही मिलते हैं। हममे से ऐसे कई लोग होंगे जिनके दोस्तों की सूची लंबी-चौड़ी होगी। वहीं कुछ ऐसे भी होंगे जिनके एक या दो दोस्त ही होंगे। यूं तो बचपन से ही दोस्ती की अपनी जड़ें जमने लगती हैं, पर इसकी पुख्ता बुनियाद उम्र के साथ पल्लवित और पुष्पित होती है।

आज कल कुछ हालात, परिस्थितियां, समय की कमी के कारण दोस्ती की नींव कमजोर भी हो जाती हे। वे लोग जो हमारे सबसे अजीज हुआ करते थे, वे भीड़ में गुम हो जाते हैं। रिश्ते तो हमें जन्म से मिलते हैं पर दोस्ती वह रिश्ता है, जिसे हम खुद बनाते हैं इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी दोस्ती को ताउम्र बनाकर रखें। इस रिश्ते को आजीवन बनाकर रखना इतना कठिन भी नहीं है। यदि आपका दोस्त पढ़ाई, नौकरी या व्यापार के सिलसिले में बाहर गया हो या अपने जीवन में व्यस्त हो, तब भी आप उन्हें भूलें नहीं। आप फोन, ई-मेल और खास मौकों पर तोहफे दे कर उनसे संपर्क बनाए रखें।

साथ रहें हरदम- वैसे लोगों की दोस्ती हमेशा बनी रहती है, जो अपने दोस्तों के सुख-दु:ख में शरीक होते हैं। दोस्तों के बीच छोटी छोटी बातों को लेकर मनमुटाव नहीं होने चाहिए और अगर हो भी जाए, तो दोस्ती को मजबूत करने के लिए खुद पहल करें। दोस्त से अपेक्षाएं होना जाहिर-सी बात है, पर अपेक्षाओं का पैमाना इतना ज्यादा भी न हो कि दोस्ती जी

का जंजाल बन जाए। दोस्ती की गरिमा बनाए रखें।

अच्छा श्रोता-वक्ता- अच्छा श्रोता और वक्ता होना, एक अच्छा दोस्त होने का गुरुमंत्र है। हालातों को देखते हुए आप कभी अपने दोस्त के श्रोता और कभी वक्ता बन जाएं। इससे आपका दोस्त आश्वस्त होगा कि कोई है, जो उसकी हर बात सुनता है और असमंजस की स्थिति में उसे समझाता भी है।

दोस्तों के बीच आपसी समझदारी और एक-दूसरे के सुख-दुख में बराबर की हिस्सेदारी आवश्यक है। अगर दोस्तों के बीच इस जिम्मेदारी को निभाने में जरा सी चूक हो जाए तो दोस्ती दुश्मनी में बदलते देर नहीं लगती। सच्चा दोस्त इस दुनिया में बड़ी मुश्किल से मिलता है। इसलिए यदि आप अच्छा और सच्चा दोस्त पाना चाहते हो तो पहले खुद अच्छा दोस्त बनने की कोशिश करो।

बचपन की दोस्ती- वास्तव्य में अनमोल होती है बचपन की दोस्ती। नि:स्वार्थ भाव और निश्चल मन की दोस्ती की खुशबू तमाम जीवन को महकाती रहती है। बचपन की दोस्ती में लालच और स्वार्थ नहीं रहता। हर कोई अपने बचपन के दोस्त की इज्जत करता है। सुदामा और कृष्ण की दोस्ती आज भी मिसाल बनी हुई है। कारण यह कि दोनों की दोस्ती बचपन की थी।

न दें भटकने- सच्चे दोस्त का यह कर्त्तव्य है कि वह सही समय पर सही सलाह दे। यदि आपका दोस्त किसी ऐसी राह पर चल निकला है जिससे उसे किसी भी तरह का नुकसान हो सकता है तो यह आपका कर्त्तव्य है कि उसे गलत राह पर चलने से रोकें।

एतबार करो- हर रिश्ते की उम्र विश्वास पर टिकी होती है। सच्चे दोस्त बनाने के लिए भी यह जरूरी है कि आप अपने दोस्त पर दिल से विश्वास करें। उसे यह विश्वास दिलाएं कि आप उसकी बातों पर कितना ध्यान देते हैं। सबके सामने दोस्त की कमियों को उजाकर करने की भूल न करें।

सीमा का रखें ध्यान- हर रिश्ते की एक सीमा होती है जो मर्यादा से नियंत्रित रहती है। इसीलिए दोस्ती की मर्यादाओं का पालन करें। आजकल लड़के-लड़की आपस में दोस्ती करते हैं। इसके लिए यदि मर्यादा का ख्याल रखा जाए तो निश्चित रूप से दोस्ती की लंबी उम्र हो सकती है।

गंदी आदतें छुड़ाने में मदद- यदि आपका कोई दोस्त गंदी आदत का शिकार है तो आप उसकी यह आदत बदलने में मदद कर सकते हैं। अगर आपका दोस्त लगातार धूम्रपान करता है और उसने आपके कहने पर दो दिन भी सिगरेट नही ंपी तो उसे एक प्यारा सा उपहार देकर यह जताएं कि उसने आपकी दोस्ती के महत्व को समझा है और वह आपके लिए कितना कीमती है। पहले दोस्त के साथ सिगरेट के दुष्प्रभावों पर चर्चा करो। उसे बताओ कि शरीर में निकोटीन जाने से उसका कितना खराब असर होता है।

इस मामले में उसे न तो उपदेश दो, न कोई व्यंग्य करो और न ही बुरा-भला कहो। आप तो बस प्रेम से समझाकर सिगरेट छुड़ाने में उसकी मदद करनी है। जब आपका दोस्त शार्ट टर्म गोल अचीव करे तो उसे यह जोड़कर बताएं कि इतने दिन सिगरेट न पीकर उसने कितने पैसे बचाए। अगर आप अपने मकसद में कामयाब हो जाओ तो अपने मित्र को

ट्रीट दो। यानी जश्न मनाओ उसकी इस महत्वपूर्ण उपलब्धि को।

दोस्ती क्या है? इस एक सवाल के कई जवाब हैं। दोस्ती फूलों का गुलदस्ता है। तरह-तरह के फूल जो अपनी अलग खुशबुओं से इंसान की जिंदगी को मुअत्तर करते हैं। ये खुशबुएं इंसानी जिंदगी को जिंदगी देती हैं। दोस्ती पारसाओं (सदाचारियों) से हो तो रूहानी ताकत देती है। दोस्ती ख्यालात के आदान-प्रदान, आंतरिक समानता और न्योछावर व कुर्बान होने के जज्बे दोस्ती के लिए जरूरी होते हैं।

दोस्ती हैसियतों के फर्क से ऊपर उठकर होती है। दोस्ती अपने बदले में कुछ नहीं चाहती, ये अनमोल है। सच्चे, बेगरज और काम का दोस्त मिलना उतना ही मुश्किल है जितना समंदर की अथाह गहराइयों से अनमोल और नायाब मोती को ढूंढ निकालना।

एक लायक दस से अच्छा- ज्यादा नालायक लड़कों से एक लायक बेटा बेहतर है। क्योंकि एक चांद दुनिया के अंधेरे को दूर कर सकता है जब कि दुनिया के अंधेरे को तमाम सितारे भी मिलकर दूर नहीं कर सकते, इसी तरह शेरनी अपने बहादुर बेटे की बदौलत आराम की नींद सोती है, लेकिन गधी बीसों बेटे रखने के बावजूद बोझ उठाती है।

वे कौन से कारक हैं जो सही रिश्तों को बनाने और कायम रखने में बाधक बनते है ? खुदगर्जी, तहजीब की कमी, लापरवाह व्यवहार, वादों को पूरा न करना, रूखा या बदतमीज व्यवहार, सच्चाई और ईमानदारी का अभाव, स्वार्थी- एक इंसान जो सिर्फ अपने बारे में ही सोचता है वह खुद को बहुत छोटा बना लेता है।

अड़ियलपन- एक अड़ियल व्यक्ति अपने विचारों और ज्ञान से सन्तुष्ट रहता है। उसके हमेशा अज्ञानी बने रहने की पूरी गारंटी है। अहंकार- चूंकि कुदरत खाली जगह को पसंद नहीं करती इसीलिए वह खाली दिमाग को अहंकार से भर देती है।

घटिया नजरिया, बंद दिमाग, ध्यान से सुनने की कमी, शक्की मिजाज, नैतिक मूल्यों के सम्मान की कमी, अनुशासन की कमी, दया का अभाव- क्रूरता कमजोरी की निशानी है। उतावलापन, क्रोध- गुस्सा इंसान को मुश्किल में डालता है और अहंकार उसे वहीं बनाए रखता है। हेरा-फेरी करने की आदत सामना करने की शक्ति का अभाव, भावुक स्वभाव, अस्थिरता, सच्चाई का सामना या स्वीकार न करने की इच्छा, पिछले बुरे अनुभव, लापरवाही का नजरिया- उपेक्षा एक अच्छा अहसास नहीं है। यह बेरुखी दिखाता है।

लालच समुद्र के पानी की तरह है - जितना पीते हैं उतनी ही प्यास बढ़ती है। इस सूची में शायद सारी बातें नहीं है। हम में से ज्यादातर में ऊपर लिखी कुछ बातें हो सकती हैं। किसी में एक बात ज्यादा हो सकती है और किसी में एक कम। उद्देश्य इन क्षेत्रों को परखना और सही राह पर चलना है।

भलाई और स्वार्थ में अंतर इन दोनों शब्दों के बीच का फर्क समझना जरूरी है। स्वार्थी होना घटिया और बर्बादी लाने वाला होता है। यह रिश्तों को तोड़ता है क्योंकि यह गलत मूल्यों पर आधारित होता है। यह हार या जीत के सिद्धांत पर विश्वास करता है। अपनी भलाई देखना सही है। यह धन-दौलत मानसिक शांति अच्छी सेहत और खुशियों को बढ़ाता है और इनका स्वागत करता है। अपनी भलाई देखने की भावना सबकी जीत में विश्वास करती है।

हर कोई दोस्त, परिचित और रिश्तेदार ऐसे चाहता है, जो ईमानदार हों। रिश्ते बनाने की यह कठिन शर्त है, जो कभी पूरी

नहीं होती और हमारे पास इसे लेकर हमेशा शिकायतें ही शेष रहती हैं। इस शर्त के पूरा न होने के बावजूद हम हमेशा दोस्त भी बनाते हैं और रिश्तेदार भी। बावजूद इसके कि बहुत सारे शिकवे-शिकायत बचे रह जाते हैं।

व्यक्तियों के मकसद जो बिना एक-दूसरे के सहयोग से पूरा नहीं किया जा सकता है और रिश्तों का दूसरा आधार नफरत की जगह प्यार को बढ़ावा देने के लिए राजसत्ता, समाज सत्ता और समान विचारों का आधार हो सकता है। बेहतर रिश्ते लोगों के बीच तब कायम रह सकते हैं, जब आपस में विचारों की पूरकता बनी रहे। दिल, चित्त और मन, तीनों से निर्मित कार्य सकारात्मक और प्यार के तंतुओं से बने हों। एक-दूसरे के प्रति रुचि सहज रूप से स्वार्थ से अलग होकर बढ़े। व्यवहार जीवन की प्रकृति बन जाए। यदि हर व्यक्ति का जीवन ऐसा हो जाए, तो जिस उत्कृष्ट समाज की हम कल्पना करते हैं, उसके निर्माण में बहुत वक्त नहीं लगेगा। मनोवैज्ञानिकों का मानना हैं, जब हमारे अंदर द्वंद्व का समावेश नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति में हर स्तर पर भिन्नता होती है। मकसद भी अलग-अलग होते हैं। फिर समानता कैसे संभव है।

दोस्ती को लेकर हम भ्रम के युग में जी रहे हैं। हम चाहे जितने सामाजिक हो जाएं, दोस्तों की तादात इक्का-दक्का ही होती है। ऐसा भी हो सकता है कि आपके पास कोई दोस्त हो ही नहीं। सारे परिचित हों। महान दार्शनिक शॉपेनहावर ने लिखा है, मेरा सारा जीवन एकाकी और बिना दोस्त के बीता। मैं किसी को अपना नहीं बना सका, लेकिन किसी ने मेरा बनने जैसा कुछ किया भी तो नहीं। शॉपेनहावर चाहते थे कि उनके कुछ दोस्त हों, जिनके साथ वे उठें-बैठें, चर्चा और विचारों का आदान-प्रदान करें, लेकिन उन्हें जीवन के आखिर तक कोई नहीं मिला, हालांकि उन्होंने इस कमी को कुछ हद तक अपने कुत्ते से पूरा किया, जिसे वह प्यार से आत्मा कहते थे।

सच्चा मित्र मिलना दुर्लभ हीरे के मिलने जैसा है। दोस्त बनाना केवल आप पर ही निर्भर नहीं करता। यह दोतरफा प्रतिक्रिया का प्रतिफल माना जाता है। यह न तो आपके मनचाहे हो सकता है और न ही एकाएक। सुकरात ने कहा है कि दोस्ती करने में जल्दबाजी नहीं करो, लेकिन करो तो उसे अंत तक निभाओं। दोस्ती को अंत तक निबाहना सबसे बड़ी कसौटी है। ऐसा नहीं है कि शॉपेनहावर ने किसी से दोस्ती नहीं की। उन्होंने कहा भी कि जब भी मैंने किसी में इमानदारी की झलक देखी, उसकी ओर हाथ बढ़ाया, लेकिन वह बस अपना फायदा देखता रहा और यह बात मुझे खल गई।

रिश्तों को समझने के लिए धैर्य सर्वाधिक आवश्यक

रिश्तों को समझने के लिए आवश्यक रूप से एक निष्क्रिय-अप्रतिरोधात्मक धैर्य होना चाहिए। जो रिश्तों को नष्ट न करता हो। इसके विपरीत यह धैर्य रिश्तों को और जीवंत और सार्थक बनाता है। तब, उस रिश्ते में वास्तविक लगाव की संभावना होती है। उसमें उष्णता होती है, निकटता का एहसास होता है, जो कि केवल निरी भावुकता और रोमांच नहीं होता। यदि हम ऐसे रिश्ते तक पहुंच सकते हैं, या सारी चीजों, सारी बातों, सारे अस्तित्व के साथ हम ऐसे ही रिश्ते में हैं, तो हमारी समस्या सहज ही हल हो जायेगी। चाहे वह संपत्ति की समस्या हो, चाहे वह किसी आधिपत्य की समस्या हो। वह व्यक्ति जो धन पर आधिपत्य चाहता है, उसका जीवन धन ही है। जो संपत्ति, या जमीन जायदाद, फर्नीचर आदि पर कब्जे करना चाहता है, उसका जीवन किसी संपत्ति की तरह ही है। ऐसा ही संकल्पनाओं-विचारों के साथ भी है, या लोगों

के साथ भी और जब भी जहां पर आधिपत्यशाली होना चाहा जाता है, वहां रिश्ता नहीं होता। लेकिन हम में से बहुत से लोग आधिपत्य चाहते हैं। यदि हमारे किसी चीज पर कब्जा ही न हो, तो लगता ही नहीं कि हम कुछ हैं। अगर हमारे आधिपत्य में कुछ न हो, यदि हम अपने जीवन को फर्नीचर, संगीत, ज्ञान और यह या वह से नहीं भर लेते, तो हम खुद को खोखले घोंघे सा अनुभव करते हैं। यह खोखलापन बहुत ही शोर पैदा करता है। इस शोर को ही हम जीना कहते हैं। यही है जिससे हम संतुष्ट भी रहते हैं। अगर इस सब में किसी तरह का व्यवधान पड़ता है, यह चक्र टूटता है, तब वहां पर हमें दुख होता है। क्योंकि तब वहां पर अचानक ही आप अपनी नग्नता को देख पाते हैं।

एक बार सर्दियों में एक नन्हीं सी चिड़िया ने मौसम का कुछ ज्यादा आनंद उठा लिया और दक्षिण की ओर अपनी यात्रा की शुरुआत में देर कर दी। उसने भीषण सर्दियों में शुरुआत की और उड़ने की कोशिश की मगर वह ठंड से जम गयी और गिर पड़ी। उसी रास्ते से एक गाय गुजर रही थी और उसने ठीक उस चिड़िया के ऊपर गोबर कर दिया। गोबर की गर्माहट ने चिड़िया को गर्मी पहुंचायी, तो वह स्वस्थ महसूस करने लगी और खुशी से चहचहाने लगी। एक बिल्ली भी उस रास्ते से जा रही थी। उसने चहचहाट सुनी, तो पता चला कि आवाज गोबर के अंदर से आ रही है। उसने चिड़िया को गोबर से बाहर निकाला और उसे खा गयी। तो, जो भी आपको गंदगी से ढक देता है, वह जरूरी नहीं है कि आपका दुश्मन हो और जो भी आपको गंदगी से बाहर निकाले, वह जरूरी नहीं है कि आपका दोस्त ही हो और सबसे बढ़कर, जब आप गंदगी के ढेर में हों, तो अपना मुंह बंद रखना सीखें। अगर आप किसी के दोस्त हैं, तो आपको हर समय उनकी गलतियां निकालने, उन्हें कुरेदने की जरूरत नहीं है, मुद्दा यह नहीं है। मगर साथ ही, आपके अंदर लोगों के बीच लोकप्रिय होने का साहस भी होना चाहिए। लोगों के साथ लोकप्रिय होने की कवायद में, अपने आस-पास सुखद माहौल बनाये रखने की कोशिश में आपने अपने अंदर कितनी अप्रियता दबा रखी है। अगर आप अप्रियता को दबाते हैं, अगर आप मिट्टी में अप्रियता के बीज डालते हैं, तो आपको अभिप्रियता के ही फल मिलेंगे। अगर कोई वाकई आपका दोस्त है तो आपके अंदर उसे नाराज करने का साहस होना चाहिए और फिर भी उसके प्रति प्रेम और सद्भाव, मिठास का भाव होना चाहिए।

कोई भी चीज बहुत जरूरत पड़ने पर या सच में काम होने पर ही उधार लो। केवल शौक पूरा करिने के लिए, दिखावे के लिए या बिना जरूरत के उधार लेने से बचो। इसके अलावा उन लोगों को उधार देने से भी बचो जिनके लिए उधार लेना शौक हो।

सावधानी से करो उपयोग- नोट्स, किताबें, ज्यॉमेट्री बॉक्स, कपड़े, जूते या गैजेट्स कोई भी चीज हो अगर कभी जरूरत पड़ने पर इनमें से कोई चीज किसी दोस्त से उधार ली हो तो उसका उपयोग सावधानी से करो और काम पूरा होते ही उसे वापस कर दो। पहने हुए कपड़ों या जूतों को साफ करके लौटाना, गैजेट्स में बैटरी या बाकी चीजें चैक करके जैसी बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

साफ मना करना सीखो- अगर कोई चीज ऐसी है जो आपको सबसे प्यारी है और आप उसे किसी को नहीं देना चाहते। ऐसे में यदि आपका बेस्ट फ्रेंड भी उसे उधार मांगता है तो साफ मना करना सीखो। इसके लिए तुम अपने दोस्त को अच्छे

शब्दों में अपनेपन और विनम्रता के साथ समझा सकते हो कि तुम वह चीज क्यों नहीं देना चाहते। अगर वह सही में तुम्हारा दोस्त है तो इस बात को समझेगा जरूर और इस बात का भी ध्यान रखना कि जब कोई दोस्त इस तरह मना करे तो उसकी बात को समझना होगा।

सतर्क रहें- इस मामले में अगर किसी दोस्त के साथ आपका अनुभव पहले अच्छा नहीं रहा है तो हमेशा सतर्क हो। जिस दोस्त ने पहली या दूसरी बार तुमसे उधार ली हुई चीज बेफिक्री से इस्तेमाल की, उसका गैर इस्तेमाल किया और खराब हालत में तुम्हें वापस कर दिया, उसे फिर सामान नहीं देना चाहिए।

अडिग रहे- सबसे खास बात यह है कि जब भी उधार लेने या देने की बात आए तो दोस्ती को बीच में मत आने दो। हां या ना जो भी कहो उस पर अडिग रहो। उसे लेकर न तो मन मैला करो न ही बेवजह के स्पष्टीकरण दो। ऐसा करने से दोस्ती उलझ सकती है। जिस वक्त आपसे कोई चीज मांगी जा रही है क्या आपको उस समय उसकी ज्यादा जरूरत है। यदि ऐसा हो तो भी स्पष्ट कहो।

सुप्रसिद्ध तमिल कवि तिरुवल्लुवर ने कहा है, जो तुम्हें बुराई से बचाता है, नेक राह पर चलाता है और मुसीबत के समय तुम्हारा साथ देता है, बस वही मित्र है। इस कसौटी पर अगर मित्रता को कसें, तो शायद ढूंढे नहीं मिल पाएंगे मित्र। पर एक बात सत्य है कि जब हम किसी संकट में पड़ते हैं, तो सबसे पहले मित्र याद आते हैं। फिर भगवान याद आने लगते हैं। भगवान आएं-न-आएं उनके प्रति जो हमारा विश्वास है, वही सहारा बन जाता है। यह हमारी मैत्री-भाव है। आज हमने इसी भाव को खो दिया है।

हम संसार में यदि परस्पर जुड़े हुए हैं, तो उस जोड़ में सबसे प्रमुख है मैत्री भाव, जो हम सबके अंदर मौजूद है। अपने अंदर उदात्त गुण लाने के लिए भगवान महावीर ने एक सूत्र दिया है। अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भुएसु कप्पए यानी जीवन में सत्य को प्रतिष्ठापित करना चाहते हो, तो मित्रता से प्रारंभ करो। खुद के साथ मित्रता करो। जो खुद का मित्र बन जाता है, वह किसी का अमित्र हो ही नहीं सकता।

भगवान बुद्ध ने भी कहा है, मैत्री की धारा हमेशा प्रवाहित रहनी चाहिए। यदि तुम मैत्री का अभ्यास रखोगे, तो तुम्हारे साथ कोई चाहे जैसा व्यवहार करें, तुम्हारा चित्त कभी विचलित नहीं होगा और विरोधी शीघ्र थक जाएंगे।

किसी बादशाह के ताज से भी कीमती मोतियों से ज्यादा चमकदार और चांदनी रात से ज्यादा आकर्षित करनेवाली अगर कोई चीज है तो वो दोस्ती है।

अच्छी दोस्ती के पीछे किसी अलौकिक ताकत का हाथ होता है। अक्सर लोगों को यह शिकायत रहती है कि दुनिया में कोई किसी का नहीं होता। वह गजल या गीत दिल को छू लेनेवाला लगता है। जिसमें रिश्तों में आई दरार का जिक्र होता है। यह नहीं, फिल्मी गाना दोस्त-दोस्त न रहा सबसे प्रिय लगता है। रिश्ता जन्म से मिलता है और दोस्ती किस्मत से, लेकिन रिश्ते में सिर्फ अपेक्षाएं होती हैं, जबकि दोस्ती में बराबरी की कोशिश दिखती है। अच्छा दोस्त या रिश्ता चाहते तो सभी हैं, मगर इस चाहने में दूसरे से उम्मीद होती है। कहते हैं कि दोस्ती की कसौटी है, वक्त पर काम आना। इंसान हमेाश दूसरों के इम्तिहान लेता है। अपनी ईमानदारी की असलियत को टटोलने पर पता चलेगा कि हम कितने अच्छे और

सच्चे साबित हो सकते हैं? अब्राहम लिंकन का मानना है कि अगर दोस्ती किसी की सबसे बड़ी कमजोरी है, तो वह सबसे ताकतवर इंसान है। दो अलग व्यक्तियों के जीवन जब जुड़ते हैं, तो न इन जुड़ाव की व्याख्या की जा सकती है और न ही इसका रहस्य जाना जा सकता है। यह मानकर चलना चाहिए कि अच्छी दोस्ती के पीछे किसी अलौकिक ताकत का हाथ होता है। तभी तो दो अजनबी घनिष्ठ हो जाते हैं। इसके पीछे बराबर का त्याग और प्रेम की गहराई जरूरी होती है। एक प्यार भरी, वफादार दोस्ती से बढ़कर कुछ भी मन को खुशी नहीं दे सकता। इस रिश्ते में मन की बात बांटने में डर नहीं लगता। हम सबको उस दोस्ती की जरूरत होती है, जो हमारे दुख को दूर कर देती है। जिसकी सलाह मददगार होती हैं, जिसे देखते ही हम खिल उठते हैं। गरीब को कोई दोस्त नहीं बनाता।

रिश्ते बनाने मे भी हम चाह कर भी चूक जाते है, घबरा जाते है। जो हमारी राह देखते रहते है। समाज की कल्पना करे तो आप पायेंगे कि आपके आस पास रहनेवाले लोग और जाने कितने ऐसे लोग है जिनसे रिश्ते कायम करके आप कितने काम, जिन्हे पूरा न कर पाने के लिये आप अपने भाग्य को कोसते है, यूंही आसानी से बन सकते है।

कितनी मुश्किलें कितनी आसानी से स्वयं ही सुलझ सकती है। कानूनी सलाह, स्वास्थ्य सम्बन्धी अनुभवी हिदायते, बैंकिंग के पचडे, कैरियर सम्बन्धी परामर्श, दफ्तरी दांवपेच, घर संसार को चलायमान रखने के लिये ढेरो नुस्खे, बिजली, पानी, फोन, संगणक, दूरदर्शन, स्कूल कालेज, होटल फिल्म, हाट बजार अर्थात वह सब कुछ जो आज की दुनिया में जरूरी है। इन सब पर अनुभवी सलाह-परामर्श का अनमोल खजाना हमारे इर्द-गिर्द छिपा रहता है, लेकिन हम उसे अपनी ओर से एक कदम न बढ़ा कर यूंही दर किनार किये रहते है। यदि हम सरल हृदय से सोचने की कोशिश करे तो हम पायेंगे कि समस्याओं से जुझते हुये हम अकेले पडे हुये हे। हमारा दम्भ हमारी संगदिल छवि हमको हर कदम पर, हर घडी रोकती है। हम अपनी तालीम, अपने सीमित अनुभवों और अपने ओहदे को सबसे ऊपर मान लेते है। दूसरे की छवि को अपने से हीन मानकर रिश्ता कायम करने से रूक जाते है।

हम दूसरे व्यक्ति को जानते ही कितना है ? हमारी जानकारी ही कितनी है ? इतनी सी जानकारी के आधार पर हम अपना फैसला लेते है बिना जाने की यह हमारे लायक नही है। आपको मालूम नहीं है किसी व्यक्ति के कितने आयाम है। कितने अनुभवों से उसका खजाना भरा पडा है ? कितनी बार ऐसा होता है कि आप पडोसी से मिलते है और कहिये क्या हाल है? दुआ सलाम से अधिक आगे बढ़ना ही नही चाहते क्यों ? इसलिये कि आपको एक अनजाना भय घेरे रहता है। अधिक खुल जाने से कही मेरे अहम को चोट नही लगेगी। मैं नीचा तो नहीं रह जाऊँगा ? मैं ही क्यों बोलु ? और इसी पसोपेश में रिश्ते नही बन पाते। जब कि यही जाने अनजाने मे मासूम रिश्तों के रूप में जीवन को सरल और मृदुल बनाने में कामयाब व सहायक हो सकते है। रिश्तों में सुख-दु:ख और अनुभवों के खजाने छिपे रहते है। इन खजानों को अपने पास बनाये रखने की कोशिश अवश्य करनी चाहिये। जीवन को मानवीय प्रकृति से जोडने से जिन्दगी खुशहाल बनेगी।

**** जिस रिश्ते में आस्था और समर्पण है***
उसमें विश्वास अपने आप बना रहता है और प्रेम की धारा अविरल बहती है।

न्याय-अन्याय

कानून सर्वोपरि है। यदि सुविधा सम्पन्न लोग कानून की गिरफ्त से दूर रहेंगे तो साधारण जनता का कानून पर से विश्वास उठ जायेगा। कानून सबके लिये समान होना चाहिये।

न्यायाधीश के न्याय में भूल हो सकती है क्योंकि वह सबूतों पर आधारित होती है जबकि भगवान के न्याय में किसी सबूत की आवश्यकता ही नहीं पडती। जिस समय न्यायप्रिय लोगों की ओर से, न्याय के पक्ष को लेकर युद्ध, संघर्ष, विरोध, बाधा-कुछ नहीं रहता तो अन्यायीजन का अन्याय के प्रति आग्रह बढ़ जाता है, अत्याचार में वृद्धि होने लगती है।

प्रकृति का बड़ा विचित्र न्याय है। प्रकृति किसी एक व्यक्ति को अपनी संपूर्ण शक्तियाँ नहीं देती। दो पक्ष हैं एक चिंतन और दूसरा कर्म। यह भी एक अद्‌भुत नियम है कि जो चिंतन करता है, जो न्याय-अन्याय की बात सोचता है, जो सामाजिक कल्याण की बात सोचता है, उसके व्यक्तित्व का चिंतन-पक्ष विकसित होता है और उसका कर्म-पक्ष पीछे छूट जाता है। तुम्हारे भीतर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का भाव है तो तुम्हें अपने जीवन में अनेक अवसर मिलेंगे। ऐसे युद्ध के लिए न तो कोई विशिष्ट समय होता है, न स्थान। जहाँ कहीं अन्याय नजर आए, वहीं लड़ो।

न तो जन-सामान्य में न्याय का अभाव है, न साहस की कमी। वे तो भ्रष्ट परिवेश के कारण अपना आत्मविश्वास खो बैठते हैं। एक बार उन्हें विश्वास हो जाए कि अन्याय के विरुद्ध लड़ने में उनका कोई सहायक है तो वे जूझ मरने के लिए तैयार हो जाते हैं। न्यायी शासक का नेतृत्व पाकर स्वयं प्रजा ही अपने बल पर समस्त अन्याय और अत्याचार को समाप्त कर देती है। पर यदि शासक अन्यायी हो तो ये दुर्बल जन किसके भरोसे पर अन्याय के विरुद्ध लड़ें ?

प्रजा न तो कायर होती है, न आलसी; पर उचित नेतृत्व का निरंतर अभाव उसे कायर और आलसी ही नहीं, अत्याचार और अन्याय के प्रति सहिष्णु भी बना देता है। उचित नेतृत्व के मिलते ही गीले, ठण्डे पड़े पदार्थ में आग लग जाती है, उसका तेज जाग्रत हो उठता है।

किसी का भी न्यायपूर्ण व्यवहार अपने आस-पास के जन-सामान्य में सेना खड़ी कर लेता है। वह जनता में से सेना का निर्माण करता है। केवल अपराधी को दण्ड देने से न्याय पूर्ण नहीं हो जाता। अपराधी की रक्षा करनेवाले को भी उसके दुष्ट कृत्यों के लिए दण्डित किया जाना पूर्णत: न्याय के अंतर्गत है। किसी वर्ग, जाति, राष्ट्र, वय अथवा स्थिति-विशेष के कारण किसी अपराधी को क्षमा कर देना न्याय की हत्या कर, अपराध को प्रोत्साहित करना है। अन्यायपूर्ण आज्ञा की अवज्ञा को धर्म माना जाता है। मर्यादा कभी रूढ़ी नहीं होती। देश-काल के अनुसार उसका रूप बदल जाता है।

दूसरों की दया पर निर्भर अपमानित जीवन जीने से अपने सामर्थ्य के बल पर जिया गया तेजस्वी जीवन कहीं श्रेष्ठ हैं। न्याय के संघर्ष से दूर भागना, उसे टालना न्याय को टालना है। अत: व्यक्ति को उसकी उपेक्षा करने के स्थान पर उसे उकसाना चाहिए, उसकी ओर बढ़ना चाहिए- तभी वह न्याय के निकट पहुँच उसे पा सकेगा।

जितने भी लोग मानव की समता के आधार पर एक ऐसे न्यायपूर्ण मानव-समाज के निर्माण के इच्छुक हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्र और सुविधाएँ उपलब्ध हो- ऐसे समस्त लोगों को संगठित करना चाहिए। जहाँ कहीं थोड़ा-सा भी तेज है, प्रकाश है, संघर्ष है, प्रतिरोध है- उसे जगाए रखना चाहिए। न्याय का शासन न हो तो प्रत्येक समर्थ मनुष्य अपने-आप राक्षस बनता चला जाता है और असमर्थ जनता उसका भक्ष्य पदार्थ। पुरस्कार पाने के लोभ में विरोध करने वाले अनेक जन पैदा हो गए हैं; विरोध करने का मूल्य चुकाकर भी न्याय के लिए संघर्ष करनेवाले लोग विरले ही हैं।

आज के युवक

मन की क्षीणता की अपेक्षा शरीर की क्षीणता अधिक भयंकर होती है। नित्य नव तरंगित रहनेवाला उल्लास ही तो यौवन है। और वह होता है मन में, शरीर में नहीं।

आज सारी दुनिया में सबसे ज्यादा प्रेरणा की बात होती है। यह अरबों-खरबों डॉलर का उद्योग बन गया है। मगर हमारे देश को प्रेरणा पाने के लिए या संकल्प लेने के लिए प्रेरणा के बाजार की जरूरत नहीं है। आज की नई दुनिया में पल-पल निराशा, हताशा और डीमोटेवेटिंग फोर्सेस या उत्साह सोखनेवाली ताकतों से लड़ना आसान नहीं है। इस युग का कहना है कि या तो धारा के साथ बहें, समय का गणित मानें, पैसे शक्ति के खेल में हों या जीवन भोग में डूबकर जीएं या कथित सफलता के लिए अपना आत्मसम्मान गिरवी रख दें। या फिर अपनी अंतरात्मा से जीएं, तो अकेले अपनी रात बनाएं। असल में आज संकट सबसे ज्यादा अंतरात्मा गिरवी रख दें। या फिर अपनी अंतरात्मा से जीनेवालों को है। नई पीढ़ी के युवक-युवतियों में भी बड़ी बेचैनी है। उनकी परेशानियां अलग हैं। तेज प्रतिस्पर्धा में अपनी जगह बनाना। आईआईटी से लेकर अन्य बड़े संस्थानों के युवाओं में बढ़ती आत्महत्या आज हमारे समाज के लिए एक बड़ी चुनौती है। आदमी के दुख को भी इस युग ने बाजार बना दिया है। निराशा-हताशा का धंधा बना दिया है। आज हजारों मोटिवेटर (प्रेरणा देनेवाले) पैदा हो गये हैं। इनके बीच अनेक जाने-माने लोग हैं, जो अच्छा काम कर रहे हैं।

युवाओं को मन की मूल वृत्तियों को पहचानना होगा :- आज के युवा के सामने मुख्य समस्याएं क्या हैं? रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और चिकित्सा ये मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकताएं हैं। इनकी पूर्ति के लिए अर्थ की अपेक्षा रहती है। आज अर्थ की उपलब्धि के दो स्रोत मुख्य हैं- नौकरी और व्यवसाय। सब व्यवसायी नहीं बन सकते। नौकरी सहज रूप से सुलभ नहीं होती। ऐसे में युवा क्या करे?

उसे दिन-रात चिंता सताती है? चिंता उसके स्वास्थ्य को चौपट कर देती है। अस्वास्थ्य और अभाव अहम समस्या बनकर खड़े हो जाते हैं। यह समस्या बहुत लोगों के सामने है। उसी से जुड़ी एक और समस्या है- आतंकवाद की। यह एक ऐसी समस्या है जो आगे से आगे उलझती जा रही है। यह धारणा बन रही हैं कि हिंसा और आतंक आज की जिंदगी का अपरिहार्य हिस्सा बनते जा रहे हैं।

दूसरी समस्या है अनास्था और अविश्वास की। आपसी सम्बन्ध धुंधलाते जा रहे हैं। भाई, विश्वास नहीं करता। पुत्र, पिता का विश्वास नहीं करता। पति, पत्नी का विश्वास नहीं करता। दायां हाथ, बाएं हाथ विश्वास नहीं करता। बहुत बार तो व्यक्ति स्वयं का विश्वास नहीं करता। लेकिन विश्वास के अभाव में जीवन दूभर हो जाता है।

तीसरी समस्या है धोखाधड़ी की। हर मनुष्य चिंतित है कि वह कब कहां ठग लिया जाएगा। संबंधों में धोखे का भय, व्यापार में धोखे का भय, बाजार में धोखे का भय, शादी विवाह के प्रसंग में धोखे का भय। दवाई और खाने की चीजों में मिलावट का भय- और तो और, धर्म गुरुओं से भी धोखे का भय। चारों ओर धोखा ही धोखा है।

चौथी समस्या है आबादी की। परिवार नियोजन का व्यापक प्रचार और गर्भनिरोध के कृत्रिम उपयों के प्रयोग। पर जनसंख्या नियंत्रित नहीं हो पाई है। एक ओर मुक्त यौन, दूसरी ओर भ्रूणहत्या, गर्भपात और जन्म केसाथ ही अवांछित संतान की हत्या।

पांचवीं समस्या है लालसा की, संग्रह की। अर्थ जीवनयापन का साधन है। किंतु उसे ही साध्य माननेवाले व्यक्ति

सोते-जागते धन के सपने देखते हैं। वे अपनी आकांक्षाओं को असीमित विस्तार देते हैं। फिर उनकी पूर्ति के लिए उचित-अनुचित सब तरीके काम में लेते हैं।

एक इच्छा की पूर्ति अनेक नई इच्छाओं को जन्म दे जाती है। लाभ से लोभ बढ़ता है। आर्थिक भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति कब क्या कर बैठेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। पहले की जीवन-शैली सीधी और सरल थी। निश्चिंत जीवन और लंबा आयुष्य। इसका एकमात्र कारण था अपरिग्रह का सिद्धांत। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्र कहते हैं कि हमलोग अपनी गरीबी को महिमा मंडित करते हैं, इसीलिए यूरोपीय देशों की तरह आगे नहीं बढ़े। वे गलत सोचते हैं। गरीबी का महिमा मंडन और अपरिग्रह दो अलग अलग अवस्थाएं हैं। जो लोग पूर्ण रूप से अपरिग्रही न बन सके, वे परिग्रह की सीमा करके चिंताओं के चक्रव्यूह से बाहर निकल गए।

मनुष्य के पास दो दृष्टियां होती हैं- संक्षेप दृष्टि और विस्तार दृष्टि। संक्षेप दृष्टि से देखा जाए तो संसार में ये पांच ही बुराइयां हैं जो दुखों का सृजन करती हैं। युवा इनसे जूझ रहे हैं। विस्तार में जाएं तो इनके अनेक रूप हो सकते हैं। कभी वे प्रशासन का दोषी ठहराते हैं, कभी बाजार की नीतियों पर दोषारोपण करते हैं और कभी अपने आसपास के परिवेश को। मूल को छोड़कर निमित्तों को पकड़ने की इस मनोवृत्ति ने उन्हें मूढ़ बना दिया है। लेकिन जब तक मूढ़ता नहीं छूटेगी, दुखों का अंत नहीं हो पाएगा। दुखों से मुक्ति तभी मिलेगी, जब हम अपने चित्त की इन मूल वृत्तियों को बदलेंगे।

दो पीढ़ियों में टकराव और विवाद का हल क्या हो सकता है :- आजकल के युवाओं को लगता है कि मां-बाप उनकी संवेदनाओं और सपनों को नहीं समझ पा रहे हैं। इसी तरह से मां-बाप भी सोचते हैं कि उनके बच्चे आवारा, गैर-जिम्मेदार और आलसी हो गये हैं। यही सोच दो पीढ़ियों में टकराव और विवाद पैदा करती है। ऐसे में समझदारी की अपेक्षा दोनों तरफ से है। जीवन यात्रा के आखिरी पड़ाव पर पहुंच कर भी परिवार के बुजुर्गों में परिपक्वता नहीं आयेगी, तो उन्हें उपेक्षित ही होना पड़ेगा, युवाओं को जानना चाहिए कि मां-बाप ने जीवन को उनसे ज्यादा देखा-समझा है। इसलिए उनकी सलाह हितकारी है। इसी सोच से आपसी टकराहट में कमी आयेगी। युवाओं के आदर्श राम जी होने चाहिए, उन्होंने जिस पल आदेश पाया कि राज्याधिकार को छोड़कर तपस्या करने वन जाना है, उसी वक्त बगैर कोई तर्क किये तैयार हो गये। परिवार के बुजुर्ग की बातों पर यकीन, उनके अनुभवों के प्रति श्रद्धा, उनकी सेवा और इच्छाओं व उमंगों को पूरा करने की ललक जब युवाओं में दिखेगी, तो मां-बाप को भी पूरा संतोष होगा। मां-बाप के ऋण नहीं भूलना चाहिए, वे बुजुर्ग हो गये हैं। उनके भले-बुरे की भी कुछ जिम्मेदारियां हैं। आज के सुशिक्षित युवाओं को आप अपने दकियानूस विचारों में पिरोने की कोशिश करेंगे? यह हरगिज संभव नहीं होगा। बच्चों को उनकी सोई शक्तियों के विकास और उसके सहारे उड़ान भरने की स्वतंत्रता अवकाश देना चाहिए। उनपर आपको यकीन करना चाहिए। जब माता-पिता को लगे कि बाजी हाथ से निकल रही है, तभी उन्हें टोंके। अपने अनुभवों को कारगर बनायें। व्यावहारिक तरीके से उसे समझाने की कोशिश करें। तभी युवाओं को अपने काम पर संतोष मिले। वात्सल्य, प्रोत्साहन, विश्वास, स्नेहपूर्ण अनुशासन ही युवा पीढ़ी के साथ होनेवाला टकरावों को मिटा सकती है।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा युवा राष्ट्र है। ५४ करोड़ युवा इस देश में रहते हैं। भारत बुढ़ापे की दहलीज पर खड़ा है। कारण यह है कि हमें आज भी अतीत की घटनाओं और कथाओं को सुनने सुनाने में आनंद आता है। जब मनुष्य बीते हुए समय को सुनाने में आनंद लेने लगे तो समझना चाहिए बुढ़ापा शुरू हो गया है। बूढ़े अतीत में जीते हैं। बच चे भविष्य में जीते हैं। युवा तो वह है जो वर्तमान में जीता है।

ढ़लती शाम के बुझते दीये- वृद्धावस्था, बुजुर्ग

भारत में बुजुर्गों की देखभाल और सुरक्षा एक समस्या का रूप लेती जा रही है। जिस देश में ऐसे संस्कार हुआ करते थे की अपने बुजुर्गों का सम्मान करो उनकी सेवा करो। उस देश में आज बुजुर्ग अकेले जीवन जीने पर मजबूर हैं। क्योंकि इस भागती दौड़ती जिंदगी और जल्द रईस बनने के सपने के बीच नई पीढ़ी को बुजुर्ग रस्ते का रोड़ा नजर आने लगे हैं। जिन माँ बाप ने अपनी जिंदगी भर की कमाई अपने बच्चों पर खर्च कर दी वो आज बेसहारा पड़े हैं।

वो समय जब उन्हें जिंदगी में सबसे ज्यादा सामाजिक सुरक्षा, वैचारिक सुरक्षा और आर्थिक सुरक्षा की जरूरत है तब हम उन्हें अकेले कैसे छोड़ सकते हैं। एक माँ-बाप चार बच्चों को पाल सकते हैं लेकिन चार बच्चे मिलकर माँ-बाप को सहारा नहीं दे सकते। लोगों मैं परिवार का मतलब सिर्फ मैं, मेरी बीबी, मेरे बच्चे ही हो गया है लोग अपने ही माँ बाप को बोझ समझने लगे हैं लेकिन वो ये क्यों भूल रहे हैं की कल वो भी वही खड़े होंगे जहाँ आज उनके माँ बाप खड़े हैं।

पूर्णता की मंजिल है बुढ़ापा- बुढ़ापा कुरूप या सुन्दर? इसे समझने का अपना-अपना दृष्टिकोण है। तरुणाई जैसी अठखेलियां, उमंगें और मुस्कान बुढ़ाने में नहीं होती और न चेहरे पर ही वैसी लालिमा और चमक रहती है पर उसके स्थान पर जो नया उभरता है, उसे अपनी जगह महिमा और गरिमा से भरा पूरा समझा जा सकता है। चेहरे की झुर्रियां, सफेदी, वेदान्ती मुख यह बताता है कि इस व्यक्तित्व पर परिपक्वता आ गई। ज्ञान अनुभव ऊंचाई तक पहुंच गया है। यह परिष्टता की निशानी है।

समाज में उनकी प्रतिष्ठा और गरिमा समझी जाती है, इसलिए लोग महत्वपूर्ण प्रसंगों में उनके परामर्श लेने पहुंचते हैं। उनके निर्णय निर्धारणों को महत्व देते हैं। उनका नमन वंदन किया जाता है। देखते ही श्रद्धा के अंकुर उठते हैं और उन्हें सम्मानपूर्वक ऊंचे स्थान पर बिठाया जाता है। यह गरिमा अनायास ही मिली हुई नहीं होती। उसके पीछे बहुमूल्य अनुभूतियां और विचारणाएं होती है। बुढ़ापा एक सिद्धि है। पूर्णता की मंजिल और समय की धरोहर है। व्यक्ति और समाज की स्थिति का अन्वय करनेवाली उसे दूरबीन कह सकते हैं।

बुढ़ापा श्रद्धा सम्मान से लटा हुआ वटवृक्ष है, जिसकी छाया में बैठकर नई पीढ़ी बहुत सीख सकती है और सांत्वना पा सकती है। बुढ़ापे में खीजते वे हैं, जिन्हें बुढ़ापे का पूर्वाभास नहीं किया और उसके स्वागत की समुचित तैयारी नहीं की। जवानी की उच्छृंखलता बुढ़ापे में लौट नहीं सकती और न उतनी स्फूर्ति रहती है, फिर भी जो कुछ रहता है या बढ़ता है वह ऐसा होता है जिस पर संतोष किया जा सके और गर्व भी। जिसने अपने बुढ़ापे को स्वयं सम्माननीय बनाया उसका अन्यत्र भी अभिनन्दन होता है। बुढ़ापा शरमाने की नहीं वरन प्रफुल्लता बिखेरने तथा बटोरने की उम्र है।

सुरक्षा की तलाश में बुजुर्गों की खुशियां : - हमारे बुजुर्ग भारतीय संस्कृति की विरासत हैं, परन्तु आधुनिकता के दौर में वे आज अपने घरों में अकेले और तन्हा हैं। नई मानसिकता के युवा सम्मान तो दूर, आज इन बुजुर्गों को शारीरिक और मानसिक यातनाएं देने में भी पीछे नहीं हैं। बुजुर्गों की देखभाल करना हमारी शाश्वत परम्परा है। उदारीकरण और पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण के दौर में आज हमारे देश में परिस्थितियां प्रतिकूल हैं। घर के बुजुर्ग एक आशीर्वाद की तरह होते हैं। उनके रहने से घर को और अधिक बेहतर बनाने की उम्मीद बनी रहती है। घर में

अगर कोई बुजुर्ग है तो उसे भार मत समझना, क्योंकि बूढ़ा पेड़ फल दे या न दे, पर छाया जरूर देता है। पर आज का वृद्ध उस जुआरी की तरह है जो जीतकर भी सबकुछ हार जाता है। आज का वृद्ध उस माली की तरह है, जिसने अपना पसीना बहाकर बाग लगाया। आज वही माली उस बाग का फूल स्वेच्छा से तोड़ने का अधिकारी नहीं रह जाता है। आज वृद्ध होना सुरक्षा की तलाश में भटकना है।

बड़े बुजुर्ग न केवल हमारे घर की शोभा हैं, बल्कि आज हर घर की जरूरत भी हैं। आधुनिकता की अंधी दौड़ में आज संयुक्त परिवार की जगह एकांकी परिवार ने ले ली है, जहां न बच्चों के पास संस्कार की नींव रखने वाली दादी-नानी और न दादा-नाना की झिड़कियां हैं, जो हर समय बच्चों के सही-गलत पर नजर रखें। कहानियों से मिलनेवाली नैतिक शिक्षा अब दूरदर्शन, इंटरनेट से होती हुई इतनी पश्चिमी संस्कृति में रम गई है। अपनी जिंदगी का एक तिहाई बच्चों और परिवार को समर्पित कर जब वटवृक्ष रूपी ये बुजुर्ग अपने बच्चों से जब स्नेह रूपी जल चाहते हैं, तो बदले में उन्हें परायापन और तिरस्कार के सिवा कुछ भी नहीं मिलता। बुजुर्गों की जड़ें इतनी मजबूत होती हैं कि वो हर झंझावात झेल सकते हैं। बुजुर्गों के पास ज्ञान और अनुभव का जो भंडार है, उसका फायदा युवा पीढ़ी उठा सकती है। हम हमेशा समय की कमी का रोना रोते हैं, पर जब समय निकल जाता है तो सिवाय पछताने के कुछ भी नहीं रह जाता।

बुजुर्गों के अनुभव व ज्ञान का हमेशा सम्मान करें :- बुढ़ापा तो जीवन का अनिवार्य क्रम है और एक न एक दिन सबको वृद्ध होना है, फिर युवा पीढ़ी यह क्यों भूल जाती है कि कभी वह भी इस दौर से गुजरेगी और फिर जब उसके बच्चे उसके साथ ऐसा व्यवहार करेंगे तो उन पर क्या गुजरेगी? अधिकतर यही देखने को मिलता है कि बुजुर्ग या तो घर में ही रहकर अपमानजनक जिंदगी जीने को मजबूर हैं या फिर किसी वृद्धाश्रम की उपेक्षित और नीरस जिंदगी जी रहे हैं।

भारत दुनिया का एकमात्र ऐसा देश है जां बुढ़ापा कभी अभिशाप नहीं था। माता-पिता बच्चे को पाल-पोसकर बड़ा कर देते थे और फिर उनकी शादी करके चैन से जीवन व्यतीत करते थे। बेटे-बहू बुढ़ापे में उनकी सेवा करते थे, परंतु जैसे-जैसे हम २१वीं सदी की ओर बढ़ रहे हैं हम, हमारे संस्कार और इन्सानियत खोते जा रही है। इन दिनों बुजुर्गों से होनेवाला सुलूक किसी से छिपा नहीं है। वे एक उपेक्षित और अपमानजनक जीवन जीने को मजबूर हैं या फिर किसी वृद्धाश्रम में भेज दिए जाते हैं।

जीवन की संध्या आती तो दिखाई देती है लेकिन जब वह ढलने लगती है तो बांहें फैलाए सामने अंधकार आता भी दिखाई देता है, जो निराशापूर्ण होता है क्योंकि वह लम्बा होता है। यदि उसमें रोशनी की एक हल्की किरण दिखाई दे जाए तो उस अंधेरे से डर नहीं लगेगा, न ही निराशा घेरेगी बल्कि उस रोशनी भरे अंधेरे में जिया जा सकता है अंतिम पल तक। इस प्रगतिशील युग में बच्चों को ही तय करना है कि अपने बुजुर्गों की ढलती सांझ को सुनहरी सांझ कैसे बनाया जाए। वक्त के साथ अकेले बुजुर्ग भी इस समस्या से दो-चार होकर सुखी जीवन की कोई राह खोजने लग गए हैं। यह विचारणीय तथ्य है। जिन्दगी की दौड़ में बच्चे इतने व्यस्त हैं कि न उनके पास बुजुर्गों के लिए समय है और न ही पैसा। फिर बुजुर्ग अपने दिल का हाल या अपना दुख दर्द बांटने के लिए यदि साथी पा जाते हैं तो उनके जीवन की संध्या कट जाएगी।

वृद्धावस्था भगवान का सर्वोच्च उपहार :- वृद्धावस्था जीवन की एक स्वाभाविक व अनिवार्य अवस्था है, जो जीवित

रहेगा, वह आयु के अनुसार वार्द्धक्य (वृद्धि) को प्राप्त करेगा। आज हमारा देश, वृद्धों की संख्या के मामले में दुनिया के अग्रणी देशों में है। आज के बदलते परिवेश में बुजुर्गों के साथ मानवोचित व्यवहार नहीं किया जा रहा। बुजुर्गों के पके-सफेद बाल प्रसन्नता प्रकट करनेवाले होते हैं। बुजुर्ग एक पके मीठे फल के समान हैं, बूढ़ा या काफी पुराना वृक्ष फल भले ही न दे, लेकिन अपनी शीतल छाया तो देता ही है। बुजुर्गों के पास अनुभवों का भंडार रहता है। जिन्हें पाने की ललक युवाओं में होनी चाहिए, बढ़ती उम्र चिंता नहीं गर्व का अनुभव कराती है। वृद्धावस्था जीवन का नवनीत है, बुजुर्ग एक माली के समान होते हैं जो परिवार रूपी फुलवारी में रंग बिरंगे फूल एवं फलदार वृक्ष लगाते हैं, लेकिन अफसोस यह है कि युवावर्ग भाग-दौड़ की अपनी जिंदगी के बीच बुजुर्गों के लिए समय नहीं निकाल पाता है। समाज में बुजुर्गों का सम्मान हो।

बुढ़ापा जीवन का स्वर्णकाल :- पंडित बिरजू महाराज, गिरिजा देवी, पंडित जसराज, अमिताभ बच्चन, स्वर सम्राज्ञी लता मंगेशकर जैसे कई कलाकार हैं, जो अपने जीवन के साठ से ज्यादा वसंत देख चुके हैं, लेकिन न उनके खुद के रंग फीके पड़े हैं और न उनकी कला के, बल्कि अनुभव ने उनकी कला को नया निखार दिया है। उनका अतीत ही नहीं, उन सबको भी, जो जीवन की संध्या में या तो पहुंच चुके हैं या उसके द्वार पर हैं।

बुढ़ापा एक जैविक परिवर्तन है, जिसे रोका नहीं जा सकता। हर उम्र की तरह ही यह भी अपनी खूबियों और खामियों के साथ आता है। लेकिन बचपन और जवानी के मुकाबले उम्र का यह अकेला पड़ाव है, जो जीवन भर साथ निभाता है।

जरूरत दरअसल उस सोच से मुक्ति पाने की है, जो बुढ़ापे को जीवन का सूर्यास्त मान लेती है, जबकि भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में ही शास्त्रीय कला जगत में कलाकारों को ५० के बाद ही प्रसिद्धि मिलती है। यह भी माना जाता है कि अर्थपूर्ण जीवन तो ५० वर्ष की उम्र के बाद ही शुरू होता है। इससे पहले तो इंसान खुद और अपने परिवार को बनाने में लगा रहता है।

इन जिम्मेदारियों से मुक्ति पाकर इस उम्र तक पहुंचते-पहुंचते अपनी सारी क्षमताओं का इस्तेमाल करने के लिए वे स्वतंत्र हो जाते हैं। इतिहास उठाकर देखें, तो महापुरुषों के जीवन में ५० की आयु पार करने के बाद ही क्रांतिकारी परिवर्तन आया है।

गुजराती में बुढ़ापे को घड़पण कहा जाता है, जिसमें घ-घड़ा-निर्मित, ड़-समझदार, प-पवित्र, ण-तीनों गुणों से युक्त व्यक्तित्व। यानी एक ऐसी उम्र, जिसके पास हमें और हमारी नई पीढ़ियों को देने के लिए सभी तरह के जरूरी मूल्य पूरी समझदारी और पवित्रता के साथ होते हैं। इसलिए बुढ़ापा कोई समस्या नहीं, वरदान है।

बुढ़ापे को सुखमय बनाने के सूत्र

पहले विचार व मन वृद्ध होता है शरीर नहीं। अगर आपके विचार आशावादी हैं मन में आत्मबल व मनोबल है और हर सुख दुख को हँसकर टाल देते हैं तो बुढ़ापा आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता व मरते दम तक जीवंत जीवन जीकर मृत्यु में प्रवेश करोगे, यह भी पता नहीं लगेगा कि बुढ़ापा कब आया और कब गया।

नकारात्मक सोचवाला व्यक्ति जवानी में ही बूढ़ा व निराश हो जायेगा। जीवन उसको भार लगेगा व स्वयं ही बुढ़ापे और मृत्यु को आमंत्रित करेगा जबकि सकारात्मक सोचवाला व्यक्ति संघर्षों के बाद भी जवान रहेगा चाहे उसकी उम्र कितनी ही हो व ताउम्र सकारात्मक सोच वाला व्यक्ति नये-नये काम की सोचेगा व शेष बचे जीवन के कार्य को सम्पूर्ण करेगा व

निराशा को पास में फटकने नहीं देगा।

अच्छी सोचवाला वृद्ध व्यक्ति अगर अपने ही उम्र के समविचार वालों से दोस्ती कर लेगा तो वह एक दूसरे के गम को हल्का कर सकेंगे व समय भी पास हो जायेगा।

अगर बेटे-बहुयें गलत भी हैं तो आप अच्छे सुझाव दीजिये इसका भी ख्याल रखें कि उनको फटकार व उनके अहम को आँच ना आने दें व तालमेल सामंजस्य बिठाकर रहोगे तो आपके बेटे-पोते व बहुयें मृत्युपर्यंत आपकी सेवा करेंगे व आपका आदर करेंगे अच्छे कामों की बेटे-पोते बहुओं की खुले मन से प्रशंसा करने की आदत डालोगे वो आपका पूरा ख्याल रखेंगे इस तेजी से बदलने वाले समय व पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव को देखते हुये किसी से अपेक्षा न कर जवानी में ही थोड़ा-थोड़ा संचय कर धन को बैंक में जमा करा दें तो आपको व आपकी पत्नी को बच्चों पर आश्रित नहीं रहना पड़ेगा। बुढ़ापे में संचित धन, वृद्धा पत्नी व वफादार कुत्ता ही काम आता है। अन्य किसी से सहायता की आशा न रखो। कर दे तो ठीक नही करे तो ठीक। अगर आपका शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य सही है तो नौकरी से सेवानिवृत्ति के बाद दो चार घण्टे की कोई नौकरी करें और अपने धन की व्यवस्था करें और शेष बचे १०-१२ घण्टे अपनी रूचि के कार्य में लगायें तो शरीर भी स्वस्थ रहेगा और आर्थिक परेशानी भी नहीं रहेगी।

अगर आपके पास धन है तो अपने खर्चों से जो शेष बचता है तो उसको समाज सेवा गरीब सेवा में लगाओ, समय भी कटेगा व आत्म संतुष्टि भी मिलेगी।

अगर आपका बुढ़ापे के कारण या कोई रोग के कारण या विपरीत परिस्थिति के कारण चिड़चिड़ा स्वभाव हो गया हो तो तुरन्त उसमें सुधार करें बुढ़ापे में मृदु वाणी आपका कितने ही लोगों से व परिवार से सहयोग मिलने की क्षमता प्रदान करेगी। आपका काम सुलभ होगा। सुबह मन्दिर जायें भक्ति संगीत सुनें ठण्डी हवा में चहलकदमी करें तो शरीर स्वस्थ रहेगा व मन शांत होगा। प्राणायाम भोजन सादा तुरंत पचनेवाला ही ग्रहण करें गरिष्ठ भोजन से दूर रहें। प्रात: उठने व रात को सोने का समय निश्चित करें व उनका कड़ाई से पालन करें। सादा जीवन व संयमी जीवन आपको दीर्घायु देगा। बुढ़ापे में क्रोध जल्दी आता है उस पर संयम रखें व प्रशंसा करने की आदत डालें भूल से परिवार के किसी सदस्य की ही कोई गलती हो तो सीधी बुराई न करके सलीके से समझाये तो बुरा नहीं मानेंगे।

बच्चों को बुजुर्गों की चिंता नहीं :- माता पिता अपने बच्चों को आसानी, कठिनाई से पाल पोस कर काबिल बनाने में अपनी पूरी जिंदगी स्वाहा कर देते हैं और बच्चे अपने बूढ़े माता पिता की अर्थी को कंधा देने में हिचकिचाते हैं। जिन्होंने जीवन का सर्वोत्तम समय अपने बच्चों की अच्छी परवरिश के लिए न्यौछावर कर दिया, वही बच्चें उनकी आत्मा की शांति के लिए सिर्फ कुछ दिन शांति से नहीं रहते। अगर कहीं पिता ने अच्छी जमा-पूंजी छोड़ दी, तो समझो फिर शुरू कभी खत्म न होनेवाला बखेड़ा। कभी मां पिता ने अपनी वृद्धावस्था में इस बात का प्रतिरोध भी किया, तो बच्चों की यह बात कि तुमने हमको पाल कर कोई अहसान नहीं किया बल्कि अपना फर्ज ही निभाया सुनकर माता पिता निष्प्राण हो जाते हैं। जब उन्होंने अपना फर्ज निभाया तो क्या बच्चों का उनके प्रति कोई फर्ज नहीं है। भगवान से भी सर्वोत्तम मां-पिता जो हर पल हैरान व सहमे हुए होते हैं। कितने गणितज्ञ व शोधकर्ता आए और गए पर एक मां पिता के जज्बात व उनके दिल में उठनेवाली तरंगों को न समझ पाए। सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा माने गए है,

पर उनका दर्जा भी मां पिता से ऊंचा नहीं हो सकता।

वह मां जो अपने बच्चे को लेकर हर पल सहमी रहती है, बच्चा जरा खांसा तो मां की नींद हराम, जरा सा रोया तो मां बेहाल। बच्चे की हर शरारत पर मां और पिता हैरान होती है। अपने बच्चों के हावभाव के सहारे ही मां पूरी जिंदगी जी लेती है। बच्चे के दिल में कोई अरमान अधूरा न रह जाए। उसके पिता दिन रात एक कर देता है। अपनी जीवन यात्रा के अंतिम पड़ाव पर दोनों सूनी आंखों से देखते हुए बच्चों की खुशी या गम के आंसुओं से अपना पेट भर लेते हैं। मां पिता ने वर्षों पहले इस बात को सोचा होता, तो क्या आज वह ऐसा करने लायक भी होते हैं। क्योंकि बच्चों को इस दुनिया में लाने का फैसला मां और पिता ने लिया था, जो मां कहलाने को बेताब थी और पिता पापा सुनने को। यह कड़ुवा सत्य उस समाज में चरितार्थ हो रहा है, जिस समाज के आराध्य श्रीराम और श्रीकृष्ण है और जिस धरती पर श्रवण कुमार ने अपने बूढ़े माता-पिता को तीर्थ यात्रा कराते हुए अपने प्राण दे दिए हो। वहां पर वृद्धाश्रम की जरूरत ही क्यों पड़ी? क्या उस मकान में जगह कम हो गई, जिसको पिता ने अपनी खून पसीने की गाढ़ी कमाई से अपने बच्चों के लिए बनवाया था। जबकि वह जानता था, वे अपनी जीवन यात्रा के अंतिम पड़ाव पर है। अपने ही मकान का बरामदा उन बुजुर्गों के लिए नरक समान बन गया। अपवाद हो सकते है, यह अलग बात है। आज हमारे पास अपने बच्चों को संस्कारवान बनाने के हर साधन उपलब्ध है, जैसे महानतम संतो और लेखकों की उपयोगी पुस्तकें, हर घर में मौजूद दूरदर्शन, रोज सुबह घर पहुंचता अखबार। हम सत्ता पलटने और दुश्मन को धूल चटाने में माहिर है, तो फिर भी बच्चों को संस्कारवान बनाने में क्यों नाकाम साबित हो रहे हैं ?

कुछ बच्चे तो अपने माता-पिता को धन भेजकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। उनका मानना है कि रुपए-पैसे से उनके माता-पिता अपनी जरूरत की सभी वस्तुएं जुटाकर सुख-चैन की जिंदगी बसर कर सकते हैं, पर शायद उन्हें इस बात का अहसास नहीं है कि बुजुर्गों को उनके रुपए-पैसों की इतनी जरूरत नहीं है, जितनी अपने बच्चों के सामीप्य की भूख है। वे तो बस यही चाहते हैं कि कोई उनके पास घड़ी दो घड़ी बैठकर उनके सुख दुख में शरीक हों।

आज जरूरत इस बात की है कि माता-पिता और बुजुर्गों को बोझ न समझा कर उन्हें धरोहर समझा जाए और उनके अनुभवों से लाभ उठाकर अपने जीवन को उन्नत बनाया जाए, क्योंकि वे अनुभव के जीते-जागते सागर हैं। यदि हम आनेवाले भविष्य को सजाना और संवारना चाहते हैं, तो हमें अपने माता-पिता और बुजुर्गों के प्रति संवेदनशील बनने की आवश्यकता है। अपने बुजुर्गों के लम्बे अनुभवों से हम राष्ट्र की सांस्कृतिक दीवारों को भी मजबूत बना सकते हैं। घर के बड़े बुजुर्ग एक आशीर्वाद की तरह होते हैं, उनके रहने से घर को और अधिक बेहतर बनाने की उम्मीद बनी रहती है। एक बार जिसे बुजुर्गों का आशीर्वाद मिल गया, समझो उसे भगवान मिल गया। ये बुजुर्ग आज अपने बच्चों से सिर्फ प्यार और सम्मान की उपेक्षा करते हैं। कभी अनुभव की कीमत होती थी, मगर अब लोग बुजुर्गों से किनारा करते हैं। किसी की सोच और मानसिकता बदलना बहुत कठिन है, लेकिन नामुमकिन भी नहीं। आज की नयी युवा पीढ़ी को यह नहीं भूलना चाहिए कि जो आज बुजुर्गों का वर्तमान है, कल वही उनका भविष्य होगा। जो वो आज अपने बुजुर्गों के साथ करेंगे, कल वही उनके बच्चे भी उनके साथ करेंगे। पीढ़ी दर पीढ़ी इज्जत और संस्कार का पुल बनाने से न सिर्फ जिंदगी आसान होगी, बल्कि बुजुर्गों को वो सम्मान भी प्राप्त होगा जिनकी उनको सबसे जरूरत है। बुजुर्गों के बताए हुए मार्ग पर चलनेवाला

व्यक्ति जीवन में कभी भी असफल नहीं होता। उनकी सलाह कड़वी दवा की तरह होती है, लेकिन मानने पर हमारे जीवन में मिठास भर देती है। वे छांव हैं हमारे, उन्हें धूप न दो, वे प्रकाश हैं हमारे, उन्हें अंधकूप न दो।

आज की युवा पीढ़ी इतनी व्यस्त हो गई है कि वह बुजुर्गों के साथ कुछ पल बैठकर उनकी बातें सुनने को मात्र समय का अपव्यय समझती है। यह सब देखकर यह सोचने पर मजबूर होना पड़ता है कि आखिर यह मनोवृति हमें किस दिशा में ले जाएगी। हमारी परंपरा तो बुजुर्गों का आदर-सम्मान करना सिखाती है, उनका तिरस्कार करना नहीं। इन संस्कारों में कहां विकृति आ गई है, जिसके कारण हम बुजुर्गों की सेवा से मुंह मोड़ते जा रहे हैं? आज बहुत कम ऐसे सौभाग्यशाली बुजुर्ग होंगे जिन्हें वृद्धावस्था में पूरा आदर-सम्मान मिलता है। अधिकतर यही देखने को मिलता है कि बुजुर्ग या तो घर में ही रहकर अपमानजनक जिंदगी जीने को मजबूर हैं या फिर किसी वृद्धाश्रम की उपेक्षित और नीरस जिंदगी जी रहे हैं। यदि हम किसी आश्रम में रह रहे बुजुर्ग से मिलें तो उनके चेहरे की झुर्रियों में अपने से ही मिले अपमान और बेरुखी की लकीरें साफ झलकती हैं। उनकी आंखें कहीं दूर क्षितिज में अपने उन लाड़लों को तलाशती हैं, जिनको उन्होंने अपनी बाहों के पालने में झुलाया था। आखिर वृद्ध माता-पिता की इतनी उपेक्षा क्यों कर रही है आज की युवा पीढ़ी? जहां चार बर्तन होंगे तो वे खड़केंगे ही, परंतु यदि घर में कलह हो तो उसका यह हल नहीं है कि बूढ़े माता-पिता का अपमान किया जाए या उन्हें किसी वृद्धाश्रम के हवाले कर दिया जाए और फिर पूज्य माता-पिता के साथ कलह की नौबत आने ही क्यों दी जाए। कोई भी समस्या ऐसी नहीं होती जिसे सुलझाया न जा सके, जरूरत होती है सिर्फ सार्थक प्रयास की।

मजबूत समाज के लिए जरूरी है बुजुर्गों का मार्गदर्शन और युवाओं का जोश :- हम सदा से अपने बुजुर्गों से ही सीखते आये हैं वो अपने जीवन भर के अनुभव की पूंजी से समाज को सार्थक दिशा दे सकते हैं। जिनकी जिम्मेदारियां पूर्ण हो चुकी हैं वो उन लोगों की शिक्षा, विवाह या स्वास्थ्य आदि में सहायक हो सकते हैं जो आज भी इन सबके लिए मोहताज हैं। उदाहरण स्वरूप आजकल ज्यादातर घरों में झाड़ू-पोंछा, चौका-बर्तन वाली लगी हुई हैं अगर हमारे बुजुर्ग उनके बच्चों को ही एक घंटे पढ़ाएं या पढ़ने में या अन्य कामों में आर्थिक या कोई अन्य मदद कर दें तो समाज की दिशा दशा भी सुधरेगी और उनका एकाकीपन भी दूर होगा। युवाओं को भी समय प्रबंधन थोड़ा ठीक करना चाहिये और अपने बुजुर्गों को सम्मान देना चाहिये आखिर वो आज जो कुछ भी हैं अपने बुजुर्गों के कारण ही हैं। साथ ही बुजुर्गों को भी आज की समय और परिस्थितियों को देखते हुए बच्चों के विषय में सकारात्मक रुख अपनाना चाहिये।

आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में व्यक्ति अपने लिए ही दो पल नहीं निकाल पाता है तो फिर अन्य जिम्मेदारियां कैसे पूरी करे और यही सोच उसके व्यवहार और विचारों में शुष्कता लाती है जिसके कारण परिवार में और खासतौर से उसके माता-पिता से दूरियां बढ़ती हैं। कुछ विशेष कारण न होते हुए भी दोनों पीढ़ियों के बीच एक अदृश्य दीवार सी खड़ी हो जाती है दोनों एक छत के नीचे रहते हैं प्रतिदिन एक दूसरे को देखते भी हैं मिलते भी हैं लेकिन फिर भी एक दूसरे से अपने विचारों का आदान प्रदान नहीं कर पाते। उन परिवारों की स्थिति भी विकट है जिनके माता-पिता और बच्चे अलग-अलग शहरों में जीविका के कारण रह रहे हैं ऐसी स्थिति में बच्चे माता-पिता का पूरा ध्यान नहीं रख पाते, लेकिन ऐसी स्थितियां कहीं भी ये सिद्ध नहीं करती हैं कि किसी बुजुर्ग का अपमान हुआ हो या बच्चों ने कोई अत्याचार किया हो।

वृद्धाश्रम वानप्रस्थ का आधुनिक रूप :- बुजुर्गों की समाज में स्थिति यदि १० प्रतिशत वास्तविक है तो ९० प्रतिशत

केवल नकारात्मक वातावरण के कारण है। इसका निदान सभी लोग अपने-अपने अनुसार ढूंढ रहे हैं और आजकल वृद्धाश्रमों का भी बोलबाला है कुछ वृद्ध इसको मजबूरी बताते हैं तो कुछ हेय दृष्टि से भी देखते हैं। हमारे पूर्वजों ने जीवन के अंत समय में जब व्यक्ति के दायित्वों की पूर्ति हो जाती थी वानप्रस्थ की व्यवस्था दी थी शायद ये वृद्धाश्रम वानप्रस्थ का आधुनिक रूप हों।

समाज में बुजुर्ग रूपी घनी छाव उपेक्षित क्यों :- आज युवा पीढ़ी के पास बुजुर्गों के लिए वक्त नहीं है क्योंकि आगे बढ़ने की ललक उनमें इतनी बढ़ चुकी है कि रिश्ते उन्हें बोझ लगते हैं और उनकी यह बेरुखी जहां हमारे बुजुर्गों में भावनात्मक सम्पर्क खत्म कर रही है, वहीं उनमें भावनात्मक असुरक्षा भी बढ़ती जा रही है।

मातृ देवो भव:, पितृ देवो भव: - अपने बच्चों को इसका मतलब समझाते हुए हमारा सीना गर्व से तन जाता है क्योंकि ईश्वर स्वयं अदृश्य रह कर हमारे माता-पिता की भूमिका निभाता है तो उसी ईश्वर की उपेक्षा कैसे की जा सकती है। बरगद के पेड़ की घनी छाया से तुलना करते हैं हम बुजुर्गों की और जीवन में संकट आने पर उनके प्यार की छाया ही तो मजबूत संबल प्रदान करती है हमें। फिर उस छांव को दरकिनार कैसे किया जा सकता है?

बदलते जीवनशैली और पश्चिमी सभ्यता के चलते कहीं न कहीं बुजुर्गों के प्रति समाज का नजरिया बदल रहा है। आज युवा पीढ़ी के पास बुजुर्गों के लिए वक्त नहीं है क्योंकि आगे बढ़ने की ललक उनमें इतनी बढ़ चुकी है कि रिश्ते उन्हें बोझ लगते हैं और उनकी यह बेरुखी जहां हमारे बुजुर्गों में भावनात्मक सम्बन्ध खत्म कर रही है, वहीं उनमें भावनात्मक असुरक्षा भी बढ़ती जा रही है। वे बच्चे जिनका प्यार उन्हें हमेशा ऊर्जा देता था और उनकी हर छोटी बड़ी मांग को वे हंसते पूरा कर देते थे, वक्त पड़ने पर वे आज उनके पास भी बैठकर दो बातें नहीं करना चाहते, क्योंकि परिवार की सीमाओं में बंधना उन्हें पसंद नहीं।

आपको इस दुनिया में लानेवाली मां स्वयं गीले से सोकर आपको सूखे सुलाती रही है। आपको भूख लगी होगी सोचकर आपकी पसंद का खाना बनाती होगी। बाप ने अपना खून-पसीना एक करके आपको बेहतर शिक्षा दिलाई ताकि आपका भवितव्य बन सके और आपकी सफलता पर वह इतरा सके। दोनों ने यह सपना देखा होगा कि आप बुढ़ापे में उनका सहारा बनेंगे पर तरक्की की राह पर चलते हुए युवा पीढ़ी इसे मां-बाप का फर्ज कहते हुए अपना फर्ज भूल जाती है और उन्हें उपेक्षित जीवन देते हुए निराशा के अंधेरे में धकेल देती है। कुछ बुजुर्ग परिस्थितियों से समझौता कर लेते हैं तो कुछ वृद्धाश्रम में चले जाते हैं। इसके लिए कुछ हद तक समाज भी दोषी है, क्योंकि अपने आसपास किसी बुजुर्ग पर अत्याचार होते देखकर उनका निजी मामला कहकर हम भी उसके लिए अपनी मौन स्वीकृति दे देते हैं।

हो सके तो छुट्टी के दिन उनसे अपने बचपन की यादें ताजा करें। अपने बचपन के खेल लूडो, शतरंज, अंताक्षरी इत्यादि खेलें।

रात का खाना उनके साथ खाएं, ताकि उन्हें आपके साथ की कमी न खले। छोटी-छोटी बातों पर भी उनकी राय जरूर लें क्योंकि बचपन में भी तो आप ऐसा ही करते थे। यदि पसंद न आए तो अपनी राय उन्हें बताएं, जिसे वह सहज ही मान लेंगे। माता-पिता का जन्मदिन याद रखें और उन्हें उनकी पसंदीदा या दिनचर्या में काम आनेवाली चीजें उपहार में दें। यह सब महंगा नहीं है पर उनकी खुशी अनमोल होगी।

उन्हें घर का सदस्य होने का गर्व अनुभव करवाएं तो आपकी व्यस्तता की भी वह समझ लेंगे परंतु कोई इन्सान इतना

व्यस्त कभी नहीं होता कि परिवार के बुजुर्गों के लिए समय न निकाल पाए।

यदि आपके अनुसार सब नहीं चल रहा तो गुस्सा होने की अपेक्षा शांत रहते हुए बदलती परिस्थितियों को स्वीकार करें। आज के बच्चों को बड़ों की नसीहत तीर की तरह चुभती है और वे इसे अपनी स्वतंत्रता में बाधा मानते हैं, तो उन्हें बात बात पर नसीहत देना छोड़ दें। बस उन पर नजर रखें ताकि वे कोई गलती न कर बैठें। स्वयं को अपने जीवनसाथी के साथ पूजा-पाठ, समाज सेवा, बागवानी, लेखन, चित्रकारी एवं संगीत जैसे शौक पूरा करने में व्यस्त कर लें। अपनी नौकरी और रुतबे का गौरव कायम रखते हुए अपनी छवि ऐसी बना लें कि आपके निर्णयों पर परिवार सर्व सम्मति बना सके।

परिवार रूपी वृक्ष की रीढ़ के समान होते हैं बुजुर्ग

दादी की देखभाल में किंचित कमी पर जब पोती ने अपने पिता को डांट लगाई तो पिता एक अनिर्वचनीय आनंद से भर उठे। उन्हें अपनी बेटी पर गर्व हुआ। कितना ध्यान रखती है अपनी दादी का। कितने अच्छे संस्कार हैं हमारी बच्ची में। आखिर कहां से आए ये संस्कार? बड़ों की सेवा करना, उनकी आज्ञा का पालन करना, सबको सहयोग देना और बच्चों को प्यार करना।

ये सभी संस्कार मिलते हैं घर के बड़े-बूढ़ों अथवा बुजुर्गों से। जिस घर में बड़े-बूढ़े अथवा बुजुर्ग नहीं, वो घर घर नहीं।

परिवार में बुजुर्ग व्यक्ति/व्यक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है, इसमें संदेह नहीं। एक बुजुर्ग व्यक्ति की उम्र कम भी हो सकती है और ज्यादा भी। पचपन-साठ साल का व्यक्ति भी बुजुर्ग की श्रेणी में आ सकता है तो अस्सी-पिचासी साल या उससे ज्यादा उम्र का व्यक्ति भी। दोनों की कार्यक्षमता में काफी अंतर हो सकता है। इसका उलटा भी हो सकता है।

उम्र का भी कोई हिसाब नहीं। अस्सी-पिचासी साल या उससे ज्यादा उम्र के व्यक्ति की क्षमता पचपन-साठ साल के व्यक्ति की क्षमता से अधिक हो सकती है। क्षमतावान या अपेक्षाकृत सक्रिय बुजुर्ग व्यक्ति परिवार के लिए उपयोगी तथा कम सक्रिय बुजुर्ग व्यक्ति परिवार पर बोझ भी मान लिया जा सकता है जो एकदम गलत है। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि कम सक्रिय होने पर वो कम महत्वपूर्ण है। बुजुर्ग व्यक्ति चाहे वो जिस श्रेणी में आता हो, परिवार के लिए हर दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है।

एक सक्रिय बुजुर्ग जहां परिवार की देखभाल अथवा आर्थिक उन्नति में सहयोग करता है, वहीं कम सक्रिय बुजुर्ग घर के सभी सदस्यों को भावनात्मक सुरक्षा प्रदान कर उन्हें एक कड़ी में पिरोए रखने में सहायक होता है। वैसे तो हमारा कर्त्तव्य ही है कि हम न केवल अपने बुजुर्गों की उचित देखभाल करें अपितु उनका यथेष्ट आदर भी करें। बीमार अथवा अशक्त होने पर उनकी सेवा व उपचार करें। यह हमारे अपने हित में भी है क्योंकि बुजुर्गों की मात्र उपस्थिति भी हमारे लिए महत्वपूर्ण होती है।

बुजुर्गों की उपस्थिति में परिवार में अपेक्षाकृत अधिक अनुशासन बना रहता है जो परिवार के सभी सदस्यों के हित में होता है। जिन घरों में बड़े-बुजुर्ग होते हैं, उन घरों के बच्चों में उच्छृंखलता देखने में नहीं आती। ऐसे घरों के बच्चे आज्ञाकारी व बड़ों का आदर-मान करनेवाले होते हैं।

विषम परिस्थितियों में बुजुर्गों के अनुभव काम में आते हैं जिससे परिवार के सदस्य अनेकानेक कठिनाइयों से बच जाते

हैं। जहां पति और पत्नी दोनों नौकरी करते हों, वहां बड़े बुजुर्गों की उपस्थिति बड़ी सहायक होती है। बुजुर्गों के सहयोग से छोटे बच्चों का पालन पोषण और भावनात्मक विकास अच्छी प्रकार से संभव होता है।

घर चौबीसों घंटे खुला रहता है। जो बच्चे दादा-दादी या नाना-नानी के साथ रहते हैं व उनके साथ खाते-पीते और खेलते-कूदते हैं, ज्यादा स्वस्थ रहते हैं। स्वाभाविक है कि बुजुर्ग ज्यादा व्यावहारिक होते हैं और उनका असर पोते-पोतियों पर भी पड़ता है अत: दादा-दादी या नाना-नानी के साथ रहनेवाले बच्चे भी ज्यादा व्यावहारिक और संतुलित होत हैं। घर के बुजुर्ग जो किस्से-कहानियां और अनुभव की बातें सुनाते-बताते हैं उनसे बच्चों का मार्गदर्शन होता है जो उनके सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। घर में विषम अथवा तनावपूर्ण स्थिति होने पर बुजुर्ग उसे आसानी से संभाल लेते हैं। बुजुर्गों के सहयोग अथवा मार्गदर्शन के अभाव में स्थिति विस्फोटक हो सकती है अत: बुजुर्गों का साथ बहुत महत्वपूर्ण होता है।

जिन घरों में बड़े-बुजुर्ग होते हैं उनके कारण उनके पड़ोसियों से भी अच्छे संबंध विकसित हो जाते हैं जिससे सामाजिकता का विकास संभव होता है। बड़े-बुजुर्गों की देखभाल करना वैसे भी पुण्य का काम है। बड़े बुजुर्गों की देखभाल व सेवा करने से असीम आनंद की प्राप्ति होती है जिससे न केवल उनका स्वास्थ्य अच्छा होता है अपितु सेवा करनेवाले को भी खुशी होती है।

वैसे भी आप जो कुछ कर रहे हैं, वही निकट भविष्य में आपके साथ होनेवाला है। यदि आप अपने बच्चों को दादा-दादी या नाना-नानी से दूर रखेंगे, उनकी उपेक्षा करेंगे तो यही संस्कार आपकी अगली पीढ़ी में संक्रमित होने अवश्यम्भावी हैं।

बड़े-बुजुर्गों की उपेक्षा कर हम स्वयं हर प्रकार से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारेंगे जबकि उनकी सेवा-सत्कार से न केवल अपने कर्त्तव्य का पालन कर आत्म-सम्मान की अनुभूति से ओत-प्रोत रहेंगे अपितु एक सुसंस्कृत परिवार के सदस्य और संचालक होने का आनंद भी उठाएंगे। बुजुर्ग घर के नाकारा सदस्य नहीं, परिवार की रीढ़ होते हैं। घर में बड़े-बुजुर्गों का न होना सचमुच एक अभिशाप है। बुजुर्गों का साथ मिलना एक दैवी अनुकंपा से किसी भी तरह कम नहीं।

भारत में माता-पिता की तुलना भगवान से की गई है। इतना सम्मानजनक स्थान होने के बावजूद भी आज हमारे इन बुजुर्ग माता-पिताओं को दु:ख भोगना पड़ता है। माता-पिता के समान कोई तीर्थ नहीं- न मंदिर, न मस्जिद। माता-पिता उस नाविक की भांति हैं, जो अपने बच्चों को दुखों के सागर से पार लगाते हैं।

पेड़, पत्थरों से लेकर जानवरों तक को पूजनेवाला भारत आज अपने बुजुर्गों का ही ख्याल नहीं रख रहा है। आज के बच्चे अब उन्हें बोझ समझने लगे हैं और उन पर अत्याचार के मामले दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। एक समय भारतीय समाज की पहचान और प्राणवायु रहे संयुक्त परिवार अब विघटन की कगार पर हैं।

कभी घर और मन इतने विशाल थे कि चाचा-ताऊ ही नहीं, बल्कि दूर के रिश्ते के भाई, बंधु और उनके परिवार भी इसमें समा जाते थे। अब स्थान और सम्बन्ध इतने संकुचित हो चले हैं कि अपने माता-पिता के लिए गुंजाइश निकालना भी मुश्किल हो रहा है। बिखरते हुए समाज में जो खालीपन होता जा रहा है, उसे भर पाना फिर असंभव हो जाएगा। वृद्धाश्रम जैसी संस्थाएं जो हमारी परिकल्पनाओं से परे थीं, आज शहरों में खुलती जा रही हैं और ये बुजुर्ग स्वेच्छा या मजबूरियों में

वहां पहुंचाए जा रहे हैं।

आज लगता है कि जो बच्चे कर रहे हैं, वह वर्तमान परिस्थिति है और माता-पिता व वरिष्ठजन जो करते हैं, वह पुरानी शैली थी। परन्तु सच्चाई यह है कि वृद्धजन जो कुछ जानते हैं, उनके जीवन के अनुभवों के आधार पर आज के बच्चे भी कल को इन बुजुर्गों की पंक्ति में खुद खड़े होंगे।

हमारी जिंदगी का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय, जिनकी बदौलत हम आज यहां तक हैं, उन्हें ही हम आज भूल बैठे हैं। हमारे बूढ़े होते माता-पिता, जिनकी बरगद की छांव, हमारी दौड़ती-हांफती जिंदगी की सबसे अहम जरूरत है, उन्हें हम नजरंदाज कर महत्वाकांक्षा की जिस अंधी दौड़ में दौड़ रहे हैं, वहां सिवाय खालीपन के कुछ भी नहीं है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में आज संयुक्त परिवार की जगह एकाकी परिवार ने ले ली है, जहां न तो बच्चों के पास संस्कार की नींव रखनेवाली दादी, नानी और न दादा, नाना की झिड़कियां हैं, जो हर समय बच्चों के सही-गलत पर नजर रखें।

कहानियों से मिलनेवाली नैतिक शिक्षा अब दूरदर्शन, इंटरनेट से होती हुई इतनी पश्चिमी संस्कृति में रम गई है कि उनके पारिवारिक मूल्यों की जगह ही नहीं रह गयी है। अपनी जिंदगी का एक तिहाई बच्चों और परिवार को समर्पित कर जब वटवृक्ष रूपी ये बुजुर्ग अपने बच्चों से जब स्नेह रूपी जल चाहते हैं, तो बदले में उन्हें परायापन और तिरस्कार के सिवा कुछ भी नहीं मिलता।

पीढ़ी दर पीढ़ी इज्जत और संस्कार का पुल बनाने से न सिर्फ जिंदगी आसान होगी, बल्कि बुजुर्गों को वो सम्मान भी प्राप्त होगा, जिनकी उनको सबसे जरूरत है। बुजुर्गों के बताए हुए मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति जीवन में कभी भी असफल नहीं होता। उनकी सलाह कड़वी दवा की तरह होती है, लेकिन मानने पर हमारे जीवन में मिठास भर देती है। वे छांव हैं हमारे, उन्हें धूप न दो, वे प्रकाश हैं हमारे, उन्हें अंध-कूप न दो। तूने, जब पहला श्वास लिया तब तेरे माता-पिता तेरे साथ थे और जब माता-पिता आखिरी सांस लें तब तुम उनके पास अवश्य रहना।

आज जरूरत इस बात की है कि माता-पिता और बुजुर्गों को बोझ न समझकर उन्हें धरोहर समझा जाए और उनके अनुभवों से लाभ उठाकर अपने जीवन को उन्नत बनाया जाए, क्योंकि वे अनुभव के जीते जागते सागर हैं। यदि हम आनेवाले भविष्य को सजाना और संवारना चाहते हैं, तो हमें अपने माता-पिता और बुजुर्गों के प्रति संवेदनशील बनने की आवश्यकता है।

अपने बुजुर्गों के लम्बे अनुभवों से हम राष्ट्र की सांस्कृतिक दीवारों को भी मजबूत बना सकते हैं। घर के बड़े बुजुर्ग एक आशीर्वाद की तरह होते हैं, उनके रहने से घर को और अधिक बेहतर बनाने की उम्मीद बनी रहती है। एक बार जिसे बुजुर्गों का आशीर्वाद मिल गया, समझो उसे भगवान मिल गया।

ये बुजुर्ग अपने बच्चों से सिर्फ प्यार और सम्मान की उपेक्षा करते हैं। कभी अनुभव की कीमत होती थी, मगर अब लोग बुजुर्गों से किनारा करते हैं। किसी की सोच और मानसिकता बदलना बहुत कठिन है, लेकिन नामुमकिन भी नहीं। आज की युवा पीढ़ी को नहीं भूलना चाहिए कि जो आज बुजुर्गों का वर्तमान है, कल वही उनका भविष्य होगा। जो वो आज अपने बुजुर्गों के साथ करेंगे, कल वही उनके बच्चे भी उनके साथ करेंगे।

कितनी विडंबना है कि पूरे परिवार पर बरगद की तरह छांव फैलानेवाला व्यक्ति वृद्धावस्था में अकेला, असहाय एवं बहिष्कृत जीवन जीता है। जीवन भर अपने मन क्रम वचन से रक्षा करनेवाला, पौधों से पेड़ बनानेवाला व्यक्ति घर में एक कोने में उपेक्षित पड़ा रहता है अथवा अस्पताल या वृद्धाश्रम में अपनी मौत की प्रतीक्षा करता है। आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति एवं सामाजिक मूल्यों के क्षरण की यह परिणिति है। आज के वैश्विक समाज में वृद्धों को अनुत्पादक, दूसरों पर आश्रित, सामाजिक स्वतंत्रता से दूर अपने परिवार एवं आश्रितों से उपेक्षित एवं युवा लोगों पर भार की दृष्टि से देखा जाता है। जब तक हम वृद्ध जनों की कीमत नहीं समझेंगे, उस उम्र की पीड़ा का एहसास नहीं करेंगे, तब तक हमारी सारी अच्छाइयां बनावटी होंगी। वृद्धों के सम्मान के लिए जनचेतना जगाना चाहिए। वृद्धों की बेहतरी के लिए विशेष योजनाओं का क्रियान्वयन जरूरी है।

परिवार के निर्णयों में वृद्ध लोगों को शामिल करें ताकि उन्हें अपनी महत्ता का अहसास बना रहे। वृद्ध व्यक्तियों को उनके मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य की देखभाल की पूर्ण सुविधा मिलनी चाहिए ताकि वे मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक रूप से स्वस्थ रहें।

वृद्ध व्यक्तियों को उनकी ऊर्जा के साथ शिक्षा, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं मनोरंजन के स्रोतों को अपनाने की पूर्ण सुविधा मिलनी चाहिए जिससे उन्हें परिपूर्णता का बोध हो। वृद्ध लोगों को पूर्ण सम्मान एवं सुरक्षा की आश्वासन मिलना चाहिए ताकि वो मानसिक एवं शारीरिक शोषण से बच सकें। बहुसंस्कृति जागरूकता पर हमें ध्यान देना चाहिए।

वृद्धों को काम के बदले ज्यादा पैसा मिलना चाहिए, इस सम्बन्ध में सरकारों को नए नियम बनाने चाहिए। वृद्धों को अधिमान्यता देने से वृद्धों की समस्याएं सुलझ सकती हैं। नौकरियों में जहां बुद्धि एवं सोच की आवश्यकता है, वहां वृद्धों को लाभ देना चाहिए। परिवार एंव राज्यों को वृद्धजनों की सतत देखभाल करनी चाहिए। जहां पर उनके अधिकारों का हनन हो रहा हो, वहां कड़ी कार्यवाही की आवश्यकता है। वृद्धों को समाज में प्रमुखता मिलनी चाहिए ताकि उनके जीवन को सार्थकता का एहसास हो। उनकी सामाजिक कार्यों में संलिप्तता एवं सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव उनके जीवन को नई स्फूर्ति प्रदान करेगा।

परिवार के वृद्धजनों को भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक सहायता की अत्यंत आवश्यकता होती है ताकि वो अकेलेपन या अवसाद की स्थिति में न आ पाएं। वृद्ध लोगों को आर्थिक़ स्वतंत्रता बहुत जरूरी है। उनके पास पर्याप्त पैसा होना जरूरी है ताकि उनमें असुरक्षा की भावना समाप्त हो जाए एवं अपनी जरूरतों के मुताबिक खर्च कर सकें।

जहां माता-पिता अपनी जिन्दगीभर की मेहनत व कमाई बच्चों को किसी लायक बनाने में खर्च कर देते हैं, वहां बच्चे इतना भी नहीं सोचते कि अलग से कुछ न देकर केवल मान-सम्मान, थोड़ी-सी खुशी ही हम उन्हें दे दें। ताकि वे इसी में गर्व महसूस कर संतुष्ट हो सकें कि प्यार-अपनत्व की मजूत डोरी से सब एक दूसरे के संग बंधे हैं और परिवार का महत्व जैसा उनके समय में था, आज भी बरकरार है।

वक्त अपने को दोहराता है- यह तो सर्वविदित है कि जो आज बच्चा है, उसे कल जवान फिर बूढ़ा होना है। वक्त बार बार अपने को दोहराता है, किसी के लिए रुकता नहीं है। इसलिए इस बात पर गौर करके इसे महत्वपूर्ण जानकर आपस में

विचार-विमर्श करना जरूरी है कि जो कुछ भी हम कर रहे हैं या हो रहा है वह सही नहीं है। आज जैसे संस्कार, गुण हम अपने बच्चों को देंगे, जैसा व्यवहार उनके सामने बड़ों से करेंगे, वैसा ही कल वे हमारे साथ करेंगे। अत: अभी भी समय रहते यदि हमने अपनी आदतों में सुधार नहीं किया, अपने में बदलाव नहीं लाए तो फिर जिस तरह की अपेक्षाएं, तमन्नाएं हमारी अपने बच्चों से हैं, वे कभी भी पूरी नहीं हो सकेंगी तथा सिवाय पछतावे के और कुछ भी हासिल नहीं होगा। जो सच है उसे चाहकर भी कोई अनदेखा नहीं कर सकता, हमारे बड़ों ने हमेशा कुछ न कुछ हमें दिया ही है, आज भी बेवजह वे कभी लेने की इच्छा जाहिर नहीं करते और तो इस उम्र में भी घर-परिवार में अप्रत्यक्ष रूप से कहीं न कहीं उनके अनुभव व उनकी सहायता का लाभ हम लेते ही रहते हैं। फिर भी हम उतनी भी उनकी देखभाल नहीं करते जितना कम से कम हमारा फर्ज बनता ही है। इतना सब होने के बावजूद भी यह उनका बड़प्पन, स्नेह ही है कि फिर भी उनके पास हमें देने के लिए ढेर-सा प्यार व आशीर्वाद होता है और यह हम भली-भांति जानते हैं कि इसके आगे पैसे या भौतिक सुख सुविधा का महत्व कुछ भी नहीं रह जाता, सब नगण्य हैं।

औलाद से उम्मीद- सभी माता-पिता को अपनी औलाद से उम्मीद रहती है कि वे किसी काबिल बनकर उनका नाम रोशन कर सकें, यदि उनकी यह मुराद पूरी हो जाए तो बहुत अच्छा और ना हो तब भी वात्सल्यपूर्ण व ममतामयी होने के कारण वे तनिक भी अफसोस नहीं करते। वृद्धावस्था आते ही जरूर उनके मन में यह आस व इच्छा प्रबल हो जाती है कि अपनों से थोड़ा लगाव, अपनापन व मान-सम्मान मिल जाए। ताकि जीवन के जो भी गिने-चुने शेष दिन बचे हैं उनमें किसी तरह का उतार-चढ़ाव न देखकर सिर्फ और सिर्फ प्यार की ही छांव देखने को मिले और जब भी ऊपर वाले का बुलावा आए तो खुशी-खुशी चैन से आंखें मूंद सकें।

अनुभवों की पूंजी है वृद्धावस्था :- वृद्धावस्था जिंदगी के चक्र की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अत: हमें इसका स्वागत भी खुशी से ही करना चाहिए। जवानी में कार्याधिक्य व गहन जिम्मेदारियों के कारण हम अपनी जिन इच्छाओं को पूरी नहीं कर पाये उनको पूरा कर लेने का यह उत्तम समय है, पर्यटन व तीर्थयात्रों पर जाकर हंसी खुशी से जीवन यापन करने का यह सही समय है। हम बूढ़े लोग यदि थोड़ी-सी समझदारी से बर्ताव करें तो हम अपने घर में रहकर भी आनंदमय जीवन जी सकते हैं। अपने बच्चों की जीवनशैली में हस्तक्षेप न करते हुए उन्हें उनके तरीके से जीवन जीने देना चाहिए। अपने घर के सदस्यों की टीका-टिप्पणी दोस्तों या पड़ोसियों के सामने कभी भी नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से हमें घर में आदर नहीं मिलेगा। हम बूढ़ों के पास अनुभव है, जानकारियां हैं और जिंदगी के उतार-चढ़ाव हमने भलीभांति देखे हैं। इससे परिवार के सदस्यों के साथ सही तालमेल बैठाकर हम परिवार में सामंजस्य ला सकते हैं। हमें हम उम्र और समान विचार वाले लोगों के साथ दिन में कम से कम एक दो घंटे तो जरूर बिताने चाहिए। इससे हम खुशमिजाज रहते हैं। हमें अपने इलाके में ज्येष्ठ नागरिक मंडल का सदस्य जरूर बन जाना चाहिए। जहां एक ओर हममें सुरक्षा की भावना आयेगी, वहीं दूसरी ओर इस मंडल के माध्यम से हमें अपने अधिकारों की सरकारी सम्बन्धों की जानकारी भी मिलेगी। आजकल हर इलाके में बूढ़े लोगों की ऐसी संस्थायें हैं। इनका सदस्य बन जाने से हमें सबसे बड़ा लाभ तो यह होता है कि कार्यक्रमों में शामिल होकर हमारा मन खुश रहा है, वहीं दूसरी ओर हमारा सामयिक ज्ञान बढ़ता है और घर परिवार से दिन में कुछ

समय के लिए दूर रहकर हम घर के दूसरे सदस्यों के कार्यकलापों में बाधक नहीं बनते हैं। हाल ही में सरकार द्वारा बनाया गया वरिष्ठ नागरिक कानून बूढ़ों की परेशानियां सुझाने के बजाय उन्हें बढ़ाने में सहायक हो रहा है। हिंदुस्तानी तहजीब, परंपराओं और परिवार के संस्कारों के कारण आज भी हमारे यहां बूढ़ों को परिवार में भरपूर सम्मान मिलता है।

हमारे बुजुर्ग, जिन्हें बचपन से ही हमने प्रेम की मूरत के रूप में देखा हैं। दुनिया के लिए भले हम तिनका भी न हों, लेकिन उनके लिए उनकी आंखों के तारे और जिगर के टुकड़े होते हैं। हमारी छोटी सी मुस्कान के लिए वे माता-पिता को भी डांट दिया करते हैं। हर रात उनकी कहानियां सुनकर, हम अपनी कल्पनाओं का एक संसार बनाते हैं और यही संसार हमारे जीवन की अनमोल पूंजी होती है।

वर्तमान पर नजर डालें, तो बुजुर्गों की छवि हमें अपने बाल्यकाल में खींच कर ले जाती है। जब हमारे मन में यह बीज अंकुरित हुआ कि हम इस दुनिया में सबसे अहम और सबसे कीमती हैं। हमारे आंसू बेहद कीमती हैं, जिन्हें हमारे बुजुर्ग व्यर्थ नहीं बहने देते और उनके आगे महंगी से महंगी वस्तुएं भी बेमोल होती हैं। अनमोल होते हैं, तो हमारे वे आंसू, जो हम अपनी जिद को पूरा करने के लिए बहाते हैं और बुजुर्ग उन्हें प्रेम की पुचकार से समेट लेते हैं।

उनके प्रेम का दायरा यहीं तक सिमटा नहीं रहता, बल्कि हम पूरी दुनिया को जीत सकें, उत्तरोत्तर उन्नति करें इसका रास्ता भी वे ही हमारे लिए बनाते हैं। जहां दुनिया हमें कमी का एहसास कराती है, हमें बौना साबित कर हमारे आत्मविश्वास को कम करने का प्रयास करती है, वहीं बुजुर्गों द्वारा दिया गया प्रेम और मानसिक संबल ही हमारे लिए दुनिया पर जीत हासिल करनेवाली पूंजी होती है। उनकी दुआओं का संसार इतना व्यापक होता है कि कई परेशानियों और मुश्किलों से लड़ने की ताकत देकर हमारे लिए रक्षा कवच की तरह कार्य करता है और एक दिन उनकी दुआओं से ही हम उस शिखर पर पहुंच जाते हैं, जिसके सपने हमने बुजुर्गों से कहानियां सुनते हुए देखे थे। निश्चित तौर पर उनके दिए गए संस्कार, प्रेम, काबिलियत और शिक्षा से ही हमारा व्यक्तित्व बनता है।

स्नेह भरा कोई हाथ हमारे सिर पर- कई बार सफलता और ऊंचाइयां पाकर हम खुद को इतना बड़ा मान लेते हैं, कि उसकी बातें हमें बहुत छोटी लगने लगती हैं। दुनिया भर की चहल-पहल में हम उनके अकेलेपन का एहसास नहीं कर पाते और हजार नाटकीय रिश्तों को निभाते हुए हम उनके नि:स्वार्थ प्रेम को भूल बैठते हैं और जब कभी कभार उनसे मिलने का समय आता है, तो हम भौतिक सुख-सुविधाओं से उस प्रेम को ढंकने का प्रयास करते हैं। हम यह नहीं समझ पाते कि उन्हें केवल कुछ वक्त का समय, साथ और प्रेम के दो बोल चाहिए और कुछ नहीं। उनके लिए यही चीजें सारी दौलत और सुविधाओं से बड़ी होती है और वे इसी भाव के साथ जीवन जीते हैं। इसलिए तो, जब कभी हम परेशान होते हैं, तो अनायास ही स्नेह भरा कोई हाथ हमारे सिर पर महसूस होता है, जो हमारी परेशानी और अकेलेपन को भांप लेता है। क्योंकि हम कितने भी बड़े क्यों न हो जाएं, उनके लिए तो हमेशा बच्चे ही होते हैं, जो केवल प्रेम से ही तृप्त होता है।

बुजुर्ग और सामाजिक दायित्व :- बुजुर्गों के पास आपसी प्रेम सद्भावना में कमी के साथ उन्हें पथ प्रदर्शन करने के लिए उनके पास कोई विकल्प नहीं है वहीं दूसरी ओर परिवार का बुजुर्ग एवं वृद्धजन अपने सम्मान और सुरक्षा की आस में भटक रहे हैं। महिलाओं, बच्चों को राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मानव अधिकार प्राप्त है, लेकिन

वृद्धजन को सहारा दे सके ऐसे अधिकार का उल्लेख मानव अधिकार में कहीं नहीं है। मानव अधिकार की सोच नितांत व्यक्तिगत है जिसके कारण समाज में अधिकार के प्रति चेतना बहुत तेजी से बढ़ते जा रही है अपने विरुद्ध हिंसा व अत्याचार के लिये आवाज उठाने के लिए तैयार है। हर महिला व पुरुष अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे हैं, मगर इनके बीच एक और वर्ग है, जो अपने आश्रय व संरक्षणे लिये इनके बीच अपने आपको असहाय पाता है और वह है उस परिवार व समाज का वृद्धजन। वृद्ध यानि कृषकाया, कमजोर मन, शक्तिहीन शरीर का स्वामी या कहें वृद्धावस्था माने जीवन का उत्तरार्ध आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत मनुस्मृति में कहा गया है कि जब ऐसी स्थिति आये तो समस्त सांसारिक सुखों का त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम में चले जाना चाहिए परंतु बदलती संस्कृति और घटते मूल्य के साथ वृद्धों की भी दुनिया इन्हीं सांसारिक जीवन में उलझ कर रह गई है। पश्चिमी रंग में रंगी नई पीढ़ी के विचार और उनकी उन्मुक्तता पुरानी पीढ़ी की सोच के साथ कहीं भी एक नहीं हो पाती फलस्वरूप परिवार वृद्धों की लगातार उपेक्षा बनाने की चाह में जो मां-बाप अपना सर्वस्व अपने बच्चों पर न्यौछावर कर देते हैं वहीं संतान समय आने पर दो वक्त की रोटी के लिये उन्हें बांटने पर भी नहीं चुकते बुढ़ापे में वृद्ध पति-पत्नी को एक-दूसरे की सबसे अधिक आवश्यकता होती है उस वक्त उनकी संतान दोनों का बोझ एक साथ उठाने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। यदि बुजुर्ग वृद्ध या अधिक उम्र या बीमारी के कारण घर का कार्य करने से लाचार है तो उसकी स्थिति तो परिवार में अतिदयनीय हो जाती है, आज हर घर में यही कहानी दोहराई जा रही है। विदेशों की तरह आज भारत में भी अनेक ओल्ड एज होम यानि वृद्धाश्रम का फैशन चल पड़ा है, जब भी मां बाप बोझ लगे, भेज दिया वृद्धाश्रम में विषम परिस्थितियों में भी किसी मां-बाप ने अपने बच्चों को आश्रम में नहीं छोड़ा तो उनके बच्चे अपने बूढ़े मां-बाप को वृद्धाश्रम भेजने की कैसे सोच लेते हैं। आज सारे रिश्ते-नाते, नापतौल कर निभाए जाते हैं, जिसके तराजू में मां-बाप पहले आते हैं। ऐसा करते समय वे ये क्यों भूल जाते हैं कि कल उन्हें भी वृद्ध होना है और उनकी संतान भी उनके प्रति वैसा ही व्यवहार कर सकती है, जैसा वे आज कर रहे हैं, क्योंकि इतिहास हमेशा अपने को दुहराता है।

प्राय: देखा गया है कि जिन परिवारों में बच्चे अपने दादा-दादी या नाना नानी के संग पले बढ़े होते हैं, उन बच्चों के व्यक्तित्व में काफी संतुलन होता है। उनमें विश्वास, संस्कृति प्रेम, मानवीय मूल्यों के प्रति चेतना, पारिवारिक संस्कार बहुत अधिक होता है, हर परिस्थिति का सामना वे सहजता से कर लेते हैं किंतु एकाकी परिवार के बच्चे जिसकी दुनिया पाठशाला और दूरदर्शन तक सिमटी है, वे हर पल कुण्ठा से ग्रसित, संघर्ष करने में सक्षम और समय के अनुसार अपने आपको परिवर्तित करने में असफल रहते हैं, निजी जीवन भी असफलताओं से भरा होता है। यह दोष नई पीढ़ी का नहीं बल्कि उस शिक्षा का प्रतिफल है सो उन्हें झूठे आत्मनिर्भरता और निरंकुशता की सीख देता है और रिश्तों के महत्व से उन्हें अंजान रखता है। आज के समय में वृद्धजनों के साथ रहना सौभाग्य की बात है। बहुत कम परिवार हैं जिन्हें वृद्धों का आशीर्वाद प्राप्त होता है। आज की पीढ़ी को रिश्तों की अहमियत को समझना होगा। वे आज कितनी ही ऊंचाई को पा लें लेकिन जीना तो उन्हें जमीन पर ही होगा। जिन घरों में बुजुर्गों माता-पिता का आशीर्वाद है वहां परिवार का सुख है, खुशहाली है। अर्थों में वही परिवार है जहां वे एक दूसरे के सुख दु:ख को महसूस कर सकें।

एक साथ मिलकर उनका सामना कर सकें। परिवार को जोड़ने में अहम भूमिका घर की बहू की है। जिस तरह महिला या बहू परिवार में समाज में देश में अपने अधिकार की लड़ाई लड़ रही है, दहेज हिंसा का विरोध कर उसी तरह उसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति भी जागरूक होना चाहिये, अपने परिवार के सभी सदस्यों का विशेष रूप से बुजुर्गों का उसी तरह से देखभाल करना चाहिये वहीं सम्मान देना चाहिये जो वह दूसरों से अपने लिए अपेक्षा करती है। क्योंकि, प्रेम, सम्मान और प्रेम कई गुना उसे वापस भी मिलता है। बुजुर्ग भी अपने परिवार में समय की मांग को देखते हुए युवा पीढ़ी के विचारों का सम्मान करते हुए उनको सहयोग व प्रेम से एक दिशा दें, अपने विचारों में परिवर्तन लाएं। उन्हें कठिन परिस्थितियों से लड़ने के लिए प्रेरित करें, पारिवारिक मूल्यों व संस्कारों के प्रति जागरूक रहने के लिए प्रेरित करें। नई पीढ़ी ने काम की टोका-टाकी करने की बजाए, रचनात्मक कार्यों में अपने आपको व्यस्त रखें। सरकार को भी बुजुर्गों की सहायता हेतु आगे आना चाहिए।

यदि आज के बुजुर्ग अकेलेपन की समस्या से इतने परेशान हैं तो आनेवाली पीढ़ी का ठौर क्या होगा? यह तो और गंभीर समस्या है। विदेश पलायन से ममता की डोरियां शीघ्र टूटती दिखाई दे रही हैं हर कहीं। आए दिन अपना घर-बार बेच कर लोग अपने बच्चों को विदेश भेज रहे हैं। विरले ही हैं जो मुड़कर वापस देखते हैं। अधिकतर तो वहां जाकर विवाह करके वहीं के हो जाते हैं।

दो मीठे बोल की चाहत- हमारे देश में भी यदि बुजुर्गों को अपने परिवार में ही दयनीय दशा में रहना पड़ता है तो वृद्धाश्रमों का चलन होना चाहिए। कई स्वयंसेवी संस्थाएं ऐसे कार्यों में जुटी भी हैं। दिल्ली व पंजाब में निश्चित रूप से यह विचारधारा फलीभूत हो रही है। सरकार की ओर से भी इस पर ध्यान देना आवश्यक है। जीवन के अंतिम दिनों में बुजुर्गों को उनकी मिट्टी से दूर नहीं करना चाहिए। मानसिक व्याधियां शरीर को जर्जर कर देती हैं। दो मीठे बोल व सहानुभूति के कुछ शब्द बूढ़े व्यक्ति के जीवन को खुशी से भर देते हैं। धन्य हैं वे, जो अपने बूढ़े माता-पिता को पूरा सम्मान देते हैं व दिन-रात उनकी सेवा करते हैं। किस्मत वाले हैं वे बुजुर्ग, जिनको परिवार में यथोचित आदर सत्कार मिलता है।

असुरक्षा की भावना- असुरक्षा की भावना आज के युग में बुजुर्गों के समक्ष सबसे भयानक चिन्ता है। आज की युवा पीढ़ी का अपने माता-पिता एवं परिवार के प्रति बेरूखी का रवैया देखते हुए यह स्वाभाविक भी है।

संयुक्त परिवार का बहिष्कार और एकल परिवार का चलन बुजुर्गों के लिए खतरे की घंटी है।

प्राचीन काल में लोग बुढ़ापे के लिए धन संचित करते थे कि उस धन के लालच में बेटे-बहू उनकी सेवा-सुश्रुषा करेंगे जबकि आज भी धन संचित किया जाता है लेकिन उद्देश्य भिन्न है। आज धन है तो बुढ़ापे में आपको किसी के आगे हाथ नहीं फैलाने पड़ेंगे, आपका इलाज हो जाएगा।

सेवा करने के लिए आप नौकर या आया, नर्स कुछ भी रख लेंगे क्योंकि किसी भी बच्चे के पास आपके साथ रहने का समय नहीं है। वे एक बार आकर आपका हालचाल पूछने की औपचारिकता अवश्य निभा जाएंगे और आप उसीसे धन्य हो जाएंगे। मोह का बंधन है आखिर...

बढ़ती उम्र सीमा, सामाजिक और पारिवारिक उपेक्षा, उस पर सरकारी उदासीनता ने बुजुर्गों को इस कदर अलग थलग

कर दिया है कि बुढ़ापा उनके लिए अभिशाप बन गया है। कहने को बुजुर्गों को वरिष्ठ नागरिक का तमगा देकर उन्हें कुछ सुविधाएं देने की औपचारिकता जरूर की गई है, लेकिन कुल मिलाकर बुजुर्गों की सुध लेनेवाला कोई नहीं है। आंकडों के मुताबिक १० करोड़ बुजुर्ग एकाकी जीवन बिताने को विवश हैं। समय-समय पर हुए सर्वेक्षण बताते हैं कि बुजुर्ग उपेक्षा, दुर्व्यवहार और प्रताड़ना के शिकार हो रहे हैं।

सुरक्षा की दृष्टि से तो वृद्धाश्रम बुजुर्गों के लिए सही स्थान है। वहाँ वे अपने ही हमउम्र बुजुर्गों के साथ अपना अकेलापन बाँट सकते है। लेकिन देश के हर शहर में तो ये सुविधा उपलब्ध नहीं है। जो लोग अपने बुजुर्गों के साथ गलत व्यवहार करें उनका सामाजिक बहिष्कार कर देना चाहिये।

बुजुर्गों का इलाज मुफ्त होना चाहिये। हर कॉलोनी में बुजुर्गों का क्लब बनना चाहिये जिससे वो आपस में एक दूसरे से मिले और एक दूसरे का हाल जान सकें। हर कॉलोनी में रहनेवाले बुजुर्गों की सूची बनायें और समय समय पर उनका हाल जाने। उनकी जरूरतों के बारे में जाने। बुजुर्गों के लिए हेल्पलाइन शुरू करें जिस पर जरूरत पड़ने पर वो सहायता ले सकें।

बचपन की यादों में खुश, युवावस्था की तपिश से गुजरता हुआ व्यक्ति जब वृद्धावस्था के अनुभव के सागर में पहुंचता है तो उसके पास समाज में विशिष्ठ स्थान और जीवन भर के खट्टे-मीठे अनुभव तो होते हैं, परंतु समय के साथ उसका शरीर और मानसिक क्षमताएं दुर्बल हो जाती हैं। जिनका समाधान मनोवैज्ञानिक समझ-बूझ से न किया जाये तो मानसिक रोग बनकर उभर सकती हैं जो कि उसकी शारीरिक अक्षमताओं को और भी जटिल बना सकती हैं। पाश्चात्य देशों की तुलना में भारत में अधिकतर वृद्ध परिवार का हिस्सा ही हैं, परंतु धीरे-धीरे संतानों के व्यवसाय के कारण पलायन तथा परिस्थितिवश अब वृद्धों को अकेले रहने की विवशता होने लगी है, इसे एम्पटी नेस्ट सिंड्रोम के नाम से जाना जाता है। औसत आयु के अनुसार ६०-६५ वर्ष की उम्र पर वृद्धावस्था की शुरूआत मानी जाती है। इसी अवस्था में व्यक्ति को निर्भरता का अहसास होने लगता है। यह भावना उनके मनोवैज्ञानिक ढांचे को भी प्रभावित करती है।

वृद्धों के प्रति परिवार का दृष्टिकोण- मनोचिकित्सकों द्वारा वृद्धों के बारे में बताई गई समस्याओं में मुख्यतया उनका जिद्दी होना, अड़ियल स्वभाव, चिड़चिड़ापन, बच्चों जैसा व्यवहार, साधुसंतों के संपर्क में रहना, रहन-सहन के परिवर्तन के प्रति विरोध आदि हैं। ये समस्याएं वृद्धावस्था की सामान्य सुरक्षा प्रणाली हैं, परंतु रोग बढ़ जाने पर यह स्वभाव तीव्र हो जाता है। वृद्धावस्था में अवसाद, सीजोफ्रेनिया, परसनेलिटी डिसआर्डर, एग्जाइटी डिसआर्डर या डिमेन्शिया आदि रोगों के हिस्से हो सकते हैं।

समस्याएं- व्यक्ति में मृत्युभय अवचेतन या अर्धचेतन अवस्था में रहता है, परंतु बुढ़ापे में यह परोक्ष या अपरोक्ष रूप में प्रबल हो जाता है, जिसे वृद्ध नकारते रहते हैं। स्वास्थ्य एवं जीवनशैली के अलावा पुरानी बातों पर आत्मग्लानि, विरक्ति का भाव महसूस होना, परिवार के सदस्यों पर उपेक्षा का आरोपण आदि भी हैं जो उनकी मानसिकता में आये बदलाव को दर्शाती हैं। याद्दाश्त में कमी इस अवस्था की खास मानसिक समस्या है, इसमें कमी होना मस्तिष्क में रासायनिक व जैविक परिवर्तनों के फलस्वरूप एक सामान्य प्रक्रिया है। अवसाद, ट्यूमर, सेरीब्रोवास्क्यूलर एक्सीडेंट्स, उच्चतनाव, मधुमेह आदि में याददाश्त में विशेष हानि होती है।

सामान्य व्यवहार को रोग न बनने दें- संयुक्त परिवार की प्रथा से वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिक फायदे होते हैं। अलग-अलग उम्र के विचारों से उनके मनोवैज्ञानिक ढांचे में लचीलापन आता है। एकल परिवार की स्थिति में पुस्तकालय, मनोरंजन, केंद्र, सामाजिक संगठनों, प्राकृतिक एवं योग केंद्रों, धार्मिक गतिविधियों के जरिए मानसिक समन्वय का मौका मिलता है। लगातार व्यस्त रहने से उनके अवसाद को रोका जा सकता है।

इस उम्र में बायोक्लॉक सही रखना अति आवश्यक है। विरक्ति, मानसिक अवसाद, आकुलता की अवस्था से बचने के लिए समय प्रबंधन एवं आरामदायक पद्धतियों का व्यवहार में लाना सफल उपाय है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता और सही समय पर उपचार वृद्धावस्था में विकलांगता से निजात दिलाती है।

संवेदना जगाना जरूरी- रिश्तेदारों का तो खैर बुजुर्गों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया होने का आधार ही नहीं बनता, अपने सगे भी उन्हें सम्मानजनक सहारा नहीं देते। ५६ फीसदी मामलों में तो सगा बेटा ही इसके लिए जिम्मेदार होता है। २३ फीसदी मामलों में पुत्रवधुओं पर उंगलियां उठती हैं। इस समस्या का एक पहलू यह भी है कि केवल ४७% मामलों में ही बुजुर्ग अपने साथ हुए दुर्व्यवहार की शिकायत करते हैं। आधे से ज्यादा इसकी हिम्मत नहीं जुटा पाते। इन ५३ फीसदी मामलों में से करीब ८० फीसदी इस शर्म से शिकायत नहीं करते क्योंकि उन्हें लगता है कि इससे परिवार की बदनामी होगी। बुजुर्गों की उपेक्षा या अपमान करने की घटनाए बड़े शहरों में ज्यादा बढ़ रही हैं। सामाजिक व्यवस्था परिवार केंद्रित होने की वजह से परिवार ही बुजुर्गों को सहारा देने का मुख्य आधार है। देश में ५८% बुजुर्ग परिवार के साथ रहते हैं। बुजुर्गों का मानना है कि यह समस्या लाइलाज नहीं है। ८६% की राय है कि युवा वर्ग में संवेदना जगाकर और पीढ़ियों के बीच बेहतर संपर्क कायम कर इस समस्या का कारगर समाधान तलाशा जा सकता है। १४% इसे समाधान नहीं मानते हैं। उन्हें लगता है कि बुजुर्गों को आर्थिक रूप से निर्भर बनाकर ही उनकी स्थिति सुधारी जा सकती है।

महिलाओं की संख्या ज्यादा- उम्र सीमा बढ़ना भी बुजुर्गों के लिए समस्या बनता जा रहा है। ६० साल से ज्यादा उम्र के लोगों की संख्या कुल आबादी के साढ़े ७ फीसदी के आसपास है। देश के २० बड़े राज्यों में से १७ में साठ साल से ज्यादा उम्र के लोगों में महिलाओं की संख्या पुरुषों के मुकाबले ज्यादा है और वे उपेक्षा व प्रताड़ना का ज्यादा शिकार भी हैं। इसे आधुनिकता का दोष मानें या युवा पीढ़ी में संस्कारों की कमी, पर ठीकरा फोड़ें या एकल परिवारों के बढ़ते चलन से बुजुर्गों को सामाजिक व्यवस्था की मुख्यधारा से काटने की प्रवृत्ति का हवाला दें, देश के हर चार में से एक और कुछ मामलों में तो हर ३ में १ बुजुर्ग शारीरिक प्रताड़ना का शिकार है।

बुढ़ापे में करना पड़ता है काम- असल मुद्दा आर्थिक निर्भरता से जुड़ा है। घर-परिवार और सरकार से पर्याप्त सहारा न मिल पाने की वजह से ६० साल से ज्यादा उम्र के ६५% ग्रामीण और ३५ फीसदी शहरी बुजुर्गों को गुजारे के लिए बुढ़ापे में काम करना पड़ता है। कम शिक्षित और कम प्रशिक्षित होने की वजह से महिला बुजुर्गों की हालत ज्यादा दयनीय है।

बुजुर्गों को काम करने का अवसर मिले तथा उन्हें अपने हिसाब से उन्हें चुनने या छोड़ने की स्वतंत्रता मिले। बुजुर्गों का समाज के साथ जुड़ाव रहे। समाज में बनाए जानेवाले नियम में उनकी भागीदारी हो। बुजुर्गों की स्वास्थ्य-केंद्रों तक पहुंच हो ताकि वो अपनी शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक जरूरतों को पूरा कर सकें। बुजुर्गों को हर तरह का सामाजिक

अवसर मिले ताकि वो अपनी शैक्षिक, आध्यात्मिक, मनोरंजक तथा सांस्कृतिक जरूरतें अपने हिसाब से पूरी कर सकें। बुजुर्गों को इज्जत से रहने का माहौल दिया जा सके। उन्हें किसी किस्म की असुरक्षा न हो, इसका ख्याल रखा जाए। मानसिक, शारीरिक, आर्थिक या अन्य किसी भी किस्म से उन्हें शोषित न किया जाए, न ही उन्हें किसी तरह से प्रताड़ित किया जाए इसका भी ख्याल रखा जाए।

भारत में पहल- इस मामले में भारत की ओर से भी कई रूपों में कई तरह की कार्यवाही हुई है।

संवैधानिक कदम- अनुच्छेद (आर्टिकल) ४१- काम करने, शिक्षा तथा जरूरत के हिसाब से लोगों की मदद। सरकार अपने आर्थिक तथा विकास की सीमा के अन्दर शिक्षा, काम करने तथा बुढ़ापे, बीमारी या किसी कारणवश अगर आदमी किसी क्षेत्र में कोई काम ना कर सके (शारीरिक या मानसिक रूप से दिव्यांग) तो उसकी मदद के लिए स्थितियां बनायी जानी चाहिए। अनुच्छेद (आर्टिकल) ४६ - सरकार को आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए स्थितियां बनानी चाहिए तथा इस बात का ख्याल रखा जाना चाहिए कि इन कमियों की वजह से किसी प्रकार का शोषण न हो रहा हो। दुर्भाग्यवश, ये दोनों आर्टिकल चैप्टर आयवी के नीति-निर्देशक तत्व के अन्दर आते हैं। इन्हें किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं किया दी जा सकती। इसके अन्दर हर राज्य की सरकार को नियम बनाने होते हैं। हमारी इस क्षेत्र में ऐसी नाकामी है कि ऐसे कानून किसी भी राज्य सरकार ने अब तक नहीं बनाए हैं।

रिश्तेदारी के एक डॉक्टर से बातचीत के दौरान, देहात में रहते उनके वृद्ध माता-पिता का उल्लेख आया तो वे शुरू हो गए, उन्हें कितना समझाया, हमारे मकान में ढेर सारी जगह है, पर रहनेवाले नहीं। हमें बच्चों की टहल के लिए और वैसे भी घर में रहनेवालों की सख्त जरूरत है, लेकिन वे अड़े रहते हैं कि रहेंगे तो अपने ही ठौर में। लाख मिन्नतों के बावजूद नहीं समझते। मैंने कहा, यदि तुम्हारा भव्य मकान न होता, यदि तुम्हें अपनी गरज से उनकी जरूरत न होती, तब अगर उनसे साथ रहने का आग्रह- अनुग्रह करते तो वे तुम्हारी मंशा अवश्य भांप लेते और सहर्ष चले आते।

मां-पिता से अलग रहते, पद-प्रतिष्ठा और संपन्नता हासिल करने के बाद बच्चों की परवरिश के दौरान उनके लिए सहसा उमड़ता प्रेम, प्रेम नहीं शुद्ध स्वार्थ है। नेपथ्य में सुनाई पड़ता है, मां-बाप का आनें-जाने का भाड़ा, खिलाई आदि सब जोड़ लें तो भी नौकरों से सस्ते पड़ते हैं, नन्हों को भरोसेमंद देखभाल और सामाजिक प्रतिष्ठा अलग। स्वयं को दुरुस्त और खुशहाल रखना जरूरी है, तभी आप दूसरों की सेवा बेहतर कर सकेंगे। किंतु यह तो स्वार्थ की हद ही हुई कि वर्षा का पानी अपने ही खेत में बरसने की मन्नत मांगें। अपना एक बचाने के लिए दूसरे के सौ खर्चवाता मन नहीं समझता कि निजी स्वार्थ साधने में दूसरों के हितों की उपेक्षा प्राकृतिक विधान के प्रतिकूल है और इसी दुनिया में पाई-पाई का हिसाब चुकाना पड़ता है।

अपनी यात्रा पूर्ण होने पर हमें उसका सुख लेना चाहिए - आज यह बात युगों पुरानी लगती है। एक बार मैं अपनी मां और बेटी के साथ कहीं जा रही थी, तभी एक सब्जीवाला दिखा। मैंने उससे किसी चीज का दाम पूछा। उसने जवाब में कहा, माताजी, कितनी लोगी? यह सुनने की देर थी कि मेरी दोनों पीढ़ियां हंसते-हंसते बेहाल होने लगीं। दरअसल कम उम्र में ही मेरे बाल सफेद होने लगे थे। फेरी वालों को उम्र देखने की फुरसत कहां। जैसे उसने कहा, मैंने वैसे ही

सुना और इससे परेशान नहीं हुई। कुछ दिन बाद एक प्रौढ़ा को दुकानदार को फटकारते सुना, तुम्हें मैं माताजी दिखती हूं? अब हंसने की बारी मेरी थी। हम बढ़ती उम्र से इतना घबराते क्यों हैं?

विचित्र बात यह है कि जल्दी मरना भी नहीं चाहते। अपने बच्चों से बाबा, नाना कहलवाने की जगह बड़े पापा कहलवाते हैं। असलियत से बचने की कोशिश के पीछे अहं या असुरक्षा की भावना होती है। अपनी उम्र अपने शारीरिक परिवर्तनों को अस्वीकार करने की चेष्टा मन को दुखी करती है। कुछ लोग इस उम्र तक पहुंचने पर चिड़चिड़े हो जाते हैं। हर जगह नुक्स निकालते हैं। वे भूल जाते हैं कि जैसे वे अपने यौवन में किसी की सुनने का धैर्य नहीं रखते थे, वैसे ही उन्हें सहना भी लोगों को प्रिय नहीं होगा। बढ़ती उम्र रिश्तों या खुशी में बाधक न होकर सहायक होना चाहिए। खाली न बैठकर व्यस्त रहने में अकेलापन नहीं लगेगा। व्यस्त, तनावपूर्ण युवा पीढ़ी का सहयोग कर समय का सदुपयोग करना बेहतर है। अपनी सीमाओं से झिझकने की जगह, क्षमताओं पर गर्व करने से मन ताजगी और प्रफुल्लता से भर उठता है। हर किसी को सक्रिय जीवन से अवकाश मिलता है। होड़ भरा जीवन, तनाव भरी दिनचर्या, मशीन की तरह बराबर चलते जाना... जब खत्म हो जाता है, तब बौखला जाना स्वाभाविक है। पर जैसे स्टेशन आने पर उतरना जरूरी है, वैसी मनस्थिति बना लेनी चाहिए। सफल यात्रा पूरी होने पर राहत भी तो मिलती है। उसी का सुख लेना चाहिए। लोग सोचते हैं, कहना आसान होता है, करना नहीं।

मनश्चिकित्सा का उद्देश्य मन को समझाना, उसके संघर्षों को सुलझाना, यथार्थ स्वीकार कर वैसे ही लक्ष्य निर्धारित करना होता है। तकनीकी मदद से भी उम्र बढ़ना रोका नहीं जा सकता। हर विचार के भाव हमारी निरापदा प्रतिरोधक क्षमता को संदेश भेजते हैं, सकारात्मक उसे स्वस्थ करते हैं तो नकारात्मक हानि पहुंचाते हैं। उम्र सिर्फ शरीर को नहीं, मन को भी प्रभावित करती है। अत: उसे ताकतवर बनाना जरूरी है। बुजुर्गों के लिए सबसे बड़ी अध्यात्मिकता समझौता करने में है।

वृद्ध होने के बाद इंसान को कई रोगों का सामना करना पड़ता है। चलने-फिरने में भी दिक्कत होती है। यह हमारी जिंदगी का एक सच है कि आज जवान है उसे कल बूढ़ा होना होगा और इस सच से कोई भी नहीं बच सकता, लेकिन इस सच को जानने के बाद भी जब हम बूढ़े लोगों पर अत्याचार करते हैं। हमें समझना चाहिए कि वरिष्ठ नागरिक समाज की अमूल्य विरासत होते हैं। उन्होंने देश और समाज को बहुत कुछ दिया है। सारा संसार उनका कर्जदार होता है। क्योंकि बहुत कुछ सीख देते हैं। उनके अनुभव में जीवन दर्शन छिपा होता है। उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का व्यापक कार्यानुभव भी होता है। आज का युवा वर्ग राष्ट्र को उंचाइयों पर ले जाने के लिए वरिष्ठ नागरिकों के अनुभव से लाभ उठा सकता है। अपने जीवन की इस अवस्था में उन्हें देखभाल और यह एहसास कराए जाने की जरूरत होती है कि हमारे लिए खास महत्व रखते हैं। हमारे शास्त्रों में भी बुजुर्गों का सम्मान करने की राह दिखलाई गई है।

आरोग्यता और कल्याण को बढ़ावा- वैसे तो भारत में भी बुजुर्गों की रक्षा और उन्हें अधिकार दिलवाने के लिए भारत में भी कई कानूनों का निर्माण किया गया है, लेकिन आज भी उनका पालन सही तरीके से नहीं किया जाता। केंद्र सरकार ने भारत में वरिष्ठ नागरिकों के आरोग्यता और कल्याण को बढ़ावा देने के लिए वर्ष १९९९ में वृद्ध सदस्यों के लिए राष्ट्रीय

नीति तैयार की है। जिसके तहत व्यक्तियों को स्वयं के लिए तथा उनके पति या पत्नी के बुढ़ापे के लिए व्यवस्था करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और साथ ही परिवारवालों के वृद्ध सदस्यों की देखभाल करने के लिए प्रोत्साहित करने का भी प्रयास किया जाता है।

लूटमार की घटनाएं- इसके साथ ही २००७ में माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण विधेयक संसद में पारित किया गया है। इसमें माता-पिता के भरण-पोषण, वृद्धाश्रमों की स्थापना, चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था और वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा का प्रावधान किया गया है। इन सबके बावजूद वृद्धों की व्यथा और लूटमार की घटनाएं देखने को मिलती हैं। वृद्धाश्रमों में बढ़ती संख्या इस बात का प्रमाण है कि वृद्धों को उपेक्षित किया जा रहा है। अगर समाज के इस अनुभवी स्तंभ को यूं ही नजरअंदाज किया जाता रहा तो हम उस अनुभव से भी दूर हो जाएंगे जो इनके पास है।

परिवार से दूर रहने पर विवश- जब पौधा बोया जाता है तो उससे यही उम्मीद की जाती है कि उम्र बढ़ने के साथ-साथ वह अपना फल और छाया अन्य लोगों को देगा, लेकिन जब वह पेड़ बूढ़ा हो जाता है तो किसी का ध्यान उसकी ओर नहीं जाता। कोई उस वृक्ष की ओर ध्यान नहीं देता जिसने पूरी जिंदगी दूसरों का हित सोचा। इतना ही नहीं उसे मात्र एक बोझ ही मान लिया जाता है। यह एक पेड़ की कहानी नहीं, बल्कि हर उस इंसान की कहानी है जो उम्र के बढ़ते पड़ाव में परिवार द्वारा वृद्धाश्रमों में धकेल दिए जाते हैं। उन्हें अपने परिवार से ही दूर रहने पर विवश कर दिया जाता है। उम्र बढ़ने का एक अर्थ अनुभव बढ़ने से भी लिया जा सकता है लेकिन आज की युवा पीढ़ी जो स्वयं से आगे कुछ सोच ही नहीं पाती वह परिवार के बुजुर्गों को अपने ऊपर एक बोझ समझने लगती है। जिस परिवार को व्यक्ति अपनी जान से भी ज्यादा प्यार करता है जिसकी खुशियों के लिए अपनी खुशियां छोड़ देता है वही परिवार उसके वृद्ध होते ही उसे तुच्छ समझने लगता है, वैसे तो हम अपने संस्कारों की बात करते हैं लेकिन बुजुर्गों के साथ ऐसे व्यवहार को देखकर हमारी ओछी मानसिकता प्रदर्शित होने लगती है।

उम्र बढ़ने के साथ परेशानियां एवं बीमारियां बढ़ जाती हैं एवं शारीरिक, मानसिक सक्रियता में कमी आ जाती है। इनमें से अधिकांश को सरलता से नियंत्रित किया जा सकता है एवं कुछ उपायों से इन्हें बढ़ने से रोककर बुढ़ापे को सुखमय बिताया जा सकता है।

दिनचर्या सही हो- उम्र बढ़ने के साथ-साथ अपनी दिनचर्या को सही रखना चाहिए। सुबह उठने से लेकर रात के सोने तक अपना सभी काम संयमित, व्यवस्थित, नियमित एवं समय पर करना चाहिए। सोना, जागना, शरीर की बाहरी, भीतरी सफाई, भोजन, व्यायाम, टहलना, ध्यान पठन-पाठन, मनोरंजन आदि सभी जीवन के लिए आवश्यक हैं। इन्हें सहीं रखें।

व्यस्त रहें- बुढ़ापे को नाकारा न बनाएं, व्यर्थ में समय न गंवाएं। घर-परिवार के छोटे-छोटे काम में सहयोग करें। उनसे घुल-मिलकर समय बिताएं। बच्चे, बड़ों से लेकर हम उम्र के व्यक्ति से, पड़ोसी एवं अपने आसपास के लोगों से मित्रतापूर्ण व्यवहार रखें। इससे परेशानियां कम होंगी, उम्र बढ़ेगी, स्वस्थ रहेंगे और समय का सदुपयोग होगा।

भोजन उपयुक्त हो- सयम पर सही मात्रा में भोजन करें। वह पौष्टिकता से परिपूर्ण हो। तली, भुनी एवं अधिक नमक, मिर्च, मसाले वाली चीजें, मीठी चीजों से बचें, इन्हें कम खाएं। भोजन ताजा, सादा व सुपाच्य हो। उम्र बढ़ने के साथ

पाचनक्रिया में कमी आती है अतएव भोजन ज्यादा न कर सामान्य मात्रा में करें। जलपान जरूर करें। मौसमी फल, साग, सब्जी का स्वाद जरूर लें। दूध, दही का उपयोग करें। समोसा, कचौड़ी, चाट, चाय, कॉफी, तंबाकू, नशा, धूम्रपान से परहेज करें। भोजन ऐसा लें जो जल्दी पच जाए। भोजन संतुलित एवं पोषण वाला हो। भोजन में फल, साग-सब्जी अवश्य हो। भोजन गर्म, ताजा, सादा, सुपाच्य हो। नमक, शक्कर, मिर्च, मसालों की अधिकता से बचें। सभी प्रकार के नशों से दूर रहें। चाय, काफी कम लें।

शारीरिक सक्रियता जरूरी- भौतिक सुख-साधनों के बाद टहलना, श्रम, व्यायाम एवं काम करने में लापरवाही ना करें। वह कार्य अवश्य करें जिससे शारीरिक सक्रियता बनी रहें क्योंकि इसकी सक्रियता से बीमारियां अपने आप कम व दूर रहती हैं और व्यक्ति स्वस्थ रहता है। अकर्मण्य व्यक्ति के शरीर में रोगों का वास होता है। मन के स्वस्थ रहने से शरीर भी स्वस्थ रहता है इसलिए अपने मन को सही व स्वस्थ रखें। बुढ़ापे में थकाने वाला शारीरिक, मानसिक कार्य न करें। काम और आराम का सही समायोजन हो।

यदि कोई बीमारी हो तो उसका दवा उपचार जरूर कराएं। निर्धारित दवा लें। समय-समय पर चिकित्सक से मिलें। सुस्त न रहें। सदैव सक्रिय रहें। अधिक खर्च न करें। तनाव न पालें। घर-परिवार की परेशानी से भागे नहीं, उसे सुलझाएं। किसी भी चीज की अति न करें। यह नुकसान पहुंचाती है। अपने जरूरी आवेगों को न रोकें। बीमारी को न छिपाएं। सभी का उपचार संभव है। किसी को छिपाने, दबाने से परेशानी बढ़ती है। जरूरी चिकित्सा परीक्षण करवाने से कतराएं नहीं। कभी-कभार अपरिचितों के बीच बैठकर उनकी बातों का आनंद लें। कोई भी दिखे, मुस्कुराएं जरूर।

एक इंसान की जिन्दगी सीधी ना होकर काफी टेढ़ी मेढ़ी होती है। जिस इन्सान की जिन्दगी में कोई झुकाव नहीं आता, उस इन्सान को असली जिंदगी का पाठ कभी सीखने को नहीं मिल पाता। जमाना बड़ी तेजी के साथ बदलता जा रहा है, जिसे बिना अपने बुजुर्गों की सलाह लिये एक कदम भी उठाना समझदारी की बात नहीं होगी। हम अपने बुजुर्गों को घर में हमेशा खाली बैठे देख, केवल उनका मजाक उड़ाते हैं, जो कि बिल्कुल भी सही बात नहीं है।

साथ बैठकर देखें- अगर आपको जिन्दगी में बहुत आगे बढ़ना हो तो उनके साथ कुछ मिनट बैठकर जीवन की चर्चा करें। ऐसे में आप पाएंगे कि उन्हें जिन्दगी जीने का कितना ज्यादा तजुर्बा हो चुका है और वे आपकी कितनी ज्यादा मदद कर सकते हैं।

बुजुर्गों से सीखिए ये बड़ी बड़ी सीख- जिन्दगी का अनुभव- जिस तरह से वे आपको यह बता सकते हैं कि वे किस तरह से मुसीबतों का सामना करते थे, यह अनुभव कोई और नहीं बता सकता।

लोगों से कैसे व्यवहार करें- जिन्दगी में आपको तरह-तरह के लोग मिल जाएंगे, जिनमें से कुछ अच्छे होंगे और कुछ से मिलकर आप तौबा कर लेंगे। बुजुर्गों ने पूरी दुनिया देखी है और उन्हें पता है कि किस प्रकार के लोगों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।

किसी सगे को खो देने का दर्द- यह बहुत ही जरूरी जिन्दगी का सबक है जो आपको उनसे जरूर सीखना चाहिए। वे भी इस जिन्दगी के दुखद पड़ाव से जरूर एक बार गुजर चुके होंगे। आपकी नानी या दादाजी भी आपको साहस और आशा

प्रदान कर सकते हैं।

जिन्दगी में पछतावा ना करना- हममें से कई लोग समय पर सही निर्णय नहीं ले पाने या फिर किसी अपने से खराब तरीके से बोल देने के कारण बहुत पछताते हैं और खुद को कोसते चले जाते हैं। लेकिन अगर बुजुर्गों का सहारा लेकर इस परेशानी को दूर किया जाए तो यह समस्या भी दूर हो सकती है।

किसे दें सबसे ज्यादा अहमियत- जिन्दगी में हमें करने के लिए इतना कुछ है कि हम यह भूल जाते हैं कि हम किस चीज को सबसे ज्यादा अहमियत दें। यह बात आप बूढ़े लोगों से सीख सकते हैं कि जिन्दगी में हमेशा सबसे पहले किस इन्सान या फिर किस काम को सबसे ज्यादा अहमियत देनी चाहिए।

बूढ़े होकर ही जानेंगे हम अकेलेपन का दर्द - वृद्धावस्था वह चेतना, जो कि हमें अपने जीवित होने की अनुभूति देती है, उम्र के हिसाब से कम या ज्यादा नहीं होती। चेतना के स्तर पर एक बच्चे और एक बूढ़े में कोई फर्क नहीं किया जा सकता। दोनों के भीतर एक बराबर प्राण हैं यानी एक बराबर चेतना। इसीलिए यह न समझ लिया जाए कि कोई व्यक्ति बूढ़ा हो गया है, तो उसकी मानसिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतें भी कम हो गई हैं। उन्हें भी पसंदीदा खाना अच्छा लगता है। उन्हें भी दोस्ती के बीच गप्पें मारते हुए हंसना-हंसाना अच्छा लगता है। उन्हें भी मनोरंजन की जरूरत होती है। उनके लिए भी ध्यान, व्यायाम और योग आदि उतना ही जरूरी है, जितना आप अपने लिए समझते हैं। एक लड़की एक बूढ़ी औरत की ओर देखते हुए रो रही है। यह बूढ़ी असल में उसकी दादी है, जो कि वृद्धाश्रम में रहती है। कहानी यह है कि लड़की को उसके माता-पिता ने बताया हुआ था कि दादी अपनी मर्जी से कहीं और रहती हैं। संयोग से स्कूलवाले अपने विद्यार्थियों को वृद्धाश्रम दिखाने ले जाते हैं, तो यह लड़की दादी को वहां पाकर फूट-फूटकर रोने लगती है। बताने की जरूरत नहीं कि दादियों और पोतियों के बीच कितना प्यार होता है। उसकी दादी उसके माता-पिता के कहने पर नहीं, बल्कि अपनी मर्जी से वृद्धाश्रम में रह रही थी। वह अपने माता-पिता पर कोई लांछन नहीं चाहती। मगर ऐसा अगर मान भी लिया जाए कि दादी अपनी ही मर्जी से वृद्धाश्रम रह रही थी, क्या यह गलत नहीं है। कौन दादी होगी जो पूरा खयाल रखनेवाले बेटे, बहू और इतनी भावुक प्यारी पोती के बीच घर के ऐशो-आराम को छोड़कर वृद्धाश्रम जाकर रहे। और अगर दादी ने ऐसा चाह भी लिया था, तो क्या बेटे को जिद करके उसे रोकना नहीं था। क्या उसे यह याद दिलाए जाने की जरूरत है कि जब वह छोटा था, तो उसने न जाने कितनी बार कितनी-कितनी जिद करके इसी मां से कैसी-कैसी बातें मनवाईं थी। अब वह मां बूढ़ी हो गई है। बूढ़े लोग बच्चों जैसे हो जाते है। आदर्श तो यह है कि एक बेटे को अपनी बूढ़ी मां का पिता की तरह और बेटी को मां की तरह खयाल रखना चाहिए। ऐसा न किया जा सके, तो कुछ बुनियादी बातों का खयाल तो रखा ही जाना चाहिए। मां ने कैसी भी जिद की हो, बेटा उससे ज्यादा जिद करके उसे जाने से रोक ही सकता था।

हम रोजमर्रा के जीवन में बूढ़ों को बहुत उदासीन नजरों से देखते हैं, जैसे कि उनका कोई अस्तित्व ही न हो। और बूढ़े हैं कि कहीं हमारा पीछा नहीं छोड़ते। रेल के डिब्बे में, हवाई जहाज में, पार्क में, थिएटर में, सिनेमा हॉल में, सड़क पर, घर पर। आप कभी उनके सामने थोड़ी देर रुककर उनके चेहरे की झुर्रियां हटाकर तो देखिए, आपको उनके

युवतर चेहरे तक पहुंचने में ज्यादा देर नहीं लगेगी और आप पाएंगे कि इनमें से कितनों के भीतर तो आपसे भी गहरी जीजिविषा है। आप पाएंगे कि इन झुर्रियों के पीछे के सारे चेहरे बेहद मासूम है। हम उन्हें इस तरह देखते हैं कि जैसे वे हमसे पूरी तरह अलग हैं और उनकी हमारे जीवन में कोई भूमिका ही बाकी नहीं रही। हमारे दिमाग में यह बात ही नहीं आती कि देर-सबेर हम भी उनकी स्थिति में पहुंच ही जाएंगे और शायद तब जानेंगे कि हाशिए पर धकेल दिए जाने की क्या पीड़ा होती है। चाहे तो स्थितियों को बदला जा सकता है। कृपया आपके घर में और आसपास आप जितने भी वृद्धजनों को जानते हैं, उनसे पूरे अदब और बराबरी के साथ पेश आना शुरू करें, ताकि आपके बच्चों की भी आपके प्रति संवेदना और सहानुभूति बनी रहे व प्रेरणा मिलती रहे।

बुजुर्गों की गैरमौजूदगी में उन्हें आदर के साथ संबोधित करना चाहिए। हमें उन्हें बुड्ढा या बुड्ढी कहकर नहीं पुकारना चाहिए। आदर के साथ संबोधन से उनके अन्दर गर्व और ममता की भावना आती है। हमें हमेशा उनके द्वारा दी जानेवाली सलाह को सुनना चाहिए।

बुजुर्गों ने जिन्दगी को हमसे ज्यादा देखा और अनुभव किया है। जरूरी नहीं है कि हम उनकी सलाह के हिसाब से ही चलें पर अधिकतर समय उनके द्वारा दी जानेवाली सलाह ठीक ही होती है। उन्हें प्रसन्नता होती है जब हम उनके दैनिक कार्यों में उनकी मदद करते हैं। हम उनसे विनम्रतापूर्वक पेश आएं। उस समय भी जब उनके द्वारा अनजाने में कुछ गलत हो जाए। हमें समय-समय पर, जो उन्होंने हमारे लिए किया है, उसके लिए धन्यवाद करना नहीं भूलना चाहिए।

मनोरंजक स्थलों पर ले जाएं- हमें उन्हें दूरदर्शन आदि देखने देकर, उन्हें संगीत सुनाकर या उन्हें विभिन्न मनोरंजक स्थलों पर ले जाकर उनका मनोरंजन कर सकते हैं जिससे वे उपेक्षित और अकेला न महसूस करें। यदि हम उनकी जिन्दगी के बारे में जानने में रुचि रखेंगे तो वे हमसे जुड़े हुए महसूस करेंगे। जब हम उनसे उनके अतीत के बारे में जानने की कोशिश करते हैं तो जो चमक उसे बताते हुए उनके चेहरे पर आती है उसे बयान नहीं किया जा सकता। उन्हें हमें अपने अनुभव, कहानियां और यादें बताते हुए बेहद खुशी मिलती है। बड़ी उम्र में अक्सर लोग बच्चा बन जाया करते हैं। वे अपनी तर्क शक्ति खो देते हैं और असहनशील हो जाते हैं। इसलिए उनके साथ सहनशील रहते हुए उनके साथ विनम्रता का व्यवहार करना चाहिए। जब हम बच्चे थे तो उन्होंने किस अच्छी तरह से हमारी देखभाल की थी। उन्होंने बिलकुल फूल की तरह हमें रखा था और अब उन्हें भी ऐसी ही देखभाल की जरूरत है।

आर्थिक जरूरतों का भी रखें ख्याल- क्या हमारे बुजुर्ग भी उसी प्यार, देखभाल और सुरक्षा के अधिकारी नहीं हैं जो उन्होंने हमें उस वक्त दी थी जब हमें उसकी सबसे ज्यादा जरूरत थी? तब हम उन्हें वही प्यार, देखभाल, दुलार, सुरक्षा क्यों नहीं दे सकते? हमें अपने बुजुर्गों की देखभाल, उन्हें श्रद्धेय, बुद्धिमान संत और हमारे रीति-रिवाजों के रखवाले के रूप में समझ कर करनी चाहिए। इस प्रकार उनकी देखभाल करके हम उनके द्वारा दिए जानेवाले ज्ञान के उपहार की इज्जत कर रहे होते हैं और इस प्रकार उनको बुद्धिमानी से और अच्छी तरह से उम्रदराज होने में मदद करते हैं। ऐसा करने के लिए हमें उनके साथ एक ऐसे रास्ते पर चलना चाहिए जो बुजुर्गों की जरूरतों और पसंद का ख्याल रखे और उन्हें विचारशील और सावधान निर्णय लेने में मदद करे। हमें उनकी सेहत का, उनकी सामाजिक और आर्थिक

जरूरतों का भी ख्याल रखना चाहिए। कभी-कभी वो हमसे कुछ नहीं कहते पर हमें अपने आपसे ही समझना चाहिए कि वो क्या चाहते हैं।

उनकी छत्रछाया में सुरक्षा- हमारे बुजुर्ग एक बरगद के पेड़ की तरह होते हैं। जिस प्रकार बरगद का पेड़ अपनी शाखाओं को फैलाकर हमें छाया, सुख और शान्ति प्रदान करता है, उसी प्रकार हमारे बुजुर्ग भी अपने प्यार, देखभाल और संरक्षण को हमारे चारों ओर फैला देते हैं और हम उनकी छत्रछाया में खुद को सुरक्षित महसूस करते हैं। हमारे बुजुर्गों में हमारे दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता और उनके मित्र शामिल होते हैं। वे अपनी पूरी जिन्दगी हमारी देखभाल में बिता देते हैं। हमारी देखभाल में और पालन-पोषण में वे अपना सुख-चैन और अपनी इच्छाओं को कुर्बान कर डालते हैं। वे हर परिस्थिति में हमारी सुरक्षा करते हैं। हम उनका हाथ पकड़कर चलते हैं। रात में उनसे शिक्षाप्रद कहानियां सुनते हैं। हमारे बुजुर्ग हमें अच्छे नैतिक मूल्यों का ज्ञान देते हैं और हमें एक अच्छा, सफल मनुष्य बनने में सहयोग करते हैं। लेकिन एक सफल व्यक्ति बन जाने के बाद हममें से कुछ इस कदर स्वार्थी हो जाते हैं कि अपने बुजुर्गों को कचरे के ढेर की तरह समझने लग जाते हैं। वे उनको एक बोझ समझने लगते हैं और बुजुर्गों को घर के एक कोने में सिमटा दिया जाता है।

मर गयी हैं मन की इच्छाएं विष भरे विश्वास-सी है जिन्दगी, सुबह से शाम शोर यहाँ रहती है

दुनिया के सभी देशों में आदमी के बुढ़ापे की समस्या विकराल है। आदमी की औसत आयु बढ़ रही है। देश आजाद हुआ तब औसत उम्र करीब ३२ साल थी, जो आज बढ़कर ७० वर्ष हो गई है। प्रशिक्षित चिकित्सक कहते हैं कि २०५० तक आदमी के स्वास्थ्य की समस्याएं भी अलग होंगी। उस वक्त ज्यादातर बूढ़े आदमी दुनिया के विकासशील देशों में ही होंगे। क्योंकि वहां जनसंख्या ज्यादा है। अगर हम देखें तो ८० वर्ष से ऊपर की कुल आबादी का मात्र १३% अमेरिका में हैं और ४०% से ज्यादा एशिया में है। इनमें भी औरतें आदमी से ज्यादा जीती हैं। बूढ़े अधिकतर बीमार होकर बिस्तर पकड़ते रहते हैं। हम भी मान लेते हैं कि बीमारी तो बुढ़ापे का जरूरी हिस्सा है। बूढ़े अपने आखिरी दिन गिनते रहते हैं और हम भी जाने-अनजाने उनके बचे हुए दिन ही गिनते रहते हैं। चिकित्सकों के पास इतना समय या धैर्य नहीं है कि बूढ़ों की समस्याओं को समझें। शायद उनमें उस संवेदना की भी कमी है। क्योंकि एक बूढ़ा रोगी तीन जवान रोगी के बराबर का समय खा जाता है। इसलिये बूढ़े आदमी से उसकी बीमारी के बारे में पूछना ही चिकित्सक के लिए एक अग्नि परीक्षा है। बूढ़ा आदमी ऊंचा सुनता नहीं बल्कि उसके बोलने के अंदाज से समझने की कोशिश करता है। बूढ़ा आदमी परीक्षण कोच पर चढ़ने-लेटने में ही दस मिनट खराब कर डालता है। बूढ़े आदमी की जांच करने के लिये चिकित्सक में बड़े धैर्य की जरूरत होती हैं। शायद यहीं कारण है कि बूढ़े बीमार से अस्पताल या घर दोनों ही जगह पर बहुत प्यार का व्यवहार नहीं किया जाता।

सदियों से मानव जाति में एक बात कही जाती है कि शायद कभी तो ऐसी कोई दवा, रसायन, कालाजादू या जड़ी-बूटी आदमी को बूढ़ा नहीं होने देगी। हमेशा जवान बने रहना मानव मन का एक बड़ा सपना है जो हम नित्य ही अपनी खुली आंखों से देखते हैं। ऐसी कोई दवा नहीं है जो आदमी को किसी चिकित्सीय चमत्कार से रोक लें। क्या आदमी और भी ज्यादा दिन जी सकता है?

ऐसी कोई दवा या तरीका अभी तक तो चिकित्सा विज्ञान के हाथ नहीं लगा है। भविष्य में कभी इस बुढ़ापे को रोका या टाला जा सकता है। इससे बुढ़ापा कोई बीमारी नहीं है, बुढ़ापे को भी स्वस्थ रहकर गुजारा जा सकता है। बुढ़ापे में बीमारियां भी जरूर आयेंगी, ईश्वर की तरफ से ऐसा कोई पैकेजडील नहीं है। कौन-कौन सी बीमारी हैं जो बुढ़ापे में ज्यादा होती हैं। उनसे कैसे बचें?

उम्र बढ़ने के साथ-साथ हमारे शरीर में कैलोरी की जरूरत कम हो जाती है, इसलिये हमारी खुराक भी कम हो जाती है। जवानी में हम जितना खाते थे, अगर बुढ़ापे में भी उतना ही खाते रहें तो वजन बढ़ने का डर रहता है। और कम खायें तो कुपोषण का खतरा रहता है। बुढ़ापे में प्यास भी कम हो जाती है, तो जलाभाव का खतरा भी बन जाता है। इसीलिए प्यास न लगने पर भी पानी पर्याप्त मात्रा में पीना चाहिए। इस उम्र में विटामिन डी, कैल्शियम तथा बी-१२ की कभी भी आम बात है। बुढ़ापे में किसी आहार विशेषज्ञ की भी सलाह लेना अच्छी बात है।

बुढ़ापे में मानसिक या शारीरिक मेहनत करना कभी नहीं छोड़ना चाहिये। हररोज कम से कम १५ मिनट तो पैदल चलना ही चाहिये। साइकिल चलायें या तैर भी सकते हैं। कभी स्ट्रेचिंग, बैलेंस तथा सीमित बोझ उठाने के व्यायाम भी करें। हमेशा बैठे न रहें, तरोताजा रहें। ऐसा करने पर आदमी बुढ़ापे में भी स्वस्थ रहेगा। अकेले न कर सकें तो अपना एक ग्रुप बनाकर सामूहिक व्यायाम करें।

अगर आपको पहले से ही रक्तचाप, मधुमेह आदि है, तो उनकी नियमित जांच कराते रहना ही चाहिये। आजकल इन्फलुएंजा वैक्सीन आती है, इसका टीका हर साल लगवा लेना ठीक रहता है। अपने आपको संक्रमण से बचाने के लिए आप दो-चार साल में एक बार न्यूमोकोकस वैक्सीन का टीका भी लगवा सकते हैं। इसके अलावा टिटनेस की वैक्सनी का टीका भी हर १० साल बाद लगवा सकते हैं। बुढ़ापे में आपकी हड्डियां कहीं कमजोर तो नहीं हो रही, इसके लिए डीएक्सए नामक एक्सरे जांच होती है। बूढ़ी महिलाओं में स्तन कर्करोग की आशंका २५% बढ़ जाती है, इसीलिये उन्हें मेमोग्राफी भी करा लेना चाहिये। वैसे खुद अपने स्तनों की जांच करना भी सीखकर नियमित यह काम कर लेना चाहिये। आजकल पीएसए नाम की खून की जांच द्वारा प्रोस्टेट कर्करोग की आशंका का पता करने की प्रवृत्ति चली है, अगर चिकित्सक कहे तो यह जांच भी करा लेना चाहिये।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ आदमी का संतुलन बिगड़ने लगता है। इससे बूढ़े आदमी के गिरने की आशंका बढ़ जाती है। अगर ७० वर्ष के हैं तो ३०% और ८० वर्ष के हैं तो गिरने की आशंका ५०% तक बढ़ जाती है। ऐसा कई कारणों से होता है। घुटनों में गठिया की तकलीफ, मांसपेशियों की ताकत कम होना, दिमाग की नसों में रक्त सर्क्युलेशन की कमी, आंखों से कम दिखना आदि कारणों से बुढ़ापे में कई प्रकार की दवाइयां खाना बढ़ जाता है।

घर में बूढ़ा आदमी है तो वो कभी-कभी अंटशंट बातें भी करता है। बहकी बातें या बहका सा व्यवहार भी करता है। यह बुढ़ापे की उम्र का एक हिस्सा ही है। फिर भीउम्र बढ़ने के साथ ऐसा कुछ नहीं है कि आदमी का दिमाग खराब हो ही जाता है। बुढ़ापे में अकेलापन, तनाव, अवसाद आदि की संभावना बढ़ जाती है, लेकिन सामाजिक या पारिवारिक मेलजोल बढ़ाकर इन बातों को रोका जा सकता है। सामाजिक कार्यों से जरूर जुड़ें, इससे आपकी मानसिक

सक्रियता बढ़ जाती है। अगर घर का कोई बूढ़ा आदमी अचानक ही बहकी बातें करने लगे, आसपास की चीजों को न पहचाने मानसिक रूप से अचानक गड़बड़ा जाये तो यह किसी गंभीर बीमारी का लक्षण है। निमोनिया, खून में शक्कर कमी से लगाकर यह पक्षाघात आदि का लक्षण भी हो सकता है। बुढ़ाने में अगर याददाश्त जाने लगे, व्यवहार बदले, तब यह डिमेन्शिाय भी हो सकता है। इसके लिय तुरन्त चिकित्सीय सलाह लेना जरूरी होता है। पेशाब पर नियंत्रण न रहना, बुढ़ापे में यह एक आम तकलीफ है। इसे बूढ़े लोग शर्म या संकोचवश किसी को बताते नहीं। औरतों में तो खासकर पेशाब कपड़ों में ही छूट जाती है। कई बार तो खांसने-छींकने या हंसने पर भी ऐसा हो जाता है। यह प्रोस्टेट की बीमारी, पेशाब के संक्रमण, पथरी की बीमारी, पेल्विस की मांसपेशियों का ढीला हो जाना, किसी न्यूरोलॉजी वाली बीमारी आदि में से किसी का भी लक्षण हो सकता है। इन सारी बीमारियों की असरदार दवाइयां बाजार में मिलती हैं। न्यूरोलॉजी की तकलीफ हो तो सफल चिकित्सा भी हो जाती है।

बूढ़े लोग अधिकतर बैठै या लेटे रहते हैं, उनकी त्वचा या खाल भी नाजुक होती है। बैठे-बैठे या लेटे लेटे हड्डियों का दबाव जब खाल पर पड़ता है तो घाव हो जाता है। पीठ पर, एड़ी पर ये घाव आसानी से नहीं भरते। ऐसे में घाव होने पर ड्रेसिंग आदि जरूर करा लें। उम्र बढ़ती है तो दुर्घटना भी हो सकती है, इसलिये गाड़ी बहुत संभलकर चलायें। बुढ़ापे में सिर की हल्की सी चोट भी दिमाग की बड़ी तकलीफ बढ़ा सकती है।

आज के वैश्विक समाज में वृद्धों को अनुत्पादक, दूसरों पर आश्रित, सामाजिक स्वतंत्रता से दूर अपने परिवार एवं आश्रितों से उपेक्षित एवं युवा लोगों पर भार की दृष्टि से देखा जाता है। जब तक हम वृद्धजनों की कीमत नहीं समझेंगे, उस उम्र की पीड़ा का अहसास नहीं करेंगे, तब तक हमारी सारी अच्छाइयां बनावटी होंगी।

आज हमारे समाज में वृद्ध लोगों को दोयम दर्जे के व्यवहार का सामना करना पड़ा रहा है। देश में तेजी से सामाजिक परिवर्तन का दौर है और इस कारण वृद्धों की समस्याएं विकराल रूप धारण कर रही हैं। देश में जल्दी ही यह विषमता आनेवाली है वृद्धजन, जो कि जनसंख्या का अनुत्पादक वर्ग है, वह शीघ्र ही उत्पादक वर्ग से बड़ा होनेवाला है। यद्यपि यह समस्या इतनी गंभीर नहीं है जितनी वृद्धों के समाज में समन्वय की समस्या है। वृद्धों के समाज में समन्वय न होने के कारण हैं- उम्र बढ़ने से व्यक्तिगत परिवर्तन, वर्तमान औद्योगिक समाज का अपने वृद्धों से व्यवहार का तरीका। जैसे-जैसे व्यक्ति वृद्ध होता जाता है, समाज में उसका स्थान एवं उसकी भूमिका बदलने लगती है। आनेवाले वर्षों में वृद्धों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि होने की संभावना है। विकसित राष्ट्रों में स्वास्थ्य एवं समुचित चिकित्सीय सुविधा के चलते व्यक्ति अधिक वर्षों तक जीवित रहते हैं अत: वृद्धों की जनसंख्या विकासशील राष्ट्रों से ज्यादा विकसित राष्ट्रों में ज्यादा है। भारत एवं चीन, जो कि विश्व की जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है। जनगणना के अनुसार भारत में वृद्धजनों की संख्या १०.३८ करोड़ है और २०२६ तक १७ करोड़ से अधिक होने का अनुमान है।

राज्य एवं स्वशासी संगठनों की भी जिम्मेदारी- परंपरागत रूप से हर संस्कृति में वृद्धों की देखभाल परिवार की जिम्मेदारी मानी जाती है लेकिन सामाजिक परिवर्तनों के चलते अब यह राज्य एवं स्वशासी संगठनों की भी जिम्मेदारी बन चुकी है। भारतीय संस्कृति में वृद्धों को अत्यंत उच्च एवं आदर्श स्थान प्राप्त है। श्रवण कुमार ने अपने वृद्ध माता-पिता को कंधे पर

बिठाकर संपूर्ण तीर्थयात्रा करवाई थीं। आज भी अधिकांश परिवारों में वृद्धों को ही परिवार का मुखिया माना जाता है। लेकिन कितनी विडंबना है कि पूरे परिवार पर बरगद की तरह छांव फैलानेवाला व्यक्ति वृद्धावस्था में अकेला, असहाय एवं बहिष्कृत जीवन जीता है। अस्पताल या वृद्धाश्रम में अपनी मौत की प्रतीक्षा करता है। आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति एवं सामाजिक मूल्यों के क्षरण की यह परिणति है।

परिवार वालों की उपेक्षा के कारण ही बहुत लोगों की मृत्यु हो जाती है। हम इंसानों द्वारा स्वास्थ्य और उम्र को लेकर बहुत-सी लापरवाहियां की जाती हैं। अगर शरीर में थोड़ी भी लापरवाही हुई, तो शरीर नष्ट हो सकता है। जो लोग नौकरी से सेवानिवृत्त होते हैं, उन्हें सरकार पेंशन इसलिए देती है कि वे बुढ़ापे में सुख से जी सकें। लेकिन आश्चर्य तब होता है, जब ये लोग पेंशन का पैसा अपने बच्चों को दे देते हैं और खुद चाय पीने के लिए किसी फुटपाथ की दुकान पर बैठ जाते हैं। ऐसे ही लोग असमय मरते हैं। इसलिए ऐसे उम्र गुजारने से बचिए। लोग उम्र के बढ़ते ही शौक एवं श्रृंगार छोड़ देते हैं, अपने शरीर की देखभाल करना छोड़ देते हैं। लेकिन आपको चाहिए कि आप अपने शरीर की पूरी तरह देखभाल करें। आप अपने मन से यह भाव निकाल दें कि आप अब बूढ़े हो रहे हैं, खाने-पीने और रंग-बिरंगे कपड़े पहनने का समय अब नहीं रहा। ऐसा विचार मन में कभी न आने दें। ऐसे ही विचारों से मनुष्य बूढ़ा होता है और असमय मर भी जाता है। विश्वकवि रवि बाबू जब बूढ़े हो गये, तो उनके सारे बाल सफेद हो गये। तब भी वे हमेशा सज-धज कर बाहर निकलते थे। वे कहते थे कि हमें कोई अधिकार नहीं कि अब हम अपना कुरूप चेहरा किसी को दिखाएं। वे कहते थे कि जवानी में मनुष्य कैसे भी रहे, सुंदर लगता है। लेकिन बुढ़ापे में जब शरीर कमजोर हो जाये, तो सुंदर वस्त्र पहनना चाहिए। शरीर को सजा कर रखना चाहिए, ताकि बुढ़ापे के लिए शरीर की कुरूपता ढक सके। क्योंकि कपड़े अपने लिए कम पहने जाते हैं, दूसरों की आंख ढकने के लिए अधिक पहने जाते हैं।

भारतीय समाज में बुजुर्गों का हमेशा एक सम्मानीय स्थान रहा है। एक मार्गदर्शक और पारिवारिक मुखिया होने के नाते जो सम्मान बुजुर्गों को मिलता था, उसमें धीरे-धीरे कमी आ रही है। उनके अनुभव को अमूल्य पूंजी समझनेवाला समाज अब इनके प्रति बुरा बर्ताव भी करने लगा है।

बुजुर्गों की शिकायत- भारत में भी बुजुर्गों के साथ बहुत शर्मनाक व्यवहार होने लगा है। खुद बुजुर्गों ने उपेक्षा और बुरे व्यवहार की शिकायत की है। सार्वजनिक स्थानों पर बुजुर्गों के साथ बहुत गलत व्यवहार किया जाता है। बंगलुरू, हैदराबाद, भुवनेश्वर, मुंबई और चेन्नई ऐसे शहर पाये गये, जहां सार्वजनिक स्थानों पर बुजुर्गों से सबसे बुरा बर्ताव होता है।

भेदभाव के शिकार- तिरस्कार, वित्तीय परेशानी के अलावा बुजुर्गों को मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है।

जीवन की भागदौड़ में बुजुर्गों की उपेक्षा लगातार बढ़ती जा रही है। भारत में संयुक्त परिवार व्यवस्था का चरमराना बुजुर्गों के लिए नुकसानदायक साबित हुआ है। उम्र या सुस्त होने की वजह से लोग उनसे रुखेपन से बात करते हैं। बुजुर्गों के प्रति दुर्व्यवहार के मुख्य कारणों में समय का अभाव और एकल परिवार है। भावनात्मक कमी को पूरा करने युवा समय नहीं निकालते। बेटी एवं बहू में फर्क करने की पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था भी इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

उपयोगी हैं बुजुर्ग- बाजारवाद और उदारीकरण के बाद बदले हुए समाज में बुजुर्गों का सम्मान गिरा है। उपभोक्ता समाज में बुजुर्ग खोटा सिक्का समझे जाने लगे हैं। वे मानते हैं कि आपसी सामंजस्य हो तो आज भी बुजुर्ग परिवार और समाज के लिए काफी उपयोगी हैं। दुनिया के अन्य देशों के मुकाबले भारत में बुजुर्गों की स्थिति उतनी खराब नहीं है। बुजुर्गों के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलने के लिए बुजुर्गों और आज की युवा पीढ़ी को एक साथ मिलकर और आपस में सहयोग बढ़ा कर करना होगा। इससे बुजुर्गों और युवाओं, दोनों को ही लाभ होगा।

अगर ऐश्वर्य खोजना हो, तो बूढ़े में खोजना, वृद्ध में खोजना क्योंकि ऐश्वर्य अनुभव का निखार है, वह बच्चे में कभी नहीं होता। उसमें शक्ति होती है अदम्य।

रवींद्रनाथ ने कहा है कि सच में ही कोई आदमी वृद्ध होता है- सच में। हम सब भी बूढ़े होते हैं, लेकिन हमारा बूढ़ा होना वृद्ध होना नहीं है; सिर्फ क्षीण होना है, दीन होना है, दरिद्र होना है। हमारा वार्धक्य एक उपलब्धि नहीं है, सिर्फ एक लंबी गवाई उम्र है, कमाई नहीं है। लंबा समय हमने गंवाया है। खोया है। क्षीण हो गए, जर्जर हो गए। सब चुक गया।

रवींद्रनाथ ने कहा है, जब सच ही कोई बूढ़ा होता है, तो उसके शुभ्र बाल वैसे ही हिमाच्छादित हो जाते हैं, जैसे हिमालय के पर्वत। उसके शुभ्र बालों में वैसी ही शीतलता और वैसा ही ऐश्वर्य आ जाता है, जैसे कभी जब गौरीशंकर पर बर्फ जमी होती है।

आज भागदौड़ भरी जिंदगी में एकल परिवार का चलन तेजी से बढ़ा है। लेकिन इस धारा के समानांतर ऐसे लोग भी हैं जो संयुक्त परिवार में विश्वास रखते हैं। शहर में कई ऐसे परिवार मौजूद हैं जो बेहद खुश हैं। इन परिवारों के सभी मामलों में बुजुर्गों की राय काफी मायने रखती है।

घर के बच्चों का भी लगाव अभिभावकों से ज्यादा दादा-दादी से होता है। बच्चे अपना ज्यादा से ज्यादा वक्त इनके संग बिताना पसंद करते हैं और बुजुर्गों का भी समय बच्चों संग कब गुजर जाता है पता ही नहीं चलता। घर में बच्चे दादा-दादी के साथ तरह-तरह के खेल खेलना पसंद करते हैं। दादा-दादी से बच्चों को कहानियां सुनने को मिलती हैं, जो जीवन में बड़ा पाठ सिखाते हैं। अभिभावकों से ज्यादा बच्चों की फरमाइशें और जिद उन्हीं से ही पूरी होती हैं। इससे परिवार में प्रेम बढ़ता और एकजुटता रहती है। कुछ ऐसे ही बुजुर्गों की बात जो अपने नाती और पोतियों की खुशियों का अहम हिस्सा हैं।

शहरी जीवन की आपाधापी तथा परिवारों के घटते आकार एवं बिखराव ने समाज में बुजुर्ग पीढ़ियों के लिए तमाम समस्याओं को बढ़ा दिया है। अव्वल तो परिवार के ज्यादातर सदस्यों के पास अपने बुजुर्गों के साथ बिताने के लिए समय ही नहीं है, वहीं कुछ लोगों का नजरिया भी इनकी परेशानी का सबब है। परिवारों में इस बुजुर्ग पीढ़ी को संसाधन के रूप में माना जाए, लेकिन कुछ परिवारों में इन्हें बोझ के रूप में लिया जाता है। जिंदगी की अंतिम दहलीज पर खड़ा व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों को अगली पीढ़ी के साथ सौंपना चाहता है, लेकिन उसकी दिक्कत यह होती है कि युवा पीढ़ी के पास उसकी बात सुनने के लिए पर्याप्त समय ही नहीं होता। मध्यम वर्ग में ज्यादातर बुजुर्गों की समस्या की शुरुआत यहीं से होती है।

अकेलेपन की भावना- वृद्धावस्था में शरीर थकने के कारण हृदय संबंधी रोग, रक्तचाप, मधुमेह, जोड़ों के दर्द जैसी आम समस्याएं होती हैं, लेकिन इससे बड़ी समस्या होती है भावनात्मक असुरक्षा की। भावनात्मक असुरक्षा के कारण ही उनमें तनाव, चिड़चिड़ाहट, उदासी, बेचैनी जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव की संस्कृतिवाले देश भारत में भी अब पश्चिमी समाज की तरह बुजुर्ग पीढ़ी में अकेलेपन की भावना तेजी से बढ़ रही है। बुजुर्ग नागरिकों के अधिकार सुनिश्चित करने संबंधी एक विधेयक को हाल में जब संसद में मंजूरी दी जानेवाली थी तो एक बुजुर्ग सांसद सदन में फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होंने कहा कि हम सांसदों को इस विधेयक को पारित करने में शर्म महसूस करनी चाहिए, क्योंकि भारत में बुजुर्गों का सम्मान करने की लंबी परंपरा रही है, लेकिन आज स्थिति विपरीत होती जा रही है। क्या कानून बनाकर बुजुर्ग नागरिकों को उनके अधिकार दिलाए जा सकते हैं। मानवीय संबंध परस्पर प्रेम और विश्वास पर आधारित होते हैं। कानून बनाकर आप किसी के मन में भय तो पैदा कर सकते हैं, लेकिन कानून के जरिये प्रेम और विश्वास पैदा नहीं किया जा सकता। बुजुर्ग लोगों की समस्याओं के प्रति समाज में जागरूकता फैलाना और सामूहिक प्रयास करना ही बेहतरीन उपाय हो सकता है। इसमें कानून बहुत कारगर नहीं हो सकता, क्योंकि यह भावनात्मक मामला है।

ताकि रिश्तों में मिठास घुले- दादा दादी बच्चों के लिए बहुत जरूरी होते हैं। उनके बीच की कड़ी को जोड़ने के लिए पार्टी जैसे अवसरों का लाभ उठाना चाहिए। केवल कैलेंडर का पन्ना बदलने या घड़ी की सुई की जगह बदलने से जीवन में खुशियां नहीं आतीं। जीवन में खुशियों को भरने के लिए सोच बदलने की जरूरत है। ऐसे आयोजन इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दादा-दादी के पास समय अधिक होता है। परिवार के साथ होने से नशे और जुए जैसी आदतों से दूर रहेंगे। एक साथ कई परिवार मिलकर भी ऐसे आयोजन कर सकते हैं। ऐसे में उस उम्र के लोगों में आपसी बातचीत से संबंध सुधरेंगे। पार्टी में परिवार के करीबी लोगों के शामिल होने से लोगों का एक दूसरे की रुचियों को समझना आसान हो जाता है।

अगर कोई व्यक्ति ठीक से जिया है, तो वार्धक्य उसका ऐश्वर्य को उपलब्ध हो जाता है। एक कांति, एक दीप्ति जो बूढ़े में ही होती है, बच्चे में नहीं हो सकती। बच्चे में एक अदम्य वेग होता है, शक्ति होती है, जो कुछ बन सकती है, नष्ट भी हो सकती है। अगर बूढ़ा उसे कुछ बनाने में समर्थ हो जाए और वह जो शक्ति बच्चे में दिखाई पड़ी थी, अगर ठीक-ठीक यात्रा करे, तो ऐश्वर्य बन जाती है अंत में अनुभव से यात्रा करके शक्ति ऐश्वर्य बनती है।

इसलिए जो समाज बूढ़े होते हैं, उनमें ऐश्वर्य देखा जा सकता है। जैसे अगर शक्ति देखनी हो, तो पश्चिम में देखनी चाहिए और अगर ऐश्वर्य देखना हो, वह आभा देखनी हो जो वार्धक्य को उपलब्ध होती है, तो पूरब में देखनी चाहिए। इसलिए जो समाज पुराने होते हैं, वे बूढ़े को आदर देते हैं, बच्चे को नहीं। उनका आदर ऐश्वर्य के लिए है, चरम के लिए है, आखिरी के लिए है; अंतिम जो शिखर होगा, उसके लिए है।

**** क्यों मुश्किलों में साथ देते हैं दोस्त, क्यों गम को बांट लेते हैं दोस्त,***
ना रिश्ता खून से ना रिवाज से बंधा, फिर भी जिंदगी भर साथ देते हैं दोस्त।

बच्चे-बचपन

बचपन फिर लौट कर नहीं आता। लेकिन बचपन की यादें मानो साये की तरह हमारे साथ ही चलती रहती है। आज जब हम बड़े हो गए हैं तो लगता है की अब जिम्मेदारियाँ बढ़ गई हैं मालूम पड़ता है कि वक्त कितना कुछ बदल देता है।

बचपन में स्कूल से लौटते ही घर पर आते, खाना खाते और कुछ वक्त भी नहीं गुजारते थे की बाहर साथी दोस्त हाथ में बल्ला या विकेट लिए हाजिर हो जाते थे। घरवाले भी बड़े ही आनंद में कहते थे आ गए तेरे टुरिये। टुरिये देसी भाषा में उन्हें कहा जाता है जो बिना काम ही इधर-उधर घूमते फिरते हैं। हम भी तो वैसे ही थे। आज तू लाएगा, कल मैं लाया था, यह वाक्य तो हर किसी की जुबा पर चिपका सा रहता था और जब कभी हमें बॉल नहीं ले जानी होती थी या यह डर रहता था की गुम गई तो घर पर मम्मी की डाट कौन सुनेगा तो हम काफी देर घर में जाकर बॉल ढूंढने का नाटक करते लेकिन वह मिलती नहीं। उस समय न तो किसी को फिक्र थी और ना ही भविष्य की चिंता। आज जब कभी अकेला बैठे रहते है या नन्हें-नन्हें बच्चों को खेल-खेल में लड़ते-झगड़ते देखते है तो फिर से बचपन के दिन ताजा हो जाते हैं, लेकिन अगले ही पल जब किसी का फोन आता है और फिर से जिन्दगी की भागदौड़ में लग जाते है तब लगता है वक्त भी बुजुर्ग होता है। हमारा वक्त मानो बुजुर्ग हो गया है। जिन्दगी अब जिम्मेदारियों से लदी जा रही है। एकांत में बैठकर जब कभी बचपन के किस्से कहानी याद करते है तो सोचते है क्यों न बचपन फिर से लौट आये। वक्त कितना कुछ बदलकर रख देता है। जो यार-दोस्त दिन में कई बार मिला करते थे, आज कुछ तो महीनों में मिलते हैं तो कुछ को तो स्कूल के बाद से देखा तक नहीं। जिन्दगी सीढ़ियो की तरह है जो शुरू बड़े ही मजेदार अंदाज में होती है लेकिन खत्म होते-होते मंजिल पर तो पहुंचा देती है लेकिन थकाकर।

थकान से यहाँ तात्पर्य संघर्षों से नहीं है यहाँ इसका मतलब बदलावों से है। बचपन का जो आनंद था अब जवानी में वो पेशेवर हो चुका है। पहले स्वार्थों के लिए किसी के साथ न बैठा करते थे, लेकिन अब स्वार्थ न जाने कहाँ कहाँ बैठा देते हैं। वैसे जिन्दगी बहुत कुछ सिखाती है। हर पड़ाव को जीना बड़ा ही जरूरी है। खैर बचपन होता है और अब जब बीत गया तो क्यों ना उसकी यादों के साथ ही जी लिया जाए।

दादी-नानी की गोद बच्चों के विकास की जन्मभूमि :- बच्चे डेरा जमाए रहते- यह वह जमाना था जब संयुक्त परिवार थे। एक ही घर में दादा दादी, बुआ-मौसी, चाचा-चाची और बहुत सारे बच्चे डेरा जमाए रहते। गर्मी या दीवाली की छुट्टियां होते ही ननिहाल जाने का कार्यक्रम बनता, खानदान के सारे बच्चे एक-दूसरे से मिलने को उतावले हो उठते थे। इन संयुक्त परिवारों में बच्चे बड़े-बूढ़े से कहानी सुनने के लालच में न केवल दिनभर उनके पीछे रहते, बल्कि उनकी सेवा भी करते थे। परिवार के बुजुर्गों को भी अपने परिवार में मान-सम्मान मिलता, वे बच्चों के साथ अपने ही घर में कभी बेगाना महसूस नहीं करते थे। उनका बुढ़ापा सुरक्षित था। बच्चों के चारों तरफ संबंधों का आत्मीय संसार था। उस समाज में सुरक्षा व स्थायित्व था। जीवन का आनंद लेने के अपने तौर तरीके थे। आंगन में बच्चे लूडो-कैरम, शतरंज, व्यापार, गिट्टे या ताश खेलने में मशगूल हो जाते थे।

बड़े-बूढ़ों की नसीहत व डांट-फटकार- खेल के दौरान गप्पबाजी चलती रहती और बड़े-बूढ़ों की नसीहत व डांट-फटकार भी। दोपहर में खस की चटाइयां खिड़कियों पर डाल दी जाती थीं। पानी में आम, तरबूज ठंडे करने के लिए डुबो दिए जाते। शाम होते ही बच्चे बाहर मैदान में या बगीचे में उछलकूद करने के लिए निकल पड़ते। कीकली, छुपा-छुपी, कंचे, कबड्डी, गुल्ली-डंडा, ऊंच-नीच, विष-अमृत, गेंद-तड़ी, पतंग उड़ाने जैसे न जाने कितने देसी खेलों में बच्चों को एक-दूसरसे को छकाने में बड़ा मजा आता था।

बच्चों में आध्यात्मिक मूल्य भरे जा सकें तो जीवन सुखी होता है :- कई बच्चों की नकारात्मक प्रवृत्तियां माता-पिता के लिए परेशानी का सबब बन जाती हैं। ऐसे में माता-पिता के पास बच्चे को सम्यक दंड देने का अधिकार है। दंड का मतलब शारीरिक दंड नहीं। बच्चे से कुछ देर बात न करना उसके लिए बहुत बड़ी सजा है, क्योंकि बच्चे का सारा व्यवहार आपका ध्यान पाने के लिए होता है। अगर वह ध्यान उसे न मिले तो उसकी सारी मेहनत बेकार चली जाती है।

बच्चा आप पर चीखे-चिल्लाए तो उस वक्त छोड़ दें, लेकिन खुद को साधारण भी न दिखाएं। बाद में बैठकर बात करें कि इस तरह बात करना आपको बुरा लगा। ऐसे व्यवहार से उसके दोस्त, शिक्षक सभी उसे बुरा बच्चा मानेंगे। बार-बार कुरेदें नहीं, अन्यथा उसका मन आहत होगा। बच्चा जो सुनेगा, वही सीखेगा, इसलिए उसके सामने गलत भाषा का प्रयोग न करें। अगर वह गाली गलौज करे तो उसे बताएं कि ऐसी भाषा गलत है।

बच्चा चोरी करे या किसी की चीजें उठा लाए, झूठ बोले तो उसे न पीटें, न डांटें। भाई-बहनों के आगे उसे जलील भी न करें कि यह चोर है। यह कहना भी ठीक नहीं कि तुम हमारे बच्चे नहीं हो सकते। अगर कोई दूसरा ऐसी शिकायत लाता है तो वे मानने को तैयार नहीं होते कि हमारा बच्चा ऐसा कर सकता है। पर्दा डालने की कोशिश करने लगते हैं। ऐसे बच्चे को उसकी पसंदीदा चीजों से कुछ देर के लिए दूर कर दें।

बच्चे का बस्ता नियमित रूप से देखें, लेकिन उसकी मौजूदगी में नहीं। उसमें कोई भी नई चीज नजर आए तो उसे लौटाने को कहें, लेकिन पूरी कक्षा के सामने माफी न मंगवाएं। अगर कोई कहता है कि आपके बच्चे ने चोरी की है तो यह न कहें कि वह ऐसा नहीं कर सकता। अकेले में बच्चे से पूरी पूछताछ करें। बच्चे को बताएं कि आप कोई चीज उठाकर लाएंगे तो आप तनाव में रहेंगे कि कोई देख न लें। इससे अच्छा है कि चोरी की ही न जाए।

बच्चा झूठ बोले तो माता-पिता खुद को कोसने लगते हैं कि हमारी तो किस्मत ही खराब है। उन्हें लगता है कि बच्चे ने बहुत बड़ा पाप कर दिया है। उसके दोस्तों को फोन करके पूछते हैं कि सच क्या है? जब दूसरा कोई शिकायत करता है तो बिना सच जाने बच्चे की ढाल बनकर खड़े हो जाते हैं कि हमारा बच्चा ऐसा नहीं कर सकता। वे दूसरों के सामने अपनी मन को दुखी नहीं होने देना चाहते। बच्चे को अपना कोई उदाहरण देकर उस काम के नकारात्मक पक्ष बताएं। ऐसा माहौल रखें कि बच्चा अपनी गलती बताने से डरे नहीं। उसे भरोसा दिलाएं कि उसकी गलती माफ हो सकती है। बच्चों में आध्यात्मिक मूल्य भरे जा सकें तो जीवन की बहुत सारी समस्याएं स्वत: समाप्त हो जाती हैं। जो बच्चे गुरुमुख होते हैं, उनका परिवार भी सुखी रहता है।

जिद्दी बच्चों को संभालना आसान - बच्चा जो कुछ सीखता है यहां ही, अपने परिवार, दोस्तों से सीखता है। इसलिए

बच्चे की गलती पर, बिना कोई कठोर दंड दिए उसे प्यार से सभ्य, शिष्ट और अनुशासित बनाएं

लालन-पालन- यह माता पिता और शिक्षक पर निर्भर करता है कि वे बच्चे को कैसे शिष्ट बनाएं। दृढ़ संकल्प और जिद्दीपन के बीच के अंतर को समझें। दृढ़ संकल्प का अर्थ उद्देश्य की दृढ़ता है। जिद्दीपन को कुछ करने या विशेष तरीके से कार्य करने के लिए एक दृढ़ संकल्प के रूप में परिभाषित किया जाता है। जिद्दीपन से किसी बाहरी दबाव के बावजूद किसी के विचार, व्यवहार या कार्यों को बदलने से इनकार कर दिया जाता है। बच्चों का जिद्दीपन आनुवंशिक भी हो सकता है।

बच्चे को विकल्प दीजिए- बच्चों का अपना दिमाग होता है और वे वही करते हैं जो उनका दिमाग उसे करने को कहता है। अगर आप बच्चे को कहेंगी कि वह ९ बजे तक बेड़ पर चला जाए, तो इस बात में कोई शक नहीं कि वह आप की बात को अनसुना कर खेलता या दूरदर्शन ही देखता रहे। इसलिए आदेश देने के बजाय, बच्चे को विकल्प दें।

उन्हें सुनें, बहस न करें- अगर आप चाहते हैं कि आपका बच्चा आपको सुने, आप की बात माने, तो पहले खुद आपको उसकी बात ध्यान से सुनना होगा। मजबूत इच्छाशक्ति वाले बच्चों की राय बहुत मजबूत होती है और कई बार वे अपने माता-पिता से बहस करने लगते हैं। अगर आप उनकी बातें नहीं सुनेंगे तो वे और जिद्दी बन जाएंगे। अगर बच्चे को यह लगने लगता है कि उसकी बातों को महत्व नहीं दिया जा रहा है, तो वह धीरे-धीरे आपकी हर बात को दरकिनार करना शुरू कर देगा।

जबरदस्ती नहीं- जब आप बच्चों के साथ किसी भी चीज को लेकर जबदरस्ती करते हैं, तो वे स्वभाव से विद्रोही बनते जाते हैं। उस समय तो जबरदस्ती करने से आपको उस समस्या का अस्थायी समाधान मिल जाता है, लेकिन आगे के लिए खतरनाक होता चला है। बच्चों के साथ जबरदस्ती करने से वे वही करते हैं जिस बात के लिए उन्हें रोका जाता है। जहां तक हो सके आप अपने बच्चों के साथ सम्बन्ध बनाने की कोशिश करें। जब बच्चा दूरदर्शन देखने की जिद करे, तो उसे मना करने के बजाय इस चीज की दिलचस्पी दिखाएं और कहें कि चलो, साथ बैठकर दूरदर्शन देखते हैं। जब आप बच्चों की चीजों में दिलचस्पी दिखाएंगे, तो वे आपके प्रति और ज्यादा जवाबदेह बनते जाएंगे।

बच्चे कौम का भविष्य होते हैं, बच्चों के अंदर जज्बात व हौसला की वो सच्ची रूह फूंकी जाये कि उन्हें नाकामियों में भी कामयाबियों की रोशनी दिखाई देती है। जिन बच्चों का परीक्षा फल खराब हो जाता है इस बात को दिल पर लेकर गलत कदम उठा लेते हैं।

**** कर्मों से ही पहचान होती है इंसानों की दुनिया में,***
अच्छे कपड़े तो बेजान पुतलों को भी पहनाये जाते हैं दुकानों में।

**** जिस दिन को आपने खुलकर जिया वो दिन आपका अपना हैं,***
बाकी सब तो कैलेंडर की तारीख हैं।

**** जो ईमानदार है उसी का इम्तहान है।***

शिक्षा शिक्षक

गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिले न मोष। गुरु बिन लखे न सत्य को, गुरु बिन मिटे न दोष।

भक्तिकालीन ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि कबीरदास ने उक्त पंक्तियों के माध्यम से गुरु के महत्व को प्रतिपादित किया है। आज के संगणक के युग में ज्ञान के प्रचारक यानी गुरु को शिक्षक के नाम से हम जानते हैं। शिक्षक शब्द हमारे कानों तक पहुंचते ही एक ऐसा व्यक्तित्व नजरों के सामने आ जाता है जिसमें आदर्शवादी विचारधारा हो। वह शिष्ट हो, क्षमतावान हो और कर्मठ हो।

जैसा कि कहा जाता है- वह भावी पीढ़ी का निर्माणकर्ता है।

कबीरदास ने भी कहा है- गुरु कुम्हार शिष्य- कुंभ, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट। अंतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट।।

गुरु को कुम्हार की उपमा देकर कबीरदास ने गुरु के संपूर्ण व्यक्तित्व को समाज के सामने रखा है। जिस तरह कुम्हार मिट्टी को एकत्र कर सबसे पहले अपने दोनों पैरों से उसे रौंदता है फिर उसमें निहित बारीक से बारीक कंकरों को एक-एक करके अपने हाथों से बाहर निकालता है ठीक इसी तरह एक शिक्षक की भूमिका होती है या होनी चाहिए। वर्तमान परिवेश में भले ही शिक्षक अपने विद्यार्थियों की कंकर रूपी खामियों को दूर करने के लिए दंडात्मक कदम ना उठा सके पर वह मनोवैज्ञानिक तरीके से ज्ञान के विविध स्त्रोतों के माध्यम से यथा- संगणक, एलसीडी प्रोजेक्टर, इंटरनेट, सत्साहित्य आदि के द्वारा उनकी कमियों को दूर कर सकता है। जिस तरह कुम्हार गीली मिट्टी को चाक पर रखकर अपने मन मुताबिक उसे आकार देता है। ठीक उसी तरह विद्यार्थी जीवन (बाल्यकाल) में उसके परिसर, घरेलू वातावरण एवं वर्गीय मानसिकता से जुड़ी खामियों को अपने ज्ञान के झरोखे से दूर कर सकता है। इस तरह वह एक अच्छे नागरिक का निर्माण कर सकता है। अच्छे शब्द को परखने के लिए आज हमारे पास कोई पैमाना ना हो, पर इतना जरूर है कि एक संस्कारित, कार्यकुशल व क्षमतावान विद्यार्थी ही जीवन की तमाम चुनौतियों का मुकाबला डटकर कर सकता है। जैसा कि रहीम कवि ने कहा है- जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग। चंदन विष व्यापै नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।

सक्षम व जागरूक नागरिक आज देश की जरूरत है। इस जरूरत की पूर्ति निश्चित रूप से शिक्षक के अलावा और कोई नहीं कर सकता। शिक्षक अपने अनुभव, अनुशीलन और अनुदृष्टा के माध्यम से सत्य को परिभाषित करने की ताकत रखता है। चाहे कोई भी युग रहा हो, शिक्षक का महत्व सदैव रहा है। गुरुकुल परंपरा के दौरान जहां गुरु का सम्मान शिष्य के लिए अपना शीश कटाने से भी बढ़कर था वहीं आज संगणक युग में बगैर शिक्षक के नई उड़ान को भरना संभव नहीं है। इसी तरह भविष्य में भी शिक्षक अपने ज्ञान की शक्ति का लोहा मनवाता रहेगा। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक अच्छा शिक्षक वह है जो नित्य नवीन ज्ञान से अपने आपको तैयार रखता है। टाई सूट में जरूर रहता है पर शिक्षा के विविध आयामों यथा- कला- साहित्य-विज्ञान से जुड़े रहकर उनमें निखार लाता है। समय के साथ ज्ञान की धारा को अपनी कल्पनाशीलता से और परिमार्जित करता रहता है। इस तरह अपने ज्ञान के भंडार से सारे जग को लाभान्वित करता है। यूं कहिए कि शिक्षक का जीवन तभी सच्चे अर्थों में सार्थक होगा जब वह इस बात को अपने कार्य-व्यवहार में जोड़ लें।

सरस्वती के भंडार की बड़ी अपूरब बात। ज्यों ज्यों खर्चे, त्यों-त्यों बढ़े बिन खर्चे घटि जात।

अतएव एक शिक्षक को अपना दायित्व स्वीकारने से पहले यह प्रतिज्ञा अवश्य करना चाहिए-

मैं एक शिक्षक हूं। मुझे शिक्षक होने पर गर्व है। मेरा धर्म शिक्षा प्रदान करना है। चाहे वह विद्यार्थी हो या समाज का अन्य कोई भी अंग हो। मेरा प्रयास सबकी उन्नति के लिए हमेशा कार्य करना है। विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के साथ ही साथ उनका चारित्रिक व बौद्धिक उत्थान ही मेरा प्रथम दायित्व है। आज समाज में जो भी कुरीतियां फैली हैं उनका मुकाबला करने के लिए बच्चों को संस्कारित करना तथा समाज को जागृत करना मेरा सामाजिक दायित्व है। देश का भविष्य जिन भावी नागरिकों के कंधों पर टिका है उन्हें सबल व जागरूक बनाना, मेरा राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। विद्यार्थी, समाज व राष्ट्र की खुशहाली में ही मेरा सुख निहित है।

अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींचकर शक्ति में निर्मित करते हैं। महर्षि अरविंद का उक्त कथन शिक्षक की गरिमा के सर्वथा अनुकूल ही है। शिक्षक राष्ट्र निर्माता है और राष्ट्र के निर्माण की प्रत्येक प्रक्रिया में शिक्षकीय महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

महाकवि तुलसीदास - गुरु बिनु ज्ञान कहाँ जग माही अर्थात बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त नहीं होता, अत: ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु का होना परम आवश्यक माना गया है। उर्वरायुक्त पारिवारिक धरातल पर शिक्षक संस्कारित ज्ञान की फसल बोता है और स्वच्छ एवं स्वस्थ क्षेत्रीय वातावरणीय जलवायु में श्रेष्ठता रूपी नागरिक की उन्नत उपज देता है। इस दृष्टि में शिक्षक संस्कारों का पोषक है। सही अर्थों में राष्ट्र की संस्कृति का कुशल शिल्पी है, जो संगठित, धैर्यवान, संस्कारवान, विवेकवान युवा शक्ति का निर्माण करता है। शिक्षक़ संस्कृति से तादात्म्य स्थापित कर शिक्षार्थी में ज्ञान के गरिमामय पक्ष का बीजारोपण करता है।

फलस्वरूप शिक्षार्थी में शिक्षा के प्रति गहन अभिरुचि जाग्रत होती है। शिक्षक वह सेतु है, जो शिक्षार्थी को शिक्षा के उज्ज्वल पक्षों से जोड़ता है। संस्कारित शिक्षार्थी शिक्षा के उपवन को अपने ज्ञान-पुष्प की सुरभि से महकाते हैं तथा परिवार, समाज एवं राष्ट्र को गौरवान्वित करते हैं। उत्तम शिक्षा, योग्य शिक्षक और अनुशासित शिक्षार्थी ही संस्कारित, सुसभ्य और स्वच्छ स्वस्थ समाज का निर्माण करने का सामर्थ्य रखते हैं। संस्कृति का उद्‌गम ही श्रेष्ठ संस्कारोंके गर्भ से होता है, जिससे सामाजिक गतिविधियों को सांस्कृतिक शक्ति का संबल प्राप्त होता है।

राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका का कोई सानी नहीं है। विद्यार्थियों में स्नेह, सदभाव, भ्रातृत्व भाव, नैतिकता, उदारता, अनुशासन जैसे चारित्रिक सद्‌गुणों की समष्टि गुरु के माध्यम से ही संभव होती है।

समाज जीवन में स्नेह एवं सद्भाव तथा सामंजस्य की सद्‌प्रेरणा गुरु से ही प्राप्त होती है। क्योंकि शिक्षा का मूल उद्देश्य ही चरित्र निर्माण करना है। शिक्षक शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का हरसंभव प्रयास करता है। शिक्षक को एक ऐसा दीपक माना गया है। जो सेवापर्यंत दीप्तमान रहते हुए विद्यार्थियों के प्रगतिपथ को अपने ज्ञान का आलोक प्रदान करता रहता है। जो लोग गुरु की महत्ता को अस्वीकार करते हैं या उसे कमतर आँकते हैं, उनकी बुद्धि पर प्रहार करते हुए तथा उन्हें समझाइश देते हुए कबीरदास ने कहा है-

कबीरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और। हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।

गुरु रूप में परमब्रह्म परमेश्वर की ही वंदना की जाती है।

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वर: । गुरुर्साक्षात् परमब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवैनम्: ।।

गुरु को ब्रह्मा के रूप में सृजनकर्ता, विष्णु के रूप में पालनकर्ता और शिव के रूप में न्यायकर्ता माना गया है, जो कर्त्तव्यपथ की सद्प्रेरणा प्रदान कर शिष्य को परमश्रेष्ठ की ओर प्रवृत्त करता है। महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का यह कथन कि महागुरु के आसन पर मनुष्य नहीं, स्वयं परमात्मा आसीन है गुरु के महत्व को ही प्रतिपादित करता है।

समाज और राष्ट्र निर्माण में शिक्षक की महत्ती भूमिका को डॉ. राधाकृष्णन ने स्वीकारते हुए कहा कि शिक्षक या गुरु का स्थान भगवान तुल्य होता हे। यही वजह है कि शिक्षकों के प्रति सम्मान का भाव विश्वभर में पाया जाता है। भारतीय संस्कृति में निर्गुण से लेकर सगुण तक की चिंतनधारा में शिक्षक को ही सर्वोपरि माना गया है। गुरु शिष्य संबंध संसार के प्राचीनतम संबंधों में से एक हैं जो आज भी पूर्ण प्रतिष्ठा सहित विद्यमान है लेकिन बदलते परिवेश व परिस्थितियों में समीकरण कुछ बिगड़ अवश्य गए हैं जिसकी वजह से शिक्षकों की प्रकाशधारा भी बाधित हुई है।

जहां एक ओर शिक्षार्थियों से अपने शैक्षिक जीवन काल में ऐसे आचरण की अपेक्षा की जाती है कि वे पूरी तरह से तन मन से अपने कर्त्तव्य को पूरा कर शिक्षक के बताए मार्गदर्शन का अनुसरण कर एक योग्य नागरिक बनें, वहीं यह भी जरूरी है कि शिक्षक भी अपने शिक्षार्थियों की तमाम समस्याओं का समाधान कर्ता बने। उसे अपनी शिक्षार्थी की मनोदशा, क्षमता व दिशा से परिचित होना चाहिए। शिक्षक तथा शिक्षार्थी के चारित्रिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास के बल पर ही शिक्षा के सर्वतोन्मुखी विकास की कल्पना की जा सकती है।

यह सत्य है कि परिवर्तन युग धर्म होता है लेकिन आवश्यकता इस बात की है परिवर्तन को सम्यक रूप से देखकर अपनी सांस्कृतिक विरासत की पहचान को न खोएं ताकि हमारे राष्ट्र का गौरवशाली भविष्य अतीत से प्रतिभासित होता रहे। शिक्षण कार्य विशिष्ट जीवन के प्रति प्रतिबद्धता माना गया है परंतु कभी कभी यह तर्क अप्रासंगिक ही लगता है कि जैसा शिक्षक होगा, वैसा ही समाज व शिक्षा होगी, भारतय चिंतन की कसौटी पर यह बात कही जा सकती है कि शिक्षण आदर्शों के प्रति वचनबद्ध है। समाज व राष्ट्र के सुदृढ़ निर्माण हेतु एकमात्र शिक्षक ही संबल माना गया है। भारत जेसे महान देश में योग्य शिक्षकों व आदर्श गुरुओं की परंपरा कतई समाप्त नहीं हुई है क्योंकि शिक्षा व शिक्षार्थियों के प्रति आज भी शिक्षक समर्पित हैं। भारत के अधिकांश महापुरुष शिक्षक ही रहे हैं। शिक्षक अपने विद्यार्थियों में उच्चकोटि के संस्कार समाहित करने का प्रयास करता है लेकिन फिर भी आज की परिस्थितियों में अच्छे व योग्य अध्यापकों की भूमिका बहुत सरल नहीं है। चूंकि योग्य अध्यापक के समक्ष अनेकों चुनौतियों व समस्याएं हैं, उसे समझने व सुननेवाला कोई नहीं है। आज हो यह रहा है कि यदि निष्ठावान अध्यापक पूर्ण, लगन व ईमानदारी से शिक्षक कार्य कर रहा है तो उसे पोंगा पंडित कह कर पुकारा जाता है। दु:खद पहलू तो यह भी सामने है कि जो अध्यापक अपनी संस्था, समाज और देश के प्रति निष्ठावान हैं, उन्हें कोई मेडल नहीं मिलते क्योंकि उनकी लगन व निष्ठा कोई देखनेवाला नहीं है जबकि पुरस्कार सूची में ऐसे अध्यापकों के नाम होते हैं जिनकी योग्यता व परिश्रम पर भी शक होता है। एक कर्मयोगी शिक्षक अपने विद्यानुराग में ही लगा रहता है जो सदैव ज्ञानार्जन करता है व शिक्षा प्रदान करने को ही अपना श्रेष्ठ कर्म समझता है। जो पथ माता-पिता भी आलोकित नहीं कर पाते, उसी पथ को एक शिक्षक सहजता से आलोकित करता है, इसलिए समाज को भी चाहिए कि वह भी शिक्षकों को समुचित आदर प्रदान करें जो सदैव उन्हें मिलता रहा है। कहते हैं कि शिक्षा वह ज्ञान

है जो व्यक्तित्व का विकास करें उसमें जीवन मूल्यों की धारा की ओर मोड़े और विद्यार्थियों की प्रतिभा को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाए। प्रतिभा प्रत्येक में होती है, उसे उभारने व उसमें जागरूकता बढ़ाने व खुलापन लाने का मार्ग तो अध्यापक ही प्रशस्त करता है लेकिन यह तभी संभव है जब आपस में संबंध आत्मीय हों व उनके बीच कोई आर्थिक कारण न उपजे। शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य ऐसा आकर्षण हो कि वे एक दूसरे के प्रति आकर्षित हों, इसके लिए जरूरी है कि शिक्षक विद्यार्थियों के बीच एक ऐसी अमिट छाप छोड़े कि छात्र भी धैर्यपूर्वक उनकी बातें सुने। किसी भी राष्ट्र की निधि बैंकों में नहीं, बल्कि विद्यालयों में होती है। समाज के प्रबुद्ध नागरिकों को भी यह प्रयास करना चाहिए कि, शिक्षक व शिक्षार्थियों के मध्य रिश्तों की मिठास बनी रहे व वे एक दूसरे को समझने की कोशिश करे।

आज समाज व राष्ट्र में शिक्षकों व विद्यार्थियों की भूमिका पर बहस छेड़ने की नितांत आवश्यकता है। मात्र एक दूसरे पर दोषारोपण करने की बजाय देशहित व आनेवाली पीढ़ियों के बारे में गंभीरता से सोचना चाहिए। जो हो चुका है उस ओर न मुड़कर, आगे की ओर उस जटिल समस्याओं पर नजर डाली जाए जिससे भावी पीढ़ी की नयी पौध अच्छी शिक्षा व्यवस्था रूपी वाटिका में तैयार हो सके। नये प्रयोगों, भविष्य के झटकों व सर्जनात्मक भूमिका के मध्य शिक्षक-शिक्षार्थियों के बीच तालमेल का वातावरण बन सके। ऐसी ही दृष्टि दोनों पक्षों को देनी चाहिये, विद्यार्थियों के लिए मात्र प्रमाण पत्र व उपाधियां शिक्षा के जीवन के वास्तविक पहलुओं व उद्देश्यों से दूर रखनेवाली ही साबित न हो, बल्कि उसको रोजगार से जोड़नेवाली हो तभी शिक्षक-शिक्षार्थी के मनोरथ सही साबित होंगे। यदि सचमुच हमारे सतत प्रयास सफल होंगे तो हमारे शाश्वत आदर्श व मूल्य फिर से भारतीय समाज का नवनिर्माण करने में मील का पत्थर साबित होंगी।

ज्ञान की गंगा बहानेवाले गुरु को शास्त्रों में परमब्रह्म कहा गया है। संत कबीर ने गुरु की महिमा का बखान करते हुए कहा है, **गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागे पाय, बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दिया बताय।**

गुरु हमेशा से सम्मान के पात्र रहे हैं। आधुनिक भारत में गुरुओं को सम्मान देने के लिए विशेष दिवस चुना गया है शिक्षक दिवस। छात्रों के लिए शिक्षकों के प्रति सम्मान प्रकट करने का यह सुनहरा मौका होता है। छात्र शिक्षकों को उपहार भेंट करते हैं, ग्रीटिंग कार्ड के जरिए बधाई संदेश देते हैं और उनके सम्मान में कविताएं और गीत सुनाते हैं। यह दिवस हर साल आता है और छात्रों के लिए भी विशेष बन जाता है। इस दिन छात्र शिक्षक बन जाते हैं और शिक्षक छात्र बनकर शिष्यों की बातों को गौर से सुनते हैं। इस तरह वे अपने उन दिनों की स्मृतियों को ताजा करते हैं जब वे स्वयं छात्र हुआ करते थे। शिक्षक दिवस यानी पांच सितम्बर को शिक्षकों को ऐसे ही रोचक अनुभवों से गुजरने का अवसर मिलता है।

इन दिनों शिक्षा और परीक्षाओं को लेकर छात्र-छात्राओं में जबर्दस्त तनाव का माहौल बनता जा रहा है। इसके लिए शिक्षक, अभिभावक पाठ्यक्रम, परीक्षा प्रणाली जिम्मेदार है। आज की शिक्षा व्यवस्था में परीक्षा रूपी टकसाल से निकले छात्र नौकरी के लिए दर-दर भटक रहे हैं। रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रमों की तरफ छात्रों का रुझान तेजी से बढ़ रहा है। पर राजनीतिक कुचक्र में फंसकर संपूर्ण शिक्षा प्रणाली रास्ता भटक चुकी है। आज शिक्षा जगत में अंकों की होड़ ने छात्रों व अभिभावकों को झकझोर दिया है। आज हमारे मन में यह धारणा घर करती जा रही है कि यदि १०० प्रतिशत अंक नहीं आए, तो छात्र-छात्राओं का तमाम भवितव्य ही बर्बाद हो जाएगा। माता-पिता को तनाव में देखकर बच्चे भी तनाव के

शिकार हो जाते हैं। तनाव में ही विद्यार्थी गलत कदम उठा लेते हैं। अत: माता-पिता को चाहिए कि घर का माहौल सदा तनावमुक्त व खुशनुमा रखे। पाठ्यक्रम की रूपरेखा सरल हो, जिससे शिक्षा कोई थोपी हुई चीज जैसी न लगे। बच्चों पर माता-पिता या शिक्षक अपनी मर्जी न थोपें, बच्चों की मर्जी को अहमियत दें तो बच्चों का स्वाभाविक विकास होगा। जन्म से बच्चा बुद्धू नहीं होता। योग्य मार्गदर्शन के अभाव में ही छात्र अध्ययन में अरुचि दिखाते हैं। युवा पीढ़ी में सकारात्मक सोच पैदा करने की जरूरत है। असफलता एक चुनौती है- स्वीकार करो। क्या कमी रह गयी, देखो और सुधार करो।

शिक्षक का सम्मान अच्छा शिक्षक होने में है। शिक्षक़ एक सरलतम व्यवसाय है, सरलतम वृत्ति है। जीवन की बहुत आधारभूत बात है। शिक्षक कोई व्यवसाय नहीं है, बल्कि एक आनंद है, एक सेवा है, एक सृजन है, एक साधना है। उसे छोड़कर जब भी कोई कहीं भागता है तो सम्मानित नहीं होगा, न सम्मानित होना चाहिए। लेकिन हमारे मन में तो हर तरफ राजनीति और पद महत्वपूर्ण हैं। हम तो बहुत अजीब लोग हैं।

हमारे मन में मनुष्य का कोई आदर नहीं है। हमारे मन में राष्ट्रपति का आदर है, प्रधानमंत्री का आदर है, गवर्नर का आदर है। खाली मनुष्य, जिसके पास कोई पद, कोई नाम, कोई पदवी, कोई प्रमाणपत्र, कुछ भी नहीं, निपट मनुष्य का हमारे मन में कोई भी आदर नहीं है। यह सब ऊंची-नीची कुर्सियों का आदर है। लेकिन यही शिक्षा हमें सिखाती है। यह सारी शिक्षा जला देने योग्य है। फिर से पूरे के पूरे नए आधार रखने की जरूरत है। और वे आधार होंगे कि हमें प्रेम सिखाया जाए, प्रतियोगिता नहीं। मनुष्य के प्रति, निपट मनुष्य के प्रति सम्मान सिखाया जाए- पदों, ओहदों के प्रति आदर नहीं। जरूरी है कि कामों के साथ प्रतिष्ठा न जोड़ी जाए। समग्र जीवन सभी लोगों का सामूहिक योगदान है, यह भाव पैदा किया जाए।

छात्र भाव में रहना सीख जाएं तो पूरी सृष्टि शिक्षक बन जाती है

सीखने की इच्छा हो तो किसी से भी सीखा जा सकता है। सिखाने वाले किसी भी रूप और आकार में सामने आ सकते हैं। कोई खराब व्यक्ति, घमंडी, आलसी, सुस्त तो कोई शरारती बच्चा या कोई अकृतज्ञ मित्र भी हमें सिखा सकता है। कोई समय का बेहद पाबंद तो कोई बेहद विनम्र या फिर कोई असहाय भिखारी, सभी के पास कुछ न कुछ सिखाने के लिए है। यह दुनिया अपने आप में विद्यालय ही है। जिसे सीखने की भूख है, वह हर किसी से सीख लेता है। जो इस तरह से नहीं सीखता, वह जीवन में कुछ भी नहीं सीख पाता।

सभी व्यक्ति विधाता की अन्यतम रचनाएं हैं और हर रचना के पास ऐसा कुछ न कुछ है जो कि दूसरों के पास नहीं है। जैसे ही आप खुद को छात्र-भाव में रखने को तैयार हो जाते हैं, वैसे ही आपको अपने आसपास सब शिक्षक नजर आने लगते हैं। शिक्षक का जीवन में प्रवेश तभी होता है, जब विद्यार्थी तैयार होता है। इमर्सन ने भी कहा है, हर शख्स जिससे मैं मिलता हूं, किसी न किसी बात में मुझसे बढ़कर है। मैं उससे सीखता हूं। हम केवल सीखते नहीं, वरन सिखाते भी हैं। केवल विद्यार्थी नहीं होते, वरन अध्यापक भी बनते हैं। जरूरी नहीं कि बड़े या ज्यादा आयुवाले ही सिखाएं। अक्सर छोटे और अनपढ़ भी बड़ों को इतना सिखा देते हैं कि आश्चर्यचकित होना पड़ता है।

हर कोई अपनी जिंदगी में गलतियां करता ही हे। आपने भी गलतियां की होंगी। उन गलतियों को याद रखने से अच्छा है कि आपने उनसे क्या सीखा, वो याद रखें। हमारा जीवन शिक्षाओं की क्रमबद्ध श्रृंखला है, जो विभिन्न स्तरों पर हमें

मिलती है। जो अच्छी बातें, सकारात्मक सोच, श्रेष्ठ आदतें और स्वभाव हैं, उनका अनुकरण किया जा सकता है। दूसरी ओर संसार में उस किस्म के इंसान भी होते हैं जो नकारात्मकताओं से भरे रहते हैं और अपने किसी न किसी विचित्र या अनचाहे स्वभाव के कारण हमारी निगाहों में आते रहते हैं। ऐसे लोगों की हरकतों से भी बहुत कुछ सीख ली जा सकती है। कड़वे-मीठे अनुभव बताते हैं कि किन परिस्थितियों में किस सीमा तक कितना सहयोग करना चाहिए और किनसे बचकर आत्मरक्षा की घेरेबंदी करनी चाहिए।

अच्छे और बुरे दोनों तरह के लोग इस संसार में मिल जायेंगे। सज्जनों की संगति करना बहुत अच्छी बात है पर अगर दुर्जनों की कुटिलता से अपरिचित रहेंगे तो वह दुर्दिन देखना पड़ेगा जिसमें किसी पाखंडी के कुचक्र में फंसकर जेब कटानी और मुसीबत भी उठानी पढ़ सकती है। श्रेष्ठ चरित्र को आत्मसात करने और दुष्ट चरित्र को जानकर उनसे बचने की सीख लिए जाने की जरूरत हमेशा बरकरार रहनी चाहिए। इसलिए सबसे कुछ न कुछ अवश्य सीखें। क्योंकि सब कुछ कोई नहीं जानता, परंतु प्रत्येक कुछ न कुछ जरूर जानता है।

तू समय के साज की आवाज बनके गूंज ले सिर्फ ख्यालों में उड़ेगा तो हवा हो जाएगा बंद मत कर पिंजरों में जिंदगी सड़ जाएगी, बुलंद कर खुद को, तो खुश खुदा हो जाएगा।

आज की इस अर्थ प्रधान दुनिया में शिक्षा उस वस्तु के समान बन गई है, जो आर्थिक फायदे के उद्देश्य से इस्तेमाल की जा रही है। वर्तमान परिवेश में हमारा ध्यान केवल उन्हीं दक्षताओं पर है जो उत्पादन व्यवस्था के लिए उपयोगी है। इसी व्यवस्था का प्रमाण है कि औपचारिक शिक्षा व्यवस्था हर क्षेत्र के लिये विशेषज्ञता का प्रमाणपत्र बांट रही है। हम ऐसे कामकाजी दिमाग को तैयार कर रहे हैं, जो ग्राहक को अपने लुभावने व्यवहार और चमत्कृत कर देनेवाली विश्लेषण क्षमता से बांध सकते हैं, लेकिन अपने पड़ोसी के सुख-दुख में भागीदार नहीं बन सकते। अब लिखने, पढ़ने और गिनने की दक्षताएं पीछे छूट चुकी हैं।

हमें अपनी सोच में नया पन, संप्रेषण में गर्मजोशी, समस्या के सृजनात्मक समाधान और सहभागिता के उत्साह जैसी दक्षताओं के सापेक्ष शिक्षा को विकसित करने की जरूरत है। शिक्षा का अर्थ विषय का ज्ञान देना या केवल अनुशासन और चारित्रिक विकास करना ही नहीं है। मौजूदा शिक्षा काम करने की तत्परता वाले व्यक्ति तो तैयार कर देगी, लेकिन क्या सोचने-बुझने की नई दृष्टि का विकास भी होगा? जीवन और प्रकृति के प्रति आस्था का बोध विकसित होगा? आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति से मुक्त करनेवाली सांस्कृतिक चेतना का विकास होगा? यही विशेषताएं आज के समय की जरूरतें हैं। शिक्षा का भविष्य इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विषयों के ज्ञान तक सीमित नहीं रह सकता। उसे सामाजिक, भावनात्मक और नैतिक सरोकारों से जोड़ने की जरूरत है।

आज हमें शिक्षा द्वारा ऐसा सांस्कृतिक माहौल तैयार करने की जरूरत है, जो हमारी भावी पीढ़ी में विश्वास, प्रेम, सहयोग और आत्मीयता भर सके। वह न केवल व्यक्ति को खुद की क्षमताओं के प्रति जागरूक करे, बल्कि उन्हें जीवन को संपूर्णता के साथ जीने के लिये प्रेरित भी करे। इसके साथ ही उनमें सहजीवन के मूल्यों को पोषित करे। ये लक्ष्य स्वाभाविक रूप से व्यक्ति और समाज के जीवन में खुशहाली भर देंगे।

अगली पीढ़ी के सुरक्षित भविष्य की उम्मीद में आज के पालकगण शिक्षा के लिए हर तरह का संकट झेलने को तैयार रहते हैं। आज के इस बदलते समय में शिक्षा की परिकल्पना और बदलाव को समझना जरूरी है। शिक्षा के भविष्य पर बात करने से पहले इसके अतीत और वर्तमान का उल्लेख करना जरूरी है। सीखने के समानार्थी रूप में शिक्षा मानव सभ्यता के आरम्भ से ही शामिल रही है। यहाँ शिक्षा का मकसद व्यक्ति को जीवन की मूलभूत जरूरतों की पूर्ति के कौशल सिखाना था। धीरे-धीरे शिक्षा सामाजिकता के विकास का माध्यम बन गई है। मूलभूत जरूरतों की पूर्ति के साथ नागरिकता के गुणों के विकास को भी शिक्षा के लक्ष्यों से जोड़ दिया गया। औद्योगिक क्रांति के बाद तो शिक्षा की भूमिका में आमूलचूल बदलाव आ गया। यह मानव संसाधन तैयार करनेवाले साधन के रूप में स्वीकार की जाने लगी। लिखने, पढ़ने और गिनने की दक्षताएं, उत्पादन की कुशलताएं और प्रभावपूर्ण तरीके से मानसिक और शारीरिक श्रम की आदत का विकास शिक्षा व्यवस्था का लक्ष्य बन गया। क्या यही लक्ष्य और स्वरूप भविष्य की शिक्षा के लिये उपयोगी है?

पिछले कुछ दशकों में समाज और संस्कृति में महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं। एक दौर में शिक्षा के कन्धों पर विकास की जिम्मेदारी थी। आजकल यही शिक्षा विकास और वैश्वीकरण के पीछे चल रही है। शिक्षा की तीन संकल्पनाएं हैं- पहली, सत्य की खोज, दूसरी- आदमी की दशा में सुधार और तीसरी बौद्धिक एवम् शारीरिक श्रम का उत्पादन। हमारी शिक्षा व्यवस्था इनमें से बाद के दो उद्देश्यों को ढो रही हे। जबकि अपने मौलिक रूप में शिक्षा खोज की एक लगातार चलनेवाली प्रक्रिया है। इसके अंतिम लक्ष्य को न तो तय किया जा सकता है और न ही मापा जा सकता है। आज हम एक ऐसे दौर में हैं जब खुद के अलावा हर दूसरे को हम अपनी प्रतियोगी मान रहे हैं।

ज्ञान द्वारा सत्य की सुंदरता और सहजीवन को सींचने के बदले हम आत्म मुग्धता में डूब रहे हैं। इन परिस्थितियों के लिए शिक्षा भी उत्तरदायी है। वह अब विकास की अनुगामी बन चुकी है। जबकि भारतीय परम्परा में आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय विकास एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हम विचार और वस्तु में दोहन का संबंध देखने के बदले सृजन और सहअस्तित्व का रिश्ता बनाते हैं। हमारी परम्परा में शिक्षा केवल उपयोगिता को निर्मित और संवर्धित करनेवाले विवेक का निर्माण नहीं है बल्कि उचित-अनुचित का बोध विकसित करनेवाला ज्ञान है।

शिक्षा विकास का माध्यम नहीं है, बल्कि सद्-सद्-विवेक के बोध का विकास ही शिक्षा है। ऐसी शिक्षा के लिए केवल औपचारिक प्रयासों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। हमारे घर, समुदाय और सांस्कृतिक गतिविधियां सभी आदमी को शिक्षित करने का माध्यम हैं। हमें इन माध्यमों और अपनी भूमिका पर विचार करने की जरूरत है। आखिर हम अपने बच्चों को शिक्षित करने के दौरान शिक्षा की प्रक्रियाओं से जुड़ने और उसमें योगदान करने का कितना प्रयास करते हैं? हमें स्कूल जो बता देता है, उसे ही हम मान लेते हैं। हम यह भी मान लेते हैं कि स्कूल जो भी करता है, हमारे बच्चों की भलाई के लिये ही करता है। लेकिन इन भलाई के काम में पालकगणों के योगदान का क्या? उनकी भूमिका सामान खरीदनेवाले ग्राहक जैसी होती जा रही है, जो केवल सुनी-सुनाई बात पर ही विश्वास कर लेता है। हमारे यहाँ न तो पाठशाला यह जानना चाहता है कि उसकी दीवार के बाहर बच्चे की दुनिया कैसी है और न ही पालक यह जानना चाहता

है कि स्कूल के भीतर की दुनिया में क्या हो रहा है?

पालकगण और स्कूल के बीच संवाद या तो प्रबंधन के स्तर पर है या बच्चों की उपलब्धि के विषय में। आज पालकगण की दिनचर्या में बच्चों से बात करने का कितना हिस्सा है? हम उनके मीठे और कड़वे अनुभव से खुद को कब जोड़ते हैं? हम उनसे दुनियादारी की बातें कब करते हैं और कब हम स्कूल से अपने बच्चे की गतिविधियों के बारे में सवाल करते हैं? स्कूल कब बच्चे के अनुभव के बारे में माता-पिता को बताता है? पालक और शिक्षक मिल बैठकर बच्चे की कमजोरी और मजबूती पर कब चर्चा करते हैं।

इन सारे सवालों को हम केवल स्कूल के भरोसे नहीं छोड़ सकते। शिक्षा का भविष्य और समुदाय के सदस्यों की ओर से भी सक्रिय भागीदारी की अपेक्षा रखता है। अक्सर कहा जाता है कि शिक्षा अच्छे समाज का निर्माण करती है, शिक्षक राष्ट्र निर्माता होता है और शिक्षा पद्धति में परिवर्तन के द्वारा ही समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है। ये सभी बातें सही हैं, लेकिन पूर्ण सत्य नहीं हैं। जिस शिक्षा से हम समाज के पुनर्निमाण की कामना करते हैं और वैसा न कर सकने पर उसे दोषी ठहराते हैं, उसके प्रयोजन और प्रक्रिया का निर्धारण खुद समाज या उसकी किसी प्रतिनिधि संस्था द्वारा किया जाता है। शिक्षा समाज का वैसा ही निर्माण करती है, जैसा समाज शिक्षा का निर्माण करता है। जो शिक्षा समाज की जरूरतों की मांग पर खरी नहीं उतरती, उसे उपेक्षित कर दिया जाना स्वाभाविक है। आज कल की शिक्षा रोजी परक होती है न कि ज्ञान से विकास की ओर।

हिंद स्वराज्य का शिक्षा दर्शन और वर्तमान प्रासंगिकता - महात्मा गांधी ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक हिंद स्वराज्य के १८वें अध्याय में शिक्षा से संबंधित अपने विचारों को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार सच्ची शिक्षा वही है जो मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाये, उसके समग्र विकास में योगदान दे और उसे कर्त्तव्य पालन के लिए प्रेरित करे।

उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गयी है कि वह उसके बस में रहता है और जिसका शरीर आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस व्यक्ति ने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है, जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इंद्रियां उसके बस में हैं, जिसे अनैतिक कामों से नफरत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही सच्चा शिक्षित माना जाएगा क्योंकि वह कुदरत के कानूनों के मुताबिक चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।

उक्त कसौटी के आधार पर गांधीजी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उन्होंने स्कूलों में भूगोल, खगोलशास्त्र, बीजगणित, रेखागणित आदि जिस किसी भी शास्त्र की शिक्षा पायी, वह सब अनुपयोगी है। ऐसे शास्त्रों से न तो उनका कुछ भला हुआ और न ही उनके आसपास के लोगों का। इसलिए वे मात्र पश्चिमी देशों की देखा-देखी सबको अक्षर-ज्ञान देने की जरूरत नहीं मानते।

गांधीजी ने कहा- एक किसान ईमानदारी से खुद खेती करके रोटी कमाता है। उसे मामूली तौर पर दुनियावी ज्ञान है। अपने मां-बाप के साथ कैसे बरतना, बच्चों से कैसे पेश आना, जिस देहात में वह बसा हुआ है, वहां उसकी चाल-ढाल कैसी होनी चाहिए, इस सबका उसे काफी ज्ञान है। वह नीति के नियम समझता है और उसका पालन करता है लेकिन वह

अपने दस्तखत करना नहीं जानता। इस आदमी को आप अक्षर-ज्ञान देकर क्या करना चाहते हैं? उसके सुख में आप कौन सी बढ़ती करेंगे?

आज हिंद स्वराज्य के शताब्दी वर्ष में गांधीजी के उक्त सवालों की प्रासंगिकता बढ़ गयी है क्योंकि स्वतंत्र भारत की सरकारों ने अक्षर-ज्ञान और पश्चिमी विज्ञान को ही अपना आराध्य माना। इसके कारण भारतीय किसानों एवं कामगारों के ज्ञान-विज्ञान का भारी नुकसान हुआ। आज हालात यह है कि भारतीय किसान खेती के उपकरणों के अलावा खाद एवं बीज के लिए भी बाजार पर निर्भर हो गया है और खादी एवं रेशमी वस्त्र बनानेवाले बुनकर सहित सभी कामगारों की स्थिति भी दयनीय है। इधर, सरकार सर्व शिक्षा अभियान के नाम पर स्कूलों की रंगाई-पोताई, कान्ट्रेक्ट पर अयोग्य शिक्षकों की बहाली और बच्चों के बीच सड़ी गली खिचड़ी के वितरण में लगी है। वह खेती एवं लघु कुटीर उद्योगों को तबाह होते छोड़कर परमाणु-वस्त्रों के निर्माण एवं चंद्र-अभियान में लगी है। हाल ही में बनाए गए अनिवार्य शिक्षा कानून में भी भारत की जमीनी वास्तविकताओं और गांधीजी की चिंताओं का ख्याल नहीं रखा गया है। इस कानून के जरिये सरकार सबको समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने की जिम्मेवारियों से भागकर शिक्षा के निजीकरण एवं बाजारीकरण की रफ्तार को तेज कर रही है। इससे गरीब बच्चों को घटिया स्कूलों में पढ़ने के लिए मजबूर किया जा सकेगा जबकि मध्यम वर्ग और अभिजात तबके के बच्चों को केंद्रिय विद्यालय या निजी शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने का अवसर पूर्ववत उपलब्ध रहेंगे।

महात्मा गांधी ने हिंद स्वराज्य में मातृभाषा में शिक्षा देने और नीति धर्म शिक्षा को बढ़ावा देने की वकालत की है। इस ओर भी स्वतंत्र भारत की सरकारों ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। यही वजह है कि आजादी के ७१ वर्षों बाद भी भारत अंग्रेजी के प्रेत से मुक्त नहीं हो पाया है और शिक्षा अधिकार विधेयक- २००८ में भी अंग्रेजी माध्यम से छोटे बच्चों को शिक्षा देने का मार्ग खुला रखा है। इसमें नैतिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भी कोई ठोस प्रावधान नहीं है। आज की शिक्षा-व्यवस्था सूचनाओं के बोझ से लदे गधे विद्यार्थी एवं दूसरों का गलाकाट कर आगे बढ़नेवाला प्रतिस्पर्धी और येनकेन प्रकारेण सफलता पाने को उतावला मुन्ना भाई तो पैदा कर रही है लेकिन शिक्षित, संवेदनशील और सृजनशील मनुष्य बना पाने में नाकामयाब रही है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था का उत्पाद युवा पीढ़ी अधनंग फकीर गांधी के हिंद स्वराज को कम से कम एक बार भी पढ़ने की फुर्सत निकाल सके तो देश का काफी भला हो।

हमारी शिक्षा के मूल्यों में चरित्र निर्माण एवम् व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास, सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा एवम् विकास, गुरुजनों का सम्मान, प्रकृति के प्रति प्रेम व संरक्षण, कठोर परिश्रम का महत्व, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान व प्रेम, निर्णय लेने की क्षमता का विकास, जिज्ञासु प्रवृत्ति एवम् जीवन जीने की कला आदि विषयों की प्रधानता थी। राजनीतिक पार्टियां सही-गलत, नैतिक-अनैतिक का विचार निस्वार्थ भाव से करते हुए अपना आचरण दिखायेंगे या विरोध के लिए विरोध ही करेंगे। सत्ताधारी अपने आचरण का उदाहरण रखते हुए मूल्य स्थापित करने में अपना योगदान देश के सामने पेश करेंगे। वर्तमान पीढ़ी जिसमें अद्भुत प्रतिभा है, उसके लिए अगर मानवीय मूल्यों की शिक्षा का प्रावधान परिवारों एवम शिक्षा संस्थानों में किया जाए तो वह अपनी धरती पर मजबूती से पांव जमाकर खड़ी रहते हुए विश्व की ऊंचाइयों को आसानी से छू सकती है। इस मूल्य आधारित व्यवस्था से देश में अनाचार, दुराचार, अत्याचार समाप्त हो सकते हैं, साथ ही कानून और नियमों की पालना के लिए नैतिक बल भी मिलेगा।

हंसी-मुस्कान, खुशी-प्रसन्नता

आज के भौतिक युग में अधिकांश व्यक्ति तनाव युक्त होते हैं। तनाव से मुक्त होने के लिए हंसना परम आवश्यक है। हंसी हमारे शरीर के लिए चिकित्सा तथा आत्मा के लिए औषधि है। शास्त्र में लिखा है कि हर बात का समय है। हर समस्या का अपना समय है। हर उस कार्य का समय है जो इस धरती के ऊपर तथा आकाश के नीचे रोने का एक समय है। हंसने का एक समय है।

हंसी आपके हृदय को शक्ति देने के साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता के कार्य को बढ़ावा, तनाव से मुक्त तथा अपने आचरण को शांत रखने में आपकी बहुत अधकि सहायता करती है। हंसी सभी प्रकार के बोझ से हृदय को मुक्त कर देती है। आप अच्छा महसूस करते हैं। आप आत्मिक स्तर पर भी ऊंचे उठते हैं।

हंसी-मुस्कान- हंसी निश्छल आनंद की अभिव्यक्ति है। आज इस अमूल्य भाव को इतना कीमती और जरूरी माना जा रहा है कि चाहे विज्ञान हो या अर्थशास्त्र और समाजसेवा हो या राजनीति- इसका न होना बहुत सी परेशानियों का मूल माना जाता है। बढ़ते तलाक, टूटते परिवार, हिंसक नाबालिग जैसी तमाम समस्याओं से घबराई सरकारें व सामाजिक संस्थाएं इस दिशा में प्रयत्न करने लगी है। हैपिनेस गार्डन जैसी जगहें बन रही हैं। लोग खुद भी इन समस्याओं से बचने के लिए पैसे खर्च कर रहे हैं। शताब्दियों से जिस क्षेत्र में आध्यात्मिक गुरु या मनोवैज्ञानिक काम कर रहे थे, अब वहां विज्ञान खुलकर आ गया है। केवल दिमागी बीमारियों के लिए काम करनेवाले न्यूरो साइंटिस्ट अब इस खोज में जुटे हुए हैं कि दिमाग और खुशी के बीच संबंध है। इस तरह वे अध्यात्म से भी जुड़ रहे हैं।

न्यूरो वैज्ञानिकों के अनुसार खुशी दिमाग से शुरू होती है। सिर में बाईं आंख के ऊपर उसका केंद्र है। दिमाग की गहराई में न्यूरॉन या तंत्रिका कोशिकाएं मौजूद हैं जो खुशी से जुड़ी हैं और मुस्कान से वह रोशनी से भर जाती हैं। जरा सा अच्छा अनुभव हो तो भी वह अणुओं के द्वारा पूरे नर्वस सिस्टम में खुशी की खबर फैला देता है। फौरन व्यक्ति का रक्तचाप सामान्य पर आ जाता है, तनाव के हार्मोन्स पीछे हो जाते हैं। मन बेहतर महसूस करने लगता है। सिर्फ मुस्कान से दिमाग खुश हो जाता है।

महात्मा बुद्ध ने २५०० वर्ष पहले कहा था कि सभी जीवित प्राणी खुशी चाहते हैं, दुख नहीं। पर क्या खुशी सबको मिल पाती है? खुशी पर काम करनेवाले नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री सर एंगस स्टुअर्ड डिटन तथा मनोवैज्ञानिक डैनियल काहनेमन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इंसान के जीवन में खुशी का मूल्य इतना है कि वह उसकी कार्यक्षमता और स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती है। इन्हीं के बूते व्यक्ति पैसा कमा सकता है। ज्यादा धनी को संतोष मिल सकता है, पर खुशी मिले यह जरूरी नहीं है। २१ वीं सदी में विज्ञान और अध्यात्म का मेल हो रहा है, तो खुशी का रास्ता स्पष्ट होता जा रहा है।

हास्य एक सार्वभौमिक भाषा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। हंसता हुआ चेहरा देखकर हंसी आ ही जाती है क्योंकि हंसी संक्रामक होती है। हंसना एक सकारात्मक भाव है। जब हम किसी को खिलखिलाकर हंसते हुए देखते हैं तो हमारा मस्तिष्क अनायास ही चेहरे की मांसपेशियों को हंसने के लिए विवश कर देता है। हंसना शारीरिक बीमारियों तथा

मानसिक व्याधियों से निजात पाने का सर्वोत्तम उपाय है। ठहाके लगाने व खिलखिलाकर हंसने से छाती व पेट के मध्य स्थित डायफ्राम में स्पंदन होता है। हंसने से डायफ्राम की झिल्ली सक्रिय होने से पेट, फेफड़े व लीवर की स्वाभाविक मालिश होती है। हंसने से समस्त शरीर की कोशिकाओं में ऑक्सीजन का संचार होता है। हृदय की शिराओं में रक्त का परिसंचरण सुचारू ढंग से होने लगता है। ठहाके से महत्वपूर्ण रसायन एंडोर्फिन तथा सेरोटोनिन का पर्याप्त मात्रा में उत्सर्जन होता है। हंसने का बेशकीमती उपहार इस चराचर जगत में परमेश्वर ने केवल मनुष्य को ही दिया है।

जब हर तरफ रोते-बिलखते लोग दिखें, हर तरफ खून-खराबे की तस्वीरें विचलित करें तो मन में अवसाद के अलावा कुछ नहीं आता। इसे दूर करने का तरीका खुद में एक बड़ा दर्शन है, जिसे हमें समझना चाहिये। अगर कोई हमें गम में दिखता है तो क्या हम उसे और रुलाएंगे? हमारे घर में जब कोई बच्चा रोता है तो हम उसे खुश करने की सारी जद्दोजहद करते हैं। हमारे ही घर में जब कोई हादसा होता है तो हम एक-दूसरे को दिलासा देते हुए कहते हैं, मायूस मत हो, यह वक्त भी चला जाएगा।

मगर जैसे ही हमारे समाज में कोई दुर्घटना होती है वह चाहे जिसके साथ हो, हममें से बहुत से लोग उसके दर्द को और उभारने लगते हैं। रो-रोकर हाल बयान करते हैं। सही मायने में हमें उस वक्त संभलना चाहिए, मायूस लोगों की मुस्कुराहट की फिक्र करनी चाहिए, कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे बेरंग उदास माहौल खिल जाए। न सिर्फ खिल जाए, बल्कि खिलकर ऐसे किसी रास्ते पर रवाना हो, जो उदासी से दूर इंसानियत और समझदारी की ओर जाता हो।

हम नहीं कहते कि फूहड़ हंसी हंसने लगें, मगर गम से उबरने की कोशिश तो करिए। अपने दिल में झांकिए और देखिए कि क्या ऐसी भी कोई तरकीब है, जिससे किसी भी परेशान का गम हल्का हो जाए और दर्द देनेवालों को भी कुछ समझ आए? मुस्कराहट में दर्द लपेटकर जालिम का विरोध करने का दर्शनशास्त्र अगर समझ आ गया तो यकीन जानिए, आपसे बड़ा कोई हकीम नहीं जो उबलते हुए दिल को ठंडक पहुंचा जाए।

जब हम दिल खोलकर हंसते हैं तो मस्तिष्क के वे हार्मोन्स अधिक बनते हैं जो हमें चिंताओं से मुक्त करते हैं। प्रसन्नचित रहनेवाले स्वभाव के लोगों का हृदय भी स्वस्थ रहता है। हंसी-मजाक से हम अपना तनाव कम करते हैं।

हंसी सभी प्रकार के बोझ से हृदय को मुक्त कर देती है। अपने को खुश रखनेवाला व्यक्ति बहुत सी तकलीफों से बचा रहता है और शरीर में प्रतिरोधक क्षमता का स्तर जब सही होता है तो शरीर के रक्त में अधिक लाल तथा सफेद सेल बढ़ते हैं।

हास्य चलचित्र से रक्त में श्वेत रक्त कणिकाएं बढ़ती हैं। ये हमारे शरीर के उच्च प्रतिरोधक स्तर को दर्शाती हैं। हंसी न केवल आपके भावनात्मक रवैये को बदलती है, साथ ही वह आपकी आयु को भी बढ़ावा देती है। हंसना हमारे १०० वर्ष तक जीने की गारंटी तो नहीं है इससे स्वास्थ्य समस्या नहीं होगी।

जीवन सुख-दु:ख, अनुकूल-प्रतिकूल, अच्छी-बुरी परिस्थितियों का मिला जुला रूप है। यहां सब कुछ इच्छानुसार नहीं होता। प्रतिकूलताएं आती-जाती रहती हैं। जब जीवन में कठिनाइयां-असुविधाएं आती हैं तो मानसिक तनाव और शारीरिक थकान का पैदा होना स्वाभाविक हे।

ऐसी स्थितियों में आत्मरक्षा का एक ही कारगर उपाय है- हर समय प्रसन्न रहने के लिए हंसने-मुस्कुराने का सहारा

लिया जाए। हंसते हंसाते रहने से विषम परिस्थितियों में भी जीवन की गाड़ी आसानी से आगे बढ़ जाती है।

निराशा, उदासी, खिन्नता को दूर करने और भारी मन को हल्का करने में हंसने-मुस्कुराने से बढ़िया उपाय दूसरा नहीं है। इसके लिए स्वस्थ मनोरंजन, मनोविनोद, हंसी-खुशी के प्रसंगों को अपनी दिनचर्या में अधिक-से-अधिक स्थान देना आवश्यक है। ईश्वर ने सभी प्राणियों में मनुष्य को हंसने-मुस्कुराने की विशेषता प्रदान कर उसे श्रेष्ठ उपहार दिया है।

जीवनी शक्ति को बढ़ाने, मन को प्रसन्नचित्त रखने, तनाव से मुक्ति दिलाने में हास्य बहुत सहायक है। प्रसन्नचित्त व्यक्ति जितने उन्नत सुखी और शांत देखे जाते हैं, उतने उदास, खिन्न, मनहूस नहीं। प्रसन्न व्यक्तियों की बुद्धि अधिक तीव्र और विचार अधिक स्थिर होते हैं। ऐसे व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों, परेशानियों को झेलने में अधिक समर्थ होते हैं।

रोगी के लिए भी हंसना व प्रसन्नचित्त रहना बहुत आवश्यक है। जो प्रसन्नचित्त और मुस्कुराते रहते हैं, उन पर दवाइयों का असर भी तेजी से होता है और वे शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते हैं। ठहाका लगाकर हंसनेवालों का पाचन संस्थान अधिक तेजी से कार्य करता है। ईर्ष्या, द्वेष, भय, उत्तेजना, क्रोध और चिंता जैसे मनोविकारों के कारण अथवा शारीरिक रोगों के फलस्वरूप शरीर में जो विष उत्पन्न हो जाते हैं, उनके निष्कासन में हंसना बहुत ही सहायक होता है।

प्रसन्न रहने व मुस्कुराते रहने के लिए आवश्यक नहीं कि धन, संपत्ति और बहुमूल्य साधन सुविधाएं ही हों। मात्र विचार करने की शैली में परिवर्तन और दृष्टिकोण का सही रखना अत्यंत आवश्यक है। हंसने मुस्कराने से मन हल्का होता है, ताजगी और स्फूर्ति बनी रहती है।

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में पानी देने से पत्तियां, फूल, तना और सभी अंग पोषक तत्व प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार हंसने मुस्कराने से शरीर के अंग-अवयवों की सक्रियता और स्फूर्ति भी बढ़ जाती है। यह स्वास्थ्य के लिए महौषधि है।

हंसना, मुस्कुराना, प्रसन्न रहना अपने स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, घर-परिवार, मित्र, पड़ेसी सभी को प्रसन्नता के लिए बहुत आवश्यक है। इसमें कुछ खर्च नहीं होता वरन् मिलनसारिता और आत्मीयता बढ़ती है तथा स्वस्थ और स्फूर्तिवान रहा जा सकता है। इसलिए हमें यही प्रयास करते रहना चाहिए कि सदैव हंसते-मुस्कुराते बने रहकर प्रसन्न रह जाय। जो प्रसन्न हरते हैं वास्तव में वे ही सुखी हैं।

न्यूयॉर्क के एक डिपार्टमेंटल स्टोर ने खरीदारों को संभालनेवाले कर्मचारियों को सराहने के लिए एक विज्ञापन जारी किया।

मुस्कान का महत्व बहुमूल्य है। पानेवाले को समृद्ध करती है, देनेवाले को दरिद्र नहीं बनाती। पल में कौंधती है और याद सदा रह जाती है। कोई भी ऐसा अमीर नहीं कि इसके बिना रह सके, गरीब इसे पाकर अमीर बन सकता है। घर में खुशी लाती है, व्यापार में सद्भावना को बढ़ाती है और मित्रों में सहमति। थके हुए के लिए विश्राम, हताश के लिए आशा, उदास के लिए उत्साह का प्रकाश और समस्याओं का प्राकृतिक तोड़ है। भीड़ में थकान के कारण हमारा कर्मचारी मुस्करा न सके तो अपनी मुस्कान छोड़कर जा सकते हैं क्या?

मुस्कान से खिले चेहरे वाले लोग प्रबंध, अध्यापन और व्यापार में और बच्चे पालने में कुशल होते हैं। त्योरी के बजाय मुस्कराहट में ज्यादा व्यंजना होती है। इसीलिए शिक्षा में दंड के स्थान पर प्रोत्साहन अधिक प्रभावशाली होता है।

बड़े-बड़े बिक्री केंद्रों में ऊंची उपाधि प्राप्त, गंभीर मुद्रावाले व्यक्ति की अपेक्षा सहज मुस्कान से युक्त खुशनुमा व्यक्तित्व को वरीयता दी जाती है। अनेक देशों में फोन पावर कोर्स के जरिए सेवाएं या माल फोन पर बेचनेवाले लोगों को सलाह दी जाती है कि फोन करते समय आप मुस्कराते रहें। आवाज में मुस्कान सुनाई पड़ेगी। विश्वास है कि केवल मेहनत से किस्मत के ताले खुलते हैं। काम के दौरान खुशी का अनुभव करना ज्यादा जरूरी है। काम को बोझ समझनेवाले सफल नहीं होते। एक सप्ताह में प्रत्येक घंटे में एक बार मुस्कराइए। जिस व्यक्ति के चेहरे पर मुस्कान नहीं, उसे कभी दुकान नहीं खोलनी चाहिए।

खुशी - प्रसन्नता- धन से संतोष तो मिल सकता है खुशी भी मिले, यह जरूरी नहीं :- खुशी एक दुर्लभ भाव हो गया है। पहले घर-बाहर से ठहाकों की आवाजें आना मामूली बात हुआ करती थी। अब हंसी दूसरे को गिराने, बेइज्जत करने, छेड़खानी आदि के काम आती है। निश्छल हंसी व्यायाम के तौर पर इस्तेमाल की जाती है। एक वक्त था जब गुमसुम बैठनेवाले को लोग व्यंग्यपूर्वक कहते थे, भाई हंसने के पैसे नहीं लगते, पर आज हर कोई इतना तनावग्रस्त है कि दूसरों को छोड़ो खुद को भी हंसाने की वजह ढूंढता है।

खुशी के लिए कुछ न कुछ करना और थकना जरूरी है। हम सब अपने जीवन को अपार खुशियों से भरना चाहते हैं। इसके लिए खुशहाली और समृद्धि की कामना करते हैं। खुशहाल होने के लिए जी तोड़ मेहनत भी करते हैं। समृद्धि पाने के लिए कई बार हम अपने स्वास्थ्य से भी समझौता कर लेते हैं। जीवन में कई बार नियम-कानून और नैतिक मूल्यों से भी इसके लिए बच निकलते हैं। लेकिन समृद्धि के बावजूद खुशी है कि आने का नाम नहीं लेती। यदि वास्तव में खुशी का संबंध आर्थिक समृद्धि से होता तो हम सब किसी न किसी तरह खूब कमा लेते। खुशी पाने के लिए दूसरों की संपत्ति पर कब्जा कर लेते या चोरी-डकैती द्वारा धन एकत्र कर लेते। लेकिन धन-दौलत से खुशी का कोई नाता नहीं। पैसों से मुलायम बिस्तर खरीदा जा सकता है, नींद नहीं। पैसों से आलीशान मकान लिया जा सकता है, घर नहीं बनाया जा सकता। पैसों से कीमती कलाकृतियां खरीदी जा सकती हैं कलाकार नहीं बना जा सकता। पैसों से ऐशो-आराम का हर सामान खरीदा जा सकता है, लेकिन खुशी नहीं। हमारी खुशी का रिश्ता तो मेहनत से है। जब हम जी तोड़ मेहनत करते हैं और उसके बदले कुछ पाते हैं, तभी खुशी मिलती है। बाजार से फूल खरीद लाने या माली से गमलों में फूलों के पौधे लगवा लेने में वैसी खुशी कहां जो खुद मेहनत करके फूल उगाने में मिल सकती है। असली खुशी तो मिट्टी को कूट-पीटकर उसमें बीज बोने, पौधे उगने पर उनकी देखभाल करने, उनमें खाद-पानी देने व बड़े होने पर फूल-फल प्राप्त करने में है। और उससे भी अधिक प्रसन्नता तो प्राप्त फल-फूलों को दूसरों को भेंट कर देने में है। आज भी ग्रामीण अंचल के लोग फसल आने पर सबसे पहले उसका कुछ भाग अपने पड़ोसियों, मित्रों या किसी जरूरतमंद को दान में देते हैं।

कुछ लोग लजीज भोजन करके खुशी पाना चाहते हैं। जबकि ठीक से भोजन करने का अर्थ है कि भोजन सात्त्विक हो और अपना कामकाज भी ठीक हो। भूख लगने पर ही भोजन किया जाए। कहते हैं कि भूख में किवाड़ पापड़ या भूख न देखे बासी भात। विद्यासागर नौटियाल की कहानी माटीवाली में माटी बेचनेवाली गरीब मजदूर बुढ़िया रूखी-सूखी बासी रोटी मिलने पर भूख की महिमा का गुणगान करते हुए कहती है- भूख मीठी कि भोजन मीठा। ऐसी होती

है भूख की महिमा। खुशी के लिए पैमाना अलग ही होता है जो जिसमें हमारा कुछ न कुछ करना और थकना जरूरी है। थकान के बिना न तो आराम का ही मजा है और न अच्छी भूख और भोजन का। बगैर इसके गहरी नींद भी संभव नहीं। थककर चूर होकर भूख लगने पर भोजन करने में और फिर गहरी नींद सोने में जो आनंद है वह और किसी भी तरह की सुख-समृद्धि में नहीं मिल सकता।

एक स्थान पर एक महात्मा प्रवचन कर रहे थे। महात्मा न केवल उन्नत आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत थे अपितु उनका दृष्टिकोण भी अत्यंत व्यापक, व्यावहारिक व वैज्ञानिक था। उन्होंने उपस्थित सभी पचास-साठ श्रोताओं को एक-एक पर्ची दी और उस पर अपना-अपना नाम लिखने को कहा। फिर सभी पर्चियों को एक कटोरे में डाल दिया और सबसे अपने-अपने नाम की पर्ची निकालने को कहा। सभी ने अपने नाम की पर्ची निकालने की कोशिश की, लेकिन दो-चार लोग ही निकाल पाए। महात्मा ने सभी पर्चियां वापस कटोरे में रखवां दीं और सबसे कोई भी एक पर्ची उठाने को कहा। सबने एक-एक पर्ची उठा ली। अब एक व्यक्ति आता और उसके पास जिसकी पर्ची होती उसका नाम पुकारा जाता। वह व्यक्ति आकर न केवल अपनी पर्ची लेता बल्कि उसके पास जो पर्ची होती उस पर लिखा नाम पुकारता और फिर उस व्यक्ति को उसकी पर्ची थमा देबता। इस प्रकार कुछ ही मिनटों में सारी पर्चियां सही हाथों में पहुंच गईं।

इसके बाद महात्मा ने कहा कि हमारे जीवन की भी यही स्थिति है। हम सिर्फ अपने लिए अपनी पर्ची रूपी खुशी की तलाश में रहते हैं। नतीजा यह होता है कि किसी को उसकी वास्तविक खुशी नहीं मिलती। वास्तविक खुशी दूसरों को उसकी पर्ची रूपी खुशी प्रदान करने में है। जिस प्रकार दूसरों की पर्ची उसे देने से हमारी अपनी पर्ची आसानी से उपलब्ध हो जाती है, उसी प्रकार दूसरों को खुशी प्राप्त करने से हमें अपनी खुशी भी आसानी से मिल जाती है।

कुछ लोग सोचते हैं कि सबसे बड़ी खुशी मंदिर-मस्जिद, पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा तथा सत्संग-तीर्थ आदि में है, लेकिन लोग वहां जाकर भी वास्तविक खुशी हासिल नहीं कर पाते।

** जो सुखी हैं उनका भी चित्त बादलों को देखकर स्थिर नहीं रहता,*
फिर जो विरही हैं उनकी तो बात ही क्या?

** उपासना के द्वारा विवेक उत्पन्न होता है,*
विवेकी होने से क्षणिक वस्तुओं से शोक और आनन्द ये दोनों नहीं होते।

** संसार में छल, प्रवंचना और हत्याओं को देखकर*
कभी कभी मान लेना पड़ता है कि यह जगत ही नरक है।

** गलत को गलत कहना हमें आसान नहीं लगता, सही इतना कमजोर होता है,*
इतना अकेला कि उसके खिलाफ ही जंग का ऐलान आसान लगता है।

** शारीरिक गुलामी से बौद्धिक गुलामी अधिक भयंकर है।*

अनुशासन, शील, मर्यादा, सीमा, कृतज्ञता, आभार, शुक्रिया, धन्यवाद

जे एडगर हूवर ने कहा था कि यदि हर घर में अनुशासन का पालन किया जाए तो युवाओं द्वारा किए जानेवाले अपराधों में ९५% तक कमी आ जाएगी। मगर आज के परिवेश में हर ओर स्वच्छंदता का ही बोलबाला है। लोगों को जो सही लगा वह बोलने दीजिए और जो अच्छा लगे वह करने दीजिए। अनुशासन को वह बंधन मानते हैं। जबकि फ्रेंक हर्बट ने कहा था कि स्वतंत्रता ढूंढ़िए और अपनी इच्छाओं के कैदी बन जाइए। अनुशासन ढूंढ़िए और अपनी स्वतंत्रता पाइए।

आज की परिस्थितियों में जीवन को अनुशासित और मर्यादित रखना आसान काम नहीं है। इसके बावजूद इस चुनौती को स्वीकार करने में ही हमारी सुरक्षा है। शरीर हो या जीवन, परिवार हो या समाज, शहर हो या राष्ट्र, सभी इस मर्यादा और अनुशासन से ही सुचारू रूप से चल रहे हैं। आसमान में पतंग उड़ती है। यदि हम मान बैठे हैं कि हवा के कारण ही पतंग आसमान में उड़ सकती है तो एक बार को पतंग को धागे के बंधन से मुक्त कर हमें उसका परिणाम देखने की जरूरत है।

बंधन-हीन होते ही पतंग जमीन पर आ गिरती है। ऐसा ही है मर्यादा का बंधन। उसे स्वीकार करने में ही हमारे अस्तित्व की सुरक्षा और विकास है। लेकिन हमारे मन की वृत्ति है कि उसे निरंकुशता ही रास आती है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि हम अपने को मर्यादा के अंकुश से बांध कर रखे।

इंसान के खुशनुमा जीवन की बढ़िया कुंजी बनती है शुक्रगुजारी

जिस मुकाम पर आप आज हैं, वहां पहुंचने में सैकड़ों जाने-अनजाने व्यक्तियों, संगठनों का हाथ रहा है। यदि आप इनके प्रति शुक्रिया महसूस करने की आदत बनाते हैं तो आपकी जिंदगी स्वस्थ व खुशनुमा गुजरेगी। जो लोग जीवन को तोहफा मानते हैं, वे मन, शरीर व भावना से अधिक स्वस्थ रहते हैं। फिर भी कृतज्ञता का भाव बनाए रखने के लिए अहंकार छोड़ना जरूरी है। विज्ञान, राजनीति, खेल किसी भी क्षेत्र में बुलंदियां उन्हीं लोगों ने हासिल की जिनमें कृतज्ञता का भाव रहा। अलबर्ट आइंस्टीन प्रकृति के अनुपम उपहारों की खूब सराहना करते थे। अंतर्राष्ट्रीय बंधुत्व बढ़ाने में कृतज्ञता की भूमिका को ध्यान रखते हुए संयुक्त राष्ट्र के मेडिटेशन ग्रुप ने प्रतिवर्ष २१ सितंबर को विश्व कृतज्ञता दिवस के रूप में मनाना शुरू किया। इससे उन्हें सम्मान मिला जिन्होंने वैश्विक मानववाद के क्षेत्र में योगदान दिया। इस दिन व्यक्ति, परिवार व समाज के स्तर पर आभार और धन्यवाद की परिपाटी को प्रोत्साहित किया जाता है। हमारी संस्कृति शुरू से कृतज्ञता प्रधान रही है। माता-पिता, गुरु, परिवार, समाज, समुदाय के वरिष्ठजनों के प्रति आभार प्रकट किया जाता रहा है। सबसे ऊपर स्थान है मां का। कोई हमारी अमानत सुरक्षित लौटाता है तो उसे धन्यवाद दिया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों में मनुष्यों से परे अन्य जीवजंतुओं और प्रकृति के प्रति भी आभार प्रदर्शित करने का विधान है। श्राद्ध पक्ष पितरों के प्रति आभार ज्ञापन का रूप है। पूर्वजों को तर्पण, फूल अर्पित कर हम उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। उनकी कृपा बनी रहने की प्रार्थना करते हैं। यहूदियों की धारणा है कि जो कुछ भी हमें मिलता है, प्रभु की कृपा से। अनुयायियों को प्रभु का अहसानमंद रहना चाहिए। इसायित के प्रमुख स्वर कहते हैं- आभार धर्म का असल रूप व ईशु की मौजूदगी को समझने का जरिया

है। कुरान कहती है- अहसान माननेवालों को हमेशा मिलता रहेगा। रमजान का व्रत का महीना अल्लाह के शुक्रिया के लिए है। कृतज्ञता के दिग्गज कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के रॉबर्ट एमंस आभार को ऐसा सायास काम मानते हैं जो आपसी संबंध मजबूत बनाता है। आभार उजागर करनेवाले उन्मुक्त और नम्र रहते हैं। जब हम उन चीजों की अधिक लालसा रखते हैं जो हमारे पास नहीं है, तो उनसे खुशियां मिलनी बंद हो जाती हैं जो हमारे पास हैं।

ओप्रा विन्फ्रे का कहना है- उनके प्रति आभार महसूस कीजिए जो आपके पास है, और अधिक मिलेगा। जो नहीं है उसके पीछे भागेंगे तो कभी ज्यादा नहीं मिलेगा। शुक्रिया जाहिर करने की आदत बना लें। खुशनुमा सफर की शुरुआत हो जाएगी।

वाजिद ने लिखा है कि मैं अपने गुरु के पास गया तो तीन साल तक गुरु ने मेरी तरफ देखा ही नहीं। तीन साल बाद जब उन्होंने मेरी ओर नजरें उठाईं, तो मेरे भीतर कुछ ऐसा स्पंदन हुआ कि पूरा जीवन शीतलता से भर गया। जब गुरु शिष्य को देखता है तो ऐसा ही अनुभव होता है जैसे आत्मा तृप्त हो गई हो। ये आंखें हमारे हृदय और आत्मा से जुड़ी हुई हैं। महाकाश्यप बुद्ध के हाथों में फूल देखकर निर्विचार जागरण के लिए तैयार हो गया और अट्टहास करके हंसा। बुद्ध ने निकट बुलाकर वह फूल उसे भेंट कर दिया।

हम जागते हुए दिखते जरूर हैं, मगर वास्तव में हम मूर्छा में जी रहे हैं। हमारी ऊर्जा सदा बाहर-बाहर जा रही है और हमारा जीवन आत्मविस्मरण में बीत रहा है। ऐसी अवस्था में किया हुआ पुण्य भी पाप ही है।

जब मूर्छा टूटती है और व्यक्ति आत्मस्मरण में जीना शुरू करता है, तब वह जो कुछ भी करता है वह पुण्य ही है। पुण्य का मतलब है- शिकायतवृत्ति का अहोभाव में बदल जाना। जिसकी मूर्छा टूटी हो, वही दूसरे पर दोषारोपण की वृत्ति से मुक्त हो सकता है। इसलिए कृतज्ञता को श्रद्धा से श्रेष्ठ माना गया है। श्रद्धा में संदेह कुछ न कुछ अंश में विद्यमान रहता ही है। कृतज्ञता का मतलब है- जितना मिला, जो ही मिला, उसके प्रति आभार की भावना।

समय व परिस्थिति के अनुसार, मानसिक, भावनात्मक, भौतिक, आध्यात्मिक और आर्थिक सहारा आवश्यक होता है। यह सुरक्षित होने के पहले का सपोर्ट है। किसी के प्यार से बोले गए दो शब्द, किसी की निश्छल भावनाएं, किसी की प्रार्थनाएं, आशीर्वाद या अन्य तरीके से दिया गया संबल हमें कहाँ से कहाँ तक पहुंचा देता है। इसलिए हम सहारा देनेवालों के हालचाल पूछना, धन्यवाद देना, आभार व्यक्त करना और उनके खुशी के पलों में शामिल होकर बधाई देना न भूलते हुए उनकी प्रसन्नता में वृद्धि करें।

**** रिश्ते अंदरूनी एहसास, आत्मीय अनुभूति के दम पर ही टिकते हैं। जहां गहरी आत्मीयता नहीं, वो रिश्ता नहीं, रिश्ते का दिखावा हो सकता है। रिश्ते खून से नहीं, परिवार से नहीं, मित्रता से नहीं, व्यवहार से नहीं सिर्फ और सिर्फ आत्मीय एहसास से बनते हैं।***

**** जिस व्यवहार में मर्यादा होती है वह स्वतंत्रता है।***
जो व्यवहार मर्यादा रहित होता है वह स्वच्छंदता है।

सुख - दु:ख

सुख-दुख - मनुष्य उन्नति के समय गर्व न करे, क्योंकि जिस प्रकार दु:ख स्थाई नहीं है, उसी प्रकार सुख भी स्थाई नहीं है। इसलिए सम्पत्ति और विपत्ति दोनों ही अवस्थाओं में समभाव से रहे। दु:ख में कभी हाय-हाय न करें और सुख में कभी बढ़-चढ़कर गर्वोन्नत वचन न बोलें।

हर आदमी की इच्छा होती है कि वह सुखपूर्वक रहे। इसलिए उसकी छोटी-बड़ी सारी क्रियाएं सुखमय जीवन के लिए होती हैं। भगवान महावीर के शब्दों में, सुह साया दुक्ख पडिकुला यानी समस्त प्राणी सुख चाहते हैं, दुख कोई भी नहीं चाहता। लेकिन सुख-शांति मिले तो कैसे? यह इच्छाओं-कामनाओं की पूर्ति से संभव है। किंतु इच्छाओं का कहीं अंत है? एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी जाग जाती है। इच्छाओं पर इच्छाएं, अशांति वैसी की वैसी। भूल जाते हैं कि इच्छाओं से मिलने वाली वही वस्तु सुख बार-बार के मिलने से दुख का कारण बन जाती है। जिस मिठाई से जीभ को सुख मिलता है, वही मिठाई अधिक मात्रा में खाने से दुख का कारण बन जाती है। इसका अर्थ है कि वह असली सुख नहीं, सुख का भ्रम है।

इसी सुख शांति को खोजते-खोजते मनीषियों ने पाया कि असली सुख-शांति भोग में नहीं, त्याग में हैं। आपके सामने जादू की दो छड़ियां हैं, एक सुख देनेवाली और दूसरी दुख देनेवाली। इनमें एक आपको अपने घर घुमानी है और दूसरी पूरे शहर पर तो क्या करेंगे? आप सुख की छड़ी ही लेंगे। हर कोई वही लेना चाहेगा। हर कोई यही आकर चूक जाता है और अनजाने ही दुख को आमंत्रण दे देता है।

दुख के तीन कारण - अज्ञान, अशक्ति और अभाव ये दुख के तीन कारण हैं, इन तीनों कारणों की जो जिस सीमा तक अपने आपसे दूर करने में समर्थ होगा वह उतना ही सुखी बन सकेगा, अज्ञान के कारण मनुष्य का दृष्टिकोण दूषित हो जाता है, वह तत्वज्ञान से अपरिचित होने के कारण उल्टा-पुल्टा सोचता है और उल्टे काम करता है। तद्नुसार उलझनों में अधिक फंसता जाता है और दुखी बनता है। स्वार्थ, लोभ, अहंकार, अनुदारता और क्रोध की भावनाएं मनुष्य को कर्त्तव्यच्युत करती है और वह दूरदर्शिता को छोड़ कर क्षणिक क्षुद्र एवं हीन बातें सोचता है तथा वैसे ही काम करता है। पापों का निश्चित परिणाम दुख है। दूसरी ओर, अज्ञान के कारण वह अपने दूसरों की सांसारिक गतिविधियों के मूल हेतुओं को नहीं समझ पाता, फलस्वरूप, असंभव आशाएं, तृष्णाएं, कल्पनाएं किया करता है। इन उल्टे दृष्टिकोण के कारण मामूली-सी बातें उसे बड़ी दुखमय दिखाई देती हैं। जिसके कारण वह रोता-चिल्लाता है। तीसरे अभाव के कारण भूलें भी अनेक प्रकार की होती हैं, समीपस्थ सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है, यह भी दुख का हेतु है। इस प्रकार अनेक दुख मनुष्य को अज्ञान के कारण प्राप्त होते हैं, अशक्ति का अर्थ है निर्बलता, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक बौद्धिक, आत्मिक, निर्बलताओं के कारण मनुष्य अपने स्वाभाविक जन्मसिद्ध अधिकारों का भार अपने कंधे पर उठाने में समर्थ नहीं होता।

एक व्यापारी को एक वर्ष दस लाख के मुनाफे का भरोसा था। लेकिन सिर्फ दो लाख रुपये का मुनाफा हुआ। वह बहुत दुखी हुआ। उसकी पत्नी ने समझाते हुए कहा- हमें एक पैसे का भी घाटा सहन नहीं करना पड़ा है। जो लाभ हुआ है, उसे

हमें खुशी से स्वीकार करना चाहिए। इस धरती पर अनगिनत ऐसे लोग हैं जो जीवन में एक लाख रुपये कभी देख तक नहीं पाते। उनकी तुलना में हम सुखी और समृद्ध हैं। आप बेवजह दुखी हो रहे हैं। पत्नी के समझाने से पति का मन हलका हो गया। हर इंसान में गुण-अवगुण दोनों होते हैं। हमारा चिंतन गुणों की ओर रहना चाहिए। इससे शांति और प्रसन्नता होती है। दुख को सुख में बदलने के लिए विधायक दृष्टिकोण का विकास बहुत जरूरी है। एक ही परिस्थिति और घटना को दो व्यक्ति अलग अलग तरह से ग्रहण करते हैं। जिसका चिंतन विधायक होता है, वह अभाव को भी भाव तथा दुख को भी सुख में बदलने में सफल हो सकता है। जिसका विचार निषेधात्मक होता है, वह सुख को भी दुख में बदल देता है।

हम किसी बंगले-मोटर वाले धनवान का परिचय कराते हैं तो कहते हैं यह बहुत ही सुखी व्यक्ति हैं। दूसरी तरफ हम धर्म-परायण, व्रती-त्यागी को यह कहकर संबोधित करते हैं कि यह बहुत धर्मात्मा व्यक्ति हैं। हम उसका परिचय धनी व्यक्ति की तरह सुखी कहकर नहीं कराते। तो फिर धर्म का पालन करनेवाला सुखी नहीं?

क्यों हमने सुख को सांसारिक सुविधाओं, वैभव, समृद्धि तक ही सीमित कर दिया है जो हम धर्म करनेवालों को केवल धर्मात्मा मानते हैं, सुखी नहीं? विवेकशील और बुद्धिमान होने पर भी हमारी यह कैसी भूल है कि धर्म और सुख को अलग-अलग परिभाषित कर रहे हैं? शायद यह धारणा ही हमारे और धर्म के बीच दूरी बढ़ा रही है। कारण यह भी हो सकता है कि धर्म त्याग का मार्ग है और मानव स्वभाव है सुख की ओर आकृष्ट होना। इसीलिए हमें जोड़ने में ही सुख का आभास होता है छोड़ने में नहीं।

दु:ख की घड़ियाँ कल्पों के समान लम्बी हो जाती है और सुख के सैकड़ों वर्ष क्षण के समान व्यतीत हो जाते हैं। काल की गति तो एक-सी ही है। वह प्राणियों के दु:खों को देखकर शनै: शनै: नहीं चलता सुखों को देखकर मुट्ठी बाँधकर भागता नहीं। उसकी चाल सुख-दु:ख में समान है, किन्तु हम अपने मन से, अपनी भावना और सुविधानुसार शनै: और शीघ्र ही सृष्टि करते हैं।

सुखी होने के लिए सारे संसार पर हुक्म चलाना जरूरी है? सुख की ऐसी कोई शर्त नहीं है। लोभ की ऐसी शर्त अवश्य है। लोभ जरूर कहता है कि पहले संसार को जीतो, तब सुख मिलेगा। पर सच यह है कि तब भी सुख नहीं मिल पाता है। गरीबी की गरिमा, सादगी का सौंदर्य, संघर्ष का हर्ष, समता का स्वाद और आस्था का आनंद- ये सब हमारे आचरण से पतझड़ के पत्तों की भांति झर गए हैं। मानवीय-प्रेम या करुणा का संवेदनशील स्वर, नैतिक चिंतन की अवधारणा और सम्यक आचरण का संकल्प कहीं खो गए हैं।

**** बुढ़ापा वासनाओं में खोई गई शक्तियों का आन्तरिक परिणाम है।***

**** मत चाहो किसी को इतना भी कि चाहत आपकी मजबूरी बन जाये,***
चाहो किसी को बस इतना ही आपका प्यार उसके लिये जरूरी बन जाये।

**** मुश्किलों में सब सहारे छूटते हैं, तूफानी लहर में ही किनारे डूबते है।***
हर मुसीबत में ही जिन्दगी की परख है, गर्दिशों में ही आसमां के सितारे टूटते हैं।

आलस्य, तमस, प्रमाद

भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। भारत के बाद अफगान दुनिया के प्रमुख देशों में स्थापित हुआ। उसके बाद ग्लोब फारस की तरफ घूमा। एक समय था जब संसार में फारस का डंका बजता था। समृद्धि जहां-जहां जाती रही, अपने साथ-साथ आलस भी ले जाती रही। फारस के बाद यूनान सबसे शक्तिशाली रूप में उभरा। उसे ये स्थान ऐसे ही नहीं मिल गया। उसने यह अपने परिश्रम से प्राप्त किया। लेकिन जैसे ही पैसा आया, यूनान भी भोग-विलास और प्रमाद के साये में जीने लगा। इस कारण समृद्धि वहां से भी चलती बनी। कभी सुनते थे कि ब्रिटिश राज में कभी सूरज नहीं डूबता। ब्रिटेन के लोगों ने हजारों मील लंबी समुद्र यात्राओं में खुद को खतरों में डालकर पूरे विश्व में ब्रिटेन का यूनियन जैक फहराया। एक छोटा-सा देश ब्रिटेन पूरी दुनिया में अपनी भाषा और सभ्यता के चिन्ह छोड़ गया। लेकिन धीरे-धीरे अपने इतने बड़े साम्राज्य को वह संभाल नहीं पाया। क्योंकि उसमें भी भोग विलास और आलस का रोग लग गया।

ब्रिटेन के बाद समय आया अमेरिका का। आज पूरी दुनिया में अमेरिका का वर्चस्व है। अमेरिका न केवल पूरी दुनिया को हथियार निर्यात कर रहा है, वह अपने संस्कार भी निर्यात कर रहा है। ग्लोब का घूमना कभी रुकता नहीं। समय का चक्र चलता ही रहता है। अमेरिका को उत्तर देने के लिए आज विश्व पटल में चीन ने अपने आप को सामने बढ़ चढ़ कर दिखाना शुरू कर दिया है। चीन आज अपने आपको विश्व की प्रमुख शक्ति के रूप में देखना चाहता है। ग्लोब वहीं रुकता है जहां उर्जा हो, मेहनत हो।

स्वामी रामतीर्थ ने कहा था- भारत को विश्व पटल पर आगे बढ़ना हो तो सबसे पहले आलस, तमस और प्रमाद छोड़ना होगा। आज देखा जाए तो ग्लोब भारत की ओर घूम रहा है, लेकिन यह तभी संभव होगा जब हम स्वामी जी की बात याद रखेंगे। हम तभी श्रेष्ठ भारत का निर्माण कर सकेंगे जब अपने में श्रेष्ठता का विचार लाएंगे।

कर्म किए बिना कोई रह नहीं सकता। बहुत गहराई में जाकर देखें तो आलस्य भी अपने आप में एक कर्म है। अपने कर्म और उसके फल के प्रति कभी-कभी एक नया दृष्टिकोण अपनाया जाए। एक दिन शुरू से ही यह मानकर चलें कि आज आप अकर्ता हैं, काम सारे करेंगे लेकिन फिर भी कुछ नहीं करेंगे। ऊपर वाला करा रहा है। कर्म होना है, कर्ता का बोध समाप्त हो जाना है। इसमें कहीं भी ऐसा नहीं होगा कि आप अकर्मण्य हैं। काम सारे होते रहेंगे, लेकिन ये बोध बना रहेगा कि करने और है। दिनभर अपने को एक बहाव में बहा दें। आज के दिन भगवान जो कराए वही करना है। पूरी तरह कर्ता भाव से मुक्त हो जाएं। आज साक्षी बन जाएं। जैसे आज के दिन भगवान ने एक नाटक लिखा है और हम केवल एक पात्र हैं। लिखी हुई पटकथा में बिल्कुल बीच में बिना उसके निर्देश के प्रवेश न करें। होने दीजिए जो हो रहा है। सबकुछ करते हुए भी आज कुछ नहीं करना। बार-बार विचार करिए कोई और करा रहा है। जितना अधिक यह संकल्प तीव्र होगा, उतने ही आप अपने आपको शांत महसूस करेंगे। यहीं से निष्कामता का जन्म होगा। एक दिन स्वयं को इस निष्कामता के नाम करके देखिए। भक्तों के भीतर निष्कामता कूट-कूटकर भरी हुई होनी चाहिए। इससे उन्हें सफलता में अहंकार नहीं आता और असफलता में अवसाद नहीं घेरता। वो करा रहे हैं, मैं कर रहा हूं। भक्त अपने जीवन के हर दृश्य को भगवान की लिखी

हुई पटकथा ही मानते हैं। बिना किसी झंझट के सारे काम हो जाएंगे और आप तनावमुक्त बने रहेंगे।

शरीर को परिश्रम करने से छुपाना ही आलस्य और निर्धारित काम की उपेक्षा करके मन को इधर-उधर दौड़ाना ही प्रमाद है। जहां इन दोनों का संयोग हो जाता है, वहां समय की बर्बादी और काम की असफलता ही हाथ लगेगी। दुनिया में आलस्य से बढ़कर कोई भयंकर बीमारी नहीं है। समस्त रोगों का राजा और मृत्यु से भी भयंकर आलस्य है।

आलस्य का आक्रमण सर्वाधिक खतरनाक है। उसे समझना और हल करना आसान नहीं है क्योंकि सबसे पहले आलस्य अपने छल फरेब का जाल फैलाकर मानव की विवेक शक्ति को नष्ट करता है। आलस्य, आराम और सुख का लालच देकर मनुष्य में एक मादक खुमारी पैदा कर देता है जिससे मनुष्य अपने आप इसकी शरणागत हो जाता है।

आलस्य के आक्रमण के प्रारंभिक दौर में मनुष्य अपने काम को आगे के लिए टालमटोल करता रहता है। अपने कर्त्तव्य को छोड़कर वह इधर-उधर भागने का प्रयास करता है। ऐसी स्थिति में कठोरता से काम लेना चाहिए तथा अपने सामने जो काम पड़ा है, उसी को पूर्ण करने के लिए जुट जाना चाहिए। मन को जबरन उस ओर लगाना चाहिए।

आलसी व्यक्ति एक परभागभोगी ही होता है। इस धरा पर श्रम करके ही अन्न वस्त्र की व्यवस्था हो सकती है। दूसरे का भाग चुराना नैतिक, सामाजिक और आत्मिक दृष्टि से पाप ही है। अकर्मण्य आलसी इस पाप को निर्लज्ज होकर करते ही रहते हैं। जो व्यक्ति खाली रहकर निठल्ला बैठा रहता है, वह शारीरिक रूप से ही नहीं मानसिक रूप से भी कमजोर हो जाता है।

खाली दिमाग शैतान का घर वाली कहावत आलसी व्यक्ति पर पूरी तरह से चरितार्थ होती है। जो खाली बैठा रहता है उसे तरह-तरह की खुराफतें सूझती रहती हैं। वह बेकार की ऊहापोह में लगा रहता है। उसके पास इसके सिवाय कोई काम नहीं होता। परिणामस्वरूप उसे ऐसी अनेक विकृतियां और दुर्गुण घेर लेते हैं जिससे उसके चरित्र का उद्योपतन हो जाता है। इसी अभिशाप से कई लोग दुराचारी बन जाते हैं। ऐसे व्यक्ति अपना विवेक संतुलन भी खो देते हैं।

आलसी व्यक्ति के लिए किसी भी प्रकार की सफलता प्राप्त करना दुष्कर होता है क्योंकि वह अपनी शक्ति को आलस्य की केंचुली में ढके रहता है। उद्योगी और परिश्रमी व्यक्ति ही सदैव सुखी और समृद्ध रहते हैं।

लोहा यदि निकम्मा पड़ा रहे तो उसे जंग खा जाता है। इसके विपरीत काम करके घिस करके नष्ट उस्तरा अधिक समय जीता है, चमकीला और अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रवृत्ति के नि:स्वार्थ पनपने पर प्रगति की बहुत कुछ संभावना होती हे। आलस्य के घुन से बचना ही सफलता प्राप्ति का प्रमुख सूत्र है।

**** ज्ञान के इस देश में अज्ञान का अंधेरा है, लगता है अभी बहुत दूर रात का सवेरा है।***

**** इंसान भी क्या चीज है, दौलत कमाने के लिए सेहत खो देता है, सेहत को वापस पाने के लिए दौलत खो देता है। जीता ऐसे है, जैसे कभी मरेगा ही नहीं और मर ऐसे जाता है, जैसे कभी जिया ही नहीं।***

**** जीवन का सबसे बड़ा गुरु समय होता है, जो वक्त सिखा सकता है वो कोई भी आपको नहीं सिखा सकता।***

स्वाधीनता, पराधीनता और स्वतन्त्रता

पराधीनता तो पशु-पक्षी भी पसंद नहीं करते। पक्षी को किसी पिंजरे में बंद कर दो, फिर देखो वो किस प्रकार से बाहर आने के लिए फड़फड़ाता है। वास्तव में जीव का असली रूप परम स्वतंत्र है, इसलिए वह जिस शरीर में आता है उसमें उसकी स्वतंत्रता की छटपटाहट बनी रहती है।

आजादी ही हमारी सच्ची और इकलौती जरूरत है। आजादी के बिना इंसान मुर्दे जैसा है। खुशियों की चाबी है आजादी और आजादी की चाबी है बहादुरी। हिम्मती शख्स ही आजाद है। आदमी जिस पल चाहता है, उसी वक्त आजाद हो जाता है। अगर आप आजादी के लिए कुर्बानी नहीं दे सकते तो आपको आजाद होने का कोई हक नहीं। आजादी के लिए हमें हर पल कोई भी कुर्बानी देने के लिए तैयार रहना चाहिए। सुरक्षा के डर से आजादी को छोड़नेवालों को दोनों में से कुछ भी हासिल नहीं होता। कोई भी आपको आजादी, बराबरी और इंसाफ नहीं देगा, आजादी के लिए लड़ना ही होगा। प्यार का मतलब एक-दूसरे पर बंदिश लगाना नहीं, बल्कि एक-दूसरे को आजादी देना है। आजादी का मतलब लोगों को ना बोलने का हक है।

स्वतन्त्रताका अर्थ उच्छृङ्खलता नहीं है, स्वतन्त्रता तो संयम सिखाती है। जहाँ मनमाना आचरण करनेमें स्वतन्त्रता मानी जाती है, वहाँ तो उच्छृङ्खल यथेच्छाचार है और ऐसी उच्छृङ्खलताका तो नाश ही समाजके लिये कल्याणकारी है। स्वतन्त्रता मिल जाना काफी नही है, जरूरत इस बात की है कि स्वतन्त्रता के सबसे बडे मूल्य लोकतन्त्र को हम कितना मजबूत बनाते है। हर आजादी के लिए जरूरी है मर्यादा का अंपायर :- सड़क पर एक व्यक्ति किसी युवक को लगातार थप्पड़ मारे जा रहा था। पिटने वाला युवक खासा स्वस्थ होने पर भी न तो कोई जवाब दे रहा था और न ही खुद को बचाने की कोशिश कर रहा था। राह से गुजरनेवालों में से एक ने थप्पड़ मारनेवाले को ललकारते हुए कहा- खबरदार जो अब इस बेचारे को हाथ भी लगाया तो। लेकिन तभी चमत्कार हो गया। थप्पड़ खानेवाले युवक ने राहगीर की बात सुनकर कहा- आपको मुझ पर दया करने की जरूरत नहीं है। मुझे जो मार रहे हैं, वह मेरे पिता हैं और उन्हें मेरी गलती पर मुझे मारने का पूरा हक है। युवक की यह अनोखी बात सुनकर सभी हैरान हुए और अपनी राह चले गए।

हर क्षेत्र में सही और गलत का निर्णायक है। क्रिकेट मैच में अंपायर है, अखाड़े में रेफरी है, न्यायालय में न्यायाधीश है, कॉलेज-स्कूल में प्रधानाचार्य है, क्लास में शिक्षक है, देश की व्यवस्था चलाने को प्रधानमंत्री हैं। आज अंपायर की भूमिका निभानेवालों की आवाज नए परिवेश में दब कर रह गई है। अंपायर विहीन समाज ने उपभोग की सामग्री को ही सुख का नाम दे दिया है। भौतिकता की दौड़ में अमूल्य आनंद को खोते जा रहे हैं। प्रेम, शरीर के कृत्रिम सौंदर्य के आकर्षण तक ही सिमट गया है। युवा पीढ़ी की स्वतंत्रता स्वच्छंदता में बदल गई है।

धर्म भी कुछ क्रियाओं तक ही सिमट कर रह गया है। व्यक्ति की पहचान उसके चरित्र, उसके व्यवहार से नहीं, बल्कि रंग-रूप से, कपड़ों से, बड़ी-बड़ी कोठियों से और धन-वैभव से होने लगी है। हिंसक कहे जानेवाले जंगली पशुओं से भी कहीं अधिक खतरा है उस जीवन से जो किसी मर्यादा के नियंत्रण में नहीं है। हम अपने कागज के नोटों को तो पर्स में रखते हैं, लेकिन गहनों को सेफ में रखते हैं। संपत्ति के दस्तावेजों को संभाल कर फाइल में रखते हैं। लेकिन जो इन सबसे ज्यादा मूल्यवान है, अपने उस जीवन को हम किसी मर्यादा के संरक्षण में, नियंत्रण में रखने को तैयार नहीं होते। किनारों के बंधन में ही नदी का प्रवाह सुरक्षित है। खूंटे से बंधा पशु ही सुरक्षा में रह पाता है। हमारे शील, सदाचार की सुरक्षा भी मर्यादा के नियंत्रण में ही है। हमारी स्वतंत्रता का किसी न किसी मर्यादा के अंपायर के बंधन से जुड़े रहना ठीक होता है।

संकल्प-विकल्प

संकल्प और विकल्प में दोनों मन के धर्म है परन्तु इन दोनों में पर्याप्त अंतर है। संकल्प मानव को उत्थान की ओर ले जाता है और विकल्प पतन की ओर धकेलता है।

महानता हासिल करना चाहते हैं तो स्वयं का सम्मान करना सीखें - संकल्प बड़ी शक्ति है और इससे बड़ा परिवर्तन हो सकता है। सफलता के लिए तीन प्रकार की शक्तियां अहम हैं- इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति और एकाग्रता की शक्ति। ये तीन शक्तियां कम या अधिक मात्रा में हर व्यक्ति के पास होती है। कोई भी इनसे हीन नहीं है। इन्हें जागृत करके जीवनशैली बनाने का है। कोई दर्पण फिर कभी लोहा नहीं बना, कोई रोटी फिर कभी गेहूं नहीं बनी, कोई पका हुआ अंगूर फिर कभी खट्टा फल नहीं बना। इसलिए परिवर्तन के बुरे नतीजों के बारे में आशंकित न हों। इसलिए खुद रोशनी बनें और दूसरों को भी प्रकाशित करें।

कुछ लोग संकल्प से घबराते हैं। उन्हें यह ज्ञान ही नहीं कि संकल्प के बिना किसी का विकास नहीं हो सकता। उपनिषद में कहा गया है- संकल्पना सृष्टि:। कोई भी सृष्टि हुई है तो संकल्प से ही हुई है। हम नया मकान बनवाते हैं, नई फैक्टरी बैठाते हैं या सीए, डॉक्टर वगैरह बनने की सोचते हैं तो इसके पीछे हमारा दीर्घकालिक चिंतन होता है। चिंतन के बाद उसके लिए संकल्पित होते हैं, तब कहीं जाकर संकल्प चरितार्थ होता है।

कोई भी सफलता एकाएक नहीं मिलती। संकल्पों से जुड़नेवाले व्यक्ति जो संकल्प लेते हैं, उसमें सफलता के लिए उसका वे प्रतिदिन पुनरावर्तन करते हैं। प्रतिदिन उसे दोहराते हैं। जहां स्वीकृत संकल्पों का पालन नहीं होता, वहां चारित्रिक न्यूनता या शिथिलता आती है और सफलता भी संदिग्ध हो जाती है। संकल्प प्रारंभ में गीली मिट्टी का लोंदा होता है। उसे घड़ा बनाकर तुरंत उसमें पानी नहीं भरा जा सकता। पानी तभी उसमें टिकेगा, जब घडा पक जाएगा।

श्रम, संकल्प और सफलता एक दूसरे से जुड़े हैं। श्रम हो और संकल्प हो तो सफलता सुनिश्चित हो जाती है। इसमें प्रोत्साहन का भी बड़ा योग होता है। संकल्प को सिद्धि तक पहुंचाने हेतु पूरे मन से तैयार होना होता है, उसके अनुकूल माहौल भी बनाना होता है। व्यक्ति में इसके लिए स्वयं को बदलने की तैयारी भी आवश्यक है। नए परिवर्तन की नई दिशाओं का उद्घाटन कैसे किया जा सकता है? जो व्यक्ति प्रत्येक स्थिति में संतुलन बनाए रख सकता है, वह नित्य नए सृजन की क्षमता को बढ़ाता हुआ अप्राप्य को प्राप्त कर लेता है।

विकल्प से निर्विकल्प की यात्रा का जरूरी पड़ाव है संकल्प

मन को थामना, मन को पकड़ना बड़ा मुश्किल काम है। हमारा मन कई मायनों में मुट्ठी में बंद रेत की तरह है, जितना ही इसे पकड़ने की कोशिश करो, उतना ही यह सरकता जाता है। कितना ही इसे बांधने की कोशिश करो, आप इसे बांध नहीं पाओगे। जिस तरह रेत कोई एक चीज न होकर अलग-अलग कणों का समुच्चय है, ऐसे ही मन भी कोई एक इकाई नहीं है। भिन्न-भिन्न बेतरतीब विचारों का समूह मात्र है यह मन। कभी एक-आध विचार को पकड़ने में आपको जरूर कामयाबी हासिल हो सकती है।, लेकिन मन इतना विशाल है कि इससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आपकी यह कामयाबी

भी क्षणिक ही होगी, क्योंकि मन के बवंडर में नए-नए विचार उठते रहेंगे। कितना ही आप क्यों न बचें, आपसे ये विचार टकराते रहेंगे। जब तक मन है, तब तक यह आपको शांत नहीं होने देगा। शांति को गहरे में जाकर देखें तो इसका अर्थ ही है- विचारों की भीड़ का अभाव। हकीकत में तो सुकून को तभी आने का बुलावा भेजा जा सकता है, जब पहले मन को विदा कर दिया जाए। जब तक मन विकल्पों के साथ है- तरह-तरह की चीजों में व अनेक प्रकार के विचारों में उलझा है, वह आपको किसी न किसी परेशानी में उलझाए रखेगा। विचारों का धुंध ही आपको अपने स्रोत को देखने नहीं देगा। वह स्रोत जो शांत है, स्थिर है और पूर्ण है।

अन्तस में स्थित अपने स्रोत तक पहुंचने के लिए हमें मन को विकल्पों से हटाकर निर्विकल्प करना होगा और विचारों का जंजाल खत्म करना होगा। आसान इसलिए है क्योंकि निर्विकल्प व निर्विचार अवस्था ही हमारी असली अवस्था यानी ओरिजिनल स्टेट है। मुश्किल इसलिए है क्योंकि हमें अपनी मूल अवस्था से दूर भटके हुए लंबा आरसा हो गया है।

फिर मार्ग क्या है? बारिश में कभी पानी जमा हो जाए तो बीच-बीच के पत्थरों पर कदम रखते हुए मार्ग बनाना पड़ता है। इसी तरह विकल्प से निर्विकल्प के बीच का स्टेपिंग स्टोन है संकल्प। जब आप कुछ बड़ा करने की बात ठानते हैं और पूरे जी-जान से उसमें जुट जाते हैं तो आपके अंदर कुछ अद्भुत घटित होता है। आपके अंदर विचारों की भीड़ छंटने लगती है और उनकी जगह एक ठोस विचार आकार लेने लगता है। यदि आप एक साथ दस लोगों को पकड़ना चाहें तो पकड़ ही नहीं पाएंगे, लेकिन जब एक को ही पकड़ना हो तो यह काम मुमकिन है। संकल्प की शक्ति से विचारों को एक केंद्रीय विचार में तिरोहित कर आप निर्विकल्प से सिर्फ एक कदम दूर रह जाते हैं। संकल्प के जरिए आप अपनी शक्तियां पहचानने लगते हैं, अपने स्रोत के करीब जाने लगते हैं। यहां से सिर्फ एक छलांग की जरूरत रह जाती है, जो आपको स्वयं के स्रोत में ले जाती है। इसलिए संकल्पवान बनें।

जब हमारे लक्ष्य निश्चित होते हैं, तभी हम द्वंद्व की स्थिति से उबर सकते हैं। विकल्पों का चुनाव तभी सही होता है। जिस विकल्प से जीवन आसान लगे, सार्थक और सुव्यवस्थित लगे, वही सुविधा का पर्याय है। पर जब सुविधा में दुविधा की स्थिति हो जाये, तब बड़ों और अनुभवी लोगों की सलाह अवश्य लेनी चाहिए। जैसे बहुत सारे रसोइये खाना बिगाड़ देते हैं, उसी तरह बहुत सारी सुविधाएं भी दुविधा पैदा कर सकती हैं, अत: इस भ्रामक संसार में अपनी बुद्धि और विवेक का सही इस्तेमाल करना चाहिए।

**** अपनी कमजोरियों और बुरी आदतों को सुधारने की बजाए अच्छे लोगों की पीछे बुराई तथा लांछन लगाने की कोशिश व्यक्ति को नीचे गिराती है।***

**** पैसा कमाने के लिए इतना वक्त खर्चा ना करो कि पैसा खर्च करने के लिए वक्त ही ना मिले।***

**** जैसे छोटा सा तिनका हवा का रुख बताता है वैसे ही मामूली घटनाएं मनुष्य के हृदय की वृत्ति को बताती हैं।***

उदासीनता

उदासी भगाने के राज जानें - आशा जहां जीवन में ऑक्सीजन की तरह है, उदासी जानलेवा और दमघोटू लेकिन लोग हैं कि उदासी ही ओढ़े रहना चाहते हैं। जरा सी कोई समस्या हुई नहीं कि खुशियों के परिंदे हवा में उड़ जाते हैं।

मन को हमने इसी तरह प्रवृत्त किया है लेकिन क्या यह जीवन बार बार मिलेगा। कितना सुंदर कितना अद्‌भुत है यह संसार और मनुष्य जीवन एक करिश्मा ही तो है। खुशियां हमारे चारों ओर बिखरी हैं। इनका कोई मूल्य नहीं होता। ये मुफ़्त मिलती है।

लोगों से संपर्क में रहें- अकेला व्यक्ति पागलपन की कगार पर पहुंच सकता है, इसलिए सामाजिक बनें। किसी संस्था से जुड़ जाएं जहां आपको विभिन्न प्रकृति के लोग मिलेंगे। आपके पास करने को जब सामाजिक कार्य होगा तो यह आपका आत्मविश्वास बढ़ाएगा और आपको संतुष्टि प्रदान करेगा।

मनुष्य की उपस्थिति मात्रा में एक ऊष्मा होती है। इसका आनंद लें। इसके लिये आप किसी भी भीड़ भरे स्थान पर जा सकते हैं। किसी मंदिर, गुरुद्वारे या कहीं भीड़ भरे पार्क में बेंच पर बैठ जाएं या किसी खाली दुकान की ओट लेकर बैठ जाएं या तो रेलवे स्टेशन सबसे बढ़िया जगह है। दौड़ते-भागते लोग हों या परिवारों के साथ चादर पर लंबी ताने आराम करते है या चाय की चुस्की करते लोग हों, उन्हें देखते आप का बढ़िया मनोरंजन हो सकता है बशर्ते आपकी संवेदनाएं जीवित बची हों।

जिंदगी सतत संघर्ष है। राह में दुश्वारियां ज्यादा हैं। रिश्तों में मिठास कम, कड़वाहटें ज्यादा हैं मगर रिश्तें जिंदगी में अहम हैं। उनके बिना चल भी नहीं सकते। यही रिश्ते अक्सर तनाव का कारण बन जाते हैं।

आप किसी से अच्छा व्यवहार करते हैं लेकिन फिर भी वो जाने किन कुंठाओं, गलतफहमियों या ईर्ष्या के काराण बेवजह आपको आहत करने पर तुला रहे तो आपकी नाराजगी जायज है लेकिन आप जानते हैं कि नाराजगी प्रगट करने से बात और बिगड़ जाएगी। अपनी छटपटाहट, बेचैनी नफरत जैसी नकारात्मक भावना से निजात पाना चाहिए। आप अपनी सारी कड़वाहट, शिकायतें, मलाल किसी कागज पर लिख डालें और पढ़कर तुरंत उसे नष्ट कर दें। यह फंडा आपको तुरंत राहत देगा। आप भार मुक्त महसूस करेंगे और कह उठेंगे व्हाट ए ग्रेट रिलीफ। एक उक्ति है आक्रमण सुरक्षा की सबसे बड़ी नीति है। आप इसे आधुनिक तरीके से अपनाएं। आप आलोचना से त्रस्त होने, सफाई देने, बचाव करने के बजाय आलोचक से आलोचना की विवेचना करने को कहें।

निश्चय ही वह बगले झांकने लगेगा। अब तक उसका हौसला इसलिए बुलंद था कि आप सुरक्षात्मक रवैय्या अपना रहे थे यानी कि वो आपके सीधेपन का फायदा उठा रहा था। आप भी जरा टेढ़े होकर देखें। सामनेवाले रास्ते पर आ जाएगा। अब आपके मन में भी न कोई दंश पलेगा, न कोई टीस आपको तकलीफ देगी।

**** जीवन का सबसे बड़ा अपराध किसी की आंख में आंसू आपकी वजह से होना,***
और जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि किसी की आंख में आंसू आपके लिए होना।

सुविधा - दुविधा

बुद्धि और विवेक का इस्तेमाल सही तरीके से करें - मेरे एक परिचित शादी समारोह से लौटे। मैंने मजाक में पूछा कि क्या-क्या खाये वहां। उन्होंने बड़ी मायूसी से जवाब दिया, अरे इतनी चीजें थीं खाने का कि समझ में ही नहीं आया क्या खाऊं। क्या न खाऊं, कशमकश में रोज वाली सब्जी-चपाती ले ली। यह समस्या आज कमोबेश सबके साथ है, आज हर एक क्षेत्र में चीजों के इतने विकल्प हैं कि अगर आप निश्चित न हों, तो भटकाव लाजमी है। दसवीं पास एक छात्र से जब पूछा गया आगे कौन सा स्ट्रीम लेकर पढ़ेंगे, तो लापरवाही से उसने जवाब दिया, कितने रास्ते तो खुले हैं आजकल, जिसमें दाखिला मिल जायेगा, ले लेंगे। यानी पढ़ाई। नौकरी, घर-गृहस्थी, फैशन हर जगह ढेरों विकल्प हैं।

सुविधाओं से लैस इस समाज में ही हम ज्यादा धोखा खा रहे हैं। जो सामान हमारे काम के नहीं होते हैं उसे ही घर ले आते हैं। दूसरों की देखा-देखी, अपनी जरूरत की उपेक्षा करके हम निरूद्देश्य कुछ कर जाते हैं, जिसमें वक्त और पैसा दोनों जाया होते हैं। सुविधा यानी विधा को सुव्यवस्थित करना, सुविधाएं हमारा जीवन आसान बनाने के लिए होती हैं। लेकिन, सुविधा जब दुविधा में तब्दील हो जाये, तो इसका मतलब है हमें खुद अपनी आवश्यकताओं का भान नहीं हैं।

आजकल बच्चे माता-पिता या दोस्तों के दबाव में उन विषयों को ले लेते हैं, जो उनके पसंद के नहीं होते। शुरुआत में तो ठीक-ठाक रहता है, पर धीरे-धीरे वे बोझिल होते जाते हैं। फिर आरंभ होता है अवसाद का दौर। इसलिए अपनी योग्यता का आकलन करना चाहिए।

गणित नहीं रास आता हो, तो उन विषयों का चुनाव करें, जिनमें मन लगता हो। खाना और कपड़ों पर विकल्प आजमाया जा सकता है, पर भवितव्य में खिलवाड़ ठीक नहीं है।

अपनी आदतों को सुविधा के अनुसार नहीं ढालना चाहिए, बल्कि सुविधाओं को अपनी आवश्यकता के अनुसार ढालना चाहिए। सुविधा अपने विस्तृत परिवेश में अनुशासन से जुड़ी हुई है। हम देर रात तक पार्टी करने को स्वतंत्र हैं, लेकिन कानफोडू संगीत पड़ोसियों की नींद में व्यवधान डाले, तो यह धृष्टता है। आत्मानुशासन से सुविधाओं का सीधा संबंध इसलिए ही है कि एक आदमी की सुविधा दूसरे के लिए बाधा हो सकती है। प्रचार और विज्ञापन के बहकावे में अक्सर दुविधा की स्थिति पैदा हो जाती है।

**** जो बहाने बना लेते हैं वे कुछ और नहीं बना पाते।***

**** गुस्सा एक ऐसी आंधी है जो दिमाग के चराग बुझा देती है।***

**** मनुष्य वही है जो किसी के दर्द को अपना दर्द समझे।***

**** जिंदगी बगैर मेहनत के मुसीबत और बगैर अक्ल के हैवानियत है।***

**** जीवन में कोई चीज इतनी हानिकारक और खतरनाक नहीं होती है, जितना डांवांडोल स्थिति में रहना। क्योंकि डांवांडोल स्थिति में व्यक्ति कोई निश्चित निर्णय नहीं कर पाता है और अनिश्चितता उसे जीवन में आगे बढ़ने से रोकती है।***

अगर झूठ से काम चल जाता हमेशा, तो जिन्दगी में सच्चाई न होती।
सभी कुछ अगर होता बस में हमारे, तो दुनिया में खुदा की बड़ाई न होती।।

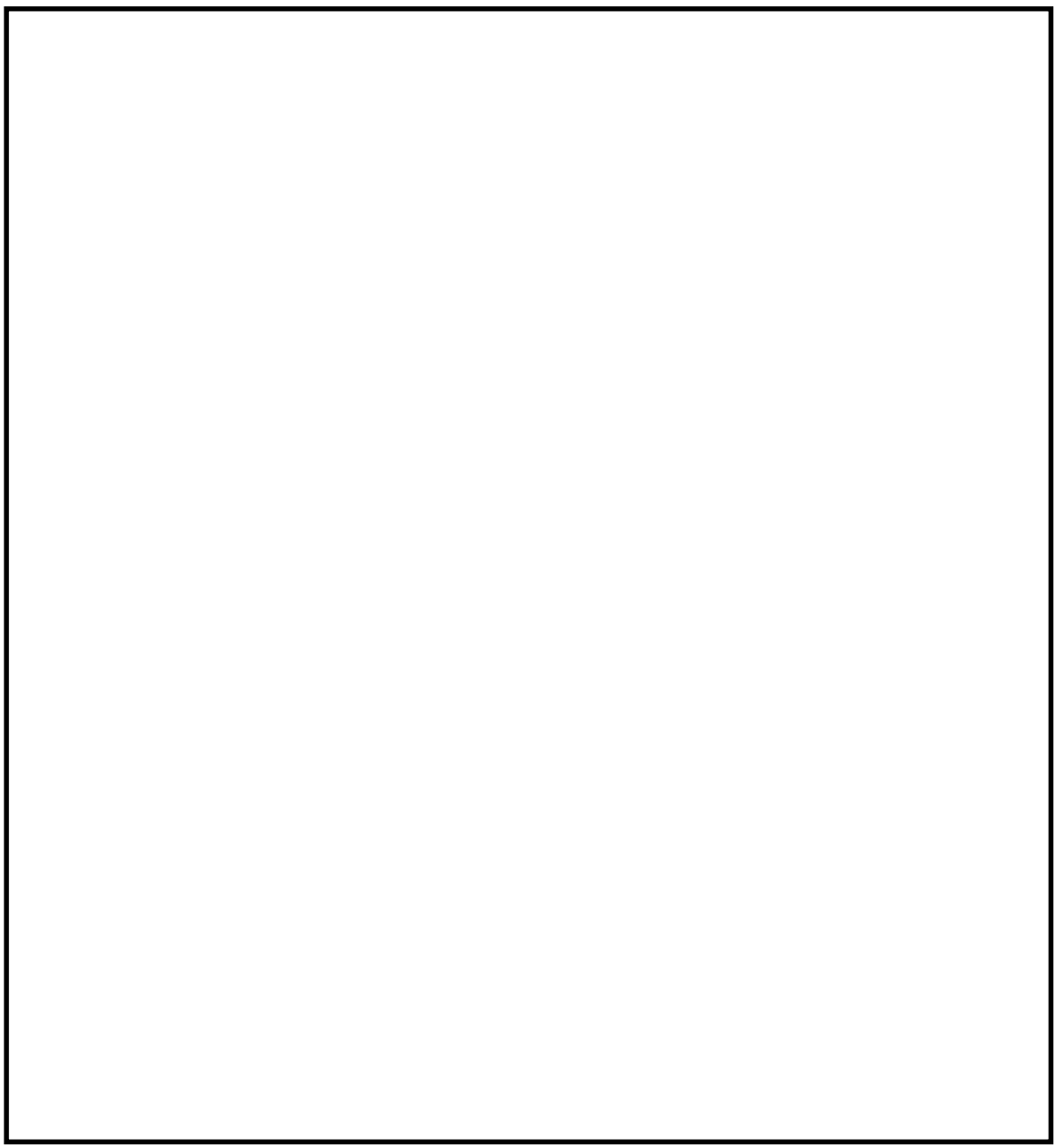

संस्कारों की कोई वसीयत नहीं होती और ईमानदारी की कोई विरासत नहीं होती।

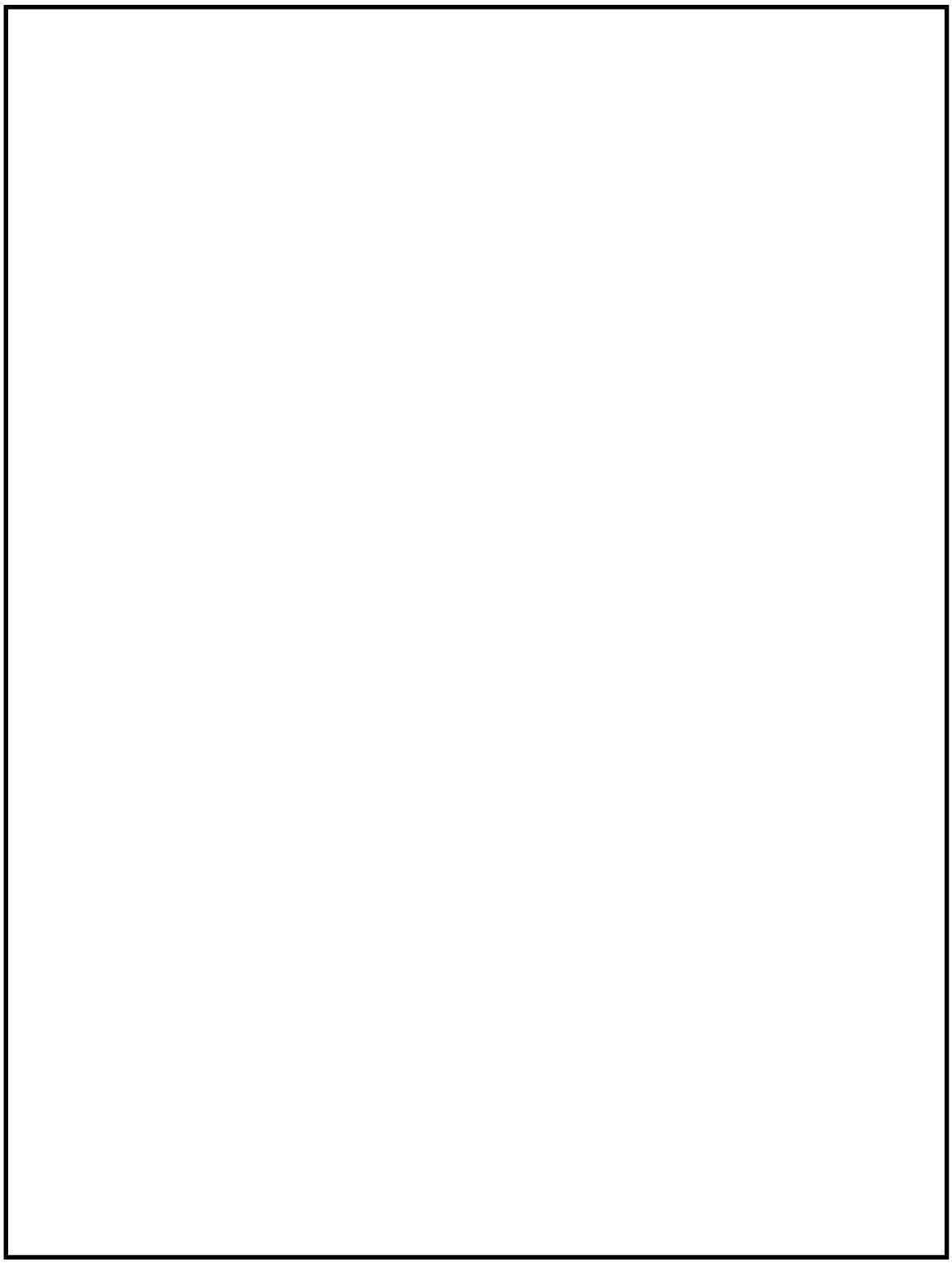

❊ हिला दे सारे सागर को उसे तुफान कहते हैं, तोड़ दे किनारों को उसे उफान कहते हैं।
इससे भी आगे जो सोच ले, तूफानों से भी टकराने की हिम्मत रखें उसे इन्सान कहते हैं।।

❊ सागर की खामोश लहरें, वक्त की नजाकत बयां करती हैं।
सागर की मदहोश लहरें, जिंदगी और मौत की दास्तां कहती हैं।

श्री गणेश

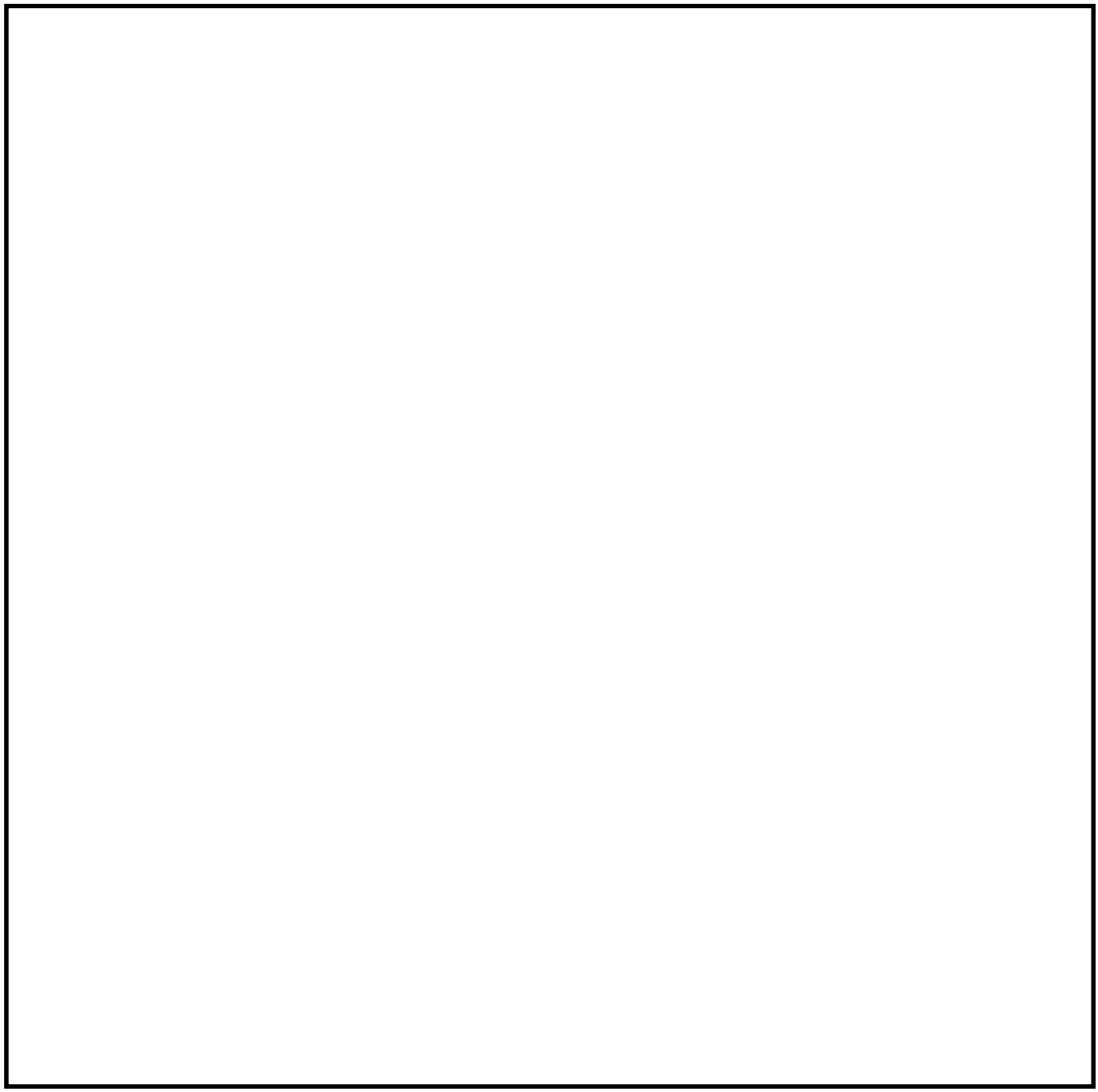

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कबिनामु पश्रवस्तमम।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मण्णा ब्रह्मणसप्त आ न: शृण्वन्नतिभि: सीद सादनम्...।
नि शु सीद गणपते गणेशु त्वामाहु विर्प्रत्म: कबिनाम।
न रीते त्वत्त क्रियते की चनारे महामक मघवाक मघवचित्रमर्च।

देवगणों के प्रभु होने से गणपति हो, ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो, उत्कृष्ठ ऋतिवलों में श्रेष्ठ हो, तुम शिव के ज्येष्ठ पुत्र हो, अत: हम आदर से तुम्हारा आव्हान करते हैं। हे ब्रह्मणसप्त गणेश, तुम अपने समस्त शक्तियों के साथ इस आसान पर आओ।

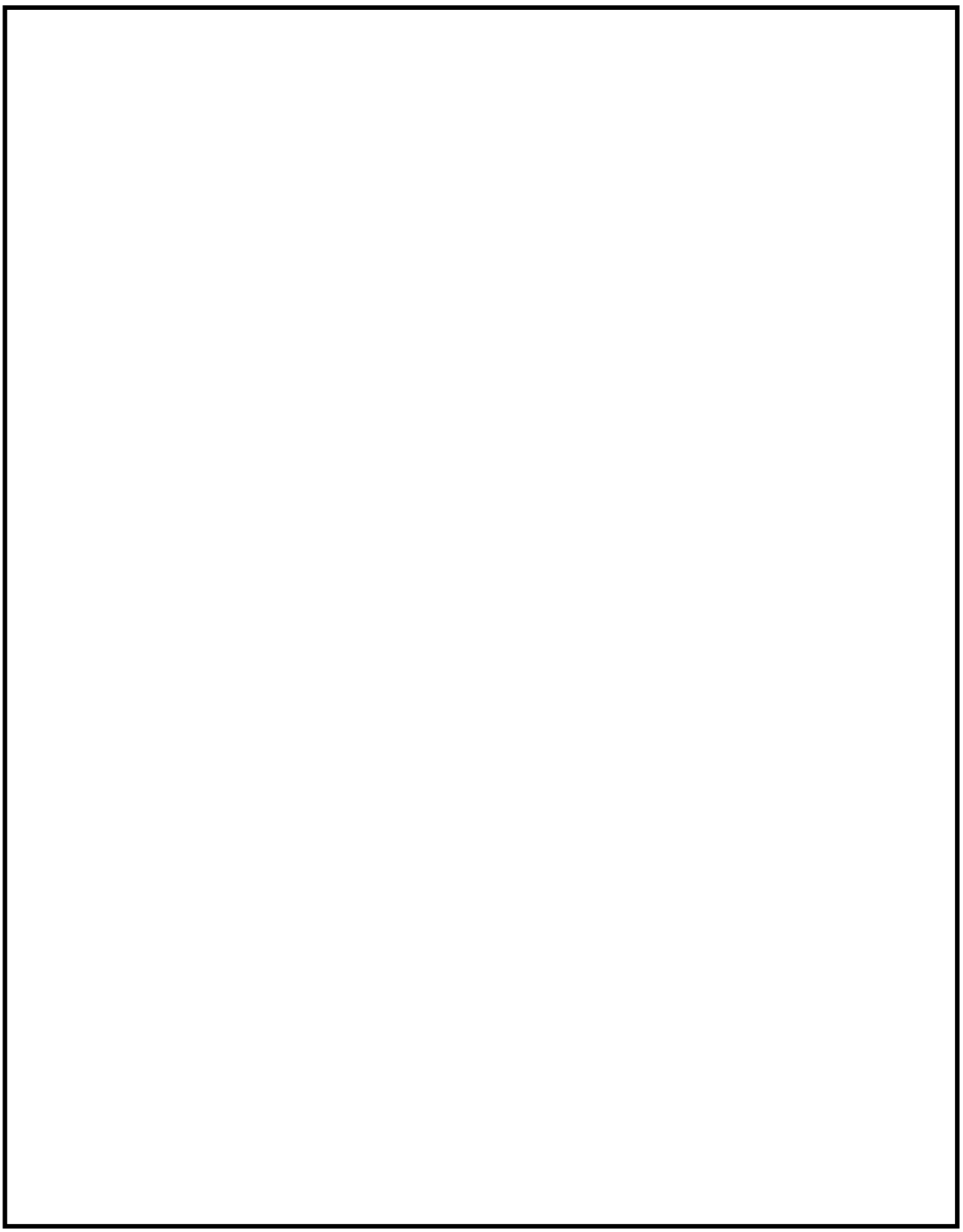

नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, सोलहवाँ वार्षिक महोत्सव पर अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया द्वारा रचित महान भारत के शिल्पकार का विमोचन करते हुए श्री घनश्याम अग्रवाल (गगन बिल्डर्स), श्री महेन्द्रकुमार पाटोदिया, राष्ट्रीय शीर्ष विक्री अध्यक्ष श्री संजय भान, आचार्य श्री वागेशजी व महालक्ष्मी मंदिर के संस्थापक अध्यक्ष श्री राजकुमार अग्रवाल

जिनकी स्मृति में यह ग्रंथ समर्पित है
मेरी धर्म माता श्रीमती सुमित्रादेवी सराफ

आपकी अक्षय-क्षमता, अदम्य साहस एवं प्रेरणाओं की स्मृति-ज्योति, हमारे विरह-वेदना से व्यथित मन में आज भी प्रज्ज्वलित है। हम अन्त:करण से आपकी दिव्य आत्मा को नमन करते हैं।

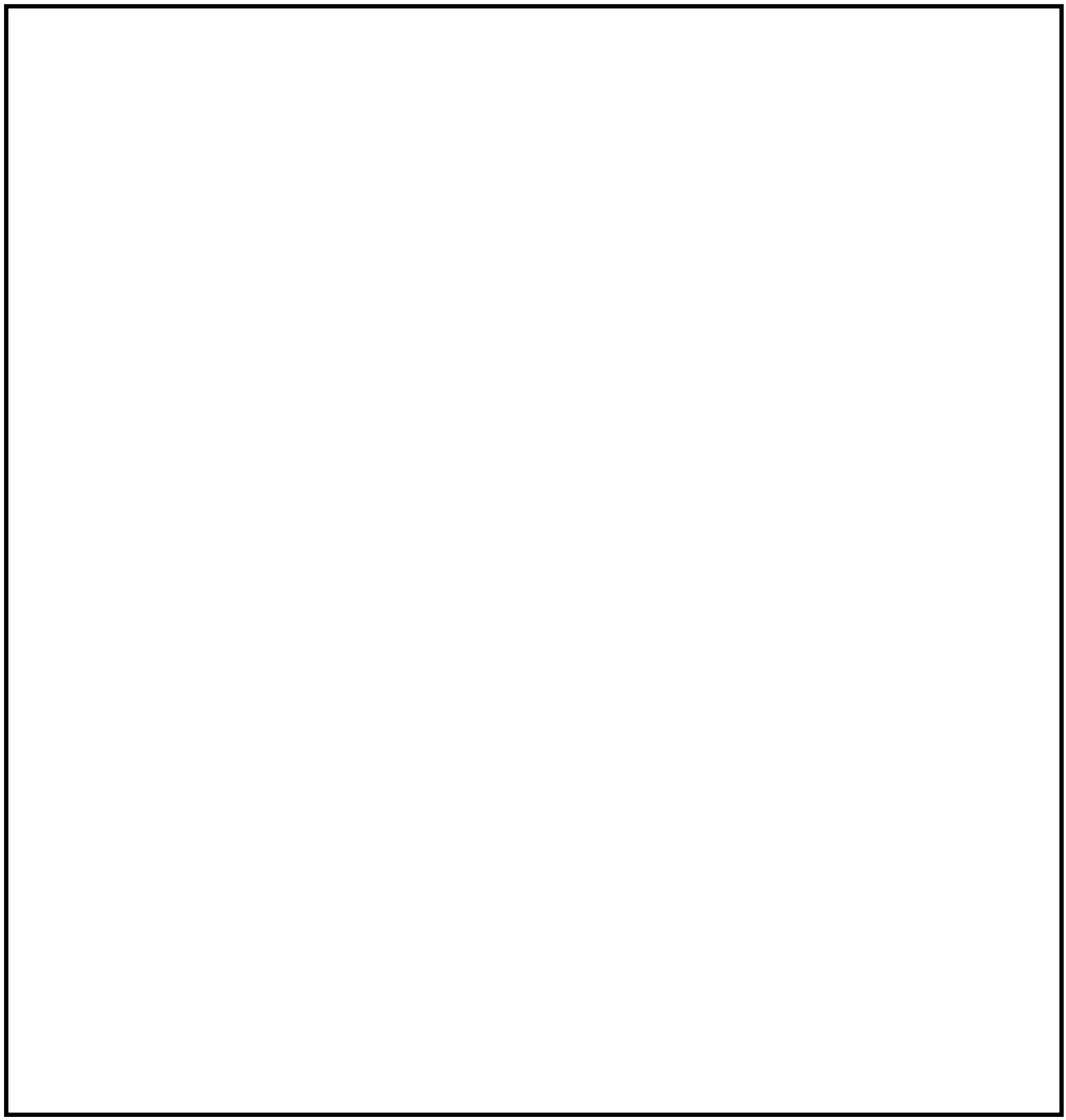

लोकविदाई - २८ मार्च, २०१८

जिनकी स्मृति में यह ग्रंथ समर्पित है

हमारे न्यासी श्री ओमप्रकाश जी की धर्मपत्नी

श्रीमती प्रेमलता अग्रवाल

अब तो आपकी तस्वीर ही हमारे पास है, आपके बिना हम सबकी जिंदगी उदास है।
बस, आपकी मुस्कुराती यादें हमारे साथ हैं, जिनसे लगता है, अब भी आप हमारे आस-पास हैं।

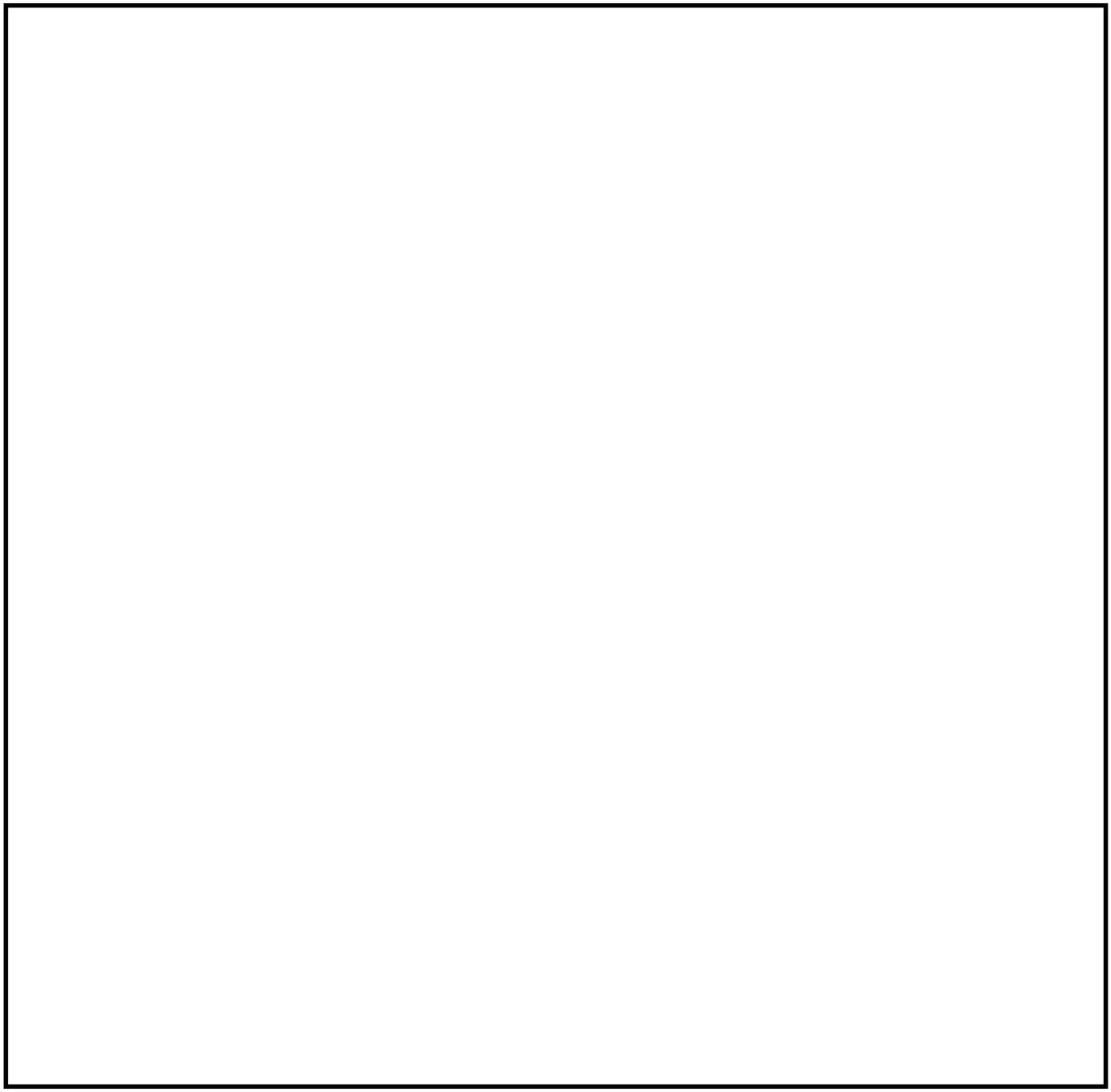

लोकविदाई - १४ अक्टूबर, २०१८